

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

६०

मध्यकालीन साहित्य
में
अवतारवाद

डॉ० कपिलदेव पाराडेय



चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १

प्रकाशक श्रीसम्भा विद्यामठन वाराणसी
मुद्रक विद्याविनायक प्रेस वाराणसी
संस्करण प्रथम वि० संवत् २०२०
मूल्य ३०-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1983
Phone : 2076

THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

60



THEORY OF INCARNATION IN MEDIEVAL
INDIAN LITERATURE
AN
INTERPRETATION

BY

Dr KAPILDEO PANDEY

M A., Ph D

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1

माँ भारती !
राष्ट्र की रक्षा के लिये
मेरे
शास्त्र और शस्त्र
को
शक्ति दो ! शक्ति दो !!
कपिल

भूमिका

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

[मध्यम (हिन्दी-विभाग) राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वाराणसी]

डॉ० कपिलदेव पाण्डेय का यह शाघ प्रबंध (मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद) बहुत सूक्ष्म और परिश्रम के साथ लिखा गया है। फ़ारसी विश्वविद्यालय ने इस प्रबंध पर उन्हें पी एच डी की उपाधि प्रदान की है। मैं इस पुस्तक को कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। भारतवर्ष के मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद एक शक्तिशाली प्रेरक तत्त्व के रूप में काम करता रहा है। कई सम्प्रदाय इसके विरोधी रहे हैं और कभी-कभी विरोधी रहते हुए भी प्रकारान्तर से इसके प्रभाव में आ गए हैं। मध्यकालीन भारतीय साहित्य की इस प्रेरक शक्ति को समझे बिना इस साहित्य का अध्ययन अपूरा रह जाता है। केवल साहित्य ही नहीं; मूर्ति, चित्र, वास्तु, संगीत, नृत्य आदि वास्तु कलाएँ भी इस केन्द्रीय प्रेरक माध्यम के समझे बिना ठीक से समझी नहीं जा सकेंगी। भारतवर्ष की धर्मसाधना बहु विधित्त्व रूप में प्रकट हुई है। उसकी अन्तर्निहित एकता और उसका आपाततः दृश्यमान वैचित्र्य निपुण निरीक्षक को भी शक्ति कर देते हैं। इस धर्मसाधना का साहित्य बहुत बड़ा है, विभिन्न सम्प्रदायों और उपसंप्रदायों के मूलभूत, उन पर लिखी गई टीकाएँ, उनकी रसात्मक साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ, उनका पूजा अर्चा-संबंधी साहित्य बहुत विरोधालु है। इस समय साहित्य और इस पर आधारित कलाकृतियों को निरंतर प्रेरणा देते रहने का काम विभिन्न प्रकार की दार्शनिक विचारधाराएँ करती हैं। इस विपुल साहित्य का अध्ययन बढ़ा कठिन काम है। आमुष्मान् कपिलदेव ने इसी कठिन कार्य को हाथ में लिया था। संयोगवश, मैंने ही इस कार्य का हाथ में लेने के लिये उन्हें उत्साहित किया था और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने इस कार्य का मेरी आशा के अनुरूप पूरा किया है। मुझे इस प्रबंध की दस्त-रस करने का निमित्त भी बनना पड़ा था।

यद्यपि अवतारवाद का ध्यानक प्रभाव मध्यकाल में ही प्रकट हुआ परन्तु उसे मध्यकाल की उपज नहीं कहा जा सकता। इसका इतिहास बहुत पुराना है। मध्यकाल में सर्वाधिक प्रभावशाली ग्रन्थ भागवत महापुराण रहा है। इस ग्रन्थ में पुरानी परंपराओं के सामंजस्य-विधान का प्रयत्न दिखाई देता है। परंपरा बहुत पुरानी है। मध्यकालीन भावधारा के अभ्ययन क लिये प्राचीन परंपरा का अनुरीलन भी आवश्यक है। मागधतो से इसका आरम्भ हुआ है और उन्ही के परवर्ती रूप वैष्णव धर्म में यह पुष्ट हुआ है। विष्णु वा नारायण के एकाधिक अवतारों की कथा उच्चर वैदिक साहित्य में ही मिलने लगती है। परन्तु मध्यकाल में इस भावधारा का प्रवेश शैव और शाक्त संप्रदायों में भी हुआ है। उच्चर मध्यकाल क अनेक निर्गुण मार्गी संप्रदायों ने इस भावधारा का विरोध जम के किया है पर प्रतिक्रिया ने भी आगे चलकर क्तिवा का रूप ग्रहण किया है। निर्गुण संप्रदायों के अनेक प्रवर्तक भगवान् के स्वयं रूप स्वीकार कर लिए गए हैं। डॉ० कपिलदेव पाण्डेय ने इस पुस्तक में उनकी प्रच्छन्न अवतारवादी विचार धारा की अच्छी तरह से पहचानने का प्रयत्न किया है।

वैष्णव संप्रदाय में भगवान् के अनेक अवतार माने गए हैं परन्तु मुख्य अवतार बाल्य रूप में स्वीकार किए गए हैं। धर्म की स्थिति होने के कारण अधर्म का भी अनुत्थान होता है उसके निराकरण के लिये, साधु जनों की रक्षा और समाज-विरोधी असाधु जनों के विनाश के लिये ही भगवान् का अवतार होता है, यह बात गीता में कही गई है। पर आगे चलकर इसमें एक और महत्वपूर्ण बात भी जोड़ दी गई है। लघुमत्स्यतामृत में कहा गया है कि भगवान् अपनी लीला का विस्तार करके मछों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अवतरित होते हैं। यह लीलाविस्तार मानवविषय को घेरकर ही होता है। यही कारण है कि मध्यकाल में भगवान् के मानवरूप—तत्रापि समय मानवरूप—को अधिक महत्त्व दिया गया है। राम और कृष्ण के रूप में भगवान् की यह लीला सबसे अधिक लोकप्रिय हुई है। इनमें श्रीकृष्ण-अवतार की कथा अधिक पुरानी भी है और अधिक

ध्यापक मी । पुराने शिल्प में श्रीहृष्णापतार की दुष्ट-दमन-लीलाओं का ही बहूल्य है, पर बाद में मनुष्य की समस्त रागात्मक वृत्तियाँ इस रूप को काट करके घन्य हुई हैं । उत्तर मध्यकाल का शिल्प मगधान् हृष्णा की मानवीय लीलाओं को शायम करके ही रूपायित हुआ है । डॉ० कपिलदेव भी की पेनी छपि इन समी क्षेत्रों में गई है । उनका अभ्ययन ध्यापक पटमूनि पर प्रतिष्ठित हुआ है ।

डॉ० कपिलदेव पाण्डेय ने संपूर्ण भारतीय वाङ्मय का अनुशीलन करके अपतारवाद के मूल उत्स और उसके विक्रसक्रम को परला है । इस कार्य में उन्हें बहुत बाधाओं का सामना करना पड़ा है । कहते हैं, अर्धे कामों में बहुत विम हुआ करते हैं । विमों का सामना उन्होंने धैर्य और उत्साह में किया है । उन्हें सफलता मिली है । मगधान् के अनुग्रह से ही यह कार्य सम्भव हो सका है । इस ग्रन्थ को प्रकाशित देना कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है । परन्तु मेरी सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात में है कि आमुष्यान् कपिलदेव इस कार्य का निरन्तर चिन्तन करते-करते इसमें पूरी तरह रम गए हैं । और भी काम करते रहने का उत्साह उनमें बढ़ता ही गया है । उन्हें दर्शन, काव्य, शिल्प, सर्वत्र अपने अभ्येतभ्य की महिमा का साक्षात्कार हुआ है । वे इस दिशा में और भी महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे, ऐसा विश्वास करने का उचित कारण है । मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि उन्हें अच्छा स्वास्थ्य और लम्बी उमर दें और निरन्तर काम करने की मंगलमयी प्रेरणा देते रहें । मुझे आशा है कि सहृदय पाठक इस परिभ्रमपूर्वक लिले ग्रन्थ का स्वागत करेंगे ।

अण्डीगढ़ }
२६-४-६३ }

हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रस्तावना

मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन में सूक्तियों और सन्तों में रहस्यवाद तथा समुच्च भक्त कवियों में अद्वैत विधिद्वैत प्रभृति साम्प्रदायिक मान्यताओं के विवेचन पर जितना बल दिया गया है उतना अन्य अन्तःप्रभृतियों की ओर नहीं जिनका उस युग की चिन्ताधार के विकास में मुख्य योग रहा है। यों इतिहासनेत्रियों ने सुभाषिणों की प्रभृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया है या सिद्ध जैन भाव सन्त, सूफ़ी और समुच्च साहित्य तथा कबीर, जायसी, सुर और तुलसी के विवेचकों ने तत्साहित्य में उपलब्ध विचारधाराओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है किन्तु इस युग का प्रधान स्वर अबतारवाद उनमें अपेक्षित सा रहा है। अभी तक अबतारवाद से सम्बन्ध अधिकांश विवेचन शीर्षकहीन एवं प्रासंगिक हुए हैं।

स्वर्गीय रामचन्द्र गुप्त ने 'भ्रमरवीतसार की भूमिका' तथा सुर और तुलसी साहित्य पर सिद्धि कतिपय निबन्धों में अबतारवाद के सामाजिक एवं लोकव्यङ्ग्य रूप से परिचित कराया है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'मध्यकालीन धर्मसाधना', 'नापसम्प्रदाय', हिन्दी साहित्य का आदि काल' प्रभृति रचनाओं में अबतारवाद के विभिन्न तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। निर्गुण भक्ति साहित्य के अनुवर्तिस्व स्वर्गीय डा० बहूप्याम ने सन्त मुक्तियों में उपलब्ध अबतारवादी प्रभृतियों का संक्षिप्त विवेचन किया है। भीवरपुराण जगुर्वेदी ने उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा' में सन्तों में प्रचलित अबतारों का कतिपय स्थलों पर अपेक्षित परिचय दिया है। इसी प्रकार समुच्च साहित्य के अन्वेषकों में डा० शीतदयानु गुप्त ने अष्टछाप और बङ्गम सम्प्रदाय में कृष्ण के अबतारवादी रूपों तथा अन्य कतिपय अबतारवादी तत्त्वों का विवेचन किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त और डा० बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति तुलसीसाहित्य के अन्वेषकों ने राम के अबतारवादी रूपों का निरूपण किया है।

इससे उत्पन्न साहित्य के अन्वेषक अबतारवाद के कतिपय रूपाकारों का पता अबतम बल पाता है, किन्तु मध्ययुग की प्रमुख चेतना में अबतारवाद का क्या स्थान है, इसका निराकरण नहीं होता। साथ ही इन विभिन्न धाराओं के कवियों में विद्यमान कुछ सामान्य अबतारवादी तत्त्वों का आकलन अभी तक नहीं हो सका है, जिसके अभाव में इनका मूल्यांकन बहुत कुछ अर्थों में अपूर्ण



लेखक

प्रस्तावना

मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन में सुकियों और सन्तों में रहस्यवाद तथा सगुण भक्त कवियों में अद्वैत विधिटाटैत प्रभृति साम्प्रदायिक मान्यताओं के विवेचन पर बितना बल दिया गया है उतना अन्य अन्तःप्रभृतियों की ओर नहीं बिनका उस युग की चिन्ताधारा के विकास में मुख्य योग रहा है। यों इतिहासलेखकों ने मुर्गाबरोप की प्रभृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया है या सिद्ध जैन नाथ सन्त, सूफे और सगुण साहित्य तथा कबीर, जायसी, मूर और तुलसी के विवेचकों ने ठरसाहित्य में उत्तम विचारधाराओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है किन्तु इस युग का प्रधान स्वर अबतारवाद उनमें अपेक्षित सा रहा है। अभी तक अबतारवाद से सम्बन्ध अधिकोप विवेचन शीर्षकहीन एवं प्रासंगिक हुए हैं।

स्वर्गीय रामचन्द्र गुरु ने 'अमरगोत्रसार की भूमिका' तथा मूर और तुलसी साहित्य पर लिखित कतिपय निबन्धों में अबतारवाद के सामाजिक एवं लौकिक रूप से परिचित कराया है। डा० हुजारी प्रसाद त्रिवेणी की 'मध्यकालीन बर्मसाधना' 'नाथसम्प्रदाय' 'हिन्दी साहित्य का आदि काल प्रभृति रचनाओं में अबतारवाद के विभिन्न तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। निर्गुण भक्ति साहित्य के अनुसन्धिलसु स्वर्गीय डा० बह्य्याम ने सन्त गुरुओं में उपपन्न अबतारवादी प्रभृतियों का संक्षिप्त विवेचन किया है। श्रीपरगुरान जनुबेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा' में सन्तों में प्रचलित अबतारों का कतिपय स्थलों पर संक्षेप परिचय दिया है। इसी प्रकार सगुण साहित्य के अध्येतकों में डा० बीनदयानु गुन ने अष्टछाप और बह्म सम्प्रदाय में कृष्ण के अबतारवादी रूपों तथा अन्य कतिपय अबतारवादी तत्त्वों का विवेचन किया है। डा० माताप्रसाद गुन और डा० बसदेव प्रसाद मिय प्रभृति तुलसीसाहित्य के अध्येतकों ने राम के अबतारवादी रूपों का निरूपण किया है।

इससे तत्कालीन साहित्य में क्यात अबतारवाद के कतिपय उपागनों का पता अबतय बल खाटा है, किन्तु मध्ययुग की प्रमुख चेतना में अबतारवाद का क्या स्थान है, इसका निराकरण नहीं होता। साथ ही इन विभिन्न धाराओं के कवियों में विद्यमान कुछ सामान्य अबतारवादी तत्त्वों का आकलन अभी तक नहीं हो सका है, जिसके अभाव में इनका मूल्यांकन बहुत कुछ अर्थों में अपूर्ण

रह जाता है। क्योंकि व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं के निर्माण में व्यक्ति या वर्ग की अपेक्षा प्रकृति विशेष का भी पर्याप्त प्रभाव रहता है। आलोचना या प्रतिपादन दोनों दृष्टिकोणों से मध्यकामीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ में अवतारवाद का विशिष्ट स्थान है। क्योंकि प्रारम्भ से लेकर आसोप्यक्रम के अन्तिम चरण तक रसा रञ्ज और रसास्वादन इन तीन प्रयोजनों से सम्बन्धित अवतारवाद का जन्म तो हुआ देवप्राणीय विष्णु के असुरसंहारक या देवराज पराक्रम में, विस्तार हुआ परब्रह्म विष्णु एवं उनके तत्काल अवतारी उपास्यों में और वर्गबोधन हुआ रस के अखण्ड अवतारी उपास्यों की नित्य और नैमित्तिक पुनः और प्रकट रहस्यक्रीडाओं में। फिर भी अवतारवाद का रूप केवल इन्हीं प्रयोजनों तक आकर नहीं रहा अन्तिम समुदाय साहित्य के अतिरिक्त सिद्ध, जैन, नाय सन्त और सूफ़ी साहित्य में भी उसके विभिन्न रूप मिलते हैं।

प्रस्तुत विषय में लगभग विक्रम की ८वीं शती से लेकर १७वीं तक विभिन्न साहित्य में व्याप्त अवतारवादी रूपों उत्तरी एवं परम्पराओं का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में कतिपय रूपों और परम्पराओं के कमबल अध्ययन के निमित्त महासम्मेल अपने काल से पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं की भी सहायता भी गई है। विशेषकर मल्ल कवियों में जिन अवतारों एवं अवतारवादी मान्यताओं का विकास हुआ है उनका सम्बन्ध वैदिक सम्प्रदाय से भी रहा है। इन साम्प्रदायिक सिद्धांतों के विवेचक व्याचारों ने अपने मतों की पुष्टि एवं प्रतिपादन में वैदिक महाकाव्य पौराणिक और पांचरात्र ग्रन्थों को मुख्य आधार बनाया है। अतएव अवतारवादी रूपों एवं सिद्धांतों के विवेचन के निमित्त इन आधार ग्रन्थों की सामग्री का भी उपयोग किया गया है। क्योंकि कवियों के व्याचार पर इस युग का अध्ययन करते समय ऐसी अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं जिनका निराकरण केवल हिन्दू साहित्य में उपलब्ध उपादानों के आधार पर सम्भव नहीं मानी होता। इस विषय के निमित्त मध्ययुग के जिन साहित्य का उपयोग किया गया है उनमें अधिकतर ऐसी रचनाएँ हैं जिनका काल निश्चित करना स्वयं एक स्वतन्त्र अभियोग का कार्य हो जाता है। अतः विवेचन करते समय प्रस्तुत इतिहासकारों के आधार पर उनके कालक्रम को मीठे ढंग से ध्यान में रखा गया है। सूफ़ी साहित्य के अध्ययनक्रम में मैंने रामचन्द्र कृष्ण द्वारा सम्पादित आवसी सम्पादनी के अतिरिक्त माताप्रसार पुस्तक संस्करण का अधिक उपयोग किया है। सन्त साहित्य में मैंने सिद्ध मुक्तों के जिन वर्गों को 'दुर्ग प्रबन्ध साहित्य' से दिया है उन वर्गों में श्रुता एक ही, तीन चार और पाँच तक का कम सिद्ध मुक्तों के क्रमानुसार माना गया है। 'राम कल्पद्रुम' और कतिपय हस्तलिखित ग्रन्थों से संकलित उन्हीं मल्ल

कवियों की रचनाओं का उपयोग किया गया है जिसका नामादाय के 'मत्तमास' में उल्लेख हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में भूमिका क अतिरिक्त चीन्हू अध्याय है और अन्त में मानवशास्त्र, समाजशास्त्र मनोविज्ञान सौम्यशास्त्र और सनितकथा की दृष्टि से अबतारवाद का मौखिक विवेचन भी किया गया है।

भूमिका में वैदिक साहित्य से लेकर आचार्यों तक अबतारवाद का उत्तरोत्तर विकसित मान्यताओं पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रारम्भ में अबतारवाद के विकास का बीज बिष्णु के पराक्रम में मिलता है। देवासुर संघाम में वे अपने बलबोर्ष के लिए बिष्णु हैं। कामान्तर में उनका एकेधरवानी रूप का विकास होने पर राम 'कृष्ण' आदि बीतों तथा अन्य पराक्रम सम्बन्धी माह्वानों से उनका अबतारवादी सम्बन्ध स्थापित किया गया। गीता में जिस हेतुमुक्त अबतारवाद की ज्वाला हुई है भागवत में उसको अपेक्षाकृत व्यापक रूप प्रदान किया गया। भागवत के अनुसार मृष्टि-अबतरण और व्यक्तिगत मर्त्यों के निमित्त अबतरण दोनों में किसी अन्य हेतु की अपेक्षा सीता की प्रदान कारण बताया गया। दक्षिण के माह्वारों में बिष्णु एवं उनके अबतार अत्यधिक लोकप्रिय हुए और दक्षिणी आचार्यों क द्वारा उनका प्रचार उत्तर भारत में भी हुआ।

पहले अध्याय में बौद्ध सिद्ध साहित्य का अध्ययन करते हुए उनमें उपलब्ध वैष्णव अबतारवाद सम्बन्धी उपादानों का आकसन और विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में किञ्चित् वैष्णव और जैन विचारों से प्रभावित बौद्ध अबतारवादी की रूपरेखा मिलती है। विशेषकर ऐतिहासिक बुद्ध तथागत बुद्ध, बोधिसत्व और बन्धु से सम्बन्ध बौद्ध अबतारवादी के चार रूप मिलते हैं तथा शून्य स्वयं अबतारी और कल्याण अबतार-हेतु में परिणत हो जाते हैं। इस अध्याय में इनका विसृत अध्ययन किया गया है। अन्त में उत्तरकासीन बौद्ध विपणों के अबतारत्व और समन्वयवादी मनोकृति पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरे अध्याय में जैन साहित्य के तिरसठ महापुरुषों के अबतारवादी सम्बन्धों का निरूपण करते हुए बताया गया है कि जीवोस तीर्थङ्कर इस रूप के साहित्य में भागवत एवं पांचरात्रों में प्रचलित उपास्यों के सहाय उपास्य हैं। तिरसठ महापुरुषों में मान्य कृष्ण वल्लभ वामुदेव और प्रतिवामुदेव अन्तिम बल्लभ की परम्परा में विकसित बिष्णु एवं उनके द्वारा विभिन्न अबतारों में मारे गये ममूर्तों के जैनोद्धत रूप हैं।

तीसरे अध्याय में नाय साहित्य में उपन्यास ग्रन्थों के आभार पर यह बताया गया है कि अबतारवाद के विरोधी होने पर भी मोरख, मरस्येन्द्र और सिब उपास्य रूप में मान्य होने के साथ ही नाय सम्प्रदाय में अबतार और अबतारी हैं। गौरवनाय या अन्य नामों को इस सम्प्रदाय में सिब के अबतार माने गये हैं किन्तु सिब के अष्टादश वीरसिद्धिक अबतारों की परम्परा में वे नहीं आते। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में वैष्णव अबतारों के रूप तथा अन्य कतिपय अबतारवादी तत्त्वों पर विचार किया गया है।

चौथे अध्याय में इसाबतार और सामूहिक अबतार परम्पराओं का अद्विक अध्ययन करते हुए बताया गया है कि आसोप्यकासीन साहित्य में दोनों परम्पराएँ अभिविद्यमान रूप से दृष्टिगत होती हैं। इनमें दयाबतारों के नाम एवं संख्या में भूनामिक परिवर्तित रूप मिलते हैं और सामूहिक अबतारवाद की परम्परा में महामारुत और वास्वीक तथा हृत्विद्य विष्णु और भागवत की परम्पराएँ सूचीत हुई हैं।

पाँचवें अध्याय में सप्त साहित्य के अबतारवादी तत्त्वों, कर्मों और परम्पराओं का निरूपण किया गया है। सम्बन्धीन अबतारवाद के विवेचन के पूर्व सप्त साहित्य में अभिव्यक्त मानवमुस्य पर विचार करते हुए बताया गया है कि अबतार के विकास में केवल अबतरण ही नहीं अपितु उत्कमण्यीत प्रवृत्तियों का भी योग रहा है। साथ ही सत्त्वों के निर्गुण निरूपण उपास्य में उन्नत पाँचरात्रों के अन्तर्गामी रूप का विवेचन किया गया है। उसमें निहित सगुण तत्त्वों और वीरसिद्धिक अबतारी कार्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वह सद्गुणोपासकों के अर्थाविग्रह के समाग घट और भयवान् के अबतारवादी सम्बन्ध की दृष्टि से अधिक भिन्न नहीं है। हिन्दी साहित्य में जिन्हें सप्त की कोटि में माना गया है उनमें अबतारवाद के आसोपक भी हैं और सगर्भक भी। इस अध्याय में दोनों मास्यरात्रों का वृषक-वृषक विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त मुषावतार परम्परा वैशम्पती अबतारवाद, वैष्णव अबतारों के रूप तथा अबतार और अबतारी कबीर इस अध्याय के अन्य निकषित विषयों में से हैं।

छठे अध्याय में सूफी और प्रेमाख्यातक काव्यों के अबतारवादी तत्त्वों का अध्ययन हुआ है। सूफी साहित्य में इस्लाम के एकेधरवादी ब्रह्माह में निहित सगुण और अबतारवादी तत्त्वों का भावगत के उपास्य के साथ तुल्यवात्मक अध्ययन करते हुए बताया गया है कि वह पाँचरात्रों के उपास्य के साथ निर्गुण और सगुण दोनों तत्त्वों से मुक्त उपास्य है, जिसकी ज्योति से अवतरित वैशम्पती की परम्परा का विकास हुआ। जिस प्रकार राम और कृष्ण अबतार से

उपास्य रूप में प्रचलित हुए उसी प्रकार पैगम्बर-मुहम्मद साहब भी पैगम्बर से रमूच अल्लाह के रूप में मान्य हुए। अम्य इस्लामी देश तथा भारत में प्रायः अबतारबिरोधी और अबतारवादी दो प्रकार के सूफ़ी सम्प्रदाय मिलते हैं। उनके साहित्य में प्रचलित अबतारवादी विधाओं पर फ़र्मात प्रकार का उपास्य रूप है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रेमास्मानक काव्यों में प्रचलित कामदेव और रति प्रद्युम्न अतिक्रम, कृष्ण और अम्य वैष्णव रूपों का विवेचन किया गया है।

सातवें अध्याय में सगुण भक्ति साहित्य के प्रेरक पांचरात्र भागवत और मध्यकासीन वैष्णव सम्प्रदायों की अबतारवादी मान्यताओं और उनके विभिन्न रूपों का अध्ययन किया गया है। रामानुज, निम्बार्क माध्व, बल्लभ और चैतन्य साहित्य में जिन अबतारवादी रूपों की स्थापना हुई है उनमें रामानुज माध्व, और बल्लभ साहित्य में पांचरात्र अबतारवादी उपासक अधिक गृहीत हुए हैं तथा निम्बार्क और चैतन्य साहित्य में भागवत के अबतारवादी रूपों को अधिक प्रयत्न मिला है।

आठवें अध्याय में अबतारवाद के अंध, कला विमूर्ति, आवेश, पूर्ण झूठ सीसा सुगम और रस रूपों का क्रमिक विकास एवं विवेचन हुआ है, जिनका सगुण और रसिक मूल कवियों ने न्यूनतमिक प्रयोग या विस्तृत वर्णन किया है। प्रस्तुत साहित्य में कवियों ने अंध, कला और विमूर्ति का प्रयोग अधिकतर पारिभाषिक अर्थ में किया है, जबकि सीसा, सुगम और रस रूपों का इनमें विस्तार हुआ है। इस अध्याय में सीसावतार, सुगम अबतार और रसावतार की मध्यकासीन परम्पराओं का विस्तृत विवेचन हुआ है।

नौवें अध्याय में चौबीस बपु या चौबीस अबतार की इक्षित अभिव्यक्ति एवं उसकी परम्परा पर विचार किया गया है। साथ ही चौबीस अबतारों में याने याने प्रत्येक अबतार के क्रमिक विकास और उनके आलोच्यकासीन रूप का विवेचन हुआ है। इन अबतारों के विकास में योग देने वाले पौराणिक मिथिक प्रतीकारमक और ऐतिहासिक तीन प्रकार के उपासकों का विशेषण करते हुए यह बताया गया है कि मध्यकासीन कवियों में अभिव्यक्त होमि के पूर्व किन रूपों में इनका विकास हुआ। इसी अध्याय में पौराणिक और मध्यकासीन उपासकों के साथ इनके संबंधों का भी उचित निरूपण हुआ है।

अंतिम पांच अध्यायों में सगुणभक्ति साहित्य में अभिव्यक्त राम कृष्ण यशो, आचार्य पुरु और विभिन्न उपास्य रूपों के क्रमिक विकास और मध्यकासीन रूपों का विस्तृत विवेचन किया गया है। राम और कृष्ण के ऐतिहासिक और साम्प्रदायिक विकासक्रम के साथ मध्यकासीन कवियों में अभिव्यक्त अबतार

बबठारी, और नीतारमक कवियों का निरूपण किया गया है। ग्यारहवें अध्याय में बासुदेव-कृष्ण, सोवाल-कृष्ण और राधा-कृष्ण प्रभृति कृष्ण के विभिन्न रूपों के क्रमिक अध्ययन के बबाल् मध्यकालीन साहित्य में प्रचलित कृष्णकस्तानुत्र के पोटीकृष्ण और भीतपोविद के राधाकृष्ण का अन्तर स्पष्ट किया गया है। मल्ल कवियों की काव्याभिव्यक्ति में अर्थात् बबठारों का क्या स्थान था अभी तक हिन्दी साहित्य में उल्लिखित ही है इस पर विचार नहीं हुआ था। इस निबन्ध के बारहवें अध्याय में अर्थात् के क्रमिक विकास उनके व्यक्तित्व वैशिष्ट्यों तथा बाधा और मल्लमात्र साहित्य में व्याप्त उनके अवधारणित कार्यों और कवियों का विचार विवेचन किया गया है। तेरहवें अध्याय में मध्यकालीन वैष्णव भाषाओं और प्रवर्तकों के बबठार एवं बबठारों कवियों के क्रमिक विकास और उनके साम्प्रदायिक उपास्य कवियों का निरूपण हुआ है। अन्ती तक इनके बबठार बाधा कवियों के प्रासंगिक सहज हुआ करते थे परन्तु इस अध्याय में उदात्त माध्व निम्बार्क, बह्मय चैतन्य, रामानन्द द्विहृदियंम प्रभृति भाषाओं और स्थिक बलों की साम्प्रदायिक परम्परा का अध्ययन करते हुए यह बताया गया है कि इनका बबठारोकरण इनके सम्बन्ध कतिपय विद्याओं और माध्वताओं पर आधारित रहा है।

अठारहवें अध्याय में अर्थों के उपास्य कवियों का निरूपण करने के अन्तर उनके विभिन्न बबठारोचित कार्यों का विवेचन किया गया है और काव्योक्ति व्यास बसुदेव प्रभृति कवियों एवं कुटुम्बकारों की बबठार परम्पराओं का परिचय दिया गया है।

इस रूप में प्रचलित बाधाओं में अर्थों और स्थिकों द्वारा लीला के निमित्त बाधा किये हुए सदा और लक्ष्मी कवियों पर भी विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य विभिन्न कवियों में कामोप्यकालीन राजा, माधवत गंगा बभुवा, जमा, हनुमान और रामानन्द के हरदय शिष्यों के बबठारबाधा कवियों का निरूपण हुआ है।

अंत में बबठारबाधा की प्रभृतियों और कवियों के साहित्यगत विकास में योग देने वाले औपचारिक एवं अर्थकारिक दो प्रधान तत्वों का महत्त्व बताया गया है।

इस अन्तर इस निबन्ध में बौद्ध विद्वत्साहित्य से लेकर मल्लमात्र तक विभिन्न रचनाओं में अविश्वस्य बबठारबाधा प्रभृतियों के आक्यान, निरूपण एवं विवेचन का उपास्य किया गया है।

इस अन्त में उपास्य लेखकों कवियों के अतिरिक्त सहजों ऐसी पुस्तकों और लेखकों में उपास्य पत्र है, किन्तु जो अपेक्षित जानकारी नहीं मिलती।

निर भी उन कृतियों का भी उल्लेख है। इन रूप में काजी हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय नागरी प्रचारिणी मण्डल, काशी विश्वविद्यालय सरस्वती भवन योजनाका विश्वनाथ पुस्तकालय पटना स्थित बिहार रिजर्व सोसाइटी, पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय, सिन्धु साइबेटी गुदाबस्त या साइबेटी मोर बिहार राज्य भाषा परिषद् के स्वरूपानुसारों का भी उल्लेख अर्थात् सहायता के लिए भी विवरण है।

आदर्शोपरीतर-रूप डा० बाबूराम लक्ष्मीनाथ और डा० नगेन्द्र (अध्ययन हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने मेरे प्रबन्ध में जिन तत्त्वों की ओर ध्यान दिया था किन्तु उनके आन्वयानुसार परिवर्तन और परिमार्जन करने के पक्षस्वरूप यह प्रबन्ध अपि साक्ष्योक्त हो गया है। उन्होंने मेरे परिचय को जिन आलोचकों में संश्लेषित किया है उन्हें मैं सदैव धन्यता हाथ प्रहण करने के लिए उत्सुक रहा हूँ। आदर्शोपरीतर ने अन्ततः बाद के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर जा संकेत किया था उसे अन्त में मैंने अपने पुनः तीन वर्षों के परिचय से पूर्ण करने का प्रयास किया है।

मेरा यह विचार है कि बरों की इस अनवरत साधना में अधिक नहीं तो कम से कम मध्यमगीन साहित्य के लिए अनेक नए शोध विषयों का भोग्यता किया है। इस शोध के रूप में मुझ ऐसा लगा कि पञ्चाय विषयों पर तो स्वतंत्र अनुसंधान के लिए हममें क्या सामग्री है।

मध्यमगीन साहित्य पर यों तो बहुत पुस्तकें लिखी हैं किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि उनमें से बहुत कम में ही पायी है। अन्ततः बाद पर हिन्दी का अध्येत्री में इस प्रकार की पहली पुस्तक होने के कारण मुझे अन्ततः बाद का विस्तृत संश्लेषण करना पड़ा है। इसी कारण से मुझ किसी व्यक्ति के गर्जन या मंदन करने का अवसर भी नहीं मिला था। साहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्ततः बाद यदि प्रतीकवाद है तो सौन्दर्यवादीय दृष्टि से 'रमणीय विम्वार जिनकी वैज्ञानिक स्थापना के लिए मैंने विस्तारपूर्वक विचार किया है। सार रूप में यही कहा जा सकता है कि अन्ततः बाद सक्रिय जीवन दर्शन का सिद्धांत है। संपर्क और दाम्नि (दुष्ट-रूप और शीला) दोनों स्थितियों में यह मानव-भूषणों का द्योतक एवं प्रबल जीवनेच्छा की प्रकृति का सूचक है।

बिना इस वर्षों से अन्य कार्यों की छोड़कर तब मन-मन से इसी पुस्तक में लगे रहने का परिणाम क्या निकला इसे तो गहरा पैठ रहने वाले ही बता सकते हैं। अनेक अभावों से ग्रस्त होते हुए भी मुझ एक ही बात का संश्लेष है कि मैं भारतीय हिन्दी की सेवा करता हूँ। मैं इस पुस्तक की कृतियों और कुछ शौकाने वाली कृतियों के लिए बिक्री पाठकों से समावाहता हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गुरुवर्य डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा और डॉ० श्रीकृष्ण दास के आधीनार्थ से सदा कृतार्थ रहा है। हरप्रसाददास जैन कंसिडर द्वारा के आचार्य परमहंसराय जी तथा विभागाध्यक्ष प्रो० सोताराम जी 'प्रमास' का सतत उत्साहजनक मुझे सदैव प्रेरित करता रहा है। आचार्य गन्दबुकारे बाबुपेयी प्रो० जगदीश पाण्डेय और डॉ० सुबनेश्वर नाथ मिश्र माधव' के विचारों तथा परमाशों ने भी मेरी पेशना बचानी है। आदरणीय पाण्डेय राविकारमन शर्मा 'बचन तथा प्रो० रामेश्वर नाथ शिवारी का स्नेह सदैव मुझे शक्ति प्रदान करता रहा है। इस कार्य में किसी न किसी रूप में सहायता देने वाले प्रो० जे० सी० दास डॉ० राम मोहनदास डॉ० नैमिचन्द्र शास्त्री, डॉ० पूर्णमासी राय प्रो० कुमार विमल (पटना विश्वविद्यालय) आचार्य चन्द्रदेवराय पाठक पंडित श्रीकृष्ण चंद व रामचन्द्र झा और प्रो० रालाप्रताप सिन्हा का मैं विशेष कृतज्ञ हूँ। हिन्दी प्रतिष्ठा के छात्र अक्षयबिहारी प्रसाद विश्वबन्धु ने अनुक्रमणिका बनाने में जो सहायता की है, उसके लिए मे मेरे हार्दिक आधीनार्थ के पात्र हूँ। मैं अपने विभाग के सभी सहयोगियों और विशेषकर प्रो० मुरली मनोहर प्रसाद का भी बहुत आभार मानता हूँ।

महर्षय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पी०एच० डी० के निमित्त प्रस्तुत क्रिये गये शोधपत्र 'मध्यकालीन साहित्य में भवतारवाद का परिवर्तित रूप है, जो उत्काशीन अम्बदा (सम्प्रति पंजाब विश्वविद्यालय, जहीनपुर) गुरुवर डॉ० हुमाये प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में लिखा गया था। अग्रिम गुरुवर आचार्य द्विवेदी के स्नेहाधीनार्थ से ही यह कार्य सुचारु रूप से हो सका है जिसके बसते मैं कभी भी उनसे श्लक्ष्ण नहीं हो सकता।

अन्त में मैं अपने 'मगध विश्वविद्यालय के उप कुलपति डॉ० के० के० दत्त श्रेष्ठदास श्री डी० एन० मिश्र तथा अकृषि पाण्डित्य के पत्नी गुरुवर प्रो० विद्यानाथप्रसाद मिश्र (अम्बदा हिन्दी-विभाग मगध विश्वविद्यालय) के स्नेह और आधीनार्थ का फिर आभारी हूँ। मैं चौधम्बा संस्कृत पीठिका और चौधम्बा विद्यालय के संस्थापक बन्धुवर्य मोहनदास जी और विद्वत्दास जी कुल का भी कृतज्ञ हूँ, किन्तु कि केवल प्रकाशन ही नहीं बल्कि अनेक अलग-अलग प्रयोगों के अध्ययन की भी सुविधा प्रदान की।

काशी कुंभ
कठिन बाब, भारत
२ - २ - १९६१

कपिलदेव पाण्डेय

सन्धेप और मकेत

अ० दा०	अष्टपान
अपय० मा० भा०	अपयमदिता, मापनाभाप्य
अ० द्यु० मे०	अष्टरगैटिंग ऑफ़ इमुन मेबर
अ० मा०	ही अशागिपुन मारिक
अपय० म०	अपय मदिता
अभि० भा०	अभिजय भारती
अमि० इ०	अभिजय इपय
अर० मा०, अपभग मा०	अपभग मादित्य
अ रि० बै० से०	अर्ली रिन्दी ऑफ़ बैलार मेबर
अदि० म० अदि० पु० म०	अदिबुग्य संगिता
आ० ल० रे० मि० लो०	आउट लाइम ऑफ़ रेजिस्त्रम विरेवर ऑफ़ इन्डिया
आ० भार० ए० चक्रुदर	
अ० इ०	अमेरिकन इन्डियन
आइ० ए० मू०	आइडिया ऑफ़ परमजापिटी इन मूदिम
आ० ए० इ०	एक्चर एग आउ ऑफ़ इन्डिया
आ० राष्ट्र	ही आउ ऑफ़ राष्ट्र
आ० इन० एम० मिथ० दू०	ही आउ ऑफ़ इन्डियम एदिता, इन्म माइपीटनी एन्ड टोमपीरमेगम
आ० ह० आ०	आउ ऑफ़ इण्डिय जानकीनशम्
आरम० ले० लो०	आरमपेटेड एक्चरम ऑन पापुनी
आर्से० कौ० अम०	आर्सेटइप ऑफ़ पीपुलियर जानकीमम
आ० हा०	आरिजिन ऑफ़ रागात्
आउ० मो०	आउ एन्ड मारैटिटी
आउ० एक्चरी०	आउ एक्चरीरिपम
आ० इन० मू० ए०	ही आउ ऑफ़ इन्डिया मू ही एक्चर
आ० अरेस्प	ही आउ ऑफ़ अरेस्प
आ० पाठ०	ही आउ ऑफ़ पाठशात्र
अभि० पु० का० दा० भा०	अभि पुराण का काम्य शास्त्रीय भाग

आ० रा०
 आ० कथ०
 आनन्द ग०
 आ० स्व०
 ओ० रे० क०
 आ० जै हन० सी०
 इंडियन एन्टीके०
 इन्ट्रो० ऐस्से०
 इम० डॉस
 इम० मेड स्क०
 इन्ट्रो० टू ज्योकी
 इम० सु० इ०
 इन्ट्रो० इम० भा
 इम० ता० सु०
 इन्ट्रो० सा मा०
 इन्पीरियल कनीज
 इम० एक्स इमेज एनसी०
 इ० इ० इ० क०

इन्डो० ऑफ़ बी एडिजिट्स
 इ हि० का०
 इम ऐस्से
 इ० आर इ०
 इम एस० वें०
 इगो० इव०
 ए० भा० सं० ए०
 ए० ज बै
 ए० थि ह्यु इ०
 ऐ० आ०
 ए० उ०
 ऐ०
 एड, एड० स०
 एड० सा भा०

अण्वात्म रामायण
 बी आट ऑफ़ कथकली
 आनन्द रामायण
 आर्ट एण्ड स्वहेली
 ओथमपौर रेडिजस बह
 आर्ट्स एण्ड क्लैम्स ऑफ़ इंडिया एण्ड सीडोन
 इंडियन एन्टीकेरी
 ऐन इन्ट्रोडक्शन टू ऐस्सेटिवस
 इंडियन डॉस
 इंडियन मेडिकल एड्युकेशन
 वी इन्ट्रोडक्शन टू ज्योकी
 ऐन इन्ट्रोडक्शन टू बुकिंग इन्टोरिगम
 इन्ट्रोडक्शन टू इंडियन आर्ट
 एन इन्ट्रोडक्शन टू टास्किंग बुकिंग
 इन्ट्रोडक्शन टू सार्जिस ऑफ़ माइपीकोजी
 वी एन ऑफ़ इन्पीरियल कनीज
 इमेज एक्सपीरिमेंस
 इन्फ्लुएंस ऑफ़ इस्लाम ऑन इंडियन
 कलचर

इन्डोएशियन ऑफ़ बी एडिजिट्स
 इन्डियन डिस्टोरिकल कालरी
 इन्डियन ऐस्सेटिवस (के० सी० पाण्डेय)
 इन साइडोपिडिया ऑफ़ रेडिजस एण्ड एडिशन
 इन्डियन स्कूलर ऐण्ड टैकिंग
 वी इगो ऐण्ड वी इव
 कलरी भारत की सभ्य परम्परा
 एस्सेट ऑफ़ कथकली
 ए न्यु बिबोरी ऑफ़ इमन इन्डो
 ऐतरीय ब्राह्मण
 ऐतरेयोपनिष्
 ऐस्सेटिवस
 एडवेन्
 एडवेन्, सायण भाष्य

बन्धु० वेम्बे०

बन्धु०

बन्धु० पु०

बन्धु० प्र०

बाप्या०

बाप्या० मा० सं०

बा० प्र०

बा० उ० तप्य

बा० इ० इ०

बा० इ० इ०

बा० प्योर० री०

बा० लि० प० प०

बा० मो०

बा० प० बै० गी०, की० व०

मन्दाकार

बा० डॉ० की० इ०

गी०

गी० इ० इ०, गी० इ०

गी० डॉ० भा०

गी० रा० भा०

गु० प्र० भा०

गुण मन्दाकार

गुण भा०

गो० पूर्ब ता० उ०

गो० ना० प्रा० बा०

गोरख मि० स०, गो० मि० स०

गिरि

बै० व०

बै० बै० बा०

घा०, घा० उ०

घ० रा० प० सो० इ० इ०

घ० रा० प० सो० इ० इ०

घ० रा० प० सो० इ० इ०

बन्धुवेम्बे वेम्बेवेम्बे (के० सी० पाण्डेय)

बन्धुवेम्बे

बन्धुवेम्बे

बन्धुवेम्बे

बाप्यादा

बाप्यादाकार मार मन्दाकार

बाप्यादाकार

बाप्य में उदात्त तप्य

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ० इ०

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ०

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ०

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ०

बन्धुवेम्बे

बन्धुवेम्बे

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ०

बन्धुवेम्बे डॉ० इ० इ०

गीता

गीता इ० इ०

गीता डॉ० इ० इ०

गीता रामाजुज भाप्य

गुण मन्दाकार

गुण मन्दाकार

गुण भाप्य

गोपाल पूर्ब तापतीपोपनिषद्

गाबर्दन भाव जी की प्राकृत्य बाता

गोरख मि० स० इ० इ०

गोरख मि० स० इ० इ०

गैतम्य चरितामृत

चौरामी बैप्यवन की बाता

चाम्बेपोपनिषद्

जर्मन् डॉ० राबल पृथिव्यादि सोसाइटी

जर्मन् डॉ० राबल पृथिव्यादि सोसाइटी

जर्मन् डॉ० राबल पृथिव्यादि सोसाइटी

ज० बी० ओ० री० सी०
 जेन० सेक० सिग० फ्रा०, जेन०
 सेक० प्रूप साइको, जे०
 सी० क० सी०
 जे० पुस० सी० डी० पुस०
 व्याक्य सं०
 झा० ने० आ०
 ट० बद्र० ज्ञानसिद्धि
 डू साइको
 ट० बद्र० मञ्जो०

डॉ० सि०
 डॉ० इन०
 डी० सी० मेक० पृकि०
 ए० डी० मि० मा० प्र०
 ए० डी० मि० मा०
 ए० सू०
 एपागत गु०
 ए० डी० मि० आ० प्र०
 विद्येय प०
 गु० प्रं०
 तै० सं०
 तै० आ
 तै० आ०
 ते उ तै०
 मु प्रं०
 बस रु०
 बाबू ब० बा०
 बी पुन डू क०
 बो बा० तै बा०
 डी० ओ० मैन एण्ड० सुप

डी० कम्पे० अकगवाकी

जर्मन डॉक विहार एण्ड उबीसा रिसर्च सोसाइटी
 ए जेनरल सेकेनसन फ्राम डी बरस डॉक
 सिगमण्ड फ्रायड
 युग साइकोलोजी एण्ड इट्स सोसल सिनिग
 व्याक्य संदिता
 ट्रांसफोरमेसन ऑफ नेचर इन टू आर्ट
 टू बद्रपान बरस में संकलित ज्ञानसिद्धि
 डू साइकोलोजी
 टू बद्रपान बरस में संकलित प्रशोपायवि
 निरवमिद्धि
 डॉस ऑफ सिन
 डॉस ऑफ इग्निटा
 डॉक कनसीट मेकिंग ऑफ पृकिगरी
 एप्लीप निबन्ध भागवतार्थ प्रकरण
 एप्लीप निबन्ध सर्वनिर्णय प्रकरण
 एस्तुक और सूक्ष्ममत
 एपागत गुणक
 एप्लीप निबन्ध शाखाध प्रकरण
 तिसाय एण्डाति
 हुकन्सीइस प्रण्यावकी
 तैचिरीय सदिता
 तैचिरीय माहण
 तैचिरीय आरवक
 तैचिरीयोपनिपद्
 जुबदास प्रण्यावकी
 इराकपक
 इण्डियाक की बानी
 डी एन ऑफ इन्पीरियक कनीज
 डा सी वातन वैप्यवन की बार्ता
 डी ओरिजिन ऑफ मैन एण्ड इट्स
 सुपरिबिप्युसन्स
 डी कम्पेसत ऑफ अकगवाकी

ही० दिग्ग० भोंक बाइ०	ही दिग्गवरी भोंक बाइलॉडी
ही० रेजी० मैन०	ही रेजिजन भोंक मैन
ही० देग० घिया०	ही देहाबासिगड भोंक ही सिपाइटूम
हो० हो० बागची	होहा बीरा, प्रबोध चन्द्र बागची
हो० हो० राहुन	होहा बीरा राहुन मोहापावन
घ० पु०	घम पुराण
घम पू० वि०	घम पूजा विधान
घमहाय श०	घमहाय बी वास्तवली
ग० प्र०	गम्हाय प्रयागजी
गा० प्र० पत्रिका	गातरी प्रचारिणी पत्रिका
गा० म० सू०	गारु भक्ति सूत्र
निकालमन	दोमसेशन भोंक इन्टर्न पाप्ट्री ऐम्ड प्रोज
न्यु० इ०	न्यु इन्डियन एडिटर
न्युपारी धिर्जीक हुमन हबो०	न्यु धिपारी भोंक हुमन इन्डोव्हुमन
पठम च०	पठम चरित
पद्य पु०	पद्यपुराण
प० मू० पा०	पञ्जाबी मूफी पोपुदम
परम स०	परम मीदिता
पा० मा० इ०	पालि साहित्य का इतिहास
पुराण, पुरा० मि०	पुराणतन्त्र निबन्धावली
पु०	पुराण
प्रति बि०	प्रतिमा विज्ञान
प्रा० देरुप०	प्राक्लेम्स भोंक ऐम्पेटिचम
प्र०, प्रभा०	प्रभापमिपद्
पा० ज० प्र०	पोहार अभिलम्हन प्रग्ध
वि० इ०	प्रिचिंग भोंक इस्लाम
प्रा० हु० जे० वी०	प्रोप्रेम भोंक हुमन जेठर एम्ड विदेहिदयर
फिन मा०	फिनीमेर्षोमात्री भोंक माइड
फिड० कॉर, फिन्ड० कॉ० कू० जज० ही	फिस्मैमोफी भोंक कॉर, सगपा० कर्ल० ज०
	फ्रेडरिक मार्डन एडमेरी १९४९
फिड० भा० हि०	ही विन्डीसापड भोंक जार्ड दिस्ट्री
फॉ० डॉ० इन०	फॉड डॉस इन इन्डिया
बोधिसर्पावतार, बोधि० च०	बोधिसर्पावतार पत्रिका

श्री० गा० दो०	श्रीरू गाव ओ दोहा
श्री० इक०	श्रीरूइ इकोमोमाथी
श्रीरू ब० इ०	श्रीरू बमै-दसैव
शु० ब०	शुनू चरित
शुनू ति०	शुनूइम इन तिरवत
श० इ०	शुनू सूत्र
शु० उ०	शुनूइरूपकोपनिषद्
मदिप्य० पु०	मदिप्य पुराण
भा० सम्प्रदाय०	भागवत सम्प्रदाय
भारतीय० प्रेमा० मा० प्रे	का० भारतीय प्रेमावधान काव्य
भा० चि०	भारत की चिन्तना
भा० चि० क०	भारतीय चिन्तना
भ० स० सि	भरत का संगीत सिद्धान्त
भा० सं० इति०	भारतीय संगीत का इतिहास
भा० का० सा०	भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा
भ० ना०	भरतनाट्य शास्त्र
भामह	भामह काव्यशास्त्रकार सूत्र
भात० सं० सा०	भात काव्ये संगीत शास्त्र
भा० शू० क०	भारतीय शूत्र कला
भा० भा० सा० प०	भाषीय भारतीय सामन्य पद्यति
भ० सा० ब०	भारतकाव्यिक साहित्य में अवतारवाद्
भरती सं० वा०	दिग्धी को भरती संस्कृतों की देव
मैव मोरकसो०	दी मैव मोरक देव सोसाइटी
मल्लूक वा०	मल्लूकदास की भाषी
महान० उ०	महाभारतकोपनिषद्
मनोवि०	मनोविद्येय
महा	महाभारत
महा पु०	महापुराण
महावा०	महावाणी
महा० ता० नि०	महाभारत तात्पर्य निर्णय
म शू० क०	जार्जमैन्ड्रीमूक कवय
मसकधी	श्री मसकधी
मिह०	मिहिसिम्भ
मेक० पृथी०	श्री मेदिना भौषण बुद्धिपरी

मोम० मोमे०	मोजेजे वेम्ह मोमेपिगम
मा० प्राणीबी	मापमिळ प्राणिबी
म० प० शा०	मापपत्र पद् शानकम्
मानव शा०	मानवशास्त्र
म० वे० उ०	ही दिग्दी ऑफ मेदिण्टल् पैणबीगम इन उदीमा
माहपो०	माहपोलोत्री
मु० उ०	मुहपोपमिपद्
माहववा० उ०	माहवपोपमिपद्
पहु० वे०	पत्रुवेद्
पुगल शा०	पुगल शातक
रजव वा०	रम्ल रजव जी ही बानी
रा० कल्पद्रुम	रागवल्गुम
रात्र० पे०	रात्रपुन पॅदिग
रापा० म० मि० मा०	रापाबन्नम मम्मदाय मिह्वाग्त और साहित्य
रा० मा०	रामचरित मानस
रा० मा० (काशि०)	रामचरित मानस (काशिरात्र संस्करण)
राम० मा० म० उ०	रामभक्ति साहित्य में मपुर उपामबा
रा० च०	रामचन्द्रिका
रा० दि० र०	रामानन्द की दिम्ही रचनाव्
रस० गं०	रमर्गगाथर
रे० कि० साह० रिस०	रेन्जिन, किर्लोस्की वेम्ह साह्किठ रिसर्च
रे० सा० लाहृक०	रेलियन पुम्ह ही साह्म्मत्र ऑफ लाहृक
रेलि० श्च० उप०	रेलियन ऑफ श्चवेद् वेम्ह उपमिपद्स
ल० वि० मूल्०	रुटिन विरतर मूल्
ल० वि० भनु०	रुमिनविस्तर अमेरी अमुवाद्
ल० सू०	लंकावतार मूल्
ल० मा०	रुपु भागवताभूत
ले० ऑन जार्ट	लेवचर्न ऑन जार्ट
वि० मार्ग	विद्युदि मार्ग
वे० र० म०	वेदाग्त रच मंत्रवा
वे० मा० वैदिक माह०	वैदिक माहपोकात्री
वि० च० पु०	विष्णु धर्मोत्तर पुराण
वास्तु० शा०, मा० वा० शा०	भारतीय वास्तु शास्त्र

वि० पु०	विष्णु पुराण
विद्योदक चौ० वि०	विद्योदक वी प्लेजरस मिसपुष्प
वै० फे० सुवर्मेर	वैष्णव फेच ऐश्व सुवर्मेर
वै० ब० १०	वैष्णव धर्म रत्नाकर
वै० सि० १० स०	वैष्णव मिश्रभक्त रत्न संग्रह
शंभाबोस	वेदान्त परिभाषा और ब्रह्मन्त कौस्तुभ
संस्कृत सा० ३०	संस्कृत साहित्य का इतिहास
सखर्म पु० मूल	सखर्म पुस्तरीक मूल
सखर्म पु०	सखर्म पुस्तरीक अनुवाद
सर० कथ्य०	सरस्वती कथ्यभरण
स्वपम्पू पु०	बृहत् स्वपम्पू पुराणम्
सं० १०, सं० रत्ना०	सगीत रत्नाकर
सं० छा०	सगीत शास्त्र
सं० ५०	सगीत वर्णन
स० पा०	संगीत पारिभाषा
सा०	साहित्य
साहको० रम०	साहकोशीयिकक रचनीय इन रस
साहको० भक्त०	साहकोशीयिक ऐश्व जलकमी
सा० मानव शा०	सांस्कृतिक मानवशास्त्र
साह० १०	ऐश्व इन्डोडकसन टू वी साहकोशीयिक ऑफ रेकिजम
साहको० १०	साहकोशीयिक बन्ध रेकिजम (मुंग)
साहको० ब्राह्म साहको ट०	साहकोशीयिकक ब्राह्म
साहको० एन० रत्नी ऐमिली०	साहको एनकिरिक रत्नी ऑफ वी ऐमिली
सिग्बो०	सिम्बोकिजम
सा० बा०	सम्भ बायी जलक
सा० कोष०	साहित्य कोष
साध० मा०	साधनसाहा
सा ५०	साहित्य वर्णन
सेवा०	सेकोहेच टीका
सें० बी०, सेंस० बी	सेंस ऑफ इण्डिया
सू० हि० साहि०	सूफीमत और हिन्दी साहित्य
सू० सा० सा०	सूफीमत साधना और साहित्य

मूरधाम मदन मो०
 मि० मि० प०
 मि० भ० ह०
 रट० इम० मि०
 सौम्य०
 मौ० त०
 मूर०, मूर० सा०
 मूर० सा०
 मौ० शा०
 मु० मं०
 मु० म्युद
 रकन्द पु०
 रा० मा०
 शम्भु पु०
 हरि० पु०
 कुर्गीरी०
 दि० प० छि०
 दि० मू० क० का०
 दि० का० धारा
 दि० म० मं० देन
 दि० प्रये०
 दि० अनु०
 दिम्बू साइको०
 दि०
 दि० बन्धेकि, बन्ध० जी०

मूरधाम मदनमादन
 मिय मिदाम्न पद्यनि
 मिष्टेट ऑफ अलटदक
 ररडीत्र इम इरलामिक मिस्तीमिगम
 मौम्बरनम्
 सौम्य ताप
 मूर सागर
 मूर गारावली
 सौम्य काग्र
 मुम्बर प्रग्यावली
 मुगावली म्युद
 रकन्द पुराण
 रामपप ब्राह्मण
 शम्भु पुराण
 हरिपदा पुराण
 कारक अल महपुत्र
 लिटोरी दिस्त्री ऑफ परमिया
 दिम्बी सूष्टी कवि और काण्य
 दिम्बी काण्य धारा
 दिम्बी को मराठी मस्तो की, देन
 दिस्त्री ऑफ प्रयेदिकस
 दिम्बी अनुपलीन
 दिम्बू साइकोलाजी
 दिम्बी
 दिम्बी बन्धेकि जीबिन



विषय सूची

प्रस्तावना
संदेह और संघर्ष

पीठिका

अवतार और अवतारवाद-अवतार शब्द के प्रयोग और अर्थ-वैदिक-
साहित्य-वाजपिथि-महाकाण्ड काल-पुराण-बौद्ध-जैन-वाय-संत-सूफी-मगुल
साहित्य-अवतारवाद की सीमा । अवतारवाद की पूर्वपीठिका-वैदिक साहित्य-
उपनिषद्-पंच अवतार-शुद्धि देव-रघुपति वर्ग-दिग्गुण-दिग् देव-उपास्य
महा-भाषा । ब्रह्मसूत्र । महाकाण्ड-महाभारत-बाबरीकि रामायण ।
गीता । विष्णु पुराण । पराशर-भागवत-भारत और भाष्य ।

पहला अध्याय

सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य में वैष्णव अवतारवाद के उपादान-सिद्ध साहित्य में
परम्परागत और समकालीन भागवत तंत्र-भागवत पुराण और लकावतार
सूत्र-सिद्धकाण्ड बौद्धतंत्र और सिद्ध साहित्य-द्वयीय-भाष्यगत और साङ्ग
ताव-विदेव-अगच्छ-भग-निष्कप ।

बुद्ध का अवतारवादी विकास-लोकेश्वर रूप-दिग्गुण-जन्म-पुनर्जन्म-
जन्म पुद्गल-चौबीस बुद्ध-जैन और भागवत मत में चौबीस सख्या-चौबीस
अतीत बुद्ध-प्रत्येकबुद्ध-सम्बद्ध सम्बुद्ध-ब्रह्मता बुद्ध निष्कम्ब बुद्ध और
निर्मान बुद्ध-मातृपी बुद्ध-पैतृदामिक बुद्ध का अवतारवादी उपास्य रूप-
साङ्गदिक देव अवतार-अवतार वैशिष्ट्य-गारावच से अभिहित-बौद्धचरित
और सौम्यरत्नम् । अवतार-प्रयोजन और अवतारी तन्त्रगत बुद्ध-तथागत
बुद्ध का अवतारवाद-विग्रह रूप-बौद्ध अवतारवाद के पौराणिक (मीथिक)
रूप-पुगावतार-(अर्थ) वैदिक किरण प्रथम बौद्ध अवतार-मायोपम और
स्वभाष्य अवतार-पंच तथागत या पञ्चप्यात्री बुद्ध-उपास्यवादी अवतार-
उपास्य रूप-अवतार प्रयोजन-सिद्धों के अन्तर्दामी । बोधिसत्त्ववाद-जादू-मज
जीकता-बोधिसत्त्व का अवतार-अवतार प्रयोजन-पंच बोधिसत्त्व । अवलोकिते
श्वर-विशिष्ट रूपवादी-सुगल रूप-विष्णु के तद्रूप । संतुष्टी-अवतार प्रयोजन-
उपास्य और प्रवर्तक-विष्णु के स्वरूप । मीश्वर-निष्कर्ष । बौद्ध सिद्ध-

शर्वापह का प्रतिपाद्य शर्वा-उच्छमनशील सिद्ध उपास्य-सिद्धों के सगुण उपास्य-सिद्ध-उपास्यों में अवतार भावना-सिद्ध गुण । कायबाह-धर्मकाय-विबिधकाय-सम्भोगकाय-निर्माणकाय । अवतारी शून्य । अवतार हेतु कठना-धर्मसेव या कर्तव्यमेव । ब्रह्मवान के अवतारी उपास्य देव-भादि बुद्ध-पाद्गुण्यसुख-निर्गुण और मगुण रूप-अवतार रूप-अवतार हेतु-मायात्मक और हीमात्मक । ब्रह्मधर वा ब्रह्ममय-उपास्य रूप-विमृति रूप-युगल रूप-अवतार प्रपादन । हेरुक-अवतार प्रयोजन-भादि-बुद्ध के धर्माविग्रह । स्ववन्मू-अवतार प्रयोजन-स्ववन्मू और जगद्बाह-मुनीन्द्र । निरजन-निरजन और धूर्म-निरजन और हिन्दू देवी वा इस्लामीकरण । धर्म अक्षुर-बीह विकास कम-निरजन रूप-विष्णु और दशावतार रूप-बुद्ध रूप-उत्तरकाशीन रूप ।

१-६०

दूसरा अध्याय

जैन साहित्य

पद्म चरित-कथमम और राम हरि-रुक्मिणी के अवतार-कथमम में विष्णु सूक्त के अक्षर-अक्षर प्रयोजन-त्रिपष्टि महापुरुष-श्रीश्रीस तीर्थकर-विष्णु एवं अवतारों के तद्रूप-अवतार प्रयोजन-उच्छमनशील प्रकृति-बाराह चक्रवर्ती-बकदेव-वासुदेव और प्रतिवासुदेव-कृष्ण-बलदेव पूर्वकाशीन जैन मुनि-दशावतार-अन्य वैष्णव अवतारों के रूप-धूर्म-बाराह और वृसिह-बामन-अन्य वैष्णव अवतार ।

८१-१०२

तीसरा अध्याय

नाथ साहित्य

मारवेन्द्रनाथ-अवधकिशोर के अवतार-ध्रिज के अवतार । गोरक्षनाथ-अवतार प्रयोजन-उपास्य एवं अवतारी । नौ नाथ-ध्रिज और उनके अवतार-सक्ति में अवतारत्व-वैष्णव अवतारों से सम्बन्ध-शक्ति अवतारकम-पिंड, ब्रह्माण्ड और विरज पुद्गल-नाथ गुह और अवतार टाप । वैष्णव अवतारों के रूप-अवतारों की आलोचना-आत्मस्वरूप राम-का गुणों से सुख कौन है ? कपिकापी साक्षा ।

१०३-१४०

चौथा अध्याय

वृषावतार और सामूहिक अवतार परम्परा । दशावतार-निष्कर्ष । सामूहिक अवतार-निष्कर्ष ।

१४१-१६८

पौर्वी अध्याय

सत साहित्य

मातृ-मृत्यु का प्रतिष्ठा-सत्त्वगुणीत अन्तार मन-भ्रमर्षासी-दृष्टदेव में मगुत नर-दृष्टदेव में अन्तारवादी पौर्वानिक नर-अनमुतिररक अन्तारी काय-सर्वो क अन्तारवादी दृष्टिहाग-वाग्द्वयिक रूप-पैगम्बरी रूप-अन्तार वाद की आलोकना-पुगावतार परम्परा-वैगम्ब अन्तारों क रूप-सुमिद-राम-हृत्प-गुरु में अन्तारत्व-अन्तारी कबीर । ११५-११५

छटा अध्याय

सूफी साहित्य

ब्रह्माद-आदि रूप-निर्गुण और मगुग-मृत् कगमानाम्पर रूप-मानवीय भाव-विशिष्ट गुण-विमोह और मादृष्ट-पुगुष्ट रूप और किशार-किशारी रूप में मादृष्ट-अन्तार प्रपात्र-सीटामक प्रपात्र-गृष्टि अन्तारक। पैगम्बर-दिष्ट अन्तारवाद और पैगम्बरवाद-बोभिमम्बराद और पैगम्बरवाद-पुरान में पैगम्बर-पैगम्बर मुदम्मद मादृष्ट-मुदम्मद अन्तारों क मृत् घात-उपाय मुदम्मद मादृष्ट-मार्तीय सूफी काव्यों में मुदम्मद मादृष्ट-परवर्ती उपाय रूप। ज्ञानि अन्तार-परम्परा-सी-बडी और पैगम्बर-इमाम-मातृ अन्तार-इतमागुल शामिल पा पूज मातृ-पुरान। इस्लामी और सूफी अन्तारवादी सम्प्रदाय-निपा सत एव सम्प्रदाय-भारतीय अन्तारवाद में मातृ-मातृ इमाम-वाद इमाम-अन्तारवादी सूफी सम्प्रदाय-दुल्ही-इलाही-अन्व सम्प्रदाय। भारतीय अन्तारवादी सूफी सम्प्रदाय-दिष्ट अन्तार समन्वय-इलाहवार। प्रेमावधानक काव्यों क पात्रों में अन्तारत्व-आलोकिक और मादृष्टविक अन्तार पदति-कामदेव-रति-प्रेमावधानों में विष्णु क अन्तार पात्र-सूफी प्रेमावधानों में विष्णु क अन्तार पर्यग-दिष्ट प्रेमावधानों में वैष्णव अन्तारवाद-कविट पुरान और काव्यी की पद्यावती कथा-निष्कप। ११६-१०५

मातर्वी अध्याय

पाचरात्र मागपत दय वैष्णव सम्प्रदाय

पाचरात्र-स्वामगत रूप। काठागत रूप-काठावतार-कथावतार-मन्वन्तरावतार-पुगावतार। कायगत-पुष्पावतार-पुरुष का कर्मिक विकसत-गुणावतार-श्री सम्प्रदाय-ब्रह्म सम्प्रदाय-रुद्र या ब्रह्म सम्प्रदाय-निम्बार्क सम्प्रदाय-वैष्णव सम्प्रदाय। १०६-१०६

आठवाँ अध्याय

अवतारवाद के विविध रूप

अंश-कला-विभूति-अंश कला और विभूति भावेण-पूर्णावतार-व्यूह रूप-कीका रूप-युगल रूप-मुगमद और चैतन्य सम्प्रदाय-रसरूप ।

१३३-४०३

नौवाँ अध्याय

चौबीस अवतार

मत्स्य-प्रजापति का अवतार । वराह-कूर्म-मृसिंह-वामन । परशुराम-देविहासिक-अवतारत्व का विकास-बुद्ध-बौद्ध धर्म में अवतार बुद्ध-अवतारी एवं उपास्य-बैष्णव अवतार एवं विष्णु स सम्बन्ध-हिन्दू पुराणों में बुद्ध का रूप । कविक-देविहासिक रूप-पौराणिक रूप । इक्ष्वाकु-व्यास-युधिष्ठिर-गणेश-हरि-मतीकामक-व्याख्या । इस-मनु-मन्वन्तर-यज्ञ-युक्त्य-मानवीकृत रूपों का विकास । ऋषभ-भृश-प्रिय-वरुण-वामन्तरि-नर-नारामण-वृत्तालय-कपिक-सनकादि-नारद और मोहिनी ।

४०४-४९९

दसवाँ अध्याय

श्री राम

देविहासिक विकास-साम्प्रदायिक राम-मत्स्यकालीन सम्प्रदाय में राम-राम अवतार-अवतार हेतु-अवतारवाद से उसका सम्बन्ध और सामन्तस्य-प्रयोजन सम्बन्ध-दुर्गती दास और अवतारवाद-उपास्य राम अवतारी-रामावतार का उत्तर-काळीन रूप ।

४९९-५१९

ग्यारहवाँ अध्याय

श्री कृष्ण

देविहासिक विकास-बाणुदेव कृष्ण-साम्प्रदायिक-गोपाक कृष्ण-राधा-कृष्ण-अशावतार-साम्प्रदायिक रूप-त्रिम्बार्क-बल्लभ-चैतन्य-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के रूप-मत्स्यकालीन सम्प्रदायों में उपास्य रूप-मठ कवियों में अवतार रूप-पर रूप हरि-अन्तर्धामी-आगतिक रूप-अवतारी श्रीकृष्ण-अवतार परिचय-कीलावतार-प्रयोजन ।

५२०-५४६

पारहर्षी अध्याय

अर्थापत्तार

अर्थापत्तार परम्परा-प्राग्जातपदिता युग-अर्था रूप का वैशिष्ट्य-राम
मन्त्रि शापा में अर्था रूप-दृश्य मन्त्रि शापा में अर्था रूप-वाच्यप्रयोग में अर्था
रूप-मन्त्र क विभिन्न प्राकृत्य-जगत्वाच अर्थतारी-ठाकुर प्रचार । ५७९-५८५

क्षेत्रहर्षी अध्याय

आचार्य प्रयत्न

आचार्य अक्षतार-रामानुज-निम्बार्क-भारत-ब्रह्म-रामानुज-ब्रह्माचार्य
अक्षतार रूप अर्थतारी-विद्वत्वाच और गोपीवाच-बैतन्व्य-भीहित हरिवाच-
हरिवाच । ५८६-५९८

चौदहर्षी अध्याय

विषय अक्षतार

अक्ष-उपास्य रूप-प्रबोधन-मागधत-गंगा-बभ्रुवा-उमा-इन्द्रमान-राज
हरिवाच काव्यों में राजाओं का अक्षतारत्व-पौराणिक और आधुनिक
तात्त्विक-विषय । ५९९-६१५

आधुनिक ज्ञान के आलोक में अक्षतारवाद

विषय की आवश्यकता-स्थापना-सत्ता और सत्ति-सत्ता और सत्ति-
का अक्षतारत्व-विराटार का साकार होना-अज्ञापमान का सम्म होना-असीम
का समीम होना-दृश्य का अज्ञ होना-सत्ति-अक्षतारत्व-अभिध्वनि-आधुनिक
सत्ति-अक्षतारत्व-द्विध्वनात्मक प्रकृति सत्ति-दैवी सत्ति का दैवत्व क्या है ?
प्राथम्य अभिध्वनि और प्राथम्य अक्षतार-अक्षतार वाचक आधुनिक व्यापार-
सूच्य और अक्ष-वाचक और अर्था-उपस्थापित-आत्म चेतना और अक्ष-अक्ष-
परम्परा-पराक्रम-वैतन्व्य । ६१६-६५१

विकासवादी अध्ययन क्रम

पौराणिक उपासकों का वैशिष्ट्य-प्रतीकीकरण-पुराण-प्रतीक-विकासवादी
उपासक और पौराणिक प्रतीकों की तुलना-अक्षतारवादी प्रतीक सत्ति युग
क सत्तक-माधव आक्षीव और अक्षतारवादी अक्ष-विभाजन-पौराणिक सत्ति का
वैशिष्ट्य-सुग-अक्ष-अक्षीव युग-सुसिद्ध-माधव सम्भवा युग-विष्णु-प्रजापति-
अक्ष-अक्ष मास्व-मास्व-दृष्ट्य मास्व-अक्ष-समुद्र-अक्षयन एक प्रतीकात्मक

साङ्कर्य-विदुषी-ब्रह्म-बराह-शुभ्र-द्विरप्यकस्त्रिपु की प्रतीक कथा-वामन-
बाकलिरूप-सगन्धुमार-चौरासी छत्र योनियों के आधुनिक क्रम में अवतरित
मानव-मानव सम्पत्ता पुन-परशुराम-धीराम-सांस्कृतिक प्रतीक राम-
श्रीकृष्ण-सांस्कृतिक प्रतीक-पुन-दक्षिण । १५१-१६०

मनोविज्ञान के आसोक में अवतारवाद

मनोविज्ञान का ईश्वर-विभिन्नरूप-विकास और अनुसृष्टि का विषय-
कारण यह या यह आदर्श-आदर्श यह का अवतरण-पुराणकथना की समता-
मनोसक्ति (किविदो) की उच्चतम तथा के समकक्ष-उपविषय यह काम
प्रति के समकक्ष-'किविदो' राष्ट्र और ईश्वर-अचेतन उपादान एवं आत्म
स्वरूप ईश्वर-सांस्कृतिक प्रत्यय-मनुष्य सापेक्ष-ईश्वर और परमेश्वर-ईश्वर भाव-
प्रतिमा के रूप में-ईश्वरत्व का मूल उत्स एवं विकास-ईश्वर निर्माण के मूल
में पिता-माता और भेता-प्रतीक-साहित्यिक-विश्व या प्रतीक-त्रिदश
प्रतीक-प्रतीकीकरण में 'किविदो' एक अचेतन का योग-भारतीय प्रतीकों का
मनोवैज्ञानिक वैदिक-नाम और रूप-अवतार प्रतीक-अवतार-प्रतीकों
का बर्णनीकरण, उद्धारक अवतार-प्रतीक-अवतार प्रतीकों का मारीपीय
विषय-बन्धु प्रतीक-अल्प प्रतीक-बराह-पशु-मानव प्रतीक-मानवीकृत या
मनुष्यवत् प्रतीक-वामन-द्वैकीकृत प्रतीक-पूर्ण पुरुष या विराट पुरुष-भारत-
प्रतीक के रूप में अवतार-प्रतीक, शिशु प्रतीक, प्रतीक, प्रतिमा और
विम्ब-प्रतिमा-अवतार प्रतिमा-आत्म प्रतिमा-भाष-प्रतिमा (आर्कैय-रूप
इसे)-ज्ञान-प्रतिमा और प्रमिस-आच्छेदना-पुरातन-प्रतिमा-पुनः
प्रतिमा-भाव-प्रतिमा और पुरा कथा । पुनोत्थन-अवतारवाद की मनो
वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ और उसके मूल प्रयोजनों का मनोविश्लेषण-अवतारवाद
भीतिक अल्प से अधिक मनोवैज्ञानिक सम्य है-महा और पुरा-नैतिक-महं
का प्रवेपण तथा पूर्ण, अक्ष और आदेश-आत्म सम्मोहन-कीड़ा वृष्टि और
अनुसृष्टित शीघ्रा-व्यक्तिकरण-मनोवृत्तान्तक मनोविश्लेषणता । १९०-०८५

सौम्य शास्त्र के आसोक में अवतारवाद

सौम्य-बोध-सामान्य आकर्षण-द्वैक्य-रमणीय विम्बवाद-प्रतिमा
और विम्ब-रमणीय विम्ब-सगुण रमणीय विश्व-विर्गुण रमणीय विम्ब-
विम्ब-प्रतिविम्बवाद-रमणीय विम्बीकरण-रमणीय क्षिति से पुन भाव-
प्रतिमा-रमणीय रस-रमणीय आच्छेदक विम्ब-स्वायी भाष प्रियत्य-
विषयपरकता-याह और छेदना-मात्र और छेद-रमणीय रस के उद्दीपक

पौराणिक नाच-रमणीय चरना-रमणीय समानुमूर्ति-रमणीय समानुमूर्ति और
 मध्यमिज्ञान-समानुमूर्ति क मूल में प्राप्य बोध-विद्यातीत रमणीय समानुमूर्ति-
 प्रसादम् और समानुमूर्ति-रमानम् और समानुमूर्ति-मामाम्य अनुमूर्ति
 और रमणीय चरानुमूर्ति-रमणीय विष्णुप्रदायना-प्रतिमा-रचनानामक
 मूर्ति-रचने प्रकाश प्राप्त वा सद्व ज्ञान-शुद्ध-रचन-वेदना-रचनना-
 मूर्तिनामक रचनना-भवनारवादी रचनना का वैशिष्ट्य रचन-श्रीदाहृति-
 विषय और रूप-शुद्धनामक भाव-प्रतिमापे-शुद्धनामक रूपांतर-कृति-
 अलङ्कार-भगवन्ति-प्रादक-रमणीय आरशावाद-भवतार मीम्ह्य मयीम में
 भयीम का दर्शन इ-मानव-मीम्ह्य प्रत्यय वा भाव का भवनार-भवतारवा
 परम ब्रह्म की अभिप्यन्ति को पूरु कला है-कलाहृति का मीम्ह्य और आरशा-
 कला की दृष्टि से प्रक क भाव्य का रहस्य-कलाहृति और भवनारहृति-
 कलामिप्यन्ति और भवनारामिप्यन्ति ।

उदात्त और भयतार

उदात्त और 'मन्नाइम' की समवायिक विशेषता-उदात्त अलङ्कार-
 उदात्त का अनुगतन चिन्तन-प्रहाशापानना-उदात्त क विभिन्न तत्व-
 उदात्त और उदात्त-मध्यकालीन साहित्य का भवनारवादी उदात्त-मध्य
 कालीन मूर्ति का रमणीय उदात्त-मिहर्ष-भवनारवादी उदात्त मानव
 मूर्ति का धानक मनुष्यादात्त है ।

७८५-९१८

भारतीय सलित कलाओं में भयतारवाद

भारतीय कलित कलाओं का परात्पर आरशावाद-काव्य-भवतारवादी
 कला का वैशिष्ट्य-कला कला ब्रह्म-सहृदय ब्रह्म-मगीत-राग-रागिनियों का
 भवनारवादी मय-संगीत प्रिय विष्णु का प्राकट्य-भवतार भक्त और संतीत-
 मृत्य भयतारों के नाम पर प्रकलित मृत्य की इत्तमुदापे और मृत्य-—शास्त्रीय
 मृत्य और भवनारवाद-मरत नात्मन-कचकली-रास और उससे प्रभावित
 मृत्य-—ममिपुरी मृत्य-कत्वक मृत्य-कोक-मृत्य-वसावतार मृत्य-—रामलीला-
 कृष्ण लीला मृत्य-कव्य भवनार-मृत्य-विषकला-परात्पर आरशावाद-रस
 दृष्टि-विषकला का भवनारवादी उदात्त और वैशिष्ट्य-मध्ययुगीन
 भवनारवादी चित्र-सौती का विकास-मुगक सौती-राजपूत सौती-पहाड़ी सौती-
 मूर्तिकला-बालु कला-समापन ।

११९-१०००

सन्दर्भग्रन्थ ।

१००९-१०१७

अनुक्रमिका ।

१०२९

पोठिका

पोथिका

भारतीय साहित्य में अवतारवाद का विविध स्थान है। यद्यपि मध्य
 काशीय साहित्य के मुख्य प्रेरणा-स्रोत रामायण महाभारत और पुराण ग्रंथ इस
 विचारधारा का प्रभावित कथाओं से घरे पड़े हैं फिर भी यह धारणा अभी तक
 विशाखावाद का बना हुआ है कि इस अवतारवाद का आरम्भ कदा से हुआ।
 जिन महाकाव्यों-रामायण और महाभारत में इसका उल्लेख मिलता है उन्हें
 आधुनिक इतिहासकार मूल रूप में इसका समर्थन करने में हिचक प्रकट करते
 हैं। कहा जाता है कि यद्यपि इनके वर्तमान रूप में अवतारवाद का समर्थन
 मिल जाता है तथापि इनके मूल रूपों में ऐसा कुछ नहीं था जिनमें अवतारवाद
 का समर्थन था। जो छाग देना चाहते हैं उनके मन में यह बात बैठी हुई
 है कि प्राचीनतर वैदिक साहित्य में अवतारवाद का कोई स्थान नहीं था।
 परन्तु विचार करने पर इस धारणा में बहुत अधिक सन्देह नहीं मिलेगा।
 ऋग्वेद में महाकाव्यों में अचानक मिल जाने वाली इस प्रकृति में वैदिक
 उपादानों का समावेश देखकर यह सन्देह ठिपा था कि वैदिक साहित्य का
 अवतारवादी तत्वों की दृष्टि से, पुनर्निर्देशन होगा साहित्य।' इस दृष्टि से
 अवतारवाद के विकास में पाय देने वाले वैदिक उपादानों पर विचार कर लेने
 की आवश्यकता होती है। इसके पूर्व ही जिन अवतार धारण से अवतारवाद
 का निर्माण हुआ है उसके प्रयोग और परिभाषा की सीमा भी विचारनीय है।

अवतार और अवतारवाद

अवतार शब्द के प्रयोग और अर्थः—

वैदिक साहित्य में अवतार शब्द का स्पष्ट प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु
 'अवत' से बने वाले 'अवतारी' और 'अवतर' शब्दों के प्रयोग साहित्यों और
 प्राकृतों में मिलते हैं। ऋ० १, २५, २ में 'अवतारी' शब्द का प्रयोग हुआ है।
 मातृका के अनुसार इस शब्द का अर्थ है हे इन्द्र ! तू इस मही स्तुतियों में अशु-
 सताओं की हितता करनी हुई मेरी सेवा की रक्षा करता हुआ तबु के कोप को
 नष्ट कर दे और इन स्तुतियों से ही यज्ञादि काम के शिव पूजन करने वालों के
 अन्तराध, किन्न वा संबन्ध से पर करो।' मातृका में दूमरी पंक्ति में प्रयुक्त
 'अवतारी' का तात्पर्य 'अन्तराध,' 'किन्न वा 'सन्ध से ठिपा है। 'जा यज्ञादि

१ या ऋ० १०।१० ऋग्वेद १०।२०।

२ ऋ० १।२५, २

अभिः दृष्टे निवर्धेरिण्यस्य निवर्धस्य स्वयंसा मन्मुनिम् ।

अभिविष्या अभिषुष्ये निवृत्तीगर्वात् विज्ञोऽवतारीर्दशी ।

कर्म के लिए पूजन करने वालों को अंतरात्मा से वार करो' के स्पष्ट है। अर्प के अनुसार विष्णु के बराबरी अवतार-कार्य से हम शब्द का कुछ मात्र हील बढ़ता है। क्योंकि विष्णु का अवतार भी संकर से मुक्त करने के लिए-हाला रहा है। अतः इस शब्द के साधारण के अनुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि इन्द्र जिस प्रकार पशुादि कर्म करने वाले राजमानों का विजय कर रहा है बाद में विष्णु को वह कार्य मिला सम्भवतः हमी से उनक मानवकर्म को अवतार कहा गया।

अवतारी के अवतार 'अवत' से ही बनने वाला एक दूसरा शब्द 'अवतर' अवर्ष १८ ई. ५ में मिलता है।^१ मायज के अनुसार 'अत्यन्त रक्षम में समर्थ त्रिमूर्ति साभूत अंश हो रही ब्रह्मतर कहा जाता है।^२ हम मंत्र का भाव करने के उपरान्त साधन के पुनः 'अवतर' शब्द के निर्माण पर विचार किया है। उनके मतानुसार रक्षजार्थक जब चातु से स्व के स्थान में चातु आदेश करके उससे प्रकृत अर्थ में 'तरप' प्रत्यय से यह शब्द बना है।^३ मायज की इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'अवतर' में रक्षा का भाव विद्यमान है। अवतारवाद के मुख्य प्रयोक्तृओं में रक्षा का भी स्थान रहा है। हम विचार में 'अवतर' का साधारण अवतारवाद की सीमा से परे नहीं है। फिर भी हम शब्द का स्थान रक्षना आवश्यक है कि साधन कीइहहीं अतापही में हृद से जीर मन्वकाकीन अवतारवाद से भी वे अवश्य ही परिचित होंगे।

'अवतर' शब्द का पुनः प्रयोग शुक्ल पञ्चवेद में हुआ है।^४ इस मंत्र में प्रमुख 'अवता' प्राक उतरने के अर्थ में गृहीत हुआ है। अंग्रेजी टीकाकार एडविंस ने सम्भवतः अवतर के ही अर्थ में अंग्रेजी 'Descent' शब्द का प्रयोग

१ अव १, २५, १ ला या

'वशादि कर्महोते ब्रह्मणावावतारो विनाशय ।'

२ अवर्ष १८, १ ५

उपस्थान वैतथ्य अवतरतर नरीवान् ।

अपे पिठम अपाम वसि ।

३ अवर्ष १८, १ ५ ला या

'अवतर' अतिशयैव अपत् रक्षजार्थकः सात्प्रतीक्षो विवदे ।

४ अवर्ष २०, १५ ला या

अवतर वसि । अव रक्षणे इत्यारणात् अयं उवाचैव ।

उत्तर प्रकृतार्थो वस्य ।

५ अनु १७, १

उप अत्यन्त वैतथ्येन अवतार नरीवान् । अपे विचयपामसि तद्विधि व्यभिरा मदि
 उर्ष भी वह पावक वर्ति/सिधं वृषि ३

किया है।^१ अवतारकारी साहित्य में अवतार का अर्थ उतरना भी किया जाता रहा है।

इस अनुसंधान से यह स्पष्ट है कि माध्यकालीन वा आधुनिक भाष्यकारों अपना टीकाकारों के अनुसार अवतारी 'अवतर' और 'अपतर' के अवतारपरक अर्थ किए जा सकते हैं। परन्तु इनके प्रयोग मात्र पर प्यान जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे वैदिक काल के स्यादक या अपिक प्रचलित शब्दों में से नहीं थे।

प्रायण

प्रायणों में भी अवतार शब्द का अस्तिव विरल ज्ञान पड़ता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १. ८. ३, ३ में 'अवतारी का प्रयोग हुआ है। किन्तु मात्र वही है जो ऋ० १, २५, १ में मिलता है। इसलिये 'अवतारी शब्द के विनाश अर्थ वैराग्य की समाप्तता नहीं जान पड़ती। हमी प्रकार शतपथ ब्राह्मण १, ३, २, २० तथा मीमांसी संदिता १, १०. १ में यजुर्वेदीय मंत्र में प्रयुक्त अवतर मंत्र के साथ ही उल्लेख हुआ है। अतः यहाँ भी 'अवतर' का अर्थ वही माना जा सकता है।

पाणिनि

संहिताओं और ब्राह्मणों के अवतर पाणिनि की अष्टाध्यायी ३, ३, ३२० में 'अवेणुसावम' सूत्र मिलता है। यहाँ 'अवनु' से निर्मित होने वाले अवतारी, अवतर या अवतार की कोई चर्चा नहीं है, किन्तु 'अवतार' और 'अवतरार' का उल्लेख हुआ है।^२ पाणिनि ने अवतार को 'अवतारः कृपादेः' के रूप में उदाहरण दिया है। यहाँ अवतार का अर्थ कृपे में उतरने के अर्थ में किया गया है। इससे स्पष्ट है कि पाणिनि काल में 'अवतार' का प्रयोग उतरने के अर्थ में होता रहा है। इतिहासकारों के अनुसार पाणिनिका काल ई० सन् ३०० वर्ष पूर्व माना जाता है।^३ अतः ई० सन् ३०० वर्ष तक 'अवतार' शब्द का अस्तिव मिलता है जिसका प्रयोग उतरने के अर्थ में होता रहा है। बाद के पत्रलिखित एवं भाष्य भाष्यकारों ने इस सूत्र की विरोध व्याख्या नहीं की है। माध्यकालीन टीकाकारों में कामरूपपादिका ने काशिका में तथा अक्षरमन्द में

१ बह० १० २ मुक्ति अनु

'Descend upon the earth, the read rivers;

Thou art the gall O Agni of the waters.

२ अष्टाध्यायी ३. ३. २२० 'अवेणुसावम' अवतर-कृपादेः अवतारो अवतरारः।

३ संस्कृत सा० ३०। नन्दरेव अष्टाध्यायी सं० १०२९। ६० २३५।

मिताहारा में आद्योप्य पाणिनीय सूत्र की किंचित् विस्तृत व्याख्या की है।^१ किन्तु इन वैयाकरणों की व्याख्या से 'अवतार' शब्द का कोई नवीन अर्थ नहीं निकलता। क्योंकि पाणिनि का ही 'अवतारः रूपार्थे' पुनः पुनः उदाहरत होता रहा है।

परन्तु हिन्दी विरचकोसकार जी नयेग्रनाथ बसु ने अवतार शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनीय सूत्र के आधार पर अवश्यते हुए इस शब्द के अनेक अर्थ बताकर दिये हैं। इसके अयुक्त रूप से जैसे आना उतरना, पार होना, शरीर नष्ट करना अथवा ग्रहण करना, प्रतिरूपि, नकल, प्राहुर्माव अवतरण और अज्ञान के किन्तु अवतार शब्द का प्रयोग होता रहा है।^२ 'अवतार' क रचाव में भी पर्याय के रूप में इस शब्दों का प्रयोग उचित होता है।

महाकाव्य काल

गीता में कहाँ अवतारवाद के सैद्धांतिक स्वरूप की चर्चा हुई है, वहाँ अवतार की अपेक्षा संभव, आत्ममूढन और हिन्तु अर्थ का प्रयोग हुआ है।^३ काव्यमीमांसा रामायण में मनुष्य शरीर धारण और महाभारत के प्राचीन काले आने वाले अंतःकारणोपाख्याय ३३५। २ में 'अस्म कृतं' ३३५। १९, २० और ३३५। ५ में 'मिःमृत' ३३५। १३ में 'आता ३३५। १२ में, 'अप्यमास्थित' और ३३५। १६ में 'प्राहुर्माव' का प्रयोग हुआ है।^४ उक्त सभी श्लोकों में 'प्राहुर्माव' अधिक विचारणीय है। इसके प्रसंग में ब्रह्महीनवासी बाराहम वारु से अपने अवतार के निमित्त 'प्राहुर्माव' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस आधार पर अवतारवाद के शीतक शब्दों में 'प्राहुर्माव' अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि त्रेकोपनिषद् में भी एक के प्रकट होने के अर्थ में 'प्राहुर्माव' का प्रयोग हुआ है।^५ प्राहुर्माव के अतिरिक्त महाभारतपणोपनिषद् १, १ में अज्ञ का अर्थ सूचित करने के किन्तु 'विज्ञापमाना' शब्द व्यवहृत हुआ है। इस उपनिषद् के 'विज्ञापमान' का प्रयोग भी अधिक प्राचीनतर प्राप्त होता है। शुद्ध पञ्चवेद के ३५। १९ में प्रयुक्त 'अज्ञापमानो बहुधा विज्ञापते' से इसकी परिपुष्टि होती है।

उपर्युक्त शब्दों के अन्तर आत्मरथ नाम के एक प्राचीन शब्द में सम्भवतः आदिर्माव के अर्थ में 'अभिर्वात्त' शब्द का व्यवहार किया है।^६

१ अर्थिक। दीप्ता सन् १९२८। अनात्स ६ २४२ अथमसू की मिताहारा वा स० १ १ २२० अर्थिक।

२ हिन्दी विरचकोस जी १६ १७५। १ शीत-३१-१

३ वा ता १ १३, १ और अज्ञा १० ३२५, ३३५, ३ अथवा १५ अज्ञ १ २।

४ महाः १९, २८ ५ में एक अथवा रूपि का उदाहरित अर्थ के साथ उल्लेख हुआ है।

५ भी यह अर्थ उचित है कि दोनों एक ही हैं या भिन्न-भिन्न।

इसका उल्लेख कादम्बरिणी में अष्टाध्याय १, २, २९ में किया है। अतएव प्राचीन अक्षरकारण के सापेक्ष धार्यों में 'अभिव्यक्ति' का महत्त्व भी स्वीकार्य है।

पुराण

कादम्बरिणी में विष्णु पुराण के काल लघु 'अवनीर्ण' या 'अवतार शब्द' विष्णु की उत्पत्ति का अन्य कोषल शब्द के रूप में प्रचलित हो चुक था।^१ श्रीमद्भागवत में अवतार शब्द के साथ-साथ 'गूढत' और 'आवमान' का भी व्यवहार हुआ है।^२ भागवतकार ने प्राचीन और परवर्ती धर्मों प्रयोगों का प्रहल किया है।

यदि विद्वत्त धार्यों के अतिरिक्त प्रयोग का अध्ययन किया जाय तो सैद्धांतिक अक्षरकारण के विकास में क्रमशः विक्रायमान, प्रायुर्भाव, अभिव्यक्ति के पश्चात् ही 'अवतार' का स्थान प्राप्त हो सकता है। इसमें स्पष्ट है कि सैद्धांतिक अक्षरकारण के अंतर्गत 'अवतार' के पूर्ववर्ती कतिपय शब्द प्रचलित रहे हैं।

सांस्कृतिक साहित्य में 'अवतार' शब्द ही अथवा अवतारकारण का कोषल नहीं रहा है। अतएव पूर्ववर्ती प्रयोगों की शोधि इस युग में भी उसका अपेक्षित पर्याय हीन प्रकृत है। स्वयं अवतार शब्द का कहीं अर्थ संकोच और कहीं अर्थ विस्तार होता रहा है। इस युग में बौद्ध, जैन, नाथ, सत और गूढी इन पाँच सम्प्रदायों का अवतारकारी नहीं कहा जाता, फिर भी इनके साहित्य में अवतारकारी शब्दों के साथ-साथ 'अवतार' और उसके पर्यायवाची शब्द मिलते हैं।

बौद्ध

बौद्ध साहित्य के विशाल महापापी ग्रन्थ 'संस्कृत पुस्तिका' में क्रमशः अवनीर्ण, अवतारिता, के अतिरिक्त अवतारकारण का, उत्पन्न, प्रायुर्भाव शब्द व्यवहृत हुए हैं।^३ इनमें 'प्रायुर्भाव' शब्द सर्वाधिक प्रचलित रहा है। तथागत युगक में निर्माण और निष्काम, काव्यरत्न तथा अवतारण जैसे अवतारकारण शब्द मिलते हैं।^४ 'मनु धीमूक' बचन में 'अवतारण', अवताराय क्र अतिरिक्त समागत और आदिष्ट धार्यों का प्रयोग हुआ है।^५ इनकी परम्परा में सांख्य सिद्ध साहित्य में भी अवतार और उसके पर्याय मिलते हैं। 'बौद्धशास्त्र ओ दोहा' में 'अवतरित, निर्माणकारण जायते प्रभृति प्रयुक्त हुए हैं।^६ इनमें

१ वि० पु० ५, १, २०। २ भा १, ३ ५ अथवा, २०, १ ८ अवमान।

३ अथर्व वे० अथर्व १० १३३, १०१, १२८ १२५, २४०।

४ तथागत अथर्व अथर्व १० १ ५२ १२८।

५ अथर्ववेद अथर्व अथर्व १० ५०२ २०२, २१६ २३६-२३७।

६ बौद्धशास्त्र ओ दोहा अथर्व १० १११ २१ २३।

मिताचरा में जाकोब्य पाणिनीय सूत्र की किञ्चित् विस्तृत व्याख्या की है।^१ किन्तु इन व्याकरणों की व्याख्या से 'भवतार' शब्द का कोई नवीन अर्थ नहीं निकलता। क्योंकि पाणिनि का ही 'भवतारः कृपादेः' पुनः पुनः उदाहृत होता रहा है।

परन्तु हिन्दी विरचकोषकार श्री नगेशनाथ बसु ने भवतार शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनीय सूत्र के आधार पर बतलाते हुए इस शब्द के अनेक अर्थ बतलाये हैं। इनके अनुसार ऊपर से नीचे आना उतरना, पार होना, शरीर पारण करना जन्म ग्रहण करना प्रतिवृत्ति नकक, प्रादुर्भाव अवतरण और अज्ञान के लिए भवतार शब्द का प्रयोग होता रहा है।^२ 'भवतार' के स्थान में भी पर्याय के रूप में इन सर्वों का प्रयोग उचित होता है।

महाकाव्य काल

गीता में जहाँ भवतारवाद् के सैद्धान्तिक स्वरूप की चर्चा हुई है, वहाँ भवतार की अपेक्षा समस्त आरमसृजन और दिव्य जन्म का प्रयोग हुआ है।^३ वाल्मीकि रामायण में मनुष्य शरीर धारण और महाभारत के प्राचीन कड़े जाने वाले अथ नारायणोपाख्यान ३३५।२ में 'जन्म कृतं' ३३५, १९, ३० और ३३५।५३ में 'निःसृत' ३३५।१४ में 'जाता', ३४५।१९ में 'रूपमास्थित' और ३३५।६४ में 'प्रादुर्भाव' का प्रयोग हुआ है।^४ उक्त सभी प्रयोगों में 'प्रादुर्भाव' अधिक विशारद्वीय है। इसके प्रसंग में अतद्दीपवासी नारायण नारद से अपने भवतार के विमिश्र 'प्रादुर्भाव' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस आधार पर भवतारवाद् के द्योतक शब्दों में 'प्रादुर्भाव' अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। क्योंकि केवोपनिषद् में भी एक के प्रकट होने के अर्थ में 'प्रादुर्भाव' का प्रयोग हुआ है।^५ प्रादुर्भाव के अतिरिक्त महाभारतोपनिषद् २।३ में ब्रह्म का जन्म सूचित करने के लिए 'विजायमान' शब्द व्यवहृत हुआ है। इस उपनिषद् के 'विजायमान' का प्रयोग भी अधिक प्राचीनतर ज्ञात होता है। उक्त पदार्थ के ३५।१९ में प्रयुक्त 'अज्ञानमार्गो बहुधा विजायते' से इसकी परिशुद्धि होती है।

उपयुक्त शब्दों के अनन्तर आरमसृज्य नाम के एक प्राचीन शब्द ने सम्भवतः जातिर्भाव के अर्थ में 'अभिध्वत्ति' शब्द का व्यवहार किया है।^६

१ अधिष्ठ। तीसरा सन् १९२८। नगरसृष्ट २४२ अक्षरसूत्र की मिताचरा पा स ३ ३२ इत्यम्।

२ हिन्दी विरचकोष श्री २ वृ १७९। ३ गीता ३।६-९।

४ वा रा १ १३, ३ और महा २२ ३३५, ३३५, ३ अथाव। ५ कित ३ २।

६ महा १२, २८ ५ में एक अक्षरसूत्र का दार्ष्टनिक अर्थ के साथ उल्लेख हुआ है।

धिर भी वह करना कठिन है कि दोनों एक ही हैं वा निवृत्ति।

इसका उद्देश्य कदाचित्त ने अलग-अलग १, २, ३, ४ में किया है। अतएव प्राचीन
अवतारवाद् के अन्तर्गत चारों में 'अभिम्यन्ति' का अन्वय भी स्वीकार्य है।

पुण्य

अन्वयार्थ में हिन्दु पुण्य के शब्द नव 'अवर्णात्' या 'अवतार शब्द
हिन्दु ही उन्मत्ति या अन्वय शब्द शब्द के रूप में प्रयुक्त हो चुके थे।'
अन्वयार्थ में अवतार शब्द के साथ-साथ 'गुरुत्' और 'जायमान' का भी
अन्वय हुआ है। भागवतकार ने प्राचीन और परवर्ती दोनों प्रयोगों का
अन्वय किया है।

यदि विद्वत् शब्दों के अर्थिक प्रयोग का अन्वयन किया जाय तो वैदिक
अवतारवाद् के विकास में क्रमशः विजायमान प्रादुर्भाव, अभिम्यन्ति के अन्वय
ही 'अवतार' का अन्वय माना जा सकता है। हमने यह दे कि वैदिक
अवतारवाद् के अन्तर्गत 'अवतार' के पूर्ववर्ती कतिपय शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

मध्यकालीन साहित्य में 'अवतार' शब्द ही अन्वय अवतारवाद् का वाचक
नहीं रहा है अतएव पूर्ववर्ती प्रयोगों की भूमि इस युग में भी उमक नव मय
रूप में ही प्रयुक्त हैं। तब अवतार शब्द का वहीं अर्थ मन्त्र और वहीं
अर्थ अन्वय होता रहा है। इस युग में बौद्ध, जैन, भाष्य मन और मूर्खी
इस बीच समझावों का अवतारवादी नहीं बढ़ा जाता, फिर भी इनके साहित्य
में अवतारवादी शब्दों के साथ-साथ 'अवतार' और उमक अन्वयवाची शब्द
नियत हैं।

बौद्ध

बौद्ध साहित्य के विद्वान मदायानी ग्रन्थ 'गुरुत् पुस्तिका' में क्रमशः
अवर्णात्, अवतारिता, के अतिरिक्त अवतारवाचक अन्वय, अतएव प्रादुर्भाव शब्द
प्रयुक्त हुए हैं। इनमें 'प्रादुर्भाव' शब्द सर्वाधिक प्रयुक्त रहा है। तथागत
पुस्तक में निर्मात् और निष्काम, कायधारण तथा अवतारण जैसे अवतारवाचक
शब्द मिलते हैं। 'मनु श्रीमूक्त कथन में 'अवतारवात्' अवतारार्थ के अतिरिक्त
समायत और आविष्ट शब्दों का प्रयोग हुआ है।' इनकी परम्परा में साम्य
मित्र साहित्य में भी अवतार और उमक अन्वय मिलते हैं। 'बौद्धगान्धो
शब्दा' में अवतारित, निर्मात्काय जायत प्रयुक्ति प्रयुक्त हुए हैं। इनमें

- १ वि. पु० ५, १, ६०। २ भा० १ ५ सुब्रत १ ३ ८ जयमान।
- ३ मन्त्र पु० अमरा ४ १३६ ३ १ १२८ १२५, १४।
- ४ तथागत पुस्तक अमरा ४ २ ५९, १२८।
- ५ मनु श्रीमूक्तकथन अमरा पु० ५ २ २ २, ११६, ११६-११७।
- ६ बौद्धगान्धो शब्दा अमरा पु० ११२ ५१ ३।

निर्माणकाय बीड़ अवतारवाद के अनुसार अवतारवादी काय है। जागधी के दोहाकोश में 'विशिष्ट निर्माणकायो च आपते' जैसे प्रयोग मिलते हैं। इसी प्रय में एक मि अ-यदुपर-वेश 'निष्-प्रमुचर-वेश' का व्यवहार हुआ है।^१ राहुल जी द्वारा सम्पादित दोहाकोश में 'बोदिमाव अकणित अवतरे', काव धारण और 'सपुण्य पदसे' जैसे अवतारवादी प्रयोग मिलते हैं।^२ इससे सिद्ध हो जाता है कि सिद्ध साहित्य में बीड़ अवतारवाद से सम्बद्ध कतिपय अवतारवादी शब्दों का प्रयोग होता था।

जैन

जैन साहित्य में अवतारवाद के शापक शब्द 'अवतार' शब्द से ही रूपान्तरित शब्दों के अपभ्रंश रूप प्रचलित रहे हैं। इनमें ओपोधि, अवहन्तु, अवपरिड, अवचरेमि तथा हरिबन्ध पुराण में 'पपड गड' (मकड शरीर) प्रयोग में हीक पड़ते हैं।^३ उक्त सभी शब्दों का व्यवहार जम्म या अवतार सम्बन्धी पौराणिक शब्दों में ही विशेष रूप से होता रहा है।

भाष्य

भाष्य साहित्य में अवतार शब्द का प्रयोग अवतारों की आलोचना या भक्तना के प्रसंग में हुआ है। उदाहरण के लिए 'बिस्व हस अवतार बाप्या', या 'हस अवतार औतिरीया का उल्लेख पूर्व मध्यकालीन युग में प्रचलित दशावतार की आलोचना के क्रम में हुआ है।^४ भाष्य शिखों की बानिषों में पुनर्जन्म के अर्थ में 'अवतार' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। 'भामें गद्दा रोयें सुकन फिरि फिरि से अवतार', 'न मरे जोगी न से अवतार', 'मिबीनाथ से मरि बीतरे'^५ में अवतार शब्द की अपेक्षा पुनर्जन्म का शापक हीक पड़ता है।

सप्त

अवतार शब्द के प्रयोग की दृष्टि से सप्त पूर्ववर्ती सिद्धों की परम्परा में रहे हैं। परम्पु जम्म या पुनर्जन्म के अतिरिक्त इन्होंने पौराणिक अवतारों के किपु यी 'अवतार' शब्द का व्यवहार किया है। कबीरदास के एक पद में 'माकट्य' के अर्थ में 'निष्कमै' का प्रयोग हुआ है।^६ पर कबीर और हानू दोनों ने अज-

१. दोहाकोश। जागधी। पृ. १४, १६, २५१।

२. दोहाकोश। राहुलजी। क्रमशः पृ. २६७, २९९, ३३१।

३. जम्मपरिड। लखमू। क्रमशः १२, ८, २५, १२, २४, ५५। ३, ५, २५। ९, २६। हरि। पु. १९२, ३।

४. गौरव वाली क्रमशः पृ. ६७ और २५५।

५. भाष्य शिखों की बानिषों क्रमशः पृ. ३, ५४, ७५।

६. क. प्र. पृ. ३७ 'प्रमु कंम से निष्कमै से बिलपार।

नार' का प्रयोग प्रायः पुनरुत्थन या दुर्लभ मनुष्य जन्म क लिए किया है।^१ मराठी सतों में कामरेव ने अवतार क अर्थ में 'देह धरित, बहिष्कारार्थ' ने 'प्रगत भवा' कथाव रशामी ने 'भवा मगुम' का व्यवहार किया है।^२ सत रैशाम ने 'दुर्लभ मनुष्य जन्म, गुण अगुन ने पौराणिक अवतार', मन्सू काल ने 'मत्त जन्म रज्जव ने आत्मा क आविर्भाव की अभिव्यक्ति 'अवतार शब्द क प्रयोग हुआ की है।^३

इस प्रकार सत साहित्य में अवतार पौराणिक अवतारों क समुच्चय क अनिश्चित अर्थ, पुनरुत्थन, मनुष्य तथा मन्सू जन्म क लिए प्रयुक्त हुआ है। साथ ही पौराणिक अवतारवाद् क सूक्ष्म शब्दों एवं पदों में देहधारण, प्राकृत्य और मगुन का व्यवहार किया गया है।

सृष्टी

सूची कवियों में 'अवतार' और निर्माण शब्द अधिक व्यवहृत होते रहे हैं। यों 'अवतार' शब्द ता जन्म और भारतीय अवतारों का परिचायक रहा है। किन्तु निर्माण शब्द सृष्टी अवतारवाद् का घातक दोष क कारण पारिभाषिक महत्त्व रगता है। क्योंकि 'दुर्लभ शब्द में अवतारवादी जन्म की भावना अन्तर्निहित है इसलिये इस्लामी देशों में मरदूद टहरा कर इनका घोर विरोध होता रहा है। अतः अवतारवाचक 'दुर्लभ' क स्थान में 'निःसृज', 'सृजन' और 'निर्माण' वाचक शब्दों का अधिक प्रचार हुआ। जायसी ने भी पद्यावत क प्रारम्भ में 'कीर्तिसि का अन्विष्ट प्रयोग किया है। यहाँ कीर्तिसि में सृष्टि अवतार का व्यापक अर्थ अन्तर्निहित विहित होता है। इसी से 'कीर्तिसि बरन बरन बीतार' में प्रयुक्त 'बीतार' का तात्पर्य विविध प्राणियों क आविर्भाव या जन्म से रहा है।^४ जायसी क पूर्ववर्ती कवि मंसूर ने भी जन्म क ही अर्थ में 'अवतार शब्द का प्रयोग किया है।^५ जायसी न आत्म-अवतार क लिए अवतार शब्द भी

१ क० सं० पृ० १८८ 'मानिार जनम अवतारा' मां है ई बार्वाट' और वा० पृ० १५१ और १८८।

२ मराठी सं० वा० पृ० १५४ नरमिय रूप होर देह धरित
पृ० १४९ बहिनी बडे हरि प्रकट भये है
पृ० १६५ 'मगल काज भवा मगुन मुरती'।

३ संघ रविदास और बनका काव्य पृ० १११ 'मानुषावतार दुर्लभ'
पृ० सं० स पृ० 'श्लोठ दिवस कीने अवतार'
मन्सू० वा पृ० १५ सा० ११ 'मन्सू ली माता सुंदरी बरौ मत्त बीतार'
रखर० वा० 'मानस के अवतार'

४ वा० सं० पद्यावत। पृ० १।

५ मधुमाळणी। मंसूर। पृ० ११० 'नाज भोग मधुमाळणी, राखा मिह बीतार' और पृ० ११०।

प्रहल किया है।^१ परन्तु यहाँ भवतार अभिव्यक्ति या प्राकृत्य का सूचक है।

अतएव सूची साहित्य में भवतार शब्द का प्रयोग मुख्यतः जन्म-कर्म में ही प्रायः होता रहा है फिर भी विस्तारण, सृजन, निर्माण आदि पर्याय सूची भवतारवाद् के द्योतक रहे हैं।

संगुण साहित्य

संगुण भक्ति साहित्य में तो मुख्य रूप से भवतारवादी साहित्य है, किन्तु मध्यकालीन कवियों और वाचकारों में भवतार की अपेक्षा 'प्राकृत्य' अधिक प्रचलित रहा है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'भवतार' का प्रयोग परम्परागत अर्थ में किया है।^२ साथ ही 'प्राकृत्य' और 'नर-तन-वारेण' सूचक पद इनकी रचनाओं में अधिक मिलते हैं।^३ रूप की उपासना करने वाले अग्रहाम और नामा दास ने सम्भवतः अर्धावतार रूप के द्योतक 'रूप' शब्द का व्यवहार राम या अग्र्य पौराणिक भवतारों के लिए किया है।^४

कृष्ण भक्ति साहित्य के कवियों में सूरदास ने भवतार कर्म में प्रायः 'प्रगट' का व्यवहार किया है।^५ शैतन्य सम्प्रदाय के भक्त कवि सूरदास मदनमोहन के पदों में भी भवतार के लिए सामान्यतः 'प्रगट' का प्रयोग हुआ है।^६ इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों में 'प्राकृत्य' या 'प्राकृत्य' शब्दक शब्दों का अधिक प्रयोग होता रहा है। इन कवियों में मीरा बाई ने भवतार या प्राकृत्य के स्थान में 'पदारना', जन्म लेना उतरना आदि क्रियापदों का अधिक प्रयोग किया है।^७ फिर भी कृष्णभक्ति साहित्य में 'प्राकृत्य' का सर्वाधिक प्राचाल्य रहा है। विशेषकर 'प्राकृत्य' भवतार की अभिव्यक्ति के लिए वाच्य शब्दों का लोकप्रिय शब्द रहा है।

इस प्रकार 'भवतार' शब्द के स्वरूप और प्रयोग-विशेषण से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में 'भवतार' का प्रयोग उतरने के अर्थ में होता था। कालान्तर में

१. तु. सं. पृ. ११५, ४९४।

२. सं. पृ. ११८ 'प्रगट वर केरि कर्म यहाँ'

३. 'नर-तन-वारेण'

४. प. मा. पृ. १०-११।

५. राम. स्य. म. पृ. १९२ 'रूप सुखिरामन्द राम विधि जनक कुमारी' और मन्मथ. पृ. ४० 'बीबीस रूप बीजा रचित'।

६. सूर सारावली पृ. २ 'जपने जाय हरि प्रकट कियो है, हरी पुख भवतार'

७. भूतदास मदन मी. पृ. ११३ 'जा हित प्रगट मर प्रबन्धन'

८. मीरा पृ. ५४ सं. पृ. १२४ 'जब जब मीरु पड़ी भक्तन पर जाय ही कृष्ण पनाए'

पृ. १३२ 'मीरा मी भिखाटी भिखा जबम जन्म भवतार'

पृ. १३९ 'नहाँटी नगरी में छतरयो जाय'

विष्णु के जन्म प्रादुर्भाव एवं अंशोद्भव पर इन्द्रका सम्बन्ध हुआ। अतएव पिता की सम्प्रदायों में अवनार राक्षस का तात्पर्य पौराणिक अवतारों के अन्तर्गत का प्रमुख के सामान्य जन्म के अर्थ में प्रचलित हुआ। अवनारवाद् पर मन्त्र नियत रूपक पर्वण्ड के रूप में प्रादुर्भाव विमान सूत्रम, मनुष्य रूप, वायु वातम, नर-नरन पारण और प्राकृत्य आत्मरूप सादृश्य में विशेष रूप में प्रचलित हुए।

अवनारवाद् की सीमा

उहाँ तक अवनार और उनके पर्वण्डवाची शक्तियों का अवनारवाद् से सम्बन्ध है, वही विषय ही अवनार राक्षस सामान्य उत्पत्ति या जन्म के अर्थ में वही लिया जाता। अतः विष्णु या अजन्मा ईश्वर के जन्म या उत्पत्ति के सिद्धांत का ही अवनारवाद् कहा जाता रहा है। आरुःस्थकाल में इन्द्रका सम्बन्ध मन्त्रवादीय उपायों या इष्टदेवों के साथ स्थापित किया गया। फिर भी इन्द्रका यह जन्म या प्रादुर्भाव निम्नयोजन या अनापान नहीं या बलिश् तथा वरदान, महार, जन-अवकाश ज्ञान योग और मरित का प्रसार तथा ईला और रम की अभिप्रेत आदि प्रयोजन भी इन्द्रके साथ ही समाविष्ट हैं हैं। अतः मन्त्र में अवनारवाद् विष्णु या अन्य उपायों के हेतु पुनः जन्म का परिचायक है।

अवनारवाद् की पूर्ण पीठिका

वैदिक साहित्य

प्रारम्भिक अवनारवाद् का सम्बन्ध मुख्य रूप से विष्णु से ही समझा जाता रहा है, पर अती तक विष्णु के प्रवाजक सदित जन्म लेने का प्रश्न है यह वैदिक साहित्य में विरल है। फिर भी त्रिज उपायों से महाकाम्य एवं पौराणिक विष्णु तथा उनके अवतारों का विकास हुआ है, उनमें से अधिकांश का विष्णु की अपवा इन्द्र और प्रजापति से अधिक सम्बन्ध रहा है। आठमर में सर्वश्रेष्ठ होने पर उन सभी को विष्णु पर आरोपित किया गया।

वैदिक विष्णु अपने प्रारम्भिक रूप में अन्य देवों के समान एक देवता मात्र हैं। फिर भी उनमें कुछ देवी विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं जिनसे वे महात्मा या सर्वश्रेष्ठ बनेंगे। अवनारवाद् के प्रमुख प्रवाजकों में रक्षा या अतुरों से युद्ध के विभिन्न जिस बल एवं पराक्रम की आवश्यकता मानी गई है वह वैदिक विष्णु में पर्वण्ड मात्रा में विद्यमान है। उगहोने तीव्र पग से इस जगत की परिक्रमा की है जिससे सारा जगत उनके पैरों की पुष्टि से

द्विप जाता है।^१ वे जात क रक्षक हैं उनको आवात करने बाधा कोई नहीं है। इन अष्टावतारों में उन्हें समस्त बर्तों को धारण करने बाधा भी नहीं गयी है।^२ विष्णु के कार्यों के बल पर ही यजमान् अपने बर्तों का अनुष्ठान करते हैं। इसी मंत्र में वे इन्द्र के उपयुक्त सखा बतकाय गये हैं।^३ कीच क अनुसार विष्णु इन्द्र के मित्र और वृषभ के सहायक हैं।^४ ऋ० १, २२, २० और २१ में उनके परम पद की भी चर्चा की गई है। ऋ० ७, १९, १ में विष्णु धेनु या सुन्दर गी बाकी पृथ्वी के धारक बतकाय गये हैं। ऋ० १, १५५, ६ के अनुसार इन्द्रोंने काक के १४ बर्तों को काक के समान परिचालित कर रखा है। वे नित्य लक्ष्म और कुमार हैं। वे युद्ध में आह्वान करने पर जाते हैं। इसी मंत्र में 'बृहद्वरीरों' अर्थात् बृहत् शरीर भी उन्हें कहा गया है। तीन पादशेष से तीनों लोक मापने के कारण संसार उनकी सृष्टि करता है। इसी सृष्टि क दूसरे मंत्र में उनके पराक्रम को सिंह क सदृश कहा गया है।^५ हिन्दी टीकाकारों के अनुसार स्तोत्रात्स्वामी, पाकक, अत्रु रहित लक्ष्म विष्णु के पौरुष की स्तुति करते हैं।^६ ऋ० ७, ४०, ५ देवता विष्णु क अष्ट बतकाय गये हैं। तथा ऋ० ७, १००, १, २ में विष्णु मनुष्यों के द्वितैपी एवं सेष्य हैं। वे सभी के मनोरथदाता और हितकारी हैं। इस सृष्टि के मंत्र में कहा गया है कि पृथ्वी को मनुष्य विवास के किये देने की इच्छा करके सुब्रह्मा विष्णु ने पृथ्वी का पदक्रमण किया था और विस्तृत निवास स्थापन बनाया था।^७ वे युद्ध में अनेक प्रकार के रूप धारण करने वाले हैं।^८ अतपत्र ब्राह्मण के अनुसार विष्णु अपने तीन पद विशेष क द्वारा सभी देवों की सक्ति प्राप्त कर श्रेष्ठ बन जाते हैं।^९ 'तैत्तिरीय संहिता' के अनुसार तीन पद से वामन रूप धर कर वे तीनों लोक जीत लेते हैं।^१

अतः विष्णु के बल रूपों से स्पष्ट है कि विष्णु इन्द्र-सखा बल-विक्रम से युक्त मनुष्य के द्वितैपी, पृथ्वी को पादाशेष से जीतनेवाले तथा उसका धारणकर्ता हैं। वे सभी देवताओं की सक्ति से युक्त होने क कारण उनमें श्रेष्ठ हो जाते हैं।

अष्टावतारवादी उपासकों की दृष्टि से इनमें वामन और नृसिंहावतार के मूल रूप का अनुमान किया जा सकता है।

१ ऋ० १, २२, २१। २ ऋ० १, २२, २८। ३ ऋ० १, २८, २९।
 ४ रे की ऋ० ७ कीच पृ० १९। ५, २, २५४ २ और ४।
 ६ ऋ० १, २५५, ४ राम ग्रेविन्ड विषादी का हिन्दी आश्रित बृहत्।
 ७ ऋ० ७, १, ४ ८ ऋ० ७, १, ६।
 ९ ऋ० मा० २, ९, २९। १ तै० सं० ११, १, २, २।

इसके अनिश्चित पारमार्थिक अवतारवादी रूपों के विनाश में महापुरुष हनुमत्, प्रजापति आदि तात्कालिक धेरु देवों से सम्बद्ध अल्प कतिपय उपादानों की उत्पत्ती है।

पुराणों में भूतार इतने ही अवतारवाद के प्रमुख प्रयोजनों में माना गया है। प्रायः इतना और हनुमत् अमुरों से पृथ्वी की रक्षा के निमित्त पृथ्वीवासी विष्णु से महापता लेते हैं। अथ महाता के पृथ्वी मूत्र के तीव्र मंत्रों से उक्त प्रयोजन के मूल रूपों का आशय मिलता है। अथ ११ १ ७ के अनुसार प्राण के वरम पाने हेतु गदैव मायामी से पृथ्वी की रक्षा करत है। अथ १२ १, १० के अनुसार अभिर्नीपुमारों द्वारा विमित पृथ्वी पर विष्णु से विप्रमग किया है और हनुमत् से हनुमत् शत्रु रहित करके अपने वर में लिया था। यहाँ देवता हनुमत् तथा विष्णु से उगड़ी सम्बन्धों का भाव होता है किन्तु पुराणों में पृथ्वीवासी विष्णु के अवतारों से रहा है। अथ १२ १, ४८ में कहा गया है कि शत्रु को भी धारण करनेवाली पाप पुण्य से मुक्त राय की मदनेवाली, बड़ बड़ पशुओं का धारण करने वाली और पराह शत्रुका ग्राहक रहने पर पृथ्वी पराह को प्रसन्न हुई थी। यहाँ विष्णु के परागतार से शत्रु पृथ्वी का सम्बन्ध है उमठा मङ्गल मिलता है।

इस प्रकार विष्णु के अवतारवादी रूपों में त्रिक मण्डप, वृम पराह, भूमिह, कामन प्रभृति रूपों को सम्बद्ध किया गया है उनमें भूमिह और कामन के अनिश्चित मण्डप, वृम और पराह के जो आशय 'तैत्तिरीय संहिता' एवं ब्राह्मणों में मिलते हैं उनका सम्बन्ध विष्णु की अवतार प्रजापति से है। 'महाभारत' एवं 'विष्णु पुराण' मङ्गल इन तीनों का सम्बन्ध प्रजापति से ही मिलता रहा है। विष्णु के देवाधिदेव होने पर काष्ठास्तर में उन्हें विष्णु का अवतार माना गया।

इसी प्रकार वैदिक हनुमत् से भी सम्बद्ध कतिपय अवतारवादी उपादानों का आरोप बाद में चलकर विष्णु पर किया गया है। विशेषकर अवतारवाद का सम्बन्ध जहाँ माया से उत्पन्न होने या विविध रूप धारण करने से है वहाँ इस प्रकृति का विशेष सम्बन्ध सर्वप्रथम वैदिक हनुमत् से लक्षित होता है। ऋ० १, ४०, १८ के एक मंत्र में हनुमत् के माया द्वारा रूप ग्रहण करने की चर्चा हुई है। ऋ० उ० २, ५, १९ में पुनः उसका उल्लेख हुआ है।^१

१ चौबीस अवतार में इन पर बिलारपूर्वक विचार किया गया है।

२ ऋ० १ ४० १८ इती मायामि पुन रूप रवति।

उपनिषद्

किन्तु उत्पत्ति सूत्रक अवतारवाद की प्रकृति का दर्शन सर्वप्रथम यदुर्वेद में प्रमुख 'पुरुष सूत्र' के एक मंत्र में दृष्टिगत होता है। वहाँ पुरुष को अजन्मा होते हुए भी जन्म लेने वाला बतकाया गया है।^१ 'महानाराधनापनिषद्' में इस प्रकृति का और विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए उसे अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में जन्म लेनेवाला कहा गया है।^२

यज्ञ अवतार

'कनोपनिषद्' के एक स्थान में सर्वशक्तिमान् ब्रह्म के पञ्च रूप में प्रकट होने का प्रसंग आया है।^३ इससे विदित होता है कि वैदिक काल में अवतारवाद के मूल प्रेरक उपादान अथर्व वेद विद्यमान थे। यहाँ पञ्च कथा के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उसमें प्रारम्भिक अवतारवाद के तत्त्व उपलब्ध हैं। विष्णु किस प्रकार प्रारम्भिक अवतारवाद में देवताओं का पञ्च लेनेवाले ईश्वर हैं, उसी प्रकार कनोपनिषद् का ब्रह्म भी देवपञ्चीय ब्रह्म है। क्योंकि 'कनोपनिषद्' ३, १ में कहा गया है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की थी। उस ब्रह्म की विजय से देवता गीरबन्धित हुए थे। उनके मन में विजय का अभिमान हो गया था। इसी से 'कनोपनिषद्' ३, २ के अनुसार ब्रह्म देवताओं के मन का अभिमान नष्ट करने के लिए प्रादुर्भूत होता है।

सम्भवतः पञ्च कथा के अवतारवादी रूप को देखकर ही कुछ इतिहासकारों ने इस उपनिषद् को परवर्ती समझा है। परन्तु पञ्च कथा वा पञ्च अवतार 'कनोपनिषद्' के लिए नया नहीं है अपितु 'बृहदारण्यक' ५, ४, १ में पञ्च का उल्लेख हुआ है। यहाँ पञ्च को प्रथम उत्पन्न सत्य ब्रह्म कहा गया है।^४ प्रस्तुत पञ्च ब्रह्म के सत्य कहे जाने से वह भी स्पष्ट विदित होता है कि उपनिषद् काल में ही आविर्भूत ब्रह्म वा देवादिदेव को सत्य ब्रह्म की सत्ता प्रदान की गई थी। काकान्तर में विष्णु वा मध्यकालीन उपासकों के आविर्भूत रूप को इसी परम्परा में सत्य माना गया।

अवतारवाद की पुष्टि में पञ्च कथा से दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह

१ यदुर्वेद ३२, १९ अथावमानो यदुभा विजायते।

२. 'पपदि देव' प्रियेऽस्तु सर्वाः पूर्वाः दि वाता' स उ गर्जेजलः।

स विजायमानः स अविभ्वनापः सर्वेऽमुस्त्विति सर्वतोमुत्त'।

महात्मा ४०, १, २।

३ कैमो ३, २।

४ इ० उ ५, ४, १ 'सर्वं प्रथमं सत्यं सत्यं शब्देति'।

उपनिषद्

किन्तु उत्पत्ति सूत्र अवतारवाद की प्रकृति का दर्शन सर्वप्रथम पञ्चवेद में प्रयुक्त 'युक्त्य सूत्र' के एक मंत्र में दृष्टिगत होता है। वहाँ पुरुर को अन्नमा होते हुए भी अन्न सम जाण बतकाया गया है।^१ 'महाभारतकोपनिषद्' में इस प्रकृति का और विस्तारपूर्वक उद्घेक करते हुए उसे अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में अन्न सेनेवाका कहा गया है।^२

पञ्च अवतार

'केनोपनिषद्' के एक स्थान में सप्तशक्तिमाला अथ के पञ्च रूप में प्रकट होने का प्रसंग आया है।^३ इससे विदित होता है कि वैदिक काल में अवतारवाद के मूल श्रेष्ठ उपादान अवश्य विद्यमान थे। यही पञ्च कथा के आरम्भ के पक्ष स्पष्ट है कि उसमें प्रारम्भिक अवतारवाद के लक्षण उल्लेख हैं। यिष्णु किस प्रकार प्रारम्भिक अवतारवाद में देवताओं का पञ्च सेनेवाके ईश्वर है उसी प्रकार केनोपनिषद् का अर्थ भी देवपत्नीय अर्थ है। क्योंकि 'केनोपनिषद्' ३, १ में कहा गया है कि अथ ये देवताओं के किये विदित प्रकट की थी। उस अर्थ की विषय से देवता गौरवान्वित हुए थे। उनके मन में विषय का अविमान हो गया था। इसी से 'केनोपनिषद्' ३, २ के अनुसार अथ देवताओं के मन का अविमान गण करने के किये प्रादुर्भूत होता है।

सम्भवतः यह कथा के अवतारवादी रूप को देखकर ही कुछ इतिहासकारों ने इस उपनिषद् को परवर्ती समझा है। परन्तु यह कथा या पञ्च अवतार 'केनोपनिषद्' के किये गया नहीं है अपितु 'महाभारत' ५, २१ में यह का उद्घेक हुआ है। वही यह को प्रथम उत्पन्न सत्य अथ कहा गया है।^४ अस्तु यह अथ के सत्य बड़े आगे से यह भी स्पष्ट विदित होता है कि उपनिषद् काल में ही आविर्भूत अथ या देवाधिदेव को सत्य अथ की सहा प्रदान की गई थी। कात्यायन में किन्तु या मध्यकालीन उपासकों के आविर्भूत रूप को इसी परम्परा में उत्पन्न माना गया।

अवतारवाद की पुष्टि में यह कथा से दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह

१ यजु ३१ २५ अनावमालो बहुवा निजावते।

२ यद्वि देवाः प्रियीष्टु सर्वा वृषो हि जातः स च पर्येभक्तः।

३ विशावमान. ७ अतिप्यमानः सर्वभृशुप्रीत्यति सर्वतीमुपा।

महाभा ७ १ २।

४ केनो १ २।

५ इ. ५ ५ १ 'यत् प्रथमं वैर सत्य ज्योतिः'।

हुए कहा गया है कि 'मैं स्वाम प्रकृ से सबक प्रकृ को प्राप्त होऊँ और शकृ से स्वाम को प्राप्त होऊँ।' इस मंत्र में प्रतिपादित स्वाम वन को विष्णु और उनके अवतारी उपास्यों पर आसानी से आरोपित किया जा सकता है।

विष्णु गुण

विष्णु और वैष्णव सम्प्रदाय के अवतारी उपास्य रूपों में षड् गुणों का संयोग माना जाता था। बाद के वैष्णव सम्प्रदायों में गुणों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इन गुणों में से कुछ का अस्तित्व 'शेताभतरोपनिषद्' में मिलता है। शेता ४ ८ में प्रसिद्ध षड् गुणों में से ज्ञान बल और क्रिया का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त मण्डकाकीन अखिल कल्पान्तमत्र गुणों के विकास में 'पितरोपोपनिषद्' ३ १ २ में आयु हुप सञ्जान आशान विज्ञान, प्रज्ञान मेवा, घटि घटि मति मनीषा ज्युति, स्मृति, संकल्प कुण वसु काम वश का भी योग सम्भव हो सकता है।

विष्णु देह

अवतारवादी साहित्य में अवतारों के शरीर को विष्णु शरीर समझा जाता रहा है। इसी से उनके जन्म और मृत्यु को लेकर अनेक अलौकिक बहसपनाओं की अभिव्यक्ति होती रही है। इसके मूळ में उपनिषदों के उन मंत्रों का प्रभाव सम्भव प्रतीत होता है जिनमें मानव शरीर को देवमय या ब्रह्ममय बताया गया है। पितरोपोपनिषद् १ २ २ ३ में परमात्मा ही और अथ का शरीर देवताओं के निवास के किये अपर्पात समस्त कर मनुष्य-शरीर का निर्माण करता है। उसमें सभी वैदिक देवता निवास करते हैं। किंतु फिर भी शरीर को अपूर्ण समस्त कर देत १ ३ १२ के अनुसार वह स्वयं मानव शरीर में प्रवेश कर जाता है। अतएव इन उपकरणों के आधार पर विष्णु देह के विकास का अनुमान किया जा सकता है।

विष्णु देह के विकास में केवल अवतारवादीक अक्षिणों का नहीं अपितु उत्कर्मणसीक साधनात्मक अक्षिणों का भी योग रहा है। अवतारवादी देह में तो सामान्य रूप से ईश्वरीय अंत या अक्षिणों का अवतार माना जाता रहा है पर अवतारवाद की कोटि में जैसे साधकों को भी परिगमित किया जाता रहा है जिन्होंने सर्वात्मवादी सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित किया था। दोनों में मूळ अंतर यह है कि अवतारवादी ईश्वर की ओर से प्रपन्न करने का भाव है और उत्कर्मण में मनुष्य के प्रवृत्त का बल है। उक्त उत्कर्मणसीकता की सैद्धांतिक बर्णना देत ३ १ ४ में मिलती है। वैदिक साहित्य में बामदेव इस उत्कर्मणसीक साधना के किये विख्यात रहे हैं। इ० उ० ४ १, ४ में

के कारण संवेदनशील है। वह कठो० १ २ ९ के अनुसार बुद्धि और तर्क से ग्रस्त होने योग्य नहीं है। वह प्रबल, मेधा का बहुसुत होने से ही उपलब्ध नहीं हो सकता है।^१ किंतु जहां अमुच्युति और भावना का प्रयत्न उठता है वहां उपनिषद् के शक्ति भीम दिखाई पड़ते हैं। तन्मय प्रकृति के संवेदनशील जिस रूप की चर्चा उपनिषदों में हुई है उससे प्रकृत अक्षर अक्षर रूप में मन्त्र और भावना के अधिक निकट प्रतीत होता है। सम्भवतः इसी से वृ० उ० १ १, ४ में कहा गया है कि आत्मरूप प्रिय की ही उपासना करे।

साथ ही उसके संवेदनशील रूप में सर्वप्रथम उसकी कामना का अस्तित्व सिद्धता है। वह जीवात्मा रूप से नाम और रूप की अभिप्यष्टि की इच्छा करता है।^२ या अनेक रूप में अंतर होने की कामना करता है।^३ प्रकृत अक्षर आत्ममय। तै० उ० २ ५, १ या तै० २ ० १ के अनुसार रस स्वरूप ही नहीं है अपितु वृ० उ० १ ४ ३ के मंत्रों के अनुसार वह रमण के लिए आपा की इच्छा भी करता है। अतः उसके आत्मतत्त्व रूप से स्पष्ट है कि प्रकृत प्रकृति ही कामना और इच्छा से सुकृत होने के कारण अक्षर का उपास्य हो सकता है। क्योंकि अक्षर सदा से अक्षर अक्षरमय रूप का उपासक रहा है। उपनिषद् काक के मन्त्र उसके कक्षानकारी रूप का दर्शन करने छायते हैं। वृ० उ० ५, १५, १ में कहा गया है कि तेरा जो अक्षर अक्षरमय रूप है उसे मैं देखता हूँ। अक्षरमय १ १४ में अक्षरमय ने सर्वता और अक्षरमयी की उपासना की चर्चा की है। वही भी उसका समुच्च रूप आत्मतत्त्व है।

इस प्रकार उपनिषदों से एक ऐसे आत्मतत्त्व उपास्य प्रकृति की उपरेका का विस्तार हुआ जिसने मध्यकालीन अक्षरारी उपास्यों को साहित्य और कला में भी स्वाप्त होने में सहायता प्रदान की।

माया

शक्ति में अक्षरारथात् के जिस सैद्धांतिक रूप की चर्चा हुई है उसमें माया का भी विचार स्थान रहा है। तब से लेकर आधुनिककाल तक माया के विभिन्न चेहरे और रूपों का विस्तार होता रहा है। माया के माध्यम से आधिभौतिक की विचारणा उपनिषद् काक में मिलती है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराणोपनिषद्' १ ५, १९ में इन्द्र के मायात्मक रूप का बख्शेण हुआ है। 'रवेतारवत्सरोपनिषद्' ४, ९ और ४ १ में माया के द्वारा महेश्वर के प्राकृत्य के प्रथम आप हैं।

उपनिषदों में उपलब्ध अक्षर उपासकों की विविधता यह है कि अक्षरारथात् के प्रारम्भिक विकास से लेकर और आधुनिककालीन अवस्था तक इनका

सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है। इन्होंने अपने कथन की पुष्टिमें श्रुति का भी उल्लेख किया है जिसका भाव तथा हि 'दुर्लभति' से होता है। इसके उदाहरण स्वल्प व्याख्याकार मु० उ० २ १ ४ में बर्णित मन्त्र के विराट रूप को प्रस्तुत करते हैं। जैमिनि के इस सिद्धान्त का भाष्यकारों ने 'साकार मन्त्रवाद' की सहा प्रदान की है।^१ अन्त में सूत्रकार वादरायण ने स्वयं भारभरम्य के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहा है कि वे इन् वेदान्त शास्त्र में परमेश्वर का ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं।^२

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूत्र काष्ठ में अक्षतारवाद की विचारधारा प्रचलित थी। भारभरम्य जैसे विद्वत् इसके प्रतिपादक तथा वादरि और जैमिनि इसके समर्थक थे। स्वयं सूत्रकार ने भी मन्त्र की एकदेशीय अभिव्यक्ति का जैमिनि के साथ स्वर मिला कर श्रुतिसम्मत और वेदान्त द्वारा प्रतिपादित स्वीकार किया है। विष्णुपर्वत अक्षतारवाद वेदान्त द्वारा परिपुष्ट अस्तित्व दर्शन का ही एक अर्थ विशेष माना गया था। यों पीता और वेदान्तसूत्र दोनों के प्रासंगिक उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि दार्शनिक मान्यताओं में अक्षतारवाद का बह स्थान नहीं था जो अन्य सिद्धान्तों को प्राप्त था।

अंत में इन कथनों से एक और रहस्य का अन्वेषण होता है वह यह कि तत्कालीन युग में अक्षतारवाद का सम्बन्ध उपास्यवाद से भी था। उपासना के विहित मन्त्र के एकदेशीय आविर्भूत रूप प्रचलित थे। जिस प्रकार शीपक मन्त्र, नक्षत्र चारा अग्नि सूर्य अम्ब आदि में नानात्व होने पर भी प्रकथन में एकत्व का ही अस्तित्व माना जाता है उसी प्रकार शरीर रूप और स्थान की विभेदता के कारण नानात्व होने पर भी इन रूपों में परमात्म कवित का एकत्व ही स्वीकार किया जाता था।^३ इससे तत्कालीन युग में प्रचलित मन्त्र के आविर्भूत उपास्य रूपों का अनुमान किया जा सकता है। क्योंकि इनका स्पष्टीकरण अन्य सूत्रों से हो जाता है। म० सू० ३ १ २४ के अनुसार अन्वयत होने पर भी आराधना करने पर उपासक उसका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है। सूत्रकार के कथनानुसार वेद और स्मृति दोनों से उक्त कथन की पुष्टि होती है। एक दूसरे सूत्र ३, १ २५ में उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अग्नि का अन्वयत प्रकाश जिस प्रकार प्रयत्न करने से प्रकट होता है उसी प्रकार विभिन्न मन्त्र भी मन्त्र के विद्युत् आलापना काक में समुच्च स्वल्प हो जाता है। इन कथनों से सूत्रकार ने निष्कर्ष रूप में यह सिद्ध किया है

१ अनुमान की २४ अ०।

२ म० सू० १ १ २१।

३ म० सू० ३ १ २४।

कि मय भक्त्युत्पत्ति एव ब्रह्मवाच्यस्य गुणो मे मयप्रद है चर्चोक्ति उभयों वैद्य ही लक्षण उपास्य हात है ।^१ उपास्य उपासक मार में अनुग्रह वा भक्तिवर्धक समझा जाता है । उम विनोच अनुग्रह का उल्लेख भी शिवायमुग्रहण क रूप में उचित हाता है ।^२ इस मूय क अनुग्रह भगवान की मणि सम्पत्ती धर्मों का पालन करने से उभवा विनोच अनुग्रह हाता है ।

इसम विरिक्त हाता है कि मायवाचीन भवगारी उपास्यों क जो भक्त भाविभूत उपास्य रूप प्रयोजित क उनक समर्थक तथा यदात्म मूर्तों में मिलने लगाने हैं । यही मर्तो इन उपास्यों की अनुग्रह भावना की पुष्टि भी येश्वात्म मूर्तों म होती है । इसक अतिरिक्त आन्ध्रप्रदेशात्मै राम-शृण्ण आदिपैतिहासिक भवगतों क भक्त विग्रह रूप रूप में पूज जात लग थे । इन विग्रह रूपों पर शिवाय करने समय यद स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार ये मायान् उपास्य परमेश माने जाले थे । मय मूय क मूर्तों म भी इनक प्रसन्नभाव की पुष्टि हाती है । मय मूय ४, १, ४ में प्रतीक में आत्मभाव वा मिथेय जान हुए बदा गया है कि 'प्रतीक में आत्मभाव यही वरता चादिच चर्चोकि यद उपासक का नामा मर्तो है । चर्चित उभक म्भाव में मय ही सवधेष्ट है इत्येति प्रतीक में मय दृष्टि करनी चातिप ।^३ इस प्रकार भवगतों के अर्थां विग्रह प्रतीकों में मय का विधान करने की पूर्ण रचना मिल जाती है । इसका परिणाम बतल यही मर्तो हुआ कि राम-शृण्ण प्रकृति भवगत और उनके अर्थां विग्रह परमेश परमेश्वर क प्रतीक स्वरूप पुत्रित होने लग। चर्चित उनक भवगत रूपों में भी यधेष्ट परिपत्तन हो गय । उपास्य होने क पूज जो भवगत भवावगत कई जाते थे उपास्य रूप में मूर्तीत होने पर उन्हें पूर्णावतार, भवगारी और पूज मय माना गया । अर्थां रूपों में भी भवगारी और पूज मय का आवास किया गया ।

वैदिक युगक पश्चात् ईश्वरवादी आंदोलन का काठ २०० ई० पू० से लकर २०० ई० तक तथा भवतारवाद् का युग अष्टौक के बतल क पश्चात् १०४ ई० पू० में २२० ई० तक माना गया है । इस युग से लेकर वैष्णव सम्प्रदायों तक भवतारवाद् की रूपोंगा तथा विभिन्न भवगतों क विकास मय का विवचन करने समय महाकाव्य, गीता हरिवंश, विष्णु पुराण, पांचरात्र, माणवतपुराण और अंत में आक्षार और आचार्यों का काठ मय इतिहासकारी क आधार पर इस प्रकार रचना गया है —

सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है। इन्होंने अपने कथन की पुष्टि में श्रुति का भी उल्लेख किया है जिसका भाग 'तथा हि वर्धपति' से होता है। इसके उदाहरण स्वरूप व्याख्याकार मु० उ० २, १, ४ में बर्णित प्रश्न के विराट रूप को प्रस्तुत करते हैं। जैमिनि के इस सिद्धान्त को भाष्यकारों ने 'साकार मण्डवाद्' की मंशा प्रदान की है।^१ अन्त में सूत्रकार वादरायण ने स्वयं आरमरूप्य के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहा है कि य इत्य वेदान्त शास्त्र में परमेश्वर का ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं।^२

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूत्र काळ में अवतारवाद की विचारधारा प्रचलित थी। आरमरूप्य जैसे चिन्तक इसके प्रतिपादक तथा वादरि और जैमिनि इसके समर्थक थे। स्वयं सूत्रकार ने भी प्रश्न की एकदलीय अभिव्यक्ति का जैमिनि के साथ स्वर मिला कर श्रुतिसम्मत और वेदान्त द्वारा प्रतिपादित स्वीकार किया है। निष्कर्षतः अवतारवाद ब्रह्मन्त द्वारा परिपुष्ट आस्तिक दर्शन का ही एक अंग विशेष माना गया था। यों गीता और वेदान्तसूत्र दोनों के प्रासंगिक उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि दार्शनिक मान्यताओं में अवतारवाद का यह स्थान नहीं था जो अन्य सिद्धान्तों का प्राप्त था।

अंत में इन कथनों से एक और रहस्य का उद्घाटन होता है वह यह कि तत्कालीन युग में अवतारवाद का सम्बन्ध उपासकवाद से भी था। उपासना के निमित्त ब्रह्म के एकदलीय आधिभूत रूप प्रचलित थे। जिस प्रकार दीपक प्रश्न नक्षत्र तथा अग्नि सूर्य, चन्द्र आदि में नायात्व होने पर भी प्रकाश में प्रकट का ही अस्तित्व माना जाता है उसी प्रकार शरीर रूप और स्थान की विशेषता के कारण नायात्व होने पर भी उन रूपों में परमात्म सक्ति का प्रकट ही स्वीकार किया जाता था।^३ इससे तत्कालीन युग में प्रचलित ब्रह्म के आधिभूत उपासक रूपों का अनुमान किया जा सकता है। क्योंकि इनका स्वीकरण अन्य सूत्रों से ही जाता है। अ सू० ३, २ २४ के अनुसार अव्यक्त होने पर भी आराधना करने पर उपासक उसका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है। सूत्रकार के कथनानुसार वेद और श्रुति दोनों से अन्त कथन की पुष्टि होती है। एक दूसरे सूत्र ३ २ २५ में उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अग्नि का अव्यक्त प्रकाश जिस प्रकार प्रयास करने से प्रकट होता है उसी प्रकार निर्दिशेय ब्रह्म भी भक्त के किये आराधना काळ में सगुण स्वरूप हो जाता है। इन कथनों से सूत्रकार ने निष्कर्ष रूप में यह सिद्ध किया है

१ अमु भाष्य की २५ अ१।

२ अ सू० २ २ २२।

३ अ सू ३, २ २४।

किं मया अत्रान्तरं दिश्यं ज्यै कस्याणमप्य गुणो मं गम्यस्य दे वयोकि उगमे वैम
 दा लक्षण उपलब्ध हात है ।' उपारण्य उपामक मात्र में अनुष्ठा का अतिपाव
 ममका जाता है । उग विशेष अनुष्ठा का उल्लेख भी विशाखसुप्रसद्व्य क रूप
 में लक्षित होता है ।' इस मूल्य क अनुष्ठा भगवान की मन्त्रि मरुत्तपी धर्मों
 का पालन करण म उनका विशाख अनुष्ठा हागा है ।

इसमें विहित होता है कि मत्पकाशीन भवतारों उपारण्यो क जो अनेक
 आदिभूत उपाय्य रूप प्रकल्पित थे उनक ममपक तन्त्र वहागत मूल्यों में मिलन
 लगन है । वही नहीं इन उपाय्यों की अनुष्ठा मावना की पुष्टि भी वेहागत
 मूल्यों म हाती है । इसक अतिरिक्त आन्ध्रदेशकालमें राम-शृण्णा आदि पतिहासिक
 भवतारों क अनेक विष्णु रूप ब्रह्म रूप में पूजे जाने लगे थे । इन विष्णु रूपों
 पर विचार करन ममय यह स्पष्ट किया गया है कि शिव प्रकार से मावना
 उपारण्य परब्रह्म मान जात थे । मद्र मूल्य क मूल्यों में भी इनक मद्रमाय की
 पुष्टि होती है । मद्र मूल्य ४, १, ४ में मनीक में आत्ममाय वा निरूप करन
 हुए कहा गया है कि 'मनीक में आत्ममाय नहीं करना चाटिपु क्योंकि यह
 उपामक वा आत्मा नहीं है । बरिक्त उमक म्याम में मद्र ही सपथेष्ट है
 ह्यल्पि मनीक में ब्रह्म दृष्टि करनी चाटिपु ।' इस प्रकार भवतारों क अर्था
 विष्णु मनीकी में मद्रमय का विधान करन की पून स्वतंत्रता मिल जाती है ।
 इसका परिणाम अथक वही नहीं हुआ कि राम-शृण्णा प्रभृति अनेकार और
 उमक अर्था विष्णु परब्रह्म परमेश्वर क मनीक स्वरूप वृद्धि होने लगे, बरिक्त
 उमक भवतार रूपों में भी मथेष्ट परिवर्तन हो गए । उपारण्य होने क पूर्व जो
 भवतार अदापकार कहे जाते थे उपारण्य रूप में गृहीत होने पर उन्हें
 पूर्वावतार भवतारों और पून ब्रह्म माना गया । अर्था रूपों में भी वरतारों
 और पूर्व मद्रमय का आरोप किया गया ।

वैदिक युगक पश्चात् ईश्वरार्थी अशोकन का काठ २०० ई० पू० से लेकर
 २०० ई० तक तथा भवतारवाद का युग अशोक क पतन के पश्चात् १८४ ई०
 पू० में ३२० ई० तक माना गया है । इस युग मे लेकर वैष्णव मद्रमयों
 तक भवतारवाद की रुबरेगा तथा विभिन्न भवतारों क विकास क्रम का
 विवरण करते ममय महाकाव्य, गीता हरिबन्ध, विष्णु पुराण, पांचरात्र,
 मातावतपुराण और अंत में आत्मवात और आचार्यों का काठ अम इतिहासकारों
 क आधार पर इस प्रकार रचका गया है :—

को प्राचीनतर ऋषि से मेरा सम्बन्ध यह है कि विष्णु पूर्व में ही विकसित देवताओं में रहे हैं। अतः साहित्य से उभरा अवतारवादी सम्बन्ध उनका प्राचीन सम्बन्धों की ओर भी खाना जाकपित करता है। परन्तु अवतारवादी प्रबोधन की दृष्टि से उक्त दोनों प्रसंग विचारणीय हैं। दोनों के सम्बन्ध से यह स्पष्ट है कि विष्णु के अवतार का प्रारम्भिक प्रबोधन इन्द्र या देवताओं की सहायता और उनके उपासक के किये अशुओं का विनाश ही रहा है। क्योंकि निम्नलिखित स्वरूप महा० ३ १२ २८ में कहा गया है कि विष्णो ! आपने सृष्टि अवतार धारण किये हैं और उन अवतारों में सैकड़ों अशुओं का, जो अघर्ष में क्वि रजने बाधे थे वध किया है।

इस प्रकार महाभारत में एक ऐसे अवतारवाद का रूप मिलता है जो मध्यकालीन भक्ति या सम्मेलनों से निकट होने की अपेक्षा वैदिक परंपरा के अधिक निकट है। उसमें जो कुछ भी ईश्वरवादी या सातप्रदायिक तत्वों का समावेश हुआ है वह पौराणिक युग की देन है।

परवर्ती भक्ति या धर्म संवर्धित अवतारवाद की चर्चा केवल गीता ही नहीं अपितु महाभारत में भी कतिपय स्थानों पर हुई है। इसमें प्रबोधन के साथ वैदिक विष्णु के रूप में उल्लेखनीय परिवर्तन हो जाता है। इस प्रबोधन के निमित्त केवल वे देव-पत्नीय विष्णु न हीकर परमात्मा विष्णु हो जाते हैं। गीता कीर्षक में इस पर विचार किया गया है।

इस प्रकार महाभारत में उक्त दोनों रूपों के अतिरिक्त अवतारवाद का एक स्थापक रूप भी दृष्टिगत होता है। महा० ११ ३७० ७९ में कहा गया है कि परमात्मा कार्य करने के लिए जिस-जिस शरीर को धारण करना चाहते हैं उस-उस शरीर में अपनी आत्मा को अपने आप कर लेते हैं। भूभार का प्रबोधन सम्बद्ध करते हुए महा० ११ ३४९, ३३ ३४ में कहा गया है कि वे पापियों को बंध देने के लिये, सत्पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिए तथा आकाशत पृथ्वी के निमित्त ज्ञाना प्रकार के अवतार धारण कर पृथ्वी का भार धारण करते हैं। महा० १४ ५४, १३ के अनुसार वे धर्म की रक्षा एवं स्थापना के लिये बहुत सी योगियों में अवतार धारण करते हैं।

उक्त चरमों में मुख्य रूप से गीताके अवतारवाद का पुनः विस्तार पूर्वक उद्घोष किया गया है। यहाँ मध्यकालीन साहित्य में प्रचलित उपासक रूप के अवतारवाद की पूर्ण संकल्प मिलती है। श्रीकृष्ण महा० १४ ५४, १४ में अपने को ही विष्णु महा इन्द्र तथा उत्पत्ति एवं प्रलय रूप कतकते हैं। वे ही महा और सदा हैं। जब-जब युग बदलता है तब-तब वे प्रजाओं का हित करने की कामना से निम्न-निम्न योगियों में पहुँचकर धर्म-सैतु का निर्माण

करत है।^१ व दृव गण्य जाग वच राघव मनुष्य प्रकृति त्रिम यामि में उग्रम लने है उम यामि में उमी क जैसा व्यपहार करते हैं।

इस प्रकार महाभारत में पूवर्णी या परवर्णी शक्तों प्रकार क अवतारवाणी दृष्टियों क द्वाज दान है। प्रारम्भिक रूप में विष्णु द्रव जन्तुओं क विनाश क लिए अवतरित है। व देवता और गृपी की रक्षा करत है इमलिए भूभार का प्रयोजन भी इमी क साथ समाहित है। किन्तु इमक अतिरिक्त विष्णु का एक साम्प्रदायिक अवतारवादी रूप भी मिलता है जो पूव रूप का ही साम्प्रदायिक अवतारवादी रूप भी मिलता है जो पूव रूप का ही साम्प्रदायिक अवतारवादी रूप भी मिलता है। इस साम्प्रदायिक रूप में विष्णु का सम्बन्ध युग-युग में धम की स्थापना या सम्प्रदाय प्रयत्न म है। इमक साथ ही उनक विभिन्न यामियों में दान बान स्थापक अवतारी रूप की भी कथा हुई है त्रिमक अनुसार सम्बन्ध व प्रत्येक यामि में जाकर प्रत्येक धम का प्रयत्न करत है।

वाल्मीकि रामायण

महाभारत क समान रामायण में भी विष्णु देव जन्तुओं क विनाश क लिए ही अवतरित होत है। इस महाकाव्य क प्रारम्भ में राक्षसराज राघव क अपाचारों म चकरा कर देवता प्रदा जी म परामर्श करते हैं। इमी समय राघ, अश्र, महा आर वच म विभूति तथा पीताम्बर धारण किए जातवति विष्णु भी आत है।^२ देवता, द्रव जन्तुओं का यथ करन क निय उमम मनुष्य लोक में अवतरित दान का अनुरोध करते हैं।

इस प्रयोजनों क भाषार पर इस महाकाव्य का अवतारवादी रूप भी सम्प्रदायिक मन्दि मरुति प्रकृतियों की अवेष्टा द्रववाद क अधिक निकट प्रतीत होता है। इस महाकाव्य क मायक राम क अवतारत्व का विकास प्रारम्भ में साम्प्रदायिक या पौराणिक न हाकर आधुनिक विहित होता है। मंसिष्ठ राम-कथा में राम विष्णु क अवतार नहीं है किन्तु विष्णु क समान शीषबान व अवश्य मान गण है।^३ अतः उनक विष्णु क समान पराक्रमी रूप का विकास विष्णु क अवतार रूप में सम्भव प्रतीत होता है। क्योंकि अवतारवादी साहित्य में शीष सदैव पराक्रम का परिचायक रहा है। विष्णु अपने पराक्रम क लिए वैदिक काल से ही विख्यात रह हैं। बाद में जब पौराणिक अवतारवादी विष्णु में धनक गुणों की सपोजना की गई तब उनमें शीष और सज का प्रमुख स्थान माना गया। सामान्यतः शीष का तात्पर्य परामूल करने की चमत्ता से भी लिया जाता रहा है। वाल्मीकि रामायण में अही परशुराम क

^१ महा २४ ५४ ११।

^२ बा० रा० १ १५, १४-२५। ३ बा० रा १, १, १८ 'विष्णुना सहसो शीषे'।

होता है। यहाँ पुनर्जन्म और साधारण जन्म से मित्र ईश्वर की अनेक उत्पत्ति सम्पन्नी मान्यताओं का वैशिष्ट्य बतलाते हुए कहा गया है कि 'मेरे-तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं किन्तु मैं उनको जानता हूँ और तु जम्हें नहीं जानता' में अब अव्यवहारमा और मृतों का ईश्वर होते हुए भी व्यपकी प्रकृति में स्थित रह कर अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ।^१ यहाँ मनुष्य और ईश्वर के जन्म में पर्याप्त अन्तर उचित होता है। ईश्वर एक ओर तो अपने ईश्वर रूप में स्थित रहता है और दूसरी ओर माया से उत्पन्न होता है। मनुष्य की अपेक्षा इन्द्र की उत्पत्ति में अन्तर यह है कि ईश्वर अपने अनेक जन्म और मायिक रूपों से परिचित रहता है परन्तु मनुष्य नहीं। महाकाम्यों की अपेक्षा यहाँ जिस उत्पन्न होने वाले ईश्वर की शर्चा हुई है वह केवल देवपत्नीय विष्णु न होकर निर्गुण-सगुण विभिन्न उपास्य ब्रह्म है।

अवतार प्रयोजनों की ओर ध्यान देने पर इसका स्पष्ट आभास मिलता है। गीता ४-८ में उसके प्रयोजन का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह बर्हीत्वान या धर्म की संस्थापना साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के निमित्त युग-युग में स्वयं आविर्भूत होता है। उसके जन्म और कर्म दोनों को बर्ही दिव्य या मनुष्येतर माना गया है।

उक्त प्रयोजन में ईश्वर के अवतारी रूप को धर्म एवं साधुओं का पक्ष लेने वाला माना गया है। अतएव यह स्पष्ट ही उदरघ्न ब्रह्म की अपेक्षा उपास्य परब्रह्म का अवतारवादी रूप विदित होता है। जिसका परवर्ती पुराणों एवं मध्यकासीन साहित्य में नामा रूपों में विस्तार उद्दिगत होता है। क्योंकि साधारणतः ईश्वर का उपास्य रूप ही अपने उपासकों एवं उनके मतवादी का पक्षपाती रहा है।^२ ब्रह्म अपने स्वामायिक रूप में साम्प्रदायिक बर्ही हो सकता परन्तु मित्र-मित्र उपासकों एवं सम्प्रदायों के विमित्त मित्र-मित्र हो सकता है, जो गी० ४, ११ से स्पष्ट है। यहाँ कहा गया है कि जो मुझे जिस प्रकार से मज्जता है मैं उसे उसी प्रकार से भजता हूँ।

इस प्रकार गीता में उपास्य-अवतार का ही प्रतिपादन किया गया है, जिसमें एक ओर तो मर्त्यों के रक्षण की भावना विद्यमान है और दूसरी ओर धर्म या सम्प्रदायों का प्रवर्तन मुख्य प्रयोजन है।

महाभारत के ही एक जस माने जाने वाले हरिबन्ध पुराण में गीतोक्त अवतारवाद तथा श्रीकृष्ण से सम्बन्ध सामूहिक अवतार का विकल्पन किया गया है।^३ जिसकी परम्परा बाद में चङ्कण पुराणों में विशेष विस्तार पायी है।

१ गी ४ ५।

२ गी० ४, ५।

३ गी ४ ५।

४ हरि० पु० ४१ २७।

५ हरि० पु० ५१ ८ १।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण में अवतारवाद के परम्परागत रूपों के अतिरिक्त एक व्यापक रूप का परिचय मिलता है। फिर भी उपास्य रूप की दृष्टि से गीता एवं विष्णु पुराण दोनों में पर्याप्त साम्य है। विष्णु १, ४, १० में कहा गया है कि आरका जो परमेश्वर है उसे तो कोई भी नहीं जानता, परन्तु आपका जो रूप अवतारों में प्रकट होता है उसी की देवगण उपासना करते हैं। पुनः ५, ८, १० में हम कथन की पुष्टि करते हुए बड़ा गया है कि इन्द्रादि आपक अवतार रूप के पूजक हैं।

इस प्रकार विष्णु पुराण में पर रूप से व्यक्त सभी रूपों को अवतरित रूप और पूज्य रूप माना गया है। रूपगत भेद की दृष्टि से परब्रह्म विष्णु के यहाँ पुण्य और प्रधान (महति)^१ का वहीं शब्द प्रकृत और परब्रह्म को^२ अमित्यक्त रूप माने गए हैं। इन रूपों का चारक बहु ब्रह्म, व्यक्त और अव्यक्त, समष्टि और व्यष्टि रूप, तथा मन्त्र, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं समस्त ज्ञान और वैश्व मे युक्त है।^३ वह कारण, अकारण वा वरणा-कारण से शरीर ग्रहण नहीं करता अपितु केवल धर्म रक्षा के लिए ही करता है।^४ हम अवतार रूप के अतिरिक्त उसके पुण्य, प्रधान भावि जो व्यक्त रूप कहे गए हैं उन्हें उसकी वाक्यत् शीला वा लीला कहा गया है।^५

इससे बिदिन होता है कि एक ओर तो परब्रह्म विष्णु धर्मार्थ प्रबोधन के निमित्त सार्वज्ञ से उत्पन्न होत है^६ वा परम्परागत रूप प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उनका एक पुण्य महति के रूप में अमित्यक्त रूप है जिन रूपों में वाक्यत् अर्थात् निष्प्रबोधन शीला के निमित्त व शीला करते हैं। भागवत में हमी शीलावतार का सर्वाधिक प्रचार हुआ।

अवतारवाद की उक्त भाग्यताओं के अतिरिक्त विष्णु पुराण में सर्वप्रथम युगल अवतार का सविस्तार प्रतिपादन हुआ है। वि० पु० १, ८, १०-१३ में विष्णु और लक्ष्मी के अनेक युगल सम्बन्ध एवं उनके अवतारों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देव तिमक् और मनुष्य भादि में पुद्गलापी भगवान् हरि हैं, और शीवापी लक्ष्मी जी हैं।^७ देवापिदेव विष्णु जब प्रथम अवतार धारण करते हैं, तब-तब लक्ष्मी भी उनके साथ अवतरित होती हैं।^८ इनके हरि-पद्मा, परशुराम-शृङ्गी, राम-सीता और कृष्ण-द्विजनी^९ रूप में

१ वि० पु० १, २, २३। २ वि० पु० ५, १, ५०। ३ वि० पु० ५, २, ५०।

४ वि० पु० ५, १, ५०। ५ वि० पु १, २, १८। ६ वि ५, १, २२।

७ वि० पु० १, ९, ३४-३५। ८ वि० पु १, ९, ३४।

९ वि० पु २, ९, १४१-१४४।

आदिर्गुत अवतार परम्परा प्रस्तुत करने के पश्चात् कहा गया है कि भगवान् के देव रूप होने पर कवमी देवी तथा मनुष्य रूप होने पर मानवी रूप में प्रकट होती हैं।^१

इस प्रकार बर्म या सम्प्रदायों से सम्बद्ध अवतरित रूपों के अतिरिक्त विष्णु में सर्वप्रथम ब्रह्म की व्यापक अभिम्यक्ति को अवतरित रूप बताया गया है तथा उनके लीलात्मक रूप एवं युगल अवतार का वर्णन किया गया है। जिसका मध्यकासीन सगुण साहित्य में पर्याप्त विस्तार हुआ है।

विष्णु पुराण में मात्र तत्र अनेक अंधावतारों के अतिरिक्त संभवता हरिबल की परम्परा में कृष्ण एवं उनके सहयोगियों के सामूहिक अनावतार का उल्लेख हुआ है जिनमें गोप और गोपी, देवता और देवियों के अवतार बतलाए गये हैं।^२ भूमर हरण यहाँ इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन रहा है फलतः भागवत के सदृश इसका लीलात्मक रूप से अधिक सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होता। फिर भी इतना स्पष्ट है कि विष्णु के जिस रूप के अवतार इस पुराण में वर्णित हैं वह गीता की ही परम्परा में पर उपास्य से सम्बद्ध है। किन्तु गीता की अपेक्षा विष्णु पुराण में कबल प्रयोजन की ही प्रभावता नहीं है अपितु उसका लीलात्मक और युगल रूप भी दृष्टिगत होता है।

पांचरात्र

वैष्णव महाकाव्यों एवं पुराणों में विष्णु के जिस 'पर रूप' की चर्चा हो चुकी है वह पुराणों की अपेक्षा पांचरात्र संहिताओं से विशेष रूप से सम्बद्ध है। इन संहिताओं में विष्णु वा वासुदेव का 'पर रूप' ही सर्व श्रेष्ठ रूप माना गया है जो निर्गुण और सगुण दोनों तत्त्वों से युक्त है तथा अपने मित्यब्राम में अपने मित्य पार्षदों के साथ विराजमान है। संहिताओं के अवतारवाद का प्रारम्भ 'पर रूप' के ही स्पष्ट रूप से होता है।

प्रयोजन की दृष्टि से 'पर रूप' या वासुदेव अवतार के विभिन्न 'गीता' के प्रयोजन का समर्थन किया गया है। 'अद्विर्गुण्य सद्दित्वा' के एकादश अध्याय में अवतार की अनिश्चर्यता प्रतिपादित करते हुए बर्म के पतनोन्मुख होने को ही मुख्य कारण माना गया है। साथ ही उसका एक गुणात्मक कारण बतलाते करते हुए कहा गया है कि रजोगुण और तमोगुण के प्रबल होने पर सत्वगुण को प्रभावोत्पादक बनाने का उसका संतुष्टन करने के विभिन्न अवतार होता है।^३

^१ वि. पु. १. २. ४५।

^२ वि. पु. ५. २. ४ और वि. पु. ५. ७. ३८. ४। ३ अदि० सं० १२. ४-८।

कथन भागवान् अपनी माया रूप से मूर्तों में प्रविष्ट होकर धर्म स्थापना करते हैं। धर्म रूप के निराकरण के निमित्त यहाँ गद्य और अद्य रूपी स्पृह तथा सायब से मुख्य साधन बननाये गए हैं।^१ पाँचरात्र साहित्यों में धर्म स्थापना एवं अमुरों के संहार के निमित्त द्वा प्रकार के साधन विदित होते हैं। प्रथम साधन यहाँ सायब माना गया है जिसके द्वारा धर्म का प्रतिपादन होता है। संभवतः इमी के कठोररूप साहित्यों में सायबतार की परम्परा भी हीन पवती है जो जैव, नाय, सत, सूची और सगुण साहित्य में समान रूप से दृष्टिगत होती है। और दूसरा साधन सायब माना गया है जिसमें वे अमुरों का संहार करते हैं। संभवतः पाँचरात्र अवतारबाहू के सायब भी वद्य उक्त दोनों प्रयोजनों के आधार पर 'उपास्य साहित्य' में पर ईश्वर के विद्या और मायिक द्वा रूप बनाए गए हैं। विद्या रूप में शास्त्रावतार की परम्परा का विकास हुआ है और मायिक रूप में बहू अनेक अवतार धारण कर कुष्ठों से सद्वर्तियों में पुनः करत हैं।^२ फिर भी पाँचरात्रों में उपास्य प्रकृति का अधिक प्राधान्य होने के कारण परमेश्वर के अवतार का मुख्य कारण भक्तों पर अनुग्रह माना गया है। उपास्यवादी भक्तों की दृष्टि से उसके अवन्त अवतार बतलाए गये हैं।^३ इन अवन्त आविर्भूत रूपों को स्पृह, विभव, अन्तर्पामी और अर्चा चार मार्गों में विभक्त किया गया है। इनमें स्पृह संकल्प, प्रयुष, अनिच्छा प्रकृति स्पृह रूपों का सम्बन्ध भक्तों पर अनुग्रह के साथ-साथ सृष्टि अवतारण से भी रहा है। किन्तु विभव, अन्तर्पामी और अर्चा, भक्तों के निमित्त प्रादुर्भूत उपास्य इच्छे के ही निमित्त रूप हैं।

इस प्रकार पाँचरात्र साहित्य में अतिरिक्त सृष्टि के धुजन, पाठन एवं संहार से लेकर भक्त के निमित्त आविर्भूत समुत्तम अर्चा रूप तक किसी म किसी प्रकार के अवतारवादी रूप मान गए हैं। मायकाशीन भक्त एवं सत कवियों में पाँचरात्रानुमेरित अन्तर्पामी और अर्चा उपास्यों एवं उनके अवतारी कार्यों का पर्याप्त विस्तार हुआ है।

मायवन्त

उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त मायवन्त पुराण आद्योपकाशीन साहित्य का मुख्य प्रेरक ग्रंथ रहा है। विशेषकर मण्डकाय का अवतारवादी साहित्य मायवन्त से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। भागवत में अवतारबाहू का सर्वाङ्गीण विवेचन हुआ है। इसकी विवेचन पद्धति में प्राचीन साम्प्रदायों

१ अहि० सं० २१ १०, ११।

२ अनास्य संहिता २, १४-१०।

३ तत्त्वत्रय २० २०

(अममन्ताकार कर भिति)।

आविर्भाव अवतार परम्परा प्रस्तुत करने के पश्चात् कहा गया है कि भगवान् के देव रूप होने पर क्वामी देवी तथा मनुष्य रूप होने पर माववी रूप में प्रकट होती हैं।^१

इस प्रकार धर्म या सत्प्रधानों से सम्बद्ध अवतरित रूपों के अतिरिक्त विष्णु में सर्वप्रथम मूल की स्थापक अभिधिका को अवतरित रूप बताया गया है तथा उनके लीलात्मक रूप एवं युगक अवतार का वर्णन किया गया है। जिसका मध्यकालीन सगुण साहित्य में पर्याप्त विस्तार हुआ है।

विष्णु पुराण में पत्र तत्र अनेक अंशावतारों के अतिरिक्त संभवतः हरिवंश की परम्परा में कृष्ण एवं उनके सहयोगियों के सामूहिक अवतार का उल्लेख हुआ है जिसमें गौप और गौपी, देवता और देवियों के अवतार बतलाए गये हैं।^२ मूमार हरण यहाँ इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन रहा है फलता भागवत के सहस्र इसका लीलात्मक रूप से अधिक सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होता। फिर भी इतना स्पष्ट है कि विष्णु के जिस रूप के अवतार इस पुराण में वर्णित हैं वह गीता की ही परम्परा में पर उपास्य से सम्बद्ध है। किन्तु गीता की अपेक्षा विष्णु पुराण में बरक प्रयोजन की ही प्रधानता नहीं है अपितु उनका लीलात्मक और युगक रूप भी दृष्टिगत होता है।

पांचरात्र

वैष्णव महाकाव्यों एवं पुराणों में विष्णु के जिस 'पर रूप' की खर्चा हो चुकी है वह पुराणों की अपेक्षा पांचरात्र संहिताओं से विलोप रूप से सम्बद्ध है। इन संहिताओं में विष्णु या वासुदेव का 'पर रूप' ही सर्व श्रेष्ठ रूप माना गया है जो विर्गुण और सगुण दोनों तत्त्वों से युक्त है तथा अपने नित्यधाम में अपने नित्य पार्षदी के साथ विराजमान है। संहिताओं के अवतारवाद का प्रारम्भ 'पर रूप' के ही अर्थ रूप से होता है।

प्रयोजन की दृष्टि से 'पर रूप' या वासुदेव अवतार के निमित्त 'गीता' के प्रभाव का समर्थन किया गया है। 'अद्विर्गुण्य संहिता' के एकादश अध्याय में अवतार की अनिर्धारिता प्रतिपादित करते हुए धर्म के पतनोगुण होने को ही मुख्य कारण माना गया है। साथ ही उसका एक गुणात्मक कारण उपस्थित करते हुए कहा गया है कि रजोगुण और तमोगुण के प्रकट होने पर सत्वगुण को प्रभावोपादक बनाने का उसका संशुद्ध करने के विभिन्न अवतार होता है।^३

१ वि. पु. १. २. ४५।

२ वि. पु. ५. १. ४ और वि. पु. ५. ७. ३८. ४। ३ अदि. सं. ११. ४-८।

पद्य भाषा का अर्थ ही मात्रा रूप से प्रतीत होकर ध्वनि-स्थान का प्रतीक है। ध्वनि-ध्वनि के निराकरण के निमित्त यहाँ प्रत्यक्ष और अर्थ रूपी व्युत्पत्ति तथा शब्द ही मुख्य मापन बनकर रह गये हैं।^१ पंक्तिगत साहित्यों में ध्वनि-स्थान का एक अर्थों का महार का निमित्त ही प्रकाश का मापन विहित होने है। प्रथम साधन यहाँ शब्द माना गया है जिसके द्वारा ध्वनि का प्रतिपादन होता है। समस्त ध्वनि के अन्तर्गत साहित्यों में साक्षात्कार की परम्परा भी हीन प्रतीति है जो जैन, भाषा सत, सुधी और सयुक्त साहित्य में प्रकाश रूप से प्रकृत होती है। और दूसरा साधन प्रत्यक्ष माना गया है जिससे ध्वनि-ध्वनि का महार करती है। समस्त पंक्तिगत अन्तर्गत शब्दों के शब्द और प्रत्यक्ष अर्थ शब्दों प्रकाशों के आधार पर 'अप्राप्त साहित्य' में पर ध्वनि का विद्या और साहित्य का रूप प्रकृत रूप है। विद्या रूप में साक्षात्कार की परम्परा का विकास हुआ है और साहित्य रूप में वह अनेक अन्तर्गत ध्वनि कर यहाँ से साहित्यों रूपों में प्रकृत करती है।^२ फिर भी पंक्तिगतों में अप्राप्त साहित्य का अधिक प्रकाश होने के कारण परम्परा के अन्तर्गत का मुख्य कारण अर्थों पर अनुभव माना गया है। अप्राप्तवादी मन्त्रों की दृष्टि से उनके अन्तर्गत अन्तर्गत बनकर गये हैं।^३ इन अन्तर्गत साहित्यों रूपों का व्युत्पत्ति, विद्यमान अन्तर्गामी और अर्थों पर मन्त्रों में विद्यमान किया गया है। इनमें व्युत्पत्ति संकल्प प्रकृत, अन्तर्गत प्रकृत व्युत्पत्ति रूपों का सम्बन्ध मन्त्रों पर अनुभव का साधन-साधन सृष्टि अन्तर्गत स भी रहा है। किन्तु विद्यमान, अन्तर्गामी और अर्थों, मन्त्रों के विभिन्न अनुभव अप्राप्त साहित्य ही विहित रूप हैं।

इस प्रकार पंक्तिगत साहित्य में अन्तर्गत सृष्टि का प्रकृत पाठ्य एक संकल्प से अन्तर्गत मन्त्र के निमित्त साहित्य अन्तर्गत अर्थों रूप तक किसी न किसी प्रकार के अन्तर्गामी रूप माने गये हैं। मन्त्रवादी मन्त्र एक सत कवियों में पंक्तिगतानुसार अन्तर्गामी और अर्थों अप्राप्तों एक उनके अन्तर्गामी अर्थों का पर्याप्त विचार हुआ है।

भाषागत

अन्तर्गत साहित्य के अन्तर्गत मन्त्रगत प्रकाश अन्तर्गतवादी साहित्य का मुख्य प्रेरक प्रतीक रहा है। अन्तर्गत मन्त्रवादी अन्तर्गतवादी साहित्य मन्त्रगत से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। मन्त्रगत में अन्तर्गतवादी का अन्तर्गत विवेचन हुआ है। इसकी विवेचन प्रकृत में अन्तर्गत मन्त्रगतों

१. अन्तर्गत ११ १० १३।

२. अन्तर्गत साहित्य २, १४-६ । ३. अन्तर्गत २० १०

अन्तर्गतवादी का विचार ।

का आधार ग्रहण करने के साथ ही उत्कालीन पांचरात्र या भागवत सम्प्रदायों में प्रचलित तथ्यों को भी समाविष्ट किया गया है।

इस पुराण में सर्वप्रथम ब्रह्म अद्वितीय ईश्वर का परिचय मिलता है जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के त्रिमित्त त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करता है। परन्तु उसके इन तीनों रूपों में सत्त्वगुण स्वीकार करने वाले हरि या विष्णु ही मनुष्य के लिये परम कल्याणकारी और उपादेय माने गए हैं।^१ इसमें सत्त्वमय एक विष्णु की परम्परा का भाग होता है।

यों तो अवतार गुणमय और गुणातीत साधामय और साधातीत दोनों हैं। क्योंकि तीनों गुण उनकी माया के विलास हैं।^२ पर वे गुणों के विकार से उत्पन्न सृष्टि में ज्ञाना बोधियों का निर्माण कर स्वयं उसमें प्रवेश करते हैं^३ और समस्त जीवों की सृष्टि कर देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि बोधियों में कीर्णवतार धारण कर सत्त्वगुण के द्वारा जीवों का पाक्य-पोषण करते हैं।^४

इससे स्पष्ट है कि ईश्वर का सत्त्वमय या गुणात्मक रूप ही जहां एक अवतारवादी रूप है। ब्रह्माचार्य ने भी अवतारी श्रीकृष्ण का रूप सत्त्वगुण युक्त साधा है।^५ भागवत १, ३, १ में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में अवतार ने जोकों के निर्माण की इच्छा से पुरुष कदाचो से युक्त रूप ग्रहण किया।^६ अवतार का वही पुरुष रूप एक ओर तो समस्त जोकों का जहा है और दूसरी ओर वही धाराधन रूप भी कहा गया है जो अनेक अवतारों का अवयव कोष है। इसी से सभी अवतार उत्पन्न होते हैं।^७ इस रूप के बोध से सृष्टि अंध से देवता पशु पक्षी और मनुष्य आदि बोधियों की सृष्टि होती है। मा० १, ३ में १२ अवतारों का उल्लेख करने के बजाय कहा गया है कि जिस प्रकार सरोवर से सहस्रों जल-स्रोत निकलते हैं वैसे ही सत्त्वमय भी हरि के असंख्य अवतार हुआ करते हैं।^८ मा० ९, १ व ११ में पुनः इसी प्रथम अमिष्यक्त पुरुष को परब्रह्म का आदि अवतार कहा गया है और मा० ३, ९, ८ में विराट् पुरुष की वर्णन करते हुए बताया गया है कि यह विराट् पुरुष प्रथम जीवन होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा, जीवन रूप होने के कारण परमात्मा का अंध और प्रथम अमिष्यक्त होने के कारण आदि अवतार है।

१ मा० २, १, २३।

२ मा० १, २, ३।

३ मा० १, १, ३६।

४ १, २, ६४।

५ उत्कालीय त्रिगुण या० प्र १०, २७

६ शशाङ्क वैष्णवः कृष्णः शुद्धः सत्त्वमयः ।

७ मा० २, ३, १।

८ मा० १, ३, ५।

९ मा० १, ३, ३६।

इससे स्पष्ट है कि भागवतकार ने 'पुरुष सूक्त' या 'ब्राह्मणों' के पुरुष नारायण को ही प्रथम अमिष्यक एवं आदि अवतार माना है। इस प्रकार इस पुराण में वैदिक साम्यताओं के आधार पर ही अवतारवाद का व्यापक रूप प्रस्तुत किया गया है। भा० १, १, ५ में जो पुरुष नारायण को अवतारों का अग्रम कोष माना गया है, यह सम्भवतः यद्वैदिक 'पुरुष सूक्त' के 'अत्रापमानो बहुधा विद्यापते' का विकसित या तरकालीन रूप विदित होता है।

इस समष्टिगत अवतार के व्यापक रूप की चर्चा करते हुए भा० २, १, ४४ में कहा गया है कि जिनकी वस्तुपूर्व वेद्य, तेज, इन्द्रिय, बल, मगोबल, शरीरबल या जमा से कुछ है या जिनमें सौम्यर्ष्य, कृपा, वैभव, विभूति, अद्भुत रूप या बर्ण विद्यमान हैं, वे सभी परम तत्त्वमय भगवत्स्वरूप हैं। इन्हें भा० २, १, ४५ श्लोकों में वर्णित श्रीकृष्णवतारों की सजा प्रदान की गई है, जिनमें से श्रीकृष्ण श्रीकृष्णवतारों का वर्णन भा० २, १ में हुआ है।

अतएव इस पुराण में समस्त अमिष्यक को आदि अवतार बताया गया और दूसरी ओर पौराणिक परम्परा में प्रचलित अवतारों को उसके व्यक्तिगत श्रीकृष्णवतारों के रूप में ग्रहण किया गया है।

'महाकाव्य' एवं 'गीता' के प्रयोजनार्थक अवतारवाद के पश्चात् भागवत में सर्वप्रथम अवतारवाद के लीलात्मक रूप का व्यापक विवेचन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम ही कि प्रयोजनार्थक और लीलात्मक दोनों अवतार विष्णु या ईश्वर के उपास्य पर रूप से ही होते हैं, किन्तु दोनों में विशेष अंतर यह है कि एक में वह मछों का भगवान या उनका असीद्भवाता उपास्य ईश्वर है, और दूसरे रूप में उपास्य होते हुए भी सम्भवतः इस काल तक प्रचलित महाकाव्यों के माधारित मूल रूप से कुछ है। जो अवतारित होकर नरवत् लीला करता है पञ्चार्थ रूप में नहीं। उसकी बदवत् लीला के उदाहरण स्वरूप प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण के प्रति कहा गया है कि वे लोगों के सामने अपने को दिपते हुए वे और देसी लीला करते वे मानों कोई मनुष्य हों।'

इस प्रकार भागवत में ईश्वर के व्यक्तिगत अवतारवादी रूपों को लीलात्मक रूप प्रदान किया गया। इस दृष्टि से 'भागवत पुराण' 'विष्णु पुराण' से एक कदम आगे है। 'विष्णु पुराण' में सृष्टिकर्ता की सृष्टि को ही वास्तव्य लीला कहा गया है। किन्तु 'भागवत' में उसकी सृष्टि लीला की अपेक्षा पौराणिक अवतारों को ही श्रीकृष्णवतार के रूप में ग्रहण किया गया है, जिसका अष्टाध्यायीय साहित्य में जायसिक विकास हुआ।

व्याख्यान और व्याख्यान

उत्तर भारत में मागधत या मगध वैदिक साहित्य के प्रचार का क्षेत्र दक्षिण के उन भाषाओं को प्राप्त है जिन्होंने उत्तर भारत में ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष में बूम-बूम कर वैष्णव भक्ति का प्रवर्तन किया। इन दक्षिणी भाषाओं में स्मार्त होते हुए भी शंकराचार्य प्रबोधनीय हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से वे पञ्चापठ (गणेश, विष्णु सूर्य शिव, दुर्गा) पूजा के प्रवर्तक थे।^१ वैष्णवभाषाओं द्वारा उनके मायावाद का खडग तथा 'म० सू० शरीरभाष्य' १, १, ४१ सूत्र की व्याख्या में पाँचरात्रों के अद्वैतिक सिद्ध किए जाने के कारण उनके अवतार विरोधी होने का भी भ्रम होता रहा है।

किंतु शंकर के साहित्य में उनके अवतारवादी दृष्टिकोण का परोक्ष परिचय मिलता है। 'मांडूक्योपनिषद्' के अंत में उन्होंने अवतरित ब्रह्म को नमस्कार किया है। उनकी प्रार्थना के अनुसार सबसे अज्ञानता होकर भी ईश्वरीय शक्ति के योग से ब्रह्म ग्रहण किया, गतिशून्य होने पर भी गति स्वीकार की तथा जो माया प्रकर के विषय रूप धर्मों को ग्रहण करने वाले मूढ़ दृष्टि लोगों के विचार से एक होकर भी अनेक हुआ है वही शरणागत नमोदारी है।^२ यहाँ अज्ञानता ईश्वर का ज्ञान और शरणागत नमोदारी रूप स्पष्ट है। 'केयोपनिषद्' के पंच ब्रह्म के प्रसंग में भी माया शक्ति के द्वारा उसका आविर्भाव शून्योपनिषद् स्वीकार किया है।^३ इसका अतिरिक्त श्लोक ५, १ में अत्यंत हुए कथित को तथा 'गीता' के उपोद्घात में ज्ञान को क्रमशः विष्णु और ब्रह्मदेव का अंशत्वतः माया है।^४ 'गीता' के उपोद्घात में इनका माया विहित अवतारवादी सिद्धान्त मिलता है। उपोद्घात के अनुसार ज्ञान, वेदार्थ, शक्ति, बल, धीर्य और तेज आदि से संपन्न वे महाबाहू यद्यपि ब्रह्म, अविनाशी, सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर और निराल इन्द्र इन्द्र मुक्त स्वभाव हैं, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूक प्रकृति वैष्णवी माया को बध में करके अपनी शीका से शरीरधारी की तरह उत्पन्न हुए और लोगों पर अनुग्रह करते हुए से शीकते हैं।^५

इससे स्पष्ट है कि शंकर ने अवतारवाद और उसके व्याख्यातिक उपासकवाद को तो स्वीकार किया है, किंतु इनका अवतार और अवतार्य माया के सिद्धांत से प्रसृत हैं। वही कारण है कि इनके बाद होने वाले रामानुज

१ शंकराचार्यवचन संग्रह १५ की ७१। २ मांडूक्योपनिषद् भा० सू० १४१।

३ केयोपनिषद् भा० सू० १११।

४ केन सा मा १ ११७ और गीता भा० सू० १४।

५ गीता भा० सू० १४।

भादि वैष्णव आचार्यों ने अवतारवाद की स्थापना क हिन्दू मायावाद के सिद्धांत का खंडन अपना प्रमुख कथ्य माना। अतएव अवतारवाद के सैद्धांतिक प्रतिपादन में इन वैष्णव आचार्यों का विशेष महत्त्व रहा है।

इन आचार्यों के साथ ही उक्त तमिक प्रदेश के आत्मार मर्त्यों को विस्तृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने भाव, भाषा, भक्ति, भक्त और भगवान का सम्बन्ध इन आचार्यों को प्रदान किया। जिसे प्राप्त कर हिंदी का समृद्ध भक्ति साहित्य उनका श्रेणी है। आत्मारों ने संस्कृत की अपेक्षा तमिल भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। 'द्विविध प्रबन्धम्' में संस्कृति उन पदों का ज्ञान भी वैदिक ऋषियों के समान आदर किया जाता है। यों तो आत्मारों ने विष्णु एवं उनके अवतारों का विशेष वर्णन अपने पदों में किया है। परन्तु विष्णु के अवतार राम और कृष्ण उनमें अधिक वर्णित हुए हैं।

दक्षिण में विश्वपति और विष्णुकीर्ती की जर्ना मूर्तियां इनके उपासक के रूप में गृहीत हुई थीं। आत्मारों के भक्तिपरक पदों में इनके उपासक आर्चनार एवं उनकी निष्प और नैमित्तिक शीकाओं के व्यापक रूप मिलते हैं। अता आर्चनारों के माध्यम से ही आत्मारों ने अवतारों के विषय में प्रचलित 'महाभारत' और 'रामायण' के अतिरिक्त अधिकांश पौराणिक कथाओं को प्रदान किया है। उनके मतानुसार विष्णु अपने असंख्य रूपों में विश्व के एकमात्र पावन कर्ता हैं।^१ वैश्वानरार शूर के सहस्र बाककृष्ण पर अधिक सुप्र हैं। इनके पदों में कृष्ण की शिष्ट-श्रीका का अधिक वर्णन हुआ है।^२ कुक्षेत्र आत्मार अपने इन्द्रिय राम को ही एकमात्र पूर्णवतार तथा अन्य अवतारों को समुद्र में शूर (गोप्य) के समान मानते हैं।^३ आत्मारों ने पौराणिक अवतारवादी रूपों के साथ पंचरात्र के पंच रूपों को भी समाविष्ट किया है। हिन्दी साहित्य के सम्बन्धीन कवियों में उपासक रूपों के अवतार एवं अवतारी रूप का जिस प्रकार अत्यधिक प्रचार रहा है इसके पूर्व ही आत्मारों में उपासक अवतारों एवं जर्ना विग्रहों के अवतार और अवतारी रूप प्रचलित थे। इनके उपासक भी भर्तृ की शका ईश्वर या असुरप्रह के निमित्त प्रकट होते हैं। पंचमो आत्मार कहते हैं कि भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही शकका रूप है, जिस नाम का चाहते हैं वही शकका नाम। भक्त जिस रंग से उपासना करे अक्षर विष्णु उसी रंग से उनका उपास्य बन जाता है।^४ विश्वकर्माई ने अपने पदों में इस मानना का विशेष परिचय दिया है

१ दिव्यी नाक विश्वपति पृ० ८२। २ दिव्य आत्मार पृ० १७।

३ शीकावन विजयन आफ दी द्विविध संस्कृत पृ० १५४ शीकाव ११८।

४ तमिक और उत्तर साहित्य पृ० ५९।

कि रक्षा धीर पावन में विष्णु सभी देवों से अधिक समर्थ है।^१ बम्मकवार कहते हैं कि भगवान् अवतारों के रूप में जन्मे को सुगम बनाता है तथा भक्तों के विघ्न-हाने का प्रयत्न करता है। उसका अवतरित रूप इस तात्पर्य के समान है जहाँ लोग अपनी प्यास बुझाते हैं।^२

आत्मारों के अनुसार अवतार दो प्रकार के विहित होते हैं। एक ओर तो प्रकृति में वे समष्टिगत अभिव्यक्ति मानते हैं और दूसरी ओर उन व्यक्तिगत दिव्य रूपों और अवतारों को दिव्य अवतार समझते हैं जो आत्मा और उपारण के मध्य में रिक्त हैं।

उक्त प्रकृतियों के अतिरिक्त आत्मारों ने तात्कालीन लोकवाणी या लोक-भाषा को अपवाहक भागत युग के किये कबीर मार्ग प्रस्तुत किया। किसी-एक हिन्दी भक्ति साहित्य की रचनात्मक पृष्ठभूमि की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है।

आत्मार साहित्य से निपटते भक्ति सरिता को उत्तर भारत में प्रवाहित करने का श्रेय शन वैष्णव आचार्यों को प्राप्त है जिनका जन्म तो हुआ दक्षिण में किन्तु उन्होंने या इनके अनुयायी आचार्यों ने समस्त भारतवर्ष या मुख्यतः उत्तर भारत को वैष्णव धर्म के प्रचार के विभिन्न अपना कार्यक्षेत्र बनाया। इनमें रामानुज भिष्णु-स्वामी और उनकी परम्परा में माने जाने वाले बह्मचार्य, मात्वाचार्य और विम्बाक विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने प्रत्यावृत्ति या प्रत्यागन्तुत्व के भावों पर समुच्च प्रष्ट के विभिन्न रूपों और पाँचरात्र और पीराभिक अवतारवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक इष्टिकोण का प्रतिपादन किया जिनका इस निबन्ध में बचावबान विचार किया गया है।

अवतारवाद की उक्त परम्परा को लेकर आलोच्यकालीन साहित्य में प्रवेश करने पर वैष्णव हिंदी कवियों की अरेखा सत्यप्रथम, सिद्ध, बौन एवं नाथों के साहित्य पर जन्म जाता है जिनका वैष्णव धर्म से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। फिर भी प्राग्भिन्नक अवतारों में इनमें विहित अवतारवादी तथ्यों एवं समानान्तर प्रकृतियों का आकलन एवं तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।



१ हिंदी भाषा विश्वविद्यालय २०९।

२ विनायक विन्टम भाषा इतिहास २७-३०।

मध्यकालीन साहित्य मे अनतारनाद

पहला अध्याय

पौद्ध सिद्ध साहित्य

भारतीय इतिहास में आठवीं से लेकर बारहवीं शती तक का काल राजनीतिक दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नु होते हुए भी धार्मिक भीड़ साहित्यिक दृष्टिकोण से अपने ढंग का अनोखा परिदृष्टित होता है। इस काल में देश के बड़े विभिन्न राज्यों में ही नहीं बल्कि विविध घनों और सम्प्रदायों के रूप में भी विभक्त था। वैष्णव, सैव, सौध, शाक्त, गान्धर्व, जैन, बौद्ध इत्यादि धर्म और सम्प्रदाय देश के विविध स्थानों में अपने प्रचार में संलग्न थे। परन्तु अनेक रुद्धिग्रस्त पद्धतियों और प्रथाओं से ग्रस्त होने के कारण इनमें परस्पर मनोमात्स्य और संकीर्ण स्वव्यहाराओं का अधिक प्रचार होता जा रहा था। उत्कृष्टतम समाज इनकी कौट श्रृंखला में आवद्ध था। इन सम्प्रदायों के प्राणधान श्रोत भी संकीर्ण द्वारों में भरी हुई बालुकाराशि में सूख से गये थे।

उन्हीं दिनों वैष्णव, सैव, जैन और बौद्ध सम्प्रदायों में कुछ ऐसे मत्त, आचार्य, मुनि और सिद्धों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने एक बार पुनः उक्त मत्तों में नये प्राण फूँके और उन्हें नयी दिशा और गति प्रदान की। यों तो इनकी पूर्व-परम्परा में भी कृष्ण, महावीर और बुद्ध ऐसे महान् पुरुष हो गये थे, जिन्होंने वैष्णव, जैन और बौद्ध मत्तों के रूप में एक ऐसी धार्मिक द्युति का सूत्रपात और प्रवर्तन किया जिसमें सर्वप्रथम ईश्वरतावाद और शैव-भाषा के विपरीत अनुप्यवाद और मानव-मात्र के समुचित दित, प्रयोग और उन्मूर्त्त को लक्ष्य बनाया गया था। इन प्रवर्तकों ने मनुष्य के मूर्त्त को बौद्ध और उसके विकास के द्विप ऐसे चतुर्ण भावों की अवतारणा की जिनके फलरूप वे स्वयं काकान्तर में उन्नत श्रेणियों के ज्ञानियों से भी विमुक्ति किसे गये और उद्वेगतर अनेक रुद्धियों का पुनः निर्माण भी मार्ग्य हो गया।

किन्तु फिर भी उनकी पृष्ठभूमि में विकास के ऐसे बीज विद्यमान थे जो आलोच्य काल में पुनः उत्पन्न, प्रसिद्ध, प्रथित और फलित हुए। इस पुनः जी

सबसे बड़ी देन है—देव-वाणी संस्कृत, और बहो की अपौरुषेयता के स्थान में लोक-वाणी का व्यवहार और प्रचार। इस काल के वैष्णव मठ आलवार, सैवमठ आलवार, जैन मुनि और बौद्ध सिद्ध इन सभी ने उपास्य और उपासना तथा स्वामीय भाषा की दृष्टि से परस्पर वैषम्य रखते हुए भी लोक-वाणी को समान रूप से समुचित स्थान दिया। अतः लोक-भाषा में रचित इनकी रचनाओं को उत्कृष्टग्रन्थों में वेदों के समान पवित्र और पूज्य माना गया। अतएव मठ, मक्ति और भगवाद् के अतिरिक्त सम्प्रदायीय साहित्य को उस लोकभाषा और भाषा के भी बरदान मिले जिनमें जनप्रिय और पटुजन हितार्थ होने की अपेक्षाकृत अधिक जमता विद्यमान थी।

सिद्ध-साहित्य में वैष्णव अवतारवाद के उपादान

मठों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य की आदिकायीय परम्परा में प्रतिष्ठित सिद्ध-साहित्य ने भी भाषा और भाव दोनों प्रकार से उत्तरकायीय साहित्य की परम्परा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु वैष्णव अवतारवाद की दृष्टि से सिद्ध-साहित्य सम्प्रदायीय साहित्य के अन्य विविध रूपों की अपेक्षा भिन्न दृष्टिगत होता है। वहाँ कि—जैन, नाय, सम्त और सूफ़ी साहित्य में वैष्णव अवतारवाद के तत्त्व किसी न किसी रूप में उचित होते हैं, वहाँ महायान मन्त्रयान, कर्कशयान आदि साम्बिक रचनाओं तथा सिद्धों के शर्पापनों में उनका अभाव हीन पड़ता है। परन्तु १२वीं से लेकर १७वीं सदी तक के बहिष्कृत और उच्छिन्न होते हुए बौद्ध धर्म और उसके उत्तरकायीय सम्प्रदायों में जैव ज्ञात, गणपत्य और सौर इत्यादि अन्य सम्प्रदायों के साथ वैष्णव धर्म की बौद्ध धर्म के साथ संयुक्त रूप से उत्कृष्टीय जमाय में स्थापित हो गया था। इस मिश्रित धर्म के अवतारवादी रूप उत्कृष्टीय हिन्दी साहित्य में तो नहीं किन्तु उड़ीसा, बंगाल और नेपाल में उपलब्ध संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, जिनका विवरण यथाक्रम किया गया है।

फिर भी उपर्युक्त साहित्य की परम्परा में माग्य ज्ञातक, महायान बौद्ध सूत्र तथा ब्रह्मपात्री मन्त्रग्रन्थों में राम कृष्ण बराह और हृषीकेश के भासिक या बौद्ध रूपों की बर्णना अत्यन्त मानवी और दैवी रूप में हुई है। पर मेरी दृष्टि में इनका सम्बन्ध विद्युत् वैष्णव अवतारवाद की अपेक्षा बौद्ध, महायानी और ब्रह्मपात्री सम्प्रदायों के समाप्तान्तर अभिप्राय भागवत और अन्य हिन्दू सम्प्रदायों से रहा है जिनमें प्रचलित देवता और उपास्य विभिन्न स्थलों पर विविध प्रसंगों में पृथ्वी या उत्तरवर्ती बौद्ध रचनाओं में

गृहीत हुए हैं। अतः इनका एकत्र आकलन और विवचन भागवत टीपक में ही मुझे उपयुक्त जान पड़ा है।

सिद्ध साहित्य में परम्परागत और समकालीन भागवत सख

सिद्ध-साहित्य में भागवत धर्म से जो भी उपादान गृहीत हुए हैं, व पाठों परम्परागत हैं या समकालीन भागवत धर्म से प्रभावित हुए हैं। प्रस्तुत शीर्षक में इसी दृष्टि से उनका निरूपण किया जाता है। भारतीय साहित्य में वैदिक धर्म के पश्चात् प्राचीन धर्मों में भागवत धर्म सर्वाधिक प्राचीन माना जाता रहा है। इसका प्रबर्नकों के प्राचीनतम उल्लेख ऋषी शताब्दी पूर्व से ही मिलने लगते हैं। कम से कम पाणिनि की अष्टाध्यायी के कुछ सूत्रों (४, १, १८; ४ ३, १९; और ४, १, ११४) से बामुदेव की भक्ति का स्पष्टीकरण हो जाता है। इस आधार पर प्रायः स्वीकार कर लिया गया है कि यह शतक के पूर्व वैष्णव मत का प्रचार हो चुका था।^१ इसका विपरीत 'सदा' (भद्रा का पर्याय) का बौद्ध साहित्य में सर्वप्रथम उल्लेख पाकि मिश्रण ग्रन्थों में मिलता है जिनका समय चौथी शती पूर्व है। साथ ही भक्ति का सर्वप्रथम जन्म येरिंगाया (पृ० ४१, पंक्ति १२) में 'भक्ति' के रूप में मिलता है। इनका समय बुद्ध के जन्मकाल से लेकर ३०० ई० पूर्व तक माना गया है।^२ हमने प्रतीत होता है कि भागवत धर्म में प्रचलित होने के कारण ही भद्रा और भक्ति का समावेश भी बौद्ध साहित्य में हुआ होगा।

पर उपर्युक्त कथनों के विरुद्ध कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि बौद्धों ने यदि भक्ति अपनाई तो उनके देवताओं को क्यों छोड़ दिया? क्योंकि बौद्ध साहित्य में ध्यात बोधिसत्ववाद की कल्पना इनकी अपनी कल्पना है। परन्तु मुझे इस तर्क-वितर्क में न पड़ कर केवल इतना ही कहना है कि सम्भव है बोधिसत्ववाद जो एक प्रकार का बौद्ध अवतारवाद ही है बौद्ध धर्म की अपनी है, किन्तु यह अस्वीकार करना कठिन है कि उस पर भागवत धर्म का प्रभाव नहीं पड़ा था। इसका ठीक विरोध तक का आशय न लेकर बौद्ध साहित्य के पूर्ववर्ती और परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध भागवत तर्कों और तथ्यों का समीचीन निरूपण ही अधिक पुष्टिसंगत जान पड़ता है। यों तो गोकुलवास के ने अपनी पुस्तक के अन्तिम अध्याय में बौद्ध और भागवतों के सम्बन्ध को आतकों के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूर्ववर्ती बौद्ध धर्म आतकों के आधार पर भागवत धर्म से प्रभावित रहा है, क्योंकि भागवत का मूल आधार भक्ति-तत्त्व आतकों एक महायान ग्रन्थों

में सर्वत्र व्याप्त है। गृहस्थों के क्लिप्त स्वरों (साग) और संन्यासियों के क्लिप्त मोक्ष भी दोनों में सामान्य रूप से साम्य है।^१ इससे बौद्ध धर्म पर भागवत धर्म के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

वेदों और पुस्तिका का विकास है कि मोक्ष या निर्वाण की दृष्टि से बौद्ध और सागवत सम्प्रदायों में पचास समानता थी। विशेषकर प्रारम्भ में ही नारायण की पूजा का बौद्ध सिद्धान्त पर अपरंप्रभाव प्रभाव पड़ा था। अहिंसा का सिद्धान्त बौद्ध और सागवत दोनों में समान रूप से प्रचलित था। विष्णु-पद के अनुकरण पर बुद्ध-पद-विहों की पूजा भी आरम्भ हुई थी। सर्वमनुभूतियों का अन्त महान्याय प्रथी पर शीघ्र ही प्रभाव पड़ा था।^२

सम्भव है बौद्ध अवतारवाद धर्म की गीता का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा हो। इतिहासकारों के मतानुसार अतीत युद्धों को लेकर बहुत पहले ही अवतारवाद का विकास बौद्ध धर्म में हुआ था। जब युद्धों की पूजा तीसरी शती पूर्व स्त्री में प्रचलित थी।^३

भागवत धर्म की उपरान्त प्रारम्भिक काल से ही सम्भव की रही है। विष्णु वासुदेव, नारायण के अनन्तर अन्य वैदिक और पौराणिक देवों का सम्भव भी कालक्रम से होता जा रहा था। अतएव सम्भव है बौद्ध-साहित्य में व्याप्त बहुदेवतावाद भी भागवत धर्म के प्रभाव का ही परिणाम हो। यह समझकर त्रिवेण और बहुदेवतावाद को भी इसी धर्मिक में समाविष्ट करने की चेष्टा की गई है।

इस दृष्टि से बुद्ध के कतिपय उपदेशों का देखने पर उनका देवताओं के विरुद्ध होना प्रकट नहीं होता। धम्मपद में कहा गया है कि आचरण सेवा तथा शीघ्र से पुण्य पुण्य की देवता और अज्ञान भी असंता करते हैं।^४ जो भी धर्म ध्यान में लगे परम ध्यात निर्वाण में रत हैं उन स्थितिमात्र बुद्धों की स्पष्ट देवता लोग भी करते हैं।^५ इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि बुद्ध ने देवतावाद का विरोध न कर अहिंस्य के क्लिप्त हिंस्य देवताओं के समावेश का द्वार अमुक्त रखवा था। विशेषकर महायान सम्प्रदाय ईश्वरवाद, अवतारवाद और देवताओं को अत्यन्त उदार होकर प्रदत्त करता हुआ देखा पड़ता है।

१ तिब्बतियर्स देव्य इन्वीरेंट्स नाथ नाथकाव ६० २५६-२५९।

२ श्री राज नाथ इन्वीरिवक मुक्ति ६० ४५ । ३ वही ६ ४५ ।

४ धम्मपद ६० ५६ । ५ वही ६० ७७ । ६ १२९ ।

जमी तक महायानी साहित्य पर पढ़ने वाले भागवत सम्प्रदाय का क्रमबद्ध अध्ययन उस रूप में नहीं किया जा सका है, जिसके आधार पर ब्रह्मयानी सिद्ध-साहित्य में परिचित होनेवाले भागवत तर्कों का सम्यक् निरूपण किया जा सके। परन्तु आलोच्य साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बौद्ध साहित्य में भागवत तर्कों का समावेश किसी युगविशेष का नहीं प्रत्युत क्रमशः पढ़नेवाले प्रमाओं का परिणाम है।

यद्यपि तीसरी शती पूर्व के जातकों तथा अम्य पाणि ग्रन्थों में राम और कृष्ण तथा उनकी बौद्ध रूप में परिवर्तित कथाओं का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु उनमें ईश्वरवादी या अवतारवादी तर्कों का अभाव है। अग्निपुराण (हीमनिर्वाण १३) में कृष्ण नाम के एक प्राचीन अधि को स्मरण किया गया है। उस कथा के अनुसार उन्होंने पृथिवी क्षेत्र में जाकर राजा इक्ष्वाकु से उनकी पुत्ररूपी कन्या माँगी थी। प्रारम्भ में क्रुद्ध होने के अनन्तर राजा ने यह कन्या उन्हें प्रदान की।^१ इसके अतिरिक्त कतिपय जातक कथाओं में राम-कृष्ण-सम्बन्धी कथाएँ मिलती हैं। विशेषकर वसवण जातक (४९१), देवधम्म जातक (५१३) में पूरी रामकथा मिलती है तथा ग्यहिस जातक (५१३) में रामचरितमन और साम्र जातक (५४०) में वास्मीकिरामायण (२, ६६, ९५) से सादृश्य विहित होता है।^२ इनमें रामकथा के बौद्ध रूप मात्र दृष्टिगत होते हैं।

उसी प्रकार कुण्डल जातक (५३९) में कृष्ण प्रीपरी-कथा तथा धर जातक (३५५) में कृष्ण द्वारा कंसवध और हारक्य बसाने तक की कथा मिलती है।^३ परन्तु इन कथाओं में भी उनके अवतारत्व का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे तत्कालीन ईश्वरवादी या अवतारवादी प्रभाव का अनुमान मसे ही न होता हो फिर भी भागवत तर्कों के प्रारम्भिक संपर्क का आभास अवश्य मिलता है।

पर महायान के प्राचीनतम वैदुष्य सूत्रों में मान्य अधिष्ठाता ग्रन्थों पर भागवत धर्म के ईश्वरवादी अवतारवादी और बहुदेववादी विश्वासों का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। विशेषकर सद्मरुपुंबरीक पर गीता के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावों को विद्वानों ने स्वीकार किया है।^४

१ पा० सा ३ वृ० २३९।
 २ पा० सा ३० २९३-२९४। ई पा सा ३० वृ० २९४।
 ४ बी बी सिन्हा के अ० पृ ३१ में केवल में विरचित, कर्म, सेन, और के० जी० सेनर का मत दिया है।

भागवत धर्म में प्रचलित भगवत् और भगवान् इत्यादि शब्दों का प्रयोग प्रायः सभी सूत्रों में जायन्त मिलता है। सद्धर्मपुंडरीक में तद्भागत बुद्ध क विष्णु सर्वत्र भगवान् शब्द का प्रयोग मिलता है। इस ग्रन्थ में भगवत् (भगवान्) के अतिरिक्त पुस्तोत्तम शब्द भी कतिपय स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है।^१ परन्तु आशय यह है कि इसमें विष्णु, बामुदेव और नारायण का प्रयोग नहीं मिलता जब कि इससे भी प्रार्थना माने जायेवाले कुछ लक्षितविस्तर में विष्णु और नारायण का उल्लेख हुआ है। बुद्ध की उपमासत्ता या अभिवेक का निमित्त शक्र, ब्रह्मा और महाेश्वर का साथ प्रायः देवसमूह उपस्थित होता है।^२

इस प्रसंग के सभी स्थलों में विष्णु का उल्लेख नहीं किया गया है।^३ इससे कहा जाता है कि सम्भवतः वे विष्णु से अभिविहित नहीं किए गये हैं।

पर विविध स्थलों में नारायण से बुद्ध को स्पष्ट रूप से तुल्यरित किया गया है। जम्बीसवें अध्याय में वे महाभारतव्य की संज्ञा से विमुक्ति किये गये हैं।^४ कतिपय स्थानों पर उन्हें नारायण का सरल लक्षित्युक्त माना गया है।^५ बुद्ध नारायण के समान अक्षय और अक्षय कामवाले कहे गये हैं।^६ तीसवें अध्याय में वे भगवत्स्वरूप बतलाये गये हैं।^७ अतिसत्त क्षपि कपिलवस्तुनिवासी राज्ञोद्भव के घर में उत्पन्न बुद्ध को साक्षात् सक्रियताकी नारायण का अवतार ही मानते हैं।^८

इससे सिद्ध होता है कि बुद्ध लक्षितविस्तर के प्रथमकाल तक नारायण के अवतार माने जा चुके थे। साथ ही महाभारती साहित्य पर नारायण का विशेष प्रभाव पड़ने लगा था। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बुद्ध को नारायण-अवतार सिद्ध करने की यह प्रवृत्ति सीधे बौद्ध महाकाव्यों से पृथीत हुई प्रतीत होती है क्योंकि बौद्ध महाकाव्यों के सरल अतिसत्त क्षपि अपनी विषय दृष्टि से अन्वहीय में नारायण को ही बुद्ध रूप में अवतरित हुए देखते हैं। अवतार होने के उपरान्त ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, वैश्वदेव तथा अन्य देवता उनकी स्तुति करते हैं। इन देवताओं में नारायण को भी बुद्ध

१. सद्धर्म पुं० ५ २६ वृ० १६।

२. लक्षितविस्तर—आर्यभट्टक (अनुवर्त) ५० २००।

३. ल० वि० अनुवर्त ५ २०४ २०, १५०। ४. ल० वि० अनु ५ ५६।

५. ल० वि० मूल ५ १२४ २२६, १४७, १५४।

६. ल० वि० मूल० ५ १ २१ अध्याय 'नारायणस्य तथा क्षय अक्षयधर्मयो'।

७. ल० वि० मूल० ५ ४७६। ८. ल० वि० मूल० ५ २२४। ७

'जानि अक्षयपुम्बदेववरितं नारायणस्यमवत्'।

का उपासक कहा गया है।^१ बुद्ध उपासकग्रह के रूप में जब मन्दिर में पैर रखते हैं, तब सिद्ध, स्कन्द, कुंभर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, शक्र, महा और सभी देवताओं के साथ नारायण भी इनके चरणों में छोट जाते हैं।^२ पर ये दोनों उल्लेख संसार के कदापि प्रसिद्ध ज्ञान पढ़ते हैं क्योंकि सातवाँ तो पुस्तक में दिया हुआ है और आठवाँ भी कोष्ठ के अन्दर दिया गया है।

अठारह सम्मत्तः परवर्ती काल में बुद्ध के उपास्य रूप का अधिक प्रसार होने पर उनका उपासकों में नारायण को भी स्थान दिया गया। यदि इसे नारायण का बुद्ध से हीन ही रूप माना जाय तो भी यह नारायण का विष्णु रूप में गृहीत विशेष रूप हो सकता है।

जो हो, बुद्ध को नारायण से अभिहित करने की यह परम्परा ललित विंगर से लेकर ब्रह्मपानी सिद्धों की रचना शानसिद्धि तक दृष्टिगत होती है। ललितविंगर के अतिरिक्त उसके बाद की रचना मुत्तावती च्युह (सायन्तर का. ई० सन् १३०-१८१) में जो नारायणवत्त का उल्लेख हुआ है। मुत्तावती च्युह में जो बुद्धत्व प्राप्त करने के अधिकारी हैं, उन्हें जब तक नारायणवत्त सहताममावस्थ की उपलब्धि नहीं हुई हो तब तक इच्छिन्ना को पूर्णज्ञान करानेवाली कहा गया है।^३ करण्डच्युह में अवलोकितेश्वर के विराट रूप का वर्णन करते हुए अवलोकितेश्वर के रूप से नारायण को उत्पन्न बताया गया है।^४ ब्रह्मपानियों के प्रसिद्ध ग्रन्थ शानसिद्धि में शक्तिशाली नारायण का उल्लेख हुआ है।^५

इससे स्पष्ट है कि नारायण का प्रभाव प्रारम्भिक काल से ही बौद्ध साहित्य पर रहा है। उस काल में अवतारवाद का सम्बन्ध विष्णु की अवस्था नारायण से ही अधिक मात्रा में विहित होता है। नारायण के उपयुक्त रूपों के अतिरिक्त ब्रह्मपानियों की परवर्ती पुस्तक साधनमाह्य में नारायण का सामान्य रूप भी मिलता है, जिसमें ब्रह्मा इन्द्र, रज्जु मनुष्य के साथ नारायण भी साधना के लक्ष्ययुक्त होकर कुलकुल के उपासकों में परिगणित हुए हैं।^६ तथा काकान्तर में स्त्रो-स्त्रो उत्तरकालीन बौद्ध सम्प्रदाय शुद्धता के ही विधि रूपों से विकसित बौद्ध देवताओं को महत्त्व प्रदान करने लगे त्यों-त्यों नारायण

१. क. वि० मू० पृ० ५७५, २६ नीचे में। २. ल० वि० मू० पृ० २१७, ८।
 ३. मुत्तावती च्युह पृ० २७ २५। ४. वी० व. द. पृ० २५० करण्ड च्युह के
 भाषा पर।
 ५. शानसिद्धि पृ० १९ २५। ६. साधनमाहा पृ० २५।

आदि भागवत उपास्यों का प्रभाव बरकर अन्य प्रचलित देवों की ही समानता में आ गया।

भारतभण के अतिरिक्त ककितविस्तर में विभिन्न देवों के साथ कृष्ण का भी उल्लेख हुआ है।^१ तबसे कुछ मूर्ति की तुलना हुए कृष्ण नामों में कृष्ण-मूर्ति के साथ की गई है।^२ इस एक पर यह प्रतीत नहीं होता कि ये अवतार कृष्ण हैं या कोई अन्य कृष्ण। पर इनकी मूर्ति की चर्चा देवते हुए इनके उपास्य रूप का स्वीकरण जरूर हो जाता है। अवतारवाद सदा ही उपास्यवाद की प्रथम मूर्ति में विद्यमान रहता है, अतः इस मूर्ति का भागवत कृष्ण की मूर्ति माना जा सकता है।

ककितविस्तर के उपरान्त प्रकृत वैपुल्य सूत्रों में मान्य उपास्यवाद सूत्र में भी भागवत सर्मदान के अनेक उपादान दृष्टिगत होते हैं। ककवतार सूत्र में उपास्यवाद के विषय शरीर का वर्णन करते समय कहा गया है कि तत्रागतं के इत्थं मी श्रीवास (विष्णु-विष्णु) रिक्त है।^३ तत्रागत के विभिन्न रूपों में भारतीय सर्मदानों के कतिपय पौराणिक देवताओं और साधकों को समाहित करते हुए बताया गया है कि कुछ लोग मुझे उपास्यवाद करते हैं तथा अन्य कुछ लोग मुझे सर्वेश्वर तथा विनायक परिभाषक, बुद्ध, अपि परब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, प्रधात, कैपिक, शूर्पाक अरि, नमि, योम, सुर्व राम म्यासे छोटे, इन्द्र, बलि, बंसेन कहते हैं तथा अन्य लोग अश्वत्थ, अश्विनी, शूर्पवती तथा अन्य, बंसेन, विष्णु इत्यादि रूपों में देखते हैं।^४ इस कथन में एक ओर ता सर्वेश्वर की विराट भावना दृष्टिगत होती ही है, साथ ही यहां भी विदित होता है कि सर्वेश्वर सूत्र के अनेक तर्क वैष्णवों के उपोस्य विष्णु तथा उनके रमि व्यास कैपिक इत्यादि अवतार भी तत्रागत के स्वदक्षिण किरी को लुके के। तत्रागत के अवतार की यह परम्परा सर्वेश्वर-सूत्र के अर्थ सूत्रों में भी परिष्कृत होती है। ककवतार सूत्र ७८६ के अनुसार शूर्पवती के अवतार के पश्चात् उसी परम्परा में व्यास कथा, अश्विनी कैपिक और अन्य सर्पवती भी इनके अनुपायी होती।^५ इसके पश्चात् सूत्र ७९५ में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि शूर्पवती सिद्धार्थ के पश्चात् विष्णु, शिव और महादेव जैसे शास्त्रिकों का अवतार होगा।^६

१. क. वि. अनु० ५० २१२, २२।

२. क. वि. अनु० २१२ २२ सूत्र २ २०९ २२ प्रतिकृति अर्थ कृष्ण का।

३. क. सू० ५० २१। ४. क. सू० ५ २१६।

५. क. सू० ५० २८५। ६. क. सू० ५ २८६।

इसमें शाश्वत-सिद्धार्थ और विष्णु की परम्परागत ऐश्वर्य-भावना के विकास का पता चलता है। सूत्र ८१५ में विष्णु-अवतार वामन के स्थान में बलि की ही महिमा का शासन और उनके अवतार का वर्णन किया गया है। उस सूत्र के अनुसार तथागत के पद्माव बलि का अवतार होगा और वे बहिरामा अवतरित होकर मानव-समुदाय का कल्याण करेंगे और जो कुछ भी परम दितकर और श्रेष्ठ है उसकी रक्षा करेंगे।^१ प्रस्तुत कथन में अवतार-कथा के विपरीत होते हुए भी वैष्णव अवतारवाद के प्रयोजन इसमें स्पष्ट मात्रा में प्रतिबिम्बित होते हैं।

इस प्रकार अम्य महायान सूत्रों के सदृश लंकावतार सूत्र में भी भागवत अवतारवाद के तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। भागवत के चौबीस अवतारों में माम्य व्यास, कपिल इत्यादि की शाश्वत सिद्धार्थ की अवतार-सूची में गृहीत होना भी यह सूचित करता है कि चौबीस अवतार की कल्पना के पूर्व ही सम्भवतः बौद्ध अवतारों की कोटि में इनकी परिगलना होने लगी थी। पर ऐतिहासिक दृष्टि से भागवत पुराण के परवर्ती होने के कारण यह धीक-धीक निष्कर्ष करना कठिन है कि लंकावतार सूत्र बीरे भागवत में से कौन किससे प्रभावित है। दोनों में कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं, जिससे दोनों के परस्पर प्रभावित होने का अनुमान किया जा सकता है।

भागवत पुराण और लंकावतार सूत्र

भागवत में जिस प्रकार विष्णु बामुदेव या मारायण के अवश्य अवतारों की चर्चा हुई है, उसी प्रकार लंकावतार सूत्र १० में कहा गया है कि कुछ जनमन्त रूपों में अवतीर्ण होंगे और सर्वत्र लक्ष्मणियों में धर्म-देखना करेंगे।^२ ल० सू० में भागवत के समान चौबीस युद्धों का उल्लेख हुआ है।^३ भागवत में गीता की भाँति युग-क्रम से धर्म की हानि और कलियुग में श्रेष्ठों का प्रभाव नष्ट होने के उपरान्त धर्मयुग की स्थापना की जो परम्परा मिलती है उसका आभास लंकावतार सूत्र के ७८५-७८९ सूत्रों में मिलता है। इन सूत्रों में अबैदिक श्रेष्ठों के कलियुग में भाग्य होने के उपरान्त पुनः वेद प्रवर्तन और धर्मयुग के आगमन की पुष्टि की गई है।^४ इसके अतिरिक्त भागवत में प्रतिपादित युगावतार के सदृश ल० सू० ७९५ में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का उल्लेख हुआ है। इस सूत्र के अनुसार शाश्वत

१ लं सू ५ १८८। २ लं सू ५ २२९।

३ लं सू ५ २५२। ४ लं सू ५ २८६।

जादि भोगवत उपासकों का प्रभाव बरकर अन्य प्रचलित देवों की ही समानता में आ गया ।

नारायण के अतिरिक्त कठितविस्तर में विभिन्न देवों के साथ कृष्ण का भी उल्लेख हुआ है^१ तथा कुर्ब मूर्ति की तुलना पूषेक नाक्यों में कृष्ण-मूर्ति के साथ की गई है ।^२ इस स्वक पर यह प्रतीत नहीं होता कि ये अवतार कृष्ण हैं वा कोई अन्य कृष्ण । पर इनकी मूर्ति की चर्चा देखते हुए इनके उपास्य रूप का स्पष्टीकरण जरूर हो जाता है । अवतारवाद सदा ही उपास्यवाद की दृष्टभूमि में विद्यमान रहता है, अतः इस मूर्ति को भगवत कृष्ण की मूर्ति माना जा सकता है ।

कठितविस्तर के उपरान्त प्रख्यात वैपुश्य सूत्रों में मान्य लंकावतार सूत्र में भी भोगवत सर्गग्रहण के अनेक उपादान उद्धिगत होते हैं । लंकावतार सूत्र में तथागत के विषय जरीर का वर्णन करते समय कहा गया है कि तथागत के हृदय में श्रीवास (विष्णु-विह्व) स्थित है ।^३ तथागत के विभिन्न रूपों में भारतीय संस्कृतियों के कठितपरे पौराणिक देवताओं और साधकों को समोहित करते हुए बताया गया है कि कुर्ब लोग मुझे तथागत कहते हैं तथा अन्य कुर्ब लोग मुझे स्वयंभू, वेता विनायक परिनायक, बुद्ध, जापि बरदराज ब्रह्मा, विष्णु ईश्वर प्रधान कपिक मूर्तान्त जरिद, नमि सोम सूय राम व्यासे हुंके, इन्द्र बकि बह्ये कहते हैं तथा अन्य लोग अजन्मा अर्धिवासी शुम्भता तथता संस्य, ब्रह्मवात, विवाय इत्यादि रूपों में देखते हैं ।^४ इस कथन में एक ओर तो संस्य के विरुद्ध भावना उद्धिगत होती ही है साथ ही यह भी विदित होता है कि लंकावतार सूत्र के अर्थ तक वेष्णवों के उपास्य विष्णु तथा उनके राम व्यास, कपिल इत्यादि अवतार भी तथागत से स्विकृत किए जा चुके थे । तथागत के अवतार की यह परम्परा लंकावतार-सूत्र के अन्य सूत्रों में भी परिचित होती है । लंकावतार सूत्र ७८४ के अनुसार ब्राह्मणों के अवतारों के पश्चात् उसी परम्परा में ब्राह्मण, कर्षण कपिक और अन्य मनीषी भी हुंके अनुपायी होंगे ।^५ इसके पश्चात् सूत्र ७९५ में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि सांप्रत्य सिद्धार्थ के पश्चात् विष्णु, व्यास और महाभरत जैसे पौराणिकों का जादिभाव होगा ।^६

१. क. वि. अनु. पृ. २९२-२९३।

२. क. वि. अनु. २९२, २९ मू. पृ. २७५, २२ 'प्रतिष्ठती चरस्य कृष्णस्य वा ।'

३. लं. सू. पृ. २२। ४. लं. सू. पृ. २९९।

५. लं. सू. पृ. २८५। ६. लं. सू. पृ. २८९।

इससे शाक्य-सिद्धार्थ और विष्णु की परम्परागत रूपसे मानना के विद्योम का पता चलता है। सूत्र ८१५ में विष्णु-अवतार कामन के रूपान में बलि की ही महिमा का गान और उनके अवतार का वर्णन किया गया है। उक्त सूत्र के अनुसार तयागत क प्रभात् बलि का अवतार होगा और वे बटिप्राजा अवतरित होकर मानव-समुदाय का कल्याण करेंगे और जो कुछ भी परम दितकर और श्रेष्ठ है उसकी रक्षा करेंगे। प्रस्तुत कथन में अवतार कथा के विपरीत होते हुए भी वैष्णव अवतारवाद के प्रयोजन इसमें स्पष्ट मात्रा में प्रतिबिम्बित होते हैं।

इस प्रकार अन्य महोपास्य सूत्रों के साथ लक्षावतार सूत्र में भी भागवत अवतारवाद के लक्ष्य परिगल्य होते हैं। अर्थात् क चौबीस अवतारों में मान्य व्यासे, कपिले इत्यादि की साथसे सिद्धार्थ की अवतार-सूची में गृहीत होना भी यह सूचित करता है कि चौबीस अवतार की कल्पना के पूर्व ही मम्महंन-बौद्ध अवतारों की कल्पना में इनकी परिगलना होने लगी थी। पर ऐतिहासिक दृष्टि से भागवत पुराण के परवर्ती होने के कारण यह ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है कि कंकावतार सूत्र और भागवत में से कौन किससे प्रभावित है। दोनों में कुछ ऐसी सामान्य प्रकृतियाँ लक्षित होती हैं, जिससे दोनों के परस्पर प्रभावित होने का अनुमान किया जा सकता है।

भागवत पुरुष और लक्षावतार सूत्र

भागवत में जिस प्रकार विष्णु, ब्रह्मदेव या मारायण के अनेकसे अवतारों की वर्णना हुई है उसी प्रकार लक्षावतार सूत्र ३० में कहा गया है कि कुछ अनन्त रूपों में अवतीर्ण होते और मन्त्र-अङ्गुलिषों में धर्म-वैशाना करेंगे।^१ ४० सू० में भागवत के समान चौबीस रूपों का उल्लेख हुआ है।^२ भागवत में पीता की भाँति पुनः-अन्म से धर्म की प्राप्ति और कठियुग में श्रेष्ठों का प्रयास मंद होने के उपरान्त धर्मयुग की स्थापना की जो परम्परा मिलती है उसका आरंभ लक्षावतार सूत्र के ७८५-७८९ सूत्रों में मिलता है। इन सूत्रों में अद्वैतिक श्रेष्ठों के कठियुग में नाश होने के उपरान्त पुनः वेद प्रवर्तन और धर्मयुग के आगमन की पुष्टि की गई है।^३ इसका अतिरिक्त भागवत में प्रतिपादित पुनरावतार के सध्या ४० सू० ७१५ में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कठियुग का उल्लेख हुआ है। इस सूत्र के अनुसार शाक्य

१ ४० सू० ५० २८८। २ ४० सू० ५० २९१।
३ ४० सू० ५० २९२। ४ ४० सू० ५० २९३।

सिंह का आविर्भाव तो कलियुग में होगा परन्तु सम्भवतः महामति तथागत बुद्ध और अन्य बुद्ध सत्ययुग में आविर्भूत होंगे।^१

इस प्रकार भवतारवादी तर्कों की दृष्टि से भागवत पुराण और लंकावतार सूत्र में बहुत-कुछ साम्य प्रतीत होता है।

उपर्युक्त महापानो सूत्रों के उपरान्त सुजावती ब्यूह और ब्रह्मस्यनिका ग्रन्थों में भागवत देवताओं का उल्लेख न होते हुए भी सर्वत्र और आद्यन्त तथागत के लिए भागवत् (मगवान्), भगवन्त भगवन्दीवता आदि भागवत् वाची शब्दों का सरपूर प्रयोग मिलता है।^२ यही परम्परा गुह्यसमाज और मंत्रुभीमूळ कल्प में भी परिकल्पित होती है। दोनों में आद्यन्त मगवान् भगवान् इत्यादि मगवद्वाची शब्दों का प्रयोग हुआ है। अन्त इतना ही है कि तथागत गुह्यक में तथागत बुद्ध के लिए और मंत्रुभीमूळ कल्प में अधिकतर मंत्रुभी बुद्ध के लिए मगवद्वाची शब्दों का प्रयोग हुआ है।^३ तथागत गुह्यक के ब्रह्मविद्याम परक में स्वतयागताविपति ब्रह्मपाणि के साथ बुद्ध मूढा और विष्णु वा भी विभिन्न समन्वय हुआ है। इस सब पर बड़ा कल्पवत्, महेश्वर वाग्धत्त और विश्वरूपपर और राजा विष्णु माने गये हैं।^४ इस तन्त्र में संभवतः विष्णु अवतार ह्यग्रीव का ही सर्वकर रूप ह्यग्रीव नाम से प्रस्तुत किया गया है। वे इस तन्त्र के अनुसार तीन मुक्तवाक्य, महाशोधी कल्पवाक्यों के सरस उद्धृत बताये गये हैं।^५

परन्तु तथागत गुह्यक से भी अधिक मंत्रुभीमूळ कल्प में लंकाकालीन समग्रदायी और भागवत तर्कों के समन्वय की भावना दृष्टिगत होती है। इस ग्रन्थ में मंत्रुभी का सम्बन्ध महेश्वर, विश्वरूप और स्कन्द से स्थापित किया गया है।^६ इस तंत्र के इन्द्रदेवतामक मन्त्र में विष्णु के पत्नीय गण्डवाहन चक्रपाणि और ऋतुर्मुञ्ज शब्द का प्रयोग हुआ है।^७ एक दूसरे स्थल पर मंत्रुभी जीवों में विष्णुम्बक्य कहे गये हैं।^८ मंत्रुभीमूळ कल्प में तन्त्र समग्रदाय के देवताओं के साथ विष्णु चक्रपाणि ऋतुर्मुञ्ज का गण्डवासन पर स्थित तथा गदा-संक्रान्त सखांकारभूषित मूर्ति का उल्लेख किया गया

१ कं सू ५ २८१।

२ ब्रह्मस्यनिका ५ १-२४ और और सुजावती ब्यूह ५ १-७८

३ नवान्त गुह्यक ५ २१८ और कं सू ८ कल्पेक परक के भाग्य में इन्द्रम्।

४ तथागत गुह्यक ५ ११। ५-तथागत गुह्यक ५ ७२।

६ मं सू ४ ५ २१-२२। ७ मं सू ४० ५ २३।

८ मं सू ४० ५ २५

है।^१ विष्णु के अनिर्दिष्ट मंत्रुषी कुमार की एक मूर्ति बराहाकार भी बनवाई गई है। ब महापार बराहाकार रूप में सम्भूत होने हैं।^२

अवतारों में केवल बराह का उल्लेख होने के कारण हम तत्र पर गुप्तवाहीन भागवत सम्प्रदाय के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। यों सामान्य रूप से विष्णु का प्रयोग अछुटे या अन्य देवों के साथ मिलता है। व कहीं तो 'विष्णु चक्र गदा हस्त' के रूप में उल्लिखित होते हैं, और कहीं 'यद् विष्णु महा चारै' के रूप में यद् तथा अन्य प्रदों के साथ उल्लेख किया गया है।^३ महाबाहू शाक्यमुनि मत्स्य के अनुग्रह के लिए महा और महेश्वर के साथ विष्णु का रूप भी धारण करते हैं।^४ शाक्यमुनि का यह गुणात्मक रूप भागवत के प्रभाव का परिणाम विहित होता है। इस प्रकार विविध स्थलों पर विष्णु का उल्लेख विविध रूपों में हुआ है।^५ कहीं तो अन्य देवों के साथ उल्लिखित व केवल देवता मात्र हैं। कहीं उन्हें अन्य प्रदों के साथ केवल प्रद मात्र रूप में परिगणित किया गया है। बौद्ध देवों के साथ उनकी तद्रूपता अन्य देवों के साथ ही स्थापित की गई है।

सिद्धवाहीन बौद्धतंत्र और सिद्ध साहित्य

बौद्ध साहित्य की उत्तरवाहीन परम्परा में आजकाले बौद्ध तंत्र और सिद्धों के साथ-साहित्य में भी भागवत तंत्रों का समावेश हुआ है। परन्तु दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि पूर्ववर्ती साहित्य में जहाँ भागवत तंत्रों का केवल सामान्य रूप अधिक प्रचलित रहा है वहाँ बौद्ध तंत्र या सिद्धों के अर्थात्तों में प्रायः विष्णु का त्रिदेवों का निरूपण रूप अधिक प्रदर्शित किया गया है। साधनमाहा में एक ओर तो महाबाहू और महाबाहू इत्यादि महाबाहू विशाखों का पूर्वजन्मों की परम्परा के अनुसार ही मन्त्र प्रयोग हुआ है परन्तु दूसरी ओर त्रिदेवों में प्रचलित विष्णु, ब्रह्मा, यद् अन्य देवों के साथ तारोत्सव कुम्भसंवादानामक बौद्ध देवी की सेवा सम्पादन करने वालेचक्राणु गये हैं।^६ इसी प्रकार अम्मल नामक एक बौद्ध देवता भी विष्णु, ब्रह्मा हर, इन्द्र, वैश्व और मुनिवों द्वारा सेवित और लक्ष्मी द्वारा चामर प्रचालित करानेवाला प्रस्तुत किया गया है।^७ साधनमाहा में हरिहरवामनोत्सव की अवलोकितेश्वर

१. म० मू० क० पृ० ४४।

२. म० मू० क० पृ० १५३ (बौरूपी महापरो बराहाधारसम्भव)

३. म० मू० क० पृ० २१५, २२८। ४. मू० प० पृ० क० पृ० २३५।

५. म० मू० क० पृ० २१३, ३३२, ४३४। ६. साधन मा० पृ० ३५०।

७. साधन मा० पृ० ५७२।

का एक रूप है, उलूक बाहन विपणु विष्णु कहा गया है।^१ इसके अतिरिक्त बौद्ध देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित करते हुए कहा गया है कि जो आयुबाधन तारा की पूजा करता है उसका मरु, इन्द्र विष्णु आदि देवता बाल भी बौद्धा नहीं कर सकते।^२ एक मरीची नामक बौद्ध देवता के शरणों में प्रायः सभी हिन्दू देवता शेषकों की तरह नतमस्तक रहते हैं।^३ गूतबामर नामक एक बौद्ध देवता का मुख्य कार्य शक, मरु, कुबेर आदि देवताओं का मर् विध्वंस करना है।^४

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि परवर्ती बौद्धधर्म में त्यों-त्यों देवतावाद का अधिक प्रसार होता गया त्यों-त्यों हिन्दू देवताओं को कुत्र बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी। उलूक बौद्ध ब्रह्मपामी धीर मंत्रयानी साधनों में प्रायः उनके विरुद्ध रूप को उल्लोपित किया जाने लगा। इन देवताओं में विष्णु भी सामान्य देवता के ही रूप में गृहीत हुए हैं।

हयग्रीव

यों तो बौद्ध मूर्तियों के निर्माण पर माहजनमूर्ति स्तोत्र या पूजापद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है परन्तु उनमें त्रैलोक्य अवतारों से सम्बन्ध मूर्तियों का अभाव विदित होता है।

अपवादस्वरूप विष्णु के अवतारों में मान्य केवल हयग्रीव की ही मूर्तिर्था बौद्ध देवता अशोक के साथ संयुक्त या स्वतन्त्र मिलती हैं। इस हयग्रीव का मुख भी हयमुख है ही, साथ ही उसके हाथों में जो आयुध और चिह्न मिलते हैं उन्के आधार पर इतिहासकारों ने उलूक सम्बन्ध विष्णु के अवतार हयग्रीव से ही जाना है।^५ साधनमात्र में हयग्रीव की भी मूर्तियाँ प्रतिपादित की गई हैं वह उत्कलकीय बौद्ध देवताओं के अनुसूच उन्हीं की परम्परा में हैं। यहाँ हयग्रीव के साधकों की जर्था करते हुए कहा गया है—जो हयग्रीव की साधना पूरी कर लेता है, वह विद्यापरी के लोक में जाकर सभी प्रकार के जातन्त्र बलस्वरूप कर लेता है। यहाँ देवेन्द्र ब्रह्मके ब्रह्मपति, ब्रह्मा मन्त्री वैश्वित्री सैन्धवपति और इन्द्र उसके प्रतिहार होंगे। समस्त देवताओं से वह विरा होगा और ब्रह्माचार्य शक उसके समस्त गुणों को उपरक्षित करेंगे।^६

१ साधन मा० पृ० ५०। २. साधन मा० पृ० २१४।

३ साधन मा० पृ० २०। ४ साधन मा० पृ० ५२२।

५. डी एच काठ इन्पीरियल कालेज पृ० २८२। ६ साधन मा० पृ० ५२०।

जो तो विष्णु के अवतार भी उपास्य रूप में मान्य होने पर सर्वोत्कर्ष वाली (हीनोपिस्टिक) रूप में वर्णित होते हैं फिर भी यहाँ ह्यमीन का उपास्य रूप बौद्ध उपास्य देवों की ही परम्परा में विहित होता है।

भागवत और शाक्त सत्त्व

उपर्युक्त देवों के अतिरिक्त साधन माका में भगवती कृष्णा, गुरुमुखी चतुर्भुजा तथा १० वराह के सदृश भागवत के साथ-साथ शाक्तों से प्रभावित देवियों का उल्लेख हुआ है।^१ सिद्धों के अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ सेकोदेष्टरीका में भी वज्र वराह, वज्र बैष्णव, वज्र कष्मी और 'वज्र विष्णवे नमः जैसे प्रयोग मिलने लगते हैं।^२ तथा उन्हीं के समानान्तर सम्भवतः शाक्तों के ही प्रभावानुसृत ब्राह्मी नारायणी, रौद्री, कष्मी, ईश्वरी, परमेश्वरी, वाराही का भी उल्लेख हुआ है।^३

इससे स्पष्ट है कि आठोप्यकालीन वज्रयान साहित्य पर भागवत तत्त्वों के साथ शाक्त रूपों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। परिणामतः इन देवियों की उपासना मूर्ति उनके मंत्रों के साथ वज्रयानी साक्षात् में प्रकटित हो चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कमला बौद्ध सम्प्रदायों में भी भागवत सम्प्रदाय के सदृश समन्वय की मनोवृत्ति विकसित हो रही थी।

त्रिवेध

सिद्ध-साहित्य में भागवत तथा सम्बन्धी जितने परम्परागत उपादान गृहीत हुए हैं, उनमें भागवत विशेषकों को छोड़कर सबसे अधिक ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्राचीनिक उल्लेख हुआ है। परन्तु आठोप्य साहित्य में इनका उल्लेख महत्त्वपूर्ण न होकर संबन्धीक रहा है। भागवत साहित्य में त्रिवेदों को प्रायः गुणावतार के रूप में ही प्रवृत्त किया जाता रहा है, जिसके फलस्वरूप इनका स्वयं उपास्य पुरुष श्रीकृष्ण की अपेक्षा प्रकृत उपास्य नीचे दृष्टिगत होता है। सिद्धों ने भी अपने चर्चापत्रों में कृतिप्रसूत रूपों पर तथागत या अन्य ब्रह्म उपास्यों की तुलना में इनकी क्युता ही प्रवर्णित की है। सिद्ध चर्चापत्रों में कथा में त्रैलोक्य के स्वतंत्र होने की चर्चा करते हुए ब्रह्मा और विष्णु की स्थिति भी कथा में ही मानी गई है।^४ सिद्धों ने कहाँ

१ साधन मा ५० २४४।

२ सेकोदेष्टरीका पृ ३। ३ सेकोदेष्टरीका पृ १८।

४ दि० का नारा पृ ९ पंक्ति ५० (कथा) —

काय तीर्ण क्षय काम, पूज्य कुलदीनर्ह।

महा-विष्णु त्रैलोक्य, सत्त्वदि विद्येन चर्तुः॥

मूर्तिपूजा का बहिष्कार किया है वहाँ बौधिसत्त्व के साथ-साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की सेवा का भी विरोध किया है।^१ राहुकवी द्वारा सपादित बोहाक्योच में रवि शशि के साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर में भी श्रान्ति न करने के लिए कहा गया है।^२ एक दूसरे दोहे में गुह-वचन के आचार पर साहित साधना को अनुत्तर धर्म माना गया है और हरि-हर और बुद्ध की उपासना को सम्भवतः कर्म तक ही सीमित बताया गया है।^३ जब कामना की श्रान्ति होकर उसका लय हो जाय उस स्थिति में सरहपाद ने एक ऐसे कुलकीन उपास्य की पूजा की चर्चा की है जिनमें ब्रह्मा विष्णु और त्रिलोचन भी बिलीन हो जाते हैं।^४

इस प्रकार बौद्ध साहित्य और विसंस्कृत चर्चापत्रों में त्रिवैद्यों का जो रूप मिलता है वह साम्प्रदायिक नहीं जान पड़ता, क्योंकि वहाँ साम्प्रदायिक रूपों का उल्लेख हुआ है उसमें ब्रह्मचर्य त्रिवैद ही नहीं अपितु शक्र, स्कन्द, विनायक, कुबेर सूर्य आदि अन्य आलोच्यकालीन सम्प्रदायों के भी उपास्य सूचीकृत हुए हैं। परन्तु चर्चापत्रों में त्रिवैद्यों का ब्रह्म मर्त्या इनसे प्रथम मिलता है। सिद्धों ने अपने सर्वश्रेष्ठ उपास्यों की तुलना में इनके तुल्य रूप को ही प्रवर्षित किया है जो परमपुरुष से अभिन्नतक तीन सत्त्व रज तम के गुणात्मक रूप में अधिक प्रवर्षित रहा है। भागवतपुराण (१०. ३, २०) में ये ही तीनों रूप श्रीकृष्ण के गुणात्मक रूप माने गये हैं। अतएव सिद्ध-साहित्य में त्रिवैद उनके उपास्य के अभिन्नतक रूप न होते हुए भी पौराणिक गुणात्मक त्रिवैद्यों जैसे ही कहते हैं।

संग्रहाय

पूर्ववर्ती महायान साहित्य में तपप्राप्त बुद्ध को जितना अधिक बारायण से अभिहित किया गया है उतना अन्य पर्यायों से नहीं। परन्तु सिद्ध-साहित्य

१ बोहाक्योच नामकी पृ. ३६—

बन्द विष्णु महेश्वर देवा । बौधिसत्त्व न करतु सेवा ॥

२ बोहाक्योच (राहुकवी) पृ. २५—

रवि-शशि वैष्णवि मा कर जाण्ठी । बन्धा-विन्दु महेश्वर मान्ठी ।

३ बोहाक्योच (राहुकवी) पृ. २२ लाया—

*सरह बने अनुत्तर कर्म हरि-हर-बुद्ध के पद कर्म ।

४ बो० को (राहुकवी) पृ० २३—

आमान्य साण्य धन काय पथ पुम्बु कुकरीचर ।

बान्द-विन्दु-वरजोन जहि चार कित्थिकर ।

में नारायण की अपेक्षा 'जगन्नाथ' का अधिक प्रयोग होता रहा है। प्रजापति मन्त्रिकृत बौध्दिकवाक्यार में तद्यागत बुद्ध को जगन्नाथ से भी अभिहित किया गया है। वहाँ जन्म महाबली जगन्नाथ क धरण में जाने की चर्चा की गई है जो अगत्-रक्षक, मुक्तिदाता और सर्वत्रासहारी है।^१ 'ज्ञानसिद्धि' के प्रारम्भ में ही 'महबुद्धमय जगन्नाथ' की स्तुति की गई है।^२ वे पुनः दूसरे स्थल पर 'ब्रह्मसरव जगन्नाथ' की सजा से भी अभिहित किए गए हैं।^३ तद्यागत के अतिरिक्त 'प्रज्ञोपायविनिश्चय सिद्धि' में गुरु को जगन्नाथ कहा गया है।^४ यह परम्परा 'बौद्धान्त जो दोहा' में भी दृष्टिगत होती है। चर्यापद्धों की सिद्धों द्वारा की गई संस्कृत टीकाओं में प्रायः जगन्नाथस्वरूप गुरु का उल्लेख हुआ है।^५ बागची द्वारा सम्पादित सिद्धों की टीकाओं में भी जगन्नाथस्वरूप गुरु को सिद्धों ने उल्लेख किया है।^६

इससे विदित होता है कि जगन्नाथविग्रह (जगन्नाथपुरी) से बुद्ध का तात्कालिक स्थापित किए जाने का पूर्व या समकालीन जगन्नाथ बुद्ध की वृद्धभूमि विद्यमान थी।

भग

ब्रह्मपानी तन्त्रों में बौद्ध तन्त्र की परम्परा का अनुकूल भगवत् और भगवान् का प्रचार तो हुआ ही, जब वैष्णव पुराणों और तन्त्रों में प्रतिपादित छः भग वाङ् गुणों को भी किञ्चित् परिवर्तित रूप में अपना दिया गया। विशेष कर शैवसिद्धि में माय्य बीसवें सिद्ध नारोपा की रचना सेकोदेश टीका और बौद्ध तन्त्रों में विद्यमान 'ह्रिमत्र तन्त्र' में क्रमशः छः गुण और 'भग' का बीजोक्त रूप मिलता है। पूर्व महापानी साहित्य में यह रूप नहीं मिलता बल्कि इन तन्त्रों में परिवर्तित होता है।

पौ छः भगों का स्पष्ट उल्लेख चौथी शताब्दी तक रचित विष्णुपुराण (१।५।७१-७९ में) किया गया है। विष्णुपुराण में भगवत् शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—ब्रह्म पश्यति शब्द का विषय नहीं है तथापि उपामना कं किये उनका 'भगवत् शब्द' से उपचारतः कथन किया जाता है।^७

१ बौध्दिकवाक्यार पृ० १५ (२, ४८)—

अथैव उरणं नामि जगन्नाथान् महाबलान् ।

जगन्नाथैर्बुद्धान् सर्वत्रासहारां विनाम् ॥

२ ज्ञानसिद्धि पृ० १, १२, २

३ ज्ञानसिद्धि पृ० ४६।१ ९२।

४ प्रज्ञो० सि० पृ० ९।२ २३।

५ बी० पार० बी० पृ० ७७।

६ बी० बी० (बागची) पृ० ७९।

७ दि० पु० १।५।७१।

इस कथन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि अष्टक उपास्य रूप को लेकर 'भगवत्' शब्द की अवधारणा हुई। उपास्य होने के नाते 'भगवत्' में 'बहुवचन हिताय' की भावना भी बख़ूब है। इसी से विष्णुपुराण में भकार का व्यंजन सबका पापघ्न करनेवाला और सबका आचार तथा गकार का व्यंजन कर्म-कर्म प्राप्त करनेवाला, रूप करनेवाला भी स्थापित बतलाया गया।^१ इसी क्रम में सम्पूर्ण देश्यर्ष चर्म पक्ष की ज्ञान और बैराग्य इन दो को सम्मिश्रित रूप से मग कहा गया।^२ पुनः भगवान् की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि भगवान् शब्द का यों प्रयोग पूज्य पदार्थों को स्थापित करने में होता है परन्तु परमात्मा के लिए इस शब्द का प्रयोग मुख्य माना जा रहा है और अन्य पूज्य पदार्थों के लिए गौण। इससे यह निष्पन्न निश्चय्य बन सकता है कि भगवान् शब्द अन्य प्रयोगों की अपेक्षा परमात्मा के उपास्य रूप से भी सम्बन्ध का। यहाँ पुनः भगवत् शब्द के लिए शब्द ज्ञः गुणों की चर्चा की गई है जिसके ब्रह्म ज्ञान शक्ति, बल देश्यर्ष क्षीर्य और तेज हैं।^३ इस प्रकार 'भग' के नाम से प्रचलित दो सूत्रियाँ विष्णुपुराण के एक ही स्थान पर मिलती हैं। उनमें सबके देश्यर्ष और ज्ञान दोनों सूत्रियों में परिगणित हुए हैं। इन दो के अतिरिक्त प्रायः दोनों सूत्रियों में मित्र मित्र नाम आये हैं। इससे प्रतीत होता है कि वैष्णव सम्प्रदायों में भगवाची मित्र मित्र ज्ञः गुण प्रचलित थे।

किन्तु अन्तर्गत में भग का सम्बन्ध विष्णु के अवतारवादी रूपों में विशेष रूप से साम्य अवतारी उपासकों के साथ स्थापित किया गया।

इन देश्यर्ष आदि ज्ञः गुणों का प्रभाव सिद्ध साहित्य पर लक्षित होता है। सेक्योद्देशटीका में नारोपा ने वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित ज्ञः भगों में स समग्र देश्यर्ष, क्षी, पक्ष और ज्ञान को समाविष्ट किया है तथा चर्म और बैराग्य के स्थान में रूप और प्रथम को स्थान दिया है।^४ देश्यर्षादि गुणों के पश्चात् 'द्वैजव तन्त्र' में भग की बौद्ध-सम्मत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। द्वैजव के अनुसार बड़े-बड़े भार आदि का भजन करने के कारण भजन ही भग कहा गया है। उन गुणों को प्रशास्य करनेवाली है इनके प्रशास्य भग कही जाती है।^५ इस प्रकार बौद्ध तन्त्रकारों ने भग की सम्प्रदायानुसृत्य व्याख्या ही नहीं की है अपितु प्रशास्य से भी अनेक सम्बन्ध जोड़ा है।

जो हो परन्तु बौद्ध धर्म में भगवान् सर्वतयागत को विष्णु के समान ही देश्यर्षादि गुणों से युक्त माना गया है।^६ सेक्योद्देशटीका में पुनः बुद्धों और

१ वि० पु १/५/७२।

२ वि पु १/५/७४।

३ वि० पु १/५/७५।

४ सेक्योद्देशटीका पृ १।

५ सेक्योद्देशटीका में पृ १/५/७६।

६ नामसिद्धि पृ ८।

ऐश्वर्यों के अयोध्याभित्त भग्नम्भ की चर्चा करते हुए कहा गया है—जिन सभी ऐश्वर्योंदि धर्मों में बुद्धों का उदय या सम्भवतः प्रादुर्भाव होता है—वही धर्मोद्भव कहा जाता है।^१ इसमें प्रकट है कि ऐश्वर्योंदि मत विशिष्ट-गुणों की महत्ता वज्रयानी सिद्धों में भी उन्मी प्रकार स्थापित की गई थी जिन प्रकार अबतारवादी बौद्धव सम्प्रदायों ने मध्यकाल में अपने उपास्यों के पर या नित्य रूप के अतिरिक्त मायाविशिष्ट अवतरित रूप को अपनाया था। उन्मी प्रकार की प्रवृत्ति वज्रयानी सिद्धों में भी दीप्त पड़ती है। पारोपा न सेछोद्दहाटीका में उपास्य तथागत को विष्णु या वामुदेव के सदस सर्वाकार, सर्वेन्द्रिय, विष्णु रूप के साथ-साथ विश्वमायापर और 'अवततः दारीरं' भी कहा है।

इससे विदित होता है कि यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो कम से कम परोक्ष रूप में अबतार ही आलोच्यकालीन सिद्ध भागवत तर्कों के साथ-साथ अबतारवादी तर्कों से भी प्रभावित थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार पूर्ववर्ती और परवर्ती बौद्ध और सिद्ध साहित्य में भगवत्, भगवान् इत्यादि शब्दों का अपेक्ष प्रचार रहा है। यों आलोच्य साहित्य के अध्ययन से ऐसा लगता है कि बौद्ध विद्वानों ने साम्प्रदायिक अतिव्यक्त को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है। किन्तु प्रसंगवश इन्होंने नारायण विष्णु आदि बौद्ध उपास्यों का उल्लेख ही नहीं किया है अथवा नारायण और विष्णु से बुद्ध को संबद्धित भी किया है। अलग-अलग प्रथम शती पूर्व की रचना कठिणविस्तर में ही बुद्ध एक प्रकार से नारायण के अबतार मान गए हैं। इसमें स्पष्ट है कि बौद्ध पुराणों में मस ही वाद में चढकर बुद्ध का विष्णु या नारायण का अबतार माना गया हो किन्तु स्वयं बौद्ध ग्रन्थों में न बहुत पूर्व ही नारायण नाम से अभिहित किए जा चुके थे। इससे कम काल में नारायण की उपासक पूजा का भी पता चलता है।

अहाँ तक विष्णु के अबतारों का प्रसंग है आलोच्य साहित्य में विष्णु के अबतार के रूप में किसी भी अबतार की चर्चा नहीं मिलती। केवल मंहुषी मूककल्प में महुषी बुद्ध स्वयं विष्णु के चिन्हों से अभिहित किए गये हैं। इसके अतिरिक्त कठिणविस्तर पृ. ५३९ में नृसिंह, पृ० १९१ में कृष्ण, लंकावतार सूत्र पृष्ठ १६६ में राम तथागत गुह्यक पृ० ७१ में हयग्रीव और मनुष्यमूल कल्प पृ० १५३ में वराह का उल्लेख हुआ है। ये सभी अबतार पन कृत्तियों में विष्णु की भवेका बुद्ध के ही आधिर्भाव या प्रतिरूप मान

मने हैं। अष्टावतारसूत्र १० १८८ में बुद्ध के बकि अवतार की चर्चा हुई है जो वामन अवतार का परिवर्तित रूप विहित होता है।

विष्णु रूप की दृष्टि से परवर्ती कलकामी साहित्य में विष्णु अवतार और बुद्ध के निकटतम सम्बन्ध का पता चलता है।

जन्त में भागवत संप्रदाय में व्याप्त देवर्षादि का गुणों का भी प्रचार ब्रह्मपात्री सिद्ध साहित्य में दृष्टिगत होता है, जिनमें देवर्षि ज्ञान प्राप्त और श्री वे चार तो सीधे वैष्णव साहित्य से सूचीत हुए हैं और शेष प्रपञ्च और रूप बौद्ध सिद्धों की अपनी देव हैं। इसी क्रम में सिद्धों ने 'मग' की व्याख्या भी अपने मत के अनुरूप की है।

उपरोक्त उपादानों के भागवत तत्त्व से संबंधित होत हुए भी आलोच्य साहित्य में बौद्ध अवतारवाद की विविध रूपरेखा मिलती है जिस पर अगले अध्याय में विचार किया गया है।

बुद्ध का अवतारवादी विकास

इतिहास की दृष्टि में बुद्ध भले ही मनुष्य ही किन्तु जहाँ तक उनका सम्बन्ध धर्मविक्षेप से है, वे महापुरुष बौद्ध धर्म के प्रवर्तक या धारता मात्र नहीं अपितु लोकोत्तर पुरुष माने गए। उस काल में महात्माओं और ऋषियों का जो अमर्यादी प्रभाव भारतीय जन समुदाय पर पड़ चुका था बुद्ध उसके विरागी होत हुए भी महात्मा जनसमूह के विश्वास का अतिक्रमण नहीं कर सके। महान्त शक्ति विष्णु के अनुसार बुद्ध के जीवन में ही उनके लोकोत्तरत्व की प्रसिद्धि हा चली थी, जिससे विद्वान् बुद्ध ने कहा था कि इस प्रकार मेरे विषय में अनुमान करना मेरी निन्दा करभा है।^१

लोकोत्तर रूप

कलकाल में उनके त्वाभाषिक मानवीय जीवन को केन्द्र जिन कथाओं का प्रणयन हुआ, उनमें लोकोत्तर कथाओं का समावेश बढ़ता गया।^२ इस लोकोत्तरीकरण का एक यह हुआ कि स्वर्ग बुद्ध ही अब अपने दिव्य रूप का

१. महाभाष्य १७ यन्त्रिभक्तियाय, ७२वां सूत्र।

महाभाष्य १० १५ १८। उपायता में केन्द्र के बतलाया है जिस प्रकार बकिहूरे निशान मन्थिरेनिराम तथा विनयपिटक की अष्टकवार्य मारुत में मानवीय भी और कालकाल में इन पर लोकोत्तर रूप बढ़ाया गया।

परिचय देने लगे। छक्तिदिस्तर क प्रसंगों में उनके दिव्य जन्म की कथाओं से उनकी भक्तारोमुन्नी प्रवृत्ति की पुष्टि तो होती ही है,^१ साथ ही बुद्ध भी देवमन्दिर में जाने के लिए कहने पर स्वयं कहते हैं कि मुझ में बढ़कर कौन देवता है? मैं देवाधिदेव ही तो हूँ। जब कुमार देवद्वार में आकर ज्योंही दक्षिण पैर रखते हैं तभी ही भक्ततम्य विविध देव-प्रतिमाएँ उनके पैरों पर गिर कर नमस्कार करती हैं और अपने स्वरूपों का परिचय देती हैं।^२

पौद्गलम क प्रवर्तन क क्रम में बुद्ध क शास्ता या प्रवक्तक रूप का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया त्यों-त्यों बुद्ध में अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियों क चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन की अवधारणा की गई। दास्य शास्ता क छिपे रहनमय चक्रमण क निर्माण करते हैं। तयागत भावकों क साथ जब यमक प्रतिहार्य करते हैं—तो उनके ऊपर के शरीर से अक्षिपुत्र निकलता है और निकले शरीर से पानी की धारा बहती है। ये देवता और मनुष्यों को देखते-देखते कृपणों की हरिमर्मा झाड़ते हैं।^३ जब उनके चमत्कारों से प्रभावित होनेवाले भक्तों की संख्या बढ़ने लगती है। भक्त विष्णु एक मात्र यही परामर्श देते हैं महानाम! 'तुम तयागत का स्मरण करो—ब भगवान् अर्हत सम्पक् सज्ज विद्याचरण-संग्रह सुगत लोकविद् अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्यों क दास्ता है।'^४ विम्वरनिगम ने महापरिनिर्वाण सूत्र (इण्डियन लिट० सी० २ पृ० १८ ३१) में इनका मामनी और अतिमाननी कथाओं का समुक्त रूप स्पष्ट किया है। इस सूत्र में बुद्ध अधिक बुद्ध होने क कारण आनन्द से दूसरे की धरण ब जोड़कर अपनी धरण और धर्म की धरण खोजने के लिए कहते हैं। किन्तु इसके बाद बाके बंस में कहावाया गया है कि तयागत चाँहें तो कल्प भर तक धर सकते हैं।^५ सेलमुच में सेल प्राण्य बुद्ध में महापुरुषों के ३० लक्षणों को तो स्वामाविक रूप में तथा अन्य दो गुण चिन्हों को उनके योगबल के प्रताप से देख पाता है। तत्पश्चात् वह यह इच्छना चाहता है कि ये बुद्ध हैं कि नहीं। वही सेल और भगवान् के बार्त्ताकाप में भगवान् स्वयं कहते हैं कि 'लोक में विषयका बार-बार प्राहुर्नाब दुर्लभ है वह मैं (राग आदि) शक्य का पद्मेबाका अनुपम सज्जुद्ध हूँ।'^६

दिव्य जन्म

इस प्रकार बुद्ध में एक ओर तो चमत्कारपूर्ण लोकोत्तर रूप का प्रसार हुआ और दूसरी ओर बुद्ध क जन्म को भी सदा इस लोक में बुद्धम कहा

१ क वि पृ २३२ अध्याय ७।

२ क० वि पृ २३६-२३७।

३ बुद्धचर्या पृ ८६-८९।

४ बुद्धचर्या पृ २५३ महानाम सुत्त।

५ महात्मान प्र ६० १९।

६ बुद्धचर्या पृ० २६५ सेलमुच।

जाने लगा। वसुपुत्रिय-सुक्त में स्पष्ट कहा गया है कि त्रिसका सदा प्रादुर्भाव इस लोक में दुर्कर्म है, वह प्रसिद्ध 'बुद्ध' नाम शोक में पैदा हुए हैं।^१ प्रस्तुत सुक्त के अतिरिक्त तैत्तिरीय सुक्त और जम्बूद्वीप सुक्त में भी गीता (४-९) में प्रतिपादित ईश्वर के दिव्य जन्म और कर्म के सरस तथागत के दिव्य जन्म और कर्म की चर्चा होवे लगती है।

बुद्ध के इस दिव्य जन्म और कर्म पर भारतीय संस्कृति में ब्राह्म पुनर्जन्म का पर्येष्ट प्रभाव पड़ा। पुनर्जन्म के प्रवेक्ष का मुख्य कारण यह भी रहा है कि बुद्ध ने कहीं भी पुनर्जन्म का विरोध नहीं किया था।

पुनर्जन्म

कल्पतः उनका दिव्य जन्म बाद में पुनर्जन्म से भी प्रभावित होता गया और विष्णु के अवतारवादी ग्रन्थों की मूर्ति उनके बार-बार जन्म देने की प्रवृत्ति का विकसित हुआ।

बौद्ध धर्म की परिधि में विकसित १८ निक्रयों में छ कठिणव निक्रयों में बुद्ध के लोकोत्तर रूप और अवतारवादी जन्म को अपना दिया। लोकोत्तर वाचियों के विख्यात ग्रन्थ महावस्तु में बुद्ध के अवतारवादी लोकोत्तर रूप का विस्तृत परिचय मिलने लगता है। महावस्तु में ही एक स्थल पर केवल बुद्ध को ही नहीं अपितु उनके शरीर आहार और नींदरक्षण को भी लोकोत्तर कहा गया है। वे इस मत के अनुसार माता-पिता से उत्पन्न नहीं होते अपितु इन्द्रा जन्म उपपादक है।^२

इससे स्पष्ट है कि बुद्ध में जिन लोकाचर तन्त्रों और महापुरुषों के ३२ कर्षणों का समन्वेष हुआ उन्हीं में उनका अवतारवादी दिव्य जन्म और कर्म की भी भावना विद्यमान थी।

इसके अनन्तर पूर्व जन्म का प्रभाव सुक्त-कथाओं में भी दृष्टिगत होने लगता है। इन पूर्वजन्म की सुक्त-कथाओं में कमी राजा कमी ब्राह्मण आदि से बुद्ध को अभिहित किया गया है। महासुदस्मन सुक्त (शीघ्र० १।४) की कथा के अनुसार बुद्ध पूर्व जन्म में महासुदर्शन नामक चक्रवर्ती राजा थे। इसी प्रकार महागार्धि सुक्त (शीघ्र० १।६) के अनुसार पूर्वजन्म में बुद्ध महागो विंद नामक ब्राह्मण थे।

१ बुद्धवर्षा १० १०५ वैसुपुत्रिय सुक्त।

२ शीघ्र व० १० १ ११ महावस्तु की १५ १६३।

उपयुक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि बुद्ध के प्रारम्भिक अवतारवादी रूप के निम्नान्त में अक्रोत्तर रूप, दिव्य या दुर्लभ जन्म और पुनर्जन्म का विशेष योग रहा है। यह धारणा भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों के प्रतिबद्ध नहीं है क्योंकि वैष्णव सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य भारतीय सम्प्रदायों के प्रवक्तव्य भी प्रायः इन्हीं तथ्यों से प्रेरित होकर अवतार रूप में प्रचलित होते रहें हैं।

अतएव इन तथ्यों के प्रभाववशा किस प्रकार बुद्ध के विभिन्न रूपों का विस्तार हुआ, यह भी इसी प्रसंग में विचारणीय है।

अनन्त बुद्ध

कालान्तर में विभिन्न बुद्ध रूपों का अतिना विकास हुआ उसमें बुद्धत्व प्राप्ति के निमित्त की गई साधना या पारमिताओं के अभ्यास का विशेष योग रहा। पारमिताओं पर आगे चलकर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। परन्तु सूत्राकार (१।७७) में बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रयत्न का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कोई पुरुष आदि से बुद्ध नहीं होता क्योंकि बुद्धत्व प्राप्ति के लिए, पुण्य और ज्ञानसंभार की आवश्यकता है। फिर भी क्रमशः बुद्धों की संख्या बढ़ती ही गई। यद्यपि प्रारम्भ में यह माना जाता था कि एक साथ ही बुद्ध नहीं हो सकते किन्तु महायाग मठ में एक काष्ठ में अनेक बुद्धों का अस्तित्व भी स्वीकार किया गया। उनकी स्थिति में केवल लोक सम्बन्धी प्रतिबन्ध मात्रा गया कि एक लोक में अनेक बुद्ध एक साथ नहीं हो सकते।^१

इससे बुद्धों की संख्या में आभासीत वृद्धि हुई। सद्धर्म पुस्तिका में अनन्त बोधिसत्त्वों की उपमा गंगा की बालुका से ही गई है और कहा गया है कि य ममी बोधिसत्त्व लोकम्^२ है।^३ आगे चलकर यही उपमा बुद्धों के लिए रुद्र-मी प्रयुक्त हुई मान पड़ती है।

लम्बावतार सूत्र में कबल यही नहीं बताया गया कि बुद्ध कोई भी रूप धारण कर सकते हैं,^४ अपितु कतिपय सूत्रों में पुनः यह कहा गया कि गंगा की बालुका के समस्त असंख्य बुद्ध भूत, वर्तमान और भविष्य में तथागत होते हैं।^५ इन कथनों का अवतारवादी रूप लम्बावतार सूत्र के ही उत्तर खंड (सुगायकम्) में स्पष्ट दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार विष्णुपुराण और भागवत में विष्णु के अमक्य अवतार माने गए हैं, उसी प्रकार इन ग्रन्थ के एक सूत्र के अनुसार पृथ्वी पर असंख्य बुद्ध भी अवतरित हात हैं। इनके रूपकायों की या

१. शी व ३० पृ० २४-२७।

२. शी सू ५०९।

३. सद्धर्म पु० पृ० ३०२। २४ ९।

४. शी सू० ५ २९८।

गौरीस भतीत बुद्ध

बौद्ध साहित्य में उपर्युक्त गौरीस बुद्धों को भतीत बुद्ध माना गया। गौरीस बुद्धों के प्राथमिक समूह बुद्धवत्स में इनकी कल्पना भतीत बुद्ध के रूप में हुई है।^१ इस अष्टादश परिच्छेदों के पद्यात्मक ग्रन्थ में पूर्ववर्ती १४ बुद्धों की जीवनी पौराणिक ढंग से ही गई है।^२ इन बुद्धों के साथ बुद्ध को सम्बद्ध करने के विभिन्न पद्य कहा गया है कि पूर्वजन्मों में साक्यमुनि बुद्ध ने इन गौरीस पूर्ववर्ती बुद्धों की सेवा की थी। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में उनका कल्पना पश्चीसवें बुद्ध के रूप में किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में पश्चीस बुद्धों की जीवन-गाथा का वर्णन हुआ है। इसमें गौरीस पूर्ववर्ती बुद्ध तो भतीत बुद्ध हैं और साक्यमुनि गौतम बुद्ध वर्तमान बुद्ध हैं।

किंतु केवल इसी कल्पना से बौद्ध पंडित संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने भाषी बुद्ध की कल्पना कर इस ग्रन्थ के पूरक स्वरूप 'अनागत वत्स' की रचना की। इसमें पश्चीसवें बुद्ध मैत्रेय की जीवन-गाथा का बुद्धवत्स की ही शैली में वर्णन किया गया है।^३ भाषी बुद्ध की यह कल्पना कविक अवतार के समानान्तर जान पड़ती है। दोनों की कथाओं में भी किंचित् साम्य हीन पड़ता है। अनागत वत्स के अनुसार बुद्ध मैत्रेय बन्धु द्वीप (भारतवर्ष) की केतुमति नामक नगरी में ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होंगे। इनकी माता का नाम ब्रह्मावती और पिता का नाम सुब्रह्मा होगा। इनका प्रारम्भिक नाम अजित होगा। ये ८०० वर्ष तक गार्हस्थ्य सुख का उपभोग करने के बाद प्रजन्मा लेंगे।^४

इन तथ्यों के आधुनिक अर्थवचन से स्पष्ट है कि बुद्ध के विभिन्न रूपों की कल्पना के सूक्ष्म कारण वे गौरीस बुद्ध हुए। बुद्धवत्स में भतीत बुद्धों के रूप में इनके मान्य होने पर स्वभावतः वर्तमान और भाषी बुद्धों की भी आवश्यकता हो गई। अतः ऐतिहासिक बुद्ध को तो वर्तमान बुद्ध माना गया और भाषी बुद्ध के लिए मैत्रेय नाम के एक नए बुद्ध की कल्पना की गई। इस प्रकार भतीत बुद्धों की ही परम्परा में वर्तमान और अनागत बुद्धों के भी बीच विद्यमान हैं।

किंतु कथावतार सूत्र में पश्चीस स्वरूप आठ रूप और दो प्रकार के बुद्ध पुत्रों की चर्चा करते समय गौरीस बुद्धों का भी उल्लेख किया

१ महापात्र ५० १९।

२ बुद्धवत्स (द्वैतानन्दो संस्करण मिश्र उत्तम द्वारा प्रकाशित)

३ पा ला० ४ ५ ५५५।

४ पा ला २ ५ ५८९।

गया है।^१ इसमें कहा जाता है कि श्रीबीम बुद्धों की भी कोई परम्परा बौद्ध साहित्य में रही होगी। पर लुकाबतार सूत्र के आरम्भ (अ० १, २) में ही कहा गया है कि लुका में अतीत बुद्धों का निवास था।^२ परन्तु यहाँ अतीत बुद्धों की किसी संख्या बिशेष का उल्लेख नहीं है। पुनः छठ अध्याय में अतीत, वर्तमान और अनागत असंख्य बुद्धों की चर्चा हुई है^३ तथा एक कूमर स्थल पर इसी ग्रन्थ में बुद्धों की संख्या ३, ६ बतलाई गई है।^४

इससे स्पष्ट है कि आरम्भ में चौबीस बुद्धों की कल्पना की गई थी। उन्नीस अतीत वर्तमान और अनागत बुद्धों का भी विकास हुआ। परन्तु इनकी संख्या सबैक एक सी नहीं रही।

बुद्ध के संख्यात्मक विकास के अतिरिक्त उनकी उच्चतममार्गीय साधना, बुद्धत्व, उपदेश, धर्मप्रसार और बहुजनहितार्थ कार्य व्यापारों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के बुद्धों के रूप लक्षित होते हैं। इनमें से प्रायः अधिकांश का सम्बन्ध बौद्ध अवतारवादी तर्कों से रहा है।

प्रत्येक बुद्ध

प्राचीन बौद्ध धर्म के मुमुक्षुओं में तीन आदर्श प्रधान रूप से प्रचलित थे जिन्हें आशक, प्रत्येक बुद्ध और सम्पक् सम्बुद्ध के नाम से अभिहित किया जाता है। इस क्रम में पूर्ण रूप की अपेक्षा पर पद श्रेष्ठ है। आशक उपाय पशु से और बुद्ध निवृत्ति के मार्ग से ब परिश्रित थे। किन्तु बोधि ज्ञान के लिए उनको बुद्धादि शास्ताओं की श्रेयता पर निर्भर करना पड़ता था। फिर भी श्रेष्ठ निर्वाण का काम न करके वह कबल मृत्यु से मुक्त हो जाता था।

परन्तु प्रत्येक बुद्ध का आदर्श आशक से श्रेष्ठ है। इसका सम्बन्ध भी वैयक्तिक स्वार्थ तक ही सीमित है। प्रत्येक बुद्ध कबल अपन बुद्धत्व तक सीमित होता है। सामान्य रूप से प्रतीत्यसमुत्पाद की साधना से मनुष्य प्रत्येक बुद्ध होता है। इस साधना के द्वारा वह कबल व्यक्तिगत सुख दूर कर सकता है। अतः आशक और प्रत्येक बुद्ध में बुद्ध की व्यक्तिगत मापनाओं की साधारण और उत्पन्न वा अवस्थाएँ दृशित होती हैं। इन रूपों में बुद्ध की प्रारम्भिक उच्चतममार्गीय प्रवृत्ति का परिचय मिलता है^५ जिसका अनुसरण आशक और प्रत्येक बुद्धों ने किया। यों तो इनका सम्बन्ध व्यक्तिगत साधना से ही रहा है, किन्तु विविध अवतारवादी तर्कों की भी शक्यता इनमें मिलती है।

१ अ० सू० पृ० २५१ सूत्र ३१६।

२ अ० सू० पृ० १५८।

३ अ० सू० पृ० ५।

४ अ० सू० पृ० २५१।

चीचीस अतीत बुद्ध

बौद्ध साहित्य में उपर्युक्त चीचीस बुद्धों को अतीत बुद्ध माना गया। चीचीस बुद्धों के प्राथमिक समूह बुद्धवंश में इनकी कल्पना अतीत बुद्ध के रूप में हुई है।^१ इस अट्ठाइस परिच्छदों के पद्यारम्भ ग्रन्थ में पूर्ववर्ती १४ बुद्धों की जीवनी पौराणिक ढंग से दी गई है।^२ इन बुद्धों के साथ बुद्ध को सम्बद्ध करने के विभिन्न पद्य कहा गया है कि पूर्वजन्मों में शाक्यमुनि बुद्ध ने इन चीचीस पूर्ववर्ती बुद्धों की सेवा की थी। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में उनका जन्म पश्चीसवें बुद्ध के रूप में किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में पश्चीस बुद्धों की जीवन-गाथा का वर्णन हुआ है। इनमें चीचीस पूर्ववर्ती बुद्ध तो अतीत बुद्ध हैं और शाक्यमुनि गौतम बुद्ध वर्तमान बुद्ध हैं।

किंतु केवल इसी कल्पना से बौद्ध पंडित संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने माही बुद्ध की कल्पना कर इस ग्रन्थ के पूरक स्वरूप 'अनागत बंस' की रचना की। इसमें जम्बीसवें बुद्ध मैत्रेय की जीवन-गाथा का बुद्धवंश की ही शैली में वर्णन किया गया है।^३ माही बुद्ध की यह कल्पना कविक जगत्तर के समानान्तर जान पड़ती है। दोनों की कथाओं में भी किंचित् साम्य हीन पड़ता है। अनागत बंस के अनुसार बुद्ध मैत्रेय जम्बू द्वीप (भारतवर्ष) की कोटुमति नामक नगरी में ब्राह्मण बंध में उत्पन्न होंगे। इनकी माता का नाम ब्रह्मावती और पिता का नाम सुव्रथा होगा। इनका प्रारम्भिक नाम अशित होगा। ये ८०० वर्ष तक गार्हस्थ्य सुख का उपभोग करने के बाद प्रव्रज्या लेंगे।^४

इन तथ्यों के क्रमिक अध्ययन से स्पष्ट है कि बुद्ध के विविध रूपों की कल्पना के मूक कारण वे चीचीस बुद्ध हुए। बुद्धवंश में अतीत बुद्धों के रूप में इनके मान्य होने पर स्वभावतः वर्तमान और माही बुद्धों की भी आवश्यकता हो गई। अतः ऐतिहासिक बुद्ध को तो वर्तमान बुद्ध मना गया और माही बुद्ध के किये मैत्रेय नाम के एक नए बुद्ध की कल्पना की गई। इस प्रकार अतीत बुद्धों की ही परम्परा में वर्तमान और अनागत बुद्धों के भी बीज विद्यमान हैं।

किंतु अक्षरवतार सूत्र में पश्चीस स्वरूप आठ रूप और दो प्रकार के बुद्ध पुत्रों की चर्चा करते समय चीचीस बुद्धों का भी उल्लेख किया

१ महावाज ५ १५।

२ बुद्धवंस (वैशाली संस्करण मित्र उद्यम द्वारा प्रकाशित)

३ वा सा ५ ५ ५५५।

४ वा सा ५ ५ ५८९।

गया है।^१ इससे लगता है कि चौबीस बुद्धों की भी कोई परम्परा बौद्ध साहित्य में रही होगी। पर लुकापतार सूत्र के आरम्भ (अ० १, २) में ही कहा गया है कि लंका में अतीत बुद्धों का निवास था।^२ परन्तु यहाँ अतीत बुद्धों की किसी संख्या बिलेश का उल्लेख नहीं है। पुनः इन्द्र अर्घ्याय में अतीत, वर्तमान और अनागत अवस्था बुद्धों की चर्चा हुई है^३ तथा एक दूसरे स्थल पर इसी प्रश्न में बुद्धों की संख्या ३, ६ बतलाई गई है।^४

इससे स्पष्ट है कि आरम्भ में चौबीस बुद्धों की कल्पना की गई थी। अभी से अतीत, वर्तमान और अनागत बुद्धों का भी विकास हुआ। परन्तु इनकी संख्या सदैव एक सी नहीं रही।

बुद्ध के सामाजिक विकास के अतिरिक्त उनकी उच्छ्रमणशील साधना, बुद्धत्व, उपदेश, धर्मप्रसार और बहुजनहिताय कार्य व्यापारों के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के बुद्धों के रूप लक्षित होते हैं। इनमें से प्रायः अधिकांश का सम्बन्ध बौद्ध अवतारवादी तर्कों से रहा है।

प्रत्येक बुद्ध

माचीन बौद्ध धर्म के मुमुक्षुओं में तीन आदर्श प्रथम रूप से प्रचलित थे, जिन्हें आत्मक, प्रत्येक बुद्ध और सम्पक् सम्बुद्ध के नाम से अभिहित किया जाता है। इस क्रम में पूर्व रूप की अपेक्षा पर पद श्रेष्ठ है। आत्मक उपाय वगैरे और बुद्धत्व सिद्धि के मार्ग से बंध परिचित थे। किंतु बोधि ज्ञान के लिए उनको बुद्धत्व साक्षात्कारों की दृष्टान्त पर निर्भर करना पड़ता था। फिर भी श्रेष्ठ निर्वाण का काम न करके वह कबल मृत्यु से मुक्त हो जाता था।

परन्तु प्रत्येक बुद्ध का आदर्श आत्मक से श्रेष्ठ है। इसका सम्बन्ध भी वैयक्तिक स्वार्थ तक ही सीमित है। प्रत्येक बुद्ध केवल अपने बुद्धत्व तक सीमित होता है। सामान्य रूप से प्रतीत्यसमुत्पाद की साधना से मनुष्य प्रत्येक बुद्ध होता है। इस साधना के द्वारा वह केवल व्यक्तिगत बुद्ध ब्रू कर सकता है। अतः आत्मक और प्रत्येक बुद्ध में बुद्ध की व्यक्तिगत साधनाओं की साधारण और उच्च दो अवस्थाएँ दृष्टिगत होती हैं। इन रूपों में बुद्ध की प्रारम्भिक उच्छ्रमणशील प्रवृत्ति का परिचय मिलता है जिसका अनुसरण आत्मक और प्रत्येक बुद्धों में किया। यों तो इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत साधना से ही रहा है, किंतु द्विबिध अवतारवादी तर्कों की भी शुरुआत इनमें मिलती है।

१ अ० सू० पृ० २५१ सूत्र ३१६।

२ अ० सू० पृ० २९८।

३ अ० सू० पृ० ५।

४ अ० सू० पृ० २५६।

कल्याण का उद्देश्य और बहुजन-हित के निमित्त धर्म-वैद्याना की दृष्टि धर्म का ही मुख्य व्यवहारवादी प्रयोजनवात्मक तत्त्व है। इस दृष्टि से आदर्श और प्रत्येक बुद्ध की कल्याण भी सर्वव्यापकत्व है। सर्वों का दुःख दुःखत्व और परिपाम दुःखत्व का अवलम्बन करके हमकी कल्याण उत्पन्न होती है, और आदर्श की वैद्याना वाचिकी होती है परन्तु प्रत्येक बुद्ध की काविकी।^१

सम्यक् सम्बुद्ध

पर आदर्श और प्रत्येक बुद्ध की अपेक्षा सम्यक् सम्बुद्ध का आदर्श अधिक ध्येय ही नहीं समझा जाता जबकि सम्यक् सम्बुद्धि को ही बुद्ध भगवान् कहते हैं। वे अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्धि प्राप्त हैं। इनका कल्प कोटि-कोटि जन्मों की तपस्या और अक्षय विष-कल्याण भावना है। गोपीनाथ कविराज के अनुसार कलकत्ताकरण तथा ज्ञानावरण के निवृत्त होने से ही बुद्धत्व प्राप्त नहीं होता। आदर्श का ज्ञान बोध नहीं होता। प्रत्येक बुद्ध का भी पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। केवल सम्यक् सम्बुद्ध ही ज्ञान भाव से निवृत्त होकर अज्ञान मूर्ति में प्रतिष्ठित होता है।^२ सम्यक् सम्बुद्ध बोधिसत्त्व का ही प्रारम्भिक रूप है। प्राचीन साहित्य में सम्यक् सम्बुद्ध प्रचलित है तथा उत्तरवर्ती साहित्य में बोधिसत्त्व का अधिक प्रचार हुआ। क्योंकि दोनों अजन्त ज्ञान और महाबुद्धि प्राप्त करते हैं। दोनों में अजन्त ज्ञान का साथ-साथ कल्याण भी विद्यमान है। सम्यक् सम्बुद्ध का कल्प कर्मक रवदुःख को निवृत्ति न होकर—सार्थार्थ क्रिया परार्थ भावापादन वा विरम्भर जीव सेवा है। अपने उक्त पारिभाषिक धर्म में सम्यक् सम्बुद्ध का सर्वमं पुत्ररीक में प्रायः प्रयोग हुआ है।^३ सेवा-सुख में सम्बुद्धों का दर्शन और धम्म बार-बार बुद्धिमत् बताया गया है।^४ एक कथा के अनुसार शाक्य मुनि ने ५५० विविध धम्म लेकर पारसिताओं के अध्यास द्वारा सम्यक्-सम्बुद्ध की कोकोत्तर-संपत्ति प्राप्त की थी।^५ महायान धर्म में महाकल्याण को सम्यक् सम्बुद्धि का साधन माना जाता है। इसके साधक सम्यक् सम्बुद्ध महापारमिता के अनुसार साधोपम बताया गए हैं।^६

इससे स्पष्ट है कि सम्यक् सम्बुद्ध बुद्ध का सम्बुद्धि प्राप्त रूप है। इस रूप में वे अजन्त ज्ञान और महाकल्याण दोनों की प्राप्ति कर चुके हैं। बुद्ध के

१ श्री ब. द. (कविराज पृ. २२)

२ सर्वमं पु. ५. २२।

३ श्री ब. द. पृ. २८२।

४ श्री ब. द. (कविराज पृ. २४)

५ बुद्धचर्या पृ. २२५।

६ श्री ब. द. पृ. २८२, २२५।

अवतार-कार्य तथा अवतारवादी रूपों के विकास में इस रूप का सर्वाधिक महत्त्व है। यही नहीं, बुद्ध के अवतर बौद्ध अवतारवाद के प्रसारक महायानी बोधिसत्त्वों के मूक में भी सम्यक् सम्बुद्ध नीच स्वरूप रहा है।

धर्मता बुद्ध, निःस्पन्द बुद्ध और निर्माण बुद्ध

बौद्ध धर्म में त्रिजगत् त्रिकायों (धर्मकाय, सम्भोगकाय और निर्माणकाय) का अधिक प्रचार रहा है, वे प्रारम्भ में बुद्ध के विविध रूपों से सम्बन्ध रहे हैं। इन कायों को ही पूर्ववर्ती साहित्य में क्रमशः धर्मता बुद्ध, निःस्पन्द बुद्ध और निर्माण बुद्ध कहा जाता था। लकावतार सूत्र के अनुसार क्रमशः धर्मबुद्ध से निःस्पन्द और निःस्पन्द बुद्ध से निर्मिता वा निर्माण बुद्ध उत्पन्न हुए। ये तीन जनक स्वयं रूप हैं और अन्य उनके परिवर्तित रूप हैं। विशेषकर इनमें धर्मबुद्ध ही सत्य बुद्ध हैं और अन्य बुद्ध उनका निर्मित रूप हैं। इन्हीं से बुद्धवंत का अधिक प्रवाह निःसृत होता है। निर्बलिष्ठ प्राणी तब से उगाठार इन बुद्धों का दर्शन करत रहे हैं। निःस्पन्द बुद्ध सम्भोगकाय का ही एक प्रतिरूप है। 'प्रज्ञापारमिता के अनुसार सम्भोगकाय बुद्ध का सूक्ष्मकाय है। इसके द्वारा बुद्ध बोधिसत्त्वों का उपदेशा बते हैं। यह शरीर उनका धेजः पुत्र है इस शरीर के प्रत्येक रोम रूप से अनन्त रश्मियां निःसृत होती हैं।' लकावतार सूत्र में विबेध्य त्रिरूप ता मिलत हैं किन्तु इनसे सम्बुद्ध त्रिकायों का परिचय नहीं मिलता। किन्तु लकावतार सूत्र की भूमिका में प्रो० सुत्तकी का कहना है कि ये परिवर्तन काय या निर्माणकाय अनिवार्य रूप से बुद्ध की इच्छा से उन ज्ञानियों की रक्षा के लिये निर्मित किये जाते हैं, जिन्हें बुद्ध-मार्ग में प्रवृत्त करना है। यदि वे किसी प्रकार बुद्धता की ओर प्रवृत्त नहीं हो सके तो कम से कम धर्मता भी उनको सुकाने के लिए वे महाकठना से जाविष्ट होकर कोई भी अवतार धारण कर सकते हैं।'

अतएव विबेध्य तीनों रूपों में प्रथम से बुद्ध के समाप्तन परब्रह्म के सहदा साक्षत सत्ता का भाग होता है और दूसरा रूप साधनों के लिये उपयुक्त उनका स्थातिः स्वरूप है। तीसरा निर्माण बुद्ध का रूप ही बौद्ध साहित्य में अवतार काय के नाम से विख्यात है। क्योंकि अवतार-कार्य के निमित्त विविध स्थान, विविध युग और विविध सामय समुदायों में भी करोड़ों निर्माण बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं। निम्न ही निर्माणकाय में व्यापक अवतारवाद का दृष्टिकोण अभिग्याप्त है।

मानुषी बुद्ध

यों तो निर्माण बुद्धों की संख्या अनन्त मापी जाती है किंतु सात मानुषी बुद्ध उल्लेख योग्य हैं। कहा जाता है कि प्रारम्भ में सात ही मानुषी बुद्ध के निर्माणकाय कहे जाते थे। वे समय समय पर ससार में धम की प्रतिष्ठा के किये जाते हैं।^१ इनके सख्यात्मक विकास के सम्बन्ध में कहा जाता है कि प्रारम्भ में वे सात थे बाद में २४ हो गए।^२ किन्तु महायान में बुद्धों की एक अल्पवस्थित सूची ही जाती है जिसमें २९ विभिन्न नाम मिलते हैं। उनमें से अठक नाम वाले सात तथागत भी विख्यात हैं महायोगियों के द्वारा मानुषी बुद्ध कहे जाते हैं।^३ पर पूर्वकालीन कृतियों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका क्रमिक विकास हुआ है। बुद्धचर्या में संकलित एक प्राचीन कथा के अनुसार सात 'मानुष बुद्धों' में से विपरयेन, शिखी और विरबन्धू के लिए कहा गया है कि उनका ब्रह्मचर्य विरथायी नहीं हुआ क्योंकि उनके द्वारा उपदेसित सिद्ध उक्त मानुषी बुद्धों के निर्माणोपरान्त ब्रह्मचर्य का पाठन नहीं कर सके, परन्तु ऋजुङ्गन्ध कोना गमन कस्तप के द्वारा उपदेसित लोगों ने उनका बाद भी ब्रह्मचर्य का पाठन किया।^४ यहाँ सात मानुषी बुद्धों में अक्षम और उत्तम वर्ग के चार मानुषी बुद्धों का उल्लेख हुआ है। कल्पवतास सूत्र में करयप ऋजुङ्गन्ध और कनक मुनि इन तीन ही का उल्लेख हुआ है।^५ इससे निहित होता है कि सात मानुषी बुद्धों का भी क्रमशः विकास होता गया। सग्रहायों में इस भद्र कल्प के सात बुद्ध कहे गए हैं जिनमें उक्त चार के अतिरिक्त सातवें भीतम हैं। इस प्रकार विपरयेन, शिखी विरबन्धू, करयप ऋजुङ्गन्ध, कनकमुनि और शक्यसिंह वे सात मानुषी विख्यात हैं। कहा जाता है कि दिव्य बोधिसत्त्व इन्हीं मानुषी बुद्धों के द्वारा विश्व में अपना कार्य करते हैं। बाद में बौद्ध तंत्र ग्रन्थों में मानुषी बुद्धों के भी बुद्ध शक्तियों और बोधिसत्त्वों का निर्माण हुआ जिनमें केवल ब्रह्मोचरा और आनन्द ही परिचित या पेटि हासिक विदित होते हैं।

इस प्रकार मानुषी बुद्ध प्रारम्भ में तो निर्माण बुद्ध से निर्गत सात बौद्ध अवतारों में गृहीत हुए। पर बाद में शक्तियों और बोधिसत्त्वों से कुछ इनके उपास्य रूप अधिक प्रचलित हुए।

सात मानुषी बुद्धों के अवन्तर पंच स्थानी बुद्ध भी बुद्ध के विशिष्ट उपास्य

१ बी ५०४ पृ १११।

२ बी ५ ६०६० १ ५।

३ बी ६६ पृ १।

४ उद्धरणार्थ ५ १४१-१४२।

५ ल सू ५ १८०।

रूपों में प्रचलित हुए। य तत्र भीर सिद्ध साहित्य में अधिक व्याप्त हैं इमलिय हन पर बाद में विचार किया गया है।

बुद्ध के पौराणिक या साम्प्रदायिक अनेक रूपों के अतिरिक्त उनके ऐतिहासिक चरित्र भी छलितविस्तर, महावस्तु तथा अभ्युप कृत बुद्ध चरित्र भीर सौन्दरमम् में अवतारत्व से उचित हाकर विप्रित हुए हैं।

ऐतिहासिक बुद्ध का अवतारवादी उपान्य रूप

विश्वे पृष्ठों में बुद्ध या अन्य बुद्धों के तिन रूपों का अल्पपन प्रस्तुत किया गया है। व समी बुद्ध ऐतिहासिक भीर बीरुपर्म के प्रवतक बुद्ध की अपेक्षा मिम्न भ्यक्तिय बाळे प्रतीत होते हैं। पुनर्जन्म या सावनात्मक साम्य के अतिरिक्त उनका ऐतिहासिक बुद्ध से कोई सापात् या सापेक्ष सबध नहीं जान पड़ता।

फिर भी गौतम बुद्ध के नाम से जो ऐतिहासिक बुद्ध विख्यात हैं वे भी अपने साम्प्रदायिक या साहित्यिक चरित्र ग्रन्थों में अवतारवादी रूप में वर्णित हुए हैं। विशेषकर महावस्तु छलितविस्तर, बुद्ध चरित्र भीर सौन्दरमम् में उनका जीवन चरित्र को बौध्यव और जैन महाकाव्यों के अवतारवादी उपादानों की दृष्टी में ही अनुस्यूत किया गया है।

वहाँ तक उनके अवतार-प्रयोजनों का प्ररन है वे प्रयोजन बौध्यव अवतार ह्युओं से बहुत कुछ साम्य रखते हैं। इसके अतिरिक्त बौध्यव अवतारवाद् (गी० ४, ६-७) में अवतरित रूप मायिक माना जाता है, उसी प्रकार ऐतिहासिक बुद्ध भी मित्यलोक से अवतरित होने बाळे मायिक रूप है। छलितविस्तर के प्रारम्भ में कहा गया है कि ये सम्यक् सम्बुद्ध देवताओं के गुट हैं, मगवान् हैं। वे एक दिन बुद्धार्कंकार प्यूह में भिमप्र थे। उसी समय इनके मिर से एक बुद्ध ज्योति निःसृत हुई। इस ज्योति से देवता, महेश्वर और उनके लोक भाळोकित हो उठते हैं।^१ इस प्रकार त्रुपित लोक से अवतरित होने के पूर्व व ज्योति निःसृत किया करते हैं।^२ देवता इनको अज्ञान और दुःख का नाश करनेवाळ्य मानते हैं। छलित विस्तर के दूसरे अण्याप में मिच्छक, मनुष्य, देवता आदि सभी अवतरित होने के किये इनकी प्रार्थना करते हैं। इन प्रार्थना में बौध्यव अवतारों के सदृश इनके अवतार प्रयोजनों की चर्चा हुई है। प्रार्थना के अनुसार बुद्ध कृपा भीर करुणा की मूर्ति हैं वे बुद्ध चय भीर मृत्यु का नाश कर विषय में शान्ति स्थापित करते हैं।^३ देवता प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

१ छ० वि० ५० २-३।

२ छ० वि० ५ ८५-८६।

३ छ० वि० ५ २६।

हे बुद्ध ! तुम त्रिरत्न के शास्ता और मार के लंहारक हो । तुम सीमा अक्षतरित हाकर विन और मार को अपने करतक से गष्ट करो । तुम देवताओं और ब्राह्मणों पर भी कृपा करने के किये अवतरित हो ।^१

उपरोक्त संगकाचरण से स्पष्ट है कि कल्पविस्तर की अवतार परम्परा महाकाव्यात्मक वैष्णव अवतारवाद से बहुत सम्बन्ध रखती है । कल्प विस्तर के बुद्ध में विन औरासी गुणों का उल्लेख हुआ है उनमें कतिपय गुण पौराणिक अवतारों की कोटि के हैं । वहाँ बुद्ध प्रत्येक युग के रघाव में प्रत्येक कल्प में जन्म लेते हैं ।^२ मागधत का कल्पावतार इससे प्रभावित कहा जा सकता है ।

सामूहिक वैश अवतार

बुद्ध के अवतरित होते समय कल्पविस्तर में सभी देवपुत्र भी अपना स्वर्गीय रूप छोड़कर ब्राह्मणों के रूप में अवतरित होते हैं । पुना कहा गया है कि सैकड़ों देवपुत्र जम्बूद्वीप में प्रकट होकर प्रत्येक बुद्धों की उपासना करते हैं ।^३ कल्प विस्तर में देवावतार के जन्म प्रसंग भी मिलते हैं । वे बुद्ध के अवतार काक में कहीं तो अर्द्ध परिवर्तित रूप में प्रकट होने वाले बताए गए हैं और कहीं वे मनुष्य रूप में भी उपस्थित होते हैं ।^४ यह देवावतार परम्परा महाकाव्यों की ही परम्परा में कही जा सकती है ।

अवतार वैशिष्ट्य

कल्पविस्तर के तीसरे अध्याय में उनके विशेष काक वैश स्थान और जाति में होने वाले अवतार कारणों पर प्रकाश डाला गया है । उस कारण के अनुसार बुद्ध सृष्टि के प्रत्येक परिवर्तन काक में जन्म रूपों की अपेक्षा कबल जम्बू द्वीप में ही अवतरित होते हैं । इनके अवतार के किये उपरोक्त स्थान मध्यवैश है । वहाँ वे केवल ब्राह्मण या क्षत्रियकुल में जन्म लेते हैं ।^५ पृथ्वी जब ब्राह्मणाक्रमण होती है तब य ब्राह्मण कुल में और जब क्षत्रियाक्रमण होती है तब य क्षत्रिय कुल में जन्म लेते हैं । दुपित लोक में ही इन बातों को विचार कर १७ गुणों से युक्त वंस में वे जन्म लेते हैं ।^६ इनके माता पिता दिव्य गुणों से युक्त ही हैं ही साथ ही बृधरथ-कौसल्या के सदृश अनेक जन्मों में कामग

१ क वि पृ २४।

२ क वि पृ २५-२८।

३ क वि पृ २९।

४ क वि पृ २८ में शोभों रूपों का उल्लेख हुआ है ।

५ क वि पृ ३०।

६ क वि पृ ४०।

५०० कोटिसत्रों के माता पिता रह चुके हैं। माया देवी इस सदस्य हरितियों की लक्षि से युक्त है।^१ वैकुण्ठ से अवतीर्ण होने के पूर्व विष्णु जिस प्रकार देवताओं से परामर्श करते हैं, कुछ जमी के समामास्तर तृपित लोक में सभी देवता, नाग बुद्ध, बोधिसत्व, अप्सरा प्रत्येक दिशा से एकत्र होते हैं। जब त्रित होम के समय वे उनके सामने १०८ धर्म श्लोकियाँ निस्तृत करत हैं।^२ इन १०८ श्लोकियों में विष्णु के कल्याण गुणों के सदस्य अनेक गुण विद्यमान हैं। जत हर्षे विष्णु के अवतारी गुणों के समस्त माना जा सकता है। बुद्ध देवता, शक, महेश्वर, गणेश, सूर्य आदि दिव्य कर्मों की अपेक्षा मानव रूप में ही आधिभूत होने की कामना करते हैं।^३ उनके अवतार-काल में धृष्टी का वातावरण अत्यन्त मनोरम और सुखमय हो जाता है। इसी प्रसंग में उनके अनेक अवतारी गुणों की चर्चा करते हुए यह भी कहा गया है कि उन्होंने अपने सभी शत्रुओं का नाश किया है। वे धृष्टीपति हैं और जब अवतरित होम जा रहे हैं।^४ बुद्ध के अवतरित होते ही देवता उनका अभिषेक करते हैं और उन्हें मनुष्यों का स्वामी होने के लिए प्रार्थना करते हैं।^५ प्राणीमात्र पर दया और अनुकम्पा के अतिरिक्त धर्म-प्रवर्तन उनका मुख्य प्रयोजन विहित होता है। 'भये प्रगाद कृपाका' के सदस्य यही अवतीर्ण होने पर उनकी स्तुति करते समय उनके विप्रहासक अवतारी गुणों की भी चर्चा की गई है।^६ इस अवतार काल में माया देवी का श्वेत हस्ति-स्वप्न जैन तीर्थंकरों की रूपम आदि स्वर्गों की परम्परा में विहित होता है। जतः जैन तर्कों का संयोग भी बौद्धावतार-परम्परा में दृष्टिगत होता है।

भारापण से सम्बन्धित

'कठिविस्तर' में कठिपण स्वर्गों पर हर्षे भारापण का अवतार या उनकी शक्ति से युक्त माना गया है।^१ इनकी मूर्ति कृष्ण के सदस्य तथा ये भगवत् स्वरूप कहे गए हैं।^२ इनका शरीर भारापण के समान अश्लेष और अमेघ है।^३ सभी पौराणिक काय वे ही धारण करते हैं और देवता जैष्णव अवतारों के समान हर्षे लोकहितार्थकारी मानते हैं। जतएव ये विष्णु के सदस्य 'सुर

१. क. वि० पृ० १५-१६।

२. क. वि० पृ० ५५।

३. क. वि० पृ० ७५।

४. क. वि० पृ० ७५।

५. क. वि० पृ० ८४।

६. क. वि० पृ० ८७।

७. क. वि० पृ० ११६ मूल ७, ६ और ७ १४, पृ० ११५ मूल ७, १।

८. क. वि० पृ० ११२ (११ में) तथा १७३ (१३, १)।

९. क. वि० पृ० ११२ (१२, २)।

सहावा' हैं। वे सुर भीर मनुष्य लोकोँ पर दया, अनुग्रह और अनुकम्पा रखते हैं।'

इन उपादानों से स्पष्ट है कि 'कवित्वविस्तर' के बौद्ध-अवतारवाद पर वैष्णव महाकाम्यात्मक अवतारवाद का स्पष्ट प्रभाव है। ऐश्वर्याओं का सामूहिक अवतार विष्णु के समान बुद्ध के उपास्यवादी सर्वश्रेष्ठ रूप के अतिरिक्त यह भी घोषित करता है कि नारायण का अवतारवादी रूप 'कवित्वविस्तर' के प्रलयक के पूर्व व्यापक रूप में प्रकटित था। यह 'कवित्वविस्तर' के विविध प्रसंगों से स्पष्ट है। 'महावस्तु' में भी कुछ अधिक साम्प्रदायिक रूप में उपर्युक्त बौद्धावतार का ही प्रतिपादन हुआ है अतः उसकी पुनरावृत्ति अनावरक है।

बौद्धपरित और सौन्दरनम्

'कवित्वविस्तर' की किंचित् अवतारवादी कपरेका-अन्वयेय के 'बुद्धपरित' और 'सौन्दरनम्' में उचित होती है। इन कृतियों के अनुसार भी वे सुविष्ट लोक के बीच से पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।^१ उनके अवतार काल में ग्या दैवी श्रेत गजराज को स्वप्न में शरीर के अन्तर्गत प्रविष्ट होते हुए देखती है।^२ जन्मघोष के मत से भी बुद्ध का जन्म उपपाहुक है। (सु० च १ ११) 'बुद्धपरित' में बुद्ध कहते हैं कि 'सगत हित एवं ज्ञान-अर्जन क किय मैंने जन्म किया है। ससारे में यह मेरी अन्तिम उत्पत्ति है। आठोष्म बुद्ध ने पूर्वकाल में धनक अतीत हुएों की सेवा की है। (सु० च० १ १९) 'बुद्धपरित' में वैशना इनके अतीत अवतार-कार्य की स्मृति कराते हैं।^३ उपर्युक्त तथ्यों क आकल्प से विदित होता है कि उस काल के जन्मघोष जैसे कवि काकिदास प्रभृति के सहस्र लक्षाधीन अवतारवादी प्रकृतियों से जगत्त ये। महापुरुषों के जन्म पर किंचित् साम्प्रदायिक रंग किय हुए अवतारवादी उपादानों का आरोप होता था। प्रायः वैष्णव अवतारवाद का प्रभाव बौद्ध भीर जैन दोनों सम्प्रदायों क कवियों और काव्यों पर उचित होता है।

इस दृष्टि से 'बुद्धपरित' का भार-पराजय उल्लेखनीय है। यहाँ सम्भवतः वैष्णव प्रतिद्वन्द्वी राजसों की ही परम्परा में भार को एक भयानक राजस के रूप में उसकी राजसी सेना क साथ चिहित किया गया है। यह बुद्ध से भयानक युद्ध करता है और बुद्ध पर पर्यंत-गुह के सहस्र जलता हुआ कुम्हा

१ सु० वि कम्परा ५० ४१२ ५० ५ २, ५१२ (२४ वां अध्याय)।

२ सौन्दरनम् २, ४८।

३ सु० च० १ ४ और सौन्दर ५ २, ५।

४ सु० च० २ २५।

५-सु० च० ५, २०।

पेछता है जो बुद्ध मुनि के प्रभाववत् टुकड़े-टुकड़ हो जाता है।' इस चरित काव्य के बुद्ध किसी भी गुरु परम्परा को भस्मीकार करत हुए धर्म के विषय में स्वयं अपने को स्वयम् मानते हैं। समस्तने योग्य सब कुछ समस्त लिपा है इसलिये वे बुद्ध हैं।^१ 'बुद्धचरित में बुद्ध के चमत्कारों के भी वर्णन होते हैं। बुद्ध आकाश में उड़ते हैं भीर पवन-वय पर चलकर हनुमान के महा सूर्य का रथ हाथ से स्पर्श करने हैं। वे शरीर को एक से अनेक और अनेक से एक बनाते हैं।'^२

इस चरित में उनका अवतार प्रयोजन स्पष्ट विदित होता है। वे कहते हैं कि 'एककाळ में जीव-लोक को भर्त्स देत कर मीने प्रतिष्ठा की कि स्वयं पार होने पर मैं जगत् को पार लगाऊँगा। भीर स्वयं मुक्त होने पर मैं सभी को मुक्त करूँगा।'^३ यों तो बोधिसत्वों के महा प्राणिमात्र का उद्धार उनका प्रमुख प्रयोजन प्रतीत होता है किन्तु बौद्ध साहित्य में प्रचलित सम्भवतः रूप, अरूप भीर काम तीनों लोकों में धर्म चक्र का प्रवर्तन इनका मुख्य अवतार-कार्य रहा है।^४ देखिये दुर्लभ ज्ञान इन्होंने आय जगत् के हित के लिये पाया है। वे अरपन्त कल्याणय प्राणिमात्र के हितैषी उपदेशक हैं।^५ परिनिर्वाण के समय पुन जगत् हित के लिये उनका जन्म ही चर्चा की गई है।^६

इस प्रकार ऐतिहासिक बुद्ध को लेकर दिन साम्प्रदायिक और साहित्यिक चरित-ग्रन्थों का निर्माण हुआ उनमें राम-कृष्ण की महाकाम्यारामक अवतार परम्परा गृहीत हुई है। स्वताओं का सामूहिक अवतार साम्प्रदायिक चरित कार्यों में अभिन्वित हुआ है। बुद्ध का उपास्य रूप भी यहीं प्रतिभासित होने लगता है। जैन तीर्थंकरों के महा इनकी अवतार-रूपा में स्वप्नों के प्रसंग मिलते हैं। फिर भी बुद्धों की साधनात्मक उत्कर्मजरील प्रसूति और धर्म-प्रवर्तन जैसे बौद्ध अवतारवाद के दो मुख्य तत्व इनमें विद्यमान हैं।

अवतार-प्रयोजन और अवतारी तद्वागत बुद्ध

'लक्षितविस्तर' में बुद्ध के कथित अवतरित रूप का ही प्रतिपादन नहीं हुआ अपितु अनेक अवतार-प्रयोजनों से भी उन्हें संबन्धित किया गया। उनका जीवन के मूर्त आदर्श ही अनेक अवतार कार्यों के रूप में प्रचलित हुए। य

१. बु० अ० २३, ४०।

२. बु० अ० १५, ४५।

३. बु० अ० १५, ३२-३३।

४. बु० अ०

५. बु० अ० १५, ५८।

६. बु० अ० १५, ३२।

७. बु० अ० २६, ५।

धर्मप्रवर्तक, बुद्धात्मा अपने कार्य और शक्ति में आदर्श अवतार प्रशास्त्र, वैद्य सन्न्यास, अमरत्व प्रदान करने वाले, पुत्रहीन, बुढ़ों को मारने वाले, साधुओं के सबसे मित्र तथा कल्याणकर्ता और मोक्षदाता माने गये।^१ वे समाज-कल्याण, संसार की समृद्धि, ईशता और मनुष्य की शुद्धि, महापान का प्रवर्तन तथा बोधिसत्त्वों को प्रोत्साहित करने के लिये प्रादुर्भूत होते हैं।^२ धर्म-प्रवर्तन के लिये तथागत, अर्हत्, सम्बक्सगुरु आदि का रूप धारण करते हैं। इस प्रकार अवतारवाद की उपबोधिवादी विचारधारा ने बौद्ध धर्म में प्रचलित 'बहुजन-हिताय बहुजनकामाय देवाया च मनुष्याणां च सर्वसत्त्वापुष्टिरयं' के हेतु साम्य के आधार पर अपने मार्ग का उत्तरोत्तर विकास किया।^३ अज्ञान-धाम्य मुनि कल्याणम विद्य प्रबोधन से अवतरित होते हैं उसमें केवल धर्मप्रवर्तन ही नहीं अपितु 'जब जब होंदि धरम की हानि' का भाव भी विद्यमान है। इसकी रूपरेखा 'जाधर्महृत्कीमूक कल्प' में मिलन लगती है। इस तन्त्र के अनुसार जब अधर्मी लोगों से सबों के जीव संकटग्रस्त हो जाते हैं। राम्यों में निम्न अध्वरण्या होने लगती है। राजा हुए विचल गये हो जाते हैं। मनुष्य मनुष्य से द्वेष करने लगता है। धर्मकोष्ठों की मरबा नष्ट होने लगती है तब पुनः-पुनः में बुद्ध अवतरित होकर उन्हें अनुशासित करते हैं और बाह्यारक रूप में सर्वत्र विचरते हैं।^४ 'कल्याणतार' सूत्र में भी तथागत द्वारा बुद्ध धर्मों से बुढ़ों को सुधारने की चर्चा की गई है।^५ 'सद्धर्म पुंडरीक' के अनुसार तथागत का अवतार एकमात्र महाकरणीयम रूप के लिए होता है। वे तथागत ज्ञान को प्राणियों के सामने प्रस्तुत करने के लिये आविर्भूत होते हैं।^६ धम्मसत्तरी पुत्र सभी विधाओं में जाकर भविष्य में भी बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, लोगों पर अनुकम्पार्थ एवं जन-कल्याण के विभिन्न मनुष्यों और देवों में धर्मप्रदान करते हैं।^७

इस प्रकार बुद्ध और तथागत के अवतार के विभिन्न आक्षेप्य साहित्य में ज्ञाना प्रकार के अवतार-प्रयोजनों की सृष्टि होती गई। किन्तु बाद में चल कर सम्प्रदायिक प्रयोजन प्रमुख हो गया। 'सद्धर्म पुंडरीक' में आगे चल कर कहा गया है कि जबकि बौद्ध ज्ञान के प्रकाशनाथ पुरुषोत्तम कोटवाच समुत्पन्न होते हैं। इनका कार्य एक ही है द्वितीय नहीं, परन्तु वह हीनयाव नहीं है अपि महापान है। अतस्त बुढ़ों ने मिलकर केवल एक ही पान (महापान) का

१. क० वि० अनु० ५० ३।

२. क० वि० अनु० ५० ४-५।

३. म० सू० क० ५ ६।

४. प० सू० क० ५० १५४।

५. क० सू० ५० २२१।

६. सद्धर्म पु० ५ ४ न० १।

७. सद्धर्म पु० ५० ४१।

अवतारणा की है। वे सर्वों पर अनुकम्पावस सूत्र (वैशुष्य सूत्रों) को प्रकट करते हैं।^१ यहाँ महायान और सूत्र के संकेत से कथक यदुजन दित ही नहीं अपितु साम्प्रदायिक प्रसार की मनोवृत्ति भी स्पष्ट है।

तथागत बुद्ध का अवतारवाद

इसी प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि बुद्ध में स्यों-स्यों अवतारवादी तत्त्वों का सम्प्रदायीकरण होता गया त्यों-त्यों उनका ऐतिहासिक रूप सुप्त होता गया। बौद्ध साहित्य में इस साम्प्रदायिक रूप का घोटक तथागत सबसे अधिक प्रचलित हुआ। तथागत बुद्ध पूर्णतः साम्प्रदायिक उपास्य रूप में गृहीत हुए। इन्हें नित्य ब्रह्म की समकक्षता प्रदान की गई। तुषित लोक के नित्य निवासी तथागत बुद्ध के विषय में 'लंकावतार सूत्र' में तो यहाँ तक कहा गया कि तथागत बुद्ध का अवतारी उपास्यों के सहस्र प्राकट्य होता है अगम नहीं। वे गर्भ में नहीं अवतरित होते अपितु उनका दिव्य प्रादुर्भाव होता है।^२

'सद्धर्म पुंडरीक' में अब तथागत का प्रादुर्भाव भी विष्णु के अवतार सहस्र बुरुभ माया गया।^३ ऐतिहासिक बुद्ध का अवतार वैशिष्ट्य तथागत बुद्ध में जाकर समाप्त हो जाता है। विष्णु के समान अब तथागत कोई भी रूप धारण कर सकते हैं।^४ अतएव तथागत बुद्ध पर बौद्ध अवतारवादी रूप होते हुए भी विष्णु का प्रभाव लक्षित होने लगता है। क्योंकि 'लंकावतार सूत्र' में कहा गया है कि तथागत के रूप में श्रीकृष्ण (विष्णुबिह्व स्थित है जिससे किरणें निकल रही हैं।^५ यहाँ वे तथागत विष्णु के ही एक रूप आभासित होते हैं। यों तो वे प्रायः उपवेश क निमित्त अवतरित होते हैं किंतु इनका सर्वोपरि वैशिष्ट्य तो अनेक ऐसे रूप धारण करने में है, जो ब्रह्मा, इन्द्रादि के द्वारा भी अवश्य है।^६

विग्रह रूप

तथागत की रूप अनेककल्पता में पाश्चात्य विभव, अन्तर्पामी और अर्थात् क तरह लक्षित होते हैं। क्योंकि विभवों की उत्पत्ति क सहस्र तथागत बुद्धों का प्रादुर्भाव भी 'वीपाबुत्पत्तरीपक' होता है।^७ 'लंकावतार सूत्र' के द्वितीय

१. सद्धर्म पु० पू० ४९ और पू० २१०। २० ३।

२. लं० सू० पू० २५२-२५२ सू० ३२४।

४. लं० सू० पू० ९१२ ४४।

५. लं० सू० पू० २४ २५।

३. सद्धर्म पु० मूल पू० ३१०।

६. लं० सू० पू० २३।

७. लं० सू० पू० ७४।

अप्याम में प्रतिपादित तथागत-गर्भ अन्तर्गामी रूप से बहुत कुछ साम्य रखता है।^१ अर्थात्तारों की भाँति तथागत मभिस्वरूप होकर अन्तर्गामी रूपों में अवतार-कार्य करते हैं। इस प्रकार तथागत बुद्ध क मूर्त और अमूर्त दोनों रूप हैं।^२ वे अनेक देशों में अनेक रूपों में दृष्टिगत होते हैं।^३

अतः वैष्णव और पाश्चराय दोनों का प्रभाव तथागत के अवतार और उपास्य रूपों पर रहा है। 'सद्धर्म पुंडरीक' के अनुसार तथागत क सभी विग्रह और मिति चित्र करोड़ों मनुष्यों को समाप्त रूप से तारने की क्षमता रखते हैं।^४ अतः बौद्ध धर्म में केवल विग्रह ही नहीं अपितु मिति-चित्रों को भी प्राणियों का उद्धारक उपास्यवादी अवतार माना।

बौद्ध अवतारवाद के पौराणिक (मीथिक) रूप

तथागत बुद्ध के अवतारी उपास्य विग्रहों का प्रचार तो हुआ ही साथ ही बौद्ध अवतारवाद में कतिपय पौराणिक उपास्यों का समावेश किया गया। 'लंकावतार सूत्र' में कहा गया है कि तथागत जो तो शाश्वत या विस्य रूप में अपने लोक में स्थित रहते हैं। फिर भी अपनी प्रतिष्ठा से वे कभी विरत नहीं होते। वे दुःखी प्राणियों के निर्वाण के लिए अपने रूप में अन्तर्गामी कल्पना बटोर कर रखते हैं। वे महाकायिक अथवा मायव-समुदाय को अपनी पृथग्मात्र संतान मानते हैं। तथागत इस उद्धार कार्य में हुए और वेद का भेद नहीं करते।^५

'सद्धर्म पुंडरीक' के अनुसार वे सभी क्षिप्रमाण सत्त्वों को अवशील्य प्रदान करते हैं तथा दुःखियों में सुख और आनंद का संचार करते हैं। वे स्वयं कहते हैं—मैं ही तथागत हूँ, इस लोक के संतारणार्थ उत्पन्न हुआ हूँ। मैं सद्धर्मों कीटि प्राणियों क लिए विशुद्ध धर्म का उपदेस करता हूँ।^६

बौद्ध उपास्यवादी अवतारवाद की इस मूर्ति पर पौराणिक रंग चहाते हुए 'सद्धर्म पुंडरीक' में कहा गया है कि तथागत क निर्वाण क उपरोक्त केवल ३२ कर्तों तक लोक और वेद के लिए सद्धर्म स्थित रहेगा।^७ 'लंकावतार सूत्र' में सृष्टि-चक्र क साथ अवतार-चक्र भी संबद्ध मानीत होता है। इस सूत्र ग्रन्थ क अनुसार बुद्ध अजन्मा होते हुए भी गृहस्थाणी सत्त क रूप में आविर्भूत

१ लं. सू. मू० ३८ अहु ६ ६५।

२ लं० सू. पृ ७८, ८९।

३ लं० सू. ६ २९ सूत्र ४४।

४ सद्धर्म पु. पृ० ५३। २ ८०।

५ लं. सू० कथकः पृ० २२४ २०२ २२२ और २६२।

६ सद्धर्म पु० पृ० २२८ (५, २८ २९ २)

७ सद्धर्म पु० ६ २८ (२ ३०)

होत हैं। इनके निर्वाण के बाद व्यास, कणाद, ऋषभ, कपिल और अन्य सत अवतरित होते हैं। तदनुसार क्रमशः भारत (कारव, पांडव) राम, मीर्य, मन्व और गुप्त तथा अंत में स्फेण्ड जात हैं। इन काल में धर्म का नाश हो जाता है तब सूर्य और अग्नि के संयोग से सृष्टि का संहार होता है।^१

युगावतार

संहार के बाद सृष्टि के आरम्भ और विकास में हिन्दू पुराणों की परम्परा के अनुसार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का क्रम माना गया है। अतः सृष्टि का आरम्भ होने पर सत्ययुग में पुनः चार वर्ण, राजा ऋषि और धर्म प्रायुभूत होते हैं। तथ्यागत बुद्ध ज्योतिर्मय रूप में स्वर्ग में और अन्य दो रूपों में मणि-मुग्धधों से युक्त देवता और टाकधर रूप में अवतरित होते हैं। य इनके सत्ययुगी अवतार हैं। इस अवतार में वे धर्म-वैशाना करते हैं।^२ सम्मयुग के बाद त्रेता और द्वापर के अवतारों का उल्लेख नहीं है। अब पुनः कलियुग में तथ्यागत बुद्ध शाक्यमिह के रूप में अवतरित होते हैं। इनके पश्चात् विष्णु, व्यास और महेश्वर का आधिर्भाव होता है।^३ इस प्रकार 'लकावतार सूत्र' के सम्मन्त्र परवर्ती सूत्रों में चौदह युगावतार का अमिन्त्र रूप लक्षित होता है। युगावतार-परम्परा का विकास 'लकावतार सूत्र' में क्रमशः हुआ है। क्योंकि उक्त युगावतार क्रम में त्रेता और द्वापर के अवतारों की जो संयोजना नहीं हुई थी उस पुनः अगले सूत्रों में युगावतार करने की चेष्टा की गई है। इन सूत्रों में कहा गया है कि करपप, ऋष्युग्ध और कनक तथा में (तथ्यागत बुद्ध) विरज और अन्य सत्ययुगी बौद्धावतार हैं। त्रेता में मति नामक एक पत्ता होगा वह महावीर ज्ञान के पूर्वो रूपों से परिचित होगा। यहाँ महावीर विद्यापन स जैन महावीर के समाहित होने का अनुमान किया जा सकता है। पुन बुद्धावतार पर ही बल देने हुए कहा गया है कि बुद्ध न तो द्वापर में त्रेता में कलि अधिपति सत्ययुग में आधिर्मित होकर बुद्धत्व प्राप्त करेंगे। यहाँ भी युगावतार-परम्परा का क्रम स्पष्ट नहीं है। बल बाद में होनेवाले पाणिनि, कात्यायन इत्यादि विद्वानों की चर्चा की गई है। इनमें बलि राज भी है इनका अवतार अन्य वैष्णव अवतार राजानों के सदृश जगत् में शान्ति और सुख की स्थापना के लिए होगा।^४

१ सं० सू० पृ० १८१।

२ सं० सू० पृ० १८६-१८७।

३ सं० सू० पृ० १८१।

४ सं० सू० पृ० १८७-१८८।

उपसृक्त युगावतार बीह-परम्परा पर हिन्दू पुराणों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। वही नहीं अपितु वैदिक उपादानों से भी बुद्ध का भवतारणादी सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

(अर्थ) वैदिक विरज प्रथम बौद्ध भवतार

'लंकावतार सूत्र' के कुछ सूत्रों में बुद्ध का भवतारपरक सम्बन्ध वैदिक विरज से स्थापित किया गया है। वैदिक साहित्य में 'विरज ब्रह्मा वा ब्रह्म के पर्याय तथा विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। प्रजा० १ ३ में विरजो ब्रह्मलोको' ब्रह्म लोक के विशेषण के रूप में तथा मुण्डक १, २, ११ में विरज 'रजोगुणरहित तपस्वी' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मुण्डक १, २, ११ में विरज ब्रह्म' ब्रह्म के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार प्रायः वैदिक साहित्य में 'विरज' ब्रह्मा और ब्रह्म के विशेषण वा पर्याय के रूप में आया रहा है। सम्भवतः दोनों के प्रथम अत्यन्त विख्यात होने के कारण यहाँ उनका पर्याय 'विरज बुद्ध का भी प्रथम भवतार माना गया है। ७१८ वें सूत्र के अनुसार बुद्ध का भी प्रथम भवतार विरज के रूप में काल्याणन परिवार में हुआ। इनकी माता बहुमति और पिता प्रजापति चण्डा के निवासी थे।' ८०१ सूत्र में विरज बुद्ध के सत्ययुगी भवतारों में परिगणित हुए हैं। विरज जब अरण्य में निवास करते हैं उस समय वैशाखीय ब्रह्मा उनको युगधर्म ब्रह्म, ब्राह्म की क्षत्री, करवनी और ऋषि प्रधान करते हैं। ये विख्यात योगी मुनि उपदेशक, निर्वाण के छोटक और सभी मुनियों के प्रतीक हैं।' विरज के इस रूप से यह प्रतीत होता है कि बाद में बुद्ध का सम्बन्ध वैदिक सम्प्रदायों से भी स्थापित करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु इस भवतार का किंसप प्रचार नहीं हुआ।

मायोपम और स्वप्नोपम भवतार

बीह साहित्य में जब तथागत बुद्ध के उपासनादी भवतार कथों का प्रचार हुआ उस समय से भी विष्णु के सत्य भक्तों को लेकर जन्म कथे वाले कथे गए। परन्तु इन्हीं दिनों बौद्ध साहित्य में भाषावाद का प्राचलन हो गया था। 'बोधिसत्त्ववतार' में प्रज्ञाकर मति ने तथागत बुद्ध के भवतारों को प्रबोधनविशिष्ट होने के कारण पारमार्थिक न भावकर मायात्मक माना।^१ इन्होंने सभी धर्मों के साथ तथागत बुद्धों को समानित करके वा

१ सं० सू० ५० २८८।

२ सं० सू० ५० १८९ सूत्र ८०१।

३ सं० सू० ५० २८८-२८९।

४ बोधिसत्त्ववतार १ १७३, ७।

धर्मों में विभक्त किया है। इनके कथनानुसार सभी धर्मों के देवपुत्र मायोपम या स्वप्नोपम दो प्रकार के होते हैं। अतः बौद्धधर्म में माय्य ब्रह्म, प्रत्येक बुद्ध, सम्पक् बुद्ध आदि भी मायोपम या स्वप्नोपम दो प्रकार के होते हैं।^१ लकावतार सूत्र में माया और स्वप्न की चर्चा तो हुई है किन्तु तथागत बुद्ध के यहाँ ज्ञानात्मक और मायात्मक दो भेद भी माने गए हैं।^२ पर मायावाद का निराकरण अपने अवतारी उपासकों की सुरक्षा के लिए कबक वैष्णवाचार्यों को ही नहीं करना पड़ा था अपितु बौद्ध विचारकों के समष्टि भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। मायावाद को लेकर सामान्य रूप से प्रश्न यह उठता है कि यदि भगवान् मायोपम है तो उसकी पूजा और भजना भी कात्पनिक है। प्रशास्त्र मति के अनुसार यदि वह मायोपम है तो साथ पुनः जन्म कैसे लेता है और मृत कैसे होता है? माया पुरुष तो विग्रह होकर उत्पन्न नहीं होता। भ्रम में बौद्ध विचारकों ने भी इस समस्या का समाधान बड़ी निकटता जो प्रायाग ब्रह्म के लिए ब्रह्मसूत्र में तथा विष्णु ब्रह्म के सगुण भाव के लिए मध्यकालीन वैष्णव आचार्यों ने निकाला था। ब्रह्मसूत्रकार एवं वैष्णव आचार्यों ने ब्रह्म की उत्पत्ति और अभिप्यक्ति को नदबत् या लीलात्मक माना था। अतः बौद्ध आचार्यों ने भी तथागत बुद्ध के अवतार रूपों को नदबत् स्वीकार किया है। इनके मतानुसार रगमूमि के नद के सहाय्य से बनाए गए रूपों में अवतरित होते हैं।^३ लकावतार सूत्र में भी तथागत-गर्भ के प्रसंग में कहा गया है कि ये शिव और अशिव दोनों के कारण हैं और नदबत् अनेक प्रकार के रूप ग्रहण करते हैं।^४ इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में एक वैज्ञानिक तर्क यह भी दिया गया कि साथ ही सत्ता होने के कारण माया भी असत्य नहीं है। सभी पदार्थ माया के स्वभाव से युक्त हैं। वे भाषिक होने के कारण रूपोत्तरित तो होते हैं किन्तु वे असत्य नहीं हैं।^५

इस प्रकार उपास्य तथागत बुद्ध के अवतार या विग्रह रूपों को माया से विमुक्त करन के प्रयत्न होते रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि बौद्ध सम्प्रदाय एवं साहित्य में उपास्यवादी अवतारवाद की भावना प्रबल होती

१ बोधिसत्वावतार पृ० १७९।

२ लं सू० पृ० ८२ सूत्र २४९ और पृ० १५५ सूत्र ११७-१२०।

३ बोधिसत्वावतार पृ० ४६२।

‘जथा मात्पुत्रमवै रोगमूमिगती नदः एक एव मानारूपे’प्रवचरति।

तथा प्रकृतैरतीति न दोषः।’

४ लं सू० पृ० १९०।

५ लं सू० पृ० १५५।

जा रही थी। इसके परिणामस्वरूप जागे चककर यों तो धर्म प्रवर्तन या उपामना को लेकर अनेकों अवतार कहे गए हैं किंतु पंच तथागत या पंच ध्यानी बुद्ध उनमें विशेष प्रचलित हुए।

पंच तथागत या पंच ध्यानी बुद्ध

पंच तथागत या ध्यानी बुद्धों का स्पष्ट अस्तित्व 'लुकावतार सूत्र' और 'सद्धर्म पुडरीक' में मिलने लगता है। परन्तु उस काल में ये उतने अधिक प्रचलित नहीं हुए जितना बौद्ध तंत्र और वज्रयानी सिद्धों में इनका प्रचार हुआ। 'लुकावतार सूत्र' में केवल पंचनिर्मिता बुद्धों का उल्लेख मात्र हुआ है और 'सद्धर्म पुडरीक' में पंच बुद्धों में परिगणित अमितायु या अमिताभ सप्पधर्म की स्थापना के निमित्त भविष्य में अवतरित होने वाले कहे गए हैं।^१

उपान्यसादी अवतार

भारमिक तंत्रों में से सर्वप्रथम तथागत' गुह्यक में पंच ध्यानी बुद्धों के अवतार और उपान्य दोनों रूपों का विस्तृत परिचय मिलता है। 'गुह्यसमाज' के अनुसार बुद्ध के रश्मिमेधम्यूह नाम की समाधि से—पाँच रश्मियों निःसृत हुईं।^२ इन्हीं पंच रश्मियों से पंच बुद्धों के उद्भव का आवास मिलता है। किंतु 'अह्वयवज्र' के अनुसार बुद्ध के ध्यान से पंच ध्यानी बुद्धों का आविर्भाव माना जाता है। 'अह्वयवज्र' में ही वैरोचन, रत्नसंभव अमिताभ भ्रमोद्यसिद्धि और अजोद्य को पंच स्त्रीयों से आविर्भूत तथा उनका प्रतीक माना गया।^३ 'गुह्यसमाज' के अनुसार तथागत ने विभिन्न ज्ञानों के आविर्भाव के लिए पाँच बुद्धों का रूप चारण किया। बाद में इनकी ही शक्तियों का भी आविर्भाव हुआ।^४ 'गुह्यसमाज' में कहा गया है कि तथागत मगवान स्वयं पंच स्त्री रूप में आविर्भूत होते हैं।^५ 'साधन-भाषा' के अनुसार विज्ञानवाद को वज्रयान का मूल रहा है अभी तक विज्ञान और योग्य की साधना के आधार पर निर्बान मानता था। उसी विज्ञानवाद से निर्गत वज्रयान ने महासुख नामक नए तत्व का समावेश किया तथा इसी शाखा में पंचध्यानी बुद्धों को पंच स्त्रीयों का स्वामी मान कर बुद्ध का सिद्धान्त प्रचारित किया।^६

१ लं सू ५ २५६ और सद्धर्म बु मूक ५ ११८। २, ४।

२. गुह्य समाज ५ १४। ३ तंत्रिक बुद्धिज्म ५ १४ और बुद्ध एक ५० २।

४ तथागत गु० मू ५ १८। ५. तथागत गु बुद्ध ५ ७।

६ साधन मा० मू ५ २६।

उपास्य रूप

उपास्य ज्यों विग्रहों के सहस्र प्यानी बुद्ध किसी भी समय आश्चर्यकता पहने पर उपासक के समय उपस्थित हो जाते हैं। सिद्धों में पद्म बद्ध ने 'गुह्यसमाज' की पद्धति का अनुसरण करते हुए पंच प्यानी बुद्धों का अपना उपास्य माना। इनका कहना है कि बिना इनकी सहायता के समाधि की अवस्था उपलब्ध नहीं की जा सकती। 'ज्ञानसिद्धि' के अनुसार मिल ज्ञान के माध्यम से निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है वह ज्ञान पंच तन्मात्र या पंच प्यानी बुद्धों के ज्ञान के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। वहाँ तक कि मंत्र, मन्त्र और मुद्रा इनकी सहायता के बिना शुद्ध हैं।^१

इस प्रकार सिद्ध युग में पंच प्यानी बुद्ध इष्टवैय के अतिरिक्त स्वयं ज्ञान स्वरूप समझे गए। फलतः सिद्धों में ज्ञानस्वरूप तन्मात्रों की उपासना अभिचार्य मानी गई। सिद्ध साहित्य में इनका सर्वप्रथम पाँच प्रकार के ज्ञानों से स्थापित किया गया। वे हैं क्रमशः आदर्श ज्ञान, समता ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पानुदान ज्ञान और सुबुद्धि ज्ञान, इनमें से प्रत्येक के एक-एक बुद्ध प्यानी माने गए हैं। वज्रयानियों के एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अष्टाव-सिद्धि' में पंच प्यानी बुद्ध और उनके अर्सेक्य प्रातुर्भावों की उपासना का प्रतिपादन किया गया है। 'सैकोद्देशटीका' में पंच बुद्ध समन्वित रूप में उपास्य माने गए हैं। वे पाचों नासिकान्द्र पर पंचरत्न रूप में स्थित कहे गए हैं।^२ चर्यापियों में बद्धचर शरीर का अर्थ बद्धकते हुए कहा गया है कि सभी वैरोचन आदि तन्मात्र सम्मोषि लक्षण से युक्त बद्धचर शरीर वाले हुए हैं। ये स्थापित पंच स्तंभों की नीर-नीरत्व समरसी भाव में स्थापित करने वाले हैं।^३

अवतार प्रयोजन

बद्धपानी साहित्य में प्यानी बुद्धों का अवतार प्रयोजन मंत्र और मुद्राओं का अवतारण और प्रचार रहा है। ये योग तन्त्रों के अवतार हेतु भी अवतरित होते हैं।^४ सिद्ध कृष्णाचार्य के अनुसार ये महाभुजस्वरुपी मौका लेकर मायाकाकबन्ध स्तम्भादि के समुद्र में उपस्थित होकर रक्षा करते हैं।^५ इन प्यानी बुद्धों के वृत्तक अवतार भी बौद्ध साहित्य में मिलते रहे हैं। 'सद्धर्म पुंडरीक' के अनुसार अमिताय्य का अवतार सद्धर्म की स्थापना के निमित्त माना

१. सा. मा. मू. पृ. ४९।
 २. सैकोद्देशटीका १०. ४१।
 ३. बी. पा. बी. १०. २२५।
 ४. सा. मा. मू. पृ. ५२।
 ५. बी. पा. बी. १०. २५।

जाता रहा है।^१ अमिताभ सिद्धत में अवलोकितेश्वर के अवतारक रूप में भी विख्यात है।^२ अशोभ्य के ब्रह्मरूप अवतार की चर्चा सिद्धों में मिलती है। ये अपने काक में अवतरित होकर वैरोचन की सुन्नर और अवपूर्तों क ३९ मंत्रों का प्रवर्तन करते हैं।^३ इस प्रकार ये तन्त्रों और सिद्ध मन्त्रों के अवतारक होने के भावे सिद्धों क उपास्य रूप में प्रचलित रहे हैं। ये तपागत महाकल्याणक विग्रह और भद्रुग्रह में समर्थ, दान्त, बुद्धांत और सीम्य सभी प्रकार के बीजों को तारने वाले हैं।^४ इससे सिद्ध है कि यह प्थानी बुद्ध अवतारक और उदारक उपास्य दोनों रूपों में प्रचलित रहे हैं।

सिद्धों के अन्तर्पामी

सहस्रपानी वादकों ने इन देवों की पूजा बाहर से करने की अपेक्षा अन्तर में करने के लिये बताया क्योंकि धरि में ही ये सभी देवता स्थित रहते हैं। सिद्धों में भी अशोभ्य वैरोचन और अमिताभ आदि बुद्धों का अन्तर्पामी इष्टदेव के रूप में प्रचार रहा है। सिद्ध पदों में सिद्ध देह में उपस्थित अशोभ्य को अन्तर्पामी इष्टदेव के रूप में संकत किया गया है और ग्यन और अमिताभ की कल्पना की गई है। जिससे अवपूर्ति-कृत मूक-नाक स्वरूप अहंकार का वन्म होता है।^५

इस प्रकार उपास्य के रूप में अन्तर्पामी रूप ही सिद्धों को अधिक प्राण्य प्रतीत होता है। अवतारवादी प्रयोजन क रूप में भी यह प्थानी बुद्ध ज्ञान और ग्यन से अधिक सम्बद्ध रहे हैं।

बोधिसत्त्ववाद

बौद्ध अवतारवाद में अवतरित कृत्ति कार्य करती है परन्तु बौद्ध अवतार वाद क मूक में उच्छ्रममणीक साधनात्मक कृत्तियों का विस्तृत योग रहा है। बौद्ध साहित्य में बुद्ध के तपागत रूप क अतिरिक्त एक बोधिसत्त्व रूप मिलता है। विशेषकर महापान सम्रदाय में उनका बोधिसत्त्व रूप ही अधिक प्रचलित रहा है। बोधिसत्त्व क रूप में बुद्ध कबळ निर्वाण प्राप्त करने के स्थितिगत साधक नहीं हैं अपितु लोकध्यायी भुक्त को देखकर असीम कल्याण से प्रेरित होने वाले लोकहितैषी भी हैं। लोकहित क निमित्त मृत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में पुनः पुनः अवतरित होते रहते हैं।

१ ब्रह्मसु ३० ११८।

२ बुद्ध-लि ८ २६२।

३ ली पा० ली ६ १५३।

४ पुण्यसमाह ५ १५९।

५. बोधिसत्त्वोप। वन्यो। ९० ४० २ ४।

उत्क्रमणशीलता

पर कल्पना की भावना से युक्त महापान में बोधिसत्व रूप का सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। बोधिसत्व मुख्य रूप से उत्क्रमणशील साधक है। वह बोधिचित्त की साधना शून्यता और कल्याण की अभिवृद्धता द्वारा करता है। इसे अहूप कहा जाता है। इस अहूप से सामान्य शरीर भी सिद्ध शरीर हो जाता है।^१ यह बौद्ध सम्प्रदायों में प्रचलित द्वादश भूमिकाओं का एकमात्र मापक कहा गया है। इस भूमियों में प्रमुद्रिता विमला, प्रमादरी, अचिन्मती सुमुग्धा, अमिमुग्धी, बुरगमा अचला माधुमती और धर्ममेघ का नाम दिया जाता है।^२ इन द्वादश भूमियों को एक-एक कर पार करके उपरान्त बोधिसत्व बोधिचित्त में निर्वाण प्राप्त करता है और तब वह सब्रह्मणी हो जाता है। 'लक्ष्यकार मूल' के अनुसार बोधिसत्वों में धैर्य और अक्षतारवादी दो प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। समाधि और सम्पत्ति के रूप में वह धैर्य शक्तियों से युक्त रहता है और अक्षतरित शक्ति के रूप में स्वयं बुद्ध व्यक्ति रूप में अक्षतरित होकर अपने हाथों से उस दीक्षित करते हैं। तदुपरान्त सदृशों प्रत्येक बुद्ध तयागत बुद्ध, अहूप, सम्बुद्ध अपनी अनेक कल्प से सजोयी हुई शक्तियों से उसे अभिसिद्धित करते हैं।^३ इस प्रक्रिया को धर्ममेघ कहा गया है। इस प्रकार बोधिसत्व अनेक कल्पों की सञ्चित तयागत-शक्ति प्राप्त करता है। वह जन्म लेने के बाद प्रज्ञापारमिता की साधना के द्वारा योग्यता उपलब्ध करता है। शून्यता और कल्याण का अहूप ही उसमें अक्षतारवादी विकास का चोतक है। बोधिसत्व के लिये कल्याण और शून्यता दोनों आवश्यक हैं। चर्यापदों के अनुसार जो कल्याण छोड़ कर शून्य से सम्बन्ध रहता है वह उत्तम गति नहीं पाता। जिसे केवल कल्याण ही माती है वह भी सदृशों जन्मों तक मोच नहीं प्राप्त कर सकता।^४ शून्यता और कल्याण का यह अहूप रूप ही पुण्यद्वय, महासुख आदि विविध रूपों में ब्रह्मपानी साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। चर्यापदों में बोधिसत्व भूमि की चर्चा करते हुए कहा गया है कि शरण-ग्रहण स्वभाव रहित एक तत्व है।^५ यहाँ एक तत्व अहूप का ही चोतक प्रतीत होता है। सामान्यतः सिद्ध साहित्य में अहूप का व्यापक रूप परिलक्षित होता है। सिद्ध अहूप स्वरूप को तयागत मानते हैं।^६ यह तयागत रूप

१ साध मा० ५ ७५-८ ।

२ साध० मा ५० ७४ ।

३ लं सू ५ ८७-८८ ।

४ बो० बो० । वापनी । ५० ४८ ।

५ बो० बो० । राहुल । ५ २७ बो० ८६ ।

६ बो० बो० । राहुल । ५ २२२ बो० ही अहूप स्वरूप ही तयागत है ।

बोधिसत्व का ही सिद्ध रूप चिह्नित होता है। इसी कोटि के बोधिसत्व को सरहपाद् ने सम्बुद्ध होने की सम्भावना की है।^१

इन उपादानों से स्पष्ट है कि उत्कृष्टमणदीक साधक शून्यता धीरे बख्ता के मह्य द्वारा बोधिसत्व की स्थिति प्राप्त करता है। वह सिद्ध बोधिसत्व होने पर स्वर्ग तथागत स्वरूप हो जाता है।

बोधिसत्व का भवतार

उत्पुष्ट साधनात्मक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में बुद्ध द्वारा विविध बोधिसत्वों के रूप में अवतरित होने के भी उल्लेख मिलते हैं। 'बोधिसत्ववितार' में कहा गया है कि बुद्ध दास पारमिता के कारण कल्याणमान होकर बोधिसत्व रूप धारण करते हैं।^२ सरहपाद् के अनुसार सम्भवतः बुद्ध ने ही स्वयं बोधिसत्व स्थिति से पुष्ट होकर सीक धर्म अर्थात् तारवे का धर्म किया।^३ बुद्ध के अतिरिक्त भग्य बोधिसत्वों के अवतरित होने की चर्चा भी बौद्ध साहित्य में हुई है। एकमिह स्वर्ग में सर्वज्ञ होने क उपरान्त बोधिसत्व का बुद्धावतार होता है।^४ 'तत्र संग्रह क माप्यकारों के अनुसार एकमिह स्वर्ग के ऊपर माहेश्वर मर्त्य लोक है। वहाँ काकमिह बोधिसत्व सर्वज्ञ होत हैं। सरहपा क अनुसार विष्णुव मर्मा क भवगाहन क कियु सम्भवतः ये ही बोधिसत्व अंकुषित अवतरित होते हैं।^५ इस प्रकार बुद्ध और भग्य बोधिसत्वों की अवतार-परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। इन परम्पराओं में अवतार प्रयोजन का अत्यन्त सबल व्यापक दृष्टिक पवता है।

भवतार प्रयोजन

महायानी बोधिसत्ववाद अवतार-प्रयोजन की दृष्टि से अवतारवादी साहित्य में अपना बिसिद्ध रथाव रखता है। क्योंकि बिना अवतार रूप के कबल बोधिचित का साधक बोधिसत्व नहीं कहा जा सकता, अपितु बोधिसत्व बही हा सकता है जो महाकल्या से प्रवित होकर निर्वाण के वाद् प्राणियों के कल्याण में लक्षक रत रहे जबतक सृष्टि का प्रत्येक कम

१ ही को । राहुक । पृ० २१३ को० ४९

वहाँ वहाँ बोधिसत्व ही ही सम्बुद्ध होते दुष्कर नहीं ।^२

३ बोधिसत्ववितार ६ १७३ ।

४ ही० को० राहुक । पृ० २४२ को० ७४ ।

५ ज्ञाप० मा० नू० ६० ७९ ।

५ ही को० । राहुक । पृ० २१३ को० ५९ ।

बोधिज्ञान न प्राप्त कर ले।' य संसार के भावतन-विवर्तन युक्त होने पर भी कल्याणदा लोक-कल्याण से डरते नहीं। मतएव बोधिसत्त्वों की कल्याण इसके निर्वाण फल भोग से अधिक महत्त्वपूर्ण है।' 'प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि' के अनुसार बुद्ध के धर्मकाय को भद्रसर करने के लिए इस जगत में अनेक बोधिसत्त्व सम्पुत्र भावक और सौगत गुणों न संपुक्त उत्पन्न होते हैं। बोधिसत्त्व असेप बुद्ध के जय होने तक पञ्चशील रहता है। जब तक सभी प्राणियों का बुद्ध दूर नहीं हो जाता तब तब उनके कल्याण में यह लया रहता है।'

पंच बोधिसत्त्व

जन कल्याण में हीन बोधिसत्त्वों की संख्या गंगा की बालुका की मति असंख्य मानी गई है।' वैपुस्य सूत्रों में प्रसिद्ध 'सद्धर्म पुंडरीक' में अनेक भाषी बुद्धावतार बोधिसत्त्वों की कथाएँ वर्णित हुई हैं। किंतु बौद्ध साहित्य में उनमें से कुछ ही बुद्ध अधिक प्रचलित रहे हैं। विशेषकर बौद्ध साहित्य में पंच प्यानी बुद्धों से पंच बोधिसत्त्वों की अवतारणा मानी जाती है। वैरोचन से सामन्तमद्ग, अशोम्य से वज्रपाणि, अमिताभ से पद्मपाणि, रघुसम्भब से रत्नपाणि और अमोघसिद्धि से विश्वपाणि उत्पन्न कहे गए हैं। इनमें सामन्तमद्ग का विस्तृत प्रसंग 'सद्धर्म पुंडरीक' के पचीसवें परिचर्त में मिलता है। वे महाकाव्यिक हैं और प्राणियों के हित के लिए सर्वत्र वेदाना करते हैं। वे वाक्यमुनि से स्वतः धर्मपर्याय भवण करते हैं तथा बर्माणदेशक के अद्वितीय गुणों से युक्त हैं।' 'तथागत गुणक' के अनुसार महाकाव्यिक बोधिसत्त्व सामन्तमद्ग परम निर्मल तथा कृपा करनेवाके हैं। वे क्रूर कर्म करने वाले बुद्धों को भी बुद्धत्व प्रदान करते हैं।' पद्मपाणि का उद्देश सेकोदेशटीका के प्रारम्भ में ही हुआ है। वे मुक्यता उपास्य बौद्ध देवी के रूप में प्रचलित हैं। 'सेकोदेशटीका' के अनुसार राम-सुचन्द्र को सम्मन्तः परम भक्त होने के कारण वज्रपाणि का निर्माणकाय या अवतार कहा गया है।' उक्त दोनों बोधिसत्त्वों के अतिरिक्त रत्नपाणि और विश्वपाणि का बौद्ध साहित्य में अपेक्षित प्रचार नहीं हुआ। परन्तु इनमें परिगणित पद्मपाणि या अक्षयकितेश्वर सबसे अधिक लोकप्रिय हुए।

१ साध मा ५ ७२। २ साध मा० ५ २५ और इन पु० २० ५ २८।

३ पु० पञ्च० प्रलो ५० २८-२९। ४, २९-३५। ५ सद्धर्म पु० ५० ५, २।

६ सद्धर्म पु ५ ४२७। ७, तथागत गुणक ५ २२९।

८ सेकोदेशटीका ५० ३।

बाधितान् का ही सिद्ध रूप विहित होता है। इसी कोटि के बोधिसत्त्व को सरहपाव ने सम्मुख होने की सम्भावना की है।^१

इन उपादानों से स्पष्ट है कि उच्छ्रममन्त्रीक साधक शून्यता और कल्याण के अङ्ग द्वारा बोधिसत्त्व की रिक्ति प्रकट करता है। यह सिद्ध बोधिसत्त्व होने पर स्वयं तन्नागत स्वरूप हो जाता है।

बोधिसत्त्व का अवतार

उपर्युक्त साधनात्मक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में कुछ प्रजा विविध बोधिसत्त्वों के रूप में अवतरित होने के भी उल्लेख मिलते हैं। 'बोधिसत्त्ववार्ता' में कहा गया है कि कुछ ज्ञान पारमिता के कारण कल्याणमान होकर बोधिसत्त्व रूप धारण करते हैं।^२ सरहपाव के अनुसार सम्भवतः कुछ ने ही स्वयं बोधिसत्त्व स्थिति से युक्त होकर शील धर्म अर्थात् तारने का धर्म किया।^३ कुछ के अतिरिक्त अन्य बोधिसत्त्वों के अवतरित होने की जहाँ भी बौद्ध साहित्य में हुई है। एकनिष्ठ स्वर्ग में सर्वश हाने के उपरान्त बोधिसत्त्व का पुनरावतार होता है।^४ 'ताव संग्रह' के भाष्यकारों के अनुसार एकनिष्ठ स्वर्ग के ऊपर माहेस्वर मनुज लोक है। वहाँ काश्चिक बोधिसत्त्व सर्वज्ञ होते हैं। सरहपाव के अनुसार विद्वज्ज मार्ग के अवसादन के द्विप सम्भवतः वे ही बोधिसत्त्व अंकुशित अवतरित होते हैं।^५ इस प्रकार कुछ और अन्य बोधिसत्त्वों की अवतार-परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। इन परम्पराओं में अवतार प्रयोजन का अत्यन्त सबल सामर्थ्य ही प्रकट है।

अवतार प्रयोजन

महापात्री बोधिसत्त्ववाद अवतार प्रयोजन की दृष्टि से अवतारवादी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। क्योंकि बिना अवतार धर्म के कसब बोधिसत्त्व का साधक बोधिसत्त्व नहीं कहा जा सकता अतः बोधिसत्त्व वही हो सकता है जो महाकल्याण से प्रविष्ट होकर निर्वाण के बाद प्राणियों के कल्याण में तबतक रत रहे जबतक सृष्टि का प्रत्येक अंग

१ शी० को० । राहुक । पृ० २२२ शी० २५

^२ वहाँ वहाँ बोधिसत्त्व ही, तो सम्मुख ही ही हुन्दर नहीं।

३ बोधिसत्त्ववार्ता पृ० २७६। ४ शी० को० राहुक । पृ० २५२ शी० ७४।

५ प्राण मा० मू० पृ० ७५। ५ शी० को० । राहुक । पृ० २२२ शी० ५१।

बोधिसत्त्व न प्राप्त कर ले।^१ वे ससार के आवर्तन-विवर्तन युक्त होने पर भी कल्याणता छोड़-कल्याण से दूरते नहीं। अतएव बोधिसत्त्वों की कल्याण इनके निर्वाण फल भोग से अधिक महत्त्वपूर्ण है।^२ प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि के अनुसार पुद्गल के धर्मकाय का अग्रसर करने के लिए इस जगत में अनेक बोधिसत्त्व सम्बुद्ध, आर्यक और सौगत गुणों से संयुक्त उत्पन्न होते हैं। पापिपत्तव अशेष दुःख के दाय होने तक पसलीक रहता है। जब तक सभी प्राणियों का दुःख दूर नहीं हो जाता तब तक उनके कल्याण में बह रूपा रहता है।^३

पंच बोधिसत्त्व

जब कल्याण में लीन बोधिसत्त्वों की सकया गंगा की वासुका की भाँति अस्तप्य मानी गई है।^४ वैपुल्य सूत्रों में प्रसिद्ध 'सद्धर्म पुद्गलीक' में अनेक भाषी बुद्धावतार बोधिसत्त्वों की कथाएँ वर्णित हुई हैं। किंतु बौद्ध साहित्य में उनमें से कुछ ही पुद्गल अधिक प्रचलित रह हैं। विशेषकर बौद्ध साहित्य में पंच स्थानी बुद्धों से पंच बोधिसत्त्वों की अवतारगा मानी जाती है। बैरोचन से सामन्तभद्र, अशोम्य से ब्रह्मपाणि, अमिताभ से पद्मपाणि, रत्नसम्मन से रत्नपाणि और अमोघसिद्धि से विष्णुपाणि उत्पन्न कहे गए हैं। इनमें सामन्तभद्र का विस्तृत प्रसंग 'सद्धर्म पुद्गलीक' के पचीसवें परिचर्त में मिलता है। वे महाकास्मिक हैं और प्राणियों के हित के लिए सदैव देशाना करते हैं। वे पाण्डपश्रुति से स्वता धर्मपर्याय भवण करते हैं तथा धर्मोपदेशक के अद्वितीय गुणों से युक्त हैं।^५ 'तथागत गुणक' के अनुसार महाकास्मिक बोधिसत्त्व सामन्तभद्र परम निर्मल तथा कृपा करनेवाले हैं। वे क्रूर कर्म करने वाले बुद्धों को भी बुद्धत्व प्रदान करते हैं।^६ ब्रह्मपाणि का उद्देश 'सैकोदेसदीका' के प्रारम्भ में ही हुआ है। वे सुबलता उपास्य बौद्ध देवों के रूप में प्रचलित हैं। 'सैकोदेसदीका' के अनुसार राज सुचन्द्र को सम्भवता परम भक्त होने के कारण ब्रह्मपाणि का निर्माणकाय या अवतार कहा गया है।^७ उक्त दोनों बोधिसत्त्वों के अतिरिक्त रत्नपाणि और विष्णुपाणि का बौद्ध साहित्य में अपेक्षित प्रचार नहीं हुआ। परन्तु इनमें परिगणित पद्मपाणि या अवलोकितेश्वर सबसे अधिक लोकप्रिय हुए।

१ साध मा० ५ ७६। २ साध मा० ५० २५ और रत्न० पु० २० ५ २८।
 ३ इ० ५५ प्रज्ञो० पु० २८-२९। ४ २९-२५। ५ सद्धर्म पु० ५० ५, २।
 ६ सद्धर्म पु० ५ ४२०। ७ तथागत गुणक ५ २६९।
 ८ सैकोदेसदीका ५० २।

बोधिसत्त्व का ही सिद्ध रूप विदित होता है। इसी कोटि के बोधिसत्त्व को सरहपाद ने सम्बुद्ध होने की सम्भावना की है।^१

इन उपादानों से स्पष्ट है कि उत्कृष्टमणवीक साधक शून्यता और कल्याण के अङ्ग द्वारा बोधिसत्त्व की स्थिति प्राप्त करता है। यह सिद्ध बोधिसत्त्व होने पर स्वयं तत्प्राप्त स्वल्प हो जाता है।

बोधिसत्त्व का भवतार

उपर्युक्त साधनात्मक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में बुद्ध द्वारा विविध बोधिसत्त्वों के रूप में अवतरित होने के भी उल्लेख मिलते हैं। 'बोधिसत्त्वपरिचय' में कहा गया है कि बुद्ध ज्ञान पारमिता के कारण फलगायमान होकर बोधिसत्त्व रूप धारण करते हैं।^२ सरहपाद के अनुसार सम्भवतः बुद्ध ने ही स्वयं बोधिसत्त्व स्थिति से पुच्छ होकर शीक धर्म जयान्त तारणे का धर्म क्रिया।^३ बुद्ध के अतिरिक्त अन्य बोधिसत्त्वों के अवतरित होने की खर्चा भी बौद्ध साहित्य में हुई है। एकनिष्ठ स्वर्ग में सर्वश्रद्धा होने के उपरान्त बोधिसत्त्व का पुद्गावतार होता है।^४ 'तत्र मगध' के माध्यकारों के अनुसार एकनिष्ठ स्वर्ग के ऊपर माहेधर महान लोक है। वहाँ काव्यिक बोधिसत्त्व सर्वश्रद्धा होते हैं। सरहपाद के अनुसार विकल्प मार्ग के अवगाहन के लिए सम्भवता ये ही बोधिसत्त्व अंकुषित अवतरित होते हैं।^५ इस प्रकार बुद्ध और अन्य बोधिसत्त्वों की भवतार-परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। इन परम्पराओं में भवतार प्रयोजन का अत्यन्त सबल आधार हीन पक्षता है।

भवतार प्रयोजन

महापानी बोधिसत्त्ववाद भवतार-प्रयोजन की दृष्टि से भवतारवादी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थाव रक्षता है। क्योंकि बिना भवतार कार्य के कष्ट बोधिसत्त्व का साधक बोधिसत्त्व नहीं कहा जा सकता अपितु बोधिसत्त्व बड़ी हो सकता है जो महाकल्याण से अक्षित होकर निर्वाण के बाद प्राणिमों के कल्याण में तबतक रत रह अवतक सृष्टि का प्रत्येक जन

१ शो० शो० । राहुक । पृ० २१२ शो० ४९

२ वहाँ वहाँ बोधिसत्त्व हो सो सम्बुद्ध दोने दुष्कर नहीं।

३ बोधिसत्त्वपरिचय पृ० १०२। ४ शो० शो० । राहुक । पृ० २४२ शो० ७४।

५ ज्ञान मा० भू० पृ० ७९। ५ शो० शो० । राहुक । पृ० २१२ शो० ६२।

विभिन्न रूपों में आविर्भूत होकर अधिकतर धम-देवता धरत हैं। य उपासकों के रूप-रंग के लिए विभिन्न प्राणियों में बुद्ध बोधिमत्त्व प्रत्यक्ष पुरुष भावक, मत्स्य, इन्द्र गण्डक, यक्ष, इंद्रवर, महेश्वर, चन्द्र-तीर्थ पिशाच कुबेर, सनापति, ब्राह्मण ब्रह्मपाणि आदि रूपों में उपासकों की इच्छानुरूप देवों का रूप धारण करते हैं।^१ तिब्बती बौद्ध धर्म में अवलोकितेश्वर पितृदेवता समझे जाते हैं। कामा धर्म का प्रथम प्रचारक अतिशा अवलोकितेश्वर का अवतार कहा जाता है। कामा मठ में पुनर्जन्म भीर अवतारवाद साध-साध चढ़ते हैं। अठपव यहाँ की परम्परा में जो भी कामा अवतरित होता है वह देव अवलोकितेश्वर का अवतार या प्रतिनिधि समझा जाता है।^२ इसी परम्परा में प्रत्यक्ष दृष्टाई कामा को अवलोकितेश्वर के शरीर से युक्त माना जाता है।^३ 'साधनमाला' के मर्थों में इनका महाश्रमणिक रूप विशेषकर अधिक प्रचलित है।^४

युगल रूप

चौथी शताब्दी तक अवलोकितेश्वर का सम्बन्ध तारा नाम की एक देवी से स्थापित हो गया। इनके लोकेश्वर, लोकनाथ और ब्रह्मपाणि आदि रूपों के सहस्र तारा के भी विभिन्न रूप बौद्ध सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। स्वभाव पूष गुण की दृष्टि से तारा भी विद्याविनी महाकल्याणमयी तथा प्राणियों के हित में सदैव तत्पर रहने वाली कही गई।

विष्णु के त्वरूप

बौद्ध साहित्य में यों तो अवलोकितेश्वर शिव और विष्णु दोनों से अभिहित किए गए हैं। परन्तु इनकी मूर्तियों बनाकर की दृष्टि से विष्णु के विषय अधिक जान पड़ती हैं।^५ इनकी मूर्तियों में अनुभूत अवलोकितेश्वर के दोनों और सुत्रमाला और हथप्रीव हैं। इन्में कमल होने के कारण ये पद्मपाणि हैं।^६ 'मह्वर्षी मूल रूप में ये कृष्णवर्ण के महात्मा बतलाए गए हैं।^७ तिब्बत में कामा अपने को हिन्दुमहर्षी का वसत्र कहते हैं या सम्भवतः हनुमान जी का विकृत रूप है। कहा जाता है कि इन्हें अवलोकितेश्वर ने ही तिब्बत में भेजा था।^८ इन उपासकों के अतिरिक्त इनका व्यापक अवतारवादी रूप भी इन्हें विष्णु के अधिक विषय ला देता है। जिस अभित कामा वाच अभिनाम से

१. सधर्म पु० पृ ४११।

२. बुद्ध ति० पृ १० १८-१९।

३. बुद्ध ति० पृ ४।

४. साध० मा पृ ५२।

५. इन्वीरिपठ कबीर पृ २००।

६. इन्वीरिपठ कबीर पृ २०९।

७. म० मू० क० पृ २४।

८. बुद्ध ति० पृ १५।

इसके बाद मनुष्य और मैत्रेय भी विविध रूपान्तरण करते हैं। अतः अन्ततः इन तीनों पर विचार किया जाता है।

अवलोकितेश्वर

बोधिसत्त्वों में अवलोकितेश्वर का अद्वितीय स्थान माना जा सकता है। 'कारण्डव्यूह' के प्रसंगानुसार ये निर्वाण प्राप्त करने के बाद शून्य में लीन हो चुके थे। बहुत दूर सुमेरु गिरि से शोर गुल सुनाई देने पर जब इन्होंने स्थान उगान्तर देखा, तो विदित हुआ कि महाकल्पमामय बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर के अभाव में अकालि मावयता कराह रही है। अवलोकितेश्वर एकमात्र उनसे रहस्य और उद्धारक हैं। वे तब से दपार्त्र होकर पृथ्वी पर जाये और प्रविष्टा की कि जब तक एक भी व्यक्ति पृथ्वी पर रह जायगा तब तक वे पृथ्वी को नहीं छोड़ेंगे।^१ 'बोधिसत्त्ववितार' में कहा गया है कि अवलोकितेश्वर हुआ ही और हीन के काल स्वर से व्याकुल होकर चक पड़ते हैं। वे परम आध्यात्मिक और पर बुद्ध हुआ ही हैं। इनके वर्णन मात्र से ब्रह्मवृत्त आदि बुद्ध परमात्म्यमान हो जाते हैं।^२ 'मंजुश्रीसूक्तमन्त्र' के अनुसार सुविभेद बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर सम्भवतः होने के कारण स्वरक्षा से अकर्म अवतीर्ण होते हैं।^३

विविध रूपधारी

'कारण्डव्यूह' और 'सद्धर्मपुंजरीक' में इनके अनेक बोधिसत्त्व रूप ही नहीं अपितु विविध कर्मों का उल्लेख हुआ है। 'कारण्डव्यूह' में इनके अवतार-कार्य सम्बन्धी प्रविष्टा के अन्त में कहा गया है कि ये विष्णु का रूप धारण कर धर्म की शिक्षा देंगे और अपने उपासकों का धर्म-दीक्षाना करने के निमित्त शिव का रूप धारण करेंगे। वे राजपत्नों को गणेश रूप में तथा राजमन्त्रों को राजा के रूप में धर्म-दीक्षाना करेंगे।^४ इस प्रकार अवलोकितेश्वर में अनेक सम्बन्ध सम्मन्वय की प्रवृत्ति दृष्टि पड़ती है। 'सद्धर्मपुंजरीक' के २४ वें परिचर्य में इनके उपासकवर्गी अवतार रूप का अपेक्षाकृत स्थापक प्रसार हुआ है। विष्णु की भांति अवलोकितेश्वर भी ऐक्योक्ति कर्मों में करोड़ी जड़ों के रूप में प्रणियों के हित के लिये अवतरित होते हैं। दोनों में अन्तर यह है किन्तु बुद्ध में स्वयं अवतरित होते हैं। उनमें रक्षा की भावना अधिक है किन्तु अवलोकितेश्वर

१ द्यु ५० ५ १ ।

२ बोधिसत्त्ववितार पृ० १६-१७ ।

३ य० मू० ५० ५ २३९ ।

४ द्यु० बु० ३ ४६ । और कारण्डव्यूह (चौथी सर्गी) पृ० २२ २२ ।

विविध रूपों में आदिर्भूत होकर अधिकतर धम-देवता बनते हैं। ये उपासकों के कल्पना के द्विये विविध प्राणियों में बुद्ध, वाचिसर प्रत्येक बुद्ध भावरु, महा इन्द्र गन्धर्व, पद्म ईश्वर, महेश्वर चक्रवर्ती, विद्याधर, कुबेर, सनापति, मन्वान, ब्रह्मपति आदि रूपों में उपासकों की इच्छानुरूप देवों का रूप धारण करते हैं।^१ तिब्बती षोडश धम में अवलोकितेश्वर पितृदेवता समझ जाते हैं। लामा धर्म का प्रथम प्रचारक अतिदा अवलोकितेश्वर का अवतार कहा जाता है। लामा मत में पुनर्जन्म भीतर अवतारवाद साय-साय चरते हैं। अतएव यहाँ की परम्परा में जो भी लामा अवतरित होता है वह वेच अवलोकितेश्वर का अवतार या प्रतिनिधि समझा जाता है।^२ इसी परम्परा में प्रत्येक बूढ़ाई लामा को अवलोकितेश्वर के शरीर से युक्त माना जाता है।^३ 'साधनमाटा' के मर्षी में इसका महाकल्पगिह रूप विशेषकर अधिक प्रचलित है।^४

युगल रूप

चौथी शताब्दी तक अवलोकितेश्वर का सम्बन्ध तारा नाम की एक देवी से स्थापित हो गया। इसका लोकेश्वर, लोकनाथ और ब्रह्मपति आदि रूपों के सदरा तारा के भी विविध रूप बौद्ध सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। स्वभाव एक गुण की दृष्टि से तारा भी विद्याजिमी महाकल्पामयी तथा प्राणियों के हित में सबैक तत्पर रहने वाली कही गई।

विष्णु के तत्पर

बौद्ध साहित्य में यों तो अवलोकितेश्वर सिद्ध और विष्णु दोनों से अभिहित किए गए हैं। परन्तु इनकी मूर्तियों बनावट की दृष्टि से विष्णु के निकट अधिक जान पड़ती है।^५ इनकी मूर्तियों में चतुर्भुज अवलोकितेश्वर के दोनों ओर सुश्रमाटा और इयधीव हैं। हाथ में कमल होने के कारण वे पद्मपति हैं।^६ 'भक्त्या मूल कल्प में ये कल्पवर्ज के महारामा बतलाए गए हैं।^७ तिब्बत में लामा अपने को दिक्महती का पशुम कहते हैं जो सम्भवता इनुमान की का विह्वल रूप है। कहा जाता है कि इन्हें अवलोकितेश्वर ने ही तिब्बत में भेजा था।^८ इन उपासकों के अतिरिक्त इनका व्यापक अवतारवादी रूप भी इन्हें विष्णु के अधिक निकट का देता है। जिस अमित लामा बाड़े अमितान से

१ सख्यं पु० पृ० ४१२।

२ बुद्ध ति० पृ० ४।

३ इन्पोरिबक कनौज पृ० २००।

४ म मू० क० पृ० २४।

५ बुद्ध ति० पृ० ३० ३८-३९।

६ साध० मा० पृ० ५२।

७ इन्पोरिबक कनौज पृ० २०९।

८ बुद्ध ति० पृ० २५।

इसकी उत्पत्ति मानी जाती है वे सूर्य के ही एक रूप विशेष हैं। विष्णु केवल ब्राह्मण आदिपुत्रों में ही नहीं अपितु अन्य प्रसंगों के आधार पर भी सूर्य के एक रूप विशेष रहे हैं। इन उपादानों के आधार पर अबलोकितेश्वर की विष्णु का तत्कम कहा जा सकता है। क्योंकि दोनों के अवतारवादी सिद्धान्तों में अपूर्व बर्म-समन्वय की प्रकृति उचित होती है।

मनुषी

महापान में मनुषी की गजना गेह देवों में होती है। ब्रह्मपानी साहित्य में भी व प्रमुख उपास्य देवों में माने जाते हैं। इस साहित्य में इनके अनेक रूप और मंत्र प्रचलित हैं। व उपमन्यु को बुद्धि और मेधा सक्ति प्रदान करते हैं। 'साधनमाला' के अनुसार मनुषी लोक पर अनुग्रह करने के लिए कुमार रूप में प्रकट होते हैं।^१ इनके मावी अवतार की चर्चा करते हुए 'मनुषी मूल रूप' में शाक्य मुनि से कहावाया गया है कि बुद्ध के बाद मनुषी ही वाक्य रूप में बुद्ध रूप करेंगे।^२ इस तंत्र ग्रन्थ में इनका अवतार-चक्र स्थापक प्रतीत होता है, क्योंकि कुमार और वाक्य रूप के अतिरिक्त वे और भी विविध आकार के रूप धारण करने वाले कहे गए हैं।^३

अवतार प्रयोजन

ब्रह्मपानी तंत्रों के अनुसार मनुषी का बोधिसत्व की दृष्टि से मुख्य प्रयोजन लोकों पर अनुग्रह करना है। परन्तु 'साधनमाला' के अनुसार इन्होंने 'प्रतीत्यममुत्पादकर्मक्रिया' अवतरित की थी।^४ अबलोकितेश्वर के समान वे भी जब तक सभी लोकवाण्यवों को सृष्टि से मुक्त नहीं कर सके हैं तब तक पुनः पुनः प्रकट होते रहते हैं। वे लोक में बाह्यारक या मंत्र रूप में सर्वत्र विचरण करते हैं। विभिन्न स्थानों में जा जा कर मन्त्रों का पुनः नष्ट किया करते हैं।^५

उपास्य और प्रयत्नक

बीह साहित्य में जब देवीकृत्य की प्रकृति का विकास हुआ तो अनेक बीह भावनाओं और सिद्धान्तों के भी मानवीय रूप उपास्य होकर प्रचलित हुए। अन्ततः में उनके नामा प्रकार के विप्रद बीह सम्प्रदायों में पूजे जाने

१ साधन मा० पृ० ११०।

२ म० पृ० क० पृ० १४२।

५ साधन मा० पृ० १२२।

४ म० पृ० क० पृ० १५४-५५२।

५ साधन मा० पृ० ११०।

होगे। सरम्बती के समान मनुष्य भी बाणी, ज्ञान, मेधा, या पिपा के प्रतीक स्वरूप हैं। इनके मनुष्योप नाम से भी इस तरह का आभास मिलता है। 'मनुष्यी मूल कल्प' में इनका उपास्य रूप दृष्टिगत होता है। यहाँ यह महाकाव्यिक और विश्व रूपधारी हैं। शत-महान् ज्योति रश्मियों से इनका शरीर मण्डित है।^१ इस कल्प में इन्हें सिद्ध विष्णु विनायक, जैन आदि देवों से भी अभिहित किया गया है।^२ इस प्रकार मनुष्यी में भी सवधर्म समन्वय की भावना उद्दिष्ट होती है। तिब्बती बौद्धधर्म में इनके प्रवर्तक एक अवतारी रूप का पता चलता है। क्योंकि तिब्बत का धर्म प्रचारक अतिष्ठा मुख्य रूप से मनुष्यी का अवतार माना जाता है।^३ यह भी कहा जाता है कि इलार्डुलामा के समकालीन एक प्रमुख लामा जब अष्टस्त्रिक्रमरत्न के अवतार नहीं माने जा सक तो उन्हें मनुष्यी का अवतार कहा गया।^४ इस प्रकार तिब्बती बौद्ध धर्म में इनका प्रवर्तक और अवतारी रूप भी प्रचलित जान पड़ता है।

विष्णु के स्वरूप

मनुष्यी का स्वरूप भी विष्णु से कुछ सम्परलता है। क्योंकि 'साधनमाला' में इनकी जिस मूर्ति का उल्लेख हुआ है उसक हाथों में बज्र और सङ्घ के अतिरिक्त षट् और पद्म हैं।^५ 'मनुष्यी मूल कल्प' में षट्पाणि के सदृश व गदा क्षत्र पुण्ड्र हैं।^६ उपास्य विष्णु के सदृश मनुष्यी सवधर्मों के हितकारक और दुष्ट सत्त्वों के निवारक है।^७ उसकी समा में अन्य बुद्धों के अतिरिक्त शक्य, विभीषण, कुम्भकण और वाक्मीकि मनुष्यी की सम्मना करते हुए उल्लिखित होते हैं।^८ इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यी पर भी मुख्यतः विष्णु के रूप और अवतारकारी गुणों का आरोप किया गया। उन्हीं के समान इनमें समन्वयवादी प्रवृत्ति का भी विकास हुआ जिसके फलस्वरूप व अधिक लोकप्रिय हो सक।

मंत्राय

विष्णु कविक के समान महापापी बौद्ध धर्म में भी एक ऐसे बुद्ध की कल्पना की गई है जो भविष्य में अवतरित होंगे। भाषी मंत्राय बुद्ध अभी

१ म मू० क० पृ० २७-२८।

२ बुद्ध वि० पृ० १२।

३ ताव० मा० पृ० १११।

४ म मू० क० पृ० १०।

५ म० मू० क० पृ० ३४-३५।

६ बुद्ध वि० पृ० २१२।

७ म मू० क० पृ० ४४।

८ म मू० क० पृ० १०।

इससे विदित होता है कि बहुजन हिताय कार्य गीज और "महासुख" का रूप मुक्य हो गया था।

सिद्धों के सगुण उपास्य

गुरु योगी सिद्धों के चर्चापत्रों से अक्सर यह ज्ञम हो जाता है कि सिद्ध निराकारोपासक या किमुद्ध योगी थे। किंतु 'सत्वरत्नावली' में साकार और निराकारमेव से सिद्ध योगियों के भी दो मंत्र किये गए हैं।^१ इससे प्रतीत होता है कि सिद्धों में यदि सभी नहीं तो कुछ ऐसे अवतरण थे जो सगुण उपास्य और अवतार-भावना में विश्वास रखत थे। क्योंकि सिद्धों में मनोरथ रचित अकालोक्तितैरवर के उपासक रहे हैं और अगल सैव ने ज्यानी दुद्धों पर स्तोत्र किया है।^२ रत्नाकर गुप्त और सरहपाद् क्रमशः सम्बर और रत्त कोकरवर के उपासक रहे हैं।^३ संभवतः पूर्ववर्ती सामन्तभद्र जैसे सिद्धाचार्य भी बड़ी मगधान की सेवा करते हैं।^४ इससे इतना तो सिद्ध हो जाता है कि कतिपय सिद्ध इहद्वैत के रूप में उन्नत विग्रह मूर्तियों की उपासना करते थे।

सिद्ध-उपास्यों में अवतार भावना

सरहपाद् के नाम से विख्यात 'त्रैलोक्य वल्लभ' के प्रति कई गए एक मंत्र में 'अवतर अवतर अवतरन्तु' का प्रयोग हुआ है।^५ इससे विदित होता है कि बौद्ध सिद्ध अपने उपास्य देवों को अर्थात् विग्रहों की माणप्रतिष्ठा के समान अवतरित किया करते थे। उनके चर्चापत्रों के कुछ दोहों से पुरुषेश्वरवाणी उपास्यों के अवतरित होने का ज्ञानम्य मिलता है। सिद्धों के कथनानुसार एक ही देवता नामा शास्त्रों में दृष्टिगत होता है और बड़ी स्वेच्छा से स्तुत रूप में प्रतिभासित होता है।^६ सम्भवतः सरहपाद् ने एक अम्ब दोहे में उम्मी का लक्षण 'स्मृति विस्मृति अत्रन्मा युग में उतरे' माना है।^७ 'अद्वय बल' के अनुसार बड़ी स्वयं भर्ता, हर्ता, राजा और स्वयं प्रभु है।^८

इस प्रकार सिद्धों ने जिन सगुण उपास्यों की इहद्वैतरूप में उपासना की थी उनमें अवतारवाद के भी कुछ उपादान मिलत हैं।

१ अद्वय बल स पृ० २४।

२ साव मा पृ १ ५२४।

३ साव० मा० पृ २२३ २२५।

४ इ० मन्त्र प्रदीपाव० पृ २२-५, ८।

५ साव मा पृ ८३ मूल।

६ बी० य० शो पृ २ क, नामाणी २२२।

७ अद्वय बल अगम दीपक। अन्तु एवै दुद्ध यदि हानत।

८ शी० शो (ताडुल) इ० २२३ शो ३८।

८. शी० शी० वपवी इ २२२।

सिद्ध गुरु

ब्रह्मवासी सिद्धों ने गुरु को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वह सिद्धों के रूप में ही है, सुगत है, धर्मकाय है और उद्धारपरक सभी शक्तियों से युक्त है। वह सर्वव्यापी है। बिना उसके अनुग्रह के कुछ भी नहीं हो सकता। इस प्रकार सिद्धों में अवतार रूप की अपेक्षा उपास्य-रूप अधिक प्रचलित है। चर्चापत्र के 'गुरु उभयसे विमल मई' से इसका निराकरण हो जाता है।^१ बौद्ध सिद्धों में जो उच्छ्रमणशील सिद्ध विरमानन्द में निमग्न रहते हैं उन्हीं को गुरु स्वरूप देखा जाता है।^२ यही गुरु सिद्ध गुरु उपास्य वादी अवतारों के महत्त्व अवबन्धन तोड़ने का काय करता है। सिद्धों की साधना में भी सिद्धगुरु बोध की पग पग पर आवरणकता होती है। इष्टदेव के सहज वह और उसके वचन पत्रवार की तरह सहायक होते हैं।^३

गुरु में उपास्य इष्टदेव के उद्धार सम्बन्धी कुछ अवतार-काय भी दृष्टिगत होते हैं। सिद्ध पदों के अनुसार गुरु जरा-भरम और राग-दुःख आदि नागा वाज दास्यममूह से अज्ञान्त शारीरियों को ज्ञानामृत वाम करता है।^४ सिद्ध अरूप ब्रह्म गुरु को कभी अगच्छाय स्वरूप मान कर उसकी स्तुति करते हैं और कभी तयागत के रूप में उसका स्मरण करते हैं।^५ वे गुरु-भाग की आराधना श्रेयस्कर मानते हैं। उनके मतानुसार गुरु-मार्ग का स्मरण सिद्ध का परम रूप है।^६ इस प्रकार सहज निर्वाण या सहज सिद्धि के लिए गुरु वचन में ही शक्ति आवरणक है।^७ सरहपा ने गुरु को वैरोचन कह कर नमस्कार करते हुए कहा कि उसने 'कदम्ब-किरण से विश्व प्रपञ्चित किया तथा उसी के रसप्रभा मण्डल से सरह ने तन समूह को प्रपञ्चित किया।'^८ सिद्धों की इन उक्तियों में गुरु के किञ्चित् अवतार-काय का आभास मिलता है। परन्तु ब्रह्मवासी की प्रसिद्ध रचना 'ज्ञानसिद्धि' में गुरु का व्यापक अवतारवादी उपास्य रूप दृष्टिगोचर होता है।

ज्ञानसिद्धि के अनुसार गुरु ही बुद्ध, धर्म और सच स्वरूप है। श्रेष्ठ रत्नप्रय उसी के प्रसाद में जाने जा सकते हैं। वह अज्ञान रूपी तिमिरान्धकार

१ साध० मा ५० पृ २२

२ पुता० निष ५ २२९।

३ पुता० निष ५० १७९

४ विरमानन्द विष्णुम वच, जो पङ्क उद्धार सो पङ्क बुद्ध।

५ बी० मा० बो ५ ५८ 'उच्छ्रमण वचने पर पत्रवार।

६ बी० बो (राइल) ५० २८१।

७ बी० पा बो ५ ७७।

८ बी० मा० बो० ५० ८६।

९ बी० पा० बो ५० १८-१९।

१० बी० बो (राइल) ५० १७९।

में मार्ग प्रदर्शक है, तब काम प्रदायक मन्त्रा है और धार्मिक या धर्म में गम्भीर कल्याण से युक्त निष्ठावान् है।^१ वह सर्व बुद्ध्यात्मा और सभी दशों के द्वारा वचन गणपति तथा रक्षा करण में महाबलवान् वाचिमन्त्र है। वह बुद्ध और महात्मा के समान सदैव वज्रकाय में स्थित रहता है। वह बुद्ध धर्म का प्रवर्तक है। वह महाबलवान् पराक्रमी लोकपालों के सरदा सतत वाकर रक्षा करता है। वह मार के विजो को दूर करता है।^२ यह अवलोकितेश्वर के सरदा वैभाष्यी के लिए शयन रूप में सम्मोषिणों के लिए बुद्धों के सम्मोग काय से तथा निर्माणिणों के मत से सर्व लक्षण युक्त माना बुद्धों के रूप में वाकिर्भूत होता है।^३

इस प्रकार सिद्ध साहित्य में उपास्य इष्टदेव और उपास्य गुरु दोनों का समान रूप से पृथक्पृथक् विकास हुआ। सिद्धों ने इन्हें विभिन्न साधनात्मक अवतार प्रयोगों से सन्निविष्ट कर हममें उस प्रकार के सम्मन्वयात्मक अवतार वाद का समावेश किया जो पहले से बौधिसत्त्वों का अवतार परम्परा में प्रचलित था।

कायवाद

बौद्धधर्म के प्रारम्भ में तो विविध प्रकार के बुद्धों का विकास हुआ। किंतु बाद में धर्मबुद्ध और जम्प बुद्धों का वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया। कायवाद के विकास में प्रायश्च या जम्पयश्च दोनों दृष्टियों से इस प्रकृति का विशेष योग था। पर काय के जो रूप सम्प्रदायों में प्रचलित हुए उनमें मत्स्या और रूपरेखा की दृष्टि से बहुत मतभेद रहा है। फिर भी बौद्ध सम्प्रदायों में प्रायः धर्म सम्भाग और निर्माण इन तीन कायों का बहुत प्रचार हुआ। सिद्ध साहित्य में कभी काय अनुपपन्न और कभी त्रिकाय का उल्लेख मिलता है। जम्पय दत्त का कथना है कि धर्म सम्मोग निर्माण और महासुख प काम अनुपपन्न मद्गुण के चरणों की विमल मति युक्त उपासना से ही उपलब्ध होते हैं। सुगत वचन के अनुसार किया के लिए धर्मकाय सम्मोग निर्माण और रक्षणा काय ही हेतु मूल-फल कहे गए हैं।^४ सरहपाद के श्लोकों में उक्त कायों का प्रायः उल्लेख हुआ है। इनके श्लोकों में विरूप के त्रिकायों को रज्जुमयपद् या मायात्मक माना गया है।

१. इ. बज्र० धामनिधि १ २४-२५। २. इ. बज्र० धामनिधि १ ५१-२।

३. इ. बज्र० धामनिधि १ ५४-५५। ४. बो० गा० शी ५० १ ४।

५. बो० श्री० (राहुल) ५० ११०।

धर्मकाय

बीर धर्म में कार्यों का मुख्य नतक धर्मकाय ही रहा है। जबस बुद्ध ने कहा कि मैं ही धर्म हूँ तब से उनका पृष्ठ धर्मकाय भी प्रचलित हो गया। मगधशाही में धर्मकाय शासन काय है। तथागत का यह धर्मकाय गङ्गा की बालुका राशि की भाँति कनी नष्ट नहीं होता।^१ बीर धर्म के विचारकों ने इस मध्य से मिलता जुड़ता धर्म के कारण मध्य काय माना है।^२ 'सक्योद्देशटीका' में कहा गया है कि ममत्त बुद्ध धर्म स्वभाव से मङ्गलित मत्त्व है और ईषी भाव होने पर वह मध्य युगनष्ट कहा गया। इसलिये युगनष्ट काय ही धर्मकाय है।^३ इसी ग्रन्थ में पुनः पताया गया है कि जा अनित्य और नित्य नहीं है, जा पृष्ठ और धर्मक नहीं है, जा भाव और जभाव नहीं है वह धर्मकाय निराश्रय है।^४ 'प्रज्ञापानविनिश्चय सिद्धि' में उस बुद्ध का ममत्कार किया गया है। जा मदन को पढ़ाने वाला है जिसके धर्मकाय से सम्मोग और निर्माणकाय उत्पन्न होते हैं।

मतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ में धर्मकाय का उद्भव बुद्ध के धर्म स्वरूप से था। इसी से सम्मोग और सम्मोगकाय से निर्माणकाय की उत्पत्ति हुई।

विधिधर्मकाय

सिद्धों में इसी काय को शुद्धकाय, स्वामाधिककाय, ब्रह्मकाय और सहजकाय भी माना गया है।^५ 'सक्योद्देशटीका' के अनुसार महासुख मज्जक शुद्धकाय से विपरीत जा काय बिन्दु है वह तुरीयावस्था जय होने पर शुद्ध काय होता है।^६ शून्यता और कर्मकाय म मिथ, राग विराग और प्रज्ञा-उपाय से रहित काय स्वामाधिक काय है।^७ महाभावियों का धर्मकाय ही ब्रह्मपान में ब्रह्मकाय या ब्रह्मभाव के रूप में परिणत हो गया। क्योंकि ब्रह्मकाय को प्रायः धर्मकाय से अभिहित किया जाता है।^८ सहजिया बीजों में शून्यता और कर्मकाय ही परिचलित हाकर प्रज्ञा और उपाय हो जाते हैं। सहज के व ही से प्रायमिक पुन माने गये हैं।^९ 'सक्योद्देशटीका' के अनुसार रूप, सच्च, गण, रस और मर्याद पञ्चाक्षर कहे गये हैं। व जब एक या मदनम हा जात है तो बिन्दु शून्य हा जाता है। बिन्दु व्यपुत है और व्यपुत परमाक्षर कहा जाता है।

- | | |
|---------------------------|-------------------------------|
| १ छ सू० पृ २००। | २. बी० प० पृ २१२, महा पृ० ७४। |
| ३ सेक्योद्देशटीका पृ ५०। | ४ सेक्योद्देशटीका पृ २१। |
| ५ रत्न० ता बुद्ध० पृ० ८९। | ६ सेक्योद्देशटीका पृ० ५६। |
| ७ सेक्योद्देशटीका पृ २१। | ८ रत्न ता बुद्ध पृ ८। |
| ९. बी २० क पृ० ६० ३२। | |

परमात्पर अकार होता है और अकार से समुद्र उत्पन्न होता है। उसका प्रक्षोपापारमक ब्रह्मसत्त्व नपुंसक पद सहजकथन के रूप में प्रचलित हुआ।^१ कथनों के इन विविध रूपों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्रायः सभी कथनों में शुम्भता और कस्या के ही विविध रूप अहूय हाकर इनमें सविविध हुए हैं। अतः विविध सभी कथनों को धर्मकाय का विकसित रूप माना जा सकता है।

सम्मोगकाय

सम्मोगकाय धर्मकाय से ही निर्गत एक अवतारवादी काय प्रतीत होता है। क्योंकि यह वह काय है जिसको बुद्ध दूसरों के कस्वान के लिए बोधिसत्त्व के रूप में अपने पुण्य संसार के फल स्वरूप तब तक चारण करते हैं जबतक वे निर्वाण में प्रवेश नहीं करते।^२ बौद्ध सम्प्रदायों में अभिताम बुद्ध का सम्मोगकाय है। मगधान इस काय के द्वारा अपनी विमूर्ति को प्रकट करते हैं। धर्मकाय के विपरीत यह काय रूपवान् है पर यह रूप अपार्षिण है। कतिपय सम्प्रदायों में इस 'रूपकाय' को बाबा रूपबाला कहा जाता है क्योंकि सम्मोग काय अपने को अनेक रूपों में प्रकट करने की क्षमता रखता है।^३ अतः सम्मोगकाय अपार्षिककाय है। यह अभिताम से सम्बद्ध होने के कारण ररिमपुण्ड काय भी माना जा सकता है क्योंकि निर्माणकायों का विकास अधिकतर बुद्ध ररिमियों से ही होता है।

निर्माणकाय

निर्माणकाय को हमकी विवेचनाओं के अनुसार अवतारकाय कहा जा सकता है। यह काय भी विषय अवतार कथनों के सहास जसिब और उभिर रहित है। कबक सत्त्वों के परिपाक के लिए विभिन्न काय के दर्शन होते हैं। 'लुहावतार सूत्र' के अनुसार बुद्ध असक्य निर्माणकायों के रूप में अवतरित होकर अज्ञानियों को धम-वेक्षण से तृप्त करते हैं।^४ इन निर्माणकायों के रूप में प्रथक, प्रत्येक बुद्ध नहीं अफिनु कवल काठजिक स्वभाव से पुण्ड बोधिसत्त्व ही बुद्ध रूप होते हैं।^५ इस सूत्र ग्रन्थ में स्वामासिक बुद्ध के पञ्चनिर्मिता नाम से पांच निर्माणकाय भी माने जाते हैं।^६ सम्भवतः प पञ्चपात्री बुद्धों के प्रारम्भिक रूप हैं। इसी ग्रन्थ में धम बुद्धों से नि-व्यग्य

१ शैल्यरेषयका पृ २९।

२ नी० पृ २९०।

५. कं सू० पृ २३२।

३ नी० पृ २०५ २२९।

४ कं सू० पृ २९५, ४।

५ कं सू० पृ २५२।

और निम्नम् से निर्मिता बुद्धों की परम्परा चलती है।^१ काण्डाम्तर में इसका त्रिक्रम्यात्मक रूप विदित होता है।

सिद्धों में सरहपाद् क एक रूपान्तरित शोहे से ऐसा ज्ञान पड़ता है कि महासुद्धा ही सम्भवता अवतरित बुद्ध है। यह प्राणियों के हित क स्थित रूपकाय में अवतीर्ण होती है।^२ सरहपाद् क अन्य रूपान्तरित दोहों में माना निमाण कर्मों क आविर्भाव का पता चलता है।^३ इन दोहों में निर्माण काय की चर्चा करते हुए कहा गया है कि माना भासित निर्माणकाय त्रिज स्वभाव का काय है। कठना और शून्यता क अद्वय तथा कमसुद्धा के धामय स इसका अनुभव होता है।^४ अद्वयवद्म न 'बाहन्ते वाहन्ते दिद्वा निरुद्धा' की व्याख्या करते हुए चाणुपुस्तक क त्रिपु विशिष्ट निर्माणकाय की उत्पत्ति मायी है।^५ सरहपाद् क दोहों में निर्माण विशिष्ट आविर्भावों का भी उल्लेख हुआ है। त्रिक अनुसार त्रिज इत्यादि सबत्र माना रूप निर्मित करत है। अविष्य स्वयम् कल्याणस्य निर्मित होकर बुद्ध न्याय का आवरण करता है।^६ सिद्ध सरह ने त्रिक्रम्यावारी अवतार या निर्माणों को स्वीकार किया है। किन्तु व मय रूप इनकी दृष्टि में मायामयक है। सरह क एक पद् से इसकी पुष्टि होती है। व कहते हैं कि अत्रात चातु क स्वभाव को वन्दन में उतरने से भय नहीं, इहाम्त लक्षण या प्रतीक क माध्यम से उसे स्वीकार किया जा सकता है। पुन उनके मायोपम रूप की चर्चा करते हुए उनका कथन है कि विषय माग में धारुण बल बाधे शास्ता अवतारी बोधिसत्त्व क त्रिस माग की चर्चा उन्होंने की वह माया विशिष्ट हाने के कारण आत्मबन्ध रहित है।^७

इसम स्पष्ट है कि सिद्धों में निर्माणकाय रूपकाय से माना रूपों में आविर्भूत हान वाला काय रहा है। इसक अवतार प्रयोजनों में बोधिसत्त्वों के दर्शन धर्मदेशना और धर्मप्रवचन प्रमुख रहे हैं। कामा मत में पुनरावतार निर्माणकाय का ही एक प्रचलित रूप है। त्रिक अनुसार दिव्य लोक निवासी बुद्ध सम्भवता धर्मप्रचार क विभिन्न मर्त्य में अवतरित होते हैं। इस प्रकार मर्त्य क प्रवक्तव्य प्राय किसी न किसी बुद्ध क अवतार होते हैं। त्रिक की परम्परा प्रथम दलाई लामा से आरम्भ होती है।^८

१ अ० मू० पृ १५९।

२ शो० श्लो० (राहुक) पृ० १६०

महासुद्धा अष्टिक पूर्व बुद्ध (ई), सोर प्राण्य के सर्व रूप-काय में होर।

३ शो० श्लो० (राहुक) पृ० १२२, १५।

४ शो० श्लो० (राहुक) पृ० १६५, ७०।

५ शो० ग० श्लो० पृ० ९२।

६ शो० श्लो० (राहुक) पृ० १२७, १५।

७ शो० श्लो० (राहुक) पृ १९२-१५, १९।

८ बुद्ध० ति १३०।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निर्माणकाल युद्ध का उपपादुक अवतार काय रहा है। इस काय में प्रकट होने का उनका प्रयोजन मर्त्तों का दूतत्व और भर्मवेक्षण है। सिद्धों में निर्माणकाल को मापोपम मानते हुए भी विविध रूपों का अवतारक माना है। तिष्ठती कामा मत में निर्माणकाल तिष्ठत में प्रचलित पुनरावतार का द्योतक रहा है।

अवतारी शून्य

वज्रपायी तंत्रों में अक्षयवज्र के अनुसार सभी बौद्ध देवता शून्य वा शून्यता के व्यक्त रूप के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। ये जगिक अस्तित्ववास्त होने के कारण स्वभावतः निःस्वभाव हैं। अर्थात् शून्य ही बौद्ध देवताओं के रूप में मापोपम या जगिक होकर अवतरित होता है। अतः जब भी कोई अवतार होता है वह मुख्य रूप से शून्य का ही सार स्वरूप है। शून्य के अतिरिक्त इन अवतरित देवों का सम्बन्ध विज्ञान और महासुक्त से भी है।^१ चर्चापत्रों के अनुसार शून्यता ज्ञान के धारण करने से महासुक्त प्राप्त होता है।^२ शून्यता के अवतारीकरण में देवताओं की जगिकता और महासुक्त दोनों का योग माना जा सकता है।

अक्षयवज्र में शून्य का अवतारवादी विकास चार रूपों में कहा गया है। शून्यता से बीज, बीज से बिम्ब और बिम्ब से देवताओं का न्याय-विन्याय उत्पन्न होता है। कभी कभी बौद्ध वैश्वीकरण में एक ही बुद्ध में सभी पुद्गलों को समाविष्ट किया गया है।^३ इस दृष्टि में मनुष्यी उल्लेखनीय है। मनुष्यी को 'माधवमाला' में सर्वतयागत स्वरूप कहा गया है। इसके मूल में 'ज्ञानसिद्धि' की यह प्रवृत्ति हो सकती है जिसमें कहा गया है कि एक बौद्ध देवता में पाँच रूपों का अस्तित्व होता है। जिसमें प्रत्येक स्वरूप का एक एक प्यायी बुद्ध प्रतिनिधित्व करता है।

शून्य से अवतरित इन देवों का अवतार प्रयोजन पाँचरात्र अर्थात् विग्रहों के स्रष्टा सामान्यतः बरदान, शक्ति सफलता रक्षा और नाश रहा है।^४ वज्रपायी विग्रहों के अनुसार शून्य माना रूप धारण कर लोक-कल्याण का कार्य करता है।^५ वज्रयान में प्रज्ञापारमिता का भी सब वैश्वीकरण हुआ तो कहा गया कि शून्य ही प्रज्ञापारमिता देवी के रूप में आविर्भूत

१ साय मा पृ २२३।

२ साय० मा पृ २२०।

३ साय मा पृ २२५।

४ चर्चापत्र पृ २३।

५ दानसिद्धि पृ ४०।

६ साय मा पृ २२९।

होता है।^१ कहा जाता है कि इन विविध देवों और मूर्तियों के रूप में धमबुद्ध ही जन समूह पर अपनी धनम्त करुणा और कृपा बिन्येते हैं।^२

इस प्रकार ब्रह्मपाल में शून्य करुणा के साथ साधकों की भाषना का कवट लक्ष्य मात्र ही नहीं रहा अपितु वह विविध बौद्ध ध्वजा और इक्षियों के अवतारक रूप में भी प्रचलित हुआ।

उत्तर मध्यकाल में वह शून्यता का प्रतीक नहीं रहा बल्कि वह पुण्य, निराकार या निगुण ब्रह्म का वाचक हो गया। उद्धिया पुराणों में उस 'अकार्य पुण्य शून्य दुई एकद्व समान तथा 'अकार्य पुरुषर नहीं शून्य बण' कहा गया है।^३ इन पुराणों में उसका विचित्र ढंग में वैजाकीकरण हो गया। इनके मतानुसार अब ब्रह्म ही शून्य रूप में आविर्भूत होता है। इन्हीं में वह शून्य पुण्य के नाम से विख्यात है। वह विराट गीता के अनुसार रूप-विम्ह रहित है।^४ यही शून्य पुण्य विज्युगम्पुराण में महाविज्यु कहा गया है, जो 'ज्णे बोक्कि अलेय महाविज्यु इल्ल मे म्पष्ट है। यों तो वह शून्य पुण्य तटस्थ रहता है किन्तु शून्य से परे होकर पद स्वीक्य करता है।^५ शून्य का प्रभाव सत्तों और मध्यकालीन सगुण भक्तों पर भी इत्या जा माक्या है। विदेयकर गोस्वामी तुलसीदास जैसे सगुणोपासक में पाँचरात्र पर रूप के रहते हुए भी 'निर्गुण ब्रह्म सगुण होइ भाषी' का प्रयोग शून्य भाषना में भी संवलिज कहा जा सकता है।

अतः बौद्धधर्म में जिस शून्य की अभिव्यक्ति सृष्टि की सृजिकता के अर्थ में हुई थी ब्रह्मपाली तंत्रों में वही बौद्ध देवताओं का अवतार अवतारी हो गया। फलतः उत्तर मध्यकाल में उसे निराकार निगुण और पुण्य के साथ महाविज्यु से भी अभिहित किया गया और विज्यु से अभिहित होने के उपरान्त वह लीलात्मक रूप का धारक हो गया।

अवतार हेतु फरुणा

शून्यता और करुणा का अपूर्व अवतारवादी रूप ब्रह्मपाली साहित्य में परिगल होन लगता है। वहाँ यद्यि शून्य अवतारी पुण्य है ना करुणा ही उसका सुगम अवतार-प्रयोजन है। यों तो बोधिविज्यु करुणा और शून्यता

१ साव ना ५ ६७-६८
 २ साव मा ५ २३७।
 ३ मे० दे० उ ५० १२ और विज्यु गमे० पु० ल० १ १७१ २७२।
 ४ मे २ उ ५० १ विराट गीता १ बाह्यर रूप रेष नदिश्य पुण्य शून्य केरी।
 ५ मे २० उ ५ ११ शून्य लीला ८
 'शून्य पुण्य ब्रह्मो रहियि शून्य परिबधि कीला करुदि।'

का अभिन्न रूप है जिसके अङ्ग स सामान्य शरीर होता है। परन्तु साधकों की भावार्थक प्रकृति से ऐसी कदमा और आनन्द को ही अतिमासुपी या पून रूप में अवतरित करने का प्रयास किया है। बोधिसत्वों की साधना और काम के रूप में आनन्द और कदमा ही परम कर्म के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों एक के एक व्यक्तिमात्र के लिए नहीं अपितु समस्त लोकहित के विधायक होते हैं। चर्वापद् में कदमा और आनन्द बोधिचित्त के सहज वस माने गए हैं।^१ महासुख का अधिक प्रयोग होने पर भी सिद्ध पदों में कदमा का वहिष्कार नहीं हुआ है। सिद्ध जिस साधना से सम्बद्ध रहे हैं उसमें निरन्तर कदमा का स्फुरण होता है।^२ चर्वापद् में आए हुए 'अवत कदमा समदक्षि वायव' में कदमा का सिद्धावस्था का रूप उचित होता है।^३ कदमा का रूपा साधक के हृदय में समरु की तरह बस रही है। यही कदमा पहले साधक को आपाद्मस्तक अभिमूढ कर उसे महाकादमिक बना देती है। सिद्ध पदों में कहा गया है कि इस अङ्ग चित्त कपी तक्षर ने ही त्रिभुवन में अपना विस्तार कर रक्ता है। जिस तक्षर से निर्गत कदमा पुन्यकक बहते हैं, यद्यपि वह तक्षर शुम्भ ही है फिर भी उस पर विविध विधि कदमा फलती रहती है। जो शुम्भ तक्षर निम्बकन (हीनमानी) है उसकी न मूक है न शाला। वह मूक और शाला के बिना ही विधिब हो जाता है।^४ अङ्ग वज्र के अनुसार परम निर्वाण कपी चित्तमणि की प्राप्ति में अगदपरिमिका महाकदमा ही संभवतः सबसे बड़ी सहायिका है।^५ सरहपाद् के मत से कदमा रहित शुम्भ का उपासक उत्तम मार्ग नहीं पाता अपितु दोनों का साधक निर्वाण प्राप्त करता है।^६ पर इन दोनों में कदम बक से ही रूप काव द्विविध होता है।^७ सिद्ध साधना में गुह तक्षम कदमा से आद् मार्ग चिप्न को दर्शाता है।^८ वह कदमा को उपाय से विलय तथा दृष्टान्त से दिखाने की आवश्यकता बल्लभता है।^९ वहाँ दृष्टान्त से दिखाने का तात्पर्य बहुजन हिताय कदमा के उपयोग से माना जा सकता है।

इस प्रकार सिद्धों ने अपनी साधना में जिस कदमा का स्थान दिया है वह केवल उनके व्यक्तिगत निर्वाण की ही साधिका नहीं है अपितु उसमें पराव भाव और बहुजन हिताय की भावना भी निहित है। चर्वापद् के

१ चर्वापद् पृ० ६ २७।

२ चर्वापद् पृ० १५०।

५ बी० गा० बी० ६ १८।

७ बी० बी० (राहुल) पृ० १२२।

९ बी० बी० (राहुल) पृ० ११५, ७२।

२ चर्वापद् पृ० २५०।

४ बी० गा० बी० ५ १८ बी० २ ७।

६ बी० बी० (राहुल) पृ० ५।

८ बी० बी० (राहुल) पृ० २८२, २६।

नाम से प्रसिद्ध होहों में कदगा का महत्त्व स्थापित हुआ है। क्योंकि रोहाकोष में कुमारभूत मनुष्यी को नमस्कार करते हुए कहा गया है कि 'सरह ने कदमयुक्त यह अवबोध गीत रचा'।^१ इस कदगा में बहुजन हिताय की मबोदृष्टि प्रतिबिम्बित होती है।

धर्ममेघ या कदम्बमेघ

महापानी बोधिसत्त्ववाद में धर्ममेघ से बोधिसत्त्वों में अवतार-कल्प की समता प्रदान की जाती रही है। सिद्धार्थों पदों में भी कदम्बमेघ की बर्णों का प्रायः प्रयोग होता रहा है। भुसुकपाद ने निरन्तर कदम्बमेघ के कदम्बे की बर्णों की है। बोधिसत्त्वों के समान सिद्धों का भी कदम्बमेघ के सद्यः बरसना प्रधान अवतार-कार्य रहा है।^२ क्योंकि कदगा की बर्णों में माचक के साथ साथ बहुजन हित की भी भावना विद्यमान है।

इस प्रकार बौद्ध धर्म में शून्यता यदि अवतारी है तो कदगा उसका अवतार प्रयोजन है। एक कदगा में ही सभी पारमार्थिक और बहुजन हित के भाव समाहित हो जाते हैं।

वज्रयान के अवतारी उपास्य देव

ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि वज्रयानी सम्प्रदाय में शून्य ही विविध उपास्य देवों के रूप में अवतरित हुआ। इसके परिणाम स्वरूप वज्रयान में माना प्रकार के देवता प्रचलित हुए। इनमें से कतिपय ऐसे हैं जिनका अवतारवादी उपास्य रूप सिद्ध एवं उत्तरवर्ती साहित्य में मिलता है।

आदि बुद्ध

पूर्व मध्यकालीन बौद्ध धर्म के उपास्यों और इष्टदेवों पर सम्भवतः पाँचरात्रों के प्रभाव स्वरूप एकेवरवादी मबुष्टि का परोक्ष प्रभाव पड़ा। अनेक या पंच तथागत बुद्धों की अपेक्षा उन्हें पुनः आदि बुद्ध की आवश्यकता विहित हुई। कदाचिद् इसी प्रेरणा से आदि बुद्ध की उत्पत्ति १०वीं शती के प्रथम चरण में शकम्बा में हुई।^३ बुद्ध खेग पंच बुद्धों की उत्पत्ति के बाद सबमेव बुद्ध की उत्पत्ति मानते हैं, जिन्हें आदि बुद्ध कहा गया। वज्रसत्त्व भी इनका ही नाम है।^४ किन्तु बुद्ध खेग आदि बुद्धों से ही पंच स्यामी बुद्धों की उत्पत्ति मानते हैं।

१ शी० श्वे० (राहुक) पृ १५२ १५।

२ शी० गा० शी० पृ० १० दो० ३ बर्णोपम पृ १४२।

३ बुद्ध० इत्ये० पृ० १०।

४ वृ नि बहु० मीट पृ १२।

को अज्ञेय से निकले हैं और उधर भादि बुद्ध जब मनुष्य रूप धारण करते हैं तब उन्हें ब्रह्मचर कहा जाता है। इससे क्पाता है कि ब्रह्मचर और ब्रह्मचर दो उपास्य रूप हैं। परन्तु ब्रह्मचामी साहित्य में इससे सम्बद्ध को उपादान निकले हैं उस आधार पर इन्हें एक दूसरे का पर्याय भी माना जा सकता है।

'बौद्ध गान को दोहा में संयुद्धित 'डाकाजब' के अनुसार ब्रह्मचर के अवतार की पुष्टि होती है। इस तंत्र के अनुसार बुद्धमार्ग की स्थापना के हेतु ब्रह्मचर मनुष्य रूप में बार बार उत्पन्न होते हैं। ये माया के कारण हैं फिर भी अपनी आत्मा को माया में स्थिर कर प्रत्यवेक्षण करते हैं। अतः ब्रह्मचर के अवतरण में 'तत्रात्मानं सृष्ट्वाग्नेह' और 'सम्प्रशान्त्यात्म मायया की प्रवृत्ति लपित होती है।'

उपास्य रूप

सम्बन्ध परमेस्वर में तथा उसके दर्शन में मरहपाद् का विरवास नहीं है किन्तु ससार से मुक्ति के लिए वे गुह ब्रह्मचर की उपासना अभीष्ट मानते हैं। गुह वीर्य प्रजाती में पूर प्रकार का अवतारी पुरुष होता है। मरहपाद् के दोहों की व्याख्या में 'नमः श्री ब्रह्मसत्त्वाय' के प्रयोग से उसके उपास्य रूप का पता चलता है। उसे पुनः जगन्नाम और गुह कहा गया है।^१ इससे उपास्य ब्रह्मचर के गुह इष्टीय रूप का अनुमान किया जा सकता है।

मिर्झों के अनुसार बुद्ध ब्रह्मचर भाषामात्र तथा कल्याण-शुभ्यता के अष्टम स रहित है। उसे मरहक जगत से लक्ष्मण बुद्ध ब्रह्मचर परिकल्पित किया जाता है।^२ कल्याणाय ने पद्मार्ग में उसे 'ब्रह्म ब्रह्मचराय' कह कर उपास्य रूप में स्वीकार किया है।^३ 'अर्थापत्' के एक दोहे में कहा गया है कि गगन रूपी भीर में महामुख स्वरूप अमिताम बोधिचित्तानम् रूप एक उत्पन्न करता है। बही कमल के मूल माल का प्रधान कारण है। उसीसे अहकार रूपी धर्मचर अनाहत स्वरूप ब्रह्मचर अक्षररूप ब्रह्मचर उत्पन्न होता है।^४ बही निर्गुण प्रज्ञ के सगुण रूप के महान ब्रह्मचर उपास्य की उत्पत्ति विदित होती है। 'द्विज तंत्र' के अनुसार वह स्वयं कर्ता स्वयं हर्ता स्वयं राजा और प्रभु है।^५ वह कर्ता के रूप में सदा और हर्ता रूप में स्वयं सृष्टि का संहारक

१. बी. गा. सी. ५. १४८।

२. बी. गा. सी. ५. १८।

५. बी. सी. ५. १५।

३. बी. सी. ५. १२।

४. बी. गा. सी. ५. १२७।

५. बी. सी. ५. १५२।

। वही महासुख, धमकाय और स्वयं बुद्ध है । सिद्ध पदों में ब्रह्मपर शरीर का जय बतलाते हुए कहा गया है कि सभी वैरोचन आदि तथागत सम्बोधि लक्षण युक्त ब्रह्मपर शरीरवाला हुए हैं । व ही रूपादि पञ्चस्कन्ध शरीर स्वरूप के चौर-वीर भाव से समरस करनेवाले रह रहे हैं ।^१ इस कथन के अनुसार सभी तथागत ब्रह्मपर के शरीर में समाविष्ट विदित होते हैं । सम्भवतः पञ्चप्यानी बुद्धों से युक्त होने के कारण ब्रह्मपर छद्म प्यानी बुद्ध रूप में भी मान्य हैं ।^२

ब्रह्मपर बौद्ध तंत्रों में परमज्ञ के समकक्ष हैं । वे छः पारमिताओं से युक्त भगवान् हैं । भगवुष्ट होने के कारण ही इन्हें भगवान् कहा जाता है । गूय्यता को भी भग कहा गया है । कथाचित् गूय्यता और भग का यह सम्बन्ध जबतारी पङ्क्तियों में भी गूय्यता का सम्बन्ध स्थापित करता है ।^३ हममें महाकदगा विद्यमान है । महात्मगीति की तरह ब्रह्मपर का प्रबचन मुनके के लिए अनेक बुद्ध, बोधिसत्त्व देवता ब्रह्म गूय्य इत्यादि इतर श्रेणियों से जाकर एकत्र होते हैं ।^४ ब्रह्मपर ही महासत्त्व समपमरव और ज्ञानसत्त्व भी कह जाते हैं । ब्रह्मपर ही आदि बुद्ध हैं । इनमें प्यान रूप ब्रह्मा सज्ञान सम्कार और विज्ञान विद्यमान हैं । इन्हीं य पञ्च तथागत नी है । वे ही ब्रह्म और हेतुक नाम से भी प्रचलित हैं ।^५

विभूति रूप

उपान्य रूप के ही क्रम में ब्रह्मपर बुद्ध का विभूतिवाची रूप भी सिद्ध साहित्य में परिगणित होता है । सिद्धों के अनुसार वाचि ब्रह्मपर मायोपम हैं । वे अश्लिष्ट सृष्टि के स्थावर और जगम प्राणियों से पूर्ण महाविरव में चन्द्र रूप में द्रव्यमान हैं । जो या एक महाकाय तथा निमाणकाय के वे सहज धारण कर्ता तथा सभी प्रकार के धमकाय भी व ही हैं । वे आदि बुद्ध स्वरूप हैं । वे याग तंत्रों के प्रचार हेतु ब्रह्माचार्यों के चित्त में गांधर होते हैं । वे ब्रह्मपर बुद्ध योगी आचार्य और सिद्धों में प्रत्यक्ष रूप में और व्याम्बायों में अनुमान से गुरुओं के मुख में ज्ञेय होते हैं । सभी पण्डितों में बुद्ध ही गोचर होते हैं ।^६ वे महाबोधिसत्त्वों के विरव स्वरूप स्थावर और जगम सभी में विद्यमान इनके तीनों पूव रूप सद्भाव के कक्षक हैं । तार्किक, ज्ञानी जगमी और बाल्यागी भी उस रूप को नहीं जानते । योगिनियों से वर प्राप्त करने पर ही

१ ओ रे क पृ० ३७।

२ दो ग० दो० पृ० ११५ २०।

३ इन पु० ३ पृ १२९।

४ इन ता पु० पृ ८८।

५ इन० ता पु पृ० ९ -११।

६ इन० ता पु क्रमछः पृ २, १४ १६, १८

७ दो० ग० दो० पृ १५४।

उसे अनेक रूपों में जाना जा सकता है। वह ब्रह्मपर सत्य अमेव स्य तारने वाचा स्वयम् है।^१

सगुण विष्णु के समान सिद्धों के उपास्य ब्रह्मपर उपास्य रूप में निर्गुण सगुण रूपों के साथ उपर्युक्त विभूतियों से युक्त माने गए।

युगल रूप

विभूति रूप के अन्तर युगल रूप का विस्तार भी सिद्ध साहित्य में कथित होता है। सिद्ध व्याख्याकारों के अनुसार विक्रमण विरमानन्द मुक्त जो योगीन्द्र गुह्यों के प्रसाद से मिळता है वह स्वयं भगवान् ब्रह्मपर स्वरूप है।

विरमानन्द विक्रमण मुक्त जो पशु बृहद् मो पशु बृद् में बृद् का अर्थ ब्रह्मपर से लिया जाता है।^१ सारीशतः उपास्य ब्रह्मपर भी जानम् स्वरूप है। इसके अतिरिक्त बौद्ध शून्यता ही ब्रह्मपान ब्रह्म के रूप में परिणत हो जाता है। ब्रह्मपान के सभमेव वैबता ब्रह्मसत्य शून्यता और सत्य के मिश्रित रूप है।^२ ब्रह्मसत्य सत्य में 'ब्रह्म का अर्थ शून्यता और 'सत्य' का अर्थ सिद्धांत होता है।^३ ब्रह्मसत्य से सम्बद्ध बोधिविषय भी शून्यता और कल्याण का मिश्रित रूप है। इस प्रकार विरमानन्द के साथ साथ बौद्ध उपास्य और साधक दोनों में शून्यता और कल्याण के द्विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। यही शून्यता और कल्याण काळान्तर में प्रज्ञा और उपास्य के रूप में परिवर्तित हुए। पुनः इनका रूपांतरण स्त्री और पुरुष रूप में हुआ तथा इनके मिश्रित रूप को अक्षय युगलत्र समरस महासुप्र भादि नामों से अभिषेक किया गया।^४ सिद्धों ने इन्हीं उपासकों से निर्मित युगल उपास्य रूपों को ग्रहण किया है।

'गुह्य सिद्धि' में कहा गया है कि भगवान् ब्रह्मसत्य और प्रज्ञा महासुप्र के किपु ककि-कीड़ा रत रहते हैं।^५ अर्थात् दोनों की व्याख्या में शून्यता-कल्याण अभिषेक्या महासुप्र अर्थकथन से निर्गत अर्थकारणक कथा कही गयी है। बही रस वाचन के किपु निज प्रसु ब्रह्मपर के वेस में आभरण अककार के साथ पामित होती है।^६ इस प्रकार ब्रह्मपर और ब्रह्मी (शान सुत्र) का

१ बी वा हो ५ १५।

२ अर्थात् ५ १५।

३ ओ रे ५० ५ १८।

४ अक्षय ब्रह्म संसर्ग—प्रत्यापना। ह प्र घा। ५ १।

५ ओ रे० क ५ १३।

६ ओ रे क ५ १२।

७ बी० गा हो ५ १५।

पुगण्ड रूप सिद्धों में प्रकृत प्रकृत हुआ। उन्होंने ब्रह्मी-ब्रह्मपर का काय वाक्-चित्त-प्रभु भावा है।^१ सिद्धों ने ज्ञान मुद्रा के लिए परिणी और तर्कणी का प्रायः प्रयोग किया है।^२ इससे विदित होता है कि तर्कणी या बरमी ज्ञानमुद्रा या महामुद्रा का स्वरूप है। सिद्ध योगियों के समाधि मंदिर में प्रभु ब्रह्मपर इसी निज धरनी और तर्कणी महामुद्रा के साथ कछि या रतिक्रीड़ा करता है।^३ ब्रह्मी और ब्रह्मपर दोनों इस कछि में राधा-माधव और माधव-राधा की तरह अद्भुत हो जाते हैं। यही नहीं राधा के सद्यः ज्ञानमुद्रा भी ब्रह्मपर का बरा धारण करती है।

जता पुगण्ड रूप में ही ब्रह्मी और ब्रह्मपर का पुगण्ड या अद्भुत रूप अभिम्यक्त हुआ है, जिसमें शून्यता और कृष्णता का अद्भुत भाव भी विद्यमान है। 'दाकार्णव तत्र' के महावीरवर और वीरवरी^४ ब्रह्मपर और ब्रह्मी के एक स्वरूप विरोध के रूप में प्रकृत हैं।

अवतार प्रयोजन

बीज तत्र और सिद्धों का उपास्य होने के कारण इनका अवतार प्रयोजन भी तत्रों से सम्बद्ध रहा है। ब्रह्मपर के अवतार रूप के प्रति कथा गया है कि भगवान् तयागत बुद्ध मार्ग की स्थापना के हेतु ब्रह्मपर मानव के रूप में बार बार उत्पन्न होते हैं। फिर भी वे अपनी आत्मा को माया में मित्त कर प्रत्यवचय करते हैं।^५ 'मञ्जोपायविनिर्चयमिद्धि' के अनुसार ब्रह्मनाथ साधकों के हित के लिए अवतरित या निर्मित होते हैं। ये दुर्बल कुटिल स्व पर सभी के छिपे समाज रूप से हितकारी हैं।^६ 'दाकार्णव तत्र' के अनुसार ब्रह्मपर या ब्रह्मसत्र तत्रों के अवतरण के निमित्त अवतरित होते हैं। ये पुग पुग में अवतरित होकर बुद्ध धर्म में लोगों को प्रकृत किया करते हैं। जनुप्रह, निम्न और रक्षा इनके स्वामाधिक धर्म हैं।^७ जनुमुक्ति के लिए कदमारूप में इनका उद्भव सिद्धों में मान्य है।^८ ये योग का प्रभावित करने वाले प्रज्ञा और मोक्ष के दाता अद्भुत आकार और धर्मात्मा हैं तथा इत्यात्मक तत्रों से

१ वा मा दो० ५० १२१ ही को वागना ११४।

२. दो० को वागनी ५ ११२ को २८ 'निज परिणी कर केकि करन्' दो २९ में तर्कणी और दो ३१ ३२ में बरिणी के प्रयोग हुए हैं।

३ दो को वागनी ५ ११२ को २८ 'निज परिणी कर केकि करन्', और 'ज्ञान बरे बरिणी जावा मय्यह ताव कि पंच वचन विहरिणार।'

४ बी मा दो ५ ११२।

५ बी मा दो० ५० १२२।

६ इ वज० प्रधा० ५, ११ ४९।

७ बी० मा दो ५ १५१।

८ बी मा दो ५० ११२।

सन्निविष्ट है।^१ इस प्रकार इनके मित्रात्मक अवतार-कार्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् स्वामी बाराही मुक्कामन्दन हैं। ये पांगात्मा इन्द्रिय विषय के मारक, ज्यों ज्यों सत्त्वों में विषय उत्पन्न होता है त्यों त्यों उनका नाश कर कर्म के प्रभाव को नष्ट करने वाले हैं। ये साधकों को तत्रों का सार ज्ञान प्रदान करते हैं।^२ ये भगवान् दास्य तथा महाभयनासक आशा सिद्धि या आशा चक्र के प्रवर्तक हैं और स्वामाविक ज्ञान भूमि स्वरूप हैं।^३ ब्रह्मघर के अतिरिक्त सिद्धों में प्रचलित योगिनियों भी तत्रों के प्रचार हेतु अपने अपने जन्मों में प्रादुर्भूत होती हैं।^४

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदिबुद्ध के अवतार ब्रह्मघर केवल अवतार ही नहीं हैं अपितु सिद्धों में उनके उपास्य रूप में भी माग्य हैं। इनके विभूति रूप और ब्रह्मी-ब्रह्मघर के रूप में पुण्ड्र रूप सिद्धों में पर्याप्त प्रचलित रहे हैं। इनके अवतार का मुख्य प्रयोजन तत्रों का प्रचार और उसके माध्यम से साधकों का उद्धार रहा है। इनके ही सहस्र योगिनियों का अवतार हेतु भी तत्रों का प्रचार ही विहित होता है।

हेरुक

सिद्ध साहित्य में हेरुक का उपास्यवादी अवतार रूप दृष्टिगोचर होता है। सिद्धों के मतानुसार हेरुक वेप में स्वयं आदि भगवान् ही प्रकट होते हैं।^१ कहा जाता है कि ब्रह्मघर में अध्वर का जब वैबीकरण हुआ तो गुरुत्वता और कदगा के प्रतीक प्रज्ञा और हेरुक नामक दो देवता समुक्त होकर पुण्ड्र या कद्वय कहे गए।^२ कृष्णपाद् के एक दोह में कहा गया है कि हेरुक की बीणा बज रही है। वहाँ बीणापाद् नृत्य कर रहे हैं और उनकी महेश्वरी नेरारमा गान कर रही है। इस माय से बुद्ध निर्वाण-भासक चक रहा है। यहाँ हकड़ बीमा में बुद्ध का उपास्यवादी रूप प्रतीत होता है। टीका के अनुसार बुद्ध का यह कीकारमक भासक सत्त्वों के निर्वाण हेतु चक रहा है।^३ इन उपासकों में हेरुक के अवतार के साथ साथ उपास्य और पुण्ड्र कीकारमक अवतार हेतु भी पुष्टि होती है। हेरुक अन्य ब्रह्मघरानी उपास्यों के सहस्र

१ बी० मा बी २४५।

२ बी० मा बी ५ २४२।

३ बी० गा बी० २४७।

४ बी० मा दो ५ २३२।

५ बी० मा बी० ५० २२।

६ साध मा ५ < मू < ०।

७ बी० मा बी ५ २ बी २७

‘बाबर आकी सरि देवन बीमा एत गानि वधि विरुसत कजा।’

‘जावन्ति वप्रिभिक वाग्नि देवी। बुद्ध नामक विसमा दोरं।’

भवतपताकार हैं। इसी प्रसंग में इन्हें आरुणायक भी कहा गया है।^१ राहुक की द्वारा सकलित सरहपाव बोहा कोश में प्रायः नमो भागवते हेरुकाय के रूप में इनके पाहुपय युक्त रूप का आभास मिलता है।^२ 'आकार्जव तत्र में हिदकाकृति से हेरुक की मूर्ति का बोध होता है। इस तत्र क मगल कर्ता हेरुक धाराही मय हेरुक हैं।^३ धाराही के अन्त रूप हैं। काया भाव से उसके भेद भी अन्त हैं। बुद्धकाय महारस युक्त विरव में स्फुरित हुआ। इस प्रकार भर रूप में माया सत्रा महासुख से विस्फुरित होती रहती है।^४ हमसे विदित होता है कि बन्नी-बन्धनर के सद्यः इनका पुगल रूप भी महारस और महासुख युक्त सिद्ध साहित्य में प्रचलित था।

भवतार-प्रयोजन

उक्त रूप क अतिरिक्त इनके उपास्यवादी भवतार प्रयोजन की चर्चा भी सिद्ध साहित्य में हुई है। 'सावन माका' में कहा गया है कि श्री हेरुक जगन्नाथ स्वरूप होकर जगत हित के लिए विभावित होते हैं और सर्वाथ सम्पत्ति प्रदान करते हैं।^५ य परमानन्द सुख स्वरूप हैं तथा परमार्थ क लिए मायाकार रूप धारण करते हैं।^६ इस प्रकार हेरुक में भी भवतार, भवतार-हेतु युक्त उपास्य और लीलात्मक आदि व समी रूप मिलते हैं जिनका विवेचन उपर्युक्त शेषों में किया गया है।

आदि बुद्ध के अर्चा विग्रह

उपर्युक्त उपास्य रूपों में त्रिन बौद्ध शेषों का परिचय दिया गया है उनके सैद्धान्तिक और प्वावहारिक दोनों रूपों के दशम समान रूप से होते हैं। किंतु ऐसा लगता है कि सगुण सग्नदायों के समान मध्यकालीन बौद्ध सग्नदायों में भी आदि बुद्ध क अर्चा विग्रहों को परब्रह्म की समकक्षता प्रदान की गई थी। उन पर पांचरात्र विग्रहवाद का द्योष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

उत्तरवर्ती बौद्ध धर्म में प्रचलित कतिपय अर्चाविग्रह रूप विभिन्न स्थानों में प्रचलित हुए। इनमें स्वयम्भू का नेपाल क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचार हुआ। इस काक में आदि बुद्ध स्वयम्भू कहे गए। पूर्ववर्ती बौद्ध धर्म में पचध्यानी बुद्धों का निर्माण आदि बुद्ध से माना जाता था। किंतु इन पुग में इपर आदि बुद्ध

- | | |
|------------------------|------------------------------------|
| १. बी मा० शी० पृ० २१८। | २. दो की (राहुक) पृ० २१९, २१९। |
| ३. बी पा० शी० पृ० २१२। | ४. बी गा शी कमस० पृ० २४९, २५२-२५३। |
| ५. साव० मा ६ ४०२। | ६. साव मा० पृ० ४०३ और ४८५। |

ता स्वयम्भू विग्रह रूप में गृहीत हुए और इनकी धरती प्रजापारमिता को भी सम्भवतः पञ्चपानी बुद्धों की आदि माता कहा गया।^१ आदि बुद्ध के इन विग्रह रूपों के सम्बन्ध में बताया गया कि बुद्ध कलिपुग में इस गुह्य रूप को पुनः प्रकाशित करते हैं।^२

स्वयम्भू

'स्वयम्भू पुराण' (रचनाकाल वि० स० ११९) के प्रारम्भ में बुद्ध के स्वयम्भू रूप की प्रार्थना की गई है। उसी क्रम में यह कहा गया है कि प सात्ययुग में पद्मिनी प्रेता में वसुधैव कुटुम्बक इत्यपर में गोरदग तथा कलि में ग्रेपुच्छ पर्वत पर पूजे जाते हैं।^३ विद्वानों का कहना है कि सिव-शक्ति के अनुकरण पर परवर्ती बौद्ध धर्म में भी विशेष कर नेपाल में आदि बुद्ध और आदि प्रजा का प्रचार हुआ। ये आदि बुद्ध को बुद्धों और पद्म राजसों के स्वामी हैं पौरी श्रृंग में पूजे जाते हैं। ये धर्मशास्त्र, वैरोचन जगन्नाथ धर्मराज स्वयम्भू और शुम्भु दोमों हैं।^४ इनकी विग्रह मूर्ति के साथ तारा और पञ्चबुद्ध का अस्तित्व मिलता है। इस आधार पर ये अवलोकितेश्वर से भी सम्बन्ध प्रतीत होते हैं। महर्षि मुद्गली के २४वें परिबर्त में जिस प्रकार अवलोकितेश्वर को विविध रूप धारी कहा गया है स्वयम्भू से भी उसका सम्बन्ध स्वयम्भू पुराण में उचित होता है। उनके समान स्वयम्भू शक्ति ब्रह्मा, विष्णु सिव इन्द्र काम गणेश भाग पद्म अप्सरा, किन्नर लगेछ ब्राह्मण राजा वैश्य शूद्र कृषि पाणिन्य, मोक्ष लोक काम, सूर्य, चर्म सर्पश बौद्ध आदि अनेक रूप धारण करते हैं। इनका यह रूप विस्तार बैष्णव विमूक्तिवाद की परम्परा में विदित होता है।^५ इसके बाद कहा गया है कि भागा रूप और विग्रहरूप ही हैं।^६

अथतार प्रयोजन

'स्वयम्भू पुराण' में इनके अथतार प्रयोजन के प्रति कहा गया है कि ये देवता और मनुष्य के हित, सुख और मोक्ष के निमित्त अवतारित हुए।^७ इनके पूर्व ही यह कहा गया है कि स्वयम्भू भगवान् प जगत का आकाशित

१. मे. व. व. प. १. ५ शुक्ल संहिता २१. ३५२

'बुद्ध माता आदि शक्ति सखी अर्पित अदि'

२. मे. वै. व. प. ११२ शुक्ल संहिता

'शक्ति बुद्ध बुद्ध के प्रकथित पुत्रि, कलि बुद्ध बुद्ध के निज रूप दीप्य।

३. स्वयम्भू पु. ५. ८।

४. को. रे. व. ५. ३२५।

५. स्वयम्भू पु. ५. १०।

६. स्वयम्भू पु. ५. ३१।

७. स्वयम्भू पु. ५. ५०।

करने के लिए सर्वश्रेष्ठानुक्रमणाय व्यवहार प्रयुक्त किया है। य विदेव और सभी देवों द्वारा पूजित स्वयं प्रभु हैं।^१ कवि के पुत्रों का नाम भी इनके व्यवहार का प्रमुख प्रयोजन है।^२

इस प्रकार व्यवहार उक्त रूप विनूनिष्क और व्यवहार प्रयोजन इन सभी छंदों में बौद्ध उपास्य रूप तथा आदि बुद्ध के साथ विद्म रूप है।

स्वयम्भू और जगन्नाथ

'स्वयम्भू पुराण में इन्हें भायः जगन्नाथ से अभिहित किया गया है।^३ आत्मस्य रूप में कहा गया है कि य हा त्रिजगन्नाथ धनधान्यक है।^४ इससे युवा प्रतीत होता है कि पुरा जगन्नाथ के विद्म रूप का भी इनसे सम्बन्ध करने की चेष्टा की गई है। यों बाद का ब्रह्मपानी बौद्ध साहित्य में यह रूप अपरिचित नहीं है। प्रजापति मणि कृत 'बाधिकाव्यवहार में महाबली जगन्नाथ (बुद्ध) की धारण में जाने के लिए कहा गया है, जो जगत के रक्षक, सुनिश्चिता सत्त्वाम हरमबासे जिन हैं।^५ 'मन्त्रोपाय विनिश्चयमिन्द्रि' के अनुसार गुरु जगन्नाथ उपास्य निरन्तर पहिले का कामना स पुत्र सर्वाय विद्वि यता है।^६ 'जगन् सिद्धि के प्रारम्भ में भी जगन्नाथ स्तुति के प्रसंग में श्रुति बुद्ध है।^७

इन तथ्यों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि जगन्नाथ रूप का प्रयोग बौद्ध उपास्यों के लिए भी बौद्ध साहित्य में हुआ था और स्वयम्भू के बाद तक वे विद्म रूप जगन्नाथ के नाम से स्वरूपित किए गए। अतः विन्नु व्यवहार पुरा जगन्नाथ के भी बाद रूप में प्रचलित होने में इन उपासकों का योग माना जा सकता है। मध्यकालीन उद्दिष्ट साहित्य में प्रचलित रूपों के अनुसार उन पर बौद्ध धनार भी कम विदित नहीं होता। क्योंकि जगन्नाथ कबल बुद्ध ही नहीं अपितु त्रिरत्नों से भी सम्बन्धित माने जाते हैं। जगन्नाथ की रचनाओं से स्पष्टता के लिए प्रचलित बुद्ध रचनाओं की इन हैं।^८ 'शून्य संदिता में जगन्नाथ को बुद्ध रूप माना गया है। 'शून्य संदिता' के उद्दिष्ट पत्रों के अनुसार य बौद्ध रूप में महाशक्ति के बिना के धर्तमान होकर विद्वान् करत है।^९ 'हृत् ब्रह्म गीता'

१ स्वयम्भू पुरा ५० १६।

२ स्वयम्भू पुरा ५० २०।

३ स्वयम्भू पुरा ५० २, २१ उपाधि।

४ स्वयम्भू पुरा ५० २०।

५ बौद्धिर्गार्ग्यार ५ ६५।

६ हृत् ब्रह्म गीते ५० २१।

७ हृत् ब्रह्म गीते ५० ११।

८ ६० ६ २० ५ १७-१९।

९ ६० ६ २० ५ १७-१९।

अथ के अर्थों के बुद्ध, योग विद्विषु से लेते हैं।

में कहा गया है कि बुद्ध भक्तार ककियुग में जगन्नाथ दास महा क रूप में पृथित होंगे ।^१

बुद्ध और जगन्नाथ क इस भक्तारवादी सम्बन्ध क सूत्र में पर्यायवाची नामों क प्रयोग का सूत्र भी थाका जा सकता है । क्योंकि उक्त तत्त्वों के सम्बन्ध से यह प्रकट होता है कि पूर्वसम्बन्धक में जगन्नाथ भी यदि बुद्ध और उनके अन्य रूपों के नाम-पर्याय के रूप में प्रकल्पित थे तबिक ककस्वरूप उन्हें बुद्ध का भक्तार माना गया ।

मुनीन्द्र

कबीर पन्थी ग्रन्थों की परम्परा में मान्य कबीर क विष्णु चर्मदास ने ऋतुर्गुणी भक्तारों में नेता युग का भक्तार मुनीन्द्र को माना है ।^२ बौद्ध साहित्य में बुद्ध का एक मुनीन्द्र रूप प्रकल्पित रहा है जिसका सम्बन्ध उत्तरकाशीन बौद्ध विग्रहों से भी क्षीण पड़ता है । अतः चर्मदास ने मुनीन्द्र क जिस रूप को ग्रहण किया है राम क अतिरिक्त बौद्ध रूप से भी उसका सम्बन्ध माना जा सकता है ।

'बोधिसत्त्वभक्तार में मुनीन्द्र का प्रयोग बुद्ध भक्तार के लिए हुआ है । यहाँ वे संसार के दुःख महारक्षण से सबों का उद्धार करने वाले मुनीन्द्र हैं । सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि एक कल्प में सर्वार्थ हित-साधन क लिए बुद्ध जगन्नाथ मुनीन्द्र बोधिसत्त्व क रूप में अवतरित हुए ।^३ इस ग्रंथ में बुद्ध क भक्तारवादी कार्य से भी उनका मुनीन्द्रत्व का मान होता है । क्योंकि एक स्फुट पर उन्हें साधुओं का परित्राता या परित्राय कर्ता कहा गया है तथा 'पूजमान मुनीन्द्रान् पूजयामि' जैसे पदों का उल्लेख मिलता है ।^४ ब्रह्मवानी तंत्रों में विख्यात 'प्रज्ञोपायविनिश्चय सिद्धि' में मुनीन्द्र के भक्तारवादी उपास्य रूप का वर्णन करते हुए बताया गया है कि त्रिभुवन क समस्त दुःखों को ध्वस्त करने में प्रकृत अनुपम करुणा से युक्त, मुक्तों के अपबुद्ध अपरिमित ज्ञेयाधि पुक्त रच-वर अपर मुक्तों से मुक्त होने क लिए प्रकृत होते हैं ।^५ इसी प्रकार 'ज्ञानसिद्धि' में भी बुद्ध को प्रायः मुनीन्द्र या जगन्नाथ मुनि कहा गया

१ मे वे २ ५ १५४ दास महा गीता

समुद्रे मेष्ठिन दिव्य प्रभु देव राधा, ककियुगे चारणे से राध महा पूजा ।

२ चर्मदास जी उपासकटी पृ० १८ अक्षर ३

'विनायक मुनीन्द्र बहाद, यदुद्धर दिव्य को बरें सरवा'

३ बोधिसत्त्वभक्तार (प्रकाशर मति) पृ १२ ७ ।

४ बोधिसत्त्वभक्तार (प्रकाशर मति) पृ० १५, २६ और पृ ५१ १५ ।

५ पृ० ५३० प्रश्नो १ १८ ।

है। सरह-पाद विरचित 'दोहाकांत' में मुनीन्द्र का प्रयोग अक्सर बेरतने में आता है।^१ 'स्वप्नम् पुरात' में स्वप्नम् प्राय मुनीन्द्र के रूप में भी विख्यात है।^२ 'धर्म-पूजा-विधान' में धर्म यक्षुर क अबतारी विष्णु को ही मुनीन्द्र कहा गया है।^३

इससे प्रतीत होता है कि मुनीन्द्र बुद्ध क बोधिमत्त्व अवतारों में से थे। प्रायः बुद्ध क पर्याय स्वरूप भी इनका प्रयोग होता रहा है। मुनीन्द्र का यह सम्बन्ध उत्तरवर्ती आदि बुद्ध क विग्रह रूपों तक अष्टगुण हील पड़ता है। काठाम्तर में ५ विष्णु से अभिहित किये गये और साधु परित्राण इनका एक अवतार हेतु माना गया।

निरञ्जन

कबीर पद्य में निरञ्जन के त्रिम रूप का जत्यधिक प्रचार हुआ है।^४ उसका एक रूप ब्रह्मपानी सिद्ध तथा उत्तरवर्ती बौद्ध प्रभावित पूर्वी परम्पराओं में उल्लिखित होता है। ब्रह्मपानी सिद्धों में आदि बुद्ध ही निरञ्जन कहा जाता है।^५ 'दोहा कोष' में संकलित तिहोपाद् क एक दोहे में कहा गया है कि मैं ही जगत, मैं ही बुद्ध और मैं ही निरञ्जन रूप अममरकार और भवभङ्ग हूँ।^६ पुनः एक दूसरे दोहे में शून्य निरञ्जन परम महामुक्त को पुनः म पाने का अर्थात् बुद्धम होने का उल्लेख किया गया है।^७ अद्वय ब्रह्म के मत से निरञ्जन का शाश्वत रूप निराकार है।^८ कृष्णाचार्य क प्रथम पद की टीका में योगियों को निरञ्जन (महज्जकाय) में लीन होने के लिये कहा गया है।^९ यहाँ निरञ्जन सहजकाय का घोटक प्रतीत होता है। राहुल जी ने सरहपाद् के विचारों को लेकर कहा है कि सरह ने परमपद को लोकभाषा में शून्य निरञ्जन कहा है। उपनिषदों ने भी ब्रह्म का निरञ्जन होना स्वीकार किया। परन्तु ब्रह्मवादियों के विपरीत सरह ने उसे स्वप्नोपम स्वभाव का माना है।^{१०} 'भाष्य माहा' में कृष्णामय बुद्ध की धरम जाने क पूर्व समस्त सर्वधर्म समन्वित निरञ्जन को रस रूप कहा गया है।^{११}

१ दू ब्रह्म ज्ञानसिद्धि १ २९। २ दो को राहुल पृ० १२५, १३० ध्यानानुसार 'मुनीन्द्र' के रूप का ब्रह्मनाम न करके ब्रह्म ही निकला उत्पन्न होकर है।

३ स्वप्नम् पृ ७।

४ धर्मपूजा-विधान पृ० १९।

५ कबीर-अध्याय ५ में निरञ्जन का विरलुत परिचय द्रष्टव्य।

६ ओ० रे क पृ १२६।

७ दो को (बागची) पृ० ५, १३

ईं बुद्ध ईं बुद्ध ईं बुद्ध ईं बुद्ध निरञ्जन। ईं बुद्ध अममरकार भवभङ्ग।

८ दो को (बागची) पृ० ५४ ४। ९ बी० या दो पृ० ८८।

१० बी गा० दो पृ ११७।

११ दो को राहुल। पृ १० १९।

१२ साध० मा० मूक पृ० १९।

बौद्ध बिक्राम कर्म

'अत्रापनिषद् के चर्मराज के अतिरिक्त परम्परा की दृष्टि से चर्म राज का सम्बन्ध प्रायः बौद्ध उपासकों से रहा है। सद्धर्म पुंडरीक में चर्म स्वामी चर्मराजा चर्मरत्न नाम बुद्धों के जाते हैं।' 'सद्धर्म पुंडरीक' में मत्त मातुपी बुद्धों में मान्य करवप को चर्म स्वामी कहा गया है।^१ बहुत सम्भव है कि बाद में चल कर करवप और चर्म स्वामी के इस सम्बन्ध ने चर्म टाकुर और चूर्म तथा निरञ्जन चर्म टाकुर से सम्बद्ध होने के कारण विरञ्जन और चूर्म के सम्बन्ध बिक्राम में बीजाकुर का कार्य किया हो। 'सद्धर्म पुंडरीक' के अतिरिक्त 'मत्तुलीमूठ कल्प' में बुद्ध चर्मस्वामी और चर्मराज कहे गए हैं।^२ 'बुद्ध चरित' (१६, ४६) में पशुवादी से बौद्ध रूप में परिवर्तित करवप आदि बुद्ध को चर्म का अवतार मानते हैं। इससे अतिरिक्त 'बुद्ध चरित' (१०, ५६) में बुद्ध को चर्म मूर्ति कह कर सम्बोधित किया गया है। सद्धर्म पुंडरीक में चर्मराज कहते हैं कि 'मैं चर्मराज हूँ भवमर्दन के निमित्त लोक में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं मरुओं के किये चर्मभाषण करता हूँ' इसी क्रम में ४, ५ में कहा गया है कि यह करवप है मारों आकास में बारिषर के सदृश पैर कर इसने आकास को डंक दिया है। तथागत करवप ने कहने हैं कि बुद्ध के सदृश इस लोक में आते हैं और एक बार उत्पन्न होकर के बाद वे प्राणियों का सत्य मार्ग दिखाते हैं।^३

'सद्धर्म पुंडरीक' के उपासकों से उनके चर्ममेघ अवतार की भी पुष्टि होती है। 'सद्धर्म पु' (५, १०) में अपि और वैदता भी यही कहते हैं कि ये तथागत हैं और बारिषर के सदृश इस विरच में उत्पन्न हुए हैं।

बुद्ध से अभिहित होने के बाद इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि बुद्धों में करवप ही चर्मराज चर्म स्वामी और चर्ममेघ के रूप में प्रकटित हुए। अतः सम्यककालीन चर्म टाकुर और चूर्म के अभिन्न सम्बन्ध की प्रथममूर्ति करवप चर्म सम्बन्ध के रूप में पहले ही देखी जा सकती है। जो ही चर्मराज या यह रूप सद्धर्म पुंडरीक (प्रथम छाती) से लेकर 'स्वपम्पू पुराण' (१०वीं छाती) तक अभिविज्ञान रूप से दृष्टिगत होता है। स्वपम्पू को अन्य पर्यायों के साथ चर्मराज कहा गया है।^४

सम्यककालीन भ्रम सम्प्रदाय में पूज्य अर्थात्विग्रह चर्म टाकुर बौद्ध और

१ सद्धर्म पु० क्रमशः ५० २२२ २२५, २२ । २ सद्धर्म पु ५० २२२ ।

३ म० मू० क ५ ४६५, ४६ ।

४ सद्धर्म पु० ५, १ ५, ५, ५, २६ ।

५ स्वपम्पू पु ५ २२ ।

त्रैलोक्य मिश्रित रूप कहे जा सकते हैं। क्योंकि एक ओर तो य जादि बुद्ध क पुत्र हैं और दूसरी ओर इन्हें स्वयं विष्णु भी माना जाता है।^१

निरञ्जन रूप

इस सग्रहाय में प्रकलित 'धर्म-पूजा-विधान' नामक पुस्तक में धर्म ठाकुर को निरञ्जन और शून्य रूपेण कहा गया है।^२ प्रायः 'धर्म-पूजा विधान' और 'शून्य पुराण' दोनों में धर्म ठाकुर और निरञ्जन अभिन्न हैं।

'धर्म पूजा-विधान' क अनुसार य बुद्ध सत्त्व और करुणामयी मूर्ति हैं। ये निरञ्जन कक्षप बाहन, शून्य रूप निरञ्जन और प्रसन्न रूप निरञ्जन हैं।^३ इन्हें सूक्ष्म रूप पर विराट काय, और विरल रूप निरञ्जन भी कहा गया है।^४

'विष्णु और दशावतार' रूप

'शून्य पुराण' में तो य नारायण क अवतार हैं ही 'धर्म-पूजा विधान' में भी य माना मूर्ति और महाविष्णु हैं।^५ इसक अतिरिक्त 'धर्म पूजा विधान' में दो पा तीव्र बार हमस सम्बन्ध दशावतार परम्पराओं का वर्णन हुआ है। जिनका विशेष परिचय 'दशावतार' नामक अध्याय में मिलेगा।

बुद्ध रूप

दादू पन्थ में दादू के आदि गुरु बुद्धदेव या बुद्धदेव नामक एक ब्राह्मण माने जाते हैं। उसी बुद्धदेव क सहस्र धर्म सग्रहाय में भी धर्म ठाकुर का एक बुद्ध रूप प्रकलित है। इन्हें 'धर्म-पूजा विधान' में 'बुद्धरूप और 'अनादि मंगल' में 'बुद्ध मोगी' कहा गया है।^६ अतः निरञ्जन के रूप का कवीर पथ में प्रचार होकर धर्म सग्रहाय के बुद्धदेव का सम्बन्ध भी दादू पन्थ से जोका जा सकता है।

उत्तरकाशीन रूप

इस प्रकार धर्म ठाकुर के प्रारम्भिक विकास में जोड़ तर्कों का योग तो अवश्य या क्योंकि इनके पूर्व रूपों में शून्य का बहुत प्रयोग हीन पड़ता है। किन्तु उत्तरवर्ती काक क मयूर भट्ट (१०वीं सती) रामदास प्रभृति बगका

१ मे रे ड ५० २९-२०। २. धर्म पु वि० पृ १३ ७।

३ धर्म पु वि ५० ८८-८९। ४ धर्म पु० वि पृ ११।

५. धर्म पु० वि० पृ० ८।

६ धर्म पु वि० पृ० ९० अनादि मंगल पृ १२

'मातापति धर्मरत्न निर्माण करेन कार्य लक्ष्मीति अधिक बुद्ध बोधो'।

पौराणिक कवियों में चर्म ठाकुर का अत्यधिक वैष्णवीकरण हो गया है। मयूर मङ्गल के अनुसार सावित्री के साथ बस विष्णु चर्मधिका के रूप में अवतीर्ण हुए थे।^१ अब चर्म ठाकुर की मूर्ति संज चक्र गदा पद्म पुष्प कूर्म की आकृति में प्रचलित हुई। ठाकुर विरजन कमग्रदार विग्रह शिवा की आकृति में भक्तों के लिये आविर्भूत होते हैं।^२ अनादि मङ्गल में भी निरंजन और नारायण दोनों से अभिहित चर्मराज दुग-युग क भक्तों द्वारा पृथित हैं।^३

उपर्युक्त विवेचन व स्पष्ट है कि मध्यकालीन बौद्ध चर्म भी सन्त सम्प्रदायों की भौतिक समन्वयवादी होता गया। इस काल में बौद्ध, वैष्णव और इस्लामी तारों का अपूर्व मिश्रण लक्षित होने लगता है। इस समन्वयवादी चारणा से मध्यकालीन निर्गुण मत प्रभावित हुए। उन्होंने निरजम कूर्म, बुद्ध देव जैसे उपास्यों को अपने सम्प्रदायों में भी प्रथम दिया। इस काल में उगच्छाय चर्म ठाकुर आदि विग्रह रूपों पर वैष्णव अथतारवाद का इतना प्रभाव पड़ा कि उनका बौद्ध रूप गीण हो गए और वैष्णव रूप ही अत्यधिक मुख्य हो गये। 'चर्म-पूजा-विधान' जैसी पुस्तकों में सम्भवतः सत्काहीन युग में व्याप्त वृत्तावतार परम्परा में भी उन्हें सम्महित किया गया।



१ चर्म पु मू० पृ० २५।

२ चर्म पु कथा पृ० २०, २२।

३ अनादि मङ्गल (१६६२ ई० सं०) पृ० २।

दूसरा अध्याय

जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन परम्परा में बौद्ध सिद्धों के समकालीन जैन कवियों द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य का स्थान आता है। सामान्य रूप से अपभ्रंस भाषा का काल ५०० ई० स १००० ई० तक माना जाता है, जिसमें जैन अपभ्रंस कवियों की रचनाएँ ८वीं शती से मिलने लगती हैं। आद्यकालीन साहित्य में मुख्य रचनाओं की अपेक्षा जैन प्रबन्ध काव्यों और पुराणों में ही बौद्ध और जैन अवतारवादी उपादान मिलते हैं। यों तो प्रायः कतिपय जैन कृतियों में जैन तीर्थंकरों के उपास्य रूप वर्णित हुए हैं, किन्तु जैन परम्परा में प्रसिद्ध उनके अवतारवादी रूप विराय कर जैन पुराणों में मिलते हैं। मध्यकालीन साहित्य में राम और कृष्ण की अवतार शोभाएँ सबसे अधिक प्राप्त रही हैं। 'रामायण' 'महामारत' और 'हरिवंश प्रमाण' स गृहीत जैनो में भा जैनीकृत रूप में अभिव्यक्त होकर ब प्रचलित हुए हैं।

पठम चरित

जैन अपभ्रंश साहित्य के सम्भवतः आदि महाकवि स्वयम्भू (वि० सं० • • काक) ने स्वयं राम कथा पर आधारित 'पठम चरित' का प्रणयन किया है। जैन धर्म किसी भी प्रकार के अवतारवादी सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करता इसलिये 'पठम चरित' में रामावतार का बणन उनका असंगत नहीं है फिर भी परम्परा से गृहीत कतिपय उपादान अनायास प्रसङ्गों में उपस्थित हो गए हैं। इनके आधारगत आर विवचन के फलस्वरूप राम और लक्ष्मण के अवतार रूपों का स्पष्टीकरण हो जाता है।

यों तो स्वयम्भू देव कृत इस 'पठम चरित' महाकाव्य के आधार 'जाप' रामायण रह गई किन्तु इस महाकाव्य में आर्य परम्परा की अपेक्षा जैन परम्परा को ही मुख्य रूप से प्रद्वेष किया गया है। आर्य और जैन परम्पराओं में मुख्य अन्तर यह रहा है कि जहाँ आर्य परम्परा में राम प्रबन्ध काव्यों के प्रमुख नायक रह गई जैन परम्परा में वह स्थान लक्ष्मण ने ले लिया है। जैन काव्यों में लक्ष्मण को ही अधिक महत्त्व मिलता है। इसी से वाक्यीकि या अन्य

रामायणों के विपरीत 'पद्म चरित' में महाकाव्योचित औदात्य कवचमन व चरित्र में अधिक दृष्टिगत होता है।

लक्ष्मण और राम हरि-हृदयर के अवतार

विष्णु अवतार की परम्परा में आने वाले रामायणों में यहाँ भी राम का अवतार सिद्ध करना होता है, यहाँ उन्हें विष्णु का अवतार कहा जाता है। ठीक इसका विपरीत 'पद्म चरित' में यों तो 'राम हो' के आधार पर 'रामावतार-विष्णो' से तात्पर्य प्रकृत किया गया है, किन्तु 'पद्म चरित' की परम्परा विष्णु की अवस्था हरि-हृदयर की परम्परा अधिक कही जा सकती है। इस प्रकृत काव्य में कतिपय स्थलों पर कवचमन और राम को हरि-हृदयर का अवतार कहा कर या स्वयं उन्हीं नामों से उन्हें अभिहित कर इनका बीबीकृत अवतारत्व स्पष्ट किया जाता रहा है। 'आर्य रामायण' में जिस प्रकार विष्णु अपने अवतारत्व के प्रतिमात्र हैं उसी प्रकार हरि-हृदयर और साहित्य में प्रचलित विष्णु अवतार रूपों के प्रतिमात्र हैं। अतः 'पद्म चरित' में हरि हृदयर की अवतार-परम्परा को अपभ्रंशित किया गया है।

'पद्म चरित' के प्रारम्भ में ही कवि ने हृदयर-पुत्र लक्ष्मण और राम को कवचमन वामुदेव और बलदेव से अभिहित किया है।^१ यहाँ के अवतारत्व के अनन्तर यह स्पष्ट विदित होता है कि अवतार सम्बन्ध से सूचित न होने पर भी वे हरिहृदयर अवतार हैं। इसी स्थल पर कहा गया है कि हृदयर हृदयर पुत्र ही वामुपवारी वामुदेव-बलदेव हैं।^२ यह प्रकृति 'पद्म चरित' में अन्य स्थलों पर भी दीख पड़ती है। अन्य कतिपय स्थलों पर कवचमन और राम वामुदेव और बलदेव से अभिहित किए गये हैं। सीता-स्वयंवर के समय भी उन्हें लक्ष्मण-राम व कह कर 'हरि-बलदेव कहा गया है।'^३ यहाँ संधि में स्वामृति राम कवचमन से पराकृत होने के उपरान्त उन्हें बलदेव-वामुदेव के रूप में पहचानता है।

१ पद्म च० २, १ ६

'अर रामो-विष्णु उरु मार तो रावु अहिनिव केवि नार।'

२ पद्म च० २१ १, १

एतु अकमि रहुँत वदामव दतरह अति आउक्यहें रामउ।

ताउ पुत्र हीरामि हृदयर अहृदयर-बलदेव वामुदेव।

३ पद्म च० १५, ११, १ 'हरिहृदयर-बलदेव-वामुदेव' जैसे कतिपय स्थलों में उन्हें स्वयं कहा गया है।

४ पद्म च० २१, २३ २

हरि-बलदेव वामुदेव तेनहै, सीत स्वयंवर-मण्डल केउहै।

इससे स्पष्ट है कि स्वयम्भू के पूर्व ही जैन साहित्य में विष्णु की जगह जाठवें बासुदेव और बलदेव की भवतार परम्पराएं प्रचलित रही हैं जिनमें नौ बासुदेव और नौ बलदेव माने जाते रहे हैं। स्वयम्भू ने इसी भवतार परम्परा में कृष्ण और राम को बासुदेव और बलदेव का भवतार माना है। साम्प्रदायिक रंग से स्वयम्भू मुक्त नहीं हैं। 'पठम चरित' के नायक रूप कृष्ण और राम स्वयं जैन धर्मावलम्बी ही नहीं बल्कि जैन धर्म के प्रचारक भी विदित होते हैं। १८वीं संधि के एक प्रसंग के अनुसार जैन अनुयायी को कृष्ण और राम अधिक पुरस्कृत करते हैं। कपिल नामका एक सत जैन धर्म अपना कर इनके द्वारा पुरस्कृत होता है। ये रामचन्द्रप्रमा जिन की स्तुति करते समय उर्ध्व अरहत, बुद्ध, हरि, हर, निरंजन, परमपद, रवि, ब्रह्मा, स्वयम्भू और शिव कहते हैं।^१

कृष्ण में विष्णु सूचक संकेत

बासुदेव के भवतार होने के अतिरिक्त कृष्ण में कुछ ऐसे विष्णु सूचक संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर कृष्ण को विष्णु से स्वकथित माना जा सकता है। यों तो 'पठम चरित' में कृष्ण के कृष्ण अष्टादश हरि (२१ १३, २ २३, ५, १०-२५, ११, ९), बासुदेव (२१, १, ३-२३ ९, ७), कृष्ण (कण्ठ २१ १४, ४ ३१, ८, ८), गोविन्द (३२, ७, १० ३७ १२, ९ ३८, ११, १), गोबद्ध (३८ ७, ७) आदि नाम अधिक प्रयोग में आये हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त उर्ध्व विष्णु (३७ १२ ४)के पर्याय 'कैसव (३२, ९, ११), 'जगद्गण (जनार्दन २४, १०, १), 'सिरिकन्त' (श्रीकान्त ४४, ११ ५), 'सिरिचण्ड' (श्रीकान्त ३३ ४ १), 'सिरिहर' (श्रीधर २७-२८, ११, १) 'सारगण' (शाङ्गधर २९, १३, १) आदि नामों से भी ज्ञापित किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि ये पद्य ब्रह्मरथ ब्रह्म प्रकाशित करने वाले हैं। इनके बचस्वक में आप कृष्ण का निवास है।^२ 'पठम सिरि चरित' आदि परबर्षी काव्य में भी कृष्ण जनार्दन उपनाम बन कर आते रहे हैं।^३

१ पद्यम ५० १५, ८ १२ में राम कृष्णमजिन बंधना करते बुद्ध प्रस्तुत किए गये हैं।

२ पद्यम ५० ४६, १९, ९

अरहन्तु बुद्ध बुद्ध हरि हस्ति बुद्ध अणान-समीह-रित।

बुद्ध बुद्ध निरंजनु परमपद बुद्ध रवि बन्ध सपम्भु सिव ॥

३ पद्यम ५० ५० १३ ७

अणु वि बसव-बंध पयास हों, बन्धुके बन्ध-कवि-निवास हों।

४ पद्यम सिरि च ५० २४ २, २१ 'हरिसि कृष्ण व ब्रह्मरथेण'

इन संकेतों से स्पष्ट है कि जैन वासुदेव के साथ ही कथमत्र 'पद्म चरित' में विष्णु से भी स्वरूपित किए गए हैं। इतना बखरप है कि वासुदेव की तुलना में उनका विष्णु-स्वरूप शीघ्र रहा है।

अवतार प्रयोजन

वसुदेव-वासुदेव के अवतार राम-कथमत्र की कथा का कथ्य 'पद्म चरित' में अवतारवादी नहीं रहा है। फलतः इसके अवतार-प्रयोजन की चर्चा कवि को अभीष्ट नहीं है। इसी से राम-कथमत्र के अवतार प्रयोजन का आमास कथा-संयोगों में नहीं कहीं मिला जाता है। आर्य रामायणों के सहाय 'पद्म चरित' में भी इनका प्रयोजन असुर-संहार रहा है। 'पद्म चरित' के अनुसार राम और कथमत्र वसुदेव और वासुदेव ही नहीं बल्कि इन्द्राय संस का मनोरथ पूर्ण करने वाले असुरारि हैं।^१ इसी सचि में कथमत्र अपना और राम का परिचय देते हैं, उसमें उनके असुर-संहारक रूप का परिचय मिलता है।^२

इस प्रकार पद्म चरित में राम और कथमत्र जैन परम्परा में प्रतिष्ठित वसुदेव और वासुदेव के अवतार हैं। विष्णु से केवल कुछ स्थानों पर कथमत्र अभिहित किए गए हैं। इस ग्रंथ के अनुसार इनका अवतार-प्रयोजन असुर-संहार जान पड़ता है किन्तु उससे अधिक प्रबलतर प्रयोजन जैन धर्म का प्रचार रहा है। जैन धर्म का अनुयायी होने के साथ साथ 'पद्म चरित' के राम-कथमत्र जैन धर्म का प्रचार भी करते हैं।

सौ-सा जैन अग्रजस साहित्य में अभी तक कितने महाकाम्य उपलब्ध हो सका है सभी में धार्मिक साधनाओं का प्राधान्य रहा है। इनमें 'पद्म चरित' के उपरान्त वसुदेव तथा अन्य जैन कवियों द्वारा लिखे गए 'विट्ठलैमि चरित' 'हरिबंस पुराण' 'देवभद्र' का 'त्रिपटिकाकाण्ड पुराण चरित' पुण्यवत् के 'महा-पुराण' और 'जगर पुराण' इन प्रमुख ग्रंथों में वैष्णव अवतारों के जैनीकृत रूप तथा जैन अवतारवाद के कतिपय उपादान मिलते हैं। उपर्युक्त सभी कवियों ने जैन परम्परा का अनुसरण किया है इसलिये एक साथ इनमें उपलब्ध अवतारपरक तर्कों का बिक्रम सुखिमगत मतीत होता है।

१. पद्म च. १६, १-२

२. वि. उपदेव परदेवि विष्णु देवे वसुदेव वासुदेव कथमत्रे ।
नो असुरारि-वसुदेव-सुसुप्राण वसुदेव-वसु-मन्त्रे-व-पुराण ।

३. पद्म च. ११, १-४

वे अमरं लखन-राम वाप वसुदेवो रघु सुपदे वाव ।
वसुदेवो वसुदेव असुर मरु सुपु लीवर्ष वसुदेव राममरु ।

जैन साहित्य में अवतारवाद् प्रमुख धर्मिण्यक्ति का विषय नहीं है, फिर भी उसमें कतिपय अवतारवादी तत्त्वों का वर्णन होते हैं। इस दृष्टि से इस साहित्य में व्याप्त १३ महापुरुषों की परम्परा उल्लेखनीय है। क्योंकि एक ओर तो इनमें गृहीत १४ तीर्थंकरों का आधिभाष पर अवतारवादी रंग चढ़ाया गया और नौ बह्वेव, नौ बामुदेव और प्रतिबामुदेवों का रूप में वैष्णव परम्परा में प्रचलित अवतारवादी रूपों का जैनीकरण किया गया।

त्रिपष्टि महापुरुष

जैन साहित्यकारों ने प्रयासमन् के पूर्व जिन महापुरुषों का मगलचरण किया है उनमें चौबीस तीर्थंकर, बारह ऋषवर्ती नौ बामुदेव, और नौ प्रति बामुदेव ये तिरसठ महापुरुष वंश माने गए हैं।^१ जिस प्रकार वैष्णव या बौद्ध पुराणों के कथात्मक उपादान संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए गये हैं, वैसे ही जैन साहित्य में भी जिन १३ महापुरुषों का वर्णन हुआ है उनके सारे उपादान जैन पुराणों से लिए गए हैं। इनमें गृहीत चौबीस तीर्थंकर ही मौखिक रूप से पूर्णतः जैन परम्परा के महापुरुष हैं। अन्य महापुरुषों में ११ पौराणिक राजा तथा शेष ९ बहुराम, ९ बामुदेव और ९ प्रतिबामुदेव किसी न किसी रूप में विष्णु के पौराणिक अवतारों का ही जैनीकृत रूप हैं।

चौबीस तीर्थंकर

उक्त महापुरुषों में जैन धर्म के आद्य प्रवर्तक ऋषभ, जज्ञित, समव धर्मि नन्दव सुमति पद्मप्रभा, सुपारब, चन्द्रप्रभा, सुविधि या पुण्यवन्त हीतल, श्रेयांस, बामुपुत्र, विमल धनन्त, धर्म, तागित, कुंभु भर, मरिच, सुव्रत, नमि नेमि पारब और महावीर ये चौबीस जैन धर्म के प्रवर्तक माने गए हैं।^२ इनमें ऐतिहासिकता की दृष्टि से कबल महावीर ही विशय रूप से सुपरिचित हैं। अन्य तर्हिस तीर्थंकरों का जीवनकृत अत्यधिक पौराणिक है।

धरम्य में आचरण प्रधान विज उल्लेखोन्मुख ज्ञानियों का आधार पर जैन धर्म का आधिभाष हुआ था, आलोच्यकाक के पूर्व ही अन्य भारतीय ईश्वरवादी मठों के प्रमाणाभुरूप उसमें भक्ति एवं अवतारवादी तत्त्वों का समावेश होने लगा। फलतः महावीर पूर्व अन्य तीर्थंकर कबल महापुरुष ही नहीं रह गये थे अपितु जैन पुराणों में उनका पूणतः वैचीकरण हो चुका था। सहस्रों

१ पद्मनन्द महाधम्म, (१३वीं पृष्ठी) पृ० ७-८ तीर्थंकर अथ १० ७१ ।

२ इनमें दृष्टि कुंभु और भर ऋषवर्तियों में भी गृहीत हुए हैं ।

की संख्या में उनकी मूर्तियों एवं मंदिरों का निर्माण होने लगी थे तथा बौद्धों के साथ उनमें साकार विग्रहों की पूजा होने लगी थी।^१ 'त्रिलोक प्रशस्ति' (त्रिलोक प्रशस्ति) के अनुसार धर्मों का मूल गणना काका और उन्हें आत्मत्व प्रदान करने काका मंगल रूप नाम और स्थापना के मोड़ से हां प्रकार का तथा प्रथम, द्वेय काक और माय की दृष्टि से मायः च प्रकार का माना जाता है।^२

परिहंत, सिद्ध, आचार्य और साधु, इनके नामों को नाम मंगल कहा जाता है।^३ यह पांचराशों की नामोपासना के निष्कट प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त जिन मंगलान के अक्षुभिम और कुभिम दो प्रकार के प्रतिबिम्ब माने गए हैं, जो स्थापना मंगल कहे जाते हैं। उन्हें विग्रह रूपों के समानांतर माना जा सकता है तथा आचार्य उपास्याय और साधु के अतिरिक्त प्रथम मंगल की दृष्टि में जाते हैं।^४

जैन पुराणों में इनके रूप एवं आविर्भाव सम्बन्धी जो कथानें मिलती हैं, वे अवतारवादी तर्कों से आपूरित हैं। बौद्ध पर रूप उपास्य ईश्वर के विलम्बोक्त की कल्पना जिस प्रकार भगवत और पांचरात्र साहित्य में मिलती है उसी प्रकार लोक और अत्येक को प्रकशित करने के लिये सूर्य के समान मंगलान आह्वय देव उभ सिंहासनों के ऊपर आकाश मार्ग में चार अंगुल के अंतराल से स्थित रहते हैं^५ जहां से भूत मनिय्य और वर्तमान में वे अवतीर्ण होते रहते हैं।^६ इनके विभिन्न विमानों से अवतीर्ण होने की चर्चा करते हुए कहा गया है कि अथम और परमादिक अर्थात् चर्म शक्ति और कुंडल आदि तीव्रकर सर्वसिद्धि विमान से अवतीर्ण हुये थे। अमिनन्दन और अक्षितनाथ विद्वज विमान से, अक्षयम वैश्वंत से, अर, अग्नि, मखिक और नमिनाथ अपराजित विमान से सुमति अवत विमान से पुष्पवन्त और शीतल कमलाकार्य और पुगल विमान से अवतरित हुए थे।^७ इस प्रकार प्राया सभी तीर्थकारों के विमानों पर स्थित रहने और वहीं से अवतरित होने की परम्परा जैन पुराणों में दृष्टिगत होती है।

१ त्रिलोक प० (काठ ग्रन्थ सं० १८०-१७८, वि० ५१५-८७६) पृ० १, १ महापिकाय पंथि १६-१७।

२ वही पृ० १ १ २८।

३ वही पृ० १, १ १।

४ वही पृ० १ १, १०।

५ त्रिलोक प० पृ १६९ व ८९५।

६ महापुराण, पुष्करपंथ पृ १ ११ ६-७।

७ त्रिलोक प० पृ० १ ७। ४, ५१२-५१४।

इनका शरीर साधारण मनुष्य के सदृश प्राकृतिक न होकर अप्राकृतिक एवं दिव्य होता है। जैन पुराणों के अनुसार इनका शरीर स्वेदरहित, निर्मल एवं समान घबल, श्वित, युक्त, अनुपम मृग चर्मक की उत्तम गंध से युक्त एवं अनन्त बल, शीघ्र तथा एक हजार जाठ उत्तम लक्ष्णों से युक्त होता है।^१

चौबीस तीर्थंकर

जैन धर्म में उक्त वैशिशेष्य इन अतिशय के रूप में प्रसिद्ध है। 'अमिषाल चिन्तामणि' के अनुसार जिनों में चौतीस अतिशय माने गए हैं।^२ जिनमें बस जिन शरीर में ममुक्त हैं। 'हरिवंश पुराण' के अनुसार जिनेश्वर महावान स्वयं निर्मित होने के कारण स्वयं सिद्ध हैं। वे प्रत्यार्थिक जप की जपेछा अनादि और प्रत्यार्थिक जप की जपेछा साधि हैं।^३ वे शुद्ध कबल ज्ञान के कारण-कर्ता, लोक अलोक को प्रकाशित करने में अश्रिताय सूर्य हैं। वे अनन्तज्ञान, अनन्तमुक्त, अनन्त शान्त, अनन्त शीघ्र रूपी अंतरंग कश्मी और समवसरण आदि ब्रह्म कश्मी के स्वामी हैं।^४ पूर्ववर्ती रचना 'प्रवचन सार' के प्रारम्भ में बद्धमान तीर्थंकर को देवाधिदेव और उक्त अनन्त चतुष्टय से युक्त कहा गया है। इन तीर्थंकरों में मय्य जीवों को संसार-समुद्र से तारने की भी सामर्थ्य है।^५ 'परमात्म प्रकाश' के अनुसार जो जिनेश्वर देव हैं वही परमात्म प्रकाश हैं।^६ कबल शान्त, कबल ज्ञान, अनन्तमुक्त अनन्त शीघ्र आदि अनन्त चतुष्टय से युक्त होने के कारण वही जिन देव हैं। वही परम मुनि अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं।^७ जिन परमात्मा को मुनि परमपद हरि महादेव, ब्रह्म शुद्ध और परमप्रकाश नाम से कहते हैं, वह रागादि रहित शुद्ध जिन देव ही हैं। उसी के ये सब नाम हैं।^८ पर ब्रह्म ईश्वर के सदृश उमक साथ भी असोक, मुर पुण्य वृष्टि दिव्य च्चनि, चामर सिंहासन मामण्डल, तुम्बुभि और त्रिदश आदि अष्टप्रतिहार साथ रहते हैं।^९ वह बल, चारक तीर्थंक् और मनुष्य

१ वही पृ० १ पक्ति ३ पक्षक वगुण्य व दिव्य लणु ।

२ त्रिकोप प० पृ० २३३, ४ ८९३-८९७ ।

३ महा० पु० बी० १ नोट पृ ५५४ १, २ में संक्षिप्त अमिषाल चिन्तामणि ? ५७-६४ ।

४ हरिवंश पु० जिनसेन पृ० १, १, १ । ५. हरिवंश पु० पृ० १, १ १ ।

६ प्रवचन सार (काल ८१-११५ ई० ब. बी. च) पृ ३-४ ।

७ परमात्मप्रकाश पृ ३३३ २ २९८ । ८ परमात्मप्रकाश पृ० ३३७, १ २०९ ।

९ परमात्मप्रकाश पृ० ३३७-३३८, २, २०० बी परमप्यत्र परम पद हरि बरु वमुनि शुद्ध परम पयाद भग्नि मुनि सो जिन वैद विदुषः ।

१ महा० पु बी १ नोट ५ ० १, २८ (अहमिषालचिदेर की व्याख्या)

जाति से सिद्धावस्था की गति प्रदान करता है।^१ उपास्य परमेस्वर के रूप में होते हुए भी इनका जैनीकृत रूप अपना पूजक वैशिष्ट्य रखता है। 'ठिकान्त पञ्चति' में इनके विग्रह रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका पान्त घरेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से तन्त्रबद्ध ऐसे चार दिग्ग्य धर्म चक्रों से दैव कर छोगों को आरच्य होता है। तीर्थंकरों के चारों दिशाओं में क्षुप्य सुवर्ण कमण्ड, एक पाद पीठ और विविध प्रकार के दिग्ग्य पूजन द्रव्य होते हैं।^२

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों के उपास्य रूपों में एकपरवादी तथ्यों का विकास हुआ, जो सर्वोत्कर्षवादी (हीनोपेक्षिक) प्रकृति के अनुसार सभी तीर्थंकरों पर समान रूप से आरोपित होता है। यही तीर्थंकर उपास्य रूप में नित्य स्थित रहते हैं। इन जैन उपास्य रूपों में साम्प्रदायिक अवतार तत्त्व विद्यमान हैं। वैष्णव अवतारी उपासकों के सदृश य भी अपने नित्य छोकों से जैन धर्म-प्रवर्तन के लिए अवतरित हुआ करते हैं।

वैष्णव अवतारों में प्रसिद्ध २४ अवतार हैं। परन्तु मागवत के अनुसार विष्णु के अवतार अनन्त मात्र गण्य हैं।^३ उसी प्रकार महापुराणकार पुण्यव्रत ने भी भूत और महिष्य से भाप हुये और आन वासे जिनों की अनन्त संख्या मानी है।^४ यद्यपि निरिक्त संख्या चौबीस विरूप रूप से जैन साहित्य में भी प्रचलित है।

तीर्थंकरों की कथाओं में सर्वप्रथम इनका जन्म का ऐसा दिग्ग्य वर्णन किया गया है, जो अवतारों के अवतरण से कम महत्त्व नहीं रखता। दिग्ग्य जन्म की एक ही प्रणाली प्रत्येक सभी तीर्थंकरों पर आरोपित की गई है। अतएव एक रूप के दिग्ग्य अवतरण सम्बन्धी व्यापारों के निरूपण से अन्य सभी तीर्थंकरों के आधिभाव का निराकरण हो जाएगा।

प्रथम तीर्थंकर रूप के उरण्य होने के पूर्व राजा वासि की पत्नी मेघ देवी रूप में छेकरा के उरण्य होने का स्वप्न देखती है।^५ इनका जन्म के पूर्व ही 'सिरि, हिरि विहि' 'कृति' किली, 'कण्डी' आदि इतिवृत्तों

१ महा० पु० जी० २६०-५५८ २, ४ १५ य प्रयुक्त 'वचनारण' का व्याख्या में पञ्चम घनि सिद्धावस्था की माना गया है।

२. निखेन ५ ६ २३३ ४, १३ २४४।

३ या २, २ ५, भा० २ ६ ४२-४५।

४ पाद ७७ आधिभिदि गिरुण्ड, एरु वीरभिदि हुण्ड।

५ द्रुपु तमानमि कानु अनारु, से अणु विजगति आरु ३ महा० पु० २, ४।

५. इसमें बीरुह स्वर्ग का उल्लेख है। परन्तु महापुराण पु० १४१, ५, १ १।

आकर जिन माता का गर्भ स्वच्छ करती है। तत्पश्चात् जिन माता सोलह स्वप्न देखती हैं। उन सोलह स्वप्नों से जिन रूपम के अवतरित होन के संकेत मिलते हैं। इन संकेतों में रूपम से सम्बन्ध पूव प्रचलित रूपम है।^१ रूपम का जन्म होते ही इन्द्र का सिंहासन झोलने लगता है। व देवों के दण्ड का स्वामित्व करते हुये पहुँचते हैं। कुबेर रक्षों की बर्षा करते हैं और सभी मिलकर उनकी परिक्रमा पूव प्रार्थना करते हैं। वे उर्ध्व मेरु पर्वत पर से जाकर उनका अभिषेक करते हैं। यही कारण है कि मेरु पर्वत भी देवताओं के लिये वद्य है।^२ 'तिलोप पण्यधि' क अनुसार इनके प्रादुर्भाव के अनन्तर अनेक योद्धों तक वन भ्रमण में ही पद्म पुष्प और फूलों से छद् जाते हैं।^३ कटक रेती आदि को दूर करता हुआ सुखदायक समीर चलने लगता है। जीव पूर्व जैर को छोड़कर मैत्रीभाव से रहने लगते हैं। भूमि वर्णतक क सत्पा स्वच्छ और रक्तमयी हो जाती है। सोधर्म इन्द्र की आज्ञा से सुमेध कुमार देव सुगन्धित जल की बर्षा करते हैं। रूप, तालाव आदि निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं। समस्त जीव रोगरहित हो जाते हैं।^४ इस प्रकार प्रायः सभी तीर्थंकरों के प्रादुर्भाव में देवता, इन्द्र कुबेर आदि देवों और विष्णु उपादानों का प्रयोग होता है। इन उपादानों के अतिरिक्त पद्मानन्द महाकाव्य में इनके असाधारण जन्म का उल्लेख हुआ है। उस काव्य क एक श्लोक में कहा गया है कि इनके जन्म में अरापु, क्षिर आदि मल नहीं गिरते अपितु निर्धूम मणि क समान जिस प्रकार द्वीप से द्वीप उत्पन्न होता है, उसी प्रकार 'जिन भगवान् प्रादुर्भूत होते हैं।'^५ इस श्लोक में 'प्रदीपो द्वीपि', के प्रयोग से पाँचरात्रों में प्रचलित 'द्वीपादुत्पन्न द्वीपवत्' की स्थिति आती है। अवतारों की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने में जिन प्रकार इन्द्र का भय, देवताओं का स्वामित्व तथा प्रकृति विष्णु और शिव से श्रेष्ठतर सिद्ध करने वाली पुराण रुद्रियों का प्रयोग होता रहा है, उसी प्रकार जैन तीर्थंकरों पर भी उन्हीं रुद्रियों का प्रयोग हुआ है। जब इन्द्र का जन्म होने लगता है तब इन्द्र समस्त

१ महा. पु० १ बी ५ ५५
 विष्णुस्मृ. वेग माई ति पट्ट। मासिपत्र पुरंदरेन विसृष्ट ॥
 वि० सखलनाम श्रा० मा ५ म १९, २५ में विष्णु के किये 'वृषाकृति' शब्द का प्रयोग हुआ है। इंकर के अनुसार (५ २०२) वर्म, श्री स्थापना के किये यह जाहृति है।
 वर्मार्थमाहर्जिनः शरीरमरुतैति च वृषाकृति ।'
 २ महा० पु १ बी २५० ५१९-६० । ३ तिलोप प० ५० २६३, ४ ९००-९२४
 ४ तिलोप प ५० २६३ । ५ पद्मानन्द महाकाव्य ५ २४८ ७ ३२९ ।
 अरापुक्षिरपावैर्मलैरमकिनाहृतिः। निर्धूम इव माणिक्यमदीपोऽदीपि च प्रमुः ॥

हैं कि जिन का जन्म हुआ है।^१ जैन तीर्थंकरों को सिद्ध, ब्रह्मा और विष्णु से इस आधार पर श्रेष्ठ बतलाया गया है कि वे तीनों सर्वत्र अपनी पक्षियों के साथ रहते हैं, जबकि जिन ने उनका त्याग कर दिया।^२ महाकवि पुष्पवत् ने समवनाय को ब्रह्मा विष्णु और शिव ही अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाया है।^३ अमित गति ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को भीतरमा और सर्वत्र जिन की^४ अपेक्षा पुष्प क्लृपाते हुए कहा है कि ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर तो वैरागी हैं व सर्वत्र हैं उनमें भी मद्र, श्लेष, कोम आदि वर्तमान हैं।^५

हरिवंश पुराण में ज्ञापन के प्रति की गई स्तुतियों में कहा गया है कि आप भक्ति, श्रुति और अबधि इन तीन सर्वोत्तम ज्ञानरूपी नेत्रों से द्युसोभित हैं। आपने इस भारत क्षेत्र में उत्पन्न होकर तीनों लोकों को प्रकाशित कर दिया।^६ मनुष्य भव में जाते ही आपने समस्त जगत् को कृतार्थ कर दिया।^७ आपका अतिशय मनोहर करीर मनुष्य सुर, असुरों को सर्वथा दुर्लभ, सर्वोत्तम पृथ्वीदार भ्रष्ट कृच्छ्रों से मुक्त है।^८ आप चरम क्षरीरियों में प्रथम हैं। यह आपका करीर बिना पुद्गल के ही अपने अतिशय मनोहर रूप में समस्त जगत् को जत बनाये रखता है। आपके गर्भस्व हीन के समय सुवर्ण वर्षा हुई थी। इमंतिपुं ब्रह्मता द्विरभ्यागम नाम से आपकी स्तुति करते हैं।^९ इस भव से पूर्व तीसरे भव में आप ने अपने आप तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध बँधा था और इस भव में आप तीनों ज्ञान के चारक उत्पन्न हुए हैं, इसलिये स्वयम् कहे जाते हैं।^{१०}

विष्णु पद अवतारों के तत्त्व रूप

जैन साहित्य में ज्ञापन आदि तीर्थंकरों का उपास्य रूप अधिक प्रकृत हुआ है। इमंतिपुं स्वभावतः के अपने सम्प्रदाय में अवापिदेव परमात्मा के

१ महा. पु० जी० १, ५ ३। २ महा० पु० जी० १ २० ५।

३ कालिदास वर हने हरकथं श्रुतिम वंन हरि हरकथं।

विनि वद्विष परदारथं वरपरिसिप परदारथं ॥ महा० पु० जी० २, ४० २।

४ बीवदानम सर्वत्रो जिन ववावद्विप्यते।

अपरेषामदेवार्णां ताम्येवादिद्विष्टिता ॥ भावकाचार पु० १०७ ५, ७०।

५ न विरागा न सर्वत्रा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

राम्येवमरकोवकोमयोद्धारि बीवता ॥ भावकाचार पु० १०७, ५ ७१।

६ हरिवंश पुराण पु० २२२ ८ २१६। ७ वही पु० २२२, ८, २१८।

८ वही पु० २१६, ८ २ ४।

९ वही पु० २२३ ८ २ ५-२०६।

१० हरिवंश पुराण पु० १२३ ८ २०७।

में गृहीत हुये हैं। परन्तु पुष्पवंत क महापुराण में अनेक स्थलों पर उन्हें पौराणिक देवों की अवेद्या विष्णु से अधिक अतिरिक्त किया गया है। यह तत्कृतता कतिपय स्थलों पर इतनी स्पष्ट है कि कवि उन्हें भीतराग की सब्रज्ज आदि जैन वैशिष्ट्यों के द्वारा प्रमत् करते हैं।

मध्यकालीन सगुण भक्ति साहित्य में राम और कृष्ण क जिन अवतारी रूपों का प्रचार है उनमें उपास्यता का प्राधान्य होने क कारण वे स्वयं राम-कृष्णादि परममूर्त रूप से सीधे अवतार धारण करते हैं। त्रिदेवों में राम्य विष्णु का रूप वहाँ गीण हो जाता है। फिर भी उनमें परम्परा की अवहेलना नहीं की जा सकती है। वे राम और कृष्ण क स्वयं अवतारी होते हुये भी महाकाव्यों एवं पुराणों से आती हुई शीरसापी विष्णु से अवतरित होने वाली परम्परा में उनक विष्णु-अवतार का उल्लेख अवश्य करते हैं।

परन्तु जैन साहित्य की परम्परा मिश्र होने क कारण तीर्थंकर स्वयं जिन रूप से मनुष्य भव में प्रवेष्ट करते हैं। साधारणतः विष्णु की परम्परा में आविर्भूत होने का उल्लेख जैन साहित्य में नहीं मिलता। फिर भी महापुराण में वर्णित तीर्थंकरों में कतिपय ऐसे बिद्ध या सकेत मिलते हैं जिनके आधार पर क विष्णु से सम्बन्ध सिद्ध होते हैं।

महापुराण में आपम की प्रार्थना करते हुए उन्हें आदि बराह क रूप में पृथ्वी का उद्धारक कहा गया है।^१ वे तीनों ओर्कों के स्वामी माधव और मनु को मारने वाले मनुसूदन हैं।^२ वे गोबद्धमधारी^३ परमहंस केदार हैं।^४ अज्ञित नाम तीर्थंकर (वसुवर्द्ध) श्री और (वसुवर्द्ध) पृथ्वी के पति हैं।^५ जबकि पुराणों क अनुसार ये दोनों विष्णु की स्त्रियाँ मानी जाती हैं। समवनाय धरणी क समुद्धारक हैं।^६ एक अन्य तीर्थंकर को सम्भवतः छत्तमी को शरीर में धारण करने वाला या भार डोम वाला कहा गया है।^७ एक दूसरे तीर्थंकर

१ वेदमन्वाहं ज्व कमकशोभि आर्द्धबराह उदरिपशोभि। महा० पु० बी०, २२, ५, २०

२ अब माधव विद्वानमाधवेत, मनुसूदन दुसिब मनु विसेत।

महा० पु० बी० २ २० ५, २४।

३ 'गोबद्धम' का अर्थ श्री देव ने ज्ञान वर्द्धन किया है, किन्तु अन्य स्थलों पर कृष्ण से सम्बन्धित गोवर्द्धन के किने भी 'गोबद्धम' का प्रयोग हुआ है। जैसे महा पु बी० २ ८५, २६ तथा २६।

गिरि श्रेष्ठत गोवद्धयेन बब्राह्म'।

४ अयाशोभि ओरव वरमहंस बीकान केयव परम हंस। वही पु० २ २०, ५, २५।

५ वसुवर्द्धमर्द्ध कर्ताश्रुति। महा० पु० बी० २ ६८ २८, २०।

६ वरगिण वरणि समुद्धारक। महा पु० बी २ ४० ५, ८।

७ माहि मुशेवि सरव निम्बरव लम्बिमाव विवतमवु वीरव। वही, पु० २ ४४, २ ३।

हैं कि जिन का जन्म हुआ है।^१ जैन तीर्थंकरों को शिव ब्रह्मा और विष्णु से इस आधार पर श्रेष्ठ बतकाया गया है कि ये तीनों सर्वैश्वर्य पक्षियों के साथ रहते हैं, जबकि जिन ने उनका त्याग कर दिया।^२ महाकवि पुष्पदत्त ने समवनाय को ब्रह्मा, विष्णु और शिव की अपेक्षा श्रेष्ठ बतकाया है।^३ अमित गति ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को भीतराग और सर्वज्ञ जिन की^४ अपेक्षा पुष्प बतकाते हुए कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर न तो वैरागी हैं न सर्वज्ञ हैं, उनमें भी मद्य, श्लेष, क्रोध आदि वर्तमान हैं।^५

'हरिवंश पुराण' में आपम क प्रति की गई स्तुतियों में कहा गया है कि आप मति, श्रुति और अवधि इन तीन सर्वोत्तम ज्ञानरूपी वेदों से सुप्तोन्नत हैं। आपने इन भारत क्षेत्र में उत्पन्न होकर तीनों क्षेत्रों को प्रकाशित कर दिया।^६ मनुष्य भव में आते ही आपने समस्त जगत् को कृतार्थ कर दिया।^७ आपका अतिशय मनोहर शरीर मनुष्य सुर असुरों को सर्वथा दुर्बल सर्वोत्तम एक हजार भाट कणों से पुनः है।^८ आप चरम शरीरियों में प्रथम हैं। यह आपका शरीर बिना पुनः क ही अपने अतिशय मनोहर रूप में समस्त जगत् को जल बचाये रखता है। आपके गर्भस्थ होने के समय सुवर्ण वर्षा हुई थी। इसलिये इबला हिरण्यगर्भ नाम से आपकी स्तुति करते हैं।^९ इस भव से पूर्व तीसरे भव में आप ने अपने आप तीर्थंकर प्रकृति का वध बौबा या और इस भव में आप तीनों ज्ञान क धारक उत्पन्न हुए हैं, इसलिये स्वयम्भू कहे जाते हैं।^{१०}

विष्णु एक अवतारों के तत्वरूप

जैन साहित्य में आपम आदि तीर्थंकरों का उपास्य रूप अतिशय प्रसिद्ध हुआ है। इसलिये स्वभावतः ही आपम मगध्याय में इवाभिदेव परमात्मा क

- १ महा पु जी० २ ४० १ । २ महा पु जी० १ १० ५ ।
- ३ दक्षिण पर हर्ष हरणं पुसिष बंभ हरि हरणं ।
- विमि कारिष परदारवं परहरिषिष परदारवं ॥ महा० पु० जी २, ४० १ ।
- ४ भीतराग्य सर्वज्ञी जिन श्वाशिश्यते ।
- अश्वरेशामश्वरानां राम्येशादिहृदिभ्यः ॥ भावक्याचार ६ १ ७ ४, ७ ।
- ५. न विरामा न सर्वज्ञा म्प्रविष्णुमहेश्वराः ।
- राम्येश्वरमश्वरेश्वरममोहादि भोगता ॥ आपकाचार ६० १ ७ ४ ७ १ ।
- ६ हरिवंश पुराण ६ २२२ ८, २९६ । ७ वही ६ २२२, ८, २९८ ।
- ८. वही ६० १२६, ८ २ ४ । ९. वही ६ २२६ ८ २०५-२ ६ ।
- १० हरिवंश पुराण ६० १२६ ८ २ ७ ।

रूप में गृहीत हुये हैं। परन्तु पुष्पवृत्त क महापुराण में अनेक स्थलों पर इन्हें पौराणिक दृश्यों की अपेक्षा विष्णु से अधिक अभिहित किया गया है। यह स्वरूपता कतिपय स्थलों पर इतनी स्पष्ट है कि कवि इन्हें भीतराण और मन्त्र आदि जैन वैशेषियों क द्वारा ग्रहण करते हैं।

मध्यकालीन मगुम मन्त्रि साहित्य में राम और कृष्ण क जिन अवतारी रूपों का प्रचार है उनमें उपाम्यतय का प्राधान्य होम क कारण व स्वयं राम-कृष्णादि परमहृ रूप मे भीम अवतार धारण करते हैं। ग्रिहों में मान्य विष्णु का रूप वहाँ गौण हो जाता है। फिर भी उनमें परम्परा की अवधारणा नहीं दीन पड़ती है। व राम और कृष्ण क स्वयं अवतारी होत हुये भी महाकाव्यों एवं पुराणों मे जाती हुई श्रीरक्षामी विष्णु से अवतरित होने वाली परम्परा में उनक विष्णु-अवतार का उल्लेख अवश्य करते हैं।

परन्तु जैन साहित्य की परम्परा मित्र होम क कारण तीर्थंकर स्वयं जिन रूप मे मनुष्य भव में प्रवृत्त करते हैं। साधारणतः विष्णु की परम्परा में आकिर्मल होने का उल्लेख जैन साहित्य में नहीं मिलता। फिर भी महापुराण में वर्णित तीर्थंकरों में कतिपय ऐसे बिह्व या मरुत मिलते हैं जिनक आधार पर व विष्णु से सम्बन्ध विदित होते हैं।

महापुराण में अयम की प्रायना करत हुयुं उम्हें भादि बराह क रूप में पृथ्वी का उद्धारक कहा गया है।^१ व तीनों लोकों क स्वामी माघव और मधु को मारत वाले मधुसूदन हैं।^२ व गोब्रह्मधारी^३ परमहम कहाव हैं।^४ अजिन नाम तीर्थंकर (बभ्रुवर्ह) भी और (बभ्रुमइ) पृथ्वी क पनि हैं।^५ जबकि पुराणों क अनुसार ये दोनों विष्णु की विषों मानी जाती हैं। ममवनाय धरणी क मधुसूदारक हैं।^६ एक अन्य तीर्थंकर को मन्मथनाः लक्ष्मी को सतीर में धारण करत वाला या भार तोन वाला कहा गया है।^७ एक दूसरे तीर्थंकर

१. वैराग्यवार्ति अथ कथकजोति चार्धवराह उद्धरियतीति। महा० पु० बी , ११०, ५, १०

२ अथ माघव त्रिभुवनमाह्वैत, मधुसूदन भुसिप महुं विसेस।

महा० पु० बी० १ १० ५ १४।

३ 'गोब्रह्म' का अर्थ भी देव ने दान बर्देन किया है किन्तु अन्व स्थलों पर कृष्ण से सम्बन्धित गोब्रह्म के लिये भी 'गोब्रह्म' का प्रयोग हुआ है। जैसे महा० पु० बी० १ ८५, १९ वचा १६,

पियरि गोब्रह्म गोब्रह्मैव ब्रह्मार्त'।

४ अयम्येवमि ओरव वरमहंस पीक्यम केसव परम बंस। वही, पु० १ १०, ४ १५।

५. बहवराहवर्धन कंजावति। महा० पु० बी २ ३८ १८, १०।

६. वरनिद वरनि मधुवराण। महा० पु० बी० १ ४० ५, ८।

७. मही कुर्वेति सत विष्णव उचिधमाव त्रिभुवनपु वीरव। वही, पु० १ ४४ २ ३।

‘बेरि सघारण’ भी है।^१ एक तीर्थंकर को गोपाल (गोबालु) नाम से अभिहित किया गया है।^२

इसके अतिरिक्त महापुराण में वर्णित कृष्ण-कथा में कंस को यह पता चला है कि वह नाम के राज पर सोने वाला राज बजाने वाला और बहुत धारण करने वाला उसका राज है।^३ वह इसी तीनों प्रतिहारों का पाठन करने वाले से अपनी पुत्री के विवाह की घोषणा करता है।^४ कृष्ण इन प्रतिहारों का पाठन करते हैं।^५ बाद में सत्यमामा के द्वारा ज्योतिष ज्ञान पर तीर्थंकर नेमिनाथ भी उक्त कौशल का प्रदर्शन करते हैं।^६ इन तीनों का स्पष्टतः संबंध गोपनापी, पञ्चजम्य राज एवं शार्ङ्गधारी विष्णु से प्रतीत होता है। अतः उक्त तथ्यों के आधार पर कम से कम महापुराण में विष्णु से इसके स्वरूपित होने का अनुमान किया जा सकता है।

अथतार प्रयोजन

सामान्यतः पुराणों में विष्णु के अवतारों के साथ अथतार प्रयोजन अथवा सम्बन्ध रहता है। इसी से कुछ प्रयोजन के अन्तर्गत साधारण जन्म और अवतार में अन्तर पड़ जाता है। सैद्धांतिक रूप से जैन धर्म में एक कोटि के अवतारवाद को मान्यता प्राप्त नहीं है। इसका मुख्य कारण है उनका अवतारण की अपेक्षा साधनारमक उत्थमण में विश्वास जिस पर सभी अवतार विचार किया गया है।

१ उक्त अमरिषा बेरि संवारिणम् । श्री, पृ० २ ४५, ७, १० ।

२ अरं दुष्टु नौबालु भिन्दरीकुंठु तो कारं नलिं करि दुग्धु रंठु ।

श्री ३ २ ४८, १० २ ।

३ एवो मिधरं विज्ञातुं सज्जो को अरुवज्जाकरर सने
को सारंगकोटि दुम नारवं सो दुग्धु वि अमपुरि पशु दानर ।

महा पु० श्री० १ ८५, १७ ११-१२ ।

४ को पथि सधमि हवरं क्लु पावर संसु लनसो वुरिदि दावर ।

नटु पशु रैर रैर हृदिबर सनुं, वा नारकव भिष्णु धरं मनुं मनुं व

श्री, श्री ३, ६० ८५, १८ - १० ।

५. महा० पु० श्री० ३ ६० ८५ २२-२४ ।

६. एव न एर दुग्धुनगीरं हृदं कपाड नह साधिपापमः ।

अरावर्णवदरनपाक यदि वरमेसक वपड कति ठरि ॥

अपिठ दुग्धुदेवि पथिसपनु वगाविड बाव पाप्यं ।

वगु करि निदिड संसुनाकरिड वगु बहिरीड विपाप्यं ॥

महा पु श्री० १ ६ ८८ १५ दो० १५ श्री १ ।

हो जाती है, जो एक प्रकार से अवतारवाद के विरोधी रहे हैं। इसका मूल कारण सम्प्रदाय प्रवर्तन या विस्तार को समझा जा सकता है। क्योंकि उस काळ में वैष्णव अवतार प्रवर्तकों की तुलना में जाने के लिए अवतारवाद सहज और सुलभ माध्यम हो गया था।

उत्कर्मण्यशील प्रवृत्ति

जैन पुराणों में वर्णित तीर्थंकरों का अवतारवाद वैष्णव अवतारवाद से कुछ अर्थों में भिन्न प्रतीत होता है। वैष्णव अवतारों में परमपुरुष परमात्माविष्णु अवतरित होते हैं। उनको वह पद किसी साधना के बल पर नहीं प्राप्त हुआ है अपितु वे स्वयं अद्वितीय ब्रह्म ब्रह्म, पारलोक और सहायक हैं। इसके विपरीत जैन तीर्थंकर प्रारम्भ में ही अद्वितीय ब्रह्म या परमात्मा न होकर साधना के द्वारा उत्कर्मित होकर परमात्मा या लोकेश होते हैं। सन्तों एवं साम्प्रदायिक जाचार्यों के सहस्र जैन मत में साधना की अपेक्षा साधना का अल्पधिक मूल्य समझा जाता है। 'परमात्म प्रकाश के अनुसार आत्मा ही परमात्मा है किन्तु कर्म बन्ध के कारण वह परमात्मा नहीं बन पाता। कर्म बन्धन से मुक्त होने और स्वयं रूप से परिचित होते ही वह परमात्मा बन जाता है।' जैन साधक तीर्थंकर से छंकर साधारण साधक तक सभी इस आत्म साधना के द्वारा स्वयं ईश्वर बनने की चेष्टा करते हैं और अन्त में वे स्वयं ईश्वर हो जाते हैं। 'प्रवचनसार' के अनुसार आत्मा में ईश्वर होने की शक्ति होती है, जो कर्म शीघ्र होने पर पूर्णता को प्राप्त होती है।^१ प्राचीन जैन शास्त्रों के अनुसार आत्मा गुण स्थानों पर आरोहण करता हुआ उच्चत उच्चतर होता जाता है। प्रत्येक गुण स्थान में उसके कर्म नष्ट होते जाते हैं।^२ वे पुरुषाचार, ज्ञानाचार चरिताचार तपधरणाचार और बीर्याचार इन पंचाचारों द्वारा अपने कर्म बन्धन का नाश करते हैं।^३ इसी से वे पंच परमेष्ठि कहलाते हैं।^४ इन आचारों के बीतराग और सराग भेद से चरित्र दो प्रकार के माने गए हैं। बीतराग चरित्र मोक्षप्रधान है और सराग चरित्र इन्द्र या चक्रवर्ती आदि पदों की ओर प्रवृत्त करने वाला विभूति स्वरूप है।^५ प्रारम्भ में आप्त आदि तीर्थंकर कबल इय गुणों या क्षतिसाधों से मुक्त रहते हैं। कबल जिन होन पर ये चौबीस अतिशाय

१ परमात्मप्रकाश पृ. १०२।

२ परमात्मप्रकाश पृ. १५।

५ प्रवचन सार पृ. ५।

२. प्रवचन सार पृ. ९९-११।

४ परमात्मप्रकाश पृ. १९-२४।

५ प्रवचन सार पृ. ८-९।

से मुक्त हो जाते हैं।^१ कबली या कबल्य का ज्ञान होने पर व कबल्य दिन या भरहत् कबल्य जाते हैं।^२ बही जिनेन्द्र देव और परमात्म प्रकाश भी हैं। सम्भवतः कालान्तर में जैनों में भी परमात्मा क सकल और विकल भेद से दो स्वरूप माने गये,^३ जो सगुण-साकार और निगुण निराकार क रूपान्तर प्रतीत होते हैं। सकल परमात्मा रूपस्य, पिंडस्य^४ या साकार होने के कारण तो अद्वैत भगवान् है।^५ और विकल परमात्मा निराकार सिद्ध परमेष्ठि है। सम्भवतः सिद्धों क ध्यान गम्य परमात्मा होने क कारण निराकार परमात्मा को सिद्ध परमात्मा भी कहा जाता है, जो लक्ष्मणों क अनुसार सन्तों क अन्तर्पामी या आत्म प्रह्व क समकक्ष प्रतीत होता है। जैन पुराणों में तीर्थंकरों के पूर्व जन्म में धारण किय गये रूपों का भी उल्लेख हुआ है जिसमें तीर्थंकर बनने के पूर्व प्रचलित पुनर्जन्म क साथ-साथ उनक उल्कपौंसुक्त रूपों का भाव होता है। चन्द्रप्रभ तीर्थंकर पूर्वजन्म में श्री शर्मा नामक राजपुत्र थे। व द्वितीय जन्म में तपस्या क फलस्वरूप श्रीधर नाथ नाम क देवता हुए। तीसरे जन्म में तपस्या क फलस्वरूप व अश्विसेन नाम क चक्रवर्ती हुए। तपस्यात् तपस्या क बल पर अच्युत स्वर्ग के स्वामी हुए। पुनः क्रमशः दूसरे जन्मों में क्रमशः पद्मनाभ, वैशम्पत और अहमिन्द्र स्वर्ग में उत्पन्न हुए। पुनः वहाँ से वे तीर्थंकर रूप में आविर्भूत हुए हैं।^६ इसी प्रकार तीर्थंकर सातिनाथ भी अपने पूर्ववर्ती जन्मों में क्रमशः श्रीपेण, कुस्मरदेव विद्यापर देव बकदेव ब्रह्मापुत्र, अश्वतिन् देव मेवरय, सवायसिद्धिदेव, साति और अश्वमुद इन इन्द्रा रूपों के अनन्तर अन्त में सातिनाथ हुए।^७ इस आधार पर इनकी उल्लेखनीय प्रवृत्तियों का पता चलता है। और यह स्पष्ट हो जाता है कि तीर्थंकर मूल रूप में साधक सन्त हैं। कालान्तर में पौराणिक लक्षों के समावेश से इनक अवतारवादी रूपों का विकास हुआ। फिर भी उन पौराणिक रूपों में उनक साधनात्मक अस्तित्व का हास नहीं हुआ है।

१ अरुस्य वद कत्वा सह मवेन, अश्वीस अवरमपुम्भेवेन ।

२ नि भरहत्तु वर संभति के ते पर मन्वद्व कर्त्ति ॥

महा पु० बी० २ २० २ २-२ ।

३ वैशक मासि अनवरत्त जीया कोट सुपुत्र ।

मित्र में परमाण्व मउ अया ह्व भरहत्तु ॥ परमात्म प्रकाश पु० ३३४ २, १९६ ।

४ परमात्म प्रकाश वृ ३३३ २ २९८ ।

५ परमात्म प्रकाश पु ३३ २ २४ 'सं० २०१५ श्री बीष्ण रामकी दिन्नी टीका' ।

६ परमात्म प्रकाश दि टीका वृ ५ ।

७ परमात्म प्रकाश दि० टीका पु० ३३ । ८ महापुराण बी० २, ४५ बी संवी ।

बारह अवतारों

तीर्थंकरों के पश्चात् तिरसठ महापुरुषों में बारह अवतारों परियोजित होते हैं। वे भरत सगर मयवा, सनत्कुमार सांति कुपु भर सूभीन पद्य, हरियेन, खयसेन और ब्रह्मरुच नाम से प्रसिद्ध हैं।^१ जैन पुराणों में ये पृथ्वी मंडल को सिद्ध करने वाले बतकाये गये हैं।^२ अवतारवाद से इनका सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता।

वसुदेव-वासुदेव और प्रतिवासुदेव

जैन साहित्य में क्रमशः भी बलदेव, भी वासुदेव और भी प्रतिवासुदेव को त्रिपट्टि महापुरुषों में ग्रहण किया गया है। अनेक विषयताओं के होते हुए भी इन तीनों का सम्बन्ध विष्णु के पौराणिक अवतारों और उभके अनुजों से विदित होता है। जैन पुराणों में ही हुई इनकी कथाओं से परिकल्पित वैपम्य होते हुए भी तीर्थंकरों के सहस्र इनकी कथाओं में भी पुनरावृत्ति हुई है। सामान्यतः सभी कथाओं में एक बलदेव एक वासुदेव और एक प्रतिवासुदेव गृहीत हुए हैं। अतः प्रथम त्रिपट्टि वासुदेव (जिन्हें नारायण और विष्णु भी कहा जाता है) के साथ विजय-वसुदेव और अश्वमेध (इक्ष्वाकु) प्रतिवासुदेव हैं। तन्मन्तर क्रमशः त्रिपट्टि के साथ अचक और तारक, खयम्भू के साथ बर्से और मधु, पुष्योत्तम के साथ सुप्रथ और मधुसूदन, पुरुषसिद्ध के साथ भुवर्षान और मधुभीष्ट, पुष्यरुच के साथ बन्दिनेन और मिश्रुम्भ, वृत्त के साथ नम्बिमित्र और बलि कश्मण के साथ राम और रावण और कृष्ण के साथ बलदेव और अरासथ सम्पोजित हैं।

उक्त सूची में बलरामों की योजना जैन साहित्य की अपनी विशेषता है। इस योजना के आधार अन्तिम बलदेव प्रतीत होते हैं। क्योंकि इस सूची में जैसे बलदेवों की संख्या सर्वाधिक है वा पूर्ण रूप से जैन साहित्य की कल्पना है। राम और बलराम को छाड़ कर अन्य किसी भी बलराम का वैपम्य पुराणों में उल्लेख नहीं मिलता है। आठवीं जाड़ी में कश्मण के स्थान पर राम बलराम से नाम सम्य के कारण आठवें बलदेव हां गये और कश्मण, कृष्ण-विष्णु के स्थान में बड़े भाई बलराम की तुलना में ही कृष्ण वर्ण

१ महापुराण जी० १ ६५, ११।

२ त्रिबीवर्णनटि वृ० १०४, ४, ५१५-५१६।

राम तथा राजग को मारने वाले माने गये।^१ इस प्रकार जैन महाकवि पुण्यवत वाल्मीकि और व्यास की मूर्तों को सुभारते हैं।^२

इसके अतिरिक्त यहाँ तक वासुदेव और प्रतिवासुदेव का प्रसंग है, इनकी मयाजमा भी कृष्ण-बलराम या हरि-हृदयर क आधार पर की गई विदित होती है। क्योंकि विजय और त्रिपुष्ट से लेकर लक्ष्मण^३ और राम तक सभी विष्णु की लयजा बलराम और वासुदेव से अत्यधिक अभिहित किये गये हैं।^४ इन भी आदिओं में परम्परानुगत विशेषता यह है कि प्रायः सभी ब्रह्मदेव जैन हो जाते हैं, और मोक्ष प्राप्त करते हैं, जबकि वासुदेव और प्रतिवासुदेव नरक में जाते हैं।

हरि हृदयर के अतिरिक्त वासुदेव और प्रतिवासुदेव का समिष्ट सम्बन्ध विष्णु और उनके पौराणिक अवतारों में है। अनेक विपमताओं के होते हुए भी इन तीनों शक्तियों की कथाओं में प्रायः विष्णु की अवतार कथाओं का और्जाकरण किया गया है। विष्णु से इनका सम्बन्ध कषक कुछ उपादानों, कतिपय सिद्धों और लक्षणों के आधार पर ही जाना जा सकता है। प्रथम ब्रह्मदेव विजय और त्रिपुष्ट प्रतिवासुदेव अश्वमेध के दास्य हैं। अश्वमेध विष्णु द्वारा मरस्यावतार में मारा गया अश्वमेध है। इस दृष्टि से त्रिपुष्ट को मरस्यावतार का पर्याय माना जा सकता है। इस कथा में विजय और त्रिपुष्ट के लिये परणीकर पुरुषोत्तम^५ और सकर्षण, नारायण^६ आदि नामों का प्रयोग हुआ है। अश्वमेध से बचने के लिये जब त्रिपुष्ट तैयार होते हैं, तब देवियों

१ महापुराण ७४ ११, ११।

कषकण रामोदरभद्रिबकमु, अहम इकइर रगरस निसमु।

२ महापुराण ६९ १ १-११।

कि महितं सहासदि बरुकर लर कोर बरुमु सगु बहर।

बम्पीव नासबवमिदि पदित अन्वयु कुम्पगकदि पदित ॥

३ पञ्चतन्त्र ५० ५ १, ७५ 'दशो नारायणं कृष्णं' और तिष्ठीव पम्पति में ५० २०७, ४ ५१७ में कषकण माराकण माने गये हैं।

४ विद्वैत कर इस राम कथा में कषकण-राम को कतिपय स्वलों में हरि-हृदयर से अभिहित किया गया है। महापुराण ७४ १, ७ 'बकपवर्तु महा पु० ७४ ६, ५, 'दो इकि हरि अब काकि अकिड'। महा पु० ७४, १ १ 'सीराजदेव उकसामिभो बरुपी'। महा पु० ७५, ४ १ 'तदवर्तु हरिहृदयर दिव्य पुरिस'।

५ त्रुई पुष्कोत्तमु त्रुई बरुपीव निलवंतं ह बरुई कषकणानव। महा० पु० ५१, १३, ६।

६ का वि मन्त्र इडु सी संघरिसु इलरव इकि अकरंनु विहरिसु।

का वि मन्त्र रर सो पारावय, इकिइर इकि अकरंनु विहरिसु ॥

महा० पु ५१ १४, ७-८।

साईंघण्टुप, पञ्चम्य राज कीर्तुम मणि और श्रीमोक्षी नाम की गदा को विष्णु की आयुध मानी जाती है विष्टक को प्रदान करती है।^१ साथ ही हनुवर को हनु, मूसक और गदा देती हैं।^२ यहाँ हनुवर के साहचर्य के कारण कृष्ण स्पष्ट हैं परन्तु विष्णु के आयुधों से युक्त होने के फलस्वरूप वे विष्णु के अवतार कृष्ण हैं। विष्टक के रूप में अथग्रीव से युद्ध करते समय इनका स्वयं गन्ध के बिह्व से अकित गन्धस्वयं है।^३ आठवें बकदेव राम भी कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु या बामुदेव से अमिहित किए गये हैं।^४ इसी प्रकार सुप्रभ और पुण्योत्तम पर विष्णु की विसंपत्ताओं का आरोप किया गया है।^५ आठवें बकदेव की राम-उपा के प्रसंग में उनकी स्तुति करते समय विष्णु के प्रयासों का प्रयोग हुआ है।^६ उक्त उपादानों के आधार पर दोनों में मान्य उक्त तीनों जोड़ियों में से कुछ का विष्णु से स्पष्ट सम्बन्ध सिद्धित होता है। इनके अतिरिक्त स्वयं पुण्योत्तम पुरुषसिंह पुढीक, हनु आदि नाम भी विष्णु के प्रचलित नामों में हैं। द्वितीय प्रतिबामुदेव तारक और निशुम्भ का संबंध पुराणों में विष्णु से स होकर अमर्या अतिशेय और दुर्गा से रहा है। इनके अतिरिक्त चौथे प्रतिबामुदेव मधुसूदन का नाम भी विष्णु के प्रतिहस्त्रियों की

१ कण्ठु वैभवहि पुण्यगवहि पुण पयान संपण्णरं ।

सति श्रीमोह मुहि व सन्नि सति वनु सारंग विहन्वन् व

आग्निने स्रष्टोहि निव रन्निउत म्गळुणिनिगारबो ।

अठमव पंचवणु कीर्तुह मनि अति हरिणे गिदेहणे व

अणु वि गव ह्य गव दिण्ण वासु को मुह गामे बामोकरात्त ।

महा पु ५२, ९, २५ और ५२, ९, १-१ ।

२ अठमवु अंयतु मुसुत्त वाव गव अंदिम जमे इति वाव । महा पु ५२, १, ४ ।

३ सांभानु ज हनुवर गन्धकेव होयह मीसनु नं नूमपैठ । महा पु ५२, ९, ९ ।

४ इंड मिठ देव वसरह कुमार इंड विरुत्त सहुइडिप इठार ।

वाव दिण्ण इति दे देदि वाव मुह एवहि कुळा रामवाव म्म पु ४, ७, ५ ।

५ कृष्ण उरिसत्तनु वायवगरी दे देनि वि हनुवरवायवगरी ।

दे देनि वि पडुव अठमवणु वि उण्ण पुण्णवणु म्म

दे देणु वि सादिम सिद्ध विण्ण दे देनि वि स्ववताम रंइ पुण्ण ।

महापु० ५८, १७, ७, ९ ।

अठमवु पंचवणु डि वडुव, अणु पव कि अंदिअर वडुव ।

अणो वरणि वेनु किह वडुव गन्धविजोग अठमवु विण्णरं ॥

महापुराण अं १, १-१ ।

६ सिरिसिदिह रामग रादिवेदि । सिचणु अठमव विडु वेदि ।

वदेणिनु पुण्णिव वरमवणु, विणु कहु उवाटविवाटवणु ॥ महापु० ७९, ५, १-१

एवहि विधि समर हरि अति सन्नि पटुव । महा पु० ७९, १, २९ ।

वेदा विष्णु से ही अधिक सम्बद्ध है। फिर भी कुछ को छोड़ कर अन्य सुबेह और प्रतिवासुदेवों से विष्णु के अवतारवादी सचप का पयास स्पष्टी रण हो जाता है। 'महापुराण' के पूर्व की रचना 'तिलोपपण्णत्ति' में भी सुबेहों को वासुदेव क स्थान में विष्णु कहा गया है।^१ 'पद्मानम् महाकाण्ड' (१३वीं शती) में भी इन्हें विष्णु माना गया है।^२ साथ ही प्रतिवासुदेवों में हीत अश्वघोष तारक, मेरक, मधु, मिष्टान, बकि, प्रह्लाद, इन्द्रकम्पर उरासम्भ गदि विष्णुबन्ध और प्रतिविष्णु कह गये हैं।^३ 'महापुराण की सूची की अपवा रण्य जैन साहित्य में उपलब्ध प्रतिवासुदेवों की सूची में न्यूनधिक अन्तर तिम पड़ता है। 'महापुराण' की पूर्ववर्ती रचना 'तिलोपपण्णत्ति' में मधुसूदन और मधुसूद का उल्लेख न होकर मेरक और प्रहरण का उल्लेख हुआ है।^४ 'महापुराण क सम्भवत बाद की रचना 'पद्मानम्' में भी 'तिलोपपण्णत्ति' क मरुता मेरक का उल्लेख हुआ है किन्तु प्रहरण के स्थान में प्रह्लाद का नाम दिया गया है। नामों क अनिश्चित इनके क्रम में भी किंचित् अन्तर वीक्ष पड़ता है। 'महापुराण के अनिश्चित अन्य दो सूचियाँ प्रायः क्रम की दृष्टि स एक सी हैं। यहाँ मधु का स्थान चौथा और प्रह्लाद का छटा है जबकि 'महापुराण' में मधु का स्थान तीसरा है। निष्कर्षतः विष्णु क पौराणिक अवतार ही परिवर्तित एवं अगम्बद्ध तथा जैनीकृत रूप में जैन साहित्य में भी गृहीत हुए हैं।

कृष्ण बसुदेव पूर्वकालीन जैन मुनि

'हरिवंश पुराण' ८८ ९ में कृष्ण गोपाल को पृथ्वी का रक्षक कहा गया है। य शोपनाधी तथा पञ्चसम्य और धनुष धारण करने वाल है। जैन पुराण कार क अनुसार भी इनका अवतार प्रयोजन कस वष ही रहा है।^५ फिर भी सम्भवतः बसुदेव-कृष्ण का जैन परम्परा में समेटन क लिपि पताया गया है कि पूर्वकालीन जनों में कृष्ण और बसुदेव जैन मुनि थे। दूसरे जन्म में ब मुनि हुए बसुदेव-कृष्ण क रूप में अवतरित होत हैं।^६ पुन दूसरे स्वल पर

१. नर क विविह बुविहा संवसु पुरिसुत्तमो पुरिससीहो।

पुंउरिष वंन मारावम व इवन्ति पन विण्डु। तिलोप प ५० १०० ४ ५२८।

२. वत्तो मारावमः कृष्ण इत्येते नर विण्डवः। पद्मानम् महा० ५० ८, १ ७५।

३. विष्णुबन्धा अवघोवस्तारको मेरको मधु।

निनुम्मी बकिसंदोष्य मङ्गरो दसकम्पर ८०

उरासम्भ विष्णुना नरै ते प्रतिविष्णवः। पद्मानम् महा० ५० ८, १ ७६।

४. अवघोव तारक, मेरक मधुदेवम मिष्टान्म, बकि, प्रहरण, रावण, वराहव भी प्रतिपद्य हैं। तिलोप प० ५ १०७, १०, ५१-५१।

५. हरिवंश पु ८५, १०।

६. हरिवंश पु० ८९, ८-१८।

बताया गया है कि कृष्ण जो विष्णु-वामन के अवतार हैं उनका बच करने के लिए वामनावतार के रूप में अवतरित होते हैं।^१

इन प्रसंगों से स्वतः स्पष्ट है कि कृष्ण की अवतार कथाओं को वैष्णव पुराणों से ही ग्रहण किया गया है। साम्प्रदायिक रंग लेकर कबल बछराम-कृष्ण को जैन मुनि ही प्रमाणित करने की चला नहीं हुई है अपितु अन्य अवतार प्रसंगों को भी विद्वत् रूप में सम्बद्ध किया गया है।

दशावतार

हरिवेण द्वारा रचित 'वर्मपरीक्षा' नामक (रचना का स० १०४०) एक अप्रकाशित ग्रन्थ की शीघी सगी में अवतारवाद पर व्यंग किया गया है। विशेषकर दशावतारों पर व्यंग करते हुए कहा गया है कि विष्णु सम्भवतः दशावतारों के रूप में हम जन्म लेते हैं फिर भी कहा जाता है कि वे जन्मा हैं। ये परस्पर विरोधी बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं ?

दशावतार सम्बन्धी इस प्रकार की आलोचना वाय पयी साहित्य में भी मिलती है, जिसका यथास्थान निरूपण किया गया है। परन्तु आलोच्यकाशीन जैन कवि के इस व्यंग से प्रतीत होता है कि अमितगति जैसे जैन कवि दशावतार के समर्थक थे^२ तो उसी युग में हरिवेण जैसे आलोचक भी थे।

विष्णु से सम्बद्ध कुछ प्राचीन सङ्घों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य जैन काव्यों के काल तक विष्णु के अवतारों का उत्काशीन मन्मात्र और साहित्य दोनों में प्रचार था जिसके फलस्वरूप जैन काव्यों में भी उनकी अवतारणा हुई।

अन्य वैष्णव अवतारों के रूप

उपर्युक्त बसुदेव, बामुदेव और प्रतिबामुदेवों के अतिरिक्त विष्णु के कुछ अन्य अवतारों की भी कथाएँ जैन साहित्य में मिलती हैं। राम-कृष्ण के अतिरिक्त कृम बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध, कपिल आदि की प्रारम्भिक कथाएँ ही गई हैं। इनमें बुद्ध से कथात्मक साम्य होते हुए भी विष्णु से अवतारवादी सम्बन्धों का अत्यन्त अभाव है। परन्तु शेष अवतारों का विष्णु से सम्बन्ध हीन पड़ता है।

१ हरिवेण पृ ८५, ८।

२ अवतार साहित्य (कोष्ठक) पृ० १५५।

३ दशावतार शीर्षक ग्रन्थ।

कूर्म

स्वयम्भू के 'पठम चरित' में कूर्म की पौराणिक कथा का उल्लेख हुआ है। यहाँ कूर्म विष्णु पृथ्वी धारण करने वाले बताए गए हैं।^१ 'नवकुमार चरित' में देवताओं द्वारा समुद्र मंथन की कथा में भी कूर्म का आभास मिलता है।^२

वराह और नृसिंह

वराह के भी प्रासंगिक उल्लेख जैन प्रबन्ध कालों में हुए हैं। पुष्पवत के 'महापुराण' में समवत विष्णु अवतार रूपम आदि वराह का रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करने वाले बताए गये हैं।^३ पुनः 'नवकुमार चरित' में विष्णु के वराहावतार की कथा प्रसंग क्रम में आई है। यहाँ विष्णु वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करते हैं।^४ इन प्रसंगों के अनुसार वराह का पौराणिक रूप अधिक प्रचलित हीन पद्वता है। नृसिंहावतार का उल्लेख जैन साहित्य में अत्यन्त विरल ज्ञान पद्वता है। प्राकृत काव्य 'श्रीशारङ कथा' के प्रारम्भ में विविध देवताओं को स्मरण करते समय हिरण्यकशिपु के सहारक अवतारवादी विष्णु को स्मरण किया गया है। यहाँ अपत्यक रूप से नृसिंहावतार का अनुमान किया जा सकता है।^५

वामन

जैनों के 'हरिवंश पुराण' के अनुसार विष्णुकुमार ने वामन स्वरूप धारण कर ध्यानमग्न जैन मुनियों के लिये केवल तीस पग जमीन माँगी।^६ बलि के स्वीकार करने पर विक्रम ऋद्धि के प्रभाव से सूर्य जाति स्मृतिमंथ विमानों तक अपना पैर बढ़ा कर मेरु पर्वत की चोटी पर रखता थीर दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रखा। तीसरा पैर रखने का कोई स्थान नहीं मिला तो वह आकाश में कूर्ममे लगा। इससे डर कर देवता गणर्ष जाति उमकी स्तुति करने लगे।^७ जैनों के अनुसार विष्णु कुमार का यह चरित्र मन्थों के सम्बन्ध वर्सन की छद्दि कराता है।^८

१ पठम च० १ १०, १।

२ नवकुमार चरित चरित्र-बीठू ली कुम्भ पठमठ केन मीठू।

३ नवकुमार चरित १, ४, १०।

४ महा० पु जी० १-१० ५ १०।

५ नवकुमार चरित १, ४, ८।

६ श्रीशारङ कथा १० ५३।

७ हरिवंश पुराण १ २३०, १०-१।

८ हरिवंश पुराण १३८, १, ५१-५३।

८ हरिवंश पुराण १३८ १०, ३५।

'हरिवंश पुराण' में कृष्ण की कथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। वहाँ कृष्ण सप्त, षष्ठ, गणा और अशिखारण करने वाले विष्णु का अवतार है।^१

माम्य वैष्णव अवतार

महापुराण में परशुराम और कार्तवीर्य की कथा है। किन्तु वहाँ विष्णु से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।^२ चौबीस अवतारों में गृहीत कपिल का मणिभद्रु का रूप में उल्लेख हुआ है।^३ इसी प्रकार सनतकुमार की कथा जैन साहित्य में बसुर्ध्व षष्ठवर्ती के रूप में मिलती है।^४ द्वापावतारों में माम्य बुद्ध का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु वे द्वापावतारों से प्र आकर सीधे बीहड़धर्म से गृहीत हुए हैं 'संज्ञबुद्ध' वा स्वयं बुद्ध नाम से ही यह स्पष्ट है।^५

रामायण में राम के सहायकों में माम्य बासुपुत्र इनुमान जैन पुराण के अनुमान कीसर्षे कामदेव हैं। इनका 'मयरकेन्द्र' नाम से उल्लेख हुआ है।^६ 'हरिवंश पुराण' के अनुमान श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न वैष्णव पुराणों की परम्परा में कामदेव का अवतार माने गए हैं।^७

इस प्रकार जैन साहित्य में जैन तीर्थंकरों का दिव्य जन्म में अवतारवादी तर्कों का दर्शन होते हैं। असक्य अवतारों के सद्यः तीनों कालों में होने वाले जिनमें की सत्ता भी अन्तर्गत विदित होती है। वे नित्य रूप में स्थित विभागों में सम्मिलित जैन धर्म के भिन्न अवतरित होते हैं। इनमें ज्ञाप्य तो विष्णु एवं उनके अवतारों से भी अभिहित किये गये हैं। इसका अतिरिक्त उस साहित्य में उपलब्ध उपादानों से राम कृष्ण प्रद्युम्न वैष्णव अवतारों के ही संकेत नहीं मिलते अपितु बलदेव बासुदेव का व्यापार स्पष्ट उचित होता है। जैन महाकाव्यों में विष्णु की अपेक्षा हरि-दरुपर की अवतार परम्परा प्रचलित हुई है।



१ हरिवंश पुराण ५ ११ ११ १२-१४ । २ महापुराण ५ ६५ वीं सर्ग ।

३ महापुराण ५ १९ वीं सर्ग ।

४ महापुराण ५ ५९ वीं सर्ग ।

५ अह गनि वि लउ सरपदे बीवहु दिउउ ।

छा विन बदिनिदिउ बनु संचउ केग यकिहुउ म म पु बी २ ७९, १ ।

६ बंदिउ पनु महु विष्णानि केउ बगि बुद्धर पनु नि मवरवेउ ।

महापुराण बी० १, ७१ ८, १ ।

७ हरिवंश पुराण ११ ११ ।

'दीरव हरि बुद्धु संचान'

तीसरा अध्याय

नाय साहित्य

सिद्धों और जैनों के अनन्तर आलोच्यकाल के प्रारम्भ में नायों एवं गोरक्षपथी योगियों की हिन्दी रचनाएँ मिलती हैं। अभी तक इस सम्प्रदाय की १० हिन्दी रचनाएँ डा० वद्व्याल की शोध के फलस्वरूप उपलब्ध हुई हैं। 'गोरक्षबानी' नाम से इनका संग्रह प्रकाशित हो चुका है। साथ ही नायों और सिद्धों की बानियों के नाम से सगृहीत कुछ पत्रों का पटा बन्धा है जिनका प्रकाशन अभी हाल में ही नगरी प्रचारिणी सभा से हुआ है। इनके अतिरिक्त इस सम्प्रदाय की अनेक संस्कृत रचनाएँ भी मिलती हैं।

नाय सम्प्रदाय में व्याप्त अवतारवादी प्रवृत्तियों और रूपों के अध्ययन की दृष्टि से केवल 'गोरक्षबानी' या 'नाय सिद्धों की बानियों' में सगृहीत हिन्दी रचनाएँ पर्याप्त नहीं हैं। अतएव अवतारवादी तत्त्वों के विशेष रूप से स्पष्टीकरण का ध्यान रखते हुए, कतिपय संस्कृत रचनाओं का सहारा लिया गया है।

आलोच्यकाल में व्याप्त केवल प्रवृत्ति मात्र का अध्ययन धमीष्ट होने के कारण कई एक रचनाओं का काल अनिश्चित या परवर्ती होने का संदेह होने पर भी उनका मत को धत् किञ्चित् स्थान मिला है। रचनाकाल की दृष्टि में नाय सिद्धों की बानियों के पत्र भी सहित्य कहे जा सकते हैं फिर भी प्रवृत्तिगत अध्ययन की दृष्टि से इनकी उपयोगिता कम नहीं है।

पूर्व मध्यकालीन भारत में अनेक सम्प्रदायों के साथ कमन्धय योगियों और साधकों का भी एक सम्प्रदाय वर्तमान था। इनकी परम्परा में शिव इष्टदेव तथा मत्स्येन्द्र गोरक्षनाथ आदि नौ नाय प्रवर्तक विक्रियत हैं। इस सम्प्रदाय का विशेष सम्बन्ध विष्णु की अपेक्षा शिव से रहा है। उक्तमणषीक माधना में सम्बद्ध होने के कारण ये माध एक प्रकार से अवतारवाद के आलोचक ही रहे हैं। फिर भी ये तत्कालीन पौराणिक अवतारवादी प्रवृत्तियों से बहुत कुछ प्रभावित प्रतीत होते हैं।

यों तो विष्णु के चौबीस अवतारों में जिन भर-जातापन इत्यादि, कपिल आदि साधकों का नाम आता है उनके पौराणिक रूपों को देखने पर स्पष्ट पता चलता है कि वे किसी न किसी प्रकार की योग साधना से सम्बद्ध थे। परन्तु आष्टोत्थकाल के नार्यों का विष्णु या विष्णु की अवतार परम्परा से कोई विशेष सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता।^१

मत्स्येन्द्रनाथ

शिव के अतिरिक्त इन नार्यों का विभिन्न भयम बीड़ वज्रवाणी शास्त्रा म भी रहा है। अकृत नौ नार्यों में मुख्य गोरलनाथ एक ओर तो शिव के अवतार हैं।^२ और दूसरी ओर व वज्रवाणी चौराणी सिद्धों में गोरलनाथ का नाम से गृहीत हुए हैं।^३ इन्हीं की पूर्व परम्परा में आने वाले मत्स्येन्द्रनाथ 'कील शान निर्मय' के अनुसार एक ओर तो मैत्र शिव की अवतार परम्परा में हैं^४ और दूसरी ओर नेपाल में वे जगदीश्वर के अवतार रूप में भी प्रकटित हैं।^५ डा इजारी प्रसाद त्रिबेदी ने गोरल पूर्व क्षेत्र मठों को गोरलनाथ के १२ पथों में अन्तर्भूत माना है जब कि वज्रवाणियों में इन्हें किसी सम्प्रदाय या पंथ-प्रवर्तक के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। सिन्धुत और नेपाल में बीड़ सिद्धों का प्रसन्न है। ता हिमालय क्षेत्र भी बीड़ भाषकों एवं योगियों का प्रमुख साधना-स्थल रहा है। विशेष कर पौराणिक प्रथाओं का प्रचार दोनों में समान रूप से है। इस आधार पर दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है। शिवक फल स्वरूप गोरलनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ और चौराणीनाथ का सिद्धों और नार्यों दोनों की मूर्तियों में होना अधिक आश्चर्यजनक नहीं है।^६

मयलोकितेश्वर के अवतार

नौ नार्यों में मत्स्येन्द्रनाथ का प्रमुख स्थान है। इस सम्प्रदाय में य

१. वैदिक समय में प्रकटित कपिलानी धाका का संस्कृत विष्णु अवतार कपिल से माना गया है 'कपिलकल्पित्य पंथा शिवसंभ्रमबोधयन्त। कपिलकल्पित्यानुबोधोन्ना सृष्टयवेदिता' ४ की सिद्धांतरण पाठ परितम् ५ ३ स्त्री० ८। तथा गोरलवाणी ५० ३९८ में गोरलनाथोक्ति में वज्रादि की वर्णांशुं है। पौ० शि सं ५ ४५। वज्रादिबो महानाथ' कथिनावां स्ते रिधि।

२. त्रिगल ५० ७९।

३. हिन्दी साहित्य ५ १४।

४. कील पंथ निर्णय ५० ७८।

५. नाथ सम्प्रदाय ५० ३१ तथा नाथ सम्प्रदायवैदिकशास्त्र की भाष्य प्रकाशनी, कलकत्ता अंक ५ २५।

६. पारल संत साहित्य विचारक, वर्ष ३ १९५५ अंक ५ ५० ९१।

७. सिद्ध साहित्य ५० १०-११।

गौरवनाथ के गुद कह जाते हैं।^१ मत्स्यन्द्रनाथ मुख्यतः नेपाल में अबलो कितेश्वर के अवतार रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। उनका यह अवतार-सम्बन्ध प्राचीन साहित्य की अपेक्षा अनुश्रुति में अधिक प्रचलित है।^२ विराप के तिरवती परम्परा और नेपाल के बीहों में व अबलोकितेश्वर के अवतार रूप में साम्य है।^३

परन्तु उनकी रचना 'कौल ज्ञान निर्णय' में उन्हें अबलोकितेश्वर या किमी धम्म घोषिसात्र का अवतार नहीं कहा गया है। 'कौल' नाम निजय या डा० बागची द्वारा सगुहीत 'अकुल और तत्र' आदि ग्रन्थों में भी सम्बन्धी किमी प्रकार के सक्त नहीं मिलते।^४

पर हम सम्प्रदाय के श्री शंकरनाथ कप्रेग्राहि ने नेपाल से सम्बद्ध पत्र नेपाल में ही उपलब्ध कुछ पत्र शिखरों का उल्लेख किया है, जिनसे मत्स्यन्द्र नाथ के अबलोकितेश्वर-सम्बन्ध रूप का पता चलता है। इनके अतिरिक्त उल्लिखित पत्र के राजा श्री निवासमह के राज-वरपाती कवि श्री मीरकठ मह द्वारा रचित वि० सं० १७३३ की एक रचना 'मत्स्यन्द्रपद् शतकम्' में भी मत्स्यन्द्र नाथ मुख्य रूप से अबलोकितेश्वर के ही अवतार माने गए हैं।

इनके अनुसार नेपाल सन् ७९२ वि० सं० ११७२ की एक बहाबली में लिखा है—

मत्स्यन्द्र योगिनो मुख्यतः, शास्त्र सक्ति ब्रह्मि पम् ।
 बौद्धलोकेश्वर तस्मै नमो प्रहसस्वस्विण ॥
 नेपालान्द, लोचनचिह्नससौ, श्री पञ्चम्यां, श्री निवासेन राज्ञा ।
 स्वर्गद्वार स्थापित तारकेन, माधर्मीमहोक्तनाथस्य गह ॥^५

इनमें योगियों के मुख्य मत्स्यन्द्र का बौद्ध लोकेश्वर^६ से अभिहित किया गया है।

१ इनके द्वारा रचित कही जाने वाली रचना महार्थ मंत्रों के प्रथम श्लोक के अंश 'नत्वा नित्यं शुद्धीं शरीरधरुणो महाप्रकाशस्य' में प्रयुक्त 'महा प्रकाश श्री मत्स्यन्द्र' से अभिहित किया जाता है। महार्थ मंत्रों की ओर दिशा पृ० ३ स्तं० २।

२ नाथ सम्प्रदाय पृ० ३२।

३ केवल अकुल और तत्र की ही पृ० ५२ अकुल पृ० २३ में अकुल रूप योगी के लिये 'महेश्वर गुद पत्र' का प्रयोग हुआ है।

४ सं० प० शतकम् अथ पृ० ग।

५ सं० प० शतकम् अथ पृ० ग।

६ कुशिराट रक्षायोपासी महाराज, पृ० १२ 'सावन माता' के अनुसार अबलोकितेश्वर का एक नाम लोकेश्वर भी है।

एक दूसरे नेपालमन्त्रपुर शिवालय का जन्म इस प्रकार है—

‘मत्स्येन्द्र मुनयो बह्मिष्ठ सततं लोकेभ्यः सुखा ।

अन्धे त कल्पनामव प्रतिदिनं, तस्मीमि लोकेभ्यः ॥

नेपालम् १५३, वि० सं० १०००, के दूसरे शिवालय में ‘किं पद्म कल्पनाकरस्य करता, लोकेभ्यस्वगतम्’ अथ से नेपाल में प्रचलित इस उक्ति की पुष्टि होती है कि लोकेभ्यः मत्स्येन्द्र के घर कमल में सर्वत्र अम्कान कमल रहता है ।^१

इसके अतिरिक्त नेपाल सुबर्णधारा मुब (धरारा) क पास उपर्युक्त मत्स्येन्द्र पाण्डीट के शिवालय में क्लिता है—सम्मवत (कलि गत ३६००)

‘अतीतकृतिर्बर्षेषु गृन्पद्मद्वारसाप्रियु ।

नेपाले अवसति श्रीमानार्पाबिहोकिनेभ्यः ॥’

नेपाल में प्रचलित स्तोत्रों में भी प्रायः शिव और लोकेभ्यः दोनों नामों से इन्हें संवाचित किया जाता है जो निम्न स्तोत्र से स्पष्ट है—

लोकतो लोकनाथः शिव मुनिगिरिजा, धनुमन्पद्मनाथो
गौरीधुजा मरोजी, सबदगद्गयो रोगहा मित्यनाथः ।
अम्बोसम्तो मित्यासा, सुरमुनिमदितो भास्कर पद्मपाणिः
कुर्वाणार्पाबिहोकेभ्य इति विदितं सिद्धनाथः धिया वः ॥

उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि मत्स्येन्द्रनाथ कम से कम नेपाल में अबहोकिनेभ्य और शिव दोनों क अवतार रूप में प्रचलित थे ।

नेपाल की एक सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध लोकोक्ति क अनुसार महाराजा मरेन्द्रदेव क शासन काल में किसी कारण दुपित हो कर गोरक्षनाथ ने बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं होने दी । उनको प्रसन्न करने के निमित्त कामाख्या पीठ से मत्स्येन्द्रनाथ को बुलाया गया । उनके आने पर गोरक्षनाथ क अनुकूल हो जाने से पर्याप्त वृष्टि हुई । तभी से नेपाल में इनकी स्मृति में रथ यात्रा और महाछात्रोत्सव का प्रतिवर्ष विराट आयोजन हुआ करता है ।

परवर्ती रचना ‘मत्स्येन्द्र पद्मनाथम्’ में पृथतः उपास्यदेव क रूप में इनका वर्णन किया गया है । प्रथम श्लोक में प्रयुक्त ‘ममोऽम्बवाहिजाघाय लोकनाथाय’ से शिव और अबहोकिनेभ्य दोनों से स्वरूपित ज्ञान का भान होता है । क

१. काल स्पष्ट नहीं दिया गया है । २ मत्स्येन्द्र पद्मनाथम् अथ पृ० १०० ।

३ मत्स्येन्द्र पद्मनाथम् अथ पृ० ३० ।

४ अ० ४ अ० १०२ श्लोक १, ५ अ० १०३ १२ ।

अपनी ही विपत्तियों को मञ्जन करने वाले सज्जनों के अनुरजन करने वाले तथा रक्त-घातुओं को नाशक हैं।^१ ये ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं।^२ बसंत ऋतु में। रथ-यात्रा करते हैं।^३ इनका पौराणिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा गया है कि इन्होंने ही ज्ञान योग से श्रीकृष्ण को हृत्पाय किया था।^४ ये मर्कों के कस्पाण के लिये अवतरित हुआ करते हैं।^५ एक दूसरे श्लोक में इन्हें हनुमान से भी सम्बद्ध किया गया है।^६ य हीला से जगत का भार धारण करते हैं।^७ य सर्व महान्नार से निघ्नत असूतपान करने वाले लोकनाथ हैं।^८ आश्विन रूप होने के कारण इनके रथ में एक ही चक्र है।^९ ब वर्ष में एक बार लोक लीला के लिये तथा शरीर धारण करते हैं।^{१०}

उपर्युक्त उद्धरणों से यह निष्कर्ष निश्चलता है कि नपाली क्षेत्र में मास्वग्र नाथ बाहर से आये। उनके आने के पश्चात् बुद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप राज एक शोक सम्मान उन्हें प्राप्त हुए। उनके आने के एक व्यव्योक्तिमेपर बहों के लोकप्रिय ब्रह्मा थे जिनके अवतार-रूप में मास्वग्रनाथ विख्यात हुये। संभवतः बौद्धों में रथ-यात्रा जन्म उत्सवों का प्रचार था क्योंकि बुद्ध के परिवर्तित रूप पुरी जगन्नाथ के उत्सव में भी रथयात्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।^{११}

शिव के अवतार

नेपाळ आन के पूर्व मास्वग्रनाथ का विशेष सम्बन्ध शिव से सम्बद्ध शान्ता विशय कौलमत से प्रतीत होता है। शिव से ही सम्बद्ध नाथ सम्प्रदाय में भी मास्वग्रनाथ का स्थान आदि नाथ शिव के पश्चात् आता है। ये गोरक्ष नाथ के मानव गुरु तथा नाथ सम्प्रदाय के सर्व प्रथम आचार्य के रूप में मान्य हैं।^{१२} कहा जाता है कि कार्तिक्य मे 'कुलमग शास्त्र' को उठा कर मनुष्य में फेंक दिया था उसी का उद्धार करने के लिये स्वयं शैरव अर्थात् शिव ने मास्व रूप धारण कर उस शास्त्र के अणुक मास्व को मार कर उसका उद्धार किया। जिससे उनका नाम 'मास्वभक्त' पड़ गया।^{१३} इस अनुसृति से शिव के

१ म० म० घ० पृ० २ श्लोक २। २ म० प० घ० पृ० ३ श्लोक ४।

३ म० प० घ० पृ० ३१ श्लोक ५९।

४ म० प० घ० पृ० ५ श्लोक ८ 'हृत्पायीहो गोबन्धो येन शर्का।'

५ म० प० घ० पृ० ३ श्लोक १०। ६ म० प० घ० पृ० २५ श्लोक २७।

७ वही ६ २६ श्लोक ३०। ८ म० प० घ० पृ० १९।

९ वही ६ ३२ श्लोक ३२। १० म० प० घ० पृ० ३० श्लोक ५७।

११ शक्तिनाथ की प्रवेश पृ० ३२-३३ में मनुनाथ सरकार ने 'वात मन्त्र' नाम की कविता के आधार पर जगन्नाथ और बुद्ध का संबंध सिद्ध किया है।

१२ नाथ सम्प्रदाय पृ० ३८।

१३ नाथ सम्प्रदाय पृ० ३६।

मत्स्येन्द्र रूप में अवतरित होने का अनुमान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'बुद्ध पुराण' में भी महादेव के मत्स्येन्द्र रूप धारण करने का उल्लेख मिलता है।^१ मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित कही जाने वाली रचना श्रेष्ठ ज्ञान निर्भय में भैरव कहते हैं कि 'मैं ही प्रेता, द्वापर और कलियुग में क्रमशः महाकौल सिद्धकौल और मत्स्योदर के रूप में अवतरित होता हूँ'।^२ इसी आधार पर डा० बागची ने मत्स्येन्द्रनाथ के शिवावतार रूप का बीरे बीरे विकसित होना माना है^३ जो पुष्किलगत प्रतीत होता है। निष्कर्षतः मत्स्येन्द्रनाथ बौद्ध अवलोकितेश्वर और भैरव-सिख दोनों के अवतार विभिन्न स्थलों पर माने गये हैं। नेपाल जाने से पूर्व कौल मत से सम्बद्ध होने के कारण सर्वप्रथम इन्हें सिख का अवतार माना जा सकता है। कालान्तर में नेपाल में इन्हें लोकप्रिय बौद्ध देवता अवलोकितेश्वर का अवतार माना गया। इसके पश्चात् य परवर्तीकाल में सिख और अवलोकितेश्वर दोनों के समन्वित रूप में भी गृहीत हुये जैसा कि 'मत्स्येन्द्रपद सतकम्' से स्पष्ट है।

गोरक्षनाथ

अवतार, उपास्य और अवतारी

नाथ सम्प्रदाय के बी जायों में गोरक्षनाथ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गोरक्षनाथ नाथ योगियों की परम्परा में शिख के अवतार मान जाते हैं। इस सम्प्रदाय में इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के अवतार और उपास्य रूप का उल्लेख हो चुका है। परन्तु गोरक्षनाथ के सद्यः मत्स्येन्द्रनाथ के विभिन्न अवतार ग्रहण करने का कहीं उल्लेख न होने के कारण प्रायः इनके अवतारी रूप का अभाव विदित होता है। गोरक्षपंथी योगियों में यह धारणा अधिक स्पष्ट है कि गोरक्षनाथ ही निम्न-निम्न जायों के रूप में समय-समय पर अवतरित होते हैं।^४ पर एक विधिप्रता यह देखने में जाती है कि पूर मध्य काल में बौद्धों से आच्छन्न गोरक्षों की भूमि नेपाल में गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तो अवलोकितेश्वर के अवतार हो गये परन्तु वहाँ सर्वाधिक पूज्य पूर मध्य गोरक्षनाथ शिवावतार के रूप में ही पूर जाते हैं। अतः इनका शिवावतार रूप बौद्ध वातावरण में भी अवतार प्रतीत होता है। या यह भी सम्भव है कि मत्स्येन्द्रनाथ के काल में जो बौद्ध प्रभाव विद्यमान था वह

१ नाथ सम्प्रदाय पृ० ४८।

२ कौल धाम निर्भव पृ० ११, १२, ४८।

३ कौल वा निर्भव रचनापत्र ११ वीं कड़ी पृ० ६०, १६।

४ नाथ सम्प्रदाय पृ० १५।

गोरक्षनाथ क प्रसिद्ध होते होते कुछ गीण हो गया हो । इतना अवश्य है कि एक गोरक्षनाथ ब्रह्मपानी सिद्धों में गोरक्षनाथ नाम से गृहीत शैलों में पूज्य हैं, और दूसरी ओर गोरक्षपथी भी भावों के माय ८४ सिद्धों की पूजा करते हैं ।^१ फिर भी नेपाल में गोरक्षनाथ ब्रह्मलोकिनेश्वर की अवस्था पशुपति नाथ जी के अवतार हैं^२ तथा नेपाल के बाहर श्रीनगर, गढ़वाल आदि क्षेत्रों में वे शिव क अवतार रूप में ही मान्य हैं ।^३ शिव सम्प्रदाय से सम्बद्ध छाकुलीय सम्प्रदाय की राबल चाला में भी गोरक्षनाथ छाकुलीय के अवतार कहे जाते हैं ।^४ स्वयं छाकुलीय पुराणों क अनुसार शिव के प्रथम अवतार हैं ।

प्रयोजन

गोरक्षनाथ के योगी हान के कारण योग-साधना एवं इसका प्रचार उनके अवतार का प्रयोजन माना गया । 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में शिवजी कहते हैं कि 'मैं ही गोरक्षनाथ हूँ । लोगों के कल्याण एवं योग के प्रचार क विभिन्न गोरक्ष रूप में स्वयं अवतरित होता हूँ ।'^५ उनका यह अवतार सत्यपुत्र, ब्रता, द्वापर और कटि, चारों युगों, में होता है ।^६ 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में 'गोरक्ष' शब्द की व्याख्या से भी अवतारोपित प्रयोजनों का पता चलता है । इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि प्रकृति और निष्कृति मनी धर्मों क सस्थापक, सज्जनों, माधुर्धों गो, ब्राह्मण प्रकृति की रक्षा करने वाले, आत्मस्वल्प का बोध करने वाले तथा सप्तार सागर से मुक्त कर मोक्ष देने वाले को गोरक्ष कहते हैं ।^७

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि गोरक्षनाथ योग मार्ग क आवि प्रकृतक शिव क अवतार कहे जाते थे । इनक इस अवतारीकरण से अवतारवाद की एक विशेष प्रकृति की पुष्टि होती है । सामान्य रूप से पूर्व मध्यकाळीन सम्प्रदायों की यह विशेषता रही है कि अवतारवादी या अवतारविरोधी मनी सम्प्रदायों क प्रवर्तक अपने सम्प्रदायों में अवतार रूप में मान्य होते थे । उनके इस आविर्भाव का प्रयोजन स्वयं उनका साम्प्रदायिक कार्य ही होता

१ त्रिपुल पृ० १३६ ।

२ हिन्दुत्व पृ० ७०७ ।

३ त्रिपुल पृ० ७२ ।

४ नाथ सम्प्रदाय पृ० १५५-१६० ।

५. ब्रह्मेवासि धेरको मयूँ त्रिचोवत ।

योगमार्गप्रचाराय नवा कर्मिर्दं वृत्तम् ॥ ति० प० पूर्वनाथ जी० पृ० १३ ।

६ चारों युगों में कीर्तीराज इ ४२-४३, में केवलक ने 'शिव पुराण' तथा 'कल्पद्रुम तंत्र' के कट्टरपक्ष के आधार पर लिख करके का प्रकृत किया है ।

७ स्थापितता च को वर्माद् सम्प्रदानमिच्छति ।

स्थापितस्वयं बोधेन गोरक्षोऽप्यौ विगच्छते त ति० प० पूर्वनाथ इ १५ ।

था। इस चारुमा के अनुसार गोरक्षनाथ के भी अवतार माने जाने।
अवतार-संयोजन योग मार्ग का प्रवर्तन करना रहा है।

उपास्य एवं अवतारी

अवतारवाद के उत्तरोत्तर विकास की एक परम्परा, साहित्य और
दानों के समन्वित रूप में इस प्रकार देखने में आती है कि यदि
महापुरुष किसी देवता का अवतार माना गया तो सम्प्रदाय में गृहीत होत
ही वह प्रायः इष्टगुण या उपास्य रूप में प्रचलित हो जाता है। कथत अव
वद अवतारमात्र होने के बड़े स्वयं ब्रह्मी या अवतारी हो जाता है। तब
सम्प्रदायों में उसके प्रति रचित सर्वोत्कृष्टवादी स्तोत्रों में उसके विरल रूप,
सर्वोत्कृष्टवादी रूप तथा निर्गुण और सगुण रूपों के वर्णन किये जाते हैं।

गोरक्षनाथ का अवतारवादी विकास भी इसी परम्परा में दृष्टिगत होता
है। काश्मिर में गोरक्षनाथ जब कबल अवतार ही नहीं रहे अपितु पुनःपुन
में अवतार धारण करने वाले अवतारी हो गये। और भी नाथ भी गोरक्षनाथ
के ही अवतार माने गए।^१ विष्णु के सहस्र उर्ध्व भी समग्र ऐश्वर्य धर्म, बल,
श्री वैराग्य और मातृपदगुणों से युक्त माना गया।^२ विचित्रता ठा पर है
कि सिद्धों ने पदगुणों का पालन करते हुए कहा है—'क ते पद् पदार्था बभौ ।
पुना उत्तर वेते ई—'पद् पदार्था एव सम्मिक्त स मगबाम्' और अंत में प्रथेक
गुण के कालन के पश्चात् सिद्ध किया है कि पदगुणों से युक्त तो नाथ है।^३

गोरक्षनाथ उपास्य रूपों में प्रकृत विष्णु, और शिव से भी ऊपर उठ
गये तथा ये तीनों त्रिवैव इनके प्रथम सिष्य के रूप में विख्यात हुए।^४ इस
सम्प्रदाय में पद भी माना जाता है कि गोरक्षनाथ इस पृथ्वी पर सर्वैव
विद्यमान रहते हैं। श्री विष्णु के अनुसार ये सत्त्वगुण में वेसावर में, शैला में

१. गोरक्षनाथ ऐश्वर्य मैट्रिकल मिरदीसिक्म पृ. २ में डा० मोहन सिंह ने 'श्रीव शिव
निर्घय और 'शिव सिद्धान्त संमह' के आधार पर कहा है—'एकारविह्व इ वेम ही
नारत मापूव आरदी रवकारनेजव आक वीरक्षनाथ लींविह्व फार शिवा शिववेक'।
२. चारों गुणों में शोषीताव पृ. १९ में अर्जुन निहल इमोद में शान के स्थाप में शेष
को ग्रहण किया गया है। 'देवर्षेय सप्रयत्न वर्मत्वं बलत' शिव। वैराग्यस्य
मोहत्वं वर्णा मग हवीर्गमा' प्रबोध हुआ है। सुभी कल्याणी मथिक के पत्र
सम्प्रदायैत शनिहास रचन को साधन मनाही' पृ० २५४ में इस सम्प्रदाय में
गृहीत ३ गुणों में शोष के स्थाप में शिव की माना है सि० सि० ल० ४० १९ में

गोरखपुर में, हापर में हरमुञ्ज में तथा कच्छियुग में गोरखमही (काटियाबाड़) में निवास करते हैं।^१

‘गोरख सिद्धांत संग्रह’ में संकलित, राजगुह्य श्रीकृष्ण कृत ‘गोरखनाथ स्तात्र’ में गोरखनाथ का चरमोत्कर्ष उचित होता है। उसमें यहाँ तक कहा गया है कि श्वय श्रीकृष्ण ने गोरखनाथ क इस स्तोत्र का निर्माण किया।^२ उस स्तुति में इन्हें तीनों लोकों का लक्ष, ब्रह्म, श्व आदि का शिरोगम्य कहा गया है।^३ उक्त पुस्तक में संगृहीत ‘कल्पद्रुम तथा’ क ‘गोरख सहस्रनाम’ नाम क स्तोत्र में पांचरात्र उपास्य के सहस्र गोरखनाथ को निर्गुण और भगुण पुत्र मह के रूपों और उपाधियों से अभिहित किया गया है।^४

‘गोरखवानी’ में गोरखनाथ क उक्त रूपों का वर्णन नहीं होता। अधिक म अधिक यहाँ कबल गोरख और विष्णु में समर्प दिखाया गया है, जिसमें लक्ष्मणगंगा सिंगी यद्वाकर गोरखनाथ अपनी जीत की बार इंगित करते हैं।

अतः अवतारवादी सम्प्रदायों से प्रयुक्त होने पर भी गोरखनाथ क साम्प्रदायिक रूप में उन सभी अवतारवादी प्रवृत्तियों का समावेश वीक पड़ता है आ अवतारवाद की अपनी रैन है। गोरखनाथ का यह विकास भी प्रारम्भ में अवतार रूप में तथा कालान्तर में उपास्य पत्र अवतारी रूप में होता रहा है। इनक अवतार का प्रयोजन भी अपने सम्प्रदाय के अनुकूल योग मार्ग का प्रदर्शन करना रहा है।

नौ नाथ

नौ नाथ, नाथ सम्प्रदाय के मूळ प्रवर्तकों में प्रसिद्ध हैं, किन्तु आज तक इनकी किसी सर्वसम्मत परम्परा का पता नहीं चल सका है। नाथ साहित्य क अतिरिक्त बीड़ और जैन साहित्य से भी इनक सम्बन्ध उल्लिखित होत हैं। ‘योगिसम्प्रदायाविकृति’ में कहा गया है कि महादेव की न नारद की को नौ नारायणों क पाम भजा। ये नौ नारायण (१) कवि, (२) करमजन, (३) अतरिच, (४) मजुद्ध, (५) अविहोत्र, (६) पिप्पलायन (७) चमस (८) हरि

१. त्रिपु १२८।

२. श्रीधरकृत्येव त्वर्ष इत्येव निर्मितम्। गोरख सिद्धान्त संग्रह ३० ४२।

३. त्रैलोक्यं निर्मितं जैनं श्रीगोरखं नमोस्तु ते।

नन्दर्गा क परं ब्रह्म उदादीदां शिरोमणिः प्र गोरख सिद्धान्त संग्रह ३० ४२।

४. निर्द्वन्द्वं विराट्कर्त्तृनिर्दिष्टं निरात्मकम्। त्रिपुटिंश्च त्रिबीचींश्च त्रिदि विष्णुमहेश्वरम्॥

विच कर्त्तं सत्त्वानं गोरखनाथं देवतम् प्र गोरख सिद्धान्त संग्रह ३ ४३।

अवतार-परम्परा है, तो उसमें गोरक्षनाथ प्रकृति नौ पाव गृहीत हुए हैं वा नहीं।

शिव और उनके अवतार

भारतीय देवतावाद में विष्णु के पश्चात् या भगवत् शिव का स्थान जाता है। विष्णु और वैष्णवों के सहा सिव और शैव भी प्राचीन पीरागिक साहित्य में व्याप्त हैं। ऋ० स० में ऋ का भयंकर रूप इष्टिगत होता है। जहाँ वे पशुवासी पशु चम पद्वने बाळ नीळकूळ प्रमुर्धारी क रूप में बर्णित हुए हैं।^१ इसका विकास 'यतुर्बेद' १६वें अध्याय क 'घातक्रीव' में कर्णित होता है। किन्तु 'यतुर्बेद' में ही, पुराणों तथा मध्यकालीन साहित्य में प्रकृति नाम शिव ऋगु, घंकर आदि मिळने क्वाते हैं।^२ इनसे किंग पूजा क रूप में सम्बन्धित सिद्धदेव को कर्तुर्हर मे आदि नामों मे उत्पन्न माना है तथा इनके मतानुसार वे प्रकृति हिन्दू धर्म में वृसरी घृती के उगमग गृहीत हुए हैं।^३ भारतीय इतिहासकारों के अनुसार शिव और उमा इषिदेवता हैं।^४ जो कालांतर में आर्यदेवों में माने गये। परिवर्धित 'रामायण' और 'महाभारत' में भी शिव का उल्लेख हुआ है। 'रामायण' में गंगा और उमा से शिव का मन्थन स्थापित किया गया है।^५ 'महाभारत' में कतिपय प्रासंगिक उल्लेखों क अतिरिक्त भर्तृन की परीचा केने के किंय शिव किरात का रूप धारण करते हैं।^६ इसक अतिरिक्त 'महाभारत' क पाठों में चम काम और क्रोध के साथ जन्मत्पान्ना में महादेव का भी अंश पतकाया गया है।^७

इसमे स्पष्ट है कि शिव प्राचीन काल से ही उपास्य क रूप में भारतीय वाङ्मय में प्रकृति रहे हैं। य अवसर क अनुरूप रूप परिवर्धित करते हुए दिखाई पड़ते हैं तथा ऐतिहासिक पुरुषों में इनके अंशविर्भाव की भी कल्पना होती रही है।

उक्त रूपों क अतिरिक्त शिव क अवतारवादी रूप का विकास पूरातः पीरागिक है। क्योंकि 'महाभारत' में शिव के किन अंशविर्भावों की चर्चा हुई है, व पुराणों मे अधिक प्राचीन नहीं है।

सर्वप्रथम प्रायः शबमत प्रधान 'शिव', 'वायु' 'किंग' 'कूर्म' आदि पुराणों में शिव क अवतारों का उल्लेख हुआ है। 'वायु पुराण' में शिव के अवतारों की

१. दो श्वोरपुस्तक आळ आर्कैरिक पेंसिवन पृ० १७२। २. वसु० दे० १६ ४२।

३. कर्तुर्हर, आउटकारन आळ रेकिजस लिब्रेरर आळ इंडिया, पृ १०२ वारा ११०।

४. दो वैरिक पत्र पृ० १६२।

५. वा० रा १ ३५-३६।

६. महा० १, ३२, १-२।

७. महा १, ६७ ७२-७३।

सूची मिलती है। फ़र्क़हर के अनुसार बही सूची 'छिन्ना' और 'कूर्म' पुराण में भी देखने में जाती है।^१ यों तो सूची में प्रचलित अनेक सम्प्रदाय शिव के कोई अवतार ही नहीं मानते।^२ कबल पाशुपत मत में शिव के अनेक अवतार मान्य हैं। इस मत के सस्थापक काकुलीश या नकुलीश, 'वायु पुराण', अ० २३ और 'छिन्ना पुराण' अ० २४ के अनुसार एक ओर तो वासुदेव के अवतार बतलाये गये हैं^३ और दूसरी ओर एकद्विगात्री के मन्दिर के मिष्ट नाथों के मन्दिर में विद्यमान वि० सं० १०२८ के एक सिलालेख तथा वि० सं० १३३१ (१२३४ ई०) के लगभग की 'सिद्ध प्रशस्ति' के अनुसार काकुलीश^४ शिव के अवतार मान गये हैं।^५

इस प्रकार सैब सम्प्रदायों के उद्भव पृथ विकास में शिव के अवतारवादी रूपों का दखन होता है। विशेषकर काकुलीश सम्प्रदाय के अनुयायी विष्णु के सप्त सिद्ध सिद्ध युगों में कुप शिव के १८ या २८ अवतार मानते हैं।^६ अमिच्छेकों के अतिरिक्त आचार्य हरिभद्र, माण्य और राजसेनर सुरि की कृतियों में भी शिव के अवतारों का पता चलता है। हरिभद्रसुरि और राजसेनर दोनों ने शिव के १८ अवतारों का और विशुद्ध मुनि ने इनके २८ अवतारों का उल्लेख किया है।^७ 'सिद्ध प्रशस्ति' में इनमें से काकुलीश, कौंसिक, गार्गेय, कौरव और मैत्रेय इन पाँच के नाम मिलते हैं। अन्य १३ अवतारों में दक्षान, पारगार्गेय, कपिलाद, मनुष्यक, कुंसिक, अग्नि, पिंगल, पुष्पक, बुधचार्य, आसि, सतान, रासिकर और विद्यलुब्ध ये नाम मिलते हैं। ये २८ अवतारों के उल्लेख कर्त्ता विशुद्ध मुनि द्वारा उद्धित अवतारों से सिद्ध हैं।^८

उक्त पत्रों से शिव की अवतार परम्पराओं का तो स्पष्टीकरण होता है, परन्तु यह पता नहीं चलता कि नाथों या योगियों से इनका कहीं तक अवतारवादी सम्बन्ध रहा है। इस दृष्टि से 'छिन्ना पुराण' में शिव को योगाचार्य सिद्ध किया गया है और कहा गया है कि कठि में शिवजी योग के प्रचार के

१ फ़र्क़हर पृ० ११२। २. अ० बी० टी० सी० बी० ३९, १९५३ पृ० २।

३ श्री ५ मंकारकर जी० ४, पृ० १३५।

४ अ० बी० टी० सी० बी० ३९ पृ० २।

बही काकुलीश का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है।

५ श्री० ५ मंकारकर जी० ४ पृ० १३५-१३६।

६ अ० बी० टी० सी० बी० ३९ पृ० १-२।

७ अ० बी० टी० सी० बी० ३९ पृ० १-२।

८ अ० बी० टी० सी० बी० ३९ पृ० १-२।

मिश्रित अनेक भवतार धारण करते हैं। उन्हीं के प्रसिद्ध चार सिद्धों और अनेक प्रसिद्धों द्वारा योग का प्रचार विपुल मात्रा में हुआ।^१ यहाँ हम के २८ भवतारों का भी वर्णन है, जिनके नाम हैं श्वेत सुतार मदन सुहोत्र, कश्यप, कर्क, जैगीपम्य, दधिवाहन शयममुनि उग्र अग्नि, सुवालक, वासि, वैश्वसीर्ष गोकर्ण्य, गुहावासी सिक्कडभूत अयमली अइहास, वास्क, छांगली, महाकाय शूली गुंडीधर सहिष्णु सोमसर्मा और लाकुलीश। ये २८ योगाचार वैश्वत सम्प्रदाय प्रथम कृति के कहे गये हैं।^२

परन्तु उक्त योगाचार्य सम्भवता किसी अन्य शैव सम्प्रदाय के विदित होते हैं। सम्भव है लाकुलीश सम्प्रदाय के हों। क्योंकि उक्त सूची में नाथ पंथी योगी गौरव, मत्स्यग्र आदि तथा भैरव या महाकाय आदि पौराणिक भवतारी रूपों का उल्लेख नहीं हुआ है। फिर भी उक्त सूची से शिव का योगियों के रूप में अवतीर्ण होने की परम्परा का पता मिलता है।

उक्त सूची के अतिरिक्त 'किंग पुरान' में क्रमशः ११ १२ १३ १४ और १५ अध्याय में सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष अघोर और दर्शन आदि शिव के भवतारों का वर्णन हुआ है। ये भी वीरशैव सम्प्रदाय में मान्य शिव के पंच ब्रह्म रूप हैं। क्योंकि इस सम्प्रदाय में ईशान तत्पुरुष अघोर वामदेव और सद्योजात का सम्बन्ध क्रमशः क्षेत्रज्ञ प्रकृति बुद्धि, अहंकार मनस्तम्भ आदि साक्ष्य उपादानों से स्थापित किया गया है।^३

इसके अतिरिक्त ब्रह्मदेव स्टीम प्रेस से प्रकाशित 'शिव पुरान' के 'शतकर्म संहिता' खंड के ७२ अध्यायों में शिव के अनेक भवतारों का वर्णन हुआ है। इसी खंड के ८ वें अध्याय में काळ भैरव एवं शिव के भवतार बतलाये गये हैं। इस प्रकार लाकुलीश और वीर शैवों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों में भी शिव के भवतारों का प्रचलन विदित होता है।

परन्तु यहाँ तक नाथ सम्प्रदाय के सम्बन्ध का प्रश्न है या० इसारी प्रसाद त्रिबेदी के अनुसार इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध लाकुलीश सम्प्रदाय से उत्पन्न राजसूत्रान्ता से माना गया है।^४ गौरगनाथ लाकुलीश के भवतार भी कहे जाते हैं।^५ परन्तु नाथ साहित्य में इस सम्बन्ध का विंग प्रचार नहीं दीया पड़ता है। साधारणतः भारतीय सम्प्रदायों में दृष्टियों प्रवर्तकों और आदि

१ किंग पुरान अध्याय ७।

२ किंग पुरान अध्याय ७ अथम और मुनि तथा लांगली और लाकुलीश चारों में वैश्वत शैव मान है अथवा इतनी संख्या २८ के स्थान में ३ हो जाती है।

३ रिन्दुल पृ २१०।

४ नाथ सम्प्रदाय पृ २५९।

५ नाथ सम्प्रदाय पृ २६०।

पुरुषों ने चलने वाली परम्पराओं का अधिक प्रचलन है। नाथसम्प्रदाय में शिव भी इष्ट्वरुह के रूप में आदि नाथ से सम्बद्ध होने पर आदि गुरु के रूप में प्रसिद्ध हैं। समस्त इसी आधार पर शिव की नाथों से सम्बन्धित अवतार-परम्परा का भी प्रचार हुआ।

'श्रीकृष्ण ज्ञान निगम' में भैरव अपने उपास्य एवं अवतारी रूप का परिचय करते हुए स्वयं अपने को परमताम्र, भैरव, सदाशिव, ईश, श्रीकृष्ण और रुद्र कहते हैं।^१ वे ही श्रीधर, श्रीधर अमृत, विश्व सहायक,^२ जटा श्रीर पाकक हैं।^३ इनके विश्वपात्र से अक्षिप्त विश्व उत्पन्न होता है।^४ वे अपनी इच्छापूर्वक श्वेत पात्र से श्रद्धा (विष्णु के लीलावतार के सहाय) का आपोमन करते हैं और समाप्त करते हैं।^५

उनके कथनानुसार उनके शिव भैरव के साथ-साथ शक्ति का भी अवतार होता है।^६ उन्होंने ही मत्स्य रूप धारण कर 'कौलागम सत्त्व' का उद्धार किया था।^७ वे चारों दुर्गों में स्वयं महाकौल के रूप में तथा महाकौल से सिद्धकौल और सिद्धकौल से महाहर (मत्स्योद्धार) के रूप में अवतरित होते हैं।^८

'गोरक्ष मिथ्यान्त संग्रह' में शिव को गुरु स्वयं कह कर ममस्कार किया गया है और कहा गया है कि शिवा के प्रकाश के विभिन्न उसी ने नाना रूप धारण किया। साथ ही यह भी कहा गया है कि नाथ यों तो भी रूप हैं परन्तु वास्तव में व्यापका रूप एक ही है।^९

'शिव महिमा' में इन्हें सच्चिदानन्द स्वस्व कहा गया है।^{१०} 'शो सि० स०' के मत से ये शिव विष्णु के सहाय पाकन का कार्य करते हैं।^{११} शरीर से मुक्त होने पर व्याग्रा जीव कहा जाता है, यही मुक्त होकर शिव हो जाता है।^{१२}

१ श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ ५८ ५९, २६, २२।

२. श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ० ५८, २६ २२-२३।

३ श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ ५८, २६ २४। ४ श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ ५८ २६, २५।

५. श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ ५८ २६, २६

श्वेत्कृष्ण श्रीऋषोऽहं च कृणोमि विद्मतेमि च।

श्वेत्कृष्णस्वर्ग ईति श्वेत्कृष्णैः शिवैः

६ बही पृ० ५८-५९, २६ २२। ७ बही पृ० ५९, २६ २५-२६।

८ बही पृ ६१ २६ ४७-४८। ९. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ सं० पृ० ६०।

१० शिव महिमा पृ ५ अ० १, ५४।

११ 'मत्स्योद्धार' मते शक्तिः सुक्ति करोति शिवः पत्स्यन् करोति शक्तिः संहरति नाथो सुक्तिः श्रद्धाति' गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह कविराम सं० पृ० ७०।

१२ श्रीकृष्ण ज्ञान निगम पृ २५, ६ ७।

शिव के विग्रह रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका रसात्मक विग्रह स्वतंत्र एवं मापाच्छिन्न से युक्त है। वे मूर्तों के वर्गीन हैं तथा परम मनोहर रूप धारण करते जाके हैं। इस प्रकार शिव भी इस युग में विष्णु एवं उनके अवतारों के समान अवतारी और उपास्य रूप में गृहीत हुए हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से इतना तो पता चलता है कि विष्णु के सरस शिव का भी उनसे सम्बन्ध सम्प्रदायों में विविध अवतार-परम्पराओं का प्रसार हुआ। उन अवतार-परम्पराओं में शिव का अवतार-रूप भी गोरक्षनाथ के सरस योग-मार्ग का प्रवर्तन करना ही रहा है। परन्तु नाथ पथ या भी नार्थों में प्रसिद्ध किसी भी नाथ का नाम उन परम्पराओं में नहीं मिलता है। केवल जनश्रुतियों के आधार पर काङ्गुलीस का सम्बन्ध नाथ पथ की रावक शाखा से विदित होता है। इससे स्पष्ट है कि नाथ पथ का अवतारवादी सम्बन्ध शिव की पौराणिक अवतार-परम्परा से नहीं था। नाथपथ में तत्कालीन अवतारवादी प्रवृत्तियों के प्रभावानुरूप स्वतंत्र रूप से अवतारवादी तत्त्वों का समावेश हुआ तथा योग साधना सम्बन्धी साम्य होने के कारण नाथपथी अवतार-परम्परा में शिव भी समाविष्ट किये गये।

शक्ति में भवतारत्व

नाथ साहित्य में परमशिव या शुद्ध शिव को सृष्टि से पूर्व प्रक्यावस्था में कर्तृत्व शक्ति से परे कहा गया है।^१ सृष्टि की इच्छा होने पर वह अपने को शक्ति में युक्त करता है। डा० द्विवेदी ने परम शिव को ही इच्छा युक्त होने के कारण सगुण शिव कहा है तथा उनकी सृष्टि करने की शक्ति ही इच्छा शक्ति है।^२ शिव साहिता' के अनुसार पुरुष ने स्वयं सृष्टि एवं प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा की। उसकी इच्छा को यहाँ भविष्या कहा गया है।^३ अतएव शुद्ध शक्त भविष्या से युक्त होने पर आकाश रूप में भाविर्भूत होता है जिससे क्रमशः वायु, अग्नि आदि पंचतत्त्व प्रकट होते हैं और सृष्टि का विकास होता है।^४

इसी स नाथ सम्प्रदाय में विद्वानों ने शैव और शाक्त दोनों तत्त्वों का

१ पौरुष शिवान्त संग्रह पूर्णनाथ सं० ५ १ ।

२. शिव शिवान्त शक्ति ५ ३ तथा नाथ सम्प्रदाय ५० १ ३ में डा द्विवेदी ने शिव शिवान्त संग्रह १ ४ का भी इससे मिलता जुलता उल्लेख करवत किया है।

३ नाथ सम्प्रदाय ५ १ ३ ।

४ शिव साहिता ५० २२, १ ७२-७५ ।

समावेदा माना है। गोरक्षनाथ ने यदि इस मत को शैव तन्त्रों से मुक्त किया,^१ तो मत्स्यग्रन्थनाथ ने शाक्त तन्त्रों से।^२

'शिव संहिता' में विद्येय श्रीर आबरण दो प्रकार की शक्तियों से युक्त माया को त्रिगुणात्मिका कहा गया है।^३ यही माया आबरण शक्ति द्वारा मय्य को द्विपाथ रलती है और विद्येय शक्ति द्वारा ब्रह्म को विद्य रूप में प्रगट करती है।^४ मायावत में माम्य मझा, विष्णु और महादेव आदि गुणावतारों के इसी त्रिगुणात्मिका माया से संयुक्त होने के कारण 'गोरक्षनाथी' में उन्हें माया द्वारा कहा गया बताया गया है।^५

इस माया में जब तमोगुण का आधिपत्य होता है, तो वह भुर्गा रूप में आविर्भूत होती है और ईश्वर महादेव द्वारा धासित होती है।^६ सत्त्वगुण के आधिपत्य होने पर यही लक्ष्मी रूप में प्रकट होती है और विष्णु रूप चैतन्य द्वारा धासित होती है।^७ रसोगुण के आधिपत्य से सरस्वती रूप में प्रकट होती है तथा ब्रह्मा द्वारा धासित होती है।^८

यहाँ माया और शिव के समावेस से एक प्रकार के गुणात्मक अवतारवाद का ही परिचय दिया गया है।

कील साहित्य में शिव को अकूठ और शक्ति को कुल कहा गया है।^९ तथा 'सिद्ध सिद्धान्त परमि' में शिव और शक्ति का स्फुरण पांच रूपों में माना गया है। ककूठ पाँचों शिव पाँच प्रकार की शक्तियों से युक्त रहते हैं। अपर शिव मिजा शक्ति से, परम शिव परा शक्ति से, शून्य अपरा शक्ति से, विरज्जम सूक्ष्मा शक्ति से और परमात्म कुम्बकिनी शक्ति से युक्त रहते हैं। शिव के साथ इन पाँचों शक्तियों का भी आविर्भाव माना गया है।^{१०}

यों तो इन पाँचों शक्तियों के पांच कार्य बतकाय गय हैं। परन्तु इनमें मिजा शक्ति का सम्बन्ध उस अपरशिव की इच्छा या मकश्य से प्रतीय होता

१. पारम संग्र साहित्य बंध, १९५५ बंध ८ पृ० १२।

२. नाथ सम्प्रदाय पृ २१।

३. शिव संहिता पृ० १८ १ ८२।

४. शिव संहिता पृ १४, १ ८३।

५. गोरक्षनाथी पृ 'माम्ना कहे में शक्तिवा बधिमा मझा विज महादेव शक्तिवा।'

६. शिव संहिता पृ० १४ १ ८४।

७. शिव संहिता पृ० १४ १, ८५।

८. शिव संहिता पृ० १४, १, ८६।

९. अकूठ शिव शक्तिका कुल शक्ति प्रकीर्तित्र। कील शान निर्नव भूमिका पृ० २०।

१०. नाथ सम्प्रदाय पृ० १ ४ और सिद्ध सिद्धान्त परमि पूर्ववाक सं०, पृ० ३३-३४।

है, 'ओ गीता' और 'भागवत' में प्रतिपादित ईश्वर के सद्यः पुरु वार विभू रूप में और फिर मर्त्यों पर अनुग्रह करने के द्विप अवतार रूप में प्रकट हुआ करता है। कहा जाता है कि सक्ति समस्त लोक के कल्याणार्थ इष्ट्या मात्र धर्म को धारण करने वाली नाय की पितृस्वरूपा निजा सक्ति है। इस निजा सक्ति का धर्म इष्ट्या है। उसी को परमेश्वर का सत्य सङ्कल्प भी कहा जा सकता है। इसका दूसरा नाम विग्रहानुग्रह सक्ति भी है। प्राणियों का भोग प्रदान करने का कार्य निग्रह सक्ति करती है और मोक्ष देने का कार्य अनुग्रह सक्ति का है।^१ अतः निग्रह और अनुग्रह से युक्त होने के नाते इस सक्ति के निग्रह रूप में सृष्टि कार्य और अनुग्रह रूप में अवतार कार्य भी परिष्कृत होता है।

वैष्णव अवतारों से सम्बन्ध

कतिपय साक्ष्य तर्कों में प्रचलित विभिन्न सक्तियों का विष्णु के अवतारों से अनोखा सामन्वय स्थापित किया गया है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में 'सक्ति संगम तंत्र' भाट्टों परट्ट से उद्धृत अक्ष में कहा गया है कि किमी समय जाया मुन्दरी सक्ति देवी ने लोगों को मोहने के द्विप अव्यन्त मुन्दर पुरुष रूप धारण किया था।^२ अर्थात् सक्ति श्री काली रूप पार्वती रामावतार में तारा रूप धारण करती है।^३ बाममार्गियों में प्रचलित है कि शिव की सक्ति ब्रह्मा ने इस पञ्च के पूर्व मती रूप में शिव के सामने अपने का ह्म प्रसिद्ध रूपों में प्रकट किया था। य ही इस रूप काली बगला द्विभ्रमरता भुवनधरी मार्तण्डी, घोडसी घूमावती, त्रिपुरमुदगी, तारा और मैरवी इस महाविद्याओं के रूप में

१. सिद्ध सिद्धान्त पञ्चति पृ. ११-१७। प्रबोधरीच ५।

२. गीता में ५, ८ तथा गी. ४. १ और गी. ७, १५ की संकर ने गी. ७, १५ की व्याख्या में योगनाथ-समाहृत रूप की मर्त्यों के निमित्त माना है जो सर्वत्र सक्त्या प्रकाश भङ्गु हनि अभिप्राय से स्व है।

३. भा. २. ५, २-२ भावा हात प्रबुधुन आदि रूप को छानना अवतारों का शीघ्र कहा गया है। जो भा. १. ५, १८ के अनुसार अथ हीने वाक्य रूप मायिक या त्रिगुणाच्छ है।

४. सिद्ध सिद्धान्त पञ्चति पूर्वभाष सं. ५. १७।

५. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह कवितार सं. ५. ४७-४८ पूर्वभाष सं. ५०. १६१।

६. गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह कवितार सं. ५. ४७-४८।

कवयित्रीया श्रीकाली सेव तारासिध पार्वती।

कवयित्रीया श्रीगारा पुंरूपा रामविमला ॥

मान्य हैं।^१ 'मुद्रमाळा संग्रह' में इन्हीं महाविद्यालयों का विवरण सम्बन्ध वृत्तान्त तारों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यहाँ काकी कृष्ण-रूप में, तारिणी राम रूप में, चण्डामुखी कूर्म-रूप में, पूमावती मत्सररूप में, विजयमस्ता नृसिंह रूप में, नैरबी बराह-रूप में, सुग्दरी परशुराम रूप में, सुबनेश्वरी वामन-रूप में, कमला बुद्ध रूप में और भावंगी कल्कि रूप में अवतरित मानी^२ गयी हैं। इसके अतिरिक्त 'गोरख सिद्धान्त संग्रह' में राम शब्द के साथ शक्ति और शिव का अनोखा सामन्तस्य स्थापित किया गया है। इस श्लोक के अनुसार 'रा शक्ति है और 'म शिव है। इस प्रकार शक्तिमहित शिवरूप राम ही मन्त्र कहा जाता है।^३ 'गोरख सिद्धान्त संग्रह' में ही पुनः 'पद्म पुराण' पाठाल खंड के अनुसार शक्ति ही क्लिप्ता देवी या राधा देवी कही गई हैं, जो पुरुष रूप में कृष्णस्वरूप धारण करती हैं।^४

इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय में सच्चिद्विद्य शक्तों में शक्ति के अवतारत्व के साथ-साथ तत्कालीन युग में प्रचलित वैष्णव अवतारों के साथ विविध समन्वय उचित होता है।

इन कथनों के अनुसार शक्ति का अवतारपरक सम्बन्ध दो प्रकार का उचित होता है। प्रथम तो शक्ति का वह द्वाद्यनिक रूप जिसका सम्बन्ध भादि शिवस है, सृष्टि अवतार की सांख्यवादी परम्परा के आधार पर अभिष्यक्त हुआ है और दूसरे प्रकार के अवतारवादी तर्कों का सम्बन्ध साम्प्रदायिक रुढ़िवादी पद्धतियों से रहा है, जिनमें साम्प्रदायिक समन्वय की मनोवृत्ति काम पवती है।

सृष्टि अवतार क्रम

'भागवत' में सृष्टि विकास-क्रम को भी सृष्टि अवतारक्रम के रूप में माना गया है। 'भागवत' के अनुसार जो ईश्वर का अभिष्यक्त रूप है, वही शिव है।^५

१ वामनाय ५ १६।

२ हिन्दो विरचकोष सं० गणेशनाथ षष्ठ, भाग २, पृ० २७९ में मुद्रमाळा संग्रह से संगृहीत।

३ रा शक्तिमिति विख्याता न शिव परिकीर्तितः।

शिवसक्तपारायके मन्त्र राम रामेति गीतव्ये ॥

गोरख सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ सं० पृ० १६२ ग्नेरीनाथ खिराब सं० पृ० ४७-४८।

४ गोरख सिद्धान्त संग्रह पूर्णनाथ सं० पृ० १६३।

५. दस्तावजार कर्माणि मायन्ति क्षत्मवाचनः। न यं दिवन्ति तत्रैव तस्ये भागवते नमः ॥ भा १, ६ ३७।

बह आदि पुरुष ही कल्प-कल्प में सृष्टि, पालन और संहार किया करता है।^१ उसी पुरुष को भागवत में 'आद्यावतार' कहा गया है।^२

नाथ साहित्य में भी जिस सृष्टि क्रम का बखेला हुआ है, वह एक प्रकार से सृष्टि अवतार क्रम प्रतीत होता है।

'गोरक्ष सिद्धांत संग्रह' के अनुसार समवताः उत्पाद्य-तत्त्व-पुच्छ होने के कारण अद्वैत के ऊपर विराकार और साकार तथा इनसे भी परे नाथ माने गए हैं।^३ पुनः उनसे निराकार व्योम्नि-स्वरूप नाथ प्रकट हुए, उनसे साकार नाथ उत्पन्न हुए तथा उनकी इच्छा से सदाशिव और ब्रह्मा से सारी सृष्टि हुई।^४ इस सृष्टि-क्रम के अतिरिक्त नाथजी से नाथ और विबु हो प्रकार की सृष्टि मानी गई है।^५ नाथ क्रम ही संभवतः शब्द क्रम में रूपान्तरित हुआ प्रतीत होता है। शब्द क्रम के स्पृह और सूक्ष्म हो रूप होते हैं। सूक्ष्म सृष्टि के अन्तगत महाभाषणी और योगशास्त्र आते हैं तथा इसी योगशास्त्र से तन्त्रशास्त्र का उद्भव हुआ है।^६ तत्पश्चात् इस योगशास्त्र से पातञ्जल योग सांख्य योग आदि अनेक योगशास्त्र उत्पन्न हुए। उन विभिन्न योगशास्त्रों से न्याय और ज्योतिष की उत्पत्ति मानी गई है।^७

स्पृहरूपा शब्द या नाथ सृष्टि से ब्रह्म भाषणी और तीन बद् स्पृह सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुए, जिससे स्मृति धर्मशास्त्र व्याकरण, पुराण और उपपुराणों का क्रम चला।^८

नाथ सृष्टि से ही नव भाषों की परम्परा का विकास माना जाता है जिससे आगे चलकर १२ नाथ और इनके पश्चात् ८२ सिद्ध हुए, जिसके पश्चात् १२ पदों और अनन्त सिद्धों की परम्परा का विकास हुआ।^९

१ स एव आद्या पुरुषा कल्पे कल्पे सृजन्व्रजः । मा० २, १ १८ ।

२ मा १ ३, ४१ । आद्योऽवतारात् पुरतः परत्वात् ।

३ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ १४२ श्रीपीनाथ धरिराज सं० ७२ ।

४ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ २४३ श्रीपीनाथ धरिराज सं० ६० ७२ ।

५ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ २४६ श्रीपीनाथ सं० पृ ७१ ।

६ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ २४३ श्रीपीनाथ सं० पृ ७२ ।

७ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ २४२-२४४, श्रीपीनाथ सं० पृ ७२ ।

८ गोरक्ष सिद्धांत संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ २४३-२४४ और श्रीपीनाथ सं० पृ ७२ ।

९ शब्द या वाद क्रम दोनों प्रायः एक ही हैं 'पुनः बारसृष्टिरपि सूक्ष्मवृत्तकविष्ये प्रकटरूपगीमिका आत्मा से स्पष्ट है ।

१० गोरक्ष सिद्धांत संग्रह श्रीपीनाथ पृ ७२ ।

इस प्रकार नाथ साहित्य में सृष्टि अवतार की दो परम्पराएँ मिलती हैं। इनमें से पहली परम्परा तो भागवत की सृष्टि परम्परा के अनु रूप है, परन्तु दूसरी परम्परा नाथ और बिंदु क्रम के रूप में तंत्रों से अधिक सम्बन्ध विधित होती है क्योंकि पाँचरात्र संहिताओं में भी अवतारवाद की शक्ति और शास्त्र नाम की दो परम्पराओं का उल्लेख हुआ है। शक्ति अवतार की यह परम्परा है, जिसमें राम-कृष्ण जैसे महापुरुष अवतरित होकर अज्ञ-राज्ञ से अवतार-काय बनते हैं। शास्त्र-परम्परा यह है, जिसमें विविध सम्प्रदायों के प्रवर्तक उत्पन्न होकर विभिन्न शास्त्रों का प्रवर्तन करते हैं।

इस अवतार-परम्परा का सम्बन्ध चैकि योगमार्ग से है, इसलिये बिंदु परम्परा के अनुसार योगी अवतरित होते हैं और योग साधना का प्रवर्तन करते हैं तथा नाथ-परम्परा के अनुसार साक्षात्कृता अवतरित होते हैं और शास्त्रों का प्रचार करते हैं। अतः आन्तरिक दृष्टि से वेदान्त पर पाँचरात्र और प्रस्तुत अवतार-परम्परा में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है।

नाथ सम्प्रदाय में साम्य सृष्टि अवतारण के नाथ-क्रम में शास्त्रों और सिद्धों की दो अवतार परम्पराओं का परिचय मिलता है। सिद्ध साहित्य में कतिपय स्थलों पर शास्त्र और सिद्धों या नाथों की इस प्रकार की परम्पराओं का वर्णन होता है। उदाहरण के लिये 'कील ज्ञान निर्णय' में जैरव के चतुर्भुगी कौल रूपों के साथ चतुर्भुगी शास्त्रों के भी अवतार का मान होता है। 'कील ज्ञान निर्णय' के अनुसार जो कील ज्ञान के नाम से प्रसिद्ध या यही श्रेता में महाकौल, द्वार में सिद्धासुर कौल और कलिमुग में मत्स्योदर कौर के रूप में अवतीर्ण हुआ।^१ इस शास्त्र के अवतार-स्वरूप के प्रति जैरव कहते हैं कि यह चन्द्रदीप कामाख्या (आसाम) में अवतीर्ण हुआ है।^२

साक्षात्कृता का प्रयोग भी सिद्धों और तत्कालीन जन्म अवतारवादी साम्प्रदायिक प्रयोजनों के सारवा अनुग्रह माना गया है। 'अनुकम्पीर तत्र' में कहा गया है कि यह तत्र लोकों पर अनुग्रह^३ एवं लोकहित के निमित्त प्रकृत किया गया था। सृष्टि-अवतार-क्रम में नाथ-क्रम के अतिरिक्त बिंदु-क्रम माना जाता है। इस क्रम में सिध्य की अपेक्षा पुत्र-क्रम अच्छता है अतः इसके अनुसार श्वासिध जैरव से बिष्णु, बिष्णु से ब्रह्मा और ब्रह्मा से सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रादि देवता हुए।^४

१ कील ज्ञान निर्णय पृ० २१ २१ ४७-४८।

२ कील ज्ञान निर्णय पृ० ७८, १२, १२।

३ कील ज्ञान निर्णय में संकलित अनुकम्पीर तत्र पृ० ८४ और वी पृ० १७।

४ शैरव सिद्धासुर संग्रह पूर्वनाथ सं० पृ० २४२-२४३ धीपीयाच सं० पृ० ७२।

इसी प्रकार 'वाल्मीकिरामायण' १ १२० में राम के विश्व-रूप का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त पुराणों में बामन बराह मत्स्य आदि ४ विराट् रूप प्रस्तुत किये गये हैं।

वैदिक साहित्य में ही 'पुरुषसूक्त' के अतिरिक्त विराट् रूप के आत्मतत्त्व और ब्राह्मणों के रूप उचित होने लगते हैं। कतिपय स्थलों पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अवतारवाद के विकास में केवल किसी ब्राह्मण ईश्वर के अवतरित होने का ही मुख्य दाय नहीं रहा है, अपितु सामान्य जनता के बीच पर उल्लसित आत्मोत्कर्ष का भी अर्थ योग रहा है। इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा के मध्य में अवतारवाद यह बिंदु या स्तर रहा है, जहाँ ब्रह्म अवतरित होकर अवतार हो जाता है और आत्मा उल्लसित होकर अवतारी ब्रह्म हो जाता है। इस दृष्टि में अवतारवाद में ब्रह्म और आत्मा दोनों का रूप होना महत्वपूर्ण स्थापन रहता है; वहाँ आत्मा और ब्रह्म की स्थिति एक ही रहती है।

अतएव वैदिक साहित्य में एक ओर ईश्वर 'पुरुष एव इह सर्वम्' के रूप में पुरुष का विश्वरूपात्मक विकास दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर उपनिषदों में मानवशरीर में ही अश्लिष्ट ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की कल्पना मिलती है। फिर भी पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड दोनों में समान रूप से यदि किसी का अस्तित्व है, तो केवल विराट् रूप का, जिसकी प्रथम शक्ति 'पुरुषसूक्त' में ही मिलती है।

'पुरुषसूक्त' के पूर्व ही। ऋ १०।८१।३ में इसका विशिष्ट रूप उचित होता है। वहाँ परमेश्वर सब ओर षष्ठ, सुप्त बाहु और पाँच बाजा तथा जनन्त बाहुओं और पाँचों में प्रेरित पुत्रों और पृथ्वी लोक को उत्पन्न करनेवाला कहा गया है।^१ अथर्व सं० में इसका संबंध सभी इन्द्रियों से दीर्घ पड़ता है तथा वह में ब्रह्म की स्थिति का संकेत मिलने लगता है। अथर्व सं० में एक स्थल पर कहा गया है कि जो इस ब्रह्म में ही ब्रह्म को जानते हैं व परमहि परमात्मा को जानते हैं।^२ वह इस शरीर में ही सर्व षष्ठ बाहु और प्राण बनकर स्थित हैं।^३ हमी कारण विद्वान् इस पुरुष को ब्रह्म कहते हैं, क्योंकि सब देवता उसमें उन्नी प्रकार रहते हैं, जैसे गीष्म गोघाला में रहती हैं।^४ इस प्रकार एक ओर तो परमात्मा की समष्टि देह में सभी देवता निवास करते हैं और मानव शरीर में जीवात्मा के साथ उनका ब्रह्म विद्यमान रहते हैं। वही पुरुष ब्रह्मा, श्रोता, माता रसयिता, मन्ता, शोधकर्ता^५ परमात्मा में यही-भक्ति

१ ऋ १०।८१।३।

२ अथर्व १।७।२५।

३ अथर्व १०।७।१७।

४ अथर्व ११।८।२१।

५ अथर्व ११।८।३२।

६ अथर्व ३०।४।१।

स्थित है। 'सुबकोपनिषद्' में उस ईश्वर का अभि-भस्तक, चन्द्र-सूर्य जेठ, दिशाये-काम, बह-बाणी, वायु-प्राण, विश्व-हृदय तथा पैर-गुप्पी कहे गये हैं।^१ 'पितोय उपनिषद्' में इसका और विशद रूप मिलता है।^२

धूमरी धोर मानव शरीर में सगुण विश्व की सत्ता का विकास हुआ। वहाँ ईश्वर के विराट् रूपों का विशेष प्रचार सगुण भक्तों में हुआ, वहाँ आत्मा का विश्वरूपात्मक रूप साधकों में अधिक प्रचलित हुआ। लारमबाही साधकों ने समस्त विश्व की रूपना किसी वाद्य ईश्वर में न मानकर स्वयं मानव-पिंड में किया। 'श्रद्धा संहिता के 'बामदेव सूक्त' में इस आत्मोत्कर्ष का बीज मिलने लगता है। बामदेव कहते हैं—'मैं मनु हुआ था। मैं सूर्य हुआ था। मैं ही बुद्धिमान कपीवान श्रुति था। मैंने ही अर्जुनी के पुत्र कुत्स को ब्रह्मा में किया था। मैं ही उषाना कवि हूँ।'^३ इस प्रकार सूक्तों में मनु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, भूमि, मनुष्य, मेघ आदि स इन्होंने अपने को स्वरूपित किया है।^४ इस प्रकृति के साथ उपनिषदों में ब्रह्मविद् के ब्रह्म होने की भावना का पयेष्ट प्रचार हुआ। मानव शरीर में देवताओं, श्रुतियों एवं ब्रह्म का अस्तित्व माना गया। विश्व के कतिपय उपादानों से लेकर शरीर के उपादानों तक 'अन्तर्धामी आत्मा के शरीर बतलाये गये।'^५ काठान्तर में इस इन्द्रियों के इस अविद्यायु देवों का स्वान प्रायः निश्चित सा हो गया। 'भागवत' में मन और इन्द्रियों के विशा, वायु, सूध, वदन, अग्निमीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति आदि इस अविद्यायु देवता माने गये।^६

शरीर के देवी एवं ब्राह्मीकरण के अतिरिक्त उत्कर्षोन्मुख साधना का विकास उपनिषद् काल से ही योगसाधना से सम्बन्धित रहा है। ब्राह्मीभूत या योगसिद्ध पुण्य किस समय ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करते हैं, उस समय कहा जाता है कि उनकी आत्मा अखिल विश्वात्मा के साथ पूरकाकार हो जाती है,^७ जिसके अलम्बक्य अखिल ब्रह्माण्ड उसके शरीर में ही प्रतीत होता है। योगाभ्यासियों का ऐसा विश्वास है कि सिद्ध योगी को अष्टमिन्द्रियों प्राप्त रहती हैं। उन अष्टमिन्द्रियों में 'ईशित्व' और 'कथित्व' अखिल विश्व के साथ अन्योन्याश्रित सत्त्व रखने की क्षमता रखती हैं।

१ मुंढक० व० २, १, ४।

२ अ० ४। २३।

३ सु० व० १। २। २।

४ बसु दे० ३४। ५५।

५ व० व० १। १। २३।

६ ल. गोरखवाणी पृ० १५, १८।

७ ऐत० व० ११-४।

४ अ० ४। २३-२४।

५ व० व० १-१०-१०।

६ अर्ध० सं० १०। २। २८-२९।

७ भा० २, ५, ३०।

इसी प्रकार 'वाल्मीकिरामायण' १ १२० में राम के विद्य-रूप का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त पुराणों में कामन, बराह, मातस्य आदि के विराट रूप प्रस्तुत किये गये हैं।

वैदिक साहित्य में ही 'पुरुषसूक्त' के अतिरिक्त विराट रूप के व्याप्यतरिक और बाह्य दो रूप उल्लिखित होने लगते हैं। कतिपय स्थलों पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अवतारवाद के विकास में कबक किसी बाह्य ईश्वर के अवतरित होने का ही मुख्य हाथ नहीं रहा है, अपितु साधना के बल पर उच्छ्रमित आत्मोत्कर्ष का ही अपूर्व योग रहा है। इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा के मध्य में अवतारवाद वह बिंदु या स्थल रहा है जहाँ ब्रह्म अवतरित होकर अवतार हो जाता है और आत्मा उच्छ्रमित होकर अवतारी मनु हो जाता है। इस दृष्टि से अवतारवाद में ब्रह्म और आत्मा दोनों का रूप होना महत्वपूर्ण स्थान रखता है; जहाँ आत्मा और ब्रह्म की स्थिति एक ही रहती है।

अतएव वैदिक साहित्य में एक ओर ईश्वर 'पुरुष एव इत् सर्वं' के रूप में पुरुष का विश्वरूपात्मक विकास दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर उपनिषदों में मानवशरीर में ही अक्षिक ब्रह्मण्ड के अस्तित्व की व्यपना मिलती है। फिर भी पिण्ड, (शरीर) और ब्रह्मण्ड दोनों में समान रूप से यदि किसी का अस्तित्व है, तो केवल विराट रूप का, जिसकी प्रथम शक्ति 'पुरुषसूक्त' में ही मिलती है।

'पुरुषसूक्त' के पूर्व ही ऋ० १०।८।१।३ में इसका विशिष्ट रूप उल्लिखित होता है। जहाँ परमेश्वर सब ओर चन्द्र, मूल, बाहु और पाँव बाधा तथा अनन्त बाहुओं और पाँवों से प्रेरित घुल्लेक और पृथ्वी ब्लेक का उत्पन्न करने वाला कहा गया है।^१ अर्थात् सं० में इसका संबंध सभी इन्द्रियों से दीप्त पड़ता है तथा वेद में ब्रह्म की स्थिति का संकेत मिलान करता है। अर्थात् सं० में एक स्थल पर कहा गया है कि जो इस वेद में ही ब्रह्म को जानते हैं व परमेश्वर परमात्मा को जानते हैं।^२ वह इस शरीर में ही सूर्य, चन्द्र, वायु और प्राण बनकर स्थित हैं।^३ इसी कारण विश्वात् इमं पुरुषं को ब्रह्म कहते हैं,^४ क्योंकि सब देवता उसमें उसी प्रकार रहते हैं, जैसे गीर्ण गोघाता में रहती हैं।^५ इस प्रकार एक ओर तो परमात्मा की समष्टि देह में सभी देवता निवास करते हैं और मानव शरीर में जीवात्मा के साथ उनके अस्त विद्यमान रहते हैं। वहीं पुरुष ब्रह्म, श्रोता, ग्राता, रसयिता, मग्ना, बोधकर्ता परमात्मा में भली भाँति

१ ऋ० १०।८।१।३।

२ अर्थात् १।७।२५।

३ अर्थात् १०, ७, १७।

४ अर्थात् ११, ८, ११।

५ अर्थात् ११।८।११।

६ अर्थात् १०, ४।

स्थित है। 'मुद्रकोपनिषद्' में उस ईश्वर का अग्नि-मस्तक, चन्द्र-सूर्य नेत्र, विशाखें-कान, बह-बाणी, वायु-प्राण, विश्व-इन्द्र तथा पैर-भूमी कह गये हैं।^१ 'पुत्रोपनिषद्' में इसका और विस्तृत रूप मिलता है।^२

दूमरी और मांसव शरीर में सम्पूर्ण विश्व की सत्ता का विकास हुआ। यहाँ ईश्वर के विराट रूपों का विशेष प्रचार सगुण भक्तों में हुआ, यहाँ जानना का विश्वरूपात्मक रूप सापक्षों में अधिक प्रचलित हुआ। आत्मवादी सापक्षों ने समस्त विश्व की कल्पना किसी बाह्य ईश्वर में न मानकर स्वयं मांसव-विह में किया। 'ब्रह्म संहिता' के 'बामदेव सूक्त' में इस आत्मोक्त्य का बीज मिलने लगता है। बामदेव कहते हैं—'मैं मनु हुआ या। मैं सूर्य हुआ या। मैं ही बुद्धिमान कबीरान् अपि या। मैंने ही अर्जुनी के पुत्र कुन्त का वस में किया या। मैं ही उगना कबि हूँ।'^३ इस प्रकार सूक्तों में मनु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, भूमि मनुष्य, मेघ आदि से इन्होंने अपने को स्वरूपिन किया है।^४ इस प्रकृति के साथ उपनिषदों में ब्रह्मविद् के ब्रह्म होने की भावना का विशेष प्रचार हुआ। मांसव शरीर में दबताओं,^५ अपियों^६ एवं ब्रह्म का अस्तित्व माना गया। विश्व के कतिपय उपादाओं से कष्ट शरीर के उपादाओं तक 'अन्तर्पामी आत्मा के शरीर बतलावे तब।'^७ काकाम्तर में इस इन्द्रियों के हन अधिष्ठान देवों का स्थान प्रायः निश्चित सा हो गया। 'मागवत' में मन और इन्द्रियों के विद्या, वायु सूर्य, बरुग, अधिनीकुमान, अग्नि इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति आदि हन अधिष्ठान दबता माने गये।^८

शरीर के देवी एवं प्राणीकरण के अनिश्चित उत्कर्षोन्मुख साधना का विकास उपनिषद् काल से ही योगसाधना से सम्बन्धित रहा है। मार्कान्देय या योगसिद्ध पुण्य जिस समय ब्रह्म से सादात्म्य स्थापित करत हैं, उस समय कहा जाता है कि उनकी आत्मा अनिष्ट विद्यात्मा के साथ एककार हो जाती है,^९ जिसके फलस्वरूप अनिष्ट ब्रह्माण्ड तमस्र शरीर में ही प्रतीत होता है। योग्यात्मियों का ऐसा विश्वास है कि सिद्ध योगी का अष्टमिन्द्रियों प्रसन्न रहती हैं। उन अष्टमिन्द्रियों में 'इन्द्रिय' और 'बहिष्ण' अनिष्ट विश्व के साथ अन्वयोन्वाभित सन्धय रहन की क्षमता रखती है।

१ मुद्रक० पृ० २, १, ४।

२ ब्र० ४। २२।

३. सु. क. १। २। २।

४. यजु० वे० १४। ५५।

५. इ० ४० १। १। २१।

६. गौरववाणी ४० २५, १८।

७. पितृ० उ० १ १-४।

८. ब्र० ४। २२ १-३।

९. इ. ४० १-२०-२०।

१०. अथर्व० सू० १०। २। २८-३३।

११. मा० २, ५, ३।

साय साहित्य में इस उत्कल्लसलीक भावना का विशेष विकास हुआ। योगी अपनी कुण्डलिनी सक्ति प्राप्त कर उस मूलाधार से सहस्रार तक पहुँचा कर परम सिव से अपनी आत्मा को स्पर्शकृत होता है। य योगी कुण्डलिनी द्वारा 'अजभेदन' के पूर्व अग्रयाम माधना से जपता शरीर दिव्य पूर्व अग्रहृत्तिक बनाने है। इस प्रकार अवतारों के मरुता योगी का शरीर अग्रहृत्तिक पूर्व दिव्य होता है। यह अवतारों के समान माया के बन्धवर्ती नहीं होता। यहाँ तक सिद्ध योगी और पौराणिक अवतारों में साम्य होते हुए भी अवतारवादी प्रयोक्तारों की दृष्टि से पर्याप्त अंतर हो जाता है। साथ ही पौराणिक अवतारों का अवतारत्व सम्भगत है और सिद्धों की अवतार-गुण्यता साधनागत है। योगेश्वर के रूप में श्रीकृष्ण भी प्रसिद्ध हैं, गीता के अनुसार उनका विरह रूप योग-नेत्र्य-मधान है।^१ परन्तु जिन पौराणिक प्रयोक्तारों से इनका अवतार साम्य है उनका योगियों में सर्वथा अभाव है।

परन्तु साम्प्रदायिक रूप में श्रीकृष्ण आदि उपास्य अवतारों के समान योगी भी ईश्वरताओं से श्रेष्ठ तथा इच्छाानुसार विच में नाना रूप धारण कर लीका करता है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के अनुसार हम शरीर में ही योगी अल्पिक चराचर को जानता है। उसे विद्व संविति कहते हैं।'^२ हमके अतिरिक्त उसके शरीर के समस्त अंगों में अनेक ईश्वरताओं लोको और देशों की स्थिति का वर्णन किया गया है।^३ 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह' में मंगुलीय 'योग बीज' के अनुसार इच्छाानुरूप धारण कर यक्षु आदि से स्वतंत्र हो समस्त लोकों में बह स्वीका करता रहा है।^४ माया से परे होने वाले योगी का धरण विष्णु भी

१ गोरक्षवाणी पृ १६ पर २०। २ गोरक्षवाणी पृ० ३२-३३ पर १२, १३, १५।

३ शी० १।० में विष्णुनिर्वाणी की 'पदा विष्णुनिर्वाणी' व 'विष्णुनिर्वाणी' से सम्बद्ध प्रतीत होती है। कां मा में कहा गया है 'पदां बभौका विष्णुनिर्वाणी वीणां व सुक्ति व नात्मनो बभनम्' अथवा 'भोवैश्वर्यं धामर्ष्यं सर्वदत्तं भोवन्न योग उच्यते। गी० ७।१० में कृष्ण को योगी कह कर संवीरित किया गया है और गी ७।१८ में 'योग विष्णुनि' को बहने के विने कहा गया है। गी ११।४ के योगेश्वर कृष्ण जित विरह रूप का वर्णन करते हैं वह योगेश्वर्य रूप है, जो शी० ११।८ 'परम में योगेश्वर्यम्' से स्पष्ट है।

४ शि० शि० ५०। पूर्वनाम सं०। पृ० २५७ २।२।

५ शि० शि० ५। पूर्वनाम। दुर्गावीपदेश।

६ (क) गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह श्रीगीताव सं० पृ० ३०-३१।

(ख) गोरक्षवाणी पृ० ४८, १३८।

घोटा है।^१ इस प्रकार कीलावतारों के साथ सत्कारिण युग में योगियों को प्रेरित करने का प्रयत्न किया गया है।

अतः योग के दीर्घ की दृष्टि से योगियों की पिंड-प्रहाण्ड सम्बन्धी धारणा अवतारवादी विचार रूप के समानांतर प्रतीत होती है। दोनों में अवतारवादी कीला और कीला के भाव भी विद्यमान हैं।

भाष्य गुरु और अवतार तत्त्व

भारत में प्रचलित योग या भक्ति अनित साधनाओं में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पुराणों के अनन्तर मध्यकाल में भाष्य प्रत्येक मन्त्रशास्त्र में गुरु का इष्टत्व से कम महत्त्व नहीं था। विशेषकर अत्यन्त बृहद् योग-साधना में तो गुरु की अवहेलना करने की बात दूर रही परन्तु पर उसकी आवश्यकता पड़ती थी।

यों तो सांख्य शास्त्र के २५ तत्त्वों के अतिरिक्त योगशास्त्र में एक इच्छीसर्वा तत्त्व ईश्वर भी माना जाता है। योगशास्त्रियों के अनुसार यह ईश्वर ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है। नित्य होने से वह मूल वर्तमान और अविद्य तत्वों काओं में अतपस्विद्ध गुणों का भी गुरु है।^२

इस काल में सगुणानामक पांचरात्र वैष्णव धर्मि निर्गुण सगुण से युक्त साकार ईश्वर एवं गुरु की उपासना करते थे, तो योगी निर्गुण-सगुण त्रिकोण कायम धर्म और गुरु को इष्टदेव मानते थे। दोनों के उपास्य सर्वात्मा लक्षा, त्रिकोण धर्मि परम्परागत रूपों से युक्त हैं और समान रूप से सबतों के उद्धार की समता रखते हैं।^३

दोनों में गुरु इष्टदेव के रूप में परब्रह्म के साकार स्वरूप मान कर पूजे जाते हैं। इनमें विशेष अन्तर केवल साधना सम्बन्धी लक्षित होता है, क्योंकि पांचरात्र मन्त्र या भी वैष्णव धर्मि साधकिक एवं इष्टय प्रदान प्रेम वृत्ति धर्मि को अपना सम्बन्ध बनाते हैं तो योगी ज्ञान माया एवं योगिक साधना का महारा करते हैं।

१. शिवशास्त्र ५० अ ५६ २०।

२. भारतोप दर्शन उपाध्याय ५ ११७।

३ (क) महानिर्वाण लक्ष २, ५२ और शिवशास्त्र ५ १२१-१२ (अनिर्वाणिक्य)
(घ) अतोपरी मुख्यतः शिष्यो ब्रह्मसंसारवन्दनात्।

अतएव सद्युक्तं साध्यात् त्रिकोणमभिवाचयैत् ॥

गीताज्ञ सिद्धात्म लक्ष्मण योगीनाथ अधिराज ५० १३, ५३, ५४।

माय वंश में शिव, शैल, गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि नवनाथ उपास्य ब्रह्म या इन्द्रदेव में परिवर्तित होने के पूर्व इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक या आदि गुरु के रूप में मान्य हुए।^१ विचित्रता यह है कि बोगी एक ओर तो सगुण उपासकों पर अक्षतारों का भावा-परमेश मानते हैं और अपने गुरुओं का ब्रह्म का प्रतीक या साक्षात् ब्रह्म मानकर पूजते हुए भी भावा-स्वतंत्र समझते हैं।

सामान्यता जिस प्रकार सगुणोपासक इस युग में अपने गुरुओं को साकार इन्द्रदेव से स्वरूपित करते हैं, उन्हीं प्रकार माय पक्षी अपने गुरु को आत्मब्रह्म का प्रतिरूप मानते हैं। 'गोरक्षनाथी में आत्मा को ही शरीर के भीतर स्थित गुरु कीर शिव कहा गया है।^२ वह भावा स बने एक से बहुत रूपों का दिखाने वाला है।^३

सारा सारा नाम परब्रह्म का चैला है। ब्रह्म-साक्षात्कार ही ज्ञान प्राप्त करना है। इसलिये माय को सहगुरु कहा गया है।^४ क्योंकि उस ब्रह्म से साक्षिण्य प्राप्त करने के कारण वह ज्ञान या ब्रह्म स्वरूप हो गया है।^५ अज्ञानी होने पर उसे किसी देव-पूजा की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि सभी देवता उन्हीं की पूजा करते हैं।^६ गोरक्षनाथ ऐसे ही ब्रह्म रूप गुरु मत्स्येन्द्र नाथ को स्वयं घर घर में रह कर गुरु को भी घर-घर में देखते हैं।^७

इस मार्ग में गुरु ही सर्वोत्तम हैं।^८ उस अक्षत गुरु का प्रत्यक अक्षत वेद है। प्रत्येक अक्षत तीर्थ है, उसमें नूमरों को तारने की शक्ति है। उमकी दृष्टि में कैवल्य है। उमक एक हाथ में मोग और नूमरे हाथ में त्याग है, किन्तु

१. नमस्ते नवनाथ शिवाय गुरु इतिथे। विद्याधरार सतिहरे लोहोपेन्द्रविद्यारः ॥ गोरक्ष सिद्धन्त समर पूर्वनाथ सं ५ ४५।

२. गुरुसर्वमदैवसरोरि नोतरिथे। अत्मा अन्विम देव सती को न भाथे देव।

गोरक्षनाथी ५० १४।

३. कवे सुवेनामा शिवा, बहु यति रिक्तमाये।

अनन गोरथि त्रिगुणे भावा सप्तगुरु हीरे ककारे ॥ गोरक्षनाथी ५० १६०।

४. येना सव मूला नाथ सप्तगुर भागे वलरे द्वारि नवन मनुकरि भावे।

ये वा० ५ २५५।

५. नोपुठं वरवानन् वने भावमविद्यारम्।

वसव साक्षिण्यभावेन विद्यानन्वापते एतुः ॥

मिथ ५० १८४ में संक्षिप्त गोरक्ष सप्तक श्लोक २।

६. गोरक्षनाथी ५ २५२-२५३

कार सनव पूने देव नृव करे करमा की देव।

७. कति कति गोरक्ष कति कति मीन भावा वरपि शास्तुति नोन्। गोरक्षनाथी ५० ६।

८. अरिमन् भागे सवामनी नृकनूनीशुभेव। गोरक्ष सिद्धन्त सं० पूर्वनाथ सं ५ ९।

बह दोनों से अलिप्त है।^१ वह अपने स्वरूप में स्थित योगी स्वयं अपने भाग्य का विधाता होता है। वह अपनी स्त्रीका से अजर और भ्रमर तथा देव और देव्य से अव्यय होता है।^२

गुरु की अवतारी उद्धारकों के समान सामान्यतः प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि गुरु से बह कर ससार में अधिक कुछ भी नहीं है। वह सर्वगुरु अपनी दया की छेसमात्र अनुकम्पा से शिष्यों एवं प्राणियों के आठों पाश काट कर आनन्दित करता है।^३ इस्काम में जिस प्रकार पीरों का मान है उसी प्रकार योग मार्ग में गुरु का।^४ गुरु के बिना ज्ञान तो अस्तमय है ही,^५ उसके मिथने पर ही उद्धार की भी सम्भावना हो सकती है। बम्बया प्रकल्प समझिये।^६ 'क्रीक ज्ञान निणय' के अनुसार कलियुग के भीषण शीतल मरक से उद्धार करने वाले सिद्ध कृतयुग, प्रेता और द्वापर में भी बह है।^७ 'नाथ सिद्धों की बातियाँ' नाम की पुस्तक में प्रेमदास लिखित सिद्ध चम्बुना में जिन सिद्धों की चम्बुना की गई है उनमें उपास्य अवतारी के वक्षन होते हैं। प्रारम्भ में ही निरञ्जन को नमस्कार करते हुए कहा गया है कि ये भस्म का विहङ्ग करते हैं। इनके भस्मस्य गुरुदेव अगम पथ के भेदों से परिचित हैं।^८ पुनः विज्ञान को प्रकाशित करने वाले चौरासी सिद्ध तथा परमेश्वर की स्थापना में लीन गौ योगेश्वरों (जो सम्भवतः गौ नार्थी के रूप में विख्यात हैं) को उपास्य रूप में नमस्कार किया गया है।^९ चौबीस अवतारों में गृहीत कपिल और मत्स्य-समस्त सिद्धों की प्रस्तुत उपास्य परम्परा में मिलते हैं।^{१०} चौरगी नाथ द्वारा वर्णित 'धीनस्पाष्टक' में गोरक्ष जाधि नाम गुरुओं की चम्बुना उपास्य इष्टदेव के रूप में की गयी है। वहीं उनका सर्वोत्कृष्ट उपास्य रूप को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि गुरु गोरक्षनाथ योगेश्वर युगपति का निगम और

१ बचने बचने देहालोर्ध्वानि च पश्ये परं...। गोरक्ष सिद्धान्त सं० पूर्णनाथ ५ ३।

२ गोरक्ष सिद्धान्त सं० पूर्णनाथ ५ १ ३।

३ गोरक्ष सिद्धान्त सं० पूर्णनाथ ५ २ ३।

४ कृतपति सिद्ध करमा योगी अकालि वीर मुसकमानो।

ते राह चोर्ध्वो हो क्यको मुला मद्य विस्तु महादेव मानो। गोरक्षवानी ५ १।

५. गुरु विल ध्वानं न नामका रे मार्गका। गोरक्षवानी ५ २२८।

६ सर्वगुरु मिके दो उबरे कानू मही ती परले हुमा।

मिथरी विरधी परके बानी बाते हम उखी बांजना बानी।

गोरक्षवानी ५ १२८ और ५ ५।

७ क्रीक नाम निर्णय ५ २९ ५, ८। ८ नाथ सि० वा० ५ ३।

नमो नमो निरञ्जनं भस्म की विहङ्गनं। नमो गुरुदेवं नाम एवं भेवं ॥

९. नाथ सि० वा ५ ४ पर २४। १०. नाथ सि० वा० ५ ५ पर २५।

अगम भी बध गात्र करते हैं। अकर, घोष विरिंषि धारण, नारद जीन बजा कर उनकी प्रशंसा गाते हैं। उस उपास्य गुरु को ये त्रिगुण बध से अभिहित करते हैं।^१

'नायासक' में ही उनका उद्धार-कार्य का परिचय दते हुए बताया गया है कि इन्होंने सुधर रावण के पुत्र का स्मरण करते ही पम-शर्म नष्ट कर सुन्दर शरीर प्रदान किया था।^२

इससे स्पष्ट है कि नाय गुरु कबल उपास्य रूप में ही पूजित नहीं होते थे अपितु अवतारी उपास्यों के उद्धार के लक्ष्य उनका उद्धारक रूप भी प्रयुक्त थे। इस युग की प्रधान अवतारवादी प्रवृत्ति उपास्य एवं उद्धार रूपों से गुरु का आत्यधिक मान्य विहित होता है।

वैष्णव अवतारों के रूप

तत्कालीन युग में नाय सम्प्रदाय को ही योगप्रधान सम्प्रदाय था। इससे सम्भावितः बहू योगियों में मान्य भावि प्रयत्नक शिव या शैवमत से धनिष्ठ सम्बन्ध रखता था परन्तु उस पर बौद्धों और जैनों का भी न्यूनाधिक प्रभाव स्पष्ट रूप से विहित होता है।^३

अवतारों की आलोचना

किन्तु उहाँ तक वैष्णव-प्रभाव का प्रभु है यहाँ मात्र सम्प्रदाय में वैष्णव धर्म और सामान्यतः वैष्णव अवतारों का विरुद्ध रूप दृष्टिगत होता है। नाय एभी योगियों ने अपनी रचनाओं में कहीं तो अवतारवाद की मन्त्रणा की है और किसी स्थल पर उनका प्रतिद्वन्द्वी रूप उपस्थित किया है। विशेष कर इन्होंने हिन्दू वैश्याओं और उनका अवतारों पर यह काङ्क्षित बनाया है कि वे सभी भोगी थे। कोई भी कामदेव को परामृत नहीं कर सका। सुग्रीव ने बाल्मिकि का मरा सम्झ कर उनकी स्त्री रण की। प्रया ने सरस्वती से भोग किया। इन्द्र ने गीतम ऋषि की की जहस्या से पुत्र किया। अकृता गीतम के शाय के कारण उसका महान भग हो गय। अह्वानी सहस्र ऋषि भी कामदेव के प्रभाव तथा बिन्यु की अन्तर्गत माना से अपने का मुक्त नहीं कर सक। नाट्यकला के अभिष्टाना शिव को भी कामदेव ने लक्ष्या।^४ बिन्यु के इसावतार

१ नाय सि० बा० पृ० ४० पद २, ५।

२ नाय सि० बा० पृ० ५० पद १

३ प्रियत पृ० १५-१५२।

४ ये योगियों के शिव से शिव संभवतः महाकाव्यो एवं पुराणों के शिव विरिध बोधे हैं।

भी ली बासे हुए । एकमात्र योगी गोरक्षनाथ ने ही कामदेव को परास्त किया था । 'गोरक्षनाथी में पीर को लोहा तकबीर (तक्बीर) अर्थात् पुक्ति को ताम्बा कहा गया है । जब कि मुहम्मद चांदी और सुदा सोने के समान हैं । लोहा और ताम्बा मितना उपयोगी है उतना चांदी और सोना नहीं । उमी प्रकार गुह और पुक्ति मितने उपयोगी हैं उतने मुहम्मद और सुदा या ईश्वर और जबतार नहीं । इनकी दृष्टि में सारी बुनिया उपसुंक्त दोनों के बीच गोसा साती रही है । उनसे बचने बासे केवल योगी भर हैं ।^१

'नाथ सिद्धों की बाजियों में सकलित 'अथ अग्नी सी का श्लोक' में दशावतारों की प्रासंगिक आलोचना दृष्टिगत होती है । उन पदों के अनुसार बिष्णु ने दशावतार क्रम में गर्भवास कर सम्भवतः बार-बार जन्म लेकर महासक्यों का सामना किया था ।^२ इतने यह प्रतिष्ठागत होता है कि बिष्णु को भी अनेक बार जन्म लेने का यह भोगना पड़ता है, जब कि योगी एक ही जन्म में अमर हो जाता है ।

इसी प्रकार 'गीरख सिद्धांत संग्रह' में कापासिकों और बिष्णु के चौबीस अवतारों के बीच अद्भुत समर्प का वर्णन किया गया है । वहाँ कहा गया है कि बिष्णु के चौबीस अवतार हुए, वे अपने अपने कार्य के अन्त में महोन्मत्त हो गये । जिस प्रकार जन्म लीख-जन्म लीका करते हैं, वैसे ही बराह, वृसिह आदि ने पूष्पी को लखना और जगन्नी लीखों को मयमीत करना शुरू कर दिया । वे नगर और गाँवों को पीड़ित करते थे । उस पर कृष्ण ने बहुत व्यवहार किया । परशुराम ने एक वृत्रिय के होप से सभी वृत्रियों को मर करना आरम्भ कर दिया । तब इन अवतारों के आचरणों से श्रीनाथ ली ने क्रुद्ध होकर चौबीस कापासिकों के रूप में आविर्भूत होकर चौबीस अवतारों से पुद

१ असाव कंडप विरछा सावंत शेरें ।

सुरनर गन गजव म्याप्पा नाकि सुप्रोव भारी ।

मदा देवना कंडप म्याप्पा बंड संख भग पारै ॥

महबासी सहज रबीनर कंडप म्याप्पा असावि विभ्त ली माता ।

येन कंडप ईदवर महादेव नादारम्म कथाया ।

दिक दस अवतार पाप्पा असावि कंडप अत्री गोरक्षनाथ साप्पा ।

बनि मोशर शात्पा गकना । गोरक्षनाथी पृ ३३-३७ पद १९८-२०० ।

२ गोरक्षनाथी पृ ४१-४२

लीहा पीर तांवा तकबीर ।

रुपा मुहम्मद मीना सुशर । हुँ विधि बुनियां योठा भारी ।

३ नाथ सि धा० पृ १७ पद ३५ । विसम बैन दस अठार ।

महा संकर प्रम वासं ।

किया थीर उनके सिर काट कर हाथ में छे लिये। इसी से वे कापाकिक कहलाये। सिर काट जाने के फलस्वरूप सभी अवतार मद्धीन हो गये। तब श्रीमाय जी ने उन्हीं के कपाल उनके सिर पर रख कर जीवित कर दिये।^१ 'नाथ सिद्धों की बानिर्घा' में सकलित सतवती के पद में सभी के मायात्मक रूप की चर्चा करते हुए रावण और राघव दोनों को मायास्वरूप बतलाया गया है।^२

इस प्रकार नाथ साहित्य में देववाद और अवतारवाद दोनों के विच्छेदन आत्मोपनात्मक रूप मिलते हैं। उन्हीं आत्मोपनात्मों में अवतारों और देवों के कहीं तो भोगी होने पर कटाघ है और कहीं उनके पुराजगमित अवतारी कार्यों को विचित्र ढंग से मोड़ा गया है। जो साधना की दृष्टि से भोग और भोग दोनों दो प्रकार के जाचरों की अपेक्षा रखते हैं। इसी से योगियों की साधना में काम-विरहप पथेष्ट महत्त्व रखता है। परन्तु कापाकिकों से सम्बद्ध अवतारों की कथाओं में अभूतपूर्व बहपना का पुट है। अवतारवाद की वैज्ञानिक आलोचना का इनमें अभाव है।

उक्त रूपों के अतिरिक्त नाथ साहित्य एवं सम्प्रदाय में अवतारों के विचित्र रूपों के भी वर्णन होते हैं।

'कील ज्ञान निर्णय' के नवम पटल में कलियुग के महाघोर परक से उद्धार करने वाले पूर तीनों युगों में बच तथा कुछ कील के अवतारक जिन पोटल सिद्धों का उल्लेख हुआ है^३, उनमें पूर महासिद्ध के रूप में मान्य बस ऐसे नाम प्रस्तुत किये गये हैं जिनका न कील मार्ग से सम्बन्ध विहित होता है न नाथ पथ से। वे नाम इस प्रकार हैं—सृष्णिपाद, अवतारपाद, सृपपाद, सुतिपाद, जोमपाद, व्याग्रपाद, हरिणिपाद, पञ्चशिक्षपाद, कोमलपाद, कम्बोदरपाद।^४

उक्त सिद्धों के नामों में सृपपाद, कम्बोदरपाद, अवतारपाद प्रभृति के रूप में विषय ही समसामयिक, मीर्य गानपत्य और वैष्णव सम्प्रदायों के सम्बन्ध का प्रयास किया गया है। इस सूची में प्रबुद्ध पञ्चशिक्ष नाम भी सांप्य के आचार्यों में प्रसिद्ध पञ्चशिक्ष हो सकते हैं।^५ संभव है अतिरिक्त नाम

१. शेरछ। लका-३ सुप्र ५ २०।

२. नाथ सि. वा. ५ १२१। हम भी जाना हम भी मन्वा मावा राधन राधौ।

३. कील ज्ञान निर्णय ५ २९, ९, ९। ४. कील ज्ञान निर्णय ५ २९।

५. ईश्वर रूपन की संस्कृत कारिका ५० १ में वे संक्य आचार्यों में माने गये हैं—
'आतुरि कविकथेय बहु पञ्चशिक्षना। भारतीय दर्शन ५ १२१ में महाभारत शान्तिपर्व ३ १-१०८ अर्वाप के पञ्चशिक्ष का उल्लेख किया गया है।

भी सम्मन्वयानुसंग रूप में ही विभिन्न सम्प्रदायों से ग्रहण किये गए हैं, क्योंकि परवर्ती (१८वीं शती की पुस्तक) 'मत्स्यपुराण-घातकम्' में बीर, श्रीर, शीर, शान्, सीर और शैनायक सभी द्वारा उपास्य मत्स्यपुराण के बंध कहा गया है।^१ इनके अतिरिक्त त्रिमू ने भी नाथों की एक ऐसी सूची प्रस्तुत की है जिसमें कई एक किमी. म. किसी हिन्दू देवता से स्वरूपित किये जा सकते हैं। स्वयं त्रिमू ने ही उनमें से कतिपय के स्वरूप का प्रयास इन प्रकार किया है—(१) ओंकार आदिनाथ-सिख, (२) शैलनाथ-कृष्ण या रामचन्द्र, (३) मत्तापनाथ, (४) अचलेश्वरनाथ-हनुमान या लक्ष्मण, (५) गजबन्दी गजकृष्णनाथ-गणेश गजकण (६) प्रज्ञानाथ या उदयनाथ पार्वती (७) पुण्य सिद्ध चौरंगी नाथ-पूरन भगत।^२

पुन त्रिमू द्वारा प्रस्तुत की गई दूसरी सूची के अनुसार ओंकारनाथ विष्णु, मत्तापनाथ-विष्णु, गजबन्दी, गजानन-हनुमान अचलेश्वर-गणपति उदयनाथ-सूर्य, पत्नती प्रेम-महादेव, मत्तापनाथ-ब्रह्मा ज्ञान की सिद्धेश्वरगी जगन्नाथ, मायाकपी-मत्स्य^३ से स्वरूपित किये गये हैं।

'गौरव सिद्धान्त संग्रह' में 'तंत्र महात्म्य' के आधार पर भी नाथों को विभिन्न दिशाओं में स्थित बतलाया गया है। गोरक्षनाथ पूर दिशा, जगन्नाथ बन में, अचलेश्वरनाथ उत्तरापथ में, जगन्नाथ महानाथ सप्तकोशबन में, महाभार्तुम बुद्धिग गोदावरी बन में, इच्छात्रेय महानाथ पश्चिम दिशा में, आदिनाथ, मरुत और मत्स्येन्द्र आदि विभिन्न दिशाओं में बतलाये गए हैं।^४

उपर्युक्त बातों सूचियों से विभिन्न सम्प्रदायों के भारतीय देवताओं, भाषायों और अवतारों का सम्मन्वय करने की प्रवृत्ति का पता चलता है।

'नाथ सिद्धों की बातियाँ' में सगृहीत 'बोड़ा चीली जी की सखती के ११वें पृष्ठ में रामचन्द्र की कथा वर्णित हुई है। उन पृष्ठों के अनुसार समुद्र में पुक बँध कर सम्मन्वय राम हाथ का बंध कर लक्ष्मी मीठा को बर ले जाए।' इसी प्रकार उसी ग्रन्थ में संकलित 'पिपीनाथ जी का ग्रन्थ नाथ ग्रन्थ' में सिद्ध पिपीनाथ ने कतिपय पक्षों में वैष्णव अवतारों का साम्यिक

१. वरे नौदवाओं: परे श्रीउपमों, परे शैवशास्त्रावैनाथकाथः।

मकलं पत्रभेदप्रयोः सिद्धु तैर्वा, पनाथं करोष्वैव मत्स्येन्द्रनाथ त

मत्स्येन्द्रपुराणकम् पृ० १५ श्लोक ३७।

२. त्रिमू पृ १३६-१३७।

३. त्रिमू पृ० १३७।

४. जगन्नाथ-गोरक्षनाथो वसिष्ठ पूर्व जगन्नाथो वने स्थितः।

इच्छात्रेय-इच्छात्रेयो महानाथः बुद्धिवाचो वसुदेविधिः ॥

गौरव सिद्धान्त संग्रह गोपीनाथ बधिराज सं० ४४-४५।

५. नाथ सि० वा० पृ० २३ वर २३३।

उल्लेख किया है। इनके मतानुसार जिस राम ने अवतार धारण कर बोग बामिह का कथन किया उन्हें भी संसार से मुक्त होने के लिए गुरु का आश्रय ग्रहण करना पड़ा।^१ कृष्ण ने भी भक्तिमयन के विभिन्न पीढ़ा का कथन किया।^२ इनके ३०वें पद में बकि-नामक अवतार की भी प्रामाणिक खर्चा हुई है।^३

इन पदों में राम और कृष्ण को सराबारण समुप्य जैसा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विशेषकर रामावतार की खर्चा से केवल तत्कालीन युग के अवतारवादी प्रभाव का ही अनुमान किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नाथ सम्प्रदाय में प्रचलित कतिपय ऐसे चिह्नों एवं मूर्तियों की पूजा का उल्लेख ग्रिम्स ने किया है जो तत्कालीन अवतारवादी महत्तियों से बंधे भावा में प्रभावित मतीत होते हैं। यों तो बोगी द्वारा अनेक प्रकार की रक्षा की माताओं का प्रयोग होता है किंतु उनमें हम मुर्तियों वाले रक्षाओं का सम्बन्ध रक्षावातारों में स्थापित किया जाता है।^४ ग्रिम्स के अनुसार गोरक्षपंथियों के पीनोवर नामक स्थान के मठों में हनुमान और राम की मूर्तियाँ मिलती हैं तथा पुरी में गदह की मूर्ति स्थापित की गई है। हनुमान एक प्रकार की शीका के रूप में भी हम सम्प्रदाय में अंकित किए जाते हैं। पश्चिम के अनेक वैष्णव मठों की परम्परा भी नाथों में समाविष्ट की गई है। गोरक्षपुर में समाधिपों पर वैष्णव प्रतीक एवं मूर्तियों की बसाई हुई मिलती है। इनके कथनानुसार 'रक्ष-भाषणा में शिव संहिता' ३ ३५ के अनुसार विष्णु के नामों का प्रयोग अतिबाध है।^५ इन्होंने शिवराम महप और पीनोवर नामक स्थानों में बकि की मूर्ति पूजा का भी उल्लेख किया है।^६

इससे स्पष्ट है कि शिव-शान्त प्रधान नाथ साहित्य एवं सम्प्रदाय में अवतारों का विरोध होते हुए भी समपता काकालर में उनमें बहुत से अवतारवादी उपकरणों का प्रवेश समय-समय पर होता रहा था। उपर्युक्त साम्प्रदायिक प्रयासों में अवतारवादी मसारेहों के अनिरीक गोरक्षपथी 'महम्-नाम' में भी विष्णु के विभिन्न अवतारी नामों को गोरक्षनाथ पर आरोपित किया गया है।

१ भाष मि ३० पृ ७० ।

२ यो पद कृष्णः बोग बामिह बरि बडु राया बीनार ।

निन मी आरत गुर बीया गिरिबे कू संसार ।

३ भाष मि ३० पृ ७० । बीना होर कृष्ण कपी मण्डि बजल बी मेवं ।

४ भाष मि ३० पृ ७० 'भू बनि से बीबा बजाति ।'

५ ग्रिम्स पृ १५ । ६ ग्रिम्स पृ १५० । ३. ग्रिम्स पृ १६ ।

'गोरक्ष महत्नाम' में गोरक्षनाम के प्रति पाँचों ही पर्यायवाची नामों को ग्रहण किया गया है। किन्तु कठिपय स्थलों पर ब्रह्मव्यवहाराओं के नाम से भी वे अभिहित किए गये हैं। उन पर्यायवाची नामों में 'बासुदेव', 'कृष्ण', 'वामन', 'वराह', 'राम', 'भार्गव', 'कविक, ऋषभ, कपिल' और 'बुद्ध' गृहीत हुए हैं।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि अवतारों की भक्त्या करने के बाद भी अवतारवादी प्रभाव से नाथ पंथ और उसका साहित्य दोनों मुक्त नहीं हो सका। जाने या अनजाने विविध रूपों में वैष्णव अवतारों का समावेश उनकी साम्प्रदायिक पद्धतियों, परम्पराओं और उपास्यवादी रूपों में होता ही रहा।

आर्य स्वरूप राम

नाथ साहित्य में किष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा राम के अवतार या अवतारी रूप का तो नहीं किन्तु अन्तर्धामी रूप का अथेष्ट परिचय मिलता है। 'गोरक्षवानी' में सगृहीत एक पद में सर्वात्मवादी आर्यरूप के प्रति कहा गया है कि यही राजा राम है किष्णका ममी अर्गों में निवास है। यही पाँचों तत्त्वों को सहज प्रकाशित करता है। इसके बिना पाँचों तत्त्वों का अस्तित्व नहीं रह सकता। इसका बोध हो जाने पर हृन्नी में पाँचों तत्त्व समा जाते हैं।

अभ्यस्तौ बासुदेवश्च अतमुनि सनातनः ।

पूर्वनाथः कश्चित्नाथः सर्वेषां हरये स्थितः ॥ गोरक्ष स० ना० पृ० २९ श्लो० १९ ।

१ श्रीमान् श्रीमान् बरबरो वल्लभनाथो बर्मोहरः ।

बर्मिषो बर्मिषो भुयो श्रीरो श्रीरोपननाथनाः ॥

श्रीकण्ठर ने 'बरबरो का अर्थ कूर्म या शिव से किया है।

गोरक्ष स ना पृ २८ श्लोक ४० ।

२ बर्मिषो बर्कारश्च वामनो बरनोऽपरः ।

बरबरानु बरतीषो वाको बरबर्मिषो बरः ॥ गोरक्ष स० ना० पृ० २९ श्लोक ४४ ।

४ बराहो वाक्रीनाथो विश्वान् विश्वमिषो वनी ।

प्रबालीपूज्यो धीमो परब्रह्मणे परान्तरः ॥ गोरक्ष स० ना० पृ० ३० श्लोक ४५ ।

५ रमन्ते रामनाथश्च राममन्त्रो रमादनिः ।

रां रां रामो राम रामी रामाराधनकरः ॥ गोरक्ष स ना० पृ० ३३ श्लो० ५१ ।

६ गङ्गादिः कङ्गादिभुः शत्रुनाथश्च कपटो मार्गण्ड कश्चिद् अचमर कश्चित्ते मन् ।

गोरक्ष स ना पृ ५३ श्लो० ९१ ।

७ अचमो गौडमः कश्चो भुक्तो बुद्धिबलां भुवः ।

निष्पी निर्ममोऽकूरी निरवधो निराग्रहः ॥ गोरक्ष स ना पृ० ५३ श्लोक ९१ ।

गोरक कहते हैं कि इस प्रकार यह मद्य जाना जाता है।^१ एक स्थल पर वे कहते हैं कि 'हे भवतार राम जिससे युद्ध करने विपत्ती तो कोई दिलाई नहीं देता। जिससे युद्ध करता हूँ वही तो ज्ञानमस्वरूप राम है। स्वयं मन्व्य-कथ्य है और स्वयं ही उनको बधन में डालने वाला आल है तथा स्वयं वही भीवर, मन्व्यमार और स्वयं काल है।^२ जीवात्मा इस विश्व में जन्मे ही जाता है और जन्मे ही जाता है। इसी से गोरकनाथ राम में रम रहा है।^३ इस प्रकार योगियों ने उपास्य आत्मब्रह्म के निमित्त राम का कर्त्तव्य ग्रहण किया है परन्तु यह भवतार राम का वाचक न होकर इनमें विशेषकर परब्रह्म के आत्म रूप में पृथीत हुआ है। वे इसी परब्रह्म रमता राम से जीवान का खेल खेलते हैं तथा मद्य और आत्मा में कोई भेद नहीं मानते।^४

छः गुणों से युक्त कौन है ?

सगुणोपासना में ब्रह्म, अकाल, असीद्ध, अमृत, अन्न और अविनाशी आदि उपाधिओं से युक्त होने पर भी निर्गुण क्यों नहीं माना गया।^५ यह सदैव एक पुरुष प्रपन्न रहा है। क्योंकि त्रिराकार या निर्गुणोपासक साकार या सगुणोपासक दोनों ने त्रिय ब्रह्म की रूप-रैखा प्रस्तुत की है उसमें साकारत्व और भवतारत्व के अतिरिक्त प्रायः अन्य सभी विशेषण दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।^६ इसके अतिरिक्त उसके भगवत् या भगवान रूप में सगुणो-

१ यही रामा राम आये सरे कये वासा, वे ही पंचों तत वापु सखि प्रकासा।
वे ही पंचों तन वापु सखि समहि प्रमाना वरत गोरक हम हरि वर जावा न
घोरकनाथी वृ० २००।

२ कसो मूसो भवत तार विवद न बीसे कोरं।
बासी भव मूसो रे आरवा राम सोरं।
जापग ही मन्व्य कथ्य भवत ही बाक,
जापग ही भीवर आपग ही काक। घोरकनाथी वृ० १४५-१४६।

३ आये सी आर जकेना ताये घोरक राम रमना। घोरकनाथी वृ० २४८।

४ राम रमित्त सी गदि भोगनं बाहे मूकन ही अविमार्ग।
वरत भवत धिनि वही अनता कैवळ मूछि मीदानं। गोरकनाथी वृ० २०१।

५ वि पु ६ ५, ६६ क।

६ वि० पु० ६ ५, ६४ में ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं—अण्ड ब्रह्म और वर ब्रह्म। साकारत्व-निर्गुण-मगुण अदि सभी अज्ञातों से ब्रह्म के दोनों रूपों को अतिरिक्त किया गया रहा है।

स्वर्गों ने ज्ञः गुणों का भी अस्तित्व मामा है जो उसे सगुण विशिष्ट रूप
 (मन करता है ।^१

‘सिद्ध सिद्धांत पद्धति’ में पाहुण्यों की विभिन्न व्याख्या की गई है । वे
 गुणों के आधार पर विष्णु और उनके अवतारों का लक्षण करते हुए बने
 (ग पूर्वक कहते हैं—जहाँ वे पदपदार्थ हैं वही भगवान हैं ।^२ किन्तु वे पद-
 पदार्थ समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यज्ञ, धी, ज्ञान और वैराग्य उनमें हैं कहीं ?
 पश्चात् आरोपित इन एक-एक गुणों का वे लक्षण करते हैं । उनका कथनानु-
 सर सन्नमयम योग रूप ऐश्वर्य ही उनमें नहीं है । धी के सग रहने वाले
 भिषों में भला ऐश्वर्य कहीं से हो सकता है ? विष्णु के कुछ प्रधान पौराणिक
 एताओं के आधार पर उनमें निहित धर्म का लक्षण करते हुए कहा गया
 कि जो सबैव कुरु करता रहा है उसमें धर्म कहीं ? विष्णु ही तो कुछ से
 तद को धारण मुक्त प्रदान करने वाले के रूप में प्रसिद्ध है । साथ ही जिस
 लक्ष को शक्ति और सहजातुन ने बाँध किया; उसे मारने से यज्ञ कैसे प्राप्त
 का ? जो राम भगवान कहे जाते हैं उनकी धी का हरण होना तो और
 हास्यपयस्य है । जिसकी परमाय में मुक्ति नहीं है और इस लोक में यज्ञ नहीं
 प्राप्त है उसका पास धी कैसे हो सकती है ? यदि वे ज्ञानी हैं तो उन्होंने
 यज्ञानियों के सहज कार्य क्यों किया और वैराग्य तो इन अल्पित ईश्वरों में
 ही नहीं । जो दासी और बेरवाओं में अस्तक थे उनमें वैराग्य कहीं ?^३ इस
 प्रकार विशेषकर इनका गार्हस्थ्य एवं पौराणिक रूपों पर इनका विशेष
 प्यर रहा है ।

कपिलानी शाखा

माघ सम्प्रदाय में विष्णु अवतार कपिल से सम्बद्ध एक कपिलानी शाखा
 भी प्रचलित है । इस सम्प्रदाय में इस शाखा के प्रवर्तक कपिल^४ एक और तो

१ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यज्ञस्य- विषः । ज्ञान वैराग्यबोधैव यन्नां मन स्तौरया ।
 में वैराग्य के स्थान में तत्र को समाविष्ट किया गया है ।

वि ५० १ ५, ७४ वि० ५० १ ५, ७ ।

२ सिद्ध सिद्धांत पद्धति, गोपीनाथ पृ० १९ ।

३ पद पदार्थ अथ भवन्ति स भगवान । के १ पद पदार्थानामी ।

४ सिद्ध सिद्धांत पृ० १९ ।

‘पद पदार्थ अथ भवन्ति स भगवान’ “ “ ‘तदा वैराग्य कुत्र ।’ एक

५ श्री सिद्ध वीरजनाथ चरित ५ १ श्लोक ९

कपिलशास्त्रिका संवाः सिद्ध संसमयो पद्य ।

कपिलानाम भित्वाडु बोधिन्याः सूक्ष्म वैदितः ॥

विष्णु के अवतार माने गये हैं^१ और दूसरी ओर उन्हें गोरक्षनाथ का सिप्य कहा गया है।^२ नायों में प्रकृति इपर हाक की एक कृति श्री मिश्रीरत्ननाथ चरित्र में इस परम्परा का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्वयं गोरक्षनाथ उसी नाका के योगियों में मान्य हैं।

निष्कपक भाग सम्प्रदाय में विशेषकर उत्तरकाक में वैष्णव सम्प्रदायों का परिकल्पित प्रभाव उचित होने लगता है, जिसके चरित्ररूप किसी न किसी रूप में इनके उपयुक्त रूपों का अस्तित्व मिलता है।



-
- १ श्री सिद्ध गोरक्षनाथ चरित्र सू० २ श्लोक ४
 वैष्णवावतारेषु कश्चिन्न मन्त्रिणं ध्यातुं कृतम् ।
 उपदेतुं बन्धुं वैशं प्राक्सिन्धुं रोषस्तु रिचनम् ॥
- २ श्री सिद्ध गोरक्षनाथ चरित्र सू० ३ श्लोक ८
 तनुर्यो वशिष्ठो तन्व वीक्षितो तत्र इन्द्रास्त्रोत्तमवती ।
 साक्षात् गोरक्षनाथं कश्चिन्नम भगीरथा ।

चौथा अध्याय

दशावतार और सामूहिक अवतार परम्परा

दशावतार

मध्यकालीन साहित्य में दशावतारों की जा परम्परा स्थित होती है, उसका प्रारम्भिक परिचय 'महामारत' एवं पुराणों में मिलने लगता है। प्राचीन इतिहास के विद्वानों और इतिहासकारों ने सभ्यतात्मक दृष्टि से अवतारों के उद्गम एवं उनके विकासको सोचने का प्रयास किया है। विशेषकर 'महामारत' का 'मारायणीयोपाख्यान' प्रारम्भिक रूपों के निमित्त इनका मध्यविन्दु रहा है। इस उपाख्यान में म्भूम अन्तर के साथ चार ऋ, और इन के क्रम से अवतारों की तीन सूचियाँ मिलती हैं।^१ श्री मंडारकर ने इस उपाख्यान के विरचयण में महा० १२ ३३९, ७६-९८ में उपरम्भ बराह, नृसिंह वामन, परशुराम, राम वासुदेवी और कृष्ण इन ऋः अवतारों को प्रथम सूची में स्वीकार किया है।^२ पुनः दूसरी सूची महा० १९, २२९, १०३-१०४, में हंस, कूर्म, मत्स्य, और कशिक को मिलाकर प्रस्तुत की गई है जिससे इनकी सप्टया इन हो गई हैं।^३ जागे चलकर पुराणों में इनकी सख्या और क्रम दोनों दृष्टि से अधिक वैपम्य दिव्याई पड़ता है। श्री मंडारकर ने 'हरिवंश' और 'वायु पुराण' की सूचियों की तुलना कर उनकी सख्या और नाम सम्बन्धी दोनों प्रकार की विपमतायें बतलायी हैं।^४ 'विष्णु पुराण' में दशावतारों का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु परवर्ती 'अग्नि', 'बराह' आदि पुराणों में मत्स्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम राम, कृष्ण, बुध और कशिक का क्रम मिलने लगता

१ प्रकृष्ट ने भाद्र कार्तिक मास १९०६ में 'मारायणीयोपाख्यान' की एक सूची में गृहीत दो अवतारों के कुछ बार होने के कारण उनकी संख्या चार या छः मानी है।

२ मंडारकर की वक्तों जी ४६ ५८।

३ कृष्ण लोकाभिध्यानि खान्डर्ह अष्ट सत्त्वान्।

इति म्भूम मत्स्य प्रादुर्भावाद् दिवोत्पत् ॥

बाराहो मरुतिव्यथ वामनो राम एव च।

रामो वासुदेवश्च सात्वतः कशिकेव च ॥ महा० १९, ३३९, १०३-१०४।

४ मंडारकर की० व जी० ४६ ५९।

है।^१ मध्यकाल में यही ऋम सर्वाधिक प्रचलित रहा है। 'भूमिदातावत पुराण १०, २, ३०, में कृष्ण को श्लोक कर इसी ऋम से नौ अवतारों का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त मा० १० ३०, १६-२२ में इषग्रीव और शर्तुष्पुत्र के अतिरिक्त शेष ऋम दशावतारों का प्रतीत होता है। महाकाव्यों और पुराणों के इस उल्लेख के अतिरिक्त देवगढ़ में निर्मित दशावतार मंदिर गुप्तकाल के निकटवर्ती काल में प्रचलित दशावतारों की प्रपासना का स्पष्ट पता देता है। विशेषज्ञों ने इसका समय ईसा की ऋषी शताब्दी माना है।^२ श्री प्रबोध चण्ड बागची के मतानुसार छद्मगण सेन के काल में दशावतारों की मूर्तियों के निर्माण का पता चलता है।^३ श्री बालमुद्देव उपासना ने १० वीं शती में बहुत अधिक संख्या में दशावतारों की मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख किया है।^४ 'शुद्धीराज विजय नामक महाकाव्य में दशावतारों के नाम से एक नापीय के प्रचलन का भी पता चलता है।^५

उक्तपक्ष यह स्पष्ट है कि जेमेन्द्र और जयदेव के पूर्व ही भारत के कुछ क्षेत्र में धार्मिक मान्यताओं में दशावतारों का महत्त्वपूर्ण स्थान बन चुका था; जिसके अक्षयवर्ष मध्यकाल में नाथ, सत, सुषी तथा कृष्ण और राम प्रधान वैष्णव मंत्रवापों के व्याप्त रहन पर भी विजय की श्वारहवीं शताब्दी से लेकर १० वीं तक दशावतारों से सम्बद्ध पद्य-रचना की अविच्छिन्न परम्परा मिलती है।

श्री भंडारकर ने अमितगति नाम के एक विगम्बर श्रम द्वारा किन्ती हुई स० १०७० की 'धमपरीक्षा' नाम की एक पुस्तक में दशावतारों पर एक व्याकृत प्राप्त किया था।^६ उन्होंने इसे प्रारम्भिक रचनाओं में माना है यह श्लोक इस प्रकार है:—

मीना कृम पृषुः प्रोक्तो नारसिंहोऽयं नामनाः ।

रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कश्चिद् दश स्मृताः ॥

इसमें मारुत, कूर्म, पृषु, मुनिह, बामन, परशुराम, राम, बहुराम, बुद्ध और कश्चिद् के नाम आये हैं। जो मध्यकालीन परम्परा से किञ्चिन् भिन्न प्रतीत होते हैं। इसके कुछ ही काल पश्चात् कारमीरी कवि जेमेन्द्र का 'दशावतार चरित' नामका एक काव्य ग्रन्थ मिलता है, जिसमें उन्होंने दशावतारों का प्रारम्भ में ही इस प्रकार उल्लेख किया है:—

१ भंडारकर की ४० की ४ पृ० ५५, अग्नि पुराण १६, १ ।

२ ए एचडी नाथ वैष्णविस्म के जी० गोस्वामी १९५६ सं० ५ ३३ ।

३ हिरण्डी नाथ रंजान पृ ४९३ । ४ पूर्वकालीन भारत पृ० १६३ ।

५ शुद्धीराज विजय पृ० २०० २, ४३ ।

६ भंडारकर कीकवरेव वचन जी० १, पृ० ३०१ ।

मत्स्या कूर्मो बराह पुरुषहरिश्चुर्बामनो जामवद्वयम् ।

काङ्कस्या कसहस्ता स च सुगत मुनि कर्किनामा च विष्णु ॥^१

इसमें मत्स्य, कूर्म, बराह, वृसिंह, बामन परशुराम, राम कृष्ण, बुद्ध और कर्किक का उल्लेख हुआ है ।

इनके पश्चात् बगावत के कवि गुह जयदेव (१२वीं शती) ने 'गीत गोविन्द' के प्रारम्भ में दशावतारों का पृथक्-पृथक् स्तोकों में वर्णन करने के पश्चात् उस पद्य के अंत में पुनः दशावतारों को समाविष्ट कर उनकी स्तुति की है ।^२

इसमें मत्स्य, कूर्म, बराह, वृसिंह, बामन, परशुराम राम, बजराम, बुद्ध और कर्किक कृष्ण के दशविध अवतार कहे गये हैं । उपयुक्त तीनों उद्धरणों के अध्ययन से स्पष्ट है कि दोस और चर्म दोनों में दशावतारों की भावना व्याप्त थी । क्योंकि यदि अमितगति दिगम्बर जैन हैं तो जेमेन्द्र बीर और जयदेव वैष्णव । इसके अतिरिक्त जैन और बौद्ध कवियों में दशावतार विष्णु के माने गये हैं, किन्तु 'गीत गोविन्द' में कृष्ण के कहे गये हैं । अवतार-क्रम की दृष्टि से केवल अमित गति ने बराह के स्थान में पृथु का उल्लेख किया है और जयदेव ने कृष्ण के अवतारी होने के कारण बजराम का उल्लेख किया है, किन्तु मध्ययुग में विशेष कर जयदेव और जेमेन्द्र दोनों की परम्परायें अधिक प्रचलित रही हैं । अमित गति ने दूसरे स्थान पर दशावतारों में नौ अवतारों का उल्लेख किया है जिसमें परम्परागत आठे हुये दशावतारों का क्रम लुप्त होता है ।^३ मुख्यरूप से तीन शर्मों का उल्लेख होने के कारण यहाँ जयदेव की पूर्ण परंपरा विदित होती है । इस युग में दशावतारों की व्यापकता के उदाहरण स्वरूप एक और उदाहरण 'प्रभावक चरित्र'^४ में दृष्टिगत होता है, जिसमें जैन कवि प्रभावकाचार्य ने पार्षनाय की स्तुति करते हुए दशावतारों से उनकी तुलना की है ।^५

इसी युग के महाकाव्य 'पृथ्वीराज विजय' में दशावतारों का कतिपय

१ दशावतार चरित मत्स्यावतार, श्लोक २ वृ० १ ।

२ गीत गोविन्द प्रथम सर्ग प्रथम प्रकण्ड ।

३ स मत्स्यः कण्वयः कसमात्सूरो नर केसरी ।

बामनो भूषिषा रावण पर प्राणीव बुधितः ॥ चण्डार जी० १ वृ० १ १ में संशुद्धित

४ प्रभावक चरित्र श्री भूमिका के अनुसार १३वीं शती के पूर्व की रचना ।

५ दशावतारों का पश्चात् जमनीवाचनधृति ।

कि नोपतिः प्रतीपः कि न तु नोपार्षतीर्षते ॥

प्रभावक चरित्र पृ० १ श्लोक पंक्ति ४ ।

स्वयं पर प्रासंगिक उल्लेख हुआ है।^१ इस महाकाव्य के श्लोक ९-५३ की टीका से दशावतारों का स्पष्टीकरण होता है।^२

बहने दशोक्त वनजभिषा म्बित । हरिता च कामन तथा सहोदरे ष
त्रिभि मार्गवत्वमभिराम कृष्णता । त्रिकुपेपु सर्वं विपयेपु बुद्धता ष

उक्त श्लोक की टीका में दशावतारपरक अर्थ स्पष्ट किया गया है।^३ इसके नीचे ही पूर्व क नी अवतारों का उल्लेख किया गया है। जिसमें दसवें स्वाम में पूष्पीराज के अवतार का आशय मिलता है।^४ गाणुल जी ने 'हिन्दी काव्यभारा में तेरहवीं शती के पूर्वाह्न के एक अज्ञात कवि समवतः कवि बृह, की कविताओं का उदाहरण दिया है; जिनमें कूर्म बराह मुनिह कामन परशुराम राम, कृष्ण, नारायण, बुद्ध बीर कश्कि का उल्लेख हुआ है।^५ 'गोरखबानी' में विष्णु के दशावतारों का श्लोक कहा गया है।^६ नाथ सम्प्रदाय से ही सम्बद्ध 'नाथ सिद्धों की बातों' के एक पद में दशावतार का प्रासंगिक उल्लेख मरवरी के सम्वाद में हुआ है। वहीं विष्णु क अवतारजनित कष्टों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। विष्णु ने दश अवतार क्या धारण किये; उषे गर्भ में निवास कर पुनश्चम्ब सम्बन्धी महा संकट का सामना करना पड़ा।^७

आद्योपकाश में बौद्ध धर्म से प्रभावित धर्म छन्दुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक

१ पूष्पीराज विजय पृ० २५२ ६, ५ पृ २०० ८ ४४ पृ० २२४-२२९ ९, ५२-५४

२ पूष्पीराज विजय पृ २२८, ९ ५३।

३ वनजं वनजुतकं च तन्मोयथा बुद्धे इन्द्रोप स्थितिम् केपेपु मनोहरोत्थिता स्थिता सर्वं पशान्तेषु प्रबुद्धता स्थिता वनजा मरुत कूर्म बराह हरिर्नरनिह कामनी बलिभित्त मानकः परशुराम अभिरामर्षी रामः कृष्णैराशुदेव बुद्धमुत्तमः ।

पूष्पीराज विजय पृ २२८ ९, ५३।

४ नव दशान्वपि पुराणान्वात्म्यमवकम्बन् नृपतिरावतल्लहकम् ।

निकृपकका रचयितुं छिद्रिपत्रो दशमावतार कर्त्तव्यममहीत् ॥

टीका—दशानि नव संकथानि पूर्वं कथयकानि अपि इत्युपायवचनम्वाकित्य राजा लहकमवदत् तत्समवन्धेभूदित्यर्थे ननो धूमैकपदं निवारयितुं दशमावतारे कर्त्तव्यममहीत् । पूष्पीराज विजय पृ० २२८-२२९, १, ५४।

५ त्रिण वैज वरिष्ठ महिषत किञ्च विद्रिहि रंत डाव वरा ।

रिक्तवच्य विकारे वन लघु वारे वंदिन लघु वरम्बहरा ष

जुन अतिव कल्पे तपे बहसुर कल्पे बंजुन वैति विनास करा ।

कल्प पलके वैराह विजकैतो देवमाराभण तुम्ह वरा ष हिन्दी का० पृ ४५७।

६ विरम बल अवतार भाष्या असाव कम्बव ।

श्री गोरखनाथ साध्या । पद ९ ०, गोरखबानी पृ० ६७।

७ नाथ सि वा पृ १०७ पद १४ 'विनम देव दस ओगार् महा संकट पनवातुं ।'

रमाई पद्धि भी वैष्णव तर्कों से अनुरक्षित प्रतीत होत है। इस सम्प्रदाय की पद्धतियों का विस्तृत ज्ञान प्रस्तुत करने वाली रचना 'धर्म-पूजा विधान' (रचना काळ १२वीं शती) में दो-तीन स्थलों पर दशावतारों का विवरण साम्प्रदायिक रूप में उपस्थित किया गया है। दशावतार का प्रथम सम्बन्ध परम कारण निरञ्जनदेव से बताते हुए कहा गया है कि उसने मीन अवतार रूप में पशु का उद्धार कर उन्हें स्वयम्भू सदन में जाकर द दिया।^१ यह प्रभु जो ऋष्यायिदैव जगन्नाथ है, उसने कूर्म-रूप होकर जवनी को शिर पर धारण किया।^२ यहाँ यह कहना धार्मिक न हागा कि प्रायः धर्म भगळ साहित्य में पुरी जगन्नाथ को कूर्म-रूप से अभिहित किया जाता था। कूर्मावतार से सम्बन्धित कतिपय पद्यों में जगन्नाथ से ही उन्हें स्वरूपित किया जाता रहा है।^३ यहाँ जगन्नाथ निरञ्जन क पर्याय होकर व्यवहृत हुए हैं। वे मिरानम्भु निरय ठाकुर बराहकूप में मारी चिति को बसुन्धरा का रूप प्रदान करते हैं। मुर्मिह रूप में शिरष्यकशिपु का वध कर प्रह्लाद का कष्ट दूर करते हैं।^४ बामन रूप धारण कर गोसाईं ने बलि को मुटाव में डाल दिया और उससे धरा दाम ग्रहण किया। उन्होंने ही वीर भृगुराम होकर कई एकबार पृथ्वी को उत्रियहीम कर दिया था। बहुराम क रूप में अवतरित होकर मूसल क द्वारा उन्होंने असुरों का संहार किया। रामावतार क प्रसंग में उन्होंने सीता-उद्धार की घटना ग्रहण की है। जत राम ने नागर में भनु बाँध कर रावण का वध किया तथा कपियों की सहायता से जनकदुहिता का उद्धार किया।^५ नवम अवतार में हरिमूर्ति ने जगन्नाथ नाम धारण कर ललपि क तीर पर निबाम किया।^६ यहाँ इनका अवतार-कार्य विग्रहप्रधान कार्य प्रतीत होता है। क्योंकि जगल पद में कहा गया है कि य यहाँ प्रमाद-दान करते हैं और नर-लीला क समाधान क निमित्त निबाम करत हैं।^७ यहाँ एक बात और जातभव है कि दशावतार परम्परा में नवम अवतार क स्थान में प्रायः बुद्ध का नाम आता है। इस पद में बुद्ध क स्थान में जगन्नाथ का प्रयोग हुआ है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः दशावतार-परम्परा क नवम स्थान में कमी बुद्ध और कमी जगन्नाथ का प्रयोग होने क कारण जगन्नाथ और बुद्ध परम्पर अभिहित किए गये। इस क्रम क हमें अवतार हैं—

१ धर्मपूजा विधान पृ २०५।

२ धर्मपूजा विधान पृ २१।

३ धर्मपुराण। मयूर मठ १७वीं शती पृ १७।

४ धर्मपूजा विधान पृ० २०६।

५ धर्मपूजा विधान पृ २०६।

६ धर्मपूजा विधान पृ० २०६।

७ धर्मपूजा विधान पृ० २०७।

'प्रजाद कोरिवा बाग् नरे बीजा सविधान समनेर करिके मेवासा'।

कविक। यहाँ इनके किञ्चित् विलुप्त रूप का वर्णन किया गया है।^१ इस रूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि कविक-युग में चारों वर्ण एककार हो गये थे और प्रायः सभी लोग यम-यम से विमुक्त हो रहे थे।^२ सम्भवतः उस समय कविक ने यम की रक्षा की।

उपर्युक्त दशावतार-क्रम की अपनी कुछ विशेषताएँ कथित होती हैं। अभी तक दशावतार-परम्परा की चर्चा करने वाले कवियों में जैब बीड़ आदि भी रहे हैं परन्तु उन्होंने दशावतार की परम्परा का कहीं सम्प्रदायीकरण नहीं किया। पर मसूत क्रम में अथर्वतारी या अथर्वतार-धारक रूप निरञ्जनदेव नाम के एक साम्प्रदायिक उपास्य का विहित होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ववर्ती मध्यकाल में विष्णु या कृष्ण की दशावतार-परम्पराओं का सम्बन्ध शैल्युक्त प्रकृति से किञ्चित् भिन्न साम्प्रदायिक उपास्यों के साथ भी स्थापित किया जाता था।

‘यम-युवा-विधान की दूसरी दशावतार परम्परा निरञ्जन ठाकुर के द्वारा विष्णु और रुद्र रूप में गुणायक अथर्वतारी की चर्चा करने के अनन्तर आरम्भ होती है। इस परम्परा के अनुसार निराकार ठाकुर मीन कूर्म बराह गरसिंह, बट्ट ब्रह्मरुद्र नृगुपति वृषारथ-सूत बलभद्र-रूप, बुद्ध रूप तथा कविक-रूप धारण करते हैं।^३ इसमें पाँचवें रूप ‘बट्ट ब्रह्मरुद्र सम्भवतः वामन से ही सम्बन्ध प्रतीत होता है। जैसा कि उस स्थल के प्रसंग से स्पष्ट है। किन्तु नवम अवतार का रूप जगन्नाथ के स्थान में बुद्ध का है।^४ इससे ऐसा लगता है कि उस काल में जगन्नाथ और बुद्ध अभिन्न ही नहीं थे अपितु परस्पर एक दूसरे के पर्याय रूप में भी प्रचलित थे। क्योंकि बीड़ साहित्य में भी बुद्ध के किञ्चित् प्रतिपक्ष स्थलों पर जगन्नाथ का प्रयोग मिलता है। इस क्रम के अन्त में कहा गया है कि जो इस कथा को सुनता है उसे निरञ्जन वर दत्ते हैं।^५ इससे सिद्ध होता है कि मध्यकालीन युग में दशावतार अत्यन्त लोकप्रिय थे क्योंकि जनसमूह का मन आकर्षित करने के लिए ही यम ठाकुर या निरञ्जन देव से उपर्युक्त दशावतार-परम्परा का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

इन दो परम्पराओं के अतिरिक्त एक तीसरी परम्परा भी ‘यम-युवा

१. यम-युवा विधान पृ० १००।

२. यम-युवा विधान पृ० १०१।

३. यम-युवा विधान पृ० १०८।

४. यम-युवा विधान पृ० १०० : ‘बट्ट ब्रह्मरुद्र वरि शोकि रसानल पुरि।’

५. यम-यु वि पृ० १०८ : ‘अर्धविर तिरे त्वाव शोव कुरे भाग्यान्।’

६. यम-यु वि पृ० १०८ : ‘य कथा के जन दत्ते तारे वर देन निरञ्जन।’

विषय में मिलती है। यह परम्परा आगम-परम्परा के आधार पर सूचीत हुई विदित होती है। जैसा कि हमके शीर्षक 'आगम-विषय' से स्पष्ट है। इसमें धर्म ठाकुर के मुख्य रूप की सर्वा करने के अनन्तर उनके दृष्टावतार-रूप का ध्यान किया गया है। इस क्रम के अनुसार उनका प्रथम रूप श्रीग का है परन्तु हमारा रूप 'बापब्रह्म' बताया गया है। इस रूप में वे सम्भवतः बाह्य का समुद्र बौधे हैं। तीसरा रूप बराह, चतुर्थ सूर्यिह, पंचम बामन (बामन का पर्याय) रूप तथा षष्ठ श्रीगम-रूप है। इस क्रम का सप्तम रूप कृष्ण का ही एक रूपविशेष विदित होता है। गोपियों के कृष्ण का काकिलह और कम-बध से सम्बन्ध होते हुए भी वे विप्रकृष्ण में धम्म देने वाले तथा 'गोपालकृष्ण' नाम वाले व्यक्ति बताये गए हैं।^१ आर्यों अवतार इच्छर माने गये हैं। इस अवतार में गोसाईं ने कृष्ण का सम्बन्ध 'ब्रह्म' से स्थापित किया। नवम अवतार 'कलकिनी' रूप में सम्भवतः कलिक का ही परिवर्तित रूप विदित होता है। इस अवतार में वे 'ब्रह्माय राजत' का ब्रह्म करने वाले कहे गए हैं।^२ दसवाँ अवतार यहाँ पुनः अज्ञान को माना गया है। दसवाँ अवतार में उनकी प्रतिमा का वर्णन किया गया है।^३

इस परम्परा की विशेषता यह है कि सर्वप्रथम इसे आगम-परम्परा में प्रद्वेष किया गया है। इसके अवतारी या अवतार प्रद्वेष करने वाले धर्म ठाकुर स्वयं भी प्रतिमा-विग्रह होने के नाते आगमों द्वारा प्रवर्तित विग्रहवाद के ही परिचायक हैं। सम्भव है कि उपयुक्त उनकी दृष्टावतार-परम्परा के अन्वय रूप भी उस क्षेत्र और सम्प्रदाय में प्रचलित विभिन्न विग्रहों के ही प्रतीक रूप हों। उनमें अन्तिम अज्ञान तो निर्दिष्ट रूप से विग्रह मूर्ति है। किन्तु अन्य रूप भी पौराणिक दृष्टावतार-परम्परा से किंकिन् भिन्न होने के कारण स्थानीय प्रभावों से कुछ प्रतिमा-विग्रह ही विदित होते हैं।

निष्कर्षतः 'धर्म-पूजा विधान' की उपयुक्त तीन परम्पराओं से स्पष्ट है कि वैष्णवतर सम्प्रदायों में जिन सम्भववादी प्रवृत्तियों का विकास हो रहा था, उसके कठोररूप दृष्टावतारों को भी अन्य सम्प्रदायों में अपनाया गया। आक्रोशकालीन दृष्टावतार परम्पराओं के विकास में विग्रह मूर्तियों का ही अधिक प्रयोग होने के कारण पाँचराज या आगम-सम्मत तत्त्वों का अधिक योग था। परिणामतः वे कथक अवतारभाष्य नहीं थे अपितु पञ्चास्य के रूप में विद्य

१. धर्म पू. वि. पृ. २२४ : 'विप्रकृष्ण उभि घोपालकृष्णे नाम'

२. धर्म पू. वि. पृ. २२४ : 'ब्रह्म माहिया बने ब्रह्माय राजत'

३. धर्म पू. वि. पृ. २२४ :

पूजित और भक्तों का उद्धार करने वाले अवतार विग्रह है। तत्कालीन सविग्रह एवं 'डिबेस्टिक' महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' के एक अध्याय का नाम ही 'वसम' है। जिसमें प्रथम संक्षेप में श्रीर तदनन्तर विस्तारपूर्वक दशावतारों का वर्णन किया गया है।^१ 'पृथ्वीराज रासो' के विचारक डॉ० नामवर सिंह के कथनानुसार पृथ्वीराज रासो की प्रायः सभी हस्तलिखित प्रतियों में दशावतारों का उल्लेख हुआ है। 'वसम' के अतिरिक्त इस महाकाव्य में अन्य स्थलों पर भी दशावतारों का उल्लेख या वर्णन हुआ है।^२ 'वसम' के प्रारम्भ में महाकवि चर ने इस प्रकार प्रार्थना की है :

मच्छ कब्धु बाराह मन्मिय नारसिध धामन करसमिय ।

सुख प्मरय हकधर नमिय पुत्र कटक नमो वर नमिमन ३

'पृथ्वीराज रासो' के उक्त उद्धार में कृष्ण के स्थान में हनुमत् बहुराम का नाम आया है तथा क्रम अवरोध की परम्परा में है। साथ ही 'वसम' में अहाँ विस्तारपूर्वक दशावतारों का वर्णन हुआ है, राधा-कृष्ण के शत्रुहारी रूप का श्रीकृष्ण की अन्य स्वीकारों का वर्णन हुआ है।

निर्गुण श्रीर निराकार ईश्वर के उपासक मत्त भक्तों के पक्षों में श्री दशावतारों का कहीं प्रासंगिक उल्लेख और कहीं विस्तृत वर्णन हुआ है। बौं तो हम बगों के प्रायः सभी संत अवतारवाद के साथ ही दशावतारों के भी आस्त्येवक रहे हैं। परन्तु इन आलोचक संतों के अतिरिक्त कुछ संत ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने मनुष्योपासक भक्तों की भाँति दशावतारों का विस्तृत वर्णन किया है। इन संतों को यदि चेत की दृष्टि से देखा जाय तो सम्भवतः समस्त भारतीय सक्ति-काव्यों में ही दशावतारों के एक या विपक्ष रूप में वर्णन किये जाने का अनुमान किया जा सकता है।

परन्तु मध्यकाहीन हिन्दी या उमम भिकर्नी तुलसी सरस्त्री और बगाली संतों की कुछ रचनाओं में भी दशावतारों की चर्चा हुई है।

निर्गुण भक्त कवियों में प्रसुत कबीर के साहित्य में दशावतारों की संख्या

१ पृथ्वीराज रासो । भा० प्र० स० । जी० १ दृष्टा समय वसम ।

२ कहीं मच्छ अवतार हनुमत् मत्त मत्त हिन काव ।

क्य क्य भक्ति दैत्य दक्ति तुपद दगा रवि काम ४

पृथ्वीराज रासो । भा० प्र० स० । जी० १ पृ० ११४७, सर्व ४५ छंद १४५ पुवा १४६ से शिष्ट में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

३ पृथ्वीराज रासो जी० १ दृष्टा समय, वसम पृ० ८१ ।

४ पृथ्वीराज रासो जी० १ दृष्टा समय, दसम पृ० ११८-११९ तक ।

करने वाले कतिपय पद मिलते हैं। इन पदों में अम्य रुद्रियों क सहस्र कबीर ने वशावतारों का भी उल्लेख किया है। 'कबीर वीरक में सगृहीत एक पद में कहा गया है कि जो अवसरित होकर पुनः सुख हो जाते हैं, व ईश्वर के अवतार नहीं हैं अपितु यह सब माया का कार्य है।' न तो कभी मत्स्य-वृर्म हुए, न सन्नासुर का सहार किया। न किमी बराह ने कभी पृथ्वी धारण की। हिरण्यकशिपु को नन्द ने विनीण करने वाला कर्ता नहीं हो सकता। इसी प्रकार बलि के बामन द्वारा दहन की जो बात कही जाती है यह सब माया है। परशुराम ने भी अश्रिय बर्ग का सहार नहीं किया अपितु यह सब माया की करतूत रही है। गोपी-बालक तथा कर्म-बध की कथाएँ भी मायिक हैं। न तो उसे कभी बुद्ध कहा गया और न कभी उसने जसुरों का सहार किया। वह करता मछा करिक क्यों होता है। इस प्रकार यह वन अवतार की मारी किया माया की ही रचना है। 'कबीर बचनावली क एक पद में कहा गया है कि वे वशावतार निरञ्जन कहे जाने पर भी जपना नहीं हो सकते क्योंकि इन्होंने भी साधारण मनुष्यों की तरह अपनी-अपनी करनी का फल भोगा है।'

कबीर के ही समान अम्य विर्गुण भाला क सर्वों ने भी वशावतारों की जालोचना की है। मच्छन्दास को वशावतारों क मूक-उग्रम में ही संदेह है। व बड़े आत्मर्य से पूछते हैं कि ये वशावतार कहाँ से आए और किस करतार ने इनका निर्माण किया? ऐसे रूप तो अनेक हैं इन रूपों के भ्रम में कभी भी नहीं पड़ना चाहिए।

मत्त कवि रज्जव को वशावतारों की विविध सख्या पर ही संदेह है। व विशेष कर अवतारों की इन और बीबीस की सख्या ही दल कर भड़कते हैं। इसी से वे ऐसे पत्नी का स्मरण करते हैं जो अकला सभी का सिरमौर है। सुन्दर दाम के मठानुमार व अवतार सूसरे की कहाँ तक रक्षा कर सकते हैं,

- १ कबीर वीरक पृ० ११ पद ८। २ वही पृ० ११ पद ८।
 ३ वही पृ० ११ पद ८ 'बस बीतार ईसरो मावा, करवा के दिन वृथा।'
 ४ कबीर बचनावली पृ० ११ बस बीतार निरञ्जन कविने, सी जपना न होई।
 यह तो जवनी करनी जियोरे कर्ता और हो होई ॥
 ५. मच्छन्दास की बानी पृ० १५-१६ बस बीतार कहाँ से आये, किन के नदु करवात
 तवा—बस बीतार देखि मठ भूलो ऐसे रूप वनेरे।
 ६. रज्जव की की बानी पृ० ११८ पद ७७
 एक कही बीतार इन एक कही बीबीस।
 रज्जव दामिरे सी बधे, जो तर हो के सोस ॥

जिन दशावतारों के अवतरित होने की चर्चा की जाती है उन्हें तो स्वयं काक छपटा मार कर ले जाता है।^१

सत कवियों की दशावतार सम्बन्धी इस आलोचना से स्पष्ट है कि उनका युग में दशावतारों की उपासना अधिक प्रचलित थी। इसी से दशावतारों की ओर लक्ष्य करके उनके पद लिखे गए हैं। इन पदों से स्पष्ट है कि वे पर ब्रह्म के अवतरित उपासक विग्रह के रूप में पृथित होते थे इसी से अपने साक्षत, समातन और निराकार ईश्वर के साथ सतों ने उनकी बखरता तथा मानवोचित कार्यों की विरोधात्मक तुलना की है।

उपर्युक्त आलोचक सतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी सत दृष्टिगत होते हैं जिन्होंने प्रकामान्तर में अवतारवाद का अस्तित्व स्वीकार किया है। उनका दशावतारपरक पदों से इसका स्पष्टीकरण ही जाता है। शिव गुरुओं में गुरु अजुन का एक ऐसा पद 'गुरु प्रथम साहब में मिलता है जिसमें उनके उपासक के अनेक विष्णुवासी पदायों का प्रयोग हुआ है। उसी क्रम में क्रमबद्ध दशावतारों का तो नहीं परन्तु बिना क्रम के ही दशावतारों में से कुछ और कविक को छोड़ अन्य सभी का उल्लेख हुआ है।^२ इन्हें अतिरिक्त 'हिन्दी की मराठी सतों की देन' नामक पुस्तक में सचदेवी सती के दो मराठी सतों की रचनाओं में दशावतारों का उल्लेख हुआ है। मराठी संत वेणुदास की एक सुदृढ़ रचना में राम-कृष्ण दोनों को अवतारी मान कर उन्हें दशावतार-रूप में अवतरित होने काका कहा गया गया है।^३ इनके समकालीन बाळ कृष्ण लक्ष्मण पाठक के 'ललित मगध' नामक रचनाओं में दशावतारपरक चर्चाछाप दृष्टिगत होते हैं। इन चर्चाछापों में दशावतारों की चर्चा के साथ-साथ उनके बुद्ध-सहायक और हीनोद्धारक प्रयोजनों का भी उल्लेख किया गया है। इन रचनाओं में लुहीदार और पाटील के चर्चाछाप में लुहीदार पाटील का उल्लेख देता है कि उसने दशावतारों में श्रीकरी बनाई। पुनः वह प्रत्येक अवतार का नाम लेता है।^४

१ दृ० धं० मा० २५ १ ८ पद ६ : कबत कत भीतर कग में भीतर भार ।
काक छेऊ गपवि छीने बल नहीं थोर ॥

२ दृ० दं० ता० दृ० २ ८१-२०८१ ।

३ दि० म० सं० देन पृ० भूमिका ४ : अनेक बने संरक्षण
रस अवतार राम कृष्ण बन्धो है
सब बीरो सुशाक

४ दि० म० सं० देन पृ० ४५-४६ ।

हेतु महाराज विर्गुप निराकार, जब निर बस अवतार ।

किया कुरुम का संहार वो हीनोद्धार महाराज है, मेहेरान सनाम ।

५ दि० म० सं० देन पृ० ४६ : चाहीत—दुपमे कदा श्रीकरी बकाई ।

इन स्थांगों में प्रचलित वृक्षावतारपरक बार्ताकाव्यों से मिय होता है कि १० वीं शती से पूर्व और समकालीन समाज में वृक्षावतार बहुत अधिक लोक-प्रिय थे; क्योंकि महाराष्ट्री भाटकों के प्रारम्भिक श्रोत हिन्दी भाषा में लिखित-इन कथित भागक स्थांगों में ही माने जाते हैं।^१ अतः लोकप्रिय स्थांगों में वृक्षावतारों का उल्लेख स्वतः उनके अल्पभिक्ष प्रचार का परिचय देता है।

इसी प्रकार बंगाल के १० वीं शती के कवि भूपूर भट्ट की रचना 'श्री धर्म पुराण में वृक्षावतारों का उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ में धर्म के अनेक विग्रह रूपों की चर्चा करते समय सम्भवतः धर्म सम्प्रदाय में विग्रह-रूप में मास्य रूपक वृक्षावतार-रूप का प्रारम्भिक उल्लेख हुआ है।^२ इस पुराण के अनुसार धर्म सम्प्रदाय के प्रवर्तक जब निरञ्जन की स्तुति करते हैं, तब अपने उपास्य को ब्रह्म सनातन परमेश परात्पर प्रभुति कह्य के उपरान्त 'मरस्यादि मूर्त्तिमेदे' मगवान बतहाते हैं। यह कभी निराकार और साकार भी होता है।^३ इस पुराण में-वृक्षावतारों का सख्यात्मक प्रमाण भी 'बृह इन्दीवर इल कमल आहृति' के रूप में दृष्टिगत होता है।^४

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिन्दी से इतर क्षेत्र के सम्प्रदायों में भी वृक्षावतारों का पर्याप्त प्रभाव था।

मैथिल कवि बिद्यापति की वृक्षावतारों पर की गई रचना नहीं मिलती, परन्तु पदावली में इन्होंने कतिपय स्थलों पर अपने आश्रयदाता शिवसिंह रूप नारायण को एकादश अवतार कहा है।^५

इससे सिद्ध होता है कि बिद्यापति सांस्कृतिक युग में प्रचलित वृक्षावतार की प्रभुति में पूर्णतः परिचित थे। एकादश अवतार-सम्बन्धी इनके कतिपय उल्लेखों को देखते यह भी अनुमान किया जा सकता है कि इन्होंने पूर्ववर्ती अवस्था के सदृश वृक्षावतार-सम्बन्धी भी कोई रचना की हो जो अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हो। क्योंकि बंगाल के प्रसिद्ध मन्त्र कवि चण्डीदास को अमान्य इनके समकालीन माने जाते हैं उनका 'श्रीहृष्णकीर्तन नाम से

एकीशार—बृह अवतार में। पदवीक—श्रीने से दस अवतार में।

एकीशार—मन्त्र कण्ठ बराह, मरसिंह रामन परशुराम राम, श्रीहृष्ण कीर्तन कवची पेशे महाराज के दस अवतार में नौकरी बनाई।

१ दि० म सं० देव पृ० ४५। २ धर्म पुराण (संकलन) पृ० ३०।

३ धर्म पुराण पृ० १८। ४ धर्म पुराण पृ० ३०।

५. बिद्यापति (कौमुदीनाम मित्र) पृ० १३१-१३३ पद १०५ और पृ० १५१ पद १९०।

'रामसिंहसिंह रूपनारायण एकादश अवतारे।'

परगृहीत पद-संग्रह में पुत्रक प्रामाणिक रूप से कतिपय अवतारों के उल्लेखों के अतिरिक्त दशावतार-सम्बन्धी भी एक पद मिलता है। जगदीशस म इस पद में श्रीकृष्ण हरि का सर्वबाही रूप चित्रित करते हुए कहा है कि बही बैबता हरि जल, धल बन गिरि, स्वर्ग, मार्ग पाताक आवि भी है। बही सूर्य, चन्द्र, दिग्पाक-म्बरूप हरि स्त्रीकातनु धारण कर गोपाक-रूप में अवतरित हुआ है। उमी ने मीन रूप में पशों का उद्धार किया कम्ठ-शरीर से पृष्ठी धारण किया, महाकाल-रूप (समवतः बराह क्य ही महाका) हाकर सेङ्गिनी तोष्टन किया नरहरि रूप से हिरण्य का विहारण किया बामन-रूप से बकि बरे दूला, परशुराम-रूप से बवियों का नाश किया श्रीराम-रूप से राम्य का बध किया बुद्ध-रूप धारण कर गिरजम का चिठन किया तथा कश्कि-रूप धारण कर हृष्टजनों का दूहन किया। इम प्रकार कम क बध क विमित भी वे ही उपनम हुए थे।^१

इसमें सम्भेद नहीं कि जगदीशस का यह दशावतार-वर्णन तत्कालीन परम्परा के ही अनुगमन-स्वरूप है। इसमें एक ओर अवतार तथा वहीं मर्षेय में अवतारों के प्रयोजन का भी उल्लेख हुआ है। परन्तु अन्य अवतारों के प्रयोजनों की अपेक्षा बुद्ध का अवतार-प्रयोजन अन्यन्त महत्त्वपूर्ण है।^२ उसमें बुद्ध विरंजन का चिठन करने वाले बतए गए हैं। अतः इस पंक्ति से शून्य पुराणकारों का बुद्ध ने सम्बन्ध स्पष्ट है।

'रामकवचबुध' में तानसेन के पूर्व के^३ एक गाणक वैजूबाबरा की एकादशावतार सम्बन्धी रचनायें मिलती हैं।^४ उस पद में पूर्वकाम कृष्ण-विष्णु के जगन्निवार जनमतिपासन, कंसबध सप्त-उद्धार मुष-मार-हरण आदि अवतारी कार्यों की चर्चा करते हुये 'मय, कङ्क बराह नरहर बामन परमराम, राम इरुपर, नारायण बुद्ध और कश्कि' के नाम प्रयुक्त हुए हैं।^५ उपर्युक्त अवतरणों से विदित होता है कि दशावतारों की जागे चम्बर

१ श्रीकृष्ण कीर्तव (बंहीदास) पृ० १२।

२ श्रीकृष्ण कीर्तव पृ० १२। 'बुद्ध कम बरि चिन्तले विरंजन।'

३ विन्धी साहित्य का इतिहास सं० २००५ वि, पृ० २६८, श्री रामचन्द्र गुप्त ने इसका समय ठानसेन से पूर्व माना है।

४ बप १०, पृ० १०-१२ में बालदेव के अतिरिक्त उनके श्वर की श्रीकृष्ण एकावत अवतारों का बतेंक हुआ है, परन्तु बतयें नारायण व शंकर इत्यादि हैं।

५. मय कङ्क बराह नरहर बामन परमराम,
राम इरुपर नारायण बुध कश्कि जाना विव वनु वारन।

बुद्ध के अनुपम से अनेक श्लोक वगैरुप वगुनेष बरे अन्ये श्लोक के जन्म बरन निवारन।

रामचन्द्रगुप्त जी० २, पृ० १२० वर २।

रुद्रिबद्ध और रुद्रिमुक्त दो प्रकार की परम्परार्थ बहू पड़ी थीं; क्योंकि महाकवि सूरदास के सूर सागर में दशावतारों के क्रम से अवतारों के नाम प्रयुक्त हुये हैं। परन्तु वस-सख्या की परम्परा का पालन नहीं हुआ है। इस क्रम से प्रयुक्त उनक पदों में एक साथ अर्थात् मरस्य, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन परशुराम और राम की ही चर्चा हुई है।^१ कृष्ण-युव के अवतारों को अभिम्यक्त करने की यह प्रवृत्ति श्रीमद्भागवत में भी उद्धित होती है।^२ 'सूरसागर' में, पृथक् पदों में दशावतार-सम्बन्धी पद नहीं मिलते।^३ किन्तु 'रागकल्पद्रुम' में सूर के नाम से दशावतार-सम्बन्धी एक रचना मिलती है जिसकी एक पक्ति इस प्रकार है —

‘दशम स्कन्ध भागवत गात्रै रूप धारण भगवत ।

इस पद में ब्रह्म नारायण, श्रीपति कमलाकान्त के दशावतारों का वर्णन है। अवतार-क्रम में श्रीकृष्ण के स्थान में बलभद्र और युद्ध के स्थान में जगन्नाथ का प्रयोग हुआ है।^४ सूर के अतिरिक्त दशावतारों पर परमानन्द दास के नाम से भी एक पद मिलता है। उसमें दशावतार धारण करने वाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं, तथा अवतार-क्रम मरस्य, कूर्म, बराह, वामन राम नृसिंह, परशुराम युद्ध और कल्कि है।^५ इसकी भाषा में खड़ी बोली की प्रवृत्ति

१ सूर सागर पृ० १०४ पद २० २२७। २. मा २० १, ४०

मत्स्वाम्यकल्पद्रुमनृसिंहबराहसंसाराम्बुप्रविशुषेणु दशावतार ।

३ सूरसागर पृ २९६, पद ६६ में अवतारों के वर्णन में ही इस अवतारों को एक स्थान पर और पुनः उसी पद में चौदह अवतारों को कहा गया है। इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि सूरदास तत्कालीन युग में प्रचलित दशावतार परम्परा से अवगत थे।

४ श्री नारायण ब्रह्म वरायण श्रीपति कमलकान्त ।

वाम अवन्त कर्णो अगि वरुणो शेष न वार कर्तव्य ।

मण्ड कण्ड शुकुल भरहर प्रभू वामन रूप वरतं ।

परशुराम अहि रामचन्द्र शेष बीला कोटि करतं ।

शैवकर्मज्ञ सव देव संशारे अंत के वैद्य वर्ततं ।

जगन्नाथ जगमय चित्तो वेडे है निवर्ततं ।

कल्कीक होव कर्णक कर्णो हरिये बन वरतं गुणवर्ततं ।

दशम स्कन्ध मात्स्वय गात्रै रूप धारण भगवन्तं ।

परम्य दूरन पुस्वीचम आयम नियम धनन्त ॥

सूरदास प्रभु को पार व पावत जगन्ध वनादि अवन्तं ।

रागकल्पद्रुम की १ पृ० ४४३ पद २।

५. वरमैश्वर पुस्वोत्तम स्वामी वन्द्यमणि ह्यन कर्णकान्त है ।

मण्ड कण्ड बराह श्री वामन रामरूप दर्शावा है ॥

ब्रह्म उनकी रचना होम में सेवक को सम्बोध है। महाकवि तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में अपने इष्टदेव श्रीराम की दशावतारपरक स्तुति की है। उस पद में 'कोशलाधीस जगदीश' जगत-हित के मिमित्त अपनी विपुल शैला का विस्तार करते हैं। उसी क्रम में इन्होंने मारुत ब्राह्म, कन्द, भृगुराजबधु, वामन परशुधर राम, राघारमन, बुद्ध और कल्कि का क्रमशः वर्णन किया है। दशावतारों के रूप में इष्टदेव के अवतार की परम्परा विभिन्न साम्प्रदायिक पुराणों की देन है। इनमें इष्टदेवों की दशावतारपरक स्तुतियाँ गायी गई हैं। जैसे 'कल्किपुराण' में भविष्य में होने वाले कल्कि की भी दशावतारपरक स्तुति की गई है। श्रीरूपककाजी ने 'मच्छमाङ्क' में तुलसीदास का दशावतारों से सम्बद्ध एक दोहा उद्धृत किया है जो नागरी प्रचारिणी मण्डल काशी से प्रकाशित 'तुलसीप्रवाचनी' में नहीं मिलता।

उस दोहे में दशावतारों को द्वा बनधर दो वारिधर चार विप्र और दो राठ के रूप में चार बगों में विभक्त किया गया है।^१ तत्कालीन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का वर्गीकरण दृष्टिगत नहीं होता किन्तु श्री ब्रह्मनाथार्पण के 'श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध सुबोधिनी' (भा० १०, २ ४०) में प्रयुक्त भी अवतारों को लकड़ा बनजा और लोकराज के रूप में विभक्त किया है।^२ तुलसीदास के अनन्तर श्रीकृष्णदास ने भी 'रामचन्द्रिका' में रामचन्द्र की स्तुति करते हुए दशावतारों का वर्णन किया है।^३

यहाँ भी राम ही दशावतारों के रूप में अवतरित होने वाले बतलाये गये हैं। अवतारों में कूर्म मरुत ब्राह्म वामन परशुराम राम कृष्ण, बुद्ध कल्कि का क्रम है।

रामावतार के पश्चात् जानें वाले अवतारों के लिए भविष्य काक का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि तुम्हीं पुनः कृष्ण रूप धारण कर दुष्टों का

लम्ब फारि प्रायः मरुति भव प्रकाश भूदाया है।

परशुराम पुन नि कर्मक हो पुन का मार विदाया है।

परमानन्द कृष्ण मन मीहन चरण कमल विन लाया है।

राजमन्त्रद्वय श्री १५ ८८।

१. तुलसीप्रवाचनी पृ० २ विनयपत्रिका पृ० ४०४ पद ५२।

२. कल्किपुराण १, २ ११-१०। ३. लक्ष्मण रूपककाजी पृ० ४८,

दुःख बनधर, बुद्ध वारिधर चार विप्र दो राठ।

तुलसी दश बंध गारकै, प्रवसापर लरि काठ ठ

४. श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध सुबोधिनी श्री० भा० १०, २ ४०, की व्याख्या।

५. रामचन्द्रिका संस्कृत कोशुपी पूर्णार्द्र पृ० १२०-१२१।

हमन कर मू भार हरोगे बीर होकर क्या करोगे और पुनः कविक-रूप में श्लेष-समूह का नाश करोगे।^१ श्रीराम के द्वारा वशावतार-धारण-सम्बन्धी एक पद कान्हर दास का मिलता है। इस पद के अनुसार रामचन्द्र जी ने मीन-रूप में अज्ञानुर का वध कर मछा को वेद प्रदान किया और देवताओं का काम किया। कच्छप-रूप में मन्दराचल पीठ पर धारण किया। इसमें बराह अवतार के कार्यों का उल्लेख नहीं है। उन्होंने नृसिंह अवतार में महाद्र की प्रतिज्ञा पूरी की है। वही वामन बलि के स्वामी हैं और परशुराम बरनामी है। इन्होंने ही रघुवध को उन्मूलित किया है। वे ही भागर कृष्णानन्द हैं। बुद्ध और निकटक इन्हीं के रूप हैं।^२

इसके अतिरिक्त निम्बाक सग्रवाय के कवि परशुरामाचार्य ने 'परशुराम सागर में 'दस बीतार को जोड़ी' शीर्षक में पृथक्-पृथक् क्रमशः मरुत, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम राम कृष्ण जगन्नाथ (जगन्नाथपुरी) और कविक का वणन किया है। इन अवतारों के कार्यों में परम्परागत अवतारी कार्यों का ही उल्लेख है।^३ किन्तु इस दश में बुद्ध के स्थान में उड़ीसा के जगन्नाथ जी गृहीत हुए हैं।^४ रसिक सग्रवाय के सिद्धांतों के विवेचक एक परवर्ती संस्कृत रचना 'पुराण संहिता' में भी वशावतारों का उल्लेख पृथक्-पृथक् श्लोकों में

१ रामचन्द्रिका केन्द्र ओम्बो पूर्वाह्न पृ० ३६ - ३६१।

२ श्री रघुनाथ जी मेरे का वरन सके गुण धरे।
 मनु प्रथम मीन रूप बरयो संकाहर गरव प्रहारयो ॥
 मछा को वेद को दीने तुम काम तुल के कीने।
 मनु कच्छप रूप बनायो मन्दराचल पीठ बरायो ॥
 पारु नरहरि बघुबारी महत्कार प्रदिष्टा पारी।
 तुम ही एक वामन स्वामी तुम परशुराम बरनामी ॥
 तुम ही रघुवध उजायैर तुम कृष्णानन्द के नाम।
 बुद्ध निकटक रूप तिहारो हर यत्न के रत्नारी ॥
 अवधन गन आप तिहारो आप दास कान्हर बलिहारी।

रागकल्पद्रुम जी० १ पृ ३७०।

३ परशुराम सागर (इत्यतिथित प्रति) का प्र० समा काशी पृ० नहीं दिया हुआ है। वशावतार को जोड़ी।

४ जगन्नाथ जगन्नाथ सङ्घ प्रति भोग पुरन्दर वेदि कार्य।
 पूर्य मछा मकल तुष्ट की निधि प्रगट उद्योग है हरिरारं ॥
 काके हीरानाम भोग विधि तुन्दर चन्दन वैर चर्म सुप्रसारं।
 परशुराम कहे मनु को हम पावत गावन सम्य सने दुष्ट कार्य ॥
 परशुराम सागर 'दस बीतार को जोड़ी' और बुद्ध जगन्नाथ संबंध पीडावगा शीर्षक में इत्यम्प है।

हुआ है; उसमें क्रमशः मत्स्य बराह वृषिह शङ्करयी राम कमलिनि सुत राम, हरुघर बुद्ध और कल्कि वर्णित हुए हैं।^१ निम्बाक सम्प्रदाय के श्रीगुम्बराचार्य ने सर्वेश्वर श्याम सुन्दर की स्तुति करते हुए उनके द्वारा प्रारम्भ किए हुए एक वृथावतारों का उल्लेख किया है।^२ इसके अतिरिक्त 'रागकल्पद्रुम' में कुछ अज्ञात कवियों की वृथावतार-सम्बन्धी रचनाएँ मिलती हैं।^३ इनमें दो पदों के रचयिता क्रमशः त्रिविक्रमाल और रणबहादुर विदित होते हैं। तीसरे का नामोल्लेख नहीं है। इनका इतिहास प्रयोगों में उल्लेख न होने के कारण तत्कालीन या परवर्ती होने का कुछ पता नहीं चलता। रीतिकालीन वैष्णव कवि ने भी वृथावतारों का वर्णन रीति-शैली में किया है।^४ 'रागकल्पद्रुम' में अपरिचित कवि का एक और पद्य मिलता है। उसकी प्रथम पंक्ति में जगन्नाथ, बलभद्र और सहोदरा का नाम रखे का आग्रह होने के कारण जगन्नाथ अर्थात् सम्बन्ध विदित होता है। इसकी अंतिम पंक्ति में बुद्धाक्षय के वास्ती महाप्रभु को कष्टी रूप में आविर्भूत होने का उचित कहा गया है।^५

उपर्युक्त अपरिचित कवियों के परवर्ती होने की सम्भावना हो सकती है। परन्तु उनका पूर्व ११वीं से १७वीं के अन्त तक के कवियों की रचनाओं की देल कर आष्टोपकाण्ड में वृथावतार की अविच्छिन्न परम्परा का पर्वत स्पर्श-करण हो जाता है।

निष्कर्ष

वृथावतार-परम्परा के क्रमिक अध्ययन से मध्यकालीन साहित्य-सम्बन्धी कल्पित मान्यताओं पर प्रकाश पड़ता है।

१ बुटाल संदिता श्रीकृष्ण संस्कृत प्रयोगाळा इ. ४२ अ० ८, ११-४२।

२ मत्स्यराज कूर्माक्ष बराहवासी श्रीवारसिंहाय अ. वामनाथ।

आर्षाक्ष रामायण द्यूतमात्र मूषी नवस्तवैव बहुतमात्र प

बुद्धाव वै कश्चिन्न परमार्थदशानाभवात्पिबपटाव त्रिविक्र।

अधिनववृक्षिप्रतिभ्रवाग्ने कृष्णाव सर्वादिनिधानवाग्ने ४

कम्पान १० व. अ. १, पृ० ७११ में निम्बाक विद्वान्ति में अ. १११ श्लोक ५, ६।

३ रागकल्पद्रुम श्री० १ इ. ५१ व. ११ शिवकृपाल, पृ० १११ व. ८५ रणबहादुर,

पृ० १८७ व. १० वा. नवल।

४ देव प्रत्यावर्षी इ. ११ अ. ४४।

५ जगन्नाथ बलभद्र सहोदरा अ. सुररत्नम १८ रे।

तद्य देव नदेष्य शारदा वार न शपे घट रे ३

मध्य कल्प वाराव अशार रूप वारे को नद रे।

बहादुर वापय वरतराम मुनि राम रूप अ. घट रे ३

उद्गम की दृष्टि से दशावतारों का उद्गम 'महाभारत' से माना जा सकता है। क्योंकि अवतारों के चार, षट् और दस का जो क्रम 'महाभारत' में मिलता है उससे दशावतारों के क्रमिक विकास का पता चलता है।

पौराणिक साहित्य के दशावतार-रूपों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनतर पुराणों में दशावतारों की दस संख्या के प्रति विशेष महत्त्व नहीं दील पड़ता। परन्तु परवर्ती पुराणों में दशावतारों की संख्या स्पष्ट ही हो जाती है।

इसी क्रम में यह भी ध्यान देने योग्य है कि 'महाभारत' में जहाँ दशावतारों के उद्गम और विकास का क्रम दील पड़ता है, वहीं वे विरुद्ध अवतार की अपेक्षा उपास्य रूप में अधिक प्रचलित प्रतीत होते हैं। आगे चल कर परवर्ती पुराणों में भी अवतार-रूप की अपेक्षा इनका उपास्य रूप ही मुख्य हो जाता है।

गुप्तकाल में शैवशास्त्री विष्णु के साथ उनके बराबर प्रभृति अन्य अवतारों की मूर्तियों का निर्माण भी आरम्भ हो जाता है। किन्तु परवर्ती काल में शैवशास्त्री विष्णु के साथ दशावतारों की मूर्तियों बनने लगती हैं। इस प्रकार दशावतारों की मूर्ति-पूजा का प्रचलन होने पर परवर्ती पुराणों के द्वारा उनके उपास्य विग्रह-रूप का अधिकारिक प्रसार होता है। यह प्रारम्भिक प्रवृत्ति कृष्ण से लेकर बारहवीं तक अधिक दिखाई पड़ती है। क्योंकि जहाँ तक मेरा अनुमान है दसवीं शताब्दी से पूर्व के संस्कृत या प्राकृत साहित्य में दशावतार उतने लोकप्रिय नहीं प्रतीत होते। किन्तु फिर भी दसवीं शताब्दी के पश्चात् भी बौद्ध और जैन कवियों में इनका प्रचार दील पड़ता है।

क्योंकि काश्मीरी कवि जेमेन्द्र, जैन कवि अमितगति वैष्णव जयदेव, धर्मदासुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पंडित और राजस्थान के कवि चम्पूरदाई द्वारा दशावतारों का गणन किए गये देख कर दो तथ्यों की ओर ध्यान जाता है। एक तो यह कि विभिन्न क्षेत्रों के इन कवियों को देखते हुए दशावतारों के लोकप्रिय प्रसार की भौगोलिक सीमा बहुत विस्तृत हो जाती है। साथ ही इन कवियों को विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों से सम्बद्ध देखते हुए यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आठोठवीं शताब्दी में दशावतार की परंपरा साम्प्रदायिक सीमा का अतिक्रमण कर चुकी थी।

मा विंसा परमोत्तरम इति वाक्य परगद रे।

शुद्धावतार के वासी महाप्रभु ककली शैव परमद रे॥

रागदशमहम जी० १, इ० १४४ पर सं० १६।

हिन्दी में वृक्षावतारों की परम्परा रीतिकालीन युग तक मिलती है। हिन्दी की वृक्षावतार-परम्परा में निर्गुण-सगुण भक्त कवियों तथा रीतिकालीन कवियों का विविध योग वीज पड़ता है। चाहे पद्य वा विपद्य में सगुण वा निर्गुण दोनों शाखा के भक्त कवि वृक्षावतारों की चर्चा हिन्दी न किसी रूप में करते हैं। विरोधी सगुणों की आक्रमणना से तथा महाराष्ट्री म्वागों में प्रयुक्त वृक्षावतारों से भी वृक्षावतार-परम्परा की श्लोकप्रियता ही सिद्ध होती है।

इसमें सर्व्वेह नहीं कि वृक्षावतार-परम्परा का उत्कृष्ट भाग्यी में केवल १७वीं शताब्दी तक अविच्छिन्न रहा है। परन्तु इससे केवल बारहवीं शताब्दी तक प्रचार की दृष्टि में वृक्षावतारों का सर्व्वोत्कृष्ट युग रहा है। अन्ततः में उनकी यह श्लोकप्रियता नहीं रही जो इस काल में हीन पड़ती है।

इस दाय के मुख्य कारणों में यत् सम्प्रदायों की विरोधी भावना के अनिश्चित राम-कृष्ण प्रभृति विविध अवतारों की अधिक श्लोकप्रियता भी मानी जा सकती है।

सामूहिक अवतार

इस युग में पर ब्रह्म के अवतार के अनिश्चित अन्वय दैवों के सामूहिक रूप से अवतरित होने की प्रवृत्ति भी विकसित पड़ती है। अवतारवाद की अन्वय सामान्य प्रवृत्तियों के सहित सामूहिक अवतार की प्रवृत्तियों परम्परा की कवियों से तात्कालीन प्रभाव रखते हुए भी किसी न किसी रूप में सम्बद्ध हैं।

अतएव इस दृष्टि से मुख्यतः तीन प्रकार की परम्परायें मिलती हैं। इनमें सबसे प्रथम 'बाबरीकि रामायण' की परम्परा का स्थान धाटा है। जिसका सम्बन्ध रामायण की कथा से है। इसमें अनिश्चित कृष्ण से सम्पन्धित दो परम्परायें मिलती हैं जिनमें एक का सम्बन्ध 'महामारत से और दूसरी का सम्बन्ध 'हरिबंस', 'विष्णु और 'भागवतपुराण' से है। अन्य पुराणों में भी यहाँ सामूहिक अवतार के प्रसंग आये हैं, वहाँ उपर्युक्त तीन परम्परायों का ही अनुसरण होता रहा है।

प्रयोजन की दृष्टि से महाकाव्य और पौराणिक दोनों में नू मार-हरण और देव-राज्यों का बंध ही मुख्य माने गए हैं। साधारणतः पृथ्वी आत्माकारों से आराधित होकर देवताओं के पास जाती है तथा देवता प्रया के पास और प्रया देवताओं के पास परमेश्वर-रुद्र (विष्णु) के यहाँ आते हैं। वहाँ विष्णु के साथ-साथ देवताओं के सामूहिक रूप से अवतरित होने की योजना बनती

है।^१ यहाँ बहुदेवता और एकेश्वर विष्णु के सामूहिक अवतार में बहुदेववाद और एकेश्वरवाद में विचित्र सामंजस्य उपस्थित होता है। विष्णु भी यहाँ वैव-पत्नीय होने के कारण प्रारम्भ में पत्नी में एक छोटे देवता मात्र ही विदित होते हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक अवतारों में का देवता भाग होते हैं, उनमें तत्कालीन पशु, नाग आदि देवों के होते हुए भी वैदिक इन्द्र, सूर्य और वायु प्रजापति या ब्रह्मा, आदि की प्रधानता दृष्टिगत होती है। का० रा० १० में क्रमशः ब्रह्मा ब्रह्मवान इन्द्र-शक्ति, सूर्य-सुधीश 'बृहस्पति-तार कुबेर-नाथ मादन, विष्वक्कर्मा-नरु, अग्नि-नील अधिनी कुमार मंत्र और त्रिविध, बदग सुपेग, परब्रह्म-दारम मारुत-इन्दुमान तथा अन्य महर्षी देवता पशु किन्नर, वामा आदि उत्पन्न होते हैं।^२ आदि कवि वाक्यमौक्तिक के अनन्तर शितला रामायणों की रचनाएँ हुईं उनमें प्रायः विस्तृत या म्युमापिक परिवर्तित रूप में यही परम्परा मिलती है।

'रामायण के पश्चात् 'महाभारत' (उपदेशात्मक) में दशावतारण और सम्भव नाम से दो पर्व ही विख्यात हैं। उनमें 'महाभारत' के अष्टाश्रा-भुरूप सहस्रों देव राक्षस, पशु किन्नर आदि के अवतारों का वर्णन हुआ है।^३ उनमें एक पक्ष में 'दुर्योधन-कृति'^४ और कण-सूर्य^५ अवतार माने गये तो दूसरी ओर पुषिहिर-धर्म भीम-वायु अर्जुन-इन्द्र, नकुल और सहदेव-अग्निनीकुमार अभिमन्यु-बभ्रुसायुध-वर्षा (कुप)^६ बतलाये गए हैं। द्यौःकृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यहीं मागधन कृष्ण और उनके सहयोगियों के अवतारों का भी उल्लेख हुआ है। इसी अर्थान्त में द्यौःकृष्ण-भारायण, बलदेव शेषनागा, और प्रद्युम्न-सनत्कुमार के अवतार कह गये हैं।^७ वासुदेव कुल के सभी राजा देवाद्य और श्रीकृष्ण की १६ महान्त शिष्यों अप्सराओं का अवतार कही गई है, तथा रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार बतलाया गया है।

१ का रा० १ १३ २५ 'ववाय वैवश्रुमात् ।'

महा० १ १४ ५४ सूमा, वैव श्रुश्रव हरि० ५१, २३-२७ भूमात् ।

विष्णु० ५, ७, २८ भूमात् या १० १ १२ ।

२ का रा १ १७, ७-२३ । दशावतार सं० ११४१ । महा० नव पर्व २७६-७ में इनके सामूहिक अवतार मात्र का उल्लेख ।

३ महा० आदि पर्व अन्तर्गत अष्टावतार पर्व ।

४ महा १ १७ ८७ ।

५ महा १ १७, १५० ।

६ महा० १ १७ ११०-११६ ।

७ महा १, १६ १५१-१५६ । यहाँ ब्रह्म-कुल के अवतार का विष्णुकुल उल्लेख नहीं हुआ है, केवल दाराका कृष्ण के अवतार ही सूचित हुए हैं ।

इसके अतिरिक्त सामूहिक अवतार की तीसरी परम्परा 'हरिवंश', 'विष्णुपुराण' और 'भगवतपुराणों' में मिलती है। हरिवंश पु० क अनुसार देवता विष्णु को जगाकर भूमा-हरणार्थ भजना करते हैं। तदा आकाश और पृथ्वी के देवता अपने अंस से विप्र, राजा और अयोधिका सरीरों में उत्पन्न होने का आदेश चाहते हैं।^१ 'विष्णुपुराण' के पाँचवें अंश में सामूहिक अवतार श्रीकृष्ण से सम्बद्ध गोप गोपियों, देव और देवियों के अवतार बतलाये गये हैं।^२ यहाँ सर्वप्रथम प्रयोग्य के अतिरिक्त उनका अध्यात्मिक रूप उद्दिष्ट होता है।^३

'विष्णुपुराण' के सदृश 'भगवतपुराण' में भी प्रकृतियों के देवताओं को सामूहिक रूप से बहुबुद्ध में उत्पन्न होकर श्रीकृष्ण की लीला में सहयोग देने का आदेश दते हैं।^४ और इस तीनों पुराणों में एक विनाय अन्तर यह बिलम्बाई पड़ता है कि यहाँ 'शामायण' और 'महाभारत' में वैदिक, पञ्च भाषि देवों का स्पष्ट नामोल्लेख हुआ है। यहाँ इनमें देवों के अवतीर्ण होने की सूचना भर मिलती है। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी अष्टविंशतीय उपनिषदों में इस कसर को पूरा कर दिया गया है। 'श्रीकृष्णोपनिषद्' में गम्भू भगवान के आनन्दोद्य यशोदा-मुक्ति, वैष्णवी माया-देवकी निगम-बासुदेव ब्रह्म-जी बलराम और श्रीकृष्ण आचार्य गो-गोपियों, ब्रह्म-ककुदी रुद्र-वृषी इन्द्र-सीमा, वैकुण्ठ-गोकुल महात्मा-बृष के रूप में अवतरित हुए।^५ पुनः आगे चलकर सोप-बलराम, ब्रह्म-श्रीकृष्ण, और मोक्षद गङ्गा एक ही आठ हरिमयी आदि शक्ति-बद्ध की आचार्य तथा उपनिषद् और ब्रह्म स्या आचार्य गोपियों कही गई है।^६ तापनीय उपनिषद् की अपेक्षा 'कृष्णोपनिषद्' 'भगवत' की परंपरा के निकट प्रतीत होता है; क्योंकि इसमें रथा का उल्लेख नहीं है। उपर्युक्त तीनों सामूहिक अवतार-परंपराएं दिव्य साहित्य में मिलने लगती हैं। विनाय कर शम्भू में 'शामायण' या 'महाभारत' के पात्रों का अवतारिच्छत्र उद्दिष्ट होता है। संभवतः बुद्ध और भीर भावों की प्रमानता के कारण ऐसा चिन्तित होता है। इस प्रकार 'शामायण' और 'महाभारत' में वर्णित सामूहिक अवतारों की स्वरूपा बसल सम्प्रदायों में ही नहीं बल्कि सम्प्रदाय से बाहर

१ हरि पु० हरिवंश पर्व, ५१, २२-२३।

२ हरि० पु० हरिवंश पर्व १ ५४ १०।

३ अर्जुनस्य चर्मा कुर्मः सर्वे पितामहः। अन्तरिक्षवता देव इन्द्रियां पारिवाध वै।

४ बलरामाया च विब्राणा पारिवाता कुर्मः। अयोनिनाथैव तनुः सुवामो जगतीशके।

५ वि० पु० ५, ७, १९, ४२। ४ वि० पु० ५, ७, ४०। ५. मा० २० १, २१।

६ वेन्दव उपनिषद् अन्तर्गत कृष्णोपनिषद् १-९ श्लोक। ७. वही श्लोक १०।

के साहित्य में भी विभिन्न रूपों में प्रचलित हुईं। कादम्बर में शाक्यीय मन्वन्त साहित्य में राम-कृष्ण-सम्बन्धी कितने महाकाव्यों की रचना हुई व 'रामायण और 'महाभारत से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हुए। मध्यकाहीन प्राकृत, अपभ्रंस और हिन्दी साहित्य क महाकाव्यों पर भी उनका पर्येष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। विशेषकर स्वयम्भू आदि जैन कवियों ने तो एक विशुद्ध साहित्यकार की भावना से शाक्यीक तथा उनकी परंपरा में आज वाले अन्य कवियों का आभार प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। इस युग क प्रतिष्ठ मन्वन्त महाकाव्य 'पृथ्वीराज-विजय' में 'रामायण' का अवतारवादी सम्बन्ध उल्लिखित होता है।

'पृथ्वीराज-विजय' में पृथ्वीराज राम क अवतार माने गए हैं।^१ इनकी रानी तिरोचमा सीता का अवतार है।^२ इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज अयोध्या में पृथ्वीराज क पूर्व जन्म की कथा वर्णित करते हुए एक प्रकार से कवि ने रामकथा का ही वर्णन किया है।^३

किन्तु महाकवि चंद के परिवर्द्धित 'पृथ्वीराज रामो' में पृथ्वीराज को अज्ञित नाम क किसी दानव पुत्र का अवतार कहा गया है।^४ साथ ही पृथ्वीराज की सहायता के लिए ब्रह्मोद्यम-कन्द क रूप में आविर्भूत होता है।^५ पुनः पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि पृथ्वीराज चौहान कछि में कर्ण का अवतार है।^६ इस प्रकार कविपद्य रचकों पर पृथ्वीराज कहीं शत्रु और कहीं कामदेव क अवतार भी उल्लेखित गए हैं।^७ उपर्युक्त अवतारीकरण की अज्ञानों में उपमा का ही स्पष्ट प्रभाव विद्यमान होता है। प्रस्तुत रासो में पृथ्वीराज की शानियाँ भी अप्सराओं का अवतार कही गई हैं।^८ इससे सिद्ध

१. पृथ्वीराज विजय पृ० २४०, ६, २९। २. वही पृ० २८९, २१ २०२।

३. वही पृ० २६२, २९०। ४. पृथ्वीराज रासो जी० पृ० २६० समक १ ५५।
'अवतार अज्ञित दानव मनुष्य, कवि सूर सीमह करन'।

५. 'पृथ्वीराज कुंभर साहित्य सभ्य। पुरावोधन अवतार किय'।

वही जी० २, पृ० २०६ समक ५, १२८।

६. 'पृथ्वीराज-बहुमान पठु कछी करन अवतार कछि'।

पृथ्वीराज रासो पृ० ६१५, समक ६, २२८।

७. 'तहाँ रत्न अवतार बहुमान। तहाँ प्रविराज सूर सुमार'
तथा 'कामदेव अवतार हुन। सुन सोदेवर नर'।

पृथ्वीराज रासो जि० २ पृ० ६६२ समक २० १५ और ६० २१।

८. तहाँ हंस कचरबी। सुनहिं छविप्रता नाठी।

विन बैस जयहरि। समी न अति कन बरारी ॥

पृथ्वीराज रासो जि० २ पृ० ७७१, २५, ७२ में छविप्रता विनरेखा का अवतार।

होता है कि 'रत्नामन' और 'महामतल' की सामूहिक अवतारवादी परंपराओं के अतिरिक्त इन महाकाव्यों में एक स्वतंत्र अवतारवादी शैली का विकास भी हो रहा था। इस शैली में प्रारम्भिक विकास के बीज होने के कारण ही महाकाव्यकाव्यीन एककपता और एकसूत्रता नहीं दीख सकती है। 'परमात्म रासो' में महाकाव्यों की परंपरा में ही अवतारवाद का अस्तित्व मिळता है। इसमें कहा गया है कि द्वापर के समाप्त होने के उपरान्त पृथ्वी की पुकार सुनकर 'बाहुवान' पृथ्वीराज का अवतार हुआ।^१ इस रासो में शाबद चर की रचना के आचार पर ही पृथ्वीराज को पुर्णोधन का अवतार बताया गया है।^२ इसके अतिरिक्त महाकाव्य-परंपरा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हरि ने तारकासुर और उसके पुत्रों से समाप्त किया और कालनेमि का चक्र से मारा। जेता में राम ने भीषण युद्ध में रावण और कुम्भकण का मारा। द्वापर में पांडव दश आपस में कर गए तथा पांडव दश घास (पहों मास है)-से झिंक-झिंक हो गए। जब कलि में पुनः धूमि भाग कर यज्ञा-के समस्त पुकार कर रही है।^३

इस महाकाव्य में परमात्म की ओर से अज्ञानाचारण बीरता विद्यावे वाले अज्ञाना-दशक को 'वृद्धि-सृष्टि' का तथा उनकी माला इवम को दुर्गा का अवतार कहा गया है।^४ काव्य की पंक्तियों से पता चलता है कि प्रारंभ में

१. द्वापर वन कलि आदिमहा पुष्टिपि करी पुकार ।

तप संतोषक विधि करी बाहुवान अवतार ॥

परमात्म रासो (भा म० समा) ५ १३८, ३ ।

२. कारक सम विष मुवन लोक मंह । पनतिव कळ प्रयाव ।

बाहुवान वत चंद्र कलि किन्दिव ताहि समाप्त ॥

दुर्पोषन अवतार मूप तप सार्जन दश दश ।

मारत सम दिव मुवन मंह तप्तो चंद्र इवम ॥

परमात्म रासो (भा म० समा) ५ १, १, ५ ।

३. तारके मव शुन पुन संगत करि कालनेम यहि चक्र हरी हरि ।

जेता राम भीम करि ताहि व कुम्भ करव रावन दन मारि ॥ ३३ ॥

द्वापर त्वरत बहुदल कविम मारव कर्हि मास (द्वापर मास) शिर बाहुन

वव कन सांस केन अरिहारीन, मूमि मादि विधि अम्य पुकारि ॥

वही ५ ७, १, ६६-६७ ।

४. वृष्टि सति अवतार कन मनु मार है । नरिवात चरेक की सुनिचो

मवद वनाकर काल्प उर अवतार है ॥ वंस अवतार । वृष्टि सति मई

अवतरे, सी यहि कन वतात । वही ५० ७, १६ पुनः ५० ३४, १७१ ५० ५१

५. देवम पु महि पावरी, दुर्गा कन अवतार । परमात्मरासो ५० १३६ १६, ८७ ।

ये पक्षियों उपमित हैं और बाद में अपने उपमाओं के अवतार रूप में हो गये हैं। 'परमाल रामो' में ही गद्य में उल्लिखित एक 'वाचनीक' में विभिन्न पार्श्वों के अवतार-व्यारण का सामूहिक विवरण इस प्रकार दिया गया है :—
 "यत्र वैका ब्रह्मजीत क रग भद्रह में एकाम्त भये, तत्र वैका मयानी को रूप धारि य बाने कहत मई के कत सुनो ! कलि के अवतार रामा पूषीराम सुरजोधन को अवतार है। सत साधत बपु है। बद मयानी है। गुलराम धुर गुद है। बाबड हुमासन है। कैमास करमु है। काम्द बजुवान भगवतरामो है। राजा अपचद सुरासिब है। कालन विम बाहन है। राजा परिमाल घर्मु है। रानी मरुदन दे औपनी है। धरद-उद बहि सधि है। मकलान भैरा है। जगनायक भीम है। द्ध्रसाठ गदिरवार साधुक है। सकतसिंह मूरिभवा है। मां.कत बहिरन है। अरु ग्हा उचरा है। ताते हमारी ठमारी प्योहार मयपुर को है। मन्वश्येक को घोरो है। सो या ज्ञन से भारय क बीर है। सो भापु बिचारे देखिया।"^१

उपपुत्र अवतरण के प्रचलित होने पर भी कम से कम आलोच्यकाळ की 'महामारत' की परंपरा में गृहीत अवतारीकरण की प्रवृत्तियों का परिचय अवश्य मिलता है।

सामूहिक देवावतार की रूप से परंपराएँ समुच्च-भक्ति की राम-भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखाओं में मिलती हैं। 'वासुदेविरामायण' के सामूहिक अवतार की परंपरा आलोच्यकाळ के रामायणों में उल्लिखित होती है। 'अप्याम्बरामायण' में ब्रह्मा जी के कथनानुसार देवता बानर वन में अवतरित होते हैं।^२ परन्तु प्रत्येक देवता के पूषक-गुपक अवतार का उल्लेख नहीं हुआ है।

गोम्बामी तुळसीदास ने 'रामचरितमानस' में पुनः इसी परंपरा का अनुसरण किया है। ब्रह्मा जी विष्णु के अवतरित होने का आश्वासन पाकर पूर्वा को समझाकर विश्वास करते हैं। और देवताओं को बानरों के रूप में अवतरित होना का आदेश देते हैं।^३ इस संस्करण के अनुसार देवताओं के

१ वही १ २७८-२७९।

२. 'देवाम्ब तरे हरिकण्ठारिणः शिवाः सहायार्त्तमितलाश्रे हरेः'

अप्याम्ब रा० ब०कांड सर्ग ० ९-३२।

३ गगन ब्रह्म बानी सुनि जाना। दूरत कियेव छर हरब सुबान।

तव म्हा परनिहि हनुसाबा। अयब नभं धरोस शिव भावा।

विम लीकहि गिरिपि मे देवद हई सिवाइ।

बानर तनु बरि बरि म्ही हरिकण्ठ शैबडु कार प्रराय० मा० म० ल १ ३ १

पृथक्-पृथक् अवतार का वर्णन नहीं हुआ है। 'रामचरितमालम' के पत्रात् कशाबदास की 'रामचरिका' में सामूहिक अवतार का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे प्रकृत होता है कि रामोपासक कवियों ने राम के अवतार की अपेक्षा उनके उपास्य विग्रह-रूप का अधिक वर्णन किया है, जिसके अनुसार मित्त ब्रह्म राम स्वयं कीका अथवा भक्त-रक्षा के कृष् अवतार लेते रहते हैं। यहाँ स्वामाधिक रूप से सामूहिक देवावतार गौण हो जाता है, क्योंकि मित्त विग्रहों का जहाँ अधिकारमक अवतार होता है उसमें उनके पारंप्र, परिष्क और भक्त ही कीका में भाग लेने के कृष् अवतारित होते हैं। सम्भवतः इसी से इस युग के मखि कवियों में देवावतार की सामूहिक भावना शीघ्र होने लगती है और उसका स्थान पारंप्र या भक्त ग्रहण कर लेते हैं।

सामूहिक अवतार की तीसरी परम्परा 'हरिवंशपुराण', विष्णुपुराण' होती हुई 'भागवत से सूहीत सूरदास के 'सूरसागर' में मिलती है। मध्यकाल में कीका का प्राधान्य होने पर भी अवतारवादी प्रधानियों की धारणा लुप्त नहीं हुई थी। इसी से सूरदास ने 'सूरसागर' ब्रह्म स्वयं में अवतार के निमित्त धेनु रूप दुग्धी की पुकार की और शिव विरिंभि द्वारा किये गये अनुराध की चर्चा की है।^१ शीर-समुद्र-मण्यवासी हरि ने अपने शीघ्र बचनों में सूर नर नाम तथा पशु शीर पक्षी समी को बहु आदेश दिया कि यदि सुप्त करना चाहते हो तो गोकुल में मरे साथ जन्म लो।^२ इस पद में सामूहिक अवतार के आदेश मात्र के अतिरिक्त पृथक् अवतारों का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु कतिपय शब्दों पर उनके सहवासियों और सहयोगियों के अवतीर्य होन के उल्लेख हुए हैं। उन्नी पद के प्रारम्भ में आदि ब्रह्म की जन्मी, देवकी को मुर-देवी कहा गया है।^३ इनमें शेषों के अवतारों के संक्षिप्त वृत्त पदों में मिलने हैं। जैसे एक पद में बतलाया गया है कि जहाँ-जहाँ तुम बह धारण

१ धेनु रूप धरि पुहुमि पुकारी, शिव विरिंभि के द्वारा।

सब भिक्ति दीये जहाँ सुरसौचम विरिं भदि नमय अवतारा ॥

सूरसागर समा सं । २ ०९ वि सं । १५ २६७ पद १० ४ ।

२ शीर-समुद्र मण्य हैं बी हरि बीरज बचन बधारा।

बचरी धरनि अवतार कुक मारी, धरि बर-सम अवतारा ॥

हर नर-भाग तथा पशु-बचकी सबको आनंद दीयो।

गोकुल बचन धेनु संग धीरे को बहान हृद कोयो ॥

३ सूरसागर समा ० सं २००९ पृ २५६

आदि-ब्रह्म जन्मी, हर-देवी नाम देवकी बाना।

करते हो, वहाँ-वहाँ अपने घरों से दूर मत करो।^१ एक दूसरे पद में कहते हैं कि गोकुल में मेरे साथ गुप्त बिलास करने वाले तथा पृथक् रूप से कुतूहल करने वाले सभी ग्वाहक देख-रूप हैं।^२ एक स्थल पर गोपियों की पद्म-महिमा का वर्णन करते हुए उन्हें भुक्तियों का अवतार बतलाया गया है। वे कहते हैं कि ब्रज-सुन्दरियों मारी नहीं हैं, अपितु भुक्ति की श्रेयार्थ हैं। उन्होंने गोपिका के रूप में पूर्ण परमानन्द से बेकि करके का पर प्राप्त किया है।^३ सूर के अतिरिक्त नंददास ने 'भाषा इक्षम स्कन्ध' में श्रीकृष्ण के साथ सामूहिक अवतारवाद का वर्णन किया है। राजाओं के रूप में राजसों ने भूमि को भाराम्बित कर दिया है, इसलिये पृथ्वी गाय का रूप धारण कर कन्दन करती हुई ब्रह्मा के पास गई और उसने अपना कुल निवेदित किया जिस सुनकर ब्रह्मा विचकित हो गये। फलतः देवताओं को साथ लेकर इन्होंने क्षीर-सागर के किनारे देवाधिदेव पुरुषोत्तम की स्तुति की। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने समाधि में परम देव की आकाशवाणी सुनी। उन्होंने ब्रह्मा और देवताओं को सन्तोषित करते हुए अविकल्प यदुकुल में जाकर अवतरित होने का आदेश दिया।^४ उनके इस आदेश के अनुसार श्री वासुदेव के रूप में प्रभु पूणकाम तथा उनके माई क रूप में शेषनाग प्रकट होंगे। गुणमयी योगमाया को भी उन्होंने अवतरित होने का आदेश दिया।^५

१ सूरसागर पृ० ४१५।

गवाह सखा कर जोरि कहत है हमहिं स्वाम सुम अनि विचारावहु।

वहाँ वहाँ सुम देह बलत ही तहाँ तहाँ अनि चरन सुकावहु ॥

२ सूरसागर पृ० ८१५।

देव रूप सब ग्वाह करत श्रीकृष्ण न्वारे।

गोकुल गुप्त बिलास सखा सब सम हमारे ॥

३ सूरसागर पृ० २६३।

ब्रज सुंदरि नहिं मारि रिखा स्तुति की सब अहो।

भुक्तिनि बखो है गोपिका, केनि करे सुम संग ॥

४ पद रूप है नसुर विकारी।

क्षीनी भूमि भार करि भारी।

तब वह गाय रूप बरि भरती। कन्दन करती अंसुवन भरती ॥

दिनि सो भार बखो सब बाल। सुनि ककमबखी कमल की ताल।

अमर निजर सखर संग लये। तीर क्षीर सागर के यथे ॥

देव देव पुरुषोत्तम कहा। स्तुति करि बिनतो क्षीनी तहाँ।

गणन में मरि देव की सुनी। सो ब्रह्मा समधि में सुनी ॥

सुनि के शोखी अंसुव ताल। सुनहु अमर मन मोने बाल।

आम्हा मरि विद्वह न करी। ऋतुकुल विने बार अवतरी ॥ सं० पं० पृ० २२०

५ सं० पं० पृ० २२० :

अन भु योगमाया गुणमरि। ताहू को प्रभु भाषा बरि।

देवकी के रूप में प्रकट किया जाविर्भूत हुई।^१ कीका के निमित्त प्रभु के व्रित्तने परिकर हैं वे सभी अवतीर्ण हुए।^२

महाकाव्यों की अपेक्षा नन्दबान द्वारा वर्णित सामूहिक अवतारवाद के रूपों में किंचित् वैषम्य लक्षित होता है। वह यह है कि इस अवतार के भाषक भगवान् पौराणिक नारायण की अपेक्षा पाँचरात्र पर बामुदेव का परब्रह्म हैं क्योंकि इनके साथ देवताओं के अतिरिक्त इनके नित्य परिकरों का भी अवतार होता है।

उपर्युक्त परम्पराओं के अतिरिक्त 'दशम स्कन्ध' से ही सम्बद्ध किम्बु परवर्ती 'गर्गसंहिता' में सामूहिक अवतारवाद का विस्तृत वर्णन मिलता है।^३ 'भागवत दशमस्कन्ध' के विपरीत इसमें राधा-कृष्ण के चरित्र का विस्तार हुआ है^४ और अवतरित गोपों और गोपियों की वृहत् संख्या भी गई है। वहाँ श्री-शक्तिमयी, तुलसी-सत्या, पूष्पी-सत्यमामा और शिवा-जाम्बवती के रूप में अवतरित बतलाई गई हैं।^५ द्रोण-बसुन्ध, धरा-बशावा, सुन्दर वृषभाज और ककाली-कीर्ति-रूप में आविर्भूत हुए हैं।^६ इस संहिता में सहस्रों गोपियों का विलक्षण अवतारवादी सामञ्जस्य किया गया है। कबक रामावतार से सम्बद्ध कोशाक-देवदासिनी अयोध्यावासिनी मिथिलावासिनी तथा मुनि रूपा प्रभृति अनेक प्रकार की गोपियाँ बतलाई गई हैं। इसके अनिर्दिष्ट अन्य १४ अवतारों में अधिकांश से सम्बद्ध किन्हीं को गोपियों का अवतार बतलाया गया है।^७ सूरदास के अनुभार प्रकाश ने जिन्हें आदेश दिया वे ही सली-मन्वा के रूप में उनके संग आविर्भूत हुए। गोपी ग्वाक और काण्ड दो नहीं हैं। जहाँ-जहाँ हरि अवतरित होते हैं, व इनको कभी विस्मृत नहीं करते। उनका धरिरी तो एक ही है लेकिन गापी-ग्वाकों के रूप में उन्हे अनेक बतलाया है।^८ इस प्रकार सूरदास ने सामूहिक अवतार पर विलक्षण ढंग से दार्शनिक रंग चढ़ा दिया है।

१ देवक काव्य के एक कथा। देव पर देवकी लु कथा।

नव सुन कथ्यन करो गुनवती आदि नन्दविद्या बनवती। पृ० ५ २२१।

२ निम्नके प्रभु की परिकर भिन्ने। प्रगट होत लीला दिन तिनी। पृ० ५ २२।

३ गर्गसंहिता गोबोके संघ अख्या १ से ४ तक।

४ प्रारम्भ में ही 'कथा श्रीपाककृष्णस्व राधेश्रव महावना' का उल्लेख हुआ है।

५. गर्गसंहिता १, १७-२८। ६ गर्गसंहिता १, ४, ४१।

७ गर्गसंहिता १ ४ ५ अख्या।

८ ब्रह्म विनहि वह आवतु दोन्ही।

दिन दिन संग अम्न किन्ही वरगट लगी मरा करि कीन्ही।

निष्कर्ष

इससे प्रकट है कि अवतारवाद का प्रारम्भ में ही महाकाव्य-नायकों के अवतारवादी विकास का माध्य सामूहिक अवतारवाद की भावनाओं का प्रसार हुआ। एकेश्वरवादी उपास्य के साथ-साथ 'रामायण,' 'महाभारत' और 'हरिवंश' में विविध दृष्टान्तों का अवतार भी उनके सहायक रूप में माध्य हुए। इन तीनों ग्रन्थों में तीन प्रकार की सामूहिक अवतरण की परम्परारूपें उल्लिखित होती हैं। इनमें 'बाबमीकि रामायण' की परम्परा अन्य परम्पराओं से सर्वथा पृथक् रही है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' में दो-सामूहिक अवतार-परम्परारूपें मिलती हैं, जिनमें से एक का सम्बन्ध मुख्यतः पाण्डव और द्रुपद वर्ग से तथा दूसरी परम्परा का सम्बन्ध श्रीकृष्ण और उनके परिवार से है।

इन परम्पराओं का अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि सामूहिक अवतारवाद की परम्परा साम्प्रदायिक से अधिक साहित्यिक रही है। 'रामायण' और 'महाभारत' में इनका अवतारवादी सभी साम्प्रदायिक रूप अछे ही मिलता हो, परन्तु उनके प्रारम्भिक रूपों का अनुमान करने पर ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में इनका जात्यकारिक विकास हुआ होगा। बाद में व उपमाएँ अवतारवादी रूप में रुढ़ हो गयी होंगी। क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' 'परमाष्ट रासो' आदि चारण काव्यों में महाकाव्यात्मक अवतारवादी परम्पराओं के अतिरिक्त उपमाओं और रूपकों का आधार पर विकसित ऐसे अनेक रूप मिलते हैं जिनका काव्यन्तर में अवतारवादी रूपान्तर हुआ होगा।

यदि इनकी मूल प्रवृत्ति पर ध्यान से विचारा जाय तो स्पष्ट विदित होगा कि महाकाव्यों का सामूहिक अवतारवाद प्रारम्भ में पात्रों का बैसिद्धीकरण का निमित्त प्रयुक्त हुआ। महाकाव्यों का विविध पात्रों में रूप गुण, शील, मीमर्ष, कार्य शक्ति आदि की दृष्टि से जिन अतिप्रगट विशेषताओं का विकास की आवश्यकता थी, उसमें अवतारवाद सबसे अधिक सहायक हो सकता था। इसके परिणाम स्वरूप विभिन्न पात्रों का बैसिद्धीकरण का निमित्त ही प्रस्तुत अवतारवादी शैली का विकास हुआ।

इसके अतिरिक्त इन पात्रों में जिन अतिमानवीय गुणों की मजजा अवेक्षित थी व सभी अवतारवादी सम्बन्धों का माध्यम स अधिक-अधिक

गोपी म्वाक धन्द है नही ये कहुँ नेहु व म्पारे व

जहाँ जहाँ अवतार बरत हरि के यदि नेहु बिकारे।

ज्ये वैद कहुन करि राये, गोपी म्वाक सुराठी व सुरसागर पद २२२३

उदात्त और भय्य बनाए जा सकते थे। साथ ही पूर्व प्रतिष्ठित वैदिक देवताओं के रूप और मास भी भामिनी से इन पात्रों पर आरोपित हो सकते थे। यही कारण है कि सहज और सुगम सामूहिक भयतारीकरण की प्रवृत्ति को जयनाम्ना गया।

मध्यकालीन महाकाव्यों या पौराणिक मुक्तक काव्यों पर इन सामूहिक भयतारवादी प्रवृत्तियों का विशेष प्रभाव उच्चिष्ठ होता है।

फिर भी भयतारवादी प्रवृत्तियों में विशेष परिवर्तन होते हुए भी महाकाव्यों एवं पुराणों की सामूहिक भयतार-राश्रपा किमी-ब-किमी रूप में काव्योप्य कालीन महाकाव्यों या उनसे सम्बद्ध रचनाओं में स्पष्ट विद्यित होती है।



पाँचवाँ अध्याय

मृत साहित्य

मृत साहित्य में मानव-भूत्य की प्रतिष्ठा

प्राचीन साहित्य में देवताओं के मानवीकरण तथा ईश्वर के विभिन्न प्रानियों एवं मनुष्यों में अवतरित होने की विस्र प्रवृत्ति का वर्णन होता है उससे विपरीत मृत-साहित्य में उत्कर्मणवाद की अधिक प्रतिष्ठा हुई। इस प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य ही उत्कर्ष करते-करते स्वयं प्रकेश्वरवादी ईश्वर के समान या उसका पर्याय बन जाता है। सतों के अनुसार मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास उसके अरम उत्कर्ष में बीज पड़ता है, जहाँ कि वह स्वयं ईश्वर या उपास्य के समकक्ष हो जाता है। यह चारणा अवतारवाद से भी भिन्न नहीं जान पड़ती, क्योंकि अवतारवाद की परम्परा में जिन महापुरुषों को अवतार माना गया है, उनके अवतारत्व का विकास भी उममें निहित कतिपय उत्कर्षोन्मुख प्रवृत्तियों के फलस्वरूप हुआ है।

सतों ने मनुष्य यानि में जन्म पाने को अत्यन्त श्रेष्ठ एवं देवदुर्लभ फल माना है।^१ उनकी यह भावना प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में प्राप्त होती रही है। यों तो अपन में श्रेष्ठ होने की भावना वर्तमान होने के कारण मनुष्य अपने को श्रेष्ठ मानता ही रहा है। साथ ही अपने सुपरिचित विद्वानों या अज्ञानों को भी वह श्रेष्ठ समझता रहा है।

वैदिक काल में सामयिक कल्प कल्पानकारी होने के कारण देवता उसके पूज्य, आराध्य और श्रेष्ठ थे। बाद में उसी काल में ऋषियों को देवताओं की समरूपता प्राप्त हुई।^२ इसी परंपरा में ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्वानों^३ ब्राह्मणों^४

१ अ० अ० १०२ अ० १५ 'रम देही को छिमरही देव बाहुबबाक की बानी भाग १ अ० १५५ अ० १६१। कायादेही। मरुकराव की बानी अ० ११, ईशरवाठ माल भाग १, अ० १६।

२ अ० अ० १४ १ ऋषुपण मनुष्य से देवता हो गये थे।

३ अ० अ० १ ७ १ १० पिदांठी दि देवा। अ अ अ० १, २, २, १।

उपा राजाओं^१ को देवताओं के रूप माना गया। उपनिषदों में माता, पिता, गुरु एवं अतिथि का भी देवताओं की तुलना में मूल्यांकन किया गया।^२ इस प्रकार व्यावहारिक समाज में एक ओर तो मनुष्य का देवता के रूप में मूल्यांकन होता गया और दूसरी ओर देवताओं की साकार-रूपता में जब-स मानवीकरण का प्रवेश हुआ तब-से अनेक देवताओं के मानव-रूप स्पष्ट प्रतिभासित होने लगे।

किन्तु जैसा कि रवीन्द्रनाथ टागोर का कथन है—'मनुष्य की जिज्ञासा की इतिथी कबल देवताओं के अर्पण या आशिक मानवीकरण की ओर ही नहीं थी, अपितु एक ऐसे परम पुरुष का महामानव की ओर थी जो मनुष्य माय से श्रेष्ठ, महान् तथा स्वयं पूर्ण मानवरूप में अल्पकाल महान् हो।'^३ उनकी यही कल्पना 'पुरुषसूक्त' में साकार हुई।^४ इस प्रकार देवताओं के आशिक मानवीकरण की कल्पनाओं में पूर्ण पुरुष का प्रत्युत्पन्न हुआ। उपनिषदों में ही पुरुष मानव और पुरुष ब्रह्म की कल्पना का विकास 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' के रूप में लक्षित होने लगता है।^५ ब्रह्मवाद और एकेश्वरवाद के उत्थान काल में ब्रह्म और ईश्वर दोनों का परस्पर समाहार हो गया। विशेषकर उपास्य इष्टदेव दोनों के विशेषों से सम्बद्ध किए गये। इन्हीं समन्वित विशेषों का आरोप उपास्य रूप में गृहीत होने पर संतों और भक्तों पर भी किया गया।

पद्यार्थ में कुछ पौराणिक (मिथिक) अवतारों की बात अगर श्रेष्ठ ही जाय तो निर्गुणात्मक मन्त्रों में भी ऐसे विचार मिल जाएंगे जो अवतारवादी परंपरा के अनुकूल सिद्ध होंगे। सगुणवादी महापुरुषों में ऊपर से अवतरित ईश्वर-वादि की कल्पना करते हैं, और निर्गुण संत अपने उत्कर्मजघ्नीक साधक योगी एवं मन्त्रों में विकासोन्मुख ईश्वरत्व का अस्तित्व पाते हैं।

अतः मन्त्रों में मान्य यह साधनारमक ईश्वरान्मुख विकास गीता एवं उपनिषदों में उपोपानयन् दृष्टिगत होता है। गीता में कर्मियों शक्तिवियों एवं तपस्वियों

१ अथर्व सू ३ ८४ २। २. त व उद्गायता २२ अनुवाक्य।

२ ही ऐकिकम भाद्र मंत्र ५९। ४ ऋ० २, ९।

५. मु० ३ ३२ ९, ४, ४ २५, शिरही भाद्र ऐकिकम शिन्नीसीषी। जी २५ ५३८ में बाल गुप्त के अनुसार उपनिषदों में गुण का प्रथम मानव और ब्रह्म दोनों के किये हुआ है। बाद बवाल की बानी भाग २५० २५२-२५६ में दादू ने मानव काया में अशुद्ध मद्राण्ड की अवतारण्य की। अतः अशुद्ध सुद्धि-व्यापार के साथ साथ आत्मा और देवताओं के अन्तर स्थान काया में पुनः पुनः अवतार भी हुआ करते हैं। काया माद्रे के अन्तः। काया माद्रे वारण्यार। ५२ २०।

मे श्रेष्ठ योगी एव उससे भी श्रेष्ठ ब्रह्मवान् मनुष्य को माना गया है।^१ उपनिषदों में ब्रह्मामन्द की उपलब्धि की दृष्टि से विचार करते हुए तैत्तिरीयो पत्रिषद् में मनुष्य क आत्मन् से लेकर ऋषा गन्धर्व देव गंधर्व, पितर, देवना इन्द्र, बृहस्पति प्रजापति और महा क आत्मन् की मात्रा में सातगुणाधिक हृदि विसृज्यते हुए ऋषाः आत्रिय बर्ष में आत्मन् की मात्रा सबसे अधिक मानी गई है।^२

इसके अतिरिक्त ईश्वर अनेक ऋग क महापुरुषों में गीता क अनुसार अपनी विभूति क रूप में अभिव्यक्त होता है।^३ साथ ही अगल अध्याय क अनुसार 'पुरुष सूक्त का विराट् पुरुष अपने विराट् तम रूप में सर्वसत्तापुत्र एव सर्व सत्त्वित्वात् पूर्ण मानव या पुरुषोत्तम क रूप में उपस्थित होता है। उमी प्रकार योगी भी योग की सर्वोच्च सिद्धि में ईश्वर वा विराट्पुरुष स साक्षात्कृत होने पर स्वतः पूर्ण ईश्वर हो जाता है। का० एनीबेसेन्ट ने उसे ही पूर्णावतार की संज्ञा से अभिहित किया है।^४ क्योंकि यह विराटरूप भी 'योग ऐश्वर्य रूप है। साथ ही 'अपमात्मा ब्रह्म' 'पुरुष एवम् सर्वम् में सत्सिम की असीम में अभिव्यक्ति स्पष्ट कथित होती है।^५ सर्व रूप होने पर भी उसमें निहित पुरुष या पुरुषाकार का अस्तित्व मनुष्य-रूप स उसके घनिष्ठ सम्बन्ध का चेतक है।

इस प्रकार मनुष्य का ईश्वरान्मुक्त तथा ईश्वर का पुरुषोत्तम विकास भारतीय काव्य में उम स्थान तक पहुँच जाता है जहाँ कि पुरुष पुरुषोत्तम क रूप में अभिव्यक्त होता है।

तब स सर्व भारतीय साधकों एव महापुरुषों क मूल्य की अभिव्यक्ति पूर्ण, अंश या कदा क रूप में होती रही है। भा० ११, २, १० में इस क्वेटि क कठिपथ प्राचीन साधकों को कलावतार कहा गया है। वीर पुरुषों में मान्य राम और कृष्ण अंशावतार से विकसित होकर पूर्णावतार क रूप में अभिव्यक्त हुए। अतः यह स्पष्ट है कि जिस प्रवृत्ति क द्वारा पुरुषों का ईश्वरीकरण हुआ, वह कवल ब्रह्म वा भावना मात्र पर आधारित नहीं थी अपितु उस योग एव साधना का समुचित सम्बन्ध मिला था।

अप्ययुग में साधना का साफल्य ही मनुष्य की श्रेष्ठता एव चरमोत्कर्ष का कारण हुआ क्योंकि इस युग में अन्य योक्तियों को भाग-यानि और

१ गीता १, २६-२७।

२ तै० ब ५, ८।

३ ती १ अ०।

४ अन्तार १०१८

५ गीता ११ ८।

तथा राजाओं^१ को देवताओं के रूप माना गया। उपनिषदों में माता पिता, गुरु एवं अग्नि का भी देवताओं की तुलना में मूर्त्यांकन किया गया।^२ इस प्रकार व्यावहारिक समाज में एक ओर तो मनुष्य का देवता के रूप में मूर्त्यांकन होता गया और दूसरी ओर देवताओं की साकार-कल्पना में अब-से मानवीकरण का प्रवेश हुआ तब-से अनेक देवताओं के मानव-रूप स्पष्ट प्रतिमासित होने लगे।

किन्तु जैसा कि रवीन्द्रनाथ टागोर का कथन है—‘मनुष्य की विश्वासा की इतिमी कबल देवताओं के अनूर्ण या आंशिक मानवीकरण की ओर ही बही थी, अपितु एक ऐसे परम पुरुष या महामानव की ओर भी जो मनुष्य मात्र के भेद महान् तथा स्वयं पूर्ण मानव-रूप में अत्यन्त महान हो।’^३ उसकी यही कल्पना ‘पुरुषसूक्त’ में साकार हुई।^४ इस प्रकार देवताओं के आंशिक मानवीकरण की कल्पनाओं में पूर्ण पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ। उपनिषदों में ही पुरुष मानव और पुरुष ब्रह्म की कल्पना का विकास ‘महामिद् ब्रह्मैव महति’ के रूप में कथित होने लगा है।^५ महाबाह और पद्मभारत के उपासक काक में ब्रह्म और ईश्वर दोनों का परस्पर समाहार हो गया। विशेषकर उपास्य इन्द्र के दोनों के विद्यापनों से सम्बद्ध किये गये। इन्हीं सम्बन्धित विशेषणों का आरोप उपास्य-रूप में गृहीत होने पर संतों और भक्तों पर भी किया गया।

पद्यार्थ में कुछ पौराणिक (मिथिक) अवतारों की बात अगर छोड़ दी जाय तो निगुणोपासक मन्थों में भी ऐसे विचार मिल जायेंगे जो अवतारवादी परंपरा के अनुकूल सिद्ध होंगे। सगुणवादी महापुरुषों में ऊपर से अवतरित ईश्वर-वाक्ति की कल्पना करते हैं, और निगुण मत अपने उत्कृष्टमणसीक साधक योगी एवं संतों में विकासोन्मुख ईश्वरत्व का अस्तित्व पाते हैं।

अतः संतों में मान्य यह साधनात्मक ईश्वरात्मुक्त विकास गीता एवं उपनिषदों में सापानक रूप दृष्टिगत होता है। गीता में कर्मियों, क्षत्रियों एवं सपत्नियों

१ अथर्व० सू० २. ८४. १। २ त. व. छद्मवाक्य २२ अनुवाक्य।

३ बी. रेडिकलन भास्कर मीन ५९। ४ अ० १, १०।

५. सु. १. १२. १, ४, ४. १५, श्रिट्टी भास्कर इण्डियन क्रिगोलोजी। जी. २. ५०. ५१८ में दास गुप्त के अनुसार उपनिषदों में पुरुष का प्रथम मानव और सद्य दोनों के लिये हुआ है। बाद के बाद की वाली भाग २. ५०. १५१-१५२ में बाद के मानव काया में अतिवृद्धि की अवधारणा की। जिसमें अतिवृद्धि अतिवृद्धि के साथ साथ आया और देवताओं के अन्त एवम काया में पुनः पुनः अवतार भी हुआ करते हैं। ‘काया मारि के अवतार। काया मारि वारवतार।’ पृ. १०।

से श्रेष्ठ योगी एवं उसमें भी श्रेष्ठ अदाशन भक्त को माना गया है।^१ उपनिषदों में ब्रह्मामन्द की उपलब्धि की दृष्टि से विचार करते हुए तैत्तिरीयो पत्रिषद् में मनुष्य के धामन्द से लेकर क्रमशः राव्यर्ष देव गंधर्ब, पितर, देवता, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति और ब्रह्मा के धामन्द की मात्रा में सतगुणाधिक वृद्धि दिखाते हुए क्रमशः श्रोत्रिय ब्रह्म में धामन्द की मात्रा सबसे अधिक मानी गई है।^२

इसके अतिरिक्त ईश्वर अनेक वर्ग के महापुरुषों में गीता के अनुसार अपनी विभूति के रूप में अभिव्यक्त होता है।^३ साथ ही भगले अण्वाय के अनुसार 'पुरुष सूक्त का विराट् पुरुष' अपने विराट्प्रम रूप में सर्वसत्तामुक्त एवं सव सक्तिमान पूर्ण मानव या पुरुषोत्तम के रूप में उपस्थित होता है। उसी प्रकार योगी भी योग की सर्वोच्च सिद्धि में ईश्वर या विराट्पुरुष से तादात्म्य होने पर स्वतः पूर्ण ईश्वर हो जाता है। बा० पृथ्वीसेन्द्र ने उसे ही पूर्णावतार की सज्ञा से अभिहित किया है।^४ क्योंकि यह विराटरूप भी 'योग येनय' रूप है। साथ ही 'अयमात्मा ब्रह्म' 'पुरुष एवेह सर्वम्' में सत्सीम की असीम में अभिव्यक्ति स्पष्ट उचित होती है।^५ सर्व रूप होने पर भी उसमें निहित पुरुष या पुरुषाकार का अस्तित्व, मनुष्य रूप से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध का चोत्क है।

इस प्रकार मनुष्य का ईश्वरोन्मुख तथा ईश्वर का पुरुषोन्मुख विकास भारतीय साधन में उस स्थान तक पहुँच जाता है जहाँ कि पुरुष पुरुषोत्तम के रूप में अभिव्यक्त होता है।

तब से सदैव भारतीय साधकों एवं महापुरुषों के मूल्य की अभिव्यक्ति पूर्ण, अस या कष्ट के रूप में होती रही है। भा० ११, ४, १० में इस कोटि के कठिनप्राचीन साधकों को कठोरतार कहा गया है। वीर पुरुषों में मान्य राम और कृष्ण अशाबतार से विकसित होकर पूर्णावतार के रूप में अभिव्यक्त हुए। अतः यह स्पष्ट है कि क्रिस्त्र प्रवृत्ति के द्वारा पुरुषों का ईश्वरीकरण हुआ, वह कबक अज्ञा या भावना माय पर आधारित नहीं थी, अपितु उसे योग एवं साधना का समुचित सम्बन्ध मिला था।

मध्ययुग में साधना का साधन ही मनुष्य की श्रेष्ठता एवं चरमोत्कर्ष का कारण हुआ क्योंकि इस युग में अन्य योगियों को भोग-यानि और

१ श्वेता ६, ४१-४०।

२ टी० ड ५, ८।

३ टी १ अ०।

४ अकार ५०१८

५ श्वेता ११, ८।

केवल मानव-योनि को ही साधना की योनि माना गया।^१ साधना के फलस्वरूप जो पद मनुष्य ने प्राप्त किया वह पद देवता भी नहीं पा सका।^२ इसी से मध्ययुग के साधक यह सोचते थे कि इस जगत का मपसे क्या साध्य केवल मनुष्य प्राप्त कर सकता है। अतएव वह साधनायुक्त ईश्वरीय गुणों एवं आदर्शों का मानवीकरण अवतारवाद का भी श्रोतक है। क्योंकि इनके आधार पर ही पूर्णावतार या पूर्वमानवता की कल्पना का विकास हुआ और ब्रह्म की महत्ता भी आदर्श मनुष्य के रूप में सोरुद या बारह कलाओं में अँकी गई। सत साहित्य के चिंतक पितृमोहन सेन ने इस 'सवार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे आई' की सत्यता अपने एक निबन्ध में स्वीकार की है।^३

इस प्रकार मनुष्य प्रत्येक युग में मानव-आदर्श एवं उसकी महानता का एक युगानुरूप मानदंड प्रस्तुत करता है। अवतारवाद पर से भी यदि पौराणिक आचरण को दृष्ट किया जाय तो दैगोर की यह उक्ति, अल्पज्ज्ञ उपयुक्त प्रतीत होती है कि प्रत्येक युग का एक महान व्यक्ति नये मानव धर्म का प्रादुर्भाव करता है। इस प्रकार प्रत्येक युग उसके रूप में अपना एक स्पर्शिक प्रकट करता है।^४

मत्स्ययुगीन सन्तों ने भी पौराणिक जन्मविद्यासंपूर्ण तन्त्रों को इटाकर एक नये ध्यस्तिक को जन्म दिया था। वह था इस युग का सहज और मोछे भाव की 'रहनि' में रहने वाला संत। जो अपने सत भाव में ब्रह्म और ईश्वर से किसी प्रकार कम नहीं है। समबता येने ही सन्तों को कबीर ने राम से अमिष माना है^५ तथा साकार प्रतीक-पूजा की अपेक्षा संतों को ही प्रत्यक्ष देवता स्वीकार किया है^६ जो कि सगुण सत्तों की भाषा में अवतार की सत्ता से अमिहित किये जा सकते हैं। जातुनिक युग के सत

१. सत उचिताउ और बरब कान्य ५ १११ पर १५।

त्रिगुण बीनि अयेन सम्मय पाप पुण्य असीष।

मानुषावतार दुर्कम निहू संगति रोष ४

२. क० प्र ५० १ ५ वीरवन्द भूमि विनि जाडु मनिता बरम की पुरी लाह।
गुण सेवा करि मगति कमार की तै मनिवा देही पारं।
वा देही कू रोचै देवा, सो देही करि हरि को सेवा।

३. संन अंक कल्याण ५ ११६। वर्ष २ सं० १।

४. दो रेनिजन भाव मेन ५० ५९। ५. क प्र ५ २७३ वरिठिह पर ५० १
'मना को मनि कोर निहडु संन राम है एछे'

६. क० प्र ४४ सागी ५ केरी देही जानया गेना साधिवराम।

साहू मगति देव है नहि बाबर मू कान्य ४

महाराजा गांधी के विचारों से भी मनुष्य के अवतारवादी मूल्यांकन की पुष्टि होती है। उनके कथनानुसार अवतार से तात्पर्य है—शरीरधारी पुरुषविशेष—
 “जीव मात्र ईश्वर के आकार हैं, परन्तु लौकिक मापा में हम सबको अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मज्ञान है उसे भावी प्रजा अवतार रूप से पूजती है। इसमें मुझे कोई शंका नहीं जान पड़ता। इसमें न तो ईश्वर के बह्यपन्न में कमी जाती है, न उसमें सत्य को बाधा पहुँचता है। ‘आदम ज्ञाता नहीं, लेकिन ज्ञाता के मूर से आवम हुआ नहीं।’ जिसमें धर्म-जागृति अपने युग में सबसे अधिक हो वह विशेषावतार है।” वे पुनः कहते हैं ‘मनुष्य को ईश्वर-रूप हुये बिना जैन नहीं मिलता, साँति नहीं मिलती। ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का नाम सत्ता और एकमात्र नाम पुरुषार्थ है, यही आत्म-दर्शन है।’

गांधी जी का उपर्युक्त कथन सतों में जहाँ तक अवतारत्व का समावेश का प्रश्न है, अत्यन्त सटीक उतरता है; क्योंकि भागे विस्तृत रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस युग के सन्त ही अवतार रहे हैं। क्रम-से-क्रम मध्ययुग की बहुविधोपासक जनता सन्तों और अवतारों में विशेष भेद नहीं देखती थी। उसके लिये सत ही ईश्वर का मूर्तिमान प्रतीक थे।

मध्ययुगीन अवतार संत

इस युग में सगुणोपासना के विरोधी सन्तों के सन्तों के जिन रूपों की चर्चा अपने पदों में की है वे सगुणमार्गी मर्त्यों में प्रचलित अवतारी उपास्यों के समानान्तर प्रतीत होते हैं। उनमें अवतारी भगवान् की भगवत्ता घण्टे मात्रा में विद्यमान है। कबीर को केवल राम का निर्मल गुणगान करने वाले संत ही माने हैं। जिसके दृष्ट में राम ब्रह्म का निवास है उसी की चरणभूमि का वे अभिष्ठापी हैं।^१ गुरु भजान संत और गोविन्द की एकता बताते हुए—
 सत के तत्त्वम उद्धारक होने के कारण दोनों में एक ही प्रकार का कार्य-साम्य मानते हैं।^२ सत बादू से सत और भगवान् को अभिन्न माना है। उनके

१ अनासक्ति योग । गीता । पृ० ५०, ५१ ।

२ निरमल निरमल राम गुण धारै सो भगता मेरे मनि धारै ।
 के अन केहि राम की नाइ, ताकी में बलिहारी जाउ ॥
 निहि बटि राम रई भरपूर, ताकी में चरणन की बुरि ।

क प्र० पृ० १२८ पर १२४

३ संत एकेउ अपने जीव नाकि संत उचारउ उन विषु ताकि ।

सौर संत नि धारै राम संत गोविन्द के पके काम । प्र० प्र० सा० पृ० ८६०

अनुसार राम सत को जपता है और सत राम को जपते हैं।^१ मनुस्मृत्युक्त कहते हैं कि यह माता सुन्दरी है जिसके गर्भ से भक्त अवतीर्ण होते हैं। जिसमें केवल कर-करवार जैसे लोग उत्पन्न होते हैं, व सभी बौद्ध सत्य हैं।^२ बालू ने पुनः संत पृथ राम को स्थान एक बतकाया है। राम के ही समान साधु की आराधना भी आवश्यक है; क्योंकि सत की सगति से हरि मिलते हैं और हरि की सगति से वा भक्ति से सन्त। इस प्रकार माधु में राम है और राम में ही साधु है। दोनों पृथक् हैं; उन्हें परस्पर विधिज्ञान नहीं किया जा सकता। जो सेवक अपने सेव्य ईश्वर का अपना हो गया तो उसमें और ईश्वर में फिर कोई अन्तर नहीं है।^३

इस साक्षियों में संत ही ईश्वर नहीं है अपितु ईश्वर भी एक आदर्श संत के रूप में प्रतिमासित होता है। संत उपास्य-रूप में स्वयं भगवान का ही भजनीय हो जाता है। सुन्दरदास के कथनानुसार ज्ञानों में माता-पुत्रपर सारबन्ध है।^४ मन, बचन, और कर्म से भजने वाले सत के ईश्वर भयीम हो

१ बाह्युपास्य की शशी नाम १ पु० ३५।

आत्म आसग राम का। तहाँ वही भगवान।

बाह्यु सुन्दरपर हरि आत्म का नाम ०

राम को अथि साधको. साध को सधिराम।

बाह्यु सुन्दर एक टन, बहुत भारीक बहुत काम ०

२ मनुस्मृत्युक्त की शशी दि० सं०। ५ ३५ ता० ३२।

भक्त ही माता सुन्दरी, जहाँ भक्त भीतर।

और सफल बौद्धी मर, जन्ममें पद बनवार ३

३ जहाँ राम तहाँ संत कम जहाँ साधु तहाँ राम।

बाह्यु सुन्दर एक है आत्म परत विस्तराम ३

हरि साधु की शरीर अस्मिन् के आराध।

माधु संध्यि हरि मिले, हरि लक्ष्य वे साध ०

साध समाधा राम में राम रखा मरुति।

बाह्यु सुन्दर एक रत, क्यों करि कोने हरि ३

सेवक सार का मना सेवक का सव थोर।

सेवक सार की मिला एक सार सरोधा हीर ३

बाह्यु स्वयत्त की शशी नाम १ पु० ३४-३५ क०।

४ सुन्दर अथ हरिको कथे हरिकल की शशीम।

पुन न जीने बाध दिन माता सुत ही शीम ०

सुन्दर मन्वावनी नाम १ पु० ३८० साधी ५६।

जाता है।^१ इस श्लोक का संत लोक-परलोक सर्वत्र दुर्लभ है।^२ ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि देवता सभी सुखम हो सकते हैं, परन्तु संत इतन सुखम नहीं हैं।^३ इस प्रकार संत कवियों ने सतों को देवताओं और जबतारों से श्रेष्ठतर प्रनामित करने का प्रयत्न किया है। सुन्दर दास कहते हैं कि सतों के चरण धोने के लिये गंगा भी इच्छुक रहती है।^४ ब्रह्मा, इन्द्रादि मन कर्म और बचन से उसकी सेवा करने की कामना करते हैं।^५ श्रीकृष्ण ने स्वयं सतों का अनुगमन करन के लिये जबतार ग्रहण किया था।^६ सतों का महिमागान भीपति स्वयं श्रीसुक्त से गाते हैं। हरि और हरिजन कमिष्ठ होने के कारण सत-सेवा में स्वयं हरि प्रसन्न होते हैं। क्योंकि सन्तों में हरि का विश्वास है और हरि में सन्तों का। अतः सतों की सेवा में हरि की भी सेवा होती है।^७ इस प्रकार इन्होंने पशु का समर्पण किया है। गुरु अर्जुन के अनुसार सत की महिमा बतों के लिये भी बगनातीत है। शिवदा उन्हीं मन्त्रम है उतना ही उन्हींके बणन किया है। यह मन तीनों गुणों से भी पर है।^८

सत एवं महाजातिवर्गों का शरण गुरु नामक में एक मर्या माना है।^९

१. सुंदर हरि संघर्ष के सुमिरन लीं औलोन।

मन बच कर्म करि होत है हरि तनके भावीन ॥

सुन्दर प्रभावकी मा १५ १८२ साखी ५१।

२. लोक प्रबोध लरे मिले, देव रज्जु ह शीर।

सुन्दर दुर्लभ संपदन कबो करि पावै शीर ॥

सुन्दर प्रभावकी मा० २५० ७४४ साखी २३।

३. ब्रह्मा शिव के लीं है वैकुण्ठ में वास। सुन्दर और लरे मिले दुर्लभ हरि के वास।

सुन्दर प्र० माग २५ ७४४ साखी २७।

४. शोषत है संसार सब गंगा माही वाप। सुंदर संघर्ष के चरण गंगा बंछे वाप।

सुन्दर प्र० भाग २५० ७४५ साखी ४३।

५. ब्रह्मादिक इन्द्रादि पुनि सुन्दर संघर्षि देव। मनसा वाचा कर्मना करि संघर्षि की सेवा।

सुंदर प्र माग ०५ ७४५ साखी ४४।

६. सुन्दर कृष्ण प्रकट करि मी वापी बह देह। संघर्ष के पीछे छिरी छह करन की देह।

सुन्दर प्र मा० २५० ७४५ साखी ४५।

७. सुन्दर प्र० साखी ४५-४६।

८. वाच की महिमा देव म जानहि। जेना सुनहि तेना वधिमाजहि।

साव की शोभा विह गुण ते हरि। साव की बरमा रहि भरपूरि।

गुरु प्रव साहित्य ५० १७२।

९. गुरु संघ साहित्य ५० १७२, 'नामक रह लक्षण मद्य विभागी शीर'।

महाशायी भी संतों के समाप्त समस्त विश्व का उपास्य एवं उद्धारक है।^१ वह स्वयं परमेश्वर है, इमी से महेश्वर भी उसकी आज्ञा में प्रयत्नशील रहते हैं।^२ महाशायी की अव्यक्त विशेषताएँ हैं, उसके भेदों का अंत नहीं है। वह सबका ठाकुर है। उसकी सीमा का वर्णन कौन कर सकता है। वह इतना महान है कि उसकी महानता को स्वयं महाशायी ही समझ सकता है।^३ वह अखिल सृष्टि का कर्ता है। वह स्वयं न तो जीता है न मरता है अर्थात् वह सर्वत्र एक सदा रहता है, और जीव के क्रिये मुक्ति और बुक्ति का दाता है। इस प्रकार वह पूर्ण महा और सब जगत्ओं का माध है। उसका हाथ सभी के ऊपर है; वह स्थूल सृष्टि-रूप या साकार होते हुए भी स्वयम् निराकार है।^४ इस प्रकार संतों ने सब को परमेश्वर की ओरि में माना है। सब का वह रूप केवल काव्यात्मक महत्त्व नहीं रखता अपितु ईश्वर के महेश उन्हीं को पूज्य एवं आराध्य भी मानता है।^५

उपास्य-रूप के साथ ही सब का विलय रूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि संत-बग का स्थान अल्पमत निश्चित है। वह पृथ्वी पर पाप विनष्ट करता है। संतों का कमी विनाश नहीं होता बल्कि पृथ्वी पर हरि के गुणों की अभिव्यक्ति सतों के रूप में होती है। इस प्रकार संत इस पृथ्वी पर ईश्वरत्व एवं भगवत्ता से ओत-प्रोत हैं।^६

१. महा गिजानी सगल बवान । मानक महा विजयति गवे सयक संताक ।
महा गिजानी छुट लख निवात, बापक महा गिजानी गवे सगल संताक ।
गुप्त ग्रंथ साहित्य पृ. २७२ ।
२. महा गिजानी कउ पीबदि नईहर मानक महागिजानी बाप बरमेहर ।
गुप्त ग्रंथ साहित्य पृ. २७२ पद ६ ।
३. गुप्त ग्रंथ साहित्य पृ. २७२ पद ७ महा गिजानी सरत का ठाकुर ।
४. महा गिजानी सब सृष्टि का करता । महा गिजानी सब जीवै नहीं मरता ।
महा गिजानी मुक्ति मुक्ति जीव कादाता । महा गिजानी पूर्य बरक विवाता ॥
महा गिजानी जबाब का बाहु । महा गिजानी का सम कपरि हाहु ।
महा गिजानी का लका अकाव । महा गिजानी बापि निरकार ॥
गुप्त ग्रंथ साहित्य पृ. २७२-२७४ पद ६ ।
५. भिदि बरि साब न बुविबे हरि की सेवा बरि ।
ते बर महहर सारबे, मूग बडे दिन बरि ॥ क० ग्रं० पृ० ५२ पंक्ति ३ ।
६. संत मंडक का मही विनाह । संत मंडक बरि बरि गुगताह ।
संत मंडक ठाकुर दिक्ताह । मानक ओरि ओरि भगवतु ।
गुप्त ग्रंथ साहित्य १२४६, ४, २४, ३७, पंक्ति ५ ।

वहाँ तक संत क आविर्भाव का प्रश्न है सूक्तियों क सद्य इन्हें ज्योति का उपनाम कहा गया है। संत रजब कहते हैं—'सत इम विरब में आमै (ज्योति) का अवतार है। वह एक ओर तो शून्य में समाधिस्थ रहता है और दूसरी ओर परोपकार में रत रहता है।' य पैगम्बरों क सद्य ईश्वर की पृथ्वी पर आविर्भूत होते हैं तथा प्रीतम (इश्वर) का सद्य बसक साधकों णव मच्छों तक पहुँचाते हैं। यह सारी अभिव्यक्ति या हीला ता राम की है किन्तु सन्त ही उसक अभिनेता हैं। व हीला क समस्त हो जाने पर पुनः एक ही हो जाते हैं।^१

मध्यकाहीन सगुण अवतारों क सद्य इनक अवतार का भी प्रमुख प्रयासक उद्धार काय रहा है। सन्त मुन्दरदास क अनुसार सन्तों क आविर्भाव ज्ञान मिटाकर जीव को शिव करने के निमित्त होता है।^२

सन्त शत्रु क अनुसार इनका आविर्भाव कलियुग में परोपकार क विमित्त होता है; य स्वयं तो तदस्थ या निष्काम रहते हैं, परन्तु निःस्वार्थ होकर रामरस दूसरों को पान कराते हैं।^३ जता सन्त ही इस कलियुग में परमार्थी परमेश्वर और अवतारी-ईश्वर का कार्य करत है।^४ ब्रह्मा, सङ्कर शप, सुनि, नारद, भुव, शुक्रदेव आदि सभी सन्त इस युग में हरि की सेवा में रत रहते हैं।^५ इस प्रकार सन्तों ने एक प्रकार से सन्तों और मच्छों को ही इस युग में ईश्वर

१ साहू जन संसार में आमै का औदार। सीनि समोवै शून्य में आमै पर उपकार।
रजबको को बानी पृ ७१ अंक ११ साखी ३।

२ साहू जन इस वैस का, को जाना बहि संसार।

साहू बस हूँ प्रियै, प्रीतम के समाचार।

दाहूदपाक को बानी माग १ पृ० १६४ साखी १८।

३ बीजा रामा राम की। सेत्रे सव ही संत ॥ जापा परं पकै मया। सुटी सवै मरंत ॥

दाहूदपाक को बानी माग १, पृ० १६४ साखी ४७।

४ सुन्दर आवै संत सव सुख करन को जीव। सव अघान निराह बरि करत जीव ते सीव।

सुन्दर प्र माग १ पृ० ७४३ साखी १७।

५ पर उगणी संत सव आवै बहि कलि मारि।

पिबे पिबावै राम रत माग सवारव नारि ॥

दाहूदपाक को बानी माग १ पृ १६२ साखी ५२।

६ परमारव हूँ सव किय, भाव सवारव नारि।

परमेश्वर परमारवी के साहू बहि मारि ॥

दाहूदपाक को बानी माग १ पृ १६१ साखी ५०।

७ ब्रह्मा संकर सेस सुनि, नारद भू शुक्रदेव। सकल साहू साहू सरी ने काग हरि सेव।

दाहूदपाक को बानी माग १ पृ १६८ साखी ११३।

क अवतार के रूप में प्रकट किया है। इस अवतारत्व में सगुण निर्गुण का कोई भेद किये बिना प्रायः समान रूप से पौराणिक मन्त्रों एवं स्मृतियों के नाम लिप्युक्त गये हैं।

सम्भवतः उक्त प्रकृतियों के आधार पर^१ परवर्ती स्मृतियों में पौराणिक पद्धति में ही स्मृतियों का अवतार माना। साथ ही इनकी यह धारणा हो गई कि भगवान् भी स्मृतियों के रूप में सम्प्रदाय एवं मन्त्र-प्रवर्तन के निमित्त आविर्भूत होता है। सगुण और निर्गुण सन्त-अवतार को स्पष्ट करत हुए कहा गया है कि अस्य अवतारों में तो वह निर्गुण से संपुक्त रहता है, परन्तु सन्त-अवतार में वह निर्गुण से मुक्त रहता है।^२ इस प्रकार सन्त कवियों में सन्त ही ईश्वर के अवतार मान गये हैं। इनके अवतार का मुख्य प्रयोजन सन्त मत का प्रवर्तन करना रहा है। फलतः स्मृतियों के अवतार एक प्रकार से साम्प्रदायिक अवतारों की श्रेणि में गृहीत होते हैं।

अन्तर्यामी

मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध पूर्वकाल से ही एक ऐसी मानवीय भाव भूमि पर प्रतिष्ठित रहा है जहाँ एक के उत्कृष्टतम और दूसरे के अवतरण द्वारा परस्पर उनमें आकर्षण की कल्पना की जाती है। सामाजिक कवियों और परम्पराओं के अतिरिक्त यहाँ उसकी वैयक्तिक रुचि और उसके अन्तरात्मिक भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा उसका मनोमुक्त ईश्वर के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। मनुष्य की स्वानुभूतियों से उत्पन्न यह ईश्वर ही कवि गुण रबीन्द्र और डॉ. इबारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इष्टामय, प्रेममय और आनन्दमय है।^३

उपर्युक्त शब्दों का सम्बन्ध विभिन्न श्रेणियों के लोगों में विभिन्न रूपों में प्रकटित है। सामान्यतः सामान्य मनुष्य और बहुदेवता योगी और परमात्मा ज्ञानी और मन्त्र, मन्त्र और भगवान् तथा सन्त और अन्तर्यामी के रूप में इन्हें व्यक्त किया जा सकता है।

१ बहू साहित्य की दानी भाग १ पृ० ३ संज्ञक अवतारविधी परब्राह्मण काव्यां।

२ सगुण रूप अवतार विधी इति चरि के भाष्ये।

मन्त्रि चरे बरदेय जगत् को राह बकावै ॥

और चरे अवतार रई निर्गुण सगुण।

सगुण रूप चरे रई निर्गुण से मुक्त ॥

बहू साहित्य की दानी भाग १ पृ० १५।

३ कबीर, पृ० ३ विधी, पृ० १२५।

एक ही साधनमि से उन्नत होने के कारण उपर्युक्त दोनों के सम्बन्धों में एक विशेष प्रकार की एकता लक्षित होती है। साधनावस्था में भी भाव प्रथियों से आपूरित सबदनदीप्त मानव अपनी रुचि और भावों का प्रवेष्ट आरोप अपने उपास्य पर करता है। जिसके फलस्वरूप साधना में पूजा या अर्चना, आसक्ति या आत्मार्पण, तप सयम, मनन या चिंतन, आत्मानुभूति या आत्मबिह्वलता आदि के माध्यम से किसी न किसी प्रकार के वैश्विक की सृष्टि होती रहती है। उपासक और उपास्य में जबतक तादात्म्य की स्थिति नहीं आती तब तक बहिर्मुख या अन्तर्मुख रूप में उस वैश्विक की अभिव्यक्ति का व्यापक अस्तित्व विहित होता है। सामान्य मनुष्य की अभिव्यक्ति में बहिर्मुख भावों का प्राधान्य होता है। पुरातन या अतुनातन प्पावहारिक रूप में प्रचलित अनेक देवताओं और अनगिनत मूर्तियों की पूजा में इसका भाग दाता है। विभिन्न देवता विभिन्न भावों मुद्राओं एवं कार्यों के प्रतीक होते हैं। जिनका व्यक्तित्व-विशेष समाज में उसी रूप में प्रचलित हो जाता है।

यही वैश्विक सामान्य मनुष्य की देववादी भावना को अधिक दृढ़तर बनाने में सहायक होता है।

बोगी भी प्रारम्भ से लेकर सिद्धावस्था तक नाना अवस्थाओं में परमात्मा के अनेक रूपों, रंगों या अलौकिक स्थितियों में उसी वैश्विक का अनुभव करता है जो उसके अन्तर्गत उस्ताह को सतत क्रियाशील रहता है।

ज्ञानी ब्रह्म की अद्वैत स्थिति तक पहुँचने के पूर्व उसके विवर्तन या माया को अपने तक और पुष्टियों द्वारा सुरुक्षाने में कुछ उसी प्रकार के बहिर्मुख वैश्विक का अनुभव करता है।

सगुणोपासक भक्त के भगवान् या इष्टदेव तो एक ही होते हैं, किन्तु उस भगवान् के ही ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि रूपों में विविध प्रकार की लीलाओं का समावेश होने के कारण भक्त अपनी रुचि नित्यवर्धन करने में सक्षम होता है।

सम्भ भी अपने अन्तर्धामी के साथ जिस प्रकार का सम्बन्ध रखते हैं वह उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियों तथा आत्मानुभूति से संचलित एक प्रकार का साक्षात्क रहस्यवाद है। इस रहस्य भाव में बुद्धि की अपेक्षा इन्द्रियतन्त्र की प्रधानता है, क्योंकि बुद्धि विरहेपम के द्वारा एक ओर तो वे उसके एकपरवादी रूप को सुरक्षित रखते हैं और दूसरी ओर उसमें वैपत्तिक सामाजिक आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा पौराणिक, अथवा ब्रह्म आदि रूपों का आरोप करते हैं। फलतः निर्गुण और निराकार होते हुये भी यममें सगुण, स्वीका

पुत्र ईश्वर के वैश्विप्य का भोग हो जाता है। यही भोग सत-साहित्य की सर्जना में सत एवं श्रेय-रत्न का निमित्त बन कर अभिव्यक्ति का माध्यम प्रस्तुत करता है।

यों सन्त किसी विशेष सिद्धांत या मत के प्रतिपक्षी विद्वित नहीं होते। इसीसे उनका आत्मभिव्यक्तन की अज्ञानपारा सर्वत्र प्रवाहित होती हुई लक्षित होती है। उनका अन्तर्दामी अक्षर, अविवासी निर्गुण-विराकार और निरुपाधि हाते हुए भी मनुष्य के सामने सर्वव्यपक एक आदर्श हृदय सन्त के सारस व्यक्तित्व रहता है।

संतों ने अपने उपास्य को राम, रहीम केशव करीम अनेक नामों से अभिहित किया है।^१ नामोपासना ही उनके साधन का मूल मध्य रही है। इस युग तक निर्गुण सन्तों के उत्कर्षकाळ में इस्लामी एकधरवाद को परोक्षित स्थान प्राप्त हो चुका था। इसलिये सन्तों ने भारतीय नामों के साथ इस्लामी रहीम करीम आदि नामों का भी अपनाया। अपनी इस उदारता के कारण वे तत्कालीन युग के धर्मसम्प्रदाय विप्लव व्यक्तियों में माने जा सकते हैं। यद्यपि सध्वता रामानन्द आदि प्रवक्तों द्वारा प्रवर्तित शुद्ध-परम्परा में गृहीत होने के कारण राम-नाम का संतों ने बहुत सुनयता प्रदान की है। किन्तु संत-साहित्य के अक्षररत्न से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे किसी नाम-विलय के पक्षपाती नहीं थे।^२ यह सोचते हुए उनके उपास्य ईश्वर का उपयुक्त नाम 'अन्तर्दामी' समीचीन प्रतीत होता है।

यपोंकि इनका उपास्य मुख्य रूप से हृदय में स्थित मध्य ही है।^३ यह बहुत कुछ अंशों में उपनिषदों का भाव्य मध्य है। उपनिषदों में उसे प्रथा 'महामृतान्तरात्मा', 'पुरुषोत्तरात्मा', 'आत्म रूप', 'पुरुषप्रप्राप्ति', 'बाह्यरत्न कला पुत्र पुरुष' तथा 'अन्तर्दामी'^४ कहा गया है। परन्तु 'अन्तर्दामी' दास्य

१ हमारे राम रहीम करीम केशव अक्षर राम सति कोरे।

विलम्बित मैटि विलम्बर रके, और न दूमा कोरे ॥ ४० प्र० ५ १०६ १५ १८।

२ कई करोता राम केशवरा रूपनी रति अकि धारै।

हिन्दु तुलक का करना रके, ता धनि लछी व कारै ॥ ४० प्र० ५ १०६, १८।

३ ४० प्र० ५ १६४ ईश्वर ईश्वर पंथ निहारक स्वामी करे मिलुनि अन्तरवासी।

४ ४० प्र० ३० २, २ १२ पंथे बढ़ी सर्वभूतान्तरात्मा परक करै बहुवा वा कोनि।

५ ४० प्र० १० १, १ १७ अक्षरवाच्य पुरुषोत्तरात्मा तरा बनानी हृदये लत्रिदिय।

६ एत ४० १२, १।

७ एत ४० १ ७।

८ मतने ४० २।

९ बाइको २।

में आत्मब्रह्म की निरपेक्षता या उदासीनता का भाव न होकर मानबोधित संबन्धना, भावुकता और जिज्ञासा का भाव होता है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में कहा गया है कि 'बह यद् आत्मतत्त्वं पुत्रं से अधिकं प्रियं है, यत् स अधिकं प्रियं है, और जन्म सबसे भी अधिक प्रिय है, क्योंकि यह आत्मा उमकी अपेक्षा अन्तरतर है। अतः आत्मरूप प्रिय की ही उपासना करें। जो आत्मरूप प्रिय की ही उपासना करता है, उमका प्रिय अत्यन्त मरण शील नहीं होता।' पुनः इन्द्र्य की म्पन्नता करते हुए इसे इन्द्र्य ब्रह्म का नाम से अभिहित किया गया है। शम्बर के अनुसार बह सर्वरूप इन्द्र्य ब्रह्म ही उपास्य है। बह जन्म मर्त्तों में मनोमय पुरुष कहा गया है। मन्मथा ही तिसका रूप है। ऐसा यह पुरुष मनोमय है। बह इन्द्र्य के अन्धर स्थित धान या घब के परिमाण स्वरूप है। बह सबका स्वामी अधिपति और यह जो कुछ है, समी का शासन कर्ता है। उपर्युक्त तीनों उद्घरणों में उमकी संबन्धना, भावुकता और जिज्ञासा का अनुमान किया जा सकता है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में 'अन्तर्पामी' रूप की विसृत चर्चा उद्घाटक और पाशुबन्धन के बार्तालाप में मिलती है। पाशुबन्धन 'अन्तर्पामी' का रूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'जो पृथ्वी में रहने वाला पृथ्वी के भीतर है जिसे पृथ्वी नहीं जानती तिसका पृथ्वी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथ्वी का नियमन करता है वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्पामी अदृश है।' 'बह अन्तर्पामी' जल, अग्नि अतः शिवाय वायु चुम्बक, आदित्य, विज्ञाप्ये, चन्द्रमा, तारागम्य आकाश तम तेज, भूत प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र मन विज्ञान और शीघ्र के अन्धर स्थित है। किन्तु व उमको नहीं जानते। ये समी उसका शरीर हैं और बह इन समी का नियमन करता है।'

पाँचराशों में ब्रह्म के चार रूपों में एक 'अन्तर्पामी' रूप माना गया है। श्रेष्ठ के अनुसार अन्तर्पामी अवतार ईश्वर की बह शक्ति या रूप है जो निधूम ज्वाला के रूप में मनुष्य के हृत्कमरु में स्थित रहता है। यह योगियों के स्थित उपास्य है। श्रीगोपीनाथ कविराज के अनुसार इम अनुम रूप से व जीवों के इन्द्र्य में प्रविष्ट होकर उमकी सब प्रकार की प्रवृत्तियों को नियंत्रित करते हैं। 'अन्तर्पामी' दो प्रकार के होते हैं। एक रूप में मगदमय विग्रह

१. इ. उ. ४. ४. ७।

२. इ. उ. ४. ५. १, २।

३. इ. उ. ४. ५. १। शंकर भाष्य 'तद् सर्वं वरमात् तत्त्वात्पुण्यं इन्द्र्यं ब्रह्म।'

४. इ. उ. ४. ५. १।

५. इ. उ. ४. ५. १।

६. इ. उ. ४. ५. ४-१३।

७. श्रेष्ठ इ. उ. ४. ५।

क भाव जीव क सारा रूप से हृदय-कमल में ब बान करतें हैं । वहाँ उनका उद्देश्य है उसकी रक्षा करना और उसके 'प्य रूप में उसक साथ-साथ अवस्थित रहना' और अपने दूसरे रूप में ब अन्तरात्मा के रूप में जीवों की सभी अवस्थाओं स्वर्ग, गरुड तथा गर्भावस्था तक उसकी रक्षा करतें हैं ।^१ मनुष्य में वह 'अन्तर्धामी' बाह्य या वीर्य वादि अवस्थाओं से अप्रभावित होकर स्थित रहता है । डा० दासगुप्त ने ध्यूइवाद में गृहीत अनिष्टक को 'अन्तर्धामी' भयतार का प्रतिरूप माना है ।^२

सतों ने हृदय में स्थित 'अन्तर्धामी' को अपना सहज सौम्य व्यक्तित्व प्रदान किया है । सतों में 'अन्तर्धामी' आदि भयतारों की क्येति में माना जाता है ।^३ कपीर अपने हृदय में नित्य प्रति उसक प्राकट्य का आनन्द लेते हैं ।^४ उनमें त्रिम विगुण राम का प्रचार है ब हृदय स्थित ब्रह्म क रूप में ही गृहीत हुए हैं ।^५ इनक पूर्व ही 'राम तापनीय' उपनिषदों में राम की व्याख्या इस प्रकार की गई थी कि योगी लोग त्रिस त्रियानन्द स्वरूप, त्रिमय ब्रह्म में रमण करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा 'राम' शब्द द्वारा अभिहित होता है ।^६ त्रिगुणिया नाम से प्रसिद्ध सतों में अपने इस उपास्य 'अन्तर्धामी राम क प्रति प्रायः उन्नी प्रकार क व्यक्तित्व आत्मविबद्धन का परिचय मिलता है, जैसा कि सगुणमार्गी मन्त्रों में देखा जाता है ।

नामदेव अपने सवस्थापक अन्तर्धामी राम क समग्र अपने मन की ध्याना प्रकट करतें हैं । उनक राजा राम उसी प्रकार अन्तर्धामी हैं जैसे हृदय में शरीर वसित होता है ।^७ फिर भी प्रायः दोनों की उपासना-पद्धति में पर्याप्त वैपश्य रहा है । मनुजोपासक अपने इष्टदेव की उपासना विधि-विधेय द्वारा

१. कृष्णादि कव्याव ५० ४६ । २. तत्त्वत्रय ५ २१६-२१७ और ७४-७५ ।

३. विरही भाव दण्डिपत्र फिलोसोफी की० २५ ४ ।

४. बीनार आनमा भारती आदि नारायण बीर ।

रमण एक अनेक विधि के होयक बीर उदीर ।

रमण की बी वानी ५० २१६ साधी ४६ ।

५. इ० प्र० ५० २५ साधी ३ । हरि संगति सौम्य मया, मियी मोर की ताप ।

त्रिम वादुरि सुग निष्क लया अवर्धुरि प्रकटा माप ।

६. बीर विचारि करन ही वृत्ता । आनम राम अवर नहि वृत्ता ।

क० प्र० ५ १११ पर ११५ ।

७. श्री देवद कविन्दम । अक्षरार पुरातरालव । रामनाथनीशोपनिषद् ५ ३०६

प्रममोपनिषद् ६ ।

८. देतो राम रार अन्तरकामी । विठे हरपन मरिद करन पत्तामी ।

सुनकाव्य-नामदेव ५ १४० ।

करते हैं तथा उनके नाम, रूप, गुण, लीला, धाम की चर्चा क साध
 मष्टयान् पूजा और भजना करते हैं।^१ वहीं सत कबल नामोपामना पूज पौराणिक
 पद्धतियों का उपयोग करते हैं। किन्तु सत-साहित्य में जहाँ तक उनका
 ईश्वर विषय है उसमें सगुण-साकार तथा अवतारवादी ईश्वर की बिसिद्धताओं
 का प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है। इनका अर्थ है कि सतों ने सगुणमार्गी
 मन्त्रों के समान किसी मूर्ति या रूप को स्वीकार नहीं किया है। फिर भी
 विश्व में जितनी आत्माएँ हैं, उन सभी को सातग्राम क सरथा भगवान क
 प्रतीक रूप में माना है।^२ यद्यपि इन आत्ममूर्ति में स्पष्ट रूप का अभाव
 है फिर भी इसमें सगुण-साकार क गुण बनमान हैं।

इनका आभाराम या अन्तर्दामी ईश्वर निष्किय या अनासक्त ब्रह्म नहीं
 है अपितु सतों और मन्त्रों का पालक और अनीष्टनाता है।^३ इस प्रकार
 उपनिषदों में कथित उन्क आत्म रूप क अनिरिक्त इन्द्रोमे मण्यकास्तीज युग
 में प्रचलित पौराणिक पाँचरात्र सूत्री और इस्लामी प्रायः सभी रूपों का
 अपूज समन्यय किया है; जिसके फलस्वरूप उम ईश्वर का एक बिराए व्यक्तित्व
 बन गया है। सत विनोबा ने ठीक ही कहा है कि हमारे सतों की पावन
 दान्ति प्रदर होन क कारण ये मारे मिश्र-मिश्र दसन उनको बिरोधी नहीं
 मानस हाते, बरिक्त इम मपको ब एक साथ हजम कर लते हैं।^४ अतः सतों
 ने ईश्वर से भाई, बन्धु, माता पिता, मन्त्रा स्वामी, गुरु, दाम, पति प्रियतम
 आदि अनेक प्रकार क वैयक्तिक और सामाजिक संबंध स्थापित किए हैं।^५
 इनका अर्थ है कि सगुणोपासकों की साधना बहिर्मुखी है। पर सतों में

१. श्री वेण्णव उपनिषद् पृ. १०६ १ ४ में कहा गया है कि ये राम नामोच्चारण करने
 पर आत्ममार्गी की प्राप्ति कराते हैं।

२. जेनी देवों आत्मा, ठेगा साविमराम। क. प्र० पृ० ४४ छापी ५।

३. बटि बटि पारमहठि विनि बनि बीठा।

बानि कन्तरि तू है तू रछी बकु बरतामनिपा।

सगळ मनोरथ तू बैबन द्वारा, मयनी मारै मरे मण्बारा।

बरभा बारि राख तुजु सेर पूरे कर्तम समाधिमिमा। गु० प्र० छा० पृ० १११।

४. संन मुवा सार की मण्गलना पृ० १५।

५. तू ही तू आचार हमारे, सेना मुठ हम राम तुम्हारे।
 मारै बाप तू सारिब मेरा मयनि हीन मैं सखण ठेरा।।
 मात पिता तू बँबन मारै, तुम्हरी नेरे सखन लहारै।
 तुम ही ठाठ तुम ही मात, तुम ही बाप तुम ही मात व
 कुल कुटुम्ब तू सर बरिबार, बाटू का तू बारण हात।

नाम्यन्तरिक पूजा एवं भारती की योग-संगृह्य रचनायें मिलती हैं।^१ इसक अनिरीक सत्ता में अपने इष्टदेव के प्रति दित्तने प्रकार के वैयक्तिक संबन्ध देखाई पड़ते हैं, उनमें सगुणोपासकों की भाँति पेरवर्ष-आहुर्ष-युक्त, वात्मरूप, हास्य, सरस वामपत्य आदि भावों की विशेष अभिव्यक्ति हुई है। वन्द्य पूजे राजा की सेवा करने की कामना करते हैं, जिसके तीनों लोक पर हैं। चाँद और सूर्य हीपक हैं पवन आंगन पुहारता है। जहाँ कृष्ण कोटि जल है। जल-दिन राँकर और मछली उसकी सेवा करने पर भी उनका भेद नहीं जानाते। वह जिसे भेति भेति गाता है।^२ सभी देवता जिसकी सेवा करते हैं। गुनि प्याम करते हैं; चित्र विचित्र जिसके दरबार के छिपिके हैं। धर्मराज गुण गार पर लगे हैं। ऋद्धियाँ सिद्धियाँ उसकी हासी हैं। चारों पदार्थ (धर्म-वर्षादि) जी हुजूरी करते हैं। कोस-अँहार मरपूर हैं। नारद, सारदा आदि केमक गुण गान करते हैं। मट नाचते हैं और विचित्र प्रकार के बाज बजत हैं। आ बीरह सुवन में अवस्थित है। जो इस विश्व की सृष्टि कर उने कारण रूप हुये हैं, वही वन्द्य का सम्य है।

यहाँ वन्द्य का इष्टदेव राजा रूप में चित्रित हुआ है। सगुणोपासकों में भी अपने इष्टदेव के निरालोक और टाकुर-दरबार का इसी प्रकार का चित्रण आ है। अंतर कमल इतना ही है कि जहाँ उनमें अर्चारूप का प्राधान्य है वहाँ सत्ता में आत्ममग्न या अन्तर्दामी का ऐश्वर्य-रूप उद्दिगत होता है। इम कारण में वास्य भाव भी स्पष्ट है। वन्द्य के अनिरीक कबीर ने भी पूर्ण मङ्गल के ऐश्वर्य-रूप का बणन किया है। उनका पद्यों में 'नारंगपात्री' का प्रयोग

१ (क) क म व ४ ५ दिव्यंशा एहां शुक्लनामराम में २२५ वृत्ताका मान होता है।

(ग) यह विधि आरति राम की बीजे। आरति अन्तरि वारणा बीजे।

एत मम अन्तरे मेव को माला, अनरद दग्धा बीम दवाला।

वान्द्य दवाक की वली मलय १ वृ० २८८ पद ४४२।

२ एही राजा सीरं गादि। और अनेक सब लामे आदि।

छानि लोक गुरु परे रचार चंद लुर रोक हीपक कार ॥

पवन पुहारे गुरु मङ्गल्य सपन कोटि जल का के बटा।

रति सेवा चंदर देव मट मुलाक न जाने मेव ॥

कोरति अरण वारदू वेद, मेति मेति मवि जाने मेद।

--

--

ऐनो राजा सीरं आदि। बीरह सुवन में रछी सवारं।

वान्द्य लामे सेवा करे, विन महु रविके अवर परे ॥

वान्द्य दवाक की वली मलय १ वृ० २९७ पद ३९२।

होने का कारण व विष्णु से सम्बन्ध प्रतीत होते हैं।^१ कबीर का वास्तव भाव एक ऐसे ठाकुर के प्रति कथित होता है, जो सगुण इष्टियों का सदाश भक्तवचक है।^२ गुह वज्रुन ऐसे धनी गोविन्द का गुणगान करते हैं, जिसने विष्णु के रूप में करोड़ों अवतार धारण किये हैं। करोड़ों महात्म्यों में जिसका विस्तार है। करोड़ों महा-शिव, जिसमें स्थित हैं। करोड़ों उसके विभिन्न अंगों से उत्पन्न होते हैं। करोड़ों भक्त (सगुणोपासकों का नित्य पार्षदों के सदाश) उसके संग रहते हैं। करोड़ों बैकुण्ठ उसकी दृष्टि में विद्यमान हैं।^३

सगुणोपासकों की मूर्ति सम्यों में भी इष्टदेव के प्रति माधुर्यभाव की अभिव्यक्ति हुई है। विशेषकर कृष्णोपासक तथा काछान्तर में रामोपासक सम्प्रदायों में जिस वास्तव्य, सखी या भक्तवरीभाव का विकसित हुआ, उसकी अभिव्यक्ति सम्यों में भी हुई। कबीर 'हरि प्रीतम' के साथ अपना व्यथित सुदृढ़ सम्बन्ध प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि हरि मेरा प्रीतम है। हरि के बिना मेरे जीव का अस्तित्व नहीं रह सकता। मैं इस प्रिय की बहुरिया हूँ। व राम बड़े हैं और मैं उनकी छोटी सी बहुरिया हूँ। मैंने तो उनसे मिलने के लिए इतना श्रद्धा किया, परन्तु पता नहीं क्यों वे रामा राम नहीं मिले। यदि अबकी बार मिल पाऊँ तो पुनः इस भवविश्व में नहीं जाना पड़ेगा।^४ दादू ने मारी सृष्टि को मारी और केवल एक ईश्वर मात्र को स्वामी बतलाया है। एक बिरहिणी का समान जातुर होकर वे कहते हैं कि हम सभी उसकी स्त्री हैं और वही एक मात्र पति है। सभी अपने शरीर का श्रद्धा करते हैं। व धर-धर में अपनी सेवा सकारते हैं और प्रिय कन्त का पथ मिहारात

१ क. प्र० पृ० २०२-२०३ पद १४०। २. क० प्र० पृ १२७ पद १२२।

रामा भवरीष के अरुणि एक सुन्दरन कोरे।

रास कबीर को ठाकुर ऐसी यपत को सरन प्यारे ॥

३ श्लोदि विरतन कीने अवतार। श्लोदि ब्रह्मण्ड बाके मनसाक।

श्लोदि महेष्ट ब्याह समाप। श्लोदि ब्रह्मबगु साब्य कार ॥

पसो बधी गोविन्द हमारा। वरुनि न सकव गुन विसधारा।

श्लोदि ब्यावचना छै अहि। श्लोदि भगन वसन हरि संगि ॥

श्लोदि बैकुण्ठ बाकि इहि मादि।

गुह प्रथ साहित्य पृ० १२५९ गुह वर्जुन।

४ हरि मेरा बीव पारै, हरि मेरा पीव हरि निन रहि न सके मेरा जीव।

हरि मेरा बीव मैं राम को बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक बहुरिया ॥

किना स्वंगार मिश्र के छारै कहि न मिली रामा राम गुसारे।

अरकी वैर मिश्रन को बाळ, बड़े करीर मैं जकि नहीं बाळ।

क० प्र० १२५ पद १२७।

है। वे बिह्वल होकर अपने पति का श्वाण करते हैं कि कय नाथ को गले लगाऊँ। इस प्रकार अत्यन्त आतुर विभोगिनी के सहरा व अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते हैं।^१ सुन्दर दास 'पतिव्रत की बंग' में कहते हैं कि सगवान् क अतिरिक्त इस विषय में और कुछ नहीं है। सभी मन्तों के अनुसार वह पतिव्रत या दाम्पत्य भाव से उपास्य है।^२ इस प्रकार मन्तों ने भी अपने इष्टदेव के प्रति स्वकीयाश्रित दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति की है।

उक्त सम्बन्धों के अतिरिक्त मन्तों ने अपने इष्टदेव से विभिन्न प्रकार के अन्य सम्बन्ध भी स्थापित किये हैं। कबीर अपने इष्टदेव को माता के रूप में सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—हरि तूँ हमारी माता है; मैं तुम्हारा पुत्र हूँ; तुम हमारे अङ्गुष्ठी को क्यों नहीं चमा करोगे। पुत्र विभिन्न प्रकार के अपराध किया करते हैं, किन्तु माता कभी भी उधर श्वाण नहीं देती। कबीर कृप साध विचार कर कहते हैं कि बासक यदि चुन्नी है तो माता भी उतनी ही चुन्नी है।^३ गुण रामदास अपने प्रीतम से विविध सम्बन्ध जोड़ते हैं। उनका उपास्य जा मित्र है सखा है, बही प्रीतम भी है।^४

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि मन्तों ने अपने कल्याण और अविनाशी पुरुष में सगुण ईश्वर के व्यक्तित्व का पूण समावेश किया है। इन सम्बन्धों में किसी मित्रान्त दसन या सम्प्रदाय मात्र का विशेष प्रभाव उचित नहीं

१. हम सब माती एक परवार सब कोरे तन करे सिगान ।
परि परि अपने सेव संघारे। कय विचारे बंध निहारे ॥
आरति अपने पिय को प्यारी भिके पाद कर बज्र लगाये ।
आदि मातुर ये प्योत्र कोसे कानि बरी विभोपनि कोसे ॥
सब हम माती दादू बीन बैरं तराण काहू संग कीन ।

दाहूदकक की वाणी भाव २५ २० पर २३ ।

२. सुन्दर बीट कर नहीं कय दिना मयवन्त ।
नातो पतिव्रत दासिने डेरि कई सब संव म सुन्दर प्र० भाग २,५ २२०-२२२ ।
३. हरि जगनी मैं वातिके तरा काहे व औगुन कहुगुगु मेरा ।
तुन अपराध करे दिन केडे, जगनी के चित रहे न डेने ।
कर गहि नेच करे को नाग, नऊ न डेव उगारे माया ।
कहे कबीर एक बुद्धि विचारी, वाक्य चुन्नी तुम्हो मरणाती ॥

क प्र०, पृ० १२१ पर १११ ।

४. आज सभी हरि देगु करेहा, मेरे प्रीतम का मैं बैर सनेहा ।
मेरा मित्र सखा को प्रीतनु मारं, मैं रसै हरि बरहरी से जीव व

गुण प्र० का० पृ० २५ ।

होता। भविष्य उभये व्यक्तित्व रूप में सहामुमूर्तिपरक आत्मनिबद्धन, वैश्व, भादि स्वाभाविक उद्धारों से सबलित मानस्य विदित होता है।

इसके अतिरिक्त सगुणोपासकों के इष्टदेव में त्रिस परम्परागत कष्ट, सर्वात्मवादी एवं विराट रूप का व्रतण हाता है, सन्तों के इष्टदेव में भी पत्किचित् उसकी अभिव्यक्ति हुई है। गुरु जर्जुन एक पद में कहते हैं कि वह अपनी माया का विस्तार स्वयं करता है और स्वयं उसका व्रतण है। वह अनक प्रकार के रूप धारण करता है, किन्तु सबसे पृथक रहता है।^१ गीता में त्रिम प्रकार कहा गया है कि जो सर्वत्र मुझको और सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं अक्षय नहीं होता और वह मेरे लिये अक्षय नहीं होता।^२ उमी प्रकार सप्त रविनाम भी मन्त्र में हरि को तथा हरि में सबको देखते हैं। सृष्टि-रचना के द्वारा वह अपना ही विस्तार करता है।^३ सप्त रविनाम ने उसके विराट् रूप का परिचय दते हुये कहा है कि त्रिम विराट् पुरुष के चरण पाताळ है और सिर आमनाम है, बही ठाकुर सम्पुट के समान है।^४ अर्थात् बही 'अनोरणीयान्' और 'महतो महीयान्' है।

इष्टदेव में अवतारवादी पौराणिक तत्त्व

सप्त साहित्य में वर्णित विराट्क इक्षर में पर ऊपर और सत्वात्मावादी रूपों के अतिरिक्त^५ अवतारवाद की दृष्टि से जो विवक्ष्य है, वह है उसका पौराणिक अवतारवादी कथाओं से सम्बद्ध रूप, जिसके फलस्वरूप उसका अवतारवाद से भी विदित सबध हो जाता है। पीछे कतिपय उद्धरणों के आधार पर उसके व्यक्तित्व रूपों एवं सबधों पर विचार किया जा चुका है। किन्तु पौराणिक अवतारों के समान उसके ऊपर विष्णु के अवतारों से सम्बद्ध कथाओं का आरोप भी सत्तों की जाणियों में पथष्ट मात्रा में हुआ

१ अपनी मारमा भादि पम्पारी जापदि देखन हाता।

माना रूप बरे बजुरंगी समते रह निबारा व

शुभ प्र० सा ५० ५१०।

२ पीता ३, २०।

३ सब में हरि है हरि में सब है हरि अपने त्रिजा।

अवनी जाव छात्र भादि दूसर आमन हार सुबाना ॥

सप्त रविनाम और उभयका काव्य ५० १०० पद १०।

४ चरण वजाक सौत नाममान, सौ ठाकुर कव संपुट समान।

सप्त रविनाम और उभय काव्य ५० १८६।

५ विष्णु काव्य में निर्गुन सम्पराय १५६-१५७।

है। पुराणों में साधारणतः ब्रह्मा विष्णु और शिव को एक माना गया है। परन्तु साम्प्रदायिक उत्कर्ष के कारण कहीं शिव का और कहीं विष्णु का उत्कर्ष उचित होता है। विशेषकर बौद्धिक पुराणों में विष्णु तीनों में श्रेष्ठ माने गये हैं। सतों की बातों में साधारणतः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। वहीं विष्णु के अवतार राम के गौण रूप का उल्लेख कम हुआ है। साथ ही कतिपय स्थलों में त्रिदेवों का गौण रूप प्रस्तुत करते समय ब्रह्मा और शिव का उल्लेख तो होता है किन्तु विष्णु का नहीं।^१ इसके अतिरिक्त सतों ने अपने ईश्वर को पुराणों की त्रिम कथाओं से सम्बद्ध किया है, उनमें प्रायः सभी का सम्बन्ध विष्णु पर उनका अवतारों से है। ब्रह्मा और शिव सम्बन्धी पौराणिक कथाओं का सत-साहित्य में नितान्त अभाव है। हममें सदेह नहीं कि माया, त्रिगुणी माया या काळ से प्रस्त या अधीनस्थ देवताओं में ब्रह्मा विष्णु और महेश का नाम समान रूप से दिया गया है। किन्तु यह अज्ञात समस्त नाप-पधी साहित्य से गृहीत हुआ है। क्योंकि नाप-साहित्य में अक्सर ब्रह्मा, विष्णु और महेश माया के पञ्चावर्ती पर उससे उत्पन्न कहे गये हैं।^२ सतों ने विष्णु के पर्यायवाची राम ही नहीं जयित् कृष्ण, गोविन्द, हरि नारायण माधव आदि नामों का स्वयम्भूता से

१ (क) क सं पृ १ ६ पर ५७।

राम गुन ब्रह्मा राम गुन संकर सन गुन हरि हे सोर ।
 कई कतीर एक राम बबड रे दिभू ट्टक म होरे ॥
 ब्रह्मा बानी विष्णु बारी कृक संकर देव ।
 तीन देव मतक्य तीरदि करदि कितकी लेव ॥

क० सं पृ १०५ पर ११७।

(ख) ब्रह्मा विष्णु महेश महाबलि मीठे मुनि जन मये सरे कवि ।

दादूदास की बानी भाग २ पृ १२ पर १२७।

ब्रह्म विष्णु महेश्वर ब्रह्मै कैना कोरे बताने रे ।

दादूदास की बानी भाग २ पृ २ ५ पर १४६।

(ग) ब्रह्म विष्णु महेश्वर के मूर्ति त्रिगुनि मरमि मुकार ।

गुन सं० सा पृ १०९। गीतमाली पृ ११।

२. दादूदास की बानी भाग २ पृ १०७ पर १५।

(क) बादे ब्रह्मा ईश्वर शिव, बंदा सब मुनि जन काये अंगा ।

(घ) क सं० पृ ११९ के २६ पर में महेश्वर राम के मक कहे गये है ।

(न) क सं १०५ पर १६ 'मदे कवि कवि अंत म बाबा' जैसे प्रयोग मिलते हैं।

३ ब्रह्मा विष्णु से अत्रि महेश्वर के तीबू में आया ।

हम त्रिबुजानी में पर बरको देकर भीते माया की ॥ वीरबाली पृ १।

प्रयाग किया है। माय ही त्रिगुण सतों में मान्य जयद्वय, नामदेव गुरु भक्तुन
 वादि कविपय संतों में विष्णु क साकार एव अवतारवादी रूपों का पपष्ट परिचय
 मिला है। सत-साहित्य क सम्भवतः वादि हिन्दी कवि जयद्वय ने अपने
 पक्षों में अक्षर विष्णु को मजने और उनकी कारण में जान का अनुरोध किया
 है।^१ पहरपुर क विद्वल भगवान् आ श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं,
 महाराष्ट्र क प्रसिद्ध सत नामदेव क इष्टदेव क रूप में प्रसिद्ध हैं।^२ इन्होंने
 अपने पक्षों में विष्णु क पयापवाची नामों में विद्वल का भी नाम लिखा है।^३
 महाराष्ट्र क बिल्वात बारकरी सत-भक्तप्रदाय में विद्वल को विष्णु क कृष्णावतार
 का चारु रूप माना जाता है, जो अपने मूक्त 'पहलीक' को बर देने क निमित्त
 पहरपुर आये और इट पर पड़ हो गय। तब से जमी तक ब वहीं रह गई।^४
 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के पक्षों में प्रयुक्त विष्णु के नामों को
 त्रिगुण क माय सगुण अवतारों क अर्थ में भी माना है।^५ पीछे बतलाया जा
 चुका है कि सतों क ईश्वर त्रिगुण-निराकार होते हुए भी सगुण-साकार
 तत्त्वों म युक्त हैं, जिनमें ऐश्वर्य एव मानुष्य रूपों का भी लपूर्ण योग हुआ है।
 इसक साथ ही पौराणिक अवतारपरक कथाओं से भी उनका विशेष सम्बन्ध
 स्थापित होता है। इस प्रकार सत-ईश्वर में अवतारवादी तत्त्वों का तीव्र
 प्रकार से समावेश हुआ है। प्रथम उनक अवतारोचित कायों स, द्वितीय
 विष्णु एव उनके अवतारों से सम्बद्ध मूर्तों क भगवत्-कायों से पूर्णतः विष्णु
 से सम्बद्ध पौराणिक कथाओं क उद्देश्यों से इन तत्त्वों का स्पष्टीकरण हो
 जाना है।

संतों में उक्त रूपों का अस्तित्व प्रत्यक्ष या मिथित रूप से मिला है।
 कबीर एक पद में एम विष्णु का उल्लेख करते हैं जिसकी धामि से ब्रह्मा
 उत्पन्न हुए और चरणों म गंगा बिकली है। व उसी जगद्गुरु गोविन्द-हरि
 की मूर्ति भी चाहते हैं।^६ गुरु रामदास एम हरि का मजबूत करने को कहत

१ कवि सुकन बुद्धिमान् सुरमती मनु ककर सरथ। उग्रकाव्य पृ० ११५।

२. मराठी संतों का सामाजिक कार्य पृ० ४९-५०।

३. मेरे वाप मायो तु वन केरी साबलिषो विद्वलवार।

कर बरे कळ वेहुंड ते कायो तु रे मज के मान बनारयो ॥

संत मुवाठार पृ० ५० पद ९।

४. विन्नी को मराठी संतों को देन पृ० ७।

५. कबीर पृ० ११।

६. काहे मायि वरम तु बरित मजा चरनांगि तरंग रे।

कई कबीर हरि मण्डि बाहुं, अगठ गुर गोम्बद रे ॥

क० प्र० पृ० ११७-११८ पर १९०।

है। पुराणों में साधारणतः ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एक माना गया है। परन्तु साम्प्रदायिक उत्कर्ष के कारण कहीं शिव का भार कहीं विष्णु का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है। विशाणकर वैष्णव पुराणों में विष्णु तीनों में ब्रह्म माने गये हैं। सतों की बानियों में साधारणतः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को शीघ्र स्थाव माना हुआ है। वहाँ विष्णु के अवतार राम के शीघ्र रूप का उल्लेख कम हुआ है।^१ माघ ही कतिपय स्थलों में त्रिदेवों का शीघ्र रूप प्रस्तुत करते समय ब्रह्मा और शिव का उल्लेख तो होता है किन्तु विष्णु का नहीं।^२ इसके अतिरिक्त सतों ने अपने ईश्वर को पुराणों की त्रिम कथाओं से सम्बद्ध किया है, उनमें माघः समी का सम्बन्ध विष्णु एवं उनका अवतारों से है। ब्रह्मा और शिव सम्बन्धी पौराणिक कथाओं का सत-साहित्य में नितान्त अभाव है। इसमें संदेह नहीं कि माया त्रिगुणी माया या काल से प्रस्तुत या अधीनस्थ देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का नाम समान रूप से लिया गया है। किन्तु यह अज्ञात समस्तः माघ-यधी साहित्य में पृथीत हुआ है। क्योंकि माघ-साहित्य में अस्मर ब्रह्मा, विष्णु और महेश माया के पक्षधरों एवं उससे उत्पन्न कहे गये हैं।^३ सतों ने विष्णु के पर्यायवाची राम ही नहीं अपितु कृष्ण गोविन्द, हरि, नारायण माधव आदि नामों का स्वच्छन्दता से

१ (क) क० घं ५ १ ६ पर ५७।

राम गुन ब्रह्मा तम गुन संकर सन गुन हरि है शीर ।
कई कबीर एक राम अरु है दिव्यु तरक म शीर ।
ब्रह्मा वागी विष्णु वारी, पूरु संकर देव ।
तीन देव प्रतक्य तीरति करदि किसकी सेव ठ

क घं० ५० १०५ पर ११७।

(घ) ब्रह्मा विष्णु महेश महाकवि मोटे मुनि जन गये तने कवि ।

बाहुरवाक की बानी भाग १ ५० ९२ पर २२७।

ब्रह्म विष्णु महेश्वर वृत्तों केगा कौर बनारि है ।

बाहुरवाक की बानी भाग १ ५० १०५ पर २५९।

(ग) ब्रह्म विष्णु महेशु के मूरति त्रिगुणि भरमि मुनारं ।

गुन घं० हा ५ १०९। गोरखवाली ५० ९३।

२. बाहुरवाक की बानी भाग १ ५ १०७ पर २५।

(क) जाके ब्रह्मा ईश्वर पिप बंदा, सब मुनि जन लगी बंगा ।

(ग) क० घं० ५० ११९ के एक पर में महेश राम के बल कहे गये है ।

(न) क० घं १०५ पर १६ 'ब्रह्म कवि कवि अंत न वावा' जैसे प्रयोग मिलते हैं।

३ ब्रह्मा विष्णु के अति महेश्वर के तीनों में आया ।

राम त्रिगुणानी में पर बरबो देकर मोती बत्ता की ३ गोरखवाली ५० ११

प्रयोग किया है। साथ ही निर्गुण सतों में माम्य अपदेव, नामदेव, गुद अजुन, भादि कतिपय संतों में विष्णु के साकार एवं अवतारवादी रूपों का पथेष्ट परिचय मिलता है। सत-साहित्य के सम्बन्ध में भादि हिन्दी कवि अपदेव ने अपने पद्यों में चण्डर विष्णु को मखने और उनकी धरण में जाने का अनुरोध किया है।^१ पहरपुर क बिठरु मगवान ओ भीरुप्य के अवतार माने जाते हैं महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सत नामदेव क इष्टदेव के रूप में प्रसिद्ध हैं।^२ इन्होंने अपने पद्यों में विष्णु क पर्यायवाची नामों में बिठरु का भी नाम दिया है।^३ महाराष्ट्र के विख्यात चारकरी सत-सम्प्रदाय में बिठरु को विष्णु क कृप्यावतार का वाचस्प नामा जाता है, जो अपने मक्त 'पडकीक' को धर देने क मिमिष पहरपुर भाय और इद पर लड़े हो गये। तब से अभी तक वे वहीं लड़े हैं।^४ डॉ० इबारी प्रसाद त्रिवेदी ने कबीर के पद्यों में प्रयुक्त विष्णु क नामों को निर्गुण क साथ सगुण अवतारों के अर्थ में भी माना है।^५ पीछे बतलाया जा चुका है कि सतों क ईश्वर निगुण-निराकार होते हुए भी सगुण-साकार तत्त्वों से युक्त हैं, जिनमें ऐश्वर्य एवं भापुर्य रूपों का भी अपूर्व योग हुआ है। इसके साथ ही पौराणिक अवतारपरक रूपों से भी उनका पथेष्ट सम्बन्ध कल्पित होता है। इस प्रकार सत-ईश्वर में अवतारवादी तत्त्वों का तीन प्रकार से समावेश हुआ है। प्रथम उनके अवतारोचित कार्यों से, द्वितीय विष्णु एवं उनके अवतारों से सम्बद्ध मत्तों के मगवत्-कार्यों से तृतीय विष्णु से सम्बद्ध पौराणिक कथाओं के उद्धरणों से इन तत्त्वों का स्पष्टीकरण हो जाता है।

सतों में उक्त रूपों का अस्तित्व प्रथक या मिश्रित रूप से मिलता है। कबीर एक पद में ऐसे विष्णु का उल्लेख करते हैं जिसकी नामि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और चरणों से गंगा निकली है। व उसी अगस्त्य गौबिंद-हरि की भक्ति भी चाहते हैं।^६ गुद रामदास ऐसे हरि का मजन करने को कहते

१ तबि लकक बुरकिन बुरमती मनु चकर सरणं। संतकाम्य ५ १३५।

२ मराठी संतों का सामाजिक कार्य ५ ४९-५०।

३ मेरे नाम माधो तू बन केसी साबकिबो विठरुवार।

कर बरे चक देकुंड ते भायो तू रे गज के ज्ञान बघारपी ४

संत सुवासार ५० ५० पद ९।

४ हिन्दी की मराठी संतों की शैल ५० ७०।

५ कबीर ५० १३।

६ जाके नामि चरम तु उरित ब्रह्मा चरबनिंग तरंग रे।

कई कबीर हरि मगडि बाहुं, जनत धर गौबिंद रे ४

हैं जिसका नाम हुक, बनक आदि रूपों में है।^१ सुदामा, भुव, प्रह्लाद, विदुर आदि जिसका नाम उपरुधर उर गण।^२ उम भक्तों के साथ नाम-उप के रूप में जिस 'गुह्युक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह विष्णु भक्तों से सम्बन्ध प्राप्त के कारण विष्णु का भी एक पर्याय नाम रह जाता है। सतों के अनुसार केवल नारायण नाम कहने से अतिरिक्त का उद्धार हुआ तथा नाम-उप से ही उग्रमन ने भयम-मुक्त होकर सुन्दर गति प्राप्त की।^३ बनक के ऊपर स्वयं उग्रोंने अनुग्रह किया। वे अपने शेरकों की प्रतिज्ञा का पालन करते हैं तथा जो भी उनकी शरण में आते हैं उसका उद्धार करते हैं।^४ इसमें सन्देह नहीं कि सतों की एकमात्र उपस्थिता नामोपासना रही है।^५ किन्तु उसकी विशेषता यह है कि अधिकांश नाम इसका भी नामों के अतिरिक्त विष्णु और उनके मातृसौत्रों के प्रचलित नाम हैं। इस दृष्टि से नामोपासक सतों ने कहीं-कहीं भगुण भक्तों से भी बाजी मार ली है। गुह्य भक्तों ने एक पद में विष्णु के पौराणिक रूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।^६ जिसमें विष्णु के विभिन्न प्रचलित नामों के अतिरिक्त उनके अवतारों^७ एवं अवतारी-काव्यों का भी

१-२. अपिघो नाम हुक बनक एर गणनी हरि हरि शक्ति परे।

बाण्डु मणि हरामे मिथिया भलीभार तरे।

भगति बधुत हरि नाम ह्वारतु गुह्युक्ति कृपा करे।

मेरे मन नाम बधुत बधरे। श्री धर्मिणा विररन शशी हनु उपग्रणी ना तरे ॥

गुह्य सं सा ५ ११५।

३. देहना कल नबामतु बधुतीभी सुक्ति वाते नारायण सर हरे।

नाम बधुत बधुतीनि गति पाव लोकि वधम तुभति करे ॥

गुह्य सं सा ५ ११५।

४. बनकड आदि अनुग्रह कीना हरि अंगीकार न करे।

शेरक पैर तले मेरा लोकिडु नरति पर बधरे।

बन मन्क हरि किरपावारी बरपादिनी मस्तु हरे ॥

गु सं सा० ५ ११५।

५. सा० ७ १, ५ तथा ५० ७ ५, ५, २ में नामोपासना का विशेष हुआ है।

६. गुह्य सं सा० ५ १ ८३ अच्युत पार मधु बरमेतुर।

आरहुँ शेर न शरैण तह १० बंधुओं का बर।

७. अच्युत शारवत बरमेतुर अंगरानी मधुसूदन शायीर तुभानी।

रितीकेतु लीवचन शरी तुलने बबोहर हरि रण।

शेरक मावध कृष्ण मुहारे बबोहर हरि कीर अंगर संपारे ॥

गुह्य सं सा १ ८३ ५ १-२।

८. बरनी बर ईन नरनिष नारायण शदा अये बन्धि बराइन।

नाम कतु कीना गुह्य बरते सबही सेनी है रणत ॥

ब्रह्मण्ड हुआ है।^१ सिद्ध गुहजों में गुह अर्जुन और परवर्ती गुह गोविन्द सिंह दोनों अबतारबाद क प्रबल समर्थक विदित होते हैं।^२ अकबर-कालीन गुह अर्जुन क पदों में प्राप्त अबतारबादी तर्कों के अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि एक बार इन्होंने अकबर के सामने कहा था कि गुह ग्रथ साहित्य में अबतार विरोधी कोई पद नहीं है।^३ यों इसके पूर के कबीर आदि सतों क पदों में अबतारबादी तर्क यत्र तत्र मिलते हैं।

इसका विशेष कारण यह है कि सगुणोपासकों की अपेक्षा सतों में नामोपासना का अत्यधिक प्रचार था। प्रायः इस उपासना के महत्त्व की चर्चा सभी ने की है।^४ इस नामोपासना में भजन एक मात्र सहारा रहा है, जिसमें पौराणिक अबतारबादी तर्कों के समावेश के लिये पर्याप्त स्थान मिला। सत कबीर हरिमजन का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए पौराणिक भक्तों के उदार की भी चर्चा करते हैं। उनके कथनानुसार हरिमजन के प्रताप स ही नीच ऊँच पद पाता है। पर्यर जल पर तैरने लगते हैं। अधम भील और अज्ञाति गनिका विमान पर चढ़कर जाते हैं।^५ नामदेव 'सायलें बिट्टल राइ' की महिमा गाते हुये कहते हैं कि ये बैकुण्ठ से हाथ में चक्र लिये आप और गजराज की

श्री रंग बैकुण्ठ के बाली महु बल्लु कुसु आगिभा अबतानी।

केसव चक्र करि निराके कीडा कोइहि सा दोइया।

गुह प्र० सा० पृ० १०८१, १ और ८।

१ मुकुंद मनोहर कृष्णजी बाराबण, झोपटी बना बिबारी बाराण।

केमण्डान्त करि बैरुह कमर दिनीही निरसना।

गुह प्र० सा० पृ० १०८३ पृ ३।

२ गुह गोविन्द सिंह के पदों में भी पौराणिक २४ अबतारों की लीका का वर्णन हुआ है। निश्चित नाटक में बंभित २४ अबतार।

३ संत सभासार पृ ३४२।

४ संतों में प्रचलित नामोपासना का आयास कथिबरो से हो मिलने लगता है। सा ७, १ ५ में सबकुमार नारद को नामोपासना का उपदेश होते हैं। प्र० ७० ५ ५, २ में अष्टोपासना की ओर इतिष्ठ किया है। भागवत पुराण ११ ५, ३२ तथा १२, ३ ४४ ४५ में कश्चिपुत्र के लिए नामोपासना का कर्तव्य को ही अधिक महत्त्व दिया है। गुह अर्जुन ने गुह प्रथम सा १० १०७५ में 'कश्चिपुत्र महि औरतन परबाबा' को स्वीकार किया है।

५. है हरिमजन को प्रबान।

नीच बाने ऊँच बरबी, बाबते भीसान।

भजन को प्रताप देसो तिरै जल पापान।

अधम भील अज्ञाति गनिका, चढ़े जात विमान। क० प्र० पृ १९० पर ३०२।

रचा की। सभा में बहू उतारते हुए बुधदासन से द्रौपदी को उबारा तथा अहल्या या अनेक पापियों को मुक्त किया।^१

इस तथ्यों के आधार पर यह निश्चित होता है कि बस्तुतः मन्त्रों ने जिस भवतारवाद का विरोध किया है—बहू परम्परावादी एवं कष्टरपन्थी पंथियों एवं प्यासों द्वारा उपविष्ट^२ हिन्दू-मुसलमान में किन्तु पैदा करने वाला कृत्रिम एवं अन्ध-परम्पराओं से आहत और मूर्तिपूजा पर आश्रित भवतारवाद है।^३ क्योंकि एक ओर मन्त्रों में जहाँ भवतारवाद की आलोचना मिलती है, वहीं दूसरी ओर उसका परिमित रूप का भी वर्णन होता है। इन्होंने पौराणिक भक्तों को चाहे वे मनुष्य हों या निर्गुण कवल हरि के भक्त-रूप में प्रदण किया है। कबीर के अनुसार सभी के सत्ता की रक्षा स्वामी भगवान् ने ही है जिन्होंने हिरण्यकशिपु का बल से विधीर्न किया तथा सप्त प्रह्लाद के बच्चों की रक्षा की।^४ नामदेव भक्तों पर की गई भगवान् की कृपा-सम्पन्धी पौराणिक उदाहरणों को बते हुए कहते हैं कि उन्होंने जम्बरीय को अमय पद दिया विभीषण को राज्य प्रदान किया, सुहामा को पञ्च निधि या अतुल्य सम्पत्ति प्रदान की तथा मुच को ऐसा पद दिया जो अटल एवं अचक है। उन्होंने नृसिंह-रूप धारण कर भक्त के हित के लिए हिरण्यकशिपु को मारा। वे केसव तो आज भी

१ कद वरे भक्त वैकुण्ठ से आये तू रे गज के प्राण बचार्थो ।

पुरसासन की सभा द्रौपदी अंत केठ बचार्थो ॥

सौतम बारी कहवा तारी पापिन कैतिक तार्थो ।

ऐसा अथम अजाति नामदेव तब सरवायति आबी ॥ संत सुबाछार ४ ५ १४ ९

२ क प्र० पृ० ३०१ पर १३९ ।

पंडिता श्रीन कुमति तुम लागे ।

बुद्धिमे परबात सबक स्त्री राम न कपडु अभावे ।

बैर बुरात बने का किवा गुन पर चंदन अत भारा ॥

३ कबीर बीकन ४० २९-३ पर ४ ।

संतो देवत नम पीताना ।

आनम मारि बचावहि बूजे । उनकहं करूं न म्याना ।

... ..

बिदू करि मोहि राम विबारा । तुलक करै रहिमाना ॥

आपत मे होइ करिकरि बूजे । मर्य न काहू जाना ॥

४ सर्व सफा का एक हरिबामी छो गुब नाम बधो ।

संत महारा की वैर विष तापी हरमाशुष मछ विरदो ॥

भक्ति क बर्णामृत हो बकि के द्वार पर खड़ा है ।' मम्म त्रिलोचन कहते हैं कि जो अमृतघण्ट में नारायण का स्मरण करते हुए मरते हैं, व ही मुक्त पुरुष हैं । उन्हीं क हृदय में पीतवस्त्रमधारी (विष्णु) निवास करते हैं ।' इस प्रकार सन्तों क भगवान् भी कबल भिषिक्य, मिथुन ब्रह्म न हाकर भक्तों क पालक पद रखक हैं । रामानन्द के अनुसार उनक बिना अम्य कोई सकट से मुक्त करने बाका है ही नहीं ।' रैवास संत-पालक हृषर में अटक विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं कि जिन्होंने अजामिल गज और गणिका का उद्धार किया और कुंजर को बन्धन मुक्त किया; जिन्होंने पेमे 'दुरमत' भक्तों को मुक्त किया व रैवास का क्यों नहीं मुक्त करेंगे ।' 'गुड ग्रन्थ साहित्य' में सगृहीत एक अम्य पद में त्रिलोचन कहते हैं कि नारायण की निम्वा करना मूलता है । भला वा बुरा सबके कर्ता वे ही हैं । अनेक पातकियों का उन्हींने उद्धार किया ।' इन्होंने अमृत, अन्नमा, भेषु, लक्ष्मी कल्पतरु आदि समुद्र मन्थन द्वारा आभिमूर्त वस्तुओं तथा राम द्वारा कट्टाब्रह्म और रावण बध की भी चर्चा की है ।' सप्त गुड नामक का राम एक ओर तो घट-घट में रहने बाका है और दूसरी

- १ अमरौष कूदिकी अमयपद राम निर्माण बांधक करेवो ।
भी निधि ठाकुर एवं सुधामदि, भुष जो अटक भजई न टरवो ।
मगत हेत मारवो इरनाकुस, मृष्टिह रूप के देह बरवो ।
नामा करे मगति पत केहव अजुं बकि के द्वार खरवो ।

सप्त सुभाषार ६० ५४ पर १९ ।

- २ अंतक्याकि नारायणु सिमरे बेसी बिठा मदि के मरे ।
बदधि बिबोचन ठे नर मुकटा, पीतवस्त्र बाके रिरे बसे । संतक्याम्ब ५० १४२ पर २
- ३ है हरि बिना कृष्ण रत्नबारी, बिठ है सिधरी सिरजम हारी ।
छेष्ट में हरि देह बवारी छिप्त दिम सिमरी माम हुरारी ।
रामानन्द की हिन्दी रचमारें ५० ९ प्याज बीका १२ ।

- ४ काम बाहो कहा जाने, तीन लोक बनेत रे ।
अजामीक पत्र गनिष्य वारी वारी कुंजर की बाउ रे ।
पेसे दुरमत मुक्त किये तो क्यों न ठरे रैवास रे ।
संतबानी अहू । कन्वान २९ वर्ष । सख्या १ ५० २१९ ।

- ५ नारायण निधि काद भूमी मधारी । कुछु कुछु वारी कटुरी ।
अनेक पातक हरता विभवन नाडु री ।
पीरवि पीरवि भ्रमठा करे म बार री करम करि पपाउ मन्नीयसिरी ।
अहन मसीक भेन कधिमी कल्पतरु सिक्कारि सुनागर मरी वे नार्थ ।
करम करि पाव मन्नीयसिरी । गु० प्र० सा० ५ ५०५ ।

- ६ बाकीके अंतक्याउ पपाकी के रावणु वनु सकि विमुक्ति प्राणि तोखीठे हरी ।
काम करि बज वरी मन्नीयसिरी । गु० प्र० सा० ६० ६९७ ।

और वह असुरों का महार भी करता है।^१ सुन्दरदाम क अनुसार भी मगवान् द्वारा जनक सन्तों का उद्धार हुआ। व अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।^२ इन्होंने मगधोपासक तुलसीदास क सरस रामोपासना की परम्परा का उद्बोध किया है। व कहते हैं कि जिस राम-नाम का उपदेश शङ्कर ने गीरी को किया था, शेष उसी नाम को सर्वत्र करते हैं। उसी का प्रचार नारद ने किया, भुव के प्यान में तथा प्रह्लाद क निमित्त वे ही प्रकट हुये।^३ विम रूप में उन्हें स्मरण किया जाता है उसी रूप में व वाचिर्भूत होत हैं।^४ इन्होंने इन प्रकार 'गीता' एवं 'महामारत' की उक्तियों का समर्थन किया है।^५

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि निर्गुण ईश्वर क उपासक होते हुए भी वे सगुण और अवतारी विष्णु क कहर विरोधी नहीं थे। जम्बधा व पुराणों में प्रचलित विष्णु के अवतारवादी उद्धार-काव्यों का समावेश अपने पक्षों में नहीं करते।

दूसरा तथ्य जो उपर्युक्त अध्ययन क पश्चात् उपलब्ध होता है वह यह कि सन्तों ने यदि किसी निर्गुण ईश्वर को अपना उपास्य माना है तो वह निर्गुण रूप अवतार धारण करने वाले विष्णु का ही है। सन्तों ने अपने उपास्य क विष्णु जिन नामों का प्रयोग किया है उसमें अज्ञात क विविध पर्यायों क साथ विष्णु क ही प्रचलित पर्यायों का समन्वय किया गया है।

अतः सन्त विष्णु-मूर्ति और अष्टयाम पूजा क विरोधी होते हुए भी विष्णु के एक विशिष्ट विराकार रूप क पूजक प्रतीत होते हैं। यों तो तत्कालीन युग में उपास्य क रूप में प्रचलित विष्णु-मूर्ति क साथ इशावतारों की पूजा का भी उन्होंने विरोध किया है परन्तु नामोपासक होने क नाते उन्होंने विष्णु एव उनके अवतार-नामों की सर्वत्र उपासना की है। उनक ये नामात्मक विष्णु पीरामिक

१. असुर संहारण राम हुआय बटि बटि रमरवा राम विभार। सु. प्र० ता. १०२८

२. सुन्दर नदि मन्वन्त को कहे लीन अनेक।

३. सरा कहीये लीस पर तजो न अपनी देक। सु. प्र० ५० ९८० लायी ४४।

४. राम नाम उंकर कही गीरी को कपरीय।

सुन्दर काही राम को सरा जपतु है लिस ॥

राम नाम नारद कही लोर भुव के प्यान।

प्रकट मये प्रह्लाद पुनि सुन्दर नदि प्रगसान ॥

सुन्दर प्रस्तावनी ५० ९८० ता. ४७-४८।

५. काही को लामिरम करे है काही को रूप। लामिरम कीये मय के सुन्दर है विष्णु ॥

सुन्दर प्रस्तावनी ५० ९८१ ता. ५९।

६. गीत ७, २१ अ० १९, १४७, ७९।

अवतारवादी कार्य वैसे ही करते दीख पड़ते हैं, जैसे सगुण भक्तों के विष्णु और अवतार ।

अतः ऐसा समझता है कि उपास्य की दृष्टि से निर्गुण और सगुण सन्तों में केवल नामोपासना और मूर्ति-उपासना को लेकर अतिमा महत्त्व था, उतना विष्णु के अवतारवादी रूपों को लेकर नहीं ।

जनश्रुतिपरक अवतारी कार्य

सन्तों के ईश्वर में उक्त पौराणिक अवतारी कार्यों के अतिरिक्त जनश्रुति परक कुछ ऐसे अवतारी कार्यों का उल्लेख मिलता है, जिनका उत्तर मध्यकालीन सन्तकाव्यों एवं मन्त्रमालों में पर्याप्त प्रचार हुआ । इनमें से प्रायः अधिकांश का सम्बन्ध भगवान् द्वारा की गई सन्तों की अनापास सहायता सहयोग या सहयोग से है । इन अमलकारपूज्य जनश्रुतियों के प्रभावशाली तत्कालीन सन्त गाथाओं को भी पौराणिक कथाओं के सदृश अतिरिक्त किया गया । यह प्रवृत्ति विशेषकर उस परवर्ती सन्त-साहित्य में मिलती है जिन पर साम्प्रदायिक रंग पर्याप्त मात्रा में चढ़ चुका था । सगुणोपासक वैष्णव सम्प्रदायों की भाँति पूर्ववर्ती नामोपासक सन्तों के राम पर भी अनेक सम्प्रदायों का अस्तित्व कायम हो चुका था । काळान्तर में यह प्रवृत्ति इस प्रकार बढ़ती गई कि सन्त सम्प्रदायों से सम्बद्ध अधिकांश पूर्ववर्ती (अब प्रवर्तक रूप में मान्य) सन्तों-को स्वयं अवतार या अवतारी रूप प्रदान किया गया । इस पर पद्याभ्यास इस निबन्ध में विचार किया गया है ।

संत अयदेव^१ से सम्बद्ध एक अनुश्रुति है कि अग्राचार्य की ने एक ब्राह्मण की कन्या व्याहृत क टिए इन्हें प्रेरित किया था ।^२ सठ सभना क 'दाकिग्राम' इन्की तराजू में ही रहना पसन्द करते थे । एक वैष्णव के स जाने पर उन्होंने उमे वहीं रहने को बाध्य किया ।^३ संत सयना ने बड़ई और एक राजकुमारी की कथा का एक पद में वर्णन किया है, जिसमें विष्णु ने बड़ई की सहायता

१ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० १७ कल कवि अयदेव और इन्द्रमल्ल कवि अयदेव का एकीकरण अभी सम्भव माना जाता है ।

२ मन्त्रमाला पृ १४४ मिश्राग्राम कवित्त १४४ तथा अल्पक ३१ के अनुसार राधारमन इनकी रचना गीत गोविन्द गुनने के किये जाते थे । 'राधारमन प्रसन्न निश्चय हूँ जाते ।'

३ गंदकी की तुलना जिन नामे रामो भीखो की

मरेहम लाहु मात्रि पूजे रे न धारि है ।

कवि निसि तुपने में बाही और धोंकी देवो सुनो गुनपाव,

रीसो दिव की सचारि है । मन्त्रमाला पृ १११ कवित्त ११४ ।

और वह जसुरों का महास भी करता है।^१ सुन्दरपास क अनुसार भी भगवान् द्वारा जमक सप्तों का उद्धार हुआ। व अपनी प्रतिज्ञा का उद्धार नहीं करते।^२ इन्होंने मगुणोपासक तुलसीदास के सहस रामोपासना की परम्परा का उद्देश किया है। वे कहते हैं कि त्रिध राम-नाम का उपदेश शहर ने गीरी को किया था, शेष उसी नाम को सर्वत्र करते हैं। उसी का प्रचार नारद न किया, भुव के ध्यान में तथा महाद् के विमित्त व ही प्रकृत हुए।^३ तिम रूप में उन्हें स्मरण किया जाता है उसी रूप में व आविर्भूत होत हैं।^४ इन्होंने इस प्रकार 'गीता' एवं 'महामारत' की उक्तिओं का समर्पण किया है।^५

इसमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि निर्गुण ईश्वर क उपासक होते हुए भी वे सगुण और अवतारी विष्णु के कहर विरोधी नहीं थे। अन्यथा वे पुराणों में प्रचलित विष्णु क अवतारवादी उद्धार-काव्यों का समारोह अपने पदों में नहीं करते।

दूसरा तथ्य जो उपर्युक्त अध्ययन क पश्चात् उपलब्ध होता है वह यह कि सप्तों ने यदि किसी निर्गुण ईश्वर को अपना उपास्य माना है तो वह निर्गुण रूप अवतार धारण करने वाले विष्णु का ही है। सप्तों ने अपने उपास्य क कृप त्रिम नामों का प्रयोग किया है उसमें अष्टाद् क विविध पर्यायों क साथ विष्णु क ही प्रचलित पर्यायों का समन्वय किया गया है।

अतः सप्त विष्णु-मूर्ति और अष्टपाम पूजा के विरोधी होते हुए भी विष्णु के एक विसिष्ट निराकार रूप क पूजक प्रतीत होते हैं। यों तो तरकासीन युग में उपास्य क रूप में प्रचलित विष्णु-मूर्ति क साथ द्वावतारों की पूजा का भी उन्होंने विरोध किया है, परन्तु नामोपासक होने क नाते उन्होंने विष्णु एवं उनके अवतार नामों की सर्वत्र उपासना की है। उनके ये नामात्मक विष्णु पौराणिक

१. जसुर लक्ष्मण राम हमारा यह बरि रमरका राम विजारा। गु० धं० सा० १ २८

२. सुन्दर जत्रि मयर्षठ को कपरे संन जनेक।

तथा कहीरी सील पर लको न अपनी टेक। सु० धं० ५ १८० लाठी ४४।

३. राम नाम लंकर कही गीरी को कपरेछ।

सुन्दर लारी राम को लरा कपटु है सित न

राम नाम नारद कही लीर भुव के ध्यान।

प्रकृत मने प्रद्वार पुनि सुन्दर जत्रि मगशाव न

सुन्दर प्रभावली ५० १८० सा० ४०-४८।

४. जारी को लमिरन वरी है लारी की कप। लमिरन कोये लक्ष के सुन्दर है विद्वत् न

सुन्दर प्रभावली ५० १८१ सा० ५१।

५. पीना ० ११ महा० १२, १४० ४९।

अवतारकारी कार्य जैसे ही करते ही पढ़ते हैं, जैसे सगुण मत्तों के विष्णु और अवतार ।

अतः ऐसा लगता है कि उपास्य की दृष्टि से निर्गुण और सगुण सत्तों में फल सामोपामना और मूर्ति-उपासना को लेकर अतिना मतभेद था, उतना विष्णु के अवतारकारी रूपों को लेकर नहीं ।

जनश्रुतिपरक अवतारी कार्य

सत्तों के ईश्वर में उक्त पीराणिक अवतारी कार्यों के अतिरिक्त जनश्रुति परक कुछ ऐसे अवतारी कार्यों का उल्लेख मिलता है, जिसका उत्तर मध्यकालीन सत्तकाम्यों एवं मत्तकालों में पर्याप्त प्रचार हुआ । इनमें से प्रायः अधिकांश का सम्बन्ध मगवान् द्वारा की गई सत्तों की अनापास सहायता सहयोग या सहबान से है । इन अमकारपूर्ण जनश्रुतियों के प्रभावका तत्कालीन सत्त गायत्रियों को भी पीराणिक कवियों के द्वारा अतिरिक्त किया गया । यह प्रवृत्ति विशेषकर उम परवर्ती सत्त-साहित्य में मिलती है जिन पर सामप्रदायिक एग पर्याप्त मात्रा में बढ़ चुका था । सगुणोपासक वैष्णव सम्प्रदायों की भी प्रतिपत्तियों नामोपामक सत्तों के राम पर भी अनेक सम्प्रदायों का अस्तित्व कायम हो चुका था । कालान्तर में यह प्रवृत्ति इस प्रकार बढ़ती गई कि मत्त सम्प्रदायों ने सम्बद्ध अधिकांश पूर्ववर्ती (अथ प्रवर्तक रूप में मान्य) सत्तों को स्वयं अवतार या अवतारी रूप प्रदान किया गया । इस पर पराम्यायन इस निबन्ध में विचार किया गया है ।

मत्त अवस्था से सम्बद्ध एक अनुश्रुति है कि अगाधाय जी न एक अज्ञान की कम्पा व्याहारे के रूप में प्रेरित किया था । सत्त सधना के 'साहित्य' इनकी तराज में ही रहना पसंद करते थे । एक वैष्णव के ल जाने पर उन्हीं उम वहीं रहने को बाध्य किया । सत्त सधना ने बड़ों और एक रात्रि की कथा का एक पत्र में वर्णन किया है, जिसमें विष्णु ने बड़ों की सत्त

१. उचरी भाग की सत्त परम्परा १०-१७ तक बरि बरि की कृष्णक दृष्टि अपरेव का एकीकरण अभी अज्ञान माना जाता है ।

२. अत्तमात्र ११४ विचारसु बरि १९८ तथा एतत् ११ के अन्तर्गत उचरी रचना गौत गोविन्द मुने के विवे जाते है । 'राजसूत्र' उचरी भाग में उचरी ।

३. मत्तों की गुण विन जाने काली नीलो की परेष्टा भागु भागि बूने दे न पत्र है ।

अधि निमित्त मुने में बारी टेर मत्तों की, उचरी उचरी उचरी दिव की सधना है । अत्तमात्र १०-११ के अन्तर्गत ।

की थी।^१ इस प्रकार की नामदेव और अर्धासृष्टि विद्वत्कक्ष से भी सम्बद्ध कवयार्थ प्रचलित हैं।^२ कुम्भ के साथ इनकी सत्य सक्ति प्रसिद्ध है। पगारकार के अनुसार नामदेव के घर के आइसी के सदृश ही मगवान् उभय साय दिन रात रहने वाले, खेरने वाले, खोलने वाले और प्रेम-कुकुड़ करने वाले बन गये थे।^३ इनके इन्द्रदेव के विषय में दूध पिलाने, अपनी ज्ञान कुवाणे, विद्येबा-मंदिर का द्वार पश्चिम की ओर कराने की बहुत सी कवयार्थें प्रचलित हैं।^४ त्रिवका उपयोग मत्तों में अपने पर्वों में किया है।^५ स्वयं नामदेव की कविता में दूध पिलाने वाली घटना का वर्णन हुआ है। उस पद्य के अनुसार गोविन्द से नामदेव दूध पीने का आग्रह करते हैं, और हरि उन्हें दर्शन देकर उनका दूध पीते हैं।^६ संत त्रिकोचन के घर स्वयं भगवान् जन्तार्यामी नाम के भीकर के रूप में इनके हाथ नीकरी करते थे।^७ 'मत्तमारु' (मिथावास की टीका)

१ त्रिव कविता के कारण, एक भवना भिषगारी।

कामाक्षी तुभारथी, वाली प्रेम संवारी ॥ संनकाव्य पृ० ११८।

२ मत्तमारु पृ० ११२ अथवा ५१ के अतिरिक्त मिथारारु में अधिक विस्तारपूर्वक उल्लेख वर्णन किया है।

३ श्री गुरुदत्त चरित पृ० १४०।

४ 'नामदेव' श्रुतिदा निर्बन्दी, कबो केठा माहरिदास की।

बाळ बला बीडकगानि बाके, पे बीबी।

कृणक पत्र शिवाळ वरयो अहुरण की होयो ॥

सिज सभिन से कादि पदिक जेसी ही होतो।

हेनत उकळ्यो देखि सजुनि रहे सवही सोठी व

'शुद्धनाथ' हून अनुन क्यो घामि सुन्दर घारं बास की।

नामदेव बडिबा निर्बन्दी, कबो केठा नरहरिदास की ॥

म स्वकला पृ० ११२ अथवा ५१।

५. क० मा० सं० पृ० १८ में गुण अथ साहित्य। कार्य गुरु बवाल सिंह देवक सन्त, अनुमत्त। पृ० १२०४ के आधार पर श्री परशुराम अनुबन्दी ने बतौर किया है। पुनू कर्णीर गद्वरे धामी। कवक बाव मामे बुद्धि जामी।

६ पुनू बीड गोविन्दे पारं।

पुनू बीड मेरी मन पवीभार। माही त वर के बाहु रिहार।

सो हन बडीरी अनुन वगी। के नामे हरि नामे वरी।

पक भगन मेरे हिरदी वसे, नामे देगु माणरनु हमे।

पुनू बीभार वपनु वरि गरभा बामे हरि का वरसनु वरभा।

गु० अथ साहित्य पृ० ११६१-११६४।

७. अंबवामी नाम मेरी केठ कबो केठा हो तो,

बीबी घल बाव पानी निरंक अपार दे।

क०, क्रावणा पृ० १८४ शिवादास चरित १८९।

में कबीर का भी अर्धा विग्रह से सबब जोड़ा गया है।^१ सेन भाई अर्धावतार विग्रह के प्रति अनेक पदों के रचयिता के रूप में मान्य हैं।^२ कहा जाता है कि इन्हें पूजा में रत होकर इनके इष्टदेव इनके स्थान में राजा की सेवा करते थे।^३ सत पीपा को समुद्र में श्रीकृष्ण और खिमणी युगल रूप में दर्शन देते हैं।^४ रैदास ३२ वर्ष की अवस्था से ही राम-खानकी की मूर्ति की उपासना के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके इष्टदेव राम इन्हें भक्त के रूप में दर्शन देते हैं।^५ पद्मा भक्त ने भगवान की मूर्ति का लकड़कपन में ही दर्शन किया तथा उन्हें मोक्षन कराया था।^६ संत बाबू बपाल के गुह ब्रह्मानन्द या 'बुढ़ा बाबा' नाम के कोई व्यक्ति भाये जाते हैं। जनश्रुति के अनुसार स्वयं भगवान ने ही 'ब्रह्मानन्द' के रूप में इन्हें सीखा ही था।^७ सुन्दरदास ने अपनी रचनाओं में ब्रह्मानन्द का उल्लेख किया है।^८ संभवतः 'ब्रह्मानन्द' परमेश के प्रतीक या अवतार थे क्योंकि अन्यत्र इन्होंने परमेश से अपनी शुद्ध-परपरा स्वीकार की है।^९ मत्स्यदास के साथ कहा जाता है कि भगवान

१ मत्स्यदास पृ० ४८४-४८७ विवादास के कवित्त १७५

'भगवान पण्डा पांन जान बचावो है'।

२ ड० मा० सं० प० पृ० २१०-२११ मत्स्यदास पृ० ५२५ अल्पव ११। तथा परबती गरीब दास मे ग बा बानी पृ० ८७ पद ११

सेना से बर साहित्य भाये करी हजामन सेवा।

संतों की तो सखा राखी पारमेश्वर भिन देवा।'

के रूप में उल्लेख किया है।

३ विदित बाग जय जानिने हरि नये सहायक सेन के।

प्रभुदास के श्याम कम नापित श्री धेनी।

क्षिप्र सुखहरि गरी पानि दर्शन वह कीनी ॥

ताहस है ठिठि काळ भूप के शैल कगावो। मत्स्यदास पृ० ५२५ अल्पव ११।

४ भाये भाये जेय आप दिये हैं पठाव बन, देवि द्वारवती हृण मिठे बहु माग के।

मत्स्यदास पृ० ४९८ विवादास क० २८८।

५. सहे जनि कष्ट भंग दिये मुख शीत रंग आप हरि प्यारे किबो मछ भेव बरिबे।

मत्स्यदास पृ० ४७४ विवादास क० २१२।

६ बार बार पांन परे कौ मुख प्यास तजी, बरे दिये सांघौ माव बार्द प्रभु प्यारिने।

मत्स्यदास पृ० ५२१ विवादास क० १०७।

७. सुन्दर सम्भावकी वृ १९८।

८. सुन्दर सम्भावकी वृ १९८।

९. बरम्बर परमेश्वर से भायो शक्ति कपड़ेय।

सुन्दर प्रब से बारबे, सुख दिन लई न केय ॥ सुन्दर सम्भावकी वृ० २०२।

ने मजदूर बनकर इनका कार्य किया था।^१ बाबरी साहिबा श्रीकृष्ण मतमोहन के वर्णन के निमित्त बाबरी बन गई थी।^२

इन उदाहरणों के आधार पर संतों के ईश्वर को अवतारवादी ईश्वर से ग्रहण नहीं किया जा सकता। क्योंकि सगुण भक्तों ने भी 'निर्गुण ब्रह्म सगुण षणु साईं' के रूप में निर्गुण ब्रह्म के ही साकार रूप का प्रतिपादन किया है। किन्तु जहाँ तक इन उदाहरणों की सत्यता का प्रश्न है, इन्हीं ऐतिहासिक से अधिक पौराणिकता विद्यमान है। पर भारतीय साहित्य की यह परम्परा रही है कि उसमें ऐतिहासिक घटनाओं की अपेक्षा लोकसंजन कारिणी पौराणिक घटनाओं का अधिक समावेश होता रहा है। आलोचकत्व में भी इस प्रवृत्ति का प्रभाव ज्ञानाभवी साक्षात् पर सगुण-व्यक्ति-मत के प्राबल्य के कारण प्रतीत होता है। संतों के वैयक्तिक उपदेश, पृथक् आलोचना-सम्बन्धी रचनाओं को छोड़कर उन पद्यों में जहाँ भी ईश्वर-रूपा-सम्बन्धी उदाहरण या प्रमाण उपस्थित किये गये हैं उनमें प्राचीन पौराणिक उदाहरणों के साथ तरकाशील जनश्रुतिपरक अवतारी कार्यसम्बन्धी घटनाओं का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त संतों की जीवितियों का जहाँ भी संतों की रचनाओं में आशय मिला है, वहाँ उनका अन्ततः बहुत पौराणिक तथ्य ही अधिक मगूहीत हुआ है। नामा जी का अन्व संतों द्वारा रचित मन्त्रमालों की रचनाओं से इसका निराकरण होता है।

निर्गुण-संतों के उपास्य देव के उच्च सेवा-कार्य सगुण-सम्प्रदायों में प्रचलित अर्चावतारों के अवतारी कार्य से अधिकाधिक समानता रखते हैं। क्योंकि उस इच्छे में त्रिम सेवा-भाव का परिचय मिलता है वह अर्चा विग्रह के अधिक विद्युत है। 'तत्त्वत्रय' के अनुसार अर्चावतार अपने स्वामी-सेवक-भाव को बढ़ाकर सेवक-स्वामी के भाव में भी उपस्थित होता है।^३

विशेषकर मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में जब मत सम्प्रदायों का विकास हुआ तो इन युग में अनेक द्वारों से संत-काव्यों में अवतारवाद का प्रवेश और उसका विलक्षण विकास परिलक्षित होता है त्रिमका सधारणान विद्यमान किया गया है।

१ महाराज की बाबी जीवनी पृ० २।

२ बाबरी मूल श्रीमती मूल दे की नाम अन्व अन्वारी।

३ ४० पृ० १०५-१०६ पृ० १०६।

४ तावत्र पृ० ११९।

सन्तों के अवतारवादो दृष्टिकोण

मामोपासना के द्वारा निराकार की उपासना करने वाले सन्त केवल अवतारवाद के आलोचक ही नहीं रहे हैं, अपितु अवतारवाद के कुछ विशिष्ट रूपों के समर्थक भी रहे हैं। प्राचीन परम्परा में गीता में सर्व-प्रथम अवतारवाद की पुष्टि होती है। 'गीता' में कर्मयोग की परम्परा के वर्णन में अचानक प्रीष्ट्य करते हैं कि वे ब्रह्मा और ब्रह्मिणाशी भूतों एवं प्राणियों के ईश्वर होते हुए भी अपने स्वभाव को साथ लेकर माया से प्रकट होते हैं।^१

उपर्युक्त कथन से इतना स्पष्ट है कि उनका आधिभूत रूप माया से सम्बद्ध है। पुनः 'गीता' में ही कहते हैं कि वे अपनी प्रकृति का लक्ष्य बन करके माना प्रकार की सृष्टि करते हैं।^२ इस प्रकार जहाँ ईश्वर की सृष्टि में व्याप्त और आधिभूत रूपों का माया से स्पष्ट सम्बन्ध विदित होता है।^३ सन्तों ने अवतारवाद का यही माया-संबन्धित रूप ग्रहण किया है। उनके मतानुसार अस्मिन् सृष्टि का आधिभाव तो माया के द्वारा होता ही है,^४ उनका उपास्य 'अन्तर्पामी' आत्म ब्रह्म माया के द्वारा ही जिस शरीर में अवतीर्ण होता है^५ वह शरीर कथन के सदृश दिव्य हो जाता है।^६ सगुण सन्तों ने भी माया विधि ब्रह्म को ही अवतार-स्वरूप माना है। परन्तु इनमें और सन्तों की माया में विशेष अन्तर यह है कि जहाँ सगुणोपासकों में माया दिव्य शक्ति के रूप में मान्य होती है और ब्रह्म की दृष्टि से देखी जाती है, वहाँ सन्तों में यह जीव, जगत् तथा ब्रह्म के बीच में भ्रम में डालने वाली व्यवधान के रूप में मानी जाती है।

साथ ही तरकाशील सगुण सगुणियों में जब अवतारवाद का विकास अर्थात् अवतारों और ईश्वर के अर्थ प्रतीकों एवं ऐसे राम, कृष्ण आदि पृथिव्यात्मिक

१. गाथा ४, ९।

२. गीता ९, ८।

३. 'हमने मायाविशेष पुत्र रूप ईश्वर' के रूप में प्राचीन वैदिक संहिता एवं उपनिषद् में माया के रूप का बीज मिलता है। ऋ० ९, ४७ १८ और १० ४० २, ५, २९।

४. वे माही तो कपड़े, ईश्वर कपड़े बाहि। अलख नादि अमाधि है, कपड़ माया माधि।
बादुरवाक वा० ५० १९२ लाखी २०।

५. एष्व माया ब्रह्म में। आत्म के अवतार ॥

भूत भेद जाने नहीं। तिर है तिरज्वहार ॥ एष्व की को वाली ५० ११५।

६. सबै एसात्म में किना हरि ता और न कोर।

तिर एक बट में संभरे। ती सब तन कथन होर ॥ क० ग्रन्थ ५० १७ लाखी १६८
अब बट प्रमद धये राम राह। सोबि शरीर कथन की बार।

क० प्र० ५० ९४ लाखी २०।

वतारों को लेकर हुआ जिसमें साम्प्रदायिक माम्यताओं का अत्यधिक माबध हो चुका था। बिदोपकर बर्बावतार का सम्बन्ध विधि-निषेध-युक्त हितात्मक पूजा-प्रदतियों एवं चाहाचारों से पूर्ण था, उनमें साम्प्रदायिक द्वेष उत्पन्न करने वाले तब विद्यमान थे। इसी से मानव-युक्तता क पुबारी म्नों द्वारा इसकी सम्भना हुई।

दूसरी ओर म्नों ने ईश्वर क जिस 'अन्तर्दामी रूप को ग्रहण किया था व मनुष्य की संवेदना क अत्यधिक निकट होने क अतिरिक्त विधि विषय वा इमी प्रकार की पूजा-सम्बन्धी बाधाइश्वर से पर था।' इस प्रकार अन्तर्दामी वतार सम्प्रदायों की कठोर पूजा-विधियों से बिल्कुल मुक्त था। साथ ही वह हिन्दू-मुसलमान सभी के लिये सहज प्राप्य था। म्नों ने उसे ही अपना पास्य माना। उपास्य रूप में अकल या सूक्ष्म होने पर भी उसक एवर्ण शिष्ट वैयक्तिक गुण प्रयक् नहीं हुए। इस युग तक मातुओं की रक्षा, दुष्टों व विनाश एवं बमसम्बन्धी हेतुओं पर शक्ति का पर्याप्त रंग बढ़ा चुका था। कला: मनुषोपासकों का उपास्य यदि मूक को बाबाळ, तथा बंगु को गिरि व 'बढ़ने योग्य' बना सकता था तो म्नों का उपास्य भरती को आकाश, या आकाश को भरती दिन को रात और रात को दिन तथा जल क पान में स्थल और स्थल क स्थान में जल करने में समर्थ था।' इस प्रकार म्नों का ईश्वर तटस्थ और उदासीन न होकर म्नों क विभिन्न तरह क चिंतित होने वाला उनका पालक उदारक एवं सहायक है। इनकी सहायता क अतिरिक्त वह अवतीत हो कर उनकी सहायता करता है। वह म्नों क पद में प्रते है कि शिष्यतम इनका सभी कार्य संभार देता है। वह म्नों क निमित्त दुष्टों का नाश करता है। वह सभी कार्यों में समर्थ, प्रम-प्रीति का विबाँह

१ दिन कट्टर पत्थर सेरिया। सी अपना मूल संसार।

अच्छ देव अंतरि बसे, बना दूमी जगद्वार। बाहू व वा० भाग १ पृ० १४०।

२ सर इन देखा सोच करि, पूजा नहीं जान।

जब वर उनके आश्रित्या बवा हिन्दू मुसलमान ॥ बाहू व वा० भाग १, पृ० २३५

३ मूक हीर बाबाळ बंगु कहे गिरिबर गदब। रा० मा० वा० प्र० पृ० १।

४ भरती को अम्बर करे अम्बर भरती हीर।

निमित्त विचारी दिन करे दिन वूँ दखी सोर। बाहू० वा० भाग १ पृ० १९५।

५ कर्ण करे निमित्त में। बल माँहें बल बार ३

बल माँहें बल हर करे। देना समर्थ भाव ३ बाहू० वा० भाग १ पृ० १९५ समी ५।

करने वाला है।^१ मल्लकदाम के अनुमार गिराकार दुख मन्तों के निमित्त मामा प्रकार के बप धारण करता है। प्रत्येक युग में अपने भक्तों के कार्य सिद्धि के निमित्त जबतीर्ण हुआ करता है। सम्भवतः उसकी इस अवतार हीला का शिव और शप भी वर्णन नहीं कर सकते हैं।^२ मन्तों में जबतार बाद के समर्थक गुद जजुन के मतानुसार जहाँ-जहाँ मन्त उनकी उपासना करते हैं, वहाँ-वहाँ वे प्रकट होकर अपनी महिमा का आप ही बिस्तार करते हैं।^३ यथा उस गोपाल की आरती करते हैं जो अपने भक्तों का कार्य सिद्ध किया करता है।^४ गुद जजुन के अनुसार वह आप ही रचा करता है और भक्तों को कष्टों से उबारता है। वह साधुओं को तो मयसागर से तारता है, किन्तु निम्दा करने वाले भीरु दुष्टों को उग मात्र में नष्ट करता है।^५ कबीर के भी एकमात्र पद में कहा गया है कि जगत्क सृष्टि का जो स्वामी है उसी का नाम गुद से प्राप्त हुआ था। उसी ने हिरण्यकशिपु को मक से विहीर्ण कर महाद्व क बचनों की रक्षा की थी। वह सभी पाप लखित कर सत्तों

१. पीव ते अपने काम संभारे ।

कोरें दुख रोग की मारण सोरें यहि ते मारे ।

मेर समान ताप ठन व्यापे सहजे ही ली हारे ॥

संतमु को सुखहार मानो, विन पावक कब आरे ।

दुम में होर सबे विधि सिमरन आगम सबे विचारे ॥

संत ब्यारि दुख दुख होन्दा अब कूप में डारे ।

पैसा है सिर खसम हमारे दुम भीते छळ हारे ॥

बाहु लों पैठे विनहि कै पेम प्रीति विन ध्यारे । दादू० वा० माग २५० ४५ ।

२. मनो गिरजन बिरह्वार । अविगल पुरुष मकैन्द्र ।

जिन संतम के हित बरदो, युग युग जाना भेख ॥

हरि भजन के काम हित, युग युग करी लहाव ।

सो सिव सेसन करि सके करी क्यूँ मैं पाव ॥ मल्लकदास की बानी ५ ३४ ।

३. मधति बबलु हरि किरतु जापि बनारना ।

कई कई संग करारहिं तई तई प्रपरावना ॥

प्रथि जापि लीप लमार सहजि सुमार मगल करव सारिवा ।

आनन्द हरि बस मह मंगल सरव दुम विसरारना ॥

गुद र्थ० सा० ५ ४५१-४५७ ।

४. गोपाल पैरा आरता ।

जे जन सुमरी मधति करे ते जिनके काम सवारना । गुद र्थ० सा० ५० ३ ५ ।

५. रदो रपन हरि जापि ब्यारिभनु । गुद की पैरी पार काम स्यारिभनु ।

दोना जापि रहनाउ मनुहु न विसरिभनु ।

साक्य विरक दुखर विन मारिं विरारिभनु ॥ गुद र्थ० सा० ५० ५२७ ।

का उद्धार करता है।^१ सुम्बरदास का कथन है कि भगवान क जिस रूप का स्मरण किया जाता है वही रूप वे चारण कर लेते हैं।^२ इस प्रकार क कबक समय-समय पर आविर्भूत होने वाले पौराणिक ईश्वर ही नहीं हैं, अपितु अर्चा-विग्रहों के सहस्र हृष्टदेव के रूप में सर्वदैव भक्त के साथ रहने वाले भगवान भी हैं। 'गीता' में व्यक्तिगत ईश्वर की अर्चा के प्रसंग में कहा गया है कि भक्त जिस रूप की अर्चना करना चाहता है उसकी अज्ञा को उसी में स्थिर कर देता है।^३ 'महामारत' में अवतारवाद का व्यापक अवतारवादी-रूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि परमात्मा विभिन्न कर्मों के निमित्त जिस जिस प्रकार का रूप चारण करना चाहते हैं, उस शरीर में अपनी आत्मा को ब स्थान स्थापित कर लेते हैं।^४ सतों के अनुसार भी ईश्वर एक रूप एक अधिवासी होते हुए भी विभिन्न रंगों और विभिन्न रूपों में नामा प्रकार से अपनी अभिव्यक्ति का विस्तार करता है।^५ गुरु अर्जुन के अनुसार नाम ही अभिव्यक्ति का कारण है। नाम ही सभी आकार धारण करता है।^६ कबीर कहते हैं कि मिट्टी एक है परन्तु भेद उसके अनेक हैं, उसी में अन्न को पहचानो।^७ सतों ने समस्त ईश्वर की अभिव्यक्ति के आविर्भूत रूप का भी समर्थन किया है, जिसकी सर्जना का मूळ आधार उनका निर्गुण-निराकार ईश्वर है। गुरु अमरदास के मतानुसार वही सृष्टि का कर्ता, पाकक एक सहायक, सत्यवादी एक स्यापी है। उसके करोड़ों आकार हैं जो माया के आधार पर सर्वत्र फैले हुए हैं।^८ करोड़ों शरीरों का निर्माण

१. सर्व सखा क्य एक हरि ल्यापी को गुन नाम बसो।

संन प्रह्लाद की पेन भिन्न राखी हरमासुल मय विहरयो ॥

कर के देव पिता की छोड़ो गुन को सुवद लयो।

कहत कबीर सकल वाच संदख संगन्ध है कर्षणी ॥ क० प्र० ३०२ पृ० २१९।

२. जाही की सुमिरन करे ते ताही की कर।

सुमिरन कोपे मय के सुम्बर के विद्रुप ॥ सु० प्र० मज २ पृ० ६८२ लाप्य ५६।

३. गीता क, २१।

४. महा० २२, ३४क, ७९।

५. नामा क्य बाहें रंग नामा भेद करदि एक रंग।

पाना विधि कोनो विलकार, प्रमु अधिनासी पर्वकार। गुन प्र० ता० ५ २८४।

६. नाम के बारे लकल आकार। गुन प्रम्व सा ५ २८४।

७. मागो एक भेद करि नामा ता मदि मनु ब्रह्माभा।

कहै कबीरा निकन छोड़ि करि बीरक तिउ अनुमाना ॥

गुन प्रम्व सा० पृ० ४८० कबीर।

८. जाये सृष्टि हुबमि सजसाजी जाये बरि कपनि निवाजी।

जाये निवाज करे लनु साबा, ताये ताब विचाररा म

कर ईश्वर उसमें स्थित रहता है।^१ इस प्रकार वादू के अनुसार काया में ही वह बार बार अवतार लेता है।^२ वह प्रभु ही सत्य नहीं है अपितु उसके वे समी आकार और रूप भी सत्य हैं।^३ 'तत्त्वत्रय' के अनुसार ईश्वर अनन्त अवतारों के रूप में समी का रूपक एवं सबका ताप हरने वाला है।^४ गुरु अर्जुन के अनुसार विष्णु-स्वरूप ईश्वर के करोड़ों ब्रह्माण्ड एवं करोड़ों अवतार हैं।^५

सल्फार्डिन मक्ति ने जिस अवतारवाद को आत्मसात् कर लिया या वह उपास्य एवं उपासक-सम्बन्ध के भाव पर आधारित था। इन्द्रदेव का अवतार भी भक्त की कल्पना या भाव के अनुकूल होता है। सर्तों का यह विश्वास या कि वह स्वेषणा से भक्त का प्यान रखता है एवं आवरणकता पढ़ने पर उसके स्थित अवतीर्ण होता है। सत सुन्दरदास एक पद में कहते हैं कि अपने भाव से सेवक-साहित्य भक्तों का प्यान करता है। दुष्टों का संहार करता है और अपनी इच्छा से अवतीर्ण होकर जैसा भक्त का भाव है, उसी प्रकार का आचरण करता है।^६ वह राजाओं में राजा, योगियों में योगी, तपस्वियों में तपस्वी, गृहस्थों में भोगी के रूप में अवतीर्ण हुआ करता है। उस अनन्त पुण्य का प्यान कर समी भक्त सुखी होते हैं। उसकी स्तुति अनन्त है समी देवता उमका अवगाहन करके द्वार गण।^७ इस प्रकार एक ओर तो वह पूर्ण ब्रह्म है

कारण बोद्ध है जकारा माहमा मोहु पसरिआ पसारा।

गुरु मन्व सा० पृ० १०५९।

१. कारमा हरि मंदक हरि आपि सवारे। ठितु विधि हरि जीव वसे मुरारे ॥

गुरु मं० सा० पृ० १०५९।

२. काया माई के अवतार काया माई बारम्बार। दादू वामी पृ० १५१।

३. सी प्रभु साया सब ही साया साया समु आकारा।

मानक छनि गुरि सोबी पार सधि नामि निस्तारा ॥ गुरु मं० सा० पृ० ११३१।

४. सचक ताप हरोअन्तानतार कूरि सर्वरक्षक। तत्त्वत्रय पृ० ९८।

५. कौटि बिसन कीने अवतार, कौटि ब्रह्मण्ड बाकेअमसक। गुरु मं० सा० पृ० ११५५।

६. (क) आपुने भाव ते सेवक साहित आपुने भाव सवे क्षेर ख्यारे।

आपुने भाव ते अस्य बपासत आपुने भाव ते मछु गाबे ॥

आपुने भाव ते हुक संवारत आपुने भाव ते बारर आवे।

जैते ही आपुने भाव है सुन्दर छदि की तेजोदि होर दिखाने ॥

सुन्दर प्रभावणी भाग २ पृ० ५७८।

(ख) सुन्दर प्रभावणी पृ० ९८ साखी ४३।

७. राज मदि पानु बोग मदि बोयी। वष मदि तपेसन गृहसत मदि मोयी ॥

विचार विचार यमन्त सुसु बारमा।

बाकी लीला की विधि मदि सगक देव द्वारे अक्याहि। गुरु मं० सा० पृ० १८४।

और दूसरी ओर कोटि-कोटि अपराध जमा करने वाला कल्याणमय पूर्ण परमेश्वर है।^१ गुरु मानक के अनुसार उसकी अक्षय कहानी विविध है वह युग-युग में आविर्भूत गोपाक ही सतों का गुरु है।^२

इस प्रकार संतों ने अपने उपास्य ईश्वर के पौराणिक अवतारवादी कथाओं का ही वर्णन नहीं किया है, बल्कि विनायुदिन भक्त और भगवान के बीच निरंतर बढ़ने वाले सम्बन्धों की भी चर्चा की है। इन सम्बन्धों में उपास्य-वादी अवतारवाद की एक विशिष्ट प्रवृत्ति उद्दिष्ट होती है।

अवतारवाद के प्रारम्भिक रूपों में विष्णु के जो अवतार हुआ करते थे, उनमें विशिष्ट काल और कार्य की भावना विद्यमान थी। सामान्य रूप से उन अवतारी घटनाओं का महत्त्व ऐतिहासिक घटनाओं के समकक्ष था। पर मत्-युग के अवतारवाद पर विभिन्न सम्प्रदायों और उपास्यों का इतना प्रभाव पड़ा कि ऐतिहासिक महत्त्व के अवतार-प्रयोजन दैनिक प्रयोजन के रूप में परिवर्तित हो गये। इस युग का भक्त जब भी जिस काय के किम् उनका स्मरण करता था, तभी वे सब-सामान्य रूपों में उसके समक्ष उपस्थित हो जाते थे। इतना ही नहीं कभी-कभी तो भगवान् भक्त को विशेष परिस्थिति में देखा कर इतने प्याकुल हो जाते हैं कि स्वयं उसके स्थान पर व उनके कार्य में लग जात हैं।

इसमें स्पष्ट है कि मध्यकालीन अवतारवाद में उपास्य और उपासक के मात्र-सम्बन्ध को लेकर महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन में मगुण-मन्त्रों के साथ निर्गुण-मन्त्रों का भी समाज योग माना जा सकता है।

साम्प्रदायिक रूप

मध्यकाल में ईश्वर के आविर्भाव की अपेक्षा तत्कालीन संतों एवं महा-पुरुषों के अवतरण की प्रवृत्ति का विशेष प्रचार हुआ। श्री मैकलिफ ने 'ही विंग रेक्लिज्म' की भूमिका में लिखा है कि मध्ययुग में यूरोप और एशिया में प्रचलित प्रायः सभी धर्मों में यह विश्वास प्रचलित था कि जब राजनीतिक और सामाजिक पतन होता है, तब किसी न किसी पैगम्बर, अवतार या महापुरुष का प्रादुर्भाव होता है।^३ इनके कथनानुसार विंग गुफ्तों की भी यही

१ कोटि बराब महामहानपन बहुदि बहुदि प्रभु सहीरे।

हरनामक पूज परमेश्वर मानक निष्ठ सतनहीर ॥ पु प्र० सा० पृ० ५२२।

२. अक्षय कथा के १४३ विपला मानक मुनि मुनि पुन गौराणा।

पु० प्र० सा० पृ० १४३।

३ ही विंग रेक्लिज्म पी० १ पृ० ४०-४१।

धारणा है कि अत्याचार से पीड़ित विश्व में ईश्वर कोई न कोई ऐसी मार्गदर्शक (डिवाइन गाइड) भेजता है।^१ गुरु अमरदास के अनुसार अत्याचार से पीड़ित होकर जब पृथ्वी माराकांत हो उठती है, तब ईश्वर से प्रार्थना करती है। फलतः गुरु ईश्वर की आज्ञा से अवतरित होता है और अपने उपदेशों की वर्षा करता है।^२

इस प्रकार मध्यकालीन और अवतारकालीन साम्प्रदायिक एवं पैगम्बरी अवतारवादी प्रवृत्तियों में प्रायः धर्म या सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक अपने धर्म या सम्प्रदाय का ब्रह्म और उपास्य, अवतार और अवतारी, रसूल या पैगम्बर तथा दिव्य मानव या ऐसी गुरु क रूप में मान्य होता है।

प्रायः सभी धर्मों या सम्प्रदायों में बह-पुराण, बाइबिल, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब, भागवत, गीता आदि ग्रन्थ मान्य होते हैं, जिसके आधार पर धर्म या सम्प्रदाय की भावना-पुष्टि होती है।

इसी प्रकार प्रायः आन्दोलनवादी क सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों में एक मूल भावना (सेंटिमेंट) की भी प्रधानता मिलती है, जो जन साधारण से लेकर उस धर्म या सम्प्रदाय के आचार्यों एवं पण्डितों या मुद्दाओं तक समान रूप से व्याप्त रहती है। कबीर के पश्चात् इनकी परम्परा में आये वाले सन्तों में उन्हीं रुढ़ियों एवं साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का पुनः उदय हुआ जिनका उन्होंने सदैव विरोध किया था। विशेषकर जिन अवतारवादी रुढ़ियों का कबीर ने उन्मूलन किया था धर्मदास आदि उनके शिष्यों ने उन्हीं का व्यापक प्रचार अपनी रचनाओं में किया है। इसके फलस्वरूप तत्कालीन सन्त-सम्प्रदायों में एक विशेष साम्प्रदायिक अवतारवाद का परिचय मिलता है।

धर्मदास की रचना 'अनुराग सागर' में अवतारवाद क इसी साम्प्रदायिक रूप का दर्शन होता है। यहाँ धर्मराज कहते हैं कि ईश्वर तुम कम से कम कलियुग में सबसे अपनी धारण में से लेना। इस पर उन्हें ईश्वर-जटा क अवतरित होने का आश्वासन मिलता है, जिसके फलस्वरूप ईश्वर सुकृत, सुरति आदि जाट अशों क महित इस अगती पर आधिभूत होते हैं।^३

यहाँ इस साम्प्रदायिक अवतार का प्रयोजन स्पष्टतः जीवों का उद्धार और पन्थ का निर्माण बतकाया गया है।^४ इनके कथनानुसार काट स्वयं हावस

१ की सिध रेकिजन की २५० २५४। २ की सिध रेकिजन की २५० ४१।

३ सूरत आदी अंग सुकृत प्रवृत्ति हैं अग का सके।

ता बीटे पुनि सूरत नौठन जाय गुरु धर्मदास के ॥ अ० सागर ५ ३८।

४ अंग आदि पुन के दे जीव धारण आदर्श।

कहि पंथ प्रकट वसारीके यह जीव कोक पठावरी ॥ अ० सागर ५० ३८।

पद्यों का निर्माण कर, द्वादश पंक्तियों को इस ब्लॉक में सम्मिलित उद्धार-कार्य के लिये भेजेगा जो मुद्रित के पत्र जलतीर्थ होंगे।^१

इसके अतिरिक्त नायपत्रियों के सहस्र इन्होंने भी नाद-असावहार का उल्लेख किया है। इनका कथन है कि जब-जब काल पर आक्रमण होगा नाद-असावहार से अत्यन्त होकर विष में सभी भ्रम मिटाकर भक्तिपथ चक्रेगा तथा उससे इन पद्यों को प्रकाश मिलेगा।^२

इन्होंने विदित होता है कि परवर्ती साहित्य में एक ऐसी अद्यतारवादी धारणा का उद्भव हुआ जिसके विकास में सामग्र्याधिक मनोवृत्तियों का विशेष योग था।

अभी तक निर्गुण-सम्पत्तों में शिव पारिभाषिक शब्दों का तात्त्विक महत्व था, उनका नाद में अभिन्नत्व इतना से अद्यतारीकरण किया गया। इसके अतिरिक्त वैष्णवोत्तर सम्प्रदायों में प्रचलित बहुत से उच्च शब्दों को भी उनके पौराणिक रूपों के साथ अज्ञान का प्रयत्न किया गया है। विशेषकर 'सुहृत्' शब्द यदि उपनिषदों से लिया गया तो 'धर्मराज', 'निरंजन' और 'सुनीम्र' शब्द पूर्ण भारत में व्याप्त उस 'धर्म' शब्द के समग्रार्थ से गृहीत हुए जिनका सम्बन्ध परवर्ती बौद्ध धर्म से था। आरम्भ के सिद्ध-साहित्य में इनके उद्भव और विकास का निरूपण किया गया है।

पैगम्बरी रूप

सम्पत्त-साहित्य में इस्लाम एवं सूफी मत के प्रभाव के कारण एक विशिष्ट प्रकार के अद्यतारवाद का परिचय मिलता है।

सूफी साहित्य में माधारणतः ईश्वर के दो प्रकार के आविर्भाव उचित द्वात हैं—प्रथम आविर्भाव के रूप में जीव और जगत को माना जाता है जो उसकी ज्योति के अनास्वरूप विभिन्न रूपों में आविर्भूत होते हैं तथा द्वितीय आविर्भाव के रूप में उसकी ज्योति के अनासे मुहम्मद आदि पैगम्बरों का निर्माण होता है, जो विषय में आकर ईश्वर का संदेश सुनाते हैं और सम्प्रदायों का प्रवर्तन करते हैं।

१ शृंग अन्वा एक दूत हमारा, मुहं मद है नबनात ।
प्रथम दूत मम प्रपठे जायो पीठे अंत मुहंता जायो ॥

२ जब जब बाक हायात करै । तब तब हम हीब सदाई ।
भार अंत तरहिं प्रगवाब मरम रोहि अयमकि इहावर ॥
भार पुच अंत लो पुच हमारा, दिनते होब नंब उजिवात ॥

उक्त प्रवृत्तियों का दर्शन 'गीता', 'भागवत', तथा पाँचरात्र संहिताओं में होता है। परन्तु दोनों में विशेष अंतर यह है कि वहाँ 'भागवत' में सृष्टि का आविर्भाव क्रमिक विकास के रूप में होता है तथा यह चारा भारतीय दर्शन की एक विशेष विचारधारा सर्व्वम्य दर्शन से प्रभावित है^१, वहाँ सूफी या इस्लामी अवतारवाद में सृष्टि के प्रथमवर्द्ध एवं विकासोन्मुख अवतारवाद के स्थान में एक ही ईश्वर की परम ज्योति से अभिन्न विश्व एवं उसके विभिन्न उपादानों का आविर्भाव माना गया है।^२ परन्तु सृष्टि-आत्मा और जीवात्मा के आविर्भाव की दृष्टि से प्रायः दोनों विचारधाराओं में अत्यधिक साम्य है। क्योंकि दोनों सर्वात्मवादी पद्धति को समान रूप से ग्रहण करते हैं।^३ इसके अतिरिक्त महापुरुषों के अवतार की दृष्टि से भारतीय एवं इस्लामी दोनों की पद्धतियों में न्यूनाधिक अंतर उचित होता है। 'गीता' के अनुसार ईश्वर महापुरुष अवतारों के रूप में स्वयं रूप धारण करता है। किन्तु इस्लामी मत के अनुसार अल्लाह समस्त अकस्मा से अपने ज्योति-महा से पैगम्बरों का निर्माण करता है जो आपसी क क्रमों में 'कीन्देसि पुरुष एक निरमरा नाम मुहम्मद पूरी करा' से स्पष्ट है।

प्रयोजन की दृष्टि से भारतीय अवतारवाद में साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दमन प्रधान उद्देश्य माना गया है। किन्तु पैगम्बरों के अवतारवाद में ईश्वरीय संदेश एवं ईश्वरवाद का प्रवर्तन मुख्य प्रयोजन विहित होते हैं। इसके समानान्तर पाँचरात्र संहिताओं के अनुस्यूत अवतार में प्रवर्तक बामुद्देव के अतिरिक्त अन्य तीन माधक, उपदेशक एवं प्रचारक हैं। अवतारवाद का यह रूप विशुद्धतः भारतीय प्रतीत होता है; क्योंकि इस्लाम धर्म के प्रावृर्भाव

१ मा० ३, ५, २३ ३३।

२. कीन्देसि प्रथम ज्योति परकात् कीन्देसि तदि विरीठ वैठात्।

कीन्देसि जगिति, पवन, ब्रह्म वेदा कीन्देसि बहूते रप बरेदा।

कीन्देसि बरती, सरण पशरु, कीन्देसि बरब बरन बीताव।

कीन्देसि दिनकर सति रात्री, कीन्देसि नकत्र तरारन पात्री।

जा० प्र०। पृष्ठ। ३ २२० सृष्टि अंठ।

३ जो वनपति वपराने चहा आपनि प्रमुगा जाजुली करा।

रहा बी एक ब्रह्म प्रपुन समुदा, बरसा तद्वच भकारह मुदा।

सार्ई अंस परे बर मैठा, और सोर बरब बरन कोरई शिना।

जा प्र०। पृष्ठ। अकरावट ५० ३५०।

(८) मयबामेक जसैदमय आत्पाऽऽमता विनु।

आत्पैऽऽनुगनावामा मात्रावसुनदक्षकः ॥ मा ३, ५, २३।

के पूर्व की रचना 'गीता' में प्रतिपादित 'धर्मसत्यापनार्थाय' प्रयोजन में सम्प्रदायों के प्रवर्तन और ईश्वरवाद के प्रचार की शकल मिलती है।

ब्राह्मोप्यकाण्ड में मुंठ कवि रज्ज ने 'श्रीमद्भागवत' एवं सूफी ब्रह्मसूत्रवाद का अपूर्व समन्वय अपने पदों में किया है। उनके मतानुसार सबका आवि कारण नारायण है, जो काय रूप या बिम्ब के रूप में अभिम्यक्त संभवत है।^१ श्रीब्रह्मा उत्पन्न होने पर आत्मब्रह्म के रूप में परिणत हो जाता है।^२ रज्ज ने उक्त सबय को शीघ्र और प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकृत माना है। वे कहते हैं—आदि नारायण शीघ्र है और आविर्भूत आत्मार्थ रूपों के मरुत उसका प्रकाश प्रतिबिम्बित करने बांटी है।^३ इस प्रकार आवि नारायण अकल है और उमका अभिम्यक्त रूप कला-पुच्छ है।^४ यह अकल कला-रूप में कार्यब्रह्म या जहा है।^५ पुनः 'गीता'र जतीत महात्म को 'ब्रं' में उक्त धारणाओं का समर्थन करते हुए इन्होंने सृष्टि के विभिन्न उपादानों का, जो सम्भवतः 'गीता 'भागवत' आवि पुराणों में विमूर्ति के रूप में मान्य है, सूर्य एवं प्रतिबिम्ब-सबय से समर्थन किया है। रज्ज के अनुसार आवि नारायण सूर्य है और कुम के मरुत सृष्टि के विभिन्न उपादानों में आत्म रूप से दृष्टिगत होने बाळा उसका प्रतिबिम्ब है।^६ आकाश में दिखाई पड़ने वाले ह्यु या शीघ्र प्रह,

१ सबका आवण आवि नारायण। आवि में भीतर। रज्ज की शीघ्रि कर, ताये केर न तार।
२० बी की बानी पृ० ११४ छापी १०।

३, रज्ज माया तद्र में आत्म के ब्रह्मसूत्र।
४ मूल भेद जाने नहीं सिर है सिद्धन हर। १० बी० की बा० पृ ११५ छा २४
५ रज्ज जीव जीवि मरि भीठरे जीवे नाका मरि।
वेदे वडे भाज्या इके कले लो मरि ॥ १० बी की बानी पृ ११५ छापी २१।
६ भीतर आत्मनो मारमी। आवि नारायण शीघ्र।
रज्ज एक अनेक विरि वे शीघ्रक शीघ्र कशीघ्र।
रज्ज की की बानी पृ० ११६ छापी २६।

७ आवि नारायण अकल है, कला रूप भीतर।
आत्म आत्म बरि विधी, देला कते विचार।
रज्ज की बानी पृ ११८ छापी ३०।

८ अज्ञान कला आवि है लो सिरी सिद्धन हर।
रज्ज बीघ्र बरपरी करे लो कालु मित्र विचार ॥
रज्ज की की बानी पृ० ११८ छापी ३८।
९ भीतर कुंम प्रतिबिम्ब बरि। आवि नारायण आत्म।
रज्ज बरपन बाळ रिच अमरि करे परिधान ॥

मन्त्र, तारे^१ सूर्य और चन्द्रमा आदि नाना रूपों में अभिव्यक्त उसके अतीत अवतार हैं।^२

तत्कालीन निम्बाक सम्प्रदाय में भी प्रतिबिम्बवाद के रूप में इस सम्प्रदाय के कवि परशुरामाचार्य ने अपने पद्यों में प्रतिबिम्बवादी दृष्टिकोण से अवतारवाद का एक विशिष्ट रूप प्रस्तुत किया है।^३

उपरोक्त माम्यताओं के बोधार्थ पर अवतारवाद अपनी चरम सीमा पर उचित होता है। क्योंकि प्राचीन साहित्य के अवतारवाद में प्रयोजन का जो महत्वपूर्ण स्थान था, इस युग के ईश्वर की समष्टिगत अभिव्यक्ति में उसका पूर्णतः क्षेप हो गया। फलतः अवतार सत्य एवं उसकी विचारणा दोनों में अतिभ्यासि का दर्शन होने लगा है।

सगुण सम्प्रदायों में भी अवतारों का जाहीकरण होने के कारण उनके प्रयोजन को कीकात्मक एवं रसात्मक रूप प्रदान किया गया है। इस प्रकार प्रारम्भ में जिस अवतारवाद का सचय केवल अवतरण जन्म या किसी विशेष प्रयोजन तथा आधिर्भाव मात्र से था, इस युग में ईश्वर की समस्त अभिव्यक्तियों के निमित्त उसका प्रयोग किया गया।

इसके साथ ही अवतारवाद के प्रयोजनार्थक रूप का सचय आचार्यों एवं प्रवर्तकों या पैगम्बरों से स्थापित किया गया। परवर्ती संतों पर प्रवर्तकों के अवतारवाद की दृष्टि से भारतीय विचारधारा की अपेक्षा इस्लामी या सूफ़ी

रख्य के प्रस्तुत संग्रह में बाहू शैलों के कारण अर्ध-वैद्यम भी सम्भव है।

भीठार मर लखक बने आवा धन सुहोव।

रख्य बदिगन अनिन बन कह कर्कक व कोव ॥

अरक ईद भीठार दिदि, सोले बोखे माय।

रख्य बड़े अतीठ मठि, साखी भूठ सुमान ॥

रख्य बी बी नामी ५ २२२ साखी २-३।

१ अरक ईद भीठार लकि, ऊपरि बड़ग अतीठ।

रख्य लपु बीरब क्ये परबौ अपर प्रतीठ ॥

रख्य बी बी नामी ५० २२२ साखी ४।

२ रख्य हृष्यान सूर्य छशि अचवा सीव अगस्तव।

बौ अवतार अतीठ क्य कथा मिर बक बसत ॥

रख्य बी बी नामी ५० २२२ साखी ५।

३ मज्जन जाहुं बरलराम जाहुं हृष्य क्यारि।

क्य मंडक रवि किरय क्यो उरविषये कामारि।

परशुराम सागर। ५ कि० ना प्र० स० मन्त्र भीठार की बीकों। २।

विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट उचित होता है। भारतीय परंपरा में मान्य अवतार जहाँ ईश्वर के अस्त, आवेश या कडा अभित शक्तियों से समाविष्ट माने गये हैं, वहाँ सूफी या इस्लामी परंपरा में ईश्वर, पैगम्बर या रसूलों का निर्माण कर ईश्वरीय सद्वा के प्रचार के लिये पृथ्वी पर भेजाता है। ऐसा कहा जाता है कि 'निरमरा' या निर्माण शब्द पैगम्बर एवं शेरक आदिक लिये विशेष रूप से प्रयोग किया गया है।^१ पश्चिम के कथनानुसार साब सम्प्रदाय में यह माना जाता है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपनी पूजा और उपासना के निमित्त रचा।^२ अतः पैगम्बरी मत जिसका एकमात्र प्रबोधक ईश्वरवाद का प्रचार है, वह विशेषकर परबर्ती मतों में व्याप्त उचित होता है।

इस पद्धति का प्रयोग परबर्ती सत गुरु गोविन्द सिंह के 'बिबिधर नामक' में किया गया है। उसका मारास इस प्रकार है—वेमरूर पर्वत पर स्थित ससुरा नामक स्थान में गुरु गोविन्द सिंह की भक्ति से प्रसन्न हो उन्होंने ईश्वर ने कलियुग में अवतरित होने के लिये कहा। यहाँ उनके अवतार का प्रयोजन बतलाते हुए कहा गया है कि 'सृष्टि में सबप्रथम उन्होंने राक्षसों को अधिकारी बनाया। उन्होंने ईश्वर की पूजा बंद कर ही और पृथ्वी पर अत्याचार करना आरम्भ किया। तब उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भेजा; उन्होंने भी अपने को ईश्वर कहना शुरू किया तब अष्टदिग्पाक भजे गये। व यहाँ अपनी पूजा करवाये लगे। तब मनुष्य आप। मनुष्य भी अहकारी हो गये और पत्थरों को देवता मानने लगे। तब सिद्ध एवं नाथ आये। उन्होंने ईश्वर को भूकर पूषक-पूषक सम्प्रदायों का निर्माण किया। तब ईश्वर ने ऋषियों को बनाया। उन्होंने ईश्वर को मुलाकर अपनी स्मृतियों का प्रचार करना आरम्भ किया। तब ईश्वर ने इत्तारैय को बनाया। व भी अपना पय चलाने लगे। इनके बाद ईश्वर ने गारुडनाथ का निर्माण किया। ये बड़े-बड़े राजाओं का सेवा मूढ़ने लगे। तब रामानन्द भेजे गये जिन्होंने वैरागियों का चोला पहन लिया पर ईश्वर का उपास नहीं किया; तब ईश्वर ने मुहम्मद को बनाया और अरब का राज्य प्रदान किया। उन्होंने भी मुसलमान बना कर धर्म चलाया। अन्त में उन्होंने गुरु गोविन्द सिंह को

१ (क) श्रीरंजि पृष्ठ ५६ निरमरा नाम मुहम्मद पुनीकर।

(ग) मोहि कर रतन पृष्ठ निरमरा राजी सेठ लड़े गुरु बरा ०५५ पृष्ठ १० ५

(ब) सेठ मुहम्मद पुनीकर सेठ कमाठ बगन निरमरा। बरी १ ७।

२. वी लाय १० ५४ नाह ईक मैच मैच इन दिङ्ग चीन इमेङ्ग ही ईच मड मैच ड बरतिव दिव ऐङ्ग ड प्लोरिपारं दिव मैच।

मेजा। इसी से गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं कि जो कोई मुझे ईश्वर कहेगा वह नरक में गिरेगा।^१

उपर्युक्त सारांश में इस्लामी एवं सूफी परंपरा में प्रचलित आत्म से छेकर मुहम्मद तक के प्रवर्तकों या पैगम्बरों के स्थान में, यहाँ मुहम्मद को एक अनोखी भारतीय परंपरा से सम्बद्ध किया गया है। साथ ही इस परंपरा में गृहीत माया: सभी ईश्वरवाद के सदेशवाहक या प्रचारक के रूप में मान्य हैं। यहाँ सदेशवाहन मुख्य प्रयोजन होने के कारण इसका पैगम्बरी रूप स्पष्ट विहित होता है।

अवतारवाद की आलोचना

संतों ने अल्पकाल में प्रचलित अवतारवाद के विविध रूपों का कहीं तो विरोध किया है, और कहीं उनका प्रासंगिक रूप से विराकरण कर अपनी मान्यताओं की स्थापना की है। सत कबीर अवतारों के निरय रूप की आलोचना करते हुए कहते हैं—जिस समय न तो यह पृथ्वी थी, न यह जाकाया था उस समय नद के नम्बन कहीं थे? अनादि और अविनाशी तो निरजन हैं। सगुणोपासकों का नव ता चौरासी शक्य योनियों में अमन करते-करते घक गया है।^१ संतों ने माया को सर्वत्र अमात्र की दृष्टि से देखा है।^२ जिसके फलस्वरूप ईश्वर के अज्ञा विष्णु आदि रूपों को गुणारमक और राम आदि अल्प मायाप्रमित अवतारों को मायिक माना है।^३ जबकि इनका ईश्वर माया से परे अकल्प और अनादि है। दादू कहते हैं कि सब लोग माया रूपी राम का ध्यान करते हैं जब कि दादू अकल्प, आदि और अनादि ईश्वर का।^४ विचित्रता तो यह है कि माया ही राम और कृष्ण का रूप धर कर स्वयं अपनी पूजा कराती है।^५ राजब कहते हैं—राम और परशुराम

१ दि तिघ ऐकियन, मर्यादक भा० ५ पृ० २९६-२९९।

२ क० घं० पृ० १०१।

३-४ अज्ञा का वेद विष्णु की मूर्ति पूजे सब संसारा।

महादेव को सेवा लगे कई है तिरजन द्वारा न

माया को आकुर किया माया को अद्वियार।

पैठे देव अनंत करि, सब भग बुझन बार ॥

दादू वा मा० १ पृ० १२९ लाकी १४१, १४२।

५- माया रूपी राम कृ सब कोर ध्यारे। अकल्प आदि अनादि है सो दादू गारे ॥

दादू ९ वा मा० १ पृ० १२९ लाकी-१४०।

६ माया वेदो राम हे कई मै ही मोहन राव।

अज्ञ विष्णु महेश की खोनी आवे बार ॥

दादू वा० मा० १ पृ० १२९ लाकी १४१।

तो एक बार अवतरित होकर चले गए तो उन्हें कर्तार कैसे कहा जाय ? १)

कबीर उस साहज का साहचर्य चाहते हैं जिनमें न तो हस्तरथ क कर अवतार किया है, न लकापीस को सताया है, न तो देवताओं की धोनि में अवतरित हुआ है, न यक्षोद्या में उसे गोद में लैकाया है, न ग्वाड़ियों के झगड़िया है, न गोबरधन धारण किया है, न बराह होकर वह पृथ परती का उच्चार किया है, न वह गंडक का साक्षिग्राम है, न इसने मत्स्य का कृम होकर बल में भ्रमण किया है, न ब्रह्मीनाथ में तप किया है, न परशुराम के रूप में क्षत्रियों का वृद्धि किया है, न द्वारिकामें उसने शरीर त्यागा न तो जगन्नाथपुरी में उसका पिंड रत्ना गया है। कबीर के विचारानुसार ये उसका आरोपित रूप हैं।^१ रज्जव कहते हैं—कृष्ण ने गोबरधन धारण किया और हनुमान ने श्लोकगिरि को और शेष ने सृष्टि को धारण कर रखा है, तो फिर किम्बको भगवान कहा जाय ? १) गुल्शनक के कथनानुसार अवतारों में भी उसी प्रकार वह भोगा है, जिस प्रकार साधारण मनुष्य राम के चरिते परशुराम को रोजा पदा और सीता के लिए राम^२ राजन को मार कर और अमृत मय कर क्या अयतार ईश्वर से भी बड़े हो गये ? १) अता अवतारों के नाम से ईश्वर की पूजा करने से ईश्वर की महिमा नहीं बढ़ती है।^३ उसका न तो कोई पिता है न माता न भाई।^४ पुनः गुल्शनक ने कृष्णावतार की अमित्यता बतलाते हुये कृष्ण और गोपी समी को साधारण मनुष्य के सदृश काल क्वचित्त कहा है।^५

१ परशुराम जब रामचन्द्रा हुए हुए वैश्वि वार ।

तो रज्जव की वैशि कीर को कहिये कलार ॥

रज्जव जी की बानी ५ ११४ छांटी १६ और सर्वांगी ५० ४२ सुखी २६ ।

२ क० प्रं ५ २४३ संभवतः नाभोपसक्त संभ को परम्परा है सुतिह-महाद का संभव हीये के धारण कबीर ने इनका नहीं बतोर्य नहीं किया है ।

३ योवर्द्धन वारवा कृष्ण, श्लोकगिरि हनुमन ।

शेष सृष्टि धार पर बरी, को कहिये जयवन ॥

रज्जव जी की बानी ५ १११ छा० ५, ६ ।

४ श्री सिध वैश्विन मैकलिक, जी० १५ १९८ ।

५ श्री सिध वैश्विन मैकलिक, जी० १५ ३ ५ ।

६ श्री सिध वैश्विन, मैकलिक, जी १५ ३४६ ।

७ श्री सिध वैश्विन मैकलिक, जी० १५० ३९९ ।

८ बहिमा समे गोपीना बहर कहर गेराळ ।

गर्भे भक्तु बागी बैसंग बडु मूरु अवतार ॥

तपकी धरणी मातु बनु बरतयि सरव बंगल ।

मानक मुझे पिनाव गिह्यो पाइ वरना जयकाउ ॥

गुरु अमरदास का कथन है कि पुनः-पुनः मैं तुम्हारे द्वारा बितने अवतारों की सृष्टि हुई व तुम्हारे अवतार के रूप में गाने आते हैं। परन्तु वे भी तुम्हारा जन्त नहीं पा सकते।^१ कबीर ने उस काल के पालखी एवं अवतारवादी और व्यभिचासी ब्राह्मणों पर कटु प्रहार करते हुए अवतारों में मान्य ब्राह्मणों से विभिन्न संबंध जोड़ा है। उनक कथनानुसार ब्राह्मण सर्वैव दुखी एवं पालखी रहें हैं। ब्राम्हन के रूप में उन्होंने बलि से छुल किया तथा सर्वैव उन्होंने अनक आपत्तिजनक काय किये।^२ जितने ग्रन्थ, पुराण आदि निर्मित हुए हैं, सब ब्राह्मणों ने किया। उन्होंने ही अनेक प्रकार के पंच और पूजा आदि का प्रचार किया। कबीर ने इन सभी की अवहकना की तथा ऐसे ब्राम्हण इन्पर को कमी नहीं माना।^३ कबीर ने इनकी टाकुर-पूजा की आलोचना व्यक्त उग्र रूप में की है। क्योंकि आलोच्यकाल में मूर्ति-पूजा भी राजनैतिक या सामाजिक सभ्य का कारण रही है।

इसी से कबीर अवतारवादी आचारवाद् दोनों की आलोचना करते हुए कहते हैं—सबके जल और पवन एक हैं, किन्तु प स्टोम (सगुणोपात्मक) इन्हें अलग मान कर भोजन करते हैं तथा शक्तिग्राम को भोग लगाते हैं, और स्वयं चट कर जाते हैं।^४ दानू बैष्णवों और शैवों की मूर्तिपूजा का समान रूप से विरोध करते हुए कहते हैं—मैं उसी देवता की पूजा करता हूँ जो गढ़े हुए नहीं है तथा जिन्होंने गर्भदास नहीं किया, जो बिना जल एवं संयम के बबल माव—भक्ति से प्रसन्न रहते हैं, उसी हरि की सेवा करता हूँ।^५ मन्त

१ सुन्दर जुगह के रामे कीर पावहि हरि भक्तारी।

जिन मी अंतु म पारना ता का किमाधरि भाखि बीचारी ॥

गु० प्र० छा० ५ ४२३ अमरदास जीर शी० सिध रे० जी २ पू० १९३।

२ ब्राम्हन रूप ह्यो बहिराभा। मद्र कीन कीन को कावा ॥

ब्राह्मन ही कीन्दा सब बीरी। ब्राह्मन ही को लखन बीरी ॥

ब्राह्मन कीन्दी ग्रन्थ पुराणा। कैसहु के मोहि मानुष जाना।

एक से मद्र एवं चक्रवाह, एक से भूत जेन मन लावा ॥

३ थोड काहु को बदा न मावा, सुडा कमम कबीर न जाना।

कबीर बीमक पू० ३ रमैनी।

४ एके बदन एक ही बायो, करी रसोई म्बारी जानी।

शाक्तिग्राम निजा हरि पूजा मुकती मोहि मया म दूबा। क० प्र० पू० १४५।

५. मोर देव पूबी के टांकी बहि बहिवा, परबदास नहीं बीनरिजा।

निजा जल संयम सदा सोर देवा, माव मगडि करी हरि सेवा ॥

दादू ४० वा भाग २ पू १२९ पर १११।

तो एक बार अवतरित होकर चले गये तो उन्हें करतार कैसे कहा जाय ? 1

कबीर उस साहब का साहचर्य चाहते हैं जिसने न तो बसरथ के धर अवतार लिया है, न रुक्मभीक्ष को सताया है, न तो देवताओं की योगि में अवतरित हुआ है, न यज्ञोद्वा में उसे गोद में लेकाया है, न स्वास्त्रियों क संग फिरा है, न गोबरथम धारण किया है न बराह होकर बड़ पूब भरती का उदार किया है, न बड़ गडक कर सास्त्रिग्राम है, न इमने मत्स्य या कूर्म होकर पथ में भ्रमण किया है, न बन्नीनाथ में तप किया है, न परशुराम के रूप में बधियों का वधित किया है न हारिकामें उसने शरीर त्यागा, न तो जगन्नाथपुरी में उसका पिंड रखा गया है। कबीर के विचारानुसार व उसक आशोपित रूप है। 2 एवम कहते हैं—कृष्ण ने गोबरथम धारण किया और हनुमान ने द्रोणगिरि को और शेष में सृष्टिको धारण कर रखा है, तो फिर किमको जगवान कह्य जाय ? 3 गुह्यनामक क कथनानुसार अवतारों ने भी उसी प्रकार बड़ भोगा है, जिस प्रकार साधारण मनुष्य राम के चलते परशुराम को रोना पड़ा और सीता क सिपु राम 4 रावण को मार कर और अभूत मय कर क्या अवतार ईश्वर से भी बड़े हो गय ? 5 अतः अवतारों के नाम से ईश्वर की पूजा करने से ईश्वर की महिमा नहीं बढती है। 6 अतः न तो कोई पिता है न माता न भाई। 7 पुनः गुह्यनामक ने कृष्णावतार की अविद्यता बतलाते हुये कृष्ण और गोपी समी को साधारण मनुष्य क सदस काल कथित कहा है। 8

१ परशुराम जब रामचन्द्र हुए थे वैदिकी बार।

तो एवम वे वैदिकी करि को कथिने करतार व

एवम जो की बानी वृ १२४ तावी १६ और सर्वथी वृ० ४२ तावी २६।

२. क प्र० वृ० २४६ संभवतः नामोवाक्य तप को परम्परा से मुक्ति-प्रकरण का संबंध होने के कारण कबीर ने इनका बर्ण कठोर नहीं किया है।

३ गोबरथम धारण कृष्ण, द्रोणगिरि हनुमान।

शेष सृष्टि फिर पर बरी को कथिने भाषन व

एवम जो की बानी वृ १२१ ता० ५, ६।

४ की सिद्ध ऐकिकम वैदिकिक, जो १ वृ० २६८।

५. की सिद्ध ऐकिकम वैदिकिक, जो० १ वृ २०५।

६ की सिद्ध ऐकिकम वैदिकिक, जो १ वृ० २४६।

७. की सिद्ध ऐकिकम वैदिकिक, जो १ वृ० २६२।

८ बधिमा समे गोपीना बहर कथ्य गेवाक।

बहने वन्नु बानी वैसंगक बन्नु मूरजु अवतार व

सम्पत्ती बरती मात्र वन्नु बरतनि सरव बंगक।

नामक हुसे विमान विहारी धार परना अवतार व

पु० प्र० ता० वृ ४६५, नामक।

गुरु अमरदास का कथन है कि पुग-पुग में तुम्हारे द्वारा जितने अवतारों की सृष्टि हुई व तुम्हारे अवतार के रूप में गाये जाते हैं। परन्तु व भी तुम्हारा अंत नहीं पा सकते।^१ कबीर ने उस काल के पाण्डवी एवं अवतारवादी और अधविद्यामी ब्राह्मणों पर कटु प्रहार करते हुए अवतारों में मास्य ब्राह्मणों से विचित्र संबन्ध जोड़ा है। उनका कममानुसार ब्राह्मण सर्वत्र झूठी एवं पातली रहें हैं। काम के रूप में उन्होंने बलि से कुछ कृपा तथा सर्वत्र उन्होंने अनेक आपत्तिजनक काय किये।^२ जितने ग्रन्थ, पुराण आदि निर्मित हुए हैं, सब ब्राह्मणों ने किया। उन्होंने ही अनेक प्रकार के पप और पूजा आदि का प्रचार किया। कबीर ने इन ममी की अवदलना की तथा ऐसे आत्मक ईश्वर को कभी नहीं माना।^३ कबीर ने इनकी टाकुर-पूजा की आलोचना अधिक उग्र रूप में की है। क्योंकि आलोच्यकाल में मूर्ति-पूजा भी राजनैतिक या सामाजिक संघर्ष का कारण रही है।

इसी से कबीर अवावतार और आचारवाद् दोनों की आलोचना करते हुए कहते हैं—सबक जल और पवन एक हैं, किन्तु व लोग (सगुणोपासक) इन्हें अलग मान कर भाजन करते हैं तथा शालिग्राम को भोग ल्याते हैं, और स्वयं बट कर जाते हैं।^४ दादू बैष्णवों और शैवों की मूर्तिपूजा का समान रूप से विरोध करते हुए कहते हैं—मैं उनी देवता की पूजा करता हूँ जो गये हुए नहीं हैं तथा जिन्होंने गमवास नहीं किया, जो बिना जल एवं मयम के केवल भाव—भक्ति से प्रसन्न रहते हैं, उसी हरि की सेवा करता हूँ।^५ मन्त्र

- १ तुम्हारे पुग-पुग के रात्रि और रात्रि बरि अवतारी।
जिन भी मंत्र व पारभा ता का किनाकरि आदि दीवारी ॥
गु० प्र० सा० ६० ४२३ अमरदास और दो० शिब रे० जी ३ ६० २२३।
- २ दावत रूप इनो बहिराबा। मद्र कीन कीन को बाबा ॥
साइन ही कीन्हा लन श्रीरी। साइन ही को लाण्ड कोरी ॥
साइन कीन्ही प्रम्य पुराणा, केसडु के मोरि मातुब बाबा।
एक से मद्र पंथ बकाया, एक से भूत देव मन बका ॥
- ३ श्रेष्ठ दादु को कहां न माना, छटा कमल कबीर न बना।
कबीर कीकट ६ १ मंत्र ३।
- ४ एके पवन एक ही पानी, कही रसोई म्पारी बाबी।

साक्षिराम मित्रा की पूजा, दुल्ही सीदे मया म दूहा। व ई ६३ २६० ॥
५. मोर देव पूजो के टांकी नहि बहिया, दावतपु नरी कौन्हीका।
जिना बल संभन छटा सीर देवा, काव दावत कही इति कैला।
कृ० ६० ६ ३२३ ६० २६३ ॥

सुन्दरदास के अनुसार 'सर्व सुखदाई' ईश्वर का कोई ध्यान नहीं करता। सभी सिख, ब्रह्मा भीर विष्णु के अवतारों तथा अन्य देवी-देवताओं में उलझे हुए हैं।^१

पौराणिक अवतारवाद एवं बहुदेवतावाद के प्रति सन्तों की सामान्य विप्रतिपत्ति यह रही है कि देवता या अवतार स्पृह या शरीरी रूप में चमिक तथा काक के सिद्धांत हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, एवं दशावतार आदि कोई भी कालातीत या मृत्यु से परे नहीं है। केवल निराकार परमात्मा ही अपवाद-स्वरूप है, जिस पर काक का कोई प्रभाव नहीं है।^२ रामानन्द की रचना में भी बीबीस अवतारों को नकार कहा गया है।^३ राजब के अनुसार कोई दस अवतार कहता है और कोई बीबीस अवतार परन्तु राजब इन सभी के स्वामी का स्मरण करते हैं।^४

मत्स्यकाव्य में दशावतारों के अस्तित्व में ही सन्देह प्रकट किया है^५ तथा वेतावनी बेंते हुए कहा है कि दशावतारों को देव कर मत भूजो, इन प्रकार के रूप अनेकों हैं।^६ कपीर साहित्य में इन्हें निरञ्जन का रूप बतलाते हुए कहा गया है कि इन अवतार निरञ्जन के रूप हैं जिन्हें अपनी करनी का कल भोगना पड़ा; इनका कर्त्ता तो कोई और ही है।^७ राजब ने इनका अनुमोदन करते हुए कहा है कि सभी अवतार अपना स्वरूप छोड़ कर निरञ्जन-रूप

१. ताहि न यह जाग्यावर्ष जाते सब सुख आयन्द होर रे ।

आन देवकी ध्यावते, सुख नहीं पावे और रे ॥

कोई सिख मया बने रे, कोई विष्णु अवतार ।

कोई देवी देवता रंदा, बरह रही सतार ॥

सु० प्र माग २५० ८१५ ।

२. विष्णु ब्रह्मा देव ईश्वर, सो न बिर भार । देव दास्य इन्ह केन, नवे विनसार ॥
कहत बह अवतार जग में, औरते आई । कल तेऊ शक्ति बने बस नहींकार ॥

सु० प्र माग २५० ८१८ पद १ ।

३. न तहाँ ब्रह्मा रचो निरञ्जन न तहाँ बीबीसु बर बरन ।

रामानन्द की हिंदी रचनाएँ पृ ८ पद १ ।

४. एक करै भोगार दस एक करै चोरीन ।

रजब छविरे लो बनी को तवरी के लीन ॥

रजब जी की बानी पृ ११८, ११९ ।

५. दस औतार करौ ते जाये । किन रे नरे कलार । मत्स्यकाव्य की बानी पृ० १५ ।

६. दस औतार देखि मन भूषे ऐसे रूप बनेरे ।

मत्स्यकाव्य की बानी पृ १६ पद १ ।

७. दस अवतार निरञ्जन कहिये, लो अपना न कोई ।

यह तो अवधी करनी भोगे, बनी और ही कोई ॥ सु० वचनावली पृ ११ ।

हो गय इमकिये पंडित रोग निगुण तत्व 'सोड' की उपासना करते हैं।^१ 'कबीर बीरक क सगुहीठ पदों में वृत्तावतारों पर ध्याप करत हुए कहा गया है कि ब्रह्मा, शिव, कृष्ण और वृत्तावतार सभी मर गय।^२ इन अवतारों द्वारा किये गय सनी काय मायाजनित है।^३ ईश्वर तो बाल से पर है वह न तो कहीं आता है न जाता है।^४ न तो वह कभी मत्स्य और कूर्म हुआ न उसने शकामुर का सहार किया।^५ वह न तो कभी ब्राह्म हुआ न उसने कभी पूष्पी का मार घारण किया।^६ हिरण्यकशिपु का उदर नख से विदीर्ण करने बाका कर्षा नहीं हो सकता।^७ रामन होकर उसने बलि की परीक्षा नहीं की थी। यह सब तो माया ने किया।^८ परशुराम-रूप में माया ने ही चित्रियों को मारा।^९ ईश्वर ने न तो सीता से विवाह किया न पण्डरों का पुठ बाँचा।^{१०} न कमीशोकुल आया न कस को मारा।^{११} वह न तो कभी बौद्ध कहा गया और न उसने जमुनों का संहारा।^{१२} न कछकी हुआ न उसने कलि का नाश किया।^{१३} अतः वृत्तावतार ईश्वर की माया है।^{१४} यह सब झूठबल माया ही किया करती है।^{१५} इस प्रकार सन्तों के अनुसार प्रायः सभी अवतार माघारण मनुष्य के समान ही जन्म कम और मृत्यु के मोक्ष हैं। इन्होंने मगुण रूपों में प्रायः उनकी नित्य हीकार्यों और नित्य स्थूल रूपों का विनाश रूप से खत्म किया

१ सब औतार बाधर तत्रि, मये निर्जन रूप।

सौह सेवे बंकिगडु निर्युम तत्र अनूर।।रध्व बी को बानी ५ १५ साकी १२।

२ मरि गये ब्रह्मा क्यसी के बसी, सीव सदिग सुये जदिनासी।

मपुरा मरिमौ कृष्ण गुबारा मरि मरि गये दसी औतारा ७ कबीर बी ५ २८।

३ संश्रे आये आव सो मावा।

कबीर बीरक ५ ११ पर ८।

४ ई प्रतिपाक बाल नही बाके ना कहुँ गया न भावा। क० बी ५० १२ पर ८।

५ क्या मरुसुर मरु कष होम, संका सुर न सषारा। क० बी ५० १२ पर ८।

६ वे करता नहि माह कहाये बरनि बरी न मारा। बही ५० १२ पर ८।

७ हरिनाकुल बखसोइ विहारी सो नहि करता होरें। बही ५ १२ पर ८।

८ बाबक कब बलि को बाँचो को बाँचो सो मया। बही ५० १२ पर ८।

९ बरतराम कधी नहि मारा ई धरु माने कोन्हा। बही ५ १२ पर ८।

१० सिरजन द्वार न आही सीउ, बल पवान नहि बाँचा। बही ५० १२ पर ८।

११ योयो पाल न योकुल आवा करतै बँस न मारा। बही ५० १८ पर ८।

१२ वे करना मरि बीच कषाओ नहि अहर संहारा। बही ५० १२ पर ८।

१३ वे करना नही अप बलंधी नहि कलिहि मरि मारा। बही ५ १२ पर ८।

१४ दस औतार ईतरी मावा करता के दिन हुआ। बही ५० १२ पर ८।

१५ इ धरु बक सब माये कोन्हा अती सती समयारा। क० बी० ५० १२ पर ८।

है। अधिक से अधिक मन्त्रों से उनी जन्मत् पुरुष का मन्त्र पढ़ स्रोता मात्र तक उनका रूप माना है।^१

इस प्रकार सन्त-साहित्य में अवतारवाद के जिस रूप की जाहोशबा हुई है वह है—विष्णु के अवतारों के रूप में मनुष्य-वित्त की पूजा तथा उसमें ईश्वरवादी तत्त्वों का समावेश। जहाँ तक मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध है, मानव-रूप को भी व उतना ही मायात्मक मानते हैं, जितना अन्य मनुष्यों के रूप को। राम और कृष्ण उनकी दृष्टि में ईश्वर के पूब रूप नहीं थे।

उनकी यह जाहोशबा उम युग में प्रचलित उनके रूपों को देखते हुए अनुचित नहीं जान पड़ती। क्योंकि मध्यकाल में राम और कृष्ण तथा विष्णु के अन्य अवतारों के विच रूपों का प्रचार था, व रूप मानवीय न होकर कार्य दिव्य और ईश्वरीय समझे जाने लगे थे। जिसका फल यह हुआ या कि अवतारों की उपासना के नाम पर अनेक प्रकार के धार्मिक आडम्बर बढ़ते जा रहे थे।

यों इष्टदेववाद की दृष्टि से जकेश्वरवादी होते हुए भी दिव्य, इन्कामी जकेश्वरवाद को पूजा की दृष्टि से देखते थे। परन्तु समन्वयवादी सत्तों ने दिव्युओं और मुमल्लामों के उपास्यों के पूबीकरण का अपूतपूर्व प्रयत्न किया। उन्होंने मुमल्लामों की तुल परन्त विरोधी भावना को ध्यान में रख कर एक ओर तो तन्काकीन अवतारवाद के अन्यविधाओं का गणन किया और दूसरी ओर विष्णु के ही जकेश्वरवादी निराकार रूप का उपास्य-रूप में प्रवर्तन किया।

इस उपास्य-रूप की विशेषता यह जान पड़ती है कि यह निराकार होते हुए भी मन्त्र-बन्धन है। इसमें कर्मा और कृपा साकार उपास्य जैसी है। किन्तु जिन्होंने इसका नाम से प्रचलित विविध अवतारों को साक्ष्य माना है व साक्ष्य न होकर साधक और जन्म रहे हैं।

युगावतार परम्परा

मध्यकालीन योगी, बैरागी वच मत्त-मग्नहायों में स्पष्ट एक विविध युगा-वतार-परम्परा का इरादा होता है। अपने मग्नहायों की सम्मचना सेहना निम्न

१ कवीर की ५ ५९ पर ८९।

सकल बीजार काई नदि संकल जनेन पदा कर बोरे।

करने के लिये उनमें अपने सम्प्रदायों को किसी प्राचीन परम्परा से सम्बद्ध करना मानों आवश्यक सा हो गया था।

सगुण भक्ति सम्प्रदायों में जिन परंपराओं का आचार लिया गया है उनमें उक्त सम्प्रदायों के सटस पुगानुबद्ध करने की प्रवृत्ति दृष्टित नहीं होती।

अतएव विष्णु के अवतारों तथा सगुण भक्ति में मान्य परंपराओं के अतिरिक्त इस पुगावतार के स्वतन्त्र विकसत का अनुमान किया जा सकता है।

सर्वप्रथम सत्ययुग में लेकर कल्पियुग तक प्रत्येक युग में प्रत्येक अवतार का उल्लेख 'विष्णुपुराण' में मिलता है।^१ इसके पूर्व 'ब्रह्मोम्बोपनिषद्' में आत्मज्ञान की एक परंपरा का उल्लेख हुआ है, जिसमें क्रमशः ब्रह्मा, प्रजापति, मनु और प्रजावर्ग चार नाम आये हैं।^२ तथा 'गीता' के चौथे अध्याय में कर्मयोग की परंपरा का वर्णन करते हुए भी क्रमशः भगवान, सृज्य मनु और ब्रह्मा के रूप में केवल चार ही नाम आये हैं।^३ परंतु 'ब्रह्मसंहिता' एवं 'गीता' दोनों की उपर्युक्त परंपराओं में पुग और अवतार का कोई सम्बन्ध दृष्टिगत नहीं होता। इस आचार पर यही अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः उस काळ तक पुग और अवतार दोनों की कल्पनाओं को टोम रूप नहीं दिया गया था।

इसके अतिरिक्त 'महाभारत' में उल्लिखित पांचरात्रों के चतुर्भुज रूप भी पुगावतारों के सटस एक दूसरे से उत्पन्न कहे गये हैं।^४ परंतु इनमें पुगानुबद्ध सम्बन्ध का अभाव है। 'महाभारत नारायणीयोपनिषत्' में सर्वप्रथम चार आदिर्भावों का उल्लेख हुआ है। जिनमें कहा गया है, कि सनातन नारायण ने चार मूर्तियों वाले धर्म-पुत्र-रूप में जन्म लिया था। पहले कृतयुग स्वायम्भुव मन्वन्तर में नर-नारायण, हरि और स्वायम्भुव कृष्ण हुए थे।^५ यहाँ उक्त रूपों के अवतारोचित आदिर्भाव तथा पुग से उनके सम्बन्ध का ज्ञान होता है। किन्तु केवल कृतयुग का ही उल्लेख होने के कारण पुगानुरूप धर्म या किसी परंपरा का स्पष्टीकरण नहीं होता है।

१ विष्णुपुराण १ १, ५४-५८।

२ छा ३० ८, १५, १।

३ गीता ४ १-१।

४ उद्दि संकल्पः प्रोक्तः प्रथमं सोऽप्यव्योचत ।

प्रथमादिनिस्त्रोऽहं सर्वा मम पुत्र पुत्रः ॥

महा १२ ४१५, ७१।

५ नारायणो हि विश्वतया चतुर्भुजाः सनातनः ।

धर्मात्मनः सम्भूतः पितृर्बभूव भावद् ॥

कृते पुगे महाराज पुरा स्वर्गमुद्भवन्तरे ।

नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णः स्वर्गपुत्रः ॥

महा० ११ ४१४, ८-९।

'गीता' में अवतारवाद के प्रयोजन के क्रम में कहा गया है कि साधुओं का परित्राण, दुष्टों का विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिए मैं पुनः-पुनः जन्म लेता हूँ ।^१ हम कथन में साधु, धर्म और पुनः पुनः हीनों का समन्वित रूप उचित होता है। समग्र है इस पुनः-पुनः-परंपरा का विकास 'समन्वित पुनः पुनः की अनुकृति में हुआ हो क्योंकि इसमें प्रयुक्त 'धर्म' सत्य भी काष्ठान्तर में सम्प्रदाय या मत का पर्यायवाची हो गया था।

'गीता' की अपेक्षा 'विष्णुपुराण' में पुनः-पुनः की परंपरा स्पष्ट की गई है। 'विष्णुपुराण' के अनुसार समस्त प्राणियों के कल्याण में तत्पर सबभूतात्मा विष्णु सत्ययुग में कपिल का रूप धारण कर परमज्ञान का उपदेश देते हैं^२; त्रेता में षष्ठवर्ती राजा होकर दुष्टों का दमन करते हैं^३; द्वापर में बह्म्यास के रूप में अवतीर्ण होकर बन्धुविनाश एवं उसका विस्तार करते हैं^४ तथा कलियुग में ककिक-रूप धारण कर स्वर्गों को सम्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं ।^५ उपर्युक्त उदाहरणों में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि में क्रमशः कपिल षष्ठवर्ती (समन्वित राम), बह्म्यास और ककिक चर्तों को पुनःपुनः बताया गया है।

'भागवत' में एक ही नारायण या विष्णु के प्रत्येक युग में पृथक्-पृथक् रूप माने गए हैं जो क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में रूप एवं रंग भेद से शुक्ल, रक्त, श्याम और कृष्ण माने गए हैं ।^६ 'कथुभागवतामृत' में हम ही पुनः-पुनः के रूप में ग्रहण किया गया है ।^७ किन्तु भागवत की इस परंपरा का संबंध मंत्रों की परंपरा की अपेक्षा, अर्थात् विग्रहों से अधिक सम्बद्ध जान पड़ता है। क्योंकि साधारणतः इसमें अर्थात् मूर्तियों के ही प्रत्येक युग के विभिन्न रूपों का बलन हुआ है।

पूर्व मध्यकालीन मंदिराओं में प्रचलित पांचरात्रों के व्यूहात्मक स्तुति-मूर्तियों में प्रथम बामुद्भ को इहद्भ मानकर अन्य तीन मकपण प्रयुक्त और अविद्भ क्रमशः पांचरात्र मिश्रण के उपदेशक, मार्ग-क्रिया के शिक्षक और मोक्ष रहस्य के निर्देशक माने गए हैं ।^८ किन्तु पुनः-पुनः के मन्त्र का इसमें कोई

१ परित्राण साधुना विनाशक च दुष्कृतान् ।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवद्वि पुनः पुनः ॥

गीता ४ ८ ।

२ विष्णु पुराण ३ २ ५५ ।

३ वि० पु ३, २ ५६ ।

४ वि० पु० ३, २ ५७ ।

५. वि० पु० ३ २ ५८ ।

६ भा० पु ११ ५ २०-२२ ।

७. क० भा० ५ ७९ ।

८. अरि० सं ५, २१-२४ ।

संकेत नहीं मिलता। इस व्यूहात्मक परंपरा का विशेष प्रचार सगुण संप्रदायों में ही अधिक हुआ।

इसके अतिरिक्त सन्तों के पूर्व प्रायः-साहित्य में कौल-ज्ञान अवतरित करने के निमित्त प्रत्येक युगों के विभिन्न सिद्ध कौलों की परंपरा का उल्लेख हुआ है। 'कौम-ज्ञान निर्णय' के अनुसार चैरब सिब चारों युगों में कौल-ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के निमित्त सत्ययुग में स्वयं तथा त्रेता द्वारा और कलियुग में क्रमशः महाकौल, सिद्धकौल और मत्स्योद्धार कौल के रूप में आविर्भूत हुए। इन चारों ने क्रमशः अपने युगों में कौल-ज्ञान, महाकौल, सिद्धावृत्त और मत्स्योद्धार कौल के नाम से अभिहित ज्ञान का प्रचार किया।^१

कहा जाता है कि तेरहवीं या चौदहवीं शती के अन्तर्गत आविर्भूत महाराष्ट्र के महाभुम्भार पथ के मान्य ग्रन्थ 'सिद्धान्त-सूत्र-पाठ' में उस सम्प्रदाय में प्रचलित चतुर्युगी अवतार का उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार हृतयुग त्रेता द्वारा और कलियुग में क्रमशः हंस वृत्ताश्रय, कृष्ण और चक्रधर प्रत्येक युग के अवतार माने गये हैं।^२

इसी प्रकार श्री परंपरा सन्त-सम्प्रदाय एवं साहित्य में भी व्याप्त उचित होती है। कबीर-यथ में स्वयं कबीर ने इस प्रकार श्री किसी परंपरा का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु उनका सिष्य धर्मदास ने चतुर्युगी अवतार परंपरा का विस्तृत वर्णन अपनी रचनाओं में किया है।

धर्मदास के अनुसार सत्ययुग में 'सत्', त्रेता में 'मदर', द्वारा में 'कल्याणमय' और कलियुग में केवल 'नाम' का अवतार माना गया है।^३ इसके अतिरिक्त राष्ट्रवासी में अन्य दो स्थलों पर कबीर-यथ के चतुर्युगी अवतारों का वर्णन किया गया है। द्वितीय स्थल पर सत्ययुग, त्रेता द्वारा और कलियुग में

१ महाकौल सिद्ध कौल सिद्धकौल मत्स्योद्धार ।

चतुर्युग विमानेन अवतारोचित मया ॥

पानाशो निर्णीतः कौलं त्रितीये मह्यं संहितम् ।

एतौ सिद्धावृत्तनाम कौलं मत्स्योद्धारं प्रिये ॥

श्री या नि पृ ३१, ३२, ४७-४८ ।

२ महावत सम्प्रदाय पृ० ५६२ ।

३ आरति सो भूमी पय चारे । सत्ययुग में सत् शब्द चकारे ॥

आरति सो जग मगरे चार । त्रेता में मदर नाम चकारे ॥

आरति सो सुत मंगल गावे । द्वारा करनामय चकारे ॥

आरति सो जग बंधी आता । कलियुग केवल नाम प्रकाशा ॥

चारों युगपर प्रवट सरीरा । भारत माने धर्मदास कबीरा ॥

धर्मदास जी की राष्ट्रवासी पृ० १८ शब्द ६ ।

कलियुग में प्रथमः 'अर्चित', 'मुनीन्द्र', 'करुणामय' और 'कबीर' नाम आये हैं।^१ प्रायः यही नाम तृतीय स्थल^२ या अम्य^३ कबीर परी साहित्य में भी प्रचलित हैं। केवल मध्ययुग के आदिमूर्त भक्तार के नाम प्रायः 'अर्चित'^४ 'सत्त',^५ तथा 'सत्त मुहूर्त'^६ कहे गये हैं। परवर्ती रचनाओं में उपयुक्त नाम 'सत्तनाम', 'सत्तमुहूर्त' आदि 'असली', 'अजर', 'अर्चित पुरुष', 'मुनीन्द्र', 'करुणामय', 'कबीर' प्रकृति प्रचलित हैं।^७ उक्त नामों में 'मुहूर्त' का उल्लेख 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में हुआ है। वहाँ कहा गया है कि जन्म से सत्तरूप में उसने अपने को प्रकट किया इसलिये 'मुहूर्त' कहा जाता है।^८

'मुहूर्त' के अतिरिक्त कबीर के 'मुनीन्द्र' और 'करुणामय' नाम से प्रसिद्ध प्रथम-प्रता और द्वार के भक्तारों का नाम विष्णु के प्रसिद्ध भक्तार राम और कृष्ण से ही सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'अनुराग सागर' में 'मुनीन्द्र' विशेषकर राम के ही मुनिवेश का धाम है। क्योंकि राम और महोदरी से इनके मेट की शर्मा हुई है।^९ परन्तु एक विशिष्ट बात यह देखने में आती है कि सिद्ध और धर्म ठाकुर सम्प्रदायों के नाम से विख्यात उत्तर-बीड़कालीन सम्प्रदायों में 'मुनीन्द्र' नाम का विशेष प्रचार रहा है। विशेषकर पूर्वी-भारत में प्रचलित 'धर्म ठाकुर सम्प्रदाय' में विष्णु तथा अम्य भक्तारों से सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही। जहाँ 'मुनीन्द्र' का प्रचार तो हुआ बीड़ सम्प्रदायों में और कालांतर में इसका सम्बन्ध वैष्णव भक्तारों से भी स्थापित किया गया। सम्भवतः धर्मदास ने इस रूप को सयुक्त रूप में उन्हीं सम्प्रदायों से ग्रहण किया।

'करुणामय' का पर्यायवाची नाम 'करुणानिधि' का प्रयोग धर्मदास ने कृष्ण के लिये किया है।^{१०}

१ सनतुग नाम अर्चित कहाये छेइत ईस की दरं सरना ।

मेना नाम मुनीन्द्र कहाये अनुकर दिव की दरं सरना ॥

इतर करुणामय कहाये, रसुयनी के दुय्य सरना ।

कलियुग नाम कबीर कहाये धर्मदास अनुनि सरना ॥

धर्मदास की की प्रथावली पृ० ६८ पृष्ठ ३ ।

२ धर्मदास की की प्रथावली पृ ७८ । ३ अनुराग सागर पृ ७३ पृ २१५ ।

४ धर्मदास की प्रथावली पृ ६८ । ५ धर्मदास की की प्र० पृ २८ ।

६ धर्मदास की की प्र० पृ ७८ तब तब मुहूर्त रोगी ।

७ बड़ा संगीत शोध पृ ४ ।

८ वे ४० मध्याह्नक पृ ७, १ तत्प्राप्तपुस्तक सुधन पृ ७ ।

९ अनुराग सागर पृ ७९ । १० धर्मदास प्रथावली पृ ७५ और पृ १८१ ।

डा० धर्मेश्वर ब्रह्मचारी के अनुसार कबीर पद्य की परंपरा में माध्य परवर्ती सत कवि हरिया ने 'ज्ञानदीपक' नामक रचना में कबीर के सुकृत मुनीन्द्र, कल्याणमय आदि अवतारों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।^१ इनके मतानुसार वे अवतार सत्तनाम की भाष्या बड़ाने और सतों एवं आरमाओं के उच्चार के निमित्त हुए थे। इससे निष्कर्षता यह अनुमान किया जा सकता है कि कबीर से सम्बन्ध सोचते समय पद्यों में भी कबीर के अवतारों की परंपरा माध्य थी।^२

कबीर पद्य के अतिरिक्त 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में भी नामक पद्य से सम्बन्ध अनुपूर्वी अवतार की परंपरा का वर्णन हुआ है। यहाँ विष्णु के अवतारों से इसका संबंध स्थापित किया गया है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में उपलब्ध पद्यों के अनुसार वे सतयुग में बलि को ब्रह्म के छिये ब्रह्मण हुए। त्रेता में रघुवर्षी राम के नाम से प्रसिद्ध हुए। द्वापर में कृष्ण मुरारी ने कंस को हतार्थ किया तथा अग्रसेन को राज्य और मर्त्यों को ब्रह्मण प्रदान किया। कलियुग में प्रमानानुसार वे गुहमानक, गुह अंगद और गुह अमरवास के रूप में विख्यात हुए।^३

काळाम्तर में सिद्ध संप्रदाय की परवर्ती रचनाओं में इससे गुरु गोबिंद सिंह के साथ इसी प्रकार की एक परंपरा का सम्बन्ध जोड़ा गया है, जिसमें चारों युगों के अवतार क्रमशः परशुराम, राम, कृष्ण और गुरु गोबिंद सिंह बतलाये गये हैं।^४

सत संप्रदायों के अतिरिक्त साथ संप्रदाय में चारों युगों में साधुओं का सामान्य अवतार तथा कलियुग में पूर्णावतार माना गया है।^५ साथ ही सतयुग में गार्गी-परमेश्वर, त्रेता में रामचन्द्र-सुभ्रमण, द्वापर में कृष्ण-बलमज और कलियुग में बीरमान-ओगीदास अवतार कहे गये हैं।^६ इस प्रकार सतों में

१ सत कवि हरिया एक अनुदीपन पृ० १४-१५।

२ सत कवि हरिया एक अनुदीपन पृ० १५।

३ सतियुग में माणिको छिबोशकि बाबनमारभो।

तरे ते माणिको राम रघुवंश कहरभो॥

दुम्परि कृष्ण मुरारि कंसकिरतारभु कीभो।

अग्रसेन कड रामु अने भगवद बन ही भो॥

कलियुगि प्रमानु नामक गुरु अंगद अमर कहराजा। गु० प्र० सा० पृ० ११९, ७।

४ पूर्व संप्रदाय पद्य ५, अनु ५१।

५ ही साम्प्र पृ० ८ और ५०।

६ ही साम्प्र १-७।

कल्पियुग में क्रमशः 'अक्षित', 'मुनीन्द्र', 'कल्याण' और 'कबीर' नाम आये हैं।^१ प्रायः यही नाम तृतीय स्वर्ग^२ या अम्य^३ कबीर पंथी साहित्य में भी प्रचलित हैं। केवल सत्ययुग के आदिभूत अवतार के नाम प्रायः 'अक्षित'^४ 'सत्',^५ तथा 'सत्त सुकृत'^६ कहे गये हैं। परबर्ती रचनाओं में उपर्युक्त नाम 'सत्तनाम', 'सत्सुकृत' आदि 'असली', 'जबर', 'अक्षित पुत्र', 'मुनीन्द्र', 'कल्याण', 'कबीर' प्रकृति प्रचलित हैं।^७ उक्त नामों में 'सुकृत' का उल्लेख 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में हुआ है। यहाँ कहा गया है कि अम्य से सत्तरूप में उमने अपने को प्रकट किया इसलिये 'सुकृत' कहा जाता है।^८

'सुकृत' के अतिरिक्त कबीर के 'मुनीन्द्र' और 'कल्याण' नाम से प्रसिद्ध क्रमशः शैला और हापर के अवतारों का नाम विष्णु के प्रसिद्ध अवतार राम और कृष्ण से ही सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'अनुराग सागर' में 'मुनीन्द्र' विशेषकर राम के ही मुनिवेश का नाम है। क्योंकि शायद भीरु महोदरी से इनके मंत्र की खर्चा हुई है।^९ परन्तु एक विचित्र बात यह देखने में आती है कि सिद्ध और धर्म ठाकुर सम्प्रदायों के नाम से विख्यात उत्तर बीड़कालीन सम्प्रदायों में 'मुनीन्द्र' नाम का विशेष प्रचार रहा है। विशेषकर पूर्वी-भारत में प्रचलित 'धर्म ठाकुर सम्प्रदाय' में विष्णु तथा अम्य अवतारों से सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही। अतः 'मुनीन्द्र' का प्रचार तो हुआ बीड़ सम्प्रदायों में और कालान्तर में इसका सम्बन्ध विष्णव अवतारों से भी स्थापित किया गया। सम्भवतः धर्मदास ने इस रूप को सयुक्त रूप में उन्हीं सम्प्रदायों से ग्रहण किया।

'कल्याण' का पर्यायवाची नाम 'कल्याणिक' का प्रयोग धर्मदास ने कृष्ण के लिये किया है।^{१०}

१ कल्पियुग नाम अक्षित कहाये लोड्डत इंस की दर सत्ता ।

शैला नाम मुनीन्द्र कहाये मनुकर विष की दर सत्ता ॥

हापर कल्याण कहकाने इन्द्रमणी के हुम्न हरना ।

कल्पियुग नाम कबीर कहाये धर्मदास कल्पति करना ॥

धर्मदास जी की शंशावली पृ० ६८ पं० ३ ।

२ धर्मदास जी की शंशावली पृ० ७८ । ३ अनुराग सागर पृ० ७१ पृ० ११५ ।

४ धर्मदास जी की शंशावली पृ० ६८ । ५ धर्मदास जी की शंशावली पृ० ६८ ।

६ धर्मदास जी की शंशावली पृ० ७८ पं० ६५, सत्त सुकृत दोनों ।

७ ददा संगीत बीज पृ० ४ ।

८ शं० ७० कल्याण कहकाने ७, १ परमात्मसुकृत सुम्बत इति ।

९ अनुराग सागर पृ० ७९ । १० धर्मदास शंशावली पृ० ७५ और पृ० १८१ ।

डा० धर्मेश्वर ब्रह्मचारी के अनुसार कबीर पद्य की परंपरा में माग्य परबर्ती संत कवि हरिया ने 'शामश्रीपक' नामक रचना में कबीर क मुह्यन, मुनीन्द्र कल्याणमय आदि अवतारों का विस्तार पूर्वक बयान किया है।^१ इनके मतानुसार ये अवतार सत्तनाम की आस्था बढ़ाने और सत्तो एवं आत्माओं के उद्धार के निमित्त हुए थे। इससे निष्कर्षतः यह अनुमान किया जा सकता है कि कबीर से सम्बद्ध सोलह नाम्य पद्यों में भी कबीर के अवतारों की परंपरा माग्य थी।^२

कबीर पद्य के अतिरिक्त 'गुरु प्रथ साहित्य' में भी नामक पंथ से सम्बद्ध अनुसृंगी अवतार की परंपरा का बयान हुआ है। यहाँ विष्णु के अवतारों से इसका मूल्य स्थापित किया गया है। 'गुरु प्रथ साहित्य' में उपलब्ध पद्यों के अनुसार वे सतयुग में बलि को हलधे के दिये बन्धन हुए। जेता में रघुबीर राम के नाम से प्रसिद्ध हुए। ज्ञापन में कृष्ण-सुरारी के बंधन का हतार्थ किया तथा जमसन को राज्य और मच्छों को जमान प्रदान किया। कलिभुग में प्रमाणासुसार वे गुरुबानक गुरु अंगद और गुरु धर्मराज के रूप में विख्यात हुए।^३

कात्यायन में सिद्ध संप्रदाय की परबर्ती रचनाओं में इसमें गुरु गौबिंद सिंह के साथ इसी प्रकार की एक परंपरा का सम्बन्ध बोझा गया है; जिसमें चारों युगों के अवतार क्रमशः परशुराम, राम, कृष्ण और गुरु गौबिंद सिंह बतकाये गये हैं।^४

उक्त संप्रदायों के अतिरिक्त याच संप्रदाय में चारों युगों में माधुओं का सम्मान्य अवतार तथा कलिभुग में पूर्वावतार माना गया है।^५ माघ ही सतयुग में गौबिंद-परमेश्वर जेता में रामचन्द्र-कल्याण, ज्ञापन में कृष्ण-बलभद्र और कलिभुग में बीरमान-योगीश्वर अवतार कहे गये हैं।^६ इस प्रकार यहाँ में

१. संत कवि हरिया एक अनुसृंगी २० १४-१५।

२. संत कवि हरिया एक अनुसृंगी २ १५।

३. सतिभुषि से काशीको सकिभोटीक बाबभारको।

४. ४. याचिनी राम रघुवंश बहारको ३।

५. उपरि कृष्ण सुरारि कसकिरदारहु श्रीको।

६. जमसेन कर राजु जये मगदु जम ही को ३।

कलिभुषि प्रबालु मानक गुरु अंगद जमक बहारका। गु० प्र० ७। २० १३०, १३१।

५ पूर्व प्रकाश अहु ५, अंशु ५१।

६. श्री साग्य २० ८ ६१/ ७०।

६. श्री साग्य २-७।

विष्णु के पाणिज के जयतारों से सम्बद्ध विक्रमण सम्प्रदायिक जयतार परंपराओं का प्रचार विदित होता है।

जयतार इन्हीं संदेह नहीं कि संतों ने प्रायः जयतारवाद का नूतन किया है, परन्तु नूतन के अतिरिक्त उनमें अनेक जयतारवादी मूर्तियों का समावेश भी मिलता है। जिनका उल्लेख यथासक्य होता जाया है।

उपर्युक्त आकलन से स्पष्ट है कि संत-साहित्य में युगावतार-परंपरा का विशेष प्रचार हुआ। इस परंपरा के महाभारतकालीन रूप को देखने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि उस युग में भी यह परंपरा संतों और साधकों और माध्यमियों में फैली। उसका उत्तरोत्तर प्रचार सम्भवतः इसी से संतों, योगियों होता है। उसी का उत्तरकालीन रूप संत-साहित्य में लुप्त हो गया।

इस जयतार-परंपरा की विशेषता यह है कि प्रत्येक युग में जिन व्यक्तियों ने अपना लिया उनका मुख्य प्रयोजन ज्ञान, योग, तंत्र मंत्र या अन्य संतो प्रयोगी शास्त्रों का प्रवर्तन करना था।

इसी से इस परंपरा में एक ओर जहाँ योगियों, मंत्रियों और ज्ञानियों का जयतार हाते हैं। वहाँ दूसरी ओर इनके द्वारा अवतरित शास्त्रों को भी शास्त्र-बतार या ज्ञानावतार की संज्ञा प्रदान की गई है। इस प्रकार मंत्रों और उत्तर मध्ययुग तक परिगत होती है।

परन्तु इसका परवर्ती रूप प्राचीन रूप की तुलना में विद्वत् ज्ञानावतार रूप नहीं रहा। उसके साथ यथा सम्भव पौराणिक जयतारों का भी सम्मिश्रण किया गया जो 'गुरु प्रथम साहित्य' में प्रचलित जयतार-परंपरा से स्पष्ट है।

वैष्णव अवतारों के रूप

संत-साहित्य में जयतारों के लक्षण में जो कुछ उल्लेख हुए हैं, इस विधानादिकाल की तुलना में उनका मात्रा अत्यन्त अल्प है। इसका मुख्यतः दो कारण प्रतीत होते हैं। उनमें एक तो है विराटोपासना और दूसरा है मुक्तकालों का प्रयोग। इनकी रचनाओं में विनायक मुक्तकालों का अधिक प्राधान्य होने के कारण महाकाल्य या पौराणिक जयतारों का पूरा पर्व विन्यून बनन नहीं मिलता। फिर भी प्रयोगवादी का उदाहरण स्वरूप उनका विविध रूपों में उल्लेख हुआ है।

नृसिंह

सतों की रचनाओं में नृसिंहावतार या महाद-कथा का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। राम, कृष्ण आदि अवतारों की अपेक्षा नृसिंह-अवतार के अवतार विशेषी रूप कम मिलते हैं। अवतारवाद के कट्टर भावकों ने भी कम से कम नृसिंहावतार का उल्लेख उसके पूर्ववर्ती रूप में किया है।

इस अवतार के इतना उल्लेख का कारण सम्भवतः सतों की नामोपासना प्रतीत होती है। 'विष्णुपुराण' में नृसिंहावतार की जो कथा मिलती है उसमें सतों में मान्य नामोपासना^१, एकेवरवादी निराकार ईश्वर^२ तथा उसके 'सर्वान्तर्पामी' रूप^३ का समावेश हुआ है। समझ है इन्हीं उपादानों के आधार पर इस अवतार को सतों का समर्पण प्राप्त हुआ हो।

कबीर-रचित नृसिंहावतार का एक ही पद मिलता है, जो 'कबीर प्रयागली' और 'गुरु ग्रन्थ साहब' दोनों में न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ संगृहीत है।^४ उस पद में नृसिंह महाद की कथा के साथ नामोपासना का महत्त्व भी दर्शित है।^५ इस पद के अनुसार लम्बे में प्रकट होकर नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार स विद्वीर्य किया।^६ भक्ति भावक कारण उस ईशाधिदेव का प्राकृत्य हुआ।^७ इस प्रकार इन्होंने महाद को अनेक बार उचारा।^८ मामूख ने भी प्रामाणिक रूप से नृसिंहावतार का उल्लेख किया है।^९ इसके अनुसार हिरण्य

१. प्रवासः स्मरौ बोद्धव स्पृगो बन्धति शोभनम् ।
बापबन्ध मरति स्मरतां तमर्निष्ठम् ॥ वि. पु० ७, १७ ७७-७८ ।
२. जनादिमन्थान्तमन्महृद्विज्ञवमभ्युत्तम् ।
मगनीशमन्थसन्तान सर्व कारण कारणम् ॥ वि. पु० १ १७, २५ ।
३. दाल्ता विष्णुश्चैतन् जगतो भो हृदि स्थितः ।
तस्यै परमात्मानं त्वात् न केन छाल्यते ॥ वि० पु० १ १७, २० ।
४. गुरु ग्रन्थ साहित्य से संगृहीत अंश में क० प्र० पृ० २१४ पर ७७५, पृ० १०६-१०७ पर १४२ गु० प्र० सा पृ० ११९४ कबीर ।
५. नदी घाटोरे बजा राम नाम मोहि और पवन सू खैन काम ।
प्रकाद पचारे वरुन साल, संप सजा औये बहुत बाह । क० प्र० २१४ पर १७९ ।
६. धम्मा में प्रपत्यो पिठारि हरमाकत मारुषो मक विशारि ।
क० प्र० १ २१४ पर १७९ ।
७. महापुत्रन देवप्रि देव, नरत्वंज प्रपट किषो मयति मेव ।
क० प्र० पृ० २१४ पर १७९ ।
८. कही कबीर कोरे लई म पार प्रहिकार कबारुषो अनेक बार ।
क० प्र० पृ० २१४ पर १७९ ।
९. हरि हरनाथस हो परान अनेक औषो देकुंठदि धान । गु० प्र० सा ८७४ ।

मध्यकाशीन साहित्य में भवतारयाद

कथिपु को मार कर उन्होंने बेबता और मनुष्यों को सनाप किया।^१ इनके अतिरिक्त सत तुकाराम ने भी अपने पत्नी में कहा है कि बही हमारा साई है जिन्होंने हिरण्यकथिपु को मार दिया था।^२ कुछ अमरदाम ने ईश्वर क भक्त-रक्षण की बर्षा करते हुए उक्त भवतार का उदाहरण दिया है।^३ पुनः एक दूसरे पद में नृसिंह-कथा का विस्तार पूर्वक बजान किया है।^४ उसमें कहा गया है कि बहुकारी दैत को मार कर अपने भक्त को नृसिंह ने महिमाश्रित किया।^५ ब्रह्म प्रकार म्हाद् भक्त की पुकार पर प्रकट होते हैं।^६ मंत दानू ने दो मात्रियों में ब्रह्म भवतार का प्रासंगिक उल्लेख किया है।^७ म्हाद् कीला क नाम से सप्त रैदाम की भी एक रचना मिलती है।^८ उसमें पौराणिक नृसिंहावतार की कथा का ही विसृत वर्णन है। इसमें म्हाद् ने पिता को मार कर नृसिंह म्हाद् को राजतिलक प्रदान करते हैं।^९ ब्रह्म प्रकार नृसिंह भवतार मतों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। पुनः इसमें म्हाद् के नाम से एक अति-विद्यमान विन्ध्य क

१. मगन देवि मारिओ हय्यापुष्ट नरसिंह कप होइ रहि बरिभी। पु० म सा ११ ५।
२. हरिमापुष्ट भिक्ति मकर्ष विहारिओ छरि मर कोप सनाया। पु० म सा० ११६५।
३. हि म सं० दे ५ २११।
४. कहे तुका की साईं हमारा हिरण्यकथप जिन्द मारि बारा।
५. भगजा की सवा दू रजरा हरि कीउ छुरि दू रजरा आरना। पु० म सा ५ ११०।
६. प्रहिलार जम पुनु रामि कप हरि कीउ हय्यापुष्ट मारि बनारना। पु० म सा ५ ११०।
७. पु० म सा ५ ११५४।
८. बगु बगदि हरि बाप दिपारंवा भवदारी दैत मारि बनारना। पु० म सा ५ ११५४।
९. प्रकर के कारिज हरि जानु निपारंवा। जनत का वीनु जमे आरना। पु० म सा ५० ११५४।
१०. कोमनि बदि करतार के, रिजा है भयवर्न।
- निरसंभ सुर अपार है तेज पुन सष मारि। बाहु द वा जा० २५ १ १ सा १६।
- केवल निरंतर नरहरि प्रपट सषै जगवर्त।
- जहां निरहिम पुन वीज वे, उँके काय वमज। बाहु दवाक वा० जा० २५० ७ पर १६०।
८. देवास और जनका काव्य पु० ११५-११८।
९. मध सो उरर विहारिना निरक दिवा मरनाया।
- नतरीज नव रौद्र में लीज लोक नर नाया। देवास और जनका काव्य पु० ११८ पर १०।

जिस सर्वात्मवादी रूप का परिचय मिळता है, वही सतों का निर्गुण-विराकार किमु भक्त-वात्सल्य और सत-मुक्तवाह्य उपास्य रहा है। प्रकृत में उस विराकार या निर्गुण विष्णु की उपासना नाम-कीर्तन या नाम-जप के माध्यम से की थी। सतों ने इसी नामोपासना को ग्रहण किया है। इसीसे नृसिंह जबतार उनके पदों में अधिक चर्चा का विषय रहा है।

इसमें एक विष्कर्ष यह भी निकलता है कि सतों का उपास्य जो निर्गुण विराकार कहा गया है, वह विष्णु का ही एक विधिवत रूप है और सतों में नामोपासना के द्वारा उसकी उपासना का प्रचार हुआ। विष्णु के जबतारी रूपों में नृसिंह का नामोपासना से सम्बन्ध होने के कारण, सतों ने इसे तो अपना किया और सेव उन जबतारों की स्वसात्मक आभ्युत्थान की जो ब्रह्मोप्यकालीन युग में सगुण या जबतारवादी उपास्यों की मूर्ति-रूप में पूजित होते थे।

राम

संत-साहित्य में जिस राम का परिचय मिळता है वे रामानुज राघवानन्द और रामानन्द की परम्परा में कबीर आदि सन्तों द्वारा गृहीत माने जाते हैं। अन्तर्मासी शीर्षक में विचार करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि कबीर आदि सतों ने राम को भी आत्ममहक रूप में ग्रहण किया है।^१ उनके गुरु रामानन्द के नाम से प्रसिद्ध एक रचना 'रामानन्द' में जिस राम के प्राकृत्य का उल्लेख हुआ है, वे भी आत्ममहक राम हैं।^२ सतों में विराकारोपासना के साथ ही नामोपासना का प्रसिद्ध सम्बन्ध रहा है, इसी से दसरत-पुत्र एवं स्वच्छि राम की अपेक्षा^३ राम नाम को अधिक महत्त्व दिया गया।^४

'अध्यात्म रामायण' के राम-रूप में राम के 'आत्ममहक' रूप के 'बुद्धवर्षादिना चेतन' (बुद्धि में व्याप्त) सर्वत्र परिपूर्ण और आत्मस्त (बुद्धि में प्रतिबिम्बित) इन तीन रूपों का परिचय दिया गया है और 'इदं हृदयं हृदयं अमारमनो' कथ्य कर स्पष्टीकरण किया गया है।^५ सतों में राम के जबतारी रूप की अपेक्षा इन्हीं रूपों का अधिक प्रचार रहा है।

१ प्राकृतिक परमो ज्ञान्य अतिवारा, पीवत राम रस करन विवारा। क. प्र० पृ० २२२

२ आत्म मादि बच मये जर्नदा भिदि मये त्रिभिर म्पटे रजुर्चदा।

रामानन्द दि० १० पृ० १२।

३ ना दसरत बरि भोगरि जावा। क. प्र० पृ० २४३ पर।

४ क० प्र० पृ० २२९ पर २२८। ५ न० १० १, २, ४६।

परमपुत्र जहाँ तक उनके पौराणिक रूपों का प्रश्न है, उसका प्रासंगिक उल्लेख मात्र हुआ है। इस उल्लेख में विधिप्रता यह है कि कबीर या शत्रु-जादि ने अवतार राम से अपने निर्गुण राम का विनिर्दिष्ट या भिन्न सिद्ध करने का प्रयास में ही अवतार राम एवं उनके अवतारत्व की खर्चा की है। शत्रु का अनुसार सभी भायिकराम की उपमाता करते हैं, परमपुत्र शत्रु अकल भादि अवादि राम को भवते हैं।^१

इससे विदित होता है कि संतों ने राम का जिस रूप को लिया है, वसगुण विष्णु का सगुण अवतार न होकर त्रिगुण निराकार विष्णु के एक भिन्न रूप में प्रकटित पर्याय मात्र हैं। जिस प्रकार इन्द्रजित् भीरु धूपी मठ से प्रभावित होने के पश्चात् अह्लाद, सुधा, करोम, रहीम आदि पर्यायों का प्रयोग भी संतों ने अपने त्रिगुण-निराकार भीरु एकधरबाड़ी उपास्य का सिद्ध किया था, वैसे ही राम को संत-साहित्य में त्रिगुण विष्णु का ही पर्याय कहना अधिक सुचितसंगत प्रतीय होता है।

कबीर का अनुसार अवतार राम भी उसी प्रकार काल के सिद्धार हुए, जिस प्रकार अन्य लोग, भीरु उन्हीं के साथ छत्रमन भीरु सीता भी खली गयी।^२ इनके सृष्टिकर्ता राम ने न तो सीता से विवाह किया न एक में एक बँधा।^३ कितने ही राम भीरु कृष्ण जैसे लोग माया के जल में पड़ गये, फिर भी उन्हें ईश्वर का जल नहीं मिला।^४ जो कर्ता पृथ लक्ष राम कहा जाता है वह भी जल का अकलमन से नहीं पच सका।^५ इस प्रकार उक्त संतों ने एक प्रकार से अवतार राम को भायिक एवं नखर माना है।

इनके अतिरिक्त नामदेव भीरु शत्रु अकल भादि संतों के पक्षों में राम का पौराणिक अवतारवादी रूप का भी वर्णन करते हैं। नामदेव ने अपने हृदय के अवतारी कार्यों की खर्चा करते समय राम द्वारा अहकथा का लारे जान का

१. माया रूपी राम कू लख भीरु आने। अकल भादि अकल है सो शत्रु माने न
का० ६० का० भला १, ६० ११० लाठी १४०, न १० १, १, ४१-४२ में
भी अवतार राम का कर सदिष्ट माना गया है।

२. मैंने राम को गये अकल, संव गरी लीला ऐसी बना।

नखरी नखरी करि गये लागि न काहु के लान।

नखरी करि नखी राख नखरी रहल नाव। कबीर की० ६० १८।

३. तिरबल हार न म्हाहा लीला, जल पलन नहीं बना। क० की० ६० ११ पर ८।

४. कैतिक रामचन्द्र लक्ष्मी से दिन नर का विरनावा।

कैतिक काम्द मैंने सुग्रीवर, त्रिभ की अंत न पाया क० की० ६० १५, पर १८

५. भादि राम को करता करिये त्रिगु की अथ न राधा। क० की० ६० १२ पर ११०

उल्टे-उल्टे किया है।^१ गुह अर्जुन के घर घर भ्यापी राम, असुर-सहारक भी हैं।^२ गुह नानक के गुरुमुखि राम नेतु बचवाते हैं और लका लट्ठकर दैत्यों को सताते हैं, अहिराबण को मारते हैं, विभीषण से परिचय करते हैं, तथा सैंतीस श्लोति देवताओं का उद्धार करते हैं।^३

इस प्रकार कुछ सतों में राम के पौराणिक रूप का उद्धार किया है, और कुछ ने उनमें भवतारकारी रूपों को स्वीकार किया है। परन्तु सत-साहित्य के अधिकांश भाग्य के अध्ययन के पश्चात् यही स्पष्ट विदित होता है कि सतों में मूर्ति-पूजा का प्रचार न होने के कारण, इनके राम भवतारकारी उद्धार कार्यों से युक्त होते हुए भी निराकार राम हैं। वे इत्य में स्थित 'अन्तर्धामी उपास्य' के रूप में संतों में विशेष रूप से मान्य हुए।

कृष्ण

राम के सदृश कृष्ण के प्रति भी संतों के दो प्रकार के दृष्टिकोण विदित होते हैं। एक ओर तो कबीर, दादू, मानक आदि संतों ने कृष्ण के पौराणिक पूब अर्चावतारी रूपों की आलोचना की है, और दूसरी ओर नामदेव, गुह अर्जुन बावरी साहिबा आदि ने इनके सगुण या भवतारी रूपों का भी वर्णन किया है। कबीर ने अन्तर्धामी के पर्याय के रूप में गोविंद का नाम किया है।^४

आश्वेचक सतों के अनुसार अन्य भवतारियों के सदृश कृष्ण भी मायाप्रसूत पूब साधारण मनुष्य के सदृश मृत्यु के पात्र हैं।^५ एक भक्त के सदृश इनका रूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि कितने काम्ह मुरखीवर हो गये परन्तु उन्हें भी ईश्वर का अंत नहीं मिला।^६ संभवतः अथर साम्य के कारण सिद्ध

१ गीतम मारि अहकिना तारे पावक केनक तारीकके । गु० प्र० सा १८८ नामदेव

२ अहर संचारु राम हमारा, बटि बटि रमरना रासु पिबारा ।

गु० प्र० सा ५० १०२८ गुह अर्जुन ।

३ गुरुमुखि बांविजो सतु विधाने कंका लड़ी देत लीगारे ।

रामचन्द्र मारिजो अहिराबणु धेनु बमीबण गुरुमुखि बरवारु ।

गुरुमुखि सारर पावक तारे, गुरुमुखि श्लोति सैंतीस भुबारे व

गु० प्र० सा ५० १४१ गुह नानक ।

४ कृष्णि में भिसे री वात नू पटि बटि कोविन्द है निवात ।

क० प्र० ५० २१५ पर १८२ ।

५- इये कृष्ण मुये बरठार एक न सुना को सिरजन द्वारा ।

कबीर वी० ५० ४५, पर ४५ ।

६ कैतिक काम्ह यये मुरखीवर तिम भी अंत न वावा । क० वी० ५० १५ पर १८

गुरुजी ने गुरु और गोविंद की एकता बतलाई है। गुरु नामक ने गुरु-गुरु में गुरु को गोपाल माना है।^१ गुरु अजुन ने भी गुरु गोविंद और गुरु गोपाल का प्रयोग किया है,^२ तथा सत और गोविंद के काय एक सच माने हैं।^३ नामदेव एक पद में विद्वक के तद्रूप कृष्ण के पौराणिक रूप का परिचय देते हुए कहते हैं कि देवकी प्रभु है जिसके पर कमलापति का प्रादुर्भाव हुआ।^४ यह वृन्दावध का वन-खंड भी प्रभु है जहाँ श्रीनारायण स्वयं स्वीया करते हैं। नामदेव के स्वामी वसु पदा रहे हैं और गाय चरा रहे हैं।^५ व पिता मायव के नाम से प्रसिद्ध सांख्य विद्वक प्रभु हैं। सत बाबरी साहिबा ने अपने एक पद में जिस आत्मानिष्पत्ति का परिचय दिया है, उसमें निराकार कृष्ण के साथ साकार कृष्ण का रूप भी उचित होता है।^६ गुरु नामक ने राम के सच गुरुमति कह कर इनके अवतारी कार्यों का उल्लेख किया है।^७

संत-साहित्य में आक्रोशक और समवेक सतों के अतिरिक्त नामदेव और बाबरी साहिबा कृष्ण के उपासक प्रतीत होते हैं। नामदेव के पदों से तो कृष्ण के कष्ट सगुण रूप का ही नहीं बल्कि अर्थात्क्य की उपासना का पता चलता है। इससे इतना ता स्पष्ट हो जाता है कि नामदेव निराकार ईश्वर के भक्त होते हुए भी कृष्ण के सगुण रूप के विरोधी नहीं थे। सत बाबरी साहिबा कृष्ण की मूर्ति करती हुई भी उनके अन्तर्धामी रूप की ही उपासिका प्रतीत होती हैं। इन दोनों के अलावा अन्य सतों के पदों में अवतार-कार्यों का

१. नामक मुनि मुनि गुरु गोपाल। गु० प्र० सा ५० १५३।

२. गुरु गोविंद गुरु गोपाल। गु० प्र० सा ५० ८१९ म ५।

३. संत गोविंद के बड़े नाम। गु० प्र० सा० ५० ८१७ म ५।

४. बनि बनि मेवा रोसावकी बनि बनि कृष्ण ओई कावणी।

बनि बनि तु माता देवकी, त्रिह गुरु रमना कपला पनी व

गु० प्र० सा० ५ १८८ नामदेव।

५. बनि बनि वनघर विद्यावना, जह तेने श्रीनारायण।

बेनु बजावे गोचरु बरे माये का प्रभावी नामान् करे व

मेरी वासु नाथ हू बनु कैसी सांख्यो विद्वान। गु० प्र० सा १८८ नामदेव।

६. बाबरी राबरी का कहिये मन हे के पनव बरे निग बाबरी।

बाबरी जानहि सन प्रबान जिन्हें हरि रूप दिवे बरसावरी व

साबरी भूगन मोहनी भूत देखि जान अमन्य लगवारी।

साबरी लोह मे हाती वसु मति राबरी हैति भई मति बाबरी व लन का० ५० १२५

७. गुरुमति इतर्था श्रीनारायण बरे, गुरुमति साहिब बावन तारे।

गु म सा० ५० १ ४१ म० १।

रखे जाते हुए भी कृष्ण निराकार विष्णु के पर्याय के रूप में अधिक हीन हुए हैं।

गुरु में अवतारत्व

सिद्धों और नायों के समान संतों में भी गुरु का महत्त्व चरम सीमा पर पहुँच चुका था। विभिन्न सम्प्रदायों में गुरु इष्टदेव के रूप में पूजे जाते थे। हर्षो सगुणोपात्मक सम्प्रदायों में माम्ब इष्टदेव की विधिबद्ध पूजा होती है, या गुरु और परम्परा में ईश्वर या अवतार के सदा भावना रखी जाती है, हर्षो निर्गुणोपासकों में अन्तर्धामी या निराकार इष्टदेव के प्रति उपास्य भावना होती है। किन्तु कतिपय सत-सम्प्रदायों में गुरुदेव या सम्प्रदाय-प्रवर्तक संतों की ही पारंपरिक विधिपूर्वक पूजा होती है।

संतों की रचनाओं में 'गुरु देव को जग' को, जिसमें गुरु-महिमा और उसके अवतारोचित कार्य की चर्चा है, प्रमुख स्थान प्राप्त है। कबीर के गुरु गोविंद जी एक हैं, 'दूबा यह भाकार' में गुरु गोविंद का समान महत्त्व स्पष्ट है।^१ बाहू के अनुसार गुरु जग को जेत्रगुल तथा जीव को प्रज्ञा करने की शक्ति रखता है।^२ गुरु मानक ने गुरु को विष्णु, शिव पार्वती आदि से स्वरूपित किया है।^३ विशेषकर सिक सम्प्रदाय में 'गुरु' शब्द उपास्य ब्रह्म का पर्यायवाची है। गुरु अमरदास ने गुरु को प्रभु, नारायण आदि सब कुछ बतलाया है।^४ गुरु मानक ने गुरु को गोपाळ से पुरुषरूपित किया है^५ तथा गुरु की सामर्थ्य पुरुष महिमा का वर्णन करते हुए राम के अवतारी कार्यों से सम्बद्ध किया है।^६ अमरदास के अनुसार गुरु-पद सबसे बड़ा पद है। उसकी तुलना में ब्रह्मा, विष्णु ब्रह्मचारी मानकादि नहीं हैं। नारद, सेप लेकर पूरे जगत्पुत्र-नर राम और जामकी आदि सभी उस गुरु-पद का गुणगान करते हैं।^७ मत्तकदास

१. गुरु गोविंद जी एक है दूबा यह भाकार। क. प्र० पृ. १ पंखी २६।

२. बाहू काहे कल्प गुण जग को जेव देव। बाहू देसा गुरु भिखा जीव प्रज्ञा कर केव।
बाहूदपाळ को वाली मा० १ पृ. २ सा. ७।

३. गुरु देसक औरप बरमा गुण पावती मारे।

जे देव जग जगता माही कृष्ण कृष्ण न जाई। संत दूबा सात पृ० २१२ पद ५।

४. गुरु सात्मही सदा सगुणाना प्रभुनारायणु सीर। गु० प्र सा० ५ १५५८ म ३।

५. अकब कवा के रहत निराका मानक सुधि सुधि गुरु गोपाळा।

गु० प्र सा० १४३ म० १।

६. गु प्र सा ५० ५४३ म० १ राम श्रीरंक में इष्टम्ब।

७. गुरुदेव नई सबव से मारी।

पारी देव गुरुके नदि गुरुदेव ब्रह्म विष्णु ब्रह्मचारी।

अपने गुरु का रूप बतलाते हुए कहते हैं कि वह अद्भुत गुरु प जाता है, न पीता है, न सोता है, न जागता है, न मरता है, न जीता है। यह जो कुछ भी सृष्टि-विस्तार दिखार्ह दे रहा है यह सब उसका बलों का कार्य है। वह तो सत्य मात्र में अनेकों रूप धारण करता है।^१ सुन्दरदास ने अपने गुरु शङ्ख क अवतारोचित रूप एवं कार्यों का वर्णन किया है। उनका कथनानुसार गुरु तो अविनाशी पुण्य है। परन्तु जिस घट में वह निवास करता है उस घट का नाम शङ्ख है।^२ वह पूर्ण अम्ब्र के सद्य जगत में आविर्भूत होता है। वह घट में रहते हुए घटातीत रहता है, उसमें छिप्त नहीं होता।^३ श्री भरद्वाज ने भी गीता क अवतारवाद पर विचार करत हुए अवतार-पुरुष में यही वैशिष्ट्य माना है। इसके अनुसार अवतार-पुरुष माया क आधार स आविर्भूत होकर माया क अधर्षती नहीं रहता।^४ साथ ही मत-गुरुओं क अवतरण में इन्द्रजिही मध्यकालीन साहित्यिक अवतरण का भी नामान मिलता है। सत सुन्दरदास क अनुसार ईश्वर क मन में अपने को विविध प्रकार से अभिप्रेक्ष्य एवं विस्तृत करने का अद्भुत विचार उत्पन्न हुआ है। उन्होंने सतों को भी उपदेश क द्वारा कार्य करने क निमित्त अपने को प्रकट किया।^५ गुरु शङ्ख को भी ईश्वर ने हमी उद्धार-कार्य क निमित्त इस लोक में भेजा।^६

भारत मुनि मये गुरुपद भवि कै, जपन सैन भंडर की मारी।

हरनर मुनि मये गुरुपद भवि कै, अपत राम अब जनक दुनारी।

भरमरास मये गुरुपद भविहौ सारैव कबीर समरथ धनिहारी।

पर्व पृ० १० १ उपर ५।

१ हमरे गुरु की अद्भुत कीला न कहुँ साब न दीव।

जा वह लोरे न वह कानी ना वह मरे न जीरे।

दिन तरवार पनहुन अगावे सो ती वा का बेना।

शिव में रूप अनेक बरत है शिव में रहे अकेण। अष्टक पृ० १० १०२ उपर २।

२. गुरु अविनाशी पुण्य है बरका शङ्ख भाव।

हँदर घोवा का बहूँ मम सिध पर भनि भाव।

सु प्र भा० ११० ११० बरिनी १।

३. अद्भुत प्रपदे जगन में ज्ञानपु वृत्त खंड।

बर मारे बर लो सुख निमन न कीउ उन्द। सु प्र भा० ११० ११३ को० ८।

४. अनेक कोन दीना भरतिउ वृ १११।

५. अद्भुत ज्ञान रूपी अद्भु, अद्भुत भांति विष्णव।

अन किरे कलैख की वार उगारव हार। सु प्र भा० ११० ११७ को० १।

६. वर कगरम हार को गुरु शङ्ख भावा जीवनि कै उद्धार की हरि भापु बटावा।

सु० प्र० भाव ११ १११ तीसरी २।

बाहु ने अचलीर्ण होकर राम-नाम के उपदेश द्वारा ज्ञान, भक्ति एवं चैरमय रह कर विविध प्रकार के भ्रम दूर किये ।^१ उन्होंने विमुक्त जीवों को ईश्वर भक्त बनाया तथा हरि-पंथ का प्रवर्तन कर एक ईश्वर को साथ घतकाम्य ।^२

परबर्ती गुरु गोविंद सिंह जी रचना 'विचित्र नामक' में गुरु के अवतार^३ एवं प्रयोजन^४ का और अधिक स्पष्ट रूप मिलता है । युगावतार-परम्पराओं के अतिरिक्त सिद्ध भगवद्वाय में बड़ाईकामा के अवतार के महत्त गुरु ही पुनः दूसरे गुरु के रूप में अचलीर्ण होता है ।

'गुरु प्रथम साठिब' में इस परम्परा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि स्योतिरूपी हरि आभिर्भूत होकर गुरु नायक के मात्त से प्रसिद्ध हुये । उनका प्रथम गुरु अगद हुये । गुरु अह्वर कृपाकर गुरु अमरवाम होकर पुनः अचलीर्ण हुये । इनके प्रथम अमराः गुरु रामदास और गुरु अह्वर हुये ।^५ इस पंथों को 'मूरति पञ्च प्रमाण पुस्त' कहा गया है । श्री सैकलिक द्वारा अर्जुन कृष्ण पर्व में इनकी अवतार-परम्परा की वर्णन करते हुए कहा गया है—'तुन्हीं आनक हो तुन्हीं काहिना हो, तुम्हीं अमरवाम हो ।'^६ एक पद में गुरु अर्जुन के प्रति कहा गया है कि तुम्हारे पूर्व चार गुरुओं ने चारों युगों को आच्छेकित किया । गुरु अर्जुन ! तुम उन्हीं के स्थान में पँचवें हो ।^७ एक अन्य पद में इन्हें

१ सु प्र भाग २ पृ० १११ नीसनी ३ ।

२ विमुक्त जीव सम्मुष्ट किये हरि पंथ अजाबा,

कृष्ण किना सब छावि के प्रभु साथ बनाबा । सु० प्र भाग २ पृ० १११ नीसनी ४ ।

३ इस पद काव अगत में आदे, बर्मिहैत तुन्दैव पठावै ।

कहा कहा तुम बर्म निवारो कृष्ण कृष्णिवन बकर पधारो व

दो हिस्से ऐम्ह किलोछोकी भाग सिध रैकिजन । सुबाम सिंह पृ० ३५४ में अर्जुन

४ पञ्च काव चारा हम अतमय समह केदु ताहु नम मनमय ।

बरम अजावन संत अवारक दुष समय को मूख बरारन व

दो हिस्से ऐम्ह किलोछोकी भाग सिध रैकिजन । सुबाम सिंह पृ० ३५४ ।

५ कीति कनि हरि आभिर्भूत नामकु अजावत ।

वापै अयदु मकड छल सिध तनु मितामक ।

अबक क्रिया चारि अमरन सनि गुर विष कीअव ।

अमरदाति अमरदु प्रभु गुर रामहि कीअव ।

गुर रामदास करसनु परति कहि मजुरा अह्वर बनग ।

पूति पंथ प्रमाण पुरनु गुर अर्जुनु विगडु नपन । सु० प्र० सा० पृ० १४०८ ।

६ दो सिध रैकिजन जी० २ पृ० १५८ । ७ दो सिध रैकिजन जी० ३ पृ० १२ ।

मध्यकालीन साहित्य में अथतारवाद

अपने गुरु का रूप बतलाते हुए कहते हैं कि वह अद्भुत गुरु न लाता है, न पीता है, न मोता है, न बागता है, न मरता है न जीता है। यह जो कुछ भी सृष्टि-विस्तार विजाई दे रहा है यह सब उसके खेलों का कार्य है। वह तो जब मात्र में अनेकों रूप धारण करता है।^१ सुन्दरदाम ने अपने गुरु वाद क अवतारोचित रूप पर कायों का वर्णन किया है। उमक कथनानुसार गुरु तो अविनाशी पुरुष है। परन्तु जिस भ्रम में वह निवास करता है उस घर का नाम वाद है।^२ वह पूर्ण चन्द्र के सदृश जगत में आविर्भूत होता है। वह भ्रम में रहते हुए अदृश रहता है उसमें जिस नहीं होता।^३ श्री जगदीश्वर भी गीता क अवतारवाद पर विचार करत हुए अवतार-पुरुष में यही वैशिष्ट्य माना है। इसके अनुसार अवतार-पुरुष माया क आधार स आविर्भूत होकर माया के बलवर्ती नहीं रहता।^४ साध ही मत-गुरुओं क अवतरण में इस्लामी मध्यकालीन साम्प्रदायिक अवतरण का भी आनाम मिलता है। मत सुन्दरदाम क अनुसार ईश्वर क मन में अपने को विविध प्रकार स अभिव्यक्त पर विलीन करने का अद्भुत विचार उत्पन्न हुआ है। उन्होंने मतों को भी उपदेश के द्वारा काय करने क निमित्त अपने को प्रकट किया।^५ गुरु वाद को भी ईश्वर ने इसी उद्धार-कार्य क निमित्त इस लोक में भेजा।^६

नारद मुनि भये गुरुपर भक्ति के, अपन सेम मकर की नाही।
 धारनर मुनि भये गुरुपर भक्ति के, अरत राम जन जनक दुनाही।
 बर्मदास मै गुरुपर भक्तिही साहेब कबीर समरत बनिवाही।
 वर्म ४० १ १ छन्द ८।

- १ हमरे गुरु को अकृत लीला न बहू लाव न बीव।
 ना बह सोचे न बह जाने, ना बह भरे न जीवे।
 रिज तबवर पल्लूज जगारे सो ती वा का बैवा।
 शिज में रूप अयेक धरण है दिन में रहे अकेल। मरुच वा १ १ छन्द १।
- २ गुरु अविनाशी पुरुष है बरका वादू मांभ।
 सुंदर शीमा का बहू नरा प्रिय पर बनि मांभ।
 सु ४० वा० १ पृ० ११० वांकी १।
- ३ मरगुन प्रणे जगत में मानहु बृज बंद।
 बर माहे बर मो दुक निज न कीज इन्द्र। सु ४० वा १ पृ १११ वी० ८।
- ४ एमेज आन दीग जगदिन १ ११।
- ५ अकृत स्वान रचरी प्रभु बृज मानि निम्नार।
 मंग दिवे उरीच को बार जगारन हार। सु ४० वा० १ पृ० ११० वी १।
- ६ बार जगारन हार जो गुरु वादू आवा जीवनि के उद्धार की हरि आनु बदावा।
 सु म नाम १ पृ १११ वी० १।

गुरु रामदास की क्योति का अवतार^१ बता कर इसके उद्धार-संबंधी प्रबोधन का उल्लेख किया गया है।^२

इससे स्पष्ट है कि संतों में गुरु केवल प्रवर्तक ही नहीं वा अपितु अपने अनुयायियों के मध्य में वह इच्छेय या उपास्य के रूप में भी प्रचलित हो जाता था। प्रायः किसी परम्परा से सम्बद्ध करने के निमित्त उसे किसी पूर्ववर्ती मत का अवतार माना जाता था। यदि वह स्वयं किसी परम्परा का प्रवर्तक हुआ तो सामान्य रूप से वह स्वयं अवतारी होता वा और उसके शिष्य उसके अवतार-रूप में विख्यात होते थे। संतों की इस गुरु-अवतार-परम्परा का एक अमरक रूप सिक गुरुओं में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार व अवतार रूप में गृहीत होने के साथ ही उपास्य-रूप में भी पूज्य होते हैं। सिक मत में प्रचलित 'मूर्ति पच प्रमाण' से इस प्रवृत्ति का विशेष परिचय मिलता है।

अवतारी कबीर

कबीर की मृत्यु के कुछ ही काळ उपरान्त कबीरपंथी इनके शिष्यों से इनके अवतारत्व का प्रचार करना आरम्भ किया। पुगावतार-परम्परा में कबीर पंच की अनुसृंगी अवतार-परम्परा का परिचय दिया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त अवतार कबीर केवल उपास्य के ही रूप में नहीं गृहीत हुए, अपितु पौराणिक प्रजापति में इनके जीवन से सम्बद्ध घटनाओं में अवतारोचित कार्यों का भी समावेश किया गया। यों तो परमहंसों के उद्धार के निमित्त कबीर काशी में अवतीर्ण हुए थे।^३ परन्तु इनके पूत्र भी इनका 'महाभारत के पांडवों से विकल्प्य संबंध स्थापित किया गया है।

इनके शिष्य धर्मदाम अवतारोचित कार्यों का उल्लेख करते हुए करते हैं कि साहेब की बकितारी है कि उग्होंने गमिका के सादरचर्य से काशी में अपनी हँसी बरबाद और अपने चरण से जल धार कर हरि की जलनी हुई समझता पगड़ी की रक्षा की। मगहर में दिग्गु-मुदकों का समर्थ मिदान के

१ रामदास गुरु बगनातलु कउ गुर कानि अरजुम मरि परी।

गु प्र० सा० ५ १४०९।

२ अय अउरनबाहि महागय मे अरनाव कजानव कानि शोमउ।

तिनके बुग शेरिक दुरि गवे मपुरा जिग्द अनृन नातु पोमउ।

गु प्र० सा० ५० १४०।

३ इन उद्धारन लनगुउ बन में कारना। प्रगउ मये कानी में हाल कबीर करारवा।

परव गु० ५० १ ७५५ ९।

लिये कब्र में प्रकट हो गए।^१ पूरुषार्थीय घटनाओं से इनका सम्बन्ध स्पष्टि-
कृत होते हुए कहते हैं कि श्रोत्रों आचारियों के उपस्थित रहने पर भी पाँचवों^२
का पत्र सफल नहीं हो रहा था। मुख्य यन्त्र (कबीर के सम्बन्ध-पुस्तक)
के प्राप्त करने ही प्राप्ति घटा करने लगा। इन्होंने ही तबक द्वारा काली बुद्ध
शामी का विष बताया था।^३

जगन्नाथ मन्दिर में इन्हें सम्बद्ध करते हुए कहा गया है कि मसुद्र की
सारी लहरों के कारण हरि का मन्दिर नहीं बनाया जा सकता था। इन्होंने
ही नमः स्थापन में मसुद्र को हटाया जहाँ सब लोग नीचे करने वाले हैं।
मसुद्र उपान्त्य के मास जो इनका त्रिम रूप में स्मरण करता है, उन्हीं रूप में
उसके निमित्त वे प्रकट होते हैं। हमारा क रूप में प्रकट होकर इन्होंने
स्वयं घमनाम पर कुगा की थी। दुःख या श्री जा इनकी धारण में जाय
उनका उद्धार हुआ। इस प्रकार परमेश्वर का उद्धारण बाल कबीर मुक्ति-
दाना है।^४

'अमर मुक्त निधान' के अनुसार घमनाम पहले मसुद्रोपान्त्य के बाद में
कबीर ने इन्हें लिख्य बना कर निराकारोपान्त्य की शिवा प्रदान की।
अन्यत्र 'अमुगमासुमार' पर अन्य रचनाओं के अन्त पर विदित होता है कि
निराकारोपान्त्य होने पर भी मसुद्रोपान्त्य का सम्कार इनके मन में दूर नहीं
हुआ था। उक्त उद्धारणों के आधार पर अन्तःस्मरण में मल-मल पर मसुद्रो

१. वन ही वन शरीर शरीरणी ।

काली में हँसी कब्र, दलिया मंग ल्याय ।

हरि के पत्र बरत बरत कल्पे काज बड हारी ।

मसुद्र में एक लीला लीली विन्दु द्रव्य मन्वारी ।

अर शरीर के रक्षा दीनी, निदि ली सारा मारी ।

परम० २० ५० ४ २५२ १० ।

२. पाँच बड मुद्रक न होय शरीर नुरे कावरी ।

मुख यन्त्र में प्राप्त बरानी बर बरने पर मारी । परम० २० ५० ५ २५२ १० ।

३. मसुद्रक काज बन्धो रानी को विराम बरत नन मारी ।

गली पर बड विद्या लीली बरनु, को ही बरती । परम २० ५० ५ २५२ १० ।

४. हरि को मन्दिर बनन न शरी मसुद्र लहर बरि मारी ।

काला कर के मसुद्र हरायो लंगर बरि मारी ।

को का मुक्ति को न दन्ते, का में बर बर मारी ।

बामराज पर विद्या लीली, हंमारा लये मारी ।

को को मरन गरी मसुद्र को बरते बर बर मारी ।

शरीर बरत मुद्रक के शान्त हलको विरो बरती । परम० २० ५० ५ २५२ १० ।

पापना के पराहित प्रभाव का भी अनुभाव किया जा सकता है। क्योंकि सर्तो को कर उभूत सम्प्रदायों में इष्टदेव ईश्वर के निराकार रूप होने के कारण सगुण सम्प्रदायों के प्रमात्मारूप उनके गुण ही इष्टदेव के साकार प्रतीक या स्वरूप उपास्य रूप में गृहीत हुये। यहाँ तक कि कतिपय सम्प्रदायों में अर्वा विग्रहों के साथ उनकी मूर्तियों, चित्रों और 'गुरु ग्रंथ साहिब' जैसी पुस्तकों की विभिन्न पूजा का भी प्रचार हुआ।

विशेषकर कबीर उपास्य होने के साथ-साथ विभिन्न सत् सम्प्रदायों में अवतारी रूप में भी मान्य हुए।

श्री परशुराम चतुर्वेदी के कबजालुसार साधनयोग अपने आदि गुरु उदादास को कबीर का अवतार तथा दोनों को परमात्मा का प्रतीक समझते हैं।^१ धर्मेश्वर प्रह्लाधारी के अनुसार वरिषादाम (बिहारी) भी अपने को कबीर का अवतार मानते हैं।^२ कबीर इन सब में पुनः-पुनः अवतार धारण करने वाले मत्पुत्र के मोलद पुत्रों में से एक के रूप में मान्य हैं।^३ डा० धर्मेश्वर प्रह्लाधारी ने 'ज्ञानदीपक के एक उदाहरण का माव इन प्रकार किया है कि मत्पुत्र ने उन्हें बताया कि कबीर और चर्मदास उनका ही पूर्वावतार थे।^४ चरबीबरी सम्प्रदाय के प्रकृत धरनीवास भी कब्रगातर में कबीरदाम के अवतार कहे गये। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने तत्संबंधी समझना एक परवर्ती उदाहरण दिया है, जिसमें कहा गया है कि भादवर्षों के राज्य में कबीर पुनः धरनीदाम के रूप में अवतीर्ण हुये।^५ माघ सम्प्रदाय में कबीर ईश्वर के पर्याय माने जाते हैं। माघ भोग उदादास को कबीर से स्वरूपित करते हैं।^६ उनके लक्ष्यों के आधार पर कतिपय चरवर्ती सम्प्रदायों में अनेक संतों के कबीर-अवतार होने की सम्भावना की जा सकती है।

निर्गुण सत् निराकार ईश्वर के उपासक होते हुए भी विष्णु और उनके कतिपय अवतारवादी रूपों को अपने पक्षों में अभिव्यक्त करते हैं।

इनका उपास्य निराकार होते हुए भी विष्णु का ही निर्गुण रूप प्रतीक होता है। राम कृष्ण, बामुदेव, मारापय आदि नाम मुत्पन्नः इन साहित्य में विष्णु के पर्याय के रूप में अधिक प्रचलित हैं।

१ उ० भा० स ४ पृ० ४००। २ सत् बरि बरिवा : एक अनुशीलन पृ० २३९।

३ संत बरि बरिवा : एक अनुशीलन पृ० १७।

४ संत बरि बरिवा : एक अनुशीलन पृ० २३२ पृ २०।

५ उ० भा० सं ४ पृ ५६१।

बरिवा पुनि बानी मको उदादास के राव।

६ ही मापन पृ ५६।

सत साहित्य

यदि कर्षीर आदि सत रामानन्द के शिष्य हैं, तो रामानन्द ने जबतारी राम के मगुण रूप को मानत हुए भी राम के ऐसे अन्तयामी या आत्मरूप का इन्हें प्रचार किया होगा जिसकी रूपरेखा 'अव्यायम रत्नापग' में मिलती है।

यों जहाँ तक दिव्यु के अवतारों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, महानाटक अथवा पञ्चमात्मक दोनों प्रकार से सतों ने इनका दिव्युत वर्णन किया है। नामद्वय गुण अत्रुन ऐसे सत तो अवतारवाद का इतना समर्थन करत हुए प्रतीत होते हैं कि उन्हें त्रिगुणोपायक मानने के पूर विचारने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यों सम्प्रदाय-सम्बन्ध के मात उन्हें त्रिगुणोपायक मते ही बड़ा जाय किन्तु अपने पक्षों के आधार पर तो वे अवतारायक अधिक प्रतीत होते हैं।

अतः सतों ने जहाँ अवतारवाद का रुदन किया है वहीं इतकी अवतारवादी दृष्टि भी महत्त्वपूर्ण है। सतों ने मानव-मूर्त्य के रूप में अवतारवाद का मानव मूर्त्य बोधा है। उनकी दृष्टि में वे सती सत अवतार हैं त्रिनया समाज में विशिष्ट स्थान है तथा जो परम हरि मन्त्र हैं।

इसके अतिरिक्त सतों ने सत्प्रथम इग्नान और दिव्यु दोनों के समन्वित रूप में एक नय पैगम्बरी अवतारवाद का प्रवर्तन किया जिसके मूल में एकधरवादी उपासना का बीज विद्यमान है।

परन्तु परबर्नी सतों ने युगावतार-परपरा क द्वारा प्राचीन सतों की परंपरा से अपने सम्प्रदायों को तो सम्बद्ध किया ही, साथ ही अपने कर्षीर आदि सत प्रवर्तकों का भी इस प्रकार अवतारीकरण किया कि जीवन भर अवतारवाद का विरोध करने वाल कर्षीर भी अन्त में अवतार वया अवतारी होकर रहे।



छठा अध्याय

सूफी साहित्य

मध्यकाल में मुसलमानों के भारत में प्रवेश करने के अनन्तर एक ऐसे साहित्य का विकास हुआ जिसका मूल स्रोत भारतीय धर्मों की अपेक्षा इस्लाम में माना जाता है। भारत में मुसलमानों के राज्य का विस्तार होने के साथ साथ इस्लाम का प्रचार होने लगा था। इस प्रचार में दो प्रकार के व्यक्ति रत थे और दोनों की दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ थीं। इनमें एक जोर तो वे राज या सम्राट् के जो तख्तार के बट पर इस्लाम का प्रचार करते थे और दूसरी ओर इस्लाम धर्म से उद्भूत 'तस्वुफ' या सूफी नाम की एक प्रेममार्गी शाखा के अनुयायी, साधक या संत थे, जो भारत में प्रचलित लोक रचनाओं को अनन्य प्रेम से समृद्ध कर जन साधारण को मुग्ध किया करते थे।

सूफी संत एवं उनकी प्रेमोपमावा का इस्लाम से कैसा सम्बन्ध रहा है, इसका अभी तक पूर्णतः विरावरण नहीं हो सका है। यद्यपि इसका मूल स्रोत 'कुरान' से खोजने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु अज्ञान के ऐश्वर्य प्रदान इस्लामी रूप में और सूफी साधुप्रधान या मायूक के रूप में सूदीत अज्ञान में पर्याप्त अन्तर हो जाता है। फिर भी मध्यकाल में यह सामान्य प्रवृत्ति थी कि प्रायः समग्रियों के व्यक्ति किसी न किसी प्राचीन धर्म या परम्परा से अपना संबंध जोड़ा करते थे।

भारत में प्रचलित होने के पूर्व सूफी मत विभिन्न सागराओं में विकसित हो चुका था। उनमें इस्लाम के कतिपय विचारों का समावेश हो गया था, किन्तु अज्ञान का तत्कालीन प्रचलित रूप और गृहि-विकास-क्रम प्रधान है। अज्ञान के मूर से विकसित गृहि में ही अज्ञान के साकार साक्षात्कार के विचारों का इन समग्रियों में पर्याप्त प्रचार हुआ। इन प्रवृत्तियों के आधार पर दुश्मन आदि कतिपय सूफी साधकों ने अज्ञान के स्पष्ट रूप को अवनारवाही परिधान में अभिव्यक्त किया। किन्तु सूफी विचारकों ने अवनारवाद के विरोधी होने के

अरब सर्वत्र इस धारणा को सशंक होकर देखा। तत्कालीन सूफी मत की धारण साक्षात्कारों में से इस को तो स्वीकार किया गया और उनमें से अवतारवादी दुष्टही तथा अद्वैतवादी इस्लामी को मरदूह खरामा गया। दुम्बरी के अनुसार अवतारवादी दुष्टही सम्प्रदाय का प्रवर्तक इरिफक का अबू इरमान नामक सूफी था। संभवतः दुष्मन के आचार पर ही उसके दुष्टही कहा गया है। एक गैर इस्लामी लोगों सम्प्रदायों पर आर्प-संस्कृति के प्रभाव का अनुमान किया जाता है, क्योंकि इराक का प्रभाव सहर बमरा फारस की खाड़ी में स्थित होने के कारण आर्प-संस्कृति के सम्पर्क में था।

जो हां, मध्यकालीन सूफी साहित्य में जिस परम्परा का विरुद्धता हुआ है, उसमें अनेक भारतीय तर्कों से संबंधित होते हुये भी इस्लामी परम्परा को अपेक्ष मात्रा में ग्रहण किया गया है। किन्तु इस्लाम धर्म का मूल उद्देश्य एकेश्वरवादी ईश्वर का प्रतिपादन और प्रचार रहा है। इस मत में एकमात्र अज्ञात ही सर्वशक्तिमान रहा है। कलतः हिन्दू धर्म में बहुदेववादी देवताओं का जिस प्रकार सर्वोत्कृष्ट (हीनोबिस्टिक) रूप मिलता है, उसका इस्लाम धर्म में नितान्त अभाव है।

अपने सैद्धांतिक रूप में इस्लाम किसी भी अवतारवादी ईश्वर को स्वीकार नहीं करता और न तो मुर्तिपूजा के अर्थ किसी पैगम्बर का अज्ञात के रूप की पूजा को मानता है। कलान्तर में यह खुरता इस सीमा तक पहुँच गई कि इस्लाम के अवतारविरोधी सम्प्रदायों ने अवतारवादीयों की कुछ कन भार्गवा की जिसके फल-स्वरूप इस्लाम संसृ जैसे अवतारवादी सूफी मतों को गूली पर बना दिया गया तथा उसके अनुपायियों को भी प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा।

परन्तु विधिप्रता तो यह है कि सगुण रूप या अवतारवादी रूपों का इतना उग्र विरोध होने पर भी अज्ञात सिद्धांत में बाहे जो हो, किन्तु उपास्य रूप में प्रवर्धित होने पर मर्त्यों का पक्ष लेने वाला सगुण और ससीम ही रहा। आगे चल कर अज्ञात सौपक में विस्तार से विचार किया गया है।

अनीश्वरवादी मतों के अतिरिक्त विच के समस्त ईश्वरवादी दर्शन और साम्प्रदायिक मान्यताओं से अवतारवादी तर्कों को शूषक करना अत्यन्त कठिन है। इसका मुख्य कारण है, पुनः-पुनः और देवा-देवा में प्रकट होते रहने वाले अवतारवादी मानद्व और दृष्टिकोण। इराक में ईश्वर को शुम्प और 'नेति-नेति' से विभूषित किया जा सकता है किन्तु अरबधर में नहीं, क्योंकि

साहच्य में अनेक रुचियों एवं अधविचारों से प्रसन्न उस बहुदेव-पूजा को पाप या अपराध बतलाया और उसके स्थान में एकदेव या एकेश्वर-पूजा की प्रतिष्ठा की।^१ कल्पना एकमात्र अज्ञात ही इस धर्म के उपास्य माने गये।

आदि रूप

अज्ञात का ज्ञान चिंतन की दृष्टि में इहमी (विशुद्ध ज्ञान) और हाली (साधारण्य) दो प्रकार का माना जाता है।^२ सैमांतिक दृष्टि से यह अमीम, अनन्त, अद्वय, अगोचर और अज्ञान है।^३ परन्तु उसकी आदि समागत सत्ता अज्ञ के समान इस मत में भी स्वीकार की जाती है।

सृष्टि निर्माण के पूर्व केवल बही विद्यमान था। वह अकेला होने के कारण केवल स्वयं को ही देखता था। वह अपने अह को जानता था। वह केवल पूर्ण स्वरूप था, क्योंकि अपूर्ण तो वह केवल रूप में आवृत्त होने पर होता था। वह अपने विशुद्ध रूप में कायल अपरिवर्तित और सनातन सत्ता-मुक्त है। अचरता, परिवर्तनशीलता और श्लेष या गोचर भाव का सम्बन्ध तो केवल उसके रूप से है।^४ वह आत (सत्ता), मिथत (गुण) और कर्म में अद्वितीय है, वह अनुकनीय तथा सृष्टि के सभी उपादानों से मिक्त है।^५ विरोध होते हुए भी सृष्टि में केवल बही स्पष्ट है और एकमात्र सत्य है।

निर्गुण (तन्मयी) और सगुण (तत्समी)।

अज्ञात के आदि रूप में ही दो प्रकार के रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। उनमें एक को निर्गुण-निराकार और दूसरे को सगुण-साकार कहा जा सकता है, क्योंकि उपर्युक्त कथन के अनन्त, अगोचर और अज्ञान विशेषों में उसके निर्गुण रूप की अभिव्यक्ति होती है तथा दूसरी ओर उसकी विविध सत्ताओं में सगुण रूप का भी आमान मिलता है। इसी स्थल पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निर्गुण-निराकार उसका सनातन रूप है और सगुण साकार चणिक और ममीम रूप। अरम के शेर मुहम्मद इबादिस की पुस्तक 'इर्शादत' के अनुसार ईश्वर सृष्टि और सृजन से परे है क्योंकि सृष्टि-काय का

१. ही तुम्हिलेक शीट ५० ३० ।

२. इतिहासी २६० ।

३. इतिहासी ५ २८४ ।

४. ति० अ० ५ ४ । ५. पू० सा० सा० ५० २५० ।

६. अस्तुतिहासी द्वारा अनेक तन्मयी और तत्समीय का अर्थ अन्वय विशुद्ध अर्थात् सत्ता तथा सत्ताकरण या सत्तानिष्ठ भी माना गया है। इतिहासी ५० २६८, २७० ।

सूफ़ीय सम्बन्ध उसकी नामाभिप्यक्ति मात्र से है। परमात्मा पूर्ण रूप से स्वार्थात् और स्वतन्त्र है। उसकी सत्ता क दो पहलू हैं तनज़ीह और तसबीह। इनमें अम्मा-मास्वी व नाम हैं जो और किसी नाम पर निर्भर या आधारित नहीं हैं; जैसे—क़ैवी (सक्तिमान), गनी (स्वतन्त्र), आदि। इनके विपरीत अम्मा-मुबुकी के नाम हैं जो दूसरे नामों पर आधारित हैं। जैसे—रज़ाक (शाना) श्राकिह (अज्ञ) और गज़ार (बयासीह)।^१

इस प्रकार असीम और तसीम उसके दो रूप निरू होवे हैं। असीम मिगुण या तनज़ीह का परिचायक है और तसीम सगुण या तसबीह का। अतः तसबीह परमात्मा की तसीम अभिप्यक्ति है और तनज़ीह उसकी सर्वोपरि सत्ता है। यदि वह तसबीह रूप में विद्यमान है तो भी तनज़ीह से परे नहीं है तथा तनज़ीह में उपमित होते हुए भी वह तसबीह में व्यक्त होता है।^२ इसी तथ्य को सूफ़ी बग से इस प्रकार कहा गया है कि उसका अकाल तो सर्वैव अल्पक रहता है और अमाक आधिभूत होता है।^३

इस तथ्यों से स्पष्ट है कि एकरबराबरी अह्लाह के रूप में उपनिषद् मन्त्र के मरस सगुण और मिगुण तथ्यों का भी समावेश किया गया था।

प्यूह के समानाम्तर रूप

सूफी साधकों ने अह्लाह के रूप को चार भागों में विभाजित किया है, जो बंगल एवं पाञ्चरात्र मठों में प्रचलित वैष्णव प्यूह के समानाम्तर प्रतीत होता है। इस प्यूहवाह की विशेषता यह रही है कि इसमें गूदीत बामुदेब, मक़रग मधुक्क और अदिकर का सम्बन्ध एक ओर तो परमात्मा बामुदेब की सृष्टि या जीव सम्बन्धी विभिन्न अभिप्यक्तियों तथा बामुदेब-रूप में परमात्मा की निम्न स्थिति से रहा है। सूफ़ी और साधक की ओर से इनका सम्बन्ध क्रमशः चित्त, अहकार मन और बुद्धि से प्रतीत होता है। इन चारों अवस्थाओं का सम्बन्ध साधक की आंतरिक अवस्थाओं से भी माना जा सकता है। अतः इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें उपास्य-उपासक दोनों के क्रमशः अह्लाह और आराहमूचक तत्त्व विद्यमान हैं।

अहरोह-आरोह स मेरा तात्पर्य परमात्मा की क्रमशः अभिप्यक्ति तथा पुनः साधक के क्रमशः ईशरोम्मुख आरोहण से है। क्योंकि 'भागवत' में सांख्यवादी सृष्टि-आविर्भाव का ऋम बामुदेब-प्यूह के ऋम से मयुक्त किया गया है। वहीं बामुदेब से महत्त्व, मक़रग महत्त्वशीर्षा, अमल इव, से अहकार एवं

१ मि० अ० २ २०२४।

२ डि० अ० २०२१ २७।

३ सि० अ० २ २०२८।

प्रयुक्त थे बुद्धि और अतिरिक्त से मन का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।^१ इस क्रम में बुद्धि-आविर्भाव का क्रम विद्यमान है। दूसरी ओर पाँचरात्रों में प्यूह का प्रयोजन उपासकों के अनुग्रहार्थ बुद्धि, स्थिति, महार और सरस्वत कहा गया है।^२ इसके अतिरिक्त इस प्यूह का सम्बन्ध चित्त, अहंकार, बुद्धि और मन त्रिन चारों अवस्थाओं से स्थापित किया जाता है। च सायक क मी साधनात्मक विकास की चार अवस्थाएँ हैं, क्योंकि साधना में इन्द्रियों के दमन द्वारा मन का केन्द्रीकरण प्रथम अभ्यास माना जाता है। मन के केंद्रित होने पर सायक क्रमशः मन को बुद्धि में, बुद्धि को अहंकार में और अहंकार का चित्त में रूप करके परमात्मस्वरूप से तादात्म्य स्थापित करता है।

इस प्रकार प्यूहवाद में परमात्मा के अवरोह और उपासक के आरोह के रूप में दोनों का क्रम विद्यमान है।

मूषी मत में भी ब्रह्माह का रूप का विभाजन चार रूपों में दृष्टिगत होता है। उन्मत्ता प्रथम रूप है अहंविद्यत का रीबुद्धौष या गुहातितुष है। अहं विद्यत के ईश्वर के विषय में कहा जाता है कि वह अपरिमित, अक्षर्य और अमल्य गुणों से विभूषित है।^३ उन्मत्ती यह गुणात्मक स्वरूपा 'तत्त्वप्रय' में प्रतिपादित नित्य ईश्वर के समकक्ष विदित होती है। 'तत्त्वप्रय' में भी उन्मत्ती ईश्वर के ज्ञान, शक्ति आदि कृपाजनकारी गुणों को नित्य निःसीम, निरन्तर, निरुपाधिक निर्दोष तथा समाधिकरहिता कहा गया है।^४ ब्रह्माह के अभ्यास और व्यक्त रूप की वर्णन करते हुए बताया गया है कि अकाल उन्मत्ता अभ्यास रूप है और उन्मत्ता व्यक्त रूप।^५ 'तत्त्वप्रय' में भी उन्मत्ता मकल जगत् का कारणमूल माना गया है।^६ इसके अतिरिक्त त्रिस प्रकार ईश्वर को 'तत्त्वप्रय' में 'अनन्तावतारकर्मिणि (अनन्त अवतार धारण करने वाला) बताया गया है।^७ उन्मत्ती प्रकार ब्रह्माह मी अनेक अनन्त मन्वीम रूपों में आविर्भूत होता है।^८ प्यूह रूप में त्रिस प्रकार चित्त का सम्बन्ध आनुदैव से स्थापित किया जाता है, उन्मत्ती प्रकार अहंविद्यत से अमिदित मुद्रा की अवस्था सम्भवतः दाहृत के समानांतर घाहृत की अवस्था है। सायक की दृष्टि में यह अन्तिम वह इन्दीकी अपर्या है जब कि सायक और माध्य दोनों परस्पर लड़ाकार हो जाते हैं।

उन्मत्ता दूसरा रूप है उत्कृष्टविद्यत त्रिसका सम्बन्ध ममदि वा स्वदि तथा विरत विधरूप या अनन्त प्राणियों के मत्तात्मक आविर्भाव से है। यह रूप

१ का ३ ३६ २१-३१।

२ तत्त्वप्रय पृ० १०२।

३ ति अ० ६ पृ २२।

४ तत्त्वप्रय पृ० ७५।

५ मि० म० ६ पृ २५।

६ तत्त्वप्रय पृ० ८५।

७ तत्त्वप्रय पृ० ८९।

८ मि अ० ६० पृ० २५।

विद्येयता की दृष्टि से सकलपद के समकक्ष प्रतीत होता है। समकक्ष उसके त्रिविध आविर्भाव की सर्वा करतें हुए कहा गया है कि उसकी सत्ता दो प्रकार की है। इनमें प्रथम है—बाकिबुल्ल बख्श (अनिवार्य सत्ता) और दूसरा है—मुमकीमुक बख्श (सम्भावित सत्ता)। इन दोनों का सम्बन्ध शाहूत और शाहूत अवस्थानों से है^१।

उसका तीसरा रूप है रुबुदियत या स्वामीभाव जो प्रद्युम्न के समकक्ष है। सूफी मत में इसे आत्मने शब्द या आत्म शक्त का बोधक समझा जाता है। यों तो सूफी फरीन्ता और मनुष्य के रूप में अन्तर करते हैं, फिर भी मनुष्य की आत्मा ईश्वर का ही ससीम शुद्ध रूप है। एक ही आत्मा का स्पष्टि मात्र से क्षेत्र में बीज के सङ्घ प्रसार होता है। या जिस प्रकार एक दीपक की प्रतीति से अनेक दीपक प्रज्वलित होते हैं (यह दृष्टान्त पाँचराश्री के 'बीपम् हुत्पद्म दीपबद् के समकक्ष प्रतीत होता है'^२)। उसी प्रकार एक मनुष्य से अनेक मनुष्य होते हैं। विविधता यह है कि इस प्रकृति का समर्पण करने के उपरान्त पुनर्जन्म और कुल्लु या अवतारवाद से इसका वैषम्य प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि इस धर्मिण्यविज्ञान का साम्ब न तो पुनर्जन्म से है न अवतारवाद से। शरीर हम आत्मा का बन्ध है। आत्मा अशारीही है, शरीर उसका बन्ध है। आत्मा ही ईश्वर है। बिना उसके आलेश के कुछ भी नहीं होता।^३ इन कथनों में सुनिश्चि और उसके उपास्य प्रद्युम्न के साथ आत्मा-नासक का भाव दृष्टिगत होता है। इस रूप के अन्तर्गत अवस्थ की अवस्था जाती है। यह नासक के ऊपर की अवस्था है। इस अवस्था में साधक व्यापारिक शक्ति प्राप्त करता है।

उसका चौथा रूप है उमुदियत सेवक या पदा रूप। इस रूप में वह पूर्णतः इनसान की अवस्था में विहित होता है। इसे बीज का उदाहरण देकर हम प्रकार समझाया जाता है कि जिस प्रकार बीज रूप में बीज केवल अपने बीजत्व को जानता है; उसी प्रकार इनसान के रूप में वह केवल अपनी ससीमता से ही अवगत रहता है। साधना की दृष्टि से इसका सम्बन्ध प्रकृत और नामूत की अवस्था से है। सूफी साधक मनुष्य की प्रकृत अवस्था को नामूत की अवस्था मानते हैं।^४ अतः सूफी इनसान की वह प्रारम्भिक अवस्था है जब वह मन की ईश्वर की ओर कन्धित करता है। परिणामतः इनको सब और उसके उपास्य अनिस्तु के समकक्ष माना जा सकता है। उपर्युक्त चारों रूपों का स्पृहवारी क्रम निम्न ढंग से विहित होता है—

१. सि० अ० ६० पृ० ५।

२. सि० अ० ६० पृ० ५७

३. सि० अ० ६० पृ० ५।

४. सू० सा० सा पृ ३३०।

१—अहुरिन्मत	आहुत (दाहुत)	वासुदेव	चित्त ।
२—उत्तुरिन्मत	आहुत	संकपन	अहकार ।
३—सबुकिन्मत	जबकत	मधुसू	बुद्धि ।
४—उत्तुरिन्मत	वासूत	अविच्छेद	मन ।

सूची और वैष्णव दोनों रूपों में अपने-अपने विचरनामों के होते हुए भी बहुत कुछ साम्य हीन पड़ता है। दोनों का सम्बन्ध उपास्य और उपासक की दृष्टि से समान रूप में परिच्छिन्न होता है। क्योंकि अहुरिन्मत से लेकर उत्तुरिन्मत तक अज्ञात का असीम और अम्यक रूप से ससीम या इतसान तक व्यक्त होने का जो भाव है, वह वासुदेव से लेकर अनिच्छेद तक भी देया जा सकता है। कदमे का तात्पर्य यह कि परमात्मा के आविर्भाव का यह अक्षरोद्-क्रम दोनों में समान रूप से चरितार्थ हुआ है।

पुनः उपासक के साधनात्मक अक्षरोद्-क्रम को भी वासूत से लेकर आहुत तक या मन से लेकर चित्त तक देया जा सकता है। वैष्णव म्युद्-क्रम में उपासक जिस प्रकार मन को बुद्धि में बुद्धि का अहकार में और अहकार का चित्त में लय कर देता है उसी प्रकार सूची साधक भी क्रमशः वासूत से जबकत, जबकत से आहुत और आहुत से दाहुत या वाहुत में जाकर उपास्य के माय तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

इस प्रकार उपास्य और उपासक दोनों दृष्टियों से हममें साम्य प्रतीत होता है।

यों इस्लाम में प्याबहारिक रूप से अज्ञात का रूप निराकार माना जाता है, किन्तु 'कुरान' में अज्ञात का जैसा वर्णन मिलता है, वहाँ वह निराकार की अपेक्षा साकार अधिक है। पाँचराशों में त्रिगुण-त्रिगुण उसमें उपासियों से युक्त उपास्य मध्य 'पर' रूप में त्रिगुण-अनुशरो, परिशरो और त्रिगुण पापशरी से सेवित, स्थान विनाय वैशुष्ट या त्रिगुणोक्त में निराजमान रहते हैं उसी प्रकार कुरान के अज्ञात भी पहिल में सय्य सिद्दात्मन पर अपने करिस्तों के माय निवास करत हैं।^१ कहा जाता है कि अज्ञात के आन रूप हैं जो उसका त्रिगुण सिद्दात्मन बोधा करते हैं।^२ इसके अनिच्छेद उसके अम्य देव रूपों में कुछ देव या सृष्टि की रथा या संचालन करते हैं और कुछ निरन्तर उसकी सेवा में उपनिधन रहते हैं।^३ 'कुरान' के उक्त रूपों के आधार पर ही इस्लामी साहित्य में इसके मानवीकृत (अणुपापमार्फिक) रूपों का विसृत बगन

१ एर एनू वि १०११ । २ मू वि ता० ५ ५१ ।

३ ए ए उपशोभ की० ५ २० ।

मिलता है।^१ उपास्य ब्रह्म विरपेक्ष उपासियों से पुक्त होने पर भी साधारणतः अपने भक्तों के प्रति उदासीन नहीं रहता। विष्णु देव-शत्रुओं का विनाश करते समय हीनों के पक्ष में बचरव विदित होते हैं, परन्तु उपासक-रूप में गृहीत होने पर वे भक्तों की रक्षा और रक्षण करते हैं। इन भक्तों की बोधि में इनके प्रतिद्वन्द्वी रावण आदि भी हारपाक के रूप में गृहीत होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माह में भी मनुष्य जाति एवं उसके अनुपासियों के पाठन-संबंधी उपादान मिलते हैं।^२

मातृवीय भाव

इस्लामी या सूफी दोनों ब्रह्माह पर मातृवीय भावों का आरोप करते हैं। इन दृष्टि से वह मनुष्य के मरुत अह् हाकिम (मरा), अह् लाकिम (कहा), अह् मुलामीर (चित्रकार), अह् इयी (जीवन दाता), अह् कादिर (पाकिमान) और अह् कवीर (जाता है)^३। अह् रहमान उसका वह नाम है जिसके अनुसार वह स्पष्ट होकर जीवों पर कृपा करता है।^४ हिन्दू इष्टियों के सद्य कार्य, नाम, गुण और अन्ता इन चार रूपों में अभिव्यक्त होने के अतिरिक्त वह मुहम्मद कह कर पुकारने पर तत्काल उत्तर देता है। यहाँ मुहम्मद शब्द ब्रह्माह का पर्यायवाची विदित होता है। वह सिद्ध-सावक पर अनुग्रह करने के लिए अपने को विभिन्न नामों में व्यक्त करता है। इसी से वह उपासक के लिए अह् रहमान (करुणामय), अह् रब (स्वामी), अह् माकिम (सजाह), अह् अलीम (सर्व पाकिमान), अह् कादिर (सब रूपापी) है। इनमें संभवता उपास्य की दृष्टि से ही अह् रहमान रूप सर्वश्रेष्ठ माना गया है।^५

मनुष्य के समान ब्रह्माह भी मुरद और दुःख (अह्दिकाम) से पुक्त है। वह इष्टदेव के रूप में ससीम या रब है, जिसका मन्पेक मरद्व से विदित सम्बन्ध है।^६ अन्य भावों की अपेक्षा इसके करुणामय भाव पर सूफी विद्वान् बौद्ध प्रभाव स्वीकार करते हैं।^७ इसी से वे ब्रह्माह के विभिन्न प्रेरोपामना को सर्वोत्तम उपासना समझते हैं।

ब्रह्माह मातृ-मालीन सगुण इष्टियों या अर्था रूपों के सद्य अपने धर्म या

१ दो मुलामीर कीट ५० ६७।

२ इरान और पाकिस्तान में २० मूरा ४२ आ० १६ और मूरा २५ आयन ६९।

३ मि० ज० ६० ५३। ४ ११० ११५ मि० ५ १९।

५ ११० ११५ मि० १२६-१२७। ६ ११० ११५ मि० १५८।

७ ११० ११५ मि० १६०-१६१।

सम्प्रदाय के प्रति भी सखेष्ट प्रतीत होता है। इसी से अज्ञात इस्लाम का कार्य प्रकृतक के समान करता है। यहाँ उसमें मानवीय राग-द्वेष के भाव विद्यमान हैं। वह मनुष्य के समान अनुभव करता है, प्रसन्न होता है, दुःखी होता है, निश्वास करता है या प्यार करता है।^१ एक कहानी के आधार पर अल्-हुज्जिरी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अज्ञात अपने भक्तों और सत्तों की रक्षा भी सैतान के उत्पात से किया करता है।^२

इस प्रकार इस्लाम का अज्ञात विराकार होते हुए भी अनेक मानवीय स्वभाव गुण और धर्म से युक्त है।

अवतारी उपास्य विष्णु या बामुदेव विश्व-कल्याण के विभिन्न अंश या पूर्ण रूप में स्वयं अवतरित होते हैं और अपने भक्तों को वर्धन देते हैं। उसी प्रकार कहा जाता है कि अज्ञात का स्थान मुहम्मद साहब ने किशोर रूप में किया था।^३ साथ ही अज्ञात ने अपने रूप के प्रतिकल्प जाहम या मनुष्य की रचना कर उसमें अपनी रूढ़ फूँकी थी।^४

पूरे मध्यकासीन युग के भास्कारों पूरे धर्म्य वैष्णव सम्प्रदायों में प्रयोजन अर्थात् वैष्णव भक्ति के प्रचार के विभिन्न विष्णु के स्थान में उनका स्थान पापद और आयुधों के ही अवतार प्रकटित हो चुके थे। इस अवतार के प्रयोजन में विष्णु या ईश्वरवाद का प्रचार स्पष्ट विहित होता है।

इसी प्रकार इस्लाम में अज्ञात भी मनुष्य जाति पर रूप देने के लिए समय-समय पर पैगम्बर भेजता है। साथ ही अपीरियेय बेशों के मरदा कुराने पाठ को प्रकट करता है। उसके करिस्ने स्वयं उसकी आज्ञानुसार मनुष्य के कम-मात्र संवर्धन कार्य करते हैं। किन्तु करिस्नों के अलावा यह भी भाव्य जाति की वैश्व-नेत्र किया करता है। इस धर्म में यह धारणा अव्यधिक प्रचलित है कि अज्ञात प्रत्येक रात में अपने निम्नतम स्वर्ग में उतरता है। वह यहाँ आकर भक्तों की मनोमिलावा पूर्ण करता है।^५

विशिष्ट गुण

वैष्णव अवतारवाद में अवतारी ईश्वर का अवल निगुण या मगुण मम्मल

१ आर १० गु० पृ १२। २ हुज्जिरी पृ १३०।

३ ११० इम मि० पृ० १७ तथा की रेकित्तु लारट एन्ड पीरीबिनुद इन इस्लाम पृ ४६।

४ १२ इम० मि० पृ १५५ और जा० प्र अज्जाराट एन्ड पृ ३८ गा दीपर बन है दुकरता उई एव आरम अवतारा।

५ की हुज्जिरी पृ १००।

रूप ही नहीं मिलता अपितु उन दिव्य पादगुणों से भी कुछ माना जाता है, जिसके कारण वह भगवान् वा भगवान् रूप में सगुण वा पूज्य तथा महाविभूति का धारक और अपनी सृष्टि का कर्ता पादक और संहारक होता है।^१ निष्कर्षतः पदगुण ही उसके सगुणत्व के विसंग परिचायक होते हैं।^२

इसी प्रकार अज्ञाह में भी कुछ ऐसे विरोध या उपाधियों आरीपित की जाती हैं जिनमें विचारकों ने गुण कहकर अभिहित किया है। 'ही सुखीम शीह क केजक ने अज्ञाह को ज्ञान, शक्ति और चेतन से कुछ माना है।^३ उनक द्वारा प्रस्तुत 'ही शीक कजबर' में कहा गया है कि वह अलौकिक अज्ञाह, साधत रहा है और अपने नाम और गुण के साथ साधत रहेगा। उसकी अपनी सत्ता और क्रियात्मक शक्तियों भी साधत हैं।^४ उसकी अपनी सत्ता में चेतन, शक्ति, ज्ञान वाक, श्रवण, धरम, इच्छा आदि प्राप्ते लभे हैं तथा क्रियात्मक सत्ता में सृष्टि, बालन, उत्पत्ति पुनर्निर्माण, निमाय आदि पुरीत हुये हैं।^५ वह सर्वैव नाम और गुण से कुछ रहा है और रहगा। उनक दोई भी नाम या गुण किसी समय बीच में नहीं मिलते। वह अनादि काल से अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा अपने को जानता है। ज्ञान उनका साधत गुण है। अपनी देखर्य शक्ति द्वारा वह सर्वशक्तिमान है। देखर्य उनका साधत गुण है। वह अपनी वाक् शक्ति क द्वारा बोलता है। यह वाक् उनका अनादि गुण है। वह अपनी श्रवण शक्ति क द्वारा सृष्टि करता है, उसकी यह श्रवण-शक्ति अनादि है। वह अपनी क्रिया शक्ति क द्वारा कर्म करता है, उसकी यह क्रिया शक्ति अनादि है।^६

इस प्रकार अज्ञाह में उपलब्ध गुणों को क्रमशः सात अमाळ, जकाल और कमाळ इन चार भागों में विभक्त किया जाता है। जिनमें एकता, नित्यता साधता आदि उसकी सत्ता से सम्बद्ध गुण जात हैं। उदारता, क्षमा, आदि माधुय-प्रधान गुण अमाळ हैं। शक्ति और सप्रमन आदि देख्य प्रधान गुण जकाल हैं और वाक् या आत्मार्थिक परम्पर विरोधी गुण कमाळ कह जाते हैं।

उपयुक्त गुणों से कुछ अज्ञाह क साकार और सक्रिय रूपों का मान होता है। भारतीय सूफी कवियों ने संभवतः उन्नी परम्परा में प्रेमात्म्यात्मक काव्यों में अपने उपाधियों का माधुय-प्रधान रूप प्रस्तुत करने क दृष्ट आरम्भ में ही उनक पथयजनित सत्ता और सगुण रूपों का वर्णन किया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना अवगत नहीं होगा कि सत वा सूफी साहित्य क विचारक इस ईश्वर में उपलब्ध निर्गुण तारों को हल कर उन्ने विराकार

१ वि पु ४ ५, ७। २ वि पु ६ ५, ७१। ३ वि पु ३ ५, ७१।
 ४ ही सुखीम शीह ५० ७१-७७। ५ ही सुखीम शीह ५० १८८-१८९।
 ६ ही सुखीम शीह ५० १८८। ७ ही सुखीम शीह ५० १८८-१८९।

कहने लगे। किन्तु शून्य और निराकार में मानवीय भाव आरोपित किये जा सकते हैं या नहीं यह एक बुराद प्रश्न है। उनकी कल्पना गोस्वामीजी के शब्दों में 'शून्य भित्ति' के चित्रों के सरस संचित होती है। संतों और सूक्तियों का निराकार राधा और पाऊक होता है तो सगुणोपासकों में 'मिर्गुण लघु माई' के रूप में सगुण हो जाता है। यहाँ दोनों के मध्य में कोई वैषम्य नहीं प्रतीत होता। फिर भी इसका समाधान अद्वैत, त्रिसिद्धाद्वैत द्वैताद्वैत या प्रतिबिम्बवाद से नहीं हो सकता क्योंकि इन वास्तविक विचारणाओं में मस्तिष्क प्रभाव एवं तर्क-सम्मत रूप किया गया है जिसके द्वारा निराकार को ही माकार मिर्गुण को ही सगुण और त्रिगु को ही लघु तथा मनुष्य को ही पूर्णवतार या पूर्ण ब्रह्म सिद्ध करना तर्क-सम्मत नहीं प्रतीत होता।

परन्तु मानवीय भावों का आरोप पाँचरात्र विहित उपास्य ब्रह्म पर किया जा सकता है, जो अनेक विषय गुणों से युक्त हैं। यह उपास्य सठ सूक्ष्मी या सगुणोपासक सभी में कहीं अस्तर्थात्मी^१ और कहीं अन्ता, कहीं पुरुष और कहीं स्त्री, कहीं पारुक और कितोर के रूप में गृहीत हुआ है। यह इन्द्रप्रधान नाबभारमक तारों के आधार पर मिर्गुण-सगुण-युक्त ब्रह्म की सभी उपाधियों का सक्षिप्त रूप है। साधारणतः मस्तिष्क विरलक्षणप्रधान होता है और तद्रूप समन्वय या सरलेपजप्रधान। जहाँ इस पुरुषरवादी उपास्य ब्रह्म का सक्षिप्त रूप पूजताः मानववृक्ष्य की हम है। यही कारण है कि मध्यकालीन साहित्य में नागा मत्त-मताम्बरों और मत्तमेदों के होते हुए भी उपास्य के उपासक-जनित स्पष्टिगत समन्वय के दृष्टान्त के लिये शास्त्रज्ञ की अर्पणा साहित्य का यादवचतु अधिक महत्त्व रटा है।

प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि आपसी सुमहत्मान थे, हमसे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जायगी। पर शूक्ष्मी मत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में आकारोपासना थी मी ही महत्त्वना थी।^२ उनका यह विचार संभवतः कदात उपास्य की दृष्टि में विचार न परने के कारण हुआ था। दक्षान में शूक्ष्म पर कदात उपास्य रूप की दृष्टि में दान पर यह अन्तर्गत सीद्ध्य, अनन्त शक्ति और अनन्त गुणों में महत्त्व ही युक्त हो सकता है क्योंकि उपास्य ब्रह्म मनुष्य की भावना का प्रसन्न ह मनुष्य के ज्ञान का भर्ती। यह राम रहीम, पद्मार्ता, बालकृष्ण, विहार कृष्ण, बाद त्रिम

१ भा १ १ ३२ में शून्य के अनिश्चित महत्त्व अन्वय रूप माना गया है, जो मिर्गुण और आत्मन्त दोनों में सम्यक है।

२ आत्मी प्रभावनी दिनीव लं ५ २१०।

चरित्र से जोड़ दिया जाय नहीं है। इस जापार पर यही कहा जा सकता है कि मनुष्य अपनी भावना से जैसा उसका रूप सोचता है वैसा ही वह होता है। उस भावनाओं से परम्परा और सम्कार को दूर करमा अत्यन्त कठिन है।

अतः सूफी साहित्य में ईश्वर के जिस रूप का बज्ज किया गया है वह केवल उनकी भावना का ही ईश्वर नहीं है, अपितु उसमें परम्परा और सम्कार का भी समेष्ट योग है। जायसी आदि सूफी कवियों में इस्लामी और भारतीय दोनों तर्कों का स्वामाजिक समावेश हुआ है। जायसी के अनुसार जो ईश्वर अकल, अरूप और अर्बब है यही कर्ता और सबका मात्म है। वह प्रकृत गुप्त और सर्वव्यापी है। परमी उसे पहचानते हैं किन्तु वापी नहीं।^१ इसमें उसके उपास्य-रूप का भी नामात्म मिलता है क्योंकि भक्तों के मराबान् की तरह वह परमी के द्वारा देव है। उसके ऐश्वर्य रूप का बज्ज करते हुए कहते हैं कि जिस आदि ईश्वर का बज्ज किया गया है उसी का यह आदि-अमृत-रहित रस्य है।^२

यही एकमात्र सर्वज्ञ रस्य करता है। जिसे चाहता है उसे साम्यक बनाता है। कितने क्षत्रधारियों को क्षत्रहीन और क्षत्रहीनों को क्षत्रधारी बनाता है। कोई उसके सरय नहीं है। वह पलत से बूँद और भीटी से हाथी बनाते की सामर्थ्य रखता है।^३ वह बज्ज को तिनका और तिनक को बज्ज कर सकता है। यह अपनी स्वेच्छा से सब कुछ करता है—किमी को लो अनेक प्रकार की भाग की सामग्री प्रदान करता है और किसी को अनेक प्रकार की यत्रगा दे कर मार डालता है।^४ यही एकमात्र इस विषय में ऐश्वर्यान् है, जिसकी सम्पत्ति

१ आ प्र सुकृ ३ और सुस ५ १५४।

अकल अरूप अबरन सी करता यह नरसो सब ओदि सो करता।

परगत सुपुन सो सरय विभापी परमी ओम्ह ओम्ह नहिं वापी ३

२ आ प्र० सुकृ ५ ३

आदि प्रक करतो सोर राबा आदि न अल्प राब जेदि छाबा।

३ तदा सरवरा सुत्र करैर। और जेदि करे राब तेदि देर।

एत्रदि अल्प निषचदि प्राबा दूसर आदि ओ मावरि पाबा।

परपन बार देत सब ओम्ह आदिदि करे इलि सरिओम्ह।

आ० प्र० पचावठ सुकृ ५० ३, ३।

४ तम्बर ओम्ह न जाने ओर करे सोर ओ वित्र म होर।

काहुँ ओम्ह मुशनि हाय घारा काहुँ बहुत मूर हुस मारा।

आ प्र० पचावठ ५० ३, ३।

नित्य होने पर भी घटती नहीं।^१ वह अन्तर्पामी रूप में घट-घट की बात में अवगत रहता है।^२ उसका कर्तृत्व अनन्त और असीम है।^३

उपयुक्त कर्तृत्व और सामर्थ्य के अतिरिक्त उसके अनन्त गुणों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार उसने अपने अनन्त गुण प्रकट किये हैं। फिर भी समुद्र में बूंद के सरस बह कम नहीं हुआ।^४ उस निराकार ईश्वर में अभिव्यक्तिजनित अमित्य का भाग होता है। व पुनः स्पष्ट कहते हैं कि वह गाम्गाह ईश्वर अनेक गुणों बाटा है, जैसा वह चाहता है जैसा उसके द्वारा तुरन्त हो जाता है।^५

उपयुक्त तर्कों से यह स्पष्ट है सृष्टियों का ईश्वर निराकार होते हुए भी निर्गुण और निष्क्रिय नहीं है, अस्तु मगुण और सक्रिय इच्छा की भाँति लक्ष्य और पाकक है।

निर्माण और प्राकट्य

मगुण रूप बर्जित होय क कारण निराकार अज्ञाह सर्व्व इन्धामी और सृष्टी माधनों क सामने एक प्रभ बन कर पड़ा रहा है। अथारवाह क किरोधी होत हुए भी व उसक इत्तत वा 'साध्याकार' क लिए सदैव प्बल रहने ई।^१ रूप उपेक्षित हाते हुए भी वे विविध रूपों में उमझ आभास वा वसन करते हैं। यह स्थिति एक मामास्य माधक से क्षेत्र पैगम्बर तक की रही है। निराकार ईश्वर इन्धामी पैगम्बरों के समक्ष भी सदैव एक प्रभ बना रहा। जब मूसा तुदा का दर्शन करवा चाहते हैं तो तुदा उत्तर देता है कि तुम मुझे नहीं देख सकते किन्तु मुहम्मद से तुदा स्वय कहता है कि तुम मुझे देख सकते हो।^२ हम प्रकार विविध परिस्थितियों का दर्शन इन्धामी सम्यज्ञापी में हाता है।

१ जनपति वही केहक संज्ञाक। सबे ईरं निधि बर न मंडाक।

भा० प्र० वपारण पृ० १५१

२ काबा बरम काज दे रोनी, बीती रहे निधिनि।

नकछ घरम दोहार्ई काज, जे पर पर रही निधि। जा० प्र० वपारण पृ० ५९।

३ अनि मगर करवा बर करवा बरनि न कीरं पावे करवा प्र

भा० प्र० वपारण पृ० ५१।

४ ऐम कीर्ई सर गुन पापण, अरुं समुद्र में ईर न बरा।

भा० प्र० वपारण पृ० ५२।

५ बड़ गुलबन रोमण वही लंबारे देग। बी अम गुनी संदारे को गुन कौ अरैव।

भा० प्र० वपारण पृ० ५२०।

६ छिन्-अ० ६० पृ० १८५।

क. न० का० पृ० ११८।

इसके मूल में पैठने पर इस्लामी अवतारवाद सम्बन्धी एक विशिष्ट रहस्य का उद्घाटन होता है। वह यह कि इस्लाम या सूफी सम्प्रदायों ने जिस हुक्क का विरोध किया है उसका तात्पर्य सैदान्तिक अवतारवाद का घातक होने की अपेक्षा साम्प्रदायिक अधिक रहा है। निकोटसन के अनुसार मुस्लिम मस्तिष्क में 'हुक्क' का अर्थात् सत्यम्ब ईसाई अवतारवाद से था। अतः ईसाई और मुस्लिम समाज में परस्पर बैमनस्य होने का कारण 'ईसाईयों' में प्रचलित हुक्क की प्रकृति का विरोध इस्लाम भी स्वाभाविक था। इसी से इस्लाम हुक्की प्रकृति का विरोधकर्ता ही नहीं कहकर पात्रु रहा है।

केवल साम्प्रदायिक विरोध होने का कारण ही सैदान्तिक दृष्टि से इस्लाम अवतारवाद की कतिपय प्रकृतियों की अवहकता नहीं कर सकता है। इतना अवश्य हुआ कि 'हुक्क' या हुक्कक पर्यायवाची अवतारपरक दार्श्यों का प्रयोग नहीं हुआ। किन्तु फिर भी जिन निर्माण या प्राकृत्यबोधक दार्श्यों का प्रयोग इस्लामी साहित्य में हुआ है वह अवतारवाद से पृथक् नहीं कहे जा सकते क्योंकि निर्माण और प्राकृत्य दोनों अवतार या जन्म के मध्य कोई न कोई प्रयोजन अवश्य रखते हैं।

यह प्रयोजन भारतीय अवतारवादी ग्रन्थ गीता में भी दृष्टिगत होता है। गीता ११ में (संभव) का अतिरिक्त गीता १० में 'तदात्मानं सुजाग्रह' का प्रयोग हुआ है।

इस्लाम का जन्मद मे भारतीय ईश्वर के मध्यम तो गी० १५ का समाप्त अनेक जन्म कारण किबा है न गी० १५ की तुलना में वह कोई 'द्विप जन्म' धारण करता है। किन्तु फिर भी वह निर्माण और प्राकृत्य से पृथक् नहीं है। यही नहीं सूफी साधक उसका मूर्त रूप पर भी विचारते हुए दिग्दर्श पवते हैं। अवतार मुहीबरीन इस्लाम अर्ह अरबी ने ककरी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मउड़ी का अपने रूप तो है ही, अन्य रूप भी उसी में निहित हुए हैं। किन्तु इन रूपों का निर्माण रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह स्वयं इच्छा करता है और अपने का मूर्त रूप में व्यक्त करता है।^१

इस प्रकार अपने विराकार किन्तु मानवीय मातों से समाविष्ट ईश्वर को देखने की विज्ञाना का विकास सूफी साधकों में विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता रहा है। वह कमी परिस्ता और कमी पैगम्बर की आत्माओं में उमका दर्शन दिया करते हैं और कमी बदिस्ल मे उमकी आयाज सुनते हैं। कुछ हुक्की यदि उमक अवतरित रूप में विचार्य करते हैं तो कुछ उमका इगहाद या

सदृश उसकी अवतार-परम्पराएँ भी बरूनी हैं। इस्माइली सम्प्रदाय का अवतुल्ला अफन को स्वयं इमामों का हैपी अवतार तथा पैगम्बर मानता था।^१

इसमें विहित होता है कि अल्लाह की विभिन्न रूपों में अवतरित होता है। अवतारवादी सम्प्रदायों में पाँचरात्र विभवों के सदृश उसके अर्सेक्य रूप माने गए हैं और कहा गया है कि उसके समीप रूप की पूजा ही मूर्ति-पूजा है।^२ आध्म, मुहम्मद, इमाम प्रभृति उसके अवतरित रूप हैं तथा इनकी भी अवतार-परम्पराएँ इस्लामी और सूफी सम्प्रदायों में प्रचलित हैं। फिर भी इस्लामी अवतार भावना की अपनी कोई मौलिक स्व-रेखा नहीं विहित होती, अपितु इस्लामी अवतारवाद बौद्ध, ईसाई, यहुदी, हिन्दू आदि धर्मों के अवतारवादी विचारों का मिश्रित रूप विहित होता है। एक ही ईश्वर ईसाई के लिए ईसा में और हिन्दुओं के लिए अवतार-रूप में प्रकट होता है। बही मुसलमानों के लिए मुहम्मद आदि पैगम्बरों में भी प्रकट होता है।

पुण्य रूप और किशोर-किशोरी रूप में प्राकृत्य

उपर्युक्त रूपों के अनिरीक सूफी साधकों का यह परम विश्वास रहा है कि अल्लाह का अव्यक्त रूप अछाह है और व्यक्त रूप ही अमारु या सीमूर्य रूप है।^३ यही नहीं प्रेम या एग्निस मिगत एक अवतारवादी परम्परा भी इनमें प्रचलित है। उस परम्परा के अनुसार गद्य (प्रेम) से मूर मूर से शेर, शर से रुद रुद से कल्ल और कल्ल से कालिब (शरीर) का अवतार माना गया है।^४ इस क्रम से सम्भवता यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार अल्लाह का प्रेम क्रमशः अवतरित होकर शरीर में व्याप्त हो जाता है क्योंकि अन्ध स्थलों पर भी कहा गया है कि प्रेम अल्लाह की ओर से प्रेरित होता है और आलम उसका अनुभव करता है।^५ इस प्रकार सूफी साधना में प्रेमोपासना को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। उस सर्वोत्तम प्रेमोपासना के आत्मबन्ध विद्या-विषयतम हो सकते हैं या किशोर-किशोरी। इन सभी रूपों में अल्लाह की अभिव्यक्ति मानी गई है।

एक स्थल पर उसके पुण्य रूप की शौकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि प्रथम समीप रूप में काशीब का चार स प्रेम होने का कारण काशीब (सनातन सत्ता) प्रेमी था और मुमकीब (सम्भावित सत्ता) उसकी प्रेमिका थी। दूसरे समीप रूप में मुमकीब आविर्भूत हुआ और वह प्रेमी

१. हि० प० वि० 'साउन' जी० १ पृ ११८।

२. मि. अ० ६० पृ० २८।

३. मि० अ० ६० पृ १८। ४. मि० अ० ६० पृ० ११। ५. 'म० अ ६० पृ० ११।

हुआ तथा बाजीब उमकी प्रेमिका हुई।^१ यहाँ मुमकीन और बाजीब का सम्बन्ध राधा-कृष्ण, कृष्ण-राधावत् दृष्टिगोचर होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमोपासना में बिना प्रिया-प्रियतम भाव की आवश्यकता होती है वह सूफी सम्प्रदायों में भी विद्यमान था। कहा जाता है कि अरब में मनुष्य प्रेमी होता है और की उमकी प्रेमिका होती है। फारस में प्रायः दोनो प्रेमी-प्रेमिका होते हैं। इन दोनों व्यवहारों का प्रयोग सूफी उपास्य और उपासक में भी उचित होता है।

उपर्युक्त युगल रूप के अतिरिक्त पृथक्-पृथक् किशोर और किशोरी रूप में अज्ञात का आविर्भाव भी मध्यकालीन सूफी साहित्य में मिलता है। सृष्टियों में कतिपय साधक अपने उपास्य अज्ञात को दारि-मूर्त-रहित किशोर क रूप में आविर्भूत मानते थे।^२ इनके मतानुसार अज्ञात, अपने अन्ततम प्रेम की अभिप्यक्ति के निमित्त या तो किशोर हो सकता है या किशोरी। सृष्टियों के अनन्य प्रेम का आलम्बन अज्ञात का सौन्दर्य या जमाक है। जमाक या मूर की साकार अभिप्यक्ति या तो किशोर में हो सकती है या किशोरी में।^३ इसी से कुछ सूफी साधक किशोर को ईश्वर का प्रतीक मान कर उमकी उपासना करते हैं और कुछ पदावली के समान किशोरी को अपनी प्रेमात्मिक का आलम्बन मानते हैं। बहाबन्द की सुबाब नाम की पुस्तकी बरवा और रसमान के बनिफे का पुत्र तत्कालीन सूफियों में प्रचलित प्रवृत्ति के भी सातक कह जा सकते हैं।

पर सूफी किशोर-किशोरी और भारतीय युगल-उपासना में अंतर यह है कि भारतीय मातृपौपायक शक्ति मन्त्र राधा-कृष्ण या आमकी-राधक की मनुक्त रूप में उपासना करते हैं, जबकि सूफी अज्ञात के किशोर या किशोरी में से किसी एक रूप के प्रति अनन्य भाव रखते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय युगल रूप में पुण्य और प्रकृति का दार्शनिक भाव बढमूल है। परन्तु सूफी किशोर उपास्य सम्भवतः इतिवृत्त की दृष्टि से यूनानी धर्म की किशोर-पूजा से प्रेरित हुआ है क्योंकि यूनान में किशोर प्रेम आदर्श प्रथम माना जाता है।^४ अतः यह सम्भव है कि फारसी साहित्य एवं सम्प्रदाय में ईश्वर का किशोर रूप प्रथम परम्परा से प्रभावित हो।

भारतीय सूफी साधकों में भी किशोर प्रेम का साम्प्रदायिक रूप दृष्टिगोचर होता है। सुफ्ताजबहादु नामक सूफी के विषय में कहा जाता है कि किशोर

१ सि० ज २ २०१।

२ सि० ज २०२० २८२।

३ २०२५० मि० ५ २२२।

४ पा सु० पौ० ५० १९।

काष्ठ में ही मुकुटानबाहु के बंधने पर एक ऐसी ज्योति भी कि उस दिग्दू इच्छते ही मुमुक्षुमान हो जाते थे।^१ इस कथन में किशोर भाव अग्रतप रूप में विद्यमान है।

किशोर के अतिरिक्त सूखी मावकों में किशोरी को भी अज्ञात के जमात का अवतार मानकर उपासना करने की प्रवृत्ति रीति पड़ती है। इस किशोरी उपासना की परम्परा को बाद में एक लीला जाता है। सम्भवतः अज्ञात ही सृष्टि के आरम्भ में आदम को ईश्वर के रूप में दृष्टिगोचर हुआ था।^२ इतन अष्ट श्रुती (१३वीं शती) के पर्वों के अनुसार वह (किशोरी) अपने अस्तुत सौन्दर्य से पुक होकर प्रत्येक युग में अपने प्रेमी मर्त्यों के सामने प्रकट होती है।^३

भारतीय प्रेमाख्यातक कालों के रचयिता जायसी आदि सूखी कवियों ने अज्ञात के इसी जमात रूप की पद्मावती आदि किशोरी या योवती मुवतियों में साकार देखने का प्रयास किया है। विशेषकर पद्मावती के नल-किल-बर्जान में जो इहामा दृष्टिगत होती है उसमें एक बार तो उसका वैदिक सौन्दर्य है और दूसरी ओर अलंकारों के माध्यम से अज्ञात के जमात की भी अलौकिक अभिव्यक्ति हुई है।^४ यही वस्तु 'मधुमावती' के शृंगार रस में बर्णित अज्ञात की भी है। उस स्थल पर मधुमावती के माध्यम से वैदिक और अलौकिक बर्णन साथ-साथ किए गये हैं।

इससे स्पष्ट है कि सूक्तियों ने अपने जिस रति भाव का आकम्बन ईश्वर के बनावे आदा का, वह बलसाध्य नहीं था। इसलिये उन्होंने रमणियों तथा किशोरों को अपने आध्यात्मिक प्रपय का प्रतीक माना। अतः उपयुक्त प्राकृत्य सगुणोपासकों के समानान्तर अवतारवादी प्रवृत्तियों के अनुकूल है।

अवतार प्रयोजन

इस्लामी साहित्य में अवतारवाद का विरोध होने के कारण उमक अवतार प्रयोजन की कोई जगह अप्चित नहीं थी। किन्तु जब अनायास उसके नाबिर्भाव के प्रसंग उपस्थित हुए, तब उसी क्रम में स्वाभाविक रूप से कतिपय अवतार प्रयोजन भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन प्रयोजनों की विशेषता यह है कि वे स्थानीय प्रभाव से पुक होते हुए भी दिग्दू-अवतार-प्रयोजनों से कुछ अंशों में समानता रखते हैं।

१. हर हर मि ह १२१।
४ पद्मावती-वक-टीक बर्णन अंश।

१ पा सू को २०।
१ हर ६० मि० २२१।

'भारत' के पुन्य के समान अज्ञाह में भी स्वयं अभिगम्यता की इच्छा होती है। सूची मापकों के अनुसार अज्ञाह अथवा अपने को देवता चाहता है, तो उसे एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता होती है जो पूरे ओर से स्वयं और दूसरी ओर से प्रकृष्ट या काळा होता है। मनुष्य का इच्छा एक ओर से नियम और दूसरी ओर से रक्षा या रक्षा होता है। इसीसे मनुष्य के निमित्त भाग की ओर से मानव रूप में अभिगम्य होकर वह अपना प्रतिबिम्ब देता है।^१

सम्भवतः दुर्लभ के प्रकृत विरोध के कारण ही यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि हम न इस कथन को वहीं दुर्लभ या अज्ञाह न समझ लिया जाय। जलपथ यह स्पष्टीकरण हम जान का घोटक है कि यह प्रकृति विरुद्ध अवतार बाद यदि नहीं है तो भी उसके कुछ तर्कों से संकलित अवश्य है।

सम्भवतः में जिन प्रकार अवतारवाद का प्रमुख स्वर उपास्य भाव रहा है वह इस युग के अज्ञाह के साथ भी संयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि कुछ सूची विचारकों के अनुसार अज्ञाह मूर्तिकाल में उपासना के निमित्त अपने को विभिन्न रूपों में अभिगम्य करता है। प्रत्येक नाम और रूप उसके वैशिष्ट्य की ही कथा करते हैं। इस प्रकार उसके उन्नी नामों और रूपों की उपासना मूर्ति में होती रहती है।^२ यदि किसी कारणवश उसकी उपासना बंद हो जाती है तो वह अवसर पुनः पूजा, प्रचार, माण-दत्तन तथा दुष्टों का दूध देने के लिए और मन्त्री का मोक्ष प्रदान करने के लिए परामर्शों का मेवता है।

उक्त प्रयाजन में उपास्यवार्दी साम्प्रदायिक अवतारवाद प्रतिभासित होता है। उसके पूजा और आराधना सम्बन्धी इसी वैशिष्ट्य के कारण सूची मन में अनेक प्रकार के सम्प्रदाय हीन पड़ते हैं। इनमें मूर्ति-पूजक, प्रकृति-पूजक दार्शनिक, ईश्वरवार्दी, अग्नि-पूजक भौतिकवार्दी नास्तिक अज्ञाहण (अज्ञा-हम न), बहुरी, ईसाई, इत्यादि विधायक रहें हैं।

इस प्रकार अवतार-प्रयाजन साम्प्रदायिक वैयर्थ्य के भी मुख्य कारणों में से रहा है।

धार्मी समयकी क्रांति में भी भारतीय महाकाव्यों के सदा अज्ञाह के अवतार के साथ उसके अवतार-प्रयोजन की रूपरेखा मिलती है। इसी न समयकी में अज्ञाह के अवतार प्रयोजन की कथा करते हुए कहा है कि अज्ञाह जो अज्ञान जमातीक और अज्ञानमय है, उसने पैगम्बरों को अपने लिए अज्ञान अपनी पूजा के निमित्त नहीं बल्कि अपने अनुग्रह के कारण भेजा।^३

^१ सि० अ० इ० पृ० ५१।

२. २२० इ० वि० पृ० १११

३ सतगुरु 'कृष्ण' जी० २ पृ० ८१।

वों इत्थाम कं बुद्ध विचारक तो यही मानते हैं कि मनुष्य को चेतावनी देने के लिए वह बार-बार देवताओं को अवतरित करता है, तथा मनुष्य मात्र को ही उसके अवतार-स्वरूप मानने वाले बुद्धों के आधार पर यह कहते हैं कि इनसाव की रचना उसने अपनी सेवा के लिए की है।^१

उपर्युक्त विवेचन में त्रिम विविध अवतारवादी प्रयोगों का उल्लेख हुआ है व प्रत्या सम्प्रदायिक उपस्थवादी अवतारवाद के ही बोधक प्रतीत होते हैं। अन्य क्षेत्रों में भी इन प्रवृत्ति का विशेष प्रचार रहा है। अतः ये मध्य कालीन युग की विविध धारणाओं के अन्तर्गत गृहीत हो सकते हैं।

स्त्रीसात्मक प्रयोजन

पौराणिक अवतारवाद का एक मुख्य परवर्ती प्रयोजन स्त्रीसात्मक भी रहा है, जिसका सर्वाधिक विस्तार मध्यकालीन भक्ति-काव्यों में हुआ है। कुछ अवतार-समर्पक सूक्तियों में अज्ञान का कीलात्मक प्रयोजन भी दक्षिणोत्तर होता है। उनके मतानुसार ईश्वर जब अकेला था तो वह कबक अपने को प्यार करता था और स्वयं ही अपने द्वारा प्यार किया जाता था और प्रसन्न होता था। उपनिषदों के शब्दों में वह 'रता वै सा' था। यह उसके रम या प्रेम की प्रथम अभिव्यक्ति थी, जब उसने एक से बहुत होने का निश्चय किया। उसने अपने गुणों और नामों का व्यक्त किया। उनमें उसने अपने विषय चरमानन्द की विविध सत्ताओं को नियोजित किया। उसने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए समानान सत्ता से एक मूर्ति प्रकट की। वह उसकी ही मूर्ति थी, जिसमें उसके गुण और नाम की अभिव्यक्ति हुई थी। उसका नाम था—आत्म उसी से उसने इश्वर का निर्माण किया।^२

इस कथा में भारतीय परम्परा के समानान्तर उसके कीलात्मक रूप का परिचय मिलता है। आत्माओं के अस्त एक से हो होने की प्रवृत्ति एक अन्य प्रसंग में भी दीक्ष पड़ती है। इस प्रसंग के अनुसार अज्ञान का अज्ञान मूर्ति के कारण में 'ईह—किस्तीरी के रूप में दक्षिणत हुआ था।' जिस प्रकार उपनिषदों की अभिव्यक्तिपरक कथाओं में ईश्वर का प्रारम्भिक कीलात्मक प्रयोजन अन्तर्निहित है, उसी प्रकार उक्त सूची कथाओं में भी उसके कीलात्मक रूप का विकास जान पड़ता है। पर भारत के परवर्ती सूची कवियों पर मध्यकालीन कीलात्मकता का व्यापक प्रभाव दीक्ष पड़ता है। अतः भारत में त्रिम

१ इ. इ. १०६ क. ५६।

२ भा. ०. ५० सू. ९. १९।

३ हुजरी १०. २२०।

४ १८०. ६५. मि. १९६।

प्रकार श्रीहृष्य की छीला को नखत् कहा गया है^१, उसी प्रकार शीशु निम्नार भी कहते हैं कि बह (अज्ञात) नर क मर्या अनक प्रकार की छीलापु किया करता है।^२

उपर्युक्त विषयन न स्पष्ट है कि इस्लाम या सूफी अज्ञात में हुल्ल क प्रति विरोध की जो भावना है वह साम्प्रदायिक कट्टरता का परिणाम है। क्योंकि एक ओर तो हुल्ल या विरोध किया गया और दूसरी ओर निर्माग, प्राकृत्य इत्यादि क रूप में पुनः उसक आधिर्भूत रूप का ही विनार हुआ है, क्योंकि उसक आधिर्भूत क माय उपर्युक्त विविध अवतार प्रयोजन उसक परम्परासुमोचित अवतार-रूप की ही पुष्टि करते हैं। इन सभी प्रयोजनों पर मायक या अमयक रूप स भारतीय प्रमाद भी अवश्य पड़ता रहा है।

सृष्टि अवतारक

जायसी आदि सूफी कवियों ने अज्ञात या ईश्वर के वैयक्तिक अवतार का अधिक उल्लेख नहीं किया है। इसका मुख्य कारण अवतारवाद के म्याम में पैगम्बरवाद का प्राधान्य होना है। मध्यकाल में अवतारवाद और पैगम्बरवाद क जो रूप मिलते हैं, उनमें कबल एकपर या अपास्य क वैयक्तिक आधिर्भूत को लक्ष्य मतभेद दिग्याई पड़ता है। क्योंकि अवतारवाद में सामान्यता जहाँ अद्य कला, या पूज्य रूप में इश्वर स्वय अवतरित होता है,^३ वहाँ पैगम्बरवाद में वह स्वयं न जा कर अपना वृत्त बनावर हमूलों या पैगम्बरों को भेजा करता है। फिर भी पैगम्बरी पद्धति में उसके पूज्य अवतारत्व का मान मने ही न हो, परन्तु ज्ञानि बदा या कला-बर्षा के रूप में उसके अवतरित होने का अवश्य पता चलता है^४ जो अज्ञाततार की कोटि में गृहीत हो सकता है। माय ही आत्म क रूप में उसक स्वय अवतार का भी आमान मिलता है।^५

इस्लामी और सूफी साहित्य में उसक सृष्टि-अवतारक रूप का विविध रूपों में उल्लेख होता रहा है। सूफी भावनों क अनुपात सुझा ने अर्थकार में

१ मा १ १ १०।

२ 'शिवनिम्नार' पूगुड सुनेन-श्वर नई मान न छेपेरीया। नटनाटन चारक प्रम देया।

३ 'नरामाने नृशालवदम्' या 'नम्बवन्नायदादया' से ररर है। गीता ४ ७

४ का प्रं ५८५५ १० ४ ३३

श्रीदेवि पुन बक निरमरा मान सुरम्बर पुनैवरा।

५ का० प्रं० अगगपर १० १०८

या निवार उन है वर का। उई का आदन अवन्ता।

सृष्टि की रचना की।^१ कुछ लोग मुहम्मद साहब के किष्कात्मक रूप को उपस्थित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मुहम्मद स्पष्ट शरीर में थे किन्तु उनका सत्य अलिख सृष्टि का सत्य था।^२ कुछ विद्वानों के अनुसार तुदा स्वयं ही आख्यन के रूप में आविर्भूत होता है। उसका वह रूप 'कमाक्य खम्माय' कहा जाता है। वह सनातन में सनातन और नश्वर में नश्वर है।^३ फारसी सूफी कवियों का कथन है कि उसने सृष्टि का निर्माण इमकिय किया जिसमें वह जाना जा सक।^४ इस प्रकार भारतीय सृष्टि अवतारपरम्परा के सशक्त इस्लामी सृष्टि का विस्तार भी ईश्वरवादी रहा है। भारतीय विभूतिवाद के अनुरूप अल्लाह ने भी चन्द्रमा सूर्य तथा अन्य लोकों का निर्माण अपने विभिन्न गुणों और शक्तियों से किया था।^५

परन्तु भारतीय सूफी साहित्य में सृष्टि अवतरण का जहाँ वर्णन हुआ है उसमें मुख्य रूप से ईश्वर तटस्थ निर्माता और कर्ता है।^६ उसका सृष्टि के साथ कुम्हार और कुम्भ का संबंध प्रतीत होता है,^७ क्योंकि 'मागबत' में प्रचलित 'अगुहे पौरुष कयम्' के सशक्त वह स्वयं सृष्टि या सृष्टि के विभिन्न उपादानों का रूप धारण नहीं करता। यद्यपि इसका मूल कारण उसका अकल और निराकार होना है परन्तु यथार्थ में वह कर्ता के रूप में पूर्णतः साकार विहित होता है।

इसका समाधान इस्लामी परम्परा में ज्योति-ज्योतिर्मय द्वारा किया गया है जो भारतीय प्रतिबिम्बवाद का एक रूप प्रतीत होता है। ज्योति का विकल्प सबब बायसी ने पुष्प से स्थापित किया है। वह पुष्प अन्य कोई नहीं, स्वयं मुहम्मद साहब है। उसने उनकी प्रीतिबद्ध सृष्टि उत्पन्न की और

१ सि अ ह पृ २१।

२ सि अ ह पृ २।

३ सि अ ह पृ ३।

४ हि० प कि जी १ पृ ४४।

५ स इत मि० पृ २२२।

६ बायसी द्वारा प्रयुक्त किन्हेसि शब्द से प्रतीत होता है। श्लोक—

किन्हेसि अयिनि वरन बायसीरा कीन्हेसि बड़ने संगरीदा।

कीन्हेसि बरती तरम बदारू, कीन्हेसि वरन वरन भीनाक॥

बा प्र पद्यावट पृ २, १।

७ बा प्र अयतारवट पृ ३७

एक शब्द सब विंग बड़े मानि वरति के मोडा मई।

८ बा प्र पद्यावट पृ ११

कीन्हेसि प्रथम ज्योति वरदासू। कीन्हेसि ऐदि पिरिउ केजामू।

प्रस्तुत एक उदाहरण में मिलता है। जायसी कहते हैं कि एक कौतुक देखिये कि बृच ही बीज में समा गया है। टुलु जी की इस पर टीका इस प्रकार है— सारा ससार-बृच बीज रूपी मांस में ही व्यक्त भाव से निहित रहता है और वह बीज आप अपने को जमाता है और फल भोक्ता भी आप ही होता है।^१ यह उक्ति 'मातावत' के उस 'पुण्य' या 'विराट पुण्य' की व्यक्तता से अधिक मित्र नहीं विदित होती जो एक से बहुत होने की इच्छा करता है।^२ वह ज्योति-रूप से पुण्य को आप्त करता है और उसी ज्योति-रूप में समस्त विश्व को प्रकाशित करता है।^३ वह सभी प्राणियों में स्वयं उत्पन्न होता है^४ और अंत में सारी धीराओं को अपने में लुप्त कर लेने के बाद स्वयं पच रहता है।^५

अतः जायसी ने उसके जागतिक या विश्वरूपात्मक अवतार को ही माना है। इस व्यक्तित्व का प्रयोजन इनके मतानुसार मुहम्मद की प्रीति है। परन्तु उसके साथ ही उसकी अपनी इच्छा भी है।^६ वे ईश्वर के इस व्यक्तित्व विश्वरूपात्मक अवतारवाद को स्वीकार करते हैं पर उसके वैयक्तिक अवतार को नहीं। इसी अवतारवाद से परिचित होने के लिए वे दूसरों से अनुरोध भी करते हैं।^७

१ ऐकतु कौतुक भाए, कळ समाना बीज मई।

जापुरि जोरि जमाए, मुहम्मद सो फल-भाएर। जा प्र० अक्षरावट पृ १११।

२. जादि हुते जो जादि गोतारै बैर नव खेच तथा बुनिमारै।

जस खेचैस तस जाइ न कळ, बीदह मुबल पूरि मच रहा।

एक अकेल न दूसर जाती कपके सहस अकारह मंठी।

जा २ ५ १ जा प्र० अक्षरावट पृ १०१।

३ (क) तव मा बुनि अहुर निरवा हीपक निरमळा।

रथा मुहम्मद मूर जाव रहा उबिबार हीर।

मा० ३ ३ १० और मा २, ३ १६ जा प्र० अक्षरावट पृ ३ ४।

(घ) विचारको पृ ५

वही ज्योति पुनि किरिन पसारी किरिम किरिन सब छवि संगरी।

४ जो ज्योति कपराजै चहा जापनि प्रमुना आप सो कदा।

रहा जो एक एक पुपुन सर्मुद, बरसा लहस अकारह बुदा।

सौरं अंस बदे बर देखा जी सोइ बरन बरन हीर देखा।

जा २ ८ १ जा प्र० अक्षरावट पृ १ ५।

५. मा २, ९ १२।

६ जापुरि जापु जो देखे चहा जापनि प्रमुना आप सो कदा।

जा प्र० अक्षरावट पृ ११७।

७. बीर अवगारि पण्ड कहैं नदि बीगहा, पैर वह जतन अरिखा कीग्या।

जा० प्र० अक्षरावट पृ ११७।

पैगम्बर

किमी धर्म का प्रवर्तक वही व्यक्ति होता है जो अपनी आध्यात्मिक भावना या विचार का समाज में प्रकट करता है। वह अपनी दैवी शक्ति को तुझे दासों समाज में दर्ज करता है। इस्लाम धर्म में प्रवर्तक से ही मिलत ठुलते धर्म के प्राबुसाबक जो व्यक्ति होते हैं, उन्हें पैगम्बर के नाम से अभिहित किया जाता है। यदि समस्त रूप में देखा जाय तो जहाँ तक सामप्रदायिक धर्मों के उदय और विकास का प्रश्न है वहाँ प्रोफेट, पैगम्बर और प्रवर्तक समाज कोटि में आते हैं। प्रायः तीनों किसी न किसी नये मत के प्रतिपादक के रूप में विख्यात होते हैं। तत्पश्चात् सत पुरोहित, धर्म प्रवक्ता या सुधारक जहाँ धर्मों के प्रचार में महत्प्र विचार्य पढ़ते हैं। इन मतों के प्रचार के साथ-साथ इनकी मूर्ति या स्मृति पूजा किमी न किमी रूप में प्रचलित हो जाती है। ये बिल ईश्वर का प्रचार करते हैं जमी के अवनत या निर्मित दूत के रूप में समाज में स्थान पाते हैं। बाद में इनके मन्त्रों में न्यो-न्यो अद्वय-भावना का विकास होता है। न्यो-न्यो इनके जीवन में अमश्रुतिपरक असाधारण घटनाओं का समावेश हो जाता है। शिम्बे फण्डरूप ब्रह्म यदि बिना मात्र के नदी पार कर केते हैं, तो जेसल काहूट मनुज में उदर केते हैं और मुहम्मद आकास मार्ग से यात्रा करते हैं। मनुजों का जन्म मी कुमारियों के द्वारा अज्ञान रूप से ईसा या कबीर के समान माना जाने लगता है। इनकी सहायता रक्षा कृपा का आशीर्वाद संकषी ममी कायों में दैवी शक्त पाया जाता है। कृष्ण वीपदी की हौड़ी का शाक आकर बुर्बासा आदि का पैर भर देते हैं। तो राम अहस्या को पापर से छी बना देते हैं। इसी प्रकार गोरखनाथ आदि मिश्रों तथा कबीर या नामक आदि सती में उपर्युक्त प्रकार की अनेक कथयें प्रचलित हैं, तथा मुहम्मद ईसा आदि पैगम्बरों से सम्बन्धित अनेक कथायें मिलनी हैं। यही नहीं—सुकर, रामानुज आदि आचार्यों के नाम से भी सबधित अनेक दैवी अमश्रुतियाँ मिलनी हैं। पाद और जैन धर्मों के प्रवर्तक ब्रह्म और जगन्म मी बाद में अलकर अवनत के रूप में गृहीत हुये।

हिन्दू मयतारपाद् और पैगम्बरपाद्

इस्लामी पैगम्बरपाद् में 'जगन्नामि युगे-युगे' की भावना विद्यमान है। क्योंकि इस्लाम में भी यह धारणा प्रचलित है कि प्रत्येक युग में पैगम्बर

मध्यकालीन साहित्य में अद्यतारवाद

पूर्व मानव रूप में प्रकट होता है। उसके प्राकृत्य का प्रयोजन अपने मूल पथ का परिष्कार करता है।^१ पैगम्बरी अद्यतार-परम्परा का यह रूप बरक मुहम्मद से ही नहीं शुरू होता बल्कि सर्वप्रथम तुहा ने आदम के नफस का निर्माण किया तबबन्तर उमी की व्युत्कृति-स्वरूप मुहम्मद का नफस भी बनाया।^२ इस उक्ति में आदम से लेकर मुहम्मद तक पैगम्बरों की एक अद्यतार परम्परा स्पष्ट विदित होती है।

किन्तु हिन्दू अद्यतारण और इस्लामी निर्माण में अंतर केबल इतना ही है कि हिन्दू अद्यतारवाद अद्यतार-रूप में ईश्वर के जन्म को स्वीकार करता है और इस्लामी पैगम्बरवाद दुष्ट या जन्म-विरोधी होने के कारण अज्ञात का जन्म नहीं स्वीकार करता। फिर भी इस्लामी सभ्यताओं में प्रकारान्तर से अद्यतार से साम्य रखने वाले 'निर्माण', 'प्राकृत्य' और 'प्रतिक्रम' पद स्पष्ट होते रहे हैं। दोस्त साहाजरीन के अनुसार अज्ञात ने अपने स्वरूप से आदम का निर्माण किया। इन्होंने आदम का ब्रह्मा का प्रतिक्रम माना है।^३ सम्भवतः मुहम्मद को भी अद्यतार-रूप से बचाने के लिए मुसलमान साधक कदा करते हैं कि मुहम्मद अज्ञात के अद्यतार नहीं बल्कि उसके प्रतिक्रम हैं। इस प्रतिक्रमता में आदम का रूप रूप कथित होता है। अतः सम्भव है कि हिन्दू अद्यतारवाद की भाषा या आदम जैसी कल्पना के अभाव में मुस्लिम विद्वानों ने प्रतिक्रमता या समकचता का सहारा लिया हो क्योंकि पैगम्बर ईश्वर का प्रतिक्रम जैसे है, इसका ताकिक समाधान उपस्थित करते हुए कहा जाता है कि पैगम्बर 'मीम' अक्षर में पुष्क हाने के कारण अहमद (समीम) है और 'मीम' रहित होने पर वह अहद (असीम) हो जाता है।^४ यहाँ 'मीम' जैसे मान्य को भाषा या आदम का बोधक भी माना जा सकता है। कुछ हवीसों के आधार पर इस्लाम में पूर्णाद्यतार के मरण पूर्व आधिर्माण माना गया है। बहदत से लेकर आदम तक सभी आधिर्माणों में वह आतुम या 'आतिम' कहा गया है।^५

इससे स्पष्ट है कि इस्लाम में अद्यतार विरोध की भावना होते हुए भी पूरे अनेक अद्यतार-राज मिलते हैं जिनका हिन्दू अद्यतारवाद में आत्यधिक मान्य है।

१ एव इस मि पृ २१।
 २ एव इस मि पृ २१५।
 ३. ति अ० ए ५० ७१।
 ४ ए० इस मि पृ २१५ कु २ सू ४८।
 ५ एव इस मि पृ ८०।
 ६ ति अ ५० पृ ८१।

बोधिसत्त्वधातु और वैगम्बरधातु

हिन्दू अवतारधातु के अन्तर्गत बौद्ध बोधिसत्त्व या बौद्ध अवतारधातु का भी व्यापक प्रभाव वैगम्बर मत पर देखा जा सकता है। विशेषकर महायान में जिस प्रकार बुद्ध को महाकल्याण से युक्त माना जाता है,^१ उसी प्रकार इन्द्राय का अज्ञात भी अत्यन्त अमासीस और सृष्टि के प्राणियों के प्रति कल्याण से आपूरित है। 'अक्षरहमान' (अक्षरामय) उनका वह रूप है जिसके अनुसार स्पष्ट होकर वह जीवों पर कृपा करता है।^२ इस प्रकार एक ओर कल्याण की दृष्टि से दोनों धर्मों के उपास्य बुद्ध और अज्ञात में प्रथम माम्य दृष्टिगोचर होता है और दूसरी ओर बोधिसत्त्व और वैगम्बर भी परपरा, आदिर्भाव और काय की दृष्टि से परस्पर निकट प्रतीत होते हैं। जैन महाबुद्धीन के अनुसार वैगम्बर व ईश्वर को महायानी बोधिसत्त्वों के मर्यादित प्राप्त करने या सिद्ध होने के बाद जन-कल्याण के लिये ईश्वर द्वारा पृथ्वी पर भेजे जाते हैं।^३ इनके प्रयोजनों में बौद्ध अवतारधातु के तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। छीक वैगम्बरों के विपरीत हीनयानी ग्रन्थक बुद्धों के सहस्र शतक व ईश्वर को साधन की सिद्धि के उपरान्त ईश्वर में लीन हो जाते हैं या निर्वाण प्राप्त कर बुद्ध हो जाते हैं। निर्वाण के उपरान्त महाकल्याण से प्रथित होकर 'बहुजनहिताय' काय करने की भावना इनमें नहीं होती। अतः प्रथम और प्रथक बुद्ध शक्तों 'म्यान्त-सुन्दार्य' साधक प्रतीत होते हैं। किन्तु बोधिसत्त्वों के समान वैगम्बर सिद्ध या 'इन्द्रायुक्तमित्त' होने के उपरान्त जन-कल्याण किया करते हैं। जिस प्रकार बौद्ध धर्म में अतीत, अन्तर्गत और अमागत बुद्धों के रूप में तीनों कालों में बोधिसत्त्वों की स्थिति मानी गई है, उसी प्रकार सृष्टि मापकों से भी वैगम्बरों का त्रैकालिक अस्तित्व स्वीकार किया है।^४

इस प्रकार इन्द्रायी वैगम्बरों पर बौद्ध बोधिसत्त्वों के अवतार-कार्य का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

उपयुक्त सभी वैगम्बरों के मूल में धर्म-सिद्धि या धर्म-संज्ञा की भावना दृष्टिगत होती है जिसके अन्तर्गत उनमें अवतारधारी भावना का समावेश होता है।^५

पुराण में वैगम्बर

इन्द्राय धर्म में जिस वैगम्बर की कल्पना की गई है वह प्रथम या मर

१ बौद्ध धर्म और दर्शन पृ. २०६।

२ एन. एम. वि. पृ. १।

३ भ. वा. पृ. २३२।

४ मू. मा. शा. पृ. ३५१।

५. महाभारत पृ. २५०।

प्रथम नहीं अपितु विश्व के अन्य धर्मों की परम्परा में है। श्री मुम्बर साल से इजरात मुहम्मद और इल्काम नाम की पुस्तक में 'कुरान' के कुछ उद्धरण दिए हैं, जिनमें कहा गया है कि बुनिया की कोई ऐसी कीम नहीं है जिसमें तुरे कामों के धतीजों से हर दिक्कतें बाका ईश्वर का कोई पैगम्बर न पैदा हुआ हो। 'सबसुच हमने बुनिया की हर कीम में रसूल भेजा, जिसका उपदेश यही था कि ईश्वर की पूजा करो और झुर्दाई से बचो।'

असुलकनाम आबाद् का बयान है कि मनुष्य जाति की दिवापत के जिन्हे और म्याम तथा सत्य की स्वायता के जिन्हे इटाही माली ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश प्रकट हुआ और ईश्वर की ओर से पैगम्बरों के आये और उनका उपदेशों का सिद्धसिद्धा कायम हो गया। इनके कथनानुसार 'कुरान' उन तमाम पञ्च-प्रदर्सकों^१ को जिनके द्वारा दिवापत का सिद्धसिद्धा कायम हुआ, रसूल के नाम से पुकारता है। इल्काम में रसूल और पैगम्बर में कोई विशेष अंतर नहीं माना जाता है। पैगम्बरों या रसूलों द्वारा प्रस्तुत यह दिवापत किसी देश जाति या काल विशेष के लिये नहीं अपितु समस्त मानव समुदाय के लिये मानी जाती है। इसलिये 'कुरान' के अनुसार प्रत्येक देश में उसका एक सा आविर्भाव हुआ। 'कुरान' की एक कथा में कहा गया है कि बारम्भ में ममी मनुष्य एक ही गिरोह थे। कालान्तर में मतभेद हुआ और वे परस्पर एक दूसरे से दूर हो गये। इसलिये ईश्वर ने एक के बाद दूसरे पैगम्बरों को उत्पन्न किया। वे मुक्तों के परिचाम की लुभावबरी बनें वे और मुक्तों के अधानक परिचाम से बनें को डराते थे।' इस प्रकार बुनिया की हर कीम में 'कुरान' के अनुसार रसूलों का अस्तित्व माना जाता है।^२ इन पैगम्बरों के प्राहुर्भाव का प्रतीकन ईश्वर की उपामना का प्रचार का ईश्वरवाद का सम्बन्ध बना तथा पास्तविक हृदियों और बामबाजों से मनुष्य को बचाना था।^३

'कुरान' में मुहम्मद साहब के पूर्व होने वाले जिन पैगम्बरों का नाम दिया गया है वे विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रवतक तथा वेतिहासिक

१. इजरात मुहम्मद और इल्काम पृ. १६६ कुरान सूत्र ६५-६८।

२. इजरात मुहम्मद और इल्काम पृ. ११३ कुरान सू. १९-२२।

३. कुरान और धार्मिक मतभेद पृ. १८।

४. कुरान और धार्मिक मतभेद पृ. १९ सू. १ नवम्बर ११३।

५. कुरान और धार्मिक मतभेद पृ. १ सू. १९ आवत सू. ३५ भा. १५, सू. १ भा. ४८।

६. कुरान और धार्मिक मतभेद पृ. १४ सू. १९ आवत ३८ और सू. ११ भा. १४।

व्यक्ति रहे हैं। 'कुरान' के एक सूरा में कहा गया है कि हमने तुम्हारे पास उम्मी तरह अपना वही इशरीय आवेस भेजा है जिस तरह मूह और उनके बाद वाले इब्राहिम इस्माइल इमहक याकूब और उनके बराबों से हमारा, अब्दूह, युनुस, हासन, सुकेमान आदि के पास भेजा था और जिस तरह हमने बालूक का बहुत प्रदान की थी। हमने मिया और भी पैगम्बर भुपे हैं जिनमें से कुछ का हाथ हम तुम्हें सुना चुके हैं और कुछ का नहीं। पुनः दूसरे सूरा में उनका उल्लेख करते हुए इस्लाम के पैगम्बर से कहा गया है कि ये सब लोग हैं जिनको परमात्मा ने सत्य का मार्ग दिखाया।^१

इससे स्पष्ट है कि 'कुरान' का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उनमें अल्प धर्मों और मतावलम्बियों को समाविष्ट करने की सख्त प्रवृत्ति थी। पश्चात् में यह प्रवृत्ति अवतारवादी सम्प्रदायवादी पद्धति के अत्यन्त विरुद्ध बहिष्कृत होती है। आगे चलकर २० में जिन २२ अवतारों का उल्लेख हुआ है उनमें पौराणिक अवतारों को छोड़कर अभिर्जात से हुए, अप्सर कृष्ण कविक, दत्तात्रेय आदि महापुरुष हैं जो विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के प्रवर्तक रहे हैं।

पात्र में चलकर इस्लाम में इस व्यापक प्रवृत्ति का अभाव हो गया, क्योंकि बाद में होने वाले प्रवर्तकों में बस इस्लाम के ही धार्मिक नेताओं को सम्मिलित किया गया। इस्लामी साहित्य में पैगम्बरों और रसूलों की उक्त परम्परा नहीं मिल पा रही बरन्, विभिन्न मर्यादा में मिलती है। हमके अतिरिक्त आदम, मूह अब्राहम मूसा, काहूर मुहम्मद अतिस पैगम्बर इस्माइल के पुत्र मुहम्मद हबीष का सात सहकर्मियों से भी स्वयं स्थापित किया गया। ब अमदा आदम के सेठ, मूह के शर्म अमहम के इस्माइल, मूसा के बरा जेमस के माहमन सूठ और मुहम्मद माहब के अली आदि सहायक के रूप में प्रसिद्ध हैं।^१

सृष्टी सम्प्रदाय में अहमद आदमी के कपुमियत के अनुसार पैगम्बरों या प्रवर्तकों को इमान कामिल या पूर्णतम मानव के रूप में मानने की प्रवृत्ति प्रचलित है। अब्दूह परमेश्वर का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। आदमी के अनुसार उनके शरीर की रचना मुहम्मद माहब के द्वारा बची हुई आमात्री म हुह थी और स्वयं रसूल ने दुम्हें वा नबियों की कोठि में गिराया जो बुर इमादिम, हाकद, जजब पुसुक, शीब, मूसा इसा और मुहम्मद के पास ये प्रसिद्ध हैं। अत्यधिक शक्ति से युक्त होने के कारण दुम्हें उल्लेख बाबम भी

१ कुरान और धार्मिक कलेक्टर ५ ५४ सू० ४ का० १६३ और मू २ भा ९ ।

२ ही परदीविक इन इस्लाम ५० ९० ।

कहा जाता है।^१ कालांतर में इसका दैवीकरण पूर्ण रूप से हो गया तथा रसूल, पैगम्बर, मोपेन्न आदि शब्दों में नबीम बैशिय्यों की उल्लासना की गई।^२

पैगम्बर मुहम्मद साहब

अह्लाद के अन्दर इस्लाम में पैगम्बर मुहम्मद साहब दूसरे व्यक्ति के निम्नके माध्यम से इस्लाम और सूफी सम्प्रदायों में कतिपय अवतारवादी और उपासकवादी विचारों का प्रचार हुआ। यद्यपि मुहम्मद साहब का शरीर स्पृश या फिर भी साम्प्रदायिक रूप में उनका सत्य अतिक्रम विषय का मत्व माना गया। एक इदीष के अनुसार उनका कथन है कि मैं सुरा का नूर हूँ और सारी सृष्टि हमारी स्योति है। यहाँ नूर-मुहम्मदी ईश्वरीय स्योति का परिचालित रूप है।^३ इब्न हाशिम (८१४ ई०) की कविता के अनुसार मुहम्मद पैगम्बर अह्लादके दूत बने गये हैं। अह्लाद ने इन्हें अपना रूप प्रदान किया और पैगम्बर रूप में अनुर्विक पात्रा करने का आदेश दिया। जिमाइल ने आकर यह अनुभव इन्हें प्रदान किया।^४ इस उक्ति से मुहम्मद साहब के अवतारवादी रूप की ही पुष्टि होती है। एक दूसरी उक्ति में उनका अवतारवादी विभक्त का भी आभास मिलता है। यह कहा करते थे कि जिनमे मुझे देखा है उसने सुरा को देखा है।^५

मुहम्मद अवतारों के मूल स्रोत

सूफियों के अवतारवादी सम्प्रदायों में मुहम्मद साहब को इकीकते मुहम्मदी के रूप में 'सुल्ल नारायण' के सृष्टा प्रथम अवतार तथा अन्य सभी अवतारों या आविर्भावों का मूल स्रोत कहा गया है।^६ इनकी यह अवतार-परम्परा चार प्रकार की है। इनमें प्रथम है अतिक्रम विषय जो इनकी प्रथम स्योति या नूर से उत्पन्न है। द्वितीय आविर्भावों में सभी बली या सत हैं। तृतीय स्योति में अरिसे तथा अनुर्व कोटि में वीर्य से उत्पन्न उनका लक्षण कह जाते हैं।^७ अतएव मुहम्मद केवल अह्लाद के अवतार ही नहीं अपितु नारायण के सृष्टा अवतारों के मूल स्रोत या अवतारी भी हैं जिनमे अवतारवादी इस्कमी या सूफी सम्प्रदायों में अनेक प्रकार की अवतार-परम्पराओं का प्रचार हुआ।

१ सूफी काव्य संग्रह पृ० ४५।

२ सि० अ० ६ पृ० २० और पृ० २१।

३ सि० अ० ६ पृ० २३०।

४ सि० अ० ६ पृ० २०।

५ ही सुसन्धीय हीट १ २०४।

६ डा० १० पो० प्रो० पृ० ३६-३९।

७ सि० अ० ६ पृ० २९।

उपास्य मुहम्मद साहब

जीली के कथनानुसार समय के अचरुप मुहम्मद साहब की समकता अपने उपासकों के निमित्त विविध रूप धारण किया करते हैं। जीली की उममे इंग्र के रूप में स्वयं मुहम्मद साहब में ही दृष्टान दिया था।^१ इसमें विदिन होना है कि मध्यरात्रीन राम इन्ज जात्रि उपास्यों की भांति मुहम्मद साहब की काल क्रम में अबनारबादी इम्तानी धौर सूफी सप्रदायों में क्रमशः अबनार अबतारी और अन्न में उपास्य रूप में प्रचलित हुए। जीली सख के रूप में त्रिम मुहम्मद का दशन करता है वहाँ के पैगम्बर की अपेक्षा उपास्य अधिक प्रतीत होगे हैं।

उक्त तर्कों से स्पष्ट है कि आलोचककाल से पूर्व ही मुहम्मद साहब एक उक्त महकारियों का भवैसाबाहक या पैगम्बर-यह गीन होता गया और अशाबनार में विकसित पूजाबतारों के महदा के स्वतः समूह अछाह के रूप में मास्य हुए। भारतीय सूफी साहित्य में उक्त त्रिम रूप का बगत हुआ है उममें एक ओर तो वे अछाह की ज्योति के अबनार हैं और दूसरी ओर कनिपय स्थलों पर उक्त उपास्य-रूप का भी परिचय मिलता है।

भारतीय सूफी कालों में मुहम्मद साहब

सूफी साहित्य में सामान्यतः मुहम्मद साहब को जात्रि पुरण की प्रथम ज्योति में अनिदिन किया गया है। आपसी के कथनानुसार परमात्मा ने पूर्ण ज्योति के कला या अन्न-रूप में पुरण का निमाण किया।^२ उन्हीं की प्रीतिवशा रच हुए मयार में ईश्वर ने उन्हें विश्व को शीपक-स्वरूप प्रदान किया त्रिमक अकम्बरूप समी ने अपनी राह पहचान की।^३

अना अबनारबादी सूफी सप्रदायों में मुहम्मद साहब के त्रिम प्रथम अबनार या प्रथम पुरण की परम्परा प्रचलित है भारतीय सूफी कवियों ने उमी की अपने प्रेमालयानक काव्यों में प्रहण किया है। मुहम्मद साहब के पुरणबनार की यह परपरा आपसी के पृथ्वती मस्तन तथा परबर्नी उममान

१ रि० नू के का १ १४।

२ शीमेनि पुरण एक निरवरा भाय मुहम्मद बुनी करा।

प्रथम ज्योति विरि नाकर साबी भी हेदि प्रीनि लिदिदि बरराबी व

का० प्र० पचावत्र पृ० ४, ११।

३ शीरक लेदि अयन कर्दे शीन्दा, ना निरमल अय माराग बीन्दा।

का प्री० पचावत्र पृ० ४, ११।

कहा जाता है।^१ काठान्तर में इनका बँधीकरण पूर्ण रूप से हो गया तथा रसूल, पैगम्बर, प्रोफेट आदि कल्पों में नवीन बँधियों की उजावना की गई।^२

पैगम्बर मुहम्मद साहब

अज्ञात के अन्तर् इस्लाम में पैगम्बर मुहम्मद साहब दूसरे व्यक्ति के जिनके माध्यम से इस्लाम और सूफी सम्प्रदायों में कतिपय अवतारवादी और उपास्यवादी किंवदंतियों का प्रचार हुआ। यद्यपि मुहम्मद साहब का शरीर स्थूल था फिर भी साम्प्रदायिक रूप में उनका सत्य अस्तित्व विश्व का सत्य माना गया। एक हदीस के अनुसार उनका कथन है कि मैं खुदा का नूर हूँ और सारी सृष्टि हमारी स्रष्टि है। यहाँ नूर-मुहम्मदी ईश्वरीय स्रष्टि का परिचालित रूप है।^३ इब्न हासिम (८३४ ई०) की कविता के अनुसार मुहम्मद पैगम्बर अज्ञात के दूत पड़े गये हैं। अज्ञात ने इन्हें अपना रूप प्रदान किया और पैगम्बर रूप में अतुल्य पात्रा करने का आदेश दिया। जिमादुल के आकर वह अनुग्रह इन्हें प्रदान किया।^४ इन उक्ति से मुहम्मद साहब के अवतारवादी रूप की ही पुष्टि होती है। एक दूसरी उक्ति में उनके अवतारवादी दिव्यत्व का भी आशय निकटा है। वे कहा करते थे कि जिसने मुझे देखा है उसने खुदा को देखा है।^५

मुहम्मद अवतारों के मूल स्रोत

सूफियों के अवतारवादी सम्प्रदायों में मुहम्मद साहब को दफ्तीकते मुहम्मदी के रूप में 'गुल्य नारायण' के सद्यः प्रथम अवतार तथा अन्य सभी अवतारों या आविर्भावों का मूल स्रोत कहा गया है।^६ इनकी यह अवतार-परम्परा चार प्रकार की है। इनमें प्रथम है अस्तित्व विश्व जो इनकी प्रथम स्रष्टि या मूल से उत्पन्न है। द्वितीय आविर्भावों में सभी बनी या मत हैं। तृतीय कादि में अरिरेते तथा अतुल्य कोटि में शीर्ष से उत्पन्न उनके पदावत कहे जाते हैं।^७ अतपुत्र मुहम्मद केक अज्ञात के अवतार ही नहीं अपितु नारायण के मरदा अवतारों के मूल स्रोत या अवतारी भी हैं जिनसे अवतारवादी इस्लामी या सूफी सम्प्रदायों में अनेक प्रकार की अवतार-परम्पराओं का प्रचार हुआ।

१ सूफी काव्य संग्रह पृ० ४५।

२ बी मुसलीम अरब पृ० २४।

३ सि० अ० इ० पृ० २० और पृ० २१।

४ इ० २ पी प्रो० पृ० २४-२५।

५ सि० अ० इ० पृ० २६।

६ सि० अ० इ० पृ० २५।

७ सि० अ० इ० पृ० २०।

उपास्य मुहम्मद साहब

श्रीली क कथनानुसार समय क व्युत्पन्न मुहम्मद साहब भी सम्भवतः अपन उपासकों क निमित्त विविध रूप धारण किया करते हैं। श्रीली को उपास्य रूप क रूप में स्वयं मुहम्मद साहब ने ही उपास दिया था।^१ इसमें विहित हुआ है कि सम्प्रदायीय राम हुआ जाति उपास्यों की भाँति मुहम्मद साहब भी काल क्रम स अबतारवादी इस्लामी और सूफी सम्प्रदायों में कमरा बनगार, बनगारी और अन्त में उपास्य रूप में प्रकटित हुए। श्रीली शक्त क रूप में त्रिम मुहम्मद का दर्शन करना है, यहाँ व पैगम्बर की लपेछा उपास्य अधिक प्रतीत होत है।

उक्त तथ्यों स स्पष्ट है कि आलोच्यकाक स पूव ही मुहम्मद साहब पूव उनके सहकारियों का सहस्रसाहस्र वा पैगम्बर पूव गीण होता गया और अशासनार से विकसित पूर्वावतारों क मर्याद व स्वतः रसूख अज्ञात के रूप में मास्य हुए। भारतीय सूफी साहित्य में उपास्य त्रिम रूप का बगल हुआ है इसमें एक ओर मो व अज्ञात की शक्ति क लक्षण है और दूसरी ओर कविपय रूपों पर उपास्य-रूप का भी परिचय मिलता है।

भारतीय सूफी साध्यों में मुहम्मद साहब

सूफी साहित्य में सामान्यतः मुहम्मद साहब को जाति पुण्य की प्रथम उपासि स अभिविहित किया गया है। आबमी क कथनानुसार परमात्मा ने पूण शक्ति क कला वा अस्त-रूप में पुण्य का निमाय किया।^२ उन्हीं की शीनिबस रस हुए ममार में ईश्वर ने उन्हें विश्व को हीपक-स्वरूप प्रदान किया त्रिमक फलस्वरूप समी ने अपनी राह पहचान ली।^३

अन अबतारवादी सूफी सम्प्रदायों में मुहम्मद साहब क त्रिम प्रथम अबतार वा प्रथम पुण्य की परम्परा प्रकटित है, भारतीय सूफी कवियों व उमी की अपन प्रेमात्म्यात्मक काव्यों में प्रकट किया है। मुहम्मद साहब क पुण्यजनार की पद परपरा जायमी क पूवर्नी महान तथा परवर्नी उपास्य

१ रि मु क० का १० १४।

२ शीनिबि पुन्य रस निरमरा, नाम मुहम्मद पुनी बरा।

अन कोनि विवि नाकर ताजी भी हेदि शीनि विविदि शाराङ्ग प्र

का० र्थ १००० १० ५, ११।

३ हीपक हेनि अण्ड कई हीना मा निरमड अय माग बंजा।

का० र्थ १००० १० ५, ११।

प्रकृति सृष्टि कवियों में मिलती है। पूर्ववर्ती कवि यज्ञ के अनुसार जो अगोचर परमात्मा या वही साकार होकर मुहम्मद रूप में प्रकट हुआ।^१

वहीं मुहम्मद-रूप से आवि पुरुष का ही अर्थ व्यक्त होता है। क्योंकि शीखों की पंक्ति में उस प्रथम रूप का एकमात्र नाम मुहम्मद बताया गया है।^२

उसमान ने 'बिशाककी' नामक काव्य में मुहम्मद की प्रशंसा करते हुए कहा है कि परमात्मा ने अकिसक सृष्टि के सार-रचक्य विषय में एक पुरुष की अवतारवा की। वह पुरुष उनके द्वारा पैगाम लेकर भेजे हुए दूत के सद्य कोई अन्य पुरुष नहीं था अपितु ईश्वर ने स्वयं अपना बंस दो भागों में विभक्त कर उसमें से एक का नाम मुहम्मद रखा।^३ 'अकराबद' में वायसी ने मुहम्मद साहब के, आवि पुरुष के सद्य सर्वप्रथम अवतार का उल्लेख करते हुए कहा है कि शून्य अक्षर में सर्वप्रथम ईश्वर ने मुहम्मद नाम की स्याति उत्पन्न की। मुहम्मद के इस आवि स्योति-अवतार का उन्होंने अनेक बार उल्लेख किया है।^४

यद्यपि कतिपय स्थलों पर इसके आवि अवतार का बोध होता है, परन्तु इस्लाम की परंपरा के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद साहब का आविर्भाव पूर्वत-साम्प्रदायिक प्रयोजन के कारण हुआ था। भारतीय अवतारवाद में प्रयोजनहीन या हीकारणक अवतार केवल आवि भ्रम या पर पुरुष का ही माना जाता रहा है। शेष बंस या कल्पवृक्षों में कोई न कोई प्रयोजन अवश्य निहित रहता है। यही कारण है कि मध्यकाल में आचार्यों और भक्तों के अवतार में सक्तिमार्ग का प्रचार या अपने परंपरागत साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन मुख्य प्रयोजन था। जो अवतार सम्प्रमाण से केवल अवतरण का ही अर्थ कथित होता है। उसमें प्रयोजन का आभास नहीं मिलता। किन्तु पैगम्बर का संबंध उत्पत्ति या अवतरण की अपेक्षा पैगाम से अधिक है। पैगाम में संदेशवहन का प्रयोजन सन्निविष्ट है। इसके अतिरिक्त इस्लामी परंपरा में

१. मनुस्मृति पृ० ५ अष्टम श्लोके के बाद व. कोर्से, रूप मुहम्मद काते सार।

२. कबो पृ० ५ रूप के नाम मुहम्मद बर, अरब व दूनर जकर रूप।

३. पुरुष एक किन्तु वा अवतारा सबह सरीर सार संसारा।

आयम बंस कोन्तु दुर डाई शकल बरा मुहम्मद लाई प बिशाककी पृ० ५।

४. गाय हुआ नहिं मरि हुती, दुटे चर नहिं सूर।

पेसह संवकून मंद तथा मुहम्मद गुर प बा० र्य पचावन पृ० १ १।

५. का र्य० पचावन पृ० ३०४ पृ० ३ ८ अकराबद में मुहम्मद से अधिक मुहम्मद आविर्भाव के नाम का भी बोध होता है।

यह समझें हैं कि ईश्वर अपनी उपासना के निमित्त पैगम्बरों को भेजता है। अतः इनके प्रादुर्भाव में साम्प्रदायिक प्रयोजन स्पष्ट विहित होता है। जायसी ने इनके साम्प्रदायिक प्रयोजन की ओर ही इशारा करते हुये कहा है कि यदि इन प्रकर के आतिशयोक्त्य पुराने का आविर्भाव नहीं होता तो सर्वत्र भयेरा काया हुआ रहना और मार्ग स्पष्ट नहीं होता।^१ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मध्यकाल में ज्योति का ज्ञान से, एम का समझाप या विधिष्ट उपासना पद्धति में तथा धर्मकार का कार्य अज्ञान में किया जाता था। अतएव साम्प्रदायिक या विधिष्ट मार्ग से समझाप का प्रवर्तन इनका प्रमुख प्रयोजन रहा है। य हुन कहते हैं कि पाछोक में उन सभी लोगों का मान लिया जा रहा है जो उमकी उपासना करते हैं। और जो नहीं करते हैं मरन के पश्चात् उन्हें अज्ञान कर्मात्तुमार भर्ता या नरक में स्थान मिलेगा, क्योंकि इन पैगम्बर या समीर को बहादुर ने अपनी उपासना का पैगाम ईश्वर भेजा है।^२

उपरोक्त जायसी का ही अनुसंधान करने हुए करते हैं कि कतां के रूप में सबप्रथम प्रेम उत्पन्न हुआ। उस प्रेम ज्योति से जिनका नाम मुहम्मद या, समझन उमन अन्वित सृष्टि का निर्माण किया।^३ यहाँ सृष्टि और मुहम्मद का ज्योति-सम्बन्ध ही अधिक स्पष्ट है। परन्तु ज्योति के एक भाग में सृष्टि-रचना और दूसरी ज्योति से सृष्टि का भाग-व्युत्पन्न होने का भी अनुमान किया जा सकता है। निष्कर्षतः ज्योति-अवधार मुहम्मद से ज्ञान ज्योति के प्रयत्न का भाग जाना है।

परवर्ती उपास्य रूप

मध्यकाल में विगुन या निराकार चित्तता सिद्धात्म में माना जाता था

१. जो न हाय अस पुन्य अकार, सृष्टि करेन पव भविष्यात् ।

जा प्र० पद्यावत् ५, ११ ।

२. हुनरे ठीक देव के लिये, मय बरवी के पाहुन सिद्धे ।

के ह मति हीन्य अतमभरि माई ता कई हीन्य मरक मई टाई ।

कान बनीठ दर ओदि हीन्या दुर का उरा मोव का हीन्या ॥

जा० प्र० पद्यावत् ४ ११ ।

३. एतिये क्या प्रेम विधि दिवै उरनी ज्योति प्रेम ही दिवै ।

बही ज्योति बुनिष्टीन एनारी किरिन किरिन कर सृष्टि सेवारी ।

बोदिक मात्र मुहम्मद एम, हुनन सरीठ कहा अमकता ॥

विभाषणी १० ५ ।

उतना व्यवहार में नहीं। निराकार एकेचरवादी उपास्य की स्मृति-पूजा करने वाले लोग अपनी परंपरा में मान्य अनेक महापुरुषों की समाधि की पूजा करने लगे थे।^१ विशेषकर मुहम्मद साहब तो अल्लाह के साकारस्वरूप तथा उपास्य-रूप में पूजता पुरीत हो चुके थे। उनका उपास्य-नाम रसूल अल्लाह बहुत अधिक प्रचलित हो गया था। परवर्ती कबि शैल नबी के 'ज्ञान दीप' के अनुसार मुहम्मद के सर्वलोक में अवतरित होते ही कस्त्रियुग के सभी पापी तर गये। उन्होंने कब्रि में कस्तुपनासक कलमा का प्रचार किया।^२

इससे विदित होता है कि हिन्दू अवतारों के महात्मा ही मुहम्मद साहब भारत में केवल अवतार थे बाद में प्रथम पुरुष से अविदित होकर वे अनेक मन्त्रियों और रसूलों के रूप में अवतरित होने वाले अवतारी हो गये। अतः में उन्हें अवतारी के प्रभाव उपास्य रूप प्रदान किया गया। इस प्रकार आच्छेपकालीन सूफी काव्यों में उनका उपास्य रूप ही अधिक प्रचलित रहा है।

ज्योति अवतार परंपरा

इस्लामी और सूफी साहित्य में अल्लाह के जिस प्रथम अवतार का उल्लेख मिलता है, वह है मूर या ज्योति-अवतार। कहा जाता है कि सृष्टि में अतिरक्त रूप है उनके पूर्व ज्योति दिखाई पड़ती है। अतः ज्योति से ही रूपों का आधिर्भाव हुआ है।^३ अवतारवादी सूफियों में ज्योति-अवतार का क्रम इस प्रकार माना जाता है—सर्वप्रथम सुषा के प्रेम या अन्न से मूर उत्पन्न होता है उसके बाद धूर से शेर, शेर से खड, खड से बरख बरख से काकिब (सारी) का आधिर्भाव-क्रम प्रचलित है।^४ इस परंपरा के अतिरिक्त संभवतः एक दूसरी परंपरा के अनुसार मुहम्मद स्वयं अपने को अल्लाह का मूर कहते हैं और सारी सृष्टि उनकी ज्योति का विस्तार है।

इस्लाम से सैकड़ों वर्ष पूर्व हम ज्योति-अवतार का विकास बीज धर्म में ही देखा जा सकता है। महापानी 'वैश्वरूप सूत्रों' में विद्यमान 'महर्षिपुंडरीक' में बुद्ध के ज्योति-अवतार का प्रायः उल्लेख होता रहा है। 'महर्षिपुंडरीक' के अनुसार बुद्ध जब धर्म का उपदेश करना चाहते हैं, तब भूमध्य के ऊर्णकोश से एक

१ इतिहास इस्लाम पृ० ११५।

२ हिं. सू. क० का० पृ० ४१७ से अज्ञात

मिर्तु लोक में ही लोरी बनने कस्त्रियुग के पापी सचते।

कब्रि में कलमा कस्तुप नैवारण, सलाम बीज अल्लाराम ॥

३ हिं. अ० पृ० ५०६।

४ हिं. अ० पृ० २५।

सूफी साहित्य

रिश्त प्रसूत करते हैं, जिससे अठारह-सहस्र-बुद्धदेव अवभासित होते हैं।^१ इस्लाम परम्परा पर भी बौद्ध ज्योति अवतार-परम्परा के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि ज्योति से प्रभावित अमलत बुद्धों के सतरा इस्लाम में भी बाह में बरक कर धारों पैगम्बर मान्य हुए।

भारतीय सूफी मतसन्धी काम्यों के पूर्व इय ज्योति-अवतार-परम्परा का अवतारवादी काम अकालुदीन कमी की 'मतसन्धी' में विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है। 'मतसन्धी' के अनुसार एक ही ज्योति जो अह्लाह के द्वारा प्रसारित की गई वह क्रमशः जादम मोह, अत्राहम इस्माइल, दाउद, साकूमन, सैकुन, कौमेक, मूना जेसम में प्रविष्ट होती गई। उन्हीं की ज्योति-परम्परा में अब मुहम्मद हुए तो उन्हींके अह्लाह से शक्ति और अनुग्रह प्राप्त किया। उसी परम्परा में अह्लाहक से शक्ति और अनुग्रह प्राप्त किया। उसी शक्ति प्रसूतक भी उसी ज्योति-परम्परा में प्रदीत हुए हैं।^२

इस ज्योति-अवतार-परम्परा में विभिन्न जनों के पैगम्बरों का समन्वयवादी रूप भारतीय अवतारवादी समन्वय क समानन्तर प्रतीत होता है। परन्तु मुहम्मद साहब के अनन्तर इस्लाम धर्म क शिवा सम्प्रदाय एवं सूफियों में इस ज्योति-अवतार की साम्प्रदायिक परम्परा का विकास दृशित होता है।

विशेषकर शिवा सम्प्रदाय में यह माना जाता है कि सृष्टि के बहुत पूर्व अह्लाह ने अपनी ऐश्वर्य शक्ति में से एक किरण ज्योति लेकर मुहम्मद साहब के साथ संयुक्त कर दिया बड़ी ज्योति बली शक्ति हमामों में होती हुई एक परम्परा के रूप में मन्ने हमामों में शक्तिर्भूत होती रही है।^३ इस प्रकार शिवा सम्प्रदाय में पुरोहित का कार्य करनेवाले हमामों का पूर्वता ऐश्वर्यकरण हो गया है। बली हमाम से इनकी परम्परा आरम्भ होती है। कहा जाता है कि बली जमी भी जोषित हैं और उनमें ईश्वर का अंश वर्तमान है। वे सृष्टि क पूर्व विद्यमान थे तथा अह्लाह क सिंहासन क दाहिने पार्श्व में वे स्थित रहते हैं।^४ इस मत में नबियों और पैगम्बरों से इनका विशेष वैपुल्य शिवाया जाता है और कहा जाता है कि नबी शान कामे बाके देवदूत को सुनता है और देवता भी है; किन्तु हमाम उसे देवता नहीं कबक सुनता है।^५ जायसी ने चार प्रसिद्ध हमामों को चार स्तम्भ क सदरा माना है।^६ समबता

१ बीरबर्म और दर्शन पृ० ११० और सङ्गम पृ (६५) पृ ९।

२ मतसन्धी (कमी) जी० १ पृ ८१-८२।

३ बी स्टडिज इन इस्लाम पृ० ६ -७०।

४ बी स्टडिज इन इस्लाम पृ० ६९।

५ जा० प्र० अकालुदीन पृ ३१० माने चारि हमाम जे जाये माने चारि खम्म जे कामे।

६ बरी पृ० ६८।

सांख्यिक व्यूहवाद के अन्तर्गत इस्लाम धर्म के चार स्तम्भों के रूप में ये प्रचलित हैं।

बली

अवतारवादी तर्कों की दृष्टि से इस्लाम धर्म में पैगम्बर के बाद बली का दूसरा स्थान है। कहा जाता है कि पैगम्बर अह्लाद का प्रथम अवतार है और बली दूसरा।^१ यों बली एक प्रकार का बहू स्थापक संत है, जो खुदा से महाकार या सैकन्दर प्राप्त कर लेने पर बली कहा जाता है।^२ पैगम्बर के समान बली भी खुदा और इन्सान के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं। वे खुदा की आज्ञा एवं को स्वाल्प, पुत्रहीन को पुत्र, भूखे को भोजन, मरुत को मार्ग तथा अह्लाद के मजार-तुम्हों को भर देता है। मम्मकलः इसी से सूफियों में कुछ लोग बली को पैगम्बर से भी ऊँचा मानते हैं।^३

इस प्रकार सूफियों के बहुत से अवतारवादी विद्वान् मध्यकालीन सतों और मत्तों के विचारों से साम्य रखते हैं। सूफी कुरान के इस वाक्य का स्वीकार करते हैं कि अह्लाद अवतारवादी उपासकों के सारथ केवल मत्तों का ही रूप है।^४ वे संतों के प्रति की जाने वाली कुश को अपने प्रति की गई समझते हैं। इन्गीरी के अनुसार सूफी बली या भौकिया में त्रिज ईश्वरीय विषय तर्कों का समावेश भगना जाता है वे अवतारी पुरुषों के समावाप्तर हैं। साम्ख्यिक पैगम्बरों के सारथ सूफी संत भी पुत्र-पुत्र में चर्मरवा के रूप काय्य हैं। क्योंकि अह्लाद वे सतों को ही विषय का स्वामी बनाया है।^५ अवतारों में जित्त प्रकार पूर्ण, अंश कला और विभूति की दृष्टि से अंतर होता है, उन्ही प्रकार विभिन्न बली भी क्राम्मात की दृष्टि से कुछ कम या कुछ अधिक प्रतापशाली होते हैं।^६

बली और पैगम्बर

धर्म की समाप्ता होने के कारण बली और पैगम्बर में यह प्रसन्नता है कि दोनों में अन्तर हीन है। सांख्यिकों में कुछ लोग बली को छोड़ मानते हैं और कुछ लोग पैगम्बर को।^७ यों तो बली और पैगम्बर में साधना की दृष्टि से अन्तर बही अंतर जान पड़ता है जो हीनपानी अत्येक कुछ और महाबानी

१ सि० अ० इ० पृ० ११।

२ बी० डी०-सिना भा० १, पृ० ११।

३ इन्गीरी पृ० ११५-११६।

४ सि० अ० इ० पृ० १२५।

५ स० इस० सि० पृ० ७८।

६ इन्गीरी पृ० १११।

७ इन्गीरी पृ० ११५।

बोधिसत्त्व में है, क्योंकि बड़ी प्रायक बुद्ध के मरणा 'स्वात-मुन्नाय' माघक होता है। उसका इशरीय सम्बन्ध गुप्त रहता है। किन्तु पैगम्बर माघमा के उपरान्त 'बहुतमहिताय' कार्य करता है और जन समूह को भासंत्रित करता है। बोधिसत्त्वों के सदृश यदि कोई साधक दूसरों को शिक्षा देना चाहता है तो वह अपने लोक या भवत्या से अवतरित होता है। यह अवतर उस साधक के लिए है जो किसी विसेय कार्य के लिए निपुण किया जाता है। जब तक उसे कोई कार्य भार नहीं सँपा जाता तब तक उसे श्रद्धा से प्रयत्न रहने की आवश्यकता नहीं है।^१ यहाँ बड़ी ही माघी पैगम्बर का रूप विवृत होता है। पर शेष सहाजुहीन की 'अवारिफुक्त मारिह' में पैगम्बर या भीकिया का अवतारवादी पार्यन्त स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनके कथनानुसार पैगम्बर अल्लाह का प्रतिरूप या सगुण रूप है जब कि भीकिया इब्नामी-रबानी या उनका आधिष्ठ रूप कहा जा सकता है।^२ इन्गीरी के अनुसार भी पैगम्बर की कथनी और करनी में बहुत कुछ समानता होती है।^३ बड़ी का अन्तिम रूप ही पैगम्बर का आदि रूप है।^४ अवतारवादी सूफी सम्प्रदायों के प्रवक्ता और समर्पक अबुमन्सीर बुकान मूल मुहम्मद कज़ीफ, मसूर अबु इसाज और राबी, बर्ही और पैगम्बर की करामातों में अंतर मानते हैं। बड़ी या भीकिया करामातों से बनना का मुम्ब करम के लिए बाध्य नहीं होते किन्तु पैगम्बर जनता के लिए ही उत्पन्न होते हैं। आवश्यकतानुसार वे अरनी करामातों को प्रकट भी करते हैं और चिन्तन भी हैं।^५

अंत में पैगम्बर का ही अंष्ट सिद्ध करते हुए कहा गया है कि पैगम्बर मंत या बड़ी से अष्ट है। क्योंकि जहाँ बड़ी का अर्थ समाप्त होता है वहाँ से पैगम्बर का कार्य आरम्भ होता है।^६ बड़ी के आदि और अंत हैं परन्तु पैगम्बर के नहीं। प्रायक युग में अल्लाह के इच्छानुस्य उनका क्रम सतत चलता रहता है।^७

इस मुकतामक अध्ययन से स्पष्ट है कि पैगम्बर के समान विषय गुप्त सम्बन्ध होने पर भी बड़ी अष्ट माघक है या आवश्यकतानुसार पैगम्बर का अवतार-कार्य किया करता है।

१ मि अ १०५० १३१ ।

२ इन्गीरी ५० २२ ।

३ इन्गीरी ६ २२१ ।

४ इन्गीरी ५ २२८ ।

५ ही अवारिफुक्त मारिह ५ १२१ ।

६ इन्गीरी ५० २२३ ।

७ इन्गीरी ५ २२६ ।

इमाम

बही के अवन्तर इस्लाम के अवतारवादी सम्प्रदायों में इमाम को अज्ञात का अवतार माना जाता है। किन्तु बही और इमाम में मौखिक अन्तर यह है कि बही उल्लेखनीय साधक है, जो व्यक्तिगत साधना के बल पर अज्ञात के उद्भव हो जाता है। पर इमाम बही इमाम से आती हुई ज्योति अवतार परम्परा में गृहीत ब्रह्मगत अवतार है। इसी से सिया सम्प्रदाय में इमाम मनुष्य-रूप में ही अज्ञात के सभी गुणों से विभूयित रहता है। कहा जाता है कि स्वयं अज्ञात ने उसके मानव शरीर में अपने दिव्य गुणों को भरा।^१ यद्यपि भारतीय ब्रह्म प्रकृति सम्प्रदायों में भी ब्रह्मगत अवतारवाद के रूप मिलते हैं किन्तु इमामों में प्रचलित यह अवतारवाद ईसाई अवतारवाद से विकसित हुआ है।

मानव अवतार

संतों के समाज सूत्रियों ने भी धर्म्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को अधिक मूल्यवान् समझा है। वे एकमात्र मानव-रूप को ही अज्ञात का निवास स्थान मानते हैं। कुछ सूत्रियों का तो यहाँ तक विकास है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपनी ही मूर्ति के रूप में निर्मित किया है।^२ किन्तु अधिकतर उसके 'अन्तर्हीन रूप' को मानव रूप में स्वीकार करते हैं। इनका कहना है कि मानव इन्द्र दर्शन का सदा एक धार से स्वच्छ और वृद्ध और दो रंगीन या द्विभूत है। ईश्वर स्वच्छ दर्शन की ओर से अपना स्वरूप देखने का किए उसमें आविर्भूत होता है। अब यह यह बतला है कि वह अरिष्टों और पशुओं के शरीर में क्यों नहीं प्रतिबिम्बित होता ? तो इसका कारण यह बताया जाता है कि अरिष्टों का सारा शरीर कर्मक ज्योतिर्मय है और वृद्धों और पशुओं का शरीर दोनों ओर से तमाम्बुज है। इसी से दोनों में से किसी में शुद्ध का स्वरूप प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता। किन्तु मनुष्य का इन्द्र बल ओर से स्वच्छ होने का कारण ईश्वर का स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता रखता है।^३ सूफी दर्शन का सबसे बड़ा विचारक इम्रान अल्-अरबी इस उक्ति का समर्थन करते हुए कहता है कि प्रकृति और मानव ने दर्शन है जिसमें ईश्वर का प्रतिबिम्ब व्यक्त होता है। जो तो यह सृष्टि का प्रत्येक अनु-परमाणु में व्याप्त है। किन्तु यहाँ तक उभका

^१ दी इटो-सिना का २५०२ । २ सि० म० ६० पृ० २५२ ।

^३ सि० म० ६ पृ० ५१ ।

मनुष्य मनुष्य से है, मनुष्य उस अज्ञात का ही रूप है और अज्ञात उस मनुष्य की आत्मा है।^१ मनुष्य में अत्यन्त सभी गुण विद्यमान हैं। वह मनुष्य को ही माध्यम बनाकर अपनी सृष्टि को देखता है तथा सत्कार के लोगों पर कृपा करता है।^२ अठारहवीं शती की 'मसनवी' में भी एक ऐसे मानव अवतारवाद की कल्पना मिलती है जो शैकी की दृष्टि से 'रामायण' या 'महाभारत' के अवतारवाद के अनुरूप जान पड़ती है। भारतीय महाकाव्यों में अिन प्रकार अवतरित होने के पूर्व विष्णु देवताओं से परामर्श करते हैं उसी प्रकार शैकी-मसनवी में भी अज्ञात परिरतों के साथ मनुष्य के निर्माण का विचार करता है।^३ यहाँ यह ज्ञातव्य है कि दुष्ट का विरोध होने के कारण अवतारवाद के बोधक 'प्रतिबिम्ब' या 'निर्माण' शब्द इस्लामी साहित्य में अधिक प्रचलित रहे हैं।^४ शैकी के पुत्रक यहाँ में मानव-अवतार का रचामक प्रयोजन भी स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है।^५

शैकी साहाय्यीन ने दिव्य शक्ति-सम्पन्नता की दृष्टि से इस्लाम के तीन धेद किये हैं। इनके मन्वानुसार सुदार्द शक्तियों के आकाश के अनुपात से तीन प्रकार के इस्लाम होत हैं। इनमें प्रथम शक्तिशाली वे हैं जो ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं वे ही 'इन्सानुल कामिल' या पूर्ण मानव हैं। शक्तिशाली ईश्वर के निकट रहते हैं और साधक ईश्वर में बहते से ही रह करिबास रहते हैं। दूसरे शक्तिशाली माध्यम की पूर्णता प्राप्त करने वाले शक्तिशाली हैं तथा तीसरे सुन्नीय शक्तियों से युक्त इस्लाम हैं।

इन प्रकार शक्तियों के इस मानव-अवतार-रूप में अज्ञात और मनुष्य दोनों के प्रपञ्च विदित होते हैं। अज्ञात मनुष्य में अवतरित होता है और मनुष्य अज्ञात में तदाकार होने की चेष्टा करता है। अज्ञात द्वारा मानव के प्रतिरूप होने या मनुष्य का निर्माण करने में जो प्रयोजन परिच्छिन्न होता है, वह एक प्रकार से अवतारवादी प्रयोजन कहा जा सकता है। इस अज्ञात शैकी के अनुसार वह अपनी सृष्टि सृष्टि का देखता है। मनुष्य में वह अपने सभी गुणों की मर्याद अभिव्यक्ति करता है। अतः जब मनुष्य ईश्वर की चिन्ता करता है तो वह स्वयं को ही याचना है। और जब ईश्वर अपने स्वरूप का स्थापन करता है तो वह अपने को मनुष्य पाता है।^६ कुम्भीरी

१ इ० इ० १०५० पृ० ७४। २ इ० इ० १०५० पृ० (निबन्धन) ५० पृ० १४०।

३ मसनवी (कमी) जी० २ पृ० १४०। ४ ति० अ० ५० पृ० ५५-५६।

५ अ० या० ५ पृ० ११।

६ इ० इ० १०५० पृ० ७४।

ने कुराव क एक आयत क आधार पर कहा है कि अरकाह ने इम्लान की रचना अपनी सेवा के लिए की है।^१

इन कबजों से स्पष्ट है कि सूफी साधकों ने मनुष्य का ईश्वर गुण समझा है। मनुष्य अवतार भी पैगम्बर या अवतारों की भाँति कतिपय अवतार प्रबोधनों से समन्वित है।

इम्लानुक्त कामिल या पूर्ण मानव

मनुष्य मात्र में अरकाह की मानना होते हुए भी सूफियों ने मनुष्य को पूर्णता की ओर आग्रह करने वाली साधना को बहुत महत्व दिया है। साधना के बल से ही सिद्ध होकर उसके महासुधार मनुष्य पूर्ण मानव हो जाता है। सूफी साहित्य में किस प्रकार के इम्लानुक्त कामिल की कल्पना की गई है, वह बहुत कुछ जंसी में भारतीय पूर्णावतार के निकट प्रतीत होती है। पूर्णावतारी पुरुषों में जिस प्रकार कर्म, विभूति या जंसी-स्वरूप पूर्णता देखी जाती है उसी प्रकार पूर्ण मानव में भी ईश्वर के समस्त गुणों की अभिव्यक्ति होती है। इम्लानुक्त के कल्पानुसार सुधा ने इम्लान प्रकर की कि उसके गुणों की अभिव्यक्ति हो। उसने एक पूर्णमानव का निर्माण किया। उसकी धीर (कठम सत्ता) ही स्वर्ण उसमें आकर्षित हुई। उसके सभी गुणों से संबंधित वह पूर्ण मानव अपने दिव्य गुणों से अलग होने पर रिसाकन कहा गया तथा उसने कमा की अवस्था में प्रवेश किया।^२

इस प्रकार मनुष्य की पूर्णता केवल आदम से लेकर मुहम्मद तक होने वाले रसूलों या पैगम्बरों तक ही सीमित नहीं है अपितु सूफी दर्शन के अनुसार बड़ी की कोटि के सामक भी पूर्ण मानव हो सकते हैं।^३ पूर्ण मानव में परमात्मा के समान गुण प्रकाशित होते हैं। अरकाह उसी में पूर्ण रूप से अपने को व्यक्त करता है। सभी पैगम्बर, बीकिया सत पूर्णमानव की धरि में जाते हैं। इसी से सूफी पूर्ण मानव को अरकाह और मनुष्य के बीच की कड़ी मानते हैं।^४ पूर्णावतार जिस प्रकार पाठगुण्य पुक्त होता है उसी प्रकार पूर्ण मानव में ईश्वर की शक्ति या विभूति मात्र ही नहीं अपितु उनका पूज ईश्वरत्व समीप रूप होकर उसमें परिचयित होता है। इसी से सिद्ध मनुष्य अपनी स्वधना की पूर्णावस्था में ईश्वर का नुस्त्र या रूप समझा जाता है।^५

१ दुगोती ३ २१० (कु ५३)। २ २२ इम० नि० ५ ७०।

३ २२ इम० नि० ५० ७८।

४ १५ सा सा ५० २७३।

५. २ २ ५० ७० ७९।

सूफियों में साहित्यी सम्प्रदाय के साथ एक मानव में एक विराट विरह या विश्वरूपामक रूप का अस्तित्व मानत है। उनका विश्वास है कि सृष्टि के सभी तत्वों में निर्मित होने के कारण मनुष्य स्वयं एक कपु विध है।^१

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्ण मानव की व्यवस्था क्षुः गुणों से युक्त मारपीय पूजावतार के अल्पमत्त निकट है। उसमें विराट रूप या विश्व रूप की व्यवस्था उम पूजावतार के निकट का होती है।

सम्भवतः पूर्ण मानव की बढ़ती हुई मरणा के फलस्वरूप ही इस्लाम धर्म में चार फरिस्तों के अतिरिक्त सबाअन्न पैगम्बरों का जाबिर्भाव माना जाता है। आपसी व आखिरी कलाम में उनका वर्णन किया है।^२

कुचान

असौम्य बहों तत्रों, नायों और सिद्धों में ज्ञानावतार या साक्षावतार के मध्य इस्लामी 'कुरान' भी आसमायी पुस्तक के रूप में माना गया है। कहा जाता है कि कुरान का अवतरण निम्नतम सातवें स्वर्ग से हुआ था।^३ आपसी व हमे चार आसमायी पुस्तकों में माना है।^४

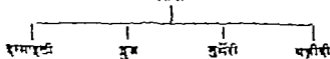
इस्लामी और सूफी अवतारवादी सम्प्रदाय

अवतारवाद की दृष्टि से इस्लामी और सूफी दोनों में दो प्रकार के सम्प्रदाय विकसित हैं। उनमें अधिकांश अवतारविरोधी हैं और कुछ अवतारवादी हैं।

शिष्या मत पक्ष सम्प्रदाय

इस्लाम धर्म में दो प्रकार के सम्प्रदाय सबसे स्थापक रहें हैं। इनमें शारिफी या अवतार विरोधी रहें परन्तु शिष्या और उनके अनुसृतों का नाम वाले विविध सम्प्रदायों में वे अधिकांश बहुत अवतारवादी रहे हैं। शिष्या सम्प्रदाय में इम्माद्दी, बुख सुमैरी और यज़ीदी चार अधिक विनयात रहें हैं।^५

शिष्या



इम्माद्दी पृ० १ १।

२ चार शिखरिन जन्म भोगनेई नाम एके देहुंड संकरीड।

महा काय देवदर निरवैर कर कानूने इम्हाई करेक।

बा में शारिफी कलाम पृ० १५२।

३ गटदीक इन इस्लाम पृ १९८।

४ भा० ई मंगलपद पृ० ११ कारे चरि दिग्ग पदक।

५ सू० भा० भा० इ १४०।

ने कुरान के एक आयत के आधार पर कहा है कि अक्काह ने इल्तान की रचना अपनी सेवा के लिए की है।^१

इन कथनों से स्पष्ट है कि सूफी साधकों ने मनुष्य का ईश्वर तुल्य समझा है। मनुष्य अवतार भी पैगम्बर या अवतारों की भाँति कतिपय अवतार प्रयोजनों से सम्बन्धित है।

इन्सानुक्त कामिल या पूर्ण मानव

मनुष्य मात्र में अक्काह की मानना होते हुए भी सूफियों ने मनुष्य को पूर्णता की और अग्रसर करने वाली साधना को बहुत महत्व दिया है। साधना के बल से ही सिद्ध होकर उनके मतानुसार मनुष्य पूर्ण मानव हो जाता है। सूफी साहित्य में किस प्रकार के इन्सानुक्त कामिल की कल्पना की गई है, वह बहुत कुछ जगहों में भारतीय पूर्णावतार के निकट प्रतीत होती है। पूर्णावतारी पुरुषों में किस प्रकार कर्म, विभूति या धर्म स्वरूप पूर्णता देखी जाती है उसी प्रकार पूर्ण मानव में भी ईश्वर के समस्त गुणों की अभिव्यक्ति होती है। इन्स ए बरकी के कथनानुसार तुहा ने इच्छा प्रकट की कि उसके गुणों की अभिव्यक्ति हो। उसने एक पूर्वमानव का निर्माण किया। उसकी सीर (चेतन सत्ता) ही स्वयं उसमें आविर्भूत हुई। उसके सभी गुणों से संबंधित वह पूर्ण मानव अपने दिव्य गुणों से अवगत होने पर रिसाका कहा गया तथा उसने फला की अवस्था में प्रवेश किया।^२

इस प्रकार मनुष्य की पूर्णता केवल आप्त से लेकर मुहम्मद तक होने वाले रसूलों या पैगम्बरों तक ही सीमित नहीं है, अपितु सूफी दर्शन के अनुसार बरकी की कोटि के सायक भी पूर्ण मानव हो सकते हैं।^३ पूर्ण मानव में परमात्मा के समान गुण प्रकाशित होते हैं। अक्काह उसी में पूर्ण रूप से अपने को व्यक्त करता है। सभी पैगम्बर, औठिया संत पूर्वमानव की कोटि में आते हैं। इसी से सूफी पूर्ण मानव को अक्काह और मनुष्य के बीच की कड़ी मानते हैं।^४ पूर्णावतार किस प्रकार पादगुण्य युक्त होता है, उसी प्रकार पूर्ण मानव में ईश्वर की शक्ति या विभूति मात्र ही नहीं, अपितु उसका पूर्ण ईश्वरत्व समीप रूप होकर उसमें परिकल्पित होता है। हमी से सिद्ध मनुष्य अपनी साधना की पूर्णावस्था में ईश्वर का नुस्त बा रूप समझा जाता है।^५

१ दुर्गेती २ २३० (५ ५९)। २ ए० एम० नि० १० ७७।

३ ए० एम० मि० १० ७८।

४ ए० एम० मि० १० ७७।

५ ए० एम० मि० १० ७९।

सूफी साहित्य

सूफियों में माहिली सम्प्रदाय के लोग पूर्ण मानव में एक बिना बिब या बिबह्वायामक रूप का अस्तित्व मानते हैं। उनका विश्वास है कि सूफि के सभी तर्कों से निमित्त होकर के कारण मनुष्य स्वयं एक लघु बिब है।^१

उन बिबबत में स्पष्ट है कि पूर्ण मानव की कब्रता का गुणों में सुक भारतीय पूजाबतार के अन्वयत निकट है। उसमें बिना रूप या बिब रूप की कब्रता उम पूजाबतार के निकट का होती है।

सम्भवतः पूर्ण मानव की बहती हुई मरवा के फलस्वरूप ही इस्लाम धर्म में चार फरिस्तों के अतिरिक्त महालाक वैगम्बरो का भाविर्भाव माना जाता है। जायसी ने बाबिरी कथाम में उनका वर्णन किया है।^२

कुरान

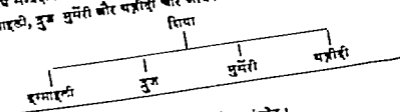
अपौरुषेय बर्तों तर्कों, नायों और सिद्धों में ज्ञानाबतार या शाखाबतार के मरवा इस्लामी 'कुरान' भी भासमाना पुस्तक के रूप में माना गया है। कहा जाता है कि कुरान का अन्वयत निम्नतम सतर्कों स्वर्ग में हुआ था।^३ जायसी ने इसे चार भासमाना पुस्तकों में माना है।^४

इस्लामी और सूफी अवतारवादी सम्प्रदाय

अवतारवाद की दृष्टि से इस्लामी और सूफी दोनों में दो प्रकार के सम्प्रदाय निम्न हैं। उनमें अधिकांश अवतारबिरोधी हैं और कुछ अवतारवादी हैं।

दिया मत्र एव सम्प्रदाय

इस्लाम धर्म में दो प्रकार के सम्प्रदाय सब्य व्यापक रहे हैं। इनमें गारिबी या अवतार-बिरोधी रहे हैं परन्तु दिया और उनक अन्वयत जाने वाले बिबिध सम्प्रदायों में से अधिकांश कइर अवतारवादी रहे हैं। दिया सम्प्रदाय में इस्माइली, सुक सुमेरी और पत्रिदी चार अधिक बिन्धान रहे हैं।^५



१ इस्लामी पृ. १९।
 २ चर डिगिनिज मक भौगरेई मान म- बेमुंड मंकरेड।
 मरा भाग वैगम्बर निरिचै चर कानूनि इन्हिसे बिकेड।
 जा प्रं मारिरी कथाम पृ. १५२।
 ३ गदुईच इन इस्लाम पृ. १९८।
 ४ जा० द० अगारावर पृ० ११।
 ५ मू सा जा० पृ० १४।

शिया के प्राजा समी सम्प्रदायों में बड़ी तथा उनके किंहीं भीर बंधनों को इमाम माना गया, क्योंकि शिया मत के लोग बड़ी क समर्पक रहे हैं जब कि सुन्नी कबीला के। यह परम्परा के अनुगामी होने के कारण वे इंसान बड़ी कबीला को अपना कबीला तथा उछे ईश्वरीय विभूति से पुत्र मानते हैं। बड़ी क बिन बशावरों को वे इमाम के रूप में पूजते हैं, वे भी ईश्वरीय बंधन या ईश्वर के अवतार ही माने जाते हैं।^१ कहा जाता है कि इमामों को जोर अवतारवादी रूप प्रदान करने में अब्दुल्ला इब्न सबा का बहुत हाथ रहा है। यह बड़ी को कबक ईश्वर का अवतार ही नहीं मानता या बरिह वसके मतानुसार ईसा के सद्य मुहम्मद भी पुत्र-पुत्रा अवतरित होते हैं।^२ इस प्रकार इमामों की अब्दुल्ला परम्परा शिया मत में प्रचलित है। अब्दुल्ला इब्न सबा से बंध में बड़ी का ही परमात्मा जपित किया।

भारतीय अवतारवाद से सम्बन्ध

शिया मत के कुछ सम्प्रदायों में प्रचलित अवतारवाद जोर पुनर्जन्म के सिद्धान्त भारतीय अवतारवाद से बहुत सम्बन्ध रखते हैं। विशेषकर शिया सम्प्रदाय के अरस बिसामी गुलत नामक विचारक क कतिपय सिद्धान्त हिन्दू धर्म क सिद्धान्तों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। इनके जो शब्द विशेष रूप से ज्ञातम्प हैं। उनमें पहला है 'गुलत' भीर दूसरा है 'तकसीर'। 'गुलत' से इनका तात्पर्य है कि मनुष्य उच्छ्रमण करते-करते ईश्वर की अवस्था तक पहुँच जाय भीर 'तकसीर' के अनुसार ईश्वर संकुचित होते-होते मनुष्य की अवस्था तक जा जाय।^३ इनकी धारणा है कि अज्ञात मनुष्य-रूप में अवतार होता है। वे तजानुब के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि तजानुब के रूप में अज्ञात विभूतियों क सद्य विभिन्न रूपों में अपनी सन्धियों को प्रसारित करता है। उसका तसबोह रूप ही इस बात में अगुण उपास्य के रूप में प्रचलित है।^४ शिया मत के अन्य अवतारवादी सम्प्रदायों में अल् इकहिवा खुरमियाँ कैदिया मजदाकिया, सिद्दाकिया मुहम्मरियाँ, मजुयजा जादि विख्यात हैं। किन्तु इकमें अल् इकहिवा सम्प्रदाय के लोग बरिह कइर अवतारपयी हैं। वे बड़ी का कबक अवतार ही नहीं बरिह बनगारी उपास्य मानते हैं।^५

१ सू० सा० सा० १५४।

२ सू० सा० सा० ५ १५५।

३ सू० ३० ५ क ५० ५१।

४ सू० ३० ५० ५० ५१।

५ सू० ३० ५० ५० ५१।

सूफी साहित्य

सात इमाम

शिवा मत के कुछ अधिक कहर सम्प्रदायों में अनेक इमामों की अवतार परम्परा प्रचलित है। कुछ लोग सात इमामों की अवतार-परम्परा मानते हैं और कुछ १२ इमामों को। सात इमामों की परम्परा का प्रचारक जम्बुद्वीप इमाम मैनुच नामक एक फारम निवासी था। उसके मतानुसार सातों इमाम पैगम्बरों के अवतार-क्रम में, हैं जिनमें वह सबसे अंतिम और सबसे बड़ा है।^१

बारह इमाम

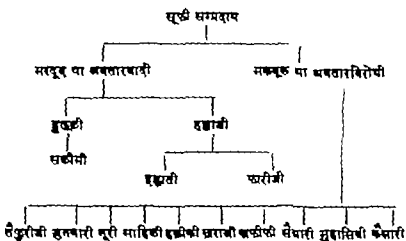
अवीरिया के शिया लोगों में बारह इमामों की अवतार परम्परा प्रचलित है जिनका आरम्भ अली से होता है। इस परम्परा में इम हसन अंतिम बड़े जाते हैं। बारह इमामों की इस अवतार-परम्परा का विकास ईरान में हुआ था। बारह इमामों के समर्थक ईरान के सफ़रिदों ने अपने को सातवाँ इमाम मूसा अल् काज़िम का वंशज माना। उपर्युक्त इमामों के अतिरिक्त ईरान का अंतिम सासावी वंश भी मुहम्मद साहब की पुत्री फतिमा से आरम्भ होने के कारण इस्वीय वंश से पुष्ट माना जाता है।

इसमें स्पष्ट है कि शिया सम्प्रदाय के लोग केवल इमामों को अवतार ही नहीं मानते थे अपितु भारतीय अवतारवाद के सहा इमामों का पुनः-पुनः अवतार का उनकी वंशगत अवतार-परम्परा में भी विश्वास रखते थे। इस परम्पराओं की कुछ विशेषताएँ अपने मौलिक स्वरूप का परिचय देती हैं; जिसमें भारतीय अवतारवाद से उनका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। हममें कोई नहीं कि हिन्दू अवतारवाद से उनका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। हममें दोनों का विग्रह एक ही विष्णु से आरम्भ हुआ। किन्तु सम्प्रदाय प्रवक्तृ-रूप में श्रीकृष्ण राम, हृष्ण, बुध और ऋषभ इन चार राज पुत्रों को छोड़ कर प्रायः उनका राजनैतिक और साम्प्रदायिक दोनों रूप धृष्टक-धृष्टक प्रचलित हुए। दोनों को एक साथ मिलाकर साम्प्रदायिक या धार्मिक राज परम्परा का अवतारवादी विकास कभी भी वैसा प्रचलित नहीं रहा जैसा कि यह ईरान के इमामों की परम्परा में उचित होता है। कदमे का तात्पर्य यह कि शिया सम्प्रदाय के इमाम साम्प्रदायिक और राजनैतिक दोनों एक साथ ही साथ रहे। जहाँ शिया मत में प्रचलित इस अवतारवाद की अपनी विशेषता है।

अवतारवादी सूफी सम्प्रदाय

सम्प्रदायिकीन युग में इस्लामी देशों में जितने सूफी सम्प्रदायों का पता

बहुता है उनमें अधिकांश भक्तारविरोधी और कुछ भक्तारवादी होकर पढ़ते हैं। यों तो भक्तारविरोधी सम्प्रदायों में भी कतिपय भक्तारपरक तत्वों का वर्सन होता है। किन्तु उनका महत्व नगण्य-सा रहा है। कुम्भीरी ने मध्ययुगीन विंग १५ सम्प्रदायों का नाम दिया है उन्हें निम्नलिखित भक्तार विरोधी और भक्तारवादी ढंग से विभाजित किया जा सकता है—



उक्त बारह सम्प्रदायों में से दो भक्तारवादी सम्प्रदाय हैं, इनक़िप मरदूह कह कर उनकी आख्येचना की गई और शेष १० भक्तार विरोधी सम्प्रदायों को मकबूह किया गया। फिर भी सूफी भक्तारवाद के कल्पयन के विभिन्न हुसनी और हज्जाबी सम्प्रदायों का विस्तार महत्त्व रहा है। क्योंकि प्रथम विरोध होने पर भी अल्पकाल ढंग से इन्हें सम्प्रदायों ने केवल सूफी समाज को ही नहीं अपितु समस्त सुस्तिम जाति को प्रभावित किया है।

हुसनी

हुसनी भक्तार-परगना के विरोध का मुख्य कारण रहा है उसका इस्लाम की जन्म भूमि में जन्म न लेना। क्योंकि सुस्तिम मस्तिष्क में 'हुसनी' शब्द, अग्नि भक्तारवाद का बोधक रहा है वह विदेशी यहूदी या ईसाई भक्तारवाद रहा है। तत्कालीन युग में यहूदियों और ईसाइयों ने शत्रुता होना के कारण उनका प्रमुख भक्तारवादी सिद्धान्त भी हुसनी-रूप में मुसलमानों की शृणु का पात्र बन गया। इस मत की दूसरी विशेषता यह है कि इस मत के अनुयायी अधिकतर वही मुसलमान सूफी थे जो इस्लाम में दीर्घ होने के पूर्व ईसाई या यहूदी रहे थे। काकमत्तर में इस्लाम धर्म का अनुयायी

हाम पर भी व अपने प्राचीन अवतारवादी विश्वासों का द्योत नहीं करे था । हमी से दुष्टान में विधाम रखन बाहों का कस्तूरपी इस्लाम क अनुयायी हुआ था अविधाम की दृष्टि से देकर था । इस्लाम में जिब्राइल जैसे दिव्य दूतों या लख को पहूरी या ईमाद्यों क विपरित दुष्टक स मित्र माना जाता था । दुष्टियों क प्रति द्या का यह भी एक मुख्य कारण था ।

उम पुना-भाव का अनुमान हम कथन से किया जा सकता है कि सूफी विचारक जैसी यह तो स्वीकार करता है कि मुहम्मद साहब ही उस राष्ट्र क रूप में दृष्टिगोचर हुए थे । फिर भी उमका यह कठोर आग्रह है कि कहीं हम कथन को लोग दुष्टान न समझ लें ।^१

दुष्टी सम्प्रदाय का प्रवर्तक अब्दुलक़ान नामका एक शक्ति का निधायी सूफी था ।^२ सम्भवतः इस्लामेतर होन के कारण ही नुस्खीम उमे इस्लाम क अन्वर्तन नहीं मानत । दुष्टी सम्प्रदाय क क्षेत्रों में दुष्टान, इम्निजात्र और मस्त्रे अरबद् इन तीन विधायों का अत्यधिक प्रचार रहा है । दुष्टान से उनका सम्पर्क है कि ईश्वर जन्म या अवतार लेता है । इम्निजात्र से व इश्वर क माय संयोग की भावना करत है । मस्त्रे अरबद् क अनुयाय मानव आत्माओं क स्वाभावतरण या पुनः धरीर प्रवध में हबका यह विधाम है ।^३ मागोताना अह्लाद क जन्म और आत्माओं क पुनजन्म दोनों में व आस्था रखत है ।

किन्तु सुस्तिकम मन्त्रा में दुष्टियों का मत इतना व्यापक नहीं हो सका ।

दस्तावेजी

सूफियों में दुष्टी विचारधारा का सर्वाधिक विप्लान प्रवर्तक समूह अह्दु इद्रान था ।^४ उमक दुष्टान या अवतारवाद की विचारधारा को अपने जीवन क मुख्य पर प्रतिपादित किया । इस्लाम क विपरान हाम हुए भी समूह अह्दु इद्रान क अवतारवादी विश्वासों का पचास प्रमाण काकाठर में होने बाध सूफि चिन्तकों और शक्तियों पर पड़ा । इनमें इमन अह्दु अरबी अरबुल करीम खीमी इतन अह्दु फरोद्द, अबुर्मुयद्द आर इतन अबुल ग़र का नाम विन्ध रूप से उल्लेखनीय है ।^५ भारतीय इस्लामी और सूफी साधक भी उमक विचारों से अत्यधिक मात्रा में प्रभावित हुए तथा गजाली, दुष्टीरी और अन्तार य भी उमक विचारों क माय सामग्र्य स्थापित करने का प्रयास किया है ।

१. सू. पृ. १४ ।

२. दुष्टारी १०-१२ ।

३. दारुलशाही—दरबुल का अनु. भा. १५०-१५३ ।

४. दुष्टीरी १. ११०

५. इ. १०१. ४०१. ७ ।

हुसूकी और हकूतकी सम्प्रदायों के अवतारवादी विचारों में अंगर का एक मुख्य कारण रहा है। यह यह कि हुसूकियों का प्रवर्तक हुबमन ईसाई या यहूदी प्रधान क्षेत्र इमिरक का होने के कारण यहूदी या ईसाई अवतारवाद से प्रभावित था। जब कि मंसूर एक हज्जाज वर्षों तक भारतीय साधकों के बीच रह चुका था।^१ उसने भारत से केवल वेदान्त ही नहीं प्राप्त किया अपितु अवतारवाद, पुनर्जन्म, देवों का मानवीकरण प्रभृति प्रवृत्तियों से भी प्रभावित हुआ। यों तो उसका अवतारवादी सिद्धांतों पर भी भारतीय जड़तवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। पर विशेष रूप से वह आवेशात्मकता की भावना से अधिक प्रसन्न रहा है। क्योंकि मायावेद्य में वह अपने को तो स्वयं जहाद का अवतार मानता ही था साथ ही अपने शिष्यों को भी सम्बोधित कर कहता था कि तुम्ही बोह हो तुम मूसा हो, तुम मुहम्मद हो। मैंने उनकी आत्माओं को तुम लोगों के शरीर में जाने के लिए निमंत्रित किया है।^२ हज्जाजियों के अनुसार जामा ईश्वर के सभी गुणों से मुक्त है। वह शरीर में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार ईश्वर में अग्नि। अग्नि बकर बगीची ने शायक आत्माओं की स्थिति के अनुसार आत्माओं के इस स्थान निमित्त किए हैं।^३ प्रायः सभी स्थान ईश्वर के साक्षिण्य में रहने वाली आत्माओं के ही माने गए हैं। इनमें जोयी कोटि की वे आत्माएँ होती हैं जिनका सम्बन्ध रहा क्या कृपा जादि से होने के कारण अवतारवाद से भी प्रतीत होता है।

इस प्रकार हज्जाजी अवतारवाद मुख्यतः आत्मवादी अवतारवाद रहा है। इस मत में अज्ञाह या पैगम्बरों की आत्माओं के पुत्र-पुत्रा आवेशा प्रभाव अवतार का प्रचार रहा है। सामान्य रूप से क्या की शरम साधनात्मक अवस्था में सूची नायक थी सुदाई आबद का अनुभव करते हैं। इसी आवेशात्मक भाव को सम्भवतः हकूतज ने अवतारवादी रूप प्रदाय किया। जाने चलकर इस आवेश का व्यापक प्रभाव सूची साधकों पर लक्षित होता है।

अन्य सम्प्रदाय

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी हैं जो सूर्य दाब का दावा करते हैं परन्तु वे सुमाबीह या मागव पूजा में विश्राम रखते हैं।

१ हि० ५ कि भाउन बी० १५० ४३ ।

२ हि० ५० लि०, भाउन बी० १५ ४३ ।

३ हुगरी ५० २६५ ।

यही नहीं भक्तारवादी सिद्धान्तों में भी उन्की इइ आस्था जान पड़ती है। उनके मतानुसार अज्ञात मनुष्य के शरीर में अपनी सत्ता क इतिहास (स्वानाम्तरण) या तात्रिया (विभाजन) के द्वारा आविर्भूत होता है। अब्दुल्क़ादीरी ने इन सिद्धान्तों को भारतीय ब्राह्मणों क समकक्ष माना है। क्योंकि हम वर्ग के सूफी इयादन का पूजा क किय भी अस्काह-दर्शन का महत्त्व स्वीकार करते हैं। कहा जाना है कि अजाहम ने भी सूर्य, चन्द्र और तारों को पूजा कर कहा—यही अस्काह है।^१

हमसे स्पष्ट है कि मध्यकालीन विदेशी सूफी सम्प्रदायों पर भारतीय भक्तारवादी और उपास्यवादी सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। फलतः भारत में जाने वाले सूफी केवल भारत में आकर ही नहीं अपितु अपने पूर्व स्थानों से ही भारतीय भक्तारवादी विचारों से प्रभावित थे। भारत जाने क पूर्व ही मध्यकालीन भक्तार, भक्तारी और उपास्य-क्रम का जन्म प्रचार हो चुका था।

भारतीय भक्तारवादी सूफी सम्प्रदाय

मध्यकालीन भारत में अनेक इस्लामी और सूफी सम्प्रदाय सारे देश में फैले हुए थे। वे सभी एक जोर ता महार-पूजा करते थे वा प्रवक्तों को अज्ञात या मुहम्मद के प्रतिरूप मानते थे किन्तु भारतीय भक्तारवाद और मूर्तिपूजा को उपास्य की दृष्टि से देखते थे।

किर भी कतिपय सम्प्रदायों और सूफी कवियों में भक्तारवादी विरथानों क सूत्र मिलते हैं। आधुनिककालीन सूफी सम्प्रदायों में दो प्रकार की भक्तारवादी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। प्रथम कोटि के सूफी सम्प्रदाय अपनी सांग्रदायिक भक्तार-परम्परा अज्ञात, मुहम्मद या अरबी से स्थापित करते हैं। भारतीय भक्तारों की परम्परा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

किन्तु दूसरे वर्ग क कुछ ऐसे सूफी सम्प्रदाय हैं जो मुहम्मद आदि पैगम्बरों क साथ भारतीय ब्रह्म, विष्णु, राम, कृष्ण आदि देवताओं वा भक्तारों क साथ सामन्वय स्थापित करते हैं। इनक धार्मिक ग्रंथों में अत्युत्त समन्वय का दर्शन होता है।

प्रथम वर्ग के सूफी सम्प्रदायों में भक्तारवाद की समन्वयन चर्चा नहीं हीबनी अपितु उनक कथामातों वा चमत्कारों में भक्तारवादी प्रयोग मात्र मिल जाते हैं जो सांग्रदायिक विरथान क रूप में तत् सम्प्रदायों में प्रचलित हैं।

हुसूनी और इस्लामी सम्प्रदायों के अवतारवादी विचारों में अंतर का एक मुख्य कारण रहा है। वह यह कि हुसूनीयों का प्रवर्तक हुबमन ईसाई या यहुदी प्रभाव क्षेत्र इस्लाम का होने के कारण यहुदी या ईसाई अवतारवाद से प्रभावित था। जब कि मसूर जब् हुजाब बयों तक भारतीय साधकों के बीच रह चुका था।^१ उमने भारत से कबक बेदान्त ही बही प्राप्त किया अपितु अवतारवाद पुनर्जन्म ईशों का मानबीकरण प्रकृति प्रकृतियों से भी प्रभावित हुआ। यों तो उसक अवतारवादी सिद्धान्तों पर भी भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव परिकल्पित होता है। पर विशेष रूप से वह आशेषावतार की भावना से अधिक प्रस्तुत रहा है। क्योंकि साबाबस में वह अपने को तो स्वयं अज्ञात का अवतार मानता ही था साथ ही अपने शिष्यों को भी सम्बोधित कर कहता था कि तुम्ही मोह हो, तुम सूसा हो तुम मुहम्मद हो। मैंने उनकी आत्माओं को तुम लोगों के शरीर में जाने के लिए निर्मित किया है।^२ हुजाबियों के अनुसार आत्मा ईश्वर के समी गुणों से युक्त है। वह शरीर में उसी प्रकार स्थित है त्रिम प्रकार ईश्वर में अग्नि। मनु बकर ब्रह्मीति में साबक आत्माओं की स्थिति के अनुसार आत्माओं के इस स्थान मिश्रित किए हैं।^३ प्राया समी स्थान ईश्वर के साक्षिभ्य में रहने वाली आत्माओं के ही माने गए हैं। इनमें चौथी कोटि की वे आत्माएँ होती हैं जिनका सम्बन्ध रहा दिया, हुआ जादि से होने के कारण अवतारवाद से भी प्रतीत होता है।

इस प्रकार हुजाबी अवतारवाद मुख्यतः आत्मवादी अवतारवाद रहा है। इस मत में अज्ञात या वैगम्बरो की आत्माओं के पुत्र-पुत्रा भावना प्रभाव अवतार का प्रचार रहा है। सामान्य रूप में जना की चरम साधनात्मक अवस्था में सूची साबक भी तुहार्ई भावना का अनुभव करते हैं। इसी भावनात्मक भाव को सम्भवता हुजाब ने अवतारवादी रूप प्रदाय किया। जानो बरुकर हम आदेश का व्यापक प्रभाव सूची साधकों पर कथित होता है।

मध्य सम्प्रदाय

उपरोक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी हैं जो सूची होने का दावा करते हैं, परन्तु वे सुसाबीह या मानव पूजा में विश्राम रखते हैं।

१ दि० ५० कि मानव जी० १६ ५१ ।

२ दि० ५० कि मानव जी० १६ ५१ ।

३ हुसूनी ५० २२५ ।

यही नहीं अबतारवादी सिद्धांतों में भी उनकी रूढ़ भावना ज्ञान पवती है। उनके मतानुसार अल्लाह मसुम्य के शरीर में अपनी सत्ता के इतिहास (रखानाम्तरम) या ताविया (विभाजन) के द्वारा आविर्भूत होता है। अल-हुजवी ने इन सिद्धांतों को भारतीय आखनों के समकक्ष माना है। क्योंकि इन वर्ग के सूफी इकाइयों या पूजा के क्रिये भी अल्लाह-दर्शन का महत्व रबीकार करते हैं। कहा जाता है कि अमाइम ने भी सूफे, खद्द और तारों को देख कर कहा—'यही अब्रामह है।'^१

इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन विदेशी सूफी सम्प्रदायों पर भारतोप अबतारवादी और उपास्यवादी सिद्धांतों का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। अतः भारत में आने वाले सूफी कबूक भारत में आकर ही नहीं बल्कि अपने पूर्व स्थानों से ही भारतीय अबतारवादी विचारों से प्रभावित थे। भारत आने के पूर्व ही मध्यकालीन अबतार, अबतारी और उपास्य-अम का उनमें प्रचार हो चुका था।

भारतीय अबतारवादी सूफी सम्प्रदाय

मध्यकालीन भारत में अनेक इस्लामी और सूफी सम्प्रदाय सारे देश में फैल चुके थे। ये सभी एक ओर तो मजार-पूजा करते थे या प्रवचनों को अल्लाह या मुहम्मद के प्रतिरूप मानते थे किन्तु भारतीय अबतारवादी और मूर्तिपूजा को उपास्य की दृष्टि से देखते थे।

शिर भी कतिपय सम्प्रदायों और सूफी कबियों में अबतारवादी विरक्तियों के सूत्र मिलते हैं। आन्दोलनकालीन सूफी सम्प्रदायों में जो प्रकार की अबतारवादी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। प्रथम कालिक सूफी सम्प्रदाय अपनी साम्प्रदायिक अबतार-परम्परा अल्लाह, मुहम्मद या अल्ले से स्थापित करते हैं। भारतीय अबतारों की परम्परा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

किन्तु दूसरे वर्ग के कुछ ऐसे सूफी सम्प्रदाय हैं जो मुहम्मद यादिक पैगम्बरों के साथ भारतीय अल्ला, किन्तु, राम, कृष्ण आदि देवताओं या अबतारों के साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हैं। इनके धार्मिक ग्रंथों में अद्भुत सम्बन्ध का दर्शन होता है।

प्रथम वर्ग के सूफी सम्प्रदायों में अबतारवादी की सम्प्रयोग के तत्त्व हीनता बल्कि उल्लेख करामातों या चमत्कारों में अबतारवादी प्रयोग के ज्ञान हैं जो साम्प्रदायिक विरक्तियों के रूप में तत्त्व सम्प्रदायों में प्रकटित हैं।

^१ हुजवी १० १२०।

भारत के प्रसिद्ध चिरंजीव सम्प्रदाय में अली को अज्ञात और मुहम्मद के बराबर उपास्य समझा जाता है।^१ सुहराबर्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक बहाउद्दीन जक़रिया में श्लोक अक़बाद का आशय मानते थे। कहा जाता है कि अज्ञात की आवाज ने उनको समस्त जगत का गीत बनाया जो पैगम्बर के पूर्व का स्थान है।^२ काश्गिरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अष्टुक कादिर का जन्म भी अवतारवादी तर्कों से संबन्धित रहा है।^३ नक़्शबन्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अहमद फ़ारूकी के अवतरण की मविप्यवाणी अष्टुक कादिर जिकानी ५०० वर्ष पूर्व होकर बेंते हैं। इसके अतिरिक्त इतरत मुहम्मद अम्य सभी पैगम्बरों के साथ आकर इनके कामों में अर्जा बुहरा जाते हैं।^४ इस सम्प्रदाय में प्रचलित क्यूमों के प्रति कहा जाता है कि अज्ञात ने मुहम्मद साहब की रचना के उपरान्त उनमें कबे अचक्षिष्ट बंध से तीन क्यूमों की सृष्टि की। इनका कार्य भी पैगम्बरी का अवतारवादी विहित होता है; क्योंकि सम्प्रदायों में यह समझा जाता है कि अज्ञात ने श्वाकितरण और मच्छेदान का पैगम्बरी भार अहमद फ़ारूकी को दिया है। फ़ारूकी के पुत्रों को भी अचरों का रहस्य परमात्मा ही उन पर प्रकट होकर करते हैं।^५ बहाउद्दीन साह मबार को पैगम्बर की कृपा से मुहम्मद और अली का साक्षात् दर्शन मिलता है।^६

उपर्युक्त विवरणों के अतिरिक्त भारतीय सूफी साबकों में मसूर के प्रति बहुत आदर मान रहा है। उनका विवरण है कि ईश्वर ने जिस सत्य का निर्माण किया था, मसूर ने उसी सत्य का प्रवर्तन किया इससे उसे सूफी पर कहा दिया गया।^७ भारतीय सूफी भी मसूर अफ़् इक़बाल के अवतारवादी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि अज्ञात स्वयं संवेदित मसारित करता है, अपने आप ही खेबा करता है और स्वयं वह अपने निर्माण के प्रति इच्छुक रहता है।^८ सिन्ध प्रदेश के मिशामी अनेक सूफी अनुपायियों का यह एक विश्वास था कि ये संत मुर्शिदा सर्वदा अक़्बावकारी कार्य में रत रहते हैं। वे केवल नाम से ही ईश्वर हैं अन्वया वे सत्य हैं।^९

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय इस्लामी और सूफी सम्प्रदायों में अनेक प्रकार की अवतारवादी धारणा प्रचलित थीं। एक ओर तो विभिन्न

१. सू. भा. सा. पृ. ४४६।

२. वही पृ. ४४८।

३. घ. सा. सा. पृ. ५३-५५।

४. सिन्ध. पृ. २०६।

५. सिन्ध. पृ. १२७।

६. सू. सा. सा. पृ. ४६७।

७. सू. सा. पृ. ४९७।

८. सू. सा. सा. पृ. ५२७।

९. सिन्ध. पृ. २२१।

सम्प्रदायों के लोग अपने सम्प्रदायों को विष्ट इस्लामी सिद्ध करने की होश में अपने प्रवर्तकों को अली या मुहम्मद का अवतार मानते हैं, तो दूसरी ओर कुछ सम्प्रदायों के प्रवर्तक सीधे मल्लाह से ही दीक्षित होकर सम्प्रदाय प्रवर्तन करते हैं। अतएव इन सम्प्रदायों का अवतारवादी रूप पूर्ण रूप से साम्प्रदायिक रहा है। इनके अतिरिक्त विन्ध्य प्रदेश के सूफियों में अनेक ऐसे सूफी दखान होते हैं जिन्होंने अल-इब्नाज के अवतारवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया। इस वर्ग के सूफी बली या सन्तों को भी अवतारी पुरुष मानते हैं। इस्लामी विचारों के अन्तर्गत भारतीय अवतारवादी विचारों का प्रभाव भी मध्यकालीन सूफी सम्प्रदायों पर पर्येष्ट मात्रा में पड़ चुका था। इस्लाम के मुख्य पैगम्बर परवर्ती सूफी सम्प्रदायों में मध्यकालीन उपास्यों के सखा सूफी संतों के उपास्य हो चुके थे। समय समय पर उनका दर्शन भीर साक्षात्कार भी सूफी किया करते थे।

हिन्दू अवतार सम्बन्ध

उपरोक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त बाळोध्यकालीन भारत में कुछ ऐसे सूफी मन कवि और सम्प्रदाय भी दीख पड़ते हैं, जिन्होंने इस्लामी पैगम्बरों और हिन्दू अवतारों में समन्वय स्थापित करने के प्रयत्न किये हैं। इन संतों की रचनाओं पर भी अवतारवादी साहित्य एवं लब्धास्त्रीय उपबहारों का पर्याप्त प्रभाव रहा है। पञ्जाब के सूफी मत शैख इमादिस की रचनाओं पर भागवत पुराण का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त सूफी सम्प्रदायों में कुछ ऐसे हिन्दू भी दीक्षित हुए जिनपर हिन्दू अवतारवादी सन्कार पड़के से विद्यमान था। इसी प्रकार के एक उदाहरण माबोलाठ हुमेन नामक सूफी हैं। आरम्भ में वे कायस्थ थे किन्तु बाद में इन्होंने इस्लाम को अपना लिया।^१ इसीसे इनकी रचनाओं में हिन्दू अवतारवादी रूप देना जा सकता है। इस प्रकार के सूफी भाषकों में भी हिन्दू धर्म के प्रति उनको पर्येष्ट उन्नतता का परिचय मिलता है। शाह हुमेन नामक एक सूफी ने राम जी का नाम भी अपने उपास्य के रूप में लिया है। इन्होंने एक पत्र में राम से कुछ, मोँदा खेटी, भाँग और मायु-संगति की पाबला की है।^२ पञ्जाबी सूफी संतों में इनाबत शाह के विचारों पर हिन्दू धर्म एवं दर्शन का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है^३ जो इनकी पुरातन 'इन्तूर अल-अमल' में स्पष्ट है। पञ्जाब के प्रसिद्ध

१. वा. नू. पौ. पृ. १२।

२. वा. नू. पौ. पृ. १४। 'जमी जैनी दुनिया रामजी भेरे खेजु मलारी'।

३. वा. नू. पौ. पृ. ४५।

सूची संत तुलसीदास भी गुरु और गुरुदेव को अमर मानते हैं।
 पर्वों में कई स्थानों पर ईश्वर या अमर उपास्य इन्हें ही
 सम्बोधित किया है।^१ भारतीय अवतारवादी सिद्धांतों की इन
 एक पद में मिलती है। इस पद में हमका कहना है कि गुरु ही
 अमरमा ईश्वर को अमर या अमर विलासता है।^२
 तुलसीदास के पर्वों में एक विशिष्ट सम्बोधनवादी मन्त्रोक्ति का।
 है। वे प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर को देखते हुए अपने एकमात्र
 को अर्पण रूप, राम मुहम्मद आदि विशिष्ट सम्प्रदायों के देवों
 भी देखते हैं। उनके पर्वों में अर्पण तथा वैगम्बरों का अतिरिक्त दिग्
 में विश्वास रूप राम या मुहम्मद आदि का अवतार प्रसंगों को
 में समाहित किया गया है। एक ही परमात्मा कृपात्म में दो
 अंका में विजय का अंका बजाता है और मरका में हाजी होकर
 इस प्रकार एक ही ईश्वर विशिष्ट अंका से रूप बदलता है।^३ तुल
 इन पर्वों में अवतारवादी सम्बन्ध का अत्यन्त अद्भुत और असा
 दृष्टिगत होता है।

अतः सम्बन्ध में इरकाम के कहर राजाओं का कारण विशिष्ट व
 अर्थों संवर्ध की प्रकृति रही है उसी काक में सूची साक्ष्यों का धर्म-म
 उनकी व्यापक अद्भुतता का परिचय देता है। चौबीस अवतारों का अम
 से स्पष्ट है कि भारतीय अवतारवाद प्रारम्भ से ही सम्बन्धवादी का। १
 अवतार धारण करने वाले विष्णु ही अमरः नारायण वासुदेव अथ गुरु
 परमात्मा आदि विशिष्ट सम्प्रदायिक उपास्यों से समन्वित होते होते सब
 शीर्षों से अद्भुत नामधारी हो चुके थे। उनके अवतारों में भी विशिष्ट सम्प्रदाय
 के प्रवर्तक समन्वित होते रहे। अतएव अमरकालीन सूची सत्तों में इन
 सम्बन्धवादी अवतार-परम्परा में मुहम्मद, अली प्रकृति को समाहित कर
 उसका सम्बन्धवादी क्षेत्र और धारणा को और व्यापक बना दिया।

उस काक के सूची अब यह विश्वास करने लगे थे कि प्रत्येक देश में
 अपौरुषेय धर्मार्थ कुत्राव और वैगम्बर जैसे दिग्ग्य पुरुष हैं। वहीं कारण है
 कि राम और कृष्ण के प्रति इनकी अद्भुत उत्तरोत्तर अधिक बढ़ती गई। परवर्ती
 सूत्रियों पर श्रीकृष्ण अथ सम्प्रदाय के इतिहासकों का भी अधिक प्रभाव

१ वा. सू. पौ. १०. ४५। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११।

२ वा. सू. पौ. १. ५५। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११।

३ वा. सू. पौ. १. ५८। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११।

मन्त्रोक्ति का अर्थ है

१३ वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११। वा. प. ११. ११।

पड़ा। उन्होंने शृंवाबत, गोड्डक और राधा-कृष्ण का समाहार मक्का-मदीना और राधा के स्थान में स्वयं तथा कृष्ण के स्थान पर मुहम्मद के रूप में किया।^१ पञ्चाब के घम्टी सम्प्रदाय के लोगों में भी हिन्दू-मुस्लिम धर्म का अमृतपूर्व समन्वय मिळता है। वे भाग्य खॉ को ब्रह्मा, विष्णु और मोहस हब त्रिवेणो का अवतार मानते हैं।^२ उसी प्रकार इस्माइली सम्प्रदाय के अन्तर्गत माने जाने वाले खोजा सम्प्रदाय के प्रवक्तक पीर सबर-अल्-दीन (१२३० ई०) ने ब्रह्मा को मुहम्मद, विष्णु को अली और आदम को शिब माना है।^३

हमसे स्पष्ट है कि सूफियों के उदार दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप हिन्दू-मुस्लिम उपास्य देवों के परस्पर समन्वय के प्रयास होने लगे थे। सम्भवतः हिन्दू भी सूफियों की इस समन्वय प्रवृत्ति से प्रभावित हुए, क्योंकि ब्रह्माह को हिन्दू देवताओं की परम्परा में ग्रहण करने के निमित्त 'अडोपविषद्' का प्रयत्न इसी युग में हुआ।

दृशाबतार

आष्टोप्यकाक में पीर सबर-अल्-दीन नामक एक व्यक्ति खोजा सम्प्रदाय का प्रभाव था। उसने 'दृशाबतार' नाम की एक पुस्तक लिखी जिसमें अंतिम अवतार कबिक को न मान कर अली को विष्णु का दसवाँ अवतार माना। इसमें तो अवतारों तक तो हिन्दुओं की आष्टोप्यकाकीन दृशाबतार परम्परा ही पृथीत हुई है, किन्तु अंतिम दसवाँ अवतार अली को मान कर विचित्र समन्वय का परिचय दिया गया है। यह ग्रन्थ खोजा सम्प्रदाय का धार्मिक ग्रन्थ है। प्रायः सभी खोजा इसे अत्यन्त ब्रह्मा की दृष्टि से देखते हैं।^४ खोजा सम्प्रदाय के अतिरिक्त पीरजाद सम्प्रदाय में भी विष्णु की दृशाबतार परम्परा का प्रचार है। इस सम्प्रदाय के लोग हमसे निष्कर्षक अवतार को महिष्य में जाने वाला परमदेव मानते हैं।^५

इससे विदित होता है कि दृशाबतार की भावना मध्य-आधुनिक युग में हिन्दू जैन, बौद्ध सम्प्रदायों^६ में ही नहीं अपितु सूफी या इस्लामी सम्प्रदायों में भी व्याप्त थी।

१ नू. सा. सा. १० ४२६।

२. सू० सा० सा १० ४२६।

३ प्री. रस० १० १०५।

४ प्रि० रस० १० १०५।

५. सू. सा. १० ४१७।

६ अन्य सम्प्रदायों के निमित्त दृशाबतार भाषक ब्रह्माह इत्यम्।

आद्योप्यकाक में एक ओर तो सूक्तियों ने राम, कृष्ण या ब्रह्मावतारों को खपनाया और दूसरी ओर उस काक के हिन्दू पुराणकार भी इस प्रवृत्ति से विक्षेप प्रभावित हुए। 'अङ्गोपनिषद्' की रचना करने के अथर्वतर अग्निष्यपुराण के २५५, २५६ और २५७वें अध्यायों में सम्भवतः सूक्तियों से ही प्रभावित होने के कारण उन्होंने इस्कामी पैगम्बरों को पुराणों में ग्रहण किया। उक्त अध्यायों में जादम और मूह की ब्रह्म-ग्रन्थरा का विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ जादम की पत्नी हौषा का सम्भवतः परिष्कृत नाम इम्बवती बताया गया है।^१ इसी स्वरूप पर मूह की कथा का अर्थात् वैष्णवीकरण हुआ है। मनु के सप्तम मूह से सम्बद्ध अङ्ग-ग्रन्थ की कथा तो प्रसिद्ध है ही वहाँ के एक विष्णु मन्त्र के रूप में प्रस्तुत किए गये हैं।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मध्यकालीन सूफी सग्रहायों ने इस्लाम के सिवा सग्रहायों से प्रचलित अवतारवादी तत्त्वों को ग्रहण किया। क्योंकि सिवा सग्रहायों के अवतारी और उपास्य अली इमाम सिवा सग्रहायों के अतिरिक्त भारतीय सूक्तियों में भी बहुत अधिक प्रचलित हुए। इनके अतिरिक्त अवतारवादी भारतीय सूफी सग्रहायों ने हिन्दू अवतारवादी सिद्धांतों और राम, कृष्ण तथा ब्रह्मावतारों को उदारता पूर्वक अपने सग्रहायों में इहारेण का स्वागत किया। जिसके प्रभावस्वरूप परवर्ती पुराणों में इस्कामी पैगम्बरों की भी कथाएँ पृथीत हुईं।^२ इस प्रकार मध्यकाल में हिन्दू मुख्यीय धर्म समन्वय के महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए। इस्कामी और भारतीय अवतारवाद ही इस समन्वय के मुख्य आधार स्पष्ट थे।

मेमारख्यानक काव्यों के पात्रों में अवतारत्व

सामग्रहायिक रूप ग्रहण करने के पूर्व अवतारवाद का प्रारम्भिक रूप कोक व्यवहार के अतिरिक्त सर्वप्रथम काव्यों में ही मिलता है। आदि युग से लेकर अब तक आपद् ही कोई ऐसा काव्य होगा जिसमें अवतारवाद के मूल अवक उपमा या रूपक का प्रयोग न हुआ हो। क्योंकि किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति में सादृश्य सहस्य पूर्व स्वाभाविक स्वान रहता है। अतएव काव्यों में प्रमुख अवतारवाद सूक्तः उपमा, रूपक आदि अङ्ककारों की देन है। बाद में पौराणिक तत्त्वों के योग से उसका पीराणीकरण हुआ तथा एकधरवाद और उपास्य रूपों से संबन्ध होने पर सामग्रहायिक विकास हुआ।

१ अग्निष्य पु० अ० २५६। 'आरमो जय पुरुषः इम्बवती तथा'।

२ अग्निष्य पु० अ० २५६।

बस्तुनः अवतारवादी प्रवृत्तियों एवं रूपों के विकास में आलंकारिक और पौराणिक दो तत्त्वों का विशेष योग माना जा सकता है। मध्यकाशीन साहित्य में विभिन्न अवतारवादी काव्यों की रूपरेखा मिलती है। उनका विशुद्ध आध्यात्मिक तत्त्वों के स्थान में पौराणिक परम्पराओं से सम्पृक्त साम्प्रदायिक तत्त्वों का ही आधिक्य रहा है। जिसके फलस्वरूप उनमें व्यञ्जित अवतारवाद में आलंकारिक तत्त्वों की अथवा पौराणिक तत्त्वों का विशेष समावेश हुआ है।

उसके विपरीत प्रेमरूपान्तक काव्यों में अवतारवादी सम्प्रदायों से प्रयुक्त होने के कारण इनमें उपलब्ध अवतारवादी अभिव्यक्तियों में आलंकारिक तत्त्वों का अधिक योग हीन पड़ता है। साथ ही विभिन्न पौराणिक तत्त्वों का समावेश हुआ है, उनके रूप विशुद्धता पौराणिक न होकर काव्य कवि के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

भारतीय प्रेमकाव्यों में दो प्रकार के काव्य हीन पड़ते हैं उनमें प्रथम कोटि के काव्य भारतीय प्रेम काव्यों की परम्परा में जाते हैं और दूसरी कोटि में मध्यकाशीन मुसलमान कवियों द्वारा रचित वे काव्य हैं जिन पर प्रेममार्गी सूफी मतों का प्रभाव है। इन दृष्टि से उन्हें सम्प्रदाय मुक्त और सम्प्रदाय बद्ध दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है।

आलंकारिक और साम्प्रदायिक अवतार पद्धति

सूफी मक़नवी शैली के काव्यों में जाये हुए पात्रों को एक ओर तो अपनी परम्परा के अनुरूप ज्योति अवतार के रूप में ग्रहण किया गया है और दूसरी ओर उन्हें विभिन्न आध्यात्मिक प्रतीकों से भी संबोधित किया गया है। आपसी ब्रह्मावली के अवतार की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जो ज्योति सर्वप्रथम आकाश में उद्भूत हुई वही पुत्र। अपने पिता के गिर में मणि के रूप में स्थित हुई। वही ज्योति पुत्र। माता के गर्भ से अवतरित हुई।^१ इन उद्धरणों में पद्मावती को केवल ज्योति का अवतार माना गया है। उसके अतिरिक्त आपसी ने आलंकारिक पद्धति में सामान्यतः पद्मावती को ब्रह्मा का ही अवतार कहा है।^२ जो प्रायः अन्य सुन्नी श्रियों के लिए प्रयुक्त

१ प्रथम तो ज्योति पद्म निरमल, पुनि तो पिता माये मणि मय ।

पुनि वर ज्योति मातु बर जाई छेदि ओरत जायत वरु पारै ।

ब्रह्मावली, ब्रह्मसूत्र पृ० ५० ।

२. पद्मावती राजा के बारी पदुप तब सति विनि ब्रह्मगो ।

जा० सं० पद्मावती पृ० १८ ।

होता रहा है।^१ कामिनी के पूर्व ही मलय ने पर और कामिनी दोनों को मिथ्य कर्ण सोकाइ कटापुच्छ कहा है।^२ इसके अतिरिक्त कुमार और मधुमाकली का सम्बन्ध उसने ज्योति से भी स्थापित किया है। उसके पदों के अनुसार एक ही ज्योति इव हो ज्यों में उत्पन्न हुई है।^३ उसमान ने भी इसी परम्परा में कहा है कि मन्ना ने राजा के घर में सहस्र कलाओं से पूछ जन्ममा से चित्त बन्नी को अवतरित किया। एक हीप से प्रकाशित चारी दिशाओं के सरस वस्त्रा भी अद्वितीय प्रकाश या।^४

इस प्रकार सूची कवियों ने आर्किक परम्परा में रूप गुण और बर्ण के अनुसार अपने पात्रों को गम्बर्ब, जन्ममा और जन्मराओं का अवतार कहा है। 'चित्रावली' के नायक सुमान को आर्किक परम्परा में ही उसकी सकिर्वा गम्बर्ब का अवतार बतकाती है।^५ उसी प्रकार चित्रावली को भी कतिपय स्थलों पर जन्मराओं से उपमित किया गया है।^६ इन आर्किक पद्धति का प्रयोग परवर्ती सूची प्रेमसाधनायक कवियों में भी दीख पड़ता है। 'हन्नावली' में माकली नाम की एक राजकुमारी का वर्णन करते हुए कवि उसे कभी क्षति और कभी जन्मरा का अवतार बतकाता है।^७

उसमान ने 'चित्रावली' के नायक सुमान को सिव का अंतावतार भी बतकाया है। नाथ साहित्य पर विचार करते समय सिव के अवतारों की खर्चा हो चुकी है। वहाँ यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'बायु' 'किंग' आदि पुराणों में सिव की द्वारा अवतरित योगियों का परम्परा मिलती है। परन्तु आलोच्य प्रेमसाधनाओं में सिव प्रायः उपास्य ईव कथित रहे हैं।

१. सव रनिबास वैठ बहुरासा सति मंदक जनु ने भवता।

का प्रं पद्यावत हूछ १ २४।

२. मधुमाकली १० १४, 'पर कामिनि मुक सोरह कणा'

३. मधुमाकली १० ३७, 'एक जोति दुर भाव देपारै।'

४. चित्रावली १ ५,

राजा गेह निबावकी मारी, सहस्र कला विधि सकि जोतारी।

हसर शोक न पाव तहि औरह एक हीप जनुबंद अंजारी।

५. चित्रावली १० २१४

जिव देया ठिम मुक जनुसाठ बह सोई पम्बरव जोतारा।

६. चित्रावली १ १ १

चित्रावली परिवार की मारी, जनु विने अदरी जोतारी।

७. धारति वास माकली वासा, माकति वास माकली वासा।

बागहू सति मुई पर अवतार प्रहमी पर कनरी जन्मरा व

शिर भी वीरानिक परम्परा में शिब, बिष्णु आदि इष्टदेवों के बरदान स्वरूप शिबके पुत्र उत्पन्न होते हैं, प्रभावशाली होने पर उनके जीवन चरितों में इष्ट-देव के अभावहार के रूप में बहोत किया जाता है। सुमान का भी अभावहार संबन्ध इसी प्रकार का उचित होता है, क्योंकि सुमान के पिता धरबीबर के मिरदान से प्रसन्न होकर शिब जी कहते हैं कि देखो मैं अपना अंधा तुम्हें दे रहा हूँ। अब तुमको पुत्र होगा।^१ बही योगी के रूप में अवतरित होगा।^२ शिब के बरदान या अभावहार की परम्परा अन्य परवर्ती प्रभावदायक कालों में भी उचित होती है। मूर मुहम्मद की 'इम्त्रावती' में शिब के आलीबाद् के फलस्वरूप इम्त्रावती का अभावहार होता है। उसे कवि ने अभावहार के रूप में भी उपमित किया है।^३

इस प्रकार प्रभावदायक कालों में उनके नायक-नायिकाओं के अभावहार-करण की ही पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। इनमें प्रथम है आलम्बिक पद्धति शिबके अनुसार नायक-नायिकाओं का अभावहारवाही सम्बन्ध कवि-परम्परा में विख्यात उपमानों से स्थापित किया जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरी है वीरानिक या साम्प्रदायिक पद्धति जो पुरातन काल से ही अभावहारवाद् के उद्भव में विशेष योगदान करती आ रही है। इस पद्धति से अनुसार बिष्णु, शिब, पार्वती, दुर्गा प्रभृति देव-देवियों अपने अनन्य भक्तों को पुत्र या पुत्री के रूप बरदान देकर स्वयं या अपने अंश से अभावतरित होते हैं। तथा कुछ गन्धर्व या अप्सरा भी शापवश इव प्रभावदायक कालों के नायक-नायिकाओं के रूप में अभावतरित होते हैं। अतः साम्प्रदायिक अभावहार के शाप और बरदान दो अमोघ अस्त्र रहे हैं जिससे नायक नायिकाओं का अभावहार-सम्बन्ध कविक सुगमतापूर्वक स्थापित किया जाता रहा है।

कामदेव-रति

भारतीय देवताओं में कामदेव और रति, काम और रति नामक मानवी प्रकृतियों के ही मानवीकृत रूप रहे हैं। पुराणों की कथाओं में साधारणतः इनका कार्य योगियों या लपटियों को पयस्य करना रहा है। परन्तु येम

१. हेतु देव ही नायक अंश अब छोरे के हैं पिब बंठा। विभावती पृ० १९।
 २. बीबी अंत जो बन अवतराई, दिन बस लाम योगि कर करारें।
 विभावती पृ० १९।
 ३. शिरा अलख ली बिबती कोया, अल है रतन भोज लो बीबा।
 बीब रतन लन कन्दा होई करर निकेन अंजोरी लीरं।
 का दबाठ बाठा गेरि पाटी, खेरि रतन कन्दा अवतरी इ इम्त्रावती पृ० १८।

क अभिष्यञ्जक प्रेमाश्वानक काव्यों में बलिष्ठ नायक और नायिकाओं को प्रायः कामदेव और रति का अवतार माना जाता रहा है। इस कोटि के प्रेमाश्वानों में 'माधवानक कामकण्ठ' अत्यन्त प्रसिद्ध है। विभिन्न काव्यों में कुसुमाभ, गणपति और जाकम इन कवियों ने अपने काव्यों में माधवानक और कामकण्ठ को नायक नायिकाओं के रूप में ग्रहण किया है। इनमें से गणपति की रचना में माधवानक और कामकण्ठ, काम और रति के अवतार बतलाने गये हैं। जिस प्रकार सगुण मछि काव्यों में विष्णु और कल्मी के अवतार सापवस वर्णित किये गये हैं, वैसे ही इस प्रेमाश्वानक काव्य में भी काम और रति का अवतार एक के साप से होता है।^१ परवर्ती कवि जाकम ने इन्हें कामदेव से केवल उपमित मर किया है।^२ ऋतुमुंबदास की 'मनुमाळती' के नायक और नायिका भी इसी परम्परा में कामदेव और रति का अवतार माने गये हैं। 'मनुमाळती' के अनुसार चक्र के द्वारा मस्म होने पर उसकी राक्ष से पात्रि और अमर खर्वात् माळती और मनु उत्पन्न हुये और पास ही में स्थित सेवती वृक्ष से जैतमाळ अवतरित हुई।^३ ना० प्र० समा में सुरचित ऋतुमुंबदास की इ० डि० 'मनुमाळती' की प्रति में मनु स्वयं अपने को कामदेव का अवतार कहता है।^४ पुढकर कवि श्री प्रसिद्ध रचना 'रसरतन' के नायक बैरागर का राजकुमार सोम और चम्पावती की राजकुमारी रमा के रूप में कामदेव और रति का प्रामाणिक अवतार-रूप वर्णित हुआ है।^५ उसी प्रति में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न से भी उसका संबंध स्थापित किया गया है। मनु को श्रीकृष्ण-पुत्र, प्रद्युम्न का बंध कहा गया है।^६

इस प्रकार प्रेमाश्वानक काव्यों का संबंध श्रीकृष्ण और उनके परिवार से स्थापित होता है। डा० कुलवेड ने प्रेमाश्वानक काव्यों का जो विवरण प्रस्तुत किया है उसमें श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न कामदेव और रति का अवतार माने जाने

१ काँर कारन एक वितव, ज्ञान-जबन अविशेष।

माधवा काम कटी बलिष्ठ देवता है रति होई ॥

माधवानक कामकण्ठला पावकण्ठ लीटीक, पृ २४ १०२।

२ दिया तोर वृहस्पति बालो, रूप तोर मकरभब मावो।

हिन्दी प्रेमगन्था काव्य द्वितीय सं० पृ० २८।

३ ना० प्र० पत्रिका सं० २०२, ना माता प्रसाद पुस्तकालय का निर्बंध पृ० २८९।

४ मनुमाळती इ० डि० पृ २९५।

इस ही काम बंध अवतारी वह कष्ट करै समी श्री ग्यारी।

५ ना प्रे काव्य पृ २९४।

६ मनुमाळती इ० डि० पृ २९६

श्रीकृष्ण देवकी पुत्रर कहारै, प्रद्युम्न बंध नाम मनु पावै।

सूफ़ी साहित्य

बाड़े उपा-मनिदह और स्वयं कामदेव वे भी सम्बद्ध प्रेमाख्यातक कार्यों का पता चहटा है।^१

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि भारतीय प्रेमाख्यातों का प्रमुख स्वयं प्रेम की अभिव्यंजना करना था। भारतीय साहित्य में पूर्व काल से ही स्वयं प्रेम की अभिव्यंजना की गई थी। इन दोनों का मुख्य अन्तर्भाव-काम प्रेम नामक अन्तर्भाव तथा प्रेमसूत्र को अधिकाधिक बढ़ करना रहा है। इसी से सामान्य रूप से प्रेमी नायक और प्रिया नायिका काम और रति के ही अन्तर्भाव माने जाते रहे हैं।

काम विक्रम की दृष्टि से काम और रति अत्यन्त प्राचीन देवता माने जाते हैं। वैदिक संहिताओं में सूक्तों के देवता के रूप में इनका उल्लेख हुआ है। इस दृष्टि में काम की अपेक्षा रति का पहले पता मिळता है।^२ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही 'एक स्त्री अनन्तरं सूक्तं कं देवता-रूपं रति का नाम जाया है। इस सूक्त के तीसरे मंत्र में 'मिथुन' तथा चौथे मंत्र में 'काम का प्रयोग हुआ है। इससे यहाँ रति का काम पूर्व सम्भोग से सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है। इस तथ्य से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि काम की अपेक्षा रति का देवीकरण पहले ही हो चुका था। क्योंकि ऋग्वेद में देवता-रूप में काम का कहीं उल्लेख नहीं मिळता। 'रति सूक्त' का चौथे मंत्र का अतिरिक्त ऋग्वेद के नास्तरीय सूक्त में कामना के अर्थ में काम का प्रयोग हुआ है।^३ काम का यही अर्थ प्राया 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' २, ४ १, १० तथा 'तैत्तिरीय आरण्यक' १, २३, १ में दृष्टिगत होता है।

परन्तु काम का सर्वप्रथम देवीरूप रूप 'अथर्व सं०' नवम कांड में उल्लिखित होना है। यहाँ काम इस कांड के दूसरे सूक्त का देवता-रूप में गृहीत हुआ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि काम का देवीकरण रति का प्रमाण अथर्वकांड में हुआ। फिर भी दोनों का सम्बन्ध का मान 'रति सूक्त' से ही माने लगना है। 'अथर्ववेदीय' 'कामसूक्त' के मंत्र में रति का अस्तित्व चिरकाल पक्का है। इससे स्पष्ट है कि रति और काम का प्रारम्भिक देवीकरण पूर्व-रूप होता रहा है। मात्र या कार्य साम्य का कारण ही इनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित हुआ होगा। क्योंकि एक ओर तो रति का

१ दिग्गी प्रेमाख्यातक काम्य २० २३ उपा-मनिदह २ २६ 'मन्त्रसूक्त' ।
२. अ० २, १७९ १-२ ।
३ अ० १ २१-४ ।

सम्बन्ध मिथुन से रहा है और दूसरी ओर 'कामसूत्र' के सर्वाधिक मंत्रों में इत्यति के कल्पना भी पाचना विहित होती है।

रति के अतिरिक्त कामदेव का दूसरा सम्बन्ध प्राचीन साहित्य में विष्णु से भी मिलता है। 'महामारत के 'विष्णु-सहस्रनाम' में काम और कामदेव दोनों शब्द विष्णु के पर्याय हैं।^१ चाँकर भाष्य के अनुसार दोनों का अर्थ पुत्रवार्थ चतुष्टय की कामना विहित होती है।^२ इन उपाहरणों से उभर उपास्यवादी सम्बन्ध मात्र का पता चलता है। किन्तु भक्तारवादी सम्बन्ध की दृष्टि से अत्यंतश्रेष्ठ 'कामसूत्र' के कुछ मंत्र विचारणीय हैं। अर्थात् १, २, १९ में काम का सर्वप्रथम उल्लेख होने वाला कहा गया है। इस मंत्र के अनुसार विष्णु की तुलना में काम के प्रथम भक्तार का मान होता है। हमारे अतिरिक्त भक्तारवादी प्रयाजन की दृष्टि से काम भी विष्णु के सद्यः प्रथम और प्रवेश के निमित्त सन्तुष्टों का नाश करता है।^३ अन्य मंत्रों के अनुसार वह मन्त्रों के सन्तुष्टों का संहार करता है।^४

इन मंत्रों के धारों से विहित होता है कि कामदेव भी प्रारम्भ में विष्णु के भक्तारी गुणों और कार्यों से मुक्त था। इसी से दोनों का समन्वित होना सहज सम्भव था। महाकव्य काल में एक ओर तो विष्णु इहद्वैत वा वैवाचि-द्वैत हो गए और कामदेव अन्य देवताओं के प्रायः केवल काम विशेष के अविद्यता देवता मात्र रह गये।

महामारत काल में काम और रति का इत्यत्य दृष्टिगत होने लगता है। 'महामारत के 'आदि पर्व' में कहा गया है कि काम चर्मपुत्र है और इहद्वैत पत्नी का नाम रति है।^५ वहाँ इसके भक्तार का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि महामारत काल तक काम और रति दोनों भक्तार प्रदूषण करने वाले देवता के रूप में अधिक प्रचलित नहीं थे। क्योंकि जिस प्रदूषण को काम का भक्तार 'महामारत' के 'अनुसामन पर्व' में कहा गया है^६ वे ही 'महामारत' 'आदि पर्व' में खलकुमार के अंत से अन्तर्हित कहे गए हैं।^७ हाँ भक्तारों से सम्बन्ध होने के कारण श्रीकृष्ण के सरल प्रदूषण भी भोग और दोग धारों से संबंधित विहित होते हैं परन्तु

१ महा कवु० १४९, ४५ और ८१।

२ अर्थात् १, २, १९।

३ महा० आदि० २१, २१।

४ महा० आदि० २७, २५१।

५ पा० भा० वि० सं ५ ११५, १९७।

६ अर्थात् १, २, १७-१८।

७ महा कवु० १४८, २०-२१।

इतना स्पष्ट है कि महाभारत काट ख ही काम अवतार ग्रहण करने करता है। 'महाभारत' अनु० १४८, २, १ में प्रद्युम्न के उत्पन्न होने पर कहा गया है कि 'बहु कामदेव ही भगवान् श्रीकृष्ण का वंशधर है।' यहाँ रति क अवतार का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। अतः कामदेव के इस रूप को, पौराणिक रूप की अपेक्षा आधुनिक अधिक कहा जा सकता है। बाद में जब कर कामदेव का प्रद्युम्न रूप पुराणों में रूप सा हो गया है। किन्तु यों सामान्य रूप से श्री पुराणों में कामदेव और रति का सम्बन्ध पुत्र और पुत्रवधु से स्थापित किया जाता रहा है। सम्भवतः इसी परम्परा में श्रीकृष्ण, कृष्णमयी को प्रद्युम्न और मायावती का परिचय देते हुए उन्हें कामदेव और रति का अवतार बताते हैं।^१

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि काम और रति का देवता रूप में पृथक्-पृथक् विकास हुआ। 'महाभारत' में दोनों एक साथ दिखाई पड़ने लगते हैं। परन्तु 'महाभारत' में ही केवल काम क अवतारवादी रूप का आरम्भ होता है। 'विष्णु पुराण' के युग तक कामदेव-रति दोनों का संयुक्त अवतार प्रचलित हो जाता है। मायकाशीन प्रेमाख्यानों में इनका संयुक्त अवतार और अधिक प्रचार पाता है।

मध्यकाल में ज्ञानाक्षरी, प्रेमाक्षरी और सगुण भक्तों की श्रिधेनी कामरा एक साथ प्रवाहित हो रही थी। कबीर (वि० १४५५-१४५१), मुक्ताहारद, (वि० १४२०) और विद्यापति (वि० १४२५-१४७५) आदि प्रायः तीनों एक ही काल में हुए थे। अतः तीनों धाराओं का परस्पर प्रभावित होना असंभव नहीं कहा जा सकता। फिर भी सूफी कवि सगुण भक्ति या अवतारवाद से बहुत कम प्रभावित हुए हैं।

प्रेमाख्यानों में विष्णु के अवतार पात्र

सूफी काव्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रेमाख्यात्मक काव्यों का भी पता चलता है जिनके पात्र भारतीय साहित्य में विष्णु क अवतार रूप में अधिक विख्यात हैं। डॉ० कुलभेद द्वारा प्रस्तुत विवरण में कृष्ण-गोपी, राम-सीता, कृष्ण-राधा, कृष्ण-अन्यावती आदि प्रेमाख्यानों क नायक-नायिका विशेषकर अवतारवादी प्रतीत होते हैं।^२ इन अवतारवादी प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कुछ तो सूफियों से प्रभावित हैं और कुछ विद्वान् रूप से भारतीय प्रेमाख्यानों की

सैली एवं उपादान दोनों ग्रहण करते हैं। जैसे 'रूप मंत्रों' और 'मनुष्यकृती' में सूक्ष्म प्रभाव का दर्शन होते हैं तो 'वैदिकीकृत' 'अभिमनूरी' पर सूक्ष्म प्रभाव उचित नहीं होता।

सूक्ष्म प्रभावों में विष्णु के अथार प्रसंग

उपरोक्त अथारवाही प्रभावों के अतिरिक्त सूक्ष्म प्रभावों में विष्णु के अथारों के प्रासंगिक वर्णन मिलते हैं। इन प्रासंगिक उद्धरणों की विशेषता यह है कि इन प्रभावों के नायक और नायिकाएँ स्वाम-स्वाम पर विभिन्न परिस्थितियों से विष्णु के अथारों एवं उनके कार्यों की तुलना में प्रस्तुत की गयी हैं। पौराणिक अथार इनके रूपों और जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की तुलनात्मक अभिव्यक्ति के विषे अभिवार्य माध्यम बन गये हैं। इन कवियों की एक विशेषता यह भी है कि नायक-नायिकाओं में सूक्ष्म प्रभावों की उजागरता करते हुए भी वे उनके हिन्दुत्व से सम्बद्ध धार्मिक विश्वासों को विशुद्ध सुरक्षित रखते हैं। इसके फलस्वरूप तत्कालीन युग में प्रचलित राम-कृष्ण आदि अथारों के उपासक रूपों के भी प्रासंगिक वर्णन हुए हैं। इस प्रकार इन प्रभावों के हिन्दू पाठों के जीवन से सम्बद्ध तत्कालीन अथारवाह के विविध रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

आपसी पचावटी के लम्बे के पचाह दसके भावी जीवन की तुलना राम-सीता का जीवन से करते हुए कहते हैं कि इसकी वही गति होगी जो सीता की हुई थी। सीता अयोध्या में जन्मी और उसकी वैद में बसीस कथन प्रकट हुए। परन्तु कुछ समय उसके साथ राम का कथन के किये पतंगों की भाँति सब भूल गया। वे पचावटी की भीड़ों का वर्णन करते हुए अथारों के द्वारा प्रयुक्त धनुष एवं धनुष के नायक नायिका स्थापित करते हैं। वे कहते हैं कि काकी भीड़ें तने हुए धनुष का उचित विचार काय मारती हैं। स्वर्ण काष्ठ ने ही यह धनुष बना है। वही धनुष कृष्ण के पास था। पही धनुष राम ने सीता स्वर्णर का समय धारण किया था और उसी से रावण का संहार किया था। उस धनुषधारी ने मारे संहार को अपना कथन बनाया है। उसे कोई वही जीत सदा, उगसे कथा कर स्वर्ण

१ शिवक हीन अथार अथार, अथार अथार अथार।

राम अथार अथार अथार अथार अथार।

राम अथार अथार अथार अथार अथार। पचावटी अथार अथार ५ ५२-५३।

वीरों के अथार अथार में सीता का लम्बे अथार में मारा गया है।

घृणी साहित्य

की अप्यरायें तथा बुदाबन की गोपियों भी लिप गई हैं।^१ जमी प्रकार बहिनियों की तुलना राम-बाबय की सेना स की गई है।^२

अठारहीन द्वारा बही रखसेन की दशा के साथ जायसी ने विष्णु के विभिन्न अवतारों पूर्व उनक कायों का विभिन्न समन्वय किया है। ब बहिनियों स जकड़े हुए रखसेन की बबस्था देख करते हैं कि आज नारायण ने पुन संसार को बूँद बाका है। आज मिह की संज्ञा में बह किया गया है। आज राबन के हसों मस्तक गिर गय हैं। आज कृष्ण ने काळीनाय का फन नाय दिया है। आज कंससभ ने अपने प्राय त्याग दिये हैं। आज मत्स्य रूपधारी विष्णु ने संक्रामुर को भिगल किया है। आज पांडव बंदी हो गये हैं। आज पुनासन की मुञ्जा उखड़ गई है। आज बठि पकड़ कर पाताक में बाठ दिया गया है।^३ इस प्रकार रखसेन की दशा का ही वर्णन करने में मंसबता बराह, राम, कृष्ण, बामन मत्स्य, आदि अवतारों क पराक्रम का उल्लेख किया है। उसक बतिरिक्त अन्य कतिपय स्थकों पर भी प्रासंगिक उल्लेख हुये हैं जो अवतारी रूपों की अपेक्षा कायों में प्रकटित क्विगल रूप अधिक हैं। जैसे घृष्णी घारम करने वाले हूम क लिप कडा गया है कि जो हूम धरती रोके हुए या बह भी हाथियों के मार से मथि सैन गया है।^४ मास्बावतार में विष्णु ने सात पाताक क्रोज कर बेहों का उदार किया मा,

- १. मोहि स्वाम बनुक बनु वाना, काठी हरे मार विख बला।
- २. बरी बनुक क्व मौरन, बड़ा, वैर बबिबार काज उस ग्वा ॥
- ३. बरी बनुक भिरसुल बरं बहा, बरी बनुक राबी कर गवा।
- ४. बरी बनुक राबन संभरा बरी बनुक संक्रामुर मारा ॥
- ५. बरी बनुक वेवा इगगाह मारा बोरी सरलर बाह।
- ६. बरी बनुक मै भोपई बीन्हा बानुक जोयु वैरु बग कीन्हा ॥
- ७. बरी मोहनहि करि कैकम बीडा, अदरों छपी छपी मोरीडा।

पद्यावत अमराक ५० ११ १०१।

- १. बरनी का बरनी बमि बावो साये कय बाव बह जमी।
- २. सुती राम राबन के सेना बीच समुह मर दुर सेना ॥ दया० अम० ५ १०१
- ३. आज माराबन फिर बय बूँद माहु निब संक्रामुर मूरा।
- ४. आज मये राबन बस माधा माहु बाण्य हरी फन माधा ॥
- ५. माहु बरान बंन सेनि होण्य, माहु मीज संक्रामुर सीला।
- ६. माहु परे पीरो बंति मारो माहु हुमासन उदरी मारो ॥
- ७. माहु सरदिन अचका मा चिबतर बंतिबारा। दया० अम , ५० ११०
- ८. बा बासुरैकणाय अमराक मे बही बरदुताम से ताणव निबा है। परदु भिर ५० ११०।
- ९. कुष्ण भिरे हुन बरनी बठि गवेउ मरमारा। दयावत अमराक, ५० ५११ ५१०।

बेसे ही रत्नसेन कहता है कि मैं भी पद्यावती को पाने के दिने सप्त
आश्विन तक चूँगा ।^१ नारायण की भी पद्यावत में खर्चा हुई है । रत्नसेन
नारायण को उपास्य देव के रूप में प्रथम करता है ।^२ एक स्थान पर घोरा
कहता है कि आज मैं यह अनुभूत कृष्ण बनूँगा जिसके सामने कंध नहीं रह
सकता और शत्रुओं की तो बात ही क्या ।^३ इस प्रकार के प्रासंगिक उल्लेख
उत्तमान की 'विद्यावती वा अन्य सूची काव्यों में भी मिलते हैं ।^४

परबर्ती कवियों में मूर मुहम्मद ने अपनी 'अनुराग वाँसुरी' को श्रीकृष्ण की
वाँसुरी से श्रेष्ठतर बतकाते हुये ध्यातपूर्वक कहा है कि इस वाँसुरी की ध्वनि
सुन कर अपनी वाँसुरी से गोपियों को भ्रमित करने चाहें^५ कृष्ण स्वयं अचेत
हो जाते हैं ।^६ इनके कथनानुसार इसके ईश्वर वृंशिनाराय को देखकर कृष्ण,
रामादि अक्षतार भी मृग्य हो जाते हैं ।^७ तथा सर्वमंगला का रूप देख कर
परशुराम भी हार जाते हैं ।^८ आधसी की अपनी मूर मुहम्मद ने वैष्णव
अक्षतारों का अत्यन्त गौरव रूप प्रस्तुत किया है जो उर्ध्वतक बहुराजों से
स्पष्ट है ।

उक्त सूची काव्यों के अतिरिक्त सूची शैली से प्रभावित^९ हिन्दू कवियों
द्वारा किये गये 'कवमंजरी', 'मनुमावती' और 'पुष्पावती' में तत्कालीन
संगुणोपासकों के अक्षतारवादी कर्तों का परिचय मिलता है ।

१ सप्त पक्षर शीघ्रि वस कहे वैद गरव ।

सप्त सप्त अदि शशी वद्यावती वैदि वंश म वद्यावत, अद्यावत ५० १४४ १४५ ।

२ नमो नमो नाट्यन देवा, का मोदि शीघ्रि कर सेवा ।

वृद्धवत्क लवके वपराही, सेवा वैदि अस्त शीघ्रि गारो म

वद्यावत, अद्यावत ५ १४५ १५६ ।

३ अतिरिक्त मुका अनुभूत आज् अंत म रहा औरु को राज् । पद्या० मय ५० ६८०

४ विद्यावती ५० १६० कृष्ण और ५ १७२, १७३, १७८ १८१, राम और अन्य ।

५- कृष्ण वाँसुरी मोही शोपी, जब यह वीसी गई अकीपी । अनुराग वाँसुरी ५० ६ ।

६ तुमसे को यह अक्षर मनोहर, होत अक्षर कृष्ण सुरजीवर । नदी ५ ४ ।

७ वरसवराय तहाँ एक राका आके वरसम सों दुपनामा ।

ताके शीघ्र शीघ्र वदमाही, ताके शीघ्र कबान कपाही म

देमातर (गवैष्ठ) वैदि निवा कोवा, शीघ्र वदमाह् वैदि शीवा ।

अनुराग वाँसुरी ५० ११ ।

८- वारे परशुराम और राम्, वैदि न वद्वार लके अमिराम् । अनुराग वाँसुरी ५० १२

९- क्यो अक्ष धरि अक्ष नाचन मोही इन्दु एक लवरी में जाती ।

वं० मं० कव० ५० ११६ ।

हिन्दू प्रेमक्यानों में वैष्णव अवतारवाद

अष्टावक्र के वैष्णव कवि मंदास द्वारा रचित 'रूपमञ्जरी' में प्रेम-व्यामक शैली की कथाओं में ही श्रीकृष्ण को अवतार माना गया है। 'रूपमञ्जरी' जहाँ एक साधारण राजकन्या है, वहाँ इसके भायक स्वयं अवतारी श्रीकृष्ण हैं। वे ककिलाल में प्रकट नहीं होते हुए भी स्वप्न में इससे मिलते हैं।^१ स्तुतियों की अपेक्षा 'रूपमञ्जरी' में भारतीय संस्कृति और संस्कार अधिक विद्यमान हैं। क्योंकि इसमें भायक के स्थान में भारतीय परम्परा के अनुकूल स्वयं नायिका ही अधिक आकृष्ट रहती है। 'रूपमञ्जरी' में मंदास की ने केवल बन्नी के विरह का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के प्रति वे कहते हैं कि यद्यपि उन्हें वेदों में जगम कहा गया है फिर भी वे रगिन्के प्रेमवशा अवतीर्ण होते हैं।^२

'रूपमञ्जरी' के अतिरिक्त 'मनुमाहती' में श्रीकृष्ण एवं अन्य विष्णु के अवतारों का पर्येष्ट परिचय मिलता है। इसमें श्रीकृष्ण के अवतार की खर्चा करते हुए कहा गया है कि बासुदेव और नन्द गोप के गृह में विवास करने वाले और बंस का विवाह करने वाले कृष्ण प्रकट हुए। इन्होंने सबक अपनी माया का विस्तार किया है और वे ही आकर मूनार उतारते हैं।^३ 'मनुमाहती' के पात्र विष्णु की स्तुति करने समय उनक अवतार-कार्यों एवं रूपों की खर्चा करते हैं। उन स्तुति के अनुसार हरि भक्तवत्सल एवं अवतार धारण करने वाले हैं। उन प्रभु की महिमा उनका स्मरण करने वाले संत ही जानते हैं। वे सिध्दा धन्दि को भी साथ समझ लेते हैं। करोड़ों अपराध करने वाले के अपराधों की ओर ध्यान नहीं देते। बिना गुण-अवगुण का विचार किये इन्होंने न जाने कितनी गम्भीर और भीषणी को तारा। भक्त गुरु का लाल प्रेम पूर्वक हृदय में धारण किया। इस प्रकार वे अल्पमत गुरु प्रदान करने वाले हैं। मन्त्रों के निमित्त इन्होंने इस बार अवतार ग्रहण किया। माया वतार में वेद हीन कर ब्रह्मा को दिया। बराह रूप में पूरबी का आम्ह पूर्ण

१. तिहू काक में प्रथम प्रमु. प्रथम न इति कवि काक।

दाते लवना जोर दे, मरे विरिबर लाल न नं० प्र० रूपमञ्जरी पृ० १४६।

२. यद्यपि जगम ते जगम अति विषय धरन है काहि।

यद्यपि रंगीले प्रेव ते, निवड निवड प्रमु काहि प में प्र० रूपमञ्जरी पृ० १४३।

३. बासुदेव मंद भोव गृहवासी प्रप्यो इत्ये कंस विनाली।

माया लकड मर्दि विलारे ऐजी कोरि जाले नुरवार बनारे ॥

मनुमाहती पृ० कि पृ० १२५।

बैसे ही रामसेन कहता है कि मैं भी पद्मावती को पाबे के छिने सात आकास तक चढ़ाया ।^१ नारायण की भी पद्मावत में बर्षा हुई है । रामसेन नारायण को उपस्थ देव के रूप में प्रणाम करता है ।^२ एक स्थान पर गौरा कहता है कि आज मैं वह अनुर्मुक्त कृष्ण बनूँगा जिसके सामने कंस नहीं रह सकता और राजाओं की तो बात ही क्या ।^३ इस प्रकार के मासमिक उल्लेख रामायण की 'विद्यावली' या अन्य सूची काव्यों में भी मिलते हैं ।^४

परवर्ती कवियों में मूर मुहम्मद ने अपनी 'अधुराग बाँसुरी' की शीकृष्ण की बाँसुरी से छेछतर बतलाते हुए प्यारपूर्वक कहा है कि इस बाँसुरी की शक्ति सुन कर अपनी बाँसुरी से गोपियों को अर्पण करने वाले^५ कृष्ण स्वयं जन्मत हो जाते हैं ।^६ इनके कथनानुसार इनके ईश्वर वर्तमानप को देखकर कृष्ण, रामदि अवतार भी मुरख हो जाते हैं ।^७ तथा सर्वसंगका का रूप देव बन परछराम की हार करते हैं ।^८ जायसी की अपेक्षा मूर मुहम्मद ने वैष्णव अवतारों का अत्यन्त गीम रूप प्रस्तुत किया है जो उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है ।

उक्त सूची काव्यों के अतिरिक्त सूची खेड़ी के प्रभावित^९ हिन्दू कवियों द्वारा लिखे गये 'कपमजरी' 'मधुमाच्छी' और 'सुद्धावती' में तत्कालीन सगुणोपासकों के अवतारवादी कर्मों का परिचय मिलता है ।

१. सब पतार जोकि अस काड़े देव गरब ।

सात सरग बर्षि वाली पद्मावती वैहि पंख ॥ बघावत, अघवाक पृ० २४४, २४५ ।

२. लमो लमो नारायण देव, का मोहि भोग लखी कर सेवा ।

ए दयाल सबके करछरी सेवा कैरि बात तोहि नारी ॥

पद्मावत, अमकाल पृ० १४५, १५९ ।

३. आरिख मुका अनुर्मुक्त आजू कंस न रहा औरु को राख । पचा० अघ पृ० ६८०

४. विनावकी वृ २९० कृष्ण और पृ० १७२, १७३ १७८, १८२, राम और अघ ।

५. कृष्ण बाँसुरी घोड़ी घोड़ी बन कह बंसी परं अकोरी । अनुराम बाँसुरी पृ ९ ।

६. सुनते को यह छप्प मयोहर, होत जन्मत कृष्ण सुखीवर । वही पृ० ४ ।

७. दरसनदाव तहाँ एक राजा जाके दरसन लो दुख माया ।

टाके भोग रीस बनमाजी, टाके भोग कजात कजाजी ॥

हैमातर (गौरी) छेहि निवा जोबा, रीसव रामचन्द्र छेहि सोया ।

अधुराग बाँसुरी पृ० २२ ।

८. हारे परछराम और रामू, छेहि न बर्षार सबे अमिरामू । अनुराम बाँसुरी पृ १२

९. क्वों बक यरि बक मावन मोही हनु एक छपरी में बायीं ।

मं० मं० कव पृ० २२९ ।

हिन्दू प्रेमकवियों में वैष्णव अवतारवाद

अवतार के वैष्णव कवि नरहाम द्वारा रचित 'रूपमञ्जरी' में प्रेमकवियों के सैली की कथाओं में ही श्रीकृष्ण को अवतार माना गया है। 'रूपमञ्जरी' का ही एक सामान्य राजकन्या है, वहीं इसका मायक स्वयं अवतारी श्रीकृष्ण हैं। वे कलिकाट में प्रकट नहीं होते हुए भी स्वयं में हज़रत मिलते हैं।^१ स्तुतियों की अपेक्षा 'रूपमञ्जरी' में भारतीय संस्कृति और संस्कार अधिक विद्यमान हैं। क्योंकि हममें मायक के स्थान में भारतीय परम्परा के अमुख्य स्वयं मायिका ही अधिक व्यापक रहती है। 'रूपमञ्जरी' में नरहाम की ने केवल बली के विवाह का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के प्रति वे कहते हैं कि पद्यों उन्हें बेहो में अगम कहा गया है फिर भी वे रंगीले प्रेमका अवतीर्ण होते हैं।^२

'रूपमञ्जरी' के अतिरिक्त 'मञ्जुमाहती' में श्रीकृष्ण एवं अन्य विष्णु के अवतारों का पद्येष्ट परिचय मिलता है। इसमें श्रीकृष्ण के अवतार की वर्णना करते हुए कहा गया है कि बालमुनि और बड़ गोप के गृह में निवास करने वाले और संस का विनाश करने वाले कृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने सर्वत्र अपनी माया का विस्तार किया है और वे ही आकर मूमर उतारते हैं।^३ 'मञ्जुमाहती' के पात्र विष्णु की स्तुति करते समय उनका अवतार-कावों एवं रूपों की वर्णना करते हैं। उन स्तुति के अनुमान ही भक्तवत्सलक एवं अवतार प्राप्त करने वाले हैं। उन प्रभु की महिमा उमका स्मरण करने वाले मंत्र ही जानते हैं। वे मित्या मक्ति को भी मारक समझ लेते हैं। कदाचित् अपराध करने वाले के अपराधों की ओर ध्यान नहीं देते। विना गुण-अधुगुण का विचार किने उन्होंने न जाने किन्तनी गणिका और मीकनी को तारा। भक्त मनु का काम प्रेम पूर्वक इक्षय में आरत किया। इस प्रकार वे अत्यन्त सुख प्राप्त करने वाले हैं। भक्तों के निमित्त उन्होंने हम बार अवतार प्राप्त किया। मत्स्या पतार में बड़ दीन कर बड़ा को दिया। बराह रूप में पृथ्वी का व्यापक पूज

- १ तदु काल में मगर मनु अत्र न छिदि कति काल ।
साके, मरती कोट के, मेरे प्रियकर काल ३ सं० प्र० रूपमञ्जरी पृ० १४३ ।
- २ कदापि अपय से अगम अति नियम करन है कति ।
तदपि रंगीके प्रेम से, निरट निरट मनु कति ३ सं० प्र० रूपमञ्जरी पृ० १४३ ।
- ३ बालमुनि नर घोर गुरुबाजी प्रकटी कृत्य संस विनासी ।
माया लक्ष्य मरि विस्तारे सैली कोरे अत्र मुरकार बागे ३

किया। ग्रीष्मही-बीरहरण के समक बन्ध होकर जा गये।^१ इसके अतिरिक्त इस काव्य का नायक विष्णु का परम भक्त बतलाया गया है।^२ इनकी प्रायना मुनकर वे गङ्गा पर चढ़ कर बेग से जाते हैं धार मधु बीर माछती को सीमा ही मुक्त करते हैं।^३

इन प्रकार वैष्णव ठाक-सम्बुद्ध इन प्रेमाख्यातक काव्यों में विध के स्थापन में विष्णु की सहायता की संयोजनता की गई है। इसमें यह बात ज्ञान देने योग्य है कि इस प्रेमाख्यात के नायक-नायिका अथवा प्रेमाख्यातों की परम्परा के अनुरूप कर्मयोग बीर रति के ही अवतार रहे हैं। अतः विष्णु के जिस भक्तार-रूप की खर्चा हुई है वह स्पष्ट ही मध्यकालीन उपास्यवादी-रूप है। विष्णु अवतार ग्रहण कर भक्तों की रक्षा प्रवृत्त करने वाले इहदीन हैं।

ईश्वरदास की रचना 'सत्यवती कथा' के प्रारम्भ में स्मार्त वैद्यताओं की बहना के साथ राम की भी संबन्ध की गई है। ईश्वरदास ग्रंथ रचना के पूर्व रामचन्द्र की कृपा के अमिच्छायुक्त हैं।^४ इसके अतिरिक्त इस प्रेमाख्यात में पत्र तत्र नारायण का भी उल्लेख हुआ है।^५

वरकवी भारतीय प्रेमाख्यातों में सुखहरणदास कृष्ण 'पुष्पावती' विरचित

१. डे हरिकृष्ण भक्त विहारी, यह अवतार सुख्य में जारी। विहार संत करे मनु जाने सुखी मति छो लोकी मनु जाने म संतक संत की बाबा राजी बाठ प्यावे समिनी लोकी। विन अवराध कीटि ऐ करी, तु रबाक विन मैक न करी म पुन अवग्रुण को नही विहारी तो पनिका मीलन किन नारे। अग्रु बाठ बाह बन चारी बल बन मीठ विन चारी ॥ यती ही पर्य पूर्व सुखवाई सुय पेठी सुग्म सुख बाई। ऐ बहकन भक्त विन किन्हे, कल्प नदे कल्प को बीरहे म चरमी घाक कपड को राजी मानी लगी बहार छो मारी। होपरी बीर बुखान सुखी ये सुनाक यह अंतर छाये ॥ अति प्रमद अंतर बाइवी ऐरी बल छदि पानी काइको। मनुमाछती ५ ८४-८०।
२. ऐक संत विन नाम विष्णुदे, यह सन्ना निबही होनीते। मनु० पृ ८९।
३. माछनी की बसुत सुमि बीरही मक्क काव हरि आधा बीरही। मक्क बैन मारिह बुकाये मनुमाछती बैन प्रकृति म मनु ५ ८९।
४. विष्णुस्तामी २९३७, में उद्धृत सत्यवती कथा, १५५८ कि का अर्थ पृ ८४। पहिले रामचन्द्र के बाना, ऐदि पाके बाकन की मात्रा। ऐदि प्रतार हीर ग्रंथ बसारा अपनी मति की ब्येद पारा म
५. विष्णुस्तामी ५ ८९-नायक विष्णु सदा मयागी।

महाश की है। इनके अन्य कथारमक प्रयोग तो सूफियों की परम्परा में ही करते हैं किन्तु प्रारम्भिक मंगलाचरण के रूप में अज्ञात और मुहम्मद के बदले इन्होंने राम का इष्टदेवताही रूप प्रस्तुत किया है। ये आरम्भ में उपास्य राम का नाम स्मरण करते हुये कहते हैं कि वह अलक्ष्य होकर भी सभी रथानों में स्थात है। घट घट में उसी की ज्योति विद्यमान है। हास्य, सूर्य हीरक और तारागण उसकी ही ज्योति से सारी सृष्टि का आलोकित करत हैं।^१ इन्होंने सूफियों के सदा सृष्टि और समस्त प्राणियों की चेतना को अवतारी रूप प्रदान किया है। इनके पद्यों के अनुसार अन्य राम से अल से विश्व-विह्व की रचना की तथा सभी की देह में प्राण देकर उन्हें अवतरित किया।^२ 'पद्मावत' के समान 'पुद्गुपावती' में भी प्रामाणिक रूप से राम-विष्णु के पौराणिक अवतारी कार्यों की चर्चा की गई है।^३ जायसी के सदा इन्होंने अवतारी धनुष का प्रयोग उपस्थित किया है। उनका कहना है कि राम और कृष्ण के जो अवतार हुए वे मूकता एक ही राम के अवतार हैं। क्योंकि एक ही धनुष से रावण और काम मार गये। उसी धनुष को कामदेव ने अपने पाम रक्षत्रा पा। अब वही धनुष नायिका के पाम है। इस प्रकार इन्होंने भी नायिका की भीहों को अवतारी धनुष में उपमित किया है।^४

निष्कर्षतः सूफी या बैष्णव प्रेमोक्त्यात्मक कार्यों में विष्णु के अवतारों की प्रामाणिक चर्चा अधिक हुई है। बैष्णव प्रेमोक्त्यात्मों में वे स्वयं अवतार होने के साथ नायिकाओं के संबन्धगत उपास्य हैं। उपर्युक्त उपास्यों से उनके उपास्य रूपों का ही पता चलता है।

कविक पुत्राण और जायसी की पद्मावती कथा

जायसी और 'कविक पुत्राण' की सिद्ध हीन की निवासिनी पद्मावती की कथा में पर्याप्त समानता उचित होती है। अन्तर यही है कि एक का विवाह रत्नसेन से होता है और दूसरी का कविक से।

१. पुद्गुपावती। मा प्र स० हा वि। १०२

प्रथमदि हृमिरी सय का बाड अक्षर कर ध्यावक सय ठाड।

घट घट माह रहा भित्ति सौर्य अस वह जोति न देखी कोरे।

ससी सुख दीवक कम तारा, इन्द की जोति बगन अजिबारा।

२. पुद्गुपावती १-२—पुही और से विंड संघारा। इही मान देर सय बीजारा।

३. पुद्गुपावती १ १४—

मारत के पहलार बारात—तव सय मन मनसा प्रनु होम्हा।

४. पुद्गुपावती १० ६२—राम कृष्ण को मा अवतारा, रत्न सेन बोही वनु मारा।

वरन वनुक मनमय कर मारा और वनुक अव वनी के पाहा।

'कविक पुराण' में जायसी की 'पद्मावत' से मिलती हुई कथा का संक्षेप इस प्रकार है—राजा विशालरूप की राज सभा में कविक विशालरूप को उपदेश दे रहे थे। उपदेश समाप्त होने पर जब विशालरूप चला जाता है उसका पश्चात् एक परम विद्वान् शिवरत्न संन्यासियों समक्ष उनके सामने आया। उसने परिचय पूछने पर समुद्र-जल में स्थित सिंहक नामक द्वीप से आया हुआ ब्रह्मचर्या, तथा वहाँ के राजा बृहद्बल और रानी कौमुदी से उत्पन्न पद्मिनी की कथा कही। कथा के अनुसार महादेव और पार्वती (कविक १, १, ३८) उसे कवामी का अवतार मानकर चारामय द्वारा उसके पाणिग्रहण की सूचना देते हैं (क० १, १, ३०)। उसकी विशेषता यह है कि जो उसके काम भाव से देखना वह नारी हो जायेगा (क० १, १, ३१)। इस प्रकार का वरदान उसने शिव पार्वती (क० १ १ ३३) से प्राप्त किया था। कविक: उससे शादी करने के निमित्त जाये हुए राजे नारी हो जाते हैं (क० १, ५, २९)। यह देखकर वह मायी पति के विषय में बुझित हो जाती है। शुक्र से यह सब सुनकर कविक अपने रूपगुण का वृत्तान्त कवामी के शिष्य (क० १ ६, १०) उसे पुनः सिंहकद्वीप भेजते हैं। शुक्र कीट कर कविक के रूप-गुण का वृत्तान्त कहता है। पद्मावती के पूछने पर शुक्र भी अपनी असाधारण विद्वान् और शक्ति (क० १, ६ ११-१९) और कविक के रूप-गुण का परिचय देता है। पुनः वह कविक से उसका संक्षेप सुनाता है। कविक महादेव की कविपुत्रे कोड़े द्वारा सिंहक द्वीप पहुँच कर एक ठाकान पर ठहरते हैं (क० १ ९, १-६)। उसी ठाकान पर पद्मिनी छान पर्वत में शक्ति के साथ शीघ्र करने जाती है (क० २ १ १८)। स्वाम के पश्चात् उसके निश्चय जाये पर सोये हुए कविक जग पवने हैं (क० २ १)। यहाँ दोनों की बातों कमोत्तम है। इसके पश्चात् कविक पद्म्या से विवाह कर सेवा के साथ समुद्र पार कर अपने गाँव लौट जाते हैं।^१

उपरोक्त अंश रामसेन-पद्मावती-विवाह से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। अन्तर यही है कि एक में प्रेमाख्यात्मक तरकीब का आधिक्य है और दूसरे में पौराणिक उपदेशों का समावेश है। एक के ऊपर सूक्ष्म मसबकी या अरसी प्रेम पद्धति का चयन है और दूसरे पर भारतीय प्रेम पद्धति का। उसमें विग्रह मरे पड़े हैं और इसमें विग्रहों का अभाव है। रामसेन कथा पर नायकियों की

१. कविक पुराण की बेंकटेश्वर टीका वल्लभ प्रथम बंध के चतुर्थ अध्याय में पद्मावती की कथा का प्रारम्भ होता है और द्वितीयांश के प्रथम द्वितीय, चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ अध्याय में उस कथा का अन्त हो जाता है।

योगसाधना का अत्यधिक प्रभाव है किन्तु इसमें कबल शिव पावती का उल्लेख है और योग साधना संबंधी तर्कों का सधया अभाव है।

यदि 'कविकुपुराण' का अस्तित्व जापसी की अपरा प्राचीन है तो निःसन्देह जापसी की कथारमक पृष्ठभूमि में कविक-कथा का भी कुछ योग माना जा सकता है।

निष्कर्ष

सूफी और हिन्दू प्रेमाख्याओं तथा उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य काव्य और सम्प्रदाय मध्ययुगीन अवतारवादी प्रवृत्तियों से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित थे। सूफी कवियों ने अह्लाह, मुहम्मद आदि का लो रूप ग्रहण किया था वह ईरान के सूफी काव्यों में तथा अवतारवादी सूफी सम्प्रदायों में पहले से व्याप्त था।

सूफी विचारकों ने त्रिम अवतारवाद को अपनाया था उसमें पहूदी, ईसाई, बौद्ध और हिन्दू अवतारवादी प्रवृत्तियों का प्रायः समन्वय हो गया था। भारतीय सूफी कवियों ने हिन्दू अवतारों को वह स्थान नहीं दिया जो ज्योति-अवतार मुहम्मद को मिला। किन्तु कुछ अवतारवादी सूफी-सम्प्रदायों के ग्रंथों में इस्लामी और हिन्दू अवतारों का अपूर्व समन्वय उचित होता है। भारतीय प्रेमाख्यात्मक काव्यों के रचयिता हिन्दू कवियों ने भी अपने काव्यों में राम और रहीम के समन्वय का प्रयास न कर कबल राम, कृष्ण आदि मध्ययुगीन उपास्यों के विविध रूपों का बगन किया जिनमें उनका अवतार वादी रूप भी गृहीत हुआ है।

अवतारवाद की दृष्टि से हिन्दू प्रेमाख्यान 'रामायण' या 'महाभारत' की परंपरा में नहीं आते, प्रत्युत भारतीय प्रेम के देवता काम और रति ही वहीं नायक-नायिकाओं के उपमान बनते हैं और कहीं स्वयं उनका अवतार रूप में उपस्थित होते हैं। यों काम और रति वैदिक देवताओं में से प्रचलित देवों में हैं; पर 'महाभारत' के पूर्व इनका अस्तित्व पृथक्-पृथक् मिथ्या है। वे सर्वप्रथम 'महाभारत' में पुगठरूप में उचित होते हैं तथा विष्णुपुराण (श्रीषी सती) में प्रयुक्त-आपावती के अवतार-रूप में अभिहित किए जाने हैं। तत्र से केवल आलोच्यकाल तक किसी न किमी रूप में इनका अवतार वादी रूप मिथ्या है।

विष्णु के अवतारों में कबल कृष्ण ही ऐसे रहे हैं, जिन्हें कुछ प्रेमाख्याओं का नायक माना गया है। अन्यथा राम आदि अन्य अवतारों के उपास्य रूप और अवतार या उदार कार्य के कबल प्रासंगिक उल्लेख अधिक हुये हैं।



सातवाँ अध्याय

पाँचरात्र, भागवत एवं वैष्णव सम्प्रदाय

मध्यकाल में छंदों और छुट्टियों के साथ ही सगुण भक्ति का सर्वाधिक प्रचार हुआ। इस भक्ति के प्रचार में वैष्णव आचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। वे तो संकर के समाप्त इन आचार्यों ने अपने विभिन्न मतों के प्रतिपादन में 'प्रस्थानत्रयी' या 'प्रस्थानचतुष्टय' का आधार ग्रहण किया, किन्तु यहाँ तक इनका सम्बन्ध अवतारवाद और सगुण उपास्यों के प्रतिपादन से है, यहाँ वे पाँचरात्र साहित्य, और 'श्रीमद्भागवत' से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं।

पाँचरात्र और भागवत दोनों में जिन अवतारवादी कथों के वर्णन होते हैं, वे कतिपय विषयवस्तुओं के अरुण, धूमक-धूमक परम्पराओं से सूचित विहित होते हैं, क्योंकि पाँचरात्रों में 'पर ब्राह्मदेव' के भ्यक्त जिन ध्यूह, विमल, अन्तर्बामी और अर्धा कथों का वर्णन हुआ है, उनमें लीला या चरितप्रधान तत्त्वों की अपेक्षा उपास्य तत्त्वों का ही अधिक प्राधान्य है। जबकि 'भागवत पुराण' में किर्तुम बद्ध से उत्पन्न श्रमज्ञा पुत्रावतार, गुणावतार और श्रेष्ठावतारों का वर्णन करते हुए विशेषकर लीलावतारों के चरितों या लीलाओं का पर्याप्त परिचय दिया गया है।

भागवत

परवर्ती पुराणों और आठोप्यकाठीय वैष्णव आचार्यों ने उक्त दोनों अवतारवादी प्रवृत्तियों का अपूर्व सम्मन्वय किया है, जिसकी स्पष्ट रूपरेखा इस युग के वैष्णव आचार्यों एवं कवियों की रचनाओं में मिलती है। फिर भी इस युग में जो महत्त्व 'भागवत पुराण' को मध्य बह अन्व किसी को नहीं। मध्यकाठीय अवतारवाद को यदि 'भागवत का अवतारवाद कहा जाय तो कोई वास्तुिक नहीं होगी।

'श्रीमद्भागवत' अवतारवादी तत्त्वों के विवेचन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। क्योंकि समस्त पुराणों में अनेक प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं का अवतारवाद के आधार पर विचार किया गया है। इस पुराण में अवतारवाद का अत्यन्त व्यापक रूप प्रस्तुत करते हुए परमात्मा की समस्त अभिव्यक्ति को उसका अवतरित रूप माना गया है। 'परमात्मा का भादि रूप 'विराट् पुरुष गारायण' है जो अवतारों का 'अवयवकोष' है।' इस प्रकार 'भागवत' में मुख्यतः सृष्टि से लेकर वैयक्तिक अवतार तक तीन रूप कथित होते हैं। उनमें प्रथम उसका पुरुष रूप है। इस रूप में वह सृष्टि के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है। दूसरा उसका रजः, सत्व और तम से युक्त त्रिगुणात्मक रूप है जिसमें वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में कर्ता, पाठक और संहर्ता है, और तृतीय उसका व्यक्तित्व रूप है, जिसमें वह रजः एवं तम के मिश्रित क्रीक्यात्मक रूप धारण करता है।' इन क्रीक्यावतारों में पुराणों में प्रचलित परम्परागत अवतारों को ग्रहण किया गया है।

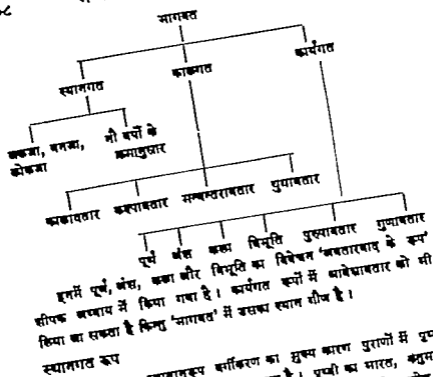
मध्यकालीन सम्प्रदायों में 'भागवत' में प्रचलित रूप विभिन्न प्रकार से सृष्टि हुए। किसी न किसी रूप में प्रायः सभी वैष्णव सम्प्रदायों में उन रूपों को अपनाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि 'भागवत' का अवतारवादी सिद्धान्त पद्य गीय हो गया और उसके स्थान में उन रूपों का ही अधिकाधिक प्रचार हुआ। इस युग में प्रचलित अन्य पुराणों में भी अवतारी उपासकों का स्थापक प्रमाण कथित होता है। पुराणों में अब उनकी मूर्ति मन्त्र मन्दिर, मुद्रा, तीर्थ, व्रत और स्तोत्रों का भी विधान किया गया, जिनका प्रचार तत्कालीन जनसमाज में बढ़ता गया। इन्हीं साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अवतारों के वर्गीकरण के विविध प्रयास हुये। यों तो अवतारों का वर्गीकृत रूप 'भागवत' में ही कथित होमे लगता है, किन्तु मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में उसका और अधिक प्रसार हुआ।

वैष्णव सम्प्रदायों में अवतारों के जो वर्गीकृत रूप दृष्टिगत होते हैं 'भागवत' के उपासकों के अनुसार उन्हें मुख्य रूप से स्थानगत, कालगत और कायगत तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। इनका क्रम निम्न रूप में देना जा सकता है—

१ भा० १, ११-१२, भा० २, ४-९ और भा० २ २ ३०

२ भा० १ २, २३। ३ भा० २, २, ४५ भा० २ २, २२ २७।

मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद



स्वामगत रूप

स्वामगत या स्वामानुरूप वर्गीकरण का मुख्य कारण पुराणों में पृथ्वी का कतिपय द्वीपों और बर्षों में विभाजन रहा है। पृथ्वी का भारत, कंसुमाक आदि बर्षों में विभाजन करने के बाद मुख्यतः द्वावतारों में से प्रत्येक को विभिन्न द्वीपों के पून्य अर्थात् विप्रद रूपों से सुसजित करने की प्रवृत्ति कथित होती है। अतः अवतारों के स्वामगत वर्गीकरण का मुख्य आधार अर्थात् रूपों को माना जा सकता है। मध्यकाल में यह प्रवृत्ति श्रीकृष्ण के द्वावतारों के साथ हीक पड़ती है, जब श्रीकृष्ण की स्थानीय विशेषताओं के आधार पर विभिन्न द्वीपों में विभिन्न अर्थात् विप्रद-रूपों की स्थापना की गई। इस सभी स्थापना में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। आलोच्य स्वामगत अवतारों में श्री से विशेषतः कथित होती है।

पुराणों में पृथ्वी को द्वीपों और प्रत्येक द्वीप को पुनः बर्षों में विभक्त किया गया है।^१ इसमें से क्रमशः अन्य द्वीपों के मध्य में कम्बक की कर्मिक के सहाय जम्बू द्वीप की स्थिति कही गयी है।^२ पुनः जम्बू द्वीप को द्वावतार,

१ वि० पु १, २, ५-६ में जम्बू, पञ्च, धामनक, कुड, शीव आदि और पुनः
 २ वि० पु १, २, ७ और भा० ५, १६, ५।

मद्राघ, हरिवर्ष, कनुमाळ, रम्यक, हिरण्यमय, कुट, किम्बुद्वय और भारतवर्ष इन नौ बरों में विभक्त किया गया है।^१ 'मागधत क अनुभार इन नौ बरों में परम पुरुष भगवान् काराणन बर्ही क मर्छी वर अनुग्रह करन क लिपु इन समय भी अपनी विभिन्न मूर्तियों में विराजमान रहते हैं। वे अमरः इकाहुत में संकर और वासुदेव प्युह, मद्राघ में ह्यग्रीव, हरिवर्ष में मुत्तिह, केनुमाळ में कष्मी, कामदेव जादि, रम्यक में मत्स्य, हिरण्यमय में कूर्म, कुटवप में ब्राह्म, किन्दुद्वय में श्रीराम तथा भारतवर्ष में नर-नारायण रूप में निवास करत हैं।^२ इसक पूर्व ही 'विष्णुपुराण' में इससे किञ्चित् भिन्न परम्परा मिलती है। वहाँ ब्रह्म मद्राघ में ह्यग्रीव, कनुमाळ में ब्राह्म, भारतवर्ष में कूर्म और कुटवर्ष में मत्स्य का उल्लेख हुआ है।^३ उक्त रूपों क अण्वकन से स्पष्ट है कि इन सौरात्रिक बरों में अर्थात् मूर्तियों का निवास है, तथा उन प्रदेशों में उनकी पूजा-अर्चना हुआ करती है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि कालान्तर में ज्यों-ज्यों विष्णु-भक्ति का प्रचार होता गया उसी अनुपगत में उनकी अवतार मूर्तियों का भी पर्याप्त प्रचार हुआ। उपर्युक्त मूर्तियों में उनकी जिस स्वाधीन प्रधानता की चर्चा हुई है वह ऐतिहासिक की अपेक्षा पौराणिक अपिष्ट है, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहना कठिन है कि कुट और भारतवर्ष क अतिरिक्त अन्य प्रदेश कीर थे, तथा किम युग में वैष्णव अवतारों की ये मूर्तियाँ वहाँ प्रचलित थीं। अतः इस विषयक से इतना ही सिद्ध होता है कि पुरातनों में अवतारों को स्वयं क अनुपगत विभाजित करन क प्रयत्न हुए। मध्यकालीन साहित्य में इनका उसी रूप में प्रचार हुआ। बामाहस जी ने 'मच्छमाळ' क एक दृष्यप में अम्बुद्वीप बर बंद में उपरिपठ इन अवतार मूर्तियों के साथ इनक मर्छी का नाम भी दिया है। इकाहुत रम्यक, हिरण्यमय कुटवर्ष, हरिवर्ष, किन्दुद्वय, भारतवर्ष, मद्राघ और कनुमाळ बंद के क्रमसे सदाशिव, मनु, जयमा, मूदेवी, प्रह्लाद, इनुमान नारद, मद्रधवा और लक्ष्मी जी वे नौ मच्छ भी हैं जो उनकी सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं।^४ इनक मठानुसार मच्छ द्वीप भी ब्रह्म क जिनने भगवन्नरुह है, वे सब राजा हैं और वे उनका सुपरा करने वाले बनी हैं।^५ इस प्रकार अवतारों क उपर्युक्त रूप की चर्चा में आगहन का ही अनुपगत किया गया है।

१. भा० ५, १०-१८।

२. भा० ५, १० से ५, १८ और ५, १९।

३. वि० पु० २, २, ५०-५१।

४. मच्छमाळ दृष्यप १५।

५. मच्छमाळ दृष्यप १५। 'मध्यद्वीप भी बंद में बरु बिठे मय मूर'।

अभ्युदयकालीन जाचार्यों में श्री कलकत्ताचार्य के मानवत १०, २, ३० में वर्णित इन्द्रावतार मूर्तियों का वर्गीकरण स्वामीय विवेकानंदों के आचार पर किया है। उनके मतानुसार इन्द्रावतारों में नौ अवतारों की स्थिति बक, बभ और लोकतीन स्थानों में है। अतएव मत्स्य, कूर्म और वृषभीय कलकत्ता; मुनिह, बराह और इंद्र वनज; तथा कामन, परशुराम और राम लोकना मन्ने गये हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इन्द्रावतारों का स्थितिगत और स्वानगत वर्गीकरण करते हुए कहा है कि इन्हें दो बबबर, दो बारिबर, चार विप्र और दो राव हैं।^१

इससे विदित होता है कि अवतारों के स्वानगत भेद से भी वर्गीकरण के प्रयास हुए थे। किन्तु पौराणिक प्रजाओं में भी कर्तव्य का आचार प्रवृत्त किया गया। बाद में नामदास ने उन्हीं को अपनया है। इसके अतिरिक्त स्वानगत वर्गीकरण के अन्य प्रयास कलकत्ताचार्य और गोस्वामी तुलसीदास में दिखाई पड़ते हैं। इनकी प्रजाधी पौराणिक न होकर स्वतन्त्र प्रतीत होती है। दूसरी बात भी यहाँ उल्लेखनीय है, यह यह कि यहाँ अवतारों का वस्तुतः अवतार रूप में वर्गीकरण नहीं हुआ है, अपितु उनके तत्कालीन उपस्थ या अर्थात् विग्रह-रूपों को स्वान या स्थितिभेद से भूमिप्यक्त किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास भी उनका यह धारण सब से तरना चाहते हैं।

कालागत रूप

वैष्णव पुराणों में स्वाभाविक वर्गीकरण के अवन्तर कलकत्ता भेद भी किये गये। इन भेदों में स्वयं काक को तो किसी भेद में नहीं किया गया, फिर भी काक के अवतारवादी रूप का व्यापक परिचय पुराणों में मिलता है।

काकावतार

विवेकानंद 'विष्णुपुराण' में काक का व्यापक रूप प्रस्तुत कर उसके अवन्तरित रूप का भी उल्लेख किया गया है। 'विष्णुपुराण' के अनुसार परमह—अप्य, अक्य, पुरुष और काक रूप से विवृत है।^२ उस परमह का प्रथम रूप तुल्य है तथा अक्य (प्रकृति) और अप्य (महत्त्व) अर्थात्

१. इतिहास टीका ३० १२८ भा० १०, २, ४० की व्याख्या।

२. मत्स्यत ३० ४८। बुर वनजर, बुर बारिबर चार विप्र ही राव।

मुकटी इन्द्र वन वारक, नवतार छरी वन ॥

३ वि ३० १, २, १४।

उसके अन्वय रूप हैं। इनमें सबका प्रेरक होने के कारण काठ उसका परम रूप है। 'भागवत' में श्री कपिल-वैवस्वति के वार्तालाप में कहा गया है कि 'परब्रह्म के अद्भुत प्रभाव-युक्त जागतिक पदार्थों के वैश्विय का कारण काठ है। प्रकृति और पुरुष इसी के रूप हैं तथा वह इनसे भी वृषब्द है।' 'विष्णुपुराण' में उत्पत्ति, वाहन और संहार के त्रिमित्त विष्णु के प्रधान, पुरुष आदि व्यक्त रूपों के साथ एक कठक रूप भी माना गया है। काठ का रूप और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि आरम्भ में विष्णु से प्रधान और पुरुष ही रूप हुए। इनका सधोऽयमक और विधोऽयमक कृपान्तर या सक्रियता ही काठ का स्वरूप है। 'भागवत' में तो कुछ और आगे बढ़ कर बताया गया है कि काठ ही विष्णु है। इस प्रकार 'भागवत' द्वारा प्रतिपादित सर्वव्यापी अवतार सृष्टि के विकास में काठ सक्रिय तत्त्व विहित होता है। क्योंकि महाद्वादि २३ तारों को सक्रिय करने के क्रिये भागवान् काठ-रूप में प्रवेश कर उन्हें प्रुम्ब करते हैं।^१

'विष्णुपुराण' में विष्णु को काठस्वरूप कहा गया है और उसके अवतारत्व की चर्चा करते हुये कहा गया है कि 'विष्णु का परतन्त्र तो कोई नहीं जानता, अतः उसका जो रूप अवतारों में अभिव्यक्त होते हैं, देवतामान उसी की पूजा करते हैं।' 'विष्णुपुराण' में सृष्टि, स्थिति और संहार के त्रिपु मन्त्रक में चार आधिर्भाव माने गये हैं, जिनमें से प्रत्येक में तीसरा आधिर्भाव काठ का है। इसके पश्चात् काठ, सृष्टि, वाहन और संहार के त्रिमित्त अवधिर्भाव बताया गया है।^२ इससे प्रकट होता है कि 'विष्णुपुराण' और 'भागवत' एक काठ की सक्रियता अधिर्भाव मानी गई तथा तीनों स्थितियों में काठवतार आवश्यक माना गया। किन्तु आगे चल कर काठ का एक मात्र अवतार संहारक एण्ड-रूप में प्रकाशित हुआ।^३ मध्यकालीन कवियों में काठ के संहारक अवतार का ही प्रचार रहा अन्वय रूप तीर्थ हो गये। 'विष्णुपुराण' के पाचवें अंश में कृष्ण को सपत्वात् काठस्वरूप कहा गया है।^४ पदार्थ काठ कृष्ण का अवतार-व्यपोजन आराध्यान्त पूषी पर भुष्ट राजाओं का ह्मन और

१. वि० पु० १, २, १५।

२. वि० पु० ३, २, १७।

३. भा० ३, २२, ३८।

४. वि० पु० १, ५, १४-१७।

५. वि० पु० १, २२, २८-२९।

६. वि० पु० ३, २५, ५८।

७. भा० ३, २५, ३२-३७।

८. वि० पु० १, ५, १४-१७।

९. भा० ३, ८, १-४ और ३, ८, ११।

१०. वि० पु० १, २२, २६-२७।

११. वि० पु० ३, २७, २५-२६।

संहार माना गया है।^१ इसकी पुनः चर्चा 'भागवत' में भी हुई है और काक रूप में कृष्णाक्षतार का प्रयोजन संहार करना है।

मध्यकाळीन भाषायों में ईश्वर के काक रूप को प्रकृति और पुण्य के साथ छिटा का उपकरण मात्र माना है।^२ क्योंकि इस काल तक वह चारणा अधिक शक्ति हो गई थी कि ईश्वर में जो भी क्रियात्मक भाव हैं वे सब छिटा मात्र हैं।^३ मित्रार्थ के 'ब्रह्मसूत्री' में अचेतन के अप्राकृत, प्राकृत और काक तीव्र रूप बताए गए हैं।^४ पुस्तोत्तमाचार्य ने 'अक्षतारवात्' की व्याख्या करते हुए उसे वित्य और विमु कहा है।^५ वैष्णव शास्त्रों के अनुसार काक और अनन्त हो रूप हैं। इनका सम्बन्ध वैष्णव संप्रदायों में अक्षत विभूति से है। क्योंकि अक्षत विभूति में परमेश्वर का कभी अतीव होने का अनुकरण मात्र करता है।^६ इससे प्रकट होता है कि आक्षेपकाक में अक्षतारी उपास्यों की अक्षत का जब अधिक प्राधान्य हुआ तो काक उपास्यों की अक्षत का एक स्तम्भ मात्र रह गया। परन्तु अक्षतमाचार्य ने 'भागवत' के कथनों की पुष्टि करते हुए काक को 'पर' धारण स्वीकार किया है।^७ अक्षत ने इसी परम्परा में काक की सक्रियता को भी माना है। उनके मतानुसार कृष्णाक्षतार में क्रिया शक्ति की प्रधानता होती है, तथा सृष्टि और सृष्टि के विविध रूपों में काक स्वयं आविर्भूत होता है।^८ इस प्रकार पुनः अक्षत ने 'विष्णुपुराण' की परम्परा में काक के व्यापक आविर्भूत रूप को ग्रहण किया है।^९ संत साहित्य में चरमदास ने केवल कृष्णाक्षतार का समर्थन किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैष्णव पुराणों में काक का व्यापक रूप माना जाता रहा है। विष्णु और कृष्ण भी स्वयं अक्षतारवात् समझे गये। अतएव विष्णु और कृष्ण से स्वकथित होने के कारण काक की अक्षतार परिधि स्वयं अधिक व्यापक हो जाती है। फिर भी मुख्य रूप से काक के सृष्टिगत और व्यक्तिगत हो अक्षतार कहे जा सकते हैं। सृष्टि के आदि तत्त्वों में स्वयं प्रवेश कर काक उन्हें सक्रिय बनाता है, तथा अक्षतार आदि अक्षतारों के रूप में अक्षतारवात् का संहार कर पुण्य का उद्धार करता है। मध्यकाळीन

१ वि० पु० ५, २८, ५९-६०।

२ अक्षतारवात् २१।

३ अक्षतारवात् ८९ 'अक्षत महीजर्म वैशत जीका'

४ वि० १ म० पु० २२ श्लो० १।

५ वि० १० म० पु० १७।

६ वि० १० म० पु० २७-२८।

७ अक्षतारवात् वि० अक्षतारवात् प्रकरण पु० २१२ श्लो० १७।

८ अक्षतारवात् वि० अक्षतारवात् पु० २१९ श्लो० २७।

९ अक्षतारवात् वि० अक्षतारवात् पु० २११ श्लो० २२२।

सम्प्रदायों में रामानुज और मिथार्क ने काठ को लीला का देवक उपकरण मात्र माना, किन्तु बहल्लभ न उनके व्यापक अवतार स्वरूप की पुष्टि की है।

कल्याणतार

पुराणों में काठ को कश्यप मन्वन्तर और पुत्र आदि क रूप में उच्च से वर्गीकरण करने की रीति का विकास हुआ तब स विष्णु क अवतारों को भी कल्याणतार करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। 'विष्णुपुराण' में ब्रह्मा और रुद्र द्वारा सृष्टि और संहार का उद्देश्य करते हुए कहा गया है कि कश्यप क जन्म तक सन्धगुण विशिष्ट विष्णु पुत्र-पुत्र में पाठन करते हैं।^१ इस प्रकार इस पुराण क अनुसार प्रत्येक कश्यप क जन्म में ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पाठन करते हैं और रुद्र संहार किया करते हैं। गीता में भी कृष्ण का कथन है कि कश्यप क जन्म में सारे भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और कश्यप क आदि में पुत्र: उनको उत्पन्न करता हूँ।^२

उपयुक्त कथनों क अनुसार कल्याणतार का अनिष्ट सम्बन्ध गुणावतार या सृष्टि, पाठन और संहार से विदित होता है। किन्तु मत्स्यकालीन सम्प्रदायों में कल्याणतार की विशिष्ट रूपरेखा मिलती है। चैतन्य सम्प्रदाय क रूप गणेश्वामी न 'छन्दो भागवतामृत' में चौबीस और एक पचीस पौराणिक अवतारों का अवतार मत्स्यक कश्यप में बताया है।^३ पुत्र: कहा गया है कि प्रायः प्रत्येक कश्यप में मनु गणों की स्थापन्तु प्रभृति नाम से मनुजों की उत्पत्ति होती है और पशुहि नाम स मन्वन्तरावतारों की अभिव्यक्ति होती है।^४ इनक अनिर्दिष्ट इन्होंने पुत्रावतार और मन्वन्तरावतार को अभिन्न माना है।^५

इस प्रकार कल्याणतार में किसी नवीन अवतार की कल्पना नहीं की गई है अपितु गुणावतार, २५ लीलावतार, मन्वन्तरावतार और पुत्रावतार इन सभी को कल्याणतार में ही समाविष्ट किया गया है।

मत्स्यन्तपयतार

पुत्र कश्चादि क सरस वृद्ध विंशत्य मन्वन्तरावतारों का उद्देश्य भी पुराणों में हुआ है। पुत्र और कश्यप क अवतारों तथा मन्वन्तरावतारों में एक वैषम्य यह है कि जहाँ 'विष्णुपुराण' का जन्म पुराणों में पुत्र और कल्याणतार क रूप में प्रसिद्ध चौबीस अवतार ही गृहीत हुए हैं वहीं मन्वन्तरावतारों में

१ वि० पु० १, २ १२। २ गीता ५, ७। ३ छन्दु० मा० १० ७० की० १२।

४ छन्दु० मा० १० ८० श्लोक १। ५ छन्दु० मा १ ७८ श्लोक १२।

अधिकारण रूप अवतार समाविष्ट हुये हैं। 'विष्णुपुराण' में सात पूर्व मन्वन्तरों का उल्लेख करते हुए उनमें आदिमूल सात अवतारों का वर्णन हुआ है। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैबत, चाक्षुष और वैवस्वत मन्वन्तरों के क्रमशः पञ्च, अश्वि, सत्य, हरि, मावस, वैकुण्ठ और वामन सात अवतार वर्णित हैं।^१ यों इस पुराण के पुनः दूबारे अध्याय में सोप सात मनु, देवता, अपि और इन्द्र का उल्लेख हुआ है।^२ किन्तु सोप सात अवतारों की कोई चर्चा नहीं है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मन्वन्तरावतारों की कल्पना में क्रमिक विकास हुआ है। इसी क्रमिक अवस्था का पूर्ववर्ती रूप 'विष्णुपुराण' के आलोच्य अध्यायों में आया है। साथ ही जिन शेष सात अवतारों का 'भागवत' में वर्णन हुआ है वे इसी क्रमिक विकास के परिणाम तथा परवर्ती रूप हैं।

परवर्ती पुराणों में प्रायः १४ मन्वन्तरों की संख्या बन होने के कारण सोप सात अवतार भी अस्तित्व में आ गए। 'भागवतपुराण' में १४ मन्वन्तरों के साथ १४ अवतारों का उल्लेख हुआ है। इस पुराण के अनुसार स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैबत, चाक्षुष, वैवस्वत, सर्वाभि, द्रष्ट सर्वाभि, ब्रह्म सर्वाभि, चर्म सर्वाभि, क्षय सर्वाभि, देव सर्वाभि और इन्द्र सर्वाभि इन चौदह मन्वन्तरों के क्रमशः पञ्च विष्णु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अश्वि, वामन, सर्वभूमि, रूपम, विष्वक्सेन, चर्मसेतु, स्ववामा, योगेश्वर और बुधजातु ने १४ मन्वन्तरावतार कहे गए हैं।^३

'विष्णुपुराण' और 'भागवतपुराण' के उपर्युक्त क्रम में कुछ परिवर्तन हीन पड़ता है। स्वारोचिष मन्वन्तर में अश्वि के स्थान में मागवतकार के विष्णु का नाम दिया है। इसी प्रकार चाक्षुष में वैकुण्ठ के स्थान में अश्वि और रैबत म० में मावस के स्थान में वैकुण्ठ गृहीत हुए हैं। इसके अतिरिक्त उत्तम मन्वन्तरावतारों में से पञ्च, हरि, वामन, और रूपम चौबीस पौराणिक अधिष्ठाताओं में भी विचलित हैं।

किन्तु भी मध्यकालीन धर्मग्रन्थों में इनके रूप पथावत् गृहीत हुये। विशेषकर 'ऊषु भागवतायत' में रूप गोस्वामी ने उपर्युक्त क्रम को अपनाया है।^४ और अन्त में इनके अवतार प्रयोज्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देवताओं के मन्व में इन्द्र की सहायता के निमित्त जो मुकुन्ध के आदिर्भाव हैं—वे मन्वन्तरावतार कहे जाते हैं।^५

१ वि. पु० ४, २।

२ भा. ८, २ ५-२०, भा. ८, ५, ४ ९ और भा. ८ २४ २०-२५।

३ उषु. भा. १० ७२-७८।

४ वि. पु. ४, २।

५ उषु० भा. १ ७२।

यैसा प्रतीत होता है कि 'विष्णुपुराण' में वर्णित सात मन्वन्तर और उनके अवतार प्रारम्भ में विर्मित हुए। अविष्णु में होने वाले मन्वन्तरों में बार-बार 'सर्वांगि' नाम के प्रयोग से स्पष्ट है कि संख्या पूर्ति का निर्वाह इन नामों में किया गया और अवतारों की संख्या बढ़ने पर कुछ अवतार चौबीस अवतारों में से ही अपना छिप गए। मध्यकालीन सम्प्रदाय एवं साहित्य दोनों में पौराणिक रूपों का ही प्रचार हुआ।

युगावतार

संत साहित्य के अध्ययन क्रम में एक युगान्तर अनुसूची अवतार-परंपरा पर विचार किया जा चुका है। पुराणों से सीधे गृहीत नहीं परंपरा सगुण साहित्य और सम्प्रदाय में भी व्याप्त रही है। पौराणिक युगावतार का मूल आधार 'गीता' ४, ८ में प्रयुक्त 'सम्भ्रामि युगे युगे' की भावना मान्य पड़ती है। 'विष्णुपुराण' में युगावतार का विस्तृत विवरण मिलता है। इस पुराण के अनुसार मगवान युग-युग में आविर्भूत होकर वैदिक धर्म की सम्पत्ति की रक्षा करते हैं। वे तपस्या माह, वर्णाश्रम आदि की मर्यादा विधिप्राप्तियों के प्रत्यक्ष द्वारा पुनः-पुनः स्थापित करते हैं।^१ युगावतार की परंपरा का आगमन यहाँ पुनर्जन्म की प्रकृति से प्रेरित है। क्योंकि इस पुराण के अनुसार पूर्ववर्ती धर्म प्रवर्तक ही अपनी परवर्ती सन्तान के घर उत्पन्न होते हैं, और फिर उत्तरकालीन धर्म प्रवर्तक अपने ही घर में सम्मान-रूप से उत्पन्न हुए पितामहों के कुलों में जन्म लेते हैं।^२ इस पुनरावर्तन का कारण बताते हुए कहा गया है कि प्रत्येक अनुपूर्वक कर्म में वेदों का लोप हो जाता है। उस समय सप्तर्षियन्त्र स्वर्ग से पृथ्वी में अवतरित होकर वैदिक धर्म का पुनः प्रचार करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सत्ययुग के आदि में सृष्टि के रक्षयिता मनु का प्रादुर्भाव होता है और देवता पशु कछु प्रदण करते हैं। इसी अर्थात् में चारों युगों में अवतरित होने वाले कपिल, चक्रवर्ती भूपाल, व्यास और कश्चिक का उल्लेख किया गया है। युगावतार में विष्णु समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए सत्ययुग में कपिल आदि रूप धारण कर परम ज्ञान का उपदेश करते हैं। प्रेता युग में वे चक्रवर्ती भूपाल होकर दुष्टों का हनन करक जगत की रक्षा करते हैं। हापर युग में वे बह् व्यास का रूप धार कर एक वेद के चार विभाग करने हैं और पुनः लोकोप साक्षात् में विद्यन्त कर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार हापर में वेदों

का विस्तार करने के उपरान्त कल्पियुग के अंत में वे कविक रूप धारण कर
पुराणों को सम्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं।^१

मध्य युग में वे अवतार तो चौबीस खीलावतारों में घुड़ित हुए परन्तु
युगावतार की प्रवृत्ति युवा दूसरे रूप में सम्मदायों में प्रवृत्त हुई। विशेष-
कर संत साहित्य में इस परंपरा का विशेष प्रचार हुआ। किन्तु गौडिय
बैष्णव मत में युगावतार के रूप में मा० ११, ५, २०-२२ में चारों युगों
की चार मूर्तियों को और मन्वन्तरावतारों को ही जपनाया गया है।^२ इस
प्रकार क० मा० में युगावतार की विभिन्न रूपरेखा कथित होती है। क्योंकि
एक ओर तो सतों में यह अवतार-परंपरा के रूप में प्रवृत्त हुई पर
बैष्णव सम्मदायों में अवतरित परंपरा के स्थान में चारों युग में प्रवृत्त कही
जाने वाली अवतार मूर्तियाँ ही अधिक लोकप्रिय हुईं।

कार्यगत

'भागवत' में प्रवृत्त अवतारों के स्थावगत और कालगत विशेषता के
जनन्तर अवतार-कार्य की दृष्टि से विभिन्न रूपों का उल्लेख किया जा चुका
है। उनमें से केवल पुरुषावतार और गुणावतार यहाँ विचारणीय हैं।

पुरुषावतार

'भागवत' के अथर्वब्रह्म से यह विदित होता है कि तत्कालीन युग में
अन्य प्रवृत्तियों के साथ कतिपय वैदिक विचारधाराओं को धारणात् करण
के प्रयत्न होने लगे थे। उनमें द्वैत रूपों का अवतारीकरण अधिक उल्लेखनीय
है। भागवत काक में अवतारवाद के सिद्धान्त को भी अधिक व्यापक,
बैशाभिक और साम्प्रदायिक बनाने की प्रवृत्ति कथित होती है। इस दृष्टि से
'पुरुष सूक्त' के पुरुष को आद्यावतार और अवतारों का जनक कह कर पुरुष
और अवतारवाद में अनूतपूर्व सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

क्योंकि 'गीता' 'महाभारत' और 'विष्णुपुराण' तथा अन्य प्राचीनतर
पुराणों में पुरुष का अस्तित्व तो मिळता है किन्तु अवतारवाद से उसका स्पष्टतर
सम्बन्ध नहीं प्रतीत होगा। इस दृष्टि से 'भागवत' के पुरुष पर विचार के
पूर्व उसकी पूर्व प्रवृत्ति का अवलोकन भी अपेक्षित जान पड़ता है।

पुरुष का क्रमिक विकास

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों का केवल देवीकरण होकर सीमित

१ वि० पु० १, २ ५४-५८।

२ मा० २, ६, ४१ और १, १, ५।

नहीं रहा अपितु उनमें मानवीकरण की प्रवृत्ति का भी उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था। उसी मानवीकरण के विकास-क्रम में पूर्ण पुरुष की कल्पना की गई जिसके शरीर में अखिल सृष्टि को समाहित किया गया। इस प्रकार वैश्व जगत् में एक ऐसे विराट पुरुष (प्रेम्नोपोसेंन्द्रिक मैन) की सम्मना की गई जो कालान्तर में ईश्वर की स्पष्ट अभिव्यक्ति का प्रतीक माना गया। वैदिक साहित्य में वह कल्पना नारायण ऋषि द्वारा 'पुरुष सूक्त' में प्रारम्भ में अभिव्यक्त हुई। 'पुरुष सूक्त' की यह कल्पना केवल 'ऋक संहिता' में ही नहीं अपितु अन्य तीनों संहिताओं में भी अभिव्यक्त है।^१ विशिष्टता तो यह है कि सर्वत्र इसका सम्बन्ध नारायण ऋषि से ही रहा है। इससे पुरुष-कल्पना की लोकप्रियता का भाव होता है।

यह सद्ब्रह्मों सिर, बहू जीव चर्यों से सुख पुरुष अखिल सृष्टि को चारों ओर से आवृत कर उससे इस अगुल ऊँचा है।^२ यही उसके सर्वव्यापी, कारण-कार्य रूप जगत् लला विपत्ता आवि पुराओं में प्रचक्षित रूपों का आभास मिलने लगता है तथा सृष्टि और जीव के आविर्भाव का उससे सम्बन्ध होना भी स्पष्ट प्रतीत होता है।^३ 'पञ्चवैश्व' में पुनः पुरुष-रूप का अपेक्षाकृत विस्तृत परिचय मिलता है। यहाँ उसके 'आयमान' होने पर भी 'आयमान होने की चर्चा की गई है।^४ इसके पूर्व ही 'ऋग्वेदिक संहिता' में पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा माणसे वायु आदि पंच देवों की उत्पत्ति का उल्लेख हुआ है।^५ सम्भवतः 'भागवत' ८.५ में उसी का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इस प्रकार पुरुष से सृष्टि के विकास तथा सृष्टि के जगत् जीव और देवताओं की उत्पत्ति का अनुमान किया जा सकता है। संहिताओं के पश्चात् पुरुष-रूप का उत्तरोत्तर विकास होता गया। 'ब्राह्मणों में 'पुरुष मेघ' के रूप में उसका विस्तार हुआ है।^६ यहाँ उसे पांडस बलाओं से सुख कहा गया है तथा 'पुरुषो हि नारायणोऽब्रह्ममयत' के रूप में नारायण से सम्बन्ध स्थापित कर उसकी ब्रह्मता का उल्लेख किया गया है।^७ 'हृदयारण्यक' में कहा गया है कि 'हस्त पृथ्वी में जो यह तेजोमय अमृतमय पुरुष है, यही वह है जो कि आत्मा है वह अमृत है यह ब्रह्मा है, वह सर्व है।'^८ हुआ हुआ

१ ऋ० १. १० बृ० ११, १-१२, ज्वर० १० २, साम० पूर्वे० ४ सू० १-७।

२ ऋ० १०, १० १। ३ ऋ० १० १, ५। ४ बृ० ११, १०।

५ ऋ० १० १०, १। ६ ष० मा० ११ ४, १।

७ ष० मा० ११, १ क इ० और ११ १४, १, १। ८ इ० उ० १, ५, १।

द्वारा स्पष्टतः आदित्य, चन्द्रमा, जसि, वाक् और आत्मज्योतिषों का क्रमशः उत्कर्ष दिखाते हुए कहा गया है कि 'आत्मा ही उसकी ज्योति है। यह आत्मज्योति के द्वारा बैठता, हृदय उपर जाता, कर्म करता और फिर ऊँट जाता है।' उपर्युक्त कथनों में पुरुष ब्रह्म के कार्यावस्थ रूप की अभिव्यक्ति होती है। 'आत्मज्योति' में आदित्य और नेत्र दोनों में स्थित पुरुष को एक ही माना गया है। एक दूसरे मंत्र में नेत्र स्थित पुरुष को आत्मा कहा गया है तथा 'अज्ञोपनिषद्' में बही पुरुष सभी की अक्षि और परम गति है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि आत्मन्तर में पुरुष के साथ सृष्टि और मातृ आत्मा के किना व्यापारों को सम्बन्ध करने के प्रयत्न होते गए। उपनिषदों में इसका आत्म रूप प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि वह आत्मा गुप्त रूप से स्थित है और सूक्ष्म है। इस प्रकार ऋ० १०. १०, १ का पुरुष ही उपनिषदों में 'अज्ञोपनिषद्' का पुरुष बन कर आया। बही अज्ञोपनिषद् आत्मरात्मा के रूप में सभी के हृदय में स्थित है।

'अज्ञोपनिषद्' में उसी पुरुष आत्मा को सोचकर कथनों से कुछ एवं सारीर्य बतलाया गया है। परन्तु पुरुष सूक्ष्म का पूर्ण विकसित रूप 'अज्ञोपनिषद्' में मिलता है। वहाँ दिव्य मूर्ति पुरुष ब्रह्म और आत्मन्तर में प्रकृत धर्म अज्ञान, अज्ञान, गुण अक्षर, 'परता परा' कहा गया है। यह पुरुष का तदवस्थ ब्रह्म के सत्ता भिन्निक्य रूप बाब पड़ता है। परन्तु दूसरे मंत्र में इसके सक्रिय या कार्य रूप का वर्णन करते हुए बताया गया है कि इससे प्राण मन, समस्त इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, ज्योति, अक्ष और विश्व वारिणी पृथ्वी आदि तत्त्व उत्पन्न होते हैं। अतः मन्त्र में उसका परम्परागत विराट रूप प्रस्तुत करने के उपरान्त कहा गया है कि इसी से वैश्वता एवं माना प्रकार की प्रजातियों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार उपनिषदों में पुरुष का रूप उत्तरोत्तर विकसित होकर विस्तार पाता गया। उसके हृदय में कार्य और कारण दोनों का समान रूप से समावेश हुआ है। यह परब्रह्म तथा सृष्टि और सृष्टि आत्मा के रूप में भी उपनिषदों में स्पष्टतः हुआ। परन्तु 'अज्ञोपनिषद्' की परम्परा को पुष्ट करने का सबसे अधिक महत्त्व सृष्टि का विकसित होना। सम्भवता इसी आकार पर प्रायः ३, १, ८ में

१. इ. उ. ४. १. १-२।

१. उ. ४. १. १, २ और ऋ० १. १. ११।

२. ऋ० १. १. ११।

३. ऋ० १. १।

२ का १, ७, ५।

४ ऋ० १, १, ११।

५ ऋ० २. १, ११ २, १, १०।

६. मुं. १, १, १-५।

विराट पुरुष की प्रथम अवस्था या प्रथम जीव और आद्यावतार माना गया है। सप्तम्य्य पुरुष के सरस सृष्टि के विकास का कारण स्वयं उस प्रथम पुरुष की कामना है, जिसने उपनिषदों में इच्छा का रूप धारण कर लिया है।^१ इस इच्छा के अस्तित्व से अवतारवाद के विकास में सम्येह सहस्रता मिली है। क्योंकि पुरुष आद्यावतार के रूप में केवल सृष्टि की ही इच्छा नहीं करता अपितु व्यक्तित्व रूप से विगोप प्रयोजनवश (रक्षा, संहार इत्यादि) या स्वेषका से डीका या रसानन्द के किये स्वयं आविर्भूत होता है। इस इच्छा ने सृष्टि अवतार के अतिरिक्त व्यक्तित्व अवतार की भी आधार भूमि प्रस्तुत की। जिसके कन्दरूप सामान्य विष्णु के अवतारों के साथ-साथ उपास्यवारी अवतारवाद का भी विकास हुआ। जो महा पुनः-पुनः में अवहित के किये अवतरित होता या वह भक्त की भावुक प्रार्थनावश अर्धोविग्रह-रूप में भी अवतरित होने के किये स्थापित रहने लगा।

इस प्रकार इच्छा तरंग में अवतार क्षेत्र को अधिक सहज एवं व्यापक बनाया। शास्त्रों के अस्तित्व-रूप में प्रकटित होने के कारण इच्छा या कामना से अवतारवाद के सैद्धांतिक रूपों को और अधिक परिपुष्ट किया किया गया।

‘महामारत’ में व्यक्तित्व सनातन और अक्षर महा को आद्य पुरुष तो कहा गया किन्तु आद्यावतार नहीं। उसके विराट रूप की वर्णना करते हुए बताया गया कि उस अवस्थापाना पुरुष से विश्वेश, आदित्य, बसु, अश्विनी कुमार आदि देवता उपर्युक्त कथित महा से ब्रह्मापति और ऋषियों के साथ वापक हुये।^२ ‘गीता’ दूसरे अध्याय में विराट रूप धारण करने के उपरान्त आदि देव पुरातन पुरुष कहा गया है।^३

उपर्युक्त उद्धरणों में त्रिण पुरुष रूपों का संकेत हुआ है उनमें विद्यातीत और विद्यान्वर्ग (विद्यापीन) को रूप कथित हाते हैं। त्रिणमें प्रथम रूप तो परब्रह्म या पाँचरात्रों का ‘पर रूप’ है या निम्न रूप में सर्वत्र एक या स्थित रहता है। यह प्राचीन अव्यक्त पुरुष विद्यातीत होने के कारण अक्ष, अविनासी आदि परब्रह्म की उपाधियों से संयुक्त हाकर उपनिषद् महा से स्वरूपित हुआ। विद्यात् इस पररूप में त्रिण इच्छा या कामना मात्र को मानते हैं उसी के कारण यह सहा, मोक्ष और संहती आदि महा के अगुणात्मक भावों से युक्त होकर सगुण आकार भी बन बैठा।

१. ब० ३० १, २-३।

२. महा १, १, १०-१४।

३. गी० १० ११ और ११ ३८।

काकाव्य में सांख्यवादियों ने छद्म के उद्भव और विकास में प्रकृति के साथ पुरुष का योग स्वीकार किया। यह वेदान्त पुरुष के रूप में सबप्रथम अन्तर्प्राप्ति होकर महाबल में प्रवेश करता है।^१

वेदान्त पुराणों में पुरुष का सांख्यवादी रूप विविध रूपों में प्रकटित हुआ। 'विष्णुपुराण' के अनुसार विष्णु के परम स्वरूप से प्रधान और पुरुष से दो रूप हुए। इन्होंने संयोगात्मक और वियोगात्मक रूपों में रूपान्तरित होकर काल की संज्ञा धारण की।^२ पुरुष और प्रकृति ही सम्भवता के पुरुष, प्रधान, व्यक्त और अकाल धार भेद माने गए हैं। इन चारों का सम्बन्ध कारण, छद्म, पाकन और संहार से स्थापित किया गया है। फिर भी परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है।^३ अन्तःपुराणों में ब्रह्म के विविध रूपों की बर्चा करते हुये भी प्रथम रूप को पुरुष कहा गया। इस पुराण तक सम्भवता पाञ्चरात्रों के प्रभाव-स्वरूप पुराणों में भी विविध उपास्यों का सर्वोपरि रूप जैसा कि 'विष्णुपुराण' के परम रूप विष्णु से स्पष्ट है, वहाँ पुरुष, विष्णु का एक रूप विशेष मात्र है। इस बर्णिकरण में उपास्य रूप का प्राधान्य विहित होता है।

पाञ्चरात्र 'परमसंहिता' में ब्रह्म, शिव और विष्णु को प्रथम पुरुषों में ग्रहण किया गया है, जिनमें विष्णु के उच्चतम होने के तीन कारण बताए गए हैं। उनके सर्वभेद होने का प्रथम कारण है, सत्त्व-प्रधान होना। द्वितीय कारण के अनुसार वे विश्व के रक्षक हैं और तृतीय यह कि वे अपवर्ण या अनुग्रह की शक्ति रखते हैं।^४ 'भागवत पुराण' में भी यह प्रकृति कथित होती है। 'भागवत' १, २, २३-२६ में एक ब्रह्म के उक्त तीन रूपों में सत्त्वप्रधान विष्णु को श्रेष्ठ माना गया है। पर वहाँ उनके अनुग्रह मात्र की बर्चा करने की अपेक्षा उनके अस्त, कला आदि विविध रूपों की उपासना की ओर इंगित किया गया है।^५ 'परमसंहिता' में ब्रह्म में पंच शक्तियों का समावेश माना गया है। परमेष्ठि, प्रमान (पुरुष), विश्व विहृति और सर्व से परब्रह्म की ये शक्तियाँ हैं जिनके माध्यम से वह शम्भु रूप में आकाश और अन्न में, स्पर्श होकर पृथ्वी और लवण में, छद्म होकर तेज और नेत्र में, स्वाद होकर अन्न और विद्य में और गंध होकर वायु और प्राण में

२. वि० पु० १ १ १४।

१ भारतीय दर्शन पृ० ३१९।

२ वि० पु० १ १ १४ १५।

४ परम संहिता। गणकपाठ तृतीय पु० १८। २, १४-१५।

५. भा० १ २, २६।

समान रूप से व्याप्त रहता है।^१ हमने जान पड़ता है कि पाञ्चरात्र संहिताओं में पुरुष का अभिव्यक्तिप्रतिन सांख्याचार्य विकास हुआ। इस पुरुष को स्पष्ट होने के पूर्व पाँच शक्तियों से समाविष्ट किया गया। पर 'अपाण्य संहिता' में परब्रह्म के विविध मित्र रूपों का उल्लेख हुआ है। इस संहिता के अनुसार परब्रह्म के वासुदेव, अश्वपुत्र, सत्य भीर पुरुष चार रूप हैं। यहाँ पुरुष को चौथा स्थान मिला है पर 'मागवत' के सरस बहु अवतारों का उल्लेख है।^२

उपर्युक्त तथ्य से यह प्रमाणित है कि पाँचरात्र संहिताओं में अपाण्य 'पर' रूप की प्रधानता होते हुए भी उससे विविध रूप हो गए थे। उन रूपों के द्वारा वह शश सहारक, पाकक तथा कर्ता तदस्य भीर भोज्य माना जाता था। उसके सभी रूपों में कबक पुरुष रूप की, सृष्टि और जीवात्माओं के रूप में अभिव्यक्ति हुई। सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व वह स्वयं सब प्रथम उत्पन्न हुआ तथा ध्वं भी यही जाना प्रकार के अवतारों का मूल कारण है।

सम्भवतः मागवतकार ने पुरुष के उपर्युक्त परम्पराओं को ग्रहण करते हुए पुरुष का अवतारीरूप रूप स्वीकार किया है। क्योंकि 'आवेष्ट' में पुरुष की सर्वप्रथम कल्पना, 'यदुर्वेद' के अनुसार उसका जन्म ब्राह्मणों के अनुसार नारायण भीर पोड्या कला से सम्बन्ध, उपनिषदों में सृष्टि और आत्मा के रूप में उसका विस्तार, 'महामारत' में आद्य पुरुष की सजा, पुराणों में प्रकृति के साथ पुरुष तथा अपाण्य परब्रह्म का एक रूप विशेष पाञ्चरात्रों में परब्रह्म के विविध रूपों में से एक आदि अवतार भीर अवतारों का जनक प्रकृति चित्तने रूप वैष्णव साहित्य में प्रचलित थे एक प्रकार से 'मागवत' में जन सभी का आकलन कर दिया गया है।

अतएव 'मागवत' के अनुसार सृष्टि के आदि में भगवान् ने (भगवान् से जनका पर अपाण्य रूप स्पष्ट है) लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उसने महत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। उस समय वे पाँच कलाओं से पुनः थे।^३ यहाँ उसके कारण अर्थात् जलरापी रूप महत्सोपम विराट् रूप और उस पुरुष नारायण रूप का परिचय दिया गया है, जो जनेक प्रकार के अवतारों का अक्षय कोस तथा लघुतम से महामतम प्राणियों तक की योगि है।^४ यही पुरुष नारायण अग्य स्थलों पर आद्यावतार बताया गया है।^५

१ परम संहिता २ १७-११।

२ अपाण्य संहिता, शुक सौ ४ ६-७।

३ भा १ ४ १।

४ भा० १ १ २-५।

५ भा० २ १ ४१ और १ ६८।

नारायणवतार पर विचार करते समय नारायण और पुरुष का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। और यह प्रस्तावित किया गया है कि पुरुष से प्रकृत काठ में ही नारायण को सम्बन्ध किया गया था। अतः पुरुष का नारायण से सम्बन्ध प्रकटित होने के कारण 'सत्तावत' में शेषशायी नारायण और पुरुष नारायण दोनों का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त उपादानों का विश्लेषण करने पर आक्षेप्य पुरुष को तीन कर्मों में विभक्त किया जा सकता है। उसमें प्रथम है विद्यार्थी का छात्राधीन पर या परम रूप जिस उपनिषदों में परपुरुष या परब्रह्म कहा गया है। दूसरा है ब्रह्मका विवस्वत, विराट्, विश्वात्मा, सर्वात्मपर्यायी या समष्टि-आत्मा रूप जो ब्रह्मिष्ठ स्थिति में प्राप्त है। और तीसरा है, अत्येक प्राणियों का आत्मा या अन्तर्पर्यायी रूप। आदि अवतार एवं अवतारों के अन्वय कोप पुरुष का मुख्यतः इन तीन कर्मों से ही सम्बन्ध रहा है; विविध मन्त्रों एवं सम्प्रदायों में इन्हीं कर्मों को निम्न प्रकार से ग्रहण करने की चेष्टा की गई है।

पुरुषावतार पर विचार करने वाले मध्यकालीन आचार्यों ने मुख्य रूप से उक्त तीन कर्मों को ही ग्रहण किया है। ब्रह्ममाचार्य न 'तत्र हीय विद्वन्व सर्व निर्लेप प्रकरण' में कहा है कि यद्यपि पुरुषावतार तीन प्रकार के होते हैं तथापि वैदिकमिमांसी होने पर बीच भेद के रूप में सी के ही गृहीत होते हैं। अतः अन्तर्पर्यायी, अक्षर और कृप्य भेद से ब्रह्म तीन प्रकार का होता है। इन तीनों के अन्तर्गत होने पर पुनः बीच भेद से ध्यष्टि, समष्टि और पुरुष इवम् तीन भेद होते हैं।^१ इस प्रकार ब्रह्ममाचार्य ने ब्रह्म के तीन कर्मों को ही आविर्भूत होने पर पुरुषावतार माना है। मिम्बार्क मत्तामुपात्ती पुरुषोत्तमाचार्य के अनुसार भी पुरुषावतार तीन प्रकार के हैं। प्रथम पुरुष कारणार्णवशापी (कारणार्णव में शायन करने वाले) प्रकृति को निवन्धित करनेवाले विमले महत् की उत्पत्ति हुई, द्वितीय पुरुष समोदशापी (विश्वात्मा या सर्वात्मपर्यायी), तृतीय पुरुष है श्रीरोक्षशापी (अन्तर्पर्यायी या व्यष्ट्यात्म)।^२

उपर्युक्त तीनों पुरुषाकार कर्मों में विमिति का स्थूल बन्ध न होकर भास्य ताव की म्वादा ब्रह्मिष्ठ स्थिति होती है। अतएव इन तीनों पुरुषों को परमात्मा, विश्वात्मा और अन्तरात्मा कहा जा सकता है। चैतन्यमठानुयायी रूप गोस्वामी ने 'कबुभावावनामृत' में नारायणतन्त्र के आचार पर पृथित विष्णु के ही तीन कर्मों को पुरुष रूप माना है। उसमें प्रथम रूप है महत् स्थिति-प्रकृति

१ नल्लरीय विद्वन्व सर्व वि प्र ५ ३२५ श्लो ११५।

२ वैदान्त एक मञ्जूषा ५ ४८ टीका नील बी० २ पृ० ७९।

अन्तर्पामी संकल्प रूप द्वितीय है चतुर्मुख अन्तर्पामी-प्रयुक्त रूप, तृतीय है सर्व जीवात्मर्पामी भक्तिरूप रूप।' इस प्रकार रूप गारुडामी ने चतुर्मुख के तीन रूपों से ही तीन पुरुषावतारों को अभिहित किया है। इस स्थल पर पाञ्चरात्रों में प्रचलित प्रथम बामुदेव रूप के नहीं रखने में उनका प्रयोजन सम्भवतः उसको नित्य या तदर्थ रूप में धस्तुत करना है। क्योंकि पुराण और पांचरात्र दोनों में एक तदर्थ पर उपास्य विग्रह रूप माना गया है। और तीनों पुरुषावतार उसका आधिर्भूत या व्यक्त रूप हैं। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि बामुदेव को 'तैत्तिरीय आरण्यक' में पुरुष नारायण से अभिहित किया जा चुका है, अब वह उनसे परे कैसे जाया ?

इससे ऐसा रूपता है कि मण्डलाधीय युग में उपास्यवाद की प्रचलना हो जाने पर विष्णु, नारायण, बामुदेव, हृष्य, राम आदि परब्रह्म हो गए और इनकी अनेक पुरुष का स्थान किंचित्त गौण हो गया। अवतारवाद के स्थापक रूप में प्रचलित होने पर पुरुष के परमात्मा विधात्मा और जीवात्मा तीन रूप पुरुषावतार के रूप में मान्य हुए। उपास्यों के लोका, जस, विभूति कला, आदेश इत्यादि अवतारों से उक्त तीनों अवतार कुछ विभिन्न प्रतीत होते हैं। लीला आदि प्रयोजन वाले अवतार व्यक्तियुक्त हैं उनका सीधे पर रूप से सम्बन्ध है, किन्तु आलोचक तीनों पुरुषावतार क्रमशः एक दूसरे से आधिर्भूत अवतार हैं और इनका मुख्य प्रयोजन सृष्टि विस्तार ज्ञान पक्षता है।

गुणावतार

विष्णुपुराण और 'भागवतपुराण' दोनों में अवतारवाद अब कवल विष्णु के व्यक्तियुक्त अवतारों तक ही सीमित नहीं था, अपितु इस काक तक उस पर अपारबवाद का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका था। परमेश के नित्य लोकी रूप का अब अज्ञेय तथा समष्टि स्रष्टि और आधिर्भूत रूपों को ही ज्ञेय समझा जाने लगा था।' इस काक तक अवतारवादी धारणाओं पर पड़दृष्टियों का प्रभाव पड़ने लगा था, जिसके कल्पवक्र अग्रिम अभिव्यक्ति को ही अवतारवाद की सीमा में आहत किया गया। तद, सृष्टि और जीव जो अभी तक दार्शनिक विज्ञाना का ही विषय रह थे इनके अवतारवादी विकास की भी चर्चा पुराणों में चल पड़ी थी। कथतः अनेक रूपों में इनकी अवतार प्रणक्तियों का प्रचार जाता जा रहा था। इसमें से पुरुषावतार गुणावतार और लीलावतार तीन प्रमुख भेद मान्यताकीन वैष्णव सम्प्रदायों में कल्पित हुए हैं। इनमें लीलावतारों का सम्बन्ध तो उपास्य विष्णु के व्यक्तियुक्त अवतारों के रूप में माना

गवा परन्तु पुरुषावतार और गुणावतार वाद की अवतारवादी कल्पनाएँ हैं। इन दोनों का मुख्य सम्बन्ध सृष्टिजनित अभिव्यक्ति से रहा है।

सांख्य दर्शन में जिस सृष्टि-विक्राम-क्रम का परिचय दिया गया है उसमें एक त्रिगुणायुक्त अवस्था भी माबी जाती है जिसमें रज, सत्व और तम इन तीन गुणों का अस्तित्व रहता है। सांख्यवादिनों द्वारा प्रतिपादित सृष्टिवाद का प्रचार जब पुराणों में हुआ तो रज, सत्व और तम इन तीनों गुणों से क्रमशः मछा, विष्णु और रुद्र इन तीनों प्रमुख पौराणिक त्रिवेदों का सम्बन्ध स्थापित किया गया। यद्यपि प्राचीन साहित्य में तीनों गुणों और त्रिवेदों का कोई सम्बन्ध उल्लिखित नहीं होता। प्रायः इन सभी का पूषक-पूषक विकास स्वतन्त्र रूप से होता रहा है। फिर भी इनका अपूर्व अवतारवादी सम्बन्ध पुराणों में मिलने लगता है। इस सम्बन्ध का क्रमिक विकास विचारणीय है।

विकास की दृष्टि से तीनों गुणों का अस्तित्व भी प्राचीन साहित्य में पूषक-पूषक मिलता है। यों इन तीनों गुणों का प्राचीन रूप विद्वानों ने 'द्वान्द्वोगोपनिषद्' के एक मन्त्र में विहित माना है। उस मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि का रूप काल है कल का शुभ्र और पूषी का कृष्ण। यहाँ रज, सत्व और तम इन तीनों गुणों का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु 'द्वान्द्वोगोपनिषद्' के अगले मन्त्र में उक्त तीनों रंगों का सम्बन्ध जादित्य, चन्द्रमा और विष्णु इन तीन देवताओं से स्थापित किया गया है।^१ इसके पूर्व ही तीन देवताओं के आधिपत्य का उल्लेख द्वान्द्वोगो के ही एक मन्त्र से मिलता है। उस मन्त्र के अनुसार सत् देवता व तीन रूपों में अभिव्यक्त करने के लिए तीन देवताओं में अनुपवेश कर माम-रूप का व्याकरण किया।^२ अर्थात् 'द्वान्द्वोगो' में तीन उन आधिपत्य देवताओं के उल्लेख तथा रज, शुभ्र और कृष्ण रंगों से उनका सम्बन्ध की दृष्टि की जा सकती है। इन रंगों में तीन गुणों का स्वभावजनित किञ्चित् सम्बन्ध अवश्य दिखाई पड़ता है। अर्थात् बहुत सम्भव है कि वाद में कल कर उक्त उपादानों को अपनी आधार भूमि बनाई गई हो। इसके अतिरिक्त 'वेतावतर' उपनिषद् ५, २ में सम्भवतः सांख्यवेदा कथित का ही उल्लेख हुआ है जिनका नयगत सम्बन्ध ब्रह्मा के प्राचीन पुराण कथित का ही उल्लेख हुआ है जिनका नयगत संबंध हम सम्बन्ध मात्र से त्रिगुण और त्रिवेद के सम्बन्ध का स्वीकरण

नहीं होता। इनमें समग्र ही कि सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के प्राचीन उल्लेख कपिल के सांख्यसूत्र में मिलते हैं।^१

'सांख्यसूत्र के अनुसार तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति बतलाया गया है। अकिञ्चसृष्टि त्रैगुण्यसम्पन्न मानी जाती है और उसमें चैतन्य भाव पुरुष का अंश कहा जाता है। इसी त्रिगुणात्मक प्रकृति-पुरुष को वैष्णव पुराणों में ग्रहण किया गया है। 'विष्णुपुराण' के अनुसार सर्ग काल में क्षेत्रज्ञ से महत्ताव उत्पन्न हुआ जो सत्व, रज और तम भेद से तीन प्रकार का है।^२ सम्य वैष्णव पुराणों में भी यहाँ सृष्टि उद्भव और विकास का वर्णन किया गया है यहाँ किसी न किसी क्रम में सांख्यवादी गुण पृथिव इष्ट हैं।

किन्तु मातृय दर्शन में रज सत्व और तम का महत्ता, विष्णु और श्च से कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया गया है। बल्कि दृक् चिदैवों का विकास भी प्राचीन साध्य में स्वतन्त्र रूप से हुआ है। वैदिक बहुदेवतावाद के मरण में तीन मुख्य देवताओं का उल्लेख निराल में हुआ है। वारक ने अग्नि वायु (इन्द्र) और सूर्य का क्रमशः पृथ्वी-स्थानीय अन्तरिक्ष-स्थानीय और पुष्पाणीय तीन प्रमुख देवों में माना है।^३ भद्राचार्य ने वैदिक एवं पौराणिक देवताओं के अप्यपन-क्रम में अग्नि, वायु और सूर्य को क्रमशः महत्ता, शिव और विष्णु से समन्वित किया है।^४ पुराणों में इनके रूपों और कार्यों को महत्ता, शिव और विष्णु पर आरोपित किया जाने लगा था। साथ ही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र देवों के विशिष्ट व्यक्तित्व का भी वर्णन निर्माण हो चुका था। वे अपने नाम और सम्प्रदाय से सम्बन्धित पुराणों में अग्रतम घोषित किये गये थे। इस क्रम में त्रिन पुराणों में विष्णु की प्रधानता थी यहाँ य एक ही विष्णु के तीनों रूप माने गए। 'विष्णु पुराण के अनुसार तीनों पौराणिक देव सृष्टि के आरम्भ में रज, सत्व और तम इन तीनों गुणों से सम्बन्ध किये गये तथा सृष्टि, पालन और संहार का उत्तरदायित्व इन पर दिया गया।^५ तब से प्रायः त्रिदैवों का त्रिगुणात्मक सम्बन्ध उत्तरात्तर पुराणों एवं मध्यकालीन सम्प्रदायों में व्याप्त होता गया। त्रिगुणों के अनिश्चित कर्म ज्ञान और भक्ति का विकास होने पर ब्रह्मा को कर्म (कर्मराष्ट्र) या मूर्ति कर्म का तथा शिव के निर्गुण होने के कारण ज्ञान का विष्णु के समस्तिक पाठक होने के कारण भक्ति का चोतक समझा गया। यद्यपि साम्प्रदायिक प्रचार की प्रतिबन्धिता में महत्ता विष्णु और शिव

^१ भारतीय दर्शन ६ ११५ और सवित्र मूत्र १ ३९।

^२ वि० पु० १ १ ३३-३४।

^३ बालक त्रिगुण के अन्वय १, १, ५।

^४ अ-स्थानिक इतिहास जी० १ ५० ५।

^५ वि० पु० १, २, ३१-३४।

की अपेक्षा पीछे पड़ गये। परिणामतः भयकर दृश्य भी भक्ति से समाहित होकर समग्रदासों में शिब उपास्य हुए तथा विष्णु और इनके अवतारों की लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। किन्तु भिन्नता तो यह है कि शिब और विष्णु तब समग्रदासों में परमशिव और महाविष्णु उपास्य-रूप में प्रचलित हुए फिर भी इनका गुणात्मक रूप पूर्ववत् प्रचलित रहा। सम्यक्काहीन समग्रदासों और कवियों ने शिबिय गुणात्मक रूपों का माया उल्लेख किया है। इनके गुणात्मक रूपों की परम्परा का भी सुनिश्चित महत्त्व के साथ हो गया था। इसी से उपास्यवादी युग में भी इनका त्रिगुण त्रिवैद्य रूप सुरक्षित रहा।

'विष्णुपुराण' ने अन्य शक्तियों और विष्णुतंत्रों के सफल प्रकाश, विष्णु और शिब को भी महा की तीन शक्तियों में माना।^१ 'कृष्ण विष्णुपुराण में विष्णु महा के मूर्तस्वरूप माने जा चुके थे', इसलिए विष्णु ही प्रत्येक रूप में तमोगुणी महा-रूप में सृष्टि करते हैं सत्वोगुणी विष्णु-रूप में पावन और भी महा और शिब की अपेक्षा विष्णु को श्रेष्ठ बताया गया है। 'परम संहिता' के अनुसार महा और शिब क सम्य में विष्णु प्रधान एवं प्रथम पुरुष माने गए हैं। सत्वगुण रचा काय और अनुराग का माय य तीव्र वैशिष्ट्य इनकी प्रधानता का कारण बताया गये हैं।^२ 'भागवत पुराण और पौनरात्र दोनों परम्पराओं को समाहित करते हुए विष्णु या हरि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।^३ विष्णु की श्रेष्ठता में सत्वगुण का भी सहायक होने का अनुमान किया जा सकता है; क्योंकि गीता १० १४ और १८ में अन्य गुणों की तुलना में सत्व गुण की श्रेष्ठता प्रतिबिम्बित होती है। परन्तु श्रेष्ठ या उपास्य होने पर भी विष्णु को गुणावतारों की परिधि से घृण्य नहीं किया गया।

जहाँ तक गुणावतार का सम्बन्ध है हम वग में तीनों रूपों का भागवतकार ने ग्रहण किया है।^४ भागवत की यही परम्परा सम्यक्काहीन साहित्य में प्रचलित हुई है। सत्त्वत तन्त्र में रजोरा तमोरा और सत्वोरा स प्रमहा महा, शिब और विष्णु आदि गुणावतारों का विष्णु का गुणावतार बताया गया है।^५ यहाँ महा से मरीचि आदि मन्त्रापति द्र से द्यगान और विष्णु से

१ वि० पु १ १० ५८।

२ वि० पु १ २ ६१-६३।

३ भा० १ १ १३।

४ सात्वत तंत्र पु० ४ ४२६ १ ४२-४३।

५ वि० पु १ १० ६१-६३।

६ परम संहिता २ १४-१५।

७ भा ११ ४ ५।

धर्म पञ्चाङ्गि (मनु आदि) का विस्तार भी एक प्रकार से गुणात्मक विदित होता है ।^१ निम्बार्कमुपायी पुरुशोत्तमाचार्य ने गुणावतार का प्रथम बतलगत रूप कहा है कि 'गुण क नियंत्रित करने वाले उनक जन्मिमात्री काठ पद्य सृष्टि कर्ता आदि गुणावतार हैं । ब्रह्म, रसोगुणी मद्गा काठ और वृष आदि मन्त्रावतारों द्वारा सृष्टि करता है, विष्णु, मनु और काठ आदि द्वारा पालन करता है तथा रुद्र, काठ आदि द्वारा सृष्टि का संहार करता है ।^२ इस प्रकार पुरुशोत्तमाचार्य ने गुणावतार की दृष्टि से 'विष्णुपुराण' का अनुसरण किया है । 'विष्णुपुराण' में मद्गा, विष्णु और शिव क सृष्टि पालन और संहार सम्बन्धी कार्यों को चार-चार पादों में विभक्त किया गया है ।^३ बल्लभमाचार्य ने सगुण न मानते हुए भी गुणानिमान से सृष्टि का कर्ता पाठक इत्यादि मद्गा को माना है ।^४ गुणावतार का सर्वाधिक सम्बन्ध सृष्टि काय से है । किन्तु बल्लभमाचार्य सृष्टि कार्य की दृष्टि से त्रिगुणात्मक उत्पत्ति स्थिति और संहार की भयका 'विष्णुपुराण' में प्रतिपादित आविर्भाव और निरोभाव क विषय पक्षपाती है ।^५ इन्होंने गुणावतार की केवल विद्याम या लोक भेद से विभक्त माना है । प स्वयं कहते हैं कि गुणावतार ही उन लोगों क किय भिन्न कहा गया जिन्होंने कमलाम्बुज, कैलासवासी वैकुण्ठवासी क स्थान भेद से त्रिगुणात्मक रूपों को ग्रहण किया है ।^६ जैनस्य सम्प्रदायानुयायी रूप गोस्वामी न 'तद्युग्मागवतासूत्र' में गुणावतारों की चर्चा की है जिसकी टीकाकारों ने और विस्तृत व्याख्या की है । इनक मतानुसार त्रितीय पुण्य यर्षोद्गतायी से विष की सृष्टि, पालन और संहार क निमित्त आविर्भूत मद्गा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति बनायी गयी है ।^७ इसी प्रसंग में रूप गोस्वामी ने मद्गा क हिरण्यगर्भ और वैराज श भेद किये हैं । हिरण्यगर्भ मद्गलोक में निवास करने हैं और वैराज सृष्टि कार्य करते हैं ।^८ स्वयं प्रकार रुद्र को पञ्चापा भागों या सम्भवन पञ्चापा रूपों में विभक्त किया गया है ।^९ गुणात्मक रूपों में विष्णु क गर्भोद्गतायी भयात् विद्यात्मक तथा श्रीराधिशक्तायी विद्याम

१ ज्ञाननन्द पृ ३१ पृ २ ४४-४ । २ वे २० प ५ ४८ ।

३ वि पु० १ २२, २४-२५ ।

४ पल की० नि छात्रनेम पृ २३२ पृ ७२ ।

५ वि पु २ ५२ ६० और प दी० नि० सर्वनि प्र० पृ २३ पृ २८ ।

६ प० दी० नि० सर्वनि २ पृ ३२१-३२२ पृ २३० ।

७ प० मा० पृ २४ पृ २२ ।

८ प० मा० पृ २२ पृ ८२ ।

९ प० मा० पृ २५ पृ २८ ।

रूप ही नारायण तथा विराट्मत्पर्यामी के नाम से प्रचलित इतिहास रूप गृहीत हुए हैं।^१

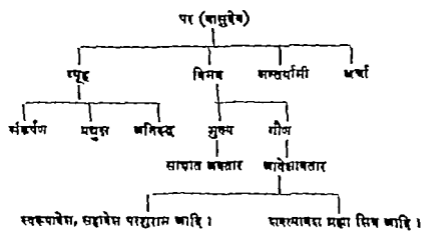
इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के विवरण से स्पष्ट है कि पुराणों के त्रिगुणात्मक सृष्टि में सर्वत्र ब्रह्मा, विष्णु और शिव वैष्णवपुराण एवं मध्ययज्ञीन वैष्णव परम्परा में गुणावतार के रूप में गृहीत हुए। भारतीयक रूप में तो त्रिदेवों का अस्तित्व समान कोटि में स्वीकृत हुआ। किन्तु सम्प्रदायों में उपास्य रूपों का अधिक प्रचार पाने के कारण शिव और विष्णु तत्त्व सम्प्रदायों में उपास्य रूपों का गुणात्मक भवतार मध्ययज्ञीन साहित्य में गृहीत होने पर भी त्रिदेवों 'विष्णुपुराण तथा पाञ्चरात्र संहिताओं में त्रिदेवों के प्रसंगों में भी सतोपुत्री समान रूप से मान्य हुए। इन सम्प्रदायों में कबल आधिपत्य और तिरोभाव सृष्टि का ही काय मानने के कारण वहमाचार्य ने गुणावतारों के गुणात्मक रूप को तो गद्दी माना किन्तु कमलोज्ज्वल, कैलासवासी और वैकुण्ठवासी की स्थिति को ही त्रिगुणात्मक बताया। परन्तु आलोचक में इनके उक्त मत का विशेष प्रचार नहीं हुआ।

वैष्णव सम्प्रदायों में पाञ्चरात्र और 'श्रीमन्नागवत' में प्रचलित भवतारों के विभिन्न रूपों और भेदों को अपनाया गया है जिनमें परस्पर न्यूनाधिक अन्तर वीज्य पड़ता है।^२ श्री ब्रह्म सन्नाधि, ह्य और गौडीय सम्प्रदाय के आचार्यों में श्री ब्रह्म और ह्य सम्प्रदायों के आचार्यों ने पाञ्चरात्र भवतार रूपों को तथा सनकादि और गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने नागवत' के रूपों को अधिक प्रसन्नता दी है।

श्री सम्प्रदायः

इस सम्प्रदाय में छांकाचार्य (१२६० वि०) ने पाञ्चरात्र रूपों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है। इनके मतानुसार ईश्वर के पर स्पृह विभव, अन्तर्पामी और अर्चा पाँच स्वरूप होते हैं।^३ जिनमें पर रूप काकातीत एवं नित्य उपास्य रूप है और स्पृह रूप सृष्टि पालन और संहार से सम्बद्ध है। पर वासुदेव संकल्प प्रपुत्र और अनिरुद्ध आदि रूपों में सृष्टि का वसुधाण कर्ता और मन्त्रों का रचक है।^४ इसका अतिरिक्त गीज मुख्य भेद से विभक्त दो

प्रकार के मान गये हैं। गौण आदेशावतार कह जाते हैं। तथा मुख्य साक्षात् अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आदेशावतार, स्वरूपावेश और सहावेश दो प्रकार के होते हैं। स्वरूपावेश में ईश्वर का कबक सहावेश होता है। जैसे परशुराम आदि के दारी में समय पर सहावेश हुआ था। हास्यावेश में कार्यकाल में कबक साक्षात्कार का स्फुरण होता है।^१ अन्तर्दामी-रूप से ईश्वर जीवों की सभी अवस्थानों में स्वर्ग, नरक, पहाँ तक कि गर्मावस्था में भी जन्म में स्थित होकर उनकी रक्षा और सहायता करता है।^२ अर्था-रूप में वह विभिन्न गुणों में वैश, काल और अपिकारी के भेद से रहित होकर भक्तों की उपासना के छिपे स्थित रहता है।^३ उनका जन्म इस प्रकार रत्ना जा सकता है :—



ग्रन्थ सम्प्रदायः—

इसमें अवतारी विष्णु असंख्य नामों और रूपों में अभिव्यक्त और आविर्भूत होता है। विष्णु के मत्स्यादि अनेक रूप तथा मारायणादि महत्त्वों रूप बतलाये गये हैं। वे सभी रूप अमिष और अमृत रूप हैं। विष्णु परमात्मा का मूल रूप या पूर्ण है ही मत्स्यादि अवतार-रूप भी पूर्ण हैं। जिस प्रकार मूल रूप आत्मन्नामक और कल्पाधिकारी गुणों से युक्त और हापरहित है, उसी प्रकार उनका अवतार रूप भी है।^४ इन्होंने भागवान् विष्णु के परम, प्रतिबिम्ब और

१ सायबन इ २०८।

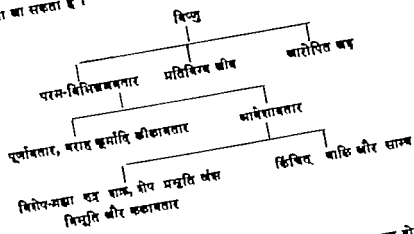
२ सायबन इ १९७।

३ सायबन इ २१६-२१७।

४ श्रीमत्पञ्चरात्र सायबन इ १६।

मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद

भारोपित तीन रूप पतकभये हैं। इसमें नारायण, बराह आदि विष्णु के श्रेष्ठ एवं परम रूप जीव आदि प्रतिबिम्बरूप और ब्रह्म आदि भारोपित रूप हैं।^१ पौराणिक एवं पाश्चात्त अवतारों को इन्होंने पूर्ण तथा 'बीपावुत्पञ्चरीपक्य' माना है। ये भी अवतारी विष्णु के समान सच्चिदानन्दात्मक तथा अम्य आदि से रहित प्रादुर्भाव हैं।^२ पूर्णावतारों के अतिरिक्त ब्रह्मा, श्च सेप, श्चक्र, नारद, समक्यदि, प्रद्युम्न अमिदद्व विनायक, सुवर्चन आदि आधुन्य, पूष्पी, 'अक्रवर्ती प्रभृति अवतारी विष्णु से मित्र आदि रूप कहे गये हैं।^३ 'महाभारत तात्व्य निर्णय' में पुनः इनकी विस्तृत वर्णना करते हुए इन आदेश रूपों के विशेष और किञ्चित् दो श्रेष्ठ बतलाय गये हैं। जिसमें ब्रह्मा, श्च आदि विशेषादेश और आदि और मान्य किञ्चित् आदेशावतार हैं।^४ उक्त रूपों को हम क्रम में देखा जा सकता है।



श्चद्र या अस्त्रम सम्प्रदाय

ब्रह्माचार्य ने अवतारवादी रूपों की पुष्टि में पाश्चात्त एवं आगत दोनों का समाधिष्ट रूप ग्रहण किया है। उन्होंने तत्कालीन निबन्ध और आगत की सुवाचिनी टीका में ब्रह्म एवं अम्य पौराणिक अवतारों तथा कृष्ण आदि उपास्यों के अवतारवादी रूपों पर विचार किया है। हम मत में उपास्य

१. नाटावतारवादाः परमरूप मोक्षिणु। तेषु प्रतिबिम्बत्वं ब्रह्मभारोपित इति।
 २. श्रीगणेशविद्यायां नार संमद्र पृ १०-१३ सर्ववृत्तम्। पृ ५ स्तं १ १ १।
 ३. शोभा तात्व्य निर्णय पृ १०-१३ सर्ववृत्तम्। पृ ५ स्तं १ १ १।
 ४. महाभारत तात्व्य निर्णय पृ १०३ पृ १ शी० १० १२ पृ ८ म १। शी० ११ १२।

श्रीकृष्ण ही कारण ब्रह्म या अपरिपक्व ब्रह्म माना गया है। श्रीवैश्वानर का यह ब्रह्म अवतारी ब्रह्म है। क्योंकि इनके कथनानुसार इति क त्रितमे अवतार है, उनमें ब्रह्म स्वयं जाता है।^१ इन्होंने संभवतः 'भद्रापमानो बहुधा विद्यापते' और 'तद्यज्ञा तदेवा मु प्रविसत' आदि मुक्ति-वाक्यों के व्यापार पर ब्रह्म-प्राकृत्य के अर्थ और प्रवेश का भेद माने हैं।^२ जिसमें उत्पत्ति अविद्य अज्ञान मित्य, अपरिपिद्य और समागम पाँच प्रकार की मानी गई है। यहाँ मित्य और अपरिपिद्य प्राकृत्य स्वयं भगवान् के सत्त्वमय आधिर्भूत रूप हैं।^३ प्रकाशकारों ने आवेश और अवतार नाम से इनके दो भेद किए हैं।^४ इन्होंने पुनः पृथक् स्थलों पर आवेश और अवतार रूपों पर विचार किया है। यह ज्ञान सेना भावश्यक है कि पाण्डुरात्री में आवेशावतार का सम्बन्ध आधिर्भावों या आधिर्भूत विभवों से है। सभी पौष्टे विभवों के आधिकारण के क्रम में आवेश अज्ञानका एक विधिष्ठ रूप बतलाया जा चुका है। अतः ब्रह्मपाचार्य ने 'तावद्दीप निवन्ध भागवत प्रकरण' या 'सुबोधिनी' भा० २, ७ में सुहीत लीलावतारों पर विचार करते समय कहा है कि आधिर्भाव और अवतार मुख्य सात्विक प्ररीर में होते हैं। इन और अष्टम के भेद से अत्रिमा एव त्रिगुण भगवान् कृष्ण ही ज्ञान और क्रिया शक्ति से अवतार लेते हैं। वे पराह आदि अवतारों के रूप में बहु कार्य करते हैं जिसमें क्रिया की अधिक प्रयाणता होती है। और वे ही व्याप्त आदि के रूप में ज्ञान कार्य करते हैं जिसमें ज्ञानशक्ति का प्राबल्य होता है।^५ 'सुबोधिनी'

१ अवतारी इतिवाचान् तत्र ज्ञान स्वयं प्रवेत् ।

त० शी० नि० भा० प्र० पृ० २४४, श्लोक २४२ ।

२ तावद्दीप निवन्ध भागवत प्रकरण पृ० ७१ श्लोक १५ ।

अम्मारका प्रवेश प्रकाश इव मेव च । ब्रह्म० २१ १९ तै० उ० २, १ ।

३ अनित्ये अमम निरुद्धादिभिः प्रवेष्टमत्तम ।

नित्यानिभिः प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः १०५ ।

म ही नि० पृ० ७१ श्लोक २१ श्लोक २१ ।

४ प्रवेष्ट-नित्यानिभिः प्रवेष्टमत्तमैः इवा प्रवेष्टमत्तमैः । आदिभिः प्रवेष्टमत्तमैः म च ।

म शी० नि० भा० पृ० ७१ श्लोक २१ श्लोक २१ ।

५ आधिर्भावो ज्ञानात् प्रवेष्टमत्तमैः । अष्टमैः प्रवेष्टमत्तमैः निर्वृत्तं इत्येव पर दि ।

पान् प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः ।

परवादि स्वयमेव प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः ।

इत्येव प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः प्रवेष्टमत्तमैः ।

तावद्दीप नि० भा० प्र० पृ० २१ तथा सुबोधिनी भा० २ ३ १ श्लोक १५ ।

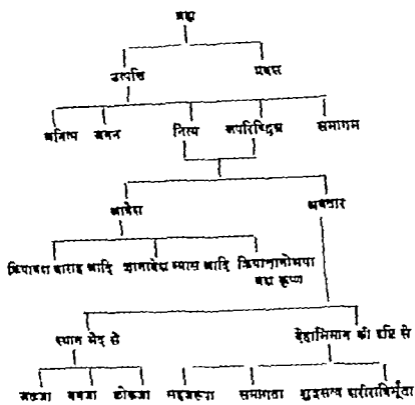
में उन्होंने अवतार रूपों की तुल्यता के निरूपण में विरोध रूप से जाबेसा-
 बतार को वैष्णव तंत्रों के आधार पर प्रष्ट किया है। जो इनके उल्लेखों से
 स्पष्ट है।^१ इस दृष्टि से ये महाभारत के पूर्वतः अनुगामी हैं। क्योंकि
 जाबेसाबतारों की जो सूची मध्य द्वारा 'महाभारत तात्पर्य निर्णय' में प्रस्तुत
 की गई है, बल्लभ ने भी 'तत्त्वदीपनिबन्ध' एवं 'सुबोधिनी' में उसी का
 अनुसरण किया है। इस सूची में 'भागवत' के लीला या भक्त्य अवतारों के
 नाम पाञ्चरात्र विमर्शों को भी समाविष्ट किया गया है।^२ बल्लभाचार्य ने कार्य
 की दृष्टि से भागवत क लीलावतारों का विभाजन करते समय, सम्भवतः
 जाबेसा लक्ष्मियों के ही आधार पर अवतारों को क्रियायुक्त, ज्ञानयुक्त और
 क्रियाज्ञान उभययुक्त तीन वर्गों में विभक्त किया है।^३ ऊपर किया प्रभाव बराह
 तथा ज्ञान प्रधान पृथ, व्यासादि रूपों का उल्लेख किया जा चुका है। इनके
 अतिरिक्त क्रिया एवं ज्ञान दोनों प्रकार के कार्यों का कर्ता होने के कारण
 बल्लभ ने कृष्ण को क्रियाज्ञान उभययुक्त अवतार माना है।^४ 'सुबोधिनी'
 भा० १०, १, ४० में जाये हुए द्वावतार-क्रम के भी अवतारों को इन्होंने
 स्वयं भेद से बल्लभा, बल्लभा और लोकज्ञा बतलाया है। जिनमें मत्स्य,
 इष्यीव और पूर्व बल्लभा, सुलिह, बराह और ईस बल्लभा तथा राम, परशुराम
 और वामन लोकज्ञा माने गये हैं। पुत्रा भा० ११, ४ में जाये हुये अवतारों
 का भी बल्लभ ने सुबोधिनी में सहज रूप समागत और द्वाह सत्त्व सरीरा-
 विद्यमान वैदिकमिमांसा को मुख्य आधार माना गया है। इस विभाजन में अवतारों में
 पाञ्चरात्र एवं भागवत दोनों का विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने का प्रयास
 किया है। उक्त रूप क्रमशा निम्न प्रकार से विहित होते हैं।

१ 'मदनरत्न रूपस्य द्वावतारैश्च जाबेसाबतारवोरन्दिशेषम् ।
 निरूपणम् तथा तत्र निर्णयो वैष्णव तथैतिक्रिया ।
 सुबोधिनी मा १, १ ६ की व्याख्या ।

२ इनके नाम जाबेसाबतार शीर्षक में इहम् ।

३ स्वयं द्वावतारैश्च क्रिया ज्ञान विभेदम् ।
 विदितैश्च स्वरूपैश्च क्रिया वामनो हरिः ।
 त श्री० मि० सर्व निर्णय प्रकरण पृ २८१-२८७ इत्यो ८९ ।

४ पात्र क्रियायुक्तः ज्ञानात्तु मयदात्र स्वयम् ।
 त श्री नि मा प्र पृ २४, २५ ।



निम्नार्क सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में अवतारवाद की त्रिसु रूपरक्षा का विवरण हुआ है वह निम्नार्क द्वारा रचित 'दत्तशेखरी' के चौथे श्लोक में प्रमुख 'मूहादिने' पर व्यापित है। 'दत्तशेखरी' के भाष्यकारों ने प्रायः इसी पद के अर्थ पर धीकृष्ण के अवतारी वृत्तक सम्बन्ध पौराणिक अवतारों पर विचार किया है। 'दत्तशेखरी' के एक प्रमुख भाष्यकार श्री हरिप्रियाम देश ने 'अमरकोश' के अर्थ पर मूहा का अर्थ 'मूहा' किया है। प्रायः ही मूहा और अवतारों का अन्वय-रूप माना है।^१ इस मत में धीकृष्ण मद्य अंश और अजिन्य अंश है। इनकी दृष्टि समस्त सृष्टि में अंश तथा व्यक्त और अव्यक्त रूप में व्याप्त है। अवतारी धीकृष्ण ही अवतार रूप में मन् चिन् एवं आत्मद्रोमक स्वरूप से प्रकट होते हैं।^२ अचिन्त और अज्ञान दृष्टियों का आशय होम के कारण

१ मूहा मूहा सद्य निरु मूहा श्यामनशेखरी।

दत्तशेखरी विष्णुसुहृतात्मोपास्य १० २१।

२ अर्थ दत्तशेखरी १० २१।

धीरि, प्रभु आदि अनेक नाम इनके ही स्वरूप के परिचायक हैं।^१ 'श्रीकृष्ण स्तव रास' के १०वें श्लोक में श्रीकृष्ण के जन्म, कर्म, गुण, रूप, वीर्य प्रभृति को विषय कह कर सम्भवतः गीता के 'जन्म कर्म च में विषय' का ही अनुसौदन किया गया है।^२ इस प्रकार जन्म संप्रदायों के सहस्र इन संप्रदाय में भी श्रीकृष्ण अपने उपास्य रूप में पर रूप से लेकर गृह्य भक्तवादी, विभव, जहाँ आदि सभी विग्रह रूपों में मान्य हैं। व पर रूप में नित्यधाम पूब नित्य विमूर्ति में स्थित हैं। और वे ही हीका विमूर्ति में श्लेषज्ञा से जवतीर्ण होते हैं। इनका शरीर इस प्रकार नित्य और अनित्य दो प्रकार का है; जिनमें समस्त भंगकों के विधि उपास्य के त्याग करने बाकों को, समस्त प्रत्यार्थ प्रदान करने बाके उमाकान्त श्रीकृष्ण पूब उनके सहचर नित्य हैं। उसके अतिरिक्त उनका अनित्य शरीर कर्मज और अकर्मज भेद से दो प्रकार का है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का विराट् शरीर तथा उनकी इच्छा से नित्य सुख जीवों के साथ परम संतर्पार्थ मूलक पर परिपूहीत शरीर अकर्मज शरीर है। कर्मज शरीर स्वावर लंगम, आदि प्राणियों के रूप में उत्पन्न चौतसी रूप प्रकार का माना गया है।^३ अतः श्रीकृष्ण का पर विमूर्ति अनित्य रूप प्रकृति महक से निम्न द्वितीय भगवद्भ्राम में विवर जाचरजगत्स्य, प्रकाशमान और माया से परे है किन्तु हीका विमूर्ति रूप जगत् में हीका के विभिन्न जवतरित द्वारक, मयुरा अपोथ्या आदि में दृशित होता है। वह परिच्छिन्न के समाप्त हीकने पर भी अपरिच्छिन्न, स्वर्ग प्रकाशमान पूब माया से रहित है।^४ इन्होंने 'विष्णु पुराण' के युगक रूप का अनुसरण करते हुए 'दशरतोकी' के पाँचवें श्लोक की व्याख्या में कहा है कि जब आप देव-विग्रह धारण करते हैं तब कर्मों के ही स्वरूपा होती है। और जब मनुष्य विग्रह धारण करते हैं तब कर्मों की मानुषी रूप धारण करती है। इस प्रकार राजा-मायव और मायव-राजा- स्वरूप में विराजमान पूब हीवार्थ जवतरित युगक जवतार की जहाँ की है।^५

'दशरतोकी' के भाष्यकारों में श्रीपुरुषोत्तमाचार्य^६ पूब उनके अनुगामी

१ वैशाल तरसुपा ५ ३ श्लोक। २ वैशाल तरसुपा पृ० ११।
 ३ अर्थ पद्यक निर्णय पृ ३६। ४ अर्थ पद्यक निर्णय पृ ४२।
 ५ अर्थ पद्यक निर्णय पृ ७९-८०। ६ वैशाल वारिजाल कीशुभ जाक निर्णय पद्य वैशाल कीशुभ जाक श्रीविवात की कैथिका सुमी रोमा बीस ने (जो ३ पृ० ६५ में) क्रमशः निर्णय, श्रीनिवास पूब विवाचार्य ने पद्यक पुवपोत्तमाचार्य का स्वात माना है।

श्रीहरिहर प्रपन्न ने 'स्पृहाश्रिण' की व्याख्या करते हुए अवतारवाद के पांचरात्र एवं भागवत दोनों का समाविष्ट रूप ग्रहण किया है। इनके मतानुसार एक ही प्रपन्न श्रीकृष्ण अपनी 'अष्ट-घटनापटीवसी शक्ति' से विभिन्न नाम-रूप धारण करते हैं, और स्थित रहते हैं।^१ व अवतारापस्या में भी अष्टादश गुण शक्ति तथा अतिशय साम्य से सम्पन्न एवं परिपूर्ण हैं।^२ वे सृष्टि कार्य एवं उपामना के निमित्त स्पृह रूप में स्थित होते हैं। उस स्पृह में वासुदेव, सदर्शन, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चार रूप भाग्य हैं। पुनः इन्हीं से विकसित द्वादश स्पृह शक्तिर्षी भी प्रचलित हैं।^३ श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने अवतारों के प्रबोधन के निमित्त गीता और पांचरात्र का समाविष्ट रूप प्रस्तुत किया है। इनके मतानुसार परमेश्वर श्रीकृष्ण, अपनी इच्छा से धर्मस्थापना, अधर्मनाशन और अपने भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने के निमित्त विविध विग्रह रूपों और आविर्भावों में अवतार होते हैं।^४

इनके अतिरिक्त इन्होंने भागवत परम्परा में भी प्रचलित विविध अवतारवादी रूपों का उल्लेख किया है। इस परम्परा में गुण, पुरुष और लीला भेद से तीन प्रकार के अवतार माने गए हैं। गुणावतारों में रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण से मगद्वय मद्गा, विष्णु और श्वर क्रमशः जहा, पाण्डु और सहारक हैं। पुरुषावतार के कारणार्णवशापी, गर्भोद्घापी और शीरोहस्तापी तीन भेद बतलाये गये हैं। ये क्रमशः प्रकृति एवं उसका तर्कों के नियता समष्टि अन्तर्गामी और स्वष्टि अन्तर्गामी हैं। ये तीनों रूप पुरुष, समष्टि एवं स्वष्टि अन्तर्गामी या अतमा तथा समस्त ईश्वर, जगत और जीव के पर्याय या परिवर्तित रूप विदित होते हैं।^५ तीसरा भेद लीलावतारों का है। आवेश और स्वरूप भेद से लीलावतार दो प्रकार के होते हैं। इनमें आवेश के रक्षावहस और वाक्प्रावेश या भेद कहे गये हैं। किसी जीव के व्यवधान के बिना अपने धर्म से प्राकृत विग्रह-रूप में आविर्भूत होने को रक्षावहसावतार कहते हैं। जैसे, नर-नारायण आदि रूप। किसी जीव विशेष में अपनी शक्ति के कुछ अंश को प्रकट कर किसी लीला कार्य

१. इतिश्रीश्री सुमन्त्रा नाम्न इ २५।

२. वैराग्य रत्न मञ्जुषा पृ० ४७।

३. अष्टक पृ० ४१ में द्वादश नाम तथा गीताश्रीचर नामनीसोपनिषद् १०-१८ में द्वादश स्पृह शक्तिर्षी का बतलाया हुआ है। भेद के अनुसार वासुदेव से केवल नारायण, वाक्प्रावेश से गेविरि और मधुसूदन प्रद्युम्न से त्रिकिन्म, वाक्प्रावेश और मोक्ष और अनिरुद्ध से हरीकेश, पद्मनाभ और वासुदेव से द्वादश रूप बतलाए हुए हैं।

४. वै० १० म० १ ४८।

५. वै० १० म० १० ४८।

मध्यकाळीन साहित्य में अवतारबाध

रम्यता का विस्तृत वर्णन किया है। श्रीकृष्ण इस मत के भी उपास्य माने गये हैं। 'अधुनागततामृत' के अनुसार स्वयंरूप, तदेकान्त रूप और आवेश रूप उनके ये तीन मुख्य रूप हैं।^१ इनमें स्वयं रूप अवस्थापेक्षी या स्वता पर भी आकृति से निम्न प्रतीत होता है। इसके विकास और स्वांश दो भेद हैं। विकास रूप जीवा के निमित्त परिवर्तित रूप है। शक्ति पूर्व सामर्थ्य की दृष्टि से यह स्वयं रूप की समकक्षता में है। नायायन और वासुदेव को रूप गोरवामी ने श्रीकृष्ण का विकास रूप बतलाया है।^२ स्वांश रूप विकास रूप की अपेक्षा अल्प शक्ति से युक्त होता है। इसके अतिरिक्त आवेश का उल्लेख बतलाते हुए कहा गया है कि जिन महात्मा जीवों में ईश्वर अपनी जगत्तुल्य शक्तियों के द्वारा आविष्ट हुआ करते हैं वे आवेश रूप हैं।^३ जैसे शेष शक्ति क, समकक्षि ज्ञान के भीतर नारद मन्त्रि क आवेश माने जाते हैं।^४

श्रीकृष्ण के उक्त रूपों में रूप, मायिक या माया निर्मित न होकर सत्य और मित्य रूप है। अतः इनके स्वांश और आवेश रूप ही आधिभूत होते हैं। स्वयं रूप जबक हापर पुण में कृष्ण-रूप में अवतरित होता है।^५ श्रीकृष्ण के इन रूपों क अतिरिक्त रासलीला एवं हारका में पृथीत एक सटस अनेक रूपों क आकार पर प्रकाश रूप माना गया है।^६ सामान्यतः स्वयं रूप ही मुख्य प्रकाश या मानव क रूप में दृग्भावन रासलीला और हारका के रमितास में प्रकट होता है।^७ तथा गीत प्रकाश देवकी पुत्र द्विमुख कृष्ण एवं बलराम जादि रूपों में अवतरित होता है। माय ही कृष्ण क अवतार-रूप का भी स्वयं रूप से सम्बन्ध बतलाया गया है। इनके अवतारत्व की प्रतीति करते हुए रूप गोरवामी ने कहा है कि उपर्युक्त स्वयंरूपादि, विद्य-कार्य के निमित्त अमृतपूर्व ब्रह्म से अवतरित होते हैं इसलिये अवतार कहे जाते हैं।^८ ब्रह्मदेव विद्याभूषण ने इसकी व्याख्या में कतिपय प्रयोजनों की प्रतीति की है। इनके कथनानुसार सृष्टि, उत्पत्ति एवं विस्तार, बुद्ध विमर्दन, देवताओं का सुखवर्द्धन, समुत्कथित साधकों को साक्षात् दर्शन, मेमानन्द का विस्तार और विद्युद मन्त्रि का प्रचार इनके मुख्य प्रयोजन हैं।

रूप गोरवामी ने भागवत की परम्परा में प्रचलित अवतारबाध के पुस्तकावतार

१. क. मा. ५०. १ श्लोक ११-१२। २. ल. मा. ५०. ११ श्लोक १४-१५।
 ३. क. मा. ५०. ११-१२ श्लोक १६-१७। ४. देवदत्त देव देवदत्त मूलसूत्र ५. २८२।
 ५. क. मा. ५०. १२३। ६. क. मा. ५०. १६ श्लोक २८।
 ७. श्रीविष्णु भाष्य. श्री गीर्वाण ५. १६४। ८. क. मा. ५०. १६ श्लोक २ रिप्लो।

गुणावतार और लीलावतार प्रकृति में ही की प्रकृति किया है। इनके मतानुसार इन तीन क्रीडा के अवतारों में अधिकांश स्वीय और आवेश है।^१

पुरुषावतार में प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरुष महत्त्व एवं लक्ष्य हिरण्यगर्भ और सृष्टमूलात्मा माने गए हैं। बलदेव विद्याभूषण ने इन्हें क्रमशः संकषण, प्रसन्न और अनिच्छ से भी अभिविहित किया है।^२ इन्होंने उसी परम्परा में मझा कृत् और विष्णु को गुणावतार माना है। इन त्रिदेवों का अवतार सृष्टिपालन और संहार के निमित्त द्वितीय पुरुष से होता है।^३ यहाँ मझा, हिरण्यगर्भ मूक्य और वैराज (सूर्य) मेह से जो प्रकाश करे। हिरण्यगर्भ मझ काक क विद्यापी और वैराज सृष्टि काय में रत हैं। वे वैराज ही सृष्टि कार्य और वेद प्रकाश के लिए प्रायः बलमुक्त अहमेत और अष्टाङ्ग होकर अभिव्यक्त होते हैं। 'पद्मपुराण' के आधार पर इनका कथन है कि किसी किसी महाकाय में जीव भी उपासना के प्रभाव से मझा होता है। तथा किसी कथन में विष्णु ही मझा होते हैं। अनप्य विष्णु जब सृष्टि कार्य करते हैं तब जीवात्मक मझ (वैराज), मझाकाक की सुख सम्पदा भोगते हैं। इस प्रकार काठ मेह से मझा कमी ईश्वर और कमी जीव भी होते हैं।^४

रूप वास्तविकी ने मझ के एकाग्र रूपों की चर्चा करत हुए कहा है कि प विष्णु हाकर भी तमागुण के योग से तमोगुण की महापता करत हैं।^५ कथन मेह से इनकी उत्पत्ति मझा, विष्णु या संकषण से मानी गई है।^६ विष्णु वायुपुराणादि में बनटाए हुए तिव लोक में स्थित सदाशिव की शिव मूर्ति को इन्होंने कृत्य का विद्याम रूप माना है।^७ यह रूप तिव के अवतार रूप की अवस्था उपास्य रूप अधिक विदित हाता है।

इन्होंने गुणावतार विष्णु के आबिमूत रूप को पद्म से उत्पन्न बनलाया है। तिवमें जीव की सम्पूर्ण भोग्य वस्तु निहित है, उन लीलात्मक पद्म में गर्भोद्घापी होकर विष्णु प्रवेश करते हैं। मुनिगन तिवको स्ववस्तु कहते हैं। यों तो विष्णु शरीराधिवासी हैं, परन्तु मुनिगों ने उन्हें गर्भोद्घापी का विद्याम रूप तथा नातावन और विराट् रूप का अव्ययीमी भी माना है।^८ इस प्रकार विष्णु से ही विभिन्न रूपों का विद्याम होने के कारण तथा इसके साथ ही

१ क० भा० १० १७ श्लोक १।

२. क० भा० १० १५ श्लोक ५।

३ ल० भा० १० १४ श्लोक ११ को विष्णुगी।

४ क० भा० १० ११ १७ श्लोक १३-१४।

५. क० भा० १० ११ श्लोक २०।

६ ल० भा० १० १२ श्लोक १२।

७ क० भा० १० १२ श्लोक २३।

८ क० भा० १० १५ श्लोक २५।

सत्त्वतनु, भित्तुज, मित्य आदि रूपों के कारण इसका गुणात्मक रूप अधिक स्पष्ट नहीं हो सका है।^१ वीं पुराणों में सर्वगुण और पावन से सम्बद्ध होने के कारण विष्णु का गुणात्मक सम्बन्ध ज्ञात होता है। रूप गोस्वामी ने 'भागवत' १, ३, ७ और ११, ७ के ही लीलावतारों में भा: १, ७ के २४ अवतारों को विशेष रूप से ग्रहण किया है। उक्त सूची से केवल भा: १, ७, १५ के हरि और भा: २, ७, २० के मधु को नहीं किया गया है। दूसरी ओर भा: १, ३, ४ के वारह और भा: १, ३, १० की मोहिनी को इन्होंने अपने पश्चिम अवतारों की सूची में ग्रहण किया है।^२ इस युग के पूर्व ही पुराणों में वर्णित अवतारों को पुण, सम्बन्ध, कल्प प्रभृति कल्पानुरूप तथा शीघ्र, बर्ष आदि स्थानानुरूप भेदों के द्वारा भी प्रस्तुत करने का प्रयास हो चुका था। जतः रूप गोस्वामी ने प्रत्येक कल्प में अवतरित होने के कारण इन्हें कल्पावतार भी बतलाया है।^३ इस प्रकार भागवत आदि पुराणों में वर्णित १२ सम्बन्धित वतारों और चार पुण्यावतारों को मिलाकर इन्होंने १६ अवतारों का पञ्चमेत किया है।^४ पुनः इन्होंने लीलावतारों की आवेश प्रामथ, वैभव और परावत्स, इन चार रूपों में विभक्त किया है। इन्होंने पाञ्चरात्रों की अपेक्षा 'पद्मपुराण' के आचार पर, ज्ञान मति एवं सक्ति आदि से पुण्ड्रिकुमार नारद, प्रभु और परशुराम प्रभृति को आवेशावतार माना है। ये अवतार हरि कि विभिन्न कलात्मक शक्तियों से आविष्ट कहे गये हैं।^५ इन्हीं शक्तियों के कल्प या अधिक मायात्मक मोह के कारण प्रामथ और वैभव नाम भी प्रचलित हुये हैं। इन शक्तियों के काकात्मक प्रभावस्वरूप प्रामथ भी कल्पकाकीन और शीर्षकालीन दो प्रकार के होते हैं। जैसे मोहिनी इस प्रभृति कल्पकाकीन तथा सम्बन्धित, रूपम प्वात्स, वृत्त और कपिक आदि शीर्षकालीन प्रामथ के चोतक हैं।^६ कूर्म, मत्स्य, वर नारायण वराह हयग्रीव वृरिनगर्भ, बक्रयेव, वज्र और १७ सम्बन्धरावतार मिलाकर २१ अवतारों को वैभवस्व माना है। 'दीपावुत्पन्नशीघ्रवत्' समानरूप वाले पद्मगुणसम्पन्न राम-कृष्ण और नृसिंह इन तीन पूर्णावतारों की ही परावत्स्य रूप कहा गया है। जतः परावत्स्य सम्बन्धता पूर्णावतार का ही पर्याय है।^७ उपर्युक्त प्रामथ कार्य एवं काकावृत्त विभाजनों के अतिरिक्त कुछ अवतारों के निबन्धनों को भी परिचय दिये गये हैं।

१. ल. मा. ६. ३८-३९ श्लोक २९-३२।

२. ल. मा. ६. ४४-७० विशेष सूची २४ अवतार शीर्षक में इहम्।

३. ल. मा. ६. ७ श्लोक ३२ 'कल्पावतारा इत्येते कविता पंचविंशति'।

४. ल. मा. ६. ७९ श्लोक २७।

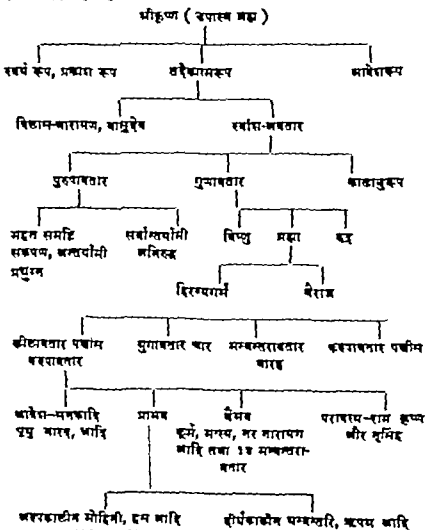
५. ल. मा. ६. ८४-८५ श्लोक २७-२८।

६. ल. मा. ६. ८९-९० श्लोक २९-३०।

७. ल. मा. ६. ९१-९२ श्लोक ३०-३१।

जैस, कुर्म-महालोक में, मत्स्य-रसातल में नर-नारायण-वन्दरिकाग्रम में, मुबराह-महलोक में वसु बराह-पाताक में, हयसीर्ष-तल्लतल में पुरितगर्म-महा के तक लोक क ऊपर, बलराम-कृष्ण-गाकुठ में संकर्षण-पाताक में, वैकुण्ठ-स्वर्ग में, अत्रित-शुच लोक में, त्रिविक्रम-तपलोक में और वामन-मुबलोक में नृसिंह-वन और विष्णुकोक, श्रीराम-जबोष्वा भीर महावैकुठ तथा श्रीकृष्ण अत्र मञ्जुपुर इतरक्य भीर गोलोक में रहते हैं ।

श्रीकृष्ण के उपपल्ल रूपों एव अवतारों के क्रम एवं विमातन-क्रम निम्न रूप में उचित होत हैं :—



इस प्रकार आलोच्यकाक के प्रायः सभी वैय्य सभ्रदायीं में पाइतराव एवं पौराणिक अवतारवाद के विभिन्न रूपों का पर्याप्त विस्तार उचित होता है। फिर भी छपर त्रिन रूपों की चर्चा हो चुकी है उबका मध्यकावीन कवियों की रचनाओं में अत्यन्त जमाव हीक पड़ता है। इस पुग क भक्त कवियों ने अपनी काव्य-रचनाओं में अवतारवाद क विविध सेदों की अवेवा मध्यकावीन उपाद्यों एवं उनके बीबीस अवतारों की कीलाओं का गाव अधिक किया है। अवतारों क उस हीका गाम में 'भागवत' के बीबीस अवतार साम्प्रदायिक रूपों की अवेवा कीलात्मक कथा-तरुओं से संबन्धित होकर अधिक कोकमिय हुए हैं। कवियों में बंध, कस्त, विमृति, प्रमृति सैदास्तिक शब्दों का एक ओर तो केवक पारिभाषिक शब्दों क समान प्रयोग हुआ है, बीर दूसरी ओर कीला, पुगक एवं रस रूपों का अधिक विलुत वर्णन है। अगके अद्याय में इन क कमिक विकास एवं मध्यकावीन रूप पर विचार हुआ है।



आठवाँ अध्याय

अवतारवाद के विविध रूप

आद्योपकाल में परम्परा से ही विकसित हाठ हुए अवतारवाद के विविध रूपों के वर्तन होते हैं। इनमें अज्ञ कला विमूर्ति आकाश पूर्ण म्यूह छीला, युगल और रस रूप उल्लेखनीय हैं। इन युग में सामान्यतः त्रिय अवतारवाद की अभिव्यक्ति हुई है वह प्राचीन एक पूर्ववर्ती साहित्य का ही किञ्चित् परिवर्तित पूर्व ललकाठीन प्रभावों से संबन्धित रूप है। प्रायः अवतारवाद के जिन निद्राम्तों और परम्परागत पारिभाषिक शब्दों का विश्लेषण सम्प्रदायों में हुआ रहा है उन्हीं के व्यावहारिक रूपों का प्रयोग ललकाठीन कवियों में दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से विक्षेप ध्यान देने की बात यह है कि अवतारवाद के सम्प्रदाय अज्ञ कला विमूर्ति, और आकाश इन चार रूपों का जिन साम्प्रदायिक निद्राम्तों में विचार किया गया है, उन्हीं सम्प्रदायों के मध्यकालीन कवियों में इनका प्रायः उल्लेख मात्र दीगता है। साथ ही लीला, युगल और रस रूपों का इनमें ध्यायित्व विस्तार हुआ है। इसका अन्वय है कि अज्ञ कला, विमूर्ति आदि शब्दों का इन कवियों द्वारा अर्हो प्रयोग हुआ है वहाँ पारिभाषिक रूपों में प्रयुक्त होने के कारण वे अपने विकसित रूप तथा एक परम्परा का समूर्त रहस्य अपने में ही अन्तर्हित रनते हैं। अज्ञ मध्यकालीन कवियों में इनकी विराय चर्चा न होने हुए भी इनके अज्ञान विकास और साम्प्रदायिक रूपों का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि यहाँ में इनका प्रयोग प्रायः अभिव्यक्त न होकर स्तब्ध के रूप में हुआ है।

इन काक के कवियों के किञ्चित् प्रसंगों में इन पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। मन्दाहान ने श्रीकृष्णार्चनार की चर्चा करते हुए कहा है कि पदुपुत्र में ईश्वर अज्ञ कला कला आर विमूर्ति के प्रायः अवतारित हुए।¹

1. त्रिहि युग के संवत् अवतार अज्ञ कला विमूर्ति करि यते।

मध्यकाळीन साहित्य में अवतारवाद

तैत्तिर्य धर्म-संहिता में 'वशिष्ठ संहिता के आचार कहा गया है कि जिस राम (उपास्य) के अवलम्ब अवतार हैं, उनमें कोई कथावतार हैं, कोई अंशावतार हैं, कोई विभूति अवतार हैं और कोई भावेश अवतार हैं।^१ इसके अनिश्चित राम-कृष्ण आदि मध्यकाळीन उपास्यों के अधिक एकोनसठ होने पर उनकी तुलना में इन रूपों का गौणत्व भी प्रकटित किया गया है। मुबद्दात में वृन्दावन की महिमा का वर्णन करते हुये कहा है कि श्रीकृष्ण के अग्र, कथा आदि अतिने प्रकार के अवतार हैं सभी वृन्दावन का सेवन करते हैं।^२ मन्त्र कि राधावचन मूल प्रकृत हैं और अन्य रूप फूलदल और दाल के सरप्र हैं। इसी आदि देव से अंश, कथा आदि विभिन्न अवतार होते हैं।^३ श्रीकल्याणिवि ने विद्वज्जाय के प्रति अपनी ऐकान्तिक निष्ठा प्रकट करते हुये अग्र, कथा, चर, अचर आदि रूपों के मन्त्रने वालों की भी चर्चा की है।^४ पुराण-मावना की श्रेष्ठता प्रभावित करते हुये श्रीमद्भागवत सुविदित ने कहा है कि जो पुराण समस्त विभूतियों जगहों की मानी गई हैं और इस प्रकार जगहों में निम्नप्र कृष्ण अन्य किसी को नहीं जानता।^५ इससे अंश, कथा आदि रूपों का प्रयोग विशेष अर्थ में या पारिभाषिक प्रतीत होता है, जिसका प्रासंगिक प्रयोग उक्त कवियों ने अपने पूर्ण उपास्यों की तुलना में की है। इस दृष्टि से इन रूपों का रूपक विवेचन किया जाता है।

अंश

अवतारवाद के पश्चात्तन विकास के मूल में सर्वप्रथम अंशावतार की प्रकृति कथित होती है। हास्यनिक विचारकों की दृष्टि से परब्रह्म का असीम

१ बरबायनावतारऽ कथा अग्र विभूतया। भावेश विष्णु प्रकृतः ब्रह्मरूप मायः
 वे० ब २ ५ २२५।

२ अंत कथा अवतार केषु सेवन है तादि।
 ऐतै वृन्दावधिक को मम बचके अवगतिः ॥
 ३ एषा ब्रह्म मूल प्रकृत, और पूज्य दल चर।
 म्नास इति ते शान ई अंत कथा अवतार ॥
 ४ हमसो भी विद्वज्जाय ही जाने।
 भोज मयो अंत कथा अवतारि भोज मयद्वर भावेतरा० कृत्यहुम जो २। इ २०५।
 ५ सुगत मावना में अंत रही निजके अंत कथा सच चने।
 विबही की विभूति मय माली की विचरत चर और च जाने ॥
 सिक माक। इ० कि० का प्र० स (५० ५१)

रूप ससीम रूप में सृष्टि होने पर पूर्ण की अपेक्षा अंत विहित होता है। क्योंकि ईश्वर स्वकिमात्र के रूप में समीप हो सकता है असीम नहीं।^१ संभवता इसी से आचार्य पाहुर ने भी गीताभाष्य में श्रीकृष्ण को अवतार ही स्वीकार किया है।^२ पूर्णावतार के विपरीत आच्छेदकों का समीचीन आरोप यह रहा है कि अवतार-रूप में निरपेक्ष ब्रह्म भी सामान्यतः देवता, साधु, मछ या अपने आराधकों का पक्ष लन वाला होने के कारण एक पक्षीय या एकैंगी हो जाता है।^३ फलतः वह निरपेक्ष ब्रह्म की अपेक्षा मछों का भाजन उपास्य और उबका अभिमत जाता है। वैदिक साहित्य में अवतारवाद की भावना ब्रह्मूट न हान के कारण मनुष्य रूप में आविर्भूत होने की प्रकृति अवरय ही दृष्टिगत नहीं हानी किन्तु फिर भी कतिपय मन्त्रों में एक ही ईश्वर के विभिन्न देवताओं या दिव्य शक्तियों के अभित्व का पता चलता है। 'एक सत् विना बहुधा बरन्ती' या 'एकोह बहुस्याम प्रजापेय' में जो एक से अनेक होने की भावना विद्यमान है, इसकी परम्परा उत्तरोत्तर उपनिषदों में भी विकसित होती हुई दिखाई पड़ती है। 'कठोपनिषद्' के अनुसार एक ही परमभामवासी परमात्मा अंतरिक्ष में बसु, परो में अतिमि पद्म में अग्नि और होता मनुष्य तथा मनुष्य से ओपर प्राणियों में आकाश, जल, पृथ्वी अत और पर्वतों में प्रकट होन वाला बृहत् अत है।^४ अग्नि वायु, सूर्य आदि के रूप में एक ही वह विविध रूपधारण करता है।^५ मध्यकालीन कवियों ने भी उपनिषद् के उक्त रूपों से संबन्धित सगुण उपास्यों पर तुर्ही के समावांतर विभिन्न अवतारमक रूपों के उपास्य हान की कल्पना की है। गोस्वामी तुलसीदास के कथनानुसार उपास्य राम से सिव मझा विष्णु आदि नामा प्रकार के अंत-रूप उपास्य होते हैं।^६ कदावांस उपास्य राम की स्तुति करत हुये कहत हैं कि तुर्ही सृष्टि रदस्य के ज्ञाता आदि देव हो। तुर्ही से मझा विष्णु, सिव सूर्य, अग्नि, अग्नि आदि अंशानतर प्रकट हुए हैं।^७

१ श्री किरण्डल पत्राभितेदन आच्छेदकीश्रीश्रीमाच्छेदविभन जो २५०८ ४-८१५।

२. श्री श्री भा० ५ १४ 'अंशेन ह्यस्य किल समभूय ।

३ भा० रा १ १५ १६ महा० २ ३६, २३ १८ गीता ४ ८, भा० ११ ४ २ ।

४ कठो २ ० २ ।

५ एकोऽपी सर्वभूतान्तरात्मा बहुरूप बहुधा च कर्तृति । कठो ०, ० १२ ।

६ समू विरिचि विष्णु भगवाना जगदि वातु मछ से जाना ।

रा० भा मा प्र० म ५ ७३ ।

७ एव तुल्य बरी तुम आदि देव, सब नामत ही संज्ञत देव ।

विरि विष्णु संतु रवि सति वनार सब चारकादि अंशानतर ॥

राजविरका पूर्वादि ५ ३४८ ।

ईश्वर क एकद्वैतीय या अंत-स्वरूप होने की भावना 'पुरुषसुक्त' के 'पादोऽस्य विबभूवामि त्रिपादस्य स्रुतं त्रिवि' में भी उचित होती है।^१ धाम्नेयों में पुनः इसका विकास क्रमशः वैश्वानर, तैजस, प्राण और अद्वैत पादों में माना गया है।^२ 'विष्णुपुराण' में पृष्टि, पाठन और संहार से संबद्ध, ब्रह्मा, मरीचि, काळ और प्राची, विष्णु, मनु, काळ सबभूतात्मा, अग्नि, अग्नि, काळ, अखिलमूल आदि को चार चार अंशों में विभक्त बतलाया गया है।^३ इस प्रकार परमात्मा क विपद में जो कुछ भी ज्ञात है वह जेब रूप इसका केवल अंश मात्र है। 'केनोपनिषद्' में ब्रह्म के इस अल्पकपालक ज्ञान का उल्लेख हुआ है।^४ इसके अतिरिक्त मनुष्य आदि सभी प्राणियों को भी ब्रह्मा, परमात्मा का अंश माना जाता रहा है। मध्यकाशीन साहित्य क निर्गुण वा सगुण सभी भावधारकों में वह प्रकृति समान रूप से गृहीत हुई है। निर्गुण आशयों में अंध रूपों का वैशेषीकरण विषय ही नहीं उचित होता किन्तु फिर भी इस वर्ग के आत्मीयों के विकास में अशा-रूपों का योग माना जा सकता है, क्योंकि सत्ता में परमात्मा और आत्मा के कावगत और भाग्यगत विविध रूपों की अनेक स्थलों पर सामिक अभिव्यक्ति हुई है। आशयकों एवं उपनिषदों में विद्यात्मा और व्यष्टि-आत्मा के अभिव्यक्त रूपों का परिचय निकटे करता है।^५ इस प्रकार उपर्युक्त तत्त्वों में अंशाभिव्यक्ति क मूल रूपों का आसास देखा जा सकता है।

किन्तु अंशावतार की सर्वाधिक व्याप्ति बहुदेववादी भवतारबाह में मिलती है जहाँ परमात्मा के साथ देवता दैत्य आदि सभी का सामूहिक भवतार्य होता है। 'रामायण' 'वाल्मीकि' एवं 'महामारत' दोनों प्राचीन महाकाव्यों में सामूहिक अंशावतार्य की यह भावना विभिन्न गुणों और रूपों से पुनः वैदिक देवों क व्यक्तित्व या अतिव्रत रूपों में प्रकटित होने क कारण उचित होती है। इन्द्र, अग्नि वायु सोम, वरुण, सूर्य आदि वैदिक देवताओं का संभवता एक मानवीकृत रूप प्रस्तुत हो चुका था। राधाकृष्णन् क मतानुसार वैदिक

१ अ. १. १. १।
 २ वि० पु. १. ११. २०-२१।
 ३ अरि मन्वेति दुर्देवेति ब्रह्मदेवापि नृमन् त्वं देव्य ब्रह्मो रूपम्।
 बरत्स्व त्वं बरत्स्व देवेभ्यश्च नु मीमांस्वमेव ते मन्वे विदितम् ॥ केनो० १. १।
 ४ अथ ह वैशः प्राद्विद्योऽनु सर्वाः पूर्वोद् जाला स क नये अन्त।
 स एव जाला स जनिष्वायन्, प्रत्यजानिस्तिष्ठति सप्तोऽमुक्तः ॥ वेत २, ११।
 ५ अथ मन्व भूतादिक परिवर्तन के साथ ते आ० १. १ मया आ० २. १,
 में भी मिलता है।

साहित्य में उपलब्ध कतिपय तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि इन देवताओं के मनुष्य के समान हाथ-पैर हैं और मनुष्य का स्वरूप मिलने के कारण उनमें भावना और काम की भावना विद्यमान है। उनका ऊपरी शरीर पर स्वप्न चर्म है। लम्बी दाढ़ी है। वे मनुष्य के समान मुँह करते हैं और दूध भी पीते हैं और खाते हैं। वे मृत्यु करते हैं और जन्म ममाते हैं। इन देवताओं के समान में अग्नि और बृहस्पति यदि पुरोहित माने गये हैं तो मरुत और इन्द्र पोज़ा।^१ हिन्दी टीकाकारों द्वारा किये गये अर्थों के अनुसार कतिपय आचार्यों में उनका आधिर्भाव या अद्याधिर्भाव का धामास मिलता है। अग्नि का सुन्दर से अक्षररूप^२ और तत्र बहू स अम्न प्रहय,^३ इन्द्र के बलवीर्य और तेज से अम्न केन^४ तथा सूर्य और मास के अम्न केने के उदाहरण मिलत हैं।^५ इन्द्र अद्याधि क शरीर से विश्वमित्रादि सस्रक्षि, आठ बाहन्निह्य और द्म भगिराओं की उत्पत्ति बतलाई गई है।^६ साथ ही मानव शरीर में अग्नि वायु और सूर्य के अंश कहे गये हैं।^७ समग्र है महाकाव्यों में इन देवों के रूपों पर सतस्रियों का विकास पीरामिक पद्धति (मिथिक स्ट्राइल) से महाकाव्यों में गृहीत हुआ हो। 'महाभारत' आदि पर्व के सतस्रियों अध्याय में अध्यात्मिक का व्यापक रूप दृष्टिगत होता है। इसका विद्युत् रूप देवत रूप उसका अकस्मात् या अचानक समावेश का मान नहीं होता। मनुष्य तथा विभिन्न पानि में अक्षररित देवता, क्षमक गणधर्म नाग राजस, सिंह व्याघ्र हरिण सप, पक्षी आदि के त्रिन अध्यात्मिकों का विस्तृत वर्णन हुआ है।^८ यह प्राचीन पीरामिक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत विकास के फलस्वरूप प्रतीत होता है। क्योंकि इनमें मुख्य भाषकों के रूप में वैदिक देवताओं का अध्यात्मिकता होता है,^९ त्रिनमें वैदिक काल के मुख्य देवता नर और इन्द्र के अक्षय अर्जुन तथा तन्हालीन उपास्य नारायण के अक्षय से कृष्ण का अध्यात्मिकता होता है।^{१०} 'महाभारत' का यही परम्परा 'शुक्वीरामरासा' एवं 'परमाकरामा' में दृष्टिगत होती है।

^१ 'आध्यात्मिक रामायण' में भी अक्षय, इन्द्र आदि देवता पुनः अपने अक्षय

१ हिन्दू आदि इतिवत् विज्ञोतोटी। राधाकृष्णम्। जी १ ५० १ ५-१०६।

२. अ. ३ २५ २।

३. अ. ८ ७ ३६।

४. अ. २० १५३ २।

५. अ. ९, ६८ ५।

६. अ. २० १०, १५।

७. अ. २० ५६ १।

८. महा० १ ६०।

९. महा० १, ६० ११०-१११।

१०. महा० १ ६५, ११२ और महा ८, ६० १५१।

आविर्भूत होते हैं।^१ विष्णु, राम आदि अपने माहृषों के रूप में चार अंशों में विभक्त होकर अवधीर्ण होते हैं।^२ जिसकी परम्परा 'अप्यारामरामायण',^३ 'आनन्दरामायण'^४ और गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस'^५ में न्यूनाधिक अंतर के साथ सूचित हुई है। इसके अतिरिक्त एक तीसरी परम्परा 'विष्णुपुराण'^६ एवं 'मायवत'^७ में मिलती है जिसमें विष्णु के साथ देवताओं का अंशावतार होते हैं।^८ इस परम्परा को सम्बन्धकारी कृष्ण-भक्ति शास्त्रा के कवियों ने ग्रहण किया है।

इस प्रकार महाकाम्य एवं पीरान्तिक बहुदेववादी अंशावतार का परम्परागत समावेश सम्बन्धकारी कवियों में उचित होता है। सामूहिक भक्तार शीर्षक में जिस पर विचार किया गया है।

अंशावतार की एक निश्च प्रकृति राज्यों के अंशावतार में भी उचित होती है। इनमें विविध देवताओं के अंश पुष्क-पुष्क आविर्भूत न होकर एक राज्य में ही सम्मिश्रित कहे गये हैं। संयुक्त देववाद की परम्परा में जो शासक देवता माने गये हैं उन्हीं के अंशों से राज्य की उत्पत्ति बतलाई गई है। मनुस्मृति के अनुसार इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, अश्व और कुबेर इतने अंश देवताओं के निष्पन्न अंश से राज्य का निर्माण ईश्वर ने किया है।^९ 'वाल्मीकिरामायण' में भी कहा गया है कि राजा राम, अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण इन पाँच देवताओं के स्वल्प को धारण शिष्ये रहते हैं।^{१०} यह अंशावतार का बहुदेववादी रूप प्रतीत होता है। क्योंकि याद में उपास्य भाव का प्राधान्य होने पर राजा को केवल विष्णु का ही अंश माना गया है।^{११}

भक्तारवाद का सम्बन्ध न्यों-न्यों विष्णु या पुरुष के एकेश्वरवादी रूप से घनिष्ठतर होता गया त्यों-त्यों उनके आविर्भूत अश्विक सृष्टि भी पुरानों में उनके अंशावतार के रूप में साम्य हुई। 'विष्णुपुराण' में अश्विक सृष्टि को परमेश का अयुतांश कहा गया है^{१२} और 'मायवत' में अश्विकों के 'अक्षयकल्प पुरर नारायण' के लक्ष्मण अंश से देवता, पृथ्वी और मनुष्य आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है।^{१३} इस प्रकार अंशावतार के बहुदेववादी रूप एकेश्वरवादी

१ वा० रा १, २० और ६, ६०, ९०-१६। २ वा० रा० २, २५, ३०-३२।

३ अप्याराम रामायण ? १ ३२-३२। ४ आनन्द रामायण सार अंश, सर्ग० ४।

५ वा० मा , वा म० ल पु० १०। ६ वि पु० ५, १ ६२।

७ मनुस्मृति ७, ४।

८ वा रा ३, ४०, २२-२३।

९ वि० पु० १, ९९ १६ और ४, ९४, २३८। १० वि० पु० २, ९, ५२।

११ वा० २, ९, ५।

रूपों का विकास महाकाव्यों पूर्व पुराणों में पहले मात्रा में लक्षित होता है; साथ ही पुराणों में परमहर्षा आदि ऋषि और उपनिषद् के रूपक रूप से अनेक ब्रह्माण्ड या सम्पूर्ण निर्मिति को अक्षतारवाद् रूप में वर्णन करने का प्रयत्न किया गया।

निष्कर्षतः अक्षतारवाद् या अक्षर-रूप की प्रकृति अक्षतारवाद् की उन प्रारम्भिक मूल भावनाओं में से है जिसके आधार पर वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में अक्षतारवाद् का क्रमशः विकास होता आया।

प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य में व्याप्त अक्षतारवाद् के अन्य रूपों की अपेक्षा यह रूप सर्वाधिक वैज्ञानिक, युक्तिमय और सुनिश्चिन्ना रहा है; क्योंकि ईश्वर की पूजा सत्त्व का अनुपपन्न या रूप विशेष में कल्पित होना तर्कशील या बुद्धिवादी विचारक के लिए उतना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता जितना कि अनीम ईश्वर के अक्षर रूप को सम्भाव्य समझा जा सकता है।

वैदिक ब्राह्मण और उपनिषद् साहित्य में जो अनेक विविध शक्तियों में पूषन्-पूषन् स्थित शक्ति पद्यता है महाकाव्य काल से लेकर मध्यकालीन कालों तक उसका ही विविध रूपों का विस्तार हुआ; पौराणिक तत्त्वों (विशेषकर एकीकृत) से समाविष्ट होकर इस काल के साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। अंतर इतना ही है कि एक में महाज्ञानी की प्रबल जिज्ञासा और कुतूहल की मात्रा विद्यमान है तथा दूसरे में एक भावुक भक्त की अपूर्ण भ्रष्टा, भक्ति और विश्वास। इसके अनिश्चित कतिपय महाकाव्यों और स्मृतियों में उपलब्ध एक ही शक्ति में विभिन्न रूपों के समावेश की कल्पना भी उपर्युक्त भावनाओं से पूषन् नहीं है; क्योंकि प्राचीन साहित्य में बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों प्रायः साथ-साथ स्पष्ट होते रहे हैं।

अतः अक्षतारवाद् पर विषय ही बहुदेववाद और एकेश्वरवाद दोनों का समान प्रभाव रहा है।

इसके अनिश्चित पुराणों में अक्षतारवाद् या अक्षर-रूपों के साथ कला और विभूति का भी इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित पद्यता है कि अक्षर, कला और विभूति का मौखिक वैश्व सम्बन्ध कठिन हो जाना है। अतः अक्षतारवाद् के वर्गीकरण में अक्षर कला और विभूति का भेद अत्यन्त विरक्त विरक्त होना है।

कला

भारतीय साहित्य में यों तो कला शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा है। किन्तु अक्षतारवादी साहित्य में यह शब्द अक्षर की विशेष

माध्यमिक बीज का सूत्रक रहा है। प्राचीन साहित्य में अग्नि की रस, सूर्य की हावरा और चन्द्रमा की सीकड़ कक्षाओं का प्रचार तो हुआ किन्तु इनका सम्बन्ध सीधा अवतारवाद से न होकर समबन्धः इवोति, उन्मत्ता या अन्य गुणों और कल्पमक परिवर्तन से रहा है। पर कला के ये ही पर्वत प्रारम्भ में ब्रह्म, पुरुष या ईश्वर के आदित्य रूपों की अतिव्यक्ति के किन्तु भी प्रयुक्त होते रहे हैं। काकान्तर में अवतारवादी उपास्य पुरुष या अवतारी विष्णु के विविध अवतार रूपों के किये की इनका प्रयोग किया गया।

‘भागवत १, ३ में विभिन्न अवतारों का वर्णन करने के उपरान्त ऋषि, मनु, वैश्रवती, प्रजापति, मनुपुत्र आदि सभी महान् वृष सत्त्वियाक व्यक्तियों को हरि की कक्षाएँ कहा गया है।’ पुनः अगले श्लोक में कृष्ण न अतिरिक्त अन्य अवतारों का जंस या कलावतार माना गया है।^१ ‘भागवत’ के पञ्चमहा स्कन्ध में ब्रह्म, ब्रह्माक्षर, समस्तुमार, श्यमन आदि अंसावतार-रूप में प्रसिद्ध प्राचीन पण्डितों को कला से सम्बद्ध करते हुए कहा गया है कि अगवान् विष्णु ने अपने स्वरूप में एक रस स्थित रहते हुए भी, समस्त जगत् के कल्याण के किये बहुत से कलावतार ग्रहण किये हैं।^२ इससे कलावतार की रूपरेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है किन्तु ‘भागवत’ १०, १, २३ में शैबनाग को कलावतार और ११, २, ८ में अंसावतार बतकाया गया है।^३ इससे विशेषकर कलावतार जंस का ही एक विशिष्ट रूप विदित होता है। क्योंकि ‘विष्णु पुराण’ में ब्रह्म और ऋषिक को केवल अंसावतार कहे गये हैं वे ही भागवत में विष्णु की विभिन्न कक्षाओं के अवतार माने गये हैं। ‘भागवत’ के अनुमार श्यु सुवच-पाकनी कला^४ और ऋषिक ज्ञानकलावतार हैं।^५ इसके अतिरिक्त ‘भागवत’ के विभिन्न स्कन्धों पर पौराणिक राजा राव, और नामिपुत्र ज्यम भी कलावतार ही माने गये हैं।^६ इससे स्पष्ट है कि भागवतकाल में अंसावतारों के साथ कला-रूपों या कला-व्यक्तियों का व्यवहार होने लगा था।

जो वैदिक साहित्य में सूत्र रूप से कला का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ या अंसावतार से सम्बद्ध होने की अपेक्षा स्वतन्त्र विकसित ही अधिक स्पष्ट है।

१ भा० १ ३ २० ‘कला सर्वे हरिरेव । २. ‘वैश्रवतीका पुंत्त’ भा० १ ३ २८ ।

२ भा० ११, ४ २० । ४ श्यु वि पु० १ १३ ४५ ऋषिक वि० पु० ४ ४ १२ ।

५ ‘श्यु विष्णोर्भवतः कला सुवच पाकनी’ भा० ४ १५, ३ ।

६ ‘वासुदेवाक्रीर्णदे । भा० ५, १४, १९ । ७ भा० ५, १५, ३ और भा० ५, ३, १८ ।

'सतपथ ब्राह्मण' में प्रायः कहा और पौंड्रकका का प्रयोग हुआ है।^१ सामान्यतः वहाँ प्रजापति और पुरुर को पौंड्रकका से सम्बन्धित किया गया है,^२ जिसकी परम्परा उपनिषदों में उद्धृत होती है। 'बृहदारण्यक' में पांडुराकका वाले प्रजापति और 'दाम्बोय' में पौंड्रक कका वाले पुरुष का उल्लेख हुआ है।^३ 'मरुतोपनिषद्' में कहा गया है कि इस शरीर के भीतर ही वह पुरुष है जिसमें पौंड्रक ककारों प्रकट होती हैं।^४ रथ-चक्र में निहित श्लोक अरों की मूर्ति पुरुष में पौंड्रक ककाओं का अस्तित्व माना गया है।^५ उपर्युक्त उद्धरणों में कका या पांडुराकका के अस्तित्व मात्र का ही नहीं अपितु पुरुष से उसका अस्मिन् सम्बन्ध का भी पता चलता है। काकाम्तर में 'भागवत' के एक श्लोक में कहा गया है कि सृष्टि निर्माण की इच्छा होने पर भगवान् ने पुरुर रूप प्रथम विधात जिसमें महत्तम अर्थात् ब्रह्म इन्द्रियों पाँच मूल और एक मन के रूप में श्लोक ककारों विद्यमान थीं।^६ यही पुरुष अक्षरों का अक्षयक्षीप तथा आदि अवतार के रूप में 'भागवत' में सूचित हुआ।^७ पुरुष से सम्बन्ध श्लोक ककाओं से मध्यकाहीन कवियों ने भी अपने कृष्ण राम आदि उपास्यों को अभिहित किया है।^८ अतएव आद्योप्य काष्ठ में वैदिक पौंड्रक कका शुक्र पुरुष 'भागवत' द्वारा अवतारवादी पुरुष के रूप में सूचित होकर जिस पौंड्रक ककाओं से सम्बन्धित कहा गया है वह बड़ी सार्थकवादी तत्व हैं जिससे सृष्टि-आदिर्भाव तथा वर्ण ईश्वर की वस्तुशक्ति का सम्बन्ध है। मध्यकाहीन भगवद्वापों में पुरुष के इन पौंड्रक तत्वों के रक्षण में पौंड्रक ककामक शक्तियों का समावेश किया गया। 'लघुभागवतामृत' के अनुसार

१ छ मा० १० ४ १ ३। छ० मा० १ ४ १ २०। छ मा० १० ४ १, १८। छ० मा० ११ ८ ३ १३।

२ छ मा १४ ४ ३ २२। छ० मा० ११ १ ७ ३३।

३ छ० व० १, ५, १४। छ० उ० ३ ७ १।

४ अरण्य १० ३ १। ५ अरण्य ४ ३ ३।

६ 'अग्ने दीरवं क्वं मावाग्मइवादिभिः सम्भूतं पौंड्रकककाशी श्लोकसिद्धयुक्ता'।

मा १ ३ १।

७. 'पुनःप्रजापतारानां निधानं दीक्षमस्यवन्'। मा १ ३ ५ और मा १ ३ ४१ 'वापीवपार' पुरुष परस्व'।

८ शीत कर्मण परमह वैशिवण है, रामानन्द द्विपौर।

सौरह कथा संतुलन श्रेणी मत्र अक्षरीश्वर पौरह अरण्य १० ३८५ पर।

सौरह कका जुग वारी प्रथमे सा ३ शीव मत्र संह है।

आदि मंत्र अथ शोकी देवी श्री राम श्री वृत्त मत्र है।

रा० दि० १० परिचर, रामचक्र।

मी, मू, कीर्ति, इक्ष्म, छीका, कामि और विद्या से सात और विमल, उत्कलिगी ज्ञाना, क्रिया वागा, प्रहरी, सरवा, ईशाना और अनुग्रहा से नौ मिथकर सोकर शक्तिपों मानी गई हैं। ये शक्तिपों उपनिषदों में उपलब्ध कतिपय सत्ताओं या पौराणिक गुणों के ही अतिवृत्त रूप विदित होती हैं।^१ क्योंकि 'सात्वततन्त्र' के अनुसार सभी अवतारों के समान गुणों से युक्त रहने पर ही विशिष्ट कार्य में विशिष्ट गुण की प्रधानता मानी गई है। ये गुण ईशरीय शक्ति-संबन्धित सत्ताओं के ही बोधक हैं। जैसे कुमार नारद व्यास आदि ज्ञानास प्रधान विष्णु के कलावतार हैं और गण, पूष भरत आदि राजा शक्ति युक्त कलावतार माने गये हैं।^२ 'भागवत' अष्टम स्कन्ध में मां १, १ २० और ११, ७, १० में गृहीत कलावतारों के प्रति कहा गया है कि मनु मनुपुत्र धर्मापुत्रान् प्रजापाकन और धर्मपाकन करते हैं और भगवान् पुनः-पुनः में सबकादि सियों का रूप धारण कर ज्ञान का, वाञ्छवश्य आदि शक्तियों का रूप धारण कर कर्म का और इत्यादि आदि रूप में योग का उपदेश देते हैं। वे मरीचि और प्रजापतियों के रूप में शक्ति-विस्तार करते हैं, सत्ता-रूप से सुरेहों का वच और काक रूप से संहार करते हैं।^३ अतएव कलावतार के विकास में तथा कलावतारों के निर्माण में वि० पु० १ ५, ७४ के पेशर्ष धर्म, वरा, श्री ज्ञान धैरान्ध और वि० पु० १, ५, ७९ के शक्ति, वर वीर्य, तेज तथा भा १, १०, २५ के पेशर्ष आदि के अतिरिक्त सत्य, अमृत, इवा आदि के न्यूनाधिक योग का अनुमान किया जा सकता है।^४ क्योंकि कलावतारों के विशिष्ट कार्यों में कलावतार शक्तियों की अपेक्षा उपर्युक्त गुणों का अधिक समावेश हुआ है। 'सात्वत तन्त्र' के अनुसार इन अवतारों में कार्य की प्रधानता होने का कारण भग भेद या पाद्गुण्य भेद वतकाया गया है।

१ ऐ० उ १, २ में भी एक में विदित संज्ञान अज्ञान विद्या-अज्ञान, मेवा इति इति मति नवीना, कृति रक्षि, संकल्प, मनु मनु, कव शसना आदि वरके नाम और सत्ता के जगमय लोकर लक्ष्यों की चर्चा हुई है तथा ऐ० १ १० में शरीर के अन्तर्गत विभिन्न इंद्र प्रदण शक्तियों से सम्बन्ध का ज्ञान कराने वाली २५ शक्तियों के रूप होने का बहोत हुआ है।

२ सात्वत तंत्र पु० २०, १, २१ २३।

३ सुवीरिनी पु० १५४ मां १ १०, २४-२५ की व्याख्या में जीवतन में विभिन्न कार्यों से इनका सर्वथ स्थापित किया है।

४ पशामना से शक्ति सम्पूर्णक कलावित्त।

कार्यापुत्रा शिष्टेय अपभेद मरुतनाय व

सात्वत तंत्र पु० २, १ २४।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवतारवादी साहित्य में कलावतार का उद्भाव वैदिक पुरुष के लिए प्रचलित षोडश रूप को लेकर हुआ; क्योंकि भागवत युग तक विष्णु पुरुष के पर्याय रूप में प्रचलित हा सुक थे, जिसके कलस्वरूप षोडश कलापुत्र पुरुष और विष्णु में कोई अंतर नहीं रह गया था। इस युग तक वः मर्गों या गुणों से संयुक्त विष्णु के ऐसे अवतारों का भी विकास हुआ जो इन छः गुणों में से कवल एक या हा ही गुणों से समाविष्ट थे। राम, कृष्ण आदि पूर्वकाहीन अवतारों के जब पूर्णावतार रूप में प्रचलित होने के कारण, इस काल में अनेक नये वीरायिक राजाओं और महापुरुषों को अवतार के रूप में प्रकृष्ट किया गया, जिनकी संख्या परवर्ती 'भागवत' तथा 'पद्मपुराण' में उच्चोत्तर बढ़ती ही गई। इन पुराणों में अनेक अवतारों में से कतिपय अवतारों का उनके विशिष्ट गुण, कार्य और रूपादि के आधार पर अंत के ही एक विशेष पर्याय कलावतार के रूप में प्रचलित किया गया।

मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में इन कला-रूपों की निरन्तर वृद्धि होती ही गई, जिसका सर्वप्रथम विशेषकर चैतन्य सम्प्रदाय में विभिन्न कलात्मक शक्तियों से स्थापित हुआ। चैतन्य सम्प्रदाय में इन कलात्मक शक्तियों के प्रचार का कारण स्पष्टतः बगाल के अत्यन्त लोकप्रिय शाक्त-मत के प्रभावजन माना जा सकता है। इस प्रकार अवतारवादी कला-रूप का प्रारम्भ तो अवतार के पर्याय के रूप में हुआ किन्तु मध्यकालीन युग तक इसका रूप ही पृथक् नहीं हुआ, अर्थात् इस वर्ग में उन कलात्मक शक्तियों का भी आविर्भाव हुआ, जिनके समावेश से कला रूप का अपना पृथक् महत्त्व हा गया।

विभूति

ईश्वर के साकार रूप और अवतारवादी रूप में महान अन्तर सर्वान्विष्यक्ति और विसिद्धविष्यक्ति की दृष्टि से किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि सर्वेश्वरवादी माय्यताओं के अनुसार परमेश्वर सभी उच्च-चैतन्य में समाग रूप और मात्रा में विद्यमान है। फिर भी एक परमात्मा का विश्वास रखने वाले भावुक मनुष्य के लिए उसमें ऐसे विशिष्ट पदार्थ या प्राणी भी हैं जो उसके मन को विशेष रूप से प्रभावित करते रहे हैं। अज्ञानता की दृष्टि से जो ईश्वर सबप्रप्राप्त है भक्त के लिए वह उन पेश्वरवादिनी मत्ताओं में विद्यमान रूप से विद्यमान है जो पदार्थ या प्राणी अपनी विशिष्ट शक्ति या अपूर्व चमत्ता का प्रभाव उसके मन पर रख पाएंगे हैं। अतः ईश्वर के विशिष्ट अतिरिक्त कारण ही कालान्तर में विभूतिवाद का अवतारवाद में समाहित किया गया।

क्योंकि विभूतिवाद में सृष्टि के उन प्रतिनिधियों को ग्रहण किया गया जो अपनी जाति या वर्ग के सर्वोत्तम या सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि थे। अवतारवाद की सर्वत्र ही यह सामान्य प्रवृत्ति रही है कि वह परममया के आविर्भाव के निमित्त सर्वोत्तम तथा आत्यन्तिक विख्यात मन्वीकों को ही ग्रहण करता रहा है। अवतारवाद में सर्वोत्तम मन्वीकों के पुनः आने का मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि वह ज्ञान, तर्क या सूक्ष्म पद्धतियों का आभय न लेकर समाज में व्याप्त व्यावहारिक और सामान्य तब की अज्ञा पूर्व भक्ति से संबंधित बोधगम्य उपादानों का आश्रय लेता है। विशेषकर वे प्रतीक को अपने स्पष्टतम रूप, गुण, देवत्व, श्रेष्ठ, किष्वा, व्यवहार, चिन्तन, त्याग, तपस्वा, साहस और अमृत कार्यों से मनुष्योत्तर वा दिव्य वरमाख्या के देवत्व या उसकी दिव्य शक्तियों के उद्घोषक, आपक या प्रकाशक रहे हों। इस भावना के अंतराल में अवश्य ही वह साहित्यिक मन्वीपी प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिसने प्रत्येक सर्वोत्कृष्ट वस्तु में उसके देवत्व को अङ्कने का प्रयास किया है।

पुराणों में एक शक्तियों एवं गुणों का संबंध ब्रह्म कलाकारों से ही नहीं अपितु कुछ ऐसे कर्णों से भी है जो सामान्यतः विभूति के रूप में प्रकटित हैं। मध्ययुग में अंध भीर कला के साथ विभूति को भी अवतारों का एक विशिष्ट भेद माना गया। यह संभवतः 'गीता' के शब्दों अर्थात् के ही विभूतिवाद का प्रकटित रूप था। 'गीता' के अनुसार अनन्त विभूतियों में केवल शुभ विभूतियों का ही वर्जन है।^१ शंकराचार्य के 'गीता' १० ७ में 'एतां विभूति योगं च' की व्याख्या करते हुये उसे योगेश्वर्य-अद्विष्ट सर्वश्रुता आदि सामर्थ्य माना है।^२ रामानुज के विभूति को देवत्व का पर्याय बतलाया है।^३ आनन्दगिरि ने विभूति योग को विविध मूर्तों में आविर्भूत बैभव माना है।^४ इस प्रकार विभूतियों के विकास में देवत्व आदि गुणों का सहयोग विदित होता है। विभूतिवाद की यह प्रवृत्ति 'गीता' से प्राचीन नहीं मिलती परन्तु 'पुराण सूक्त' के ग्यारहवें और बारहवें-तेरहवें मन्त्रों में कतिपय कार्यों के निमित्त विभिन्न शक्तियों से उत्पन्न अनुबर्ण, अग्नि, धूर्व, वायु अग्नि, आकाश तथा

१ गीता १० २९।

२ योगेश्वर्यसामर्थ्य सर्वश्रुतं योगं चम्पते। गीता १० ७ श्लो० मा०।

३ 'विभूति देवत्वम्, एतां सर्वस्वमदाहोतपिभूतिरूपा विभूति' मम हेतुपाक श्रीकृष्णस्वामिगुरुवर्यम्। पी १ ७ रा० मा०।

४ विविधमूर्तिरानावर्णं देवत्वं सर्वात्मा-रत्नम्।

अथर्ववेदों में विभूतिवाद के बीज का अनुमान किया जा सकता है।^१ क्योंकि गीता में भी सर्वात्मरूप में कर्त्तों की ग्यति बतलाने के बाद विष्णु सृष्ट मरीचि, अश्वत्थामा, सामवेद इन्द्र, मनु, शक्र, कुबेर, पावक, सुमेध वृद्धरपति, रुद्र, सागर सृष्ट पृथ्वी, अप्सर, हिमालय, पीपल, नारद, चित्ररथ, कपिल, उषीःभवा, पेरारथ, राजा, बल, कामधनु, कामदेव वामुकी, जनमन्तनाग, बहग अर्षमा, धम, प्रह्लाद, काष्ठ, मृगेश्वर, गरुड, पबल, राम, मगर, गंग्य वासुदेव अर्जुन व्यास, उशानाकवि आदि अनेक वर्गों के प्रधानों को विभूति-रूप में समाहित किया गया है। 'विष्णुपुराण' में इसका वैदिक दृष्टिकोण स्पष्ट करत हुये सासन एवं लोक पाछन में प्रकृत सभी भूतपितृयों को विष्णु की विभूति माना गया है। इस पुराण के अनुसार देवता, देव, रामच, मांभमोमी, परु, पची, मनुष्य सर्प, नाग, वृक्ष पर्वत, ग्रह आदि विविध वर्ग के भूत, भविष्य एवं वर्तमानकालीन जितने अधिपति एवं भूतधर हैं, सभी विष्णु के अद्य बतलाय गए हैं।^२ 'भागवत' में ११ १६ ६ के अनुसार 'गीता' की ही विभूतियों का पुनः विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ इन विभूतियों के, अथर्वारों के सरस उपास्य रूप में पृथित होने का भी पता चलता है। क्योंकि भा० ११ १६, ६ में उग्री रूपों और विभूतियों के विषय में उद्धव प्रश्न करते हैं तिनकी कृपि-महर्षि उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं।^३ इसीमे गीतावत एवं अथर्व अनेक विभूतियों के समाहित होने के साथ-साथ संभवतः तत्कालीन युग के अर्थां या विग्रह रूप में उपास्य भाव से प्रचलित वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न अनिन्द्य, नारायण, ह्यधीश, बराह मुसिह आदि भी अर्थां मूर्तियों को भी विभूतियों में समाहित किया गया है।^४ अथर्वारों के समाज इन विभूतियों की भी गणना नहीं हो सकती।^५

विभूतिवाद के पौराणिक और मध्यकालीन रूप को देखते हुए ऐसा लगता है, मानो इसकी रूपरेखा वैष्णव साहित्य में परवर्ती काल में निर्मित हुई हो। किन्तु प्राचीन साहित्य में उपलब्ध अनेक समीचीन तथ्यों को अपने दृष्टि-पथ में रखने पर विभूतिवाद की कल्पना भी परम्परा विरहित नहीं जान पड़ती है। प्रारम्भ में यह किया जा चुका है कि ईश्वर के सर्वाभिप्यन्त रूपों में कुछ विग्रह विभूति स्वरूप और तन्निम्न रूपों के विशेषकरण के आधार पर ही विभूतिवाद की कल्पना का विकास हुआ। इन कारणों के उद्भव के योग्य

१ अ० १, १०।

२ वि० पु० २, २२ २६ २२।

३ देव देवु व मादेवु मन्वा १११ परदर्शक।

उशानाक प्रकल्पे संविद्धि म् बरहमैत

भा० ११, १६ ६।

४ भा० ११, १६, ६२।

५ भा० ११ १६ ६१।

मूक तब 'पुरुषसूक्त' के मन्त्रों में ही प्रतिमामित होबे लगते हैं, जिनका क्रमशः विकसित और अभिविभक्त रूप 'बृहदेवता', 'बृहदारण्यक', 'दान्दोप' तथा अन्य उपनिषदों में दृष्टिगत होता है।

इस दृष्टि से विभूतिवाद में बहुदेवतावाद, एकधरवाद और सर्वेश्वरवाद का समाहित रूप मिलता है। क्योंकि जिस मन्त्र विभूतिवाद की जगता विभूतियों में एक ही ईश्वरीय देवत्व की सच्चा प्रतिबिम्बित होती है उसका मूल रूप वैदिक बहुदेवतावाद से अधिक मित्र नहीं है। धारक ने 'निरुक्त' ७।३।८, ९ में वैदिक साहित्य में प्रतिपादित सभी देवताओं को एक ही देवता की मिश्र-मिश्र शक्तियों के रूप में माना है। जिसकी पुष्टि 'बृहदेवता' ७०. १ को० ६१ ६५ से भी होती है। 'बृहदेवता' और 'निरुक्त' की ये साम्यताएँ धररय ही शक्त या अन्य शक्तियों की उन शक्तियों पर आधारित हैं जिनमें (को० १, १९३, ३९ साम पूर्व० ९, १) प्रायः श्लोक बहुत अग्नि, आदित्य, विष्णु सूर्य मह्य, सृष्टिप्रति प्रभृति देवताओं में उमी की जगता विष्णु शक्तियों की अभिव्यक्ति मानी गई है।

आध्यात्मर में इन प्रकृतियों का विशेषीकरण विभिन्न रूपों में परिष्कृत होता है। आग्नेयीय 'पुरुषसूक्त' क ११वें १२वें और १३वें मन्त्रों में उसकी अनेक प्रकार से अभिव्यक्त सामर्थ्य की अर्थात् बरत हुय मन (मनन या ज्ञान) से अग्नि, अन्न (तेज) से सूर्य श्रोत्र (अवकाश) से आकाश प्राण से वायु और सुप्त से अग्नि इत्यादि की उत्पत्ति बतलाई गई है। आगे अक्षर 'दान्दोपनिषद्' (७।११, १३) में मन्त्रक बार पदाओं में से किसी एक बल्य विशेष में पुरुष को देवता की विशिष्ट प्रकृति उचित होती है। यहाँ पृथ्वी, अग्नि, अन्न और आदित्य में से कबल आदित्य में अन्न दिया नक्ष और अग्नि में से कबल अग्नि में प्राण, आकाश शुक्रोक्त और विद्युत में से कबल विद्युत में पुरुष क विशेषीकरण की मनोभूति स्पष्ट है। संभवतः इसी का स्पृहबद्ध, परिवर्द्धित और विरमृत रूप बि० पु० १२।१३-१३ में भी दृष्टिगत होता है 'विष्णुपुराण' क उम श्लोक पर उम स्पृहबद्ध रूप-विरतार को विभूति-विरतार की ही संज्ञा महान की गई है। इसमें विभूतिवाद क परम्परायद् विकास का अनुमान किया जा सकता है।

इसक अतिरिक्त 'बृहदारण्यकोपनिषद्' क मार्ग-भ्रजतसु सभाद् (१ १, १-१३) में मार्ग क्रमशः एक ही मन्त्र की उपासना आदित्य, अग्नि, विद्युत, आकाश वायु अग्नि, अन्न, अन्न, दिसामपपुरुष, क्षापामपपुरुष और

आत्मपुरुष में विहित मानते हैं। वे अपनी इस विधिस्थापना का कारण उपस्थित करते हुए प्रायः अपने प्रतिपाद्य देवों की श्रेष्ठता और महानता का निरूपण करते हैं। उनके मतानुसार आदित्य सबका अतिरक्षण करके रियत है, समस्त मृतों का मस्तक भीर राजा है, इसकिष् उपस्थ है। अग्नि, महान, शुष्क बलघारी सोम राजा होने के कारण उपस्थ है। विद्युत् तन के कारण, आकाश पूर्ण और 'अथर्वति' होने के कारण, वायु अग्नि, वैकुण्ठ और अदराजिता सेवा के कारण, अग्नि 'विणासहि (दूसरों का महान करने वाला) होने के कारण महा रूप से उपस्थ है। इसी प्रकार बाल, सम्य, दिशा, क्षमा और आत्मा के वैशिष्ट्य का भी उल्लेख हुआ है। इन उक्तियों में विमूर्तिवाद के परिचायक गुणों और जातिविक विशेषताओं का निर्दर्शन किया गया है। जिसके फलस्वरूप उक्त पदार्थ वर्णविशेष में महान और श्रेष्ठ प्रमायित हुए हैं। यह श्रेष्ठता की मनोवृत्ति पुनः 'बृहदारण्यकोपनिषद् १, ४ ११-१४ में और अथर्व क्रमवद् तथा स्पष्टरूप में उद्दिष्ट होती है। ४० उ० १, ४, ११ में कहा गया है कि भारगम में यह महा एक ही था। अथर्व होने के कारण यह विमूर्तिपुत्र कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ। उसने कुछ भोग रूपों की रचना की जिन्हें सम्भवतः प्राप्त भाव से कुछ होने के कारण अत्रिप कहा गया। अर्थात् देवताओं में ओ अग्नि, वदन, सोम, द्य, मेघ यम सूर्य और ईशानादि अत्रिप देव हैं, उन्हें उत्पन्न किया। इसी से राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण नीच बैठकर अत्रिप की उपासना करता है।

यहाँ विमूर्तिवाद और अक्षतारवाद् की उन मारमिक मायनाओं का सकल मिलता है, जिसका सम्बन्ध पाकर परवर्ती विमूर्तियों और विशेषकर कुछ अत्रिप अक्षतारों का भाषणिक प्रसार हुआ। इस उद्देश्य से तीन तन्त्र यहाँ विचारणीय प्रतीत होते हैं। सर्वप्रथम विमूर्तिवाद की दृष्टि से यहाँ उन अत्रिप या प्राप्त देवताओं का उल्लेख हुआ है जो आगे चल कर अपने वर्णविशेष के प्रतिनिधि मात्र न होकर उनके सर्वोत्तम रूप में उपस्थित होते हैं। जाति या वर्ण विचार में आदर्श या श्रेष्ठतम रूप की अभिव्यक्ति ही तो विमूर्तिवाद का मूल मन्त्र है, जिसकी वरिधि में उसका समुचित विस्तार होता रहा।

दूसरा यह कि इस मंत्र में अत्रिप संज्ञा के प्रयोग ने परवर्ती काल में अक्षर ही एक ऐसी आचार-भूमि का काय किया होगा, जिसने प्रेरित होकर राम, कृष्ण प्रकृति अत्रिप राजाओं को ईश्वर की विमूर्ति ही नहीं अपितु उन्हें अक्षतार के रूप में उदाचित्त किया गया। इतना ही नहीं उक्त मंत्र में अत्रिप उपासक है और ब्राह्मण उपासक। ऐसा कथना है कि राम-कृष्ण जाति

मूळ तत्व 'पुरुषसूक्त' के मन्त्रों में ही प्रतिमानित होने लगते हैं, जिनका क्रमशः विकसित और अविच्छिन्न रूप 'बृहदेवता', 'बृहदारण्यक', 'शान्दोग्य तथा अन्य उपनिषदों में दृष्टिगत होता है।

इस दृष्टि से विभूतिवाद में बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद का समाहित रूप मिलता है। क्योंकि जिस प्रकार विभूतिवाद की भाषा विभूतियों में एक ही ईश्वरीय देवत्व की सत्ता प्रतिबिम्बित होती है उसका मूळ रूप वैदिक बहुदेवतावाद से अपिष्ट भिन्न नहीं है। यारुद्र में 'भिरुक' ऋ० १८, ९ में वैदिक साहित्य में प्रतिपादित सभी देवताओं को एक ही देवता की भिन्न-भिन्न सन्तियों का रूप में माना है। जिसकी पुष्टि 'बृहदेवता' ऋ० १, स्तो० ११ १५ से भी होती है। 'बृहदेवता' और 'भिरुक' को वे मान्यतायें अथवा ही ऋक् या अन्य साहित्यों की उन शक्तियों पर आधारित हैं जिनमें (ऋ० १, ११२ ४६ साम पूर्व० ९, १) प्राण सोम वरुण, अग्नि, आदित्य विष्णु सूर्य, मरुत, बृहस्पति प्रभृति देवताओं में जमी की भाषा विषय शक्तियों की अभिव्यक्ति मानी गई है।

अतएव में इन प्रकृतियों का विशेषीकरण विभिन्न रूपों में परिष्कृत होता है। ऋग्वेदीय 'पुरुषसूक्त' क ११वें १२वें और १३वें मन्त्रों में उसकी अनेक प्रकार से अभिव्यक्त सामर्थ्य की शक्तियाँ करते हुए मन (मनन या ज्ञान) से अग्नि, वायु (तेज) से सूर्य, श्रोत्र (अवकाश) से आकाश प्राण से वायु और मूत्र से अग्नि इत्यादि की उत्पत्ति बतलाई गई है। आगे चलकर 'शान्दोग्योपनिषद्' (४।११, १३) में प्रत्येक चार पदार्थों में से किसी एक वस्तु-विशेष में पुरुष को इन्द्र के विधि प्रकृति कथित होती है। यहाँ पृथ्वी, अग्नि अथवा और आदित्य में से कबल आदित्य में अन्न, दिशा, लक्ष्य और अग्नि में से कबल अग्नि में प्राण आकाश चुड़ोक और विद्युत् में से कबल विद्युत् में पुरुष का विशेषीकरण की मनोवृत्ति स्पष्ट है। सम्भवतः इसी का स्पृहवत्, परिष्कृत और विस्तृत रूप वि० पु० २१।२३-२३ में भी दृष्टिगत होता है 'विष्णुपुराण' क उम स्थल पर उम स्पृहवत् रूप विस्तार को विभूति-विस्तार की ही संज्ञा प्रदान की गई है। इससे विभूतिवाद का परम्परागत विकास का अनुमान किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त 'बृहदारण्यकोपनिषद्' क गर्ग-अज्ञानशुभ्र सभा (१, १, १ १३) में गर्ग अज्ञानः एक ही मन्त्र की उपासना आदित्य अग्नि, विद्युत्, आकाश वायु अग्नि अन्न अथवा दिशामयपुरुष, श्याममयपुरुष और

आत्मपुरुष में विहित मानत हैं। व अरभी इस विधिष्टोपासना का कारण उपस्थित करते हुए प्रायः अपने प्रतिपाद्य देवों की श्रेष्ठता और महानता का विस्मय करते हैं। उनके मतानुसार आदिपद सबका अतिश्रम्य करके स्थित है, समस्त मूर्तों का मस्तक और राजा है, इन्द्रविष्णु उपास्य है। अश्वत्थामा, महाश, शुद्ध ब्रह्मचारी साम राजा होने क कारण उपास्य है। विद्युत तन क कारण, आकाश पूर्व और 'अपवर्ति' ज्ञान क कारण, वायु इन्द्र, वैकुण्ठ और अपराजिता सेना क कारण, अग्नि 'विषामहि' (दूसरों को सहन करने वाला) होने क कारण प्रथम रूप से उपास्य है। इसी प्रकार जल, वायु, विद्या, ध्याया और आत्मा क वैशिष्ट्य का भी उल्लेख हुआ है। इन उक्तियों में विमूर्तिवाद क परिचायक गुणों और चारित्रिक विशेषताओं का निरूपण किया गया है। जिसका फलस्वरूप उक्त पदार्थ वर्गविशेष में महान और श्रेष्ठ प्रमाणित हुए हैं। यह श्रेष्ठता की मनावृत्ति पुनः 'सृष्टारण्यकोपनिषद् १, ४ ११-१२ में और अधिक क्रमबद्ध तथा स्पष्टरूप में उद्दिष्ट होती है। ४० उ० १, ४, ११ में कहा गया है कि आरम्भ में यह प्रथम एक ही था। अकाले होने के कारण यह विमूर्तिपुत्र कर्म करण में मग्न नहीं हुआ। उसने कुछ धेय रूपों की रचना की जिन्हें सम्भवतः प्राप्तक मास से युक्त होने क कारण चरित्र्य कहा गया। अर्थात् देवताओं में जो इन्द्र बलय, सोम, रुद्र, मेघ, वन, मृत्यु और ईशानादि चरित्र्य देव हैं, उन्हें उत्पन्न किया। इसी से राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण कीचे बैठकर चरित्र्य की उपासना करता है।

यहाँ विमूर्तिवाद और अवनारवाद की उन प्रारम्भिक साधनाओं का सङ्गत मिलना है, जिनका समूह पाकर पारवर्ती विमूर्तियों और विनेपदर कुट्ट चरित्र्य भवनाओं का व्यापकिक प्रस्तार हुआ। इस उद्देश्य से तीन तथ्य यहाँ विचारणीय प्रतीत होते हैं। सर्वप्रथम विमूर्तिवाद की दृष्टि से यहाँ उन चरित्र्य वा सामक देवताओं का उल्लेख हुआ है जो आगे चल कर अपने पर्यावस्थाप क प्रतिनिधि मात्र ब होकर उनक सर्वोत्तम रूप में उपस्थित होते हैं। ज्ञान वा वर्ग विचार में आदर्श वा श्रेष्ठतम रूप की अभिव्यक्ति ही जो विमूर्तिवाद का मूल मन्त्र है, जिसकी परिधि में उसका समुचित विस्तार होता रहा।

दूसरा यह कि इस मात्र में चरित्र्य संज्ञा क प्रयोग के पारवर्ती काल में अथर्व ही एक एकी आचान-भूमि का कार्य किया होगा, जिससे प्रेरित होकर राम हृण्य मयूनि चरित्र्य राजाओं को ईश्वर की विमूर्ति ही नहीं बलिन उन्हीं अवनार क रूप में उद्घाषित किया गया। इतना ही नहीं उक्त मात्र में चरित्र्य उपास्य है और ब्राह्मण उपासक। देसा लयता है कि राम-हृण्य आदि

चरित्र महापुरुषों को लेकर जिस अवतारवादी उपासना का विकास महाकाव्य युग से लेकर आठोष्वाकार तक दृष्टिगत होता है। इस धारणा के उद्भव में 'चरित्र उपास्य-भाव' का मीडिक योग रहा होगा। अतः अवतारवाद की उपासना पद्यति के प्रसार में विमूर्तिवाद की प्रारम्भिक विचारनाओं की बढोढना नहीं की जा सकती। निम्न ही प्रारम्भिक विमूर्तियों में गूढ़ीत राजाओं को ही अवतारवादी और उपास्यवादी रूप प्रदान किया गया।

इस मंत्र में विष्णु का उल्लेख न होने के कारण यह भी सम्भव है कि पञ्च-स्वरूप विष्णु को काकाभार में ब्रह्म से स्वकथित कर श्रेष्ठतम उपास्य का रूप प्रदान किया गया हो और इस सगति की योजना चरित्र देवताओं और चरित्र राजाओं के साथ की गई हो। पर स्पष्ट प्रमाणों का अभाव होने के कारण इसे निम्नपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस धारणा में विमूर्तिवाद और अवतारवाद के मूक में विहित चरित्र प्रभाव की उपासना भी व्यापसंगत नहीं प्रतीत होती। अतः प्रारम्भिक संकेतों के रूप में इनका मूल्य सर्वैव सुरचित है।

यों तो 'गीता', 'विष्णुपुराण और 'श्रीमद्भागवतपुराण' में विमूर्तिवाद का बिसृत परिष्कार दिया गया है किन्तु 'महाभारत अनुशासन पर्व' १४।३१०-३२४ तथा 'अजुगीता' में भी विमूर्तिवाद की संक्षिप्त कपरेखा मिलती है। पर उपर्युक्त विमूर्तियों के वर्णन में 'अनुशासनपर्व' का विमूर्तिवाद अपना बिसिद्ध महत्त्व रखता है। इसकी विशेषता यह है कि इसका सम्बन्ध न तो विष्णु से है न श्रीकृष्ण से या अन्य किसी अवतार से; इसका सीधा सम्बन्ध शिव से स्थापित किया गया है। शिव ही आत्मियों में गृहस्प, ईश्वरों में प्रदेवर, पञ्चों में कुपेर, पञ्चों में विष्णु, पर्वतों में मेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, शक्तियों में बसिद्ध तथा प्रहों में सृष्ट कहलाते हैं। इस प्रकार 'गीता' की अधिर्वास विमूर्तियों का सम्बन्ध शिव से जोड़ा गया है।

इसने यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न उपासकों को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने में सर्वोत्कृष्टवादी (हीनोभिष्टिक) प्रवृत्तियों के सहस्र विमूर्तिवाद का भी सपेक्ष प्रयोग होता रहा है।

अतएव उपर्युक्त तत्त्वों तथा विवेचनों के आधार पर यह स्पष्ट बिरिन होगा कि भारतीय धर्म एवं अवतारवाद में विमूर्तिवाद, बहुदेवतावाद एकवरवाद सर्वेश्वरवाद तथा विग्रहरूपवाद के सहस्र बृह पारिभाषिक महत्त्व का विक्रान्त है। विशेषकर बौद्ध अवतारवाद और मध्यकालीन अवतारवादी उपास्यवाद के उद्भव और विकास में इनका अत्यन्तम योग प्राप्त होता रहा है।

अंश, कला और विभूति

'भागवत' के इस विभूतिवाद का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि किममें तेज, श्री, कीर्ति, देशप, इ, त्याग सौम्यं सीमाग्य, पराक्रम त्रिदिशा और विशान् आवि भेद एव ही मह मेत ही अंश है।^१ अतः शक्ति एवं गुणों की दृष्टि से अंश कला एवं विभूति एक ही सामान्यतः भूमि पर लक्षित होत हैं; क्योंकि विभूति की पूर्वपरम्परा में माग्य 'गीता' में इन विभिन्न विभूतियों का अन्तर्गत बतलाते हुए कहा गया है कि जो जो विभूतिमान, श्रीमान् और उज्ज्वित हैं वे ईश्वर के अंश से ही उत्पन्न हुए हैं।^२ भा० २, ६, ३१-४४ में बर्णित अंशावतार विराट् पुरुष से आदिभूत महा शिव, विष्णु, दश आवि प्रमापति, मच्छग, रवराज्येक के रक्षक, पक्षियों के राजा, गन्धर्व, विद्यावर, चारणों के अधिनायक, मधु, राजस सर्प, नागों के स्वामी, महर्षि विद्वपति, वैश्यान्, सिद्धेश्वर, दानवराज, प्रेत पिशाच भूत कुम्भारथ, खड्ग-जन्तु, मृग और पक्षियों के स्वामी, एवं अक्षर में और भी ब्रितनी बल्लुद्धै देशर्ष, तेज इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल, जमा, सौम्यं, कला, वैभव तथा विभूति स पुत्र है, रूपवान् वा अरूपवान् है; व सभी अराजस्वरूप हैं। उक्त तत्त्वों से स्पष्ट है कि कला एवं विभूति सामान्यतः अंश के ही विशिष्ट रूप हैं। किन्तु बाद में अंश, कला एवं विभूति तीनों के रूप पृथक्-पृथक् स्पष्ट करने के प्रयास किये हैं। 'भागवत' के मत का अनुसरण करनेवाले 'माध्वन तन्त्र' में विहित गुणों और अक्षर वा अक्षिक मात्रा के आधार पर अक्ष, कला एवं विभूति का रूप पृथक्-पृथक् भाषा गया है।^३ इस तन्त्र के अनुसार अक्ष के चार, कला के सोलह^४ तथा विभूति के सौ मात्रा बतलाये गये हैं।^५ इन अंशों का उक्त स्पष्ट पर उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी विशिष्ट अंशों के साथ इनके वैयर्थ साहित्य में प्रचलित होने की संभावना की जा सकती है।

१. तेजः श्रीः कीर्तिदेशपः इत्यात्मः सीमणं मधु ।

वीर्यं त्रिदिशा विद्वानं वध वध स मैन्द्र्यः ३

भा० ११, १६, ४ ।

२. गीता १ ४० ४१ ।

३. श्लोकानि भाष्यत्वात्परापरादर्शनं प्रसी ।

विमलार्चणं कला पितृ माग्यमगनेऽहृत् ३

साध्यत इ० १८, २, ८ ।

४. परम्परा में अक्षि की दस, मूर्ध की द्वाद और अक्षमा की सोलह अक्षरों प्रसिद्ध हैं ।

५. अंगमूर्तिषो मध्य स्वाम्यका तु वीर्यो मया ।

अक्षमापि विभूतिषु चर्चये कर्तवि पृथक् ३

साध्यत इव इ० १८ २, १

भावार्थ

अवतारवाद का क्षेत्र व्यापक होने के अनन्तर अंस, कला, विमूर्ति के अतिरिक्त अवतारों का कार्यान्वयन आवेशावतार के रूप में उचित होता है। अंस, कला आदि रूपों की तुलना में प्रारम्भिक वैष्णव पुराणों में आवेश रूप का अभाव है। यों तो 'विष्णुपुराण' में अंशावतार, 'भागवतपुराण' में कल्पवतार और परवर्ती पद्यपुराण में आवेशावतार का अस्तित्व अधिक मिश्रण है। किन्तु सामान्यतः अन्य पुराणों में अंस एवं कला की अवेष्टा आवेश का व्यापक रूप ग्रहीत नहीं होता। इस आधार पर आवेश रूप के पुराणोत्तर साहित्य से गृहीत होने का अनुमान किया जा सकता है।

उक्त पुराणों के सामनामयिक नानी जाने वाली पाँचरात्रों की 'अहिंसेय्य संहिता' में आवेशावतार का विशेष रूप से प्रतिपादन हुआ है। साथ ही जिस 'आवेश' या 'आविवेश' का आवेश रूप से सम्बन्ध है, द्वैत-प्रारम्भिक बीज पाँचरात्रों की पूर्ण परम्परा में मान्य 'महानारायणोपनिषद्' में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त पाँचरात्रों की परवर्ती परम्परा में प्रकटित ढोक्यार्थ द्वारा उचित 'सत्त्वत्रय' में अंस या कला-रूपों के विपरीत आवेश रूप ही गृहीत हुआ है।

इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन सम्प्रदाय पूर्व साहित्य में पाँचरात्र साहित्य के उपास्य रूपों के साथ-साथ आवेशावतार की प्रवृत्ति को भी ग्रहण किया गया। अवतारवाद का सम्बन्ध जहाँ तक उत्पत्ति या प्रादुर्भाव से है, वहाँ आवेश का किसी व्यक्ति या बन्धु विशेष में प्रवेश करने या अपनी शक्ति या श्रेष्ठ द्वारा आधिष्ठ करने से प्रतीत होता है। किन्तु 'विष्णुपुराण' में जिस पृष्ठ को अंशावतार और 'भागवत' में कलावतार कहा गया है 'पद्यपुराण' में वे ही आवेशावतार बतलाए गए हैं। वहाँ आवेशावतार पृष्ठ के शिष्य 'आविवेश' का प्रयोग किया गया है। 'महानारायणोपनिषद्' १०, १ में अ० ४, ५८ ३ तथा 'आजसमेयी संहिता' १०, ११ की मूक शब्दा उद्धृत की गई हैं, जिनमें 'महादेवो मया आविवेश' का प्रयोग हुआ है। दीपिका के अनुसार 'आविवेश' का अर्थ 'प्रविशति', से किया गया है। अंग आवेश या आविवेश का

१ वि० ५ और म०।

२ अनुभास्यवृत्तम् ५० ८२ में पद्यपुराण से उद्धृत

आविवेश पृष्ठ है: अंगी बन्दी अनुसुक्तः।

३ 'महादेवो मया आविवेश' महाभा० अ० २०, १।

४ 'महादेवो महामदेव' स्वयम्भार अत्रया बत्त अरण्यमाय देवप्रविशेत्।

महाभा० अ० २०, २ दीपिका ५० २२। 'अविशेत्'। १। १० १, ४ क। प्रविशति।

प्रकृतियों या प्रवेश से संबंध विदित होता है। आदि कर्ता या ईश्वर-प्रपञ्च क इयक्-पुपक् उल्लेख भी तै० भा० में मिलते हैं।^१ इसक अतिरिक्त 'गीता' में प्रपञ्च क अर्थ में 'आविरय' का प्रयोग हुआ है।^२ 'महासूत्र' २, ४ ११५ क एक सूत्र में हीपञ्च क समान सभी शरीरों में मुक्त्यात्मा का आवेष्टन या प्रवेश होना कहा गया है।^३ श्री ब्रह्मसाम्बार्थ ने तै० भा० ३, १७ का उद्धरण वृको वेवो बहुषा निवष्ट' वैसे हुए प्रपञ्च' से ही उसका तात्पर्य किया है।^४ साय ही इन सूत्र में प्रयुक्त 'प्रदीपावेष्ट' पद से पाँचरात्रों का विमर्शों से सम्बद्ध प्रसिद्ध सिद्धांत 'दीपादुत्पन्नदीपवत्' का भी आभास मिलता है। इससे स्पष्ट है कि आवेष्टन रूप का प्रारम्भिक संबंध किसी-न-किसी प्रकार परमात्मा या आत्मा क विभिन्न शरीरों में प्रवेश करने से रहा ह। फिर भी उक्त तथ्यों से आदिष्ट या प्रविष्ट रूपों का अवतारवादी संबंध नहीं उचित होता।

इस दृष्टि से 'अद्विष्टुष्पसंहिता' में ईश्वर के अवतरित होने की चर्चा करते समय कहा गया है कि वे अपने माया-रूप से भूतों में प्रविष्ट होकर धर्मस्थापना करते हैं। इस धर्म स्थापना में सत्त्व पूर्व अक्षरूपी व्यूह और साक्ष-अधर्म और द्वेष क निराकरण क कृत्वा प्रसुप्त अवतारवादी साधन माने गए हैं।^५ यहाँ पौराणिक अवतारवादी प्रयोगों को प्रस्तुत करत हुये अवतार, आदिमाँव या प्रादुर्भाव क रथाय में आवेष्टन का प्रयोग हुआ है।^६ पाँचरात्र साहित्य में अर्था विग्रह या विमर्शों का महत्वपूर्ण रथाय है। इस साहित्य में ईश्वर क अविच्छेद्य त्रिग 'पर' व्यूह, विमर्श अर्था और अन्तर्पामी रूपों का वर्गीकरण हुआ है, जन्में अवतारवादी प्रयोगों की अपेक्षा सांग्रन्दायिक उपास्य तत्त्व का अधिक प्राथम्य है। उक्त ५ सभी रूप बैधर्म्य रखत हुए भी उपास्य विग्रह रूप ही हैं। इस दृष्टि से पौराणिक और पाँचरात्र अवतारवाद में प्रसुप्त भव यह उचित होता है कि पौराणिक अवतार रूपों में यहाँ कथात्मक तथ्यों का आधिपत्य है, यहाँ पाँचरात्र रूपों में कथात्मक तथ्यों का अत्यन्त अभाव है। पुराणों में यहाँ लक्ष पूर्ण, कला आदि वर्गीकरण क रूप प्रचलित हुये हैं यहाँ पाँचरात्र साहित्य में उपास्य का दृष्टिभंग रखते हुये, मुष्य और गौण या साक्षात् और आवेष्टन स्वरूप गृहीत

१ 'वैश्वानुपरिपञ्च' तै० भा० १ २३ ८। ३ बीज १५, १६ और १५, १७।

२ तै० भा० ४ ४ १५ प्रदीपावच्छेदना हि सर्ववृत्ति।

४ तै० भा० ४ ४, १५ अणुमात्र।

५ साधर्म्य क दिवा कार्य वर्मदेविनिराकृती।

६ कलात्म्यरूपेण साक्षरूपेण चैव हि ४

अदि० सं० ११, १२, १३।

७ आदिविरपाविरप भूनामि श्वेन रूपेण यत्नवा।

देवैः। साधर्म्येनेद्विरास्य तदुपदिशः ४

अदि० सं० ११ १।

हुये हैं। इसका मुख्य कारण दोनों में दृष्टिकोण भेद विद्यित होता है। क्योंकि वहीं पौराणिकों ने भक्तारों के वर्गीकरण में तत्कालीन साहित्य के कथामक रूपों और समाज में व्याप्त उनके कार्यों और प्रभावों का ध्यान रखा है, वहीं पांचरात्रों में उनके हृद्देहात्मक रूपों और प्रभावों को ही विशेष रूप से ग्रहण किया गया है।

वों से पांचरात्र पद्धति में आदिर्भावों या विभवों की उत्पत्ति 'हीपातु लक्ष्मीपवत्' होने के कारण प्रायः सभी भक्तार पूर्वावतार माने जाते हैं। फिर भी पांचरात्रात्मोक्ति भी सम्प्रदाय में विभवों का वर्गीकरण मुख्य और गौण रूप में अधिक प्रचलित है।^१ मुख्य विभव ब्रह्म एवं साक्षात् भक्तार हैं, और गौण विभव आदेशावतार बतकाये गये हैं।^२ आदेश के स्वरूपावेश और शक्त्यावेश दो रूप हैं।^३ स्वरूपावेश में भगवान का कर्क सहोपदेश होता है। जैसे परशुराम आदि के शरीर में उपयुक्त समय पर ईश्वर का सहावेश हुआ था।^४

लोकार्थ ने इस वर्गीकरण का मुख्य आधार उपास्य-रूप को माना है। उनके कथानुसार क्लिप्त उपासना में मुक्ति का लक्ष्य होता है उसे मुख्य विभव और क्लिप्त में ऐहिक सुख का लक्ष्य होता है उन्हें गौण विभव कहा जाता है।^५ इससे स्पष्ट है कि आदेश रूप की प्रकृति पांचरात्रों में प्रचलित हुई और पौराणिक भक्तारों की लक्ष्य पांचरात्र विभवों का ही विभाजन आदेशावतार के रूप में हुआ।

आकरोप्यधक के वैष्णव सम्प्रदायों में पौराणिक एवं पांचरात्र दोनों रूपों का समावेश किया गया। मध्वाचार्य ने आदेशावतार के विरोधात्मक और द्विविधावैत दो प्रकार माने हैं। 'महाभारत तात्पर्य विनय' के अनुसार ब्रह्म, चन्द्र, शिव, इन्द्र, काम, कामपुत्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, धर्म और इनकी सभी शिवाँ ब्रह्म, प्रजापति सभी मनु अपिगण, मनु-पुत्रादि, नारद, परमेश्वर, करपप सनकादि, अग्नि आदि देवता, सरल, कार्तवीर्य, पृथु आदि चक्रवर्ती राजा राम, राम, लक्ष्मण, आदि तीनों भाई, बजराम, प्रद्युम्न, अमिन्दा, बर, कामगुण इत्यादि हरि के विरोधात्मक भक्तार बतलाये गये हैं।

१ विप्रोद्गमोक्ति द्विविधो गौण मुख्य भेदक विभक्तः । तत्प्रथम ५ १०८ ।

२ तत्प्रथम ५० ८ । शीव आदेशावतार, सुकण्ठावतारः ।

३ आदेश ११ कलावैतः उपास्यवैत एतौ द्विविधः । तत्प्रथम ५ १०८ ।

४ तत्र स्वरूपावेश एतेन कृतेन सहावेशः । तत्प्रथम ५० १ ८ ।

५. तत्प्रथम ५० १ १ ।

तथा पाकि और साम्ब को किञ्चित् आवेशावतार कथा गया है।^१ उक्त सूची में पूर्ण, अंध, कन्धा, विन्वृति आदि रूपों में विभिन्न सभी पौराणिक अवतारों का विशेषावेश रूप में ही आकलन हुआ है।

विन्वार्क साहित्य में श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने 'विद्वान्त रत्न मंजूषा' में अवतारवाद पर विचार करते हुये छीटावतारों का एक विशेष वर्ग आवेशावतार माना है। इस आवेशावतार के स्वीक्षावेश और सत्यज्ञावेश दो भेद हैं। स्वीक्षावतार भगवान् का जीवन-स्मरणान् अभाव-स्वरूप साक्षात् प्राकृता विग्रहभावैस है, जैसे नर-नारायण आदि रूप। शाश्वतशावेशावतार ईश्वर की शक्ति के अंध हैं। इस अवतार में शीघ्र पर ही भगवत् शक्ति का भगवत् कार्य के निमित्त आवैस होता है। अतः भगवत् रूप से इसका स्वरूप भिन्न होता है। स्वीक्षावेशावतार के अल्प या अधिक मात्रा की दृष्टि से भगवत् और विभक्त दो भेद बतलाए गए हैं।^२ अयम, कपिल, पृथु, कुमार, नारद तथा आदि विभक्त और बम्बन्तरी परशुराम आदि प्रथम मान गये हैं।^३ इन्होंने मा० १, ३, २० और ११, २, १० में गृहीत अथ और कथावतारों को आवेशावतार की विभिन्न श्रेणियों में प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मध्यकालीन साहित्य में पौराणिक अवतारों की मर्यादा और कथाओं में पौराणिक काव्यारम्भ उपादान की दृष्टि से कोई उच्चतमसीमा वैयर्थ्य न होते हुए भी उनके वर्गीकरण या कोटि निर्धारण में विचार परिवर्तन किये गये। इसका मूल में निश्चय ही अवतारों या विभवों के तत्कालीन साम्प्रदायिक मूल्य की भावना कार्य कर रही थी। जो अवतार हम युग तक जितना महत्त्व प्राप्त कर सका था, उसके लिए उसी के उपर्युक्त स्थापन का निश्चय किया गया था। इस परिवर्तित वर्गीकरण में पाँचराशों के साथ पाँचरात्र साहित्य से अनुमानित 'पद्म', 'स्कन्द' आदि परवर्ती पुराणों का भी महत्त्वपूर्ण योग कथित होता है। क्योंकि पाँचरात्र साहित्य और उक्त पुराणों में अवतारवाद के अंध, कन्धा आदि रूपों के साथ आवेशावतार के विभिन्न भेदों और प्रभेदों का व्यापक प्रसार हो चुका था। अतः मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय एक ओर तो पुराणों से अवतारों के कथारम्भ उपादान ग्रहण

१ महाभारत तात्पर्य निर्णय सर्वमूकम् में संगृहीत, पृ० ७ भा० २ श्लोक० १०-१२।

और पृ० ८ भा० २ श्लोक० ११-१४।

२४ अतः काश्यप इत्यादिप्रियेक्षावेशिनो इरे।

शक्तितावतारवधैव निविशदकिणो इरे ॥

३ रोमाशोत को १ पृ० ७१-७७ और वेदान्तरत्नमञ्जरी पृ० ४८।

४ वे० १० मं० पृ० ४८।

करते हैं, तो दूसरी ओर अर्थावतार की मूळ कृत्तियों से अभिप्राय आवेशावतार की क्रेटियों को भी आवश्यक माप में अपना लेते हैं।

ब्रह्ममाचार्य ने 'तत्त्वदीप निबन्ध' 'भागवत प्रकरण' और 'सुबोधिनी टीका' में कृत्तिय रसकों पर आवेशावतार पर विचार किया है। इन्होंने 'सुबोधिनी' में भा० १, ३, ६ की व्याख्या करते हुए ब्रह्ममाचार्य की ही परम्परा में वैष्णव तंत्रों के अवतारों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।^१ इनके मतानुसार इन अवतारों में प्रयोजनानुसार वा कर्मानुसृत्य किवासक्ति वा ज्ञानसक्ति का विभिन्न अवतारों में आविर्भाव वा आवेष्ट हुआ करता है। उदाहरणस्वरूप बराह आदि रूपों में ब्रह्मकार्य तथा इच्छासादि रूपों में ज्ञान कार्य की प्रभावता विहित होती है।^२ उ० ही० नि० भा० प्र० में सभी मन्वन्तरों के वृत्ता भी आवेश रूप में गृहीत हैं।^३ इन्होंने कृष्ण के विविध अवतारवादी पञ्च उपास्य रूप की वर्णा करते हुए आवेष्टप्रधान, अर्द्धरूप, और प्रवेश प्रधान, पूर्ण, दो रूप माना है।^४ यहाँ आवेश और प्रवेश का विच्छिन्न संबन्ध पंड भी पूर्ण रूप से विहित होता है। क्योंकि राक्षसों में सामान्यता अवतार विमल पूर्ण ही माने जाते हैं। संभवतः ब्रह्ममाचार्य के द्वारा अर्द्ध पर्य पूर्ण रूपों के माध्यम से अवतारवादी पञ्च अवतारी उपास्य के निराकरण का प्रयास हुआ है। निष्कर्षतः ब्रह्ममाचार्य ने विभिन्न अवतारों और ककारमक कृत्तियों का आवेश रूपों से सौमहास्य स्थापित कर पौराणिक एवं पौराण्य दोनों के सम्बन्ध का प्रयत्न किया है। फिर भी इनके साहित्य में आवेशरूपों का विस्तार आवेशावतार के उद्गम स्थल वैष्णव तंत्रों के आधार पर हुआ है, जो तंत्र निर्णयो वैष्णव तंत्रे निरूपितः से स्पष्ट है।^५

श्रीशैव वैष्णव मतानुयायी श्री रूप गोस्वामी ने 'कथुमागतवाद्युत' में स्वर्ण और तर्किक रूपों के साथ आवेष्ट रूप से प्रवृत्त किया है। इनके मतानुसार किसी महात्मन भी में भगवान् ज्ञान वा अग्न्य शक्तियों के द्वारा आविष्ट होते हैं।^६ इन्होंने विशेष विभाजन की वर्णा करते हुए अवतारों को पुनः आवेश, प्रामाण्य, वैमल्य और परावश्य आदि चार भागों में विभक्त किया है।^७ और

१ तत्त्वदीप निबन्धभाष्यतः प्रकरण ५० १६, २० प्रथम स्कन्धार्थे दृश्ये ५४-६४ और सुबोधिनी भा० १, ३ ६ की व्याख्या।

२ सुबोधिनी भा १, ३, ६ की टीका।

३ उ० ही० नि० भा० प्र० ५० ४ २, ६ स्कन्ध दशोक्त ७५।

४ आवेष्टार्थे प्रवेशार्थे कृष्णालम्बे प्रवेशिनि। उदावता द्वितीयस्तु लम्बा पूर्णो निरूपितः।
उ ही० ही० भा० प्र० ५ ५४२, २२, २६० ७५।

५ सुबोधिनी ५ १५-१६ भा० १, ३, ६ की व्याख्या।

६ उ० भा ५० १६।

७ उ० भा० ५० ८१।

आवतारवाद के उदाहरणस्वरूप 'पद्मपुराण' में माय्य प्रभु, शत्रुः सनकादि, नारद परशुराम, आदि आवेस रूपों को प्रस्तुत किया है। 'पद्मपुराण' के अनुसार हरि इनमें आवेस होते हैं।^१ साथ ही 'विष्णुचर्मोत्तर पुराण' में कश्चि भी आवेसावतार लक्षित होते हैं।^२

इससे विदित होता है कि वैष्णव सम्प्रदायों और परवर्ती पुराणों में आवेसावतार एवं उसके अर्थावस्थित विमल, प्रामद आदि रूपों का विशेष प्रचार हुआ। इसकी पुष्टि भागवत के विभिन्न टीकाकारों से होती है। क्योंकि भागवत में कबल अंत और कला का उल्लेख हुआ है। जब कि टीकाकारों ने अंत और कला क साथ आवेस का भी समन्वय किया है।

भागवत के प्यारहवीं शती के टीकाकार श्रीपर स्वामी ने मा० १, ३, २० की व्याख्या में उपर्युक्त अवतारों पर विचार करत हुए मास्वादि अवतारों में शान, शिवा शक्ति जन्तित अवेशों का क्या स्थान समावेश माना है। तथा अंत, कबल और आवेस का समन्वय कर कुमारदि को शानावत और प्रभु आदि को शक्त्यावेश के रूप में ग्रहण किया है।^३ श्रीपर के अतिरिक्त अन्य टीकाकारों ने भी अंत, कला क साथ आवेस का प्रयोग किया है।^४

अतः मत्स्यकाण्डिन साहित्य में अन्य रूपों के साथ आवेस भी अवतारवाद का एक रूप विशेष मात्र होकर प्रचलित हुआ। इस युग में उपर्युक्त चारों रूपों में कबल शक्तिजन्तित माश्रामक भेद भाषा गया।^५ फिर भी मत्स्यकाण्डिन कवियों में अंत और पूर्ण की तुलना में आवेस का बहुत कम प्रयोग हुआ है। कबल चार्वाकों पूर्व भक्तमाल में कुछ प्रेम प्रसंगों का उल्लेख हुआ है जिनमें उपासक इष्टदेवों का आवेस मन्त्र में हाता है। किन्तु प्रयोजन की अपेक्षा इसमें भावावस्था का ही अधिक बोग हीन पवता है। 'दो सी वाचन वैष्णवों की बार्ता' में टाकुर जी का आवेस या आविर्भाव अपने मन्त्र में हाता है। एक प्रसंग में हरिदास और माहनदास में मार्तंग बार्ता होने समय हरिदास माहनदास से प्रेक्ष प्रमाणित हात है। और उनमें माछाद् टाकुर जी का आवेस मानत हैं।^६ उस काल में बार्ताओं के आधार पर ह्य सामान्य धारणा का पता चलता है कि जो टाकुर जी या भागवत की कथा कहना या, उसमें मन्त्र टाकुर जी या भागवत का आवेस मानते थे। 'चौरासी वैष्णवत की बार्ता' के अनुसार रामोद्दर राम हरसानी नामक मन्त्र में उसके आधार्य का ही आवेस

१. क० भा० ५० ८१ में वस्तुतः । २. ल० भा० ५० ८२ ।

३. भा० २, ३, १० जी० २ ५० २३३ वृत्तांत सं० ।

४. (क) ह्योदिनी भा० २, ३, २० । (ख) अन्त सन्त्रमे २ ३ २० ।

५. दे० मूचनेट १४ ।

६. शी० वी० दे वा० ५० १८२ ।

आये बहर रहता है १' इसी प्रकार बीरु में भी स्त्रियों के आवेग रूप में रियर रहने का प्रसंग मिलते हैं। 'बीरसी वैष्णव की बार्ती' में श्री जसुमा की की सती की चर्चा करते हुए कहा गया है 'बीका में इनको नाम कुण्डवेसिभि है। सदा रूप के स्वरूप को आवेग रहती तो आपर में विदुर जी के श्री यह लौंही हती' १ 'मच्छमाक' में श्री बीरुओं के प्रभाव-स्वरूप सत्तों में आवेग की स्थिति बतलाई गई है। सीता हरण की कथा अजय करते ही राम भक्त कुम्होकर प्रेमावेश में रावण को मारने के लिये तैयार हो जाते हैं २ एक भक्त ने इसी प्रकार लीलावेश में भृशिक का अनुकरण करते हुए भृशिकवच में अभिनय कर्त्ता हिरण्यकशिपु को मार दिया तथा बृहदारज का अभिनय करते समय राम के वियोग में स्वयं शरीर भी लोड़ दिया ३ इस प्रकार इस युग में लीलावेश का जात्यधिक प्रभाव लीला पड़ता है। वैतन्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीकृष्ण वैतन्य के अवतारत्व का विकास भी लीलावेश के प्रकृष्टस्वरूप विदित होता है ४

किन्तु इनका अवतारवाद का वर्गीकरण से सम्बद्ध आवेग रूप से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि परवर्ती कवियों एवं वैष्णव संहिताओं में 'भगवत' का ही अवतार का वर्गीकरण में आवेग आदि रूपों की समाविष्ट किया गया है। 'गर्गसंहिता' में अरा, अंघ्रांस, कथा, आवेग, और पूर्ण अवतारों के ये पाँच रूप पलकाए गये हैं ५ जिसमें उत्पत्ति, पाकन और संहार के कार्याधिकारी मद्या, विष्णु और शिव अंघ्रांसकार हैं। इनसे उत्पन्न मरीष्यादि अंघ्रांस, कविक भादि कथनवतार, कूर्मादि आवेगवतार और भृशिक, राम श्वेत द्वीप क हरि, वैशुद, बह और नारायण ये पूर्णवतार हैं ६ उक्त रूपों को पृथक्-पृथक् स्पष्ट

१ 'तथा रामोऽर बास की रैह यात्र सोसठ है परम्पु श्री आपार्य की को आवेग अजमहर रहते है। श्री रै वा १० २५।
 २ श्री वे वा १० ५७। ३ मच्छमाक एक मूप अवन सीता हर कीनी। मार मार करि पड़क बरि सापर में कीनी ॥ मच्छमाक १० १९१ अ० ४०।
 ४ बरसिह को अनुकरण हीर हिरकाकुछ भारव्ये।
 बरै अको बरतन, राम विघरत तन छारवी। मच्छमाक, १० १९१ अ० ४।
 ५ शेष लीला नाम बरे लीहण वैतन्य,
 लीहण विदित कर विरय किने। वैतन्य चरितावृत ३० रचनि कीला १० १५।
 ६ मच्छ माव श्री राम नामा विदि बीका कटी।
 बरि श्रीराम अवतार कथा अंघ आवेग युग त अवबदिनास बर्मदास, १० १।
 ७ अंघ्रांजीयवत्यावेशः कथा पूर्ण प्रकल्पने। गर्ग संहिता १ १ १६।
 ८ बरौ एक छटा रूप श्री माना गया है जिसमें बरिपूर्णतम रूप श्रीबीरुवासी लीहण करे गये हैं। गर्गसंहिता १, १, २०-२८।

करते हुए कहा गया है कि कार्याधिकार के कर्ता उसका अंश और उन कार्यों के प्रतिपादक अंशदाता हैं।^१ तिसक अन्तर में प्रविष्ट होकर विष्णु कार्य करते हैं, व आवसावतार हैं।^२ जो युग धर्म को जानकर और उन्हें प्रवर्तित कर पुनः निरोमून हा जाते हैं, व कलावतार हैं।^३ यहाँ अंश, आवसा और कला का रूप अव्यक्त स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साथ ही हमसे तात्कालीन युग में उनक रूपों के विरोध रूप से निर्धारित होने की भी संभावना हो जाती है।

इस प्रकार अवतारवाद के विविध रूपों में विशेषकर आवसावतार के अनुशीलन से कतिपय नवीन प्रवृत्तियों का पता चलता है। सर्वप्रथम तो यह कि अवतारवाद के अंश, कला, विष्णुति और पूर्ण रूपों के विस्तार-मूळ में जहाँ अंश का प्राधान्य रहा है वहाँ आवसावतार अंश रूप से बिल्कुल पृथक् प्रतीत होता है।

यदि इसकी आंतरिक परीक्षा की जाय तो इससे स्पष्ट पता चलता है कि 'आवेश' का प्रवृत्तिगत सम्बन्ध समष्टिगत सामाजिक व्यवहार में प्रकटित नहीं हो सकता; क्योंकि आवेश का प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्ति से है। ईश्वर का आवेश व्यक्तिगत में विभिन्न अनाकारण अवस्थाओं जबका मानसिक दशाओं में सम्भव है। फलतः अवतारवाद की दृष्टि से हममें हेतु या प्रयोजन की प्रामुखता न होकर कबल भावत्रिक अवस्था या महावर्गों का भावविदापूर्ण आवेष्ट हीन पड़ता है।

दूसरी बात यह कि इस प्रगाठी में ईश्वर की अवतारामूळ उत्पत्ति की भावना किंचित कमजोर पड़ जाती है। यहाँ ईश्वर की स्वेच्छा का प्राधान्य न होकर आवेष्ट व्यक्ति का अनुरोध अधिक बढ़ रहता है।

अतएव विषय ही 'आवेश' का सम्बन्ध परमेश का सगुण ब्रह्म के श्वाण में कबल उपास्यवादी दृष्टिकोण से रहा है; क्योंकि सामान्य रूप से दृष्टिकोण का ही आवेश अपने मूळ में हुआ करता है। यही कारण है कि आवसावतार की भावना का मूळ खोल पुराणों में न होकर पौचरात्र संहिताओं में मिलता है। पौचरात्रों का सम्बन्ध कबल परमेश, विभव अर्था और अन्तर्पामी भेदों में विभक्त उन विग्रह या उपास्य रूपों से रहा है जिनका मूळ अथवा अमिरति के अनुपूरक अवकाता रहा है।

अतः 'आवेशावतार' अवतारवाद के विभिन्न रूपों में परमेश्वर विग्रहवादी अवतारवाद का निदान्त है, जिनका उद्देश्य पौचरात्र संहिताओं से हुआ; और

उपे मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में जागे चरकर पौराणिक अवतारवाद के साथ समाहित कर किया गया।

पूर्णावतार

परन्तु मध्यकालीन कवियों में अवतारों के विभिन्न रूपों और वर्गों की अपेक्षा पूर्णावतार राम और कृष्ण विशेष प्राण्य हुए। इसका मुख्य कारण राम और कृष्ण के उपासक वैष्णव सम्प्रदाय थे। यों अवतारवाद के प्रारम्भ में पूर्णावतार की अपेक्षा अर्धावतार अधिक प्रचलित थीक पड़ता है। इनके प्रतिपादक रामायण और महाभारत में राम और कृष्ण अर्धावतार हैं। अतः पूर्णावतार का क्रमिक विकास अर्धावतार से ही हुआ है। इस क्रमिक विकास के आधार-स्वरूप प्रमाणी या तर्प्यों का कोई विरोध कम नहीं कथित होता, केवल कुछ प्राचीन समाजान्तर प्रवृत्तियों के आधार पर इनके पूर्णत्व का अनुमान किया जा सकता है। इस दृष्टि से इनका विकास-क्रम उत्प्रेक्षणीय है। अन्य वैदिक देवताओं के सत्ता विप्लु भी प्रारम्भ में कथल देवता मात्र हैं। वैदिक साहित्य में ही कामन रूप में तीनों बड़े मापने के कारण वे देवताओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं। अकाल्तर में मुख्य पर्व जोड़करका पुत्र पुत्र्य से इन्हें स्वकथित किया गया, जिसके फलस्वरूप वे महाकाव्यों में केवल प्राण ही नहीं अपितु विगुण-सगुण विधिष्ट विराट क्यकारी सर्वात्मा और पेशेभरवाही उपास्य-रूप में गृहीत हुए। इसी प्रकार दोनों महाकाव्यों के नायक राम और कृष्ण साम्प्रदायिक एवं वैष्णवीकृत महाकाव्यों में भी अर्धावतार हैं किन्तु विप्लु या बानुदेव के स्थान में कृष्णावत और रामावत सम्प्रदायों में उपास्य रूप में प्रचलित होते ही वे पूर्णावतार माने गये।

'भागवतपुराण' में विप्लु के विभिन्न अवतारों का वर्णन करते समय कृष्ण को स्वर्ण भगवान कहा गया है।^१ इसी प्रकार 'भागवतरामायण' में विभिन्न अवतारों का वर्णन करते समय कुछ न कुछ दोष वा अभाव दियरकाले हुए रामावतार की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। तत्पश्चात् अंत में राम से कहाया गया है कि सभी प्रकार के गृहस्थ-मुन्य प्राप्त होने के कारण हम अवतार में र्मिने पूर्ण रूप धारण किया था।^२

यों त्रिन सम्प्रदायों में कृष्ण राम और मुनिह को पूर्णावतार माना गया था उन पर इपिण में प्रचलित पाँचरात्रों का यथेष्ट प्रभाव था। इन

१. बने भागवतपुराण पुता कृष्णस्तु नववान् रववन् । या ३, १८ ।

२. भागवतरामायणोर्ध्व पूर्णावतारोमथा धृता ।

पाँचराशों में पूर्वाषाढार का एक व्यापक दृष्टिकोण उचित होता है। विशेषकर विष्णु के विविध अवतारों को जिन विभवों में प्रकृत किया गया है उन्हें पाँचराशों में अष्टावतार के रूप में उत्पन्न न कइ कर हीय से प्रकृति हीय के समान कहा गया है।^१ मध्यकालीन संग्रहाप प्रवर्तकों में मत्स्यपुराण में विष्णु के आविर्भूत अवल्य रूपों में संभवतः पाँचराशों से प्रभावित होकर अंश या पूय का भेद स्वीकार नहीं किया।^२ उनके मतानुसार परमात्मा का मूळ रूप पूर्ण है और उसके अन्य सभी रूप भी पूर्ण हैं।^३ 'भागवत-तात्पर्य' निर्णय में इन्होंने कहा है कि विष्णु वर विष्णु के अवतारों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि वेद और देही का भेद परतत्त्व मगनात् में नहीं है।^४ इनकी इस मान्यता का मातृ-सम्प्रदाय में प्रथम विहित होता है; क्योंकि मन्मथ में बाम्नादास ने मन्मथतानुवाची कर्मकार कइ के प्रति कहा है कि वे हरि के सभी अवतारों को पूर्वावतार मानते थे।^५

इस युग तक विष्णु या उनके अवतार उपासक रूप में अत्यधिक प्रचलित हो चुके थे। नारायण राम कृष्ण और सुमिह आदि रूप इस काल में अपने विविध संग्रहापों में अवतारी पूर्व परब्रह्म के वाचक हो गए थे।^६ विष्णुर्क संग्रहाप में हमी से पुनः इन्हें पूर्वावतार न कहकर 'स्वर्भरूप' या स्वरूपावतार कहा गया। पुरुषोत्तमाचार्य के अनुसार सत्त्व, चित् और आनन्द स्वरूप से प्रकट होने वाले अवतार को स्वरूपावतार माना गया है।^७ इन्होंने स्वरूपावतार में रूप गुण और ताक्ति का वैयर्थ्य स्थापित कर कबल सुमिह राम और कृष्ण को पूर्वावतार माना है।^८ किन्तु यथायत सुमिह की उपरिपति से पूर्व मध्यकालीन युग में प्रकृति साम्प्रदायिक प्रभावों का भी साध होता है; क्योंकि कालान्तर में कबल राम और कृष्ण के पादगुण्य और स्मृद्धवादी तथा कीटापुष्टासम और मर्त्या पुरुषासम आदि उपादानों के आधार पर

१ 'तत्र माहुराविपरा जगत्त्वमावदिमया दीपातुन्मदीयवतीसत्ता।

ब्रह्माक्षर संदिता द्युक्त सती च परत ३ और तत्त्वव ५० १०९।

२. मातृसती का ६० राय ५० २ ५।

३ सर्वावधि कृगति पूर्णानि। श्रीमन्मन्मसिदाय्यमारसंमद ५० ३६।

४ भागवत-नारयण-विनेष सर्वभूतत् में संगृहीत ५० २१ १ ४।

उत्प सर्वावतारो न विदोतेति कथम। देहे देही विनेष क परे विपते कविन्।

५ 'त्रिभुव हरि अवतार सदे पूरक करि वादे'। मत्स्यका ५० ५० ८१।

६ पर मथ से दही वेपथ वेदान्तिषों के मन्म ही मही अविणु पाँचराशों के उपासक 'परक' से भी है।

७ ३० १० म० ५ ४८।

८ ३० १० म० ५० ३५।

पूर्वावतार की मान्यता स्थापित की गई थी। उनका नृसिंह रूप में नितान्त अभाव कथित होता है।

श्री ब्रह्मभाचार्य ने सभी अवतारों में क्रिया और ज्ञान की दृष्टि से वैषम्य माना है। यदि मत्स्य, कूर्मादि में क्रिया की प्रधानता है तो ब्रह्म, व्यास आदि में ज्ञान की। इस कारण पर इन्होंने क्रिया और ज्ञान दोनों से पुत्र कबक कृष्ण को स्वयं भगवान् माना है।^१ 'लघुभागवतामृत' में रूप गोस्वामी ने नृसिंह, राम और कृष्णादि पूर्वावतारों को 'पद्मपुराण' के आचार पर पाद्मगुण्य पुत्र, श्रीपाद्भुवण-श्रीपद्म एवं परावस्थापद्म माना है।^२ इन्होंने हिरण्यकशिपु और रावण की अपेक्षा शिशुपाक के मृत होने के कारण उक्त अवतारों को क्रमशः श्रेष्ठ श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम माना है।^३ फिर भी उक्त तीनों के पूर्वावतार होने के कारण शीघ्र ही वैष्णव-साहित्य में अक्ष-अक्षी एवं अवतार-अवतारी का संबन्ध स्थापित कर इस सम्प्रदाय के उपास्य श्रीकृष्ण को अक्षी और अवतारी कहा गया। 'लघुभागवतामृत' के अनुसार त्रिमूर्ति सर्वदा अक्ष मात्रा में सक्ति का विकास होता है यह अक्ष और त्रिमूर्ति स्वेच्छानुसार विभिन्न सक्तियों का विकास होता है यह पूर्ण या अक्षी है।^४ 'हरिमठिरसामृत सिन्धु' में पूर्ण भद्र श्रीकृष्ण को सभी अवतारों का मूल उद्गम होने के कारण अवतारी माना गया।^५ 'मठिरसतरंगिणी के अनुसार भी समावतार में आकम्बल कृष्ण पूर्वावतार कहे गये हैं।^६ साथ ही उक्त दोनों ग्रंथों में मत्स्य का संभवता स्थान या कार्य की दृष्टि से द्वारका, मथुरा और गोकुल के कृष्ण को पूर्ण, पूर्वतर और पूर्णतम माना गया है।^७

इससे स्पष्ट है कि विभिन्न सम्प्रदायों में उपास्य होने के कारण कृष्ण पूर्ण ही नहीं अपितु पूर्णतम रूपों तक प्रचलित हुए। इन वैष्णव सम्प्रदायों में प्रचलित संभवता परवर्ती 'गर्गसंहिता' में पूर्वावतार का विशेष चिह्न का गुणों के साथ 'भ्यूहवाद' भी बतलाया गया है। साथ ही पूर्वावतार के अतिरिक्त पूर्णतम अवतार की खर्चा करते हुए कहा है कि त्रिमूर्ति तत्र में

१ 'ब्रह्मविश्वोमवतुन' कृष्णस्य भगवान् स्वयम् ।

नक्षत्रीय निबन्ध भा प्र० पृ० २७, २, २५।

२. ल. भा० पृ० ५९। ३. ल. भा० पृ० को २४ और पृ० २२ को० ४२।

४ अक्षत्वं नाम सप्तमीनां सप्तारवांशप्रसक्तिः।

पूर्वतम स्वेच्छयैव मानावतिरकाशिता ३ ल. भा० पृ० २२२ को ४६।

५ अवतारमयी बीजं अवतारी निगमये। हरिमठिरसामृत सिन्धु पृ० ५८ को० ७२।

६ मठिरसतरंगिणी पृ० ५९-६ को० ५।

७ मठिरसतरंगिणी पृ० ७४ को १५ और हरिमठिरसामृतसिन्धु पृ० २७९ रसोक २९-७८।

सुगत' श्रीकृष्ण को पूर्ण परमानन्द एवं पूर्ण चन्द्र के अर्थात् पौडस कलायुक्त माना है।^१ इस प्रकार पौडस कलायुक्त पूर्णावतार का मान इनके पक्षों से होता है।^२ साथ ही एक पद में उनका पूर्वाव-सूचक होने की अपेक्षा अश्वमेध से उपमित होने का अधिक बोध होता है।^३ इसका पारिभाषिक प्रयोग 'सुरसारावली' के पक्षों में मिलता है। 'सुरसारावली' के एक पद में कहा गया है कि ब्रह्मोद्गा के गर्भ से साकल्य-कला-युक्त चन्द्र ने प्रकट होकर अश्वमेध का वाद्य किया।^४ पुनः इनके देवकी से उत्पन्न होने की पूर्ण रूप में प्रकट होने का उल्लेख अगले पद में किया गया है।^५ नन्ददास ने भी 'दशम स्कन्ध' में इनके पूर्णावतार की चर्चा की है। 'दशम स्कन्ध' में अपने पूर्णावतार की सूचना श्रीकृष्ण स्वयं देते हैं।^६ पञ्चतः ने इस प्रेम मरी तिल में पूर्ण रूप में प्रकट होते हैं।^७ इस प्रकार ब्रह्मण्य या उपास्य रूप में अधिक प्रथकृत होने पर भी राम कृष्ण जादि अवतारों के पूर्वत्व की चर्चा मत्स्यकाशीन भक्त कवियों ने की है। ब्रह्म समाप्तवाय के कवियों ने श्रीवृद्धमाध्याय और उनके पुत्र विद्वकनाथ को भी पूर्ववत्त या पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का अवतार माना है।^८ इनमें स्पष्टतः इनके पूर्वरूप से अवतरित होने की चर्चा न होते हुए भी 'पूर्व मद्र' या 'पूर्व पुरुषोत्तम' जादि क प्रयोग से इनके पूर्णावतार का मान होता है।

१. नंद महर पर बीरा बाबो वृत्त परमानन्द ।
श्रीविन्द स्वामी पर संमद ६ १ पर २ ।
२. सब गुण पूरक के छ बलि श्रीविन्द प्रभु के नमो नमो ।
श्रीविन्द स्वामी पर संमद ६० ५ ।
३. अश्वमेध कर करवि विनु प्रती सखक कला सुलकार ।
श्रीविन्द स्वामी पर संमद ६० ६ ।
४. बिना मद्र कवी ब्रह्मविद्यो बाधो शक्ति अकार ।
श्रीरद कला चन्द्र को मन्दी दीर्घो निमिर निवार ० सुरसारावली ६० १६ पर १८६ ।
५. पुनि कृष्ण देवकी अदिबन्ध पदिके हरिवा बाबी ।
पुनः पाल्य नाम हरि मन्दी बहुकुक तान कदावी ०
सुरसारावली ६ २६ पर २६४ ।
६. तन्मन्तर गिरि कदा अनूप देई हम परि वृत्त कर ।
मं प्र दशम स्कन्ध ६० ११४ ।
७. श्रीर ६ २२७ । प्रेम मरी सब प्रपदि है । हरि परि पूरक कर ।
८. (क) कुंजमहास पर संमद ६० ३१ पर ५९ ।
अन्य अप वृत्त पुरुषोत्तम श्री वृत्त सुलकार ।
(घ) ब्रह्म मय वान वा अदि में मन्दी श्री विद्वकनाथ ।
श्रीवरदामी पर-संमद ६० ५ पर १० ।

अभिप्रेत का प्रयोग हुआ है।^१ और एकदश एक में वेद्यों की पूजा भी सूक्तियों में वासुदेव-भ्यूह को भी गिना गया है।^२

इससे वासुदेव-भ्यूह का अथास्य रूप ही अधिक प्रचलित विदित होता है। 'अद्विष्टं प्रसन्नं संहिता' में वासुदेव पशुओं से युक्त हैं तथा संकर्षण, प्रद्युम्न और अत्रिभूह त्रिमसा ज्ञान, बल, धर्म और धीर्य तथा तेज और अति-युक्त बतकल्पे गये हैं। यही इनके ऐकान्तिक पंचरात्र मन्त्र के प्रवर्तक, उपदेशक सिद्धक, आदि साम्प्रदायिक रूपों का परिचय भी मिलता है।^३ जिसके अनुकरण पर मध्यकालीन सम्प्रदायों को भ्यूहवाद किया गया है। पंचरात्र साहित्य में इनका द्वापदा अर्चावहारों से सामंजस्य स्थापित किया गया है।^४ 'शोपाख्योत्तरतापत्रीय उपनिषद्' में वासुदेव-भ्यूह का संघर्ष आग्रत स्वप्न प्रकृति भवस्याभी और ओंकार आदि मंत्रों से किया गया है।^५

'रामोत्तरतापत्रीय उपनिषद्' में वासुदेव-भ्यूह का अनुकरण पर ही राम और धनक तीनों मातृओं को मिश्रकर राम-भ्यूह का निर्माण किया गया।^६ यहाँ चारों मातृओं को मिश्रकर ही राम पूर्ण पुण्यात्म या पूर्ण वामेश्वर माने गये हैं। 'सूरसारावली' में राम के भ्यूहत्मक प्राकृत्य एवं वासुदेव-भ्यूह से अथर्व स्थापित किया गया है।^७ इस प्रकार आख्योक्तिकाल के पूर्व ही भ्यूहवाद का अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र दृष्टिगत होता है। पहिले सम्प्रदायानुयायी प० गदाधर दास द्विवेदी ने 'सम्प्रदाय प्रदीप' में 'पद्मपुराण' के उन उद्धरणों को प्रदत्त किया है जिसमें बतकाला गवा है कि अत्रिभूह में अस्कक वैद्य-सिद्ध पूर्ण पुण्योत्तम-वचकव भगवान् अगदीश के अस से अतिप्रवर्तक चार सम्प्रदायों के आचार्यों का प्राकृत्य होता है।^८ इनका भ्यूहत्मक संबंध प्रस्तुत करते हुये नामादास जी ने कहा है कि जिस प्रकार हरि ने 'बीबीसबु' धारण किये उसी प्रकार अत्रिभूह में इस अनुभूह का अधिर्भाव हुआ। जिसमें भी रामानुज पद्मर और

१ भा १ पृ० १११।

२ भा १ पृ० १११।

३ अदि सं० ५, ११-१३।

४ अदि सं० ५।

५ वेद्यों के अभिप्रेत में संकलित शोपाख्योत्तरतापत्रीय इण्टी० ५५-५९।

६ वेद्यों के अभिप्रेत में संकलित रामोत्तरतापत्रीय इण्टी० ११८ २ ५-८।

७ भा १ पृ० १११ के प्रथमे पुस्तोत्तम की टिप्पणी।

संस्करण प्रद्युम्न इन्द्रजित्, भारत महासंस्थापक।

प्रद्युम्न अनुभूह अत्रिभूह है अनुभूह अत्रिभूह।

रावबन्धु के प्रथमे मूल में हरि के अर्थ मूल।

सूरसारावली (मीठक) पृ० १५ १५८-१५९।

८ सम्प्रदाय प्रदीप पृ० १५ टीका मूल पृ० १५।

मुधानिधि पृथ्वी पर ब्रह्मण्ड के मरग रूप । श्री विन्नु स्वामी भवतागत से पार करन बाळ बडवाळ क मनाम, श्री मध्वाचार्य बर्षा करी मन्दि म महम्मल का भी हरा-भरा बमान बाळ तथा श्री निम्बादिप्य मूर्प क महत्ता कुडा करी मन्नाम को हरन बाळे रूप । 'उदुमागवतामृत' क अनुमात नारायण क महावस्था बान स प्रपिद बर्नुम्पूह में बासुदेव आदि म्पूह है ।

५ अन्ततः उपर एक दूसरे क विराम-रूप बगठाए गए हैं । इनका पाद विभक्ति क क्रम म चार छाकों में निराम बगठया गया है ।^१ श्री लोकाचार्य ने मध्वरंग आदि म्पूहों की स्थिति, सृष्टि, पञ्चम महार, मन्तार-संरक्षण और उपम्यकों पर अनुग्रह क निमित्त बगठाया है ।^२ श्री दुह्य-तन्नाचार्य न निम्बार्क की 'दासोकी' क 'म्पूहोगिन मद्र पर बोप्य में प्रदुक्त 'म्पूह' शब्द का तात्पर अन्व बगठार मूर्तियों स लिपा है ।^३

श्री बह्मनाचार्य न त० श्री० नि० मा० प्र० में बर्न-रहा क निमित्त अनुमूर्त्तियों का बासुदेव नामा है ।^४

उपर्युक्त उदाहरणों में म्पूह-करी क विभिन्न सारवाहीन करों और प्रयोगों का परिचय निम्नता है ।

अतः श्री इनक कृष् में सामन्हापिक प्रवर्तक रूप ही अधिक स्पष्ट प्रयोज हाता है, आ भागे बडकर उपस्थ-करी में पुरित हुआ । संभव है, प्रवर्तक परम्परा में म्पूह का संरक्ष होने क कारण नामा श्री न तन्वाहीन सैम्पव सामन्हापों का म्पूहात्मक रूप प्रदान किया ।

श्री म्पूहवाद की प्रकृति बान प्रारम्भिक रूप में भवतारवाद स पृथक् रही है। क्योंकि 'अणु संहिता' से लकर 'महामारत काळ तक क वैदिक साहित्य में मद्र क चार पादों की एक परम्परा बगठार स्वतंत्र रूप में

१ श्रीरंग मदन हीरु ही श्री बसुदेव बर्नुम्पूह मद्र ।

श्री रामानुज बगठार मुधानिधि अद्वैत रूप मद्र ।

विन्नु सधनि श्रीरंग विन्नु मन्तर पाद मद्र ।

मध्वाचार्य नेव मन्दि हर कसर मरिवा ।

निम्बादिप्य क्वरिप्य बुरर मन्तम सु हरिवा ।

बनम बान मन्तव बान मन्तव्यय की बगठार ।

श्रीरंग मदन हीरु ही श्री बसुदेव बर्नुम्पूह मद्र ।

मन्तव्यय श्री ५० २५७-२५८ ।

२. त मा ५ १४५-१४६ ।

३ मन्तव्यय ५० १ २ ।

४ 'उदुमागवतामृत' म्पूह-करी-नारायण-मूर्त्त-मद्र । ५० १० ५० ५७ ।

५. त० श्री० नि० मा० ५० ४४५ लम्ब १० मन्तव्यय ५० २८-२९ ।

मिळती रही है। कालान्तर में जब पुरुष का सम्बन्ध बाराबन विष्णु, वासुदेव से स्थापित किया गया, तब बहुत सम्भव है कि बाद में यह कर ब्रह्म के चार पादों के समानान्तर अनुस्यूह की कल्पना की गई हो।

परन्तु महाभारत काक से लेकर मध्यकालीन मत्स्य कवियों तक स्यूहवाद की जो रूपरेखा मिळती है, वह निश्चय ही अवतारवाद का एक विशिष्ट रूप है। स्यूहवाद का यह रूप पुराणों के अतिरिक्त पाँचरात्र साहित्य और परवर्ती वैष्णव उपनिषदों में भी विविध रूपों में दृष्टिगत होता है।

अतः मध्यकाल में स्यूहवाद का जो रूप मिळता है, उसे पुराण और पाँचरात्र दोनों का सम्मिश्रित रूप भी कहा जा सकता है। यों 'सम्प्रदाय प्रदीप' और 'मत्स्यसूक्त' में स्यूहवाद के जो रूप दृष्टिगत होते हैं, वे प्राचीन स्यूहवाद के स्थान में तात्कालीन सम्प्रदायों को सम्मिश्रित कर मधीन स्यूहवाद की कल्पना करते हैं। इससे यह पता चलता है कि स्यूहवाद में अवतारवाद के सदस्य सुगामुक्त्य मत्स्य रूप धारण करने की समता भी विद्यमान है।

लीला रूप

मत्स्यपुराण में अवतारवाद के जिन रूपों का सर्वाधिक प्रचार हुआ उनमें लीलावतार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लीलावतार रूप अवतारवाद का प्राचीनतम या प्रारम्भिक रूप नहीं है; क्योंकि प्रारम्भ के अवतारों में लीला या लीलावतार कोई प्रयोजन नहीं था। विष्णु के वैदिक, महाकाव्य और पौराणिक तीनों साहित्य में उनके अवतार के निमित्त देव-राज्यों का विनाश वैदिक धर्म की रक्षा^१, साधुओं का परित्राण बुद्धिमान एवं धर्म-स्थापना^२ तथा वेद, शास्त्रों, ग्रे, पृथ्वी और मत्स्य की रक्षा^३ आदि विविध प्रयोजन माने जाते रहे हैं।

कालान्तर में विष्णु अपने एकपर एवं उच्चारण रूप में ब्रह्मन्ती ब्रह्म से स्थापित किये गये। जिनका एक यह हुआ कि उनके एक रूप से सम्पन्न

१ ऋ० १. २२. २ 'इन्द्रस्य पुत्र्या सखा', १०. वा. १. ५ और ऋ० वा० १. २. ५
ब्रह्मन्त रूप में देवों का पक्षरान महा० २. १७, १५ देवदत्त विनाश।

२. महा० १, १५. ३. २१. २४५, २५-३० भूमार हरण सीता ५, १-८ महा
१४ ५४ ३३ इति० पु० ४४. १४. १५ मानव कल्याण।

३ वा. ३. ५. पुं. मं. चोराणो ३. १५. धे०. ११४ में प्रकृतीरास से एकत्रित कर
दिया है—जगत भूमि भूत, सृष्टि हर दिन जगि हंगल।

करत करित करि मनुज तनु जगत भिरहि जगयाक ७

किसी प्रकार का प्रयोजन उनकी निरपेक्षता में दोषस्वरूप समझा गया। इसका निराकरण उनकी आध्यात्म प्रीक्षा या छीछा में किया गया।^१

उपनिषदों में जिस प्रकार के प्रश्न की उत्पत्ति का विकास हुआ था, वहाँ यह एक ओर तो निर्गुण, निष्किय और निराकार का और दूसरी ओर सगुण साक्षि, साकार और लक्षा भी।^२ भारतीय दर्शन में जगत और जीव से उसके संबंधों को लेकर विभिन्न प्रकार के तक उपस्थित किए गए थे। नैवायिकों के विभिन्नकारण, वैसयिकों के उपवास कारण तथा सांख्य द्वारा प्रतिपादित ईश्वर के कर्तृत्व या सभी प्रश्न के प्रश्नत्व में कोई न कोई दोष उपस्थित करने के कारण आलोचना के विषय बन चुके थे।^३ प्रश्न में किसी प्रकार का प्रयोजन उसके पूर्वत्व में बाधक माना जाने लगा था।^४ दूसरी ओर वैदिक साहित्य में प्रश्न से सम्बन्ध का प्रश्न इच्छा आदि प्रश्न, उनमें किसी न किसी प्रयोजन की ओर संकेत करते थे^५ तथा कामना और इच्छा के अतिरिक्त उसमें निहित आनन्द, प्रीक्षा आदि उपादानों की अभिव्यक्ति भी हुई थी।^६

अतः वेदान्तिकों ने उपर्युक्त तत्त्वों का सामंजस्य 'लीला' में श्रेष्ठ निकाला, क्योंकि आनन्द, प्रीक्षा आदि में लीला का भाव होने पर भी प्रयोजन आवश्यक नहीं था। त्रिम प्रकार जगत या तट आनन्द के विभिन्न अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं तथा वाक्य अपनी इच्छानुसार विविध प्रकार की प्रीक्षाएँ करते हैं। उसी प्रकार प्रश्न भी मर्त्यत्व या वाक्यत्व लीलाएँ करता है। साकारार्थ के शारीरिक भाष्य में 'सोक लीलावत्तु कैवल्यात्' की व्याख्या करते हुए सतुष्ट राजा या मंत्री के महत्स पूर्णकाम प्रश्न की लीलाओं को भी निष्प्रयोजन कहकर

१ अर्थात् निष्प्रयोजनत्वत्तुं पुरतः कस्य ज्ञेयम् ।

श्रीवठो वाचस्पत्यैव शेषा तस्य विद्यामयः ३ वि० पु० १२ १८ ।

२ इ० अ० १, ८८ निर्गुण छा० अ० १ १४ १-४ सगुण ।

३ भारतीय दर्शन इ० ११९, ११८ आदि १४२ ।

४ न० मू० १, १ ३२ न० प्रयोजनवत्त्वात् ।

५. (क) कामना अ० १० (११, ४)

आनन्दप्रये समवर्तमानि मनसो देता प्रथमं वरासीत ।

शु० भा० ११ ३२, १ ।

पुन्योद्धारवाणीप्रामाण्ये ते अ० १ ३ लोकात्मवत्तुः अ० मू० १, १ १८ ।

(क) 'इच्छा' का अ० अ० १ ३ लोकात्मवत्तुः प्रामाण्ये, अ० अ० ५, ५

परार्थत्वं तुरित्तत्वं पुन्यनीतये । अ० अ० १, १ १३ अ० लोकात्मवत्तुः

इति अ० अ० १ ३ १३ इच्छाभिः कर्मव्यपदेशात् ।

६ 'आनन्द', अ० अ० १, १, १ ३ अ० अ० १, १, १० अ० मू० १, १ १२ अ० अ०

१ १४ में कहा गया है कि मछली मछली के साथ प्रीक्षा करते हैं ।

लीला वा मनोरंजन के विभिन्न बतकाया है।^१ उपनिषदों में व्यास ऋषि की इच्छा और कामना का ही विकास सिद्धा (घृष्टि की इच्छा), युमुत्सा (युम की इच्छा) और रिरसा (आत्मात्म की इच्छा) वृत्ति में उचित होता है। इन तीनों वृत्तियों का सर्वत्र लीलात्मक अवतारवाद से स्थापित किया गया।

विशेषकर 'भागवतपुराण' में वैदिक एवं पौराणिक परम्पराओं को परस्पर समन्वित करने का अनूतपूर्व प्रयास हुआ है। इस समन्वय का प्रमुख आधार लीलात्मक अवतारवाद रहा है। यों तो विष्णुपुराण में ही देव त्रिपिक, मनुष्य आदि योनियों में उनकी उत्पत्ति को ऋषि की स्थायी शेष की उपलब्धिका लीला कहा गया है।^२ किन्तु 'भागवतपुराण' में लीलायुगपोषण श्रीहृष्य को 'परमेश' से अभिहित कर घृष्टिगत जीवनगत एवं वैयक्तिक सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों को लीलात्मक रूप प्रदान किया गया। 'भागवतपुराण' के प्रथम स्कन्ध में ही श्रीहृष्य के प्रति कहा गया है कि ये लीला से अवतार धारण करते हैं।^३ उनकी यह लीला कपट मानुषी या नदवत् होती है।^४ घृष्टि, पावन संहार और पशु-पक्षी आदि विभिन्न योनियों में होने वाले उनके सभी अवतार लीला के ही रूप हैं।^५ अतः पौराणिक परम्परा या मध्यकाल में प्रचलित विष्णु के चौबीस अवतार भी जो विष्णु के प्रथम अवतारों में माने जाते हैं मागवत में उर्गै लीलावतार कहा गया है।^६ इस प्रकार इस युग में अवतार-लीला के साथ ही मू-भारहरण या अर्थों के मोक्ष-दान आदि प्रयोजनों को लीला में ही समाहित कर दिया गया।^७ जिसका फल यह हुआ कि लीला एवं प्रयोजन में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा।

मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में श्री सम्प्रदाय के अनुपायी कोटाचार्य ने तो लीला को ही एकमात्र प्रयोजन माना। 'मध्य सिद्धान्त-सार-संग्रह' के अनुसार उनके सभी अवतार-कार्य फल के निमित्त न हाकर लीला के लिये और कभी-कभी असुर जनों को माहने के लिये होते हैं।^८ इन सम्प्रदायों में 'भागवत' के ही भेदों एवं रूपों का विशेष रूप से प्रचार हुआ। विशेषकर श्रीहृष्योपासक सम्प्रदायों में अवतारी हृष्य के विविध प्रकार के अवतारों में

१. छारीरक भाष्यः प्र० लू० २ १ ३३।

२. देवतिर्यङ्मनुष्येषु शरीरमहपरीमका।

लीला वा सर्वभूतवत् तत्र वैशेषिकज्ञाना प्र वि पु ५, ३३ ४९।

३. भा० १ २, २७।

४. भा० १ १ २८ और १ २, ३४।

५. भा० १ १ २८ और १ २, ३४।

६. भा० १ १६ २३।

७. अथ प्रयोजनं केवलं लीला।

८. 'अथ-निदान्त सार संग्रह' पु० ५।

भागवतात् श्रीबीस भवतार लीलावतार के रूप में मान्य हुए। निम्बार्क सग्रहाय के श्री पुद्गलसमाचार्य ने श्रीबीस भवतारों को आगरा, स्वल्प भादि लीलावतार के विविध विभागों में विभक्त किया है।^१ चैतन्य सग्रहाय के रूप गोस्वामी ने भी 'भागवत के उक्त श्रीबीस लीलावतारों को अंध, आवेश भादि विविध भेदों के साथ ग्रहण किया है।'^२

परन्तु ध्यान रखन की बात यह है कि ये सभी लीलावतार इस युग में प्रयुक्त रूप से प्रचलित राम या कृष्ण के लीलावतार माने गये, क्योंकि विष्णु की भपचा राम और कृष्ण ही इस युग के प्रधान उपास्य या भवतारी पर ब्रह्म थे। श्री बह्मनाचार्य ने 'तत्त्वदीप निबन्ध में भागवत' के सर्ग विसर्ग, स्थान, पोषण, कृति मन्वन्तर ईशासुक्त्या विरोध, मुक्ति, आश्रय भादि प्रधान खण्डों को श्रीकृष्ण की ही दृष्टिसे लीलाओं के रूप में माना है।^३ हम प्रकार अन्य भवतारों की भपचा श्रीकृष्ण के प्रति कहा गया है कि जिस प्रकार बालक खिलौनों से खेलता है उसी प्रकार य ब्रह्मा शिव, इन्द्रादि देवताओं से सर्वत्र श्रद्धा करते रहते हैं।^४ किन्तु आलोच्यकाष्ठ में मुख्य रूप से भागवत' के ही श्रीकृष्ण चरित्र या लीला का व्यापक प्रसार हुआ।

इस काल में श्रीकृष्ण के नित्य और भवतरित दो रूप मान्य हुए। 'लघु भागवतामृत' के अनुसार इनकी जन्म-लीला अनादि है।^५ भक्त-रक्षण और भूभारहरण ही लीलाविस्तार के प्रयोजन हैं। रूप गोस्वामी ने उक्त दोनों रूपों से सम्बद्ध प्रकट और अप्रकट दो प्रकार की लीलाएँ माने हैं।^६ इनमें अप्रकट लीला पर विग्रह, उपास्य एवं नित्य श्रीकृष्ण की लीला है। उस लीला में उनका नित्य पारिकर एवं पापहृ नित्य गोष्ठोक्त में भाग लते हैं। इनके उपासकों का यह विश्वास है कि श्रीकृष्ण अप्रकट रूप से सदा मंत्र में विहार करते हैं।^७ और इस लीला में कवल उत्पन्न प्रिय मन्त्रवासी मन्त्र सम्मिश्रित होते हैं।^८ इसके अतिरिक्त मयुरा गोकुल भादि का भवतरण ही प्रकट लीला है।^९ इस प्रकट लीला में श्रीकृष्ण देवताओं के साथ अवतीर्ण होते हैं।^{१०} अतः प्रकट लीला भवतार लीला का ही दूसरा नाम है।

१. वे० रे० म. पृ. ४८-४९।

२. लघुभागवतामृत पृ. ४१-७०।

३. श्रीहर्म्य परमानन्द दशकीला पूर्व सप्त। सर्व मन्त्र समुहारे विस्तृतम् बरं मुम।

त० श्री० नि० मा० पृ. १ दृश्ये २।

४. ब्रह्मसंहितासर्वैरेव-वे। पुनः पुनः। श्रुते त्वं नरभ्याम् वाक्यः श्रीवमशैरिव।

महा ३. २२. ५४।

५. क० धा पृ. २०८-२०९ दृश्ये २१५। ६. क० धा पृ० २१५ श्लो० २४२।

७. क० धा पृ. २२९ श्लो० २५६। ८. क० धा पृ० २४६ श्लो० २७२।

९. क० धा पृ. २३० श्लो० २५८। १०. क० धा० पृ० २४२ श्लो० २५९।

मध्यकालीन कवियों ने लीला पूर्व उसके भेष-प्रभेद की धोर ध्यान न लेकर राम और कृष्ण के लीला प्रधान चरितों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

सूरदास के पदों के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है।^१ बड़ी परम कुसल, कोविद लीला-नट^२ और लीलावतार है^३। जब उसको लीला करने की इच्छा होती है^४ तब वह विविध रूपों में अवतरित होता है किन्तु फिर भी उसकी लीला को प्रयोजन-हीन नहीं कहा जा सकता क्योंकि माना प्रकार की लीलाएँ दिखाकर वह भक्तों का रंजन किया करता है।^५ इसके अतिरिक्त सूरदास ने मिरय लीला की चर्चा भी 'सूरसारावली में की है। उन पदों के अनुसार अवतारी राम-कृष्ण अंश, कला विभूति आदि विविध अवतार-रूपों में सदा मज्जमेढक में बिहार करते हैं।^६ मन्वदास के अनुसार वे मिरय किशोरधर्मी हैं तथा शिशु कुमार पांगंध आवि लीला-रूप उनके धर्म हैं।^७ इस प्रकार श्रीकृष्ण के लीला चरित का विस्तार वर्णन कृष्णपासक कवियों ने किया है। इन लीलाओं में जिस प्रकार अवतार कृष्ण अवतारी या परब्रह्म हो गये हैं उसी प्रकार इन्की अवतार लीलाओं ने ही मिरय लीला का रूप धारण कर लिया है। दोनों में अन्तर पड़ी है कि मिरय लीला गोठोक की विद्युत् उपास्य पर विग्रह श्रीकृष्ण की काकापीत लीला है। जब कि प्रकट या अवतार लीला नटवत या मनुष्यवत् काकापीत लीला है जो भक्तों के रंजन क निमित्त होती है।

इसी प्रकार रामोपासक कवियों ने भी रामचरित या रामलीला का वर्णन किया है। परन्तु मिरय लीला की अपेक्षा इन्होंने राम की प्रकट लीला का अधिक विस्तृत रूप प्रस्तुत किया है। गोरवामी तुलसीदास ने मम को स्वयम्

१ निर्गुण सगुण रूप हरि आर। सूरसारावली १८८ पद १ ४।

२ परम कुसल कोविद लीला नट सुमुक्ति मम हर लैन।

सूरसारावली १० ११३ पद ७७२।

३ बर हरि लीला सुनि कीर्ती प्रगट करम विस्तार। सू ५ १३।

४ हरि अवतार काल में माना बल्लभ चरित दिखावै। सू ५ १३।

५ अंश कला अवतार वसुन्ध निनि राम कृष्ण अवतारी।

सदा बिहार करन मज्जमेढन नंद सरन सुखमरी ॥ सूरसारावली ५ १३

७ शिशुकुमार दीपक धर्म पुनि बहिन बहिन हस।

वनी विस्व किशोर मवल विनबोर बड रस म

म० म श्रीकृष्ण विद्यामय पंचावली ५० ३८वीं ०८।

करने वाली सगुण लीला का रामचरित के रूप में गान किया है।^१ इस प्रकार चरित और लीला परस्पर पर्याय विहित होते हैं।^२ इनके मतानुसार व्यापक अकाल, अनिष्ट, अज्ञ निर्गुण, राम भक्त के छिने चौबीस प्रकार के चरित करते हैं।^३ ये सहा स्वतंत्र अद्वितीय होते हुये भी गठ के समान नामा प्रकार की लीलाएँ करते हैं।^४

इस प्रकार ललासीन कवियों ने राम और कृष्ण दोनों के लीला चरित का गान करते हुए उनके सभी कार्य ध्यापारों को महत्त्व माना है। अथर्व ही यह अष्ट और उसकी लीला के अवतारवादी सामग्ररूप के प्रयास हैं।

परन्तु इन महाकाव्यों के चरित से सम्बन्ध होने के कारण राम और कृष्ण के ही लीलात्मक रूपों का विशेष प्रसार हुआ जिसका विशेषण 'रामावतार' और 'कृष्णावतार' नामक अध्यायों में हुआ है।

युगल रूप

राम और कृष्ण के विभिन्न लीलात्मक रूपों का, तुलसी और सुरदास के अन्तर उत्तरोत्तर संकोच होकर केवल युगल रूप तक सीमित रह गया। बाद के कवियों ने अतन्वी चर्चा इनके युगल रूपों की की है उतना इनकी अन्य लीलाओं की नहीं। यों महाकाव्यों की दृष्टानुमि से संबन्धित विष्णु के विविध अवतारों में राम और कृष्ण ही ऐसे अवतार थे जिनमें युगल रूप की अभिव्यक्ति की संभावना हो सकती थी।

किन्तु उक्त महाकाव्यों में एकमात्र उनके युगल रूप पर ही इतना बल नहीं दिया गया है, अतन्वी कि मध्यकालीन रसिक धर्मों में दृष्टिगत होता है। विशेषकर युगल अवतार के रूप में विष्णु राधा-कृष्ण और राम-लालकी-रूपों का आधिर्भाव माना जाता है, यद्यपि परम्परागत विकास युगल रूपत्मक न होकर स्वतंत्र विहित होता है।

अवतारवादी विकास की दृष्टि से अवतार धारण कर्ता विष्णु और कल्पी के अति युगल रूप का अस्तित्व पुराणों में उचित होता है उसका वैदिक विष्णु के साथ कोई स्पष्ट संबंध नहीं होना पड़ता; क्योंकि वैदिक साहित्य

१ लीला सगुण की कदमि ब्रह्मानी लीला लक्ष्यता करे मक हाती। रा० मा० ६ २३

२ रा० मा० ६० ५५ कशी सुनहु अन रघुपति लीला।

उषा ६० ६६ सुनहु राम अवतार चरित, वरम सुन्दर अजय।

३ व्यापक अकाल अनिष्ट अज्ञ निर्गुण नाम न रूप।

मगध हेतु माना विधि करत चरित अमृष ११ रा मा० ६० २०५।

४ गठन कष्ट चरित कर माना उषा स्वतंत्र मक मगवाना। रा० मा० ६० ४५४।

में श्री या कृष्णी का स्वतंत्र रूप मिलता है। वैदिक साहित्य के मर्मज्ञों ने श्री और कृष्णी के स्वतंत्र रूपों को सर्वप्रथम श्री धर्म की दीपी माना है। त्रिभुवन वाह में एकीकरण हो जाया सहज समझ है। किन्तु जहाँ तक इनके विष्णु से सम्बन्ध का प्रश्न है, वह विष्णु की अपेक्षा ईश और इन्द्र से अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है। इनके विपरीत विष्णु का स्वयं पृथक् अस्तित्ववादी एक वैदिक देवी सिमीवाह्यी से विहित होता है। क्योंकि 'अथर्ववेद' की एक अध्या में सिमीवाह्यी के लिये 'विष्णोपकिं' का प्रयोग हुआ है। परन्तु वे गौड़ ने श. प्र० ३, ४, १, १ के एक आख्यायक के आधार पर विष्णु के पूर्व उनके सखा इन्द्र से श्री के संबंध का अनुमान किया है। उस आख्यायक के अनुसार देवताओं के अग्रणी श्री इन्द्र को प्रधान की। कष्टनः देवताओं की श्री प्राप्त कर इन्द्र असुरों पर विजय पाने में समर्थ होते हैं। यह संबंध महाभारत में भी दृष्टिगत होता है। 'महाभारत' १, १९६ ३४-३५ में अर्जुन को इन्द्र और शीवजी को इन्द्र की पूर्व भार्या कृष्णी कहा गया है। 'सतपथ ब्राह्मण' में अर्जुन इन्द्र का पुत्र नाम बतलाया गया है। साथ ही महाभारत १ ६० १५० में इन्द्राणी शीवजी है और 'महाभारत' १८ ४ १२ में शीवजी कृष्णी है। इससे स्पष्ट है कि पूर्वजन्म में कृष्णी विष्णु की अपेक्षा इन्द्र-पत्नी के रूप में प्रचलित थी। परन्तु एक ओर तो ब्राह्मणकाल में ही पुण्य से स्वरूपित नारायण^५ को तैत्तिरीय आरण्यक में विष्णु से सम्बन्ध किया गया है^६ और दूसरे स्पष्ट पर ही और कृष्णी नाम को दो देवर्षों की देवियों को स्मृतिकर्ता पुण्य की पत्नी कहा गया है।^७ इसका अतिरिक्त 'पञ्चर्षे' ३। १२ क 'पुण्यपुत्र' क मंत्रों में श्री और कृष्णी को पुण्य की पत्नी कहा

१ ३० आ० ३० श्री० ५० ८ ८ अ० १, २२५, ३ श्री०, अथर्व २१ ७, १७-१८, अ० १० ७२ २, में प्रकृत कृष्णी का सम्बन्ध विष्णु में विराट् काले वाके वाक् से बताया गया है।

२ वा विष्णोन्मत्ति कृष्णी कृष्णी कृष्णी का विष्णु देवी।

३ शिवाय वलि तुम्हें राणा हवीनि वलि देवि रावते श्रीवराय ४ अथर्व ७, ४६, ३।

४ देविकण्ड आथ देविकण्ड ५ २९३।

५ कृष्णी अथर्व पूर्वदेवीपदिष्टा वावा वैवा शीवजी दिव्यकथा।

महा० १ २९६, ३४-३५।

६ अर्जुनो इ ने वामेन्द्रो वरस्य पुत्रो नाम। अ० भा० २ १ ९, २२।

७ पुण्यो इ नारायणोऽयमप्य। अ० भा, २२ ३, १ २।

८ नारायणाय शिवाय वासुदेवाय श्रीवदि। तत्रो विष्णुः प्रथोऽववात्।

श्री० भा० १० १ ६।

९ श्रीव देवकीय वाम्य। ने० भा० ३, १३ १।

गया है। इस तथ्य के आधार पर इतना अनुमान किया जा सकता है कि हम युग तक श्री भीम लक्ष्मी पुरुष की दो परिधियों के रूप में प्रकृति थीं। काष्ठान्तर में जब पुरुष को विष्णु, माराधन और वासुदेव से सम्बन्धित किया गया तब बहुत सम्भव है कि श्री भीम लक्ष्मी का सम्बन्ध भी आसानी से विष्णु से स्थापित किया गया हो। इससे लक्ष्मी एवं विष्णु के सम्बन्ध की एक वृद्धि हुई है। किन्तु स्पष्ट सम्बन्ध का मान नहीं होता। परन्तु 'विष्णुपुराण' के अनुसार विष्णु और लक्ष्मी का सर्वाप्रथम सयोग समुद्र-मंथन के पौराणिक आख्यान में हुआ है।^१ यद्यपि 'महाभारत' के समुद्रमंथन में विभिन्न रसों की उत्पत्ति बतलाते हुए कहा गया है कि सुरा, सुरभि और अन्नमा के साथ उत्पन्न लक्ष्मी भी देवदोक बनी गई।^२ परन्तु 'विष्णुपुराण' के अनुसार वे देवताओं के देखते-देखते विष्णु के बचस्यक में विराटमान होती हैं।^३ अतः यह स्पष्ट है कि समुद्र मंथन के ही परिबर्धित आख्यान में विष्णु और लक्ष्मी का योग परवर्तीकाक में हुआ।

यद्यपि महाकाव्यों के असावतार क्रम में विशेषकर 'महाभारत' में कृष्ण और कनिष्ठी विष्णु और लक्ष्मी के प्रयुक्त-प्रयुक्त अवतार बतलाए गये हैं।^४ सम्भवतः इससे भी प्राचीनतर 'वाल्मीकि रामायण' में राम को तो विष्णु-अवतार बतलाया गया है।^५ किन्तु सीता यहाँ स्पष्टतः लक्ष्मी का अवतार नहीं बतलाई गई हैं। वे प्रायः देवमाया या देवकन्या के समान जनक कुल में उत्पन्न या अयोनिजा बनी गई हैं।^६ इससे 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार लक्ष्मी से उनका अवतार का विकास नहीं प्रतीत होता। फिर भी इस महाकाव्य के तीसरे खण्ड पर इन्हें 'पद्मा श्री ह्य स्विनी' के रूप में संबोधित किया गया है।^७ अतः इस उद्धरण में श्री या पद्मा लक्ष्मी से उपमित होने के कारण आलंकारिक पद्धति में उनके अवतारवादी विकास की समाप्ति की जा सकती है।

जो दो 'विष्णुपुराण' में विष्णु और लक्ष्मी का प्रथम रूप अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इसके न्याय-नीति बाध-मुक्ति, कष्ट-मुक्ति, पतन भूमि संतोष-मुक्ति, काम-इच्छा यश-इच्छा, पुरोदास-आहुति, सकर-नीरी

१ वि. पु० २. १।

२. महा. २. २८, २७।

३ वि० पु० २, २८, २५।

४ महा० १. ६७, १५१ और २, ६७, १५६ महा० १. ६५, २८ के अनुसार परकी एवं पौराणिक प्रतीत होगा है।

५. वा. रा. १, २५, ३०।

६ वा० रा० १. २, २७ और २, ७१ २१।

७ वा० रा० २. ६६, २४ २७।

८ वा० रा० २, ६०, २१।

सूत्र प्रमा, समुद्र-तरंग शीपक-उपोत्ति,^१ प्रमृति अनेक अमिष पुगळ रूपों क बचन क पश्चात् कहा गया है कि देव, तिर्यक और मनुष्य भादि में पुत्रपुत्रापी भगवान हरि और क्षीबापी लक्ष्मी हैं। इनसे परे अन्य कोई नहीं है।^२

इनके पुगळ अवतार की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देवापिदेव विष्णु जब-जब अवतार धारण करते हैं तब-तब लक्ष्मी उनके साथ रहती हैं।^३ जब वे साहित्यरूप हुये तो वे पद्मा के रूप में अवतरित हुईं। परशुराम होने पर भूमि, राम होने पर सीता और श्रीकृष्ण होने पर रुक्मिणी क रूप में उत्पन्न हुईं। इस प्रकार अन्य अवतार होने पर भी वे विष्णु से कभी पृथक् नहीं होतीं। जब वे शैव-रूप में अवतरित होते हैं तो वे शैवी होती हैं और जब वे मनुष्य होते हैं, तब मानवी होती हैं। इस प्रकार विष्णु के अनु रूप ही वे अपना धरि बना लेती हैं।^४

इससे विदित होता है कि विष्णु और लक्ष्मी स सम्बद्ध पुगळ अवतार की भावना 'विष्णुपुराण' में अत्यन्त व्यापक रूप में प्रचलित थी, क्योंकि यहीं उनक पुरुष-प्रकृति क सदृश तित्त्व और नैमित्तिक दोनों रूपों को भी प्रस्तुत किया गया है।

'विष्णुपुराण' के इन कथनों में पुगळ रूप के विकास में सहायक हो पद्धतियों का दर्शन होता है। प्रथम पद्धति में न्याय-नीति बौद्ध-बुद्धि इत्यादि त्रिषु पुगळ सम्बन्धों का नाम दिया गया है उसी तन्म में लक्ष्मी और सृष्टि को भी रक्षता गया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लक्ष्मी और सृष्टि क साथ को लेकर पुगळ रूप की भावना का विकास हुआ। लक्ष्मी और सृष्टि तथा पुरुष और प्रकृति का पुगळ सम्बन्ध पौराणिक पुगळ रूपों की अवेका अधिक पुष्टिसंगत और वैज्ञानिक ज्ञान पवता है। अतः सम्यक्साक्षीन पुगळ अवतार या पुगळ भावना क मूल तत्त्व के रूप में इसका ब्यार्थ महत्त्व आँका जा सकता है।

इसक अतिरिक्त 'विष्णुपुराण' के द्वितीय कथन में देवापिदेव और लक्ष्मी क त्रिन विविध पुगळ अवतार-रूपों की परम्परा की गई है, जिसप ही यह पुगळ अवतार की परवर्ती प्रकृति है। वहाँ विष्णु और लक्ष्मी पुरुष और प्रकृति क समान कश्चक सांख्यवादी प्रकृति क ही द्योतक नहीं अपितु पुराणों में प्रचलित वे उपरास्व हैं त्रिनका पुष विनाप में पुगळ अवतार हुआ करता है।

१ दि० पु० १ ८, २७-२३।

२ देवतिर्यकमनुष्यादी पुत्रामा नपत्वात्परि।

लीलात्मो भीम विदेवा नैवात्मो विवते परत्। दि० पु० १ ८ ३५।

३ दि० पु० १, ५, २४१।

४ दि० पु० १ ५, २४१-२४५।

मध्यकालीन साहित्य में बिष्णु की भयंका राम और कृष्ण के सुगठ रूपों का अधिक विस्तार हुआ। इसमें भी 'बिष्णु' एवं 'भागवत' की परम्परा से विकसित एक ओर तो ऐश्वर्य प्रणाल धीहृष्ण-रुक्मिणी का सुगठ रूप सृष्टित हुआ और दूसरी ओर मन्त्र-हीला वा कृदावन-हीला से सम्बद्ध राधा-कृष्ण के रूप का पथ विकसित हुआ।

विक्षेपकर 'भागवत' की परम्परा में माम्ब कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों में भागवत में राधा का स्पष्ट उल्लेख न होते हुए भी राधा-कृष्ण के सुगठ रूप का अत्यधिक प्रचार हुआ है। परन्तु आज भी कहना कठिन है कि 'भागवत' से राधा का कोई संबंध रहा है या नहीं, क्योंकि विकास की दृष्टि से राधा के पौराणिक एवं पौराण्य रूप दृष्टिगत होते हैं। 'बिष्णुपुराण' और 'भागवत' में कृष्ण की रामकीका में माग छमे बाली अमक गापियों में राधा का नाम न जान पर भी एक गोपी विद्याप का प्रसंग अवरम मिलता है। 'राधिको पतिपद्' में राधा नाम की व्याख्या करते हुए राधा को श्रीकृष्ण की आराधिका कहा गया है।^१ इस आधार पर 'भागवत' में प्रयुक्त उस गोपी विशेष के प्रति 'आराधिका से राधिका का विकास सम्भव है।' जो परबर्ती पुराणों में रूपमाधु-बन्दिनी के रूप में प्रकटित हुई।

एक विविध बात यह है कि 'पञ्चतन्त्र' में जिस राधा का उल्लेख हुआ है, उसका सम्बन्ध बिष्णु से है। कौटिलिक चतुर्मुख बिष्णु के रूप में राजकन्या से कहना है कि तुम पूर्वकाल में गोपकुल में उत्पन्न मेरी पत्नी राधा हो जा यहाँ अचनीर्ण हुई हो।^२ फिर भी भवतारवादी परम्परा में पुराणों में उक्त स्थान रुक्मिणी को मिला वह राधा का नहीं।^३ यद्यपि 'महावैवर्तपुराण' में राधा और कृष्ण का सर्वोत्कर्षवादी उपास्य रूप मिलता है किन्तु उसका किसी पौराणिक परम्परा से संबंध नहीं जाब पड़ता है। मन्ब है गोपी विशेष के रूप में राधा का नाम प्रकटित हुआ हो। परन्तु इस पुराण में राधा का साम्प्रदायिक रूप स्पष्ट कथित होता है। श्रीकृष्ण से एक ओर

१ वि. पु. ५, २२ २४-२६ ओट मा २०, २० २७-२२।

२. कर्तिकार्दिक कल्याण पृ० ३३२।

३. पा. २० ३० ३८ अमनाऽऽपिप्रे मूर्त्त मगवात् हरिरोवात्।

बन्धो विहाय योषिन् प्रीतो नाममाहृतः ४

४ पञ्चतन्त्र पृ० ८० प्रथम तन्त्र कथा ५ कौटिलिक नार. तुलने। सारम् अमिहितं मत्वा वरं किन्तु राधा नाम में यहाँ गोपकुल प्रसूता प्रथम आसीत् तात्त्व अत्र अचनीर्ण।

५ वि. पु० २ ५ १४०-१४१।

प्रह्लाद, विष्णु और शिव आदि अंशावतार होते हैं तथा दूसरी ओर राधा से महालक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती प्रभृति अवतीर्ण होती हैं।^१

उक्त रूपों के अतिरिक्त राधा और कृष्ण के अन्य रूप की चर्चा भी भंडार कर ने की है। इनके कथनानुसार 'नारदपंचरात्र में संसृष्टीय 'ग्रामायतनसार' २ २ २७ में कहा गया है कि कृष्ण और राधा अमित्र हैं। कृष्ण ही कलिय के छिपे राधा और कृष्ण दो रूपों में अवतीर्ण होते हैं।^२ इन दोनों की इस उत्पत्ति का बहुरूप राधा के नाम से सम्बद्ध 'राधोपनिषद्' और 'राधिका तापनीशोपनिषद्' में भी हुआ है।^३ इससे विदित होता है कि राधाकृष्ण के युगल रूपामक विकास में सम्प्रदायों में प्रचलित रास लीला का विशेष प्रभाव रहा है, जो स्विसनीकृष्ण की लपेटा अधिक उदात्त, रसात्मक और माधुर्य पूर्ण है। राधा-कृष्ण के अत्यधिक मंगलरी रूपों का का वर्णन 'गीतगोविन्द' और 'विद्यापति' में मिलता है, उनमें अन्य गोपियों का एक गीत हो जाने से कबक राधा-कृष्ण ही विशेष उचित होते हैं। अतः इस युगल रूप पर बौद्ध सहजपानी प्रभृतिपों का विशेष कर सुवन्दन का प्रभाव म्भावा जाता है। जो दृष्टिकर गीतगोविन्द 'कृष्णकर्णासुत' को इनकी तुलना में देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है। 'गीतगोविन्द' एवं 'कृष्णकर्णासुत' दोनों कृष्णलीला का वर्णन करते हैं। किन्तु एकमात्र राधाकृष्ण की युगल केलि का युगल रति की का अतिम्भासि 'गीतगोविन्द' में मिलती है वह 'कृष्णकर्णासुत' में नहीं। अतः 'कृष्णकर्णासुत' में राधा के साथ अन्य गोपियों को समाविष्ट तो किया ही गया है साथ ही सिद्ध लीला तथा अन्य अवतार लीलाओं की भी चर्चा हुई है। यहाँ कृष्ण कबक राधा के ही अंक में सोने वाले नहीं अपितु संप्रदायी भी हैं। ये 'वेनुपाकक कोकपाकक' श्लोक वेप में दिव्यु हैं।^४ साथ ही इनकी लीलाओं की चर्चा में राम कृष्ण प्रभृति अवतारों की भी चर्चा हुई है जो 'गीतगोविन्द' की युगल कलि में अन्यत्र विरक्त हैं। इसक अतिरिक्त डा० इमारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नागवत' की स्मरणीय रासलीला तथा 'गीतगोविन्द' के मनुष्यतु की रास लीला का मौलिक अंतर बतलवा है जो अत्यन्त समीचीन है।^५ इससे 'भायकन' की

१. मन्त्रवेदपुराण, श्रीकृष्ण उच्छ ४ २७ ४८-२ ।

२. ओ० व वे० श्लो १० ५८ चौदी श्लो ६ अणमय की रचना ।

३. अन्निरदांक में अनूदित श्लो २६२ ओ० २२ और श्लो ३२२ ।

४. मन्त्रवेदपुराण मयी वेनु वासिन्वे ओकपाकक ।

राधापशोपनिषत्संग छाप्रिने टैपछाप्रिने ॥ कृष्णकर्णासुत २, ७५ ।

५. 'आधुनिक गुणवत्तमया गीतगोविन्द विष्णो' । कृष्णकर्णासुत २, ४ ।

६. कृष्णकर्णासुत २, २७ ३८, २९ और २, ६९, ७० ।

७. मन्त्रवेदपुराण चर्मतापना श्लो ११५ ।

परम्परा में विकसित गोपीजनवल्लभ या गोपी-कृष्ण और 'गीतगोविन्द' की परम्परा में विकसित राधा-कृष्ण का मिश्र रूप स्पष्ट हो जाता है।

मध्यकालीन कवियों में सूरदास ने युगल भवतार का वर्णन किया है। सूरदास कहते हैं कि राधा और हरि दोहों एक ही हैं। वे एक ही शरीर के भाये-भाये दो रूपों में हाकर भवतरित हुए हैं। उनका संगों में रस भरे उमंग और उनको अपूर्व क्षिप्र दैतकर स्वयं कामदेव भी हर जाते हैं।^१ ब्रज में राधा-कान्ह और कान्ह-राधा दोनों एक होकर विराजमान हैं।^२ उनका रूप भवतार का प्रमुक्त प्रयोजन रमण-मुक्त है। इसी रमण-मुक्त के लिये वे हृन्दायन में बार-बार भवतरित हाते हैं।^३ राधा-कृष्ण के उपर्युक्त युगल रूप की परम्परा को सूरदास ने प्रकृति-पुरुष श्रीपति और सीतापति के क्रम में माना है।^४

इस प्रकार मध्यकालीन कृष्ण मन्त्रि संप्रदायों में भवतारवाद् के अन्य रूपों की अपेक्षा युगल रूप का ही उत्तरोत्तर अधिक विकास होता गया। सूरदास प्रकृति अष्टरूप के कवियों के अतिरिक्त निम्बार्क, राधावल्लभी, चैतन्य और हरिदासी संप्रदायों में भी श्रीकृष्ण और श्रीराधा के युगल रूप और युगल भवतार की विविध अभिव्यक्त रूपों की सर्चा हुई है।

निम्बार्क संप्रदाय के भक्तों में सूर्यन्य श्रीमद्भ ने अपनी रचना 'युगल सतक' में राधा-कृष्ण के युगल किशोर-रूप का वर्णन किया है। अपने उपासक युगल-किशोर की जिन सीताओं का वर्णन उन्होंने किया है, उसके आधार पर इनके किशोर राधा-कृष्ण अर्थात् विग्रह के रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित विदित होते हैं।^५ ये युगल-किशोर हृन्दाविविध में बिल्व विद्यास करते हुए निवास

१ राधा हरि भाषा भाषा ठमु एके हे हे ब्रज में भवतरि।

सूर स्वाम एत भरो ज्यमि भय, वर प्रदि देखि रखें तति वति ॥

सूरसागर ८४६ पद २३११।

२ राधा कान्ह कान्ह राधा ब्रज हे रखे श्रीप्रदि कावति।

सूरसागर ८४८ पद २३२७।

३ का काम रेकुण्ड विप्राएत निज स्वत मन मैं कहि भावत।

राधा कान्ह ईह वरि पुनि ना मुक्त की हृन्दायन भावत ॥

सूरसागर ९९४ पद ९८०३।

४ प्रकृति पुरुष श्रीपति, सीतापति अमुकम कथा सुवार्।

सूरसागर ९० २५१९ पद ४३५३।

५. युगल पं० ९० १ पद ७।

जनम जनम विनये सरा, हन बाहर मिथि मोर।

विमुक्त भोजन मुवाक्य डाकुर युगल किशोर ॥

करते हैं।^१ राधा उनके मनोरञ्जन के निमित्त विविध स्वरों में प्रकर हुआ करती हैं।^२ श्रीमद् ने रयामा और रवाम क हूँत और अहूँत या जमिष्ठ रूप प्रस्तुत करते समय दोनों क विन्व प्रतिविन्व भाव का भी कल्पनात्मक संकेत किया है। कृष्ण और राधा क रवाम और गौर रङ्ग एक दूसरे क शरीर पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। इस प्रकार रयामा-रयाम और रयाम-रवामा दोनों जमिष्ठ हीन पड़ते हैं।^३ इसी सम्प्रदाय के आचार्य श्री हरिश्वासदेवाचार्य ने राधा-कृष्ण दोनों क युगल प्राकृत्य का बिसद् वर्णन किया है। इसक मतानुसार इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण स्वरूप हैं और कृष्ण, राधा स्वरूप।^४ दोनों क एक ही तन्म मन हैं; एक सौंघे में दोनों बसे हैं; दोनों का शोषी अङ्गुत है और दोनों सहज भावम्ब पा रहे हैं।^५ 'सिद्धान्त सुख में इन्होंने राधा-कृष्ण क नित्य और अवतरित रूप की खर्चा की है। 'राधा-कृष्ण' क नित्य और नैमित्तिक रूप के निरूपण की यह विशेषता रही है कि इन कवियों ने प्रायः इस युगल रूप को उपनिषद् ऋषि से रूपकात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार के एक रूपक की कल्पना करते हुए श्री हरिश्वासदेवाचार्य जी कहते हैं कि वेद और तन्त्रों के मन्त्र ही श्री इन्द्रावन क नित्यविहार हैं। इस सूक्ष्म कलरप से सुक्त परमपाम में नित्य अक्षरुट गौर-रयामक युगल-किसार की ओड़ी विराजती है। ये दोनों जाहि जनाहि पकरस तथा अङ्गुत सुक्ति भीर पर सुखदाता हैं। ये अनन्त अनीह अनाहुत, अम्यम अदिक अण्ड, आपीस और अपार हैं। अरपकमकों में पढ़ने हुए आम्पणों क द्वारा रच करते हुए घर-घर में अवतार बोलें हैं।^६ यह सदा सनातन इकरस जाड़ी

१ बरी ५ ५ पर १ ।

जहाँ जगल मंगलमयी, करण निरन्तर वास ।
सकें ही सुख रूप भी बुधाविपिन विकास ॥

२ बरी ५ ८ पर २३ ।

बहुत रूप परि हरि विवा मम एवन रत हेंग ।
मगम मम मोहन विजुन मण्डल अवि धमि हेत ॥

३ बरी ५ २२, २५ ५४ ।

बोरी गौरी रवाम की, बोरी रचम वनाथ ।
प्रतिविम्बित तब परस्पर भीषट क्लृष्ट लजाय ॥

४ महावाणी ५० २९, सजी नाम रत्नावली शोक २ ।

५ महावाणी ५० २५० मद्म सुख, १ ।

६ महावाणी ५० २७१ सिद्धान्त सुख पर १ ।

'जमि अन्व आम्पम-रच करि वैतन वैत हेंग अवतार ।'

सन्धि आत्ममयी स्वरूपा है।^१ ब्रह्मात्मन के स्वामी वे पुण्ड-किशोर
अवन्त सति और पूज्य पुण्डरीकम हैं।^२ यही बार-बार प्रकट होकर प्रथम
रूते हैं और मिरमप्रति सभी श्रेणों को सभी प्रकार के सुख प्रदान करते
हैं।^३ उनका यह प्राकृत्य नित्य और नैमित्तिक दो प्रकार का है। श्रीहरिम्यास
श्री जी की एक पद-संज्ञि से इसका सकल मिश्रण है।^४ सामान्यतः पाण्डुरात्रों
में ईश्वर के नित्य परमत्व की कल्पना का विकास हुआ और अन्य व्यक्त रूपों
को नैमित्तिक माना गया। प्रथम यही ईश्वर या उपास्य इष्टदेव का रूप
वैष्णव सम्प्रदायों में विविध सन्नाथों के रूप में प्रकटित रह ई। इन्होंने असी
धरा भवनाती-भवतार, नित्य नैमित्तिक आदि शक्तों से भी अभिहित किया
जाता है। यहाँ नित्य रूप से उस धामध और समात्म ईश्वर का अर्थ लिया
जाता है जिसके अस्तित्व में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु मूल
समुदाय अभी के एक नैमित्तिक रूप को भी मानता है, जो अर्था या पूर्ण अवतार
रूप में उपरिष्ठ होकर मन्त्रजन का कल्पना या उनका साथ माना प्रकार की
लीक्यर् किया करता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में जिन पुण्ड-किशोर को भारण्य
माना गया है उनका भी नित्य और अवतरित दो रूप विदित होते हैं। नित्य
रूप तो उनका साम्य रूप है, जो किसी नित्य ब्रह्मात्मन में सदैव स्वीकारत
रहता है। उसी भगम अगोचर अविपति के पद-मन्त्र-अणु से आभा या
उपोति-अवतार की कल्पना मन्त्र कवियों ने की है। वे अपनी इच्छा के
अनुकूल विविध प्रकार के विग्रह धारण करते हैं।^५ इनमें अपने इष्टदेव को
सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ भी सिद्ध करने की भावना परिचयित होती है, क्योंकि
परमात्मा, प्रकृति-पुरुष ईश, अद्वैता आदि सभी ईश्वर पर्यायों का उनका

१ महाभाष्यी सू० १०३ पद ४।

सदा सन्तानम इकरस जोती सन्धिन् आत्ममयी ररकर।

२ महाभाष्यी सू० १०४ पद ४।

अवन्त सति पूज्य पुण्डरीकम पुण्ड-किशोर विरिनप्रति भूप।

३ यदी इ १०६ पद ८।

सीर सीर प्रयत विष्णवत मनुविन सन पीठिन सी सब दृक देत।

४ महाभाष्यी सू० १०६ पद ९।

भोम भीदार्थ कर्षण वृष्टम कर्ष्य नित्य नैमित्त्य प्रति कृपा कृपार।

५ महाभाष्यी सू० १०७, पद १४।

महाम भगम अगोचर अविपति पद-मन्त्र-अणु-आभा अवतार।

विधि सकल रण्ड-विग्रह करि अमित कोटि वैकुण्ठ-विकास ०

अंश और सम्मत्तः अपने पुण्ड-किसोर क आधीन माना है।^१ इस अमन्त विषय में जो कुछ भी स्पष्ट है वह सब एक से ही अनेक हुआ है। इस प्रकार इन्होंने एक प्रकार से 'एकोऽहं बहुस्वाम्' का ही प्रतिपादन किया है। वही निर्विकार निरसंश होकर भी परमात्मा के रूप में अवतरित होता है।^२

हरिश्चासदेव की की इस अवतारवादी कल्पना में अवतारवाद का एक व्यापक रूप दृष्टिगत होता है, क्योंकि ज्योति-अवतार और परमात्म-अवतार दोनों में इस सर्वात्मवाद की शक्य मिलती है, जिसमें समस्त सृष्टि और उसके उपादान सभी उसके अवतरित रूप हैं। उनमें उसकी अगाधि कीटा चक रही है। उस कीटा का दर्शन कबल अधिकारीगण ही कर सकते हैं। एक हमरे पद में इस तत्त्व को और अधिक स्पष्ट करने हुए वे कहते हैं कि इस निर्विशेष उपास्य ब्रह्म क विद्युत् क एक ही अंत से परमात्मा का अवतार हुआ। इन्होंने उसकी इच्छा के अन्वीन होकर अस्तित्व विषय का विस्तार किया।^३ पहले एक से दो और तीन पुत्रः चार, पाँच और बहुत रूप धारण कर, स्वयं ही अपार और अपूर्व कीर्तार्थ की हैं।^४ परन्तु अपने वास्तविक रूप में वह सर्वैष एक ही स्वरूप है जिसके नाम हो हैं।^५ इस प्रकार अपने उपास्य क ये एक स्वरूप और जो नाम स्वीकार करते हैं। वह तिर्य-वैभव विहार पुण्ड-किसोर स्वयं सत्य है। अस्तित्व प्रकृत्य उसके चरण-वत्त की आभा है। वह जगज्जिन्नु धर्मो है और परमात्मा विषकाय नारायण विष्णु ध्यावि धर्मो है। वह स्वयं बाळ, कौमार पौर्णव रूप धारण कर अपने जन्म के विमित्त विहार करता है। उसकी कीला अमन्त और अगाध है।^६ इस प्रकार अपने पुण्ड

१ महावाणी पृ० १८४ पद २३।

बाधो अंश परमात्मा मङ्गलि दुष्क भो ईश।
पर ईश्या आधीन है अमयनाठ अगरीश ॥

२ महावाणी पृ० १८४, पद २६।

देहि विष अमन्त में वरुहि ए बहु अंश। परमात्म अवतार है निर्विकार निरसंश ॥

३ महावाणी पृ० १८५ पद १७।

अकि वरुहि अंश अदि परमात्म अवतार।
परशुष्या आधीन है कोनो तप विस्तार ॥

४ वही पृ० १८५, पद १७।

एक बीर लव तीर दुनि चार वीर बहुत रूप।

वरि वरि कीला चारही बाव नरार अमूर ॥

५ वही पृ० १८६ पद २३। 'एक स्वरूप सदा है नाम'।

६ महावाणी पृ० १८८ पद ३३।

वामान विषकाय नारायण विष्णु। धर्मो है निहारे दुम वरुं अजिन्नु ॥

किशोर उपास्य को सर्वोपरि सिद्ध करते हुए, व कहते हैं कि व कबल धर्मों के धर्मा ही नहीं अपितु धर्मों के धर्मों अवतारों के अवतारी और कारणों के कारण महाकलय स्वरूप हैं।^१

इससे स्पष्ट है कि हरिश्वासदेव ने अपने उपास्य युगल-किशोर में उनका मित्र और नैमित्तिक प्राकृत्य को ही स्वीकार किया ही है, साथ ही धर्मा धरती अवतारी और कारण होने के माते धर्म अथ, अवतार आदि रूपों में उनका व्यापक एवं विशाल प्राकृत्य की चर्चा की है।

राधाचन्द्रम सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीहित हरिचण ने 'हित बौरासी' के पत्रों में राधा-माधव के मित्र युगल और प्रीतिहार रूप का अधिक चित्रण किया है। राधा और माधव दोनों प्रेमाभिभूत होकर कुज-हार पर लगे, आमोद प्रमोद में लगे हुए रतिरस लड़ने की बात में लगे हैं।^२ हित सेवक श्री न दयानन्दराम के मित्र स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि दोनों एक जग के किए भी पूजक नहीं हात। व एक मात्र वा देह हाकर रिक्त हैं।^३ श्री हरिराम व्यास जी ने भी राधा-माधव को एक प्राण ही देही कहा है। व परस्पर सहज स्नेह रहने वाले हैं।^४ इस प्रकार अपने मित्र रूप में राधा और माधव सर्वत्र प्रेम-रस की प्रीति में मग्न रहने वाले उपास्य हैं। श्री हरिराम व्यास जी ने मित्र रूप के अतिरिक्त इनके नैमित्तिक या अवतार रूप का भी उल्लेख किया है। उनके पत्रों के अनुसार वे ही मोहन अपनी इच्छा से अथ कदा तथा कपिल आदि अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं।^५ इसी सम्प्रदाय के श्री रसिकदास ने किशकिहारी राधाकृष्ण की चर्चा करते हुए इन्हें परमेश, पुरुषोत्तम, परब्रह्मण्डल, अर्धी और मूल कहा है। उनके मतानुसार संभवतः

१. महावाणी पृ० १८८, पृ० ३४।

अंश के अंधी अवतार अवतारी कारण के कारणोंक मंगल महा श्री।

२. राधा स० सि० ला० पृ० ३२२ में संक्षिप्त खुट वाणी पृ० सं २३।

३. वही पृ० ३५६ में सेवक वाणी से संक्षिप्त।

श्री हरिचण प्रीति ललाळें श्यामा श्याम एक ही गार्डे।

दिल एक कमरु म अन्तर हीरे प्राण सु एक देह ही खोर म

४. वही पृ० ३८० में संक्षिप्त।

राधायाधव सहज स्नेही।

सहज रूप पुन सहज आदिके, एक मात्र है देही म

५. वही पृ० ३९३ में संक्षिप्त 'मोहन की मनता वे प्रकटित अंध कका कपिकारि'।

के ही कारजोद्घाती और दशावतारों के रूप में अवतरित होने वाले नित्य युगल किछोर हैं।^१

इससे स्पष्ट है कि राधाकृष्ण सम्प्रदाय के उपास्य राधा-कृष्ण या राधा-माधव एक ओर तो नित्य कृष्णकमल नाम में प्रीति करते हैं, दूसरी ओर धर्म, कका कारजोद्घाती या दशावतारों के रूप में अवतरित होने वाले अवतारी भी हैं।

हरिदामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास के पदों में स्वामी-स्वामी के अधिकतर नित्य-युगल रूप का ही वर्णन हुआ है। इन्होंने स्वामी-स्वामी के स्वामी-गौर रूप का जन-दामिनी कैला परस्पर सम्बन्धित बताया है।^२ इससे राधा-कृष्ण के मित्र और भिन्न दोनों रूपों का स्पष्टीकरण हो जाता है। वे प्रायः अपने पदों में उनका इस सम्बन्ध को धन-दामिनी सम्बन्ध से ही अभिप्रेत करते हैं।^३ इनके उक्त सम्बन्ध वाले स्वामी-स्वामी रस में परावोर होकर कुञ्ज में विहार करते हैं।^४

अतः स्वामी हरिदास के पदों में उनके युगल उपास्य का नित्य रूप तो वर्णित है, जिसमें वे धन-दामिनी के सहस्र कमी एक और कमी हो हा जाते हैं किन्तु इनके अन्य अवतरित रूपों की चर्चा का अभाव जाय रहता है।

युगलद्वय और चैतन्य सम्प्रदाय

चैतन्य सम्प्रदाय के मूल कवियों ने राधा-कृष्ण के युगल रूप का विस्तार किया है। सामान्य रूप से चैतन्य सम्प्रदाय में प्रचलित युगल रूप पर स्थानीय बौद्ध साहित्या मत के युगलद्वय का प्रभाव कहा जाता है।

परस्त्री बौद्ध सम्प्रदायों में युगलद्वय का एक-एक प्रज्ञा और उपास्य, शून्यता और कल्याण के अर्थ या अर्थ के रूप को लेकर विकसित हुआ। चतुर्पात्री

१ राधा० स० सि० सा० पृ० ५१० में उद्धृष्ट।

राधा कृष्ण किछोर की नित्य विहारी नाम।

परमम सन्धनेव बद्धयुव ज्यो मूक।

आत्मोद सोरं कहे बस अवतारिन मथ।

२. कैटियाल पृ० ६ वद १।

मार्ग ही सहस्र औरों प्रपट कर रंग को गौर स्वामी जन दामिनी कैले।

कमल है पुनि अवहू जागेरूँ रहिहैं म धरिहैं तेसे म

३. कैटियाल पृ० ६ वद ४ और पृ० ३३, वद २१०।

४. कैटियाल पृ० २३ वद २३।

जी हरिदास के स्वामी स्वामी कुचविहारी रस बसधर जीन।

तंत्रों के अनुसार पुगनद भद्र्य का एक प्रकार से पर्याय कहा जा सकता है। भद्र्य का अर्थ होता है द्वैत का अद्वैत हो जाना। पुगनद में भी यही भावना बहसूक्त है। ब्रह्मबान में शून्यता और कल्या तथा प्रज्ञा और उपाय सर्वप्रथम क्रमसाः स्त्री और पुरुष के रूप में परिवर्तित किए गये।^१ इसका फल यह हुआ कि स्त्री और पुरुष के संयुक्त रूप में रस की भावना का आविर्भाव हुआ। फलतः पुगनद शून्यता और कल्या तथा प्रज्ञा और उपाय के समन्वित रूप भद्र्य का ही पर्याय भाषण रहकर समरस या प्रेक्ष्य का भी द्योतक हो गया। 'भद्र्यब्रह्म' में संकक्षित 'पुगनद प्रकाश' में निःस्वभाव और भावाभाब की अवस्थाओं में पुगनद का आभास भाषा गया है।^२ 'गुह्यसिद्धि' के अनुसार मगवान और प्रज्ञा संभवतः पुरुष-स्त्री रूप में महासुख के लिए खीटा रत है।^३ अतः महासुख भी उनके अमिश्र रूप का द्योतक होने के कारण पुगनद से मिश्र नहीं प्रतीत होता। 'साधनमात्रा में शून्यता और कल्या के भद्र्य रूप से स्वल्पिन एक ऐसे स्वाभाविक काम का उल्लेख किया गया है, जो तपुंसक के नाम से विख्यात पुगनद भी कहा जा सकता है।'^४ इस रूप में निःस्वभाव को ही विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है। उपर्युक्त तन्त्रों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुगनद के मूल रूपों में शून्यता और कल्या आवश्यक तरह रहे हैं।

परवर्ती बीजधर्म में शून्यता और कल्या तथा प्रज्ञा और उपाय ही क्रमसाः स्त्री पुरुष के रूप में पुगनद से सम्बन्ध किए गये। सैव तन्त्रों में इसी प्रकार सक्ति और सिव के अद्वैत रूप को भी समरस किया गया। परवर्ती बीज सम्प्रदायों में जबलोकितेश्वर और तारा के संयुक्त रूप में पुनः पुगनद की कल्पना का विस्तार हुआ। यहाँ सर्वप्रथम भावात्मक तंत्रों से आगे बढ़कर साम्प्रदायिक उपासकों या इन्होंने के पक्षीकरण की प्रवृत्ति दीक्ष फलने लगती है। अतः राधा और कृष्ण भी इस परम्परा से प्रयत्न नहीं प्रतीत होते।

वैष्णव सद्बिद्या सम्प्रदाय में कृष्ण और राधा, रस और रति के प्रतीक माने जाते हैं। प्रत्येक मसुण्य में कृष्ण और राधा का अस्तित्व विद्यमान है। जिस स्त्री या पुरुष में रूप की भावना है तथा उसके अन्तर में स्त्री स्वरूप विद्यमान है वह राधा की प्रकृति का है। उसके मग में कृष्ण के सुन्दर रूप के प्रति सहज आसक्ति है। इस प्रकार राधा और कृष्ण ही मसुण्य और स्त्री में स्थित हैं ही, उन दोनों की सम्बन्ध हीन भी अन्तर में लगातार चल रही

१ बीजधर्मवोर १० क० पृ २२।

२ इत० त्रि० पु० ५० ११९।

३ अद्वय ब्रह्म १० ४९।

४ साधनमात्रा पृ ५०५।

है। ये ही राधा-कृष्ण के रूप और स्वरूप कहे गये हैं और इसकी कौरव को प्राकृत और अग्राह्य ठीका कहा गया है।^१

तन्त्र दर्शन में सभी श्री-पुरुष शक्ति और शिव का अवतार समझे जाते हैं। ये ही बौद्ध-दर्शन में प्रज्ञा और उपाय के स्वरूप भी कहे गए हैं। इसी प्रकार सहजिया मत में राधा और कृष्ण स्वरूप सभी श्री-पुरुष माने जाते हैं। इस प्रकृति से वैष्णव तन्त्र भी अधिक दूर नहीं जा सकते। 'श्री हृदयस्यै तन्त्र' में हरि परमात्मा भगवाण है और श्री शक्ति है। श्री प्रकृति है और केसव पुरुष है। श्री और विष्णु कर्मो प्रयक् नहीं हो सकते।^२ इससे प्रतीत होता है कि शैव, बौद्ध, वैष्णव और सहजिया इन सभी मतों में युगान्त की प्रकृति किसी न किसी रूप में प्रकटित रही है।

परन्तु चैतन्य आदि शिव शक्तिक सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण की युगक शक्ति या युगक शक्ति का प्रथम रूप वह वैष्णव सहजिया मत की देन मानी जा सकती है।

वैष्णव सहजिया मत में काम-स्वरूप कृष्ण सभी प्राणियों के मन की आकर्षित करते हैं। राधा भी जो इस मत में महान् स्वरूपा कही गई हैं, प्राणियों को आनन्द प्रदान किया करती हैं। सहज मत के अनुसार कृष्ण रस तथा राधा रसि की प्रतीक हैं। दोनों के परस्पर समागम का अनुभव ही अपूर्व महाभक्त का अनुभव है। परन्तु यह अनुभव पार्थिव अनुभव से परे की वस्तु है। पार्थिव अनुभव जहाँ सीमित है वहाँ वह असीम तथा इन्द्रियेतर है। फिर भी राधा-कृष्ण शक्ति की चरम अनुभूति के पूर्व सहजिया मत के अनुसार प्रारम्भिक अनुभूति के किये आरम्भ में ही श्री-पुरुष में प्रेम-सम्बन्ध होना अनिवार्य है। यही प्रेम उत्तरोत्तर जब बढ़ने लगता है, तो श्री और पुरुष दोनों राधा-कृष्णवत् प्रेम का विकास कर लेते हैं। अन्त में स्वयं उस प्रेम में लक्ष्मी हो जाते हैं।^३ अतः सहजिया मत में प्रेम का यही राधा-कृष्णवत् अनुभव सहज अनुभव माना जाता है।

जो ता उपर्युक्त कारणों से सभी मध्यकालीन शक्तिक सम्प्रदायों को प्रभावित किया है, किन्तु चैतन्य सम्प्रदाय में अन्य प्रभावों के अतिरिक्त राधा-कृष्ण का अवतारवादी रूप पर भी इसकी दृष्टि परिलक्षित होती है।

^१ चैतन्य चरितामृत के अनुसार राधा और कृष्ण एक आत्मा हैं। ये दो

१. ओम्कार १०. ४०. ५. १४८. १४९। २. ओम्कार १०. ४०. ५. १०. १४९।

३. ओम्कार १०. ४०. ५. १५५।

देह में प्रकट होकर उस आस्थादन करत हुए विकास करते हैं।^१ पुनः दूसरे स्थल पर राधा को कृष्ण की मूर्त्तिक प्रतिष्ठा की स्तुति का विधान कहा गया है।^२ फिर भी 'चैतन्यचरितामृत' में प्रायः राधा और कृष्ण की एकता ही प्रतिपादित की गई है, क्योंकि राधा यदि पूर्ण शक्ति है तो कृष्ण पूर्ण शक्तिमान है। आकाश के आकार पर भी ये दोनों में कोई भेद नहीं मानते हैं। अग्नि-ज्वाला के सदृश राधा-कृष्ण सदा एक ही स्वरूप हैं। कथक लीला उस के आराधन के निमित्त दो रूप धारण करते हैं।^३

इसी सम्प्रदाय के ब्रजभाषा-कवि सुरदास मदनमोहन ने राधा के प्राकट्य की चर्चा करते समय कृष्ण के अवतार प्रयोगन की ओर इक्षित किया है। उनके मतानुसार कृष्ण का प्राकट्य राधा के प्रेम के चलते हुआ।^४ 'विष्णु पुराण' में प्रतिपादित युगक सम्बन्धों के सदृश ये राधा-कृष्ण के भेदाभेद रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राधा-ब्रह्म और ब्रह्म-राधा परस्पर एक दूसरे में विवाह करते हैं। उनके यह सम्बन्ध रूप-गर्भ, जन-दासिनी कसौटी-कीक इति-मैत्र स्त्री-मैत्र और देव-मैत्र के सदृश है। प्रिय और प्रियतम एक दूसरे को देखकर मुस्करा रहे हैं।^५

इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय में प्रतिपादित राधा-कृष्ण के युगक रूप को भेदाभेद मानकर प्रतिपादित किया गया है। किन्तु यहाँ तक दोनों के अवतारी या अर्धी रूप का सम्बन्ध है, दोनों पूरक-पूरक गोप-गोपिनी या अन्य रूपों में जननरित होते हैं।

फिर भी युगक प्राकट्य का मुख्य प्रयोगन उस रस-रूप में दृष्टिगत होता है, जिसके अधीन होकर राधा और कृष्ण पुनः-पुनः अवतार लिपा करते हैं।

१. वे० ब० पृ० ३५।

आदि लीला 'राधा कृष्ण आदि लीला पूर्व देह परि।

अन्वयन विनासे रस आवाहन करि' ॥

२. वे० ब० पृ० ३५ आदि लीला।

राधिका इष्टेन कृष्ण मन्त्र विचार। १३३३ शक्ति कृतिदीनी नाम जाहोर।

३. वे० ब० आदि लीला पृ० ३०।

राधा कृष्ण पडे सदा एकै रूपेण। लीला रस आवाहिते बरे पूर्व रूप ॥

४. मदनमोहन प० की पृ० ३३ पद, २१।

प्रकट यह सोया विभुवन की भातु गोप के बाब।

.....

आदित्य प्रसाद भय ब्रजभूषण चम्प विता कवि माध ॥

५. मदनमोहन प० की पृ० ५३ पद ६०।

वाम-बर्हि रत वन-दासिनी, वय कसौटी-कीक क्यो कृतन।

इति-मैत्र क्यो स्त्री-मैत्र क्यो, देव-मैत्र क्यो मधत ॥

रमरूप ।

मध्यकालीन उपासकों का रसामक रूप लीला का ही एक विकसित रूप है क्योंकि कृष्ण और राम के प्रकृति से स्वरूपित होने के अनन्तर पहले तो लीलात्मक रूपों की स्वरूपा की गई किन्तु बाद में वैष्णव संप्रदायों से ही रसिक संप्रदायों का आविर्भाव हुआ जिसमें कृष्ण और राधा तथा राम और जानकी के रसामक रूप गृहीत हुए ।

इन रसात्मक रूपों के विकास में 'रसो वै सा' की मूल प्रेरणा अचरम विद्यमान रही है । 'तैत्तिरीयोपनिषद्' की 'ब्रह्मब्रह्म ब्रह्मी में ब्रह्म क प्रथम आविर्भाव की चर्चा करते हुये कहा गया है कि इससे पहले कवल भस्म था । उससे सद्य उत्पन्न हुआ । उसने स्वयं अपने को अभिषेक किया इपीक्षित उसे सुकृत कहा जाता है । वह जो सुकृत है वही रस है । यह रस उपलब्ध करके ही आनन्दित होता है । यदि यह आकाश की भाँति व्यापक आनन्द स्वरूप नहीं होता तो कौन जीवित रह सकता । जिसमेंही यही सबको आनन्द प्रदान करता है ।' यहाँ अन्त से उत्पन्न सद्य सुकृत को ही रस-स्वरूप या रसामिकापी माना गया है ।^१

इसके पूर्व 'अथर्व संहिता' (१० ८ ४४ 'रसेन वृत्ता कुतश्चनोः') में ब्रह्म के रसामक स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि वह स्वयं रस से वृत्त है । उपनिषदों में इस रसामिभूत ब्रह्म की रसामिभक्ति की किञ्चित् विस्तार से चर्चा की गई है । उपनिषदों के अनुसार वह ब्रह्म अक्रंता था । एक होने के कारण वह रमन नहीं कर सकता था । जब उसके मन में रमन की इच्छा हुई तो उसने एक से बहुत होने की कामना की । 'ब्रह्मास्मिन्नैव रमते । सोऽकामयत् पश्येद् बहुस्याम् । इत्त कामना में आनन्द की माया अचरम ही विद्यमान है, क्योंकि तै० उ० १ ७ के मंत्र में ब्रह्म के त्रिम रसामक रूप की चर्चा हुई है उसके 'रसं शोभायं कम्पचान्मही मयति से

१ यद्वै तत्सहस्रं रसो वै सा तै० उ० १, ७ ।

२ लं मन में सहस्र को प्रथम सप्तशती अष्टादश मात्रा गया है और दूसरी ओर राधावत्तमी इतिमान के सेवा चक्रा बीजा करीर, देवास आदि का नाम समिद्धों में लिखा है । मङ्गलनिष्ठा की १० १९६ 'इतनी है सद्य कुट्टन इमारो' । 'सैव चक्रा अक्रमाया, बीजा और करीर देवास चकारो' इत्त प्रकृत रसावत्तार सद्य सहस्र एवं रसिक सद्यों का विविध सङ्गण मध्यकालीन कालों में इतिगत होता है ।

एष है कि जीवात्मा इस रूप को प्राप्त कर आत्मसुख होता है। इससे इस का अंतिम परिणाम आत्मसुख ही विहित होता है, क्योंकि इसी मय के दूसरे पद में स्वयं का आत्मसुख करने का ही बतलाया गया है। 'एव ह्येवात्मसुखि'। अतः ब्रह्म के रसात्मक रूप से ही चित्त की अपेक्षा आत्मसुख-स्वरूप है। उपनिषदों में उसका आत्मसुख-स्वरूप की चिन्ता ही चर्चा की गई है, उससे एष है कि सृष्टि के विकास में आत्मसुख ही मूलमूल कारण है क्योंकि 'तत्सिद्धिं प्रापन्नियद् ही 'सृष्टुं ब्रह्मी २, १ में कहा गया है कि आत्मसुख ही ब्रह्म है। आत्मसुख ही सत्यमुक्त समस्त प्राणी उपपन्न होते हैं। वे उत्पन्न होकर आत्मसुख ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए अन्त में आत्मसुख ही प्राप्ति हो जाते हैं। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' ३।३।३२ में तो उससे ध्यानात् ब्रह्म कहा गया है कि इस आत्मसुख के अंश मात्र के आश्रय में ही सब प्राणी जीवित रहते हैं। ब्रह्मसूत्र के १, १ १२ तथा ३ ३ ११ 'आत्मसुखमयाऽप्यात्मात् और 'आत्मसुखात् प्रयाणस्य आदिशुद्धौ क अनुसार वाच्य में 'आत्मसुख' शब्द ही ब्रह्म का वाचक या पर्याय माना गया तथा आत्मसुख का ब्रह्म का धर्म ही बताया गया।

इसमें विहित होता है कि ब्रह्म के आत्मसुख रूप का उत्पन्न और विकास वैदिक काल से ही उसका रसात्मक रूप के साथ हुआ रहा है। किन्तु ब्रह्मात्मसुख और आत्मसुख के साथ विद्यात्मसुख का सम्बन्ध विषय पारित की-पुरुष के साथ मान्य जाता है वह वैदिक संहितायाम् कालक समग्रदायों में जाता हुआ मध्यकालीन तत्विक सम्प्रदायों में पूर्ण रूप में प्रकटित हुआ। इन सम्प्रदायों में जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध की-पुरुषवत् माना गया त्रिमूर्ति चरम रूप ब्रह्मात्मसुख की प्राप्ति है। इसकी ही एक मूल रूपरत्ना 'बृहदारण्यकोपनिषद्' के कुछ मंत्रों में उल्लिखित होती है। इसी अन्त में एक बात और विचारणीय है कि प्रायः कालक या तत्विक मूल रूप में ही अन्तिक उत्पन्न रसात्मक सम्पर्क का उत्पन्न करने हैं। यह अनुभव ऐतिहासिक से अतीतिगत की ओर उत्पन्न होता है। प्राणी प्रतीत होता है। ५० वं १ ३ ११ के अनुसार स्वयं में अन्तर्गत इतिहास मात्रा रूप का ककर पुनः प्राणित रूप में जाता है। यह विरलमय पुरः कर्तव्य मान्य होती है। कर्तव्य मान्य होती है। यह देव स्वभावतः में अन्तिक-अन्तिक भावों का प्राप्त हुआ बहुत से रूप धारण करता है। इसी प्रकार ही सित्त के साथ आत्मसुख मानता हुआ ईसता हुआ तथा सब देखता हुआ आत्मसुख ही इसी प्रकार सुखित में भी वह आत्मा स्वयं और विद्वान् के अन्तिक-अन्तिक रूप में स्वभावतः में हीर जाता है।

रसरूप

।

मध्यकालीन उपास्यों का रसात्मक रूप कीका का ही एक विकसित रूप है क्योंकि कृष्ण और राम के प्रश्न से स्वरूपित होने के अनन्तर पहले तो छीटात्मक रूपों की कल्पना की गई किन्तु बाद में वैष्णव सम्प्रदायों से ही रसिक सम्प्रदायों का आधिर्भाव हुआ जिसमें कृष्ण और राधा तथा राम और जानकी के रसात्मक रूप गृहीत हुए।

इन रसात्मक रूपों के विकास में रसो वै सा' की मूल प्रेरणा अक्षर्य विद्यमान रही है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' की 'ब्रह्मानम् ब्रह्मी' में ब्रह्म क प्रथम आधिर्भाव की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इससे पहले केवल असत् था। उससे सत् उत्पन्न हुआ। उसने स्वयं अपने को अभिन्नक क्रिया इमीष्टिय उसे सृष्ट कहा जाता है। यह जो सृष्ट है वही रस है। यह रस उपलब्ध कर ही आनन्दित होता है। यदि यह आकाश की मूर्ति व्यापक आनन्द स्वरूप नहीं होता तो कौन कीवित रह सकता। मिश्रणैव यही मयको आनन्द प्रदान करता है।' यहाँ असत् से उत्पन्न सत् सृष्ट को ही रस-स्वरूप या रसामिकापी माना गया है।

इसके पूर्व 'अथर्व संहिता (१० ८ ४४ 'रसेन एसा कृतमनोना') में ब्रह्म क रसात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि वह स्वयं रस। गत है। उपनिषदों में उस रसामिमृग ब्रह्म की रसामिभ्यक्ति की किंचित विस्तार से चर्चा की गई है। उपनिषदों के अनुसार वह ब्रह्म अकला था। एक होने के कारण वह रमन नहीं कर सकता था। जब उसके मन में रमन की इच्छा हुई तो उसने एक से बहुत होने की कामना की। एकाकी जैव रमते। मोडकामयत एकोऽह बहुस्वाम्। इस कामना में आनन्द की मात्रा अक्षर्य ही विद्यमान है; क्योंकि तै० उ० १ ७ के मंत्र में ब्रह्म क त्रिम रसात्मक रूप की चर्चा हुई है उसके 'रसं होवाय कृतमनन्दी भवति से

१ वरि तस्यै रसो वै सा ते ४० १ ७।

२ संत मय में सृष्ट का प्रथम सत्पुगी अवतार माना गया है और दूसरी ओर राधावतमी हरिम्वात ने सीता, ब्रह्मा बीवा कबीर देवास आदि का नाम रसिकों में लिखा है। मन्त्र कवि ध्यान को इ० १९१ 'इज्जी है सब कुडन हमारो'। तैम बना, अक नामा बीवा और कबीर देवाल बनारो' इस प्रकार रसाक्षर सत् सृष्टन वरि रसिक सत्नों का विभिन्न सम्मन्व मध्यकालीन काम्यों में इतिगत होता है।

स्पष्ट है कि जीवात्मा इन रस को प्राप्त कर आनन्दपुष्क होता है। इससे रस का अन्तिम परिणाम आनन्द ही विहित होता है, क्योंकि इसी मय क दूसरे पद में रस को आनन्दित करने वाला भी बताया गया है। 'एव शिवोऽमन्दपति । अतः ब्रह्म क रसात्मक रूप सत् और चित् की अपेक्षा आनन्द-स्वरूप है। उपनिषदों में उक्त आनन्द-स्वरूप की खितीनी नी चर्चा की गई है उससे स्पष्ट है कि सृष्टि क विकास में आनन्द ही मूलमूल कारण है, क्योंकि 'तैत्तिरी पाणिपद' की 'श्रुत्यु बली' २, १ में कहा गया है कि आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से ही सबमुक्त समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। वे उत्पन्न होकर आनन्द स ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए अन्त में आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। 'बृहदारण्यकोपनिषद्' ४।३।३२ में तो उससे आगे बढ़कर कहा गया है कि इस आनन्द के अन्त मात्र क आश्रय से ही सब प्राणी जीवित रहते हैं। ब्रह्मसूत्र क १, १ १२ तथा ३, ३, ११ 'आनन्दमयोऽन्यासात् और 'आनन्दाद्याः प्रधानरस' आदि सूत्रों क अनुसार बाद में 'आनन्द' शब्द भी ब्रह्म का वाचक या पर्याय माना गया तथा आनन्द को ब्रह्म का धर्म भी बताया गया।

इससे विहित होता है कि ब्रह्म के आनन्द-रूप का उद्भव और विकास वैदिक काल से ही उसक रसात्मक रूप क साथ होता रहा है। किन्तु ब्रह्मानन्द और रसानन्द के साथ विषयानन्द का सम्बन्ध जिस पार्थिव स्त्री-पुरुष के साथ माना जाता है वह वैष्णव सहजिया बाबूह सम्प्रदायों से होता हुआ मध्यकालीन रसिक सम्प्रदायों में पूर्ण रूप से प्रचलित हुआ। इन सम्प्रदायों में जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्त्री-पुरुषत्व माना गया जिसका चरम लक्ष्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। इसकी भी एक मूल रूपरेखा 'बृहदारण्यकोपनिषद्' क ब्रह्म मन्त्री में दृष्टिगत होती है। इसी क्रम में एक बात और विचारणीय है कि प्रायः बाबूह या रसिक भक्त स्वप्न में ही अधिक उसक रसात्मक सम्पर्क का अनुभव करते हैं। यह अनुभव सैम्ब्रिय से जतीम्ब्रिय की और उन्मुक्त होता हुआ मसीत होता है। सू० उ० ४, ३, ११ क अनुसार स्वप्न में आत्मा इम्ब्रिय माया रूप को छोड़कर पुनः आगस्तित स्वप्न में जाता है। यह द्विरण्यमय पुरुष वहाँ वासना होती है, वहाँ खड़ा जाता है। यह देव स्वप्नावस्था में ऊँच-नीच मायों को प्राप्त हुआ बहुत से रूप बना लेता है। इसी प्रकार वह शिष्यों क साथ आनन्द मनाता हुआ, ईसता हुआ तथा मय लेता हुआ सा रहता है। इसी प्रकार सुषुप्ति में भी वह आत्मा रमण और विहार कर जैसे भाषा या, जैसे स्वप्नावस्था में खीर खाता है।

उपर्युक्त कवनों में वासना, रमण विहार इत्यादि आत्मा के कवि रमिक सम्प्रदाय में प्रचलित तत्त्वों का विशेष परिचय देते हैं। मध्यकासीन कव्यों में इनका आत्यधिक विकास हुआ।

इसी क्रम में जीवात्मा और परमात्मा के श्री पुरुषवत् सम्बन्ध का भी मूळ रूप सू० उ० ४ ३ २१ में दृष्टिगत होता है। उस स्थल पर कहा गया है—कि यों तों वह कामरहित पापरहित और अमय रूप है। परन्तु व्यवहार में जिस प्रकार मियामायी को आर्क्षिगत करने वाले पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का इसी प्रकार वह पुरुष प्रज्ञात्मा से आर्क्षिगत होने पर न कुछ बाहर का विषय जानता है और न भीतर का यह इसका व्यस काम आत्मकाम अज्ञान और लोकाग्रूप्य रूप है।

इस कथन में जीवात्मा और पुरुष का श्री पुरुष सम्बन्ध स्पष्ट है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि परस्पर आर्क्षिगत होने पर वह व्यसकाम या आत्मकाम हो जाता है। रमिक सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण को उपास्य मानकर उनमें इसी भाव की स्थापना की गई।

मध्यकासीन के सम्प्रदायः पूर्व ही राम और कृष्ण के ब्रह्म रूपों का अस्तित्व उनक नामों से प्रचलित 'तावनीय' उपनिषदों में मिळता है। जो उपास्य रूप में प्रेमा या रागाभुगा भक्ति से उत्तरोत्तर घनिष्ठतम सम्बन्ध रखता हुआ प्रतीत होता है। साङ्ख्यशास्त्र ने गीता २ ५९, की व्याख्या करते हुए 'रस' शब्द को राग का तात्पर्य माना है। प्रायः जननातराद् और भक्ति की प्रेरणा और प्रसार में राग या प्रेम का महत्त्वपूर्ण योग रहा है क्योंकि भक्ति के प्रतिपादकों में द्याविद्वेष्य पूष नारद आदि सूत्रकारों ने भक्ति को 'परम अनुराग' या 'परम प्रेम' रूप का कहा है। भक्ति के इन रागप्रामक तत्त्वों के प्रभावात्पुरुष आच्छेदक कालीन राम-कृष्ण आदि उपास्यों की लीलाएँ लीला रस के रूप में परिणत हो गईं।

विशेषकर इन लीलात्मक रूपों की त्रिभुज लीलाओं में शृङ्गार की प्रधानता हुईं उनमें रमात्मक तत्त्वों का विकास हुआ। फिर भी लीला-रूप और रस-रूप में विशेष अन्तर यह विदित होता है कि लीला में सामान्यता जहाँ जवके रसभुक्त चरमाओं का विस्तार है, वहाँ रमावतार का सर्वाधिक सम्बन्ध रामलीला मित्रुज लीला या युगल कठि से है। त्रिभुज नायक श्रीकृष्ण और

१ योगी श्री भा० २ ५९। (स छन्दो रागो प्रतिष्ठा)।

२ दार्ष्टिक्य भक्ति सूत्र २, २, २ ता वापुष्टिकीचरे और नारद भक्ति सूत्र २ ता २४२।

मायिका रायिका हैं। वों का विकास की दृष्टि से राधा का संवाग पौराणिक परम्परा से गृहीत जाने की अपेक्षा भावार्थक तर्कों से अधिक समुक्त मतीत होता है क्योंकि किन्तु या उनक अवतारों में विद्यमान भिन्न ह्राविनी, मयिद और सन्धिनी शक्तिवों का समावेश माना जाता है^१, बाद में राधा को उसी ह्राविनी शक्ति से स्वरूपित किया गया।^२ इसक अतिरिक्त उपनिषदों के भावमयीया प्रकृति तर्कों का संबोग भी ब्रह्म-आत्मा क समावास्वर, कृष्ण-राधा से किया गया। 'स्कन्द पुराण' में राधा और कृष्ण के रसरूप की खर्चा करते समय कहा गया है कि राधा-श्रीकृष्ण की आत्मा हैं और श्रीकृष्ण उन्हीं में रमन करते हैं।^३ यहाँ राधा और कृष्ण की वास्तवी स्त्रीक नित्य गोकोक में होने वाली स्त्रीक है। किन्तु व्यापहारिकी स्त्रीक प्रकृत स्त्रीक के सदास भवतार स्त्रीक है।^४ आत्वाद्म मुख्य प्रबोधन होने के कारण राधा कृष्ण क रसरूप को स्त्रीकवतार की अपेक्षा रसावतार कहना अधिक बुद्धिसङ्गत जान पड़ता है। 'स्कन्द पुराण' क अनुसार द्वापर के अन्त में जब रहस्य स्त्रीक के अधिकारी मन्त्रों एक अन्तरङ्ग प्रेमियों के साथ श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं तो उनके अवतार का प्रबोधन होता है—रहस्य स्त्रीक का आत्वाद्म।^५ इस रस-स्त्रीक में कृष्ण को नित्य सहचरी राधा का नित्य समोग प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-स्त्रीक से सम्बद्ध शक्तियों को यहाँ राधा का अंसावतार माना गया है^६ तथा श्रीकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ उपासक रूप की खर्चा करते समय कहा गया है कि इनकी धाया से विष्णु बार-बार अवतार लेकर जर्म की स्थापना करते हैं।^७ इससे स्पष्ट है कि शक्तियों के उपासक राधाकृष्ण ही व्यापहारिक रसावतार के रूप में अवतरित होते हैं। अतः रसावतार निरम रूप का अवतारवादी पौराणिक रूप है। इस रूप में श्रीकृष्ण और राधा नित्य एक दूसरे के सम्मुख हैं। दोनों का परस्पर

१ वि. पु० १. १२. ३९। रायिका इवैव कृष्णैर मनस विकार।

२ स्वरूपशक्ति ह्राविनी नाम बाहार ये च० इ० ३५ आदि स्त्रीक अर्थात् परि०।
आत्मा तु रायिका तस्य तमेव रमन्वसी।

३ आत्मारामतया प्राचीं श्रेष्णैः मूढ वैदिभिः।

स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड १ भा० १ श्लो० १।

४ स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड भा० १ श्लो० २५।

'अद्वैत' शक्तिवा तस्य वास्तवी व्यापहारिकी।^८

५ कदाचिद् द्वापरस्यान्ते तस्त्रीकविकारिणः। समवेता बरावसुरैर्बेदानी तथा हरिः।
तै उदाकारेण श्रेष्ठ समावेशार्थमीप्सिता। तथा देवात्कीड्यन्मयज्जठरान्ति समन्वताः।

स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड २ भा० म० १, २९।

६ स्कन्द पुराण वैष्णव खण्ड २ भा० म० १, २९।

७ स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड १ भा० म० १ श्लो० ३०।

संवाग निग्य है तथा दोनों के अभिन्न होने के कारण श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा भी श्रीकृष्ण हैं। इन दोनों का प्रेम ही बसा है।^१

इसके अतिरिक्त रस रूप श्रीकृष्ण की एक अन्य परम्परा भी साक्षात्कीर्ण साहित्य में उचित होती है। जिसमें राधाकृष्ण की अर्पणा गोपीजनवत्सलकृष्ण अधिक स्पष्ट है। पुराणों के अनुसार सारस्वत ऋषि के द्वारा पुत्र में सुतियों के अनुरोध से परमेश्वर श्रीकृष्ण ने पृथावन में रास कीटा स्वीकार की जिसमें सुतिर्षो गोपियों के रूप में अवतीर्ण होती हैं।^२ रसावतार की यह परम्परा राधाकृष्ण की अर्पणा मागधत-परम्परा के अधिक निकट विद्यमान होती है।

मध्यकाल में 'गीतगोविन्द' पूर्व 'कृष्णकर्णायुत' में श्रीकृष्ण के रसात्मक रूपों का विस्तृत वर्णन हुआ है। जिसमें रस का प्रमुख प्रपाञ्चक स्पष्ट उचित दाता है। रास कीटा निकुञ्ज-कीटा और निकुञ्ज विहार का वर्णन करने वाले अथर्व ने 'गीतगोविन्द' के कृष्ण को प्रारम्भ में ही कचमी के कुचमण्डल के आश्रित रहने वाला बतलाया है।^३ इसी प्रथम 'कृष्णकर्णायुत' में श्रीकृष्ण की माधुर्य पुरित कीटाओं का वर्णन करते हुए लीलायुक्त ने इन्हें रंगार रस-सर्पस्व की धराधि से तो विनूपित किया ही है साथ ही संभवतः कीटा रस के ही निमित्त कृष्ण का भराकार रूप स्वीकार करने का उल्लेख किया है।^४ इन रसात्मक रूपों का अथर्व प्रसार साक्षात्कीर्ण बहम निम्बार्क चैतन्य राधावत्समी, हरिदामी प्रभृति सम्प्रदायों के साहित्य में हुआ है। किन्तु तत् सम्प्रदाय के कवियों ने अतिमात्रक उनकी रसात्मक लीलाओं के वर्णन पर दिया है इतना उनका अथर्ववादी रसरूपात्मक प्रसङ्गों पर नहीं। फिर भी कतिपय कवियों के पदों में श्रीकृष्ण के एक पौराणिक रसावतार परम्पराओं की प्रामाणिक चर्चा हुई है। उनकी चर्चा के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि रसावतार में

१ 'स एव सा स वैशालि बंधी तत्प्रेमकपिष्ठा'।

स्कन्द पुराणे अष्टमोऽध्यायः १२, १३।

२ अम्बामिनि विरेको तु जाने तदवर्षेयुपदे।

कल्प सारस्वतं प्राप्य अग्नि गोप्यो मदिव्यवत् ॥

वृत्तिर्षा भारतै श्रेष्ठे माधुरे प्रथम मण्डके।

पृथावने मदिव्यवमि प्रेवन्थो रासमण्डले ॥

कार वर्मेन ज्ञानेह तद्वर्षे तर्पणोऽधिकम्।

मदि तन्प्राप्य सर्वेऽपि कृणुन्वा मदिव्यवत् ॥

सम्प्रदाय प्रयोग पृ० १२ २३ श्लो० २३ २५।

३ अिनकमला कुचमण्डल पूज कुण्डल ५। कविन कविन वनमान नव नव देव हरे ॥

गीत गोविन्द, प्रथम सर्ग द्वितीय प्रकल्प २।

४ अज्ञार रस सर्वेश्वर द्विद्विविधविमूषणम्। अज्ञीकन भराकारमागधेनुवनामवत् ॥

कृष्णकर्णायुत पृ० ४० १, ११।

कृष्ण विष्णु के अवतार नहीं अपितु गोक्षेत्र के निवासी और विषय स्वीकार में रत परमेश्वर एवं रसिकों के उपास्य राधाकृष्ण या गोपीजन-वन्दन-कृष्ण हैं। कल्प विरोध में पूष्णी पर स्थित बृन्दावन में रसिकों के रजन के निमित्त प्रकट या म्याबहारिकी रस स्वीकार करते हैं। वह रस स्वीकार इसी बृन्दावन में गुह रूप से होने वाली निराल लीला का अवतारित रूप है। अतएव इस युग के कवियों में दोनों प्रकार की रस कल्पियों का अपूर्व समावेश हुआ है। सुरदास के कथनानुसार इस अवतार की मायिका राधा समस्त गुणों से परिचित है। स्वाम इस रूप में राधा के अधीन है। दोनों रस कल्पि में इस प्रकार कीज है कि वे परस्पर जग मर के किये भी पृथक् नहीं होते हैं।^१ राधा और कृष्ण इस रस कल्पि के किये बार-बार बृन्दावन में अवतरित होते हैं।^२ मन्दास के कथनानुसार वे अपने शब्द ब्रह्ममय वेणु से सुर, मर, गवर्ष आदि सभी को मोह लेते हैं।^३ इन्होंने ब्रह्म की सभी अवतरित होने वाली ब्योतियों को रसमय माना है।^४ 'शैतन्य चरितामृत' में इनके युगक रघात्मक रूप की चर्चा करते हुये कहा गया है कि राधा-कृष्ण रचरूपतः एक ही हैं, किन्तु अवश्य विकास रस के आरवादन के निमित्त वे दो देह धारण करते हैं।^५ 'सूरकारावली' के पदों के अनुसार बृन्दावन में शकैव स्त्रीका-रत कृष्ण को मधुरा की रसुति हा आई, परन्तु राधा राभी ने वहाँ जाने से रोक दिया।^६ इस प्रकार रस

१ श्री राधिका सख्य गुल वृत्त काई स्वाम अधीन।

सँग से होय नहीं कहुँ न्यारे, मय रह्य अति जीत ॥

सूरदासर पृ० १११ पद १३, १४।

२ या कारण वैकुण्ठ विस्तारत निज अरुण मन में नहीं भावत।

राधा शब्द ही बरि पुनि प्रीति, या एक की बृन्दावन भावत ॥

सूरदासर पृ० ११४ पद १।

३ शब्द ब्रह्ममय वेणु बजाय सबै जन मोही।

हर मर मन पंचवर्ष कुब न जाने हम को है ॥

ज० प्र० श्रीकृष्ण विद्यालय पञ्जाबवासी पृ० ४०, ११।

४ को क्षेत्र मोनि ब्रह्ममय, रसमय सबही धार।

सी प्रवर्तित निज रूप करि हरि तिसरे अन्वार ॥

ज० प्र० माया ब्रह्ममय पृ २११ अ० १।

५ राधाकृष्ण एक आत्मा दोय देह बरें, म्यात्म्य विकास रत आत्मात्म करे।

वे० च आदि लीला, अतुर्ष परिचयैर पृ० १५।

६ बृन्दावन हरि बरि विधि स्वीकृत राधिका संग।

सबन कुंज में क्षेत्र विरिचर मधुरा की सुवि धार।

रूप में राधा का अधिक प्राधान्य उचित होता है। 'युगक सतक' के अनुसार से स्वयं इस रस के निमित्त विविध प्रकार के रूप धारण करती हैं।^१ भुवदास ने पौराणिक रसावतार की खर्चा करते हुये कहा है कि जो सर्वोपरि कृष्ण प्राणों के सदृश प्रिय मियतम हैं जो छकिटा आदि सखियों के द्वारा सपित हैं^२ उन्हींने अपने रसिक भक्तों के निमित्त यह लीला रूप धारण किया है।^३ अपने अममत्त भक्तों के निमित्त उन्हींने उस लीला का विस्तार किया है।^४ इस प्रकार मंत्र में उचितने लीला-वर्णित हुए हैं इनमें निकुञ्ज केकि संभवता सबका सार स्वरूप है।^५ 'चैतन्य चरितामृत' में 'स्कन्ध पुराण के रसावतार का वर्णन करते हुये कहा गया है कि अद्वाइसवें हापर में यय के सहित कृष्ण का अयतार हुआ।^६ वों तो गांकोक में श्रीकृष्ण निरव विहार करते हैं, किन्तु एक-एक बार मझा के एक दिन भर अवतरित होकर मकर विहार करते हैं।^७

इसके अतिरिक्त सुरदास ने गोपीश्रवण-बद्धम-कृष्ण के रसावतार की खर्चा करते हुये कहा है कि छुठिबों ने सखिदासम् कृष्ण से त्रिगुणातीत पूब मनवाणी से अगम रूप से दिखाने की याचना की।^८ उनही याचना पर श्रीकृष्ण ने हुम्दासन की हासलीला स्वीकार की जिसमें वेद की श्रुत्याओं ने गोपियों के

१ बहुत रूप धरि हरि प्रिया मनरंजन रस देत।

मन्मथ मन मोहन मिथुन, यण्डल मधि छवि देन ॥ कुण्डल सतक पृ० ८, २१।

२ सर्वोपरि राधा कुर्वति प्रिय प्रातनि के नाम।

अधिकारिक सैवत दिनहि अति प्रदीन रस बाजत।

भुवदास मन्थावली, इहद नामन पुराण की भाषा पृ० २८१।

३ परकी पेटि प्रेम की मज कीकी विलार।

मळम द्विज लीलाधरी कवनामिनि सुकुमार ॥ वही पृ० २८१।

४ बहुत भौधि लीला रचन सैसद मळ अवार।

अपनी अपनी रवि लिये काय अकि विलार ॥ भुवदास मन्थावली पृ० २८१।

५ मंत्र में लीला वर्णित मनी सु बहुत प्रकार।

सबसे सार विहार है रसिकनि की निरवार ॥ भुवदास मंत्र पृ० २८१।

६ अद्वाइस अर्जुनी हावर के देव मंत्र के सहित होव कृष्ण को प्रवेश।

श्लो० ५० आदि लीला परिच्छेद।

७ पूर्व मगवाव कृष्ण प्रवेश कुमार बोलीक में मंत्र संग शिष्य विहार।

मझा एक दिन मध्य वह एक बार अवतीर्ण होके करें मकर विहार ॥

श्लो० ५० आदि लीला १ परिच्छेद।

८ छुठिनि क्यो कर जोरि, लखिरामन्द देव तुम।

को माराचम आदि कर तुम्हारे लो लरी हम ॥

विगुन रदिन मित्र रूप से लखी न राधे प्रिय।

मन वाली ते अगम की, दिव्यामनु लो देव ॥ मू० पृ० १५३ पद १००३

रूप में अवतरित होकर उसके सह विहार किया।^१ भुवनाम भी के अनुसार किसोर कृष्ण ने मुनिबों से कहा कि मैं मज में अवतरित होने बाछा हूँ इसलिये तुम लोग भी वहीं उत्पन्न हो। कलतः वे सक्षियों के रूप में अवतरित हुईं।^२ उन सक्षियों के स्मरण करने के फलस्वरूप श्रीपति भी अवतरित हुए।^३ उन्होंने सभी अवतारों को अपने कार्य में ब्या जाने का आदेश दिया।^४

इस प्रकार एक ही अवतरित रूप विभिन्न प्रयोगों के फलस्वरूप विविध रूपों में पुरानों एक तत्कालीन साहित्य में प्रस्तुत किया गया, जिनमें अन्तिम रसावतार रसात्मक प्रयोग के निमित्त विकसित श्रीकृष्ण की रास श्रिया और युगल केहि से सम्बद्ध रसात्मक रूप है। जो कथाम्तर में रसिक सम्प्रदायों में नित्य लीला एक अवतरित लीला के रूप में प्रचलित हुआ।

इसके अतिरिक्त 'भागवतपुराण' के चौपीस लीलावतारों का मध्यकालीन मऊ कवियों ने विस्तृत वर्णन किया है, जिनके रूपों के क्रमिक विकास एक मध्यकालीन रूप का विशेषण अगले अध्याय में किया गया है।



१ इंद्रात्मन मित्र नाम कृपा करि तहाँ दिखानी ।
 लीकृत स्वाम किसोर, तहँ किय गोपिका साथ ॥

भैरव चम्पा के गोपिका इति संग किनी विहार ॥ सूर० पृ ३३३ १७५३ ।

२ दिन प्रति तन नाठि माह, बह छुटि जोती मानि ।
 प्रगट होइ मज कार प्रम, हमहँ प्रगटि हैं मानि ॥

मुबदास मन्वावली 'बृहद् नामन पुराण की भाषा' पृ० १७४ ।

३ जाली बानी महरि छो लखी प्रगट मई कार ।

भैरवहँ के मानन्द मयी, अरजुन दरसन पार ॥

मुब० मन्वावली 'बृ' का पु० की भाषा' पृ १८५ ।

४ मुबदास मन्वावली 'बृहद् नामन पुराण की भाषा' पृ० १८५ ।

नौवाँ अध्याय शैवीस अवतार

शरवती पुराणों में सर्वाधिक प्रचलित वृक्षावतारों के अतिरिक्त विष्णु के अवतारों की संख्या सर्वत्र एक-सी नहीं रही। 'भागवतपुराण' में अवतारों के तीस विवरण मिलते हैं जो अन्य पुराणों में पाई जाने वाली वृक्षावतार-परम्परा से थोड़ा भिन्न प्रतीत होते हैं। 'भागवत' में महाबाहू के असंख्य अवतार बताये गये हैं।^१ पद्मा प्रसङ्ग कमी इन अवतारों में ३२ कमी २४ और कमी १६ को प्रसुप्त रूप से गिना विधा गया है।^२ कमी-कमी प्राण्य, उभिय आदि आतिवाची सन्तों में उनका सामाजिक उल्लेख मिल जाता है।^३ इसका अतिरिक्त 'पुसम स्कण्ड' में एक सूची मिलती है, जिसमें चारह अवतारों के नाम गिनाये गये हैं; परन्तु इनके क्रम में वृक्षावतारों की परम्परा का भाव होता है।^४ इन सूचियों में पाँचरात्र साहित्य में बामुदेव के अवतारों के ही पर्याय विग्रहों की संख्या २४ से बढ़कर ३९ तक हो गई है।^५

१ भा० १, ३, २६।

२ भा २० २, ४०।

३ भा० १ ३ भा ३ ७ और २१, ४।

४ भा० २० २ ४०।

५. पाण्ड्यारकर के हेमाद्रि हस्त उद्धृत और 'वृक्षवतारो रघुनि' १० ५, २४५ में उद्धृत इन २४ विग्रहों का उल्लेख किया है जिसकी सूची का वास्तविक रूप के साथ ही उद्धृत हुआ है। इन २४ विग्रहों के नाम इन प्रकार हैं—केशव, वारुण्य, भावव, शैविण्य, विष्णु महामुहम त्रिविक्रम वामन भीमा हरिकेश पद्मनाभ वामोदर, लक्ष्मण, वास्तव्य प्रद्युम्न अनिरुद्ध पुष्पाक्षय अश्वत्थ वरविह अश्वत्थ, जगदीश उदय, हरि श्रीहृन्म है। ये विष्णु के २४ अवतारों की जयन्ती २४ नाम ही उभिय प्रणीत होते हैं; क्योंकि अवतारों और विग्रहों में अन्तर यह है कि जहाँ अवतार उत्पन्न होते जाते जाते जाते हैं वहाँ विग्रह अवतार स्वभाव वाले हीव से प्राग्भक्ति हीव के समान उत्पन्न होते गये हैं। ये विष्णु के ऐश्वर्य के धानक विभिन्न नाम और रूप प्रणीत होते हैं। 'तत्त्वप्र' ५० १९९ के अनुसार पाँचरात्रों में ५० १६ वर्ष ५ ११२-११३ में उद्धृत 'विष्णुसूक्त संहिता' और 'अद्विष्टक संहिता' ५, ५०-५३ में ३९ विग्रहों के नाम दिये गये हैं। मेहर ने 'श्रीकण्ठक वृ अद्विष्टक संहिता' ५० ४१-४२ में 'भागवत' के अवतारों के

उपर 'भागवत' के आधार पर विकसित 'कृष्णभागवतामृत' में यह संख्या २५ और 'सात्वत तन्त्र' में लगभग ४१ से भी अधिक हो गई है।^१ इन प्रकार मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में भी कोई सर्वमान्य सूची गृहीत नहीं हुई है। रामानुज, माध्व, विष्वाकर्त, ब्रह्म और चैतन्य सम्प्रदायों में भागवत एवं पांचरात्र दोनों परम्पराओं के अवतारों को समाविष्ट कर मिश्रित संख्या की अपेक्षा प्रायः अंग कथा, भावज्ञ आदि रूपों में अवतारों पर विचार किया है, किन्तु इस विषय में क्या-स्याल विवेचन किया गया है।

परन्तु उक्त सूचियों में अष्टावतारों के अतिरिक्त भागवत के २४ अवतार ही मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में अधिक गृहीत हुये हैं। हिन्दी साहित्य में यहाँ चौबीस अवतारों का विस्तृत वर्णन किया गया है उसमें प्रायः 'भागवत' की तीनों सूचियों का समावेश हुआ है। 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त अन्य परवर्ती पुराणों में २४ अवतारों का अष्टावत जैसा वर्णन नहीं मिलता। 'भागवत' की प्रचलित चौबीस अवतार परम्परा को इतिहासकारों ने बीड़ों और जैनों से प्रभावित माना है। श्री गीरीशचंद्र हीराचन्द्र जोषा का कथन है कि चौबीस अवतारों की यह कल्पना भी बीड़ों के २४ बुद्ध और जैनों के २४ तीर्थंकरों की कल्पना के आधार पर हुई है।^२ परन्तु यह कल्पना कठिन है कि किसकी परम्परा का अनुकरण हुआ है।

जो हो हिन्दी साहित्य में 'भागवत' के चौबीस अवतारों का अत्यधिक प्रचार हुआ। विशेषकर सूरदास और बारहठ ने चौबीस अवतारों के वर्णन में 'भागवत' को ही आधार-स्वरूप ग्रहण किया है।^३ इन कवियों द्वारा किये

साथ प्रकृत करते हुए हममें २४ अवतारों का समावेश माना है। १० विभवों के नाम इस प्रकार हैं—वचनाय, सुभ, अनन्त, दुष्कलात्मन, मधुसूदन, विष्वाधिर, अरि, विशरुण, विद्वान्, श्रीवात्मन, बाबुबाबकन, बर्म, बापीचर, पद्मार्जुनाजी कमठेचर, बराह, मुक्ति, श्रीमूच, हरन, श्रीपति, कामात्मन, राहुजीव, काक्येदिम, पारिवातदर, कोकलाय, सप्तदात्या, बराहजैव, ग्यागोव्यागी, ब्रह्मप्राण, वात्मदेव, विविक्रम, बर, मारायन, इति, कृष्ण, बरद्वाराम, राम, देविदिब, अरि, पाताक उपन। को १० बी० ४ ५ ११-१७।

१ कृष्णभागवतामृत ५०-७० बी० २२, सात्वत तन्त्र द्वितीय पटल।

२ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति। (१९५१ सं०) ५०-१५।

३ सूरदास—सूरसारावली ५०-६-११ सूरसागर ५०-१२५-१२७ पद ६०८ अवतार चरित सं १७११ ना म० सं० (६ कि० प्रश्नि) सम्पूर्ण ग्रन्थ में चौबीस अवतारों का वर्णन और अन्त में एकत्र भी कलक बटैक हुआ है 'विरिच तीम अस्वीस मर अवतार अर्थात् १'

नये विस्तृत षष्ठम के अतिरिक्त सप्तों में रामानन्द^१ और राजब^२ आदि तथा सगुण सत्ता में बैजू^३ कल्पदास,^४ धामादास आदि ने कबल चौबीस अवतार शब्द का प्रयोग किया है और नाम सामान्यतः गिनाया है। इससे प्रतीत होता है कि चौबीस अवतार शब्द भी इसावतारों के सत्य कवि के रूप में प्रचलित हो गया था। इस युग में चौबीस अवतारों के किन्हे 'चौबीस कीकाव्य' का प्रयोग होने के कारण 'लीलावत' के ही कीकावतारों की पुष्टि होती है।^५ 'भागवत २, ७ में क्रमशः बराह, सुयज्ञ कपिल वृत्ताश्रय, जगन्नाथ (समक, समन्वय, समात्म, सनातन) भर-बारायण, भुवमिन्, पृथु, ऋषभ, इक्ष्वाकु, मत्स्य, कश्यप, मुसिह, गणेश हरि, कामन हंस, मनु, बन्धुमन्त्रि, परशुराम, राम, कृष्ण, बकराम व्यास, बुद्ध कल्कि, इन चौबीस अवतारों का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त षष्ठम सूची में गृहीत भा० १, ३, ८ और भा० १, ३, ८ के मोहिनी अवतार का भी हिन्दी कवियों ने वर्णन किया है। सम्भवतः कीकावतार की प्रकृति से प्रभावित होने के कारण 'भागवत' में इसावतारों का क्रम अधिक प्रचलित नहीं हुआ। तत्कालीन कवियों में नरहरिदास बारहद का क्रम बहुत कुछ भिन्न होते हुए भी इससे कुछ भिन्नता जुड़ता है। बारहद ने बराह, सनकादि, पञ्च नर बारायण कपिल वृत्ताश्रय, ऋषभ, भुव पृथु इक्ष्वाकु कूर्म, सप्तर (मत्स्य) मुसिह कामन हरि, इस सम्बन्ध, बन्धुमन्त्रि, कामदानेश व्यास, रघुनाथ कृष्ण बौद्ध, आदि २३ अवतारों का एक साथ और कल्कि का पृथक उल्लेख किया है।^६ परन्तु तत्कालीन साहित्य में अम्बत्र यह क्रम उचित नहीं होता।

१ न वहाँ चौबीसु वर वरन रा० दि० २ । ना प्र स० ५० ८९ ।

२ एक कही अवतार इस एक कही चौबीस । रघुनाथ की वानी ५० २२८ ।

३ भाव अवतार भवै चौबीस वपुवर । राम कल्पदुम की० २५ ४५ ।

४ जगुनिश कीकावतारी । राम कल्पदुम की० २५ ५२९ ।

५ चौबीस रूप लीला कविर् भक्तनाथ, रूपका ५० ४७ क ५ चौबीस षष्ठम हरि वपुवर, ५० २५७ क ।

६ कितदि आदि बारहद भय सनकादिक स्वामी ।

तथा कव्य अवतार नर ज्ञ बारायण यामी ॥

कपिल ज्ञ वृत्ताश्रय ऋषभ भुव पृथु इक्ष्वाकु ।

कुरम सप्तर मुसिह द्विजन्तु कामन हरि देवा ॥

हृष हंस बन्धुमन्त्रुनरदि कामदग्नि कम व्यास कव ।

रघुनाथ कृष्ण नरवीर प्रभु कू बने अवतार भव ॥

--- --- --- ---

विदिग ठीक अव बीस भय अवतार अर्जनी ॥

--- --- --- ---

सूरदास, कपनदास और अमदास वा नामादास आदि ने प्रारम्भ में दशावतारों का क्रम रखकर अन्त में शेष चौदह अवतारों को समाविष्ट किया है। अतः सूरदास के अनुसार मत्स्य, कूर्म, वराह, कृत्तिका, वामन, परशुराम, राम बासुदेव, बुद्ध, कर्किक आदि दशावतारों के साथ सबकादि, व्यास इंद्र, नारायण, श्यमन, नारद, शम्भुम्हरी दत्तात्रेय, पूषु, बज्रपुरुष कपिल, मनु, वृषभधीय भुव-अवतार आदि नारद को लेकर १५ अवतारों को समुक्त किया है।^१ कपनदास ने भी दशावतारों के साथ चौदह अवतारों को मिलाया है परन्तु नारद को इन्होंने ग्रहण नहीं किया है, अपितु यदुराम और अनन्त दो नये अवतारों का समावेश किया है।^२ इन्हीं के सहस्र नामादास ने 'मच्छमाळ' में चौबीस अवतारों की चर्चा करते समय दशावतार और तत्पश्चात् चतुर्विंश अवतारों का वर्णन किया है।^३ चौबीस अवतार के उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त इनका पूषक पूषक विस्तृत वर्णन भी कतिपय कवियों ने किया है। हम उचित से प्रत्येक अवतार का क्रमिक विवरण एवं उनके मन्त्रकाशीन रूप का विशेषण अपेक्षित जान पड़ता है, क्योंकि आद्योत्पत्त्या में अवतारों के जिन रूपों का वर्णन हुआ है वे प्राचीन साहित्य एवं पौराणिक परम्पराओं से विकसित होकर प्रायः परम्परागत रूपों में शृहीत हुये हैं। उनमें पूषक-पूषक विज्ञान के विभिन्न सर्व प्रथम मत्स्य, वराह कूर्म, कृत्तिका वामन, आदि पूर्व पौराणिक अवतारों तथा परशुराम राम कृष्ण, बुद्ध कर्किक आदि

अधिकृत सब उद्योग आदि प्रमु कर्त्तव्य बन्धु बन्धि ४

इस पर मैं प्रमुक्त सम्भवतः 'तनुवर्द्धि' शम्भुम्हरी का नावक है।

अवतार चरित । ६० के० ।

१ मत्स्य, कूर्म, वराह, कृत्तिका वरसिंह रूप चरित ।

वामन कृत्तिका परशुराम, पुनि राम रूप चरित ॥

बासुदेव और मनी बुद्ध मनी पुनि और ।

और कर्त्तव्य और है और न द्वितीया और ॥

--- --- --- ---

सुनकरिक, पुनि व्यास कृत्तिका पर इस रूप चरित ।

पुनि नारायण श्यमन देव, नारद शम्भुम्हरी ॥

दत्तात्रेय एवं पूषु कृत्तिका बज्रपुरष वपुचार ।

कर्किक मनु वृषभधीय पुनि श्रीश्री भुव अवतार ॥ मूरसागर ६० १२३ पर ६०८

२ मत्स्य कर्त्तव्य कृत्तिका वरसिंह वामन परशुराम अनुवर कर्किकाम विपुष बद्ध विरोधारी ।

कर्किकी मनुव्यास इंद्र बज्र वृषभधीय वरीपति, कर्किकरत्त सुकर्मचरित चारो ।

इस अवन्त शम्भुम्हरी बुद्धकर्म जानत प्रसव प्रमत्त चतुर्विंश श्रीव्यासतारो ।

राम कर्त्तव्यम श्री १ ६० ५२५ ।

३ मच्छमाळ, कपनदास ६० ४७ ६० ५ ।

ऐतिहासिक पुरुषों तथा चौदह अन्य अघतारों में क्रमशः हयग्रीव, व्यास, पृथु हरि, हंस, सम्बन्तर, पशु, अथवा भुववरश्मि, घम्बन्तरि वर-नारायण इत, कपिल तथा स्पृह अघतारों में नारद भीर मोहिनी का विचार किया गया है।

मत्स्य

विष्णु के अघतारों में मत्स्यावतार का प्रायः प्रथम स्थान दिया जाता है। आठोस-काक में मत्स्यावतार के त्रिज रूपों को विष्णु से सम्बद्ध किया गया है, वह विष्णु और मत्स्य-संबंध का प्राचीनतम रूप नहीं है।

मत्स्यावतार का प्राचीनतम रूप ब्राह्मण साहित्य में मिलता है और इसका संबंध सत्यवाचन के उस कथन से सम्बद्ध है जो इतर साहित्य में भी मिलता है।^१

प्रजापति का अघतार

'सतपथ ब्राह्मण' में (१, ८, १) इस कथा का विस्तृत वर्णन हुआ है; इसका सारांश इस प्रकार है कि मनु प्रातःकाल में आचमन कर रहे थे। उसी समय उनके हाथ में एक मछली जा गई। उसने कहा कि मेरी रक्षा करो और मुझे पाछो, बल-प्रलय में मैं भी तुम्हारी रक्षा करूँगी। मनु ने उसे एक सुरक्षित घड़े में रखा दिया परन्तु ज्यों-ज्यों उसका शरीर बढ़ा होता गया मनु ने क्रमशः उसको घड़े से ताछा, ताछा से बढ़ी और अंत में महासमुद्र में डाल दिया। प्रलय होने पर वे अनेक सृष्टि के बीजों को ऊपर वायु पर चढ़ाएँ और हस्ती से अपनी वायु को मत्स्य की एक मात्र सिंग में बाँध दिया। प्रलय समाप्त होने के पश्चात् मनु ने पशु करके पुनः सृष्टि का विकास किया। यहाँ मत्स्य को बिहानों के मत्स्यावतार प्रजापति का रूप बतलाया गया है।^२ इसके अतिरिक्त 'महाभारत' 'वन पर्व' १८० अध्याय में पुनः इसी कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ मत्स्य स्वयं कहता है कि मैं प्रजापति ब्राह्मण हूँ। मुझ से परो कोई हमारी बलु देने में नहीं आती है। मैंने महाभारत का रूप धारण कर तुम्हें इस प्रलय से बचाया है। तदनन्तर वह देवता, असुर,

१ मत्स्य-कथा को विभिन्नता यह है कि वह श्र० वे० में तो नहीं मिलती किन्तु आश्वलायन श्रुति में मत्स्य-कथा और महाभारत में मिलती है।

२ श्र० मा० १, ८, १ १-३ मत्स्ये इ वेत्याः विनायक्ये सप्तम्याते भीर व० रा० ८० ती जी० १४-१५ वृ० १११ ब्रह्मण्येन च वद कथा जेतो भीर बीजो मे वती मिलती है।

'मातस्य' के अतिरिक्त अम्ब पुराणों में भी प्रायः इन्हीं कथाओं की पुनरावृत्ति हुई है। 'मत्स्यपुराण' में मत्स्य मनु से कहते हैं कि प्रथम क अमन्तर सृष्टि का प्रारम्भ किये जाने पर वे वेदों का प्रवर्तन करेंगे।^१ उक्त कथन में मत्स्यावतार के पुराणों में विशेष रूप से प्रचलित रूप का परिचय मिलता है।

'अग्निपुराण' में मनु की रक्षा ह्यग्रीव-वच भी इनका प्रमुख प्रयोजन माना गया है।^२ मातस्यरूपधारी विष्णु 'स्कंद-पुराण' के अनुसार बहों के उद्धार क किये संजामुर का वच करते हैं।^३ 'पद्मपुराण' में मातस्यरूप में मगधाह ह्यग्रीव के स्थान में मनुकैवलेय का वच करते हैं।^४

इस प्रकार पुराणों में मातस्यावतार के प्रयोजनों में प्रायः मनु-रक्षा और वेदोद्धार संबंधी प्रयोजनों में साम्य होने पर भी असुरों क वच में किंचित परिवर्तन हीक पड़ता है।

मध्यकाळीन साहित्य क कवियों ने स्वतंत्र रूप से तो नहीं पर अष्टावतारों क मर्म में मातस्यावतार का वर्णन किया है। विशेषकर दत्तवी या प्यारवही सती क कवि चमंग्य ने विष्णु क मातस्यावतार का प्रारम्भ में ही वर्णन करते हुये मनु मत्स्य-कथा का विस्तृत परिचय दिया है। उसमें ह्यग्रीव या बहोद्धार कार्य का उल्लेख नहीं हुआ है।^५ परन्तु बारहवीं सती क अयदेव ने प्रथमकथा और बहोद्धार दोनो प्रयोजनों की चर्चा पूर्व-पूर्व की है। 'दृषीराज रासो' में मातस्यावतार का भीरु रस पूर्व वर्णन हुआ है। पर उक्त कवियों की अवेद्य रासो की कथा में मनु-मातस्या-कथा का उल्लेख न होकर बहों को सुरामे वाले असुरों क संहारक रूप का वर्णन है।^६ अंत में रासो का पेट पाद और बहों का भिक्षाक कर विष्णु प्रदाय का प्रदान करत है।^७

मिश्रार्क सम्प्रदाय के भक्त कवि परशुरामाचार्य ने अष्टावतारों में मातस्यरूप का वर्णन करते हुये पौराणिक उपादानों का ही महत्व किया है। इनके पदों क अनुसार हरि ने मातस्य रूप धारण कर पाताल में गये हुए संजामुर को पकड़ा और उसका उद्धार पादकर बहों का प्रदाय किया।^८

वेदां की रक्षा है। मा० २ ७, २२ में ह्यग्रीवके क्रिय 'ह्यग्रीव' अम्ब का प्रयोग हुआ है। सम्भव है मातस्यावतार से ही ह्यग्रीव का विकास हुआ हो। मा० ८ २४ पं०।

१. मातस्यपुराण २ ६-१६।

२. अग्निपुराण २ अध्याय।

३. स्कंद पुराण, उत्तरखण्ड १२ १।

४. पद्मपुराण सृष्टिरंज ३७ अध्याय।

५. अष्टावतार चरित मातस्यावतार।

६. शीत गोविन्द २ २।

७. दृषीराज रासो दूसरा सम्य।

८. अयमे वच कन अरयो अष्टावतारक सोपन और सुध्याय अय।

सीदित सोपि जीवा लीलाह लीवन वाच पशक्ति अवे ॥

इसावतारों के अतिरिक्त मत्स्यावतार को भिन्न कवियों ने चौबीस अवतारों में ग्रहण किया है जिनमें 'भागवत' की परम्परा का प्रारम्भ हुआ है। विशेषकर 'सूरसागर' और 'सूरभारत' दोनों में मत्स्यावतार का सर्वप्रथम सूरदास से किया है। 'सूरसागर' के अनुसार सदैव मत्स्य का संकट निवारण करने वाले हरि ने बेहों की रक्षा के निमित्त मत्स्यरूप धारण किया, और सत्यव्रत की प्रकल्प से रक्षा की मत्स्यावतार से सम्बद्ध प्रथम पद में संज्ञासुर और सत्यव्रत दोनों का समावेश हुआ है।^१ परन्तु दूसरे पद का सबब कबल संज्ञासुर और बेहों का उद्धार मात्र है।^२ 'सूरभारत' के अनुसार संज्ञासुर का वध ह्यग्रिव द्वारा हुआ है।^३ और प्रकल्प कथा को मत्स्यावतार से सम्बद्ध किया गया है।^४ गोस्वामी तुलसीदास ने राम की खीका का यान करते हुए कहा है कि भक्तों के विस्तार के लिए राम ने मत्स्य रूप में पृथ्वी की लोका बनाई।^५ नरहरिदास चारुदत्त के अनुसार मत्स्यरूप में प्रकल्प से पृथ्वी की रक्षा तथा संज्ञासुर से बेहों का उद्धार किया।^६ संतों में परवर्ती गुरु गोविन्द सिंह ने भी संज्ञासुर वध पूर्व बेहोंका वध के निमित्त मत्स्यावतार का प्रयोजन माना है।^७

करमू डर करि विहारि कोषो डर मोठरिठे वेद निर्यारि कप ।

मधुराम की मनु त्यागी मयो दूसरे मझा कूँ सु दान दप ॥

परशुराम सागर । ६० के० । इस नीतार को बोको ।

१. तुलसी सिंह हरि मत्स्य रूप धारण, तथा ही मत्स्य संकट निवारण ।

चरुदत्त कथो संज्ञासुर मृति के गयो, सत्यव्रत कथी बरके विनायो ॥

मत्स्य कलक, कृपाकल, अमरलक्षण मत्स्य को रूप तब धारि भायो ।

सूरसागर बी० १ ना० प्र० स १२ ४२२ ।

२. संज्ञासुर मारि के, वेद रक्षारि के, भाषया अनुसुक्त को निवारि ।

सूरसागर बी १ पृ ४४४ ।

३. कौयो संज्ञासुर वधमें रख्ये विपाय । हरि ह्यग्रिव रूप हरि मारयो कीर्णें वेद कुड़ाव

मृतारावकी । वे० प्र० सूरसागर में संकल्पित ६० ४ पृ १० ।

४. सूरसागरकी ६ ४ पृ ११-१२ में ।

५. तुलसी विष्णु पत्रिका पृ ४०४ अतिरिक्त-अनुपवत मत्स्य-विस्तार पर, नरविष्णु का नाम परिभाषित पूर्ण ।

६. नरहरि प्रभुकाण्ड निष्कल सप्तम अध्याय संज्ञासुर ।

पृथ्वी राणी प्रकल्प से मत्स्य मीन भयर्षण ॥

त्रिभिः देव्यः करेण मयो मत्स्यरूप इतिवाच ।

—

संज्ञासुर सी निमळी भावे वेद कुड़ाव ।

अवतार कीका ६० कि ६० ३२ मीनावतार ।

७. चौबीस अवतार ६० ६ । संज्ञासुर मारि वेद वधारे अनुसुक्तारे मत्स्य कीयो ।

विष्णु ने कहा मैं हूँ दुर्ग का ठे जान पाका । विष्णु ने कहा इस बराह ने
 देवताओं का सब छुट कर सात पहाड़ियों क उस पार असुरों के पास पकड़
 कर रखा है । तुम दुर्गापूज्य करने वाले हो । अतः इस बराह को मार डालो ।
 इन्द्र ने एक कुप लोब कर सप्त पहाड़ियों को देव दिया और उसे मार डाला ।
 तब इन्द्र ने विष्णु से कहा तुम अपने को दुर्ग से बाहर के जाने वाले कहते
 हो, अतः उसका (सम्भवतः बराह को या वह पग) बाहर से जाओ । पशु-रूप
 विष्णु देवताओं के किये पशु के रूप में उतना छ गये जितना देवता असुरों से
 प्राप्त कर सकते थे । बड़ी कारण है कि उस चपूतरे का नाम 'वैही कुमा' इस
 कथा में प्रजापति पूर्व पृथ्वी क ऊपर उठने का उल्लेख नहीं हुआ है परन्तु
 विष्णु पशु और बराह का सन्निवेश हुआ है । इस जाघार पर ब्रह्म बराह की
 मूल कथा क रूप में इसे ग्रहण किया जा सकता है ।

बैदिक साहित्य में उपरुम्भ दो प्रकार की कथाओं में भूमि से सम्बद्ध
 बराह और पशु-बराह का स्वतंत्र विकास स्पष्ट प्रतीत होता है । सम्भव है वा
 में चक कर विष्णु पूज्य उनक बराह रूप से दोनों को उन्हीं में समाहित किया
 गया हो ।

'महाभारत' 'वन पर्व' में विष्णु के बराहवतार की कथा मिलती है । उस
 कथा में कहा गया है कि प्राणियों की बुद्धि के भार से पृथ्वी ह्व कर सैकड़ों
 बोलन भीचे चली गई थी भार दूर करने के किय उसने महाशान बाराधन से
 प्रार्थना की ।^१ विष्णु ने एक दौड़ वाले बराह का रूप धारण कर पृथ्वी को सी
 योजन ऊपर उठा दिया ।^२ वहाँ तकके स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा गया
 है कि वे काक-काक नेत्रों से भव उत्पन्न कर रहे थे और अंगों से भूम प्रकट
 करते हुए चद रहे थे ।^३ इस स्थल पर पूम और उदात्त के प्रयोग से उनक
 पशु-बराह रूप का ही परिचय मिलता है ।

इसक अतिरिक्त 'महाभारत' में अन्य कतिपय स्थलों पर भी बराहवतार क
 उल्लेख हुए हैं । विशेषकर 'शांति पर्व' में विलुपिण्ड से सम्बद्ध एक कथा में
 कहा गया है कि पहले पृथ्वी पर कुछ विद्वाकर जन पितरों के विहित ऋण
 विण्ड रखे जाते हैं । पितरों का विण्ड नाम क्यों पड़ा इसके ऊपर भर-बाराधन
 करते हैं कि समुद्र मेघका बाकी वह पृथ्वी पहले जल में डूब गई थी । उसको

१ शं० सं० ९, २, ४ २ अनुवाद क रा० सं० १० । १८१५ ई । ६ १८० ।

२ महा० ४ १४२ १५, ४० । ३ महा० १ १४२ ४५ ।

४ रत्नमूर्ति बचनार्त्ता तु मन्मथुत्तार बन्धिन ।

पूर्व क सम्बन्ध लक्ष्म्या तत्र देते श्वर्षण्य क महा० १ १४२, ४६ ।

भगवान् गोविन्द ने बराह का रूप धारण कर ऊपर किया था। उक्त और कीबद्ध से त्रिगुण सारा क्षीर मरा हुआ है और लोक-कल्याण में जो सर्वत्र तत्पर रहते हैं उन भगवान् पुरुषोत्तम ने पूष्ठी को पुनः उसके स्थान में स्थापित कर दिया और अपनी दाढ़ में जो तीन पिण्डों को कुक्ष पर रक्त दिया।^१

इसी पूर्व में एक मूढ़ बराह की ध्वाकपा करते हुए पारायण कहते हैं कि मैंने पहले सींग (या एक घोंट) काटे मन्दिचर्मन नामक बराह का रूप धारण कर इस पूष्ठी का उद्धार किया था और जब मैं कपा, पोष, वाङ् तीम उद्यत अगोवाहा बना था इससे मेरा नाम चिग्रकुप् पड़ा।^२ उक्त रूप में अनुमानत अग्नि के मानवीकृत (एम्ब्रोपोमौरिक) रूप का परिचय मिलता है।^३ साव ही उक्त कर्पास पूष्ठी, यज्ञ, या कर्मकण्ड से सम्बद्ध तो दीक्ष वक्षता है परन्तु हिरण्याक्ष वध की हममें कहीं चर्चा नहीं हुई है। अतः हिरण्याक्ष-वध संभवतः परवर्ती-काल में बराहावतार के साथ संयोजित किया गया है। इसी पूर्व के 'भारावणीगोपाख्यान' में बराहावतार के प्रसंग में पूष्ठी को ऊपर उठाने की और हिरण्याक्ष-वध की चर्चा हुई है।^४ 'वाल्मीकि रामायण' में बराह का उल्लेख भर हुआ है जिसका संबंध विष्णु या राम से है।^५ किन्तु 'विष्णुपुराण' की कथा पुरानी प्रतीत होती है क्योंकि वहाँ बराह को प्रजापति का ही अवतार कहा गया है।^६ वहाँ बराह के विग्रह रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके दाढ़-वज्र रूप हैं, चारों वेद-वरण, शीत-यज्ञ, मुक्त-विचित्रा, जिह्वा-ब्रुवात्मन, और कुसायें-रोमावती हैं। रात-दिव इनके नेत्र, परमह स्तिर, समस्त सृष्ट इनके सहायकत्व और समग्र इषि भाषके प्राण हैं।^७ इन अपाहनों से बराह पृथ वज्र से किसी व किसी प्रकार का संबंध ज्ञात होता है। 'विष्णुपुराण' की कथा में हिरण्याक्ष वध का समावेश नहीं हुआ है। परन्तु परवर्ती पुराणों में सृष्टि-प्रमाण के साथ साथ हिरण्याक्षवध भी प्रमुख प्रयोजनों में गृहीत हुआ है।^८ इससे स्पष्ट है कि बराहावतार की कथा के मूलबीज स्वरूप के कथायें हैं, जिनका संबंध सृष्टि और यज्ञ संबंधी प्रारम्भिक पुराण-कथाओं (मिय) से है। 'मागवत' के कतिपय विवरणों से इसका आभास मिलता है। 'मागवत' के प्रथम संहित विवरण के अनुसार विद्य-कल्याण के किन्ने समस्त बर्षों के

१ महा १३, १४५, १२-१३।

२ महा० १२ १४२ ५३-५३।

३ हिन्दू भाषा शब्दकोश क्रिस्तेषीषी की० २६ २०५ में वा० उपाकृष्ण के वही के उद्यत अग्नि के मानवीकृत (एम्ब्रोपोमौरिक) रूप पर विचार किया है।

४ महा० ११ ११९, ७६-७८।

५ वा० रा ३, १२० ५१।

६ वि० पु० १, ४ ७।

७ वि० पु १, ५, १२-१३।

८ यज्ञ पुराण, सृष्टि कण्ड ७३ अध्याय, महा पुराण २१३ अध्याय।

स्वामी भगवान् ने ही रसातल में गईं पूषी को बिकाऊ काने क छिय सूकर रूप ग्रहण किया था ।^१ पुनः 'भागवत' क दूसरे विवरण छीलावतारों क प्रसंग में विय हुए बराहावतार की कथा में हिरण्याक्ष वध का भी उल्लेख किया गया है ।^२ इसक अतिरिक्त 'भागवत' में वहाँ बराहावतार की विस्तृत कथा ही गई है वहाँ प्रजापति के पूर्व संभव को विभिन्न रूप दिया गया है । 'भागवत' की उस कथा के अनुसार रसातल में डूबी हुई पूषी को बिकाऊने क छिये प्रजापति सोच रहे थे । तब तक उसी समय प्रजापति के नासाद्विह से अकरमाय अंगुठे क बराबर आकार का एक बराह शिशु निकला । उसी ने पुत्र में हिरण्याक्ष को मारा तथा वे ही शीतों की लोह से पूषी को उखावे हुये बाहर निकले । इस रथक पर भी बराह का विष्टरूप प्रस्तुत करते समय ब्रह्म क अनेक उपकरणों के साथ सांगरूपक की योजना की गई है ।^३

पौराणिक भवतारों का यह रूप गुप्त काल में ही चरम सीमा पर पहुँच चुका था । विशेषकर बराह को राक्ष-सम्मान प्राप्त होने क कारण उसके विभिन्न रूपों का प्रसार इस युग में रुजित होता है ।^४ उपर्युक्त पौराणिक रूपों क आधार पर ही भू-बराह, आदि-बराह, धनु-बराह, वृ-बराह भीर, प्रलय-बराह की मूर्तियों का प्रसार हुआ । इन मूर्तियों के दो प्रकार क रूप मिलते हैं । प्रथम मूर्ति का रूप बिकतुक पशुवत् तथा दूसरी का मनुष्य भीर पशु समुक्त होता था ।^५ इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पौराणिक युग में बराह क पुराण-कथाओं क रूप में प्रचलित प्रायः सभी रूप गुप्तकालीन उपास्य रूपों में साम्य और रूप थे ।

इस युग में प्रचलित 'विष्णुसहस्रनाम' में विष्णु क कतिपय नामों को बराहावतार से सम्बद्ध किया गया है । 'विष्णुसहस्रनाम', चाँकर भाष्य में चाँकर के अनुसार पूषी का जल से उबार करने के कारण इनका नाम 'वृषाकपि' है । हिरण्याक्ष को मारने की इच्छा से बराह रूप धारण करने क कारण इनका नाम बुधर है ।^६ इसी प्रकार ब्रह्म से सम्बद्ध होने क कारण इनका नाम पशुग कहा गया है ।^७ पञ्चरात्रों क ३५ विमर्शों में बराह नाम प्रचलित है ।^८

१ शिवाय तु भवावास्व रसातल गगनहात् ।

अद्विभ्यनुवाच पश्येय सीकरं ननु मया १, १७ ।

२ भा० १७, १ ।

३ भा० १११ ।

४ गुप्तनाम-स्य का इतिहास जी १६०-१२८ ।

५ अस्मिन्नात् आत् दिष्टु रक्षजोमाही (टी० १० गोपीनाथ राव) ६ १२९ ।

६ विष्णु सहस्रनाम टी० भा० ६ २९९ ।

७ दिष्टु सहस्रनाम टी० भा० ६ २२६ ।

८ विष्णु सहस्रनाम टी० भा० ६ २१ ।

९ अद्विर्दु० सं० ५, ५०-५७ ।

पसची पूव बाराहकी साताग्री क साहित्यकारों में जेमेन्द्र ने पूष्पी पुषं हिरण्याच-बध की कथा प्रहण की है। परम्पु पञ्च बराह नाम का इनमें अभाव है। जयदेव ने कबल पूष्पी धारण करने की घटना का दोमों रघातों में वर्णन किया है। 'पूष्पीराजरासो' में बराहावतार का पौराणिक रूप गृहीत हुआ है। देवताओं की पुकार पर जगदीश हिरण्याच को मार कर पूष्पी का उद्धार करते हैं। यहाँ राम कृष्ण आदि महाकाव्यों क भवतारों के सहस्र इस भवतार को भी देव-राजु-बध पुषं मूमार-हरण की परम्परा से सम्बद्ध किया गया है। 'छत्रुमागवतामृत' में इनक विभिन्न रूपों का कवच और मन्वन्तर भेद उचित सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। रूप गोस्वामी का कहना है कि पञ्च बराह ने ही पूष्पी का उद्धार और हिरण्याच का बध किया था। माह्य मन्वन्तर में पूष्पीका उद्धार करने के लिये ब्रह्मा जी की नाविका-रथ से और ब्रह्माणा पञ्च मन्वन्तर में पूष्पी का उद्धार और हिरण्याच-बध क लिये हुआ। इयक अतिरिक्त बराह क दो विप्रदों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि बराह ती कमी जगुप्पद और कमी गृ-बराह मूर्ति प्रन्द करते हैं। साथ ही इन बराह रूपों के श्रेष्ठ बराह और पञ्च बराह आदि दो भेद भी माने गये हैं।

मध्यकाळीन कवियों ने बराह का वीराणिक रूप पूव प्रयोजन ही प्रहण किया है। 'सूरदास में सूरदास कहते हैं कि ब्रह्मा ने हरिपद का ध्यान किया तब हरि बराह का शरीर धारण कर पूष्पी को ऊपर छ भाये।' एक दूसरे पद में तब विजय क भवतार हिरण्याच और हिरण्यकशिपु में 'भागवत के आधार पर सूरदास ने बराह के द्वारा हिरण्याच बध की चर्चा की है। इसके पहले क अनुसार हिरण्याच ने पूष्पी को खेसाकर पाताल में रख दिया था। इस पर ब्रह्मा ने बीम-जगु गोपाळ से मार्चना की कि तुम्हारे बिना असुरों का संहार करने बाका और पूष्पी का उद्धार करने बाका कीत है। फलतः हरि द्वारा पूष्पी को ऊपर छाते समय हिरण्याच ने रोका और श्लेषित होकर कहा कि तुमने

१. ब्रह्मवताः। जेमेन्द्र। इ २१-२४।
 २. गीतगीविम्ब। जयदेव। पृ० ६ व १ सर्ग० १।
 ३. पूष्पीराजरासो पृ २११ सूत्रा समय 'सूर राम काव जगुपर करत श्रेष्ठ का जगदीशवरे।
 ४. छत्रुमागवतामृत पृ० ४६।
 ५. छत्रुमागवतामृत पृ ४६।
 ६. ब्रह्मा हरिपद ब्रह्म कर्माकी तब हरि जगु बराह हरि मान्नी।
 ७. बराह पूष्पी कबी रवाकी, सूरदास त्वाही तुक गावी।
 सूरदास। ना प्र स। बी० १ पृ ६१।

बहुत से असुरों का संहार किया है। हरि द्वारा उस असुर के बच होने पर मछा द्वारा कहा गया है कि हरि देवताओं को प्रसन्न करते हैं और लीला किया करते हैं। 'सुरसारावली' और 'अवतारलीला में ऋमसा भूमार-हरण और विति कुल के नाम बराहावतार के प्रमुख प्रयोजन माने गए हैं।' गोस्वामी तुलसीदास और कलावशास के अनुसार बराह यज्ञों के अंश रूप हैं। इन्होंने ही वैष्णव का दर्शन कर पूष्पी का उद्धार किया।' सप्तों में गुप्त गोविन्द सिंह ने भी कुछ कथाओं एवं प्रयोगों का अनुसरण किया है।^१

मध्यकाल में विष्णु के इन अवतारों का सम्बन्ध विष्णु की अपेक्षा उनका ही अवतारी राम, हृष्य आदि रूपों से स्थापित किया गया। 'भारावत' और 'अप्याम रामायण आदि इस धारणा के विराप प्रेरक थे। इस प्रकार बराह एक ओर तो अपने विशिष्ट सम्प्रदायों में अवतारी और अपारम्भ-रूप में प्रचलित हैं किन्तु अन्य अवतारों के सम्प्रदाय में उनका अवतार के रूप में ही प्रायः सूचीत हुए हैं।

कूर्म

विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा कूर्मावतार का अपना विकल्प रचाव है। अन्य अवतारों के विपरीत इस अवतार का प्रयोजन न तो किसी राक्षस का बच रहा है न भूमार हरण। पुराणों के अनुसार इसका सम्बन्ध अमृतसम्बन्ध की एक पौराणिक कथा से है।

वैदिक साहित्य में कूर्म और समुद्रमन्थन दोनों का मारमिक सम्बन्ध नहीं मिलता। बहिरु बराह आदि के सद्यः प्राणियों में कूर्म का रूप भी प्रजापति ही धारण करते हैं।

'वाक्सपेवि संहिता के अंग्रेजी भाष्यकारों ने 'ग्रह बहुरैव' की कुछ व्याख्याओं के आधार पर कूर्म का सम्बन्ध करण्य। सूर्य का प्रजापति से स्थापित किया

१. सुरसागर। पृ० ३० तथा। जी० १ पर १११।

२. मुख की रक्षा करने के कारण बहिरु बराह अवतार। सुरसारावली पृ० १, १८।

३. नारद अनुवादाद बच अशनि अरण्ये रेत।

निर्गुणनि विनि ज्ञान कुल देह सत्यमन सेत।

अवतार लीला। पृ० ३० ३०। विहित अंशों के अन्वये पृ० ५।

४. तुलसीदास विनय पत्रिका पृ० ४ पर ५१।

सद्यः दर्शा सत्य अमर-विमल श्लोक, मरि बनुकेस अरण्ये रती।

५. रा० अन्दिता, पूर्वादि पृ० ११०-१११।

गुप्त ही बच अद बराह मये जू। विनि लीला अर्द्ध हिरवाच इषैयू।

६. पौराणिक अवतार पृ० ११।

हे भीर श्री एत० वारिद्र के इन कथनों को उद्धृत किया है जिसमें कूर्म और विष्णु से सम्बन्ध आचारों का अनुमान किया गया है। 'सतपथ ब्राह्मण' में प्रजापति के कूर्म-रूप धारण करने की चर्चा हुई है। जे० म्योर ने स० ब्रा० १०, ५, १, ५। के आचार पर कहा है कि प्रजापति ने कूर्म-रूप धारण कर प्रजाओं की सृष्टि की। उनके मतानुसार कश्यप शब्द का अर्थ कूर्म होता है। सतपथ सारी प्रजा कश्यप द्वारा उत्पन्न कही जाती है। यह कूर्म या कश्यप ही आदित्य है। 'त्रैमिति ब्राह्मण' १. २०२। के आचार पर कहा गया है कि प्रारम्भ में जल में से कूर्म रूप में उत्पन्न होकर प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि की। जे० गौड़ के अनुसार जल देवता बहल से कूर्म को अभिहित किया जाता था। सतपथ विष्णु और बहल दोनों पृथ्वी के पति माने जाते थे।^१ इस आचार पर कूर्म का विष्णु से सम्बन्ध होने की सम्भावना हो सकती है।

'तैत्तिरीय आरण्यक' में कहा गया है कि जहा प्रजापति में जो बहने 'योग्य अस या बही कसुपे का रूप धारण कर पानी में हजर उजर घूम रहा था।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में मास्य वराह और कूर्म का सम्बन्ध सामान्यतः प्रजापति से ही रहा है। 'विष्णु पुराण' में प्रजापति के ही ये तीनों रूप स्वीकार किये गये हैं।^२ किन्तु कूर्मावतार का महाकाव्यों और पुराणों में जिस समुद्र मन्थन से सम्बन्ध रहा है, उसका मूल रूप वैदिक साहित्य में बिरल है। 'पितरेय ब्राह्मण' में देवों और असुरों की एक कथा में स्वतन्त्र रूप से समुद्र मन्थन के बीज देखे जा सकते हैं। उसमें कहा गया है कि देवों और असुरों ने शगदा किया। देवों ने छठे दिन के हस्त से इन असुरों को मिकाक दिया। असुरों को जो कुछ दस्तगत हो सका उसको उन्होंने छे किया और समुद्र में फेंक दिया। देव पीछे बीजे भीर इस क्षण के द्वारा जो कुछ उन्होंने किया था उसे वे क्षीण कापे। इस सातवें पथ ने कँटिया था अजुस का काम किया जिसके द्वारा समुद्र से बीजें निकाल ली गईं।^३

'महाभारत के अनुसार समुद्रमन्थन के समय समुद्र से अनुमति देने के पश्चात् देवताओं ने कूर्म से आग्रह किया। कूर्म ने मन्थराचल को पीठ पर रखना स्वीकार कर लिया।^४ यहाँ कूर्म को प्रजापति या विष्णु का अवतार नहीं बतलाया गया है। 'वाल्मीकि रामायण' में समुद्रमन्थन के समय पर्वत के

१ मिथिल का अनुवाद द्वापक दसुर्वेद पृ १४० १४१ में वस्तु: १३-१७, १ और ११ की व्याख्या।

२ जे० म्योर बी० सं दे० बी ४ पृ० २५ तथा स ब्रा० ७ ५, १ ५ सं ।

३ स्वेन्दस आक वैष्णविक पृ १२७। ४ तै० आ० १, २१, १।

५ वि० पु १ ४ ७ ८।

६ प० ब्रा ५, १ १०। ७ महा १, १८, ११-१२।

पाताल में प्रवृत्त कर सामे पर भगवान् कूर्म-रूप धारण कर वहीं समुद्र में सो गये ।^१ 'विष्णुपुराण' में भी भगवान् स्वयं कूर्म-रूप धारण कर खीरसागर में डूबते हुये मन्दराचल के आधार हुए ।^२ 'भागवत' के तीनों विबरणों में वे विष्णु के अवतार-रूप में ही गृहीत हुये हैं ।^३ किन्तु जहाँ कूर्म की विलुप्त कथा का वर्णन है वहाँ मन्वन्तरावतारों से इनका सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा गया है कि चाक्षुष मन्वन्तर में भगवान् अव्यक्त रूप में भाविर्भूत हुए थे वे ही कक्षुष-रूप धारण कर मन्दराचल की मधुगी के भी आधार बने थे ।^४ 'अग्नि पुराण', 'पद्मपुराण' आदि अन्य पुराणों में भी प्राण कूर्म का एकमात्र सम्बन्ध समुद्रमन्थन से ही माना गया है । अन्य अवतारों के समान कूर्मावतार के भी पूर्ववर्ती और परवर्ती दो रूप विदित होते हैं । पूर्ववर्ती रूप का सम्बन्ध प्रजापति एवं सृष्टि-विकास से तथा परवर्ती रूप का विष्णु और समुद्रमन्थन से रहा है ।

सृष्टि के सद्य कूर्मावतार का अवतार सम्प्रदाय उचित नहीं होता और न ता बराह के सद्य स्वतन्त्र रूप से इनकी अधिक मूर्तियों के ही प्रचार का पता चलता है । कपल वृक्षावतारों के साथ कूर्म की मूर्ति का भी अस्तित्व मिलता है ।^५ केमेन्द्र और अयदेव ने बौद्धानिक रूप प्रद्वय करते हुए समुद्र मन्थन से सम्बद्ध कूर्म का विष्णु और कृष्णरूप का अवतार माना है ।^६ 'पृथ्वीराजरागो' में कूर्मावतार सम्बन्धी अन्य कथाओं की अपेक्षा देवासुर संग्राम की ही प्रधानता है । इसी से इनका कूर्मावतार नामों के अनुसार रामों के संहार के निमित्त होता है ।^७ पञ्चरात्र एवं 'तारव्रत' के विवरणों में वे कमलधर के नाम से गृहीत हुये हैं ।^८ ब्रह्माचार्य ने 'भागवत' (११ ४, १८)

१ बा० रा० १, ४५, २९ । २ दि. पु. १ ९ ८८ ।

३ भा. १, १ २३, भा० २ ७ २३ भा. २२ ४ २८ ।

४ भा० ८ ५ ७-१ । ५ अग्नि पु० १ अध्याय ।

६ अय देव उच्यते अत्र २९० ।

७ शक्तिवदन इतिवृत्त पु० २४ में कहा गया है कि कूर्मरूपा संघात मृदा आदि आदिकाष्ठियों तथा परवर्ती बहीर सम्प्रदाय में कूर्म की के नाम ही प्रचलित है । इसी मन्वन्तर में वह ऐसे कूर्म का उदय मिलता है जिसके पेट में १६ हुए मछलियों से विरंजन में सृष्टि रचना की थी । कभीर पु० ५४-५५ ।

८ केमेन्द्र : काव्यमाहा. १ ८ कूर्म १० अयदेव दीनशोबिंदु सर्व १ १ ।

पृथ्वीराज रागो पु० २८९-२९१ दूसरा संवत् ।

'अदि कश्चन को रूप भूय जानव संहारे ।

नर नदि मागर सुमदि, दिग्ग मागन सुधारे ।'

१० प्रत्ययव पु. २१९-२११ ।

की 'सुशोभनी व्याख्या' में मास्य, हयग्रीव भीर बराह के साथ इन्हें देहाभिमान रहित माना है ।^१ 'लघुमागवताष्ट' और 'सात्वततन्त्र' में^२ इनके मागवतासु सोदित रूप सूचीत हुये हैं ।

इससे स्पष्ट है कि परवर्ती पुराणों तथा उनके भाष्यों में विशेषकर 'महावत' का ही रूप सर्वाधिक प्रचलित हुआ जिसका प्रभाव सगुण सप्रदायों पर लक्षित होता है । अतः मध्यकालीन कवियों ने कूर्मवितार के तत्कालीन युग में प्रचलित 'महावत' के ही रूपों को ग्रहण किया है । सूरदास के कथना सुसार कूर्मवितार का सम्बन्ध तो समुद्र-मन्थन से ही रहा है परन्तु उसका प्रयोजन को देवद्वित से सम्बन्ध दिया गया है । सूरदास के एक पद में कहा गया है कि 'महकाद-पीठ बलि' ने देवताओं को बहुत कष्ट दिया । फलतः देवता हरि की शरण में गये ।^३ तब देवताओं के कल्याण के लिये हरि ने कूर्म-रूप धारण किया और समुद्र मथ कर अमृत निकाला ।^४ पुनः पौराणिक रूप की शर्चा करते हुये कहा गया है कि समुद्रमन्थन के समय मन्धराबल हुकने लगा । तब देवताओं की मार्गना सुनकर हरि ने कूर्म-रूप धार कर पीठ पर पर्वत रखा ।^५ 'सूरसागरही' में इसका सारांश प्रस्तुत करते हुये कहा गया है कि देवता और दानवों ने मिथकर जब चौदह रत्न निकाले थे तब हरि ने कूर्म-रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर रखा था ।^६ 'भवतारकीका' के रचयिता भरहरिदास बाराहठ ने भी कूर्म की कथावस्तु 'मागवत' से ही ग्रहण की है । समुद्र-मन्थन के साथ-साथ देवताओं का उदार चर्चों भी प्रमुख प्रयोजन माना गया है ।^७ राम भक्ति-साक्षा के कवियों में तुलसीदास काभरदास और वरबारी कवि कछवदास ने मन्धराबल धारण करने वाले राम के कूर्म-रूप का वर्णन किया है ।^८ इस प्रकार कूर्म भी अल्प भवतारों के साथ मध्यकालीन

१ सुशोभनी मा १०, २, ४० और ११ ४ १८ की व्याख्या ।

२ लघुमागवताष्ट ६० ६२-६३ । ३ सात्वत तंत्र ५० ९ ।

४ बलि सूरपति को बहुत दुःख दनी तब सूरपति हरि सारने गयी ।

हरि कूर्म-रूप धारण कर पीठ पर रखा था ।

सूरसागर ६० १०२ पद ४३५ ।

५ सूरसागर ५० १०१, पद ४३५ । ६ सूरसागर ६० १०३ पद ४३५ ।

७ सूर जब अमृत मन्थन कीजो तब चौदह रत्न निकाले ।

पर्वत पीठ पर रख हरि पीठे लियो कूर्म भवतार । सूरसागरही प्र० ६० ४ ।

८ बरदरेन कीका व्याकरण, हरि करनी तहाँ कनकावतार ।

भवतार कीका ६० कि० ६० १०-१० 'समुद्रमन्थन कीयो तर्पण' ।

९. (क) तु० प्र० दिग्विजयिका ५० ४० पद ५२ ।

कपट, गति विष्ट लघु कठिन सुशोभनी भयत, मंदर कंधु सप सुशोभनी

वाताल में प्रवेश कर जाने पर भगवान् कूर्म रूप धारण कर वहीं समुद्र में सो गये।^१ विष्णुपुराण में भी भगवान् स्वयं कूर्म रूप धारण कर श्रीरसागर में भूमते हुए सम्भराचल के आधार हुए।^२ 'मागवत' के तीनों विपरणों में वे विष्णु के अवतार-रूप में ही पृथीत हुए हैं।^३ किन्तु जहाँ कूर्म की विसृष्ट कथा का वर्णन है वहाँ सम्भराचलतारों से इनका सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा गया है कि चाण्डप सम्बन्ध में भगवान् अवित-रूप में भाविर्भूत हुए थे व ही कण्डप-रूप धारण कर सम्भराचल की मधनी के भी आधार बने थे।^४ 'अग्नि पुराण', 'पद्मपुराण' आदि अन्य पुराणों में भी प्रायः कूर्म का एकमात्र सम्बन्ध समुद्रमन्थन से ही माना गया है। अन्य अवतारों के समान कूर्मावतार के भी पूर्ववर्ती और परवर्ती दो रूप विहित होते हैं। पूर्ववर्ती रूप का सम्बन्ध प्रजापति ब्रह्म सृष्टि-विकास से तथा परवर्ती रूप का विष्णु और समुद्रमन्थन से रहा है।

सृष्टि के सद्यः कूर्मावतार का अवतार सम्प्रदाय उचित नहीं होता और न वा बराह के सद्यः स्वतन्त्र रूप से इनकी अधिक मूर्तियों के ही प्रचार का पता चलता है। कथक दशावतारों के साथ कूर्म की मूर्ति का भी अस्तिब मिलता है।^५ 'सेमैग्र' और 'अपदेव' ने पौराणिक रूप प्रदान करते हुए समुद्र मन्थन से सम्बन्ध कूर्म का विष्णु और कृष्णरूप का अवतार माना है।^६ 'यून्हीतावतारा' में कूर्मावतार सम्बन्धी अन्य कथाओं की अपेक्षा देवासुर संग्राम की ही प्रधानता है। इसी से इनका कूर्मावतार रामा के अनुसार रामाओं के संहार के विमिश्र होता है।^७ 'पञ्चरात्र एव तत्प्रथम' के विमर्शों में वे कमठधर के नाम से पृथीत हुए हैं।^८ ब्रह्मभाष्य में 'मागवत (११ ४, १८)

१ वा० रा० १ ४५, १९। २ वि पु १ ९ ८८।

३ मा १, ३ २६ मा० २ ७ २३ मा० ११ ४ १८।

४ मा० ८, ५ ०-१०। ५ अग्नि पु० १, अध्याय।

६ पद्म पु० ब्रह्मसंहिता अ १६०।

७ उचिद्वयन इदेवेन पु १४ में कहा गया है कि कूर्मरूपा संवाल मूला आदि आदिवासियों तथा वरवर्ती वरीर सम्प्रदाय में कूर्म की ही मान से प्रचलित है। इसी सम्प्रदाय में एक ऐसे कूर्म का उद्देश्य विष्णु है जिनके पैर में वह हुए मत्स्य से निर्दमन में सृष्टि रचना की थी। कर्त्तृ १० ५४-५५।

८ श्रुतिः काण्यमाता। पु० ८ कूर्म २० अथवेदः गौतमोदिर सर्ग १ १।

९ यज्ञोत्तर रामो ह २८९-२९१ दूसरा समय।

१० अग्नि ब्रह्मण्य के रूप भूप कामदेव संतरे।

११ अग्नि माण्ड उच्यते रिश्व माण्ड उच्यते।

१२ तत्प्रथम ह २१२ २१३।

उपास्यों का अवतार माने गए हैं। किन्तु सगुण कवियों में इनका स्वतन्त्र उपासक रूप का वर्णन नहीं मिलता है। पर निर्गुण पन्थी कबीर मत का साहित्य में एक नव निर्मित कूर्म-रूप का उल्लेख हुआ है त्रिक पेट में पड़े हुए मसाले से निरञ्जन ने सृष्टि-रचना की। फलतः कूर्मावतार के समुल्लासी और निर्गुणवादी दो रूप आठोप्यकरीय साहित्य में मिलते हैं।

दृसिंह

शृसिंहावतार की कथा का रूप पुराण और वैष्णव साहित्य में प्रायः एक ही प्रकार का मिलता है। पुराणों के अनुसार हिरण्यकशिपु का पुत्र की रक्षा एवं उसके बच के निमित्त विष्णु का यह पशु मानव संयुक्त अवतार माना गया है। जो तां भारोपीय देवताओं में पशु या पशु-मानव (पेरियोप्यगोरिक) देवताओं का रूप सर्वथा दुर्लभ नहीं है। त्रिकाल वैदिक साहित्य में भी ब्रह्म-तत्र वर्णन होता है। परन्तु शृसिंहावतार से सम्बद्ध पुराणों की कथा के अनुरूप उसके मिश्रित मूलस्रोत का वैदिक साहित्य में अभाव है। शृसिंह नाम्क पुरुष सिंह के सहस्र स्पष्ट ही किसी पुरुष वित्तेश के बल एवं पराक्रम का घोतक प्रतीत होता है। प्राचीन साहित्य में साधारणता देवताओं के बल और शीर्ष की अभिव्यक्ति के किसे सिंह, स्वाम आदि पशुओं के पराक्रम से तुलना की गई है या विशेषण के समान उपयोग किया गया है।^१ विष्णु के पराक्रम की तुलना करत हुए ऋ० सं० के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'यैके विष्णु के तीम पादेषे मं सारा संसार रहता है इसलिये भवद्वार, द्विस पार्वतीय प्रदेस में रहने वाले सृग या अन्य अन्य जानवर के समान संसार विष्णु के विक्रम की प्रशंसा करता है। इस ऋचा के भीम सृग से पराक्रमी सिंह का बोध होता है। 'शृसिंह तापनीय उपनिषद्' में भी इसे उद्धृत किया गया है।^२

(१) एव कथासुम जो १५ ६७१।

प्रभु कथासुम का वनावी पररणक रोड कराओ।

(२) रामचरितका पूर्वाह्न ५ ६६०-६६१, २४।

१ माहमर आरु हिन्दूधर्म में कुरुक्षेत्र में वैदिक, बहोरिका आदि देसों में मम लोदेम मैन, बर्ह, और मैन विष्णु आदि रूपों में उरुका देवताओं का बटोप दिया है।

२ एव कथासुम १५, २१ २२ में एव की सिंह आदि पशुओं से तुलना की गई है।

३ (क) ऋ० १ १५४ ३ कर्ण विष्णुः सवते दीर्घेण कृशेण भीम कुवतो विरीशम।

(घ) म० ५ वा ४० २, ४ में शृसिंह की भी इस ऋचाओं के विदोषणों से अनिश्चित किया गया है।

इस विशेषण का सम्बन्ध 'मनुसंहिता' में इन्द्र से स्थापित किया गया है।^१ इन कथनों के आधार पर उक्त रूप का विशेष प्रचार विदित होता है। मि० कीच ने मूर्तिहावतार का बीज मनुर्वेद १९, ८ तथा श० मा० १३, २, ४ २ में प्रयुक्त 'पुरुष व्याघ्र' से माना है।^२ विष्णु के विशेषण के रूप में 'पुरुष व्याघ्र' का प्रयोग 'महाभारत' में भी मिलता है।^३ किन्तु इन प्रयोगों से पौराणिक कथाओं के स्पष्ट सम्बन्ध का भान नहीं होता। कुछ विद्वानों ने कथा तारों के साम्य को लेकर मूर्तिहा-कथा का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में प्रचलित इन्द्र मनुषी कथा से माना है।^४ 'अग्नेर्' एवं 'मनुर्वेद' दोनों में कहा गया है कि 'इन्द्र जिस समय तुमने सारे सन्तुओं को क्षीता था उस समय अष्ट के फेन द्वारा ही मनुषी का सिर द्विज-निज किया था।'^५ 'सप्तपथब्राह्मण' में इस अन्वयान का विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। वहाँ मनुषी इन्द्र से बर माँगता है कि मे उसे ब्रह्म से न शुष्क स्थान में न भार्य स्थान में, न रात में न दिन में उसका सिर काटेंगे।^६ इस कथा का यह अंश हिरण्यकशिपु की बर प्राप्ति की कथा से साम्य रखता है। 'भागवत' के अनुसार हिरण्यकशिपु भी बर माँगता है कि 'मैं मछा द्वारा निर्मित मनुष्य, पशु, प्राणी अमाप्ती, बेबता, दैत्य और नाग से अच्य होऊँ। तथा भीतर या बाहर दिन में या रात्रि में, अक्ष या सक्ष से, पृथ्वी या आकाश में कहीं भी मेरी मृत्यु न हो।'^७ किन्तु 'भागवत' में इन्द्र-मनुषी-बध की कथा भी सुदीत हुई है जिसमें मनुषी सूखी या गीली वस्तु से नहीं मारा जा सके के कारण इन्द्र द्वारा फेन से मारा जाता है।^८ इस आधार पर हिरण्यकशिपु क बरदान की कटना को इससे केवल प्रभावित माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नाम साम्य की दृष्टि से 'अथर्वसंहिता' में हिरण्यकशिपु^९ का, तथा ऋ० सं० और 'तैत्तिरीय संहिता' में हिरण्यकशिपु क पुरोहित सम्बन्धक

१ शुद्ध मनुर्वेद १८ अ० १।

२. ऐकिकव दिव्य त्रिकोटीकी जाक की ऋ० वेद ऐन्द्र उपनिषत्त पृ० १९३ तथा मनुर्वेद १९ ८ और श० मा० १३, २, ४ २।

३ महा० ३, १८८, १८ स वर पुरुष व्याघ्र वीरघटा अर्थात् वर।

४ श० रा० प० सों ९ अम्बर की २४-२५, पृ० १२९।

५. शुद्ध मनु १९, अ० १ तथा ऋ० प, २४ २३।

६ ऋ० मा० १२ अ, ३, १-४।

७. मा० अ, ३, ३५-३६।

८ मा० ८ ११, ११-४०।

अथर्व सं० ५, अ १०।

का उल्लेख मिलता है।^१ ख० सं० के अनुसार 'इन्द्र ने शूरामिमात्री और स्फूर्ताशान् सावित्री के प्रधान सन्ध्यात्मक को मारा था।'^२ उक्त उपादानों से नृसिंह-हिरण्यकशिपु कथा के विभिन्न कोनों का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु यहाँ तक नृसिंह-विष्णु का सम्बन्ध है 'तैत्तिरीय आरण्यक' के रूपमें प्रपाठक के एक मन्त्र में यज्ञ मत्त बाले और तीक्ष्ण दौतवासे नृसिंह का उल्लेख हुआ है।^३ यहाँ नृसिंह के कथात्मक रूप की अर्पणा उपास्य रूप ही अधिक स्पष्ट है। अतः समझ है कि दक्षिण के प्राचीन नृसिंह-सम्प्रदाय के प्रभावशाली रूप इसका समन्वय किया गया हो।

'महाभारत 'नारायणीपोषाणवान' के पश्चात् नृसिंह-कथा में हिरण्यकशिपु के बच की चर्चा हुई है।^४ बालावतर में पुराणों में भी नृसिंह हिरण्यकशिपु की कथा में एकदृष्टता रहती है। क्योंकि विष्णुपुराण की विष्णु कथा में प्रह्लाद की रक्षा के निमित्त विष्णु उक्त राक्षस का बच करते हैं।^५ यही कथा 'भागवत' के तीनों विवरणों में, तथा विष्णु कथ में किञ्चित् परिवर्तन के साथ गृहीत हुई है।^६ अन्य पुराणों में भी कथावस्तु एवं प्रयोजन में कोई उल्लेखनीय अन्तर उचित नहीं होता। कुटुम्बर के अनुसार दक्षिण में नृसिंह-सम्प्रदाय का प्रचार माना जाता है। सम्भवतः उसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखना नृसिंह 'पूर्व' और 'उत्तर तापनीपोषणपद्' में नृसिंह के अवतार रूप की अर्पणा उपास्य रूप उद्दिष्ट होता है।^७

'नृसिंह पूर्व तापनीपोषणपद्' के अनुसार भगवान् विष्णु का खीरसागर में धारण करने वाला विग्रह नृसिंह रूप है।^८ ये ही पोषण कलाओं से युक्त एवं विभिन्न उपासियों में उपास्य रहते हैं इसलिये महाविष्णु कहे जाते हैं।^९ जगत के कल्याण के निमित्त भर और मिट्ट दोनों संयुक्त रूप धारण कर प्रक

१ वैदिक साहित्य : रामणोदित निबन्धी : ५० ५५ तथा ख० सं० १ १ ८ और सं० सं० १ ४ १०।

२ ख० सं० १० ८।

३ मञ्जुसार विषय लोकम इत्यादि नामि नमो नारासिंह प्रथोरवात्।

मे० भा० १० १ १।

४ कुटुम्बर में ५० १८८ में प्रथिम में एक नृसिंह सम्प्रदाय का अस्तित्व माना है।

५ महा० ११ ११ ७८। ६ वि० पु० २, २१ २०।

७ भा० पु० १ १ १८ भा० २ ७ १४ भा० ७, १-१०।

८ कुटुम्बर में ५० १८८ नृसिंह सम्प्रदाय का प्रचार दक्षिण में माना है तथा नृ० भा० ३ का समग्र ५५ -२ ०० ई० के मध्य में विवर दिया है।

९ नृसिंह ५० भा० ४० १ ५। १० नृसिंह ५५ भा० ४० १, ४।

होते हैं। मन्ना, विष्णु और शिव तीनों रूपों में लीला करन के कारण मुसिह
कहे जाते हैं।^१

परम्यु मन्वाकासीक साहित्य में उनके सायददायिक एवं उपनिषद् रूप की
जयया पीरागिक भवतार रूप ही विशेषरूप से गृहीत हुआ। श्रीमद्ग और जय
देव दोनों ने पीरागिक रूपों का वर्णन किया है।^२ 'पुष्पीराजरासो' में देवता
मयवान् के इस भवतार के विभिन्न पुकार करते हैं। जिसके फलस्वरूप ने
आविर्भूत होकर हिरण्यकशिपु का नाश करते हैं। यहाँ प्रह्लाद् ने अपनी स्तुति
में उनके पूर्व भवतारों में किये हुए विभिन्न भवतारी कार्यों का उल्लेख किया है।
उनकी स्तुति के अनुसार वे देवताओं के कार्य के किये तथा सभी के कल्याण के किये
युग-युग में भवतार चारन करनेवासे हैं।^३ महाकवि सूरदास ने 'भागवत' की
स्तुति-कथा का विस्तार करते हुये कहा है कि हिरण्यक के मारने के पश्चात्
हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा सेने के किये कठिन तप किया।^४ इस तपस्वाक बदाम
स्वरूप रात या दिन आकाश या पृथ्वी में अथवा वा सत्य सती से यह भवन्व हो
गया है।^५ फिर भी अपने भक्त प्रह्लाद् की रक्षा के किये और उसका बधन सत्य
करने के किये^६ खम्भ फाड़कर मुसिह प्रकट हुए^७ उन्होंने सत्वा समय तप से
उसका बध्न कर दिया।^८ सूरदास के अनुसार भक्त की रक्षा ही इस भवतार
का प्रमुख प्रयोजन है।^९ यद्यपि देवता भी इससे सुखी होते हैं^{१०} किन्तु उनका
श्रेय प्राप्त करने के किये वे प्रह्लाद् से ही आग्रह करते हैं।^{११} यहाँ मुसिह
भवतार ही नहीं अपितु उपासक भी हैं। वे श्रीनाथान, हृषासु भक्तों के विभिन्न

१ मुसिह पूर्व० ता० अ० २४।

२ ब्रह्मवतार चरित मुसिहवतार, पीठपादिद १४।

३ पुष्पीराजरासो पृ० २०२ दृष्टता समय।

बचारे निकवान, काम सुर शिव किय सर।

जुग जुग सब कर होत किये भवतार तबदि तब।

४ मूर्त्तागत पृ० २६२ पद ४२२।

५. सूत्रागत पृ० २६२ पद ४२२।

६ सूत्रागत पृ० २६४ पद ४२२।

७ कठि तप संन मनी है क्यदि निकटे हरि मरहरि वसु धारि।

सूत्रागत पृ० २६४ पद ४२२।

८ सू० ता० पृ० २६५ पद ४२२।

९. मूर्त्तागत पृ० २६५ पद ४२२ कथ होत जुम भयत संवारी।

१० मुनी भयत हरि भय सुजारी। सूत्रागत पृ० २६५ पद ४२२।

११ तुम्हारे होत कियो भवतार जब तुम जात कठो मनुहार।

सूत्रागत पृ० २६५ पद ४२२।

असुरों का संहार करन वाले हैं।' सुरदास ने 'सुरसागर' और 'सुरसारावली' दोनों में इस तथ्य पर बहुत बल दिया है कि विर्गुन और सगुन दोनों दक्षिणों से देखा, किन्तु प्रह्लाद जैसा भक्त नहीं मिला।^१ उन्होंने भक्त प्रह्लाद का सम्बन्ध का राज्य प्रदान किया। सुरदास के अनुसार जहाँ-जहाँ मछों पर भीड़ पड़ती है वहाँ-वहाँ वे प्रकट हुआ करते हैं।^२

नरहरिदास नारहर ने उक्त कथा का अनुमोदन करते हुये अन्त में कहा है कि असुरों ने प्रह्लाद का उदार कर राज्य प्रदान किया तथा उसे अपना भक्त बना दिया।^३ तुलसीदास के कथनानुसार राम न मुर्तिह रूप धार कर हिरण्यकशिपु को मारा और भक्त प्रह्लाद को प्रसन्न किया।^४ कान्हरदास और कथाभक्तों के अनुसार इस अक्षतार में राम ने प्रह्लाद का कुण्ड दूर किया और उसकी प्रतिष्ठा पूरी की।^५

अतः यह स्पष्ट है कि मुर्तिह मध्यकाल में कबल अक्षतार ही नहीं रहे अपितु मछों की रक्षा करने वाले उपास्य भगवान् के रूप में प्रचलित हुये। इस प्रकार इस युग के अक्षतारथाद् में उपास्य प्रकृति का आध्यात्मिक सम्बन्ध उचित होता है। सगुणोपासकों के अतिरिक्त मछों में मुर्तिहावता अधिक लोकप्रिय विद्यत होता है। सम्यसाहित्य पर विचार करते समय इसका विवेचन किया गया है।

धामन

मृत्यु विज्ञानकथा टाकवर ने पौराणिक कथाओं के विनास के प्रति लिखा है कि 'पौराणिक कथामिर्षा सदैव अपना रूप और अर्थ बदलती रहती है। कथा-शास्त्रों द्वारा उनका इस प्रकार परिवर्तन होता है कि मृत्यु युग में उनका

१. सुरसागर ६० २३५ पर ४२२।

बीनामात्र दबाए सुरासि मय दिन तुम बीन्ही अक्षतार।

२. सुरसागर ६० २६७ पर ४२४।

विर्गुन सगुन होइ मैं बैस्नी, तोलों कईं नहिं रेही। सुरसागरको ६ ५, १३२।

३. सुरसागरको ६० ५ ५ १३२।

४. अब बीन्ही असुरों कात अक्षी करि लीकी। अक्षतार लीका। ६० के०। ६ ३२।

५. अगुन नृवराय ननु नरित विद्यरित करि भक्त प्रह्लाद अक्षतार करी।

तु० सं० विमलविक्रमा ५२ ५२।

६ (क) रा० न० पूर्वाह्न ६० ३६०-३६२

तुम ही नरसिंह थे रूप संशयी, प्रह्लाद थे हीन तुम विरायी।

(घ) रा० कथातुम जी० १ ६० ३७१

एकर नरसिंह ननुवारी प्रह्लाद प्रतिष्ठा पायी।

एक तथा रूप बन जाता है। क्योंकि कथा-भाषक प्रत्येक युग की प्रवृत्तियों के अनुसार उनमें कुछ न कुछ नया तत्त्व आदते रहते हैं।^१

इस धारणा का सर्वांगिक साम्य वामन आदि अवतारों के विकास में प्रतीत होता है। मध्यकाव्यीय साहित्य में जिस वामन का परिचय मिलता है वह प्रारम्भिक वैदिक काल में सूर्य के एक रूप विशेष मात्र उचित होता है। अन्य अवतारों की अपेक्षा सर्वप्रथम वामन ही विष्णु से अधिक सम्बद्ध शील पवत हैं। इन दोनों का सम्बन्ध नाम की अपेक्षा 'तीन पगों' के पराक्रम को लेकर विस्तार से रहा है। क्योंकि वामन या विष्णु के 'त्रिविक्रम या 'अष्टकम आदि नाम उनका तीन पदाक्षेप की धोर ही इहित करते हैं। 'अ० संहिता' में प्रायः कतिपय स्थलों पर विष्णु के तीन पदाक्षेप का उल्लेख हुआ है। उन आचार्यों के अनुसार वे सातों जन्मों द्वारा विविध प्रकार के बादकम करते हैं,^२ तथा अगत् की परिक्रमा करते समय तीन प्रकार से अपने पैर रखते हैं और उनके शक्तिबुद्ध पैर से अगत् त्रिप सा जाता है।^३ वे अगत् के एक हैं। वे समस्त जनों को धारण करने वाले और तीन पग से विश्व की परिक्रमा करने वाले हैं।^४ तीन पग से तीनों लोकों को मापने के कारण वे त्रीर्नमीप हैं^५ तथा उसी तीन पग के बीच विश्व का विभास होने के कारण वे प्रार्थनमीप हैं।^६ क्योंकि अकळे ही उन्होंने तीनों लोकों को मापा था और अकळे ही तीनों को धारण कर रखा है।^७ इस प्रकार विष्णु के तीन पग से सम्बद्ध आचार्यों 'बहु' एवं 'अपव' संहिताओं में भी मिलती हैं।^८ उक्त आचार्यों में प्रमुक्त तीन पदाक्रम का भाष निरुक्तकार तथा दुर्योधन ने क्रमसा पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग तथा अग्नि वायु और सूर्य से मापा है और अरुमात्रने सूर्य के उदय मण्य और अमन से किया है। किन्तु भाष्यकार सायण ने इन्हें विष्णु के वामना बतार के तीन पग माने हैं।^९ फिर भी कार्य समय के आधार पर यहाँ वामनावतार के मूक सूत्र देखे जा सकते हैं। बाद में चटकर वामन-विष्णु की कथा का 'तैत्तिरीय संहिता' एवं मण्ड्यों में चटकर विशेष प्रसार हुआ है। यों ता 'तैत्तिरीय संहिता' में विष्णु-सत्ता इन्द्र से भी एक कथा सम्बद्ध है।

१. राजीश्रीश्रीजी, दशरथ, ४ १११-११७।

२. अ० २, ११, १६।

३. अ० १, २२, १७।

४. अ० २, २२, १८।

५. अ० १, १५४, २।

६. अ० १, १५४, २।

७. अ० १, १५४, ६ और अ० २, २५४, ४।

८. बहु २, १५ और १४ ४२ तथा अर्ध ७ १६, ४ में अ० १, १२, १८ का मंत्र युवा प्रमुख हुआ है।

९. ओरिेंटल संस्कृत टेन्टर। ३ ओर। जी ४ ६० १५।

उसमें कहा गया है कि यह सगूर्ण पूषी पूर्वकाल में असुरों के अधीन थी। देवताओं को केवल इसका उतना ही भाग प्राप्त हुआ था जितनी पूर तक एक मनुष्य बैठकर बैक सकता है। जब देवताओं ने असुरों से पूषी पर अपना भाग माँगा तब असुरों ने पूछा कि तना माग दें। तो देवताओं ने उत्तर दिया कि कोमड़ी तीन पग में जितना जा सकती है। इन्द्र न कोमड़ी का रूप धारण कर तीन ही पग में सारी पूषी माप ही। इस प्रकार देवताओं ने पूषी प्राप्त की।^१

हिन्दू इस प्रकार की कथाओं का सम्बन्ध विष्णु से भी मिलता है। 'तैत्तिरीय संहिता' में ही तीन पग से विष्णु वामन रूप धर कर तीनों हाथों को जीत सके हैं। इसके अतिरिक्त इस उपाख्याम में विष्णु की देवताओं में श्रेष्ठ प्रमाणित किया गया है।^२ देवरेय माह्यग में कहा गया है कि इन्द्र भीर विष्णु एक साथ असुरों से युद्ध में लड़े थे। बाद में असुरों और देवताओं में यह तय हुआ कि विष्णु तीन पग में जितना माप लेंगे उतनी ही पूषी देवताओं का हिस्सा। विष्णु न विश्व वेद और वाक् को माप लिया।^३ यहाँ विष्णु भीर इन्द्र दोनों एक साथ लड़ते हैं। 'शतपथ माह्यग' क अनुसार असुर भार देवता दोनों में परस्पर भेदतर हान की प्रतिद्वन्द्विता थी इसमें देवता पीछे हट रहे थे और असुर समस्त विश्व को परस्पर बाँट लेने का प्रयत्न कर रहे थे। अतः देवता भी यह रूप विष्णु का अपना नेता बना कर उनका पास पहुँच और अपना भाग उनसे माँगा। असुर देवताओं से ईर्ष्या करत थे। उन्होंने कहा कि जितनी पूषी में विष्णु सो सकते हैं उतनी पूषी हम दे सकते हैं। विष्णु सम्भवतः हमलिये तुमने गप क्योंकि विष्णु वामन थे।^४ देवता इससे बहुत असंतुष्ट हुए फिर भी उन्होंने विष्णु को मन्त्रों द्वारा प्रमत्त किया और इस प्रकार सारी पूषी प्राप्त की।^५

उक्त प्रसङ्ग में विष्णु का वामन से यह सम्बन्ध होने क अतिरिक्त पूषी से भी सम्बन्ध विदित होता है। इसमें सम्यक् नहीं कि असुर-राज बलि का इन असुर-रूप संघर्षों में नाम नहीं लिया गया है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि उपयुक्त तत्त्व महाकाव्य पूर्व पौराणिक कथाओं क मूल उपादान

१. ब. रा. ५. सी०। संस्करण १८९५। २६९ और टी. मं. ६. २. ४६०।
 २. लं. १. ३. २।
 ३. टी०. लं०. २. १. ३. २।
 ४. ब. रा. १. १. ५. ५।
 ५. दिग्दी. भा. ४. ४. ५।

१. टी०. मा. ४. २५।

५. दिग्दी. भा. ४. ४. ५।
 टी०. मा०. १. १. ५।

अवश्य रह है। क्योंकि बलि-वामन की पौराणिक कथा क अतिरिक्त विष्णु पुराण (३, ३ ४३ ४३) और मा० ८ १३ १ की सम्बन्धरावतार-कथाओं में त्रिम वामन का उल्लेख हुआ है उमका असुर राज बलि से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता^१ फिर भी प्राकृतों के वामन-विष्णु अद्भुत ब्रह्म स अपने को इतना बड़ा समते हैं कि सारा विश्व आच्छादित हो जाता है।^२ वे वहाँ मुख्य रूप से कश्यप और अश्विनि क पुत्र कहे गये हैं। इस दृष्टि से वे पौराणिक वामन की अपेक्षा वैदिक वामन विष्णु या सूर्य-रूप क अधिक निकट हैं।^३ 'महाभारत' 'भाराधर्मीयोवाक्यात' की कथा में वामन का एक भोर तो सम्बन्ध अश्विनि एवं आश्विनियों से है और दूसरी भोर देवताओं का कार्य करने क लिये तथा बलि को पाताक में भेजने के निमित्त अवतीर्ण होने से है।^४ इस प्रकार 'महाभारत' में वामनरावतार का सम्बन्ध बलि स भी हो जाता है। 'पद्य'^५ या 'भागवत' भाद्रि पुराणों में वही पौराणिक रूप विशेष रूप से गृहीत हुआ है। 'भागवत पुराण' क तीनों अवतार विवरणों में अश्विनि-पुत्र और बलि से सम्बन्ध घटनाओं का ही समावेश हुआ है।^६ पादरात्रों में वामन और त्रिविक्रम दोनों नाम ३९ विमर्शों में गृहीत हुए हैं।^७

मत्स्यकाण्डिन कवियों में चेमेन्द्र जयदेव भाद्रि संस्कृत कवियों ने इत्ता वतारों में बलि-वामन की पौराणिक कथा का ही वर्णन किया है। त्रिममें वामन मुख्य रूप स बलि को दुःखवास माने गये हैं।^८ 'पृथ्वीराजरासो' में कहा गया है कि हरि क साथ-साथ देवता और अपि भाद्रि सभी ने बहुत सुख किया। काकावतर में बलि के साथ से इन्द्र का सिंहासन खोलने कथा जिसक कश्यपक रूप देवताओं की प्रार्थना से मुसिह विष्णु ने वामन अवतार धारण किया।^९

सुरदास न वामनरावतार की चर्चा करते हुए कहा है कि अमृत मन्थन क

१ वि० पु० ३ १ ४३-४३ और मा० ८ १३ १। २ तै० मा० ३ १ १ ७।

३ वि० पु० ३, १ ४३। ४ महा० २२, ३२९, ८२, ८३।

५. पद्य पृ सृष्टि खंड २५वाँ अध्याय, अष्ट खंड २३३, २३७ कश्यप अश्विनि पुत्र वामन और बलि का उल्लेख।

६. मा १ ३ २९ मा० १ ७, २७-२८ मा० ८ १८ २३।

७ देवो वामन देहन्तु सर्वभूतार्थी त्रिविक्रम। अश्वि र्त् ५, ५५।

८ वषावतार-वामनरावतार और गीत गोविंद पृ १ ५, ६।

९. पृथ्वीराजरासो पृ० २०२ दूसरा समय।

आर जयार श्रीपरी बलि आसुर जनपार।

तत्र तु पवारे भरहरी चरि वामन अवतार।

पश्चात् बलि और असुर बहुत दुःखी हुये।^१ बलि के १९ पल करन के फलस्वरूप देवता भी उनसे बहुत भयभीत हो गये।^२ अता अदिति की उपस्था पर देवताओं के कारण हरि ने वामन रूप धारण किया।^३ उन्होंने बलि के पक्ष में जाकर पर्बकुटी जाने के बहाने तीन पद समुद्रा मॉगी।^४ दो पद में ही तीनों काक समाप्त हो जाने के कारण^५ बलि ने दिव्येस को अपनी वैद्व मापने के किये कहा और पाताक का राज बाना।^६

इस भवतार की कथा पर भी लच्छाकीन पुग की मच्छिजमित प्रहसियों का रङ्ग पर्याप्त रूप से चढ़ चुका था। जिसके फलस्वरूप सूर्य के पादाङ्गम और असुर-सुर दण्ड के रूप में विकसित होता हुआ बलि-वामन का रूप सेवक-सेवक भाव में परिमल हो जाता है। सूरदास के यहीं है इसका भाग होता है।^७

बाह्य के कथनानुसार वामन ने बलि को बँधते समय अपने शरीर का विस्तार किया जो तीनों लोकों में भी नहीं बँध सका।^८ अङ्गाप के कविगोविन्द स्वामी ने वामन-जवन्ती के उपलक्ष में वामनवतार का वर्णन करते हुए कहा है कि अदिति के जीवन-आधार चतुर्भुज विष्णु-वामन बटुक होकर बलि के द्वार पर लड़े हैं।^९ एक दूसरे पद में वामन-कीका का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए कहा है कि वामन ने बलि को भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें वैकुण्ठ का राज प्रदान किया।^{१०}

१ हरि वन बहुत तरनि विवाची तब बलि असुर बहुत दुःख बाची ।

सूरसागर ५ १०९ पद ४३९ ।

२ सूरसागर ५ १०९ पद ४३९ ।

३ हरि दिन वन बुनि बहुतन करची सूर रवान वामन बहुतरची ।

सूरसागर ५ १०९ पद ४३९ ।

४ सूरसागर ५ १०९ पद ४४० ।

५- सूरसागर ५० १०० पद ४४१ ।

६ सूरसागर ५ १०० पद ४४२ ।

७- सूरदास स्वामीजन तबि कै, सेवक वन रत भीन्धी ।

सूरसागर ५० १०० पद ४४२ ।

८ बलि बाँधत वनु विलरची । निहुटुट वैन लमार ।

भवभार लीन्य । ६० ठि० । ५० ६२ ।

९ गोविन्द स्वामी वर संघर्ष वर ४८ । पदों की वामन भवतार ।

निरागि अदिति करन प्रसन्ता जुग बीरव आचार ।

गोविन्द मनु बहुत वामन डे डाड़े है बलि द्वार ।

१० गोविन्द स्वामी वर संघर्ष ४९ ।

भीन्दे डीक डीकि गोविन्द वैकुण्ठ डे रितारी ।

गुडसीदास के कथनानुसार राम ने बामन-रूप में बलि से लड़ किया। पहले उससे तीन पैर वृषी मोगी पर केत समय तीनों लोक ही तीन पैर से नाप किये। नापत समय इनके चरण मल से जो जल निकला वही 'गङ्गा' के नाम से ममिद हुआ।^१ 'दोहाबकी' के कतिपय दोहों में बामन के लुठी रूप की चर्चा हुई है।^२ मन्त्रों में कबीर पद्य के परवर्ती कविओं ने भी बकि-चरित्र के रूप में बामन अक्षतार का वर्णन किया है। बकि के अक्षतार पद्य में बाघा पहुँचाने के लिए तीन लोकों के स्वामी ने बामन-रूप धारण किया। इस प्रकार सगुणोपासकों के बामन अक्षतार की प्रकथित क्रिया का इनमें वर्णन हुआ है।^३

श्रीबीस अक्षतारों के अतिरिक्त बामन का वि० पु० ३, १ ३२ तथा भा० ८ १३ ६ में मन्वन्तराक्षतारों में भी गृहीत हुआ है। सम्भवतः इसी से 'सूरसाराबकी' में बामन का वर्णन श्रीबीस अक्षतारों में न होकर मन्वन्तराक्षतारों के क्रम में हुआ है।^४

इस प्रकार द्वादशतारों में गृहीत मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और बामन पूर्णतः पौराणिक तारों (मीथिक प्रलिमेंटम) के आधार पर विकसित एवं परिवर्धित पौराणिक अक्षतार हैं। जिस प्रकार जनश्रुतियों के विकास में लोक-कल्पना का हाथ रहता है उसी प्रकार पुराणों में एवं उनसे सम्बद्ध साहित्य में गृहीत होने पर कल्पनाओं के योग से पुनः-पुनः में इन्हें नये रूपों से सुमन्वित किया गया।

परशुराम

द्वादशतारों में पूर्व पौराणिक अक्षतारों के अतिरिक्त परशुराम राम कृष्ण बुध, बलि आदि त्रिन महापुरुषों को ग्रहण किया गया है व इतिहास वेत्ताओं के अनुसार ऐतिहासिक महापुरुष हैं। अतः मत्स्यदि पौराणिक अक्षतारों की अपेक्षा इनका अक्षतारवादी विकास अपना विशिष्ट स्थान रखता है। क्योंकि इनके ऐतिहासिक रूपों में त्रिन अक्षतारपरक तारों का

१ गु० प्र० दिनवपविद्य ५२।

प्रश्न बकि कपट बद्ध रूप बामन मद्य मुक्त वर्णन पर तीन करन।

चरन-बक-जीर दीक्षी-नाचन, परह विभु-जगनी-दुसह-सोक हरन।

२ गु० प्र० दोहाबकी दो ३९४-३९९।

३ बामसागर ६ २७-२८।

बानी तीन लोक के मूपा तप पुनि कीन्ती बाचन रुवा।

४ सूरसाराबकी पु० १३ पर ३२९-३४५।

समाजवादी हुआ है उनका जन्मभूमिगत या साहित्यगत अभिव्यक्तियों से अधिक सम्बन्ध रहा है।

साहित्य में व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के सूक्ष्मज्ञान में गुण और चरित्र का विशेष योग होता है। प्रायः विभिन्न कालों में साहित्यकारों द्वारा इसका विभिन्न मापदण्ड प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। वैदिक काल में देवता का प्राधान्य होने के कारण मानवी गुणों का देवी और जासुरी हो माणों में विभाजन किया गया था।^१ भक्तारवाद की दृष्टि से साह्य एक घम की रथा तथा दुष्टों के नाश के लिये बल तेज और पराक्रम पुरुषों के प्राधान्य गुण या चिह्न थे। प गुण सामान्यतः वैदिक देवता इन्द्र या मुकुपता विष्णु में माने गये थे।^२ वही कारण है कि और पुरुषों को प्रायः विष्णु के समान बलवान् वा पराक्रमी कहा जाता था।^३ वही और धीरे रूपकात्मक अभिव्यक्तियों के फलस्वरूप 'भक्तार' नामक शब्द रुद्रि के रूप में प्रचलित हुआ। उक्त ऐतिहासिक महापुरुषों में परशुराम राम और कृष्ण के प्राग्भिक भक्तारवादी विकास में इन प्रवृत्तियों का विलय योग रहा है।

ऐतिहासिक

परशुराम अपने युग के सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों में रहें हैं। अतः अनेक इतिहासकार उस काल का परशुराम काल से समिहित करते हैं तो आश्चर्य नहीं होता।^४ मार्गण परशुराम का प्राचीन भारतीय जन से सम्बन्ध रहा है। छद्मचरित्र के कथनानुसार वैदिक साहित्य में इनसे सम्बन्ध अनेक पौराणिक कथाओं एवं इन्द्रकथाओं मिलती हैं।^५ जिससे इनके पौराणिक रूपों का विकास होना सम्भव है। राम जन्मदिन का उल्लेख श्ल० १०, ११० में

१ अंता—११ अन्वाव ३ देवी गुण और १९, ४ जासुरी गुणों को ही देवी का जासुरी सम्बन्ध कहा गया है।

२ विष्णु श्ल० ३६ में वरुण विक्रम के नाम से प्रतिष्ठ होने के अनिच्छ बलवान् वा वीरवाम भी मने लये हैं। श्ल० १, १५४ १-६। 'विश्वैर्जुं वीरवामि प्रभोव' पद्य। श्ल० १ १५४ २ के 'अरथ विष्णु' लक्षणे वीरवाम' से इनके वरुण वीरवाम मान होगा है।

३ का० रा० १, १ १८ विष्णुवा सृष्टी वीरवाम में राम को विष्णु के समान वीरवाम कहा गया है।

४ दी वैदिक दशमी १। सं० १९५१। पृ० २०३ में १५१०-११५० ई० पृ० को परशुराम काल माना गया है।

५ दे० म ओ० टी० ई० जी० १५, पृ० २ निरन्तर। धरिक्त शक्ति पद्य के छद्मचरित्र।

मिथता है। तथा ऋ० १०, ११, १४ क राम को भी इक्ष्वाकु या पृथुवर्षी राम की अपेक्षा विद्वानों ने जामदग्नेयराम माना है।^१ श्री क० एम मुसी क अनुसार 'अथर्ववेद' में परशुराम क अवतारत्व क प्रमुख प्रयोजनों में से एक पृथु और द्वैद्वयवर्षी लोगों क सघर्ष और वा सम्बन्धी कथाओं का उल्लेख मिथता है।^२ मि० इकिपट ने भी परशुराम को वैदिक काल क व्यक्तियों में माना है। इनक मतानुसार ब्राह्मणों एव चरित्रों के सघर्ष में परशुराम ने चरित्रों का भगाकर भाऊवार तट पर ब्राह्मणों को बसाया।^३

इन तथ्यों क आधार पर परशुराम को ऐतिहासिक व्यक्तियों में माना जा सकता है।

अवतारत्व का विकास—

राम-कृष्ण आदि क सद्य परशुराम भी प्रारम्भ में विष्णु क अवतारत्व माने गये। सम्प्रदायों में गृहीत होने क अनन्तर राम और कृष्ण तो पूर्णवतार और अवतारी ब्रह्म के रूप में मान्य हुए। किन्तु परशुराम में एक विशेष बात यह उचित होती है कि विष्णु तेज और वीर्य से युक्त होने क कारण परशुराम विष्णु क अवतार तो बनते हैं, पर वही तेज वीर्य और पराक्रम राम द्वारा हरण कर लिये जाने पर वे अवतारत्व से हीन हो जाते हैं।^४ यह युग सत्य इतिहास एव वर्तमान की अपेक्षा साहित्यिक अधिक है। क्योंकि सहायों वयों का अन्तर होने पर भी कनि अपभ्रं प्रतिपाद्य पात्र का महत्त्व पूर्ववर्ती पात्र का कटुत्व दिला कर स्वकः कर सकता है। अवतारवाद क इस रूप से यह अनुमान किया जा सकता है कि महाकर्म का क प्रारम्भ में यदि कोई रूपकात्मक वा अंसावतार की भावना विद्यमान थी तो वह वर्णन वा सम्प्रदाय की अपेक्षा काम्य वा साहित्य में थी। यों ऐतिहासिक दृष्टि से प्रारम्भिक 'महामारव' में उन्हें जमी हाक ही क वीर पुरुष क रूप में चित्रित किया गया है।^५ श्री टुकटक एव क० एम० मुसी का कथन है कि गीता (१०) में जिस राम को विद्युत्तियों में ग्रहण किया गया है वे मार्गव राम हैं। गीता क

१ ऋ० १ ११, १४। में प्रमुख राम और गुरु ई० एम्बी० (नम्बरे) जी ६ ए २१।

२ गुरु ई० एम्बी० जी० ६ ए २१ और दो जर्नी जार्जस इन पुनराठ ५० ५९।

३ हिन्दूकर्म ऐड इतिहास जी २ पृ० १४८।

४ वा रा १ ७६ ११-१२।

५ गुरु ६ एम्बी० जी ६ पृ० १२०। महा० ७, ७० ४-१४।

उद्य सगन्ध ने बाद में उन्हें बिष्णु के अवतार होने में सहायता प्रदान की।^१ जो दो साम्प्रदायिक राम कृष्ण, बुद्ध जादि की तुलना में परशुराम ही एक ऐसे ऐतिहासिक अवतार हैं जिसका वीराभिक से अधिक साहित्यिक अवतार वादी रूप सुरचित है। क्योंकि पुराणों में उन्हें पूर्वावतार कभी नहीं कहा गया। उसके विपरीत उनका एक मात्र कार्य रह गया किसी अवतार (राम) की परीक्षा लेना^२ किसी (कृष्ण) को परामर्श देना^३ तथा किसी (कवि) को समुर्देद की सिखा प्रदान करना।^४

बिष्णु इतिहासकारों ने इनके अकमलत्व से भी प्राचीन इनकी पूजा का अस्तित्व माना है। ब्रह्मिणी भारत में दूसरी शती के एक शिकारकेव के अनुसार परशुराम की पूजा प्रचलित थी। 'वासिक अभिलेख' (१९२७ ई०) में 'रामतीर्थ' की खर्चा हुई है जो 'महामारत' के अनुसार कामदेव राम की तीर्थभूमि थी।^५ इस आधार पर परशुराम से भी सम्बद्ध किसी सम्प्रदाय की सम्भावना की जा सकती है।

जो तो 'महामारत' में कतिपय स्थलों पर परशुराम के प्रासंगिक वर्णन आये हैं परन्तु सर्वत्र उन्हें बिष्णु का अवतार नहीं कहा गया है। 'महामारत' 'बन पर्व' के एक प्रसङ्ग के अनुसार कार्तवीर्य के अत्याचार से बचकर दृग्दादि देवताओं से बिष्णु से उसका बच की प्रार्थना की।^६ वहाँ पुनः कहा गया है कि हिंदवराज ने इन्द्र पर आक्रमण किया, जिसके कलस्वरूप बिष्णु ने उसका विनाश के निमित्त इन्द्र से मन्त्रमा की।^७ ममस्त प्रायियों के कश्चाल के निमित्त या सम्भवतः अवतार लेने के निमित्त ही उन्होंने बद्रीकाश्रम की प्राप्ति की।^८ वहाँ उनका अवतार का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। इसके अनिश्चित 'नारायणीयापावधान' में कहा गया है कि 'ईं प्रेता युग में ऋतु-कुल का उद्धार करने काय परशुराम-रूप से अवतरित होकर सेना तथा बाहुनों की पृष्टि करने वाले जत्रियों का संहार करेगा।^९ 'विष्णुपुराण' में कार्तवीर्य अशुभ के बच करने वाले परशुराम को नारायण का अंशावतार माना गया है।^{१०} पुनः दूसरे स्थल पर नारायण-अंशावतार परशुराम समस्त पृष्टियों का रक्षक करने वाले कहे गये हैं।^{११} कुछ विवरणों में महाराज-बच भीर जत्रियों का संहार

१. दि० म० १० ई० बी० १८५०-१८-१९ तथा मु० १०-कपीकरी जी० ९, ५०-२२०।

२. वा० रा० १, ५५, २२।

३. ही वैदिक वच ५०-२८१।

४. कवि० पु० १ १ ४-६।

५. ही इतिहास पर ५०-४१६।

६. महा० १ ११५, १५-१६।

७. महा० १, ११५, १०।

८. महा० १ ११५, १८।

९. महा० १२ ११५, ६४।

१०. वि० पु० ३ ११ २०।

११. वि० पु० ४, ५, १६।

हो पृथक् प्रयोजन प्रतीत होते हैं। किन्तु पाद में 'भागवत' में दोनों प्रयोजनों का समन्वय हो गया है। 'भागवत' क अनुसार परशुराम अज्ञानकार ने ही वैश्यवंश का नाश किया और चत्रियों का इच्छीम बार संहार किया था।^१

मध्यकालीन कवियों में जेनेरल ने कात्तवीर्य अर्जुन और चत्रियों के साथ हुये संघर्ष का विस्तृत वर्णन किया है तथा महाभारत-वच की इस अवतार के प्रमुख प्रयोजनों में ग्रहण किया है।^२ जयदेव के अनुसार इस अवतार में परशुराम ने चत्रियों के कृषि में लगत को र्मान करा कर संसार के पापों और लीनों तपों का नाश किया।^३ 'पृथ्वीराजरासो में भी उक्त प्रयोजनों का समावेश हुआ है।'^४

'भागवत' के आधार पर वर्णन करने वाले तत्कालीन कवियों में सुरदास ने सहजाजुन के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके कथनानुसार सहजाजुन ने एक दिन जमरुतिन क्षत्रिय के आश्रम पर जाकर कमधेनु को बलपूर्वक खेवा चाहा। परशुराम ने यह समाचार पाते ही जाकर सहजाजुन को मार डाला। सहजाजुन का मारा जाना सुन कर उसके वधार्थी ने जमरुतिन को मार दिया।

फलतः रैजुक्ष की पुकार सुनकर परशुराम ने इच्छीसर्षी बार चत्रियों का संहार किया।^५ 'सूरसारावली' में कहा गया है कि पृथ्वी पर हुए चत्रियों की वृद्धि हो जाने पर कृष्ण ने परशुरामावतार लेकर भूमार-हरण किया।^६ बार हठ ने भी भागवत की कथा के आधार पर इनक द्वारा किये गये मातृवध

१ मा० ९ १५, १५, तथा मा० १, १, २, मा २ ७, २२ और ११ ४, ११ में भी वही प्रयोजन माने गये हैं।

२ वसनाघाट परित परशुरामावतार।

३ मीतपोक्ति १ ३।

४ जमरुतिन धृतरुज बर दिपन परशुराम अवतार बर।

क्षत्रियन मारि वृन्द बरिब कटी इक जम सहस कर।

पृथ्वीराज रासो वृ २ ५ वृत्त समय।

५ मारे क्षत्री वसवध जात, भी मबी परशुराम अवतार।

इक नृप ली ल्पो कदि समुझावी मूरवास, ल्पो ही कदि गयो।

सूरसागर वृ० १९० पद ४५०।

६ सूरसारावली वृ ११

हुइ मृपति बन बैठे उव बर बरि नृपति को रूप।

धन में उवको मार बनात वै परशुराम दिव भूप।

एक इक्कीस बार कृत्रियों के वप की चर्चा की है।^१ किन्तु इनके पक्षों के अनुसार परमेश्वर ने धर्म की रक्षा के निमित्त स्वयं देव धारण किया।^२ उक्त कथन से स्पष्ट है कि इन्होंने परशुराम को विष्णु की अवैद्य परमेश्वर का अवतार माना है। इसका सूत्र में दो तर्क दृष्टिगत होते हैं। एक तो यह कि विष्णु आकाशमन्त्र में परमेश्वर के पर्याय के रूप में प्रचलित थे और दूसरा अधिक सम्भव यह जान पड़ता है कि 'विष्णु' या 'परमेश्वर' प्रकृति ईश्वरवादी शक्तियों के प्रयोग के प्रति वे उतना अधिक स्तुतिप्रप्त नहीं होना सकते हैं जितना कि उन्हें प्रायः अवतारों के वपन क्रम में देना जा सकता है।

राम-भक्ति-शाळा में प्रचलित रामायणों में परशुराम की सामाजिक कथा का वर्णन हुआ है। सामान्यतः ये विष्णु के अवतार ही माने जाते रहे हैं। किन्तु 'अष्टावक्ररामायण' में इन्हें विष्णु के अवतार होने के पूर्व नारायण या विष्णु का परम भक्त कहा गया है।^३ तुलसीदास ने 'राम चरित-मानस' में राम-भक्तन के साथ परशुराम का विस्तृत सम्बाध दिया है। यहाँ इनके अवतार होने का विस्तृत उल्लेख नहीं किया गया है।^४ पर 'विजयपत्रिका' की वृषावतार-स्तुति में महर्षिबाहु और कृत्रियों के साथ करता परशुराम के अवतार-रूप के प्रति कहा है कि उन्होंने प्राणरूपी याम हरा भरा करने के लिए मेघ बन कर परशुराम अवतार धारण किया।^५ गोविंदराम तुलसीदास के उक्त अवतार-देतु में प्राचीन पुराणों में प्रचलित प्राणर-कृत्रिय संघर्ष की प्रतिष्ठा ही मिलती है। इनके अतिरिक्त राम के वृषावतार रूप के ही प्रयोग में काण्डरहात और वृषावतार ने भी कृत्रिय-रुद्र के नाशक परशुराम-रूप का उल्लेख किया है।^६

१. भागवत त्रिभु वचन इति चतुःशत अर्थेण ।

कर्मैक्य त्रिभुवेद, वप्यादी तन धारोष ।

शोच निश्चय इत्येव चार मूढ मार वपारोष ।

अवतार लीला । ६० वि० । ५० ८१ ।

२. वप्य वेद पर वप्य वरपी निश्च वैदु धर्म रित ।

अवतार लीला । ६० वि० । ५० ८१ ।

३. अ० रा० १०, २१-२२ ।

४. महर्षि बाहु मुनि टेरनिहाता वरुद विन्धेक महोप मुमारा ।

रा० भा० । भा० व स । ६० २२५ ।

५. 'कृत्रियोपीय-वदरि विहरि-वत-वैवरी परशुवत-विज-स्तति उच्यते कर्म ।

सु० वी० विमल पत्रिका वर० ५२ ।

६. राग कण्ठम वीन १, ३०० और रामचरितका । वैद्यन वीमुनी । पूर्वादि

५० ११० १११ ।

संत कवियों में गुरु गोबिंद सिंह ने 'विचित्र नाटक' में परशुरामावतार का वर्णन करते हुये कवियों को ही असुर बताया है।^१

इस प्रकार मध्यकालीन कालों में परशुराम का अधिकांशतः पौराणिक रूप वर्णित हुआ है। किन्ती सम्प्रदाय से सम्बन्ध न होने के कारण ये केवल विष्णु के दशावतार या चौबीस धवनार-परम्परा में अज्ञावतार या शाकत्यावेशावतार के रूप में प्रचलित रहे।

रामावतार—दशमें अध्याय में वृष्टस्य।

कृष्णावतार—स्वारहमें अरयाय में वृष्टस्य।

बुद्ध

दशावतारों में जिन बुद्ध को स्थान मिला है उनका अवतारवाद की दृष्टि से भारतीय साहित्य में विचित्र स्थान है। क्योंकि मूलतः बुद्ध के पौराणीक रूपों के प्रचलित होने पर ही वैष्णवतर बीज्यमं एवं बौद्ध अवतारवाद से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

कृष्ण जाति ऐतिहासिक अवतारों के सहस्र बुद्ध भी ऐतिहासिक महापुरुष हैं। इनका जन्म ४७८ ई० पू० इतिहासकार मानते हैं। कृष्ण और महावीर के सहस्र ये नये धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तकों में रहे हैं।

तीनों के धर्म परस्पर एक दूसरे से कितना प्रभावित हैं आज भी यह कहना कठिन है। कुछ लोग तो तृती शती पूर्व के भागवत धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म से ही वैष्णव अवतारवाद का विकास मानते हैं।^२ किन्तु श्री गोशुल के ने बौद्ध और सागवतों के संबन्ध पर विचार करते हुए निश्चय किया है कि बौद्धों की भक्ति जन्मि मास्यतायें सागवत धर्म से ही प्रभावित हैं। फिर भी इतना तो माना ही जा सकता है कि वैष्णव अवतारों में प्रकृत होने के पूर्व बुद्ध, बौद्ध धर्म में अवतार, अवतारी एवं उपास्य तीनों रूपों में प्रचलित हो चुक थे। क्योंकि बौद्ध स्तूपों में तीसरी शती पूर्व ही इनकी पूजा के उद्देश्य मिलते हैं।^३

बौद्धधर्म में अवतार बुद्ध

यों तो बुद्ध के जीवन में ही शेषता के सहस्र लोग इनकी पूजा करने लगे

१ चौबीस अवतार पृ० ३०-३१।

२ श्री कम बरे सब अक्षरम आवत ब्रह्म मूय तुमरे मग।

३ श्री गोविन्दस्य वाचरटीन पृ० ३१-३२।

४ सिन्धीटिर्कित पैरुड इम्पारटिस जाक वाचकम् पृ० १५१-१५८।

ये ।^१ परन्तु वाप में बहकर विभिन्न बौद्ध सम्प्रदायों में इनके अवतार रूपों का भी विकास हुआ । प्रारम्भ में बुद्ध ने साधना क बरु पर ही बुद्धत्व प्राप्त किया था । विशेष कर भागवतोंके प्रसिद्ध पद्मगुणों के सद्य महात्माकी बौद्धों में जिन शब, सीक शान्ति बीर, प्याम प्रशान आदि १ पारमितार्ण मानी गईं हैं^२ वे बौद्ध साधना के उत्कर्षप्रदान का सोपान हैं । बुद्ध इसी साधना के द्वारा सिद्ध हुए थे । अतः सिद्ध बुद्ध के जीवन काक में ही कोशों ने उन्हें कोकोत्तर भक्तियों से युक्त एवं सर्वश करना शुरू किया । फलता उनके परिनिर्वाण के पश्चात् उनके जीवन के साथ जनक कोकोत्तर पूर्व चमत्कारी बार्ते जुड़ गईं ।^३ बोधिसत्व की धारणाओं के विकास होन पर बुद्ध बोधिसत्व माने गये । महायान साहित्य के 'लुठित विस्तर के अनुसार विष्णु के विर्य लोक के समान इनका भी विकास स्वयं 'तुपित स्वर्ग' में माना गया । वहाँ इनकी सेवा में सदृशों देव-दासियों निरत रहती हैं । सर्वप्रथम उनको ही इन्होंने धर्म का उपदेश दिया और बारह वर्षों के पश्चात् पृथ्वी पर अवतरित होने का निश्चय किया ।^४ देवताओं ने इसकी सूचना की कि बुद्ध प्राणियों को धिया देने के किये तथा मत्स्यक बुद्धों को सूचित करने के किये अवतरित होन वाले हैं । इन्होंने स्वर्ग से अवतरित होने के पूर्व अपना स्वयं मुकुट मैत्रेय के सिर पर रख कर उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया ।^५ राम-कृष्ण आदि की अपेक्षा बुद्ध का यह आविर्भाव जैन तीर्थंकरों के अवतरण से साम्य रखता है । क्योंकि तीर्थंकरों के सदा इनके जन्म लेने के पूर्व ही इनकी माता विमैच प्रकार के मतीकभ्रमक स्वयं देवती हैं ।^६ इस प्रकार बौद्ध धर्म में भी ज्यों-ज्यों पौराणिक तत्वों का समावेश होता गया बुद्धों एवं बोधिसत्वों की कल्पना में वृद्धि होती गई । पहले एक बुद्ध से पा बुद्ध तदनन्तर सात तथा 'बुद्धवंश' में बीबीस बुद्धों का वर्जन किया गया । 'लुठित विस्तर' और 'सद्धर्म पुंजरीक' में विष्णु के अनन्त अवतारों के समान इनकी संख्या भी करोड़ों तक पहुँच गई । बुद्धधर्म में इनके पूर्ववर्ती २४ बुद्धों का वर्जन हुआ है और वहाँ गौतम बुद्ध पञ्चोत्तवें तथा मैत्रेय बुद्ध २३वें माने गये हैं ।^७ परिनिर्वाण के पश्चात् पा या बीबीस बुद्धों की उपस्थित नहीं मानी जाती थी किन्तु परवर्ती साहित्य में उनकी स्थिति जनक रूपों तक बगलाई गई ।^८ बौद्ध मत के अनुसार वे बुद्ध और बोधिसत्व कसल जन्महीन के मत्प्रेक्ष में ही उत्पन्न होते हैं ।^९ जब पृथ्वी त्रिबाह्यम

- १ ही विष्णु पद्म की० २ दू० ४५० । २ बीहर्द्धम दू २२८ ।
 ३ महायान दू १० । ४ ही शरीरिद भाद्र बुद्धिम दू० १८४ ।
 ५ ही शरीरिद भाद्र बुद्धिम दू० १८४ । ६ ही शरीरिद भाद्र बुद्धिम दू १८४ ।
 ७ ब्रह्मि साहित्य का इतिहास दू० ५८५ । ८ ही शरीरितर वाचरीरिद दू० ३१ ।
 ९ महायान दू० ८४ ।

होती है तब व चतुर्थ कुक में उत्पन्न होते हैं और जब पृथ्वी ब्राह्मणाख्यान्त होती है तब ब्राह्मण कुक में उत्पन्न होते हैं ।^१

उपपुत्र कथनों से स्पष्ट है कि कालांतर में बौद्ध साहित्य में भी पौराणिक तथों मिथिक एन्डिमेंट्स का समावेश प्रचुर मात्रा में होना गया। साथ ही जन्ममें वैष्णव अवतारवाद क अनेक विचार तथा किञ्चित् परिवर्तित रूप में गृहीत हुए। इस दृष्टि से 'महावस्तु का दृष्टिकोण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इसमें प्रतिपादित 'चतुर्थाख्यान्त' और 'ब्राह्मणाख्यान्त' पदों में 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' की भावना विद्यमान है। अतएव निश्चय ही बौद्ध साहित्य भी अवतारवाद की अत्यन्त लोकप्रिय और व्यापक भावना से भावद्वेष होने लगा था।

अवतारी एवं उपास्य

वैष्णव अवतारवाद जो बौद्धों को कभी माध्य नहीं था उसका आश्चर्यजनक रूप इस धर्म में रुचित होता है। जो बुद्ध पहले कबल अर्हत् मात्र थे व साक्षात् परमेश्वर हो गए। महामति और बुद्ध की शार्त्ता में जो हुई परिभाषा के अनुसार वे स्वयम् सप्तशक्तिमान, अर्हत् या बुद्ध हैं। व ही ब्रह्मा, विष्णु ईश्वर, तथा सूर्य-चन्द्र के रूप हैं। व कहते हैं कि मुझे कुछ लोग प्राचीन ऋषियों का अवतार कुछ मुझे ब्रह्मरुक्, कुछ लोग राम तथा कोई इन्द्र या ब्रह्म कहते हैं; तथा कुछ लोग मुझे धर्मकाय, निर्माणकाय भादि साकल रूपों में भी देखा करते हैं।^२ पांचरात्रों क पर विष्णु क अनेक कथाजन्म गुणों क सहाय अव बुद्ध के धर्मकाय में भी वृत्त प्रकार क बल, चार प्रकार की योग्यता, तीन प्रकार की स्थितियों का अस्तित्व माना गया।^३ इन अवतारी या मित्य बुद्धों क बौद्ध धर्म में तीन काय माने जाते हैं। जिनमें बल्लभ उपास्य क अनुसार धर्मकाय ब्रह्मन्त ब्रह्म का प्रतिनिधि तथा सम्भोग काय ईश्वर-स्वरूप का निर्देशक है।^४ परन्तु महन्त शान्ति मित्र क अनुसार यह भाषनात्मक एवं विकासोन्मुख अवस्थाओं का परिचायक है।^५ पर अवतंसक सूत्र में उपलक्षण तथा श्री सुवृकी द्वारा प्रस्तुत धर्मकाय क प्रति कहा गया है कि धर्मकाय यद्यपि इम त्रिगुण किञ्च में स्वर्ण प्रकट होता है तथापि यह इन्द्रा और अविद्या से स्वतंत्र है। यह कथानुसार इश्वर उच्चर, सर्वत्र प्रकट होता है।

१ महावाक्य ५० ८४ महावस्तु २ बुद्ध १ २।

२ बुद्धिष्ट वाचविक। प्येवाट्टे। ५ २५८।

३ बौद्ध दर्शन। व क्याख्यान्त। ५ २३२।

४ बौद्ध दर्शन ५० २३५।

५ महावाक्य ५० ७२।

न इसका वैयक्तिक स्वरूप है न इसका अस्तित्व मिथ्या है। अर्थात् यह विद्यावापी एवं विशुद्ध है। वह न कहीं जाता है न जाता है, न बढ़ता है न मंदा होता है। यह निर्मल और साधत तथा अनक संकल्पों से पृथक् और अद्वय है। पांचरात्रों के अन्तर्गामी के सद्यः वह सभी के शरीर में निवास करता है। वह प्रकृति और कर्म की अवस्थानुसार किसी भी स्थूल शरीर में प्रकट होकर सारी सृष्टि को उपातित कर सकता है। वह ज्ञान-स्वरूप है फिर भी विरूपण वैशिष्ट्य से युक्त है। सृष्टि जगत्से उत्पन्न होती है किन्तु वह निश्चय स्वरूप में स्थित रहता है। वह किसी भी प्रकार के विरोध और त्रिपर्यय से परे है, ना भी जीवों को निर्वाणोन्मुख करने में प्रयत्नशील है।^१ इन विष्णुओं से उमठ अवतार एवं उपास्य ज्ञानों रूपों का स्पर्शकरण धमठाव में ही हो जाता है।

बुद्ध के निर्माणकाल का नारायण के अमन्त लक्ष्मणों की तरह अंत नहीं है।^२ विचारकों ने निर्माणकाल को ऐतिहासिक बुद्ध शकवर्गिह का अवतार काय माना है। जो धर्मकाय का अपतित रूप है।^३ दीपकर, कल्पव गीतमयुद्ध, मैत्रेय एवं अन्य मानुषी बुद्ध निर्माणकाल का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।^४ बुद्ध का संभोगकाल बुद्ध या वाचिसर्यों का उपदेशक रूप विदित होता है।^५ जिन पांचरात्रों के स्मृतवादी उपदेशक रूप के समानान्तर कहा जा सकता है।

वैष्णव अवतार एवं विष्णु से स्वयं

बौद्ध ज्ञानियों में उपर्युक्त राम-कथाओं में राम के विभिन्न प्रसंग ही नहीं आते हैं अर्थात् बुद्ध का राम का पुनरावतार माना गया है।^६ इसके अतिरिक्त विष्णु के अवतारों में जिन प्रसार एक भाषी अवतार कहिक की कल्पना की गई है वैन ही बौद्ध धर्म में भी अद्विष्ट में द्वाय काय अवतारों में मैत्रेय बुद्ध कह जाते हैं। भद्रकाल शास्त्रिभिषु के कथनानुसार अभी मत्स्य बुद्ध होने के लिये प्रयत्नशील है। ए बोधिसत्व शक्यमुनि के समर्थों में है। उन्हीं में भाषी बुद्ध होने की अद्विष्टवासी भी उन्हें मिलती है।^७ 'कश्चिपुराण में

१ स्मृतिवचन द्व. तर्पिक बुद्धिमत् ५ १२-१३ में उक्त।

२ बौद्धदर्शन ५ १६२।

३ स्मृतिवचन द्व. तर्पिक बुद्धिमत् ५ १५।

४ महावाक्य ५ ७२।

५ बौद्धदर्शन ५ १६२-१६५।

६ रामकथा बुद्धे ५० १ ४ और पार्ति साहित्य का इतिहास ५० १९१ में उद्धृत ज्ञानक ४६२ और देवदत्त ज्ञानक ५११।

७ महावाक्य ५० ७८।

कश्मिक के प्रतिहृन्वी के रूप में एक शक्यसिंह बुद्ध का उल्लेख किया गया है, जो अपनी विद्याल सेना के साथ कश्मिक से पुर कर रहे हैं।^१ मैत्रेय के स्थान में शक्यसिंह का यहाँ अनोखा सामंजस्य कश्मिक से किया गया है। फिर भी वैष्णव धर्म और बौद्ध धर्म एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी पूव मध्यकाल में एक दूसरे से अल्पधिक प्रभावित हुए थे।^२ राय वेबिह्व के अनुसार ताक्यहीम बौद्ध सम्प्रदायों में अनेक हिन्दू देवताओं और वृक्षों के यौद्धाकृत रूप ग्रहण किए गए थे।^३ मूर्तियों और देवताओं के इस आदान प्रदान ने महाभाग और ब्राह्मण धर्म को अल्पस्य निकर कर दिया था। बिप्रद्वारु द्वितीय जो परम सीगत कहा जाता था अश्वमेध के अवसर पर ब्राह्मणों को भी दाय देता था। हमने मन्वद एक लेख में शिव विष्णु तारा और बुद्ध की एक साथ स्तुति की गई है।^४ उदिया में 'दाक मद्र के नाम से एक कविता प्रचलित है जिसमें पुरी के जगन्नाथ की बुद्ध रूप में स्तुति की गई है।^५

इसके अतिरिक्त कतिपय वीर लेखकों के अनुसार बुद्ध के अन्य रूप या अवतार भविनाम से उत्पन्न धर्मोक्तिेश्वर में रूप और गुण की दृष्टि से विष्णु से सम्य प्रतीत होता है।

सिद्ध सम्प्रदायों या अन्य बौद्ध देशों में स्थात अवतारवाद की दृष्टि से अवलोकितेश्वर का विशिष्ट स्थान है। ये पौव प्यात्री बुद्धों में अविताम से जाविभूत होते हैं। और बौद्ध सम्प्रदायों में कक्या के मानवीकृत रूप हैं। असीम कक्या से प्ररित होने के कारण ये बुद्धियों और प्रत्तों की सहायता के मिमिन्न सदैव तत्पर रहते हैं। ये किसी भी धर्म के किसी भी देवता के रूप धारण कर सकते हैं।^६ ये लोकनाथ तथा लंकेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनके साथ तारा और हयग्रीव रहते हैं।^७ हरि-हरि-हरि नामनोन्नव अर्थात् ये तीन हरि के नामन रूप हैं।^८ महन्त शतमिभिद्ध ने खोबखर को बौद्ध और ब्राह्मण धर्म का मिमिन्न, मद्रा का परिमार्जित रूप माना है।^९ इनके मतानुसार आदि बुद्ध विष्णु के शोपहीन स्वक्य हैं।^{१०}

किन्तु सामान्यतः अवलोकितेश्वर में कुछ ऐसे चिह्न मिलते हैं जिनके आधार

१ कश्मिक पुराण २ ७ १८।

२. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन जी० २ पृ० २०५१।

३ बुद्धिधर्म—इटल दिग्दी पैन्क क्लिपेश्वर पृ २ १-२ ७।

४ पूर्वमध्यकालीन भारत पृ १४२।

५. उदिया मू.सी एकेज पृ १२।

६ बुद्धिधर्म इकानोमाठी पृ० १२।

७. बुद्धिधर्म इकानोमाठी पृ १८।

८. बुद्धिधर्म इकानोमाठी पृ० १८।

९. महाभाग पृ० ८३।

१० महाभाग पृ० ८३।

पर ये विष्णु के अधिक विस्तृत प्रतीक होते हैं। उदाहरण के लिये 'करवट म्यूट' के अनुसार ये स्वर्ग में एक राहू की शील का निर्माण करते हैं, जिनमें अनुत्तरध शक के आकार वाले कमल लिखते हैं।^१ इनके कक्षा में जाने पर राक्षसियाँ इनसे प्रेम करने लगती हैं किन्तु ये उन्हें मद्धर्म का उपदेश देते हैं।^२ ये बनारस में मधुमन्थनी का रूप धारकर बीहों मन्त्रों को उपदेश देकर उनका उद्धार करते हैं। यह ज्ञातव्य है कि 'वधरथ जातक' के अनुसार बुद्ध राम के रूप में बनारस में ही जन्म लेते हैं। 'करवट म्यूट' के अनुसार ये योग्यता, ज्ञान और प्रभाव की दृष्टि से बुद्ध से भी बड़े हैं।^३ ये सभी के माता पिता हैं।^४ इनके मन्त्रों में जो जो इनका मामोच्चारण करता है वह विविध कष्टों से मुक्त हो जाता है। जो पुण्य पत्र द्वारा पूजा करता है वह श्रेययोगि में जन्म लेता है।^५ इसका अतिरिक्त विष्णु के समान 'करवट म्यूट' में इनके विराट रूप का भी वर्णन मिलता है। यं महादयबाहु और महाबाहू हैं। सूर्य और चन्द्र इनके भेष हैं। महा और भग्य देवता इनके कंधे और नारायण इनके हृदय हैं। सरस्वती इनके दाँत हैं; इनके अनन्त रोमों के प्रसंगिक विचार में अनेक बुद्ध हैं।^६ इनका 'ओम मणि पद्मे हुँ' मन्त्र से रूप दिया जाता है। तिरवतक एलार्कामा अक्षोक्तेश्वर के तथा पंचम कामा इनके अवतारक अमिताभ के अवतार माने जाते हैं।^७ सप्तमत्तः नेपाली धारणा के अनुसार नेपाल के राज भी अक्षोक्तेश्वर के अवतार माने जाते हैं। श्री गिहसक ने इन्द्र महा नारायण आदि से किञ्चित् परिवर्तित रूपों का बौद्धों में ब्रह्मेण करते हुए कहा है कि सूर्य ने अमित कामा वाले अमिताभ का और विष्णु का पद्मनाभ व अक्षोक्तेश्वर या वासुदेव का रूप धारण कर दिया।^८

अतः उक्त तथ्यों में अक्षोक्तेश्वर के विष्णु के सरस्य पर्याप्त चिह्न, विस्तृत उपारस्य पक्ष अवतारी रूपों के मिलते हैं; जिनके आधार पर गिहसक का मूल समीचीन प्रतीक होता है। विष्णुयतः परवर्ती बौद्ध सम्प्रदायों में बुद्ध के जिन अक्षोक्तेश्वर अमिताभ, मधुमन्थी मैत्रेय प्रभृति रूपों का सर्वाधिक

१. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५ ४८ और करवट म्यूट ५० २१।

२. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५ ४८ और करवट म्यूट ५० ४४।

३. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५ ४९ और करवट म्यूट ५० १५, १६, १३।

४. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५ ४९ और करवट म्यूट ५० ४८ ३२।

५. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५० ४९ और करवट म्यूट ५ ४८।

६. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५० ४९ और करवट म्यूट ५ ३२।

७. श्री बौधिसत्त्व वाचरटीय ५ ४९ और करवट म्यूट ५० ३७।

८. बुद्धिदत्त काट्ट रत्न इतिहास ५० १८२-१८३।

प्रचार हुआ, उसमें अवलोकितेश्वर का नाम उल्लेखनीय है। अवलोकितेश्वर कबल भारत में ही नहीं बल्कि नेपाल, तिब्बत, चीन, जापान प्रभृति अन्य बौद्ध देशों में भी अत्यन्त विख्यात एवं प्रचलित हुये। विचित्रता तो यह है कि वहाँ भी बिष्णु के सदृश इनके उपास्य रूप के साथ-साथ अवतारी रूप का बहुत अधिक प्रचार हुआ। उन देशों के प्रमुख महापुरुष, धर्मप्रवर्तक और धर्मप्रचारक, बौद्ध राजा तथा सम्राट इनके अवतार के रूप में बसी तरह मान्य हुये जिस प्रकार भारतीय वैष्णव धर्म में बिष्णु के विभिन्न अवतार। इससे स्पष्ट है कि परवर्ती बौद्ध धर्म ने केवल बिष्णु के ही परवर्ती रूप को नहीं ग्रहण किया अपितु उनसे सम्बद्ध अवतारवादी प्रवृत्तियों को भी अपने विश्वासों में आत्मसात कर लिया।

हिन्दू पुराणों में बुद्ध का रूप

बुद्ध के साम्प्रदायिक एवं अवलोकितेश्वर रूप का सम्बन्ध विशेष कर सिद्धों एवं नाथ सम्प्रदाय से रहा है। परन्तु ब्रह्मावतारों या चौबीस अवतारों में जिस बुद्ध का उल्लेख हुआ है वे हिन्दू पुराणों के बुद्ध हैं। 'महामारत' के ब्रह्मावतारों में बुद्ध का नाम नहीं आता है। 'विष्णुपुराण' में कसिक का उल्लेख तो हुआ है किन्तु बुद्ध का नहीं पर 'भागवत' के तीनों विवरणों में बुद्ध के नाम का उल्लेख हुआ है। 'भागवत १, ३, २७' के अनुसार कसियुग आने पर मगध देश में, देवताओं के द्वेषी शैत्यों को मोहित करने के लिए अजयन के पुत्र रूप में बुद्धावतार होगा।^१ पुनः भा० १, ७, ३० में कहा गया है कि देवताओं के शत्रु शैत्य लोग भी बन्धु-भार्य का सहारा लेकर मय कामध के बनाये हुये दरप वेग वाले नगरों में रहकर जागों का सत्यानाश करेंगे। तब मगधवाय उनकी बुद्धि में मोह और डोम उत्पन्न करने वाले जनों का उपदेश करेंगे।^२ भा० ११ ४ २२ के विवरण के अनुसार भी बुद्ध विविध जातों या तर्कों से मोहित कर असुरों को बन्धु विद्ध करने वाले कहे गये हैं।^३

मध्यकालीन कवियों द्वारा वर्णित ब्रह्मावतारों एवं चौबीस अवतारों में उनका यही वेद एवं ध्वज-विरोधी रूप गृहीत हुआ है। इसमें सन्देह नहीं है कि बुद्ध देशों एवं जातों के विरोधी ये किन्तु हिन्दू पुराणकारों ने उनको शैत्यों एवं असुरों या सुरद्वेषियों से सम्बद्ध कर विकल्पात्मक रूप दे दिया। साथ ही अजयन का पुत्र होने के कारण उनका ऐतिहासिक रूप भी अत्यधिक पौराणिक हो जाता है। किन्तु बौद्ध लेखक चेमेन्द्र ने उन्हें प्रलय-कुक में उत्पन्न शत्रुद्वेष

का पुत्र माया है^१ और जबक बीरधर्म सम्मत जीवनी का ही विवरण दिया है । अवतार के अनुसार इस अवतार में ब्रह्म ने पशु और पशु-हिंसा की मिश्रा की है ।^२ 'दुष्पीराजरासा' में पुराणों के अनुरूप कीवट देवा में असुरों को बलविहीन करने के सिद्ध इनका अवतार हुआ ।^३ मूरदास ने बुद्धावतार की वर्णना करते हुए कहा है कि अदिति पुत्रों के कार्य के निमित्त ऋषि ने बौद्ध रूप धारण किया ।^४ क्योंकि असुर देवताओं के समान जग पर विजय पाने की इच्छा से शुक की आज्ञा पाकर ब्रह्म करम लगे । देवों ने यह सुतास्त जानकर हरि ने तुरन्त सेवरी का भेष धारण किया^५ और असुरों के पास जा कर कहके लगे कि जा पशु में पशुओं का संहार करत है जबकी विजय नहीं होती अपितु जो देवा धर्म का पालन करत है वही विजयी होते हैं । यह सुनकर असुरों ने पशु त्याग कर देवा धर्म-मार्ग का अनुसरण किया ।^६ 'मूरसारावली' के अनुसार हरि ने बुद्ध-रूप में कर्कधर्म का प्रकाश करत हुए देवा धर्म का मूल बताया और भक्तों के अनुकूल पादपदयाद को दूर किया ।^७ तुलसीदास के पद पाठों में कहा गया है कि अतुल्य महिमा वाल देव की मिश्रा के निमित्त बुद्ध का अवतार हुआ ।^८ विषयपरिष्कार के द्वावतार क्रम में आपे हुए पद के अनुसार बुद्ध ने पादपद और दग्म से व्याकुल संसार में बलादि कमकाण्डों का मण्डन कर उन्हें निरस्त करने दिया । यहाँ बुद्ध निर्मल बौद्ध स्वरूप ज्ञानधन, सर्वगुण सम्पन्न सम्मरहित और कृपालु बताया गया है ।^९ सप्त कवियों में गुण गोविन्द सिंह ने सम्मन्तः अरहंत देव के रूप में बुद्धावतार का ही पणन किया है । क्योंकि असुरों के पशु में विजय हाकने के निमित्त विष्णु का यह अवतार कटा गया है ।^{१०} 'अवतार-लीला' में भी असुरमाह अहिमा का उपदेश और पादपद

१ द्वावतार-चरित में बुद्धावतार को० २ । २ गौतम चरित १ ९ ।

३ उपवन के०४ के०४ अति असुर करत ब्रह्म हरि ।

४ देव ब्रह्म बुद्ध सम्पन्न भक्ति है तु भक्ति सुवर्ण ।

दुष्पीराजरासी पृ० २५२ द्वावतार मन्त्र ।

५ मूरसागर पृ० १७२ पद ४ ३२ ।

बौद्ध रूप असे हरि धारणा अतिरिक्तुनति की कारण कारणों ।

६ मूरसागर पृ० २७२ पद ४२३२ ३ मूरसागर पृ० १७२ पद ४२३३ ।

७ मूरसागर पृ० ११ । बुद्ध रूप अति बने प्रकारको देवा सभन को मूल ।

दूर देवों पादपदयाद हरि मन्त्रन को अनुकूल ०

८ अतुल्य महिमा देव की तुलना किए विचार ।

को निरल निरिण लकी विनिन बुद्ध अवतार ० तुलसी में दोहावनी को० ४२२ ।

९ तु मी० दिवद कविदा पद ५२ ।

विनिनर मारक से संशुक्ति पीवीम अवतार पृ० ५९ ।

विनिन बलीन बहो शुकु बलिदो अग्य विनिन अनुकूल को करिही ।

नाश का वर्णन किया गया है ।^१ परशुराम कवि न बुद्ध के स्थान में जगन्नाथ की का वर्णन किया है ।^२ इस प्रकार बौद्ध अहिंसा एवं यज्ञ विरोधी विचारधारा से सम्बन्ध होने पर भी बुद्ध का विधिग्रह ब्रह्म से वैष्णवीकरण हुआ है ।

इस प्रकार श्रीबीस अवतारों में गृहीत बुद्ध का अस्तित्व अन्य अवतारों की अपेक्षा अधिक मिश्र और विलक्षण है । इनमें सबसे पहली बात तो यह है कि बुद्ध उस धर्म या सम्प्रदाय से गृहीत हुए हैं जो न तो वैदिक परम्परा को स्वीकार करता है न तत् साहित्य में व्याप्त बहुबेवत्तावाद और महावाद का तथा महाग्रन्थों में प्रचलित ईश्वरवाद और उपास्यवाद को ।

किन्तु ठीक इसके विपरीत दूमरी विशेषता यह भी है कि एक ओर तो वैष्णव अवतारवाद बुद्ध को अवतारों में मान कर अपनी पौराणिक शैली में उनसे सम्बन्ध कथनों और कथों का निर्माण करता है और दूमरी ओर बौद्ध बेवत्ता भी विष्णु के अवलोकितेश्वरवत् रूप की उन्नत अवतारवादी धर्म के साथ प्रहण करता है ।

द्वितीय फलस्वरूप बुद्ध सम्प्रदायीन साहित्य में अपने बौद्ध रूप से पृथक् होकर वैष्णवीकृत पौराणिक रूप में वर्जित होने हैं । विष्णु और बुद्ध के समन्वय की यह परम्परा बुद्ध और जगन्नाथ तथा ब्रह्मरुद्र के यम टाकुर सम्प्रदाय के उपास्य बौद्ध रूप यम टाकुर विष्णु और जगन्नाथ के समन्वय के रूप में और उन्नत होती हुई कथित होती है । जिसका पद्येष्ट प्रभाव उत्कालीन साहित्य पर पड़ा है ।

फलिक

विष्णु के द्वावतारों में कविक मैथेय के समान भविष्य में होने वाले अवतारों में माने जाते हैं । 'महाभारत के बृहत् रूप में कविक का उल्लेख मिलने लगता है । किन्तु इन्हें अभी तक माधी अवतार की कल्पना समझ कर अधिक विद्वानों का ध्यान इनके ऐतिहासिक रूप के अन्वयण की ओर समुचित रूप से नहीं आ सका था । जिसके फलस्वरूप इनके ऐतिहासिक रूप का निष्पन्न एवं वैष्णव धर्म से इनका सम्बन्ध दोनों का पद्योपिठ विरूपण अभी तक

१. महाद रूप पञ्चम वैदिक सत्तर मोह उद्धार ।

निगम एवं अहिंसा बंध ब्रह्म अहिंसा धर्म विहित सूर सोक निर्दम ॥

अवतार अरि । ६० कि० । शोकावतार ।

२. जगन्नाथ जगदीश सत्त्वपति भोग पुरंदर वैदिक धर्म ।

पूरुष श्या सत्त्व सत्त्व की निधि सत्त्व ब्रह्मसी है हरिद्वार ॥

परशुराम सत्त्व । ६ कि० । शोकावतार श्री शोदी ।

इन्होंने की हो। परन्तु बौद्ध साहित्य में कश्चि से सम्बद्ध उपादानों का अभाव प्रतीत होता है। 'सकायेसरीका' में कश्च (पाप) का विभिन्न सम्बन्ध मैत्रेय से स्थापित करके हुए कहा गया है कि ब्राह्मणादि वर्गों में एक ही कश्च (पाप) होता है त्रिमूला निवारण मैत्रेय आदि चतुस्रस्य निवारणों की परिपूर्ति में माना गया है।^१ इसमें ब्राह्मणों के कश्च का पाप का भावी सत्कार मैत्रेय से बिकल्प सम्बन्ध दृष्टिगत होता है। फिर भी कश्चि का हमसे निराकरण नहीं होता।

किन्तु दोनों के 'प्रमावकचरित' में कश्चाचार्य नामक एक ब्राह्मण का 'कश्चासुरिचरितम्' नाम से एक संक्षिप्त चरित मिलता है।^२ इस कश्चि का भी पौराणिक या अवतारवादी कश्चि से भूनायिक ऐक्य दृष्टिगत होता है। हम क्या का कश्चि, मुक्ति में ब्राह्मण और पराक्रम में चरित्र है। ये सम्प्रदेश की धारावगी के विधायी बतलाये गये हैं। जब कि पौराणिक कश्चि का जन्म स्थान जिस सम्मल ग्राम में माना जाता है उसे इतिहासकारों ने अभिसेखों के आधार पर सम्प्रदेश के इलाह जिले में बतलाया है।^३ 'दमोद शीपिका के अनुसार विजयसिंह नाम के राजा ने सम्मल ग्राम की स्थापना की थी।' कहा जाता है कि इन्द्रायिनी राजा गर्हमील की कुटुम्बिक कश्चाचार्य की बहिन सरस्वती पर दान के कारण दोनों में परस्पर मतमुटाप हो गया था। अन्ततः कश्चि उसमें बहका घेने के लिये यहाँ से बाहर जाकर सिन्धु देश के शाही नामक एक राजाओं का सह-उप बनाता है। और उन्हीं की सहायता से गर्हमील को हराते हैं।^४ 'प्रमावक चरित' में वर्णित इनकी कथा में बाद में इन्हें जैन सम्प्रदाय में शीचित होना बतलाया गया है। किन्तु उससे पूर्व इसके ब्राह्मण परमावकजी दास का अनुमान किया जा सकता है। उस 'चरित' में पौराणिक कश्चि के चरित्र गुणों के सरस हलक अचारोही और अनुविद्या में दृष्ट होने का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है।^५

१. सकायेसरीका १०-११।

साध्यादिधर्मनामैककश्चाचार्यादिचतुस्रस्य इति नामकस्यामैत्रेयस्यचतुस्रनिवारणपरिपूर्णा सर्वकाले राम-हेवादिनिदिदिनिवारणमैत्रेयि नामानिवेद्येय १३।

२. ब्रह्मवक चरित, कश्चासुरि चरितम् ४ १-२०।

३. मू. दृष्टिधर्म सन्दीपेरी की २ ५ ४६३।

४. मू. दृष्टिधर्म सन्दीपेरी की १ ५० ४६३ और दमोद शीपिका १०-११।

५. वी. एच. आर. इतिहास मुद्रिती। दि० सं० १९५३। ५०-१५५।

६. (क) कश्चाचार्यादिनि कश्चनयाम्याहा वदिः।

दुसरे अनुयायाश्रीदवावाश्री हयसर्मे ० प्रमावक चरित १०-११, ४।

(ग) ५ ११।

काठ के प्रारम्भ में कश्मिक क अक्ष से विरिह सम्बन्ध का पता चलता
 ही या १२ की दाही की एक विष्णु की पञ्चमुखी मूर्ति में एक मुख
 है। इसे इतिहासकारों ने ह्यग्राह का मुख माना कर कश्मिक का माना
 योंकि इसके अक्षरानुसार 'बैजायस भागम' में कश्मिक का मुख अक्षमुख
 'प्रतिपुराण' में अक्ष अक्षि क बाह्य कहे गये हैं।^१ निष्कर्षतः साग्रप्रत्यक्ष
 ३ पृथित होने क पूर्व इतिहासिक कश्मिक की सम्भावना की जा सकती
 इनमें से विशेषकर विभिन्न नाम क व्यक्तियों की अथवा 'प्रभावक चरित्र
 कश्मिक कथा, चरित्र और व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से पौराणिक अवतार
 क क अधिक निम्न प्रतीत होती है। अतएव पुराणों में कश्मिक की प्रिस
 वा का विकास हुआ है उनका कुछ क कुछ सम्बन्ध प्रभावक चरित्र' से भी
 अक्ष माना जा सकता है।

तिरिह कश्मिक का एक पौराणिक रूप भी मिलता है।
 'महाभारत' का 'कश्मिक पुराण' तक इसकी एक ही कथा मिलती है। उनमें
 अधिक वैपन्न दृष्टिगत नहीं होता। 'महाभारत' 'वन पर्व' में कल्पियुग की
 दुरावस्था का चित्रण करते हुये कहा गया है कि कल्पियुग में पाप क अत्यधिक
 बढ़ जाय पर युगान्त में किसी जाह्यन क गृह में एक महान सकिष्ठाकी बाहक
 अवतीर्ण होगा, जिसका नाम होगा 'विष्णुपदा कश्मिक'। बाह्य अक्ष, दाह्य, आदि
 नसकी इच्छा के अनुसार उसका पास पहुँच जायेंगे।^२ उसके अवतार का प्रयोजन
 श्रेष्ठों का नाश एवं कल्पियुग का अन्त बतलाया गया है।^३

यहाँ कश्मिक के ही विष्णुपदा नाम होने का आभास मिलता है।^४ तथा
 विष्णु बामुदेव या नारायण आदि में से स्पष्टता किसी का अवतार नहीं बतलाना
 गया है किन्तु 'विष्णु पुराण' में सम्मलविवासी विष्णुपदा क पुत्र श्रेष्ठों का
 नाश करके बामुदेव के असावतार कश्मिक है।^५ 'नारायण पुराण' में कश्मिक
 का 'महाभारत' के तीन विवरणों और एवम् कल्पियुगि राजाओं के वर्णन क प्रसङ्ग
 में प्राया एक ही प्रकार का रूप मिलता है। इनमें से विष्णुपदा के पुत्र कल्पियुग

१. अ० बी० ओ० टी० सी० बी० १०५० पृ० ५२ और ५० ११।
 २ महा० ३, १९०, ११-१४।
 ३ महा० ३ २९० ११ क महा २२ १४९, २९-३८ में भी उक्त कश्मिक की
 कथा मिलती है।
 ४ टी० टी० ५, १ २, ३ में यह कर्ता के विवे प्रमुख 'वदपदा' के अक्ष 'विष्णुपदा'
 भी कश्मिक का विशेषण प्रतीत होता है।
 ५. वि० पु० ४ २२ ८।
 ३० म० अ०

के अन्त में बसुवहल के विघासक एवं वैदिक धर्म के संस्थापक तथा सत्ययुग के प्रवर्तक माने गये हैं।^१

मध्यकालीन कवियों ने कविक के तत्क कर्णों एवं प्रयोजनों को ही प्रहस किया है। ऐमेग्न ने कविक-भवतार के साम कलिभुग का सर्वत्र किया है और स्केन्डों और हुए राजाओं का वष उनक भवतार का प्रमाजन माना है।^२ जबदेव के कविक-रूप कलाव का भी यही प्रयोजन रहा है।^३ 'दुम्बीराजरासो' में हुए राजाओं का वष तथा कलिभुग का मास मुख्य प्रयोजन माना गया है।^४

सूरदास ने 'सूरसागर' में कविक-भवतार के प्रयोजन में पुराणों की परम्परा से आती हुई कविक की कुरावरा का विमर्श किया है। उनक पशों के अनुसार कलि के राजा भामन्त धम्पायी होंगे। वे कृपको से बहपूर्वक मज बसूक करेंगे।^५ प्रजापति में भी धर्म-याकन की मावना का जमाव हो जायगा।^६ अतः इस प्रकार भवर्म पद नामे पर विष्णुपदा के घर में कविक अवतरित होंगे।^७ वे हुए राजाओं का सहाय करेंगे जिसके फलरवक्य सम दधि नाके तथा भव्य कोर हुइमाव-हीन होकर ईश्वर का नाम लेंगे।^८ 'सूरसागर' के अनुसार कलिभुग के अन्त तथा दूत युग के आवि में कविक अवतरित होकर स्केन्डों को मार कर पुनः धर्म की स्थापना करेंगे।^९

दुम्बीरास के अनुसार कलिकाक के पापी से मक्तिन हुये संसार का अविघ्न रूपी शक्ति में स्केन्ड रूपी सघन अम्यकार का नाश करने के शिमिष्ठ वे विष्णुपदा के पुन-रूप से प्रकट होंगे।^{१०} गरिहर दाल बारदठ के पशों के अनुसार वे अकिक अुवक का भार उतार कर कलि का प्रमाव निर्मूक करेंगे और भवनीगत धर्म का उद्धार करेंगे।^{११} कबीर पन्थ के परवर्ती सन्तों में भी कविक अवतार की चर्चा करते हुए कहा गया है कि वे स्केन्ड रूपी एज के किध अस्ति के सदा

१ भा० २ १ १५ पा। २ क. १८ पा। ३ ४ १२ और भा० ११, १ १८-१९
 ४ बलावगार कविक कल्पवगार कोक १७। ५ पीठ पेरिन्ड पृ १, १।
 ६ दुम्बीराजरासो ६ २५३। ७ सूरसागर भा २ ६ २७२२ पद ४९६४।
 ८ सूरसागर भा २ ६ २७२२ पद ४९६४।
 ९ सूरसागर भा० २ ६ २७२२ पद ४९६४।
 १० सूरसागर भा २ ६ २७२२ पद ४९६४।
 ११ कविक के अन्त आवि कृष्णयुग के हैं कलकी अवतार।
 मारि स्केन्ड धर्म किर कपो अयो जग मज अवकार ५ सूरसागरभा ५० ११।
 १ काल कलि अमित मल मक्तिन मल सवै नर माइ निशि शिविद अमम्यकार।
 विष्णु-पुत्र कलकी विवाकर अदिग राम तुलसी हरन निपति मारि १
 दू० प्र० दिमव पविद्य पद ५२।

बचनरित होंगे। कबिक की उपाधि से युक्त होकर निरञ्जन राम बनेक प्रकार क कीतुक करेंगे।)

हम प्रकार मध्ययुगीन साहित्य में भी कबिक का पौराणिक रूप ही दिया गया है। तत्कालीन प्रमाओं का उनपर किञ्चिन् असर हील पड़ता है। भाषी आशा क सूचक तथा भागामो मध्ययुग के प्रवर्तक कबिक का कल्पियुग की तरकाहीन दृष्टा से प्रतिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। अतः कबिक मध्यकालीन युग की उम भाषावादी आशा क भी छातक है। जिनक सूत्र में तत्कालीन दृष्टता भार इमन का निवारण भीर भविष्य क आदर्शावादी ममान की कल्पना सँजोई गई है। इसमे भारतीय भवतारवाद की आशावादी प्रकृति की भी पुष्टि होती है। यों तो प्रत्येक युग में भवतारवाद स्वतः एक नयी भाषा का आविर्भावक रहा ह, किन्तु इसकी वितापना यह है कि भविष्य की आशा को भी बहु उती ह्य विश्वास क साथ धारण करने में सक्षम है।

हयग्रीव

विष्णु क द्वावतारों में पौराणिक (भीधिक) एवं ऐतिहासिक दो प्रकार के भवतारों का विकास हुआ ह। उमी प्रकार 'भारावत' भीर मध्यकालीन साहित्य में प्रबलित जस्य शैवद भवतारों में भी कुछ भवतार तो ऐतिहासिक महापुरुष हैं भीर कुछ वैदिक साहित्य के प्रतीकात्मक उपादान हैं, जिनका पौराणिक पद्धति से भवतारामक पित्राम हुआ है। इन प्रताकात्मक रूपों में हयग्रीव का उल्लेखनीय स्थान है। विष्णु का हयग्रीव रूप यद्यपि द्वावतारों में उतना प्रबलित नहीं हो सका फिर भी इसी आधार पर उम नर्वाचीन या परवर्धी नहीं कहा जा सकता। विष्णुपुराण में मास्य ब्राह्म क्कर्म क साथ हयग्रीव का उल्लेख हुआ है। परन्तु भाष्योपपद्यक में उसे श्रीगीम भवतारों में ही मह्य किया गया।

जस्य पौराणिक भवतारों की जपेका हयग्रीव या हयग्रीर्ष का विकास कथामक तर्कों से म हाकर कुछ वैदिक पद्धतियों या प्रक्रियाओं स हुआ प्रतीत होता है। अ० एच जस्य महिताओं में 'हर्षक' का प्रयोग विभिन्न जसों में हुआ है।^१ किन्तु जसमें हयग्रीव क विकास सूचक मन्त्रों का अभाव है। वैदिक

१. पाण्ड क निरर्षक भवतारा नृम मनन म्केन्द्र सँहारा।
 गुर कर्षकी क्कालि क्कालि श्रीगुरु करे निरञ्जन राइ न कामभसार ५० ५०।
 २ वि० ५ १०, २ में मास्य क्कर्म ब्राह्म क्कर्म के साथ हयग्रीव का भी उल्लेख हुआ है।
 ३ अ० ७ २१ २ अ० ८ २१ २० अर्षसँ २ २४, ४, और ३० ३२, ४।

काल के यज्ञों में अथर्ववेद का प्रमुख स्थान रहा है। सम्भवतः इसके प्रभाव-
शुक्रूप इस साहित्य में अथर्व एवं ऋग्वेद तथा अथर्ववेदों से सम्बन्धित ऋग्वेदात्मक
उक्तियों के प्रयोग हुये हैं। 'इन्द्रात्मक उपनिषद्' में पञ्च की अथर्वत्वात्मक
कल्पना का विराट रूप प्रस्तुत किया गया है। उसमें उसकी द्विपद्मिनादृष्ट की
बाणी से अभिहित किया गया है।^१ उसी क्रम में पुनः कहा गया है कि उसने
हय होकर देवताओं को, बागी होकर गन्धर्वों को अर्वा होकर असुरों को
और अथर्व होकर मनुष्यों को बहम किया है। समुद्र ही उसका वस्तु है और
समुद्र ही उसका उत्तम स्थान है।^२ इस उक्ति में हय देवताओं का बहमकर्ता,
समुद्र का वस्तु और समुद्र से उत्पन्न बताया गया है। अतएव इसमें समुद्र से
सम्बन्ध हयमीय अथर्वतार के बीच देखे जा सकते हैं। 'महाभारत' में गरुड की
स्तुति करते समय उन्हें प्रजापति शिव विष्णु आदि क साथ हयमुख भी
कहा गया है।^३ इससे देवताओं में हयमुख नाम के प्रचलन का अनुमान किया
जा सकता है। 'महाभारत' में हयमीय का सम्बन्ध वैदिक उच्चारण एवं प्रमापति
से उचित होता है। इस स्थल पर कहा गया है कि 'स्वर और वर्णों का उच्चारण
मेरे ही किये हुये हैं और वरदान देने वाला हयमीय अथर्वतार भी मेरा ही
अथर्वतार है।'^४ इस कथन में वह एवं हयमीय का साहचर्य विदित होता है।
पर महाभारत की एक दूसरी कथा में हयमीय के प्रचलित पौराणिक रूप का
इस प्रकार उल्लेख हुआ है कि अथर्व ऋषिगणों हरि ने पुनः सृष्टि की इच्छा
की तो उसी समय अथर्वतार से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनके साथ ही उन की
दो बेटों में तमोगुणी मनु और रजोगुणी कैरव उत्पन्न हुये। दोनों ने ब्रह्मा
से वेद ग्रहण किया और वेदों को लेकर रसातल में लुप्त गये। उन्होंने वेदों
के किये हरि की स्तुति की। वहाँ ब्रह्मा क क्रमसा सब यज्ञ अथर्व कर्म,
नासिका, ब्रह्माण्ड और पञ्च से होने वाले साथ वर्णों का वर्णन किया गया
है। तारात्मक ने वेदों की रक्षा के निमित्त 'हयधिर का रूप धारण किया।'^५
'इन्द्रात्मक उपनिषद्' के संरक्षक वहाँ 'हयधिर के विराट रूप का वर्णन हुआ
है।'^६ उन्होंने रसातल में लुप्त कर 'उद्गीथ' नामक स्वर का उच्चारण किया।^७
वे वामी असुर वेदों को छोड़कर स्वर वाले स्थान पर हीके इसी बीच 'हयधिर
ने उन वेदों को काकर ब्रह्मा की ओर दे दिया।'^८

१ इ० अ० १११।

२ महा० १२२ २६।

३ महा० १२, १३७ १९-२०।

४ महा० १२ १३७, ५५।

५ इ० अ० १११।

६ महा० १२ १३७, १६-१७।

७ महा० १२, १३७, ५५-५६।

८ महा० १२ १३७, ७०।

चौबीस अवतार

उपसृक्त उपादानों में हयग्रीव का सम्बन्ध यज्ञ, प्रजापति एवं वैदिक उच्चारण से स्पष्ट ज्ञात होता है। सम्भवतः इन्हीं उपादानों के आधार पर इन्हें पौराणिक कथा का रूप दिया गया। मा० २, ० ११ के अनुसार महा जी कहते हैं कि यज्ञ पुरुष ने मेरे यज्ञ में हिरण्यमय हयग्रीव के रूप में अवतार किया। मा० ७, ९, ३१ ३०, में हयग्रीव के विराट् रूप का भी वर्णन किया गया है। मनुस्मृत्य को मारकर बहों का उच्चार ही इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन रहा है। मा० ८ २४, ७० में मत्स्य-रूप में भगवान् हयग्रीव नामक एक असुर को मार कर बहों का उच्चार करते हैं।^१ इस कथा की उपस्थिति में भी हयग्रीव का स्वतन्त्र प्रतीकारमक विकास हुआ है। क्योंकि हयग्रीव, मनु और कौट्य "इन्द्रा, तम और रज के प्रतीक रूप न भी सूचित हुये हैं।^२ पाँचरात्रों में हयग्रीव का शारीर रूप में उल्लेख हुआ है।^३ त्रिकर्पता चौबीस अवतारों में हयग्रीव ही एक ऐसा अवतार है जिसका पूर्वतः उद्गम और विकास विभिन्न प्रतीकात्मक उपादानों के समिश्रण से हुआ है। इसका आरम्भिक रूप तो कुछ वैदिक ऋचाओं के विशेष स्वरोंधार में दृष्टगत होता है, जिनका रूप काक-क्रम से किमी न किमी रूप में परिवर्तित होते होते पौराणिक कथा (सिद्धि-कर्म) का रूप धारण कर लेता है। जब उस कथा का अवतारीकरण होता है तब उसका सम्बन्ध केवल बहों की रचामात्र से रह जाता है। इसी से हयग्रीव के पौराणिक कथा-क्रम में प्रायः वैसी सहाति दृष्टगत नहीं होती जो सामान्यतः अन्य अवतारों की कथाओं में मिलती है।

मध्यकालीन कवियों में हयग्रीव की पौराणिक कथा विशेषकर प्रचलित है। सुरदास ने 'सूरमारावली में हयग्रीव के प्रति कहा है कि चारों बहों या सम्भवतः महा ने यज्ञ में जब बहों का उच्चारण किया या तभी परब्रह्म हयग्रीव के रूप में अवतीर्ण हुये थे।^४ इसी समय अष्टासुर बहों को लेकर एक में विलीन हुए। हयग्रीव ने उमे मार कर बहों को मुक्त किया।^५ भरहरि दास बारहट ने हयग्रीव अवतार के क्रम में आरावत की कथा का ही वर्णन किया है। बहों

१ मा २, २०, २९ में हयग्रीव नाम के दास्य का भी उल्लेख हुआ है।
 २ महा २२, ३४७, २१ २५ नीट २४। ३ मेहर ५ ४५।

४ चारवैद बंध किमी कर करव वेद उच्चार।
 प्रकृत भये हयग्रीव महाविधि परब्रह्म अवतार ११

सूरसारावली। अं० प्रेस। पृ० ३, पृ० ८९।

५. लेखी संभासुर एक से रजो विषय।
 हरि हयग्रीव रूप हरि मारुओ लोन्डे वेद सुदास ११

सूरसारावली। अं० प्रेस। पृ० ४ पर ९०।

के उद्धार के प्रयास के कहते हैं कि बौद्धभाष्य में इस प्रकार पृथ्वी पर सुधर्म का प्रकाश किया और हयग्रीव-रूप में बुद्धों को मार कर उनकी माया नष्ट की। वे सर्वत्र देवताओं के आत्मन् तथा वहाँ के हित में उत्पन्न रहते हैं। उन्होंने ब्रह्मा को भी अपनी इस कृपा से सहाय किया।^१

व्यास

परवर्ती काल में कतिपय विमुक्ति-मग्न्य व्यक्तिओं का अवतारों की कोटि में प्रह्वन किया गया। उनमें कृष्णहोपायन व्यास का भी नाम आता है। भारतीय साहित्य में कबल व्यास शब्द से एक व्यक्ति विद्या का ही नहीं अपितु एक वर्ग विशेष का बोध होता है। व्यास के नाम ही प्राचीन नाम बाहरायण को^२ पौराणिक बह् व्यास से अभिहित किया जाता है। जहाँ तक इनका सम्बन्ध पराशर से है तब^३ भा० में व्यास पराशर्य का उल्लेख हुआ है।^४ 'सामविभाग ब्राह्मण ३, ९, ३ में प्रस्तुत एक परम्परा में पौत्रों के व्यास पराशर्य और गौत्रों बाहरायण बतकार्ये गये हैं।^५ इसमें वे विभिन्न व्यक्ति विहित होते हैं। परन्तु भारतीय परम्परा में सङ्घर गोविन्दानन्द, वाचस्पति आत्मन्दिरी आदि ने ब्राह्मसूत्र के बाहरायण और व्यास को एक ही माना है तथा रामानुज, मध्व ब्रह्म और बह्देव ने व्यास को ही उसका कर्ता माना है।^६ इन विपमताओं के होते हुये भी व्यास के ऐतिहासिक व्यक्ति होने का मान होता है। क्योंकि भारतीय साहित्य में व्यास इस प्रकार व्यास है कि एकपक्ष उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करना आवश्यक कठिन विहित होता

१. इसकी सुधर्म प्रकृति प्रकाश बौद्ध भाष्य बौद्ध भाष्य ।

२. यदि प्रकृति नरिण्य पुत्र हयग्रीव प्रदीप ४

३. बुद्ध मार्ति संघारि अक्षरभाष्य भीरुद्वीप ।

४. अमरहन्त आत्मन् दिव्य रत्न निर्दर ॥

५. विवि सनात्र कुत्र विद्यमान नर अक्षर दवा पर । अवतार शोका ५० १५-१७

६. व्यास से सम्बन्ध कतिपय नाम वैदिक साहित्य में मिलते हैं। कृ० पाणिनीय ४

१४ २ ४ में बाहरायण का नाम मिलता है। ये अवर्तन ४ ८ ७ ११ तथा

७ १० सूत्रों के बवा मध्यम के रचयिता बाहरायण नाम के व्यक्ति में गये हैं।

८. तै. भा० १ ९ १ ।

९. वैदिक वाच्यन का इतिहास जी १ ५० ८८ प्रजापति, इहस्पति मातृ, विष्णु केन, व्यास पराशर्य केविनि पौरिपराक्ष्य वाहरायण, बाहरायण तापि अम्य नि ।

१०. दिव्य भाष्य इतिहास प्रिण्टिपीकी । रावाङ्गलम् । जी १ । तं १९१४ ।

१० ४११ ।

शौचीस भवतार

है। फिर भी उक्त तर्कों से यह प्रकट है कि व्याम क सम्बन्ध में सबसे विचारणीय कृतिनाई उक्त पेरिछा की लोछा उक्त व्यक्तित्व को लेकर है। वैदिक साहित्य सूत्र, महाकाण्ड, पुराण, स्मृति आदि सभी साहित्य में व्याम और वाद्वापण क दूतन नाम भात हैं, जिससे निश्चय ही व्याम वित्तप क व्यवहारवादी विकास का क्रम उपस्थित करने क उपरान्त भी इस समस्या का समाधान नहीं होता कि इतने व्यामों में किस व्याम का शौचीस भवतारों की कोटि में प्रहण किया गया।

महाकाण्डों एवं पुराणों में एक ओर तो मत्स्यवती और परासर म ब्रह्मण, 'महाभारत' क रचयिता और वेदों क विभाजनकना व्याम' को 'विष्णु' एवं 'भागवत' आदि पुराणों में अवतार माना गया और दूसरी ओर विष्णुपुराण में व्यामों की एक अवतार-परम्परा भी प्रचलित है जिसमें क्रमशः २८ व्यासों क नाम आये हैं।^१

भवतारवाद् की दृष्टि से सबप्रथम गीता में मुनियों में व्यास को विभूतियों में माना गया है।^२ 'विष्णुपुराण' क अनुसार प्रत्येक द्वारप युग में वेदों के विभाजन क लिये भगवान व्याम रूप स अवतीर्ण होते हैं।^३ मा० १ ४ १४ में इन्हें योगी और भगवान का ब्रह्मवतार कहा गया है। मत्स्यकाण्ड प्रबन्धों में समस्त हमी आधार पर मात्स्यम में इन्हें गुण पक्ष और ज्ञान की दृष्टि से साक्षात् 'विष्णु-स्वरूप' निश्चाक मन में 'शाश्वत्यावतारवतार' तथा ब्रह्ममन्त्र में 'विद्यापात्रेण और 'ज्ञान शक्यावतारों' की कोटि में माना गया है।^४ पाँचरात्रों क ३९ विमर्शों में इन्हें 'ब्रह्मिन्' कहा गया है।^५

१ महा० २ ३४ ८३।
 २ वि० पु० २ ३ ८ २ में क्रमशः ब्रह्म प्रजापति शुक्राचार्य, हरश्चरि मूर्ध
 शृणु शत्रु बभ्रु सारथ्यन विद्यावा विभिन्य मरशात्र मन्तरिष्ठ वी
 ब्रह्मवत, बलव्रह्म बभ्रुव्रह्म, बभ्रु, मरशात्र गौतम हर्षीना वाक्प्रसा एगविल्लु
 वृष (बाबनी) की मान है। अकि (परासर की ति।) परासर बाभ्रुवर्ण और
 वृष्णदेवायन नाम आये हैं। इन २८ व्यामों की परम्परा बभ्रु पु अथवा २ ४
 शिब पु वाक्वीय संदिता अथवा ८ विग पु म २४ में नी स्मृतप्रिक
 परिवर्तन के साथ मिश्रती है।
 ३ वि० २ ३७।
 ४ महाभारत-उत्तरार्ध-त्रिनेत्र पु अ २ की १६-२९।
 ५ वे० पा सो० और वे० की० जी २ ४० ४६।
 ६ त ही वि० मा० प्र० पु० २६-३७।
 ७ उत्तरव ५० १२१।

आलोचनाकारों में 'भागवत' १, ३, २३ और १०, ३६ में व्यासवतार के कर्णों का वर्णन हुआ है। दोनों में पराशरमहान व्यास का ही वेद-विभाजन के निमित्त अवतार कहा गया है। 'सूरसागर' में सूरदास ने व्यास की जन्म-कथा का विस्तृत वर्णन किया है।^१ उनका पक्षों में कहा गया है कि हरि ने व्यासवतार में संहिताओं और वेदों पर विचार किया और पुनः अठारह पुराणों की रचना की फिर भी उन्हें छाँटि नहीं भिन्नी।^२ तब धर्मोंने मारद्वारा परम्परा से चार स्रोतों में प्राप्त 'भागवत का स्थापना किया।'^३ यहाँ 'भागवत' का निर्माण भी उनके अवतार का एक प्रयोजन प्रतीत होता है। 'सूरसागरकी' में वेद-विस्तार और पुराणों की रचना का द्वारा या नामा प्रकार की अभि-व्यक्तियों के द्वारा ये धर्म की स्थापना कर विद्वत् और धृष्टी का मार कर डेते हैं।^४ बरहरि दास बारहद के अनुसार धर्म के विकल्पकर्ता 'महाभारत' के रचयिता वेद-व्यास अजितकेस के अवतार हैं।^५ इस प्रकार इस काक के कवियों ने व्यास के पौराणिक कर्णों का विशेषकर 'भागवत' के ही प्रचलित अवतारवादी कर्णों को अधिष्ठात किया है। इससे यहाँ किसी विशेष ऐतिहासिक व्यास की अपेक्षा पौराणिक व्यास को ही अवतारों की कोटि में मानना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। ये पौराणिक व्यास, वेद व्यास कृष्यद्वैपायन व्यास तथा भागवतकार व्यास प्रायः सभी के समन्वित रूप माने जाते रहे हैं।

पृष्ठ

गीता में राजा इंद्र की विभूति^६ और पुराणों में विष्णु का अवतार माना

१ सु० सा० बी० १ पृ० २२५।

२ वहाँ हरि की व्यासवतार की संहिता वेद विचार।

बहुते पुराण अठारह किन्हीं पैं छः छाँटि न मारि विवे ॥

सूरसागर की १ पृ० २१।

३ तब मारद्विनके दिव मार, चारि शोक करे समुदाह।

व्यास वेद तब करि हरि व्यास, सिन्धी भागवत को स्थापना।

सूरसागर की० १ पृ० २१०।

४ व्यास रूप है वेद विस्तारो क्षीणें प्रकट पुराणन।

माया पापध धर्म पापन को तिमिर हरन मुख कारण ॥

सूरसागरकी। अ० मेष। ४० २२।

५ धर्म विकल्प करौ महाभारत मुख मान्यो।

वेद विचारि वरवि मंगल राख्यो वेद व्यास विस्मय।

अवतार अंस अजितकेसको व्यास नाम भव विलास्यो ॥ अवतारकीका ४ <१-८६

६ गीता १० १७।

गया है। परन्तु पौराणिक राजाओं में राम-कृष्ण के अतिरिक्त पृथु को विशाच रूप से विष्णु के अवतार-रूप में ग्रहण किया गया है। प्राचीनता की दृष्टि से पृथु राम-कृष्ण आदि से भी प्राचीन विदित होते हैं। वे ऋ० सहिना बाळ से ही पृथु वैश्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। पुराणों में अत्याचारी बेल की मुद्रा से इनकी उत्पत्ति बतलाई गई है। विष्णु के अवतार होने के पक्ष में कहा गया है कि उनके दाहिने हाथ में शक का चिह्न विद्यमान था। प्रायः राम-कृष्ण आदि अवतारों में पृथ्वी गो रूप में पुकार करती रही है। किन्तु इस अवतार में उसके विपरीत पृथु स्वतः पृथ्वी को ही मयमंग कर उमये औपधियों का शोचन करते हैं। अतः यहाँ पृथु के प्रथम कृति एवं अनिष्ट के अन्वयक होने का मान होता है। 'भागवत पुराण' के विभिन्न स्थलों पर उनका इन्हीं रूपों एवं कथामों का विस्तार किया गया है। परन्तु एक स्थल पर महावपुषः परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। 'भागवत' के चोथे 'स्कंध' में कहा गया है कि बेल की मुद्राओं से एक की पुत्र का जादा प्रकट हुआ जिन्हें भगवान् विष्णु और कश्यप का अवतार माना गया। किन्तु 'विष्णुपुराण' में केवल पृथु का ही अविर्भाव बताया गया है। 'भागवत' के उक्त रूप में गुप्तकर्त्तव्य कृत उपालना का प्रभाव स्पष्ट विदित होता है। पूर्व मध्यकाल या मध्यकाल में भी पृथु का राम या कृष्ण के समान सम्प्रदायीकरण नहीं हुआ। इनके फलस्वरूप वे अवतार या लीलावतार ही रहे। पांचरात्र सिद्धों में पृथु का उल्लेख नहीं हुआ है। अतएव ऐसा विदित होता है कि पृथु का राम अवतार-परम्परा में ग्रहण किया गया है वह पौराणिक ज्ञान की श्रेष्ठता का ज्ञान विशाच के उन प्रवर्तकों की रही है जिन्होंने पृथु के ज्ञान, शक्ति और विज्ञान को नई दृष्टि प्रदान की है। यों तो 'मनुस्मृति' के अनुसार प्रायः सभी राजाओं में पंचवैश्याम की प्रथा थी। पृथु ही हैं और उनके विष्णु का अवतार भी समझा जाता है। राम-कृष्ण अवतारों की दृष्टि में सभी राजे पृथु ही नहीं हुए हैं। इनके अलावा सभी राजाओं का नाम आता रहा है जो सामूहिक रूप से राम-कृष्ण के नामों का नाम किसी प्रकार के ज्ञान या विज्ञान के पक्ष में दृष्टांत रहे हैं। राम,

१. वि. पु. ४, १४ ११८।

२. वि. पु. ११८।

३. वि. पु. १ ११, वासु. पु. १२ ११ अथवा ११४ ११ ११ ११

कृष्ण परशुराम बुध इत्यादि के प्रारम्भिक अवतारीकरण के मूक में भी यही भावना कार्य करती है। इस दृष्टि से पूषु ने भी कृपि और यमिज को अवश्य ही अपना महात्त्वपूर्ण अवदान दिया होगा। इनके फलस्वरूप राजा की अपेक्षा एक युग प्रवर्तक नेता के रूप में पाकर ही उन्हें चौबीस अवतारों में स्थान प्राप्त हुआ। किन्तु उनका सम्बन्ध राम कृष्ण या बुध की तरह किसी महाकाव्य या धर्म-सम्प्रदाय से न होने के कारण चौबीस अवतारों में यह स्थान नहीं प्राप्त हुआ था। उपर्युक्त अवतार अपने सम्प्रदायों में प्राप्त कर सके हैं। जो हां वहाँ अवतारवाद के एक सम्बन्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण का कम से कम पता चलता है—वह यह कि ऐसे व्यक्ति भी ईश्वरीय अंश से संबन्धित हैं जिन्होंने युग परिवर्तनकारी कार्य किया है।

सम्प्रकाशीत भागवत की परम्परा में मान्य 'कपुभागवतामृत' या 'सात्वत तंत्र' में भी वे ढीकावतार में गृहीत हुये हैं।^१ अतएव पूषु इन्द्रदेव या उपारध की अपेक्षा प्रवर्तक रूप में विशेष रूप से वर्णित हुये हैं। 'सूरसागर' के पक्षों के अनुसार हरि ने पूषु का रूप धारण कर राज्य किया। उन्होंने विश्व में विष्णु मन्त्रि का प्रवर्तन किया और प्रजा को सब प्रकार से सुखी बनाया। सूरदास ने 'भागवत' की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए ब्रह्म की पृथिवी भूमा से उनका युगात् प्राकल्प की खर्चा की है।^२ सूरदास ने उनके भक्त-रूप का भी वर्णन किया है। यज्ञ पूर्ण होने के अनन्तर इन्द्र कुंड से प्रकट हुए पुरुष से पूषु एक मात्र मन्त्रि की याचना करते हैं।^३ 'सूरसारावली' में उनका अल्पवक्र रूप का उल्लेख हुआ है। वे पूषु रूप में पृथ्वी से विविध प्रकार के रत्नों के अल्पवक्र तथा विषय के आनन्ददाता हैं।^४ गरुडि हाम वारहट में भी 'भागवत' की कथा एवं प्रयोजनों को प्रकृत किया है और पूषु

१ कपुभागवतामृत १ ११ सात्वत तंत्र २ २५।

२ पारि पूषु रूप हरि राज कीन्दी।

विष्णु की मन्त्रि परस्त्त जग में हरि प्रजा की सुख सफल मन्त्रि कीन्दी।

वपुरि अब रिबिज मुख इच्छि कीन्दी मन्त्रि कर्त्तव्यो मन्त्रि पूषु राध कीन्दी।

सूरसागर जी २ १ २४४-२४५ वर ४ ५।

३ पूषु कर्त्तव्य नाम मेरी न वसु धनुष, अब वसु कामना, मन्त्रि कीन्दी।

सूरसागर जी २ १ २४५।

४ वर बुध मन्त्रि की २४ काव्यी मन्त्रि मन्त्रि विषय हाम।

पारि पूषु रूप कीन्दी अब नामभ मन्त्रि कीन्दी को नाम।

सूरसागरजी। अर्थ ० मेष। १० ४।

को अनादि ईश्वर का अंशाकार माना है।^१ इस प्रकार मध्यकाळीन कवियों ने प्रायः 'भागवत' और 'पद्म पुराण' में वर्णित उनक अम्बपक और मत्त रूप का ग्रहण किया है। सुरसागर ने 'सुरसारावली' में तो पृथु को अम्बपक माना है किन्तु सुरसागर में उन्हें विष्णु भक्ति का प्रवर्तक वतकाया है। सम्भवतः श्रीबीस अवतारों में गृहीत होने के अन्तर्गत परवर्ती पुराणों में उन्हें विष्णु भक्ति के प्रवर्तक-रूप में भी प्रचारित किया गया, जिसका आशय मध्यकाळीन कवियों ने लिया है। पर वैष्णव अवतारवाद की यह विशेषता रही है कि युग प्रवर्तकों के अतिरिक्त विष्णु के भाग्य भक्तों को भी उनक अवतारों में परिगणित किया जाता रहा है। परवर्ती 'पद्म पुराण' में पृथु विष्णु के मत्त की माने गये हैं जिसके फलस्वरूप उनक विष्णु-भक्ति-जन्य प्रवर्तक रूप का भी प्रचार हुआ।

किन्तु विष्णु और 'भागवत पुराण' में इनका रूपि श्रीरामनिज का अम्बपक रूप ही प्रधान रहा है। 'भागवत' (४ १५, १) में उन्हें विष्णु की भुवन पाटिनी कला का तथा उनके साथ उत्पन्न उनकी पत्नी अर्षि को कक्ष्मी शक्ति का अवतार कहा गया है। श्रीबीस अवतारों में इस युगल आविर्भाव के कारण पृथु अवतार का विलक्षण स्थान है। क्योंकि इस युगल उत्पत्ति से गुप्तकाळीन युगक उपासना की पुष्टि होती है।

गजेन्द्र-हरि

श्रीबीस अवतारों में गजेन्द्र और भ्रुव के उपास्य हरि या विष्णु का भी अवतारवाद की सीमा में समाविष्ट किया गया है। इन साक्षात् उपास्य रूपों तथा उत्पत्ति से सम्बन्ध रूपों में रूपान्तरक वैपम्ब हास के साथ-साथ प्रयोजनात्मक अन्तर भी कञ्चिन्ना होता है। क्योंकि हम अवतार का प्रयोजन देवता और पृथ्वी से सम्बन्ध न होकर पूर्वतः भक्त-द्वार या भक्त की कामना-प्राप्ति से है। पूर्ववर्ती अवतारों में उपास्य विष्णु के तत्त्वों के संश्लिष्ट ही ज्ञान पर ही उनमें वैदिक विष्णु का देवपञ्चीय रूप स्पष्ट प्रतिभासित होता है। किन्तु प्रस्तुत रूप में विष्णु या हरि पूर्वतः उपास्य एव विग्रह रूप हैं।

'महाभारत में विष्णु के हरि' अवतार की खर्षा हुई है। एक स्थल पर कहा गया है कि मातामण के पञ्चात् कृष्ण ने हरि' का अवतार किया।^१

१ अिदि आदि न मध्य न अंत कक कवि नरहर वो वेद कदि।

इउ मयो देव प्रबकोक पनि महाराज अवतार मदि।

अवतार कीटा। इ० के०। इ० १५।

'नारायणीपोषाक्याम' में बर्णित चार वर्म के चार पुत्रों में 'हरि' का नाम भी दिया गया है।^१ नारायण हरे रंग के होने के कारण हरि कहे जाते हैं।^२ शीता में विश्व रूप के प्रसंग में 'हरि' का प्रयोग हुआ है।^३ 'विष्णुसहस्रनाम' में संकर में अविद्या एवं अज्ञान हर खेने के कारण विष्णु को 'हरि' कहा है।^४ 'विष्णुपुराण' के अनुसार तामस मन्वन्तर में 'हर्षा' के गर्भ से हरि का अवतार बतलाया गया है।^५ पर 'महाभारत' और 'विष्णुपुराण' के इन कथों में हरि का गज-प्राह की कथा से संबंध नहीं स्थापित किया गया है। 'भागवत' १. ३ के विवरण में भी गजेन्द्र हरि के अवतार का उल्लेख नहीं हुआ है।

इससे विहित होता है कि गज एवं प्राह की अनुसृष्टिपरक वा प्रतीकमयक कथा का वाद में चलाकर हरि से संबंध हुआ। साथ ही यह भी सम्भव है कि 'मज' के पर्ववर्षाधी हरि शब्द से भी गज के उपास्य को 'हरि' से अभिहित किया गया हो। जो हो 'भागवत' १. ३. ७ की चौबीस अवतारों की कथा में जिस हरि का उल्लेख हुआ है वे गज-प्राह से सम्बन्ध हरि हैं। वे गज पर चढ़ कर और चक्र हाथ में लेकर गज की रक्षा करने जाते हैं।^६ इससे उक्त अवतारात्मक प्रादुर्भाव की अपेक्षा विप्रहमनाम रूप का अधिक जायाम सिद्धता है। 'भागवत' में बर्णित मन्वन्तरावतार क्रम में भी गजेन्द्र-हरि का ही विस्तृत वर्णन हुआ है, जिसमें वे 'हरिमेषा' की पत्नी हरिणी से उत्पन्न कहे गये हैं।^७ इस प्रकार 'भागवत' १. ३. १५-१९ में एक ओर तो हरि के उपास्य एवं विप्रहमनाम रूप का वर्णन हुआ है और दूसरी ओर मन्वन्तरावतारों में ४, २, २९ इ. हरिणी के गर्भ से जननी उत्पत्ति भी बतलाई गई है। इस वैषम्य के आकार पर उक्त अवतार की कथा का रूप विभिन्न कथाओं (प्रेममैटस) के योग से निर्मित हुआ प्रतीत होता है। फिर भी चौबीस अवतारों में गजेन्द्र-हरि के अवतार की अपनी विशेषतायें हैं जो अन्य किसी भी अवतार में उचित नहीं होती। सर्वप्रथम इस अवतार-वेद में गो के अनिष्टक, देवता और पृथ्वी के स्वाय में एक पशु-विरोध की प्रार्थना है, जिसकी परम्परा अन्यत्र विरल है। दूसरा यह कि इस अवतार में विष्णु की अन्य पशु या सावनीय रूप में उत्पत्ति नहीं होती है अपितु उनका साक्षात् प्राकृत्य होता है। वे अपने पुराण-विक्रमात् अनुसृष्ट रूप में सुदर्शन चक्र इत्यादि वासुधों

१ महा० १९, ११४, ८-०।

२ महा १९, १४२, १८।

३ योता ११, ९ और १८ ७७।

४ वि. सहस्रनाम धा० भा १० १९५ की० ८१।

५ वि० पु १ १, १९।

६ भा० २, ७, १५-१६।

७ भा० ८, १, १९-२०।

से कुछ गद्य पर सवार होकर उपस्थित होत हैं। तीसरी विशेषता यह है कि मन्वन्तरावतार में भी इस अवतार को ऐसे रूप में उपस्थित किया गया है जिसमें हरि का विप्रहात्मक प्राकृत्य नहीं होता वरिष्ठ उपस्थिति होती है।

प्रतीकारत्मक व्याख्या

परन्तु गणेश-हरि का सर्वाधिक महत्त्व उक्त प्रतीकारत्मक रूप के कथात्मक रूप में परिवर्तित होने से है। जो अभी तक गणेश-हरि के प्रतीकारत्मक विरल-पत्र का प्रवास नहीं हुआ है किन्तु उक्त रूपान्तर के वैज्ञानिक अध्ययन के निमित्त मुझे इसका विरलपत्र समीचीन जान पड़ता है। सामान्यतः पुराणों में ऐसी अनेक कथाओं का प्रचलन हीन पड़ता है जिनका सम्बन्ध किसी न किसी प्राकृतिक कथ-व्यापार से रहा है। इस दृष्टि से मन्मथ बराह, कृम, कामध, मुक्तिहृत्प्रीति का भी महत्त्व व्यक्त हो सकता है, जिनका स्पष्ट विवरण पर विचार किया गया है।

मेरे मत से गणेश-हरि की कथा का सम्बन्ध भी एक प्राकृतिक व्यापार से ही रहा है। इसमें ब्राह्मण, गणेश-ब्राह्मण-हरि-सूर्य और चन्द्र-किरणों के प्रतीक जान पड़ते हैं। भावार्थ यह है कि अरु से ब्राह्मणों के निर्माण के लिए किरणों का अरु में प्रवेश करना आवश्यक है। जो ही इन प्रतीकों का कारण यदि के रूप में प्रकटित हो जाये पर इनका कथात्मक रूप में प्रकटित हो जाना अधिक असम्भव नहीं विदित होता। पर मायकाठीन साहित्य में गणेश-हरि का कथात्मक उपादान ही गृहीत हुआ है।

मध्यकाल के कवियों में सुरदास ने 'गणेशोत्पत्ति' नाम से 'सूरसागर' में इस अवतार का वर्णन किया है। मागवत-कथा का ही आशय लेते हुए सुरदास कहते हैं कि एक रात्रि ब्रह्मण्डल के स्थाप से ब्राह्मण हो गये थे। अर्थात् कथानुसार गणेश के पैर पकड़ने से ही उसकी सृष्टि होती थी।^१ समय पाकर उसने गणेश का पैर पकड़ा।^२ अन्तः गण को पुकार सुनकर हरि प्रकट होत है। सुरदास ने मन्वन्तरावतार के हरि की अपेक्षा 'ब्रह्मण्डल' के उपास्य हरि का वर्णन किया है। वहाँ य निगमातीत तथा मन्मथ-वचन से जो

१ रात्रि एक बड़ी से रात्रि। देवता अर्थात् ब्रह्मण्डल पार।

२ य गणेश को पग लूँगी, हरि के नामों अर्थात् सुरेश।

सूरसागर की २ पृ० २०० पर ४११।

३ काकड़ि पार ब्राह्मण पत्नी। गणेश के अर्थात् ब्रह्मण्डल पार।

रहने वाले उपास्य प्रह्व हैं। व कल्याणमय ऋषि-सहित^१ गण के उद्धार के निमित्त उपरिबध होते हैं। सूरसारावली के अनुसार भी गण के स्मरण करते ही सर्वोच्च कृष्ण अपना सुखचाम छोड़कर भक्त का सुख प्रदान करते हैं।^२ इस प्रकार मध्यकालीन साहित्य में यज्ञेन्द्र को भगव्य भक्त तथा हरि को कल्याणमय उपास्य के रूप में ही व्यक्त किया गया है। यह प्रवृत्ति इस काल की सर्वाधिक लोकप्रिय भावना के रूप में कार्य करती रही है। इसके निरन्तर गतिशील होने का पायेब भी परवर्ती पुराणों से प्रचुर मात्रा में मिळता रहा है। यही कारण है कि यह उपास्यवाद कबल गजेन्द्र-हरि ही नहीं अपितु सभी भक्तियों की अभिव्यक्तियों की किसी न किसी रूप में व्याख्यायित कर केता है।

इंस

हंसावतार का साक्षात्कीय रूप कतिपय प्रतीकार्थक उपादाओं का समाविष्ट रूप है। सामान्य रूप से विभिन्न प्रतीकों से विकसित भक्तियों के पौराणिक रूपों में एकरूपता नहीं रहती। हंसावतार में भी इस प्रवृत्ति का दर्शन होता है। क्योंकि 'सुन्दरामोपनिषद्' से लेकर 'भागवत' तक हंस द्वारा किये गये उपदेश की प्रवृत्ति तो सामान्य रूप से मिळती है किन्तु हंस का रूप धारण करने वाले कहीं आदित्य, कहीं प्रजापति, कहीं विष्णु या कृष्ण हीन पदते हैं। वैदिक साहित्य में हंस का यही रूप के अतिरिक्त बीजप्रमा और आदित्य के प्रतीकों के किये प्रयोग हुआ है। 'सुन्दरामोपनिषद्' में इस साथ काम को ब्रह्म के तीसरे पाद का उपदेश करते हैं।^३ श्री शंकराचार्य ने टिप्पणी तथा उद्घने में समानता होने के कारण इस संज्ञ की व्याख्या करते समय हंस

१. निगमनि हं गण बचन अनीवर प्रथं ही रूप विज्ञावौ।

--- --- --- ---

निगत हा अित में निगमनि ऋषि किये कर बावौ।

अनि कल्याण कालर कल्याणमय गुरुद्व की सुखदावौ।

सूरदासर वी० १५ २७२ पद ४२।

२. गण हिन बाकन बग मुकरावद् वैर विमल गण गणवत।

सूरदासर वी० १५ २७२ पद ४२२।

३. गण अर माह लड़े बल मीनर तप हरि सुमिरण कीमों।

छोड़ि गुरु सुखचाम सावरो मलय की सुख हीमों ४

सूरदासर वी० अं० प्रेस। ५ १२।

४. अथर्व वेद < ४, २४ वही १०, < २७ सं जीवात्मा अथर्व वेद २०, < १८ आदित्य।

५. छा० ४ * २-४।

को आश्रित्य का प्रतीक माना है। 'महाभारत' में हम प्रजापति के भयतार-रूप में भवतीर्ण होकर सायों को उपदेश देते हैं।^१ 'विष्णुसहस्रनाम' में विष्णु के लिये प्रयुक्त हंस की व्याख्या करता हुए संकर ने कहा है कि 'भद्रस' (मैं बह हूँ) की तादात्म्य भावना से संसार का भय नष्ट कर देते हैं, इसलिये हंस हैं या आकाश में चलन वाले सूर्य के सदृश सब शरीरों में व्याप्त हो जाते हैं, इसलिये हंस हैं।^२ इन व्याख्याओं में विष्णु से हंस का आत्म-रूप्यात्मक संबंध उद्दिष्ट होता है। 'महाभारत' के दशावतारों में हम को परिगणित किया गया है^३ और एक स्थल पर हंस के एक भयतार विग्रह रूप का भी प्रसंग मिलता है। 'भाद्रि पत्र' में चण्डिका वसु द्वारा हंस के रूप में आविर्भूत इन्द्र भगवान की पूजा का उल्लेख हुआ है।^४ हम प्रकर 'महाभारत' में हंस का प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, नारायण प्रभृति से सम्बन्ध विविध रूपों का पता चलता है। 'भीमज्ञा गवत' के सभी विवरणों में दशावतार का उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी दशावतार एवं हंस-उपास्य दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। इस पुराण के द्वितीय विवरण के अनुसार भगवान् नारद को 'भागवत' के उपदेश देने के निमित्त हंस-रूप में आविर्भूत होते हैं।^५ जब कि 'भागवत' के एक दूसरे स्थल के अनुसार ब्रह्मा ने नारद को 'भागवत' का उपदेश दिया था।^६ पुनः 'पञ्चावता रंभ' के अनुसार श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी को परमेश्वर का उपदेश दिया था।^७ 'महाभारत' के अतिरिक्त इनमें भी हंस का ब्रह्मा से किसी न किसी प्रकार का संबंध उल्लिखित होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनतम हंस रूप का ब्रह्मा या प्रजापति से संबंध था। वही किसी स्थान में ब्रह्मा या कहीं हंस रूप से उपदेश देता है।

हमके अतिरिक्त ब्रह्म, ईश्वर या वितोपकर आत्मब्रह्म के प्रतीक या पर्याय वाची शब्दों के रूप में भी 'हंस' सुपर्ण या बैकुण्ठ का उल्लेख मिलता है। मा० ११, ५ २३ के अनुसार सत्त्वयुग के मनुष्य का संभवतः वैदिक कालीन मुख्य हंस सुपर्ण, बैकुण्ठ, परमपद्म चर्म योगेश्वर समस्त इश्वर, पुरुष, अक्षयक

१ महा १२ २२६ ३-४ या ३, १० १-३ में कहा गया है कि जो पौत्रों को अमृत है साम्बयन ब्रह्मा की प्रशानता से बसके आश्रित जीवन चरण करने हैं। वही साम्बों के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध उद्दिष्ट होता है।

२. विष्णु सहस्रनाम। अा० या १५ २१६-२१८।

३ महा ११ ३३, २ ३-२ ४ या १ २ ४ के भी दशावतार क्रम में उल्लेख उल्लेख हुआ है।

४ महा १, ६३ २२।

५. या ३ ७, २९-२०।

६ मा० २, १, ४२-४३।

७. मा० २१, २३, २९।

और परमात्मा आदि नामों से उपास्य का छीका-भाग करते हैं।^१ इनमें प्रयोजनीय इस और सुपर्ण आदि पची सूक्त नामों का उपविषयों में कतिपय स्थलों पर प्रयोग हुआ है।^२ सुपर्ण का गद्य पुराणों में विष्णु का वाहन माना गया है। अतएव उपास्य विष्णु को हंस नाम से अभिहित कर हंसावतार की कल्पना असंभाव्य नहीं जान पड़ती।

मध्यकालीन कवियों में भा० ११, १३, १५ का रूप ही विशेष रूप से प्रचलित हुआ जिसमें स्वयं इस रूप में उपदेशक शब्दा स्वयं उपदेश-श्रोता हो गये हैं और उनका स्वान विष्णु का उनके अष्टावतार रूप में प्रह्वन कर किया है। 'सूरसागर' में हंसावतार का वर्णन करते हुये कहा गया है कि सप्तकादिक कवियों ने शब्दा से आकर एक प्रथम पूजा कि विष्णु और चित्त में क्या संबंध है।^३ शब्दा से इसका उत्तर नहीं जा सका तब उन्होंने हरि का ध्यान किया और हरि ने हंस रूप में आकर इसका निराकरण किया और यह उपदेश देने के अष्टावतार से लुप्त हो गये।^४ नरहरि दास बारहठ ने हंसावतार के विभिन्न भागवत के ही उक्त अष्टावतार को प्रह्वन किया है। इनके पदों के अनुसार शब्दा अपने समा मन्त्र में सप्तकादिक पद्य नारद मुनि के सहित बैठे थे।^५ इन्हें उपदेश देने के लिये अनाम नाभ वैकुण्ठनाथ, परमेश ही इस-रूप धारण कर वहाँ उपस्थित हुये। किन्तु वहाँ आकर शब्दा केवल उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं।^६

१ भा २१ ५, १३।

हंसा सुपर्ण वैकुण्ठो नमो श्रीहरिचरोऽयम्, रंजयतः पुष्पोऽयम्वा परमात्मनेति श्रीवती

२ परस्तावसो गुरास मम उपर्णपक्षव भीमहि।

'हंस' शब्दो ङ० २, १, महाभारत० ङ० १ ३ 'सुपर्ण' सु० ङ ३, २ २, श्वेत ङ० ४ ३ महाभारत पु० ३, ८।

३ सप्तकादिक शब्दा वैवाह, करि प्रणाम पुष्पवो वा नार।

किन्ती विषय श्री चित्त तदि रक्षी, के विषययनि ही चित्त श्री गम्भी।

सूरसागर श्री २ ५ २७२ १४ ५१३२।

४ चाल हमारे अठितये हीर शब्दा रक्षी भिकुठर हीर।

शब्दा हरिचर ध्यान लगाय, तब हरिहंस रूप परिभाष हं सु० श्री० २, ५० २७२०

५ सप्तकादिक सो कहि बह काय परम हंस पर अंतर्भाव।

सूरसागर श्री २ ५० २७२०।

६ एक लमि विधि लोक विधि बैठे लमा नवनाई।

सप्तकादिक नारद सहित, सब लुठ बैठे बार ८ अष्टावतारोत्तर हं कि० ५ ७२।

७ अष्टावतार स्वयं अनाम नाभ, वसु बर्ही हंस वैकुण्ठ नाभ।

माना अतीत दम्बा मुदरि, पर शब्दा हंस उहाँ पाव बारि ८ अ० श्री० नदी ५०

इस प्रकार हलायतार का रूप विभिन्न प्रतीकों एवं प्रज्ञा आदि से सम्बद्ध पौराणिक तथ्यों से संयुक्त होकर लफाळीन रूप में गृहीत हुआ है। उपर्युक्त तथ्यों के क्रमिक अभ्यवयन से यह स्पष्ट है कि वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य में इस प्रायः प्रतीकात्मक रूप में ही प्रयुक्त होता था। भारतीय परम्परा में हम को नीर-नीर विवेकी माना गया है। नीर-नीर त्रिवेक मे तात्पर्य है सत्य और मिथ्या के पृथक्-पृथक् स्पीकीकरण से। इस गुण से सच्चिदित होने के नाते यह विद्या या सरस्वती का बाहन कहा जाता है। परन्तु वैदिक साहित्य में इस समबन्धः सत्त्वरूप और विकल्प का विवेक करने के कारण आत्मा का प्रतीक माना गया है। अथकार नीर प्रकाश के विवेक की शक्ति से युक्त होने के नाते इसका साहित्य के छिपू भी प्रयोग ठिया जाता रहा है। इसी प्रकार महाभारत में हम का ओ रूप प्रजापति या प्रज्ञा के रूप में मिलता है वहीं भी माध्य कोटि के देवताओं के वार्ताकाय ये स्पष्ट है कि ज्ञानों के प्रस्तावर में विहित और निषिद्ध कर्मों और व्यवहारों का विवेकपूर्ण विरलेपण किया गया है। 'मीमंसागणन के 'तेरहवें अध्याय' में प्रजापति के स्वाम में कृष्ण ही हंस का रूप धारण कर प्रज्ञा और सनकादिक के ज्ञान का निवारण करते हैं। प्रज्ञा का स्थान कृष्ण द्वारा ग्रहण करने के मूल में परबर्नी पौराणिक साहित्य की यह प्रवृत्ति लक्षित होती है', जिसके अनुसार उम युग में यज्ञों का प्रभाव पर जाने के फलस्वरूप प्रजापति और इन्द्र की महत्ता भी अत्यन्त हीन हो गई थी। फिर भी उपनिषदों से लेकर पुराणों तक विविध परिवर्तनों के होते हुए भी हंस का नीर-नीर-विवेकी स्वभाव सर्वत्र एक सा दीप्त पड़ता है।

मनु

'भागवत' के अवतारों में मनुजों को चौबीस अवतारों में माना गया है। मनु एक अन्य मनुओं का 'भागवत' के अवतारवाद से दो प्रकार का संबंध लक्षित होता है। एक ओर तो मनु व्यक्तिगत रूप में विष्णु के अंशावतारों में कहे गये हैं और दूसरी ओर विभिन्न मनुजों से प्रत्येक मन्वन्तर में विष्णु के भी विभिन्नअवतार माने गये हैं जिसका मन्वन्तरावतार से विशेष सम्बन्ध है। इन मनुजों के पुराणों से पूर्व रूप का पता वैदिक साहित्यों में मिलता

१. महादि करे पूजन बनाए, कारण भूत मनु हंस काय ।

जो कही उस बाद चौबीस अंतर सोर हीनी अण्ड इस ॥

अवतारगीता । ६० कि० । ५० अ० ।

है। 'श्व० संहिता' में 'मनु वैवस्वत्', 'मनु संवरण', 'मनु धाम्पव' और 'बभ्रु मानव' के रूप में संभवता 'बाह्य मनु' के नाम सूत्रों के रचयिता ऋषियों के रूप में आये हैं।^१ किन्तु ब्राह्मणों में ही अब पर पौराणिक रंग बढ़ने लगा है। श्व० ब्रा० १, ४, १, १ में प्रस्तुत मनु-मत्स्य-कथा इसका उदाहरण है। ब्राम्हणेय के मनुशास्त्र की परम्परा में मनु का नाम किया गया है।^२ गीता ज्ञान की परम्परा में भी श्रीकृष्ण ने मनु को प्रहस्य किया है।^३ इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य में मनु द्वारा रचित 'मनुस्मृति' का पता चलता है। फर्गुडर के अनुसार जिसका रचनाकाल २० ई० पू० से १० ई० तक माना गया है,^४ उपर्युक्त तथ्यों से मनु के केवल राजा ही नहीं अपितु आत्मज्ञानियों और शासन सूत्र के उद्गाहकों के रूप में भी विख्यात होने का अनुमान होता है। 'महाभारत' में मनु करपप अवधि से उत्पन्न विश्वराम के पुत्र बतलपे गये हैं।^५ इन्हीं से सूर्यवंश का मावर्षी से सम्बन्ध मनुवंश विख्यात हुआ।^६ ब्राह्मण ऋषि आदि सभी इन्हीं से उत्पन्न हुये।^७ इसके अतिरिक्त पुराणों में एक मनु से ही उत्पन्न मनुवंश और अनेक मनुओं के वक्षेक हुये हैं। 'गीता' में चार मनुओं को ईश्वर की विमूर्तियों में गिना गया है।^८ 'विष्णु पुराण' में सभी राजाओं को मनुवंशी और विष्णु का अवतार कहा गया है।^९ 'भागवत' में वर्णित अवतारों के प्रसंग में ऋषियों और देवताओं के साथ मनु और मनुपुत्रों की कल्पवृक्षों में माना गया है।^{१०} इससे स्पष्ट है कि बीबीस अवतारों में गृहीत होने के पूर्व ही मनु एवं मनुवंशियों को विमूर्ति अर्थात् पुत्र कलावतारों के रूप में माना जा चुका था परन्तु 'भागवत' के विषय बीबीस अवतारों में इसका उल्लेख हुआ है व उक्त अवतारवादी रूपों के साथ उपास्य भगवान के प्रधान कलावतार भी माने गये हैं।^{११} इन कलावतारों में वर्णित मनु अवतार के प्रति कहा गया है कि ये एवाम्मुत्र आदि सम्प्रतरी में मनु-वंश की रक्षा करते हुए निर्मित राम करते हैं और समय समय पर कुछ राजाओं का धर्म भी करते हैं।^{१२}

१ श्व० ८, २०।

२ श्व० १, १२।

३ श्व० ९, २०६।

४ श्व० २, १९।

५ ब्रा० ६, ११४।

६ गीता ४, २-२।

७ फर्गुडर पृ० ८१।

८ महा० १, ७५, २-२१।

९ महा० २, ७५, ११।

१० महा० २, ७५, १४।

११ गीता १, ३।

१२ वि० पु० ४, १४, २४८।

१३ भा० १, ३, २०।

१४ भा० २, ६, ४५।

१५ भा० २, ७, २०।

इससे पता चलता है कि भारतीय सभ्यता और समाज के विकास में मनु ब्रह्म का रक्षामय भागदान रहा है। प्रारम्भिक काल से ही इस वंश के राजाओं को क्वसल योग्य धान्य ही नहीं अपितु अस्त्राकार, मनीषी, विचारक, संन्यस्त और भादि स्मृतिकार के रूप में उनके अस्तित्व का पता चलता है। इसक अनिश्चित स्मृति में राज की दैवी उत्पत्ति का प्रारम्भिक उल्लेख भी विद्वानों के मतानुसार 'मनु-स्मृति' में ही मिलता है। संभवतः उसक पश्चात् ही भारतीय राजाओं में व्याप्त देवांश या ईश्वरानुशासितार की भावना का प्रसार हुआ। इस भाषार पर अनन्यक रूप से मनु द्वारा प्रतिपादित अवतारवाद क एक रूप विशेष के अङ्ग का अनुमान किया जा सकता है। 'विष्णु-बाणु' और अन्य परवर्ती पुराणों में राजाओं के अंशावतार की जो भावना उचित होती है उसकी परम्परा का आरम्भ 'मनुस्मृति' से भी माना जा सकता है। 'महाभारत (१. ७५)' क अनुसार तो समस्त मानवजाति के उत्पन्न और प्रसार का श्रेय मनु को प्राप्त है।

किन्तु मनु अवतार की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस ब्रह्म क एक ही मनु नहीं अपितु समस्त मनुवर्ती श्रेणिका को ही अवतारवादी रूप प्रदान किया गया। इसी से चौबीस अवतारों की कल्पि में भी किसी एक मनु क अवतारवादी रूप का स्पष्टन पता नहीं चलता बल्कि उसक विपरीत 'भागवत' और उसक बाद क पुराणों में सम्पूर्णरावतार क रूप में प्रचलित एक पृथक् अवतार-परम्परा का ही उल्लेख मिलने लगता है। फिर भी मनुओं के अवतारीकरण में 'दैवी उत्पत्ति क सिद्धान्त' का योग होने क अनिश्चित उनक युग प्रवर्तनकारी कार्यों का मुख्य अधिक माना जा सकता है। इसक कठोररूप अन्य अधियों और राजाओं क सहस्र व कला और विधियों क रूप में परिगणित हुए।

मध्यकालीन सग्रहणों में माध्व साहित्य में मनुओं को विशेषावतार^१ शिम्बार्क साहित्य में विष्णु क रक्षामय 'सर्व गुणावतार'^२ और बह्मन साहित्य में विश्वपावतार^३ एवं ज्ञान सन्पावतार^४ माना गया है।^५ मध्यकालीन अन्य कवियों में सुरदास ने मनु का चौबीस अवतारों में तो नाम किया है^६ किन्तु ब्रह्मका पृथक् वर्णन नहीं किया है। 'सूरमारावली' तथा भरद्वाजिदास की अवतार

१ महा० तारयं नि ५ ७ अ० १-२० ३२। २ दे १० म० ६० ४८।

३ न वि० का प्र ५० १३-१७ खंड १ ५८ ६१-६२।

४ लक्ष्मणर जी १ ५० १२३ पर ३०८ 'निक मनुस्मृतीय पुनि, कीन्दी मनु अवतार'

खील्य' में इन्हें चौदह मन्वन्तरावतारों में समाविष्ट किया गया है। संभवतः मन्वन्तरावतारों के रूप में अधिक प्रचलित होने के कारण मध्यकाळीन मत्स्य कवियों ने चौबीस अवतारों में इनका विलुप्त वर्णन नहीं किया।

यज्ञ पुरुष

विष्णु के ब्रह्मावतार के एक ही रूप को 'भागवतपुराण' में चौबीस खील्य अवतार एवं मन्वन्तरावतार दोनों में वर्णन किया गया है। इस रूप के अतिरिक्त 'विष्णुपुराण' में उसके जिस पञ्च पुरुष रूप का वर्णन हुआ है, इन पञ्च से सम्बद्ध रूपों का मूळ कारण विष्णु का पञ्च से संबन्धित होना प्रतीत होता है। जो तो 'श्रद्धा-संहिता' में पञ्च के गर्भमूल विष्णु का उल्लेख हुआ है^१ किन्तु 'तैत्तिरीय संहिता' एवं 'वाल्मीकि ब्राह्मण' में स्पष्टतः उन्हें ब्रह्म से स्वरूपित किया गया है।^२ इनके मंत्रों के अनुसार विष्णु ब्रह्म-रूप हैं। पञ्चमे स्वरूपित करने की यह परम्परा पुराणों में भी उल्लिखित होती है। विष्णुपुराण में उन्हें भाग्य पञ्च-पुरुष^३ और 'ब्रह्म-मूर्तिधर' कहा गया है।^४ 'महाभारत' एवं पुराणों में प्रचलित 'विष्णुसहस्रनाम' में पञ्च तथा उसके अनेक वर्णों और उपायों के वाचक शब्दों का विष्णु का पर्याय माना गया है।^५ 'भास्वपुराण' के अनुसार वह 'बेहमय पुरुष' शब्दों में स्थित रहता है।^६ किन्तु 'भागवत' में त्रिव्य ब्रह्मावतार का वर्णन किया गया है वह स्वात्मभुव मन्वन्तर में स्वधि प्रजापति की पत्नी आकृति के गर्भ से उत्पन्न पञ्च है।^७ अतः अवतारों के उल्लेख क्रम में मन्वन्तरावतार-पञ्च को ही चौबीस खील्यअवतारों में भी प्रदत्त किया गया है। सात्वत संघ' में इनकी माता आकृति के स्वाम में 'आकृति' का प्रयोग हुआ है।^८ इस प्रकार ब्रह्म के

१ सूरसाराणजी ५ ११-१३ और अवतारखण्डका ५० ७१-७५।

२. श्रद्धा १ १५९ ३।

३ तैत्तिरीय संहिता २ ७ ५ और श्रद्धा भा १ १, १ १३ (ब्रह्मोर्ध्वे विष्णु)।

४ विष्णु पुरा २ ५, ३२ (आधी ब्रह्मपुमाधी वाः) ३२ 'ब्रह्म मूर्तिधरा'।

५. विष्णुसहस्रनाम (श्री० मा०) ५ २५५-२६३।

६ भास्वपुराण, (कल्पकला सं) ५ ४७०-४८८ अष्टाध्याय १३९।

७ भा० १ ३ १५ भा १ ७ २ मन्वन्तरावतारों के लिये विष्णु पुरा ३ १ १६, और भा ८, १, ७।

८ ब्रह्म संघ स्वधिनो मनु पुत्रि पुत्र आकृतिमूर्तिमूर्तारनिवादिब्रह्मणाः।

सात्वत तन्त्र ५० ३ ४२५, ४, ९।

ही विभिन्न उपादानों के पुराणीकृत रूपों से यज्ञावतार का विकास विवृत होता है।

मानवीकृत (एम्ब्रोपोमार्फिक) रूपों का विकास :—अनपुत्र यज्ञ का जो भवतार-रूप पुराणों में मिलता है, अवरय ही अवतारों में शृहीत होने में पूर्व यज्ञ के अमिषेय रूप से उसका विकास यज्ञ-पुदय के रूप में मानवीकरण की धार होता रहा है। मानवीकरण की यह प्रवृत्ति विभिन्न वैदिक देवों के आस्तिक वा सगर्तन आहुति और शरीर के वर्तमान क्रम में दृष्टिगत होती है। विद्यापकर वैदिक साहित्य में अग्नि का आहुतिगत वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस दृष्टि से हृ० उ० ३ २, ११-१३ तथा ब्रा० १, ८, १-२ में अग्नि के सम्बद्ध मंत्र विचारणीय हैं। इन मंत्रों में पुरुषोत्पत्ति के जो रूपक प्रस्तुत किये गए हैं उनमें क्रमशः 'दाम्हाभ्योपनिषद्' में आहुति से गर्भ की उत्पत्ति और 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में स्त्री में आहुति देने से पुरुष की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस प्रकार यज्ञ के 'पुषक्-पुषक्' 'यज्ञ-विष्णु' 'यज्ञ-पुदय' तथा आहुति से उत्पन्न 'गर्भ' और 'पुदय' के ऐसे कण्ठ स्वरूप मिलते हैं, जिनके आधार पर यज्ञ के मानवीकृत रूप का विकास सम्भव है। अद्यान्तर में पुराणकारों ने हम पर कथामक लाक्षण कहा कर पुराणों में इसे विष्णु के भवतार-रूप में प्रचलित किया।

मध्यकाहीन कवियों में सुरदाम ने 'सुरसारावली' में आहुति-पुत्र यज्ञ का वर्णन किया है। उनके पदों के अनुसार यज्ञावतार में यज्ञ ने इन्द्रासन पर बैठकर सुक्त-मंग किया और पृथ्वी का भार धर किया।^१ भरहरिदास के पदों में कहा गया है कि 'स्वार्धभू' मनु की रक्षा के निमित्त इन्द्रो ने असुरों का संहार किया। यज्ञ-पुरुष का संसार में भवगणित होने का यही कारण है। वे लीला के कर्ता होने के साथ-साथ धर्म के आशय भी हैं।^२ इसके अतिरिक्त सुरदाम ने 'मातावत' ४ ७, १८ में वर्णित एक यज्ञ में आधिर्भूत यज्ञपुरुष अर्थात् अनुर्भूत विष्णु के यज्ञ-पुदय भवतार का 'सुरसागर' में वर्णन किया है। इस रूप में उनका आधिर्भाव यज्ञ की सद्भक्तता का सूचक ही नहीं अपितु

१. आहुति धरं क्षिप्रं प्रजापति मयो यज्ञ भवतार ।

इन्द्रासन बडे हृद्य विरक्तन धर क्रिमे सुवतार ॥

सुरसागरावली (धर्म प्रेस) ६० २ पृ ५० ।

२. स्वार्धभू मनु राधोबो क्षीरो अमृत संहार ।

यज्ञ पुरण हरि भवतारे इहि कारण संहार ॥

धर्म संहार निदान निरकर बाल बीजा करी । भवतार लीला पृ० ७ ।

बैष्णवीकृत ऋष यज्ञ में उपास्य विष्णु के समावेश का परिचायक है। सभी द्वारा यम होने का उल्लेख इसका पक्षेष्ट भाग्य है।^१

इस प्रकार इस काक के कवियों ने यज्ञ के उन कथात्मक रूपकों को ही ग्रहण किया है जो परवर्ती पुराणों में किञ्चित् भिन्न रूपों में प्रचलित हो चुके थे।

श्रुपम

‘भागवत’ में कुछ ऐसे पौराणिक स्वत्वियों को भी विष्णु के अवतारों में माना गया है जिनका पूर्वकाक में अन्य घर्मों एवं सिद्धान्तों से संबंध रहा है। इस पुराण में राजा नामि की पत्नी मेक्येची से उत्पन्न श्रुपम का विष्णु का अवतार कहा गया है। ‘भागवत’ के तीनों अवतार विवरणों और भा० ८, १३, १० में श्रुपम अवतार की खर्चा हुई है। इस अवतार में उन्होंने परमहंसों का मार्ग प्रशस्त किया।^२ उन्होंने अपनी इच्छियों का निग्रह कर समर्पण होकर लक्ष्मी की भक्ति योगवर्षा का आचरण किया।^३ भा० ८, १३, १० के अनुसार सर्वाभि मन्वन्तर में आकुप्मान की पत्नी अग्नुबाहा के गर्भ से श्रुपम का कलावतार बतलाया गया है। इसका भक्तिरिक्त भा० १ ७ १० के विवरण में भी इन्होंने अन्य साधनों के साथ कलावतार कहा गया है। ‘विष्णुपुराण’ में २ १ १० में नामिपुत्र श्रुपम की खर्चा हुई है। किन्तु वहाँ से विष्णु के अवतार नहीं बताए गये हैं। महा० ११।११५-११८ में ‘श्रुपम गीता’ के नाम से विष्णुवत् श्रुपम श्रुपि का वार्त्ताक्य वर्णित है। किंतु उन अर्थपाषों में व तो श्रुपम के विषय में विशेष कुछ कहा गया है न वे वहाँ किसी के अवतार ही कहे गये हैं। इससे विदित होता है कि परवर्ती काक में श्रुपम का अवतारीकरण हुआ। ‘भागवत’ का रचनाकाक अफुद्धर के अनुसार १ ० ई० तक माना गया है।^४ जब कि इसी काक के जैन पुराणों में अवतारों के सदृश कबजे दिग्गज जर्म का विस्तृत वर्णन मिलने लगता है।^५ अतः भागवत में अवतार-रूप में गृहीत होने के पूर्व ही श्रुपम का अवतार जैन साहित्य में प्रचलित हो चुका था। श्रुपम के विस्तृत वर्णन में विष्णु का अवतार बतलाते

१ कुम्ह ठी प्रवर्ति जग पुक्क दरलन विद्या, स्वाम दम्बर चतुर्धुम हुरारी।

सूर मनु निरकि बंधन लवदिनिधिनी हूर रिधिनि लवमि बरदुधि कथारी ॥

सूतलपर बी० १ पृ० १४१ पृष्ठ १००।

२ भा १ ३ १३।

३ भा० १, ७, १।

४ अफुद्धर पृ १३१।

५ जैन साहित्य में एही तरह किया गया है।

हुय मी इनके जैन रूप की अवहेलना नहीं की गई है। अतितु मा० ५, १, २० में कहा गया है कि वे दिगम्बर संघासी भीर उम्बरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने क किय हुए सखमय विग्रह से प्रकट हुये थे।

'मागवत' क उपर्युक्त प्रसंगों क आधार पर चौबीस अवतार सम्बन्धी एक विचार धारणा की पुष्टि होती है। पूर्व अवतारों का विवचन करत समय कहा जा चुका है कि 'मागवत' क चौबीस अवतारों की कोटि में दिन महा-पुत्रों को परिगणित किया गया है, उनमें विशिष्ट ऋग क दार्शनिक, धर्मप्रवर्तक, सम्प्रदाय, अर्थात् राजे विचारक सपर्या इत्यादि भी गृहीत हुए हैं। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि अक्षय मी जैन दिगम्बर मुनियों के धर्म-प्रवर्तक होने क ताते चौबीस अवतारों की कोटि में गृहीत हुए हैं। अवतारवादी शैली में उनक अवतार-प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए मा० ५।३ २० में उक्त कथन की ही पुष्टि की गई है। इस उचरोचर बहते हुए अवतारवाद क विस्तृत क्षेत्र और समन्वयवादी विचारधारा का भी आभास मिलता है। बौद्ध और जैन साहित्य में विष्णु और उनक अवतारों की रूपरेखा वैदिक हुए वैदिक अवतारवाद का यह समन्वयात्मक दृष्टिकोण भी अपने रंग का अद्वय दृष्टिगत होता है। इसकी सीमा में अक्षय साम्प्रदायिक मनापृति से नहीं अतितु अपने विशिष्ट आचरण और महापुरुषोचित चरित्र के कारण विष्णु क अवतार-रूप में मान्य हुए हैं।

आलोचककाळ में सुरदास क 'सूरसागर' में उनक उक्त रूपों का वर्णन किया गया है। इनक पदों क अनुसार नाभि ने पुत्र क किय पञ्च किया और इसमें दर्शन देकर पञ्च पुत्रों ने स्वयं योग लेने का वचन दिया, जिसक फलस्वरूप अक्षय की उत्पत्ति हुई।^१

'सूरसागर' में कहा गया है कि त्रिपत्र क बंग में उत्पन्न हरि क ही शरीर का नाम अक्षयक था। उन्होंने इस रूप में मन्त्रों क सभी कार्य पूर्ण किये।^२ अनादृष्ट होने पर स्वयं बर्षा होकर बरसे और महावैत में अपने पुत्रों को ज्ञानापूर्णा कर स्वयं रूप्यास ग्रहण किया। हाथ लाने हुए प्रस्तुत अक्ष

१ नाभि मुनि छत्र हित अय द्विती। अक्षयक तव वरसम द्विती ॥

सूरसागर पृ० १५० पद ४ ९।

२ मैं इरता करण अक्षर म लेही मून गूर अवतार।

त्रिपत्रैव तव वरसे वार, राजा कै गूर बनी बवार ॥ सूरसागर पृ० १५०।

३ त्रिपत्र परेः हरि नित्र तपु अक्षय देव बह नाम।

किन्हे प्यात्र सकल मछन को अय अय अतिराम ॥ सूरसागरवाणी पृ० ४।

सिद्धियों को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वे श्रद्धा देव मुक्ति परमेश्वर के अवतार बतलाये गये हैं।^१ आलोचकाल में 'परमेश्वर शब्द उपास्य इष्टदेव के लिये कवियों ने प्रयोग किया है। इसी में नरहरिवास न मी इन्द्रजी भवतार कथा का वर्णन करते हुये इन्होंने परमेश्वर परमपावन पुत्र भविष्योपी कहा है।^२ अतः मध्यकालीन मति का प्रभाव श्रद्धा पर स्पष्ट है जिसके फलस्वरूप संन्यासप्रधान जैन मुक्तियों के धर्म का प्रवर्तन करने वाले श्रद्धा आलोच्य काल में भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले हो गये।

ध्रुव प्रिय

बीबीस अवतारों में ध्रुव के इष्टदेव को मी अवतार माना गया है सामान्यतः अवतारों का प्रयोग इबता या मत्तों की रक्षा या धर्म की संग्रहायों का प्रवर्तन रहा है। किन्तु ध्रुव के उपास्य विष्णु का अवतार कथक परवान के निमित्त होता है। हमसे मागधत-काल में उपास्य रूपों के अवतारीकरण की पुष्टि होती है। क्योंकि परवर्ती पुराणों में पुत्रवत्ता परदाता और मुक्तिदाता इष्टदेवों की अनेक कथायें मिलती हैं। ध्रुव से सम्बद्ध यह अवतार 'मागधत के तीन विवरणों में से कथक 'मागधत १' ७ ८ के अध्यायों में वर्णित हुआ है। इस अवतार में ध्रुव की प्रार्थना के फलस्वरूप मगधान प्रकृत होकर उन्हें ध्रुवपद प्रदान करते हैं। इस कथा में विभिन्न ढंग से अवतारवादी प्रयोजनों का निर्माण करते हुए कहा गया है कि ध्रुव की तपस्वा के प्रभाव से तीनों लोक काँप उठे और^३ जंग में बबराकर सभी लोकपाल हरि की सभ में जाते हैं।^४ फलतः मगधान साक्षात् परनिग्रह रूप में ही इस अवतार में प्रकृत होते हैं।^५ सूरदास न 'सूरसागर में ध्रुव-कथा के क्रम में 'ध्रुववरदैन' का वर्णन किया है। इस कथा में ध्रुव नारायण के कवनामुदार मधुरा जाकर हरि का स्नान करते हैं।^६ किन्तु इनक पद्यों में विष्णु के स्नान में उपास्य कृष्ण एवं विष्णु का समाविष्ट रूप विहित होता है। क्योंकि वे अपने निजपाम मधुरा

१ आठो सिद्धि सर्वं समुक्त नव करी न लक्ष्मीकार ।
नव नव नव श्री श्रद्धा देव मुक्ति परमेश्वर अवतार ७ सूरसागरकी पृ. ५ ।

२ अवतार बीमा (१ कि) १ १५ ।

३ मा० ५ ८ ७८ ।

४ मा० ५ ९, ८ ।

५ मा० ५ ९, १-१ ।

६ नव करी मय नरदेव अवतार । रामा सुनी दाहि विन बार । सूरसागर १० १५२

७ मधुरा नार सीर नव किरी, नव नारायण नरसन विरी । सूरसागर १० १५१ ।

में निवास करने वाले तथा मुमुक्षु, ब्रह्माला और श्रीस्तुम से सुप्रीति
 अनुभव स्वामिसुन्दर हैं। 'सूरसारावली' और गणेशदास की अध्यायवलीका
 में उक्त रूपों का ही उल्लेख हुआ है। 'सूरसारावली' में भूय भी हरि के अज्ञानकार
 विहित होते हैं।

प्राकृतिकता की दृष्टि से 'गणेशदास हरि' और 'भूय-वर्णन' में पर्याप्त समानता
 उचित होती है। प्रायः दोनों में 'दुर्गा', 'गो', 'देवता' इत्यादि के स्थान में मन्त्र
 मात्र की जगह पुकार और इष्ट-व्यक्ति की भावना विद्यमान है। इस अध्याय
 का मुख्य हेतु भक्तों पर किया गया अनुभव है। इस अध्यायों में उनका प्राकृत्य
 सामूहिक भावि भाव, धर्म या मन्त्रवाचक कल्प न होकर व्यक्तिगत मन्त्र मात्र
 के अन्तर्गत होता है।

इस दृष्टि से तत्कालीन अध्यायकारों के प्रयाजन सम्बन्धी विचारों में
 किञ्चिन् परिवर्तन शीघ्र पड़ना है; क्योंकि अध्यायकारों की हेतु सम्बन्धी जो
 प्राथमिक कल्पना मिलती है उसमें व्यक्ति-हित या हेतु के स्थान में
 व्यक्तिगत हित या कल्याण की भावना विद्यमान है। किन्तु सर्वप्रथम इन
 मन्त्रों के अध्यायों में व्यक्तिगत हित की सम्बन्धता हुई है। इसमें ज्ञान
 पड़ता है कि काकालीन में जो-जो अध्यायों में किञ्चिन् रूपों का सम्बन्ध
 होता गया उनका प्रयाजन और प्राकृत्य की पद्धतियों में भी पर्याप्त वैपश्य
 हुआ। जना प्रयोजन के अतिरिक्त इन अध्यायों में उनका प्राकृत्य की प्रणाली
 में भी अन्तर्गत हो जाता है। अन्य अध्यायों में जहाँ उनकी उत्पत्ति होती है
 वहाँ विशिष्ट अध्यायों में व अथवा 'पर विग्रह' रूपों में ही उपस्थित होते हैं।
 इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि इस युग तक अध्यायकारों साम्प्रदायों
 पर उपासना या विग्रह तर्कों का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। काल
 अध्यायकारों साम्प्रदायों अन्ति-तर्कों से उत्तरोत्तर अनुमानित होती जा रही
 थी। यही कारण है कि 'सूरदास' और अन्य तत्कालीन अध्यायकारों ने जिस
 'गणेशदास हरि' या 'भूय-वर्णन' का वर्णन किया है व विष्णु के रूप न होकर
 तत्कालीन उपासक रूपों या परमात्म के विग्रह रूप हैं।

१. गुरुदेव वर वन कल्पों पर सारदा मिली, कल्प विग्रह नाम मधुरा बतानी।
 मुकुन्द सिर बने ब्रह्माला श्रीस्तुम पर अनुभव स्वामि हरि ज्ञानी म
 सूरसारावली पृ० १४४ पर ४०४।
२. सूरसारावली पृ० ४ पर १ और अध्याय वलीका (इ० कि०) पृ० १४।
३. किन्तु काव्य अर्थ हरि प्रकृत भूय जगत् विख्यात। सूरसारावली पृ० ४।

धन्वन्तरि

भक्तारवाह के विकास-काक में बहुत से प्रवर्तकों, योगियों आत्महासियों, भक्तियों दार्शनिकों, उपदेशकों और धन्येयकों को विष्णु के अंग, कथा या विमूर्ति रूप में साम्प्रता ही गई। पुराणों में आयुर्वेद के अधिष्ठाता धन्वन्तरि को भी उसी कोटि के भक्तारों में माना गया। यों तो आदिम काक में पुरोहितों और सरदारों के साथ वैद्यों के देवीकरण का पता चलता है। परन्तु साम्प्रता धन्वन्तरि की कथा का विकास इस प्रकार ही किसी कथा से न होकर समुद्र-मंथन की कथा से सम्बन्ध है। इस कथा के निर्माण में पौराणिक एवं प्रतीकात्मक तत्त्वों का योग माना जाता है। भारतीय साहित्य में धन्वन्तरि नाम के स्वच्छिणों के स्फुर उल्लेखों के साथ आयुर्वेद के अधिष्ठाताओं की परम्परा में भी धन्वन्तरि का नाम दिया गया है।^१ सुश्रुत के अनुसार प्रजा, प्रजापति, अधिनीकुमार, इन्द्र के पश्चात् धन्वन्तरि का स्थान आता है।^२

‘महाभारत में वर्णित समुद्र-मंथन की कथा में सप्तमथम दिग्ब शरीरधारी धन्वन्तरि देव का उल्लेख हुआ है।^३ पर बर्दों उन्हें विष्णु का भक्तार नहीं कहा गया है। अमृत-मंथन के ही प्रसंग में ‘वाल्मीकि रामायण’ और ‘विष्णु पुराण’ में भी क्रमशः आयुर्वेद पुरुष और श्वेत बछपारी धन्वन्तरि के प्रकट होने की खर्चा की गई है।^४ परन्तु इनमें भी उन्हें विष्णु से सम्बन्ध नहीं किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार भगवान् धन्वन्तरि आयुर्वेद प्रजापति हैं।^५ भागवत १, ३ १७ और २ ७, २१ में अमृत लेखर आदिमूर्त एवं आयुर्वेद के प्रवर्तक धन्वन्तरि को विष्णु के बीसवीं भक्तारों में माना गया है। पांचरात्रों के विमर्षों में इनके धन्वन्तरि नाम के स्थान में अमृतधारक नाम का प्रयोग हुआ है।^६

आद्योपकाल में ‘भागवत’ के आधार पर विर्मित ‘अमुष्यायवतामृत’ में धन्वन्तरि मेघ से जाग्रुप एवं वैकररत में द्वा बार धन्वन्तरि के भक्तारित होने की खर्चा की गई है। प्रथम भक्तार में वे अमृत के साथ प्रकट होकर आयुर्वेद

१ अथकायन गृहसूत्र १, ३ १२ में धन्वन्तरि तथा सनकवायव गृहसूत्र २ १४ में महाभारत धन्वन्तरि और सुहृत् २ २ ७ में ‘अहं हि धन्वन्तरिः’ के उल्लेख हुए हैं।

२. विष्णुपुत्र १५। ३ महा० १ १८ ६८।

४ या १।० २, ४५, ३१, और विष्णुपुराण २ १, १८।

५ मत्स्य पुराण २५० १। ६ तावतव ६० २२१।

का प्रचार करने हैं और तृतीय में व काशिराज का पुत्र-रूप में आपुर्बेद का प्रचारक रूप में दिक्पाल हात हैं।^१ मूरदास एवं गरहरिदास चारहठे में 'सामयिक क आचार पर ही आपुर्बेद का प्रवक्तक घम्बन्तरी का बान किया है। 'मूरसारावली में कहा गया है कि घम्बन्तरी क रूप में कस्नाकर एवं समी महान्तों के स्वामी आपुर्बेद के वित्तार के निमित्त बभूत कृपा लकर समुद्र से निकल।^२ चारहठ के पद्यों के अनुसार परमेश ही घम्बन्तरी क रूप में पृथ्वी पर रागनाथ क निमित्त अवतराई हुए।^३

इस प्रकार महाभारतों पुराणों और आपुर्बेद साहित्य में घम्बन्तरी क जिन रूपों का पना चलता है उनमें दो रूप प्रमुख हैं। इनमें प्रथम रूप का सम्बन्ध तो समुद्र-मथन की उस प्रतीकात्मक पौराणिक कथा से है जिसमें काइए रत्नों के साथ घम्बन्तरी भी बभूत घट लंघ्य उतरल हुए कहे गये हैं। इसका अनिश्चित रूपों के सम्बन्ध आपुर्बेद क प्रवक्तक घम्बन्तरी से है। जिनका आपुर्बेदीय परम्परा में भी उल्लेख मिलता है। परवर्ती १५ इत्यादि पुराणों में तथा उम्होके सारोंका क रूप में 'कृष्णमायकतामृत में आपुर्बेद क प्रचारक घम्बन्तरी की काशिराज का पुत्र कहा गया है। उपर्युक्त दोनों रूपों में प्रथम पौराणिक लक्ष्य स संबन्धित है और दूसरे में कुछ ऐतिहासिक लक्ष्य का भी भाग होता है। अतः यह कहना अत्यन्त कठिन है कि दोनों का सम्बन्ध एक ही घम्बन्तरी स है अथवा दोनों के बीच कुछ अस्तित्व रहे हैं। फिर भी आपुर्बेद क प्रवक्तक घम्बन्तरी का कालगत अनिश्चितता के होते हुए भी उसका ऐतिहासिक अस्तित्व की अवहलना नहीं की जा सकती। सम्भव है समुद्र-मथन की कथा के बहुत प्रचलित हो जाने क पश्चात् उसका सम्बन्ध घम्बन्तरी स भी जाइ दिया गया हो। परन्तु जहाँ तक इन दोनों रूपों का सम्बन्ध अवतारवात् स है प्रायः कहीं-कहीं दोनों रूपों का संयुक्त उल्लेख हुआ है और परवर्ती पुराणों में उनका प्रथक् अवतारवाही अस्तित्व भी मिलता है।

१ अनुभाषणामृत पृ १४।

२ कथनाकर ककनिधि के प्रथमे पुरा कलप के हात।

आपुर्बेद वित्तार काकल सव महान्त के साथ ॥ मूरसारावली पृ० ५ पद ११८

३ परमेश मयी पृथ्वी महाद्य। निज नाम घम्बन्तरी रोगनाथ ॥

पुत्रीकरण के उपरान्त इन्द्र भीर विष्णु के स्थान में आधाचर के साथ होने के कारण नर नारायण का संयुक्त प्रयोग प्रचलित हुआ जिसकी अंशता पुष्टि महा० १. ६०, ११६ से होती है। दूसरा यह कि नर नारायण अत्यधिक प्रचलित वैदिक परम्परा से किंचित् मिश्र वर्ण का ऋषि थे। बाद में 'नारायणीयोपाख्यान' का 'महाभारत' में समाविष्ट हो जाने के अनन्तर 'महाभारत' और परबर्ती पुराणों में वे विष्णु के भवतार-रूप में प्रचलित हुए। इस दृष्टि से इनका स्वामगत पायम्प का अभास इनके श्वेतद्वीप के निवासी होने से भी मिलता है। इसके अतिरिक्त 'नारायणीयोपाख्यान' का महा० १. २। १३, २। १६ में समागत नारायण के चार पुत्रों में से दो नर-नारायण एक साथ उल्लिखित होते हैं।

उपर्युक्त दोनों तथ्यों के तुलनात्मक विरलेपन के पश्चात् चौबीस अवतारों के नर-नारायण प्रथम वैदिक रूप की अपेक्षा 'नारायणीयोपाख्यान' के नर-नारायण के अधिक मिलते हैं। अतएव चौबीस अवतारों में इन्हीं को परिगणित किया गया है। इस कथन के और अधिक विराकरण के लिये यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य में जिस पुत्र-सूक्तकार नारायण का उल्लेख मिलता है व भी बाद में पुत्र विष्णु और वासुदेव से संयुक्त होकर स्वयं अवतारों के अक्षयकाश' या भवतारी के रूप में मान्य हुए। इन स्थलों पर नर से उनका कोई सम्पर्क परिलक्षित नहीं होता।

अतः 'नारायणीयोपाख्यान' के ही नर-नारायण बाद में अथवा विकल्पन तपस्व के कारण चौबीस अवतारों में मान्य हुए।

महाकाम्य युग तक इन्द्र का स्वाम गीम हो गया और विष्णु एकेवरवाही कर्णों से संबन्धित उपास्य रूप में प्रचलित हुए। अतः उनसे अभिहित होने वाले वासुदेव और नारायण भी एक जोर तो उपास्य हुए और दूसरी ओर नर नारायण का प्राचीन ऋषि रूप भी विद्यमान रहा। पुत्र-नारायण और ऋषि नर-नारायण का यह विचित्र सम्बन्ध 'नारायणीयोपाख्यान' में अधिक स्पष्ट रूप से उल्लिखित होता है। वहाँ कहा गया है कि समागत नारायण ने चार मूर्तियों वाले घर्म के पुत्र-रूप में जन्म लिया था। उनके वे चार पुत्र नर नारायण, हरि और कृष्ण बतलाये गये हैं।^१ इसके अनन्तर कहा गया है कि पहले वे एक रूप थे और अनन्तर में चार रूप हुए।^२

अतः एक जोर तो उपास्य रूप में श्वेत द्वीपवासी नारायण और और

सागर में शयन करने वाले नारायण के रूप में प्रकटित हुए। और दूसरी ओर नर-नारायण अर्थात् पुराणों में इन्हीं के ब्रह्म या कलावतार-रूप में पृथीत हुए। 'भागवत' में भी उपास्य रूप से सम्बद्ध पुण्य-नारायण को 'ब्राह्मावतार' और 'मनसु ब्रह्मतारों का अवयवकोस'^१ माना गया और नर-नारायण का पौराणिक रूप उक्त कलावतारों में प्रकटित हुआ। इस प्रकार प्रतिपाद्य नर-नारायण यहाँ विष्णु के बीबीस भवतारों में सायक पूर्व तपस्वी भवतारों की क्रोडि में ही परिगणित हुये हैं। भा० १, १, ९ और २, ७, ९ के अनुसार धर्म-यज्ञी मूर्ति के गर्भ से नर नारायण उत्पन्न हुये थे। उन्होंने अर्थात् रूप में मन और इन्द्रियों का सर्वथा सबन्ध करके बड़ी कठिन तपस्या की थी।

सूरदास ने 'सूरसागर' में नारायण के साथ नर का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु पक्षों में नारायण की ही विस्तृत कथा का वर्णन है। धर्म और मूर्ति के पुत्र नारायण के तप करते समय भयभीत होकर इन्द्र ने अप्सराओं को उनकी तपस्या में विघ्न उपस्थित करने के निमित्त भेजा।^२ परन्तु उनके जात्रे पर नारायण ने स्वयं सहस्रों अप्सराओं को उत्पन्न कर उन्हें शक्ति कर दिया। जिसमें से उर्बंसी नाम की अप्सरा इन्द्र को मिली। मरहरिदास ने भी मुख्यतः 'भागवत' के रूप को ग्रहण किया है इसमें इन्द्र परब्रह्म, पुण्य पुराण की परीक्षा लेकर चमा मोंगले हैं।^३ किन्तु सामान्य रूप से इस भवतार में भवतारवादी प्रयोजनों का अभाव है सम्भवतः किसी पूर्ति के स्वरूप एक 'सहस्र कवच' नाम के असुर-वध की पौराणिक कथा का संयोजन 'सूरसारावली' में किया गया है।^४ संतों में गुरु गोविंद सिंह ने भी नर नारायण के योद्धा

१ भा० १, १, १६ भा १, १, ७ और २, १, ४२।

२ सहस्र अप्सरा सुन्दर रूप के एक ही अरिह भद्र।

नारायण उन्हें परवर करा इन्द्र अप्सरा सीमा हरी।

नाम वैशि शक्ति है जो का हीक हम हमको मने

— — — — —

एक नारायण ब्राह्मणकी इनमें केहु एक सुन्दरी।

सूरसागर पृ० १७२९, पद २ १ ।

३ सूरदास कवचो अकार सिद्ध नर ब्रह्म पुण्य पुराण पवित्र।

बह नाम इन्द्र वसु नाम भाह सन्निवर्त ईकवत् कीच सुनाह।

भवतारलीला (६० कि०) पृ ७ ।

४ नारायण कवच भवे प्रकट पु निय दीखी मुखवार।

महस कवच एक अतु संशरीर बहुदि किने तप पारो। सूरसागरकी पृ १ ।

रूप का वर्णन किया है।^१ इससे विदित होता है कि बाद में इसके प्रवर्तक रूप का लोप हो गया और उसके स्थान में असुर-संहारक रूप का समावेश किया गया।

इस प्रकार चौबीस अवतारों की कोटि में नर-नारायण का समावेश हो प्रकार से होता है। एक ओर तो ब्रह्मक वाराणस नामक प्राचीन ग्राम 'पुरुष सूक्त' के रचयिता होने के कारण बरकती ज्ञान्य प्रत्नी में पुरुष से अभिहित किए गये और पुरुष के साथ स्थायित्व की गई इनकी इस कल्पना ने काकावत में वैष्णव धर्म के प्रमुख उपासक विष्णु और बामुदेव के साथ तद्वरूप होने में सहायता प्रदान की। फलतः अवतारवाद के मूलस्रोत का उद्गम 'पुरुष सूक्त' की प्रसिद्ध श्रुति 'प्रजापतिर्ब्रह्मणि गर्से अन्तरजापमानो बहुधा विजायते'^२ से माना गया और पुराणों में ज्यों-ज्यों इसका प्रसार होता गया त्यों-त्यों जन्मी उपासकवादी महिमा के वैष्णव साहित्य में व्याप्त होने के कारण पुरुष के साथ-साथ नारायण भी भादि अवतार माने गये। वैदिक साहित्य में लक्ष्मी का सगुण ईश्वर के मानवीकरण (ऐन्थ्रोपोमाफिज्म) की कल्पना एक ऐसे विराट् ईश्वर को लेकर साकार हुई जो उपासकवाद की विदित प्रवृत्तियों (हीमोथिस्टिक टेंडेंसिज़्) का जनक कहा जा सकता है। उसका उन मन्त्रों में अवतारवाद भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है जिसका अचरोत्तर विकास विभिन्न रूपों में पौराणिक साहित्य में लक्षित होता है। नारायण पर भी उन प्रवृत्तियों का समान साध से आरोप हुआ फलतः 'भागवत पुराण (१, २ ११) में हमें 'भादि अवतार' तथा अवतारों का 'अव्यय कोश' या जनक भी माना गया। इस दृष्टि से अवतारवादी धारणा के उद्गम और विकास में नारायण का स्थान अपरिहाय है। इसमें संदेह नहीं कि नारायण के अम्बिदमित अर्थ 'वाद'-अवतार के प्रकल्पक उन्को पुराणों में उन्कोपिकासी श्रीसागरवासी इत्यादि विविध रूपकामक कल्पनाओं से सन्निविष्ट किया गया है, जिसके फलते अनेक विवेचकों के मन में जाका प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो गये थे। परन्तु अबमें भी उनके अवतारी और अवतारों का जनक रूप सुरक्षित रहा। इस संदर्भ में एक बात विचारणीय है—यह यह कि इसमें नारायण के साथ नर का अस्तित्व अत्यन्त विरल है। माया प्रस्तुत नारायण के साथ नर का

१ बर्त एक नारायण हुए स्वर्ण विवै कोमि सन्तरहु धारे बभूव ।

४४३ एक दीपं धरतं प्रहारे सुदे बभूव को बभूव सुधारे ।

अस्तित्व वहीं मेरे हस्त में नहीं आया। इससे यह विदित होता है कि वैष्णव साहित्य में प्रस्तुत नारायण का विकास प्रायः स्वतंत्र रूप से हुआ। व इस रूप में विष्णु के किसी अवतार विशेष के रूप में मान्य न हो कर स्वयं विष्णु के तद्रूप अवतारी या अवतारों के स्रोत रूप में मान्य हुए।

उपयुक्त नारायण के अतिरिक्त 'महाभारत' और पुराणों में द्विज नर नारायण बंधुओं की कथा मिलती है उनका अस्तित्व उपर्युक्त नारायण से भिन्न विदित होता है। महा० १२।३३।४ के अनुसार धर्म के पुत्र-रूप में विद्यादाता, ऋतुर्मूर्ति और सत्वात्मक शैवता नारायण के व अवतार माने गये हैं। इस आधार पर नारायण और नर-नारायण के अवतारी-अवतार सम्बन्ध का स्पष्टीकरण होता है।

इसके अतिरिक्त जिस प्रसंग में नर नारायण, हरि और कृष्ण को ऋतुर्मूर्ति कहा गया है, उससे सर्वप्रथम उनका विग्रह-रूप का भी पता चलता है। क्योंकि इस अर्घ्याय के प्रारम्भ में ही प्रश्न यह उठता है: 'गृहस्थ ब्राह्मणारी वातप्रस्य और सम्पत्ती जो भी सिद्धि प्राप्त करना चाहे वह किस शैवता का पूजन करे?' उसी के उत्तर में इन चार विग्रह रूपों का उल्लेख किया गया है। बाद के 'भागवत' इत्यादि पुराणों में धर्म और वृष-सुवी मूर्ति के पुत्र रूप में नर-नारायण ही श्रीबीस अवतारों में प्रकटित हुए।

इन तर्कों से कबल नहीं पता चलता कि भिन्न अस्तित्व रखते हुए भी नर-नारायण आदि नारायण की ही परम्परा में हैं अपितु यहाँ सर्वप्रथम नारायण के विग्रह-रूप या उन मूर्तियों के प्रयोग का भी पता चलता है जिसका विधि-विशेष युक्त वैष्णव मठों में प्रचार हुआ है।

अतएव वैष्णव पूजाविधान की जर्जा करत बाल पाँचरात्र या वैष्णव आगमों का आरम्भ भी यहीं से मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यदि नर-नारायण के अवतार और जननी 'धर्म' और 'मूर्ति' के प्रतीकात्मक अर्थ को किया जाय तो भी उससे 'धर्म' और 'मूर्ति' के अभिधायक अर्थ के अनुसार नर-नारायण के विग्रह और मूर्त रूपों की पुष्टि होती है।

सारांश यह कि नर-नारायण से सम्बद्ध तर्कों के आधार पर कबल उनक श्रीबीस अवतारों में ही गृहीत होने का पता नहीं चलता प्रस्तुत वैष्णव धर्म के मूळ सिद्धान्त उपास्यवाद, अवतारवाद और वैष्णवागम या पाँचरात्री में प्रकटित विग्रह-पूजा विधान के प्राचीनतम मूर्तों का भी पता चलता है।

किंतु मध्यकालीन कवियों ने पौराणिक अवतारों के रूप में प्रचलित केवल उनके परवर्ती कथात्मक रूप को लिखा है जिनमें उनसे सम्बद्ध जनेक महावर्णन उपादानों का प्रायः लोप ही हो जाता है। फलतः इन कवियों में वे केवल विद्वद् उपास्यकारी अवतार रूप में वर्णित होकर पढ़ते हैं जिनका सम्बन्ध तत्कालीन प्रचलित उपास्यों से है। आलोच्य कालीन रूप में वे केवल तपस्या ही नहीं करते अपितु अन्य अवतारों की परम्परा का पाकन करते हुए असुरों या राजसों के बन्ध का भी कार्य करते हैं। इस प्रकार नर-नारायण की अवतार-कथा में युग सापेक्ष अवतार प्रसंगों की संयोजना भी होती रही है।

दत्तात्रेय

ऐतिहासिक अस्तित्व की दृष्टि से नर-नारायण की अपेक्षा दत्तात्रेय अधिक परवर्ती विदित होते हैं। वैदिक साहित्य या प्राचीन जैनिक महाकाव्यों में प्रायः इनका उल्लेख नहीं हुआ है। 'गीता' की विभूतियों या 'विष्णुसहस्रनाम' में भी दत्तात्रेय नाम नहीं मिलता। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दत्तात्रेय का संबन्ध विष्णु की अपेक्षा किसी इतर सम्प्रदाय से रहा है। किन्तु 'भागवत' में अवतार संबंधी सभी विवरणों में इनका परिचय दिया गया है। भा० १. ३, ११ और ०. १३. १३ के अनुसार अनुसूचा के नर मणिने पर छठे अवतार में अग्नि की संतान दत्तात्रेय हुए थे। इस अवतार में अर्कट एवं मण्डूक आदि को जन्हींमें मण्डूक का उपदेश दिया था। भा० २. ०. २ या ९, १६, १० में कहा गया है कि राजा पशु और सहजाह्वन न उनसे बाण और मोक्ष दानों प्राप्त किया था। भा० ११. २. १० में अष्टम सप्तम्वार आदि के साथ इनका नाम आत्मपोषिणों में लिखा गया। इस प्रकार पुराणी में वे प्रायः अकवृत्त या तपस्वी के रूप में विख्यात हैं। परमहंसों से सम्बद्ध परवर्ती उपनिषदों में भी इनका उल्लेख मिलते हैं। श्री पूरे के अनुसार अथाका और मित्रकूपनिषद् के परमहंसों की सूची में संवर्तक, अतपी, श्रेणनेतु और अक्षभरत के पश्चात् दत्तात्रेय का नाम आता है। वे संन्यासी सम्प्रदायों में इहलोक के रूप में दृश्य हैं और 'भागवत' में छठे अवतार माने गये हैं। 'मण्डान्त' और 'मार्कण्डेय पुराण' में तथा माघ रचित, 'विद्वत्पाक लव' में भी वे तथा 'नैषधचरित' में इनमें अवतार के रूप में गृहीत हुए हैं।^१

१. केवल महा. समाप्त २८ वीं अध्याय के अतिरिक्त अंत में वेदों और वदों के पश्चात् विष्णु अवतार दत्त त्रेय की कथा हुई है।

२. दशमस्कन्ध सायुज्य ५. ८३।

महाराष्ट्र के कतिपय वैष्णव पंथों में इनका परम्परागत संबंध दृष्टिगत होना है। महानुभाव पंथ के प्रवक्तक भी अक्षर के भादि गुरु दत्तात्रेय माने जाते हैं। इनके साम्प्रदायिक ग्रंथों के अनुसार चारों पुगों में मास्य भवतार क्रम में व्रता में 'दत्तावतार' कहा गया है।^१ इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र के अन्य सम्प्रदायों के प्रवक्तक भी संत भी दत्तात्रेय के भवतार-रूप में प्रचलित हैं। सरस्वती गंगाधर द्वारा रचित 'गुरु-चरित्र' (रचनाकाल सन् १३०८) में दत्तात्रेय के कतिपय भवतारों का उल्लेख हुआ है। उसमें द्वितीय भवतार भी पादबद्धम और दुर्गाव नृसिंह सरस्वती बतहाये गए हैं।^२ कहा जाता है कि इसी मत में जनाहन स्वामी हुये जिनके शिष्य एकनाथ ने मर्हंग 'कबीर' के रूप में दत्तात्रेय का साक्षात्कार किया। इस प्रकार मध्यकाल के विविध सम्प्रदाय एवं साहित्य में उपास्य दत्तात्रेय और उनका भवतारों का प्रकार विद्विग्न होता है।

इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र में दत्तात्रेय के नाम से एक सम्प्रदाय भी प्रचलित है। अन्य सम्प्रदायों के सदृश इस सम्प्रदाय को भी प्राचीन काल से ही प्रचलित कहा जाता है किंतु मुख्यतः पद्धती शती में इसका साम्प्रदायिक रूप परिलक्षित होता है।^३ दत्तात्रेय का पौराणिक रूप ब्रह्मा विष्णु और महेश के समावेश के कारण त्रिमूर्तिरूप या समम्बपवादी प्रकृति का ज्ञान पड़ता है। अतः मध्यकाल में जबकि शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में ईर्ष्या और द्वेष की भावना जग रही थी उस संकल्पितकाल में दत्तात्रेय जैसे समम्बपवादी भवतारों का उपास्य होना उपयोगी सिद्ध हो सकता था। अतः महाराष्ट्र के अधिकांश सम्प्रदायों पर दत्तात्रेय के सिद्ध रूप के साथ साथ समन्वित रूप का भी प्रारंभ या अग्रगण्य प्रमाण पड़ता रहा है। इसी संघ द्वैतवादि या त्रिगुण भवपूत होने की अपेक्षा सम्प्रदायों में जमर या मनात्मन पुरुष माने गए हैं। उपम्बपवादी रूप के सूहीत होने के कारण ही उन्हें केवल भवतार ही नहीं बल्कि पूर्ण ब्रह्म भी समझा जाता रहा है। साथ ही दत्तात्रेय का ईश्वर या उपास्य विग्रह-रूप सम्प्रदायों के अतिरिक्त जन समाज में भी अधिक लोकप्रिय है। इसीसे सम्प्रदायों में विभिन्न महापुरुषों के रूप में अवतरित होने वाला उनका जनगणनी रूप तो प्रचलित था ही उसके अतिरिक्त वहाँ के जन-समाज में मराठी क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय मरुग संतों में दत्तात्रेय के अवतरित मरुग रूप का भी प्रकार है।

१ माघपन सम्प्रदाय पृ. १२।

२ श्री एकनाथ चरित्र ३० और मराठी संतों का सामाजिक कार्य पृ. १९-२०।

३ हिन्दी को मराठी संतों को देख पृ. ७२।

अतः महाराष्ट्र क्षेत्र में अभ्यन्तरीय सम्प्रदाय और समाज में अवतार की अपेक्षा से अवतारी उपासक के रूप में अधिक प्रचलित रहे हैं। परन्तु उत्तर भारत में इन सम्प्रदायों का कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं देता पड़ता। फलतः उत्तर भारत के मूल कवियों में साम्प्रदायिक उपासक का प्रभाव न होकर पौराणिक अवतार-रूपों का प्रचार रहा है।

अतएव अज्ञान से इच्छाशेष के भागवतानुमोदित रूपों का ही ग्रहण किया है। चौबे 'रूप' की विस्तृत कथा के आधार पर ये कहते हैं कि अत्रि एवं उनकी स्त्री ने पुत्र के निमित्त बहुत उप किया जिसके फलस्वरूप तीनों देवता वहाँ प्रकट हुये। उन्होंने (शिवदेवों) कहा कि एक परमपुरुष का वर्तमान किसी का नहीं होता, हम उनकी शक्ति से मुक्त होकर उत्पत्ति पाकर और संसार करते हैं। इन तीनों के परदान-स्वरूप उनके अंश से तीन पुत्र हुये जिसमें ब्रह्मा के अग्रज, एत के दुर्वासा और विष्णु के अंग इच्छाशेष हुये। बारहठ ने सहस्राब्दों द्वारा की गई उनकी सेवा का भी उल्लेख किया है। वहाँ अभ्यन्तरीय अवतारों की अपेक्षा एक वैशिष्ट्य यह उल्लिखित होता है कि इच्छाशेष उपासक विष्णु या उनके प्रतिरूपों के स्वरूप में अनुभवतार शिवदेवों में गृहीत विष्णु के अवतार माने गये हैं। अभ्यन्तरीय आदि कथावतारों के सरल रूपमें भी रक्षा या सुखप्रदान आदि प्रयोजनों के स्वरूप में सम्प्रदाय-प्रवर्तन इनके अवतार का मुख्य प्रयोजन माना जा सकता है जो विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित इनके उपासक रूपों से स्पष्ट है।

कपिल

भारतीय साहित्य में कविके अल्पक प्रवर्तक माने गये हैं। ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी दोनों काटि के सौम्यवेत्ताओं ने इन्हें मूल उपासके के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु भागवत एवं पांचरात्रों में इन्हें विष्णु के चौबीस अवतारों में ग्रहण किया गया है। ऐतिहासिक अस्तित्व की दृष्टि से इच्छाशेष

१ सूरसागर ५ २३३ पृष्ठ ३०३।

२ कथो तुय मन्त्र बुद्ध की ध्वस्वी लक्ष्मी दरशन काहु न शयो।

ताको सक्ति पाव हम करे मणिपाके बपुरी संदरे।

हम सोमों है जन करतार माणि केहु हमसो नर सार।

कथो रिखन मेरी सुनि किये पुन सुखानवान मोदि शोचै।

विष्णु अंग सो हत अवतरे एत अंग बुर्वासा करे।

ब्रह्मा अंग अग्रज अनी अत्रि अनुसूया की सुक बनी। सूरसागर ५ २३६

३ अनुभवतार एवं उत्तर भाग, एत के देव वताव सुमार।

कथा—सहस्राब्दोंन रात्रि एवं सेवा करी। अन्ताराजिका (५० कि) ५ १२।

की तुलना में कविक का व्यक्तिगत अधिक प्राचीन रहा है। वैदिक और महाकाव्य साहित्य में कविक नाम के व्यक्तियों या संभवतः ऋषियों का उल्लेख मिलता है। ऋ० सं० में कविक बर्ण बाळे ऋषि का 'तथा श्वेताश्वतरोपनिषद्' में कविक क रूप में संभवतः ऋषि कविक का उल्लेख हुआ है।^१ किन्तु विद्वानों ने श्वेत० ३, ४, ४, १३, १, १८ क भाष्य पर उन्हें 'द्विरुपगर्भ' का पर्यायवाची माना है।^२ इसके अतिरिक्त 'महाभारत' में द्विव कविक नाम के व्यक्ति का उल्लेख हुआ है उनमें कुछ वैष्णव छिपित होता है। 'महाभारत' 'वन पर्व' तथा 'वाल्मीकि रामायण' में सगर के साठ सहस्र पुत्रों को मत्स्य करम बाळे कविक की कथा वर्णित है।^३ वहाँ कविक को बालुदेव से अभिहित किया गया है।^४ 'महाभारत' में उक्त उल्लेख के पूर्व एक स्थल पर भर नारायण क 'अर्जुन-कृष्ण' रूप का परिचय देते हुये कहा गया है कि इस समय पृथ्वी पर जिसका जन्मतार हुआ है वे श्रीमान् महुसूदन विष्णु ही कविक नाम से प्रसिद्ध रहता हुये हैं। वे ही जगधान् अपराजित हरि हैं।^५ उक्त प्रसंगों में कविक का पौराणिक रूप विशेष रूप से स्पष्ट है। क्योंकि इन स्थलों पर उनकी सांख्यवेत्ता क रूप में कहीं भी चर्चा नहीं की गई है। 'वनपर्व' में भी अग्नि क विभिन्न नामों और रूपों की चर्चा करते हुये कहा गया है कि जो श्रीसिंहास महापुरुष शुक्ल और कृष्ण गति के आधार हैं, जो अग्नि को धारण और उसका पोषण करते हैं जिसमें किसी प्रकार का कर्मण या विकार नहीं है तथा जो समस्त विकार-स्वरूप जगत के कर्ता हैं, यदि ज्येष्ठ जिसको महा महर्षि कविक नाम से कहा करते हैं, जो सांख्य योग के प्रवर्तक हैं वे ज्येष्ठस्वरूप अग्नि के आधार कविक नामक अग्नि हैं।^६ इस कविक का संबंध सांख्यवादी आग्नेय कविक से है। किन्तु ज्येष्ठारिण स्वरूप और सगर पुत्रों के मत्स्यकर्ता होने क कारण पौराणिक कविक से भी इनके सम्बन्ध होने का मान होता है।^७ डा० हासगुप्त के अनुसार नीचकं आदि भाष्यकारों ने इसी

- १ ब्रह्मानन्द कविक समानं तं द्विरुपन्ति ऋतवे धार्वाज। ऋ० १० २७, २६।
- २ ऋषि प्रसून कविकं वरुणमपे धामै निर्माति जावमानं च परमेय। श्वेत ५, २।
- ३ भारतीय ब्रह्मण, बकदेव उपनिषत् ४ २१५।
- ४ महा ३, २ क और वा० रा २ ४।
- ५ ब्रह्मण कविकं तव बालुदेव सनातनम्। वा रा० २, ४० ३५, महा० ३ २ क, ३२ वा रा २ ४० २।
- ६ महा ३, ४७, २८। क महा ३ १२२, १०-२१।
- ७ वा रा २ ४०, २ में कहा गया है कि इनको ज्येष्ठारि से सगरपुत्र बककट धरम हो जायेंगे।

अग्नि-भवतार कविक को भनीवरवादी सांख्य का प्रवर्तक बतलाया है। इसके कथनानुसार शंकर ने 'महासूय भाष्य' में सांख्य कविक और अग्नि कविक का मिश्र-मिश्र व्यक्ति माना है।^१ इसके अतिरिक्त 'महाभारत भाष्य' पर्व में ब्रह्म के सात भागस पुत्रों में एक कविक का भी नाम आता है। ये सातों योग, सांख्य, धर्म, मोक्ष आदिक आचार्य बतकाये गये हैं।^२ 'मागवत' एवं 'गीता' की विभूतियों में कविक मुनि को सिद्धों में स्थान मिला है।^३ 'विष्णुसहस्रनाम' 'शंकर भाष्य' में महर्षि कविक्याचार्य की व्याख्या के अनुसार वे समस्त वेदों के ज्ञाता होने के कारण महर्षि हैं तथा वे ही सांख्यवेत्ता कविक्याचार्य भी हैं।^४ महा० १२, ३३९, ३८ में सूर्य में विवास करने वाले संभवतः अग्नि के ही स्वरूप कविक का अस्तित्व माना गया है। महा० १०, ३५०, ५ में कविक द्वारा प्रवर्तित सांख्य को ईश्वरवादी रूप प्रदान करते हुये पौण्डराय प्यूहवाद् से संबंध स्थापित किया गया है।

'महाभारत' के उक्त विविध रूपों में परस्पर साम्य एवं वैपश्य देखते हुए यह कहना कठिन हो जाता है कि सांख्यवेत्ता आग्नेय और सगर पुत्रों का भस्म करने वाले कविक एक ही हैं या मिश्र मिश्र हैं। क्योंकि 'विष्णु' एवं 'मागवत' 'पुराणों' में भी इनके पृथक् पृथक् दो रूपों के वर्णन हुये हैं। इन दोनों रूपों में विचित्रता यह है कि दोनों अपने-अपने स्थान पर विष्णु या वासुदेव के अवतार हैं। किन्तु न तो कर्षस प्रजापति के पुत्र एवं सांख्य के उपदेशकर्ता कविक का सगर पुत्रों से कहीं संबंध स्थापित किया गया है, न सगर पुत्रों के भस्म-कर्ता कविक को कहीं सांख्यवेत्ता कहा गया है। वि० पु० १ २९ १२ में केवल प्रजापति कर्षस के 'संक्षपाद्' नामक पुत्र का उल्लेख हुआ है 'संक्षपाद्' से सांख्यवेत्ता कविक का आभास मिलता है। क्योंकि संभव है कि 'सांख्य' का विह्वल रूप होकर 'शंख' हो गया हो। इसके अतिरिक्त वि० पु० ४ ४ १२-१६ में सगर पुत्रों के भस्मकर्ता और दुष्कोचम के अंध मूल कविक का वर्णन हुआ है। यहाँ उनका सांख्यवेत्ता हान का कोई संकेत नहीं मिलता। 'मागवत' में भी चार स्थलों पर, सिद्धों के स्वामी आसुरी को उपदेश देने वाले सांख्यवेत्ता, कर्षसपुत्र कविकभगवान् के अंध और कटा के अवतार माने गये हैं।^५ तथा भा० ९, ८ में सगरपुत्रों के भस्मकर्ता

१ हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटिरेचर की ४ वृ० ३८।

२ महा० १२ ३४०, ७२-७४। ३ गीता २ २६।

४ विष्णुसहस्रनाम (शंकरभाष्य) ६ १७० श्लोक ७।

५ भा० १, ६ २ आ २ ७, ६ आ १ २१, २२ या ६, २४ ३०।

अपि कपिल भी भगवान् के अवतार हैं। किन्तु इन दोनों 'भागवत' के रूपों में कोई परस्पर संबंध दृष्टिगत नहीं होता।

निष्कर्षतः महाकाव्यों या पुराणों में दोनों कपिल का रूपक-रूपक विकास होने के अन्तर्गत उनका अवतारवादी रूप भी रूपक-प्रतीत होता है। परन्तु इतना स्पष्ट है कि कपिल के चौबीस अवतारों में कर्म-पुत्र तथा सांख्यवादी कपिल ही प्रचलित हुए हैं। इससे चौबीस अवतारों में पृथीत होने वाले विभिन्न विचारधारा के प्रवर्तक होने के नाते ही वे इस कोटि में कला या अर्थ रूप माने गये।^१

इस प्रकार अनेक कपिल नामक व्यक्तियों के होते हुए भी कपिल के मुख्यतः दो रूप भारतीय साहित्य में विशेष रूप से प्रचलित हुए। उनमें एक तो है इनका पौराणिक रूप जिसमें नगर पुत्रों के मस्मकता अपि के रूप में वे प्रसिद्ध हैं। प्रकारान्तर से यदि देखा जाय तो इनके उपर्युक्त रूप में ही आग्नेय कपिल का रूप भी समाहित हो जाया है। क्योंकि दोनों का संबंध अग्नि से स्पष्ट है। फिर भी प्रस्तुत रूप में अमलकारपूर्ण तर्कों का समावेश देखते हुए कपिल के उक्त रूप को ऐतिहासिक की अपेक्षा पौराणिक अधिक कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कपिल के दूसरे रूप का अस्तित्व मिथ्या है, वह है उनका सांख्यवादी रूप। चौबीस अवतारों की कोटि में प्रायः सांख्यवादी कपिल का ही रूप मिलता है। इससे यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि कपिल, अवतारीकरण के पूर्व पद्मसूक्त के विभिन्न मनीषियों में सांख्य के प्रतिपादक होने के कारण उन चौबीस अवतारों की कोटि में पृथीत हुए, जिनमें भ्रूतपूर्व विभूति-सम्पन्न अनेक अन्वेषक, तपस्वी, हीर साधक इत्यादि महापुरुष परिगणित हुए थे।

आलोचकाल में सूरदास ने 'सूरमागर में सांख्यवादी कपिल को ही अवतार माना है। उनके पदों के अनुसार कर्म अपि की तपस्या से प्रसन्न होकर नारायण ने स्वयं उनके घर में अवतरित होने का वचन दिया।^२ उन्होंने कपिकर्षेण के रूप में अवतरित होकर अपनी माता देवहूति को आत्मज्ञान एवं सच्चिदानन्द का उपदेश दिया।^३ उपास्य रूप की आर्चा करते

१ मा १ १ १ और २, ७ १ के दोनों विवरणों में सांख्य प्रवर्तक कपिल अवतार माने गये हैं।

२ नारायण तिनकी घर दिवो मोछो और न कोड विवो।

मे केही हम गृह बनना तप तत्रि करी भोग संसार। सूरसागर ६० ११२।

३ तिनके कपिकर्षेण तुल मय, वरम हमान्व माणि तिन रूप।

भागम घान हेतु सहुसाह बलि बनम मरम दुख जार।

हुये थे 'जन्ममूर्च्छ' रयाम का ध्यान करने का उपदेश देते हैं।^१ उपदेश समाप्त होने के अनन्तर उनको माता कइती है कि अबतक तो मैं तुम्हें अपना पुत्र समझती थी, किन्तु अब मैं तुम्हें ईश्वर ही मानती हूँ।^२ इस प्रकार सूरदास ने इनके उपदेशों में सम्बन्धीय मति अभिन्न प्रकृतियों का समावेश करते हुए भी कविकक्षेत्र के सांख्य की बातें की हैं।^३ किन्तु इस प्रसंग में सगर पुत्रों को मरम करने वाले कपिल का वर्णन नहीं किया है। केवल 'गंगावतरण' की कथा में कपिल द्वारा उनके मरम किये जाने का उल्लेख हुआ है। किन्तु उस कपिल को सूरदास ने किसी का अवतार नहीं बतलाया है। 'सूरसारावली' में भी इति, कपिल-कथ में प्रकट होकर ऐक्यवृत्ति को उपदेश देते हैं।^४ इनके विपरीत नरहरिदास ने सांख्य-प्रवर्तक कपिल के साथ सगर पुत्रों एवं गंगावतरण की कथाओं का भी समावेश किया है। उनकी रचना में कपिल के कथों का उक्त वैचर्य कथित नहीं होता।^५ इसके पक्षों के अनुसार परमेश्वर, जादि पुरुष अस्मित जगत् के द्विज के विभिन्न अवतरित होते हैं।^६ अतः विष्णु के अन्य अवतारों के मरण कपिल का भी पौराणिक रूप आद्येष्ट्यकाल में सम्बन्धीय उपास्यों के अवतार रूप में प्रकटित हुआ क्योंकि आद्येष्ट्यकाल में आकर उनका सांख्यवादी रूप कुछ रूप धारण करता है।

धीरे-धीरे अवतारों की कोटि में सूचित होने के अतिरिक्त परवर्ती काल में भाव पंथी सिद्धों के विभिन्न सम्प्रदायों में मान्य कपिलवादी स्वरूप के प्रवर्तक सांख्यवादी कपिल बताये जाते हैं। इस साक्षात् का संभव भाव पंथ में उस काल में कथित होता है जबकि वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव भी अन्तर्गत पक्षों के साथ था। इसमें कमता है कि कपिल से संबन्ध 'मिथ्या' (सिद्धांत कपिले मुक्ति) की संज्ञा न पार्ने बाद में भाव पंथी सिद्धों की पक्ष में विद्यमान हो।

वही कपिल कही तुमको जान मुझ हीद कर लोके जान।

५ १११ में मति उपदेश सूरदास ५ १११।

१ बहो बरे इदम मंद ज्ञान कर अष्टाशुभ त्याग सुखाय। सूरदास ५ ११५।

२ जाने मैं तुमको तुज मान्यो अब मैं तुमको ईश्वर मान्यो। सूरदास ५ ११७।

३ कपिलक्षेत्र सांख्यिक को बायो सो राधा मैं तुम्है जान्यो। सूरदास ५ ११७।

४ कपिल कुवाच प्रति अनुवाची श्रीरुद्रि हरि सिद्धै बतायो।

सूरदास ५ १८८ पद ४५१।

५ सूरसारावली; ५ १ पद ५१-५२।

६ अवतारकोष (६ कि) कपिल अवतार ५ ८-१२।

७, अवतारकोष (६ कि) ५ १२।

'परमेश्वर जादि पुरम पुंस कपिल कथा रिद नचारे'।

सनत्कुमार

'भागवत में सनक, सनमन्धन, सनातन और सनत्कुमार, इन चार कुमारों को विष्णु के चौबीस अवतारों में माना गया है। अन्य कतिपय अवतारों के मद्दहा इनका अवतारीकरण भी बाद में चल कर हीन पड़ता है। जहाँ तक इनके प्राचीन नामों का उल्लेख मिलता है, वे मित्र मित्र और पूयक् अस्तिव के महापुत्रर उष्टियोचर होते हैं क्योंकि वैदिक साहित्य में पूयक् प्रायः चारों नामों का अन्वय हीजता है। कबल कुमार नाम की दृष्टि से आग्नेयकुमार^१, आग्नेयकुमार^२ वामावन कुमार^३ आदि कुमार-सजा स पुत्र ऋषियों का पता ऋ० सं० में चकता है। इस कुमार नाम के सम्बन्ध में कुमार वर्ग विशेष के लक्षिणों की संभावना की जा सकती है, किन्तु प्रस्तुत चार कुमारों के अस्तित्व का स्पष्ट उल्लेख इन आधार पर नहीं माना जा सकता। पर 'बृहदारण्यकोपनिषद्' की ब्राह्मणकीर्ण नाम के वंश परम्परा में 'सन्' से प्रारम्भ होने वाले 'सन्, सनातन' और 'सनात्' का उल्लेख हुआ है।^४ इसी प्रकार सनत्कुमार का उल्लेख 'ब्राह्मण्योपनिषद्' में हुआ है। इस उपनिषद् के मातृ अर्थात् सनात्कुमार ने गार्ग्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है।^५ अतएव वैदिक साहित्य में स्पष्टतः सनत् (सनक) सनातन और सनत्कुमार केवल तीन नामों के स्पष्ट उल्लेख हुए हैं। संभव है 'सनात्' का सनक तथा 'सनात्' का ही कालांतर में सनमन्धन नाम प्रचलित हुआ हो। 'महाभारत' में इनकी सकया सात हो गई है। 'सांति पर्व' में सन्, सनात्कुमार, सनमन्ध, सनमन्धन, कपिल, सनातन आदि ब्रह्म के सप्त मातृस पुत्र कहे गये हैं। वे स्वीक वहाँ स्वयं उद्भूत ज्ञान के प्रतिपादक, विद्वत्-धर्म पालन करने वाले, योग साधन धर्म के आचार्य मौन मार्ग की प्रवृत्ति वाले तथा पशु में पशुहिंसा का विरोध करने वाले बतलाये गये हैं।^६ कपिल के अतिरिक्त इसमें सन और सनात्कुमार नाम भी संभवतः इसी श्रेणी के साधकों के लिये जाये हैं। किन्तु बाद में चककर सनक, सनमन्धन सनातन और सनत्कुमार इन चार कुमारों की परम्परा पुराणों में कल्पि ली हो जाती है। वि० पु० १ १, २५ में कल्पित सारों में एक 'कौमार सर्ग' भी माना गया है। 'भागवत पुराण' १ ३ ९ के अनुसार भगवान् के उक्त चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण कर अत्यन्त कठिन ब्रह्मरूप का पावन किया था। पुनः भा० २ ७, ५ में कहा गया है कि भगवान् ने तप का पर्याय सब नामक सत्त्व से प्रारम्भ

१ ऋ० ५, २।

२ ऋ० ७, १०१।

३ ऋ० १, २१५।

४ बृ० उ० २ १ १।

५ ब्रा० ७, १ १।

६ महा० ११ ३४० ७२ ८२।

होने वाला चतुः कुमारों का रूप धारण कर श्रष्टियों को आत्मज्ञान का उपदेश किया था। 'भागवत' के तीसरे विध्वंस में भी अम्ब आत्मज्ञानियों के साथ 'कुमार' का उल्लेख हुआ है।^१ वहाँ वे भगवान् के कष्टवतारों में गृहीत हुए हैं। इस प्रकार 'भागवत' से इनका अवतारवादी संबंध होने के कारण इनका अवतारीकरण परवर्ती प्रतीत होता है।

सूरदास ने 'भागवत' की ही परम्परा में इन्हें विष्णु के चौबीस अवतारों में माना है। इनके पदों के अनुसार महा ने महा का रूप रूप में धारण कर मन से उक्त चतुः कुमारों को प्रकट किया।^२ इन्होंने सृष्टि कार्य से विरक्त होकर हरिक चर्यों में शिष्ट लगाया।^३ 'सूरसारावली' और 'अवतारलीला' में इनके उक्त कविगत रूपों का वर्णन हुआ है। इन्होंने सनकादि आत्मज्ञानियों की अपेक्षा विष्णु के भक्त अवतार विहित होते हैं। परन्तु उक्त विवेचन से इतना स्पष्ट है कि चतुः कुमार नाम के श्रष्टि एक साथ और सम्भवतः एक काक में अस्तित्व न रखते हुए भी भारतीय परम्परा में आत्मज्ञानियों के रूप में प्रसिद्ध थे। 'बृहदारण्यकापनिषद्' की परम्परा को देखते हुए इनका किसी परम्परा वित्थ से सम्बन्ध होने का भी निश्चय हो जाता है। अतएव सम्भव है कि एक ही प्राचीन परम्परा से आबद्ध होये के फलस्वरूप वे अपने परवर्ती पौराणिक रूप में एक साथ रहने वाले प्रचलित किये गये हों। क्योंकि महा० ११।३४०, ३१-८९ में अहाँ इनकी संख्या कविक को लेकर सप्त हो जाती है। वहाँ स्पष्ट ही काष्ठ और परम्परा के अन्तर की उपेक्षा की गई है। पुराणों में सामान्य रूप से इतने वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी कोई आश्चर्यकता नहीं समझी गई है। अतः विभिन्न कालों में होते हुए भी उनको एक ही सूत्र में बद्ध करना पुराणों के किन्हीं विशेष अर्थमाध्य नहीं जान सकता।

१ मा २२ × १०।

२ महा महा कम कर चारि, मनसी जगद किन् हुन चारि।

सबक, सनन्दन सनतकुमार, बहुरि सनातन नाम वे चारि।

सूरसागर पृ १२९ पद ३८०।

३ महा कबो सृष्टि कितारो, बन वह बचन इरव नहिं चारो।

कबो बहै हम तुमसी श्री पाँच बरष के नित हो रही।

महा सौ तिन वह बर चारि हरि चरननि निन राख्यो काठ। सूरसागर पृ १२

४ वह सृष्टि कर किरवा कौन्ही ज्ञान कका पितार।

सबक, सनन्दन और ममापन चारो सनतकुमार। सूरसागरकी पृ० १।

५ सबक सनन्दन है मय, तीसरे सनतकुमार।

बीने मय सनातना चारि पुरन अवतार। अवतारलीला (३ कि) पृ ७।

पर चौबीस अवतारों की कोटि में आत्मज्ञानियों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखने के कारण ही ये गृहीत हुए हैं।

उक्त चौबीस अवतारों के अतिरिक्त कहीं-कहीं विष्णु के अवतारों में मारु और मोहिनी का भी वर्णन मिलता है।

नारद

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में नारद का अस्तित्व इस प्रकार बिजरा हुआ है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि किस नारद को विष्णु के अवतारों में ग्रहण किया गया है। वैदिक साहित्य में 'नारद पर्वत' और 'नारद कण्व नाम के ऋषियों का कुङ्कु सुक्तों के निर्माताओं के रूप में उल्लेख हुआ है।^१ 'सामवेदान्त ब्राह्मण' ३, ९ ३ की एक सामवेदीय परम्परा में नारद का नाम बताया जाता है।^२ सामवेद ० १ १ में अनेक विद्याओं के ज्ञाता नारद का नाम आया है। इसके अतिरिक्त महा० १९ २८ में नारद को पर्वत ऋषि का मामा कहा गया है। यहाँ भी नारद का 'सामवेद' से संबंध उल्लिखित होता है। यहाँ तक वैष्णव भक्त या अवतार नारद की अपेक्षा उनका वैदिक रूप ही अधिक स्पष्ट है। किन्तु महा० १९, १९० में तपस्या के फलस्वरूप नारद को सावित्री के पद्माद् विष्णु का वर्णन होता है। साथ ही 'नारायणीयोपाख्यान' में नारायण ऋषि सर्वप्रथम नारद को 'पेकाग्निक मत का परिचय देते हैं।^३ वे इनसे खेतवृत्ति में विश्वास करने वाले पेकाग्निक उपासकों की भी चर्चा करते हैं।^४ अतः 'महामारत के उक्त आख्यानों में विष्णु और नारायण भक्त तथा पाँचरात्रों के ज्ञाता नारद का एक रूप उल्लिखित होता है। संभवता इसी के फलस्वरूप 'गीता' १०, २६ की विषय विमूर्तियों में वैशर्षि नारद को भी स्थान मिला है। बाद में वैष्णव या अन्य कतिपय धर्मों के प्रवर्तकों और उपासकों के अवतारीकरण के साथ 'भागवत १, ३ ८ में वैशर्षि नारद को भी ऋषियों की सृष्टि में तीसरा अवतार माना गया। इस अवतार में उन्होंने 'सातकन तंत्र या सप्तमत्तः 'नारद पाँचरात्र का उपदेश किया था। भा० ६ ७ के चौबीस अध्यायों के विवरण में इनका नाम नहीं है। भा० १ ५ में वे दासी पुत्र बतकाय गये हैं साथ ही इसी अध्याय १, ५, ३८-३९ में इनका संबंध प्रेमामक्ति से भी उल्लिखित होता है। निष्कर्षतः भक्तों और

१ ऋ ८ १३; ऋ ९, १ ४ १ ५; अथर्व ५, १९ २ और १२ ४ १६ में नारद का उल्लेख हुआ है।

२ वैदिक साहित्य का इतिहास पृ २८।

३ महा १९ ३३४ ४-३३। ४ महा १९ ३३६ २७-२८।

प्रवर्तकों की परम्परा में ही नारद को भी विष्णु का अवतार माना गया। किन्तु अन्य अवतारों के सट्टा इनका यह ऋम अधिक प्रचलित नहीं प्रतीत होता।

आलोचकाक क कवियों में सूरदास ने इनका चौबीस अवतारों में तो उल्लेख किया है।^१ परन्तु स्वतंत्र रूप से इनके अवतारत्व का वर्णन 'सूरसागर' में नहीं हुआ है। फिर भी 'सूरसारावली' में कहा गया है कि हरि ने नारद-रूप में सर्वत्र बूम-बूम कर उल्लेख किया और भक्तों में ज्ञान भीर वैराग्य की भावना दृढ़ की।^२

उपरोक्त तर्कों के प्रामाण्य अनुशीलन से यह विदित होता है कि किस प्रकार अन्य कवियों और तपस्वियों को अपने वृत्तिगत वैशिष्ट्य और भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण कार्यों में योगदान देने के नाते उन्हें चौबीस अवतारों की कोटि में परिगणित किया गया था, उसी प्रकार नारद भी पाँचरात्र साहित्य के विशिष्ट उपदेशक तथा विष्णु क अवन्त्य भक्तों की कोटि में प्रचलित होने के कारण ही चौबीस अवतारों की परम्परा में गृहीत हुए।

मोहिनी

पुराणों में प्रचलित विष्णु के अवतारों में मोहिनी अवतार का भी उल्लेख हुआ है। जो तो विष्णु के पद, पत्नी ममुष्य आदि विभिन्न पौराणिक (मीथिक) अवतारों का वर्णन हुआ है किन्तु किंग की दृष्टि से वे सभी प्रायः पुरुष वा पुंलिंग हैं। अतएव मोहिनी का अवतार-वर्ग में विशिष्ट स्थान है। पुराणों में विष्णु और कश्मी के पुण्ड्र रूप का प्रचार होने के कारण प्रामाण्य विष्णु को श्री के रूप में अवतरित होने की आवश्यकता नहीं हुई थी। पर पुराणों के आधार पर मोहिनी का आधिर्भाव उस अवस्था में कल्पित होता है जबकि विष्णु-कश्मी का पुण्ड्र रूप प्रचलित नहीं था। मोहिनी का विकास समुद्र-मंथन की कथा से सम्बन्ध होने के कारण पूर्णता प्रतीकात्मक विदित होता है। जो तो समुद्र-मंथन और उससे प्रकट हुये चौदह रत्नों की सम्पूर्ण कथा प्रतीकात्मक तर्कों से संबन्धित एवं विद्यमिती हुई है।^३ समग्र है मोहिनी भी मोहिनी-भावा का रूपान्तरित रूप हो। क्योंकि महा० १, १८, ४५ में कहा

१ 'पुनि मारावप्य ऋवमईन नारद वचनंभरि'। सूरसागर पृ १२६।

२. नारद रूप अवत वचनरत विचरत लोकत मावा करि उपदेश।

याव हरि मकहि नक वैराग्य हुदाव। सूरसारवली पृ ५ वर १३६।

३ भारतीय विद्यामन्त्र संस्कृत अर्थक, सितम्बर १ १५, १९५५ भाग ९, संख्या ४ पृ ३७।

गया है कि लक्ष्मी और अमृत के लिए देव-दानों में सवर्ष होम पर नारायण ने मोहिनी-माया का आश्रय ले ममोहारिणी स्त्री का अज्ञेय रूप बनाकर दानों के पास पक्षार्पण किया।^१ 'विष्णु' या 'भागवत पुराण' में भी मोहिनी का यही रूप प्रचलित हुआ है।^२ 'भागवत' १. ३. १० में धन्वन्तरि के साम मोहिनी का तेरहवें अवतार-रूप में उल्लेख हुआ है। इसके प्रयोग के प्रति कहा गया है कि भगवान न तेरहवीं बार मोहिनी रूप धारण कर देवों को मोहित करते हुए देवताओं को अमृत पिछाया। अतएव मोहिनी के साथ माया के संयोग से यह अनुमान किया जा सकता है कि मोहिनी माया का ही एक विकसित या पुराणीकृत साकार रूप है। इसका उल्लेख तो हुआ समुद्र-मंथन के प्रतीकों में परन्तु अन्त में समूची कथा के साथ-साथ इसको भी कथारमक स्वरूप प्रदान किया गया।

संक्षेप में समुद्र-मंथन की कथा का तात्पर्य इस प्रकार हो सकता है कि साधना के प्रतिदान स्वरूप साधकों को जगिक आत्मव्युत्थायिनी माया अपने मोहिनी रूप में आकर्षित करती है जिसके विग्रह में पड़ने पर साधक अमृततण्ड से हाथ धोना पड़ता है।

सूरदास ने श्रीबीस अवतारों में मोहिनी का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु 'सूरसागर' में कूर्मावतार के विस्तृत प्रसंग में मोहिनी अवतार एवं मोहिनी रूप दोनों का विस्तृत वर्णन किया है। इनके कथानुसार जिस समय देवता और असुर अमृत के छिये परस्पर युद्ध कर रहे थे मोहिनी-रूप धारण कर स्वाम नहीं उपस्थित हो गये। देवता और असुर दोनों उनका रूप देख कर मुग्ध हो गये।^३ इन्होंने एक ओर तो असुरों को मुरझा कर देखा दूसरी ओर देवताओं को सारा अमृत पिका दिया।^४ सूर्य और चन्द्र के संकेत करने पर कृष्ण ने चक्र से राहु का सिर काट दिया।^५ इस प्रकार मोहिनी रूप में

१. लक्ष्मी धारणी मार्ग मोहिनी समुपाकृत।

श्रीरूपमन्वन्तुं कुरवादात्मवानमिर्लभित ॥ महा० १. १८. ४५।

२. वि. पु. १. १००-१०१।

३. मोहिनी रूप धरि स्वाम आरु तदां दैति सुत अमृत सव रहे सुमार्ग।

मार्ग अमृतनि कछी वैनु वह अमृत सुम सवमि को बादि मैरी कर्तार ॥

सूरसागर ४. १०१ पद ४१५।

४. अमृत दिशि पिबे सुतक्यार मोहे सकळ सुतनि की अचल शीन्धी विपार।

सूरसागर ४. १०४ पद ४१५।

५. सूर सति कछी वह असुर, ठव कृष्णभूते सुतरसन रे दूक शीन्धी।

सूरसागर ४. १०४ पद ४१५।

भयबाह की कृपा के कठस्वरूप देवता विजयी हुए और असुर हार गए।^१

सूरदास ने दूसरे पक्ष में मोहिनी पर उमा-सिख के विमाहित होम का भी वर्णन किया है।^२ परन्तु भयतारवादी परम्परा में मोहिनी के असुर-राज द्वारा देवों की विजय ही इस अवतार का प्रमुख प्रयोजन प्रतीत होता है। इसमें सूरदास ने विष्णु का चारावन क रचाव में मोहिनी भयतार का रूप अपने उपास्य रचाम द्वारा गृहीत माना है।

इस प्रकार सम्प्रकाशीन श्रुत साहित्य में विष्णु क त्रिष श्रीबीस या अन्य अवतारों का वर्णन हुआ है जिनमें गृहीत रूपों का मुख्य आधार तत्कालीन कृष्ण-भक्ति या अन्य सम्प्रदायों में सर्वाधिक प्रचलित और प्रचलित श्रीमद्भागवत रहे हैं।

इन अवतारों के विकास एवं मध्यकालीन रूपों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि विष्णु के कुछ अवतार सामान्यतः मात्स्य, वराह, कूर्म, वामन, हनुमत् प्रभृति का विकास पौराणिक तथ्यों (मिथिक क्लिमेंट्स) के आधार पर हुआ। वैदिक संहिताओं और शास्त्रों में उपलब्ध इनके पौराणिक आख्यानों का ही निरन्तर विकसित रूप मध्यकालीन साहित्य में गृहीत हुआ है। परन्तु परशुराम राम कृष्ण, कर्क, कुछ प्रभृति अवतारों का विकास ऐतिहासिक रूपों के पुराणीकरण होने के कठस्वरूप विहित होता है। क्योंकि वेता, प्रवर्तक सम्बन्ध, उपदेशक भनी क महापुरुषों का इस कोटि क अवतारों में समाविष्ट करने की प्रवृत्ति का वृत्तावतार एवं श्रीबीस अवतार की सूची से भ्रम होता है। इनमें इंस और मोहिनी का प्रतीकात्मक विकास ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

किन्तु इनका सम्प्रकाशीन रूप केवल पौराणिक प्रतीकात्मक या ऐतिहासिक उपादानों से निर्मित नहीं है, अपितु तत्कालीन भक्ति का पर्याप्त रंग इन पर चढ़ चुका था। इस युग में विष्णु के साथ-साथ उक्त अवतार भी केवल अवतार ही नहीं बल्कि उपास्य रूप में अधिक प्रचलित हुए। अतः श्रीबीस अवतारों के उद्भव विकास और मध्यकालीन रूप का अध्ययन, विरलेपण और अनुशीलन करने के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :—

प्रथम यह कि श्रीबीस अवतारों का सिद्धान्तगत भयतारवादी रूप उस

१. श्रुति की नीति मरु असुर मारे बहुत कहा एवं पर लखी वरार्थ।

सूरदासर ५ २७४ पर ४२५।

२. भागवत ५० १७५ ५६ ४३७।

आद्यावाद का परिचायक है जो जनकस्याण की भावना को अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों काकों में सुरक्षित करने का प्रयास करता है ।

दूसरा यह कि इनका रूप क्रमशः बिकासोन्मुख और परिवर्तनशील है । क्योंकि सात से दस और दस से चौबीस की सख्या तक परिवर्धित होने में इसके बिकासोन्मुख स्वरूप का परिचय मिलता है । अवतारवाद क हेतु या प्रयोजन की दृष्टि से भी इसमें प्रायः बिकास और परिवर्तन होते रहे हैं । हमसे अवतारवाद रुढ़िबद्धता का व्यतिक्रमण कर समुचित मात्रा में अपने को युग स्थापक भी सिद्ध करता रहा है । अवतारवाद क प्रारम्भिक हेतु में यहाँ कवच देवासुर संग्राम क निमित्त अवतार का एकमात्र रूप कवच देवों या देवी सगुण की विजय में निहित रहा है उसका दृष्टिकोण उत्तरोत्तर बढ़ते बढ़ते, धर्मोत्थान समग्रताम प्रवर्धन समाज और साति-रक्षा आदर्श-प्राप्तन और युग-युग में नूतन सिद्धान्तों क प्रतिपादन तक हो जाता है ।

तीसरा यह कि चेत की दृष्टि से इसका चरित्र व्यापक और मूलतः सम स्वयम्भारी प्रतीत होता है । चौबीस अवतारों की कोटि में परस्पर विपक्ष व्यक्तियों को ही नहीं आत्मसात् किया गया है अपितु सिद्धान्त की दृष्टि से भी अवतारवाद यहाँ एक ओर इक्ष्वाकु प्रयाग मरिचि तरणों का स्रकर चलता है यहाँ वह अन्वयण ज्ञान और विज्ञानमूलक अस्तित्व प्रदान तरणों की भी मान्यता ही नहीं देता अपितु उनका समाहार कर खेने का पत्र करता है । फिर भी इसका मूल रूप सिद्धान्तमूलक या विरल्लेपाणत्मक होने की अपेक्षा व्यावहारिक वा प्रयामिमूल अधिक रहता है । हमी म अवतारों क चयन या अवतारवाद के सिद्धान्तगत विबचन-क्रम में ऐतिहासिक वा वैज्ञानिक दृष्टिकोण क स्थान में लोकमिब पौराणिक तरणों क चयन की ओर अधिक प्रवृत्ति रहती है ।

चौथा यह कि चौबीस अवतारों का वर्गीकरण विभिन्न विचार धाराओं की दृष्टि से विविध रूपों में टिका जा सकता है । उनक अवस्थागत अस्तित्व क अनुसार पौराणिक ऐतिहासिक और प्रतीकात्मक तीन वर्ग हा सकते हैं । जिनमें मरुस कूर्म, बराह इत्यादि पौराणिक, राम कृष्ण बुद्ध इत्यादि ऐतिहासिक तथा हयग्रीव, हम माहिषी इत्यादि प्रतीकात्मक मान जा सकते हैं । हमके अतिरिक्त उनक उत्पन्न होने की प्रजाती का विचार करत हुए उत्पन्न और प्रकट हो भइ मुख्य रूप में क्रिय जा सकते हैं । इनमें राम-कृष्ण भादि उत्पन्न तथा गणेशहरि, भुव मिय प्रभृति अवतार प्रकट रूप हैं ।

पाँचवाँ यह कि प्रकृतित रूप में चौबीस अवतार विद्युत् अवतारवादी

नहीं रहे हैं। इन पर इन्होंने प्रभाव उपास्यवाद का गिरान्तर प्रभाव पड़ता रहा है; जिसके फलस्वरूप उपास्यवाद की मूल प्रवृत्ति सर्वोत्कृष्टवाद (हीनोपिथ) से अपनाने इष्टव्यक्तिक या विग्रहप्रधान रूप से सभी अवतार मान्य हैं। इसी-से सभी अवतार प्रायः सभी अवतारों का रूप धारण कर सकते हैं। उपास्यवाद के प्रभाव से भाष्यग्रह रद्दग के कारण ही अनेक ईश्वर विरोधी तत्त्व भी अवतारवाद में सुलभ-मिथ कर ईश्वर-समर्पक हो जाते हैं। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि अवतारवाद अपने आंतरिक रूप में ईश्वरवादका समर्पक ही नहीं अभिमान्य अंग रहा है।



दसवाँ अध्याय

श्री राम

रामायण

ऐतिहासिक विकास

जिस प्रकार बामुदेव कृष्ण का उल्लेख १०० ई० पू० के माने गये 'बामुदेव' में मिलता है और उनके साम्प्रदायिक विकास का पता भी पाणिनि और कविपय सिलालेखों के आधार पर चलता है, जैसे ही राम के ऐतिहासिक विकास के परिचायक प्रामाणिक सूत्रों का अभाव हीन पड़ता है। वैदिक साहित्य में जिस रामों के उल्लेख हुए हैं,^१ उनमें से किसी से बामुदेव राम का कोई संबंध नहीं मंतीत होता। श्री वैदिकी आदि विद्वानों ने 'बाहमीकिरामायण' की समीक्षा करते समय राम का संबंध इन्द्र से स्थापित किया है।^२ इससे राम का रूप ऐतिहासिक न होकर पौराणिक (मिथिक) हो गया है। फिर भी राम की ऐतिहासिकता के घातक 'बाहमीकिरामायण' और 'महामारत' मात्र रह जाते हैं। उनका बामुदिक रूप परवर्ती रूप उप-वेसात्मक (हाइब्रिडिक) होने के कारण, उनका आधार पर किये गये विश्वजन को प्रामाणिक होने की अपेक्षा अनुमानित अधिक कहा जा सकता है, क्योंकि 'बाहमीकिरामायण' और 'महामारत' में आये हुए 'रामोपाख्यान' भी जनश्रुति-परक कहे गये हैं।^३ इसका अतिरिक्त दोनों उपाख्यानो में बीच प्राचीनतम है इस पर भी विद्वानों में मतभेद है।^४

१ गम-रुपा के अन्वेषकों ने वैदिक साहित्य में का० २० २१ २४ के किसी ब्रह्ममाम राम का, पा० मा० ७, १७ २४ भाग्यदेव राम का मा० ५, ६, २ ७ में औप-स्विति राम और वे का० मा० १७, २२ ४ ५, २ १ में अनुजादेव राम का बल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त अथर्व सं० १, २६, २ और ती० मा० २, ४ ५, २ में राम-कृष्ण का एक साथ भी बल्लेख हुआ है।

२ हिन्दी भाषा काठिण्ड संस्कृत किट्टेचर पृ० २६ में वैदिकी और भार० सी दण का मत बख्श। कृष्णमाधारी।

३ ए हिन्दी भाषा दण्डिवन किट्टेचर, विंटरमिस्त जी० १ पृ० ५०८-५ ९ जी० १, ५ ५ ६।

४ वही जी० १ पृ० ५ ६।

'वाल्मीकि रामायण' के प्रथम भीर अंश में राम के अवतारत्व का अधिक उल्लेख देकर भी बिंदरमित्त ने यह दोनों अंशों को परस्पर माना है।^१ अबिकीश इतिहासकारों की भी प्रायः वही धारणा रही है। अतएव यहाँ तक 'महाभारत' और 'रामायण' के वैष्णवीकरण का प्रश्न है अनेक मतों की समीक्षा के पश्चात् वैष्णवीकृत महाकाव्यों का काल फर्गुहर ने २०० ई० माना है।^२ 'महाभारत' के प्राचीन अंश 'बाराहजीबोपाकवाम' में अवतारों की वृत्ति और उस दोनों सूचियों में राम का नाम आया है।^३ फर्गुहर के अनुसार राम और कृष्ण महाकाव्यों के द्वितीय संस्करण के काल तक विष्णु के अवतार माने जा चुके थे।^४ 'वाल्मीकि रामायण' की आदि राम कथा में राम को विष्णु के समान बीर्बाम कहा गया है।^५ पुनः प्रथम कांड में वे विष्णु के अवतार हैं।^६ अतएव प्रथम कांड में उनके पूर्णवितार होने का भाव होता है।^७ फिर भी 'विष्णुपुराण' में वे अवतार हैं।^८ श्री भंडारकर रामायण की प्राचीनता म्यगते हुए भी 'रघुवच' के 'दसवें सर्ग' में वर्णित श्रीरामाजी विष्णु के अवतार राम को अधिक प्रामाणिक मानते हैं।^९ क्योंकि महाकाव्यों और पुराणों की तुलना में 'रघुवच' के प्रसिद्ध होने की आसंका नहीं है। फिर भी वीर्य पाठि साहित्य में कुछ को रामायण पृथ बोधिसय के रूप में तथा जैनों में राम के आठवें ब्रह्मदेव के रूप में^{१०} माने जाते हुए देकर ईसा के पूर्व राम के अवतार रूप में विख्यात होने का अनुमान किया जा सकता है।

सांप्रदायिक राम

मध्यकाल में रामभक्ति, कृष्णभक्ति बाला से कम व्यापक नहीं है, परन्तु कृष्ण-भक्ति लाला के अतिसे प्राचीन विद्वत् या प्रभाव मिळते हैं, रामभक्ति के उल्लेख अतसे नहीं मिलते। बाण्डर भंडारकर ने राम और सीता की मूर्ति संबंधी पृथ बटना के आधार पर राम-पूजा का काल स्थापित करने की प्रतीति माना

१. प. विष्णु कांड इतिहास बिंदरमित्त जी० १ पृ० ४९९।

२. फर्गुहर ६० १५। ३. महा० १९ ६६५, ७७-९० और १९ ६६५, ८ ६-१०४

४. फर्गुहर ६० ८३-८४। ५. वा. रा. १, १, २८ 'विष्णुना सहस्रोदीर्घे'।

६. वा० रा० १, ३५ ६२। ७. वा० रा० १, २९।

८. वि० पु० ४, ४, ९७

^९ 'एतदादि अवतारमन्त्रनामी अवतारवित्तर्धमात्मधि रामसम्पन्न बरतप्रभुत्वं स्तेन अनुर्षी पुत्रनाशतीव'।

१०. श्री. व० जी० ४ पृ० ३५।

१०. रामकथा सुक्ते ६० १४६।

है।' पौ सामूहिक अवतारों के रूप में मंदिरों में अल्प मूर्तियों के साथ राम की मूर्तियाँ भी रखी जाती थीं।'

परन्तु राम-मूर्ति की पूजा के रूप में इनके क्रमानुसार सर्वप्रथम रामानुज ने ही आरम्भ की थी। रामानुज ने 'परमेश्वर संहिता' के अनुसार श्रीराम की विविध रूपों की एक एक अविविहित पुस्तक को विस्तृत किया था और पूजा के लिये उसे राम की की एक मूर्ति तथा लज्जाने के लिये इमुमान जी की एक मुहर प्रदान की थी।'

उस पुस्तक की सहायता के लिए तीन या चार बैरागी भी एक एक वे विषयों से एक वैष्णव संप्रदायों में प्रसिद्ध सम्प्रदाय भक्ति (संभवता जट कोपाचार) भी थे।' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामानुज के काक में राम की विविध रूपों का आरम्भ ही हुआ था।

किन्तु अमर्षाशिरस' उपनिषदों में गृहीत 'राम पूर्व' और 'उपर तापनीय उपनिषदों' की दृष्टि से विचार करने पर राम-भक्ति का काक पूर्ववर्ती माना जा सकता है। फर्गुडर ने शेडर के मतों का लक्षण कर 'तापनीय उपनिषदों' के आधार पर रामानुज सम्प्रदाय का अस्तित्व और पूर्ववर्ती होने का अनुमान किया है।' यदि फर्गुडर का अनुमान ठीक माना जाय तो उस काक में राम की अनेक प्रकार की मूर्तियों के निर्माण का भी अनुमान किया जा सकता है। क्योंकि 'राम पूर्व' तापनीय उपनिषदों में राम के अनेक और मन्त्रों के साथ साथ उनके विभिन्न प्रकार के क्रमशः हो, चार, छह, आठ, दस, बारह, सोलह और अठारह नाम वाले स्वरूपों का भी उल्लेख हुआ है।'

इसके अतिरिक्त हीसरी कठी के माने जाने वाले पाठककार मास के पाठकों में राम और सीता के एक अवतार ही नहीं हैं।' अर्थात् उनमें भक्तिपरक

१ पृ. १५६ पृ. १०२।

२ पृ. १५६ पृ. १०५।

३ पृ. १५६ पृ. १०२-१०३।

४ पृ. १५६ पृ. १०३।

५ फर्गुडर पृ. १८५-१९० पृ. ११०-११५। उन्होंने तापनीय उपनिषदों का काक ५५० पं० से ९०० पं० के अन्त में माना है।

६ वैष्णव उपनिषद में संश्लेषित पृ. १-७ रामपूर्व तापनीय ४० प्रथम उपनिषद ८-१० उपनिषदों के अन्त में।

द्वितीय उपनिषदों के अन्त में।

अष्टादश उपनिषदों के अन्त में।

उत्तराष्ट्र उपनिषदों के अन्त में।

७ प्रथम उपनिषद, सीता का अवतार उपनिषद पृ. १०२ पृ. १०३।

अथ राम की सीता के अन्त में।

उत्तराष्ट्र उपनिषदों के अन्त में।

सत्य भी बर्के जा सकते हैं। उनके 'प्रतिमा' नाटक में राम लक्ष्मण, सीता क्रमशः सत्य, वीर और भक्ति के साक्षात् स्वरूप कहे गये हैं।^१ आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने भी गुप्त काल में राम-पूजा का अस्तित्व माना है। उनके मतानुसार अंग्रगुप्त की पुत्री राम की उपासिका थी और साथ ही चौथी शती के ब्राह्मिहिर की रचना में इक्ष्वाकुवंशी राम की मूर्ति के निर्माण का नियम बतलाया गया है।

इसमें संदेह नहीं कि वैष्णव धर्म का जितना उत्थान गुप्तकाल में हुआ उतना कदाचित् अन्य कालों में नहीं हो सका। अतः सम्भव है रामभक्ति का जन्म भी गुप्त काल में हो गया हो।

इसके फलस्वरूप राम के सामग्रहायिक रूपों का विकास भी गुप्तकाल से ही माना जा सकता है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राम के जिस सामग्रहायिक रूप की प्रतिष्ठा हुई है वह चौदहवीं शती के प्रवर्तक रामानन्द की देन है। रामानन्द के द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों में 'अष्टात्म रामायण' मुख्य माना जाता है।

मध्यकालीन संग्रहाय में राम

लक्ष्मणीय साहित्य में राम का रामभक्ति शाखा से सम्बन्ध रहा है। राम साहित्य के महान् कवि गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व वा समकालीन राम के निर्गुण रूप से सम्बद्ध साहित्य संत संग्रहायों में मिलता है। रामानन्द के कबीर आदि को बारह सिप्य कहे गये हैं, उनमें कबीर आदि सन्त मत के प्रवर्तक अवतारवाद पूर्व सगुणोपासना के विरोधी थे।

अतएव इस काल में रामभक्ति का प्रारम्भ इस धारा के प्रवर्तक अवन्तानन्द की परम्परा में आने वाले चौदहदास और उनके शिष्य हारकादास से माना जाता है।^२ किन्तु अवतारवादी राम-साहित्य की परम्परा गोस्वामी तुलसीदास से प्रारम्भ होती है।

श्रीकृष्ण के सहस्र गोस्वामी जी के काल तक राम के अवतार-रूप के साथ-साथ उनका उपासक-रूप भी प्रबल मात्रा में प्रचलित था। श्रीकृष्ण-चरित और श्रीकृष्ण-कीला के सहस्र रामायणों की परम्परा को लेकर श्री तुलसीदास ने राम-चरित और रामजीका की परम्परा को आगे बढ़ाया।

१. दी आसिकल एव० पृ० ४१६-४१७।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास १००५ वि० पृ० १२१।

श्रीकृष्ण-साहित्य के पीछे आचार्यों की एक प्रबल परम्परा थी जिसके चकते कतिपय सगमदाओं में श्रीकृष्ण के नामा रूपों का विकास हुआ ।

किन्तु रामभक्ति में आचार्यों की अपेक्षा केवल रामायणों की परम्परा थी, जिसका वाक्मीकि से लेकर तुलसीदास तक विकास होता आया था । इसमें मध्ययुग के पूर्ववर्तीकाल में किये गये 'अध्यात्म' वा 'आत्मन्दरामायण' में भी एक विशिष्ट प्रकार के राम का सगमदायिक रूप मिलता है । 'अध्यात्म रामायण' और 'आत्मन्दरामायण' दोनों में एक ओर तो राम का अवतार-रूप उद्घोषित होता है और दूसरी ओर उपास्य-रूप भी मिलता है । अवतार के रूप में राम विष्णु के अवतार हैं और उपास्य-रूप में वे अवतारी या भक्त हैं । अतएव गौरीसामी तुलसीदास ने भी एक ओर तो राम के अवतार-चरित का प्रतिपादन किया और दूसरी ओर उक्त मन्त्रालय को स्थापित किया ।

राम-अवतार

रामायण के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राम आदि से अन्त तक सबोदायात्मक राजाराम हैं । ब्रह्म के छोटा पुत्रपौत्रम कृष्ण के समान इनके अवतारत्व में कोई देवी धीखा नहीं मानी जाती । संभवता इसीसे गौरीसामी तुलसीदास ने इनकी गणना का रामचरित के नाम से अतिरिक्त किया है ।

अवतार-हेतु

वहाँ राम केवल अवतार हैं, वहाँ वाक्मीकि से लेकर मध्यकालीन कवियों तक इनके अवतार का मुख्य हेतु 'मू-भार-हरण' है । परन्तु 'वाक्मीकि रामायण' में वैदिक विष्णु का एक प्रबल शक्ति है । इसलिये वहाँ देव-राज्यों का बर्ण मुख्य प्रबल विहित होता है ।^१ मू-भार-हरण के साथ ही 'अध्यात्म रामायण' में भी देवराज्य का 'नाश प्रबल हेतु है ।^२ किन्तु गौरीसामी तुलसीदास तक पुराणों में भी अनेक हेतु और विहित बर्ण मिले थे । इन्होंने अपने अवतारवाद में सबका एकत्रीकरण कर दिया है । वे कहते हैं : भगवान् मनुष्य जन, भगवत् मूमि-मूमुर सुरमि सुर हम पर कृपा करने के किये अवतार

१ ऐहि भवसर यकके मदि मारा । हरि रत्नरंज कोन्द अवनाग ॥ रा० मा ६० १

२ वधान देव राज्यों मूनो कोके मय कुक । एवमुक्तस्तु देवेजो विष्णुविदस पुंगव ॥
वा रा १ २५ २६ ।

३ मासुपैम इतिस्वरु मया कल्याण कविना ।

अवसरं मासुपै मूर्त्ता अहि देव विपुंगमी ॥ ज० रा० १ २, २४ ।

चारण करते हैं।^१ फिर भी तुलसीदास में विष्णु के 'सुर-हित-वर-तनु धारी'^२ की अवहेलना नहीं की गई है।

अथतारवाद से उसका समन्वय और सामञ्जस्य

गोस्वामी जी का अथतारवाद पूरे उसक प्रयोजन दोनों अपनी स्वामाधिक परम्परा के अनुसार समन्वयवाद के ही एक रूप माने जा सकते हैं। क्योंकि इन्होंने अपने उपास्य प्रसन्न राम में अथतार प्रवृत्त करने वाले विष्णु, श्रीरक्षापी, विष्णु ब्रह्म और पांचरात्र पर विभिन्न रूप का समाहार किया है। फलतः 'सुरहित नर-तनु-धारी' और 'श्री-वति-अमुरारी' विष्णु राम के एक अगमात्र रह गये हैं या उन्हीं में समाहित हो गये हैं।

विष्णु के अवतारी रूप से राम का उतना ही सम्बन्ध विहित होता है, जहाँ वे वैदिक कार्यों के किये आबिभूत होते हैं। वैदिक कार्यों से तात्पर्य यहाँ मू-मार हरण वादका से रावण तक देवराज्य अमुरों का संहार देव, ब्राह्मण और गी रक्षा से है। इन अवतारी कार्यों का प्राचीनतम रूप वैदिक प्रतीत होता है।

किन्तु 'रामचरित मानस' में जिस श्रीरक्षापी के अवतरित होने की घोषणा होती है, वे 'बाह्यमीक रामायण' के विष्णु कदापि नहीं हैं^३; अपितु परवर्ती पुराणों के श्रीरक्षापी विष्णु या नारायण हैं।^४ गोस्वामी जी ने श्रीरक्षिणु-बासी विष्णु को भी रामायण में ही समाहित किया है, क्योंकि नारद के साय ब्रह्म श्रीरक्षापी विष्णु का अवतार होता है^५ तथा 'नामा चरित' के किये कल्प-कल्प में वे जन्तीर्ण होत हैं।^६ इस प्रकार विष्णु के साय ही पौराणिक कथावतार का समावेश किया गया है। पौराणिक भगवाद् के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने उपनिषदों (संभवतः वाकर) द्वारा प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म

१ तु० प्र० पं० २ वृ० १५ वा० ११३।

मगध, मूमि मूत्रर हरमि सरहित कामि कृपाण।

करण चरित वरि मनुज तनु सुगत मिददि ब्रह्मण ०

२ रा० मा० ५० ३१।

३ वा० रा० १, २५, २६ में देवों और ब्रह्म के परामर्श-स्नान में विष्णु स्वयं जाते हैं यथास्मिन्नन्तरे विष्णुरूपावतो यथाहृतिः।

ब्रह्मचर्य मरुपाणि पीतवासा अगस्त्यनि ०

४ रा० मा० 'पुर वैकुण्ठ जान कह्यो १। योह कह पयतिनि वस प्रमु सोर ॥'

अ रा० २ १ ७ में श्रीरक्षापी विष्णु निवेदित हैं।

५. रा० मा० बाह्यकाण्ड में नारद प्रसंग।

६ रा० मा० ५ ७४।

का भी अवतार माना है^१, जो अगुन, अरुण अरुण भीर अत्र होते हुए भी भक्त के प्रेमवश सगुण रूप धारण करता है।^२ यह निर्गुण अष्ट उपासक उपासक राम है जो निर्गुण और बिना नाम और रूप का होकर भी भक्त के लिये अनेक प्रकार का चरित्र करता है।^३ इन्होंने उस अष्ट का मायावादी सार्धस्य प्रस्तुत करते हुये 'माया मातृरूपिणे रघुवरो' ही नहीं कहा अपितु उसके चरित्र को भी भक्त के समान रूप चरित्र की संज्ञा प्रदान की है तथा पुनः इसकी व्याख्या करते हुये कहा है कि जिस प्रकार भक्त अनेक प्रकार का रूप धारण कर अभिन्न करता है, और वह जो जो भाव प्रदर्शित करता है वह स्वतः उस भाव में स्थित नहीं होता उसी प्रकार राजा राम का चरित्र भी प्राकृत नर के अनुकूप है।^४ इस अष्ट के आधिर्भाव में 'मगत हेतु या प्रेम वस्तु' जैसे प्रयोजनों के चरिते उसके पृथंगी होने की संभावना की जा सकती है।^५ परन्तु गोस्वामी जी ने 'मित्र इच्छा निर्मित तनु' कहकर^६ रामानुज आदि के द्वारा प्रयुक्त 'सोऽकामयत' वा 'अवताराणां हेतुरिच्छा'^७ के अर्थ उसका निराकरण करने का प्रयास किया है। फिर भी उपासक होने के कारण गोरक्षामी जी का यह अष्ट एक प्रकार का उपासकवादी अष्ट है। यह पारमार्थिक होत हुए भी व्यावहारिक अधिक है। यह निरपेक्ष और तटस्थ होने की अपेक्षा सक्रिय भी है।

गोस्वामी जी ने पाँचराज पूर्व रामानुज सम्प्रदाय में मान्य 'नर विग्रह' रूप से भी उपासक राम को सम्बोध कर उसका अवतार माना है। वहीं यह

१ अत्रल लो करल कहइ विचारो निर्गुण अष्ट तगुन ननु पारो। रा० मा० ५० २१ ।

२ अगुन अरुण अरुण भीर और । मगत प्रेमवश सगुण सो और । रा० मा० ५० ३३

३ अवास्त अरुण अवीर अत्र निर्गुण नाम न रूप ।

मगत हेतु वाना विधि करत चरित अगुन । रा० मा० ५० २०५ ।

४ रा० मा० ५० ३२२ ।

५ नर इव अवत चरित कर माना । सदा स्वतन्त्र एक अकामा । रा० मा० ५० ४५४

६ मगत हेतु मप्यज्य मनु राम परेन तनु मूष ।

किंच चरित शरव वरन प्राकृत नर अनुकूप म

तथा अनेक वैद परि मूल करी नर और ।

लौह भीर माध देवानो वायुन हीर न और । रा० मा ५० ५२१-५४२ ।

७ न० लू० २ १ ३२ में अष्ट के किंच 'न प्रयोजनवात्वात्' का प्रयोग हुआ है और

पुनः २, १, ३३ 'भोक्तव्य जीवार्थैवस्वत्' के अनुसार उसके लगी इत्थो को जीका

भाव माना गया है ।

८ रा० मा० ५० ३४४ मित्र इच्छा मनु अवतार इव यदि नो द्विच कायि । तत्प्रथम

५० २१४ 'अवताराणां हेतुरिच्छा' ।

बतला देना असंगत नहीं होगा कि परब्रह्मरूप, पाँचरात्रों में मान्य उपास्य ईश्वर का प्रथम एवं चरम रूप है।^१ वह ईश्वर का अद्वितीय रूप है। उससे परे कुछ भी नहीं है। ब्रह्मवादिनों का निर्गुण निराकार रूप भी उसका एक विशिष्ट रूप मात्र है।^२

हीसक्या उस अनुगत, अलंकार रूप को देखती हैं जिसके प्रत्येक रोम में करोड़ों मण्डल हैं।^३ असक्य, रवि, चन्द्रमा, सिध मण्डल, अनेकों पर्वत, सरितायें-समुद्र, शृङ्गी, सब उसमें स्थित हैं।^४ 'पर विग्रह' क ही सबभाष्यपत्र तथा खिच बनकल और शुभाभयल आदि गुणों का आरोप उपास्य राम पर भी हुआ है।^५ अतएव 'अनपादनी प्रेम मगति' क दाता राम भवामय अर्न्त अन्ध अनेक और एक होते हुए भी कल्याणमय हैं।^६ वे अन्तर्पामी^७ रूप में सबदा सभी क हृदय में निवास कर उसका पावन करते हैं।^८ काग मुमुक्षी उनक उदर में करोड़ों मण्डल और अमृत लोको और लोकपालों का दर्शन करत हैं और प्रत्येक मण्डल में राम का अवतार देखते हैं।^९ पुनः मायापति कपाल भगवान् राम को इनसे परे देखते हैं।^{१०} इस प्रकार उपास्य राम जहाँ अपनी सृष्टि से परे हैं और हृद्देवतामक गुणों से सम्पन्न हैं वहाँ एकेश्वरवादी तारों से युक्त उनका 'पर-रूप' ही साकार विदित है।

प्रयोजन समन्वय

मारम्भ से ही प्रयोजन अवतारवाद का महत्त्वपूर्वक वर्णन रहा है। मध्यकाण्ड

१. पुराणों में भी सर्वत्र यह रूप श्रूयित हुआ है।
२. आदि पुराण २।५२ 'सर्वब्रह्म विनिर्मुक्तं सर्वोपधि विवर्जितम्।
वाक्युष्म तत् परं ब्रह्म सर्वं कारणं कारणम् ॥'
३. देवताया मातृहि विव अरुणत रूप अक्षयम्।
रोम रोम प्रत काये कोटि कोटि मण्डल ॥ रा० मा० ५० १०२।
४. अगमित रवि सति सिध अनुराजम्।
बहु पिरि सरित सिधु महिमालन ॥ रा० मा ५० १०३
५. तत्त्ववच-५० १८ और ११८।
अदि विभोकरि हरणि द्विज निज निज कधि अनुकम्।
अनु सोदर श्रुवाक वरि मूर्ति परम अनूर ॥ रा० मा ५० १११।
६. अथ भगवत अर्न्त अन्धामय। अन्ध अनेक एक कल्याणम् ॥ रा० मा० ५० ५१३
७. अथ निर्गुण अथ अथ गुण सागर। सुख मीरि सुंदर अति नागर ॥
रा० मा० ५० ५१३।
८. तत्त्ववच ५० ११३ अन्तर्पामित्वमन्ता परिहृष मिषन्पुत्रम्।
९. रा मा० ५ ५१३ सर्व सर्वगत सर्वब्रह्मम्। वसति सदा इय बहु परिपाक्य।
१०. रा मा० ५० ५१४-५१५ प्रति मण्डल राम अवतार।

में निज इच्छा से भाविर्भूत होकर लीला एवं चरित्र का विधान करने वाले भक्तारवाह का समस्त कार्य-काल किसी ब किमी प्रयोजन से समुक्त रहा है। गोस्वामी जी ने मध्यकाल तक प्रचलित प्राचीन सभी प्रयोजनों को समाहित किया है।

इन प्रयोजनों में सर्वप्रथम वैदिक विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं के प्राचीन कार्य मुख्य हैं, जिनको भक्तारवाह के युग में विष्णु के भक्तारों एवं उनके सहायकों पर आरोपित किया गया। विशेषकर भगत भूमि, सुसुर, सुरभि, सुर^१ से वैदिक काल में विष्णु के सम्बन्ध का कुछ संशय ही अनुमान किया जा सकता है। मू से सम्बन्धित विष्णु का तीन पादों का रूप बहुत प्रसिद्ध रहा है, जिसके चकते वे त्रिकोणम कहे गये।^२ हिन्दी टीकाकारों के अनुसार कुछ संशयों में विष्णु भगत के रक्षक एवं समस्त धर्मों के चारक बतलाये गये हैं।^३ विष्णु के कार्यों के एक पर ही प्रबलमान अपने धर्मों का अनुष्ठान करते हैं। वे इन्द्र के उपपुत्र सखा हैं।^४ स्तुतिवादी और सेषाधी समुप्य विष्णु के उस परम पद से जगत इन्द्र को प्रकाशित करते हैं।^५ एक मंत्र में उग्रत शृंगवाली और धीमतामी गायों के स्थान में जाने के लिए विष्णु की प्रार्थना की गई है।^६ इसी प्रकार एक मंत्र में देवताओं को विष्णु का लक्ष कहा गया है।^७ वाग्भटासुर की ९९ दृष्ट पुरियों को नष्ट करने में विष्णु इन्द्र का साथ देते हैं।^८

महाकाव्य काल में विष्णु का भक्तारवाह से सम्बन्ध होने पर भक्तारवाह का प्रमुख प्रयोजन देव-राज्य का बच रहा है।^९ किन्तु गोस्वामी जी के अनुसार

१ भगत भूमि पृथ्वी परहित भवि ह्यात् ।

करत चरित चरि मनुज-तनु, जगत निरति चक्रात् ॥ पु० टी० ६० १५ इ। ११६

२ जतो देवा नवगुणो भवो विष्णु विक्रमे। इन्द्रिणी-सर्व नामप्रिय। ॥ १।२।२९

३ त्रीणि वदा विक्रमे विष्णुर्गोदा नदाम्बः। जतो वमौभि चारवत् । ॥ १।२२।२८

४ विष्णो कर्माणि पश्यत वती जगति वरपथे इन्द्रेण सुख्यं लया। ॥ १।२२।२९

५ तद् विज्ञासो विष्णवो वागुर्लक्ष्यो लमित्यते। विष्णोर्षलेरमं वदन् । ॥ १।२२।२२

६ ता वा वास्तुस्तुजाति मन्थे वज्र पाथी मूर्ति आवा नवात् ।

अत्रात् तदुक्त्यावत्त्व बुध्याः वरमं वरमवा पाति धृति ॥ १।२५।२६

७ अस्व देवत्व जीवद्भुवो ववा विष्णोरेवरव प्रदुर्देहनिभिः।

विदे हि रथीं चरित्रं महित्वं पातिर्त्वं कश्चिन्निवर्तितारवत् ॥ १।२५।२५

८ ॥ १० १, ११ ५।

९ ववाप देव सङ्घं भुवां लोके मनः कुव ।

पवकुलान् देवेदी विष्णुकिरघुंनवः ॥ वा १।२५।२५।

विष्णु, ब्रह्मा, इंद्र, संत आदि सभी के मिश्रित असुरों का बंध एक मात्र प्रयोजन प्रतीत होता है। 'गीता' के अवतारवादी प्रयोजन से भी स्पष्ट है कि असुरों का उपासक धर्म के पतन का कारण है।

अतएव 'गीता' युग तक अवतारवाद का पूर्णता सम्बन्ध धर्म से प्रतीत होता है। क्योंकि 'गीता' ३।७ के अनुसार धर्मोत्थान के किये ही आधिर्मात्र की आवश्यकता होती है। साधुओं का परित्राण, दुष्टों का विनाश और धर्मस्थान की यह आवश्यकता युग-युग में होती रहती है। वैदिक, महाकाव्य और 'गीता' के असुरों का उपासक करने पर, मूल में एक विहित होने पर भी क्रमशः इन पर साम्प्रदायिक रंग बढ़ता हुआ प्रतिबिम्बित होता है। उसी प्रकार वैदिक विष्णु भी ब्रह्म देवता से महान् और अन्त में उपासक विष्णु के रूप में परिवर्तित होकर पड़ते हैं। अतएव विष्णु के उपासक-रूप में गृहीत होने पर इनका सम्बन्ध भक्ति, भक्त और भाव से होता है, जिसके कर्मरूप विष्णु या इनके अवतारों का अवतार या तो अहेतुक होता है अथवा भक्तों के प्रेमवश या भक्तिवश होता है। अवतारवाद और भक्ति का सम्बन्ध पुराणों में भरपूर मात्रा में हुआ। भक्ति-संबन्धित अवतारवादी प्रवृत्तियों में भी वेद, ब्राह्मण, देवता, पूज्य और गो-रक्षा आदि की भावनाएँ छुट नहीं हुईं, अपितु पुराणों में वे रुद्रिप्रस्त परम्परा के रूप में ध्यात्व सर्वत्र समाव रूप से प्रचलित रहीं। फिर भी भक्त के मिश्रित उनका अवतार अत्यधिक मात्रा में प्रचलित हुआ। विशेषकर भारत के सहस्रों तीर्थस्थानों में स्थापित असंख्य अवतारों की पौराणिक कथाओं ने इनके प्रसार में विशेष सहायता पहुँचाई।

१. २. विष्णु संत संत विष्णु लीला मनुज अवतार ।
असुर मारि वापहि इंद्र रत्नहि मित्र हनि सेतु ।
अग्नितारहि विषह बस राम अग्नि, इंद्र, देव । रा० मा ५० ९ ।
३. बदा बदाहि धर्मरक्षाधिर्मेवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य वतारमानं धृत्वाम्बह ।
गीता ३।७ ।
४. परित्राण साधुना विनाशक च दुष्टनाम् ।
धर्म संस्थापनायैव 'सम्मन्नामि सुते सुते ॥ गीता ३।८
बन अब होइ वरम ओ दासी । वाकहि असुर अवम भूमिमासी ।
करहि अनीति वाइ नहि वरणी । सीबहि विष्णु देव संत वरणी ।
तव तव प्रभु बरि विविध सरीरा । हरहि कृपालिनि लखन पीरा । रा० मा ५० १३
५. देव रक्षित बग अग्नि अकारो । दुष्ट दुष्टार सेवक असुरासी । रा मा ५० ५१९
६. हरि स्थापक सर्वत्र समाजा । प्रेम ते प्रकट होहि मै जाना । बही ५ ९५ ।
७. स्थापक विष्णु रूप मयवाना । ऐहि बरि देव अरिह हत माना ।
सो देवक भक्तन दित कागी । वरम कृपाल प्रमद अशुरागी ॥ रा० मा० ५ २१

जमा भीर मझाभी उत्पन्न होती है, कोमित है।^१ अपने अर्थों^२ के अहित तथा बाधि सकि मावा के साथ बही बाधिर्भूत हुआ है।^३ कील्लया के अपुरोध पर बह सिद्ध-खीक्य करता है।^४ मावातीय भीर गुवातीय होने पर भी किय, मेहु, सुर भीर संतों के सिव अपने ह्वा से मानव-रूप धारण करता है।^५ वह व्यापक मझ निरंजन निर्गुन एवं बज है। कील्लया की गाह में मेस-सकि के कारण कचित हो रहा है।^६ उसके अकम्प, अस्मृत रूप के रोम-रोम में कोरि-कोरि मझाण्ड बिराजमान हैं।^७ सभी ईशता उसके सामने अमरीठ हाथ कोड़े कड़े हैं।^८ व्यापक अकम्प, अनीह बज निर्गुन भीर बिवा नास-रूप का होते हुये भी अर्थों के विभिन्न नागा प्रकार के चरित करता है।^९ इन्द्रिक राजाओं को मयावक, असुरों को काक के अनाम, पुरवाधियों को अेष पुस्य धियों को बनकी रुचि के अनुसार, पम्बियों को बिराह रूप^{१०} में, कोयियों को परम तरबन्ध, सात सुक, धम, सइक प्रकाश स्वरूप तथा अर्थों को उनके हृदय के अरस हीक पवता है।^{११} उसके सभी कर्म अमानुषिक हैं।^{१२} उस सुक सखिदामन्द का चरित संवृति-सागर में सेतु के अरस है।^{१३} राम मझ का पारमार्थिक रूप अविगत अकम्प अनाधि भीर अरूप तथा सकम्प बिकास भीर मेहीं से रहित है।^{१४} बही भगत धूमि भूसुर सुरभि के विभिन्न मानव-करीर धारण कर अनेक चरित करता है।^{१५} बिदामन्दमव वैदपुत्र राम प्राकृत राजा के सदृश अनेक चरित करता है और कहता है।^{१६} भारत लोरी को बह अकम्पमव मतीत होता है।^{१७} बिरस, व्यापक भीर

१ नाम माग सीमति अनुकृपा । बाधि अकि धिय विधि क्य वृका ।

बासु अंत कपवति सुमकानी । अगनित कम्पि जमा मझानी ॥ ११० ॥ ७०

२ संतु विरिधि विन्दु अकवाथा । कपवति बासु अंत के नामा ॥ १११ ॥ ७१ ॥

३ रा० मा० ५ ७९ और ५ ९१ । ४ रा० मा० ५ ९१ ।

५ रा० मा० ५ ९१ ।

६ व्यापक मझ निरंजन निर्गुन विगत विमोह ।

सी अज मेव धपति वस कील्लया के लोद ॥ ११८ ॥ १०१ ॥

७ वैकरावा मातहि दिव अस्तुन रूप अर्थक ।

रौम रोम मति कयो कोरि कोरि मझण्ड ॥ ११२ ॥ १०२ ॥

८ रा० मा० ५ ११ । ९ ११ ॥ १०५ ॥

१० ११ ॥ १११ ॥

११ हरि अकम्प वैषे होव प्राण । वरदेव रूप लव सुक दाता ॥ ११२ ॥ ११२ ॥

१२ लकठ अमानुष करसु सुन्दार । ११३ ॥ ११३ ॥ ११ ॥

१४ रा० मा० ५ १११ । १५ रा० मा० ५ ११२ ।

१६ ११ ५ ११३ । १७ ११ ५ १८१ ।

अविनाशी होते हुए भी वह सभी के हृदय में निरन्तर निवास करता है।^१ उसकी शीघ्र रति ब्रह्मा भक्ति को बढ़ बनाती है।^२ वह श्यामातीत होकर भी मायायुग के पीछे शीघ्रता है।^३ उसकी शीघ्रता परहित होते हुये भी हेतु रहित है।^४

राम 'माया मायुष' रूप हैं।^५ इस अद्विष्ट सुवर्ण पति ने विश्व को तारने के लिये^६ तथा धर्म के निमित्त^७ मानव शरीर ग्रहण किया है। सुर, पृथ्वी गो और दिव्य के लिये अपनी इच्छा से वे आविर्भूत हुए हैं।^८ इनके घर से काल भी बरता है।^९ वे मनुष्य का रक्षण करते हैं शत्रुओं को नष्ट करते हैं तथा वेद एवं धर्म के रक्षक हैं।^{१०}

अपने पूर्व अवतारों में इन्होंने मनुकैटभ और महावीर दितिमुत्त को मारा था तथा बलि को बाँधा और सहजमुत्र का संहार किया था। वही पृथ्वी का भार हरने के लिये अवतरित हुये हैं।^{११} य एक मात्र भगवान् सदा स्वतन्त्र होते हुये भी बर के समान बाधा प्रकार के चरित करते हैं।^{१२} पूर्वकाल में मीम, कमठ, सूकर कुसिंह वामन, परशुराम रूप इन्होंने धारण किये हैं।^{१३} वे यज्ञवत्सक और ह्य्याष्टु हैं।^{१४} इन्होंने आविर्भूत होकर अद्विष्ट लोक के राज्य सुख को जका दिया।^{१५} अतएव इसी सच्चिदानन्द धन राम ने^{१६} राजा राम का रूप मर्त्यों के निमित्त धारण किया है। बर जिस प्रकार अनेक वंश धारण कर अनेक प्रकार का वत्सक करता है, जैसे ही माकृत बर के सद्यः इन्होंने मी

८. वही पृ० ३३३ ।

९. वही पृ० ३३० ।

१०. वही पृ० ३५५ ।

११. गार्गी सुनिह सदा मम लीला । हेतु रहित परहित एव लीला ॥ वही पृ० ३५०

१२. माया मायुष रूपिणी रघुवरी । वही पृ० ३३२ ।

१३. वही पृ० ३३२ ।

१४. वही पृ० ३३३ 'वर्मिहेतु अवतरेण दोषारं' ।

१५. रा मा पृ० ३३४ ।

१६. रा मा पृ० ३३२ बाँके बर अति काळ केराट ।

१७. वही ० ३३९ वन रक्षण व्रजज ज्ञक भ्रता । वैद धर्म रक्षक ह्यु ज्ञाता ॥

१८. अति वच मर्त्यकैटभ किन्द मारे । महावीर दिति ह्यु संवारे ॥

श्रेहि वनि वनि सहस्र मुत्रमारा । लोह अवतरेण इरन मदि भारा ॥

रा० मा पृ० ३२३ ।

१९. नट इव कण्ठ चरित बर लाला । तथा स्वतन्त्र एक भगवाना न रा०मा० पृ० ३५५

२०. मीम कमठ सूकर वरवरी । वामन परशुराम वयु वरी । वही पृ० ३८२ ।

२१. मण्ड वत्सक ह्य्याष्टु रघुवरी । वही पृ० ५०० । २२. वही पृ० ५०२ ।

२३. वही पृ० ५३० लोह सच्चिदानन्द वन रामा । वन विद्यान रूप वक्रवामा ।

अपने पावन चरित को प्रकट किया।^१ प्रत्येक अध्याय में राम का अक्षतार होता है। इनका बाल विनोद अक्षरगार है।^२ इनके उद्गर में बाना प्रकार के विश्व स्थित हैं।^३ ये करोड़ों अक्षा के सदस कष्ट हैं, करोड़ों विष्णु के सदस पाकक तथा करोड़ों बह के सदस संदर्भा हैं।^४ फिर भी ये सुख के निधान, कल्याणतम भाग्याद् भाव के बस में हैं।^५

उपर्युक्त उद्गरणों से उपास्य राम के 'अक्षतारी-रूप' और 'अक्षतार-रूप' दोनों स्पष्ट हैं। अक्षतारी-रूप में वे अक्षत अक्षा राम हैं और अक्षतार-रूप में गडबड चरित करने वाले प्राकृत रूप में राधा राम।

रामाक्षतार (उत्तरकालीन)

गोस्वामी तुलसीदास के बजाए अक्षतारी राम का सम्बन्ध दो चर्चों के साहित्य से हीक पकता है। उनमें प्रथम तो इनका साम्प्रदायिक रूप है, जिसका रामभक्ति सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के समावांतर विकास हुआ। दूसरा रूप रीतिकालीन परम्परा में जाने वाले केशव, सेवापति आदि राक्षतारवाही कवियों की रचनाओं में दृष्टिगत होता है।

रामभक्ति सत्ता के परवर्ती कवियों में उपास्य राम का ही विकास हुआ है। किन्तु यहाँ तुलसीदास में राम-चरित का प्रमेह विस्तार हुआ यहाँ अग्रहास, मायादास आदि कवियों में अर्थात्पल-युक्त राम के युगक-रूप का अधिक प्रचार हुआ। अर्थात्विशिष्ट होने के कारण राम का यह रूप गिरा माना गया। श्री अग्रहास के एक पद में राम को भक्तवासक, जामकी-रमण तथा अयोध्या का भावक कहा गया है। ये कल्याणसिन्धु अक्षतार सेवा को भी मेद के सदस मानते हैं। वे गीतम की बरनी गज-दाह को ठारने वाले तथा सहायक विभीषण एवं कवियों के धरम-दाता हैं। इनके मित्य रूप की चर्चा करते हुए अग्रहास कहते हैं कि सर्गों की रचा के किये वे रात-दिन अनुप-दाय किये रहते हैं।^६

१ अक्षतार हेतु पल्लवान प्रभु, राम वीर्य तनु नृप।

किन्ने चरित पावन परत प्रकृत नर अनुकन ॥

जया जगैक देव परि नृत्य करै मड और।

सोर सोर नाथ देकाये, बाबुन होर न सोर न बरी ५० ५११।

२ रा० मा० ५० ५१५ प्रति अध्याय राम अक्षतार। देखी शकविबीर अपारा।

३ रा० मा० ५० ५१९ राम उद्गर देखेउ अप बाना। ४ रा० मा० ५० ५२१।

५ रा० मा० ५० ५२१ अक्षतार बस अक्षतार सुख निधान कल्याण मयम।

६ संवत की रक्षा के कारण निदिदिन किन्ने रहत नर अक्षत।

गीतम बरनि गज दाह, ठारन करन विभीषण कनि को सहायक ॥

सेवा अक्षत मेद तम मायत कल्याण सिन्धु अयोध्या भावक ॥

तत्कालीन युग में श्रीकृष्ण के युगक रूप और उसकी अष्टयाम सेवा क सहस्र राम-भक्ति साक्षात् में राम और जानकी युगक उपास्य के रूप में गृहीत हुये। कृष्ण दास ने मिथिला में स्थित राम क युगक रूप का वर्णन अपने पदों में किया है।^१ नाभादास ने राम के नित्य युगक रूप की महत्ता बतलाते हुये कहा है कि यह मृप मडली नित्य है और भवष अष्टक विहार मृमि है। नित्य प्रभु के समी अवतार चारों ओर से इस प्रभु की सेवा करते हैं।^२ यह नाम जानकी-बहमलाक का जीवनधन है। वे समस्त गुणों क विग्राम रथक हादस रस एष अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त हैं।^३ सम्भवतः यह उनका ऐश्वर्य क अतिरिक्त माधुर्य रूप है जिसमें संयोग, वियोग युगक-संधि, माधुर्य रति तथा नित्य दिव्य सुख-भोग की कल्पना की गई है।^४ कुम्भविहारी श्रीकृष्ण क सहस्र राम क कुंज-सुख का वर्णन भी नाभादास ने किया है।^५ अयोध्या भी बुंदावन क समान नित्य लीला-धाम है। अन्तर इतना ही है कि बुंदावन में कोई सुमट उसकी रक्षावाली नहीं करता किन्तु अयोध्या धाम की रक्षा बड़े-बड़े सेनापति करते हैं।^६

राम के युगक रूप को लेकर सच्ची-भाव का विस्तार भी इस सम्प्रदाय में हुआ जिसके फलस्वरूप अष्टदास जादि सहस्ररी-भाव से युगक रस में स्वीक सामे गये।^७ इसके अतिरिक्त श्री किशोरी जी की कर्मदा श्रीप्रसादा श्री चम्पकका,

सिख सनकारिक बेगुजर सारव क्षेप नियक बह गारक ॥

जानकी रमय मकलसक हरि अष्टदास तर मानन्ददानक ॥

राजकल्पद्रुम २, १० ५१२ पर ६ ।

१ जानकीनंदिनी बभ्रव मंदन बेंबत अति सुख वावत ।

बहुं दिशि घेरे मिथिला पुर की नारि मधुर सुर पावत ॥

जानन्द बन्धी युगक कवि निरखत अति से प्रेम बढ़ावत ।

वही २ पृ ५४८ पर २४ ।

२ नित्य की मृप मंडली भवष अष्टक विहार ।

बैधि सेक्त बहुं ओर निठ, प्रभु के सब अवतार ॥ रामाष्टयाम ६० १ बो १ ।

३ जानकी बहम काक को जीवन धन यह नाम ।

दासक रस लीला अमित गुण समूह विग्राम ॥ रामाष्टयाम ६० १ बो ८ ।

४ बहुं प्रकट ऐश्वर्य अति बहुं संयोग वियोग ।

युगक संधि माधुर्य रति निरव दिव्य सुख भोग ॥ वही बो० ५ ।

५ युगक काक दिव्य सुख सुख निठ नम विपक विहार ।

पंचम भाव रति युगक मति, बर्षत क्वत् म नार ॥ वही ६० २५ ।

६ वही ६० ४ बो—दार दार सेनापति भारी । बहुं दिशि करहिं सुमट रजवारी ॥

७ वही ६ ४० बो० ५८

श्री कृष्णदास युव कृपाते, निठ मब नैह नवीन ।

अमनुमति सिख सहस्ररी युगक रूप रसबीम ॥

श्री मद्मच्छा, श्री विरवमोहिनी श्री चणक्या श्री रूपक्या, श्री चद्रावती श्री
आदि अष्ट सदियों मावी गद् तथा श्री काक श्री की श्री कमसा श्री चाइकीका,
श्री हेमा श्री बेसा, श्री बरारोहा श्री पद्मगता श्री मुक्तोचना, श्री लक्ष्मणा,
श्री सुभग्रा आदि अष्ट सत्रिबों कही गई हैं। साथ हा एक श्री और
किसोरी श्री क माता-पिता आदि परिवार का भी ब्यय किया गया है।^१

राम की सत्रिबों का यह रूप अधिक परबती विदित होता है। क्योंकि
हितहरिबेन तथा हरिदास ने जिस काल में श्रीकृष्ण के इस रूप की अवतारणा
की थी उस काल में राम-भक्ति सात्ता में कोई ऐसी प्रवृत्ति कथित नहीं होती।
राम क साम्प्रदायिक युगक रूप क अतिरिक्त राज दरबारी कदियों में श्री
रीतिकार्यीम परम्परा में बर्णित एक रूप मिलता है।

'रामचंद्रिका' में कलकत्ते के पूर्ण मद्र, अवतारी राम को अपना पात्र बताया
है। अतः राम पुराणों क पुरुष हैं।^२ वरों में उन्हें नेति-नेति कहा गया है।^३
वे अपारम्पर राम अहमिदि भक्ति और मुक्त क दाता हैं।^४ वे अवतारमणि,
परमेश और अवतारी हैं।^५ उनकी ज्योति से अधिक विश्व आलोकित है।^६
इन्होंने कैठम, गरकासुर मनु और सुर को मारा, इन्होंने ही बकि क सामने
हाथ पसारा।^७ वे बड़े-बड़े शक्तियों क स स्वभाव वाले जन्तुओं से दाम देने
वाले और विष्णु क से स्वभाव वाले हैं। वे अमर्य हीयों क राजा, शो और
माइयों के राज, देवताओं क वास्तु हैं।^८ वे अमर्य अवतार अमादि देव हैं।
वेह इतक सभी रहस्यों को ओकने में समर्थ नहीं हैं। वे सभी को, समान दृष्टि

१. रामचंद्रिका पृ० ४८।

२. रा. चं. ५ श्लोक पृ० १३। 'पूर्ण पुराण अथ पुरुष पुराण परिपूर्ण।

३. नेति नेति कही वेर सादि आनि मुक्त की श्री इ. ११।

४. रूप देहि अमिमदि तुम देहि परिमदि।

भक्ति देहि महिमादि धाम देहि मुक्ति श्री ३ बरों पृ० ११।

५. शीर्ष पर मद्र श्री राम हैं अवतारी अवतारमणि। बरी पृ० ७, १७।

६. काठ बानी ज्योति अथ एक रूप स्वयम्।

रामचंद्र की चंद्रिका बर्णन ही पुरुषम् ॥ बरी पृ० ५, २१।

७. कैरव ही मरकासुर ही एक में मनु ही सुर ही अत्र माएवी।

— — — — —

श्री कर बर्णन की बकि वे कलकात्ते को कलकात्त निहारुवी ॥ बरी पृ० ५५, २५।

८. रामिन के श्रीक वरदाव के महाती दिन रामिभारिकी भिदान देकिने समान के।

आमन् के कन्द वरदावक से वास्तु है, वरदाव विव तापु अवतारवाद् की।

श्रीव श्रीव हू के बस्तीपन के अवतार

इस सम कैरीदात हाथ दिजस्त के। बरी पृ० ७८।

से देखते हैं । न ता इनका किसी से बैर है न प्रेम फिर भी सभी भक्तों के निमित्त ये अक्षतीर्ण हात हैं ।^१ मर्यादि भी बिनका लत नहीं पा सके । बेहों ने अनेक प्रकार से इनकी स्तुति की है । इस प्रकार ये राम केवल मर्या हैं ।^२ ये लक्ष्म का नाश करने वाले धीर धम के प्रचारक हैं । इन्होंने अपनी इच्छा से पृथ्वी पर वेद धारण किया है । रावण को मार कर तपस्विणों को अतपाकन की सुविधा प्रदान करना इनका कार्य माना गया है ।^३ अनेक पक्षों के कठोररूप इन्होंने भगस्त को दर्शन दिया है ।^४ केसवदास ने इनको श्रीरघाची रूप से भी अभिहित किया है । अतः मर्यादि देवताओं की प्रार्थना सुनकर श्रीरघाची भगवान ने दशरथ-पुत्र के रूप में अपने लक्षतार की घोषणा की ।^५ बेहों में पूजकाम गाये जाने पर भी तथा विश्व के कर्ता पाठक और इतना होने पर भी इन्होंने अत्यन्त कृपा करके मनुष्य-शरीर धारण किया है । व देवताओं में श्रेष्ठ, राजसों के नासक और मुनिषों क रक्षक हैं ।^६ पृथ्वी का मार करने की इच्छा होने पर ये सीता को अग्नि में अपना शरीर दत्तकर ज्ञाया शरीर धारण करने का परामर्श देते हैं ।^७ केसव दाम ने इनके पद्मेश्वरवादी रूप की चर्चा भी की है । अतः गरव कुबेर धम राजस देवता दैत्य और राजा तथा धरकों इन्द्र, करकों सिन्ध धीर करोड़ों सृष्ट तथा अम्बुसा अपने को रामचन्द्र जी का दास मानते हैं ।^८ इनके 'नर

-
- १. तुम अनेक अनेक अनादि देव महि देव वक्षामत सकल देव ।
सबको समान महि बैर नैह सब मच्छन कारन परत देह ॥
रा सं० पू शीम ५ २२९ ।
 - २. अनेक मर्यादि न अंत पायो । अनेकवा वैदम गीत पायो ॥
तिन्हें न रामानुज वन्दु जानो । सुनो सुधी केवल मर्या मानो ॥ वही पृ० १९५, ४०
 - ३. निवेष्टतवा मूलक देह बारी । अक्षरं संहारक चर्मबारी ।
बड़े दक्षप्रोबहि मारिबे को । तपी जती केवल गारिबे को ॥ वही पृ० १९५, ४ ।
 - ४. बाड़े निमित्त हम बल बन्नी सु पायो ।
मर्याकमवदम स्वरूप कु देह पायो ॥ पृ १७४ ११ ।
 - ५. मर्यादि देव बय बिनव श्येन । तव धीर तिसु के परम शीन ।
तुम बड़ी देव अवनरुद्र जाव । तुम ही कछरण को होव जाव ॥ वही पृ० १७५, १३ ।
 - ६. बचवि बय करता पाठक हरता, वरिपूरण वैदम गावे ।
अति उदवि कृपा करि मानुषवपु बरि बल पूज्य हमसो जावे ॥
सुवि सुदरम नायक, राजस नायक, रसतु मुनिजन बस लीबे । वही पृ० १७६ १५ ।
 - ७. वही पृ० १९१, १२ ।
 - ८. बधिपराय मच्छराय प्रेतराय जानुबान । देवता अदेवता नु देवता कितकराय ।
पर्यगदि सर्व सर्व सर्व सर्वना बक्षानि । श्रेदि श्रेदि मूर चन्द्र रामचन्द्र दास जानि ।
वही पृ० १९२-१९३, १७ ।

इस लीला' की चर्चा करते हुए कहा गया है कि श्री रघुनाथ जी सर्वस्वापी और सर्वज्ञ होने पर भी मनुष्य की-सी लीला करके मूर्खों को मोहित कर लेते हैं।^१ इन्हें कतिपय स्थलों पर यज्ञ पुत्र्य नारायण इत्यादि से अभिहित किया गया है।^२ व सदा शुभ, समदर्शी कल्याणिकाम, विद्य के आदि मन्त्र और अवसान होकर भी अनेक रूप धारण कर विद्य को मोहित करते हैं।^३

ये ही कृष्णावतार में बाकि-अवतार जरा नामक वृषभ के नाम से मारे गये थे। ये सदा अन्तर्दामी अतृर्षण स्त्रियों के भावम्बुदाता तथा निर्गुण और सगुण स्वरूप हैं।^४ इसके अतिरिक्त केमवन्त ने राम को गुप्तावतारों और दद्यावतारों से भी अभिहित किया है।^५ इन्क विष्णु रूप में विद्य-रूप की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ये विद्य-स्वरूप हैं और अतिरिक्त इन्हीं में वर्तमान है। विद्य की मर्षा के मंग होने पर इन्का अवतार होता है।^६ ये विद्य-रहस्य के शाता आदि देव हैं।

महा विष्णु शंभु रवि चंद्रमा अग्नि इत्यादि देवता इनके अवतार हैं।^७ ये रघुपति प्रथा से लेकर परमायु तक सभी क अंत, भव और भगत हैं।^८ उक्त उद्धरणों से वृषभ के उपासक एवं अवतारी प्रथा राम तुलसीदास क राम से निश्च नहीं प्रतीत होते। प्रायः राम क प्रथा और उपास्य सम्बन्धी

१ यद्यपि श्री रघुनाथ वृ सम सर्वज्ञ ।
 नर कैसी लीला करत वैदि मोहत सब जग ॥ नही ५ १९७ २६ ।

२ देव सब पुत्र्य अति प्रीति मानि । नही ५ २ ५ ५५ ।
 नन कवि रामा रघुपति देखे । मम मत् प्रायवण सम केहे । ५ २०६ ५२ ।

३ अग आदि मध्य अवसान एक, अग मोहन हो ननु करि जनेक ।
 तुम सदा शुभ नमकी समान वैदि हेतु हत्यो कल्याणिकाम ॥ नही ५ २११ १ ।

४ सुनि वालव गुण वल्लुभि निधान । मैं अरणावन विग हते माल ।
 नह सांघे के कृष्णावतार । तप है ही तुम संसार धार ॥ नही ५ २११ ५ ।

५ राम सदा तुम अन्तरवामी । श्रेष्ठ अतृर्षण के अभिरामी ।
 निर्गुण एक तुम्हें अज जामे । एक सदा गुणार्जन वजामे ॥ नही ५ २५९, १५ ।

६ नही ५० २५९-२६ २७-२४७ ।
 न ही अज ही अग है तुमही में तुमही विरयो मरनाह-तुमी में ॥
 मरनाहदि छोड़त जावत जाओ तुम ही अवतार नरी तुम ताम्ही ॥

नही ५० २६ २९ ।

७ कइ कुशक कही तुम आदि देव । सब जालन हो संसार शिव ।
 विधि विष्णु शंभु रवि सति करार । सब प्राक्यदि अंशानवार ॥

रा न ५ ५ ५ २७४ ५४ ।

८ अंशाने सफल वरमायु अन्त । तुम ही रघुपति अज अवन्त ॥ नही ५ २७४ ५५ ।

वितने उपाशनों का प्रयोग गोस्वामी जी में मिलता है, कदाचिदास न भी उनका अत्यधिक उपयोग किया है। इस प्रकार कदाचि और तुलसी रामचरित और टाकुर चरितार के या दो स्कूलों के होते हुए भी राम के अचरितार के प्रति से जमिन्न प्रतीत होते हैं। 'रामचरिका' के 'उत्तरार्द्ध' में कदाचि ने तुलसीदास के इस विद्वान्त से सहमति प्रकट की है कि निर्गुण ही सगुण हो जाता है। अतएव साकार राम के निर्गुण रूप की चर्चा करते हुए व कहते हैं कि जिसको न रूप है न रस न गुण, जो न वेदों में ज्ञेय है, न गायत्रियों में वर्त रघुनाथ रघुनाथ में रामजी (श्रीम जी के अनुसार सीता जी की एक स्त्री) के साथ है। इस प्रकार तुलसीदास के पश्चात् आने वाली शैलिकरार मन्त्र में भी राम अचरितार मात्र न होकर उपास्य ब्रह्म एव अचरितार में पूर्ण हुए। हम पुन के अंतिम चरण के कवि श्री सेनापति ने राम के अचरितार पर पूर्णवतार से संबोधित करते हुए भी उपास्य और अचरितार को संबोधित स्पष्ट किया है। कवि 'रत्नाकर' के प्रारम्भ में तुलसीदास रूप का परिचय देते हुए कहा गया है कि सर्वत्र विदितं ज्ञेयं च सर्वो इतिहासो भार पुराणो में विनया गुण-गाथा एव है। न चरितार और अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी राम सबदा साक्षात् है। 'उत्तरार्द्ध' में पृथ्वी का भार उतारने का प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप राम के चरितार चरितार किया। 'श्रीमती तरंग' के 'रामायण-वन्दन' में तुलसीदास राम

१ अगुण अरुण अरुण अरुण शीर । अगत प्रेमवत्त अरुण ११ । १२ १३ १४ १५
 २ आर्क रूप न रस गुण, नामत देव न गाव ।

रंगमहक रघुनाथ के रामजी के साथ पद ११ १२
 ३ एक पुत्र स्त्री पर सुती व समान आर्क, पूरी अरुण १३ १४ १५ १६
 ४ अरुण ११ १२ १३ १४ १५

५ परम शक्ति बाधे अनंत राम रही शक्ति
 आदि, मन्त्र अरु अंत गम्य दस विधि द्वा
 गुण पुरान इतिहास देव वंशीजव न
 चरित आम अचरितार चर अचरितार ११
 सेनापति आनन्दबल, विविधविधि १२ १३
 नारक अनेक ब्रह्माण्ड की एक राम १४ १५

६ देवम चरित श्रीमो वदे श्री इत्यादि
 विद्वत् वरुण आर्क सुधा एव अरु
 मन्त्रपति कन देव चारी पुत्र अरु ११
 आर्क सुतुर ते चरति विद्वत् १२ १३ १४ १५

सिर-महान भीर अथ-खंडन रासुराई की बंधना से राम का उपास्य रूप अधिक स्पष्ट होता है।^१

इसकी रचनाओं के अनुसार राम, महावीर, भीर चर्म-दुरधर सारंग अथवा चारण करने वाले, दानवों के एक को मर कराने वाले, ककि-मूक का मंत्रण करने वाले भीर देव, द्विज भीर वीरों के दुष्ट को दलने वाले पूर्ण पुरुष के पूर्ण अवतार हैं।^२

ये परम कृपाळु दिग्पाकों के रक्षक, पाताल और स्वर्ग के विनाश कायम स्तम्भ हैं। ये परम उदार पुष्पी का मार कराने वाले भीर भक्तप्रियता के अनुसार पूजा ग्रहण करने वाले हैं।^३ सेनापति में कामधेनु की प्रासंगिक कथा के आधार पर सभी अवतारों में राम को ही सर्वगुण-सम्पन्न सिद्ध किया है। कामधेनु ने ककि को दलने हुए कामधेनु की परिष्कृता की, उत्पन्नात् परशुराम का दर्शन किया, राम के अनुचर हुए, कृष्ण को कामधेनु प्रदान की और अन्य अवतारों से मिथ्या के पञ्चात् सिद्धांत का ही सेवक होना उचित समझा। इस प्रकार सभी अवतारों में राजा राम ही गुण धाम कह कर गाये गये।^४ इन्होंने अपने कृपास्य राम को भीष जगत का लड़ा, विषकण्य प्रदर्शन, निराकार, निराकार सर्वभ्यापी तीनों लोकों का आधार पूर्ण पुरुष और इषीकेतु आदि परब्रह्म के रूपों से अभिहित किया है।^५ साथ ही प्रह्लाद

२. गी. पू. ७.४ चौथा उरण क. १।

३. भीर महावीर भीर चर्म दुरधर है चरा में चरैवा एक सारंग अथवा भी ॥
दानवी एक मलन मयम ककि मलन को दलन है देव द्विज वीरन के दुष्ट की ॥
देव पुत्र करी अथ मूर्ति न समानि जाके पूरी अवतार मनो पूरन पुत्र की ॥

गौरी १. ७५-७६ चौथी उरण क. ७।

४. परमकृपाळु, दिग्पाकन के रक्षिनाश, धंश है विनाश के पाताल देव नाम के।
भीरव उदार अनुचर के इरन हार, पुत्र नम हार सेनापति मन काम के ॥

कविट गजानन १. ७६ ४ उरण क. १०।

५. श्रीमती परिकरना प्रकृत ककि कामधेनु को पीछे कामधेनु की दलन वाले है।
पादक मनो है कंक मारक, दलन हू को। देके कामधेनु पछो कामधेनु मन्त्रो है।
पैछे भक्ति लीरो अवतारन की कामधेनु। अतिशय-कंठ ही को ऐक्य कथावी है।
सेनापति कामी बापें लव अवतारन में। एक राजा राम गुण-धाम करि भावी है।

गौरी १. ९४-९५ उरण क. ७०।

६. दे के विज भीषबाध, प्राण लव मन मति जगत विनाशो जाके रचना अकार है।
अपन सो देखे, विषकण्य है अमृत जाको दुष्टि लो विचारो निराकार निराकार है।
जाको अथ-अरुण लपन, दस दिती कर, अग्रिप रको देव, तीमि ओक को अकार है।
पूरन पुत्र, इषीकेतुगुण-धाम राम सेनापति ताहि विमलन वार वार है।

गौरी १. ९७ चौथी-उरण १।

एवं गज-ग्राह इत्यादि को उद्धारने वाले तथा कसब सूर्य चन्द्र और पवन इत्यादि देवों द्वारा सेवित पर रूप से अभिहित, रघुवीर से अपना दुःख निवेदन किया है ।^१

उपर्युक्त उद्धारणों में तुलसी और कसब की परम्परा में आने वाले अबतारी और अबतार से भी परे उपास्य या इष्टदेव राम की स्पष्ट स्तुती मिलती है । सेनापति ने इष्टदेव राम की परम्परा में पृथीत हुए पक्षेधरवाही एवं ब्रह्म रूप से अभिहित करने वाले उपादानों का सहारा लिया है ।

अतएव आलोचकाल में राम के अबतारत्व से सम्पूर्ण उनके उपास्य रूप का पर्याप्त प्रचार स्पष्ट सिद्धि होता है ।

इस युग में राम के त्रिन शो रूपों की अभिम्पति दिखाई पड़ती है, उनमें तुलसी के निरुद्ध बेशर और सेनापति का रूप उचित होता है । क्योंकि वासादास आदि साम्प्रदायिक कवियों में श्रीकृष्ण की युगल उपासना का प्रभाव होने के कारण राम का साम्प्रदायिक रूप कुछ अस्तमूर्च्छी होकर रसोपासक सम्प्रदायों में बेशर युगल रूप तक सीमित रह गया । त्रिचका परवर्ती काल में आपत्तिक विस्तार हुआ ।



१. वास्वी प्रह्लाद गज ग्राह हैं अतारवो त्रिन
 वासी पद्मि-कमल विवाग हैं की मौन है ।
 आने लवकादि आदि गाने वैर-वंशी, सदा
 सेवा के रिछाने सेच रवि सति मौन है ।
 ऐसे रघुवीर को अवीर है मुवावी वीर,
 वंश वीर आये सेनापति मजो मौन है ।

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण

ऐतिहासिक

प्राचीन साहित्य में स्वयं श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को देखते हुए उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मान लेने में कोई संदेह नहीं होता। किन्तु वैदिक साहित्य से लेकर 'भागवत' तक मिलते हुए कतिपय कृष्णों का स्वल्प एक श्रीकृष्ण में जिस प्रकार समाविष्ट हुआ, यह आज भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। फिर भी यहाँ तक कृष्ण नाम के व्यक्ति का प्रश्न है, विविध कृष्णों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में हुआ है।

वैदिक साहित्य में ऋ० के 'आहवे मंडल' ७४वें सूक्त के ऋषी के कृष्ण अंगिरस ऋषि का नाम आया है।^१ पुनः 'श्रीशतकी ब्राह्मण' ३०, ५, में भी कृष्ण अंगिरस का उल्लेख हुआ है। 'ब्राम्होपनिषद्' ३, १०, ९ में कृष्ण, देवकी के पुत्र और अंगिरस के लिख्य बतकाये गये हैं। डा० भंडारकर ने 'पामिनि अष्टाध्यायी' ५४, १ १९ गणपठ में प्रयुक्त 'कृष्ण और 'रम सवर्णों के आचार पर इनका सम्बन्ध कृष्णापम शीघ्र से माना है।^२

इसके अतिरिक्त ऋ० १ १३०, ८ में इन्द्र द्वारा मारे गये एक कृष्णासुर की ऋषी हुई है। ऋ० १, २०, ७ और ऋ० ८, २५, १३ में भी इन्द्र और कृष्णासुर के संघर्ष का उल्लेख हुआ है। डा० रामाकृष्णन् ने इस कृष्ण को उस एक का देवीकृत और पुत्र्य माना है।^३ 'विष्णु पुराण' ५, ३० और 'भगवत पुराण' १०, २५ में क्रमशः इन्द्र से युद्ध और इन्द्र पूजा का विरोध देखकर उक्त कृष्ण को तत्कालीन कृष्ण से अभिहित करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही पंचपति की शपथ मानने वाले पांडवों की सहायता के कारण भी कृष्ण को अर्धेतर सम्झा गया है।^४

१ भण्डारकर श्रौतकण्ठ वल्लं में संश्लिष्ट है। पृ० १५ तथा ऋ० में कृष्ण अंगिरस ऋ० ८ ८५, ८९ और ८० सूक्तों के ऋषी हैं।

२ भण्डारकर की० ५ पृ० १५।

३ शिवधन श्रीशतकी ब्राह्मण की० १ पृ० ८०।

४ विष्णुस्य और सुदिस्य : (शकित) की० २ (१९५४) पृ० १५५।

राष्ट्र-साम्य की दृष्टि से ऋ० ब० में कृष्ण और अर्जुन^१ तथा 'अधर्षवेद्' में राम और कृष्ण^२ का उल्लेख मिलता है। किन्तु इनकी पृतिहासिकता पर संभवतः अधर्षवैपश्य के कारण विद्वानों ने विचार नहीं किया है। डॉ० गोद ने भाष्यकारों के आधार पर ऊपर वाले कृष्ण-अर्जुन का तात्पर्य राठ और दिन से माना है।^३

उपयुक्त तथ्यों से वैदिक साहित्य में कृष्ण नाम के व्यक्ति का अस्तित्व निमदिश्य है। इन कथनों में मुख्य रूप से तीन प्रकार के कृष्ण विदित होते हैं। प्रथम तो है दे कृष्ण जिन्हें कृष्ण आंगिरस कहा गया है। दूसरे कृष्ण कृष्णासुर के रूप में आर्येतर संस्कृति से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। भागवत कृष्ण के महा इन्द्र से इनकी सजुता और पुत्र के उल्लेख से स्पष्ट है कि किसी न किसी न रूप में भागवत कृष्ण से इनका भी पत्तिकथित सम्बन्ध रहा है। तीसरे कृष्ण का उल्लेख अर्जुन के साथ मिलता है। 'महाभारत जैसे विशालकाय ग्रंथ में भी अर्जुन और कृष्ण का यह साहचर्य प्रसिद्ध रहा है। अतः आखिरी अर्जुन और कृष्ण का सम्बन्ध 'महाभारत' के अर्जुन-कृष्ण से माना जा सकता है।

इनमें प्रथम कृष्ण आंगिरस का सम्बन्ध 'द्वान्द्वोरपोपविपद्' के प्रसंगों के आधार पर विद्वानों ने गीता-कृष्ण से स्थापित किया है। क्योंकि 'द्वान्द्वोरप' के अर्थ से उपदेश 'गीता' के अर्थों से पर्याप्त साम्य रखते हैं।

इन तीनों कृष्णों के अध्ययन के पश्चात् यही निष्कर्ष निष्कास्य जा सकता है कि काकाम्तर में पौराणिक पद्धति से इनके पृथीकरण का प्रयत्न किया गया होगा।

वासुदेव-कृष्ण

किन्तु महाभारत के नायक वासुदेव-कृष्ण के वासुदेव से सम्बन्ध का अनुमान का ३, १०, १ में कह गये देवकी-पुत्र कृष्ण से किया जा सकता है। यद्यपि मंड्यारकर ने कृष्ण-वासुदेव से सम्बन्ध का प्रबल आधार बातों को माना है। उनके मतानुसार वासुदेव कृष्णापन गोल में उत्पन्न हुए थे। अतः वे कृष्ण भी बने जा सकते थे।^४ जो हो अष्टाध्यायी ३, ३ १८ में प्रयुक्त 'वासुदेवा

१ ऋ० ब० १ 'महरन कृष्णमहरजुनं च विपुर्ने रकसी वैधामि'।

२ अधर्षे सं १ ११ १ 'अर्णं वाजास्वीकषे राये कृष्णे अतिक्रिन् च ७'

३ ऐस्तेयटल भाष्य अर्जुन वैश्वविजय (सं १५५४) पृ० १५९ ।

४ मंड्यारकर श्रौ० बी० ४ इ० ११ ।

संज्ञाओं का भी नाम होता है। क्योंकि 'गीता' में कृष्ण ने अपने को बुद्धिमानों में वासुदेव और पंडितों में अथर्ववेद (अथर्व) कहा है। वासुदेव-कृष्ण 'महाभारत' के प्रमुख पात्र हैं पर मन्थित 'महाभारत' में इन्हें पारायण या विष्णु का अवतार माना गया है।^१ तै० ब्रा० १, १, ६ एवं महा० ना० उ० ३, १६ में वासुदेव पारायण विष्णु एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि कृष्ण के स्वीकरण के साथ-साथ वासुदेव पारायण और विष्णु का भी एक ही पर्वान्त के रूप में साम्प्रदायिक सम्बन्ध के प्रचार हो रहे थे।

प्रारम्भिक 'महाभारत' में इन्हें कुछ विद्वानों ने केवल मानव मात्र माना है।^२ उनके मतानुसार बाद में चककर कृष्ण को देवी रूप प्रदान किया गया। परन्तु बीच के अनुसार 'महाभारत' में वे सदा ईश्वर माने गये हैं।^३ इस प्रकार महाभारत-कृष्ण के देवत्व को लेकर विचारकों में पर्वान्त मतभेद रहा है।

साम्प्रदायिक

फिर भी अनेक विचाराधीन प्रमाणांक आधार पर अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि कम से कम ई० सद् की चौथी या पाँचवीं शती पूर्व ही श्रीकृष्ण वासुदेव देवता का ही रूप में नहीं प्राम्प्य के अपितु इससे सम्बन्ध कोई भक्ति सम्प्रदाय भी प्रचलित था। डा० वासुदेव धरण अग्रवाल ने अष्टाध्यायी ३ ३ १८ में प्रयुक्त वासुदेव और अथर्व के रूप में भक्ति का संकेत माना है।^४ क्योंकि पतञ्जलि के अनुसार वासुदेव केवल अथर्व का ही नाम नहीं है अपितु कृष्ण का व्यक्तिगत नाम है जिसके पक्ष वासुदेवक कहे जाते थे।^५ पतञ्जलि में 'वक्ति वचन' और 'कंसवच' इत्यादि शब्दों के अन्वय का उल्लेख मिलता है।^६ इससे दूसरी शती ईसा पूर्व विष्णु और कृष्णकी अवतार-कथानों के प्रचार का पता चलता है। डा० अग्रवाल ने पतञ्जलि के भाष्यों में उपलब्ध सूत्रों के आधार पर कृष्ण के 'स्युत रूप' तथा केशव और राम के संस्कार का

१ शिववा देव मोन दू पश्चिमि, वासुदेव धरण अग्रवाल १० ३५८।

२ गीता १ ३०।

३ पारायण विष्णु महाभारत वासुदेव नामि। नवी विष्णु प्रथोदवाद।

और महा १, १७, २५१।

४ १ ब्रा० ना० २० कि० पञ्चर ५० ५८।

५. ना० ना० २० कि० पञ्चर ५० ५९ में प्रयुक्त कोष का मत।

६ शिववा देव मोन दू पश्चिमि ५० ३५८।

७ वही ५० ३५।

८ वही ५० ३५९।

उल्लेख किया है। 'कौटिल्य के अर्थशास्त्र' १३, ३ में डा० अमरावट के अनुसार कृष्ण और कस-कया का उल्लेख तो है ही ११ १२ में अमरावटिता विष्णु के मंदिर का भी पता चलता है।^१

श्रीकृष्ण रावतूत मेगरथनीज (ई० पू० चौथी शती) ने शीरसेन प्रदेश में हेरेविलम (कृष्ण) की पूजा और वहाँ के प्रसिद्ध मेघोरा (मधुरा) और क्येसोवारा (कृष्णपुर) नाम के दो शहरों का उल्लेख किया है।^२

चीनों के 'अरिशातक' में उपसागर और वैशगम्भ के दो बड़े पुत्रों का नाम उल्लेख और वासुदेव बतलाया गया है।^३ चीनों के 'उत्तराध्ययन सूत्र' उपदेश २२ में वासुदेव, अश्विपुत्र राजकुमार का और 'ब्राह्मण उपांग' में कृष्णवर्षी कृष्ण वासुदेव का उल्लेख हुआ है।^४ परन्तु चीनों और बीजों के उक्त उल्लेखों से कृष्ण के साम्प्रदायिक रूप का स्पष्टीकरण नहीं होता।

फिर भी ई० पू० दूसरी शती के बेसनगर के शिलाखेदों में श्रीकृष्ण के भागवत धर्म का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अपने को मानवत करने वाले श्रीकराज हेटियोंडोरा ने वैश्वामित्र वासुदेव की प्रतिष्ठा में गडग स्तम्भ का निर्माण कराया था। वहाँ के शिलाखेदों से उसका भागवत होने का पूर्णतः पता चलता है। श्रीराय चौबरी के अनुसार उस शिलाखेद के पद्य से तत्प 'इन्द्रयोग्य' के शीर अंगिरस एवं 'गीता' के कथनों से साम्य रहते हैं।^५

इसके अतिरिक्त ई० पू० के गोमुढी और मानघाट गुफा के शिलाखेदों से संदर्भ और वासुदेव की पूजा का पता चलता है।^६

उक्त उद्धरणों के आधार पर ३ वीं शती ई० पू० से ही कृष्ण के पूज्य रूप एवं साम्प्रदायिक विकास का अनुमान किया जा सकता है। साथ ही राय चौबरी की मान्यता के अनुसार 'इन्द्रयोग्य', 'गीता' और बेसनगर के शिलाखेदों के साम्य पर विचार करते हुये यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सातवीं शती ई० पू० से लेकर ई० पू० तक जिस कृष्ण और उनके धर्म का प्रचार हो चुका था, वे कृष्ण महाभारत के नेता वासुदेव कृष्ण ही थे।

१ फिर भी वैदिक कृष्ण उपनिषद्-कृष्ण महाभारत-कृष्ण, द्वारका-कृष्ण,

१ वही पृ ३६ ।

२ वही पृ० ३६ ।

३ मण्डारकर श्री० वरध श्री० ४ पृ० १३ ।

४ मण्डारकर श्री० वरध श्री० ५ पृ० ४ ।

५ म्बोरी देव वाङ्ग गुजर देव श्री० १ पृ० १३३ ।

६ वही हिस्ट्री ऑफ बेन्गल ऐक्ट (राय चौबरी) पृ० ५९, ६० और वैष्णविकम पृ० ६

क. वैष्णविकम, १९५६ अं० ५० क-८ ।

गोटा-कृष्ण और गोकुल-कृष्ण, के ऐक्य की समस्या एक स्वतंत्र धर्मिकता की ओर इशारा करती है। जहाँ तक 'महाभारत' और हारकाकृष्ण के ऐक्य का प्रश्न है श्री युसुफ़कर ने बर्पास विचार और विमर्श के पश्चात् 'महाभारत' और हारका कृष्ण को एक ही माना है।^१

गोपाल कृष्ण

दृष्टि बसी बासुदेव कृष्ण और उनके धर्म के प्राचीन उल्लेखों के हाते हुए भी मध्यकाल में त्रिघ गोपाल कृष्ण का और राधाकृष्ण का तत्कालीन श्रीकृष्ण सम्प्रदायों से सम्बन्ध दिखाई पड़ता है, उनका बासुदेव कृष्ण से क्या सम्बन्ध है। इस पर प्रायः विचारकों में मतभेद रहा है। मतभेद का मुख्य कारण संभवतः बासुदेव कृष्ण और गोपाल कृष्ण के प्राचीनतम सन्दर्भों का अभाव है।^२ विशेषकर 'महाभारत' में द्वापे युगे श्रीकृष्ण का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता।^३

कुछ विद्वानों ने वैदिक साहित्य में, दृष्टि, राधा जन्म, गोप, रादिषी, जैसे तत्सम्बन्धी उपनिषदों को खोजने का प्रयत्न किया है।^४ श्री राम चौबरी के मतानुसार ऋ० ५, ५२ १० के अनुसार पशुना तट गो क स्थिं प्रतिद्व रद्वा है। साम ही सी० ३ ११ ५, ३ और 'शैमिनीय ब्राह्मण' १ ६ १ में 'गोपाल कार्ष्णेय' नाम के एक शिक्षक का उल्लेख हुआ है।^५ इन्होंने ऋ १, १२, १८ में प्रयुक्त 'विष्णुरग्रेषा क माम गोविंद, गोपाल गोपेन्द्र क सम्बन्ध-विकास का अनुमान किया है। क्योंकि ऋ० १, १५४, ६ में विष्णु का अतिम पद उस स्थान में निवास करता है जहाँ सींगवाकी और भाग्ये वाली गर्भे रहती हैं। 'बीशायन धर्म सूत्र' ११ ५, १४ में विष्णु को गोविंद बामोदर

१ श्री गौरी देव नाम पुस्तक देख जी० १ पु० ११३ में उद्धृत एकका मत।

२ मण्डाकर जी० ५० जी० ४ पु० ४५।

३ बर्षि मद्र० १ ३८ ४२ में 'शेविन्द हारकावासिद् कृष्ण योवजन विव वैते वस्त्रैक विच्छेते हैं किष्णु जी शुद्धकर द्वारा सम्पादित 'महाभारत' में वर अक्ष मूक में व होकर बरवती अक्षों में दिखा गया है।

४ 'दृष्टि' ऋ १ १५४, ६, 'राधाजी पदेः ऋ० १, १०, ५, 'नवामय तत्रं वृद्धि कृष्णुव राधो अदिका ऋ० १, १० क, 'वास वाली यदि योवा अतिवता' ऋ० १ १५ ११ व सूत्रका दृशवापु पूर्वी कृष्णत्वाय्ये अक्ष्ये विनादि, अर्ध ३ १५, ३ 'कृष्णात् पेरिन्दु' ऋ ८, ११, १३।

५ ज्ञानी हिन्दू ओक वेल्स टेक्ट ४ २८।

६ ऋ० १ १५४, ६ में आभात् तदुस्यवत्स दृष्णः परा वधवर्षति धृति।

कहा गया है।^१ इसक अतिरिक्त 'महामारत'^२ १२ ३२२ ७० में वासुदेव अपने अपने को गोविन्द कहत हैं।^३ गी० १ ३२ और २ ९ में 'गोविन्द' नाम आया है।

उपर्युक्त उपादानों से केवल कुछ नामों क अस्तित्व तथा विष्णु स इनक सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है। इनसे 'कृष्ण-गोपाक' और 'कृष्ण-वासुदेव' का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता। राय चौधरी के कथनामुसार कृष्ण-गोपाक की कल्पना पद्यपि वैदिक काळ से की गई है, फिर भी इसक विकास में धामीर जातियों का योग है।^४ मंडारकर ने 'गोविन्द' शब्द क मित्र धर्म के कारण गोपाक-कृष्ण का अस्तित्व ई० सन् क पूर्व होने में संदेह किया है।^५ किन्तु डा पुसकर ने पौराणिक कथाओं क पर्याप्त विरलेपन क पश्चात् गोपाक-कृष्ण और वासुदेव-कृष्ण को एक प्रमाणित किया है। उनक द्वारा प्रस्तुत कृष्ण की ऐतिहासिक कथा का सारांश इस प्रकार है। 'कृष्ण का जन्म तो हुआ मथुरा में परन्तु ५ गोकुल में नद पत्तोदा क द्वारा पाक गये थे। उनकी मायः सभी कीकायें ११ वर्ष के पूर्व ही होती हैं।^६ अतः उन्न और सामाजिक जीवन की दृष्टि से इनमें कुछ असमय नहीं प्रतीत होता। इसमें संदेह नहीं कि 'हरिषत' विष्णु और 'भागवत' की कृष्ण-कथाओं क वैष्णवीकरण और विद्यवीकरण का अत्यधिक मात्रा में प्रवृत्त हुआ है जो 'ब्रह्मवैवर्त', 'विष्णुधर्मोत्तर' आदि पुराणों में और अधिक उन्न रूप धारण करता है। कबल इसी आधार पर गोपाक-कृष्ण की ऐतिहासिकता को सखिग्य मानना असंगत प्रतीत होता है। काकिदास के मेघदूत ५, १५ में गोपाक कृष्ण की चर्चा ईलकर श्री मंडारकर ने ५वीं शती क प्रारम्भ तक इनक प्रचार-काळ का अनुमान किया है।^७ अतः कम से कम काकिदास के काल तक गोपाक-कृष्ण के अस्तित्व में संदेह नहीं होता।

राधा-कृष्ण

'हरिषत', 'विष्णु' और 'भागवत पुराण' में वर्णित गोपी-कृष्ण की कथाओं में

१ कर्त्तों हिरट्टी आक वैष्णव ऐक ५० ३४।

२ परी कहा गया है कि कृष्ण का सर्व प्रथम वना लयाने के कारण में 'गोविन्द' कहा जाता है। इससे गोपाक-कृष्णका सम्बन्ध सम्येदास्पद है।

३ अ० दि० ने से इ ४५। ४ श्री १० श्री० ४ ५० ५१।

५ दी म्बेरी देव वाच पुर्वलेख की १५ १२२।

६ अ० श्री० वल्लभ श्री० ४५ ३१।

राधा नाम की गोपी का उल्लेख नहीं हुआ है।^१ अतएव राधा और कृष्ण का सम्बन्ध भी विचारणीय प्रसन्न रहा है। राधा-कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख 'गयासप्तशती' और 'वंचतल' में हुआ है। 'वंचतल' में विष्णु रूप कोटिक से तथा 'गयासप्तशती' में कृष्ण से राधा का संबंध मिलता है।^२ इन दोनों ग्रंथों का समय विक्रम संवत् का प्रारम्भ माना जाता है। अतएव कंचक राधा नाम क चलते हुए कुछ लोग इन्हें परवर्ती मानते हैं।^३

इस प्रकार ई० पू० से लेकर विमर्श तक राधा-कृष्ण की जिन कथाओं एवं प्रसंगों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, उससे उनके ऐतिहासिक सम्बन्ध का पता नहीं चलता। अतः राधा-कृष्ण का सम्बन्ध परवर्ती और पौराणिक माना जा सकता है। गोपी-कृष्ण की कथा में एक विशेष आराधिता 'भारतवर्ष पुराण की गोपी का उल्लेख होने के कारण उससे राधा का विकास संभव मनीत जाता है।^४ जो वे गोप ने वैदिक राधा को कश्मीर का बाबक तथा सफ़कता-सद्विद्य यम आदि क्षत्रियों से सम्बन्ध माना है।^५ कर्जुहर ने संभवतः राधा पञ्चमियों में मान्य होना के कारण 'गोपाक तापनीय उपविषयों' में राधा का उल्लेख माना है।^६ किन्तु 'गोपाक पूर्व तापनीय' में राधा की अपेक्षा गोपीजन बहम और कविमयी के पर्याप्त उल्लेख हुए हैं।^७

अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से राधाकृष्ण का काक निश्चित करना अधिक कठिन विहित होता है। श्री कुंज गोविन्द गोस्वामी ने पहाड़पुर में प्राप्त ई० सन् १३वीं शती की एक पुष्पाक मूर्ति का उल्लेख किया है, जो भी दीक्षित के मत से कृष्णराधा की है। परन्तु राधा के परवर्ती होने के कारण अन्य विद्वानों ने भी मूर्ति के दक्षिणको या उत्तरभागा होने का अनुमान किया है।^८

१. सम्भवतः मम्मल की परम्परा में जाने वाले 'कृष्णोपनिषद्' और 'गोपाक पूर्व तापनीय' में 'तन्मन्त्राधिकारिकाय कुर्त' के अतिरिक्त राधा का उल्लेख नहीं हुआ है। गी० पू० पा० ३० में भी कृष्ण गोपीजन बहम हैं।

२. गयासप्तशती ५, काव्यभाषा : ५१ ५४ संस्कृत भाषा 'वंच कृष्ण गोपीयो राधिकारो अपनयन'।

३. तूर साहित्य सं० १९५३ में डा० द्विवेदी द्वारा राधा-कृष्ण का विकास पृ० १२ १३ पृ० १४।

४. भा० १ २० २८ अवतारप्रवृत्तौ मूलं भगवान् हरिरीश्वरः।

कनो विद्याय गोविन्दः मनीषामनवरः १६१।

५. २० अ० वे० ५० १३३ नोट में। ६. अ० का० १ ति० ५० १३०।

७. गोपाकीय तापनीय में प्रस्तुत तन्त्रों का अर्थ राधा से किया जाता है।

८. वैष्णविक्रम पृ० ४०।

श्री राधाकृष्णदास ने भी पहाड़पुर की कृष्णलीला सम्बन्धी मूर्तियों में राधाकृष्ण के प्रेमाकाश की मूर्तियों का उल्लेख किया है तथा उनका काल सृष्टी पानी के अन्तर्गत माना है ।^१

इसके कालक्रम और प्रचलित रसात्मक रूपों का ध्यान रखते हुए सृष्टी सती में राधा-कृष्ण की जिन मूर्तियों का उल्लेख किया गया है, वह अधिक असम्भव नहीं प्रतीत होता । क्योंकि नारद पञ्चरात्र के अन्तर्गत 'ज्ञानामृत सार' ११ ३ २७ में कहा गया है कि एक के ही कृष्ण और राधा का रूप ही गण्य ।^२ राधा-कृष्ण का यह उद्गम चैतन्य भादि मध्यकालीन सम्प्रदायों में माग्य रहा है ।^३ राधा-कृष्ण के रसात्मक रूप पर विद्वानों ने जिन सहस्रपात्री और तन्त्रपात्री शौद्रों का प्रभाव माना है^४ उसका उत्कृष्टकाण्ड भी लम्बामग यही पड़ता है । जिनके प्रभावानुरूप बैष्णव सहस्रयान में बाद में चरकर राधा कृष्ण की रति-कटि अपर्ष्व बन्दीदास और विद्यापति तथा बगावट के बादके कवियों में विशेष रूप से प्रचलित हुई ।

परन्तु मध्यकालीन सम्प्रदाय एवं तत्कालीन हिन्दी साहित्य में राधाकृष्ण के साथ ही गोपाक-कृष्ण का भी अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है ।^५ इस काक के पूरे ही भागवत^६ भादि पुराणों में श्रीकृष्ण का अवतारवादी रूप व्यापक प्रसार पा चुका था^७ और उन्हीं में एक ओर तो वे विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठ हुए और दूसरी ओर उन्हें भगवान और ब्रह्म से भी अभिहित किया गया ।

१ भारतीय मूर्तिकला पृ ११६ । २. मन्वन्तर की० वर्णन की० ४ वृ ५८ ।

३ वे वे दि० प्रतिष्ठापति पृ २२ आदि लोका ४ परिच्छेद ।

राधा कृष्ण एक आत्मारोच देह बरे । जन्मोन्व विष्णु रत आत्मारन करे ।
तथा पृ० १४ ।

४ कृष्ण राधा ऐसे तथा एक ही स्वरूप । कीनारत आत्मारिने बरे दोन रूप ॥

५. पूर्व मध्यकाल में दंयाक के राधाकृष्ण की परम्परा और दक्षिण के गोपाक कृष्ण की दो परम्परानों का अनुभाव किया जा सकता है । क्योंकि तत्कालीन युग में कोलायुक्त द्वारा रचित 'कृष्णकर्मोत्त' और 'हरिक्रीडाकृत' में सहस्रपात्री प्रभाव से आम्बुद राधा-कृष्ण की अथवा गोपाक कृष्ण अधिक प्रभाव है । 'हरिक्रीडाकृत' १ ६ के अनुसार वास्तव शैल्युक्त शैल्युक्त प्रौढ़ि आदि कृष्ण की पंचवा प्रकृत्य कोचये मसिद्ध है । 'कृष्णकर्मोत्त' में १, ४५ में प्रयुक्त 'वास्तव कथा काव्यिकः किञ्चोर' जैसे पर भीग मोदिद में नहीं मिलते ।

६ प० बी० को आर० को १० में 'कृष्ण प्रार्थने' शीर्षक निरण्य में 'मद्य' विष्णु 'वदम' हरिवंश मद्य वैवर्त 'भागवत', 'वायु' वैश्वभागवत 'अधि' और 'किम पुराण' के आचार पर इनके अवतार-रूपों की चर्चा की गई है ।

अंशावतार

भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ही अंशावतार के रूप में माने जाते रहे हैं। 'महाभारत' में वर्णित सामूहिक अवतारों के साथ इनके अवतार का उल्लेख हुआ है। वहीं य नारायण के अंशावतार कहे गये हैं।^१ कर्तव्य के अनुसार 'महाभारत' के द्वितीय संस्करण में कृष्ण को अंशावतार कहा गया है।^२ 'विष्णु पुराण' में परमेश्वर क रघुम और रवेत दो कंस कृष्ण और बलराम के रूप में अवतीर्ण होते हैं।^३ आगे चलकर उन्हें परमेश्वर का अंश कहा गया है।^४ 'मागधत' में 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' होने के अतिरिक्त वे कतिपय स्वर्गों पर अंशावतार अवतार गये हैं।^५

चंडर ने उन्हें 'गीताभाष्य' में अंशावतार कहा है।^६ श्री रामानुज ने अन्व अवतारों के साथ उत्कल विद्येय रूप से उल्लेख किया है।^७ श्री माध ने भागवत-तात्पर्य निर्णय में 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' का समर्थन किया है।^८

साम्प्रदायिक रूप

मध्यकाल में श्रीकृष्ण को लेकर भिन्न सम्प्रदायों की अवतारणा हुईं उनमें श्रीकृष्ण उपासक होने के कारण पूर्वावतार ही नहीं रहे अपितु स्वयं अवतारी ही परब्रह्म के रूप में गृहीत हुए।

लेखार्क

श्रीकृष्ण विम्बाई सम्प्रदाय के उपासक हैं। अपने रूप में वे शान्ति और तैति भाषि गुणों के विवास स्वाम, उत्पत्ति पावन सहार तथा मोक्ष के कारण चराचर में स्वास परम स्वतंत्र भसी और नंद-गृह को आहुति करने लगे प्रभु हैं।^९ वे ब्रह्मा, ब्रह्म और इन्द्र से सम्पन्नतुपापूजित तथा श्री कृष्णी

१ महा १ १७ २५१। २. कर्तव्य या का ई वि ५ ८७।

३ वि पु ५, २ ६०। वि० पु० ५, ७, ४८ तथा ४७, २४ ११०।

४ वि पु ५ ७, ४८ 'परं ज्योतिरचित्तव वसुधैव कुटुम्बकम्' और वि पु० ४ १४ ११।

५ मा १ ७, २६ में कृष्ण केन्द्र के और मा १ १ १ में विष्णु केन्द्र की गयी हैं।

६ गीता भाष्य भा ५ १४ 'अंशम कृष्णः क्विन् सम्प्रभुः।

७ श्रीभाष्य १, ४२ विम्बो दि माम रामकृष्णादि प्रातुर्जाव मन्तः।

८. भागवतम् बाल्यारण साक्षात् भगवान् इति।

यथायत तात्पर्य-निर्णय ५ १२२, २६, २६।

९ वैशाल्य तरण तथा ५० १ श्लोक १।

शान्ति कान्ति गुण नन्दिरं हरिस्वैवसहितव मोक्ष कारणम्।

स्वापिनं परम तात्वमधि मीमि बन्ध गृह चन्दन प्रभुम् ॥

देवी से मित्य सम्बन्ध द्वारा सेवित हैं। ये रस का संवेदन करने वाली भाषा का समान नहीं। गोपबाबा मित्य प्रेमाभिप्रायी श्री राविका देवी से चर्चित हैं।^१ श्लोक सात में इन्होंने सभी मूर्तों की अंतरात्मा कहा गया है।^२ इसके अतिरिक्त 'दशरथोकी' के चौथे श्लोक में इनके प्रति प्रयुक्त 'स्पृहागिन'^३ से स्पृह और अबतारी का तात्पर्य लिया जाता है।^४ श्री पुद्गोचमाचार्य ने उसका तात्पर्य अबतारों और अनन्त मूर्तियों से किया है।^५

शीघ्रसुप्त

श्री ब्रह्माचार्य के उपास्य देव श्रीकृष्ण, सच्चिदानन्द-स्वरूप व्यापक परब्रह्म हैं। इन्होंने श्रीकृष्ण व्यापक ब्रह्म के दो रूप माने हैं। सर्वज्ञात-स्वरूप अपर ब्रह्म और उससे विकृष्टण परब्रह्म।^६ उन्होंने बहुत से मनबादों की चर्चा करते हुये विकृष्टण अपर ब्रह्म को मायिक सगुण कार्य-स्वतंत्र प्रभुति देवों से अनेक प्रकार का बतलाया है। श्री ब्रह्माचार्य ने श्रीकृष्ण के अन्तर्गामी रूप का उद्देश्य करते हुये कहा है कि परमानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं। अपने अन्तर में आनन्द की उपलब्धि उन्हीं से होती है। अलिखित चेतना को सर्वांगीया ब्रह्म-रूप श्रीकृष्ण में ही इन्होंने स्थित माना है।^७

श्रीचैतन्य

चैतन्य सम्प्रदाय में मान्य श्रीकृष्ण का स्वरूप का पता 'कथुमागवतामृत'^८ से चलता है। इसमें रूप गोस्वामी ने श्रीकृष्ण का पर-रूप का स्थान में स्वयं रूप का प्रयोग किया है। जिससे तदेकात्म और आबन्ध प्रभुति अन्य रूप समझ माने गये हैं क्योंकि 'स्वयं' तो पर-रूप है और तदेकात्म उसीका सरस अन्य-रूप है और आबन्ध रूप आभिर्भाव्यात्मक तत्त्वों से युक्त है।^९

उपर्युक्त तत्त्वों से स्पष्ट है कि तत्कालीन सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के उपास्य रूप में गृहीत होने के कारण उन्हीं ही ब्रह्म या पाँचराशों के पर-रूप से

१ वैशम्पत तत्त्व सुभा ५ २ श्लोक ३।

मद्य स्तु सूरान्म लघितपवित्तं तमवाकिसालवा।

चर्चितं नव गोप वाक्या प्रेम भक्ति रस आदि माकवा।

२ वैशम्पत तत्त्व सुभा ५० ८ श्लोक ७। ३ निम्बार्दित्य दश श्लोकी ५।

५. निम्बार्दित्य दश श्लोकी ५ ११। ५ वे १० म ५० ५७।

६ संत बापी बहू कल्याण में सङ्कल्पित 'विश्वान्त मुक्तावली ५ ७६१-७६२ परम मद्य सु कृष्णो दि सच्चिदानन्दकम इत्यदि दिव्यं तदि सर्ववारीकं तस्मात् विमलानम्।

७ सं० वा कल्याण, विश्वान्त मुक्तावली ५० ७६१-७६२ श्लोक ५ ११ ११।

८. कथुमागवतामृत ५० ५ श्लोक ११-१२।

अभिहित किया गया। उनमें अवतारत्व भी पूर्ण मात्रा में विद्यमान है। किन्तु आगे चक कर रसिक सम्प्रदायों में इनका पैमिष्ठिक अवतार पक्ष गौण और बिल्कुल लीकार्थक वा रसात्मक पक्ष प्रमुख हो गया।^१

‘महाभारत से लेकर ‘रही सम्प्रदाय’ तक श्रीकृष्ण के रूपों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि सम्प्रदायीकरण होने के अनन्तर उपास्य-रूप की दृष्टि से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का विस्तार की अपेक्षा संकोच हुआ गया। उसमें बाह्य पक्ष की अपेक्षा अन्तर पक्ष की प्रधानता होती गई। उसे इस प्रकार देखा जा सकता है :—

महाभारत में—श्रीकृष्ण का क्षेत्र—सम्पूर्ण भारतवर्ष।

श्रीमद्भागवत में—उत्तरभारत।

मध्यकाशीन सम्प्रदायों में

वृद्धम—वज्र, द्वारका।

शैतन्य—वज्र।

निष्ठाक—बृहदाश्रम।

राधाब्रह्ममी—मित्य बृहदाश्रम निकुञ्ज केकि।

रही—निकुञ्ज केकि।

मक्त कथियों में अवतार-रूप

अवतारवाद की दृष्टि से मध्यकाशीन कवियों में प्रायः दो प्रकार के श्रीकृष्ण मिलते हैं। उनमें से प्रथम हैं पुरुष नारायण और विष्णु के नाम से अभिहित, शीरशायी विष्णु के अवतार कृष्ण और द्वितीय हैं श्रीकृष्ण या हरि, उपास्य मन्त्र के अवतार श्रीकृष्ण। डा० बीमदत्त गुप्त ने लिखा है कि “धर्म संस्थापन के किये जो अवतार होता है वह ऋग्वेदात्मक है। संसार को जानम्य देने के किये जो अवतार होता है वह उनका रस-रूप है। कृष्णावतार में इनके मतानुसार कृष्ण ने ऋग्वेदात्मक और रसात्मक दोनों रूपों से पुनः अवतार किया था”।^२ किन्तु उस अर्थ में उपास्य श्रीकृष्ण इतने व्यापक हुए कि विष्णु अवतारी इनके अंश मात्र रह गये।

विष्णु कृष्ण का अवतार पूर्ववर्ती, शीरशिक और प्रबोधनात्मक है। ‘भागवत ‘सुरसतार’ और बृहदाश्रम कृत ‘दत्तमस्कन्ध’ प्रायः तीनों में विष्णु का

१ भुवदास पन्थ १० ७ पृष्ठ १२।

रस-निधि रसिक किशोर। शक्ति सङ्घर्ष परम प्रवीण।

महाश्रेय रसभेद में रहन निरन्तर बीर।

२ बृहदाश्रम और वृद्धम सम्प्रदाय भाग २, पृ० ४ ४।

अवतार-रूप सामाम्यतः एक ही है। तीनों में पृथ्वी गौ-रूप धारण कर देवता और ब्रह्मा के पास जाती है और दूसरी मार्धवा सुनकर श्रीसाम्पीनारायण या विष्णु कृष्णावतार को सूचना देते हैं।^१ इस रूप में श्रीकृष्ण सूमार दूर करने क निमित्त आविर्भूत होने के कारण भसुरों और राजाओं क संहारक हैं। श्रीमत्सागवत के अनेक प्रसंगों में श्रीकृष्ण विष्णु या नारायण क सबघों के उद्देश्य हुए हैं।^२

पर-रूप हरि

किन्तु सूर में यह परम्परा अधिक स्पष्ट नहीं लक्षित होती। सूरदास ने अपने उपास्य देव परब्रह्म हरि^३ के ही प्रकृत्य सम्पूक्त अवतार लीलाओं या अवतारी कर्मों का गाव किया है। उसमें एक ओर तो उसके प्रयोगन हैं और दूसरी ओर उसी में सच्चिद्विद्य उसकी लीलायें हैं। फलतः हरि ही पांचरात्रों का पर है अन्तर्नामी है और ब्रह्मवादियों का निर्गुण और सगुण ब्रह्म है। 'सूरसारावली' में इस अधिगति आदि अनन्त अनुपम, अलक्ष और अविनासी ब्रह्म का वर्णन करते हुये कहा गया है कि वह पूण ब्रह्म प्रकृत पुरुषोत्तम त्रितय अपने लोक में विलास करता है जहाँ अविनाशर वृत्तावन भीर उनकी कुंभकलायें फैली हुई हैं। जहाँ वेद रूपी भ्रमर गुंजार करते हैं वहीं प्रिय और प्रियतम दोभों विहार कर रहे हैं।^४ इसी हरि पुरुष से सृष्टि या लीलात्मक अवतारवाच

१ (क) भा १० १ १९-२३।

(ख) सूरसागर जी० १ समा स पृ० २५७ पद ६२२।

वेदु रूप हरि पङ्क्ति पुकारो— 'हरि मर तव अवतारा।

(ग) बं० प्रं० दसम स्कन्ध पृ २३।

तव पद गाई सव हरि बरती— 'प्रपयहिर्गे प्रमु पून काम।

१ भा० २०, १ ६५, २२ २ ६८ १ २, ९-२, ३ ६ २० ३ ३२, २० ५, ३९ आदि।

२ 'सूरसागर' या 'सूरसारावली' में हरि नाम का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। जो श्रीकृष्ण इत्येव का वाचक है। हरि के अवतार के विषय में कहा गया है : अपने ब्रह्म आप हरि प्रसंगे पुत्रोत्तम निज रूप। नारायण मुवभार हरयो है अति नामन्व स्वरूप सूरसारावली पृ ६।

३ अविनाशि आदि अनन्त अनूतम अलक्ष्य पुरुष अविनासी।

पूतन ब्रह्म प्रकृत पुरुषोत्तम त्रितय त्रिज लोक विलासो ॥

आई वृत्तावन आदि भ्रमर कर्हे कुंभकला विलास।

उदें विहारय त्रिज प्रीतम लोक त्रिगम यह गुंजार ॥२

सूरसारावली पृ० १, पद २।

का आविर्भाव होता है।^१ सूरदास ने हरि को चतुर्भुज विष्णु भी माना है।^२ वही अमर उधारण असुर संहारण, अंतरवामी, त्रिभुवन-पति हरि प्रकट हुआ है।^३ पूर्वकाष्ठ में किये हुए एक एक चक्ररत्नरूप वह अवतीर्ण हुआ है।^४ वह अक्षिप्त विभक्त का आधार और प्रज्ञा भादि का सूक्ष्मरूप है।^५ प्रज्ञा शिव समकादि भी जिसका अंत नहीं पा सक वह भक्तों के किये वाला प्रकार के देव चारण करता है।^६ शिव, समकादि और शुकादि के किये जो हरि आगेपर है वही अवतरित हुआ है।^७

अन्तर्वाची

पर-रूप के अतिरिक्त सगुण साहित्य में अन्तर्वाची रूप श्रीकृष्ण उपास्य का एक विशिष्ट रूप माना गया है। आगम और विगम के भक्त रूपों के साथ सगुणवादी कवियों ने अन्तर्वाची का आरोप भी श्रीकृष्ण पर किया। सूरदास कहते हैं कि जो प्रभु भादि समातम परमज्ञ प्रभु हैं, जो अन्तर्वाची रूप में ब्रह्म-व्यंज में व्याप्त हैं वही तुम्हारे यहाँ अवतरित हुये हैं।^८ सूरदास ने 'अन्तर्वाची' शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है।^९ इन्होंने विशेषकर 'अन्तर्वाची' का प्रयोग मय की बात आचने वाले के किये किया है।^{१०} गम्बदास के अनुसार प्रज्ञा से लेकर चौथों तक वह सर्वान्तर्वाची है।^{११} गोपियों के चक्र में कड़ा होने का तात्पर्य अन्तर्वाची श्रीकृष्ण बहुत शीघ्र समझ लेते हैं और एक के भीतर उनको दर्शन देते हैं।^{१२} जिसका भादि-अंत नहीं है, वेति-वेति

१. श्रेष्ठ श्रेष्ठ भित में आर्य सृष्टि करन विस्तार।

अपने आर करि प्रकट किनी है इरी पुन्य अवतार ॥

सूरदासजी ५० १ वही पद १।

२. सूरदास पर १५३४।

३. कीटि काक-स्वरूप सुन्दर श्रेष्ठ न मानवमेव।

आरि मुन्य विहि आरि आनुय निरधि के न पत्वाठ ॥

सूरदास पर १११ इति सुख वैशि ही वसुदेव।

४. सूरदास पर ११२ अन्तर्वाची वृत्त तप श्री कृष्ण।

५. सूरदास पर १११। ६. सूरदास पर १११। ७. सूरदास पर १८७।

८. भादि समातम परमज्ञ प्रभु ब्रह्म अन्तर्वाची।

जो तुम्हारे अन्तर में आरि है, सूरदास के स्वामी व सु ५४ ७०४।

९. सूर इवाम अन्तर्वाची स्वामी। सु ५ ८७०।

इसके अतिरिक्त पर ८०७-८१४, ८८२ १५९९।

१०. सूर ७४ ८८२ सूरदास प्रभु अन्तर्वाची स्वात्मि मय की वाणी।

११. ५० प्र० ५० १९, १७ अन्तर्वाची कीटि की व सर्वान्तर्वाची।

१२. प्रभु अन्तर्वाची वह, वाणी इन कारण कथ सीरे।

मय मय प्रभु अन्तर्वाची कीटि तपनि श्री प्रेम ॥ सु० पद ११८९।

कह कर जिसको निगम गाता है वह अन्तर्धामी प्रभु सबका स्वामी है। इसके अतिरिक्त जनक पदों में 'सबके अन्तरधामी हैं हरि' १६०२, 'तुम्ह हो अन्तरधामी कन्होई' १६४० 'सूरदास प्रभु अन्तरधामी' १६६४ आदि से श्रीकृष्ण के अन्तर्धामी रूप का स्पष्ट पता चलता है। वे कन्होई प्रेम के बंध में होकर अन्तर में प्रकट होते हैं।^१ नन्ददास ने कृष्ण को 'अन्तरधामी सौँवरो'^२ कहा है। अन्तर्धामी अपनी ब्रह्मा के चरुते सभी को प्रेरित करते हैं।^३ वे नैति नैति पुत्र नारायण स्वामी अस्त्रिज लोक के अन्तर्धामी हैं।^४ वे सगत जनक और सब जतुनों के अन्तर्धामी हैं।^५

श्रीकृष्ण-कीर्त्या की चर्चा करते समय तत्कालीन कवियों ने उसी क्रम में श्रीकृष्ण के अवतारत्व को प्रदर्शित करने के निमित्त विभिन्न उपादानों का उपयोग किया है। उनमें अधिकांश उपादान तो परम्परा से प्रचलित होने के कारण इस आक तक रुढ़ हो गये थे। कुछ उपादान विशिष्ट सम्प्रदायों की उपज हैं और कुछ उनकी स्पष्टिगत धारणाओं की देन हैं।

जागतिक

श्रीकृष्ण को अवतारी पुरुष सिद्ध करने के क्रम में सर्वप्रथम 'महामारत' की कथा में ही अनेक स्थलों पर उनका बाह्य या भौतिक जागतिक रूप को प्रदर्शित किया गया है।^६ 'गीता'^७ और 'भागवत' में^८ यह परम्परा सर्वत्र वर्तमान रही है। अतः 'भागवत' के अनुयायी सूरदास और नन्ददास ने इनका प्रयोग किया है। 'श्रीमद्भागवत' ही की परंपरा में सूरदास ने कतिपय स्थलों पर आम्पन्तर या बाह्य जागतिक रूपों की चर्चा की है। उदाहरण के लिये सिद्ध कृष्ण के मुक्त में यद्योदा अस्त्रिज विश्व की देवता हैं।^९ कृष्ण करोड़ों प्रह्लादों को

१. सूरदास पद १७४८—मन्तर ते हरि प्रकट पद।

रहत प्रेम के बन्ध कन्होई, नृपतिनि की भक्ति हर्ष दय।

२. मं. प्रं. पृ. १६५ पद ३।

३. मं. प्रं. पृ. २५६—अन्तरधामी अपनो धर्म ता हरि मेरे सबकेधर्म।

४. मं. प्रं. पृ. २७१—तुम नहि महि नारायण स्वामी। अस्त्रिज लोक के अन्तर्धामी।

५. मं. प्रं. पृ. ३१२—जगत जनक तुम तुम, तुम स्वामी।

सब जंतुन के अन्तरधामी ॥

६. महा. ५. १११, ५-११। ७. गी. ११. अ. १।

८. भा. २. अ. ११। भा. २. अ. ३७-३८।

९. सूरदास पद ८७१ और ८७४।

८७१—अस्त्रिज प्रह्लाद-खंड की महिमा विपारारं मुक्त माहि।

८७४—माही के निज मुक्त विपरायो तिहूँ लोक राजधानी प

अविद्यम आरमसात् कर लेते हैं।^१ तथा इनके विराट शरीर के एक-एक रोम में करोड़ों प्रज्ञांड विद्यमान हैं।^२ काकियनाग के कम पर पैर रखने वाले श्रीकृष्ण के प्रत्येक अंग के रोम-नाम में करोड़ों महाप्रब वर्तमान हैं।^३ श्रीकृष्ण के सहचारी अहीर गोवर्द्धन पूजा के समय सहस्र मुखाओं से युक्त इनके प्रत्येक अंग को देखते हैं।^४ एक ओर तो वे गोवों से बातें करत हैं और दूसरी ओर सहस्रों मुखाएँ धारण कर भोजन कर रहे हैं।^५

इस प्रकार एक अणुकरणों के द्वारा अम्य प्रसंगों में भी कबि उनका ईश्वरत्व को सजा रखते हैं। नंददास ने भी अष्टिक प्रज्ञांड और विष को उन्हीं में रिखत कहा है।^६ फिर भी इस काल के कालों में श्रीकृष्ण पूर्वावतार की अनेक उपासक अष्ट अष्टिक माने गये हैं।

अवतारी

उपासक हाथ के कारण उन्हें अवतार के स्थान में अवतारी, लंगी वा अंछी कहा गया। अम्य अवतार विष्णु की अवेका इनके अवतार बताए गये। श्रीकृष्ण के इस अवतारी रूप की विशेषता विष्णु के अवतारों की श्रीकृष्ण के अंश रूप में मान्य होने पर तथा कहीं-कहीं अपने अवतारत्व का प्रतिपादन करने से सिद्धि होती है।

अवतारी श्रीकृष्ण स्वयं विष्णु के समान अनेक अवतार धारण करते हैं। सूरदास ने बाककृष्ण का वर्णन करते हुए इनके पूर्व अवतारी कार्यों और शक्तियों का उल्लेख किया है। जिस प्रभु ने मीन रूप में एक से गेहों का बदार किया, कृम के रूप में पर्वत धारण किया बराह रूप में पृथ्वी का अपने हाथों पर पुष्प के सहस्र रत्ना, जिस शक्ति से द्विरणकशक्ति का इहव काट दिया, बकि को बाँचा, विमों को तिरक दिया और रामय के तिर करते थे ही अथ हम बैहली पर चढ़ नहीं पात।^७

‘सूरसारावली’ में कहा गया है कि जब-जब ज्ञानक प्रकट हुये हैं तब-तब

१ सूरसागर ४ ७४४-श्लोके प्रज्ञांड करत विष जोनर हरत विकल्प न कारै।

२ सूरसागर ४ ११ ५-एक एक रोम विराट विष तन श्लोके श्लोके प्रज्ञाण्ण।

३ सूरसागर १४ ११८५-श्लोके महाप्रब रोम प्रति आवि ते पर कम प्रति दोहरी।

४ समजि बैदी प्रम्य मूर्ति सहस्र मुखा पतार। सूरसागर १४ १४५४।

५ सहस्र मुखावरि अत वैत है, शक्ति करत शिषमि सी बात। सूरसागर १४ १४५६।

६ अष्टिक महाप्रब विष जगदी में बाता। न प्र ६० १७५ १४ ११।

७ सूरसागर १४ ७४५।

श्रीकृष्ण ने अवतार धारण कर उनका संहार किया।^१ यहाँ वर्जित चौबीस अवतार श्रीकृष्ण के विहित होते हैं।^२ सभी अवतारों का वर्णन करने के उपरान्त सुरदास कहते हैं कि भ्यास रचित पुराण के अनुसार ये सभी अवतार श्रीकृष्ण के वर्णन किये गये।^३ अक्ष और कलाओं के रूप में अितमे अवतार हैं सभी कृष्ण के हैं।^४

इस प्रकार विविध प्रकार के अक्ष और कला-रूप में आविर्भूत होने वाले अवतारी राम-कृष्ण सदा ब्रह्मसंहार में विहार करते हैं।^५ श्री भद्रदास के एक पद के अनुसार अवतारी रूप में वे सब विभूतियों के धारक और जगत के भाग्य हैं।^६ श्री हरिभ्यास जी के एक पद में श्रीकृष्ण के अवतारी रूप का पता चलता है। उनके अनुसार ये जगदीश असुर संहारण विपति विहारण और ईशों के ईश हैं।^७

श्री भुवदास ने कहा है कि ये श्रीकृष्ण उस वृद्धाविपिन में विहार कर रहे हैं जो चारों ओर से सभी अवतारों द्वारा संवित हैं।^८

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण-मठ कवियों ने श्रीकृष्ण के जिस अवतारी रूप का प्रतिपादन किया है उसके अनुसार वे केवल अवतार ही नहीं धारण करते अपितु नित्य वृन्दावन में अपने विविध अवतारों के द्वारा सेवित भी होते हैं। यहाँ ऐसा विहित होता है कि प्रस्तुत अवतारी रूप में श्रीकृष्ण अपने पर रूप

१. अक्ष हरि माया ते ब्रह्मण प्रकृत मय हैं जाय ।

उत्त तव हरि अवतार कृष्ण मे कीर्ती असुर संहार ॥

सो चौबीस रूप निज अक्षित वर्णन काठ विचार ।

सूरसारावली पृ० २ पद ३५-३६ ।

२. वह अनेक अवतार कृष्ण के हो करि सके बखान ।

सोह सुरदास मे बरमे जो कहे भ्यास पुराण ॥ सूरसारावली पृ० २३ पद ३५३ ।

३. अक्ष कला अवतार श्याम के कवि वे कह्य न आवै ।

सूरसारावली पृ० २३ पद ३५४ ।

४. वर्ज्य कला अवतार बहुत विधि राम-कृष्ण अवतारी ।

सदा विहार करत ब्रह्मसंहार परसधन सुखकारी ॥ सूरसारावली पृ० २३ पद ३६ ।

५. अवतारी अवतार-वरन अक्ष जिनके विभूती ।

इह सब जानम के अकार जग विहि की कनि ॥ मं० पृ० ४४ ।

६. भद्रदास भ्यास जी पृ० २ पद ३० ।

अक्ष श्रीकृष्ण अक्ष श्रीकृष्ण अक्ष श्रीकृष्ण, अक्ष जगदीश ।

असुर संहारण विपति विहारण इसन हू के ईश ॥

७. चतुं ओर वृन्दावन स्थित सब भोगार ।

करत विहार विहारि तई मानन्व रंग विहार ॥ भुवदास पृ० २८४ ।

का उपास्य रूप में ही मिल्ब बुम्दाबद में रिक्त है। उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने के लिए कहा गया है कि उनके अवतार भी उनकी सेवा करते हैं।

अवतार-परिचय

श्रीकृष्ण लीला-गाम में कवियों ने एक ओर तो उनकी श्रेष्ठता का गाव किया है और दूसरी ओर उनके अवतारत्व की सीमासा भी प्रस्तुत की है। इस दृष्टि से कुम्भजदास की 'राम लीला' और चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवि माधोदास के 'संवाक्य शतरो' उल्लेखनीय हैं।

'दामलीका' के प्रसंग में राम माँगते समय श्रीकृष्ण अपने अवतारी रूप का प्रदर्शन करते हैं। वे द्रोपियों को संबोधित करके कहते हैं तुम शंभार गोपी हो, मुझे क्या समझा रही हो। शिव, विरंचि, परमकादि और विगम मेरा बंध नहीं पा सकते। मैं मर्त्यों की इच्छा एवं कर्तव्य और कस, करी आदि तुम्हों का सहार करूँगा।^१

मंद्दास कृत 'अमर पीठ' में द्रोपियों श्रीकृष्ण के स्वभाव पर विचार करते समय प्रसंगवत् उनके वर्तमान एवं पूर्वअवतारी रूपों की चर्चा करती है। इनकी विस्तारता के प्रसंग में वे कहती हैं कि रामावतार में इन्होंने विद्वान्मित्र का पक्ष कराने वाले समय ताडुका को मार डाला था।^२ वे जनमाही पकिराजा से भूमि माँगने लगे गये बामन रूप में किन्तु केते समय इन्होंने पर्वताकार रूप धारण कर लिया।^३ इन्होंने परशुरामावतार में अपनी माता को मारा और जज्ञियों का सहार किया^४ और मुसिह के रूप में हिरण्यकशिपु का शरीर विदोर्ष किया।^५ सिद्धपाठ विचारे का क्या दोष जो इन्होंने कृत करके उसकी

१ तुम ही प्याभि, गंधरि कहा मोछी तुमुकावे।

तिव विरंचि लखकारिच विदम मेरी बंध म बावे ॥

मकवि को इच्छा करी दुहनि को शंभार।

बंध के बरि मारि हौं सो बामि क्यारी वार ॥

कुम्भजदास संमर ५ ११ पर ८।

२ ब्रह्म करे रो काम गरि जने बकि कारे।

रामचन्द्र के रूप मारि कीची मिदुगारे ॥

कम्प करबन बाग हैं रिशामिच लमीर।

मग में मारी ताडुका एतुबही कुलदीप ॥

न० घ० अमरपीठ ५० १८०, १७ मा० १ ५७ की परम्परा में।

३ नं० अमरपीठ ५ १८१ ३८, बामन।

४ नं० अं० अमरपीठ ५ १८१ ३५ परशुराम।

५ नं० अं० अमरपीठ ५ १८१ ४० मुसिह।

बुद्धिमद् इव स्त्री। 'सूरसागर' के दान स्त्रीका प्रसंग में श्रीकृष्ण अपने तत्कालीन भवतारी कायों का स्वर्ण उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं—अथा बभ्रु सक्व पृथ कपी आदि राज्ञो का मारणा और गोवर्द्धन धारण करना यह तो मरा रुक्मकपण है।^१ इसी प्रकार बेछि क्रिसन रुक्मणी री' में रुक्मिणी ने अपने पत्र में उनक भवतारी कायों की खर्चा की है और वामन ब्राह्म, कूर्म और रामा बतार में किये गये उनके उदार-कार्य को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया है।^२

इस प्रकार इस काल में अनेक स्त्रियों पृथ प्रसंगों में श्रीकृष्ण अपने भवतार का हेतु और अपना स्वरूप बतलाते हुये कहते हैं—नन्द और यशोदा ने मुझसे इस भवतार के किये घर मांग किया था। वेहों क कथनानुसार गोकुळ में आकर मीने सुख दिया। मी क्रिमुचन पति—जल स्वक पृथ घट-वर में निवास करने वाला हूँ।^३ इस पृष्ठी पर असुर प्रबल हो गये हैं। मुनियों का कर्म उन्हेनें पुषा दिया है। अथा गावों और संतों के विमित्त मीने ब्रज में देह धारण किया है।^४

माघोदास क 'स्वाकिन शगरो' में इनके भवतारत्व का वैसा ही परिचय मिलता है। श्रीकृष्ण और स्वाकिनों की बातोंमें मी वामनावतार की खर्चा हुई है। श्रीकृष्ण कहते हैं—तुम गुजरी गवार हो और हम सारे ब्रज के राजा हैं। मीने तीन पग भूमि के विमित्त बलि क सिर पर पाव दिया था।^५

१ सं प्र० प्रमरणीय पृ १८१-१८२ ४१।

२ अथा बभ्रु सक्वा इने कैपीमुक कर मार।

भिरि गोवरणन कर बरबी बह मेरी करिकार।।

सूरसागर पृ ७१७ पद २०९७९।

३ बेछि क्रिसन रुक्मणी री पृ १५८-१६०, पद; ५९, ६१, ६२, ६३।

४ वर करिके मन्द मरि मभि मी पे वर कीम्हों।

बचन बेद वपु वारि' आर गोकुळ सुख कीम्हों।।

तुम कर। वामो वावरी हमक्रिमुचन पति वारै।

बी बल बक में वसी सो बर वर रही समारै।।

कुम्भनदास पर संग्रह पृ १३ पद १०

५ कवत नंद काविको।

अथन असुर अति प्रबल मुनीजन कर्म पुनाव।

पक भूतनि के देन देह वरि ब्रज में आर।।

कुम्भनदास पर संग्रह पृ १५ पद १४।

६ स्वाकिन शगरो सि० भा० प्र सं पृ० ५-६ पद १२।

तीनि पैंठ भूमिकरण हम बलि सिर वीबी वाव। तुन्दारे ई राज है।

श्रीकृष्णवतार

श्रीकृष्ण की लीला से सम्बद्ध बाळ, कीमार, पीरगंड और कैतोर्बे चार रूप गृहीत हुए हैं। सूरदास ने अपने एक पद में चारों लीलाओं का वर्णन तो किया ही है साथ ही कृष्ण के मझ और अवतार पद दोनों का अर्थ समन्वय भी किया है। सूरदास कहते हैं जो मझ जादि समाजन, अविनाशी, और सदैव पर-भट में स्वास है पुराण जिसे पूर्व मझ कहते हैं। मझ-सिख जिसका अंत नहीं जानते। जो अनाम-निगम से परे हैं, पछोया बसे गाढ़ में लिका रही हैं। जो पुरुष पुरातन अप तप, संवम और प्याम से परे है वह नरु के अंगन में ही रह रहा है। जो विना नेत्र ओम रसता, नामिअ और विना हान पैर का है। निम्ममर जिसका नाम है बही बर-बर में गोरस पुरा रहा है। जो बिराअर है बही गोपियों का रूप मिहार रहा है। जो बरा-भृत्य का माता या पिता जादि किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से रहित है। जाकियों के हृदय में जिसका निवास स्थान कहा जाता है बही पड़कों के पीछे-पीछे डोक रहा है।^१ जिससे अशिक घृष्टि पांच तरफों और पंचमूर्तों की उत्पत्ति हुई है तथा जिसकी भाषा सारे किंक को मोहे हुए है, सिख समाधि में भी जिसका अंत नहीं पाते बही गोपों की गाँवें बरा रहा है। जो नाराजन, अच्युत परमानन्द, सुश्रवायक और घृष्टि का कर्ता, पाऊक और संहारक है, बही खाटियों के संग लीला कर रहा है। जिससे काक डरता है वह मता द्वारा अकरु में बाँध दिया गया है। जो गुमातील है बही गोपियों के संग रास कर रहा है। जो निर्गुण और अगुन दोनों प्रकार के रूप धारण करता है और जन्ममात्र में अशिक घृष्टि को सुस करने की जमता रखता है बही बन-नीवियों में कुमी बना रहा है। जो रमा के द्वारा सेवित भगम जगोअर लीलाधारी है बही रावा का बसवर्ती और कुम्बिहारी है। व जन्मवासी बड़ मासी है जिसके साथ अविनाशी सेक रहा है। जो रस मझादिक के किप बुर्कम है वह गोडुक की गकिषों में बह रहा है। इस लीला को स्वयं गाविह ही जानता है।^१

उक्त पद के भाव से स्पष्ट है कि 'अवतार श्रीकृष्ण की लीलाएँ मझण से पूर्वतः सम्पूठ हैं। यह अक्ष सूरदास के 'लीला श्रीकृष्ण और उनका लीलात्मक रहस्यों का स्पष्ट परिचायक है।

श्रीपरमात्मन् इस कहते हैं कि परमज किन्मोहक मानव रूप धारण कर अवतार-लीलाएँ करता है। यह भागम्ब की निधि मन, नेत्र जादि सभी

भोर से आनन्द सं पूर्ण है। इन्होंने उमकी भवतार कीला में माग लेने वाले गो गोपी गोकुल मन्त्र, यज्ञोद्गा, आदि सभी को आनन्दस्वरूप माना है। उसका गाय बुराना, वेणु बजाना, नृत्य करना ईसबा, गोपियों क साथ राम करना आदि सभी भवतार-कीलाएँ मन्त्रों को आनन्द देने क विभिन्न कुभा करती हैं।^१ ब्रह्म च्द्र, इन्द्रादि देवता उमका चिंतन करते हैं। वह सबका स्वामी पुरुषोत्तम यह लीला भवतार धारण करता है।^२ इनक उपास्य श्रीकृष्ण एक भोर ती ब्रह्मा विष्णु आर महादेव तीन मुख्य देवताओं द्वारा सेवित हैं और दूसरी ओर बड़ी 'शाल, चूड़, मारग, गदा आदि से युक्त चतुर्भुज रूप धारण करते हैं। व हो गोपीनाथ राभिकावचन रूप में परमानन्द क उपास्य हैं।^३ हमसे स्पष्ट है कि परमानन्ददास ने श्री उपास्य श्रीकृष्ण क ही कीला भवतार रूप का गान किया है। श्रीकृष्णशाम ने अपने एक पद में तीनों लोकों में हमने वाले राम का मन्त्राय क घर में बिराममान कहा है।^४ श्री मन्त्रदास क अनुसार योगी लोग करोड़ों जन्म तक वन में जाकर जनेक प्रकार क पदों से उनके निवास क छिपे ब्रिज हृदय को स्वप्न करते हैं वहाँ

१ आनन्द ही निधि मन्त्रकुमार।

परमवन्द्य देव नराहन जपमीहन कीला भवतार।

जबनन आनन्द मन मई आनन्द कोवन आनन्द आनन्द पूरित ॥

गोकुल आनन्द गोपी आनन्द बंद बसोरा आनन्द कंद।

नव दिन आनन्द वेणु चरावत देव बजावन आनन्द कंद ॥

नृगतहमन कुलाहल आनन्द राधापति वृन्दावन चन्द्र।

हरसुनि आनन्द मित्र जन आनन्द रास विकास ॥

चरम कमल मकरन्द पाव को अकि आनन्द परमानन्द हल ॥

अष्टछान और ब्रह्म सङ्ग्रहाव भाग १ पृ ४२२ में उद्धृत।

२. ब्रह्म च्द्र इन्द्रादिक देवता नाष्टो कृत विचार।

पुरषोत्तम सबही को डाकुर इह कीला भवतार।

अष्टछाप और ब्रह्म सङ्ग्रहाव भाग १ पृ ४२२ में उद्धृत।

३ गोवि धावे देवाधि देवा।

सुन्दर इवाम कमल बल कोवन गोकुल नाव एक देवा।

तीन देवता सुख्य देवता ब्रह्मा विष्णु भव महादेवा ॥

के अदिदे सखक वादावक गुन विविध कोविधे सेवा।

मंस च्द्र मारंग गदावत रूप चतुर्भुज आनन्द बंश ॥

गोपीनाथ राभिका ब्रह्म नादि उरामन परमानन्दा।

अष्टछाप और ब्रह्म सङ्ग्रहाव भाग १ पृ ४२३ में उद्धृत।

४ राम राम रधि रछो वीनीक।

राम राम रमनीय धेव नर रावत मन्त्रगाव के ओक।

अष्टछाप और ब्रह्म सङ्ग्रहाव भाग १ पृ ४२८ में उद्धृत।

जनम लीका बाड़े ने मनुष्य-हीन ग्रहण की और जो जगत् को बसाने बाका है वही जगत् में बस गया ।^१

इस प्रकार आद्योपबन्धकाल में लीकयों भीकृष्ण उपवास ग्रहण की ही विभिन्न लीकयों के रूप में ग्रहण जाती थीं ; जिसमें एक ओर भीकृष्ण का सर्वोपरि उपवास रूप प्रतिबिम्बित होता था और दूसरी ओर उसकी मनुष्यान्वित लीकयों । 'मद्य' और 'अवतार मिश्रित लीकयों के नाम में सुरदास का अद्वितीय स्थान कथित होता है । 'सूरसागर' में अनेक स्थलों पर सुरदास सगुण लीकय-पद गाने के क्रम में प्रायः भीकृष्ण के उल्लेख करते हैं ।

इस लीकय-रूप में बाककृष्ण ने अक्षिक मङ्गल्य की महिमा को त्याग दिया है ।^२ पूर्वी जिसके तीन पैर में भी नहीं आ सकी उसे बसोड़ा बकबा सिखा रही है । जिसकी चितवन से कल बरता है उसे लज्जति दिखाकर घमकाती है । जिसका नाम करोड़ों जम का पूर करने में समर्थ है उसके जम को राई कीन से उतारती है ।^३ जिसका भार गिरि शूर्प, पूर, बसुर, और नाग चारण करने की कल्पना भी नहीं कर सकते उसने गोपियों का आचार बना रखा है ।^४ निराम और आगम जिसका जनम लुण्ठों का वर्जन करने में असमर्थ है उस प्रभु को बसादा गोद में लेकर मर-मर सुखदा रही है ।^५ वे परम कुसल और श्रीविद् लीका बर भीकृष्ण अपनी अमृतपूर्व

शुभिकम स्थान वरत यदि पावत करत विनोद उभ बाक्य मर ।

बासि जनमममम रस कारण की श्री द्वित हरिचंद्र मङ्ग लीक्य कर ॥

१. वैकिङ्किसव कर्मणी दी दि० ऐकैवमी, पृ० २५६ पद २७२ ।

लीक्यवरन मई मामुषी लीक्य जब कर्त्तव्य बरिबा जयन ।

२. अक्षिक मङ्गल्य खंड श्री महिमा सिद्धजा मादि सुरावत ।

सूरसागर पृ० २९६ पद ७२० ।

३. तीन पैर बाक्ये बरति में जाई । यदि बसोड़ा बक्य सिखारे ॥

बाकी चितवनि काकि उरारै ; यदि मरति कर लज्जति रिखारै ॥

बाकी बाय श्रीदि जम डारे । तलर राई खेन बनारे ॥

सूरसागर पृ० ३०५ पद ७४७ ।

४. श्री विदि कमठ सुरावत उर्षदि वरत न मन में सैकु डरे ।

शे मुक-शुचम-धार वरत कर मोचिन के आचार बरे ॥

सूरसागर पृ० ३०५ पद ७५९ ।

५. शुभ अचार निरतार वरत मादि कदि निगमायम बाबी ।

सूरदास मद्य का किय अक्षयनि चितै चितै सुखजनो ।

सूरसागर पृ० ३३ पद ७३२ ।

मुसकान से मम हर लेते हैं ।^१ इस अद्भुत लीला को जो जानता है वही जानता है ।^२ क्योंकि जो अर्थ धर्म काम धीर मोक्ष आदि चारों पदार्थों का दाता है वह माता उठ कर माता से माकन रोटी माँगता है ।^३ यह सब उन्हीं प्रभु की लीला है जिसे निगम नेति-नेति कहते हैं ।^४ जो निर्गुण ब्रह्म सगुण लीला-रूप धारण कर अवतीर्ण हुआ है, उसे नन्द अपना पुत्र समझते हैं ।^५ जो मूर्ति बल-बल में सर्वत्र व्याप्त है उसे पशोदा चुटकी देकर अपने अँगन में लधा रही हैं ।^६ अतः यह उसकी अचलार-लीला ही है कि जो अश्लिष विरव का भरण-पोषण करने वाले हैं व स्वाकिन क कौर से मृत हो हा माते हैं ।^७ जो प्रभु सनातन ब्रह्म हैं वे नन्द के घर में मो रहे हैं ।^८ जिसके चरणकमल तीनों लोकों को पवित्र करने वाले हैं वे बटि की पीठ पर हैं तथा काकिय नाग के कब पर सुय्य करते हैं ।^९ सब कुछ श्रीकृष्ण के मन की बात है । जो जो उनके मन में आता है वैसे ही वे माना प्रकार क रूप

- १ परम कृतक शोधित लीला नट मुसकानि मन हर लेत ।
सूरसागर, ना प्र स० जी २ पृ० ३२३ पद ७७२ ।
२. मूत्र प्रभु की अद्भुत लीला जिन जानी जिन जानी ।
सूरसागर ना प्र० स० जी १, पृ ३२४ पद ७७४ ।
- ३ अनभि मे माँषन जग जीवन वे माधन-रोटी ठडि प्राग ।
श्लोठत सूर स्वाम पुहुनी पर अपरि पदाराव जाके हाव ।
बारंबार विचारवि बहुमति यह लीला अवतारी ।
सूरसागर ना प्र स० जी १, पृ ३२५ पद ७७७ ।
- ४ सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति निगु गाऊ ।
सूरसागर ना० प्र० स जी १ पृ ३३६ पद ८४० ।
५. निर्गुण ब्रह्म सगुण लीलावर सोई लुग करि मायो ।
सूरसागर ना प्र० स जी १ पृ ३४९ पद ८८२ ।
- ६ जी मूर्ति बल-बल में व्यापक, निगम व शोबन चार ।
सो मूर्ति ते अपने अँगन चुटकी दे तु नचार ।
सूरसागर ना० प्र० स जी १ पृ ३८२ पद ९८२ ।
७. मूत्रास प्रभु निस्वर्म हरि सो स्वाकिन के कौर नवार ।
सूरसागर ना प्र स० जी० १ पृ ४२२ पद १८७ ।
- ८ मूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन सो लोचन मंद बाधरि ।
सूरसागर ना प्र० स० जी १ पृ ४३९ पद ११३३ ।
९. वे पर कमल कीक बन पावन बकि की पीठि बरे ।
जो बर कमल मूर के स्वामी, दन प्रति मृत्य करे ।
सूरसागर ना० प्र स जी १, पृ० ४५५ पद ११८९ ।

बताने करते हैं।^१ इस प्रकार मध्यकाश में छीका-गया की परम्पराओं में उनके प्रकृत को संपुष्टि करने का प्रबल सूरदास ने किया है।

प्रयोजन :—

इस काळ में अवतार और अवतारी रूपों से भी परे श्रीकृष्ण का वां रूप सर्वाधिक मान्य हुआ, यह वा श्रीकृष्ण का उपासक रूप। इसके कलस्वरूप बनक अवतार-रूप से सम्बद्ध प्रायः सभी प्रयोजनों में उद्धार की प्रकृति सर्वत्र विद्यमान है। इसमें सम्बेह नहीं कि परम्परागत प्रयोजनों की भी कदियों न पयेह बर्णों की है किन्तु वे उद्धारवादी मन्त्रों से प्रकृ नहीं हो सक है। इसी से असुर-संहार को विष्णु के अवतारों का प्रयाण प्रयोजन रहा है,^२ यह असुर उद्धार के रूप में परिणत हो गया,^३ तथा असुर-अवतार संघर्ष का मुख्य प्रयोजन भक्तों का रंजन करना रहा गया।^४

अतः श्रीकृष्ण अनेक जन्मों में मत्त के निमित्त आभिर्भूत होते हैं।^५ मत्तों के किये व स्वर्ग तो बन्धन स्वीकार करते हैं, मायावीन हो जाते हैं, और भक्तों को मायावीन और मुक्त कर देते हैं।^६ मत्त ही अवतार का प्रबल हेतु है। सूरदास ने ऐसे तथ्य पक्षों में प्रकट किया है।^७ यों तो उपासक श्रीकृष्ण के इस अवतार में उबकी इच्छाही प्रयोजन है।^८ किन्तु मत्त के प्रेमवत्त

१ सूरदास, वा० प्र० स० जी० १ पृ० ५७६ पद १५३३।

२ बन्दी भरनि असुर कुक मारो परि मरतन अवतारा।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १ पृ० २५७ पद ६२२।

३ तुम विन बोन बीन कल तारे विष्टुंन सष्टुन रूप परि आवे।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १ पृ० ३८८ पद १००४।

४ सूरदास प्रभु गोकुल प्रकट मत्त, संतति हरन कुह जल-धन नरके।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १, पृ० २७।

५. सूरदास प्रभु कहत मत्त हित अयन-अनन तनु पारी।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १ पृ० ३७४ पद १९०।

६ नातु बंवावत मत्तनि जारत वैद विहित मरं वाणी।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १, ३७४ पद १९१।

७ सूरदास प्रभुमत्त हेत ही वैद पारिके आवी।

सूरदास, वा० प्र० स० जी० १ पृ० ३७५ पद १९४।

पद १०९२—सुर स्वाम तन सब सुख सुन्दर, मत्त हित अकार।

पद ३७७—सूरदास प्रभु शंठ निबंदन मत्त हित अवतार नरुबी।

८ अने नाप करि प्रकट कियो है हरी प्रकव अवतार।

सूरदास, वा० प्र० १ पद ५।

उन्हें अवतीर्ण होना पड़ता है। सूरदास ने जो पदों में कृष्ण के अवतार को प्रेम के बराबर बताया है।^१ अतएव श्रीकृष्ण के सभी अवतारी रूप एक हीर तो छीला एक ही ओर मछों का रंजन करते हैं और दूसरी ओर उनके बही रूप उपास्य की दृष्टि से उद्धार कार्य करते हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण रूपों का एकमात्र प्रयोजन उद्धार माना है। एक पद में गन्ध-कुण्ड के उद्धारक श्रीकृष्ण की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ये कृष्ण माता-पिता, मन्त्र धरणी, पतित, मच्छ, वीम जनों के उद्धारक तो हैं ही साथ ही पूतना दमुज-कुण्ड गुलाबत शकट, बेसी वका अन्न गो ग्वाह रूपम बन्धु ब्रह्म यक्ष-पत्नी काकीय बाबामि ग्राह, गजराज, शिला, पांडुकुण्ड श्रौपरी, रुक्मिणी, सिंधु, सीता, बाप विजय प्राप्त, महाह, विरह्यकधिपु, विरह्याच वेद धर्म कर्म, वैभवा वैभलोक और कस क भी उद्धारक हैं।^२ उक्त पद के सारांश में प्रायः सभी प्रकार के अवतार-कार्यों का केवल उद्धार में पर्यवसान किया गया है। भूमर-हरण और असुर-संहार सम्बन्धी अवतार-कार्य तथा ग्राह गजराज शिला, महाह, विरह्यकधिपु आदि से सम्बन्ध पूर्व अवतारों के रूप में किये गये अवतार कार्य एवं लम्बाहीन सभी कार्यों का लक्ष्य एकमात्र उद्धार स्पष्ट सूचित करता है कि इस युग के कृष्ण अवतार या अवतारी मात्र न होकर महा श्रीकृष्ण हैं।

इस युग के अन्य कवियों ने भी श्रीकृष्ण के जिन अवतार-प्रयोजनों की चर्चा की है वे उपास्य श्रीकृष्ण के ही प्रयोजन हैं। गन्धदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण अपने भङ्गुत अवतार विरहप्रतिपालन के अतिरिक्त अपने मछों को दुर्लभ मुक्ति मुकाम करने के हेतु धारण करते हैं।^३ वे भूमि के ऊपर मार स्वरूप गृह दूष और असुर-दूष का संहार करते हैं तथा संतों की रक्षा करते हैं।^४ किन्तु फिर भी गन्धदास की दृष्टि में उनका यह अद्भुत रूप ज्ञान

- १ प्रीति बस बैक्यो—गर्म अंगुठी बास प्रीति के हेतु प्रब वैम कीन्हों ।
प्रीति के हेतु अमुपति बच पाव किधो, प्रीति के हेतु अवतार कीन्हों ॥
प्रीति के हेतु बन वेनु भारत कान्द प्रीति के हेतु संद सुवन नामा ।
प्रीति के हेतु सूरज मनुदि पावने प्रीति के हेतु बोक स्वाम स्वामा ।
सूरसागर ना० प्र० स० बी० २, पृ० १४१-१४२ पद २६२५, २६२६ २६२७ ।
२. सूरसागर, भा प्र ल बी० २ पृ २६२१ पद २६१९ ।
- ३ ये अद्भुत अवतार सु कैत । विस्वहि प्रतिपालन के हेतु ।
नव अपने मछन के हेतु । दुर्लभ मुक्ति मुकाम करि हेतु ।
न प्र भाषा दशम स्कंध पृ० २१६ ।
- ४ गृह दूष करि नदि अहर किचारी । कीनी भूमि मार करि मारी ॥
ठिनहि निरिही मू धार हरि ही । ललन की रचवारी करि ही ॥
ब० प्र , भाषा दशम स्कंध पृ० २१८ ।

योग्य है।^१ मीराबाई के अनुसार श्रीकृष्ण देवताओं के कार्य के लिये तो आविर्भूत होते ही हैं^२ परन्तु मच्छतासक होने के कारण^३ मच्छ के माध्य से^४, उनकी सहायता के लिये^५ प्राणा उनकी प्रत्येक आपत्ति में प्रकट होते हैं।^६ इस प्रकार उस 'अक्षत-उधारण सब अक्षत-तारण'^७ श्रीकृष्ण ने सभी भक्तों का कार्य किया है।^८ वैजू कवि न विष्णु और कृष्ण का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि दोनों विगुण और अगुण स्वल्प भक्षणीय हैं परन्तु विष्णु देवताओं के मुक्त के कारण हैं जब कि कृष्ण भक्तों के मुक्त करने वाले हैं।^९ इस प्रकार साम्प्रदायिक कवियों के अतिरिक्त सम्प्रदायेतर या राज-प्रचारी कवियों में भी श्रीकृष्ण के उपास्य प्रधान या इहद्वैवारण्य प्रबोधनों का अधिक प्रचार हुआ। राज-प्रचारी ज्ञानसेन कहते हैं कि श्रीकृष्ण पतित-बाधन कल्या-सिद्धि, शीत हुल मज्जन, पुन-पुन में विविध रूप एक हीका धारण करने वाले मच्छतासक और हृष्याहू हैं।^१ अक्ष कवि कहते हैं कि तप और योग से य उपकम्प्य नहीं हैं। अपितु जो भी मच्छ का इक्षण में ध्याय करता है, उसे उसी रूप में दर्शन

१. मनु पर तुम्हरी अक्षुण्य रूप। अक्ष योग विवद ही अक्षुण्य।

न म माया अक्षम लक्षण पृ २२९।

२. मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ० १५, २, १७।

इसकी मनु हरि देव संभारतो लक्ष्मी देवम के काम।

३. मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ २४६ पृ० २११—

मीरा मनु सगन सुकराई, अक्ष अक्षम गोपाक।

४. मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ० २२२ पृ ११९—

एव यत्त के माय ही मच्छे, नाम अक्षो रणधीर।

५. मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ० २१५ पृ० ४००—

सब भक्तान की सहाय करी मनु।

६. जब जब पीड़ पटी मच्छन पर माय ही कृष्ण प्रचारी।

मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ २६ पृ० २२।

७. इसमें सुभी है हरि अक्षम उधारण। अक्षम उधारण सब मग उधारण।

मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ० २१३ पृ १२।

८. सब अक्षम का कारण अक्षता सौर्य मनु में पाया भी।

मीरा इहद्वैवारण्य संग्रह पृ २१५ पृ २१५।

९. जब तारक मुक्त कारण इन अक्षम मुक्त हरम निष्पल।

तत्पुण्य लोक स्वकर एक ही बंधन।

राग कल्याणम की १ पृ० २१५ पर ५५।

१०. पतित पावन अक्षतासिद्धि शीत हुल मज्जन।

अनेक रूप शीता चारी अक्षतासक हुल-पुन मय हृष्याहू।

राग कल्याणम की १ पृ० ४३ पर ७०।

देते हैं।^१ भक्त कवि नरसी कहते हैं कि श्रीकृष्ण सतयुग, त्रेता द्वापर और कलियुग चारों युगों में भक्त के अधीन रहते हैं।^२

श्रीरसकान्ति के अनुसार जागे चल कर प्रेम और हरि में कोई अन्तर नहीं रह जाता। अतएव प्रेम हरि-स्वरूप है और हरिप्रेम स्वरूप।^३ यद्यपि अनेक विरह हरि के अधीन है किन्तु हरि स्वता प्रेम के अधीन हैं।^४ 'सुशामा चरित' के रचयिता नरोत्तमदास ने भी श्रीकृष्ण को अनाथों के माय एवं नृसिंहावतार के रूप में पुराबी प्रतिष्ठा-पावन करने काका कहा है।^५

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रायाः सभी अवतार-कार्य सम्प्रदायों एवं साम्प्रदायिक कवियों तथा उनके प्रभाव-स्वरूप अन्य कवियों में भी उपास्य श्रीकृष्ण के उद्धार-कार्य के रूप में अधिक प्रचलित हुए। जिसके फलस्वरूप उन्हें शीतानाम, अनाथ-निवाहन और भक्तवत्सल की उपाधि प्राप्त हुई।^६

इसी युग के सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण का अवतार एवं अवतारी क स्थान में उनके नित्य ज्यों में गृहीत अर्थात् रूपों का अधिकधिक प्रसार हो चुका था। अतः सम्प्रदाय विशेष के कवि जब उनकी नित्य लीला, नित्य प्रेरण या

१. भक्त विचारण को हिन में सोई रूप बरे नर को बरि काल ।

माय लखी किन्हा नंदराव के भांगन खेपड रंग को काका ॥

अवतारी वरवार के कवि पृ० २२५ में बरहूत ।

२. कही तुने को पुरी न मानो हम नरसी दास तुम्हारे ।

सतयुग, त्रेता, द्वापर कलियुग भक्त के अधीन हैं प्यारे ॥

राम कल्पदुम की १ इ ३५५ पर १५ ।

३. प्रेम हरि को रूप है लखी हरि प्रेम स्वरूप ।

बक हीर है लो कसे क्यो हरक बन रूप ॥

रसकान प्रेमचारिका इ ८ से २४ ।

४. रसकान प्रेमचारिका, पृ २१-२० श्लोका ३३ ।

हरि के सब अधीन ने हरि प्रेम अधीन ।

बहि है हरि आपुही बाहि बहूप्यम हीन ।

५. शारिका के लये हरि शारिष हरिमे प्रिय ।

शरिका के माय ने अनाथन के माय है ॥

सुशामाचरित पृ० १४ अ १ ।

पूरन वेम की प्रह्लाद की खंभ को बॉम्बो पित्रा मिदि देते ।

श्रीपदी ध्यान बरुनी बबही गवही पर कीट लगे बहू परी ॥

सुशामाचरित १ १५ ।

६. संगचाप्री भक्त, कन्दान, परशुराम देव की पृ० ३०९ ।

शीतानाम अनाथ निवाहन मंगल बज्र सु विरह चारुी ।

मातुर्घ प्रमाण रूपों के वर्णन की ओर अधिक ध्यान देने लगे थे। श्रीकृष्ण-चरित्र से इनका सम्बन्ध उल्लेखित कम होता गया। अन्त में रसिक सप्रदायों में एकमात्र राधा-कृष्ण 'राधा-कर्महार्त्तो तु सुमिरनो को वहामो है' के रूप में अवशिष्ट रहे। इनके मित्य रूपों के वर्णन से स्पष्ट है कि ये चरित प्रमाण अवतार, अवतारी या उपारम श्रीकृष्ण की अपेक्षा मित्य पेश अवतारों के अत्यन्त निम्न हैं।'



१. ऐम्ह ह्यारे है लख, सुम्हा विरिच विनाल ।

मंड अंख नृपमानुजा, चरण लख्य कराल ॥

सुमल छन्द ५० १-१४ ।

वारहवाँ अध्याय

अर्चावतार

मध्यकाल में एक ओर तो अवतारों के छीकात्मक रूपों की अभिव्यक्ति हुई थीर दूसरी ओर दिन-प्रतिदिन के व्यवहारों में प्रयुक्त अर्चावतारों या अर्चाविग्रहों का प्रचार हुआ। इस युग में पौराणिक कथाओं के साथ 'पाँचरात्रों' में प्रचलित अवतारों का विरुद्धन सामंजस्य स्थापित किया गया जिसके फलस्वरूप छीकागान की प्रवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। जहाँ सूर आदि में पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध सगुन छीका-पद् मिलते हैं, वहाँ काकमन्तर में राम कृष्णादि अवतारों के, अर्चावतारों के अधिक व्यापक होने पर उनकी अह्वयाम सेवा पूजा अर्चना तथा पादिक, मासिक अर्द्धवार्षिक और वार्षिक उत्सवों के ही छीका-पद् अधिक प्रचलित हुए। विशेषकर परवर्ती मध्यकाल के साहित्य को यदि अर्चावतारों का साहित्य माना जाय तो कोई अशुक्ति न होगी।

परम्परा

अल्प अवतारवादी प्रवृत्तियों के सरस अर्चावतार की भी प्राचीन परम्परा विद्यत होती है। विशेषकर अवतारवाद के साथ ही इस धारणा का विकास देखा जा सकता है। क्योंकि जहाँ ब्रह्म के 'प्रादेशिक' या 'एकदेशीय' होने का सम्बन्ध ज्ञात होता है^१ वहाँ अवतार और अर्चा एक ही भूमि पर स्थित दिखाई देते हैं। अवतार यदि ब्रह्म का प्रतिनिधि है तो अर्चा ब्रह्म का प्रतीक।^२ अतएव दोनों उक्त महोपमहीयाम के लघुतम प्रतिनिधि या प्रतीक होने का समान रूप से दावा करते हैं।^३

१ म० सू० १ २ २९ 'अभि-व्यक्ति-त्वात्परम्परा' के अनुसार आत्मरूप में ब्रह्म ही एकदेशीय अभिव्यक्ति माना है।

२ म० सू० ४ २ ४ और ४ २ ५ न प्रतीके न हि स और ब्रह्मविरुद्धार्थ' में ब्रह्म के प्रतीक रूप का भाव होता है।

३ यौना रहस्य सू० ४२४-४२५ में भी विलम्ब से अवतारों में प्रयुक्त विभिन्न नामों के आचार पर प्रतीक पूजा से मूर्ति-पूजा या अवतार-पूजा का अनुमान किया है। सू० ४० ७, ४, ११ में विश्व के अनेक व्यवहारों को ब्रह्म का अतीत कहा गया है। 'अद्वैत' सू० १, ७, ९ और 'अहमा' व १ ७, ११ आदि भी वही क्रम में ब्रह्मके अतीत व्यवहारों को है। का १ १९, २ में 'अद्वैत' को ब्रह्म का अतीत और रूप कहा गया है।

वैदिक-संहिताओं में अनेक देवता एक क ही विभिन्न रूप माने गये हैं।^१ क्योंकि समूह में जहाँ इनके नाम समान कोटि में किये गये हैं।^२ वहीं विभिन्न रूपों से सम्बद्ध इनके सर्वोत्कृष्टप्रधान एकेधरवादी रूप मिलते हैं।^३ किन्तु इनसे एक क अनेक नामों या रूपों का आभास मात्र मिलता है। जहाँ तक 'अर्चा' शब्द का प्रश्न है वैदिक संहिताओं में 'अर्चन्', 'अर्चद्' 'अर्चा' आदि शब्दरूपों के प्रयोग हुए हैं।^४ परन्तु अर्च्य विग्रह से सम्बन्धित अर्च्य वाच में अर्चकर 'गीता' ७, ११ का प्रतीत होता है। यहाँ कहा गया है कि जो-जो भक्त किस-किस तनु को भजा के साथ अर्चना चाहता है, उनकी भजा को में उसमें ही स्थिर कर देता हूँ।^५ 'विष्णुसहस्रनाम' में 'अर्चिस्मान्' और 'अर्चित' नाम विष्णु क आये हैं। किन्तु प्राचा 'अर्चि' शब्द का अर्थ किरण होने के कारण अर्च्य विग्रह का इससे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। फिर भी 'गीता' क उक्त श्लोक से अर्चा और उपास्य विग्रह के सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है।

पर अर्चा का जिस भूति या विग्रह से सम्बन्ध माना गया है उसका प्राचीन रूपों पर भी कतिपय विद्वानों ने विचार किया है।^६

श्री व० इ० दूबे ने अ० १ १५५, ३ की शब्दा का अर्थ साधवाचार्य क अनुसार इस प्रकार किया है—हे भगवन् पुत्रादी, सागर में बहते हुए कण्ड से निर्मित पुद्गलोत्तम भगवान् की काष्ठमूर्ति की पूजा करके, सर्वोपरि ब्रह्म को प्राप्त कर।^७ श्री व० के० कुमारस्वामी ने पद्यों के रूप में यहाँ में कुछ

१ अ० १ २३४ ४२।

२ अ० २० ३५, २ में अर्चिस्मान् में अर्चि इन्द्र वरुण मित्र आदि सबकी सम्बन्धित महिमा का अस्तित्व माना गया है।

३ अ० २, १, २-२५ में अर्चि ही इन्द्र, विष्णु, वरुण लक्ष्मण इन्द्र पूजा पूर्व सरस्वती, आदि से स्वरूपित किया गया है।

४ अर्चन्, अर्चद् अ० ८, १९ ८ और अर्चन् १ १२ ५ अर्चन्, अ० २, १०१ २ अर्चन्, अ० ८ २, १ 'अर्चा दिने बहते अर्च्य' अ० २, ५४ १ विद्वत् २, १८ अर्चा अर्च्य अर्चिमे आर्ची १, ५४, १।

५ गी० ७ २१—जो जो वां वां तनुं यत्कः अर्चवापि तु भिन्नवर्त।

तस्य तस्यात्कः कर्तुं तस्यैव शिरवात्मइन्द्र ४

६ (क) वि० स० शं० भा० १ १ ४ को ८१।

(ख) अर्चा का जहाँ तक प्रतिमा से सम्बन्ध है अ० अ० २२, १, ३ २१ में 'संवासर' को प्रजापति की प्रतिमा कहा गया है। तथा अर्च्ये सं० ३ २, २ में 'अर्चि' को संवासर की प्रतिमा कहा गया है और संवासर नामु यम आदि के किये इस प्रतिमा को उपासना बतार्ह मर है।

७. मारपी विद्यामवन वर्ष २, अंक ३ ४ ४६ अ० २ २५५ १५।

देवताओं के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया है।^१ और श्री रावकुप्पदास ने मैकडोनल्ड के मत के अनुसार तथा अ. सं०^२ के एक मंत्र के आधार पर वैदिक काक में मूर्तियों का अस्तित्व माना है।^३

इन तथ्यों के आधार पर प्राचीन काक में भी मूर्ति निर्माण की संभावना की जा सकती है। परन्तु यज्ञ-याज्ञ एवं कर्मकाण्डप्रधान वैदिक युग में मूर्ति पूजापद्धति का नहीं उल्लेख न होने के कारण मछिपुत्र अर्थाविग्रह का आरम्भ युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता।

पौराणिक वा अथर्ववेदीय साहित्य में स्पष्टतः निगम और आगम नाम की दो परम्पराओं का धार्मिक उल्लेख हुआ है। इतिहासकारों ने निगम को पूर्णतः वैदिक वा आर्ष तथा आगम को पूर्णतः त्रिविध साध माना है।^४ इनके कथनानुसार यदि आर्ष पद्धति में होम की प्रधानता है तो त्रिविध पद्धति में पूजा वा 'यज्ञ पुष्य फलं ताप' की।^५

अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि काककाल से कबल त्रिविध आर्ष का ही सम्बन्ध नहीं हुआ अपितु निगम और आगम की दोनों पारम्परियों का भी अपूर्व संगम हुआ। फलतः कर्मकाण्ड के साथ अर्था मछि ने भी आर्ष संरक्षित में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। श्री कुमार स्वामी का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि त्रिविधों ने विभक्त होकर भी आर्षों को मछि और मूर्ति-पूजाप्रदान की।^६ अतः एक ओर त्रिविध देवता त्रिध का आर्षों में प्रचार हुआ और दूसरी ओर आर्ष देवता विष्णु में त्रिविध देवताओं का समावेश किया गया।^७

इस प्रकार आगम और निगम के साथ-साथ आर्ष और त्रिविध देवताओं में भी सामञ्जस्य स्थापित हुआ। उक्त उपकरणों के आधार पर देवताद्वय के परस्पर सम्बन्ध का अनुमान किया जा सकता है किन्तु इससे अर्थावतार के आरम्भ का स्पष्टीकरण नहीं होता।

अथो वराह पञ्चमै सिद्धोः पारे अनुकथम् ।

तदारमस्य बुर्गणे तेन गच्छ परस्परम् ।

१ हिन्दू आण्ड इंडियन ऐंड इण्डोनेशियन आर्ट्स पृ० ४१ ।

२ अ. सं. ४ २४ १ 'क इम त्रिमिमर्मन्त्रं श्रीग्यति वेनुमिः' श्रीम मेरे इन्द्र वो मोक केण' से इन्द्र की मूर्ति का अनुमान किया गया है ।

३ भारतीय मूर्तिशास्त्र, (गणेश सं. २००९) पृ० ३६ ।

४ श्री वैदिक एष, विद्याभवन (दिल्ली सं. १९५२) पृ. १६० ।

५ श्री वैदिक एष, विद्याभवन (दिल्ली सं. १९५२) पृ. १६ ।

६ हिन्दू आण्ड इंडियन ऐंड इण्डोनेशियन आर्ट्स पृ. ५ ।

७ श्री वैदिक एष दिल्ली सं. १९५२ पृ. १६२ ।

इस दृष्टि से जिस प्रकार समस्त देवतावाद का ही पौराणिक (मीथिक) विकास दृष्टिगत होता है उसी प्रकार अर्चावतार के सम्बन्ध में भी एक पौराणिक कथा को आधार माना जा सकता है। जिससे जार्ज और द्रविड़ संस्कृति के सम्बन्ध का भी भाग होता है। यह है—मृसिंहवतार की कथा जिसके अनुसार प्रह्लाद का कथम सत्य करने क विमिश्र लम्बे से विष्णु का मृसिंह-रूप में आबिर्भाव हुआ था। पिता के विरोध करने पर भी प्रह्लाद, (संभवतः एक द्रविड़) ने प्रतीकपूजा के रूप में विष्णु को स्वीकार किया था।^१ रोस्वामी तुलसीदास ने उपर्युक्त कथा एवं उससे परम्पर-पूजा के प्रचलन का उल्लेख किया है।^२ जिसके आधार पर मध्यकाल में इस धारणा के अस्तित्व का पता चला है। परन्तु नामादास जी ने पूजा का सम्बन्ध वृक्ष से माना है।^३

पांचरात्रसंहिता युग

अर्चावतारों का सबसे अधिक बहिष्कृत सम्बन्ध पांचरात्रसंहिताओं से रहा है। अर्चावतारों की पूजा, अर्चना, मंत्र बंत्र आदि अनेक प्रकार के उल्लंघनों से ये संहिताएँ ओतप्रोत हैं। परम संहिता में अर्चावतार की आबरमकता बतलाते हुए कहा गया है कि ईश्वर की पूजा केवल साकार रूपों में ही सम्भव है अन्य किसी अवस्था में नहीं। लोकानुग्रह के लिये परमात्मा के रूप रूपों का निर्माण हुआ है। मनुष्यरूप में उसकी मूर्ति बनाकर मनुष्य अपने उच्चतम कथम को प्राप्त कर सकता है और पूर्णरूप से उसकी पूजा कर सकता है। निराकार में न अर्चना का उपयोग है न ध्यान का न स्तोत्र का। साकार अर्चाकर्म में होने पर ही उसको अर्चना सम्भव है।^४

पांचरात्रसंहिताओं का उद्भव सात्वत वैष्णव और पांचरात्र आदि के पूर्यकरण होने के पश्चात् विहित होता है। इसके पूर्व ही तै० आ० १ १, २

१ मध्यकालीन की १ अ० २४ पृ ५३९।

२ पृ १० की १ बहिदासकी पृ २९३ १९७।

काहि कृपान कही विष्णु काक करानु किलोकि न माने।

राम कह मर डारि हे लीम में हो धुनि हाँक मुकेहरो नामे।

बेती विदारी नवे किराक करे प्रहारहि के अनुरागे।

पीली प्रतीति बही तुलसी तवते मर राहन पूजन काये त

३ मध्यकालीन कथमना पृ २९९ अ० २४

सुदि सुमिरन प्रकार वृक्ष पूजा कथमना चरनन मन।

४ परमसंहिता, मानकनाद, १, ५-७।

६, ७ निराकारे तु वैश्व मार्जन संवदे भूनात्।

न च ध्यायं न च स्तोत्रं तरमात्ताकारमर्चयेत्।

में नारायण वामुदेव और विष्णु एक साथ गृहीत हुए हैं। 'महामारुत नारायणीयोपाख्यान' में मानवत या मागवत वैष्णव और पांचरात्र पुनः पुनः हो जात हैं।^१ समकालः इसी परम्परा में श्रेडर ने पांचरात्र संहिताओं का प्रारम्भ संसारकर क मत का समर्थन करते हुए उक्त उपाख्यान से माना है।^२ इन संहिताओं के उद्भवकाल के पूर्व ही मपुरा के मानवत मानानुयायियों ने दक्षिण में वामुदेवमक्ति का प्रारम्भ कर दिया था।^३ कस के मरन के पश्चात् शारका के अतिरिक्त दक्षिण में भी इनके पांच शाख स्थापित हो चुके थे।^४ प्राचीन तमिळ साहित्य में कृष्ण और कृष्ण की स्त्रीलक्षणों के उल्लेखों के आधार पर उनका प्रचार का पता चलता है।^५ समकालः नूमरी सताष्टी तक पांचरात्र शाखों का योग कृष्ण की अर्धा पूजा पद्धति के साथ प्रचलित हो चुका था।^६ पूजा इतिहासकारों का अनुमान है। अठपन्न निरूप ही मानवत भागवत वैष्णव और पांचरात्र सभी के समन्वय का अनुमान पांचरात्र शाखों के निर्माण के पूर्व ही माना जा सकता है। क्योंकि पद्धतियों का निर्माण किसी विश्वास के स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेने के पश्चात् ही सम्भव है।

परन्तु श्रेडर ने नारायण के 'पांचरात्र सूत्र' से ही ईश्वर के पर, ध्युह आदि पञ्च-रूपों के साथ अर्धा का प्रारम्भ माना है।^७ श्रेडर के उपर्युक्त मत का आधार समकालः अहि० सं० ११ ६७ का यह श्लोक है जिसमें कहा गया है कि नारायण ने स्वयं शास्त्र बनाया और पाँच प्राणुर्माओं को कहा।^८ इन रूपों का प्राचीन तमिळ कविताओं में भी उल्लेख हुआ है। तमिळ साहित्य में वेङ्कटेश्वर नाम के कवि के पाँच पद मिलते हैं। जिसमें इतिहासकारों के

१ महा २१ नारायणीयोपाख्यानम् मोक्ष वर्णनम् । २ श्रेडर पृ १४ ।

३ साङ्ख्य इतिवृत्तन शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १३ पृ ३३ ।

४ साङ्ख्य इतिवृत्तन शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १ पृ ३८-३९ ।

५ साङ्ख्य इतिवृत्तन शिरसी ऐन्दु कश्चर जी १ पृ ४६ ।

६ श्री कश्चरान् इतिवृत्तन आठ इतिवृत्तन जी० २, पृ ३८-३९ ।

७ श्रेडर पृ २५ इतिवृत्तन शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १ पृ ३८-३९ ।
 साङ्ख्य इतिवृत्तन शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १ पृ ३८-३९ ।
 'वैदिक' ऐन्दु कश्चर शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १ पृ ३८-३९ ।
 'वैदिक' ऐन्दु कश्चर शिरसी ऐन्दु कश्चर जी० १ पृ ३८-३९ ।

८ श्रेडर पृ० १६ अहि सं ११ ६४ ।

तत्परं ध्युहविभवत्तवादिनिष्कलम् ।

पांचरात्रमर्धं तं च मोक्षैवकश्चरान् म

मतानुसार प्रथमपद में पर द्वितीय में ब्रह्म, तृतीय में विमल, चतुर्थ में अन्तर्यामी और पञ्चम में अर्चा रूपों का वर्णन किया गया है।^१

इतना ही नहीं रामानुज आदि आचार्यों के आदिर्भाव के पूर्व ही तमिल प्रदेश में माय, माया, मक्ति, मक्त और भगवान् इन पञ्चामिम्बुक्तिओं का जो विशुद्ध रूप उद्घोषित होता है, उसके मूल प्रेरक तिरुपति, श्री राम आदि दक्षिण के प्रभाव अर्चावतार नामे जा सकते हैं।^२ क्योंकि ईसा की प्रथम शती में लौकमान द्वारा स्थापित तिरुपति का मंदिर तमिल साहित्य के अनेक जनप्रिय एवं मक्त आक्षार कवियों की साधना भूमि रहा।^३ 'दक्षिणप्रबन्धम्' (पद संख्या ३००० रचनाकाळ ३० ई० से ३०० ई०) में द्वाक्स आक्षारों द्वारा गाई हुई कविताओं में लगभग १०८ स्थानों में विष्णु और उनके विभिन्न रूपों की पूजा का उल्लेख है।^४

अतएव यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में ब्रह्म आदि दक्षिणी आचार्यों ने जिन अर्चावतारों की सेवा एवं तत् सम्बन्धी लोकप्रिय पद साहित्य की सर्जना की प्रेरणा की उसके पूर्व ही अर्चावतारों के मंदिर में तथा जनसमाज में आदि और संरक्षक माया के बोधम को तोड़ कर जन माया में गाये जाये आक्षार कवियों के गीत पर्याप्त लोकप्रिय हो चुके थे। इसमें संदेह नहीं कि अर्चावतारों की पौराणिक पीठिका उनही काव्यामिम्बुक्ति का विशेष माध्यम बनी। किन्तु इसके अतिरिक्त भी अर्चारूप की कविपद्य विशेषताएँ हैं, जो उनही काव्यात्मक प्रवृत्तियों एवं अमिद्विधियों को सतत जाग्रत रखने में विशेष सहायक हुईं।^५

अर्चारूप का वैशिष्ट्य

ईश्वर का अर्चारूप मनुष्य के सबसे अधिक निकट है। इस रूप में ईश्वर मनुष्य के साथ अनेक रूपों तथा विविध भावों में मायक भक्त के साथ

१ छात्रक इतिहास हिस्ट्री एण्ड कल्चर जी० २५ ८०९।

२ हीमल नाथ डी अक्षरारस भू ५ २३-२४ जी रोम के रोमनाथ, किन्तु कवियों के वादराजत्वामी और तिरुपति के अक्षरेण, आक्षार साहित्य के मुख्य प्रेरक रहे हैं।

३ हिस्ट्री नाथ तिरुपति भाग २५ २०८।

४ हिस्ट्री नाथ तिरुपति भाग २५ ५२।

५ हीमल नाथ डी अक्षरारस भू०५०२२ 'वेद ही वेद नाथ नाथ डी इम्पेसिस नाथ डी निमित्तक इमेव आर आरन आरन डी प्रेड थार वेद मीनस रेकिडन नाम् भीमकी कोड्ड रक्तप्रेसन भू डी सभेत्त वड भू डेव नाथगी नीड्ल एण्ड रिठिन्नु रीम्बुकेणन।

मावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। भक्त भीरु भगवान् में कभी स्वामी सेवक-भाव रहता है तो कभी सखा भाव कभी वात्सल्य एवं कभी पति पत्नी या प्रेमी प्रेमिका-भाव, जिसमें इसकी शरम परिणति हो जाती है। अर्चावतार अपने स्वामी रूप में अलिक बिद्य का प्रतिपादक सर्वशक्तिमान् भीरु परम स्वर्तन्त्र है। श्री गोपीनाथ कविराज के मतानुसार वह किसी भी व्रण्य को अपना विग्रह मानकर उसमें विराजने लगता है। इसमें वैसमियम नहीं है। अबोध्या, मधुरा भाद्रि वेश म होने पर भी हानि नहीं है। काल-नियम भी नहीं हैं। अतक उनको इच्छा हो तभी तक रह सकते हैं। अधिकारी नियम भी नहीं है। दशरथ आदि की मूर्ति अलिक विधिष्ट होने की आवश्यकता नहीं है। अर्चक जिस किसी स्थान में भीरु जिस किसी भी समय उनको प्राप्त करना चाहता है वह उसी समय प्राप्त कर सकता है।^१ 'तत्त्वत्रय क अनुसार गुण्य भीरु अद्गुण्य की ओर प्यान न देकर व समस्त कोकों को सरण देते हैं। वे भक्त की कधि विरय आमत कर उसे अपनी ओर उन्मुख करने की अपूव वमता से पुक्त हैं। वे उसक हृदय त्यक को स्वच्छ भीरु परिमार्जित कर ह्यसकल भोगन योग्य बनाते हैं। तथा भक्त क पास स्वतः बिना किसी प्रपन्न के उपस्थित रहते हैं।^२ दूसरी ओर सेवक क सेव्य रूप में प्रत्येक वस्तु के किय आभित हैं। उस सर्वशक्तिमान् की प्रत्येक कामनाएँ भीरु इच्छायें भक्त की इच्छा क रूप में परिणत हो जाती हैं।

परम-उपासक एवं इष्टदेव उसक दैनिक कार्यों का मूल आधार भीरु उपभोक्ता बन जाता है। भक्त की प्रत्येक कामना उसक इष्टदेव में प्रतिबिम्बित होती है सेवक क अभाव में अर्चा-इष्टदेव स्वयं अपने भक्त का कर्तव्यनिष्ठ सेवक बन जाता है; वह मूक अशक्त भीरु पराधीन सा होकर कबक अपार कष्टना क वशीभूत हो अपने भक्त को प्रत्येक अभीष्ट प्रदान करता है।^३ वह भक्त क मार्गों को अमिष्यक्त करने की असीम शक्ति आमत करता है। भक्त उसकी पूजा में अनेक प्रकार की भूक्तें करता है। अर्चा इष्टदेव उसी को विहित मानकर प्रेम पूजक स्वीकार करता है।

अर्चावतार सभी का बहु भीरु भक्तवत्सल है। उसमें स्वामित्व रहने पर भी उनक स्वत्व को भक्त इष्ट रूप में समझता है कि यह मेरा भगवान् है। अर्चा उपारय भी भक्त क इच्छानुसार ही जाता है, पीता है सोता है वा अन्य दैनिक क्रय करता है। 'वैष्णवमतान्त्रभाष्य' में कहा गया है कि देसकाल की

१. श्रीहृण्यकि, कल्याण, पृ १५५ ५० मंगलन विग्रह केन्द्र।

२. तत्त्वत्रय पृ० ११८।

३. तत्त्वत्रय पृ० ११५।

मतानुसार प्रथमपद में पर द्वितीय में प्यु, तृतीय में विभव, चतुर्थ में अन्तर्यामी और पंचम में अर्चा रूपों का कर्षण किया गया है।^१

इतना ही नहीं रामायण आदि आचार्यों के आचर्या के पूर्व ही तमिल प्रदेश में भाव, भाषा, भक्ति, भक्त और भगवान् इव पंचामिभक्तिओं का जो विशुद्ध रूप दृष्टिगत होता है, उसके मूळ प्रेरक विकरति, श्री रंग आदि दक्षिण के प्रधान अर्चनारूप माने जा सकते हैं।^२ क्योंकि ईसा की प्रथम शती में तीर्थमात्र द्वारा स्थापित विकरति का मंदिर तमिल साहित्य के अनेक जनप्रिय एवं भक्त आश्वास कवियों की साक्ष्या धूमि रहा।^३ 'त्रिविधप्रवणम्' (पद् संख्या २००० श्लोकांक ३०० ई० से ७०० ई०) में प्रायः आचार्यों द्वारा कई हुई कविताओं में लगभग १०८ स्थानों में विष्णु और उनके विभिन्न रूपों की पूजा का उल्लेख है।^४

अतएव यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में बहम आदि दक्षिणी आचार्यों ने त्रिव अर्चनारूपों की सेवा एवं तत् सम्बन्धी कोकप्रिय पद् साहित्य की सर्वथा की प्रेरणा ही उसके पूव ही अर्चनारूपों के मंदिर में तथा जनसमाज में जाति और संस्कृत भाषा के बंधन का तोड़ कर जन भाषा में गाने वाले आश्वास कवियों के गीत पर्याप्त कोकप्रिय हो चुके थे। इसमें संदेह नहीं कि अर्चनारूपों की पौराणिक पीठिका उनकी काश्चासिभक्ति का विशेष मान्यता थी। किन्तु इसके अतिरिक्त भी अर्चनारूप की कतिपय विशेषताएँ हैं जो उनकी काश्चासमक प्रवृत्तियों एवं अमिद्विधियों को सतत आग्रत रहाने में विशेष सहायक हुईं।^५

अर्चनारूप का वैशिष्ट्य

ईश्वर का अर्चनारूप मनुष्य के सबसे अधिक निकट है। इस रूप में ईश्वर मनुष्य के साथ अनेक रूपों तथा विविध मानों में मानव भक्त के साथ

१. तात्त्व दक्षिण हिन्दू दण्ड बन्धन की० २५ ८०९।

२. होम्स आरु ही अन्वारात्त मू० ५ १३-१४ की रंगम के रंजनाथ, विष्णु कांठी के वाहरावरायणों और विकरति के अस्तित्वा आश्वास साहित्य के मुख्य प्रेरक रहे हैं।

३. विरटो आरु विकरति भाग २५० २०८।

४. हिन्दू आरु विकरति भाग २५० ५२।

५. होम्स आरु ही अन्वारात्त मू० ५ २३. शिट ही वैद आरु आरु ही अन्वारात्त आरु ही विकरति इत्येव आरु आरु आरु ही शिट आरु शेट मैनत्त वैदिकव माट् ओवकी नीवत्त अन्वारात्त मू० ही सेन्डेत्त अरु मू० देव आरुओ योद्द दण्ड विकरति लीम्बुकेयम।

आवात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। अथर्व वेद में...
सेवक-भाव रहता है। तो कभी मन्त्रा-भाव, कभी दक्षिण...
या प्रेमी-प्रेमिका-भाव, जिसमें हमको चार दर्जाएँ हैं...
अपने स्वामी रूप में अखिल विश्व का...
स्वतन्त्र है। श्री गोपीनाथ कविराज...
अपना विग्रह मानकर उसमें विराट्में...
अपोष्या, मधुरा आदि देव व दान...
नहीं हैं। अतःक उसकी रूपदा...
भी नहीं है। ब्रह्मण आदि की...
नहीं है। अर्थात् जिस किमी...
प्राप्त करना चाहता है, वह...
असुसार गुण और अवगुण...
धारण देते हैं। य मन्त्र की...
करने की अपूर्व कमला ये...
परिमार्जित कर शुद्ध...
बिना किसी प्रयत्न के...
प्रत्येक वस्तु के लिए...
रूपदाएँ मन्त्र का...
है।

परम-उपाय...
उपमोक्ष...
होती है...
सेवक बन जाता है;...
कन्या के...
मन्त्र के...
उसकी...
मानकर...

अर्थात्...
की...
अर्थात्...
हेतु...
है।

१. श्री...
२. ...

1
-



उत्कृष्टता से रहित भाजितामिमत्त अर्चक के समस्त अपराधों को क्षमा करने वाले, दिग्ब देह पुत्र, सहवर्षीय अपने सभी कर्मों में अर्चक की बराबरीता स्वीकार करने वाली मूर्ति का अर्चावतार कहते हैं।^१

पाँचस प्रकार से पृथित ये अर्चा चार प्रकार क माने गये हैं। स्वयं पत्न, वैव (देवता द्वारा स्थापित) सैव, (सिद्धों द्वारा स्थापित) और सामुप (मनुष्य द्वारा स्थापित)।^२

रामभक्ति शाखा में अर्चारूप

विक्रम की पंद्रहवीं शती में रामानन्द ने उत्तरभारत में बिद्य भक्ति आन्दोलन का प्रवर्तन किया जिसके प्रसार एवं प्रचार में राम के अन्तर्पामी और अर्चा दो बिसिष्ट रूप क्रमशः निर्गुण और सामुप भक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित हुये। सगुण भक्ति में अपनाए राम के साथ मूर्ति और बहुदेववाद का समन्वय हुआ।^३ रामानन्द ने ईश्वर, माया और जीव बिसिष्ट, 'तत्त्वत्रय' के अमुक्य प्रतीकोपासना के रूप में राम (ईश्वर), सीता (माया या प्रकृति) और कृष्ण (जीव) इन तीनों के स्थान का विधान किया।^४

राम-साहित्य में विशेषकर तुलसीदास ने 'राम-परित-मानस' में तीनों के उक्त रूप का उल्लेख किया है।^५ परन्तु ब्रह्म भावि श्रीकृष्ण सम्प्रदायों की अपेक्षा इस सम्प्रदाय में भी अन्व देवों को समुचित स्थान मिय।^६ साम्प्रदायिक इहद्वैत के रूप में राम कृष्ण और जानकी के अतिरिक्त आनकीब्रह्म-राम विशेष रूप से प्रचलित हुये।^७ इस प्रकार राम के परवर्ती रूपों में ईश्वर

१ वैष्णवमताग्र-का ४७, मयवदाचार्य अनु पृ ११७।

२ वैष्णव मताग्र माध्वर मयवदाचार्य अनु पृ० ११८।

३ कर्तुर पृ १११ ईश्वर नाम ५ कर्मोपासक विद्वेषीय जिनिलीयय ४४४ दत्त लाहरीकेदुस देव मार्गभोजीकक रोकीबीयय।

४ मायवत-सम्प्रदाय पृ ११३ और रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ मू० पृ० १९।

५ रा मा पृ० ३३।

ब्रह्मदेव शिव सोह्र सेमी। ब्रह्म जीव विव माया जैती।

ओर मू० में सं ९५ १८२ भीताकमी।

रूप सीया देम के से कवतीय भाव हैं।

तुनि देव किद दिपों ब्रह्म जीव माय हैं।

६ विनय पत्रिका में अनेक प्रचलित देवों की स्तुति से स्पष्ट है।

७. रामानन्द पृ० ३ दो० ४।

आनकीवतन काम की बीयव-वत वर नाम।

दादव दत्त बीयव अमित पुन लदूर विनाम ६

की अपेक्षा उतक मातुर्य रूपों का अधिक विस्तार हुआ, उस जबरबा तक पहुँच कर राम के अवतारत्व का संकोच होकर केवल गिरय डीहण या गिरयकेडि तक सीमित रह गया।^१

कृष्ण भक्ति शाखा में अर्चारूप

राम-भक्ति शाखा की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति शाखा में अर्चावतारों का अधिक व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्र रुचित होता है द्वारका से जगन्नाथ पुरी तक कृष्ण के अर्चारूपों का प्रभाव स्पष्ट है।

पहले बतलाया जा चुका है कि भक्त और अर्चा का सम्बन्ध मुख्यतः सेवक-सेव्य सम्बन्ध है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण को लेकर प्रायः जितने सम्प्रदायों की स्थापना हुई उन सभी में श्रीकृष्ण के विभिन्न एवं विशिष्ट व्यक्तित्व और चरित्र से सम्बन्धित रूपों वाले अर्चाविग्रह मान्य हुये।^२

इस काक के बार्ता प्रथों में अर्चा, आचार्य और भक्त तीनों की अवतारी डीकाओं एवं चमत्कारों का विस्तृत वर्णन हुआ है। इनमें अनेक भौतिक प्रटनाओं के साथ-साथ ईश्वर के साकार साहचर्य की कथाएँ भी कही गई हैं। 'सम्प्रदाय प्रदीप' के अनुसार 'द्वय सम्प्रदाय' के आदि प्रवर्तक विष्णु स्वामी को सम्प्रदाय प्रवर्तन के पूव सगुण-साकार विग्रह श्रीकृष्ण का दर्शन हुआ था।^३ काकान्तर में जहाँ श्रीनाथ जी के विशिष्ट स्वरूप विग्रह श्रीनाथ जी परमेश्वर

१ रामाष्टकाम पृ १ श्लो ९।

क्रीकक गुणमाक वर अहवाम रस मेह।

घुनत सेवत सज्जन सुमति परवदि कोचन मेह ७

२ भक्तभक्ति न्यासजी पृ० ५८ में बाणुदेव गोस्वामी द्वारा मगध रसिक का बद्ध पद।

प्रथम दरस गोविंद रूप के प्राण विदारे।

दूजे मोहन मरब, सनातन छवि वर वारे ॥

तीजे येसीनाथ मधु हंसि कंड कपाये।

चौजे राधारमन महु गोपाक कड़ाये ७

पाये दित हरिजन किने वस वल्लभ राधा।

छठये सुगळीकछोर न्यास सुख दिने अगावा ॥

साठे भी हरिदास के कुंभ विहारी हैं वहाँ।

मगध रसिक अचन्व भक्ति नाठ करत भिषिन वहाँ ७

३ सम्प्रदाय प्रदीप पृ० १८ मन्दिर का दरवाजा सुकगे वर भी विष्णुस्वामी को 'वयसि केसोरे त्रिभुम वीठवासतम्।

अवीन-वीरद-ववाम पञ्चगर्भास्यैश्चनम् ॥

विग्रह के रूप में श्रीकृष्ण का दर्शन मिला था।

श्रीकृष्ण के साक्षात् स्वरूप माने जाते हैं।^१ डा० हीन दयालु गुप्त ने कुछ बहस भक्तों का मत इस प्रकार दिया है—'श्रीनाथ जी का स्वरूप तो साक्षात् पूर्ण पुलपात्तम ब्रह्म का है और अन्य स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम की विभूति तथा उनके स्मृत्यात्मक स्वरूपों का स्वरूप है।^२ श्री गोवर्धन माध जी की प्राकृत्य-वार्ता' की भूमिका का अनुसार श्रीनाथ जी का निम्न रूप श्रीगिरिराज पर्वत की कन्दरा में निरावमान है, जहाँ वे अपन आचार्य और भक्तों से निरव सेवा ग्रहण करते हैं।^३

वे देवी जीवों के उद्धार के विभिन्न व्यक्ति स्टीला-सम्मरी सहित ब्रह्म में आविर्भूत होते हैं।^४ कौका भेद से इन्द्रधम्म, देवधम्म और नागधम्म इनके तीन नाम हैं।^५ श्रीकृष्ण के सद्यः वार्ताओं में श्रीनाथ जी के अतुम्भूद् प्राकृत्य का भी विधान किया गया है। उस म्यूद् में संकर्म-बकदैव श्री धोर्बिहदैव और शमीराज जी माने गये हैं।^६ इस प्रकार इस युग में अर्थावतारों का आविर्भाव श्रीकृष्ण आवि पीरायिक अवतारों के सद्यः माना जाता था। इसका मुख्य कारण दोनों का समाव रूप से उपास्य रूपों में गृहीत होना था। फिर भी श्रीकृष्ण और उनके रूपों में विशेष अन्तर यह है कि श्रीकृष्ण की कौकर्म जहाँ पीरायिक पात्रों से सम्बद्ध हैं वहाँ श्रीनाथ जी एवं इनके स्वरूपों की कौकर्म तत्कालीन आचार्य, भक्त और उनके प्रेमी समाज के साथ सहविद्य हैं।

'सम्प्रदाय प्रदीप' के अनुसार श्रीनाथ जी भगवान् श्रीकृष्ण के आविष्ट रूप श्रीनाथ प्रतीत होते हैं क्योंकि कथा के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण जी के रूप में पुष्टिमार्गी वैष्णवों की सेवा ग्रहण करने के क्रिय उनके स्वरूप में अन्तर्हित हो जाते हैं।^७

१ अष्टदास और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ५२३।

२ अष्टदास और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ५१४ इसके अन्य सात स्वरूप श्री यमुदेव जी श्री विठ्ठलनाथ जी, श्री हरिकेश जी, श्री योक्तुजनाथ जी श्री योक्तुज यन्त्रनाथ जी, श्री बालकृष्ण जी, श्री मदनमोहन जी माने जाते हैं तथा इसके अनिश्चित विठ्ठल-नाथ जी के अन्य मन्तोपनिव जी कहे गये हैं। सम्प्रदायप्रदीप पृ० ५३ में अन्य रूपों श्री साक्षात् स्वरूप कहा गया है, 'जीनवचान विठ्ठलनाथादि स्वरूपेषु साक्षात् जीवैः प्रतिदत्त'।

३ गोवर्धन माध जी की प्राकृत्य वार्ता मू० पृ० २।

४ यो० प्रा० वा० मू० पृ० २।

५ गो० प्रा० वा० पृ० ५, अष्टदास परिचय पृ० के अनुसार संभवतः वे इनके पूर्ववर्ती नाम थे श्री० दे० वा० पृ० ५५७ में नाम बताये हैं।

६ यो० प्रा० वा० पृ० २।

७ सम्प्रदाय प्रदीप पृ० ७७।

वाचांश्यों में अर्धावतार

वाचांश्यों के अनुसार श्रीनाथ जी पूज उनके अल्प स्वरूप कबल विग्रह मात्र नहीं अपितु मानव स्वरूप से व्यापूरित हैं। राजा क्वाका की बात साय करने के लिये श्रीनाथ जी स्वयं किष्काद खोक राजी कर पर्दा हटाते हैं।^१ बंगाजी देव माह्य के घर कभी गुड़ और बड़ा खाते हैं।^२ कभी पौंघो गुबरी के हाथ से दही भात^३ तथा कभी भी सखसेर मक्कन खाने लगते हैं।^४ मक्ती में कच्चे गायक के रूप में वे प्रसिद्ध हैं।^५ वे मिला अपने सखाओं से हँसी मसकरी करते हैं। आबरबकता पढ़ने पर अपने सेबक प्रेमनिधि-मिन्न को मसाक दिखाकर स्वयं सेबक का काम करते हैं।^६ वे तैप्यकों के लिये अनेक प्रकार के अवतार चारण करते हैं।^७ अर्धा रूपों का आविर्भाव उपास्य इहदेव के रूप में मस्त क विमिष होता है क्योंकि मत्र अप या अल्प प्रकार के मक्तासुरोप से वे अवतीर्ण होते हैं। श्री गोसाईं जी के सेबक रामदास के अष्टाचर और पचाचर मंत्र का अप करने पर श्री गोवर्द्धननाथ जी उनको दर्शन देते हैं।^८ फिर भी मानबोधित भाषों से वे अपने को छूर नहीं करते। श्रीनाथ जी को मनुष्य के सदा ही उण्ड बहुत लगती है।^९ वाचांश्यों के अनुसार अर्धा विग्रहों का रूप भी एक वैष्णव के सदा विदित होता है।^{१०} श्रीनाथ जी बाकक के रूप में प्रसाद बितरण करते हैं।^{११} और मंदिर के निर्माण के लिये प्रथमक खत्री को आवेस देते हैं।^{१२} मछ बिद्येप में उनका आवेस भी होता है, बिद्येपकर एक मछ दूसरे मछ में अपने उपास्यदेव टाकुर जी का आवेस विदित करता है।^{१३}

उनका सरीर भगवत्ता से भीत-प्रोत है क्योंकि श्रीनाथ जी के स्पर्श से सब भगवत्स्वरूप हो जाता है और इस मछ के घोने से बोबी स्वयं टाकुर जी के रूप में अवतीर्ण होता है।^{१४} इस प्रकार की तद्रूपता के उदाहरण मिलने का

- १. श्री सी बावन वैष्णव को वाचांश्रु ५० ८९।
- २. श्री वा० वे वा ५ ८८। ३. श्री० वा वे वा ५ ९१।
- ४. श्री० वा० वे वा ५ ९४। ५. श्री ५० ४।
- ६. श्री वा० ई वा० ८, २५ श्री गोवर्द्धननाथ जी मिला चतुर्मुख दास श्री हँसी मसकरी करते हैं।
- ७. श्री वा वे वा ५ ११९।
- ८. श्री वा० वे वा ५ १५१। ९. श्री० वा वे वा० ५ १७८।
- १०. श्रीवासी वैष्णव श्री वाचांश्रु २१०। ११. श्री वे वा ५ २१९।
- १२. श्री वे वा ५ २१५। १३. श्री० वा वे वा० ५ १८९।
- १४. श्री वा वे वा ५० २२५।

श्री वे श्री श्रीनाथ जी के सब बोका-बोवत तद्रूप मन्त्रो।

कारण मन्त्र और भगवान् तथा सेव्य और सेवक की अमिश्रता प्रतीत होती है। वैष्णव और शङ्कर जी तथा सम्प्रदाय में श्रीनाथ जी और गुमाई जी जैसे सम्प्रदायों के प्रवचक और सूत्रधार परस्पर अमिश्र माने जाते हैं।^१ इस युग की प्रसिद्ध भाष्यज्ञा मन्त्र, पद्मवत और गुण की एकता का उद्घाटन श्री गान्धास ने 'मन्त्रमाह' के प्रारम्भ में ही किया है।^२ उक्त प्रसंगों से यह प्रतीत होता है कि सम्प्रदायों के अन्तर्गत विकास में तत्कालीन अर्थावतारों का महत्त्वपूर्ण योग होता था। ब्रह्ममन्त्र में शङ्कर जी के दक्षिण चरण से मर्यादा और वामचरण द्वारा पुष्टि-मार्ग की स्थापना मानी जाती है।^३ अतः अर्थाविग्रह केवल सम्प्रदायों में उपास्य ही नहीं हैं अपितु सेव्य-सेवक, प्रचारक, उपदेसक सब कुछ हैं। वे सेव्य रूप में आविर्भूत होने से पूर्व स्वप्न देते हैं और पुनः सेवा के द्वितीय सेवक रूप में भी अवतीर्ण होते हैं।^४ 'वार्त्तानों' में श्रीनाथ जी और विठ्ठलेश जी के द्वितीय कहा गया है कि श्रीनाथ जी तो साक्षात् श्रीकृष्ण हैं और विठ्ठलेश मन्त्र प्रमाण हैं। क्योंकि वे बोलते चकत हैंसते-बोलते दर्शन देते हैं।^५ मन्त्रों को अपने इन्द्रदेव की विभिन्न मूर्तियों के प्रति अत्यन्त दृढ़ आसक्ति होती है। अर्थाविग्रह मन्त्र के इस विश्वास का प्रतिरोध नहीं करते। कहा जाता है कि गोरक्षामी तुच्छसीद्धान्त के विहित मन्त्रास की प्रार्थना सुनकर श्रीनाथ जी (गोवर्द्धननाथ जी) ने उनको रामचन्द्र के रूप में दर्शन दिया।^६ ब्रह्ममन्त्र में श्री गोरक्षाई जी और श्रीनाथ जी एक स्वरूप समझे जाते हैं।^७ 'अष्टावक्र' में मान्य श्री द्वापरनाथी के एक पद में दोनों की एकता प्रतिपादित की गई है। वे कहते हैं कि जिस तपस्या के फलस्वरूप श्रीकृष्ण

१. दो० वा० दे० वा० पृ० २६०-२६३।

२. मन्त्रमाह पृ० ६७, 'मन्त्र, मन्त्रि, मन्त्रित, पुनः चतुर नाम चतुःशकः।

३. दो० वा० दे० वा० पृ० ३४।

४. दो० वा० दे० वा० पृ० ४२६ में शङ्कर जी के रूप में गिरिराज में स्वर्ण मन्त्र होते हैं और सेवा के निमित्त विठ्ठल नाम जी के रूप में पुनः अवतरित होते हैं। सम्प्रदाय प्रदीपिकाएँ ६ ३८ में श्रीव, अष्ट और सेवक, मन्त्र, अष्टी और सेव्य स्वरूप कहे गये हैं।

५. दो० वा० दे० वा० पृ० ४२७।

६. अष्टावक्र अष्टमवि शाली पृ० ५७९।

क्या क्या छवि नाम की, यके बने दो भाव।

तुच्छनी मस्तक तव बने चतुर नाम की हाव त

७. अष्टावक्र पृ० ६ ७ तप घन स्वामी यह निघ्न मानी जो श्रीनाथ जी और श्री गुठार्त्त जी की एक स्वरूप हैं।

का आधिमांश हुआ या नहीं श्री विठ्ठल की देह में प्रकर हुआ है। गोकुल का शापाक ह्य शरीर में निवास कर रहा है। बच्ची की शक्तियों के रूप में अर्चनीर्ण गोपियाँ ही अत्र में गोप बच्ची हाकर अर्चनीर्ण हुई हैं। इस प्रकार इनमें भीर उनमें कोई भेद नहीं है।^१ श्रीनाथ जी क अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में माध्य अम्ब अर्चावतार श्रीकृष्ण के विभिन्न रूप होते हुये भी अर्चा क स्वभाव से सम्पुक्त होने क कारण विविध मानबोधित स्वभावों से पुत्रत हैं।

गर्मी क दिनों में श्रीहाराकानाथ जी अर्चावतार को गर्मी बहुत सताती है। टाकुर जी में क्रोध की भावना भी विद्यमान है। वे क्रोधवश अपने सेबक के ऊपर हात जमा बैठे हैं। फिर भी सेबकों की चिन्ता से ये बपार्ह होकर उबका कर्म स्वयं चुका देते हैं।^२ श्री नवनीतप्रिय जी की भाव से सेवा करने क उपकण्ड में इनकी सेविका को एक पुत्र उत्पन्न होता है।^३ ये काल कड़ी कंकर मायबहास से पूछते हैं 'कहे तू कहाँ गयो हतो।'^४ मनुष्य के स्रष्टा ही अर्चावतार अपनी अतिरिक्त अमिदधि या भाव प्रकर करते हैं। अतएव टाकुर जी को लोक में छुटने क लिये स्वयं कहना पड़ता है।^५ अपनी इच्छा न पूरी होने पर क कठना जानते हैं।^६ कभी ये वृष का कठोरा हाथ में लेकर स्वयं दुग्धपाय करते हैं।^७ कभी गोकुल जाने की इच्छा करते हैं।^८ तथा सेबक क जाने पर ही मोजन करते हैं।^९ नवनीत प्रिय जी को उनकी सख्या बहुत छोटी पड़ती है।^{१०} श्री गोकुल चत्रमा को अर्चावतार का गर्म लीर ज्ञाते समय हाथ उलने लगता है।^{११} रणझोड़ जी अपने सेबकों से बागधीत करते हैं और उन्हें बहुत प्यार भी करते हैं।^{१२} इनक मानबोधित ब्यापारों की सीमा तो यहाँ पर कथित होती है कि अपने भक्त जगन्नाथ जोसी की रक्षा क लिय टाकुर जी ललवार क्रिय राजपूत का हाथ पकड़ छेते हैं।^{१३} सकिन मुगलों स अपनी या अपन भक्त की रक्षा में

^१ अष्टप्राप पृ २०२।

वे बसुदेव किसे पूज्य नर देह प्रक कथिन भी बहम देह।

वे खेवाक हते गोकुल में प्रेय अत्र आर बसेकरि देह प्र

ये क गोन बनु ही बृष में छेई अत्र वेद रिखा भर्ष पर।

धीन स्वामी विरिचरम श्रीविठ्ठल हरं छेई छेई परं कहु न छेई॥

२ श्री दे० ना पृ० २२५। ३ वही पृ २२९। ४ वही पृ० २४०।

५. वही पृ० २५२। ६. वही पृ० २५२। ७. वही पृ० २६५।

८ वही पृ २६७। ९. वही पृ २७०। १० श्री० दे० ना० पृ २६८।

११ श्री दे० ना० पृ २७५ में 'हल तो छीर कठारं सी लगी कपी तब मै हल सरकि के अंगुठी पायी है। तो मैरे जोड हल बाहे है।'

१२ श्री० दे० ना पृ० २६८। १३ वही पृ २८४।

सर्वथा असमर्थ प्रतीत होते हैं।^१ फिर भी शक्तों शंको के अनुसार डाकुर जो को शक्तों के लिये अभिजातिक कष्ट उठाया पड़ता है।^२ शारी शक्तों के साथ डाकुर भी शक्तपर व्यवहार करते हैं।^३ कभी रोटी माँग कर खाते हैं तो कभी कंधे पर चढ़कर खेचते हैं।^४ पत्तली का मारा भोजन टाकुर जो खा लेते हैं, पर शक्तों का ऐसा विश्वास है कि डाकुर भी का खाया भोजन घटता नहीं।^५ किन्तु विचित्रता तो यह है कि डाकुर भी के देखते-देखते उनका मारा भोजन फिर या सूत जाकर जा जाता है जो आचार्य जी को देखते ही अग्नि में डकड़ने लगता है।^६ उन्नत उपाहारों से मध्यकाल में प्रचलित सगुण सम्प्रदायों में ध्यास अर्चनकारों की मित्य लौकिकों और मानवोचित व्यापारों की अनोकी शक्तिर्षो मिलती हैं।

बहुम अत के अर्चा रूपों के अतिरिक्त उस काल के विभिन्न सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण की ही अर्चा-मूर्तियों के विभिन्न रूप उचित होते हैं। इन रूपों में कुछ प्रसिद्ध भक्तों द्वारा तत्कालीन साहित्य में कवियों की लीला एवं कवि-सम्बन्धी कितनी रचनाएँ मिलती हैं उनमें इन अर्चा रूपों के वैशिष्ट्य की रूप अवरोध बतमान है।

'भागवत सुवित के अनुसार विभिन्न भक्तों में श्रीकृष्णोत्थामी के गोविंद, श्रीसनातन गोस्वामी के मदनमोहन की माधोदास के श्योपीबाब, श्री श्योपाल भट्ट के राधारमन, श्री हित हरिवन्स के राधाबल्लभ, श्री हरिभ्यास के सुपथकिशोर और स्वामी हरिदास के कुंजविहारी हृदाबन के रूपों में प्रसिद्ध हैं।^७ इसके 'अतिरिक्त' 'भक्तमाक' के अनुसार राधाचर भट्ट के लखविहारी,^८ श्री नारायण दास के काक जी,^९ श्री भगवान् दास के खोजी जी,^{१०} श्री गोवाली जी के मोहनकाका जी,^{११} श्री रामदास के विहारी जी^{१२} श्रीमदचरित भक्त के कुंजविहारी^{१३} आदि अर्चा रूप में श्रीकृष्ण के पौराणिक एवं तत्कालीन साग्य शक्तिक और वैदिकक वैशिष्ट्य के परिचायक हैं। साथ ही पुरी के अय्यनबाब जी

१. श्री० दे० का ६० ७१ सो कितनेक दिन पाठे मुचन की श्रीम नाम ली पाये
पान लखी ली डाकुर जी को एक मुक्त के ली। तब मरनाप दास का मुक्त के
साथ दिन सात को रहे।

२. श्री ६० १००। ३. श्री ६० ४९४।

४. श्री ६ १०२। ५. श्री० दे० का ६० १०२।

तब वह पीर दीवत भक्ति ली।

६. वह इसी अर्थाव में पीठे रहन।

७. भक्तमाक ६० ८९७। ८. भक्तमाक ६ ९ १। ९. श्री ६० ९०४।

१०. श्री ६० ९१५। ११. श्री ६० ९२६। १२. श्री ६० ९९।

और पहरपुर के बिहोवा भी श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रख्यात अर्चाविग्रह हैं। आरुणेय ऋक में इनकी ईश्वरोचित और मानवोचित लीलाओं से सम्बद्ध अनेक रचनार्थ मिलती हैं। 'मच्छमाळ में अनेक सप्तौ और मच्छ कविओं के साथ अर्चावतारों की उच्चार और लीला सम्बन्धी कथाएँ भी गई हैं। इन कथाओं की विशेषता यह है कि इन्हें प्रायः प्राचीन भक्तवतारी कवियों की परम्परा में ग्रहण किया गया है। कहीं तो इनमें भक्तवतार-अर्चा मिश्रित रूप कथित होता है और कहीं बिहृद्ध अर्चावतारी मात्र रहता है।

मच्छ के मिश्रित प्राकृत्य

नामा की वे नामदेव सम्बन्धी अर्चावतार-रूपा की रचना करते हुए कहा है कि हरि ने जिस प्रकार मूर्तिरूप में पद्माक्ष की प्रतिष्ठा पूरी की थी, वैसे ही श्री बिहृद्ध-रूप में नामदेव के हाथों से वृष विमा।^१ मरी हुई गाण जीवित कर असुरों को दे ही।^२ जल में डूबे हुए एक पत्थर के बड़े अनेक निकाल दिये।^३ नामदेव की के छिये मंदिर का दरवाजा पीछे की ओर कर दिया।^४ भगवान् ने प्रेमवत्स नामदेव का जप्पर द्वा दिया।^५ 'गीतगोविंद' की अष्टपदियों क विषय में कहा गया है कि जो उसका प्रेम पूर्णक पाव करता है वहाँ निश्चय ही श्री राधारमन प्रसन्न होकर सुवने के छिये धाते हैं।^६ किश्वमण्ड को हरि हाथ पकड़ा कर धुवा डेते हैं।^७ इस प्रकार मित्य विग्रह रूपों के अतिरिक्त भगवान् प्रेमवत्स साकार रूप में मच्छ हुआ करते हैं।

१ मच्छमाळ पृ० १२९, ख ४१।

नामदेव प्रतिष्ठा निर्बंही ज्यों जैना मरहरि वास को।

बाळ्यसा गौडक पाणि बाळि दे गोवी ॥

२ वही पृ० १२२ ख ४१।

सृजक मळ विनाय परजो असुरन को बीनो।

३ वही पृ० १२२ ख ४१।

सैव सच्छि तै कादि बहिक बैसी ही होतो।

४ मच्छमाळ पृ० १२२ ख० ४२।

देवक पक्यो देखि सङ्गि रहे लवही छोटी।

५ वही पृ० १२२ ख ४१।

पंडुरनाथ कृत अनुम ज्यों ध्यानि सुकर धारें बाठ की।

६ वही पृ० १४१-१४४ ख० ४४।

अष्टपदी लम्बात करे कैरि मुक्ति वदाने।

गौरावात्मन प्रसन्न द्जनन निश्चय तई आवे ॥

७ वही पृ० १२७ ख० ४१।

हरि पञ्चरात्रो दान बहुरि तई किनो सुदारें।

श्री भगम्नाथ जी कृष्ण भोग ग्रहण करने के पूर्व श्रीकर्मा की किचड़ी बहुत पसन्द करते हैं और दो कम्पार्थों के पास 'सिद्धिपिछे' कह कर पुकारने मात्र से उपस्थित हो जाते हैं।^१ इस युग के मकत बीर भगवान् शोभों की ऐकान्तिक साधना बीर निहा समान रूप से मचेष्ट विदित होती है। क्योंकि मकत ही भगवान् के निमित्त आकुल नहीं रहता अपितु उसका उपासक भी उसक किचे जतना ही आकुल रहता है। रामदास कहते हैं कि मकतों के पीछे भगवान् इस प्रकार फ़िरा करत हैं जिस प्रकार गाय के पीछे-पीछे बड़का।^२ वे मकत के किचे पयिक के रूप में स्वयं अपने को लुपता करते हैं।^३ और साधी बैसे के निमित्त स्वयं 'सुरबहा पधारते हैं।'^४ अर्थात् उपासक 'राधराम जोड़' अपने मकत पर किचे गये बार को स्वयं अपने शरीर पर रांक केते हैं। इन्हें नहीं बकि-बधन के निक्षेप्य से अमिहित किया गया है।^५ कृष्ण के अचरारी कुरपों की तुलना में एक और धरना का अक्षेप्य श्री रामदास ने किया है। वे कहते हैं कि वास हरण की धरना तो पुरानी हो चुकी, इस युग में भी मकत अक्षुस्वामी के बैकों की चोरी हो जाने पर स्वयं ने बैसे ही बैठ करके दे दिये।^६

वारमुकी के मुकुट के किपु श्री रंगनाथ स्वयं अपना सिर तथा देते हैं।^७

१ मध्यमांक पृ १२६ अ ५१।

कृष्ण भोग से बहिक धीर करमा को जाने।
सिद्धिपिछे के क्वट कुँवरि ये हरि बकि जाने ॥

२ वही पृ १२६ अ ५२।

मकतनि संग भगवान् नित बबो गक कच्छ मोहन धिरे।

३ वही पृ १२६ अ ५३।

निहिक्किचम दक दास ताम के हरिबन जाये।

निहित बन्ही रूप मये हरि आपु प्रयाये ॥

४ वही पृ १२६ अ ५३।

ताबि देन को स्वयं सुरबहा प्रमुहि पचारे।

५ वही पृ १२६ अ ५३।

रामदास के सकल राग टनछोर विचारे।

६ मध्यमांक पृ १२६ अ ५३।

अक्षुष्यन तन अक्षुष्य के बकि बंजन आपु बपु बरे।

७ मध्यमांक पृ १५४ अ ५४।

बकल हरण पाये विनित तुनो संग भचरन बबो।

अक्षुष्यनि के कृष्ण चोरि प्रबवाधी स्वाये ॥

हेकेई दिवे स्वयं बरन दिन येन सुपाये।

८ वही पृ १५४ अ ५४।

वारमुकी के मुकुट को श्री रंगनाथ को धिर लबो।

आधार मन्त्र कवि भी नम्मकवार की रचनाओं में श्री रगमाय को ईश्वर का पूर्ण भाविर्भाव तथा अम्य देवताओं को इनका अव्यक्तार कहा गया है।^१ इस प्रकार प्रायः सारे भारत में जिन वैष्णव भक्तियों की रूपरेखा परिलक्षित होती है, वे अपने प्रत्येक रूपों में उपास्य के रूप में साम्य थे। विष्णु एवं उनका भक्तियों से सम्बद्ध रक्षा आदि कार्यों का जिस प्रकार पुराणों या महाकाव्यों में प्रचलन देखा जाता है वही प्रकार तत्कालीन रचनाओं में भी कठियुगी भक्तियों के अधिक उल्लेख हुए हैं।

किन्तु भी इस अध्याय में प्रस्तुत अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि यहाँ देवराज-विभास और मूमा-हरण आदि पौराणिक कार्यों का उल्लेख न होकर उनकी व्यक्तिगत स्वरूप से कुछ जनश्रुतिपरक कार्यों का विवरण ही अधिक प्रस्तुत किये गये हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें विष्णु का भक्तारण्य की अवस्था विष्णु का उपास्यत्व अधिक है। तत्कालीन उपास्य, महाकाव्यों एवं पुराणों में वर्णित रामकृष्ण आदि भक्तियों की अपेक्षा पाँच शतों में साम्य अर्चाभारों का विशेष निम्न है। इसमें संदेह नहीं कि वे पौराणिक रूपों के ही विकसित और पाँचराज संवर्धित अर्चा विधि रूप हैं क्योंकि पुराणों या महाकाव्यों में भक्तारण्य के साथ-साथ यहाँ इनके अवसान का भी उल्लेख होता रहा है, उनमें न्यूनाधिक ऐतिहासिक तत्त्व अवशिष्ट कथित होते हैं।

यहाँ तत्कालीन साहित्य में उनका जिन रूपों का विस्तार हुआ है, वे स्पष्ट ही निम्न उपस्थित रहने वाले और भक्तों की मात्र-मक्ति स्वीकार करने वाले अर्चाभार प्रदान इच्छित हैं। अतएव उनकी व्यक्तिगत सहायता संबंधी कहानियाँ पौराणिक परम्परा में गृहीत होती हुई भी अर्चाभारों का वैशिष्ट्य एवं गुणों और स्वभावों से कुछ होने का नाते अपना सामयिक महत्त्व रखती हैं। इस दृष्टि से उनकी भक्तिक लोकप्रियता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। इच्छित आचार्य और भक्त सम्बन्धी लोकप्रियता अधिकारिता उनका अपूर्व सहायता या चमत्कारों को लेकर ही अधिक विस्तार पाती रही है। इस युग का अर्चाविशिष्ट इच्छित इस कारण से विशेष रूप से सम्बद्ध है। उपास्य राम का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए भी पाण्ड्यास ने कहा है कि और युगों की अपेक्षा कमलनयन न कठियुग में सर्वाधिक कृपा की है। अथ

'सारगपात्रि' राम ने अपने दो भयों की रक्षा क किष्णों क प्राण के टिचे ।^१ उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि इन कवियों में पौराणिक प्रपात्रों की अपेक्षा मत्स्य क पास सर्वदा उपस्थित रहने वाले इन्द्रदेव का अस्तित्व अधिक प्रमाण है जो इस युग की एक महत्वपूर्ण प्रकृति का परिचायक है ।

श्री जगन्नाथ-भवतारी—

अर्था-विक्रिष्ट उपास्य-कवियों के अतिरिक्त इस युग की रचनाओं में अर्था-वतार श्री जगन्नाथ को भवतारी और भवतार क रूप में भी विक्रान्त स्थान प्राप्त हुआ है । परबर्ती पुराणों से ही एक ओर ता इनका सम्बन्ध श्रीकृष्ण से स्थापित किया गया और दूसरी ओर इन्हीं से मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों के विकास की भी संशोधना की गई ।^२ 'सम्प्रदाय मन्वीप' में 'पद्मपुराण' क आचार पर कहा गया है कि कल्कियुग में उत्कल देश विद्यत पूर्व पुण्योत्तम श्री जगन्नाथ के जन्म से मत्स्य-भवर्तक चार सम्प्रदायों का प्राकट्य होगा ।^३

'रागकल्पद्रुम' में संगृहीत एक अपरिचित कवि की कविता से श्री जगन्नाथ क ही रक्षाकर्ताओं क रूप में आविर्भूत होने का शोध होता है । इस पद में कहा गया है कि जगन्नाथ, बलभद्र सुभद्रा और चक्रसुदर्शन का नाम रखे, जिनका ब्रह्मा, शेष शारदा भी पार नहीं पा सक, जिन्होंने मत्स्य कूर्म पराह मुनिह, कामन, परशुराम, राम और कृष्ण का रूप धारण किया है । उन्होंने दुष्ट के रूप में 'अहिंसा परमो धर्मः' जैसे बचन प्रकट किये और वे ही महाप्रभु कल्कि होकर प्रकट होंगे । यहाँ महाप्रभु कल्कि के श्री महाप्रभु ब्रह्माचार्य से अभिहित होने का संदेह होता है ।^४ श्री परशुरामाचार्य ने

१ अक्षमाक ५ ४२२-४२२ अं ४४ ।

और युगम ते कथक मैत्र कल्पियुग ययुग कृपा करो ।
 शीघ्र दिव्ये श्रुताय मत्स्य संन उभिया लये ।
 निर्जन वन में जाव दुष्ट कर्म किये कभाये ।
 शीघ्र दिव्यो ली यहाँ । राम । कर्हि नारि पुकारी ।
 नार लार्म वरिधि शीघ्र सागर ते लारी ।
 दुष्ट किये निर्जीव सय दात संशारारी ।

२ सम्प्रदाय मन्वीपात्रोक्त ५ २४ और अं प्र० ५० अ ।

३ सन्महाय मन्वीप ५० ४० ।

कालाररुते कला माम्नाः सम्प्रदाय प्रवर्तकाः
 कविभ्रमिनि प्रतिशारुते द्युलके पुण्योत्तमाए ॥

४ राग कल्पद्रुम की २५ २४४ ।

जगन्नाथ बलभद्र सहोदरा चक्र सुदर्शन रट रे ।

श्री जगन्नाथ को वसावतारों में बुद्ध के स्थान पर ग्रहण किया है। उक्ति साहित्य में इन्हें बुद्धावतार से भी सम्बद्ध किया गया है। श्री परशुरामाचार्य की कविता में वसावतारों में बुद्ध के स्थान पर श्री जगन्नाथ का उल्लेख तो है परन्तु बुद्ध से इनका कोई सम्बन्ध विहित नहीं होता। हम कविता के अनुसार ये अर्थावतार जगन्नाथ प्रतीत होते हैं। क्योंकि इनकी सुन्दर चरम देह जो परम सुन्दर है वहाँ भी स्तुति के पश्चात्, सभी कर्णों को दूर करन बाड़ी है। श्री गिरधर जी ने अपने पद में उनका मङ्ग-रूप, अवतार, अवतार प्रयोजन और उपास्य कर्णों का अंकन किया है। इनके मत्तासुसार अखिल विश्व के स्वामी और आधार जगदीश को मङ्गा और सिद्ध के उपास्य हैं जिन्हें बहो में निर्गुण और निराकार मङ्ग कहा गया है वही निराकार मङ्ग पृथ्वी का भार हरन करने के लिये साकार हुए हैं। वही नान्यस्तु जर्म के संस्थापक और सभी का समान-रूप स ध्यान रखने वाले हैं। पतितों का उद्धार करने के लिये उन्होंने हृत्प्रदमन पर कृपा की। वही शाल पुत्रोत्तम महाप्रभु उल्कक देश के शीत पर्वत पर समुद्र के किनारे विराजमान हैं। उन जगन्नाथ बलमद् और सुमद् का चरण-कमल ध्यान में रखने योग्य है। उनके पास ही सुहर्षण सम्पन्नामा और समुद्रकुमार उपस्थित हैं। मंदिर के मध्य में रत्नसिंहासन पर प्रभु स्थित हैं। वे लक्ष्मी जी द्वारा तैयार

मङ्ग शैल मईय शारदा पार न पाव मट रे।

मन्मद कम्प बाराव अवतार रूप भारो को मट रे।

मरद्वि नामन परतराम सुनि राम कृष्ण मय मट रे।

नां विंता परमोचरम इति नाम्न वरपट रे।

शुंदावन के वाली महाप्रभु कच्छी होय परणट रे।

१ कविता में हाफमङ्ग के नाम से किसी हूर्न एक कविता मिलती है जिसमें जगन्नाथ के रूप में बुद्ध की स्तुति की गई है।

२ परशुराम तागर, इ० के० ना० प्र० स दस अवतार की ओड़ों में इत्यन्त।

अवतार जगदीश सकल इति नोन पुर्वर देहि भारं।

दूरन मङ्ग सकल सुख को निधि प्रवट बड़ीसे है हरितारं।

नाके हीरामाय योग विधि सुंदर चंदन देह परै सुखदारं।

वरतराम की मधु को दस पावत-पावत सुख सबे सुख भारं।

३ श्री गिरिधर जी बलमाचार्य के पुत्र हैं। मामा दास जी ने 'बलमाङ्ग' पृ० ७७६ पृ० १३१ में लिखा है 'अथ मू० के वंश में शुकक गिरधर भावमान' इनके अन्त पदों में 'रामचन्द्रमू०' की० १ १६, १७ में 'अथ प्रभु चरण कृपासे गिरिधर पद पठ पावो रे का प्रयोग हुआ है।

किया हुआ पदरस भोजन तथा करमाबाई की लिखड़ी घेस पूर्वक पाते हैं।^१ इस प्रकार इस पद में अवतारभाव और अर्चोत्पन्न होने का अपूर्व समावेश किया गया है। वे महा के अवतार हैं और भूमर-हरण उभय प्रयोजन भी है। किन्तु अर्चात्पत्ती का समावेश होने के कारण वे समय की सीमा या काल से दूर हैं। वे निम्न अर्चाकृत में पृथ्वी पर स्थित हैं। उक्त पद से अवतारविशिष्ट सत्काशीन अर्चाविग्रहों का रूप का पर्याप्त स्पष्टीकरण हो जाता है। इस सुदृष्ट पद के अतिरिक्त गिरधर के अन्य पदों में अर्चा का उपास्य रूप ही अधिक वर्णित हुआ है।^२ इसमें इन्होंने अधिकतर उनके शरण-कर्मकों की बन्धना की है।^३ जगन्नाथ की क अर्चाविग्रह से सम्बद्ध 'रागकल्पद्रुम' में आद्योप्यकाक के कृष्णदास और मीरा के पद भी संयुद्धित हैं। उनमें उभय उपास्य-रूप ही अधिक वर्णित हुआ है।^४

१ रागकल्पद्रुम बी० २ पृ० १२ पद २।

जय कवचीक विज के स्वामी अस्मिन् श्लोक आचारा दे।
 भ्राम परे विधि वासर विमल्ये जगुत्तमान विजुगारा दे।
 निगम नित्य विग्रुण ही गाने करत महा निरंकारा दे।
 सीरे इति सुबनार कतारन कारण अकल्य भव साकारा दे।
 शीम वीशु कर्म के रनापक लक्षणे करे सम्पारा दे।
 इन्द्रदमन पे किरपा क्षेमो काल पठित कषारा दे।
 कलक वैद्य भोज पर्याप्त है महीदविवादि कषारा दे।
 तहाँ विराजे राज पुत्रोपय भी महापशु प्यारा दे।
 भी अण्णाव बकमरु सुमरा शरण कमक विदवारा दे।
 वात सुदुर्घन अथ साकभाषा पात समुद्र किनारा दे।
 मंदिर मध्य रज सिंहासन तहाँ मनु करोपिबारा दे।
 होय आरती भोग अरोमे बधि सधि नारंभारा दे।
 भी कर्मो भी करै रसीरं बरस विविध प्रधारा दे।
 करमाबाई लिखड़ी अरोगने करि करि के मनुहारा दे।

२ रागकल्पद्रुम बी० २ पृ० १२ पद २।

३ रागकल्पद्रुम बी० २ पृ० १२ पद २।

अण्णाव बकमरु, सुमरा इनके शरण विनकस्यो दे।

४ रागकल्पद्रुम बी० १ पृ० ४११ पृ० ३।

कृष्णदास जगन्नाथ मन बीद किबोरी।

बकमरु सहोदा लक्ष्म किये कृष्णदास बकिहार किबोरी।

रागकल्पद्रुम बी० २ पृ० ४ मीरा

अवते मोदि अण्णाव इति परे भारं।

मीरा के मनु कल्पान शरणन बकिबारां।

जिसके फलस्वरूप भक्तिमति काव्यों और रचनाओं का लोकप्रिय होना स्वाभाविक हो गया। समाज में इन्हें ही संस्था में बुद्धि होती गई। फलतः स्तुति या भक्तों की रचना के साथ-साथ लीला-गान, कथा-ग्रन्थ सासंग-कीर्तन, भजन-दरबार, लीला-वाक्य और उत्सव आदि का पथेय प्रचलन हुआ। जहाँ ईश्वर के दरबार भी सन्मार्थों के दरबार की मात करने लगे। क्योंकि जहाँ तक इनका सम्बन्ध काम्याभिप्यक्ति से है उस काक क मछ कवि इन्हें ही के प्रति की गई अभिप्यक्तिओं एवं रचनाओं को 'स्वतःसुखाय' मानते थे। उनके मत में न मोक्ष की अभिलाषा भी न मुक्ति की। व एक मात्र 'भगवाणिनी' या 'प्रेमानुगा भक्ति क पिपासु है। उनकी कला-अभिप्यक्ति में 'पदासे', 'अर्पणहृते' 'भक्तद्वारविदे' 'विचररकतय' या 'कातासमिततपो परेषापुजे' जैसा कोई प्रयोजन नहीं था।

कवक भक्ति टाकुर-दरबार की कामना थी और बिल्कुल लीला में रवान, उसकी चरम परिणति या अंतिम पारितोषिक। भक्तों के किन्तु इससे पड़कर कुछ नहीं था। इसी से उनके किये टाकुर-दरबार के समक और सब कुछ नगण्य था। 'सम्प्रदायविशिष्ट अर्था विग्रहों को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है।

किन्तु उनके अतिरिक्त बङ्गम मत के आचार्य गोकुलनाथ द्वारा सुविचारित भी नाथ की का दरबार था जिसमें भी रत्नों के समान प्रसिद्ध अष्टाष्टक के कवि वर्तमान थे। 'गोवर्धन नाथ की की प्राकल्प वार्ता के अनुसार भी नाथ की के नाथ ही इनका भी प्राकल्प होता है।'

मा० ११, ५, २०-२२, में विसे हुए अर्थाविग्रहों के सत्त्वगुण से लेकर कविगुण तक के रूपों का अभ्ययन करने पर यह पता चलता है कि अर्था-रूपों का विकास भी भारतीय सम्भता और सस्कृति के विकास के साथ-साथ उत्तरोत्तर सुन्दर और सम्य होता गया। सत्त्वगुण के विग्रह जहाँ अटा बरकक

१ रा मा०, वा० प० स० १ *स्वतः सुखाय मुक्ती एवमाय मावा'।

२ रागकल्पवृक्ष की० २ ६० ५५२ वर में परमानन्ददास कहते हैं कि गुण तब कीन भूति वे जाईं।

मदय दोनाक अष्टकी-मोहन सक्क नुरव बाकी दाईं।

गुम ही छोड़ और किन बाबू पर हाथ करा विकारें।

परमानन्द दास श्री टाकुर मक वीरिन कक वाईं।

३ गोवर्धन नाथ की की प्राकल्प वार्ता ६० २०

कव भी गोवर्धन नाथ की प्रकट मय

तव अह सखा हू भूमि पे प्रकट भवे।

धीरे-धीरे चर्म पहनते हैं^१ वहाँ कलिपुत्र के विग्रह भीकमणि के समान अनेक मणियों एवं सुवर्ण आदि अर्कों और सुमन्द प्रभृति पार्ष्णों से युक्त रहते हैं।^२ अतएव इस युग तक अर्चा इष्टद्वयों का स्वरूप अमन्त पेरवर्ग से युक्त था और वे भक्तों के माथ के मूखे सज्जत थे।

इस प्रकार मध्यकालीन अवतारवाद की कल्पना और विकास में अर्चकों का महत्वपूर्ण योग रहा है। अवतारवादी महात्माओं के इष्टद्वय तो निर्गुण निराकार रूप में न जाने किस लोक में स्थिर रहते थे। भक्तों की आर्त श्राप्ती के उपरान्त ही उनका अवतार हुआ था। किन्तु अर्चा-रूप में भगवान् भक्तों के नित्य सहचर और सबकर्मसुलभ थे। इनके उद्धार और अन्वय अवतार-कार्य नित्यप्रति होते रहने थे। इससे स्पष्ट है कि इस युग तक परमेश्वर के समय या युग विशेष में अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। न उनका उद्धारकार्य ही किसी राजस विशेष के बंध मात्र तक परिसीमित था। अपितु अनेकानेक उद्धारकार्य उनके नित्य प्रति करने पड़ते थे। उनसे अवतारी शीकार्य भी अब केवल बँधी हुई पौराणिक शीकार्यों तक बाध नहीं थी, अपितु अर्चारूप में नित्य-सर्वत्र वे भक्तों के साथ मनमानी शीकार्य किया करते थे।



१ भा० २, ५, ११

इमे सुहृद्वर्गाः बंदिषो वस्तुनाम्बरा ।

कृष्णाशिनोपचीताद्यान् विग्रहकमण्डिताः च ।

२ भा० २१, ५, ३२

कृष्णवर्गं शिवाकृष्णं शशिपुत्राकारपार्ष्णम् ।

बद्धैः संकीर्णशरीरैर्बन्धि दि सुमेवरा ।

तेरहवाँ अध्याय

आचार्य प्रवर्तक

महाकाव्य काक से लेकर मन्वन्तुण तक अवतारवाद की प्रकृति सर्वत्र एक सी नहीं रही अपितु इस युग के साम्राज्यों के प्रभावानुरूप उसका पूर्वतः साम्राज्यपीकरण हो गया। किन्तु पौराणिक काक से हो इस साम्राज्यिक अवतारवाद में एक विशेष प्रकृति यह उचित होती है कि इसमें विभिन्न मतवादों और धर्मों के मिश्रण फेंकने या इनका सम्मेलन करने के विपरीत उन सभी को अवतारवाद में समेट कर अभूतपूर्व समन्वय धरम का प्रवचन होता रहा है। 'भागवत पुराण के २४ अवतारों की सूची में जिन महापुरुषों को परिपूहीत किया गया है व किसी न किसी मत या चिन्ताधारा के प्रवर्तक रहे हैं। विशेषकर सनातनधर्म से, नारद का पांचरात्र से, नरनारायण का तप से, कपिल का सांख्य से इच्छात्रेय का योग से, पण्ड का (पशोर्बलिष्णु) ब्रह्म से, आप्तमुका जैन धर्म से पृथु का क्षत्रिय भीर कृषि से, धन्वन्तरि का जासुर्बेद से सम्बन्ध रहा है। साथ ही परशुराम जोडा के रूप में, राम बुधिनार्त्त के विजैता के रूप में, कृष्ण भगवन्त धर्म के प्रवर्तक, बुद्ध बीज धर्म के प्रवर्तक और कश्कि नप युग के संस्कारक-रूप में विख्यात हैं।' इस प्रकार पौराणिक अवतारवाद विभिन्न मत के प्रवर्तकों से सम्भावित एक विकल्प समन्वयवादी प्रकृति प्रस्तुत करता है। 'विष्णुपुराण' के अनुसार पूर्ववर्ती धर्मप्रवर्तक अपनी परवर्ती संतान के बहो उत्पन्न करते हैं और पुनः परवर्ती अपने पूर्ववर्ती पितृगणों की संतान के रूप में जन्म लेते हैं।' इस प्रकार 'विष्णुपुराण' के प्रवर्तकों का एक अवतारवाद ही प्रस्तुत किया है। पांचरात्र संहिताओं के चतुर्धर्मों में पूहीत संकल्पन, प्रपुत्र और अविच्छेद के क्रमध्या पांचरात्र मत का उद्देश्य इस मत के अनुसार, जिन्हा की सिद्धा और मोक्ष का रहस्य-उद्घाटन जादि कार्य बतलाने गये हैं।'

१ डा इरोलियुस भाट्ट की आन्वैरिक वैमिन्व १९१८ पृ १८८-१९१ और वा० १, ३ और ३, ७।

२ वि० पु २, ८, ८९-९।

३ अदि० सं ५, ११-१३।

पूर्वमध्यकाळ में आगे चरकर इन प्रयोजनों के निमित्त विष्णु के स्वयं अवतार न होकर उमक भायुष आभूषण, पार्यद आदि के अवतारों की प्रप्राप्ती का विकास हुआ ।^१

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनके अवतार का एक मात्र प्रयोजन कर्म या सगुणियों का प्रवर्तन और भक्ति का प्रसार था । इस युग के मूल प्रेरक आत्मारों और दक्षिणी आचार्यों को ही सर्व प्रथम विष्णु के भायुष आदि के अवतार-रूप में आधिभूत माना गया । दक्षिण के पण्डित द्वादश आत्मारों में पोयगो शंकर के, मुत्तय गद्दा के, पेयी जम्बका के, तिरुमकसाई चरक के जम्मकवार विण्णकसेम के मधुर कवि गद्दक के पा चरक के कुळरोत्तर क्रीस्तुमके, वेरिय गद्दक के, अंदाक पूष्पी के, तोम्बद्विप्योकि वनमाध के तिरुप्पन श्रीवास और तिरुमगाई सारंग के अवतार माने गये ।^२ इनके अतिरिक्त कुळ आचार्य शिव, ब्रह्मा आदि सहायक देवताओं के भी अवतार-रूप में प्रचलित हुये । इनमें विशेषकर शंकर जसुर मोहनार्थ शंकराचार्य के रूप में आधिभूत हुये । सगुणता: इन कर्षी की पूर्ति में इनके विख्यात विष्णु मंडन मिश्र ब्रह्मा के और उमकी श्री भारती सरस्वती के अवतार माने गये ।^३ 'शंकरदिग्विजय' में इन प्रकार आचार्यों के अवतार की एक विधि का उल्लेख ही गई है । उसके अनुसार शिव की अनुमति से विष्णु और शेषनाग ने अवतार-स्वर्ण किये । कर्म योग और ज्ञान तीनों के प्रतिपादन एवं प्रचार के निमित्त कर्मकाण्ड के प्रतिपादन के लिये कालिकेय कुमारिक भद्र के रूप में, योग के प्रतिपादन के लिये विष्णु और शेष जम्बका सकपण्य और परंतजकि के रूप में और ज्ञान के प्रतिपादन के लिये शिव स्वयं शंकराचार्य के रूप में आधिभूत हुए कहे गये हैं ।^४ पुनः अन्य प्रसंगों में कालिकेय के अवतार कैमिनीय न्याय के लिये सुब्रह्मण्य के रूप में और इन्द्र के सुब्रह्मा राज के रूप में उल्लेख गये हैं ।^५ इन अवतारवादी प्रवृत्तियों का प्रबलन आठोप्य करक में प्रवर्तित रूपों में

१ अथवागम रामायण १, ४ १७-१८ में बहमन द्वेय के मरुत प्रंत के और अजुन मरु के अवतार कर गये हैं ।

२. तिरुटी आठ श्री वेणुवाज पृ० ७ पेयी तिरुप्पन और मधुरकवि, कल्याण भक्त चरिगाळ क्रमशः पृ ११८ ११९ और १२५ अंदाक भूमि का, तिरुटी आठ निष्पति श्री १५ १११ संभवता सीमा के समान भूमि पर मात होने के कारण ।

३ अंकरदिग्विजय पृ १११ सर्व १ ४८-५१ ।

४ अंकरदिग्विजय सर्व १ ४८-५१; सम्प्रदाय प्रतीपाठक पृ ५१-५४ में देवप्ररोध नाम के पंडित श्री स्वर्णवतार और कुमारिक भद्र की कैमिनी का अंदाकार करा गया है

भी हीन पड़ता है। 'सम्प्रदायप्रदीप' के अनुसार शाकराचार्य संकर के अवतार-रूप में ही प्रकटित रहे परन्तु इसी युग के श्रेष्ठक नामाश्रम ने उन्हें ईश्वर का अवतार कहा है।^१

इस युग में श्री जगन्नाथ के संभावितार के रूप में विठ्ठल रामानुज, विष्णु-रामाजी, मन्मथ और विष्णुका नाम के चार वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रकटित सम्प्रदायों का आधिपत्य माना गया है,^२ उनमें प्रायः सभी प्रवर्तक आचार्यों और कतिपय अन्य परम्परागत आचार्यों को विष्णु और उनके बाल्य, पार्षद, या उनके अवतारों का अवतार सम्प्रदायों में माना गया है। नामा भी ने चारों वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्यों को विष्णु के चौबीस अवतारों की परंपरा में कश्मिमुग के विभिन्न विष्णु का ही अनुपूर्वगतमक आधिपत्य कहा है।^३ श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक रामानुज ग्रामः सम्प्रदाय और परम्परा दोनों में सेपावतार के रूप में प्रसिद्ध हैं।^४ इस सम्प्रदाय में माध्व रामानुज के पूर्व के भक्त आचरारों की अवतार-परम्परा का पर्यवेक्ष्य हो चुका है। 'मच्छमाक' में कहा गया है कि रामानुज ने सहस्र मुक्तों से उपदेश कर जगत के भक्त का बन्ध किया।^५ संभवतः सहस्र मुक्त से उपदेश करने के कारण ही वे सेपावतार की परम्परा में गृहीत हुए।

श्री सम्प्रदाय की परम्परा के एक अन्य आचार्य कठकोपाचार्य अपने पूर्व

१ संकरविनिश्चय वर्ष १४०-१६ वर्ष १ ८ में संभव मित दृष्टि के अवतार भी कहे गये हैं।

२ सम्प्रदाय प्रदीपक पृ ४८।

३ मच्छमाक पृ० ११६ अ. ४९ 'कश्मिमुग नमोदाक मन्मथ आचार्य श्रेष्ठ मुक्त। ईश्वरान् अवतार मन्मथान् मन्मथान्।'

४ सम्प्रदाय प्रदीप पृ० १५। ५ मच्छमाक पृ० १५०-१५८ अ० १८।

चौबीस प्रथम हरि वसु करे त्यों अनुपूर्व कश्मिमुग प्रगट।

६ वैष्णव धर्म रत्नाकर पृ० १, पृ० १ अन्वये १ और पृ० १६ में 'मार्तण्डपुराण' के अनुसार त्यों 'शेषाक्ष तंभूतं रामानुजं मुनिं विना। मन्मथं पुनात् तमथ स्वार्थं न्येद विचारितुम्'। (क) पृ० ५० १० पृ० १८ में कहा गया है कि उक्तयुग में शेष विना में अहमथ, शरत् में कश्मिमुग और कश्मिमुग में रामानुज तत् परम्परा में गृहीत हुए हैं।

७ मच्छमाक पृ० १६१ अ० ११।

'सहस्र आत्त उपदेश करि, जगत उपारत कतक भिनी'।

आचार्य एव विष्णु के मित्य पार्यद् विष्वक्सेन के अवतार समझे जाते हैं ।^१ इसक अतिरिक्त विष्णु क आयुषों क अवतार का आभास इस सम्प्रदाय में साम्य पञ्चमारावर्णों की मूर्तियों से भी मिळता है ।^२

मिम्बार्क सम्प्रदाय में विष्णु क आयुषावतारों की परम्परा हीन पड़ती है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य श्री मिम्बार्काचार्य सुदर्शन चक्र के अवतार माने गये^३ तो इन्हीं की परम्परा में आने वाले श्री मिम्बार्काचार्य शंकर क^४ धीर भी देवाचार्य पद्य क अवतार कहे गये हैं ।^५

साम्य सम्प्रदाय में माना जाता है कि विष्णु जब-जब चारों दुर्गों में अवतार धारण करते हैं तब-तब व अपने पुत्र वासु देवता का सहायक अवतार के रूप में रहते हैं ।^६ अतः विष्णु धीर वायु क्रमसाः त्रेता में राम धीर हनुमान् द्वार में कृष्ण धीर भीम तथा कळियुग में मन्वाचार्य के रूप में आविर्भूत होते हैं ।^७ मत्स्यकाण्ड में वे प्रायः पञ्चमवन्द्य हनुमान के अवतार-रूप माने गये ।^८

इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक विष्णु स्वामी श्री विष्णु क अवतार एव इस सम्प्रदाय के इन्द्रदेव श्रीकृष्ण क अवतार माने जाते हैं । 'सम्प्रदाय प्रदीप' के अनुसार श्रीकृष्ण ही कळि का बधेद्य दूर करने के निमित्त विष्णु स्वामी के रूप में अवतरित हुये ।^९

१ वे १ पृ० १४ में परवर्ती 'पद्य' 'मत्स्य' 'मार्ग' आदि पुराणों के आधार पर सेवेद्य संभवतः विष्वक्सेन के अवतार कहे गये । पृ० १४ अ० १ श्लो० ४३ में उद्धृत

'ततो मगधराजिह संवेद्यो मगधद्विजः ।

अर्तः वाचवाचका परिवेद्य महाशुतिः ॥

२ हिन्दू आर्य श्री देवनाग पृ० १७ में उद्धृत श्लोक में ।

३ स प्रदीपाश्लोक पृ ११ में उन्हें सूर्योत्थावतार कहा गया है । साम्राज्य के 'मन्मथक' पृ० ५५७ अ २८ 'मिम्बार्कित्त आरिष्य सुदर अज्ञान सु हरिवा' के अनुसार श्री वे सूर्य के अवतार प्रतीय होते हैं । विष्णु सम्प्रदायों में उन्हें सुदर्शन का ही अवतार माना गया है । मत्स्य सूत्र मा श्रीकृष्ण सं० पृ १ श्लोक वेदव्यास एव संज्ञा पृ० १ 'मगवान् सुदर्शनोऽप्रवित्तकाऽप्रतीर्णस्तेऽंग द्विजवात्मना'। कल्याण वर्ष १ अंक १, पृ ७२० में श्री उन्हें चक्र-अवतार कहा गया है ।

४ वे २० म पृ ३, कल्याण वर्ष १० अंक १ पृ ७२ में पांचम्य संज्ञावतार और मत्स्य सूत्र मा श्रीकृष्ण सं० पृ १ में संज्ञावतार कहा गया है ।

५. मत्स्य सूत्रमाय श्रीकृष्ण सं पृ २ ।

६ १० आर० ४ श्लो० ८ पृ २१२ । ७ १ आर० १० श्लो० ५ पृ० २१३ ।

८. सम्प्रदाय प्रदीप पृ० ४५ ।

९. सम्प्रदाय प्रदीप पृ० १ श्लो० सं० प्रदीपाश्लोक पृ० १ ।

इस प्रकार चारों वैष्णव सम्प्रदायों में प्रायः अवतारवाद सर्वत्र व्याप्त है। यों तो इन चारों के अवतार का प्रबोधन विष्णु या उनसे अवतारों की मूर्ति का प्रचार रहा है। परन्तु मूर्ति के प्रचार के साथ ही इनका एक प्रमुख कार्य संस्कार के मायावाद का जन्म भी रहा है। क्योंकि इन सम्प्रदायों की मूल भावना अवतारवाद जिस मायावाद पर आधारित है,^१ संस्कार में उस माया को मिथ्या या भ्रम की संज्ञा प्रदान की और शुद्ध ब्रह्म की तुलना में माया को मिथ्या माना।^२ इनमें अवतारवाद के सिद्धान्त की भी मिथ्या होने की संभावना हो जाती है। अतः मूर्ति के साथ ही अवतारवाद की प्रतिष्ठा के निमित्त मायावाद का संकल्प और परिष्कार भी इनके प्रमुख प्रयोजन रहा है। विशेषकर मध्वाचार्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मध्य को स्वयं श्रीराम ने स्वप्न देकर मायावाद का त्याग और मूर्तिवाद का प्रचार करने के किने बाँधेस दिया।^३

हिन्दी मध्यकावीन साहित्य में जिन सम्प्रदायों की व्याप्ति दृष्टिगत होती है वे प्रायः उक्त सम्प्रदायों से ही निष्पन्न वा सम्बद्ध हैं। इस दृष्टि से भी सम्प्रदाय से रामानन्दी या रामानन्द सम्प्रदाय का उक्त सम्प्रदाय से ब्रह्म सम्प्रदाय का, ब्रह्म सम्प्रदाय (माय्य) से चैतन्य सम्प्रदाय का और सनकादि सम्प्रदाय (मिथ्यावाद) से राधा कृष्ण सम्प्रदाय का विकास माना जाता है। परन्तु सम्प्रदायों में अवतारवादी परम्परा के द्वारा सामंजस्य स्थापित करने वाली कोई प्रवृत्ति विशेष कल्पित नहीं होती। यहाँ तक कि सम्प्रदायों में माय्य इष्टद्वैतों में भी म्यूनाधिक वैषम्य उचित होता है। रामानुज सम्प्रदाय में केवल राम ही उपास्य हैं। माय्य और चैतन्य सम्प्रदाय के इष्टद्वैतों में भी भिन्नता प्रतीत होती है। उक्त और ब्रह्म सम्प्रदाय तथा सनकादि और राधाकृष्ण सम्प्रदायों में बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है।

उक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक भी अपने-अपने सम्प्रदायों में या तत्कालीन साहित्य में किसी न किसी के अवतार-रूप में विख्यात हैं। इनके अवतारीकरण में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उचित होती हैं जिनके चक्ररूप रूप इनके अवतार और अवतारी दोनों रूपों में वैद्यम्य हो जाता है। कहीं तो जनश्रुतियों एवं उच्यमानों से सम्बन्ध होन के कारण इन्हें पौराणिक एवं

१. नो० ४ २. प्रवृत्ति स्वामिनिहाय संभवाम्नाममाधवा।

२. विशेष चतुष्टयमपि पृ० १८ श्लोक में मिथ्या माया का परिचय मिलता है।

‘शुद्धात्मन मूर्तिविद्योत्पत्त्या उत्पन्नयो रज्जु विशेषतो वया।’

३. १८ सम्प्रदाय शरीरालोक पृ० १८ और सम्प्रदाय प्रतीक ४४-४५।

सम्प्रदायेतर देवताओं का अवतार कहा गया है, परन्तु सम्प्रदाय और उनके साहित्य में इन्हें इन्द्रिय या उपास्य क अवतार-रूप में या कभी-कभी गुरु-परम्परा क प्रमाणात्मक स्वरूप उपास्य रूप में गृहीत होने क माते अवतारी-रूप में माना गया है ।

रामानन्द

रामानन्द रामानन्द सम्प्रदाय में साधारणतः राम के अवतार माने जाते हैं ।^१ किन्तु राम क अवतार रूप में उनकी मान्यता परवर्ती विदित होती है । क्योंकि 'मत्स्यमाला' में उन्हीं सीधे राम का अवतार न कह कर उनके उद्धार कार्य को राम क सरास कहा गया है ।^२ 'सम्प्रदायप्रदीप' में भी एक रामानन्द की कथा का उल्लेख हुआ है । उस कथा में श्रीकृष्ण से कहवाया गया है कि रामानन्द पूर्वजन्म में कर्तुं के जमी लम्बकर मरा हुआ एक वीर पुत्र है जो पृथङ्ग किमी भारी पाप के फलस्वरूप सहस्र जन्मों के बाद में पदा हुआ है । अन्त में वह कहवायाय से दीक्षित होता है ।^३ इस कथा में स्पष्टतः भिन्न रूप का कारण ब्रह्म मग की धेष्टता का प्रतिपादन है । इसके अतिरिक्त 'मत्स्यमाला' में रूपकका जी क द्वारा उद्धृत किये हुये रामानन्द परवर्ती उल्लेखों के अनुसार भी रामानन्द को कहीं सूर्य का अवतार^४ और कहीं कपिल का अवतार^५ कहा गया है । इनका सूर्यावतार होना उपमात्मक विदित होता है ।^६

१. मत्स्यमाला पृ. ११० में श्री रूपकका जी ने संभवतः किसी परवर्ती कवि को बीपार्थ रस प्रकार उद्धृत की है । 'अगत पुत्र आचारज भूषा रामानन्द राम के कथा'। पुनः पृ. १२२ में 'अगत संहिता' के अनुसार राम के अवतार माने गये हैं ।

२. मत्स्यमाला पृ. १८२ एवं ११ 'श्री रामानन्द रत्नमाला कथां कृतिषु सैतु जय तारण कियों' इसके पूर्व एवं १५ के शिष्यके रामानन्द मगर विष मंगल विन्दु बसुवर्षों' से रामानन्दार का अनुमान किया जाता है ।

३. सत्यदास प्रदीपाशोक पृ. १४ ।

४. मत्स्यमाला पृ. ११४ मनिष्य पुराण द्वितीय मणि सर्ग, चतुर्थ खंड के अनुसार इन्हें सूर्यावतार और देवक मुनि का पुत्र कहा गया है ।

५. मत्स्यमाला पृ. ११४ अनस्त संहिता मनिष्योत्तर छंड के आचार पर कल्प मेर से गायक नामक के जमीय गीतु प्रायण के पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले कपिल मयदान के अवतार रूप ।

६. मत्स्यमाला पृ. १८८ में किसी परवर्ती रत्तराज कवि के एक कविच में ये सूर्य से तथा उनके ११ शिष्य सूर्यसे दारुण कथाओं से उपनिग है ।

मन्त्र प्रयत्न नाम करयय कों जमूर के साथे मान कल्प मारतण्ड से अरामी हैं । कधी से आकाश में मन्त्राय लूकरात किर बारही तु शिष्य मानो कहा एक चामी हैं ।

इस प्रकार चारों वैष्णव सम्प्रदायों में प्रायः अवतारवाद सर्वत्र व्याप्त है। यों तो इन चारों के अवतार का प्रयोजन विष्णु या उनके अवतारों की भक्ति का प्रचार रहा है। परन्तु भक्ति के प्रचार के साथ ही इनका एक प्रमुख कार्य सत्कार के मायावाद का खंडन भी रहा है। क्योंकि इन सम्प्रदायों की मूल आस्था अवतारवाद, जिस मायावाद पर आधारित है,^१ शंकर ने उस माया को मिथ्या या भ्रम की सहा प्रदान की और छद्म ब्रह्म की तुलना में माया को मिथ्या माना।^२ इनमें अवतारवाद के मिथ्यात्व की भी मिथ्या होने की संभावना हो जाती है। अतः भक्ति के साथ ही अवतारवाद की प्रतिष्ठा के विमित्त मायावाद का खंडन और परिष्कार भी इनका प्रमुख प्रयोजन रहा है। विशेषकर भगवाचार्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मध्य को स्वर्ण श्रीराम ने स्वप्न देकर मायावाद का त्याग और भक्तिवाद का प्रचार करने के किये आवेष्ट किया।^३

हिन्दी मध्यकालीन साहित्य में जिन सम्प्रदायों की व्याप्ति दृष्टिगत होती है वे प्रायः उक्त सम्प्रदायों से ही निगूत या सम्बद्ध हैं। इस दृष्टि से भी सम्प्रदाय से रामानन्दी या रामानन्द सम्प्रदाय का एक सम्प्रदाय से बहम सम्प्रदाय का ब्रह्म सम्प्रदाय (माध्य) से चैतन्य सम्प्रदाय का और सकादि सम्प्रदाय (तन्त्रिक) से राधा ब्रह्मी सम्प्रदाय का विकास माना जाता है। परन्तु सम्प्रदायों में अवतारवादी परम्परा के द्वारा सामंजस्य स्थापित करने वाली कोई प्रवृत्ति विशेष उचित नहीं होती। यहाँ तक कि सम्प्रदायों में मामूली इष्टद्वेषों में भी म्यूनाधिक वैषम्य उचित होता है। रामानुज सम्प्रदाय में केवल राम ही उपास्य हैं। माध्य और चैतन्य सम्प्रदाय के इष्टद्वेषों में भी भिन्नता प्रतीत होती है। एक और बहम सम्प्रदाय तथा सकादि और राधाब्रह्मी सम्प्रदायों में बहुत कुछ नायब प्रतीत होता है।

उक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक भी अपने सम्प्रदायों में या तत्कालीन साहित्य में किसी न किसी के अवतार-रूप में विकसित हैं। इनके अवतारीकरण में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उचित होती हैं जिनके फलस्वरूप इनके अवतार और अवतारी दोनों रूपों में वैषम्य हो जाता है। कहीं तो जनप्रवृत्तियों एवं उपमाओं से सम्बन्ध होना के कारण इन्हें पौराणिक एवं

१. जी. व. प्रवृत्ति स्वाभाविकत्व संभवाम्भाममायवा।

२. विवेक बुद्धिमति पृ० ६८ श्लोक में मिथ्या माया का परिचय मिलता है।

३. ब्रह्मब्रह्म मन्त्रविद्वेषनारवा सर्वप्रथी एतद् विवेकतो वना।

४. ६८ सम्प्रदाय प्रतीकात्मक पृ. ६८ और सम्प्रदाय प्रतीक ४४-४५।

सम्प्रदायेतर देवताओं का अवतार कहा गया है, परन्तु सम्प्रदाय भीर उसके साहित्य में इन्हें इष्टदेव या उपास्य के अवतार रूप में या कभी-कभी गुरु-परम्परा के प्रभाषामुखरूप स्वयं उपास्य रूप में गृहीत होने के भावे अवतारी रूप में माना गया है।

रामानन्द

रामानन्द रामान्त सम्प्रदाय में साधारणतः राम के अवतार माने जाते हैं।^१ किन्तु राम के अवतार रूप में उनकी भाष्यता परबर्ती विदित होती है। क्योंकि 'भक्तमाठ' में उन्हें सीधे राम का अवतार म कह कर उनके उदार कार्य को राम के सहस्र कहा गया है।^२ 'सम्प्रदायप्रदीप' में भी एक रामानन्द की कथा का उल्लेख हुआ है। उस कथा में श्रीकृष्ण से कहवामा गया है कि रामानन्द पूर्वजन्म में अर्जुन के भागे बनकर मरा हुआ एक वीर पुत्र्य है जो एकदम किसी भारी पाप के कलसरूप सहस्र जन्मों के बाद में पड़ा हुआ है। जन्म में वह बह्मशास्त्र से दीक्षित होता है।^३ इस कथा में स्पष्टतः निष्कण्ट रूप का कारण बह्म मत की ओढ़ता का प्रतिपादन है। इसके अतिरिक्त 'भक्तमाठ' में रूपकका जी के द्वारा उद्धृत किये हुये सम्भवतः परबर्ती उल्लेखों के अनुसार भी रामानन्द को कहीं सूर्य का अवतार^४ और कहीं कपिक का अवतार^५ कहा गया है। इनका सूर्यावतार होमा उपमात्मक विदित होता है।^६

१. भक्तमाठ पृ० १९ में श्री रूपकका जी ने संभवतः किसी परबर्ती कवि की शीघ्र रस प्रकार उद्धृत की है। 'जगत गुरु भाषारत्न भूषा रामानन्द राम के कथा'। पुस्तक नं० १९९ में 'जगत संहिता' के अनुसार राम के अवतार माने गये हैं।
२. भक्तमाठ पृ० २८२ अं० ३९ 'श्री रामानन्द उज्ज्वल ज्यों दुष्टिष सेतु जय तारक किनो' इसके पूर्व अं० ३५ के श्लोक रामानन्द जगत विश्व मंगल सिंह ननुवर्षों से रामान्तार का अनुमान किया जाता है।
३. सम्प्रदाय प्रदीपाङ्कीक पृ० ९४।
४. भक्तमाठ पृ० २९४ मधिव्य पुराय द्वितीय प्रति सर्ग, 'असुरं बंध के अनुसार इन्हें सूर्यावतार और वैष्णव मुनि का पुत्र कहा गया है।
५. भक्तमाठ पृ० २९४ जगत संहिता मधिव्योत्तर पद के भाषार पर कल्प मेर से नाक्य भाजम के समीप बौद्ध भाषण के पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले कपिक भगवान के अवतार हुए।
६. भक्तमाठ पृ० २८८ में किसी परबर्ती रसराम कवि के एक कविच में वे सूर्य से तथा इसके १२ दिव्य सूर्यकी द्वात्रिंश कथामों से उपमित हैं। प्रसन्न प्रथमा भाग कल्पन ज्यों असुर के साते माष कल्प मारतण्ड से भरामी हैं। काशी से आकाश में प्रकाश सूकरात किए वारही शु दिव्य मानो कथा ठेक वाली हैं।

किन्तु बाद में इसे पौराणिक तथ्यों के प्रमाणात्मक अवतार रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

श्री यक्षुमाचार्य

बहुम मत के प्रवर्तक बहुभाचार्य अपने सम्प्रदाय में एक ओर तो भक्ति के अवतार माने जाते हैं और दूसरी ओर उपास्य देव श्रीकृष्ण के भी अवतार रूप में मान्य हुए हैं। सम्प्रदाय प्रदीप में इनके भक्ति-अवतार सम्बन्धी कतिपय प्रसंग आये हैं। एक प्रसंग में स्वर्ण भगवान् कृष्ण भद्र से स्वप्न में कहते हैं कि मैं पूर्ण पुरुषोत्तम बैधानर स्वरूप हूँ और लोक-कल्याणार्थ स्वेच्छा से पुनः अवतरित हुआ हूँ।^१ इसके पूर्व के एक प्रसंग में इनके माता पिता इनका भक्तिपुंज क मण्ड में विराजमान देखते हैं।^२ बहुम का भक्ति-अवतार के रूप में प्रसिद्ध होना भी भक्ति क समान ब्रह्मों या काश्यों के आधार पर विकसित हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि वाचार्थों में आचार्य भी को भक्ति का स्वरूप बतकाते हुये कहा गया है कि भक्ति भोजन को ग्रह करता है और आचार्य सिष्य को ग्रह कर वैष्णव बनाते हैं। भक्ति नवनीत विषयकार भी बनाता है और आचार्य मानव का कौकिक रूप ग्रह कर वैष्णव बना देते हैं।^३ अतः इन तुल्यनामक गुणों क आचार पर भक्ति-अवतार के रूप में उभका विकास सम्भव हो सकता है।

‘सम्प्रदायप्रदीप’ में भक्ति और श्रीकृष्ण दोनों के अवतार का बहुभाचार्य में समन्वय कर दिया गया है।^४ एक प्रसंग क अनुसार विश्वभगवत क आग्रह से भगवान् पुरुषोत्तम ने अपने मुख-रवरूप भक्ति के अवतार-रूप में आविर्भूत होने की सूचना दी।^५

इस अवतार का पूर्णता सम्बन्ध सम्प्रदाय से है। अतएव बहुभाचार्य के इस अवतार का प्रयोजन भक्ति-मार्ग का प्रचार माना गया है। इन प्रयोजनों के फलरवरूप ‘सम्प्रदाय प्रदीप’ में इन्हें विविध पौराणिक देवताओं और ऋषियों का अद्यावतार बतकाया गया है। इस संघ के अनुसार कठिकाक में बहुभाचार्य के शकौकिक तेज और प्रतिभा को देखकर स्वयं गारायण ने कहा था कि यह पृथ्वी पर देवी सृष्टि क उदार तथा सायावादान्धकार के निवारण के

१ सम्प्रदाय प्रदीप १०६ पृ ८१ सं प्रदीप पृ० ५४।

२ सं० प्रदीप पृ० ५९।

३ दो या वे० वा० पृ ४१९।

४ सं प्रदीप ५९ की बतवनाम में भक्ति को भगवान् श्री सुप्रसिद्ध दे रूप में अभिहित किया गया है।

५ सं० प्रदीप ५९।

रिन्दे अग्नि व्यास, नारद, रुद्र एवं श्रीकृष्ण के भयों से प्रकट हुये हैं।^१ साथ ही इनके पूर्वजन्तारों का उल्लेख करते हुये बतलाया गया है कि अग्नि के भय से वे ही राजाभोक्त के रूप में जन्मतीर्थ हो चुके हैं। सम्भवतः ये व्यासास से भाष्यार्थ-स्वरूप, जामीनर अग्नि से व्याकमाता, नारदास से समर्थ अकि-प्रचारक, रुद्रास से संन्यास धारण कर जीवों के उद्धारक और श्रीकृष्णास से सर्वोद्धारक हैं।^२ उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि विभिन्न जन्म-कठिनों का सम्मिश्रण इनके कार्यों और प्रयोजनों की प्रमाणावधि के निमित्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त 'सम्प्रदाय प्रदीप' में जैतम्य आदि अन्ध प्रवर्तकों द्वारा उन्हीं साक्षात् देवकी-पुत्र कहेवाया गया है।^३

परन्तु बहम सम्प्रदाय के कवियों ने इन्हें अवतारवादी गुह-परम्परा के अनुसार केवल श्रीकृष्ण का अवतार ही नहीं माना अपितु उपास्य एवं अवतारी रूप भी प्रदान किया है।

कुंभनदास महाप्रभु के जन्म-दिवस की खर्चा करते हुए कहते हैं कि कथमन मह के घर में आज बर्खा बज रही है क्योंकि बहम के रूप में सुखदाता पूर्ण पुण्योत्तम आविर्भूत हुए हैं।^४ समस्त विश्व के जापार गोकुल-पति श्रीकृष्ण ने बहम का अवतार धारण किया है। वे अपने भक्तों को सेवा और भजन का मार्ग बता कर जागतमन से मुक्त कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने आकर सभी का उद्धार किया।^५

बदुदास ने भी बहमाचार्य को पूरन मह प्रगट पुण्योत्तम माना है।^६ हरिदास कवि बहमाचार्य को कृष्ण के बदनामक की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इसके पक्षों के अनुसार इन्होंने साक्षात् का खंडन कर अपने

१ सं० प्रदीपकोश पृ० २२० तथा सं० पृ० ८३।

^१ उल्लेखार्थ मन्वन्ता श्रीनारायणनैत अवमभिम्यास मारद रुद्रा श्री कृष्णाधि मातुर्भूतः।

२ सं० प्रदीप पृ० ८३।

३ सं० प्रदीपकोश पृ० २९, सं० पृ० ८०।

४ कुंभनदास पद संग्रह पृ० ३२ पद ८९-श्री कृष्णन गृहं आनु बर्खा।

प्रगट मय दूय पुण्योत्तम श्रीवहम सुपरारं।

५ कुंभनदास पद संग्रह पृ० ३९, पद ८३

बर्खा श्री बहम अवतार।

गोकुल पति मने श्री गोकुल सकल विश्व जापार।

सेवा मन्वन् बतार मित्र मन श्री मैत्री मन स्वीकार।

कुंभनदास प्रभु पिरिबर नाद सवही प्तारे बार।

६ सं० पृ० ३२३ पद ९

पूरन मह प्रगटि पुण्योत्तम श्री बहम सुकरारं।

स्वप्नों का कल्पना किया।^१ बाताओं में महाप्रभु ब्रह्माचार्य को टाकुर जी का स्वरूप कहा गया है।^२

किन्तु श्रीकृष्ण या टाकुर जी से इस सम्प्रदाय के आचार्यों को स्वरूपित करने की परम्परा केवल ब्रह्माचार्य तक ही सीमित नहीं रही अपितु उत्तरोत्तर इसका और अधिक प्रसार होता गया। संभवतः अष्टज्ञाप की स्थापना के पश्चात् यह प्रवृत्ति और अधिक व्यापक दिखाई पड़ती है क्योंकि श्री ब्रह्माचार्य जी के प्रति ऐसे ऐसे अवतार या स्तुतिपरक पदों की अपेक्षा विद्वज्जनाप जी या उनके पुत्रों के प्रति अधिक पद लिखे गये विदित होते हैं।

इस सम्प्रदाय में इष्टदेव के अवतार होमे के एकस्वरूप प्रायः विद्वज्जनाप आदि पुत्रों और पौत्रों को श्रीकृष्ण का अवतार माना गया।^३ साथ ही सम्प्रदायों की भाव या किन्तु-परम्परा में मान्य श्री ब्रह्माचार्य के बंधुओं को ब्रह्म का भी अवतार माना गया। कुम्भनदास के एक पद में कहा गया है कि संभवतः गुप्तार्जु जी के रूप में पुत्रा श्री ब्रह्म प्रकट हुए हैं। गूढ़ ज्ञान की अमिष्यक्ति और सेवारस का विस्तार इनके प्राकृत्य का प्रमुख प्रयोजन है।^४

विद्वज्जनाप और गोपीनाथ

चोरामी वैष्णवन की बाता में विद्वज्जनाप जी कृष्ण के और गोपीनाथ

१ राव बलराम जी पृ २१ पर १४।

अथि मद्रु कर्मण नम्रु कृष्ण वदनात्मक श्री मरिचमुगाव गर्भरत्ने।

अथि मावावाव वरि वदव धर्मि विहित निव दास वन पञ्चपाते।

२ ओ वा वे वा ह० १४२ बाता २४।

३ अष्टज्ञाप सं० २ ०१ वि० पृ २१ पर ०१२।

सरा प्रव ही में करत विहार।

एव के गोप देव अथ के प्रकटे दिक्पर अवतार।

अथ श्रीकृष्ण में नम्रु कुपर अथ ब्रह्म रामकुमार प्र

भाव पञ्चि वधि और दिखावत सेवामत इवसार।

अथ स्वप्न थिरिचरण श्रीविद्वज्ज जीला प अनुसार ॥

अनुष्ठेय मद्रु सुप केत निवासी मकरु कुरा वरार।

और नामा दास मे वृ ५०३-५०४ पं ८ श्रीविद्वज्ज जी के सारों पुत्रों को श्री कृष्ण-स्वरूप माना है।

विद्वज्जैत ज्ञान सृष्ट श्री गोवरचन वर ध्यारवे।

४ सात प्रगट विदु, मजन अवतारन तस अस नारये ॥

५ कुम्भनदास वद संप्रद वृ १२ पर १२ प्रगट मय थिर ब्रह्म आर।

सेवारस विलार करन को गूढ़ ज्ञान सप प्रगट रिजार ॥

श्री ब्रह्मदेव के अवतार बतलाये गये हैं।^१ अष्टनाथ और इस मत के अन्य कवियों ने विद्वकनाथ जी के आचार्य-परम्परा में होने के कारण इनके प्रति विविध प्रकार की अवतारपरक रचनायें की हैं। श्री ज्योत स्वामी गुसाईं विद्वकनाथ और श्रीहृष्य में कोई भेद नहीं मानते। एक पद्य में इन्होंने दोनों की समानता प्रतिपादित की है।^२ मन्त्रदास ने इनका उपासक रूप प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इनके चरण पतितों को पवित्र करने वाले हैं। इन्होंने कृषि की आमक वैदिक वेद-विधि को विच्छिन्न कर अपने शक्तिशाही मत का विस्तार किया।^३ समस्त सृष्टि के आधार श्रीहृष्य ही श्री ब्रह्म-राजकुमार के रूप में आविर्भूत हुये हैं। मन्त्रदास इस प्रकार श्री विद्वक को गिरिधर का अवतार मानते हैं।^४ अम्हरदास के अनुसार श्री विद्वकनाथ ने समस्त पुरुष के सिंघारणार्थ और विध से मुक्त करने के निमित्त श्रीछा-वेद धारण किया है।^५ ज्योत स्वामी ने एक पद्य में कहा है कि स्वामी विद्वकनाथ कोटि कलाओं से युक्त ब्रह्मावतन्मन्त्र हैं। निगम इनका जन्म नहीं जानता; वे उज्जर अक्षय के उदर से उत्पन्न हुये हैं। गिरि को हाथ पर रोककर खींच कर रहे हैं।^६ इस

१ अ० ब्रा०, प्रमुदनाथ मीचक पृ० २७ और श्री वै वा० पृ २१२ ४७८।

२ अ० ब्रा० प्रमुदनाथ मीचक पृ० २७० पद ३।

वे सन्देह किसे पूज्य तप छै फल फलित श्री विद्वक देव।

वे गोपाल हुते गोकुल में छै सब अर्थिन बसे निज गैह ॥

वे वे गोप बहुरी तब में सो जन वेद श्रथा मरि देह।

श्रीतस्वामी गिरिधरन श्रीविद्वक छै परं परं छै कसु प सन्देह ॥

३ मन्त्री श्री ब्रह्मम स्रुत के बरन।

मन्त्र कुमार सबन सुप्रदासक, पतितम पावन करन।

हरि किय कैक कपट वेद विधि मत प्रबंध विस्तारन ॥ न प्र० पृ० ३२३ पद ८।

४ प्रकृतित स्रुत सृष्टि आधार श्री मन्त्रब्रह्मम राजकुमार।

बने स्रवा पद अंडुब सार, अगणित गुण मदिमा सु अपार ॥

श्री विद्वक गिरिधर अवतार नंदवत्त श्रीन्त्री बलिहार। न प्र० पृ ३२३ पद ९।

५ स्रुत हुप्य दारप्य सब-सिन्धु-दारप्य अनदिन श्रीछा-वेद बरप्य।

अम्हर दास प्रभु सब सुस-सागर भूतके इष्ट मधि-आश करन ॥

रागकल्पद्रुम श्री २, ७८-७९ पद ११।

६ जय जब श्री ब्रह्ममातन्त्र श्रीरि कला ब्रह्मावन बर।

निगम विचारे न लहे पार सो उज्जर मन्त्रान्त्र के द्वार ॥

छोटा करि गिरि चारबो हाथ। ज्योत स्वामी श्रीविद्वकनाथ।

राम कल्पद्रुम श्री २ पृ० ७३ पद ११।

७ श्री० वा० वै० वा पृ० ४३७ कृष्ण के हापर अवतार श्री चर्वा के दयापद कहा गया है 'वे अक्षिपुत्र में ब्रह्माचार्य श्री के दर प्रकृत होय के अक्षावी के उदर से पुरुष स्वावपन करिके वर्णन देते हैं।

पद में स्पष्ट ही स्वामी विदुक्तनाथ की ओर इस मत के प्रभाव अर्थात्तार भी गोचरमनाथ की ओर स्वरूपित किया गया है। पुनः एक दूसरे पद में ही स्वामी कहते हैं कि ठाकुर की अपनी सेवा आप ही करते हैं, वे स्वयं भगवान हैं और उन्होंने स्वयंसेवक का भी रूप धारण किया है। वे अपना धर्म-कर्म जानते हैं और बधोचित मर्बादा का पाठन करते हैं। इस प्रकार गिरिधरराय भी विदुक्त के साथ मध्यमपक्ष शरीर धारण किया करते हैं।^१ वे ही ब्रह्मभगवन् के रूप में पुनः जातिर्भूत होकर वही रूप वही शीला तथा गोदुक्त-दुष्प द्वारा कर्त्तव्य हुई कसी रीति का प्रवर्तन करते हैं। जिन्होंने यज्ञोपा की आबन्धित किया था वे ही पुनः प्रकट हुये हैं।^२ प विदुक्तनाथ वेद-विदित पूर्ण पुस्तोत्तम हैं जिनकी महिमा वर्जनातीत है।^३ इस प्रकार ब्रह्म सगमदाय में हृदय के भवतार की एक परम्परा सी हीक पढ़ती है क्योंकि ब्रह्मभाषार्थ और विदुक्तनाथ के पञ्चात् विदुक्तनाथ के सारतों पुत्रों के भी श्रीकृष्ण के अष्टा बतार या विभूतिस्वरूप का कतिपय पदों से ज्ञान होता है। इस सगमदाय के ब्रह्ममुखास ने सारतों की संभवता उपास्य आचार्य के रूप में एक साथ बतना की है।^४

१. आपुन पै अपनी सेवा करत।

आपुन प्रभु आपुन सेवक है अपनी रूप बरतत।

आपुन धर्म कर्म सब जानत मर्बादा अनुसरत ॥

हीत स्वामी गिरिधरराय श्रीविदुक्त मध्यमपक्ष रूपबरत।

राम कल्पद्रुम जी २ पृ० १७९ पर १८।

२. राम कल्पद्रुम जी २ पृ १८ पर ४।

श्री ब्रह्म के बन्धन छिरी जाय।

धर्म रूप धर्म छिरी छोड़ा करत आपु मन माय।

धर्म फिर राम करत श्री मोक्षल धर्म रीति प्रख्यार ॥

वे बधोमति श्री आबन्ध हीन्हों से छिरी भ्रम में जाय।

श्री विदुक्त गिरिधर पर बभ्रुत्र गोविंद पर में लाय ॥

३. रूप स्वरूप श्री विदुक्त राम।

धैर विरित दूख पुस्तोत्तम श्री ब्रह्म गृह प्रकटे जाय।

हीन स्वामी गिरिधरराय श्री विदुक्त मगणित महिमा करी न जाय ॥

रामकल्पद्रुम जी २ पृ० २२५ पर ३।

४. विदुक्त तुन सहर श्री मोहरवन पर ध्याये।

— — — — —

वे साथ प्रमदिकिनु मजन अपनादन वग बस मारये।

मलयाल पृ० ५७४ पृ ८ है।

५. श्री बालकृष्ण सदा सहर ब्रह्मकर्म लोचन मुहनि रवि बजाई।

परन्तु इन सातों माह्यों में गोकुलनाथ जी क प्रति रचित स्वतंत्र पद्य भी मिलते हैं, जिनसे इनके अवनाररत्न का परिचय मिलता है। भाष्यदास एक पद्य में कहते हैं कि मर्त्यों के हितार्थ श्री बह्म ने गोकुलनाथ क रूप में अवतीर्ण होकर समस्त विश्व का अंधकार नष्ट कर दिया है। इन्होंने ही श्रीकृष्ण के रूप में गोवर्धन गिरि, गोप भीरु ब्रज का उद्धार किया था। अब विद्वलनाथ के पुत्र होकर परम हित का अनुसरण कर रहे हैं और अनेक सेवकों को अमृत भव-सिद्धि से मुक्त कर अपने जग क कर में परिणत कर रहे हैं।^१

उक्त पद्य में इष्टदेव श्रीकृष्ण श्री बह्मभाष्यार्थ और नाथ और विदु पद्वति की वंश पद्य साम्प्रदायिक परम्परा का सयुक्त विकास स्पष्ट प्रतीत होता है। इस परम्परा में इन्के अग्रजों को समाविष्ट कर बह्म-परम्परा का उत्तरोत्तर विकास किया गया। विष्णुदास न अपन एक पद्य में उक्त भाष्यार्थों क साथ कल्याण राय, हरिराय आदि अग्रजों का भी उल्लेख किया है।^२

मल्लि मल्लोद्धार करण गुणराशि ब्रज मंगल श्री गोकुलनाथ ही कहाई ॥
 श्री खुनाथ बर्मबुखर सोमा सिन्धु रूप कहरिज बुद्ध हरि कहाई ॥
 पतिव कहरन महाराज श्री बहुनाथ विश्व अन्धुव हाथ शिरशि परसाई ॥
 श्री बनरवान अमिराम रूप वर्षा स्वामी भाव्या लागि रसना वातक रयाई ॥
 चतुर्मुख दास परयो हार प्रनियत करे सकल कुल को अरममून मोर अडे पाई ॥
 राग कश्यपुम जी० २ पृ ७८ पद्य ३ ।

(घ) उपकल्पबह्म जी० २ पृ १४९ पद्य प्रवृत्ति नाम के सम्मेलन एक वरवती कवि का निरुता है। उसमें सायो भार्गवों को बन्धना कर अन्त में कहा गया है—
 'बह्म अवतार मल्ल हित करण को पाई तो वरम पद्य पाई ।
 निनटी करि करि मंगल प्रवृत्ति निरौदिन हलको दास कहाई' ॥

१ श्री गोकुल नाथ निर न्यु वरयो ।

मल्ल हेत प्रकटे श्री बह्म अगति निद्रि हरयो ।
 मन्त्र नमन मबे तब पिरि गोप ब्रज वरयो ॥
 नाथ विदुल तुन्ल के के परम्विज अनुसरयो ।
 अति अग्रज अवार मव विवि तप्रि अग्रजो हरयो ॥
 वात भावव दास वैव अग्य सरणो परयो ।

राग कश्यपुम जी० २ पृ० १०२ पद्य १८ ।

२ प्रकटे श्री बह्म रावकुमार ।

अय अब श्री गिरिवर श्री गोविन्द वाळ कृष्ण जी अवार ।
 गोकुलपति श्री बहूपति सोमिग गन बनवयाम ॥
 कृष्णारति श्री कल्याण राव कूरसिध अननि तुजवाम ।
 श्री मुरलीधर प्रभु वाळ श्री बहमदुळ मकल सनान ।
 विष्णुदास गोनाथ जीना न्यु गावन वैव पुरान ॥

चैतन्य

शीघ्र ही वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य भी आठोप्यकाल में एक ओर तो उपास्य देव श्रीकृष्ण के अवतार माने गये और दूसरी ओर गुरु-परम्परा में स्वयं उपास्य और अवतारी रूप में मान्य हुए। डॉ. रत्नकुमारी के अनुसार चैतन्य-देव के जीवन्-काक में उनके ब्रह्मा-विवाही मर्त्यों ने उन्हें ईश्वरत्व की जेठी तक पहुँचा दिया था और उन्हें स्वयं कृष्ण माना था।^१ परन्तु वह प्रकृति मन्वकाक की एक प्रमुख प्रकृतियों में थी फलतः चैतन्य का अवतारत्व ही इस युग की प्रकृतिविशेष से सम्बन्धित है। इस सम्प्रदाय के विख्यात गोस्वामी केन्द्रों ने मण्डकपरम के रूप में उन्हें कृष्ण के अवतार से अभिहित किया है। किन्तु उनका सैद्धांतिक प्रतिपादन नहीं किया।^२ इसका मुख्य कारण उनका गुरु-परम्परा के अनुसार ही चैतन्य को कृष्णस्वरूप समझना था।^३

चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कवि माधुरीदास ने भी सम्भवतः गुरु-परम्परा में ही कृष्ण, रूप चैतन्य को याद किया है। साथ ही उसमें गोस्वामियों का सम्मन्वय करते हुए उन्हें किर्यरूप प्रदान किया गया है।^४ नामादास ने मन्वकाक में निरवानन्द और कृष्ण चैतन्य द्वारा दत्तों विद्यार्षी में व्याप्त इनकी मक्ति का उल्लेख करते हुये सम्भवतः दोनों को पूर्व देव में अवतरित ब्रह्माम और कृष्ण का अवतार माना है।^५ इस दृष्टिक में दोनों का अवतारत्व से सम्बन्ध 'अवतार विहित पूरव मही उपम महत देही बरी' का स्पष्टीकरण प्रियादास की टीका से हो जाता है।^६

रसिक नाम का प्रयोग सम्भवतः हरिराम के कवि हुआ है क्योंकि रसिक, रसिक राव हरिवन्, हरिदास, भादि नामों का प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है।

अष्टादश और बृहत् सम्प्रदाय मा० १५ ८ ।

१. १९ वीं शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृ. १७२ ।

२. १९ वीं शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि पृ. १७२ में कैलिन्ड में प्रसिद्ध विष्णुप्रसिद्धों का वक्तव्य बहुरूप प्रस्तुत करने के पश्चात् एक निवार प्रस्तुत किया है।

३. वे. व. (ब्रज भाषा प्रतिष्ठा) भादि जीका, प्रथम परिच्छेद पृ. ३ ।

गुरु कृष्ण रूप होव मात्र के प्रमाण। कृपा करे मरु वे गुरु है मगवान ।

४. नाम माधुरी, इ. के. मा० प्र. समा. २९. १७ पृ. ८ ।

कृष्ण रूप चैतन्य जब तन तन मकर प्रकाश ।

सदा सनातन एक रस विहरण विविध विकास ०

५. मन्वकाक पृ. ५५१-५५४ टी. ७२ ।

निष्वाभन्द कृष्ण चैतन्य की मक्ति बसोदिति विलापी ।

अवतार विहित पूरव मही उपे महत देही बरी ०

६. भाव ब्रह्मदेव सदा ब्राह्मी स्त्री मरु रहीं श्रीमन् नामो प्रेम मगनार्थ वासिन्धै ।

ब्रह्म आदि की अवेद्या चैतन्य सम्प्रदाय एवं साहित्य का विस्तृत क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत या विशेषकर बंगाल रहा है। बंगाल भाषा में रचित 'चैतन्य चरितामृत' के प्रारम्भ में 'आदि लीला में ही चैतन्य के अवतार और अवतारी उपास्य दोनों रूपों का विस्तृत वर्णन हुआ है।

'चैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने द्वितीय परिच्छेद में कहा है कि स्वयं भगवान् ('कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का विशेषण) कृष्ण जो विष्णु, परतरुण पूर्णानन्द पूर्णानन्द और परम महत्त्व आदि उपाधिओं से युक्त हैं, जिन्हें भागवत ने महत्सुत के रूप में गाया है, वे ही चैतन्य गुसाईं के रूप में अवतीर्ण हुये हैं।'

पूर्ववर्ती भाषाओं के भाषिर्मात्र की चर्चा करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किस प्रकार सम्प्रदाय-प्रवर्तन के निमित्त अवतीर्ण भाषाओं एवं मठों को विष्णु के आयुषों पार्षदों और अवतारों से सम्बद्ध किया गया किन्तु आगे चल कर कृष्ण से सम्बद्ध सम्प्रदायों में भाषाओं को कृष्ण का ही अवतार माना गया। ब्रह्म सम्प्रदाय में ब्रह्माचार्य की पूरी वस-परम्परा ही कृष्ण के अवतार-रूप में मान्य हुई।

इसी प्रकार चैतन्य भी हम सम्प्रदाय के इष्टदेव कृष्ण के अवतार तो माने गए परन्तु एककम या अन्य कृष्णावत सम्प्रदायों की अवेद्या इनके भाषिर्मात्र की प्रणाली और प्रयोजन दोनों में पर्याप्त वैचन्य कश्चित होता है।

चैतन्य में वंश-परम्परा जैसी अवतार-प्रणाली का सम्बन्ध कृष्ण से नहीं दीक्षता अपितु उसके स्थान में सामूहिक अवतार की भावना व्याप्त है, किन्तु हम सामूहिक अवतार का सम्बन्ध भी श्रीमद्भागवत कृष्ण के सामूहिक

सौर निरवानन्द प्रभु महंन की देह बरी मरी सच ज्ञानि तरु पुनि नमिकापिने ॥

इषामनार्थं वाक्यं सौ सनार्थं हूँ समान्जोही ताते मेरे ज्ञान चिह्न भाव बरि मन में।
 'अधुमनि सुन सौर दणो सुन गौर नये नये देह बीज नाथि निज मन में।

मधुमाक पृ० ५५४ कवित्त ३२९ और ३३० प्रिवाप्राप ॥

- १ (क) स्वयं भगवान् कृष्ण विष्णु परत्त्व । पूर्णानन्द पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥
 मन्त्र सुन शोकित्त को मामवत मार । सोरं कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गुसाईं ॥
 ये च० (ब्रह्माभा प्रतिष्ठाति) आदि लीला त्रितीय परिच्छेद पृ ८ ।
 (ख) सोही कृष्ण अवतारी प्रवेन्द्र कुमार । आपही चैतन्य रूप कियो अवतार ॥
 ये च ३० भा प्र , आदि लीला द्वितीय परिच्छेद पृ० २६ ।

भक्तधारणा से पूर्णतः सम्बन्ध नहीं है।^१ क्योंकि चैतन्य का कृष्ण से और विद्या-
नन्द का बलराम से सम्बन्ध स्थापित करने में अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से
सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न नहीं कीज पड़ते। फिर भी कृष्णदास कविराम
ने सिद्धान्ततः सामूहिक भक्तधारणा को स्वीकार किया है। उनके कथनानुसार
कृष्ण संभवतः चैतन्य के रूप में जब आविर्भूत होते हैं तो पहले ही गुहजन
पुत्र माता-पिता आदि को भक्तधारित कराते हैं^२ जिसके फलस्वरूप चैतन्य
के साथ माधव, ईश्वरपुरी, श्यामी, जगन्नाथ, अद्वैतानन्द आदि सहयोगियों का
आविर्भाव हुआ।^३

साथ ही भा० १ ३, की बात और पूर्ण भक्तधारणा की प्रणालियों
के समानांतर श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु स्वयं भगवान् माने गये।^४ और
अद्वैत आचार्य उनके अंशाभक्तार^५ निम्बार्कानन्दराय उनके स्वरूप प्रकाश^६ और
गदाधर पण्डित आदि उनकी निम्न शक्ति^७ के रूप में मान्य हुये।

चैतन्यभक्तधारणा का मुख्य प्रयोजन अन्य तत्कालीन सम्प्रदायों के सहस्र
पूर्णतः साम्प्रदायिक है। इसमें सेवा और भजन की अपेक्षा प्रेम भक्ति और
कीर्तन को अधिक प्रभावता दी गई है।^८ प्रेमा भक्ति के दो मुख्य अंग कीर्तन

१. प्रभु में विश्वास करे कृष्ण बलराम, छोड़ि सुर्वचन्द्र जसो जासो निम्नराम।
सोही बीसों जग पर होव के सखन बीसु ईस्य पूर्ण लेख किजो है करन ॥
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला, प्रथम परिच्छेद पृ० ६ और छ पञ्चम
परिच्छेद पृ० ३४
- सोही कृष्ण भवहीन श्रीचैतन्यचन्द्र सोही बलराम संग है श्री किरानन्द।
२. कृष्ण जब पृथिवी में करे भक्तधारणा, प्रथम करत गुहजन को संचार।
पिता माता गुह आदि चैत मान्य गण, सतको कराने जाने हुष्यो पै जनन ॥
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला एतौच परिच्छेद पृ० १८।
३. माधव ईश्वर पुरी श्यामी जगन्नाथ, अद्वैत आचार्य प्रकृत भवे ताही साथ।
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला एतौच परिच्छेद पृ० ३।
४. श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु स्वयं भगवान्।
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला प्रथम परिच्छेद पृ० ३।
५. अद्वैत आचार्य प्रभु अंश भक्तधारणा।
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला प्रथम परिच्छेद पृ० ३।
६. निम्बार्कानन्द दास प्रभु स्वरूप प्रकाश।
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला प्रथम परिच्छेद पृ० ३।
७. गदाधर पण्डित प्रभु निम्न शक्ति।
श्लो० ब० ब्र० मा० प्र० आदि लीला परिच्छेद पृ० ३।
८. चैतन्य गुहजन नाम को प्रचार ताही हेतु पीनर्जन चैतन्यभक्तधारणा।

धीर रस इस अवतार के प्रमुख प्रयोजन माने गये। उक्त प्रयोजनों के बहिरंग में प्रचारात्मक तर्कों की प्रथमता है और अंतरंग में रसास्वादन अनिहत तर्कों की। इस सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों ने कृष्णचैतन्य के रसात्मक रूपों को ही अधिक महत्व दिया है। श्री माधुरीदास की 'शानमाधुरी' के प्रारम्भिक श्लोकों से यह स्पष्ट है। उक्त प्रयोजनों के अतिरिक्त जैसा कि पीछे कहा जा चुका है मायावाद का संभव भी भाषायों का एक विशेष प्रयोजन या कार्य रहा है। 'चैतन्य चरितामृत' के अनुसार चैतन्य ने भी वृंदावन आते समय काशी में मायावादियों की आलोचना की थी। इस प्रकार भाषाव्यवहारों की परम्परा में सूहीत श्री चैतन्य में केवल चैतन्य भक्ति का प्रसार ही एक मात्र प्रयोजन नहीं था अपितु उसमें रसवृत्ता या भावावेश का भी अपूर्व योग हुआ था। जिसके फलस्वरूप तत्कालीन युग तक कृष्ण भक्ति का राम-भक्ति प्रायः सभी सम्प्रदायों में इन्द्रैव के रूप में कृष्ण या राम के युगक रूपों का अधिक प्रचार हुआ और साधना की दृष्टिसे गोपी-भाव राधा भाव और अंततः सखी-भाव और किंकरी-भाव अल्पाधिक प्रचलित हुए। विशेष

(क) शै० ब० प्र० मा० प्र० आदि लीला चतुर्षु परिच्छेद पृ० १०
मेघ नाम प्रचारने यह अवतार।

(ख) शै० ब० प्र० मा० प्र० आदि लीला चतुर्षु परिच्छेद पृ० १४।

१ वैकुण्ठादि हू में तदि की लीला प्रचार सो लीला करिहो नामे मोहि बयलकार।

(क) शै० ब० प्र० मा० प्र० आदि लीला चतुर्षु परिच्छेद पृ० १५।

रस आत्माधिके मैने किनो अवतार मेररस आत्मादन विविध प्रकार।
राम मार्ग मरु भक्ति करे का प्रचार सोर सिद्धादही लीला आचरणसार ॥

(ख) शै० ब० प्र० मा० प्र० आदि लीला चतुर्षु परिच्छेद पृ० १९।

२ १६वीं शती के हिन्दी और बंगाली चैतन्य कवि पृ० १८१।

३ मिश्रित चित्र चित्रित रस भी चैतन्य स्वकम।

इत्यात्म रस माधुरी सरा सनातन रूप ॥

गवो विभिर तम को सने निरकल विपुन वितास ॥

दान केकि भक्ति कुमुदनी कीनो किरन प्रकास ॥

राम माधुरी इ० ले० मा० प्र० स १० १८, पृ० १ कवि की विद्वेन आनकरो
इत्यम् विपनया किरमर १९५९ पृ० १९१।

४ इत्यात्म भावे प्रभु रह को कान्ठी में। मायावारी गण सब तिन्येप्रकाशी में।

शै० ब० प्र० मा० प्र० , आदि लीला छत्र परिच्छेद पृ० ५०।

५ इत्य राधा में सरा एक ही स्वकम लीकारस आत्माधिके बरे दोन कव।

मेघ माकि सिद्धा कर्ष आप अवतरे राधा भाव कान्ति दोक संतोकर करे ॥

श्री कृष्ण चैतन्य रूप किनो अवतार दही तो ब्रह्म रत्नो कर्ष प्रचार।

शै० ब० प्र० मा० प्र० , आदि लीला चतुर्षु परिच्छेद पृ० १५।

कर कृष्ण भक्ति शाखा से सम्बद्ध राधाब्रह्मी और हरिदासी सम्प्रदायों में सखी या किंकरी भाव ही साधना का एकमात्र भाव गृहीत हुआ।^१

सम्प्रदाय प्रवर्तकों की परम्परा में पूर्व जाचार्यों की अपेक्षा चैतन्य द्वित हरिवंश आदि में विशेष वैशिष्ट्य यह है कि ये पूर्वाचार्यों की तरह प्रस्थान त्रयी वा चतुष्टय के आधार पर सांप्रदायिक मान्यताओं के प्रतिपादक न होकर स्वयं भक्त के रूप में आस्थावक हैं।^२ इनमें मस्तिष्क एवं बुद्धि पक्ष की अपेक्षा हृदय एवं भाव पक्ष का अधिक प्राबल्य था।

अस्तु, यह उल्लेखनीय है कि इनके अवतार के प्रयोजन में बहिरंग या प्रचारतमक प्रयोजनों की अपेक्षा अन्तरंग एवं आस्थाय रसात्मक तरंगों की प्रधानता थी। वस्तुतः इन्होंने अपने धर्म को व्यापक बनाने के किये न तो किसी क बाँधन की आवश्यकता थी न किसी की आलोचना की। केवल निरव-धीका का सखीभाव से आस्थावान ही इनका एकमात्र धर्मोद्योग था।

श्री द्वित हरिवंश—(सं० १५९९-१६२९)

राधाब्रह्मी सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री द्वितहरिवंश द्वित और बंसी के अवतार माने जाते हैं।^३ कहा जाता है कि किस प्रकार श्री ब्रह्म, रुद्र और सनकादि सम्प्रदायों की रक्षा क्रमशः चक्र, गदा संज्ञ और पद्म करते हैं वैसे ही त्रैलोक्य समोहन वायुय स्वयं ब्रह्मी इस मार्ग का रक्षक है।^४ श्री कृष्णो पनिपद् में रुद्र को ब्रह्मी का अवतार माना गया है।^५ परन्तु उक्त सम्प्रदाय से रुद्र का कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। इन्हीं 'द्वित चौरासी' एवं 'राधासुधा-

१. (क) राधा चरण प्रदान हुये अति सुख ब्यासी।

कुत्र कैकि ह्यति तहां की करत प्यासी ॥

मन्मथक ५ ५६८ अक्षर ९० द्वित हरिवंश।

(घ) अवलोकन रहे कैकि सती सुग के अचिकाटी।

म० पृ० ६ अ ९२ हरिदास।

(ग) नीशुन तीरि नुपुर गयो महल समा मणि रास के।

म० पृ ६ २ अ २ हरिदास।

२. इसी ही के भक्त की अनेका रसिक विद्येपन ही अभिहित दिने गये। भक्त बनि न्यास जो ५० २९४ पर २६। 'श्री हरिवंश से रसिक, हरिदास से जनम्यनि की को बपुरा बदि लड़े सारी' तथा बही। पृ ११५ पर ९२।

'रसिक जमभ्य हमारी जानि'।

३. श्री द्वित चरित ५ २७७।

४. श्री द्वित चरित ५० २२-२६।

५. ईशाचर्योत्तरपौनिक में संकल्पित श्रीकृष्णोपनिषद् २९२५ ई सं ५० ५९२।

'बंसी मन्मथरदा गृहविन्द सगीसुग'।

विधि' आदि रचनाओं में बसी क अवतार होने का कोई संकेत नहीं मिलता साथ ही नामाजी एवं प्रियादास ने भी इन्हें बंशी या अन्य किसी का अवतार नहीं बताया।^१ अतः यह स्पष्ट है कि परवर्ती काल में इनके शिष्यों ने या अन्य कवियों ने हित और बंशी के साथ हित हरिवंश का नाम-साम्य होने के कारण सम्भवतः इन्हें हित और बंशी का अवतार माना।^२ साधारणतः भाष्यार्थ स्वयं अपने को अवतार नहीं कहते किन्तु शिष्य और उनके अनुयायी अपेक्षित न होते हुए भी उन्हें किसी न किसी का अवतार सिद्ध करते हैं।^३ इनके समकालीन शिष्यों में आ हरिम्यास जी ने (सं० ११२९) एक पद में श्रीहितहरिवंश की बहना की है जिसमें इनको रसिक अनन्य वेनुकुछ-मंडन, छीकामानसरोवरहंस कहा गया है।^४

यहाँ वेनुकुछ से सम्बन्ध होने का कारण रसिक सप्रदायों का श्रीकृष्ण की विविध स्मृतियों की अपेक्षा केवल रासलीला और मिथुन-केति से सम्बद्ध होना है। श्रीमन्नगर के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने रासलीला के प्रारम्भ में बंशीवादक द्वारा ही प्रबन्ध-गोपियों का मन मोह किया था।^५ अतः उस रस-श्रीला की मूळ प्रेरिका बंशी ने गोपियों को रसोपासना की ओर जिस प्रकार आकर्षित किया था उसी प्रकार हरिवंश ने भी रसिक समुदाय को

१ नामादास प्रियादास की टीका सहित पृ० ५९८-६०१।

२ भगवत मुद्रित रसिकमाह इ० के ४७४ १४९ भा० प्र सं० पत्र १ १२-४ की इन पंक्तियों से स्पष्ट है।

बो बंशी प्रब ठे अवतारे । निज निहार रस मू विस्तारे ।

बंशी भव हम हसनिर्हंस प्रच्छेमे निजि हरि अवसंत ॥

इदि विधि हम हूँ प्रगट जु है ही । रसिक अनन्य बर्यं प्रगटे है ।

३ अवतार नाहि कबै जामी अवतार । मुनि सब जामी करे, लक्षण विचार ॥

वे० सि० रस संग्रह पृ० १४२ में चैतन्य चरितामृत के एक पद के अर्थों के आधार पर अवतारोक्ति का प्रवृत्ति का पता चलता है।

४ (क) नमो ज्यो है श्रीहरिवंश ।

(ख) रसिक अनन्य वेनु कुछ मंडन छीका मान सरोवर हंस ।

मत्तमदि न्यास बी० पृ० १९६ पद १० ।

५. (क) इहवा कुमुदमत्तमत्तम मत्तम रमानाम नवकुमुदधारणम् ।

बनं च तल्लोमक बोधिरविर्षं ज्यो कळं वाम इहा मनोहरम् ॥

मिश्रम् बीठं तद्वर्नवर्षर्नं प्रबन्धिवः कृष्ण पृहीतमावसा ।

आनुगुरन्म्योऽन्यमत्तमिषोवमाः स वभ क्षन्तोमदकोकुम्भकाः ॥

भा० १ १९, ३८४ ।

(ख) 'सामान्यतः' बंशी को मात्र मद्य का प्रतीक माना जाता है। पौ० अ० प्र० पृ० १६९ ।

इस गोपीभाव से श्री जाने बाकी विविध निरव रसोपासना की और उन्मुख किया।^१ वस्तुतः कार्यसाम्य भी श्रीहितहरिवंश के हित और बत्ती के अवतार होने का मूक कारण माना जा सकता है क्योंकि इस सम्प्रदाय के परवर्ती कवि श्री हित सेवकदास कहते हैं कि सभी अवतारों को देना कहीं भी मग नहीं रमा। गोकुलनाथ कृष्ण ने अपने पूर्ण ऐश्वर्य के साथ ब्रज में अनेक प्रकार की खीटाएँ कीं। उनमें कोई भी कीट्य विषयको व्यक्तित्व नहीं कर सकी। केवल बंदी बजाकर उन्होंने जिस प्रेम-पाश में सभी को बाँध किया था वस उसी एक हीति ने मेरा मन मुग्ध कर किया है।^२ इस प्रकार बत्ती एव रासलीला और हरिवंश पूर्व रसोपासना में अवतार-सम्बन्ध के साथ-साथ नाम और कार्य दोनों दृष्टियों से अपूर्व सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। अतः उक्त प्रवृत्ति की मूक पीठिका के रूप में इसे माना जा सकता है।

यह सम्प्रदाय के प्रवर्तक होने के चाते इन्होंने गुद-परम्परा में श्रीकृष्ण से अभिहित कर उपास्यरूप प्रदान किया गया। फलतः हरि और हरिवंश दोनों अभिन्न माने गये हैं।^३ साथ ही परवर्ती कवियों ने इनके अवतार-हेतु का भी अल्पविक विस्तार किया।

प्रयोजन पीछे बतलाया जा चुका है कि रसिक-प्रवर्तकों के अवतार का प्रयोजन मन्थारामक या बहिरंग न होकर अंतरंग और आत्माद्य प्रधान था।^४

१ (क) वैष्णु मारं नामै बंदीवद ।

सत्रा वसंत रश्मि हृन्वाचम पुष्पिण पवित्र तुमग वसुना तत ।

बहिष्ठ किन्दोद मकराकृण कुम्बक मुक्तरविं प्रमर मानो कट ॥

बासि अवन्म मज्जम रस क्षरण से श्री हित हरिवंश मकर कीकान्त ।

हित चौरासी ह के (सं १८८१), १७७८ ना० प्र० स पृ ६५ ।

(घ) हरि रिधि अक्षर बीज आवि बंदी घाकि सुमंथ । सेवक बानी ह ८५९ ।

मम शिष्ट सुन्दर ज्ञान परि से से श्री हरिवंश ।

२ हेतु जु में अवतार सबे मनि ताह तदा मम ठिसो म मार ।

गोकुल नाव मद्भजन वैभव लीला अनेक म विष मयारं म

ण्यदि रीति प्रभोनि बन्धो वन मोदि सबे हरिवंश बजार ।

सेवक बानी ह के० ५४ ५९ ना० प्र स पृ० ६८ स ११ ।

३ (क) हरि हरिवंशनेद नदि हीव । प्रभु ईश्वर जाने मय श्रेव ।

बोव बहे म अनम्बना । सेवक बानी ह० के० गा० प्र० स पृ ४६ ।

(घ) श्री राधावल्लभ श्री हरिवंश मुमिरत क्यै पाव कम कंन ।

ममवग मुदिग रसिकमाल ह के भा प्र स पृ ६५ ।

४ कर्णा मिधि अम हृपदनिधि श्री हरिवंश बदार ।

श्री भुवदास जी के मतानुसार कदनाभिधि, कृपाभिधि और उदार हरिबंस
 बुद्धावय रस की अभिप्यक्ति के निमित्त प्रकट हुए थे। क्योंकि समस्त कृष्ण-
 लीला में बुद्धावय की रास-लीला और युगल-विहार ही सर्वोपरि हैं। ये ही
 महाभाव सुखसागर स्वरूप हैं।^१

अतएव इस परम सुख की उपकर्मिण के किये हरिबंस की कृपा आवरवक
 है। जिस पर श्री हरिबंस की कृपा होती है उसी को श्रीकृष्ण का प्रहारा
 मिथ्या है। श्री हरिबंस इस रसमयी आनन्द-बन्धि की श्रीवृद्धि के निमित्त
 प्रकट हुए।^२ फलतः रतिकराराय श्रीहरिबंस ने राधात्मजमकर का बंस
 ही नहीं प्रकट किया,^३ अपितु स्वयं प्रेमावतार के रूप में श्री आबिर्भूत हुए।^४
 श्री हितसेवकदास कहते हैं कि कलियुग में वेद विधि का पावन कठिन
 हो गया। पयार्थ धर्म कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। कोई किसी का भका
 करने बाधा नहीं रह गया था। पृथ्वी के शासक राजा धर्महीन हो गये थे।
 श्रेयस्स सारी पृथ्वी पर छा गये थे। वेद-विहित कर्म से अनभिज्ञ होने के
 कारण सभी लोग आधुनिक धर्म का पावन करने लगे थे। भक्ति का धर्म
 किसी को ज्ञात नहीं था। धर्महीना एव श्रेयस्सों के मार से पृथ्वी दुःखित
 हो गई थी।^५ अतएव भगवान हरि ने सुतिपद्य से विमुक्त एव प्रस्त विद्य

बुद्धावय रस सबको सारा निव सर्वोपरि नुपूक विहारा।

भुवदास प्रत्यावली, रहस्य मञ्जरी, पृ० ७५।

१ महाभाव सुखसागर स्वरूपा। कोमल सीक सुमाज अनूपा।

भुवदास प्रत्यावली, रहस्य मञ्जरी, पृ० ८०।

२ आपर श्री हरिबंस कृपाठ ताकीवाह गये बोट काक।

श्री हरिबंस दिने को जाने ताको वह बनने करि बाबै ॥

मानन्द बेकि बड़ी रसमई श्री हरिबंस प्रगट करि ईव।

भुवदास प्रत्यावली, रहस्य मञ्जरी, पृ० ८१।

३ रतिक नृपति हरिबंस नू परम कृपाठ उदार।

राधा बहम काक नस किनौ प्रगट संसार ॥

भुवदास प्रत्यावली वन विहार लीला पृ० ९८।

४ प्रगट प्रेम का रूप बरि श्री हरिबंस उदार।

राधा बहम काक की प्रगट किनो रस सार ॥

भुवदास प्रत्यावली प्रेमावली, पृ० १५८।

५ कलियुग कठिन वेद विधि रही धर्म कहुं मदि बीजण सही।

कहीं मको होठ ना करे।

उदबध निरन मको छप हैठ, धर्म रहित मैदिनी मरेद्य।

को देख मग में इनके उबार हेतु निश्चय कर, समस्त देवों का सारांश अभिम्यक्त किया। तत्पश्चात् सभी अवतारों के रूप में भक्ति का विस्तार किया। पुनः आविर्भूत होकर रसोपासना एवं रसिक धर्म का प्रवर्तन किया।^१

जिसके पञ्चस्वरूप जनक अवतार होत ही ब्रह्म से पूरबी भर गई। विश्व के अष्टम मित्र गये, समस्त श्रेष्ठों ने भी हरि-वचन का ही विस्तार करना प्रारम्भ किया। उनका व्यवहार अत्यन्त मजुर हो गया। वे अन्वी तरह प्रजा-पालन करने लगे।^२ सभी लोगोंने धर्मसुख का अन्वेषण करना प्रारम्भ किया। सभी लोग निर्भीक हो गये। ब्राह्मण लोग समुचित ढंग से पदचम में डीब हो गये। परस्पर प्रेम की वृद्धि हुई। इस प्रकार कश्चिपुत्री प्रजापति में परिवर्तन हो गया।^३

अन्तः प्रीतिवृद्धि ने अवतरित होकर उस ब्रह्म-रीति का प्रचार किया जैसी बन्ध-भुक्त की प्रीति थी।^४ इन्होंने उसी नित्य-कीका और नित्य-रास को रसिक समुदाय में अभिम्यक्त किया अर्थात् प्रीतिवृद्धि और रास नित्य रास कीका

श्रेष्ठ सत्त्व पुद्गी बने।

सब जन करहि आधुनिक धर्म वेद विहित जानत नहि धर्म।

धर्म भक्ति को क्यों कई बहुत मग जाने न पतास ॥

धर्म रहित जानत सब दुनी।

श्रेष्ठसुभार दुष्टित मैरिनी बनी और पूजे नहीं।

सैबक बानी ह के पृ० ४२ पृ ४३।

१ करो कृपा मन किनो विचार, हृति पव विमुक्त दुष्टित संसार।

सुख वेद विधि ब्यारी सब अवतार भक्ति विस्तारी ॥

पुनः रस रीति जगत ब्यारी करो धर्म अपनी प्रथम।

सैबक बानी ह के० भा प्र स पृ० ४३।

२ अत्र तुकारा जडुदिधि मने। गये अष्टम सब विश्व के।

श्रेष्ठ सत्त्व हरि वचन विस्तारहि परम कर्मित बानी कथारहि व

करहि प्रजा पाकम सबे। अपनी अपनी रधि बघ रास।

सैबक बानी ह० से० भा प्र स० पृ ४४।

३ बलहि सत्त्व जन अपने धर्म ब्राह्मण सत्त्व हरहि पर धर्म।

धर्म सबनु को मात्रिनी।

सूरि गरं क्वि सुन को रीति। निर निर मग मग हीत समीति।

प्रीति बरदार भाति बनी।

सैबक बानी ह के भा० प्र० स पृ० ४४।

४ अब नु करो सब मग को रीति जैसी सबनुनैर सुन प्रीति।

सैबक बानी ह० से० भा० प्र० स , पृ० ४५-४६।

श्री भिमस्य है। उसी कला भद्र की शीतल छाया में जहाँ किसी अन्य का प्रवेश नहीं है। केवल श्री हरिबंध का जहाँ नित्य निवास है।^१ इस विडम्बण रीति का मर्मज्ञ और कोई नहीं है। जब-जब बम की दानि होती है तब-तब वे प्रकट होते हैं।^२ जो रस-रीति अत्यन्त दुर्लभ है उससे अधिक विष पुरित हो जाता है। सारा जगत हम सजीवनी को पाकर चेतन एव प्रसन्न हो उठता है।^३ इस रस में भिमस्य रहने वाले का मन्त्रास भी मिट जाता है।^४

यह स्पष्ट है कि हरिकण का अवतार राधा श्री आद्या से रसोपासना के प्रचार के निमित्त हुआ था।^५ रसिक सम्प्रदायों द्वारा प्रचारित नित्य रास खीसा या नित्य विकृष्ट केकि के वर्धन या माग्य जेने के निमित्त गोपी भाव या सखी भाव अभिचार्य माना जाता है। 'मोमज्ञागत' में भी रामजीका में श्रीकृष्ण गोपियों के साथ अकसे से।^६

रसिक सम्प्रदायों में माग्य रही सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हरिदास लक्षिता सखी के अवतार माने जाते हैं।^७ इनके इस अवतारक का विकास भी सम्भवता सखीभाव के प्रभावानुस्य परवर्ती काल में हुआ।^८ नामादास जी ने इन्हें केकि और सखी-सुक का अधिकारी माना है।^९ 'प्रियादास की टीका' में या 'रसिक अनभ्यमास में इन्हें किसी अवतार से सम्बद्ध नहीं किया गया, अपितु परवर्ती काल में आचार्य या रसिक सभी सम्प्रदायों में सखी या रसिकों के नाम

१ श्री हरिबंध नित्य भर केकि। वादन सरस मम रस बेदि।

नित नित कीटा नित नित रास सुनहु रसिक हरिबन्ध निवास।

सैकमानो ६० के० ना० प्र० स०, पृ० ४६।

२ अथा भवन दुख शीतल प्रहो। श्री हरिबंध रहत नित जहाँ कहा न वैभव जान श्री।

सैकमानो ६० के०, मा० प्र० स०, पृ० ४६।

३ जब जब हीत बर्म की दानि तब तब तनु करि प्रकटत आनि।

आनि और हूँ नही। सैकमानो ६० के० ना० प्र० स०, पृ० ४६।

४ जो रस रीति सबल है हरि। सो सब विष रही भर पुरि।

श्रुति संजीवन कहै हरि। सैकमानो, ६० के०, ना० प्र० स०, पृ० ४६।

५ ना रस मान मिटे मच प्राप्त। सैकमानो ६० के० ना० प्र० स०, पृ० ४७।

६ यह विन लोकत सुख क्यो, श्री राधा तुमने में क्यो।

भक्त्युत्प्रेरित रसिकमाक, ६० के० ना० प्र० स०, पृ० ५२।

७ मा० १० १९।

८ श्री क० प्र० पृ० १८७ स्वामी हरिदास की बानी श्री लीपासकृत।

९ श्री क० प्र० पृ० १९५

कवि श्री हरिदास मद्रक में बनिया बनि दाड़ी।

१० भक्तमाक पृ० ६ १ प्रप्य० १

अवलोकात री केकि, सखी हृद के अधिकारी।

३६ म० अ०

संक्षिप्तों के भवतार क रूप में रके जात थे ।^१ सम्भव है इस परम्परा में इन्होंने भी कविता सली का भवतार माना गया हो ।

इस प्रकार उपर्युक्त तर्कों से स्पष्ट है कि भाचार्यों को प्रायः किसी न किसी प्रकार भवतार बनाने का प्रयत्न किया जाता था । इन सभी के सूक्त में एक बात अचरय कवित होती है, वह यह कि भवतारीकरण की पद्धति में प्रायः साम्प्रदायिक मान्यताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता था । सहर से लेकर हरिदास तक क निरूपण से यह स्पष्ट हो जाता है । परम्परा के अतिरिक्त नाम और कार्य साम्प्र से आलोच्यकाक में त्रिन उपमात्मक रूपों का विकास हुआ काकान्तर में उसे ही भवतार का रूप प्रदान किया गया । वही भवतारवादी जनश्रुति या भवतार, कवि के रूप में प्रकटित हुआ । सहर—चतुर रामानुज—कचमन, शेष रामभक्त—राम हृणचैतन्व—कृष्ण, हरिदास—बंशी आदि में नाम-साम्प्र स्पष्ट प्रतीत होता है ।^२ किन्तु उपर्युक्त स्वरों पर ध्यान देने से साम्प्रदायिक प्रभाव से संबंधित न्यूनाधिक कार्य-साम्प्र भी कवित होता है ।

अतएव वैष्णव सम्प्रदायों में विष्णु और उनके आबुध तथा विष्णु-भवतार और उनके आबुध इन सभी का कोई न कोई भवतारवादी सम्बन्ध मध्य कालीन भाचार्यों तथा उनके बंधुओं से स्थापित किया गया है । इनमें से विशेषकर बह्म सम्प्रदाय में तो बह्ममाचार्य की पूरी बजाबजी ही भवतार परम्परा के रूप में इस सम्प्रदाय से गृहीत हुई । प्रायः भवतार भाचार्य अपने भवमान के पश्चात् अपने भवतारी इष्टदेव उपास्यों से तदाकार होकर स्वयं भी भवतारी उपास्य होकर अपने सम्प्रदायों में प्रकटित हो जाते थे ।

इन भाचार्यों के भवतार का तो मुख्य प्रयोजन सम्प्रदाय प्रवर्तन रहा करता था । उसके व्यापक प्रसार क किए से शकर जैसे विरोधियों के सिध्या मायावाद का खंडन करते थे । अतः राम-कृष्ण सख के द्वारा अपना भवतार वादी उत्तरदायित्व विभाते थे । भाचार्य शाख के द्वारा अपना भवतारवादी उत्तरदायित्व विभाते थे । परन्तु इतिका सम्प्रदायों क भाचार्य, भाचार्य की अपेक्षा साबक भक्त ही अधिक थे । अतः इनक सम्प्रदायों क विशेष प्रकार की आचरयकता नहीं थी । परन्तु काकान्तर में इनक शिष्यों ने इनक भवतार रूपों तथा उनके प्रयोजनों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया । फलतः य भवतार वाद की परम्परा में भी समाहित हो गए ।



१. श्री वे० ए० १ भूमिज में दारका राम चरिय ने सगी-रुपों की एक कम्पी सूची प्रस्तुत की है ।

२. हिन्दी अनुशोभन वर्ष अहू ४ ए० २४ 'मद्रिह्य में अन्तर्निर्णों का रचान छोरी निबन्ध में डा अंशुण लाल ने अन्तर्निर्णों में माय साम्प्र के आचार पर कविता कर्तों के भवतारीकरण का उल्लेख किया है ।

चौदहवाँ अध्याय

विविध अवतार

विद्युत्के अध्यायों में राम, कृष्ण अर्थात् और आचार्यों के विवचन में मध्य युगीन सगुण साहित्य में व्याप्त अवतारवादी उपासकों का रूप स्पष्ट हो चुका है। इसके साथ ही इस युग में उनसे सम्बद्ध या प्रभावित अन्य अवतारों का भी उल्लेख अव्यक्त है। तिनमें मन्त्रों का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भक्त

उपास्य रूप

मध्यकाल के उत्तरार्ध में दो प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से कथित होती हैं। उनमें एक ओर तो अर्थात् और आचार्यों के साथ भक्त या भक्त मी उपास्य-रूप में स्वीकृत हुए और दूसरी ओर रमिक सम्प्रदायों के प्रभावशाली रूप से भगवान् के सेव्य रूपों में मन्त्र-भाव की अपेक्षा सखी-भाव विशेष रूप से प्रकटित हुआ। यहाँ तक कि शास्त्र भाव से उपासना करने वाले रामायण सम्प्रदाय के मन्त्रों में भी परवर्ती काल में मन्त्री-भाव की ओर अधिक झुकाव हुआ।

'मन्त्रमात्र' एवं बार्ता ग्रन्थों में इन मन्त्रों का अल्पिक उल्कार स्पष्ट होता है। 'मन्त्रमात्र' के प्रारम्भ में ही मन्त्र, भक्ति, भगवान् और गुण को अमिक्त माना गया है। 'दो मी बावन बैजवन की बार्ता' में बैजव^१ या 'भगवद्दीप'^२ टाकुर जी के स्वरूप बतलाये गये हैं। इसके बाद में सेव्य-सेवक भाव की अमिक्तता विदिन होती है जिसके फलस्वरूप भक्त और भगवान् में एकता स्थापित हुई^३। उपनिषदों में 'मन्त्रवत् प्रवृत्त मन्त्रि'^४ के रूप में मन्त्रवादिनों के उल्कार की बार्ता हुई है। 'मन्त्रवत्' में मुख्य आत्माओं का उल्कार मन्त्र के साधुमन, साकोपक रूपों में प्रतिबिम्बित होता है। क्योंकि म० सू०

१ मन्त्रमात्र ३ कर्मवला १०० १० १। १

मन्त्र भक्ति भवर्षय गुण बन्धु माय वपु पक।

इसके पर बंदन जिनै मन्त्रे विम्व जनेक ॥

२ शो० वा १ वा १५ १६०। ३ शो० वा ३ १० ११५।

४ राम कर्मवपु मी १५ १०५ पर १८८

बन्धु दे बर्षनी वैजवनत। बन्धु प्रवु बन्धुन वैजव इवै बर्षनी कर वरत।

५ सु ३ १ १५।

के अनुसार सृष्टि रचना' के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में वे ब्रह्मवाद् माने गये हैं। फिर भी उक्त भाष्यताओं में केवल मानसोत्कर्ष मात्र विशेष रूप से प्रतिपादित हुआ है।

परन्तु आलोच्यकाव्य के भक्त जिस भगवान् के स्वरूप माने गये हैं वह भगवान् विष्णु और सर्वसमर्प होते हुये भी भक्त के प्रेमवचन राम, कृष्णादि अवतारों के रूप में व्यक्तित्व होता है और उनके साथ नाना प्रकार के चरित^१ एवं लीलाओं करता है। वह अर्थात् विप्रहृत् एवं प्राकिप्राम्नादि कमुतम रूपों में उनके साथ सदैव मानसोचित साहचर्य-सम्पृक्त सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार भक्त और भगवान् के इस सम्बन्ध में केवल भक्त का उत्कर्ष ही नहीं होता अपितु भक्त के प्रेम-वद्य सर्वकृतिमान् ब्रह्म विनिष्ट भगवान् का अवतरण भी होता है।^२ अतएव यह ज्ञातव्य है कि भक्त और भगवान् का वह विरुद्ध सम्बन्ध वा साहाय्य किसी अप्राकृतिक विषय वा ब्रह्म लोक में यहीं होता अपितु मर्त्यलोक में होता है। वह तटस्थ वा निरपेक्ष ब्रह्म मात्र न होकर भक्तों को भजनेवाला भगवान् है।^३ दोनों समान रूप से एक दूसरे के प्रति जिज्ञासु और भक्ति भाव से पुरित हैं।

यदि मध्यकालीन भवतारवाद् को रुद्रिप्रस्त दृष्टिकोण से परे होकर बैसा आय तो यह स्पष्ट सिद्धित होगी कि भवतारवाद् में भक्त का भगवान् होना और भगवान् का भक्त होना दोनों मानसोत्कर्ष एवं मानव-जातों के दो चरम बिंदु हैं। भक्ति के क्षेत्र में भक्त और भगवान् दोनों कंचक मनुष्य मात्र हैं। दोनों जाति ब्रह्म-परम्परा वा अन्य सामाजिक प्रथाओं वा विधाओं से परे हैं।^४ तुकमी के सर्पाद्य-पाकक राम धुजाछूत बाके धुग में भी निपाद् को गळ

१ म सू ४ ४, १७, अगदम्नात्परमर्ष प्रकरणादसिद्धितत्वात् ।

२ रा० मा० पृ ३३

कथा अनन्त राम भगवान् । तथा तथा क्षेरति शुभ नाम् ।

बही : ५० ७४ कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही । आह चरित नामा विधि करही ।

३ सूरसागर ५० २७०, ४४३

सूर स्वाम भक्तनि हित कारन, मामा भैव बनावे ।

४ (क) रा० मा० पृ ३३

अगुल अरुण अकण्ड अज बोई । भगन प्रेम वम सगुन सौ होई ।

(घ) भा म सू ८

‘स कीर्त्तमानः कीर्त्तनीवाविर्भवति अनुनाम्बनि च मच्छन् ।

५. मी० १।१९ के मजनि तु मां मक्त्वा यदि ते तौ वाप्सहन् ।

मा० १।१।९८ साधवो इदमं मयी साधुना इदमं त्वहम् ।

मरम्बन् ते न जाननि माहं तेभ्यो मनस्यपि ।

विविध भयतार

कमाने वाले और भीलमी शेरारी के नूटे बेर पाने वाले हैं। उसी प्रकार बासुरेब कुल में उष्यब्र ब्रीहृण्य भी गोप-गोपियों के साथ रहने वाले तथा दामी कुम्भ से प्रेम करने वाले हैं। इस प्रकार इस युग क साहित्य का सबलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि सूर तुलसी आदि कवियों ने जिस ब्रीहृण्य और राम की बीला और चरित्र का गान किया है वे मानव जातियों की इकाई प्रस्तुत करने वाले हृण्य और राम हैं। इस प्रकार इस युग में भक्त और भगवान् को समान भूमि पर प्रतिष्ठित करने का सर्वाधिक प्रयास हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में प्रायः संतों या भक्तों की इस मानवीय भूमि का परिचय दिया है^१ तथा राम और ब्रह्म के समकक्ष माने जाने का आचार भी प्रस्तुत किया है।^२ 'बाद-महि-सूत्र' के अनुसार पृथक् भक्त श्रेष्ठ ही नहीं है^३ अपितु उनमें और भगवान् में कोई अन्तर नहीं है।^४ ऐसे भक्तों के आधिमांश से पितरगण प्रसन्न होते हैं देवता वाचने लगते हैं और पुष्पी समाया हो जाती है।^५ श्री ब्रह्मचार्य ने पुष्टि-मार्गीय भक्तों पर विचार करते समय कहा है कि रूप भयतार बिह्व और गुण की दृष्टि से इनके स्वरूप में, शरीर में जयवा उनकी क्रियाओं में कोई तारतम्य या म्यूनाधिक मात्र नहीं होता।^६ बाद में 'बात्ता' 'प्रदो में विप्रहोपासक सगुण भक्तों का आध्यात्मिक विस्तार हुआ।

परन्तु 'मल्लमाळ में जिन भक्तों को प्रहण किया गया है उनमें निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के भक्त, मत्त अर्थात् पूर्ण रसिक समान रूप से सूचीत

१ मल्ल कवि आस जो पृ ४ ५ मार्गी २९

व्यास ब्रह्म कवि के हरि परमन विग जोरि।

एक मल्ल देहास पर बारी बाम्बन कीरि ॥

२ तु प्रबन्ध 'हृसरा लख' बैराग्य मन्दोपनी पृ० ११ दो ११।

मै से मेखी लोह तम, ऊची जानम मालु।

संगराज मो अग्नि तुलसी या महि पालु ॥

३ तु प्रबन्ध 'हृसरा लख' बैराग्य मन्दोपनी पृ ११ दो ११ और २०।

बन करि मन करि बचन करि काहु हृदय माहि।

तुलसी ऐसे मंग जन रामरूप जग माहि।

बंजन कीचहि सम गनै, कर्मिनि घट पपाज ॥

तुलसी ऐसे मंग जन पुष्पी ब्रह्म समाल।

४ ना म मू १०—'मल्ल पद्यनिनो मुक्ता'

५ ना म मू ४—'उत्सवस्तजने भिरमावय।

६ ना म मू ७—'मोरम्ये विनरो मूल्यमि देवना' सनावा केवमूर्मवति।'

७ संजवानी मं, अस्वाभ में लंकाजि 'पुष्टि प्रवाह मर्पादा मेह पृ ७२४, ७२५ दो ११

स्वरूप-मावतारेल द्विनेन च गुमेन च। तारतम्य न स्वरूपे देहे वा दक्षिणात्त वा।

हुये हैं। नामादास ने उन्हें को मंगलकल्प समझ कर उनका वस गात किया।^१ यह भक्त-चरित-गात इनके अनुसार अवतारों के चरित एवं छीका-गात की समानता में आता है।^२ इनके गुण अग्रदास के अनुसार तो मच्छों के पशुगाव के अतिरिक्त संसार से मुक्ति पाने का अल्प कोई उपाय नहीं है।^३ अतएव उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि अवतारों के चरित एवं छीका-गात की परम्परा में ही मच्छों के चरित-गाव की प्रजाती का विकास हुआ और भक्त भी भगवान् के सदा इहदेष का उपास्य-रूप में गृहीत हुये थे। 'मच्छमाल' में आकोषककाक के विख्यात कवि हरि व्यास के विषय में कहा गया है कि मच्छ ही इनके इहदेष थे।^४ साथ ही हरिव्यास जी के एक पद से भी इस धारणा का स्पष्टीकरण हो जाता है। उस पद में व्यास जी ने कहा है कि भक्त ही मेरे देवी देवता, माता पिता मैया दामाद, स्वजन और बहमेऊ हैं। भुक्त सम्पत्ति परमेश्वर और आत-जनेऊ भी हरिजन ही हैं। केसर के सदास धनेकों को बहोंने मुक्त किया और कर रहे हैं। उनकी महिमा कृष्ण और कपिल ने भी गाथी है।^५

इस प्रकार उपास्य रूप में गृहीत होने के लक्ष्यरूप मच्छों का उत्कर्ष अवतारों के सदास उत्तरोत्तर होता गया और अन्त में अतिपय मच्छों ने अपने इहदेष के रूप में उन्हें भगवान् से भी बढ़कर माना। नामाजी ने एक कृष्ण

१ मच्छमाल, कवककावु हो १ मंगल आदि विचारिरह बस्तुन और मनुष्य ।

हरिजन की वस पावटे, हरिजन मंगलरूप ०

२ वही पृ० ४ बी ३ सब संतन निर्मय किनो त्वति पुराण इतिहास ।

मदिये को दोरं सुवर के हरि के हरिदास ॥

३ वही पृ० ४ हो० ४ अग्रदेष आवा दर मकल को मनु गात ।

मय सानर के तरन की मादिन और उपाव ॥

४ वही पृ० ३०४ छप्य १२

'उत्कर्ष' ठिकक कर दाम की भक्त उह अति व्यास के ।

५ मच्छ कवि व्यास जी पृ० १९६ पर २२

मेरे मच्छ ही देव-देव ।

मच्छनि जानो मच्छनि मानो निज बन मोहि बनेऊ ।

माता पिता मैया मेरे मच्छ दमाव सजन बहमेऊ ॥

सुख संपति परमेश्वर मेरे हरिजन अति जनेऊ ।

मयसानर की वैरी मच्छ, केवट कर हरि ठीक ॥

भुक्त बगुन उपावे मच्छनि किये उचार केरेऊ ।

जिनकी महिमा कृष्ण कपिल कवि हारे सर्वोपरि केरे ॥

'व्यास' दास के मान जीवन बन, हरिजन शक बनेऊ ।

में मत्स्य की पूजा को श्रेष्ठतर बतलाते हुये कतिपय मत्स्य का नाम दिया है। उस कल्प के अनुसार भगवान् ने स्वयं मत्स्योपासना की श्रेष्ठता मानी है। उनकी उक्ति को प्रमाण-स्वरूप समझ कर गाम्भीर्यात्, बनिपाराम, मोहनबारी हाऊराम, जगदीश दास, लक्ष्मण भक्त भगवान् भक्त, गोपाल भक्त और गोपाल आदि मत्स्योपमा मत्स्यो की ही इष्टदेव के रूप में उपासना की।^१ पीछे बताया जा चुका है कि इन मत्स्यो में निर्गुण सत्तों को भी परिगणित किया गया है तथा 'सत व्युत्पाय में उनक प्रवर्तक, अवतार पूज अवतारी रूपों का भी विवेचन किया जा चुका है।

प्रयोजन

नामाङ्गी ने पद्यपि सत्तों को बिना सगुण-निर्गुण भेद के ग्रहण किया है तथापि जहाँ संतों का उल्लेख हुआ है वहाँ उनक साम्प्रदायिक प्रयोजनों की और संकेत मिलता है। इस कोटि में मान्य संतदास और माधवदास आदि संतों के प्राकृत्य का प्रयोजन परम धर्म का विस्तार बतलाया गया है।^२ परम धर्म के अतिरिक्त उपास्य अवतारों के सहस्र उद्धार सम्बन्धी प्रयोजनों का स्वतः स्पष्टीकरण हो चुका है।

जहाँ तक मत्स्यो के अवतार का प्रश्न है इनक अवतारों को पौराणिक रूपों में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इनक अवतारों का विकास क्रमशः उपमा और रूपक के आधार पर विदित होता है।

यों तो मत्स्यो के अवतारत्व का बीज विष्णु के ही वस या चौबीस अवतारों

१ मत्स्योपमा, स्कन्दपुराण ६० ६३४ ६६५ कल्प १०६।

श्रीमुख पूजा संत की अपुन ते भविषी करी।

बहे बचन परमान दास गंभीरी बटिवाने भाऊ ॥

बूरी बनिवा राम मंडोडे, मोहनबारी हाऊ।

माझीठी जगदीशदास लक्ष्मण बडुबाबळ मारी प्र

सुनपय में भगवान सवे सख्यान गुपाळ उबारी।

बोधनेर गोपाळ के मत्स्य दृष्टना निर्बही ॥

श्री मुख पूजा संत की, अपुन ते भविषी करी।

२ मत्स्योपमा पृ० ९ ७ कल्प १९०।

संत राम सद्व्रति जगन धार करि डारयो।

महिमा महाप्रदीन भक्ति दिन धर्म विचारयो ॥

बदुरयो माधवदास भजन बळ परकी बीनों।

करि योगिनि सों वाइ बदन पावळ प्रति कीनों ॥

परम धरम विस्तार दिव, प्रगट भय माहिन तथा ॥

में मिलने लगाता है। क्योंकि इन सूचियों में कतिपय ऐसे महापुरुषों को भी सम्मिलित किया गया है जो विष्णु भक्त के रूप में मान्य हैं। जैसे ब्रह्मावतारों में गृहीत परशुराम को 'अध्यात्म रामायण' में नारायण या विष्णु का उपासक कहा गया है।^१ इसके अतिरिक्त नाभा जी ने ब्राह्मण भक्तों में त्रिन विधि, नारद, शंकर सनकादिक, कपिल मनु को और बबबा भक्ति के उपासकों में त्रिन व्यास और प्रभु का नाम किया है। ये विष्णु के गुणावतार^२ एवं चौबीस अवतारों^३ में गृहीत हुये हैं। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि विष्णु के अवतारों की संख्या में वृद्धि होने का मुख्य कारण विविध देवताओं और ऋषियों को उनके भक्त-रूप में भी माना गया तथा काकमन्दर में उभका विष्णु के अवतार-रूप में परिचय होना है।^४ पर 'भक्तमाळ' में विष्णु के अतिरिक्त अनेक भक्तों के परम्परागत एवं स्वतंत्र अवतार परक रूपों का उल्लेख हुआ है।

परम्परा की दृष्टि से पुराणकार व्यास और यदि कवि वास्मीकि के अवतार क्रमशः माधवदास और तुलसीदास बतलाये गये हैं।^५ 'भक्तमाळ' के पूर्वलिखित पुराणों एवं ग्रन्थ काव्यों में भी व्यास और वास्मीकि के विभिन्न अवतारों की परम्परा प्रस्तुत की गई है। 'विष्णुपुराण' में व्यास के अष्टादश अवतारों का उल्लेख हो चुका है^६ तथा राजसेकर ने 'बाळ रामायण' में वास्मीकि की भी एक अवतार-परम्परा प्रस्तुत की। काव्य मीमांसा में उद्धृत उस रत्नक में कहा गया है कि पहले वास्मीकि हुये। वे पुत्रा भक्तसेवक के रूप में अवतीर्ण हुये बाह् भवभूति के नाम से वे प्रसिद्ध हुये। वे ही भव राजसेकर के रूप में वर्तमान हैं।^७ इस प्रकार वास्मीकि के पश्चात् 'राम-चरित्र' के महा कतिपय

१. अध्यात्म रामायण पृ० ५२ १ ७, २१-२२। २ मा० २१ ४ ५।

३ मा १ १ ८ नारद मा १ १ और २ ७ में सनकादिक, कपिल मनु, व्यास और प्रभु का नाम किया गया है। भक्तमाळ के प्रथम अक्षर में मनु के स्थान में मन्वन्तर होने के अतिरिक्त अन्व सभी का नाम है।

४ यहाँ तक कि राम के विरोधी राजन श्री भी इनका पुराणन भक्त माना गया है। अनुमन्त्रक (हरबराम) पृ ३२२ सो।

छोत्रे बाप किमास अष्टर श्रीनि राजन परपी।

द्विती पुराणन बास, भगति माध मन में रहे व

५. भक्तमाळ पृ० ५४० अक्षर ७० और पृ० ७ १ अक्षर २२९।

६ वि पु० १ १ २१, २ अष्टादिनातिरिचैने वैर व्यासाः पुराणनाः।

७. काव्य मीमांसा पृ० २७२

बभूव वास्मीकि भक्तः कतिः पुरा तत्रः प्रपेदे अनिरभर्नुमिष्यन्वाह।

शिवः पुनर्वो भवभूति देवता स वनेति संग्रति राजसेकर ॥

कवियों को वाक्मीकि का अवतार बतलाया गया। सम्भवतः इसी परम्परा में 'राम-चरित-मानस' का रचयिता होने के कारण नामा जी ने गोस्वामी तुलसीदास को भी वाक्मीकि का अवतार माना है।^१ इसी तरह बेद-व्यास के काव्यों का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि पहले ह्यपर में व्यास ने वेदों का विभाजन किया 'अष्टादश पुराण', 'महाभारत' और 'भागवत' की रचना की वे ही कवि में माघवदास के रूप में सभी ग्रंथों की व्याख्या कर रहे हैं।^२ अठ एव दोनों में समान रूप से कार्य-साम्य एवं तत्काङ्क्षीन भक्ति जनित प्रयोजन इनके भाविर्भाव के मुख्य कारण हैं। पूर्व मध्यकाळ के भक्त कवि जयदेव का इस प्रकार का सम्बन्ध नामाजी ने नहीं प्रस्तुत किया, किन्तु परबर्ती भक्तभाष्यकारों ने बाद में जयदेव की भी एक अवतार-परम्परा का निर्माण किया।^३ इस कोटि की अवतार परम्पराओं के विकास में कार्य और विषय की समानता के अतिरिक्त प्रयोजन की प्रवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ विहित होता है।

इसमें कुछ भक्तों का नाम-साम्य के कारण उपमात्मक विकास हुआ है। जैसे विशाकर नाम के एक भक्त को विशाकर के अवतार के रूप में माना गया, अन्ततः उनके पिता करमचन्द्र करवप से स्वरूपित किये गये।^४ दूसरे रूप्य में

१. भक्तभाष्य पृ. ७५६ अक्षय १९९।

कवि कुटिल जीव नित्यार हित वाक्मीकि तुलसी मयो ।
 मैना काम्य निर्वच करित सत्र कोटि रमायन ॥
 एक अक्षर बहरे प्रज्ञाहृत्पादि परायन ।
 जब मच्छनि सुख वैम बहुदि लीला विसवारी ॥
 राम चरन रस-मत्त रहत भव निष्ठि जनवारी ।
 संसार अपार को पार को सुगम रूप नवका रूपी ॥
 कवि कुटिल जीव नित्यार हित वाक्मीकि तुलसी मयो ।

२. भक्तभाष्य पृ. ५४०, अक्षय ७०

विनै आस मनो प्रगट इ जग को हित मयो कियो ।
 एहिजे बेद विमाल कथित पुरान अष्टादश
 भारत भादि भगौन मनिग पञ्चारुबी हरि बस ।
 जब सोये सत्र ग्रन्थ अर्थ भाषा वित्यारुओ ।
 लीला जे जे कथि गाव मनपार उचारुओ ।

३. राम रमिकावली पृ. ६५४ में बतलाया गया है कि जयदेव ने तीन जग्यों में तीन रूपों में भगवान् की आराधना की। प्रथम बण्डिका जन्म में 'शृङ्गार समुद्र' शिपीव जन्म में 'कुम्भकर्णामृग' और तृतीय जन्म में 'श्रीग-शोषिन्' की रचना की।

४. भक्तभाष्य पृ. ५६८ अक्षय ७६

भटान प्यारै अंतर्दि करन, कुटिल दिव्यार अवतरो ।

नारायण नाम के मन्त्र को नारायण से स्वरूपित किया गया है।^१ यही क्रमबद्ध भाव में उनका नारायण अवतार होने में पृथग्भूमि का कार्य कर सकता है। इसी प्रकार श्रीधर को श्रीधर कहा गया है।^२ अतः बिनाकर तो नाम साम्ब के फलस्वरूप अवतार हुए उसी प्रकार नारायण और श्रीधर आदि के अवतारपरक विकास की संभावना भी की जा सकती है। कर्ष-साम्ब के कारण जगन्नाथपुरी के द्वार पर सदैव खड़ा रहने वाले रघुनाथ मन्त्र को गण्ड^३ से और चेम गुसाई को हनुमान से अभिहित किया गया है।^४ इसके अतिरिक्त कृतिपय रामोपासकों को हनुमान की का अवतार माना जाता है। महाराष्ट्र के रामोपासक रामदास जी हनुमान के अवतार बतलाने जाते हैं।^५ परधर्ती मिनादास ने नामा जी को भी हनुमान-बन्धी माना है जिसके फलस्वरूप वे हनुमान के अवतार कहे गये हैं।^६

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मध्यकालीन साहित्य में विष्णु एवं उनके अवतारों के अलग-अलग विभिन्न सम्प्रदायों के मन्त्र भी अवतार उपासक और अवतारी-रूप में प्रचलित हुए। इनके अवतारीकरण में, एक विशेष बात यह दृष्टिगत होती है कि मन्त्रों की अवतार परम्परा में नाम-साम्ब कर्ष-साम्ब और इष्ट-साम्ब का सर्वाधिक योग रहा है। जब तीनों प्रवृत्तियों का प्रभाव केवल साम्बदायिक कवियों पर ही नहीं अपितु वात्समीकि प्रवृत्ति सम्प्रदायपर कवियों पर भी रहा है।

इस काल में विष्णु के पापहर्त्रों के प्राकृत्य की परम्परा में राम कृष्ण आदि तत्कालीन अवतारी उपासकों के पार्षदों के अवतारों की सम्भावना की जा सकती है। नामा जी के एक शिष्य के अनुसार रामोपासक कीर्तदास की

१ मन्त्रमाळ पृ० १०१ अक्षर १८७।

श्री नारायण प्रपट मनी ज्योति तुलनायक।

२ मन्त्रमाळ पृ० ३३५ में उद्धृत भूतदास जी का श्लोक।

श्रीधर स्वामी ही मनौ श्रीधर प्रप्ये जान।

गिळक जानवत की किनी सर तिलकन वरमान ॥

३ मन्त्रमाळ, रूपका पृ० ५५१ अक्षर ७२

श्री रघुनाथ गुसाई गण्ड श्री सिद्धोरी आई रह।

४ मन्त्रमाळ पृ० ५८१ अक्षर ८३

सूरवीर हनुमान लहस परम उपासक।

'रामराम' बरतापते चेम गुसाई चेमकर ॥

५ दिग्गो बागेशरी प्रस्तावना पृ० ३ परवनी कवि।

६ मन्त्रमाळ पृ० ४३ अक्षर ११।

हनुमान् बघ ही में जतम प्रसंग जाके भयो हनुमान ही मनीन बान धारिये।

हुवा से राम के परम पार्षद सिष्य प्रकट हुए। इसका उदाहरण स्वरूप आसकरन, अपिरात्र, रूपभगवान आदि रामोपासक भक्तों का नाम किया गया है। पुनः एक दूसरे छप्पय में एक 'निर्विक्रम' भक्त 'हरिबंस' पार्षदों के नाम से आविर्भूत बतलाये गये हैं। एक अन्य भक्त कल्याणसिंह जी, रामोपासक भी पार्षदों की श्रेणी में माने गये हैं। नामा जी के अनुसार देहावसान के पश्चात् श्री अगस्त्य प्रभु ने अपना प्रिय पापदुःखसम्पन्न कर उन्हें अपने निकट बुद्धा दिया। इस युग के प्रसिद्ध कवि हरि व्यास जी को परवर्ती कवियों ने दिव्यु-परिकर का अवतार माना है।

इस प्रकार उक्त कथनों से स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में भक्तों की त्रिन अवतार-परम्पराओं का प्रसार हो रहा था उसका मूक में विष्णु के पुराण विख्यात पार्षद, परिकर और आमुष भी थे। क्योंकि भक्तों के अतिरिक्त पार्षदों के भी भक्तवतार-रूप अत्यधिक प्रचलित हो रहे थे। यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि पार्षदों की अवतार-परम्परा का उद्भव कहाँ से हुआ। क्योंकि नित्य उपास्य रूपों के साथ स्वयं पापदुःखों का ही साहचर्य परवर्ती विद्विग्न होता है। विशेषकर पार्षद रूपों का विकास अह्वयमान सखित उपास्य विग्रह रूपों की सेवा-आशना के परिणाम स्वरूप हुआ। आरम्भ में झाड़ा आश्वार भक्तों को ही पार्षद या आमुष अवतार-रूप में अधिक प्रचलित किया गया। कालान्तर में भक्तों की यह पार्षद अवतार-परम्परा निरन्तर प्रसार पाती रही।

'मत्तमात्र की उक्त अवतारी प्रवृत्तियों के अतिरिक्त बह्व्यक्त मत्त में प्रचलित उत्कृष्टीन 'वार्ताओं में भक्तों के विविध आध्यात्मिक एवं अवतारी रूपों के वर्णन होते हैं। उनका विशेषण के पूर्व इस बात का स्थान रखना आवश्यक

१. मत्तमात्र रूपकथा पृ. ८४८।

श्रीन्द्र हुवा कीर्तनविश्व परम पार्षद सिष्य प्रकट
आसकरन रिधिरात्र, रूप भगवान्, भक्त गुर।
अनुरास जय अने ज्ञान दीनर पृ. अनुर वर ॥

२. मत्तमात्र पृ. ८८० छप्पय १७५,

सिष्य सगुन श्री रंग को परित पार्षद अंगु के।
निर्वि क्रिम भक्तनि मत्रे, हरि प्रतीति हरि बंस के ॥

३. मत्तमात्र पृ. ९०५ छप्पय १८९।

भक्त पद्य उधारना वह निवही कस्यान की।
आश्वार श्री वास निपुन अनि प्रभु मन भावी ॥
परम पार्षद ससुक्ति ज्ञानि प्रिय निकट बुद्धायी।

४. भक्त कवि व्यास जी० पृ. ४५ में उद्धृत मन्दास ल १७११ के पर पृ ४।

है कि इस युग में राम, कृष्ण आदि अवतारों के जिन रूपों का प्रसार हुआ था उनमें युगकल्प स्त्रीकल्प और रस-कल्प अधिक व्यापक होते जा रहे थे। विशेषकर गोपी-भाव या राधा-भाव का प्रायः सभी सम्प्रदायों में अत्यधिक प्रचार हो रहा था। जिसके फलस्वरूप बातों में यह चर्चा होमे लगी कि श्री राधा-कृष्ण के आत्मरूप को इष्ट्य में रखने से महात्मीका का सुख मिळता है। उस लीला के दर्शन के पश्चात् यदि होव उपजे तो महापतिव और यदि स्नेह उपजे तो शत्रु भी के रसारमक रूप का दर्शन होता है। अतएव इस लीला-दर्शन के विमित पतिव्रता के सद्यः सखी-भाव रखना अत्यन्त आवश्यक है।^१

लीलावतार कृष्ण दिन में तो सखाओं के साथ वन में गौ चराते समय और रात में सखियों के साथ लीला करते हैं। 'अष्टसप्तान की बातों' में कहा गया है कि 'कुत्र में सखीजन है सो तिनके वीर स्वरूप है सो कहुत है पुंभाव के सखा भीर रती भाव की सखी। सो दिव में सखा द्वारा अनुभव और रात्रि को सखी द्वारा अनुभव है।^२ इनमें दिन की लीला में भाग लेने वाले सखा वेद मंत्रों के और रात्रि-लीला में भाग लेने वाली सखियाँ बह की लक्ष्मी का अवतार मानी गई हैं।^३ इसी आधार पर ब्रह्म सम्प्रदाय में अष्टाष्टाप के मन्त्र कवि अष्टसखा और नव सखियों के अवतार माने जाते हैं।^४ 'गोवर्धननाथ की की प्राकृत्य बातों' से इसकी पुष्टि होती है। वहाँ कहा गया है कि 'जब श्री गोवर्धननाथ की प्रगट भये तब अष्टसखा हैं भूमि में प्रगट भये। अष्टाष्टाप-कल्प होय के सब स्त्रीरूप को गान करते भये तिनके भाव कृष्ण १ तोक २ अष्टपम ३ सुबळ ४ अर्जुन ५ विशाल ६ भोज ७ श्रीहामा ८ वे अष्टसखा अष्टाष्टाप रूप भये।^५ इसी स्थल पर द्वारकानाथ महाराजकृत एक सुप्पय उद्धृत किया गया है जिसके अनुसार सूरदास-कृष्ण परमानन्द दास-तोक, कृष्णदास-अष्टपम लीलास्वामी-सुबळ, कुंभवादास-अर्जुन चतुर्मुखादास विशाल, विष्णुदास-भोज और गोविंद स्वामी श्रीहामा बतलाये गये हैं।^६

१ शो० वा ३ वा पृ ४१३।

२ श्री वे० वा संशुद्धीत 'अष्टसप्तान की बातों' रचनाकाल सं १७५२ पृ १।

३ श्री व वा में संशुद्धीत 'अष्टसप्तान की बातों' पृ० १।

४ अष्टाष्टाप और ब्रह्म सम्प्रदाय भा २ पृ० ५०९।

५ वही गोवर्धन नाथ जी की प्राकृत्य बातों (सं० १४४९-१७४९) पृ २७।

६ सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानन्द जानी।

कृष्णदास सो अष्टपम लीला स्वामी सुबळ बखानी ॥

उक्त सूची-क्रम में केवल सत्ताओं का उल्लेख है इनके सखी रूप का नहीं। साथ ही अष्टधाप में प्रसिद्ध नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास भोज सत्ता के रूप में गृहीत हुये हैं। किन्तु 'अष्ट सत्तान की बार्ता' में इसका परिष्कार किया गया है और इनके सत्ता-स्वरूपों के अतिरिक्त सखी रूपों का भी उल्लेख किया गया है। डा० दीनदयालु गुप्त ने उसे एकत्र इस प्रकार दिया है।^१

सत्ता	सखी	भक्त कवि का स्वरूप
कृष्ण	चम्पकलता	सूरदास ^१
तोड	अनुमागा	परमानन्ददास ^२
अनुन	बिसाखा	कुम्भदास
अपन	रुकिता	कृष्णदास
सुबल	पद्मा	धीतरवामी
श्रीशामा	भामा	गोविन्दस्वामी
बिसाक	बिसका	अतुलदास
भोज	अग्ररौखा	नन्ददास

भामा श्री न 'मत्तमाल' में उक्त परम्परा का पूर्णतः परिचय नहीं दिया है। फिर भी विविध कवियों के सम्बन्ध में लिखे गये कुछ छप्पयों में इन प्रवृत्तियों का पता चलता है। उन्होंने परमानन्द दास के उपलक्ष में कहा है कि 'अचरम कहा यह बात हुती पहिछी तू मर्याई' इसी छप्पय में उन्हें कछियुग में गोपियों के सद्यः प्रेम करमेवाछा भी बतलाया गया है।^५ सैतम्प

अनुन कुम्भदास अतुलदास बिसाका ।

विष्णुदास छो भोज स्वामी गोविन्द श्री शमाका ॥

अष्टधाप आठो सत्ता श्री द्वारकेय परमान । बही बार्ता पृ २७ ।

१ अष्टधाप और बङ्गम सम्प्रदाय का० २ पृ० ५०९ में श्री वै० वा तथा 'अष्टसत्तान की बार्ता' के आधार पर संश्लिष्ट ।

२ उक्त रूपों के अतिरिक्त सूरदास के उद्भव का अवतार भी सम्भवतः परवर्ती काल में प्रकटित हुआ क्योंकि भामाजी के 'मत्तमाल' छप्पय ७१ में उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु 'राम रसिकवली' व सं० पृ १०५ में सूरदास श्री श्री 'अप विदित श्रीअप अवतार' कहा गया है ।

३ शो० वा० शै पृ० ४१९ में परमानन्द स्वामी श्री श्रीशामा' श्वाल अवतार बतलाया गया है ।

४ मत्तमाल छप्पय ७४ ।

५ मत्तमाल पृ ५१९ छप्पय ७४

अचरम रीति कछियुग विनै परमानन्द मनी प्रेमकेन ।

सम्प्रदाय के मूक कवि सूरदास 'मदन मोहन सहचरी अवतार' माने गये हैं।^१ बात यह स्पष्ट है कि तत्कालीन युग में सखा एवं सखी के रूप में आबिर्भूत होने की प्रजाती का विद्यमान हो चुका था।

फिर भी परवर्तीकाल में कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति दोनों सम्प्रदायों में सखा-अवतार की अपेक्षा सखी-अवतारों का अधिक प्रचार हुआ। इसका मूल कारण परवर्ती सम्प्रदायों में रस भावना का अधिक प्रावण्य माना जा सकता है। इस भावना के अनुगत रसिक सम्प्रदायों के मूक भगवान को एक मात्र पुरुष और जीव को स्त्री रूपा मानते थे। अतएव मूक जीव भी इनके मतानुसार आदर्श रस-रीति का निर्वाह केवल सखी, सहचरी या किन्हीं मातृ से ही कर सकते थे। यही कारण है कि इस काल में रसिक मूक सखी-अवतार में ही विश्वास करने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जो प्राचीन मूक या सामान्य मूक पार्षद अवतार-परम्परा में पुरुष मूर्त-रूप में अवतरित माने जाते थे। कालान्तर में उभका अवतारीकरण सखी या सहचरी-रूप में हुआ।

अष्टावक्र के अतिरिक्त 'चौरासी वैष्णव की बातों' में प्रायः सभी मूर्तों के भौतिक और आधिदैविक दो रूप विहित होते हैं। इनमें आधिदैविक रूप कृष्ण के युग की किसी गोप, गोपी या अन्य व्यक्तियों के रूप हैं। इस प्रवृत्ति में अवतारवाद और पुनर्जन्म दोनों के ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। चौरासी वैष्णवों की उत्पत्ति के उपरान्त में कहा गया है कि 'चौरासी वैष्णव को करण यह है जो देवी जीव चौरासी कक्ष योनि में परे हैं तिनमें निकटवर्षे के अर्थ चौरासी वैष्णव किये, सो जीव चौरासी प्रकार के हैं। रामजी, रामजी सारिबकी, निगुण के चार प्रकार के भूतक में गिरे। तामे से रामजी, तामसी सारिबकी रहव किये, सो श्री गुसाईं श्री उद्धार करेंगे।'^२ पुनः कहा गया है कि 'श्री आचार्य जी बिना श्री गोबर्द्धन मर रहि न सक, ताते अपने अतरंगी विगुण पञ्चारे चौरासी वैष्णव प्रकट किये। सो एक-एक काल योनि में से एक-एक वैष्णव निगुणवारे को उद्धार इन वैष्णव द्वारा किये।'^३ ये आचार्यों के सरस सब सामर्थ्य सम्पन्न हैं। इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि आचार्य जी की सहायता एवं चौरासी

१ मङ्गलान पृ. ७४५ अल्प १२६

मदन मोहन सूरदास की नाम श्रुतला सुरी अठक
गान काल्य गुणवर्षि सुहर सहचरी अवतारी।

२. श्री २ वा ५ १।

३. श्री २० वा ५० १।

रुच जीवों का उद्धार करने के लिये इनका भवतार हुआ है। क्योंकि आचार्यों का धर्म एवं प्रयोजन वैष्णवों पर भी आरोपित होता है। यहाँ साम्प्रदायिक शीघ्रता का योग इष्टिगत होता है। क्योंकि स्थापित होते ही भक्तों को अपने पूर्व स्वरूप या आधिदैविक शरीर का ज्ञान हो जाता था। भागे चले कर परवर्ती बातों और उनके 'भाव-प्रकाश' में व्याप्त वैष्णव-भवतारों को महाकाव्यों एवं पुराणों में प्रचलित सामूहिक भवतारों की परम्परा में स्वीकार किया गया। श्रीकृष्ण-भवतार का काल ज्ञापर में होने के कारण इनके प्रायः ज्ञापर रूप और कल्पियुगी से ही रूप उचित होते हैं।

किन्तु परवर्ती बातों और उनके 'भाव-प्रकाशों' में व्याप्त वैष्णवों के जो पूर्व रूप या आधिदैविक रूप बतलाये गये हैं उनमें सत्ता-रूपों की अपेक्षा सखी-रूपों का आधिपत्य है। इस प्रकार बातों में सखी-भाव की उपासना का प्रावण्य सचित्र उचित होता है। सखी रूपों की दृष्टि से इनमें वैष्णवों के व्यक्तिगत और पारिवारिक जो रूप मिलते हैं। व्यक्तिगत वैष्णवों के सखी रूप प्रायः सचित्र बिकारे हैं। पर पारिवारिक रूप का एक उदाहरण 'चौरासी वैष्णव की बातों' में एक स्थल पर मिलता है। 'बातों के अनुसार कासी के सेठ पुरुषोत्तम दास का सारा परिवार पूर्व जन्म में अपने को किसी न किसी सखी का भवतार मानता है। इस प्रकार पुरुषोत्तम दास इन्दुकेका उनकी पुत्री दक्षिणती मोहिनी तथा उनके पुत्र गोपाल दास, गानकला हैं' जो

१ श्री० वे० वा पृ० २५ १ श्री आचार्य जी के यह-स्वरूप दाखल हैं। एक-एक जगह में सात-सात वर्ग हैं। ऐश्वर्य, शीर्ष बस श्री ज्ञान वैराग्य और सातवीं वर्गों। मत्स्यक वर्ग और मत्स्यक वर्ग को मिला कर १२०-८४ चौरासी वैष्णवों को समरेखा प्रस्तुत की गई है। वे वैष्णव आचार्य जी के वर्ग-स्वरूप अलौकिक, सर्व सामर्थ्य रूप माने गये हैं। वे चौरासीवैष्णव ८४ रामस, ८४ रामस और ८४ सात्विक मिलाकर २५२ वैष्णव के रूप में बातों में प्रकृत किये गये हैं।

२ श्री वे० वा पृ० २१५ की एक बातों में कहा गया है कि 'तब प्रभुदास ग्वाहे तब आचार्य जी नाम विवेचन कराये। तब प्रभुदास को अपने स्वरूप को और आचार्य जी के स्वरूप को ज्ञान भयो।'

३ यह सखान की बातों पृ० २६ में एक बातों के 'भाव प्रकाश' (१८वीं शती) में कहा गया है कि 'श्री प्रभुज की यह रीति है, जो जब बैकुण्ठ सी भूमि पर प्रगट होने की रणना करत हैं तब बैकुण्ठ वासी को भक्त हैं सो पहले भूमि पर प्रगट करत हैं ता पाछे जायु श्री मगवान् प्रकट होय भक्तन के संग लीला करत है।'

४ श्री वे० वा पृ० २, ४ में हारकदास परीख ने बातों के आचार पर इनके आधिदैविक रूपों की सूची प्रस्तुत की है जिसमें अठ्ठास वैष्णवों के सखी-रूप का ही परिचय मिलता है।

५ श्री० वे० वा पृ० १०।

स्वामिनी की की सेवा में भाग लिया करते हैं। व्यक्तिगत सत्ती-रूप के उदाहरण-स्वरूप बहाम-मतावल्मी मछों के अतिरिक्त निम्बाकं सम्प्रदाय के रीतिकालीन कवि बहामन्द का सत्ती नाम बहुगुनी मिळता है।^१ इनके पूर्ववर्ती कवि श्री मह श्री हिंदू सत्ती की के अवतार माने जाते हैं।^२ इस प्रकार सम्प्रदायों में प्रायः व्यक्तिगत सत्ती अवतारों के उल्लेख भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बालाओं एवं 'मच्छमाक' में कुछ मछों को पौराणिक अवतारों से भी सम्बद्ध किया गया है। 'महाभारत' एवं पुराणों के प्रसिद्ध विदुर नरसी मेहता के रूप में^३ और वृंदा, तुच्छी^४ के अवतार माने गए हैं। 'मच्छमाक' में गोवाकी की एक की मच्छ के श्रीकृष्ण से शरसह्य भाव रखने के कारण पद्मोदा का अवतार कहा गया है।^५ प्रसिद्ध मच्छ कवयित्री मीरा को गोपी का अवतार माना जाता है। 'मच्छमाक' या 'मियादास' की टीका में इन्हें गोपी का अवतार नहीं कहा गया है। परन्तु सरध गोपिक प्रेम प्रसंग ककिहगर्हि विद्यायो^६ का विद्यास गोपी-अवतार के रूप में सम्भव है। क्योंकि मीरा के पदों में 'पूर्व जन्म की गोपी' 'जन्म-जन्म भरतार और 'पूर्व जन्म की प्रीति जैसे उल्लेख दिये हैं।^७ अतएव भाव-साम्य के आधार पर इनके गोपी-अवतार की संभावना की जा सकती है।

श्रीकृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में स्वयं सत्ती-भाव का प्रभाव राम भक्ति सम्प्रदाय पर भी परोक्ष मात्रा में पड़ा। जिसके फलस्वरूप रामोपासक मछों के भी सत्ती-रूपों का आविर्भाव हुआ। 'रामाहयाम' में नामा की ने अपने गुण अग्रदास को 'सिय-सहचरी की सहा से अभिहित किया है।'^८ इसी

१ बहामन्द प्रभावती वाण्य ५ ७९

भोको नांव बहुगुनी मेरो भरसने ही सुन्दर खीरी।

२ श्री गुणक शतक मू० पृ० ४।

३ शो वा है वा० पृ० ४३९।

४ शो० वा है० वा० पृ० ४४८।

५ मच्छमाक पृ० ११५ प्रप्य ११५। 'गोवाली जन्मपौषके जगल कतोदा अवतरी।

६ मच्छमाक पृ० ७१३ प्रप्य ११५।

७ मीरा कुरह ५५ संप्रद ५ १९९ पद २ २।

(क) पूर्व जन्म की मे तो गोपिक्य बूक पड़ी मुझ माही।

(ख) वही पृ० १३२ पद २१२ मीरा की गिरावारी मिळवा, जन्म-जन्म भरतार।

(ग) वही पृ० ३३ पद ३३।

पूर्व जन्म की प्रीति ह्यारी मय नहीं जात निवारी।

८ रामाहयाम पृ० ३ स्त्री ७ 'नामा श्री गुणराम सहचर अग्र कृपाक की।

विदुर सचक विद्यास, बाल विदित सिव सहचरी ॥

पुस्तक के अंत में अनेक परवर्ती मछों के सही नाम दिये गये हैं।^१ इससे परवर्तीकाल में सही भाष के प्राच्य का अनुमान किया जा सकता है।

परवर्तीकाल में रामानन्द का क श्रावस सिष्यों को पौराणिक मछों का अवतार माना गया। श्री रूपकला जो की सूची के अनुसार विधाता-अमन्ता-मन्, सिवधामु सुबागन्ध, भारव-सुरसुरामन्, सनाकुमार गरहरियामन्, ममु पीपा प्रह्लाद ऊबेर बमक-भाबामन्, भीष्म-संत पंडि-यना बमराव-रैवास शुक्देव^२-गाकवान्ध और कपिल-योगामन् के अवतार पतकिये गये हैं।^३

सम्भवतः परवर्ती 'महिव्य पुराण' में पुनः अन्य निर्गुण मार्गी सत्रों को रामानन्द का सिष्य कहा गया है और साथ ही पौराणिक देवताओं और अवतारों को बसुओं के रूप में मानकर इनके साथ विरक्षण अवतारवादी सम्बन्ध स्थापित किया गया है। 'महिव्य पुराण' के अनुसार संत शिकोचन कुबेर वसु के^४, भामदेव द्वितीय वसु बल^५ के, रकण या रका^६—तृतीय वसु अष्टि के^७ बका-रका का भाई^८ चतुर्थ वसु बापु के^९ और गरसी मेहता-पंचम वसु प्रुव के^{१०} अवतार माने गये हैं। यहाँ प्रह्लाद रुद्र और विष्णु के अवतार अन्वया पूर्वासा और वृत्ताशेष को सेप तीन अष्टवसुओं में ग्रहण किया गया है^{११} और पीपा, भाबक और नित्यामन् क्रमसा इन तीनों के अवतार भी बतलाए गए हैं।^{१२}

इन तथ्यों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुराणों में त्रिम प्रकार विशिष मत और सगणियों के प्रवर्तक किसी न किसी रूप में पौराणिक पद्धति (मिथिक स्टाइल) से अवतारवाद में समाविष्ट होते रहे हैं प्रायः तब अवतारीकरण की प्रकृति को देखते हुये मध्यकाल में भी उस परम्परा के प्रचलन का मान होता है।

पौराणिक पद्धति का प्रयोग करने से अभिप्राय यह है कि पुराणों के अति-

१ रामाहवाम पृ० ४८

२ रामरतिप्रबन्धी पृ० १३७ विवादास जी शुक्देव के अवतार कहे गये हैं।

३ मत्स्यक पृ० २८९-२८७ अठ सूचों के अतिरिक्त पद्यावती और सरसरी पद्या का अवतार कही गई है।

४ महिव्य पुराण ३ प्रतिपद्य, २५ अ ३४-३५ महिव्य पु में कृष्ण वैजन्ध का उल्लेख हुआ है। इस आधार पर इस अवतारीकरण की प्रकृति का २०वीं शती के अंत में वा २२वीं के मारम्भ तक अनुमान किया जा सकता है।

५ महिव्य पु ३, १९ ४९-५१।

६ मत्स्यक, पृ ३३ अथवा ९७ में रकण रंका नाम से उल्लेख हुआ है।

७ महिव्य पु० ३ ४ १३, ७८, ७९।

८ महिव्य पु ३, १७, ३९, ३७।

९ महिव्य पु० ३ १७, ३९, ३९।

१० महिव्य पु० ३ १७, ८१, ८९।

११ महिव्य पु ३, १७, ८४, ८८।

रिक्त महाकाव्यों से लेकर तत्कालीन युग के साहित्य तक अवतारीकरण की एक स्वतंत्र आकांक्षारिक परम्परा भी प्रचलित रही है जिसके विकास में उपमा, रूपक आदि विभिन्न भङ्गकारों का बड़ा हाथ रहा है। क्योंकि विभिन्न स्थानों में उद्धृत कतिपय अवतारों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ वीरान्तिक परम्परा में कल्पनिक कथाओं और वीरान्तिक अवतारी पुरुषों या देवताओं का आचार मुख्य रूप से ग्रहण किया जाता है वहीं साहित्यिक या आकांक्षारिक परम्परा में नाम और कर्म-समन्वय को विरोध रूप से आचार माना गया है। नाम समन्वय के कारण रामानन्द राम के और कृष्ण चैतन्य कृष्ण के अवतार हुये। इसी प्रकार कार्य साम्य के आचार पर वाक्यमैत्री तुलसी हुये। किन्तु वीरान्तिक पद्धति में इस प्रकार के किसी साम्य को वहीं अपनाया गया है। फिर भी समन्वय-समन्वय पर दोनों पद्धतियों का परस्पर आदान प्रदान और समन्वय अधिक मात्रा में होता रहा है।

भागवत

जिस प्रकार अवतार-कार्यों के कर्ता एवं उपादान के रूप में अर्चा आचार्य एवं भक्त आदि के अवतरण की परम्परा रही है या ज्ञानमार्गी शाखा में प्रचलित सम्भवतः ज्ञानावतार के सदा शूरदास ने 'भागवत' का आविर्भाव माना है। उनके अनुसार वेदों के विभाजन और अष्टादश पुराणों की रचना के पश्चात् क्रमशः भगवान् और भद्रा की परम्परा में आते हुये प्लुन्दरकोपी भागवत-ज्ञान को नारद ने हरि-अवतार व्यास से कहा।^१ इस भागवत ज्ञान के अवतरण का प्रयोजन भी उद्धार कार्य है।^२ जो पूर्णतः साम्प्रदायिक है। क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्म आदि आचार्य अपने शिष्यों को शुद्ध कर देण्ड बजाते हैं^३ उसी प्रकार 'भागवत भी सामान्य रूप से सभी का उद्धार करता है।'^४

१ सूरसागर जी० १ पृ० ७५ पद ११ ।

हाथ सदा एक ही धरं, कठिनुग लन संवन रहि धरं ।

सौक क्यन तुलन की रही, कठि-मरवाय नार धरि करी ॥

तने हरि हरि व्यास अवतार । श्री मंदिता वेद विचार ।

बहुनि पुरान अठारह किबै । ये तक सति न नारं दिये ।

तव नारद जिन्हें किग नारं । नारि इन्को कही सलुकारं ।

वे प्रथम सैं करे जगदान । ज्यदा मोसैं करे करान ।

२ सूरसागर जी० १ पृ० ७५ पद १३ ।

३ श्री भागवत सुने जो धोरं । ताची हरि वर प्राप्ति होरं ।

सूरसागर जी० १ पृ० ७५ पद ११ ।

४ सूरसागर जी० १ पृ० ७५ पद १२०

अंध कीच म्हीतें न रहारं । ताची साली में सुनि नार ।

शेते लीहा अंचन होर व्यास, धरं पैरी गनि लीर ।

गंगा

भागीरथ द्वारा अवतरित पौराणिक चरणाँ के आचार पर तत्कालीन कवियों ने गंगा का आधिर्भाव अवतारी कार्यों के निमित्त माना है। सूरदास के पदों के अनुसार गंगा महा के तप के फलस्वरूप सन्तों को सुख प्रदान करने के लिये अवतीर्ण हुई।^१ कदगामय विष्णु ने सृष्टि के दित एवं समुच्चों को मुक्त करन के लिये गंगा का प्रकट किया।^२ गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार गंगा सृष्टि का मार हरण करने वाली तथा भक्तिरुता को निरन्तर विकसित करने वाली है।^३ गंगा की का अवतरण गङ्गापर कवि के पदों के अनुसार भी विश्व की मुक्ति के निमित्त हुआ। पापी भीर दुष्ट अशामिष्ठ, यमिष्ठ ने इनकी कृपा से परम गति प्राप्त की।^४ उक्त पंक्ति में इन्होंने विष्णु से सम्बद्ध सन्तों को गंगा से समन्वित किया है तथा इनके उपास्य रूप की चर्चा करते हुये कहा है कि गंगा का नाम लेने वृक्ष पत्थान धरते पर तरकाट मुक्ति मिलती है।^५ गंगा का उक्त रूप पौराणिक परम्परा से भिन्न नहीं है क्योंकि उनमें इनके अवतरण की जो कथा मिलती है उसमें सगर के साठ सहस्र पुत्रों का उद्धार ही प्रमुख प्रयोजन रहा है।^६ अतः विष्णु यदि भू-भार हारते हैं तो उनका चरणाँ से आधिर्भाव गंगा तुलसीदास के सन्तों में अवधार-संज्ञन करती है।

यमुना

गंगा के सरस यमुना का अवतरित रूप भी तत्कालीन कवियों ने प्रस्तुत किया है। मन्दास कहते हैं—यमुना जी ने सन्तों पर बहुत कृपा की कि इन्होंने अपना नित्यनाम झाड़कर पृथ्वीतल पर आकर विद्यमान किया। यहाँ इनकी प्रकट कीया स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वे सभी को अद्भुत दिव्य शरीर

१. सूरदास ना० प्र० स० जी० १ पृ० ११० पद ४५९
परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथि मन्म कर हैम ।
सूरदास विवादा के तप प्रपट भर संगति तुल्य हैम प्र
२. सूरदास ना० प्र० स० जी० १ पृ० २८९ पद ४५५
का दित प्रपट करो कस्तामव, अमतिन की गति हैनी ।
३. तुलसीदास ना० प्र० स० ना० १ पृ० १८७, पद १७
पुरजन्म बूझेबहार स्तमित सति बरल बार भंजन करमाण, मक्ति करन बाकिय ।
४. राम कल्याण जी० १ पृ० १४९, पद २
जी गंगा अन्तारन को मार ।
बापी दुष्ट अशामिष्ठ यमिष्ठ पतिन परम यति बार ।
५. राम कल्याण जी० १ पृ० १४८ पद २
नाम लेन तनु ध्यान करन है तारत बारन बार ।
६. ना० ९, ९, ११ ।

प्रदान कर परम परमार्थ कर रही हैं।' सक्त पद में यमुना के सामने घाम विशेष से अवतीर्ण होने का स्पष्ट उल्लेख है। दूसरे पद में नन्ददास ने यमुना के अवतार का प्रबोधन भक्तों के प्रति प्रेम साधा है। उनके पद के अनुसार सक्त के प्रेम के कारण ही यमुना जी का आविर्भाव हुआ। सक्त की चित्तवृत्ति को समझ कर इतन बेच से जागुर होकर वे मूतक पर भाई। जिसके मन में जैसी कामना थी उसे पूरा किया। भगवान् श्रीकृष्ण भी उसी पर हीसते हैं जो यमुना जी का पया गाता है।^१ मन मोहन श्री कृष्ण ने तो सभी का मन मोह दिया परन्तु 'यमुना जी उनका मन भी हर लेती हैं। वे इनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। इस प्रकार श्रीकृष्ण के साथ ही यमुना जी ने भक्तों के निमित्त अवतार धारण किया है।^२ परमात्मदास ने गोपियों के सख्त मानवीकृत यमुना और श्रीकृष्ण के साहचर्य का^३ वर्णन किया है। इनके पदों में यमुना के गोपी वा राधा-रूप का भाव होता है जिनके साहचर्य के किये श्रीकृष्ण भी आकृष्ट रहते हैं। 'चौरासी बैष्णव का वार्ता में यमुना जी के सखी नाम की भी चर्चा हुई है। जीका में उस सखी का नाम 'कृष्णवैसखि' था। उसी एक पर उन्हें विदुर जी की जी का अवतार कहा गया।^४ उपर्युक्त

१ मं घ (ना प्र स) पृ १२८ पर १४

सक्त पर करी कृपा श्री यमुना के देती।

छोड़ि निज नाम विनाम मूतक टिनो प्रवट जीका दिखारि हो तेसी।

परम परमात्म करत है सनत को हैनि भक्तुन रूप जाप जेसी ०

२ पं० घन्व (ना प्र स) पृ १२९ पर १०

नेह धारने यमुना के प्रथम चार।

सक्त को चित्त वृत्ति सब मन के हीं ता विरें अठि ही जागुर चार।

बैसी उनके मन हठी दृष्टा ताको तेसी साथ जो पुकारि ॥

नंददास प्रभु तारि ठीसत यमुना के के अस को चार।

३ राम कवचम जी २ पृ ११ पर ११

कीन पे जान यमुनाको बरणी।

सब दिन को मन मोहन हरन सौ दिव को मन प को हरणी।

इन विना एक क्षण रहे न जीवन अम्ब ब्रह्मचन्द्र मन जानंद करणी ०

श्रीविदुक्त विरिचरन सहित जाप सक्त के इन अवतार चरणी।

४ राम कवचम जी २ पृ १०० पर ४१, ४२।

यमुना के साथ अब फिरत है नाथ।

--- --- --- ---

यमुने विप को बस तुम कीमे।

५. चौ० २ वा पृ० ५० ती वाते श्री यमुना जी को सखी है।

जीका में इनको नाम कृष्णवैसखि है ०

प्रसंगों के आधार पर यमुना के गोपी-रूप का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु गंगा की भवेदा यमुना क भवतार में उपास्य एवं उद्धारक रूपों में साम्य होते हुए भी रसिक सम्प्रदाय या सखी सम्प्रदाय का प्रभाव उचित होता है। क्योंकि श्रीकृष्ण यमुना के बग में उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार व राधा के बग में रसिकों में मान्य हैं।^१

उमा

'राम-चरित मानस में वर्णित जमक प्रासंगिक कथाओं में उमा क पुनर्जन्म या शिव विवाह की कथा को स्थान मिला है। इस कथा के अनुसार उमा (जगदम्बा) क भवतार का मुख्य प्रयोजन उमा-शिव से उत्पन्न पुत्र द्वारा देव-असुर नारक असुर का वध है।^२ तुलसीदास ने इस क भवतार को लीलात्मक बतलाते हुए कहा है कि ये शक्ति, ज्ञानादि, अविनाशर तथा सर्वैव सदा शिव की व्यर्जितांगी हैं। शिव की उत्पत्ति पाकन और संहार करने वाली देवी जगन्मा होकर भी स्वेष्या से लीला-वपु धारण करती हैं।^३

उमा के जिस रूप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने किया है वह शिव से ही सम्बद्ध मात्र उमा का रूप नहीं है अपितु साखी के प्रभाव से उमा ही काकी दुर्गा आदि विविध देवियों के रूप में अवतरित होकर स्वतन्त्र रूप से भी पूजी जाने लगी थीं। इनके काली और दुर्गा विग्रह का लत्काळीय गीतों में उतना ही भक्तिक प्रचार या वितना कि राम कृष्ण या शिव के रूपों का हुआ था। इसी से उमा स्वतंत्र विग्रह शक्ति क रूप में सृष्टि, पाकन और संहार करने वाली तथा जगन्मा होते हुए भी स्वेष्या से लीलावतार धारण

सदा इन्द्र के लक्ष्य को नगैस रहती।

श्री शायर में विदुर जी की खी वह लौटी हती ॥

१ (क) सुगुल छतक पृ ९ शी १०

कुञ्ज महल सुप्र पुञ्ज में भोजन विविध रसक।

श्री राधा रसवद यमै बें मग काल गोपाक ॥

(ख) देवद बानी २ कि० पृ ५४, २

जग ज्ञान प्रति आराधन रहती। राधा नाम इमान तव कइती ॥

२ रा० मा पृ ४२ शी० ८२।

सब सन कहा दुन्दर विनि दसुज निधन तव शेर।

संयु सुख संयुन मुन यहि जीने रव शेर ॥

३ रा मा पृ ५४

जना मनारि सहिज भविनप्रतिनि। सदा संयु अर्थय निवासिनि।

जग संभव शान्त कव कारिनि। निज रथ्या लीला वपु करिनि।

करने पाकी हैं। इस प्रकार आळोष्य काक में उमा के भवतार भवतारी और उपास्य तीनों रूपों का प्रचार रहा है। प्रथम भवतार-रूप में उमा के उस पौराणिक रूप को ठिपा जाता है जिसके अनुसार वे पृथ्वी प्रजापति की पुत्री सती नाम से अवतरित होती हैं। इस कथा के अनुसार सती-शिव का सर्वप्रथम पुनर्क-रूप दृष्टिगत होता है। ऐसा लगता है कि विष्णु-रुक्मी के समान सती और शिव का भी स्वतंत्र रूप से ही विक्रम हुआ। अत्यन्त लोकप्रिय धार्मिक प्रवृत्तियों के समन्वय के कारण सती और शिव का भी शिव विवाह के रूप में समन्वय हुआ। पुनः सती के यज्ञाग्नि में आहुत होने के पश्चात् इनका दूसरा भवतार मैमा और हिमाक्य की पुनर्क-रूप में होता है। यहाँ शिव-पार्वती-विवाह में आर्य देवों का दिव्य रूप तथा अर्वाच्य देवों का भयंकर रूप शक्ति के माध्यम से समन्वयित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट प्रतिदिग्भूत होता है कि आळोष्य काक में वैष्णव दैव और शक्त के तीनों धार्मिक लोकप्रिय और अत्यधिक चतुर-व्यापी सम्प्रदाय के अन्तर्गत उमा शक्ति के अवतरित रूपों के द्वारा समन्वय किया गया। इनकी भवतार परम्परा में एक ओर तो सती और पार्वती रूप प्रचलित हुए और उपास्य भवतारी होने पर बुर्गा और कर्की आदि आर्षेतर देवियों आर्षों में गृहीत होने पर इनके भवतार-रूप में प्रचलित हुईं।

इनुमान

सामूहिक भवतारों में विष्णु के साथ उनके सहायक देवों के भवतार का उल्लेख किया जा चुका है। बाह्यीक 'अध्यात्म रामायण' एवं 'रामचरित-मानस' आदि प्राचीन और उत्कालीन महाकाव्यों में इनुमान पवन या मरुत के भवतार माने गये हैं। परन्तु पवन भवतार होने के अतिरिक्त इनुमन्नाटक में इन्हें

१ (क) वा० रा० २, १७ १६

मास्तुत्वात्मका श्रीमातृइनुमावाम वानरः । वज्रसंज्ञनमोदेनो वैमतेवसमी जवे ॥

(ग) अ० रा० ४ १ १७

मास्तुत्वात्मैव सामर्थ्यं वसुधाप महावन् ।

त्वं साक्षात्पुनतपो वासुदेवपराक्रमः ॥

(घ) रा० मा० ५० ४६४

मास्तुत्वात्मैव मन्त्रि इनुमाना । वाम मोर तुनु रूपप्रिवावा ।

(च) मूरसंगार ४ १ पद ५१६

अर्धनि को तुन वैसरि के कुन् पवन एवम रूपवासी गान ।

२. इनुमन्नाटक ५ २६६ वचन पून तोको का वरुं राम नाम तोही के ररुं ।

प्रायः शिव का अवतार कहा गया है।^१ गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'विनय पत्रिका' के स्तुति-पदों में इन्हें उद्गावतार मामा है।^२

इस प्रकार हनुमान मध्ययुग में रुद्र-पवन समन्वित अवतार हैं। परन्तु जहाँ तक हनुमान का सम्बन्ध केवल शिव से है शिव के प्रसिद्ध अद्वाइस योगी अवतारों में हनुमान का नाम नहीं है।^३ दूसरी ओर महाकाव्यों की परम्परा में इन्हें अधिकतर पवन अवतार के रूप में ही अभिहित किया गया है। इससे विदित होता है कि शिव-विष्णु के समन्वय के प्रयत्न में हनुमान को शिव का अवतार मानकर शिव और विष्णु के अवतारी कार्यों में परस्पर सहायता की मायना का विक्रम किया गया है। तारकासुर के वध के निमित्त उमा-शिव के विवाह से भी इसकी पुष्टि होती है। फिर भी हनुमान के उक्त रूपों में पौराणिक तर्कों का अयेष्ट योग रहा है। क्योंकि मध्ययुग में हनुमत सम्प्रदाय एवं उपास्य रूप का प्रचार होने पर कतिपय भक्तों को इनके अवतार के रूप में मामा गया।^४ इसके अतिरिक्त आर्कंकारिक परम्परा में सम्भवतः अधिक बलवान होने के कारण चैतन्य सम्प्रदाय के सुरारी गुप्त को हनुमान का अवतार मामा गया।^५

इससे स्पष्ट है कि विष्णु भक्त होने के कारण ही हनुमान शिव के अवतार मान गए जन्मया 'बाहमीकि रामायण' जैसे प्राचीन ग्रन्थों में इन्हें वैदिक देवता पवन का अवतार मामा गया है। परन्तु विचित्रता तो यह है कि अपने विशुद्ध वैदिक रूप में शिव को उस रुद्र का ही एक पक्षीय रहा है जो वैदिक मंत्रों में पवन के एक प्रबल प्रभजन रूप का बोधक रहा है। अतः पवन और रुद्र-शिव दोनों मूल में तो एक ही ध्यान पकते हैं परन्तु आलोच्यकाल में पवन कबल वैदिक देवता मात्र रह गये और शिव शैव-वैष्णव सम्प्रदायों के समन्वय के कठस्वरूप राम-कृष्ण-साहित्य में राम के परम भक्तों के रूप में मान्य हुए।

१ (क) हनुमत्पाठक ४० पृ० २७५

साथी कहीं जो तुमवतार है उमापति को
तो तो ही मगल टोछी नापी पानी पीन है।

(घ) हनुमत्पाठक ५० ३६३, वृ अवतार रुद्र को बाही इन काव्यों अथ लंका दारी।

२ तु० धं की २ पृ० ३९० विनय पत्रिका पृ २५

अबनि रनधीर गुपीर विठ देवमनि रुद्र अवतार संसार पाता।

३ किम सुराय अख्याव ७ में २८ अवतारों की सूची दृश्य।

४ इसी जन्मया के मूल हीर्षिक में रामदास नामादास आदि हनुमान के अवतार वक्तव्ये आ चुके हैं।

५ वैष्णव देव षट् मूर्तमेंट नोट ५० २७ में।

परन्तु मेरी दृष्टि में शिव का राम-रूपा या राम भक्ति से सम्बन्ध होने का ही अनुमानाभिमत कारण विहित होते हैं। उनमें पहला है वृषिणी दीर्घों में रामावत सम्प्रदाय का प्रभाव और दूसरा है शिव का उन जागमों और तंत्रों से सम्बन्ध जिनमें उमा और शिव का वार्ताकारक का माध्यम से पाँचरात्र-पूजा-पद्धतियों या मंत्रात्मक और तत्रात्मक साहित्य का प्रवर्तन होता रहा है। इनमें प्रपात्य विग्रह राम से सम्बन्धित पूजा या मंत्रों का विलेप कर्जत तथा उनके उपनिषद् ब्रह्म से सम्बन्ध रूपों का व्यापक प्रसार होता रहा है। इस प्रकार के ग्रन्थ रामावत या अन्य रैज्यक सम्प्रदायों में भी 'सहिता' के रूप में अधिक प्रचलित रहे हैं। जिन्हें अभी तक जागम या पाँचरात्र ग्रन्थों की परम्परा में भी न मान कर केवल 'रामायण' की ही परम्परा में माना जाता रहा है।

अतः अनुमान उस शिव के भी अवतार विहित होते हैं जो जागम या तत्र साहित्य में वार्ताकार के रूप में प्रकाश हैं। किंतु आलोचकाल में अनुमान के अवतारों का मूल-अवतार-रूप में विक्रम बल और हृष्ट साम्य के आधार पर हुआ। सुरारी गुप्ता और कामादास के उदाहरणों से यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है।

राजद्रपारी काव्यों में राजाओं का अवतारत्व

सामूहिक अवतारवाद की प्रवृत्तियों पर विचार करते समय मत्स्यपुराण साहित्य में प्रचलित पूषीराज, परमाक आदि राजाओं के अवतारत्व पर विचार किया जा चुका है। उनके अवतारीकरण में भी पौराणिक और आर्थ-कारिक दोनों पद्धतियों का विलेप योग रहा है। परन्तु आजकल 'पूषीराज रासो और 'परमाक रासो' की जो प्रतियों उपलब्ध हैं वे उन राजाओं के स्वयंका हीन कवियों की रचना कही जाती हुई भी प्रसिद्ध ग्रंथों से भरी पड़ी हैं। प्रायः इन्हीं ग्रंथों में विविध राजाओं का अवतारीकरण आत्यधिक मात्रा में हुआ है। 'पूषीराज रामो में एक ओर तो पूषीराज कर्ण के अवतार रूप बड़े गये हैं और अन्य स्थलों पर प्रसगानुरूप हृष्ट^१ और कामदेव^२ के अवतार-रूप

१ पूषीराज रामो मा प्र० म० पृ० ११८ १ १ १२८।

प्रधीराज बटुमान पदु। पन्थे करन भवतार क्वदि ॥

सर्वेस मूर पूरुं सुमग। उदर पिभूय भवतार क्वदि ॥

२ पूषीराज रामो ना प्र स पृ ६२२ ९, १ २५।

महा हृष्ट भवतार बटुवाने। सर्व भविराज मूर सुमारे ॥

३ पूषीराज रामो मा प्र० स पृ ६२२ १ २० ६ २२।

कामदेव भवतार दुभा। सुत्र म्येमेर बर ॥

में वर्णित हुए हैं। 'परमात्त रामो' में आह्ला ऊर्ध्व क्रमसा बछराम और कृष्ण के अघतार कहे राये हैं। इनका अघतारीकरण भी आठकारिक रूपों के पौराणीकरण के फलस्वरूप हुआ है।^१

राजाओं के अघतारत्व की यह परम्परा प्राचीनकाल से ही वैधी राज उत्पत्ति की साम्यता के अनुसार राजाओं में वैवाक्य की धारणा का विकास करती रही है।^२ 'रामायण और 'महाभारत' ज्ञानो महाकाव्यों के राम और कृष्ण या अन्य पात्रों के वैधीकरण में इस प्रवृत्ति का विशेष योग रहा है। मार्क्समीन सत्ता से मुक्त होने के कारण रामाओं में वैदिक श्रितिय^३ देवनाओं के कार्यों और बर्णों का समावेश किया गया।^४ कालांतर में एकधरवाद का विकास

१ (क) परमात्त रामो पृ० ७ आन्ध्रिक।

बलि सक्ति अघतार रूप अनुसार है। प्रगत बनाकर अष्ट उक्त अघतार है।

(घ) परमात्त रामो पृ० ६४ पौराणिक

गहिरमार धरैक को मुनिबौ नंस अघार।

बलि सक्ति अघ अघतारी सो कवि कल करतार।

(ग) नविम्भ पुरान (अकट्टेयवर प्रेस) पृ० २८४-२९६ शृतीय सख ५-१४ में ऐतिहासिक एवं पौराणिक देवनाओं के साथ उक्त इन राजाओं पर बीरो के अघतारत्व का उल्लेख हुआ है।

२ राजाओं के वैधीकरण की परम्परा वैदिक काल में पूर्ण अक्षिण मही शैली परन्तु उस काल में प्रचलित राम्बाभिकेड में अनेक देवनाओं के बर्णों और शुभों का आरोप किया जाने लगा था। 'हिन्दू पौष्टिटी' पृ० १०६ के अनुसार स० भा ५, ३, १ में सूर्य, अग्नि, सोम, बृहस्पति, इन्द्र, रत्न, मित्र और वरुण के बर्णों का आरोप किया गया है। साथ ही 'मन्वन्विर' १, ८, ९, में राधा, कुन्द, मुञ्जरी, वैष्णु सिक्किरवेण १, ९ के अनुसार राधा को देवों के सनतुस्य कहा गया अन्वैकर 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति' पृ० ५६ के अनुसार स० ४, ४२, ९९ में पुनः पुनः अग्निव एवं अन्वै से २०, १२७, ७ में परीक्षित मन्त्रों में देवना माने गये हैं। स० भा ७, १ के अनुसार राजाओं को इन्द्र की उपाधि दी जाने लगी थी

३ स० भा ७, १ में इन्द्र, वरुण, सोम, रत्न, दीप, पद्म, शृष्ण और इन्द्रादि श्रितिय देवना कहे गये हैं।

४ 'विन्दु सृष्टि' ७, ४ में राजा इन्द्र, वायु, वन, सूर्य, अग्नि, वरुण, अम्भु, भार, कुबेर इन आठ दिग्पात्रों के मित्र अन्त्र से निर्मित कहा गया है। इस दृष्टि से स० भा १, १, १६-१८ में राम को विष्णु चन्द्रमा आदि के शुभों से अर्पित किया गया है और पुनः स० भा १, ७ में अग्नि, इन्द्र, सोम, वन और वरुण इन पाँच देवनाओं के स्वकृत तथा प्रभाव पराक्रम, सौम्य, इन्द्र एवं प्रसन्नता आदि शुभों को आरोपित किया गया है।

होने पर राजाओं को विष्णु का अंशावतार माना गया^१ 'देवी भागवत' में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो विष्णु का अंश नहीं वह राजा नहीं हो सकता।^२

मध्यकाल में राम और कृष्ण आदि के सम्प्रदायीकरण होने के फलस्वरूप उपास्य रूप का अधिक प्रसार हुआ परन्तु राज दरबारी कवियों ने तरकाशील राजाओं को भी किसी न किसी प्रकार के अवतारत्व से अभिहित किया। कसवदास ने 'बीर सिंह देव चरित' में बीरसिंह को ईश्वर का अंशावतार कहा है।^३ इसी प्रकार तानसेन ने अपने आश्रयदाता मुगल सम्राट अकबर के अगले अवतारी रूप का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि महावकी अकबर ईश्वरावतार के रूप में सिंहासन पर बैठे हैं। देस-देस में रामा उनकी सेवा में प्रस्तुत रहते हैं और मुर्खपणों में अपने उपहार अर्पित करते हैं। जो भी खाता है वही मनोभिच्छिन्न फल पाता है। इस प्रकार गुणिजन की कार्य सिद्धि एवं उनके भावर करने के किये करता से अकबर का अवतार धारण किया है।^४ उक्त पद में अकबर को अवतार कहने के साथ-साथ मध्यकाल में सर्वाधिक प्रचलित उपास्य प्रयोजन के समानान्तर एक विभिन्न दरबारी प्रयोजन का भी संकेत मिलता है।

इस प्रकार मध्ययुगीन साहित्य में विष्णु के अवतारों एवं उनके उपास्य रूपों के अतिरिक्त उक्त विविध रूपों के उल्लेख हुये हैं। इनके विकास में यह स्पष्ट हो चुका है कि इनके अवतारीकरण में पौराणिक और आळंकारिक दो प्रवृत्तियों का मुख्य योग रहा है। यदि पौराणिक पद्धति यहाँ परम्परा सम्भित पृष्ठभूमि प्रदान करती है तो उपमा रूपक आदि अलंकार उसकी अभिव्यक्ति

१ वि. पु. १. १३. २२-२२ और ४. २४. ११९, १२१ में राजा विष्णु के अंशावतार माने गये हैं। 'कविसिद्ध पत्र' पृ. १ में 'वासुदेवान के अनुसार अकबरी प्रसिद्ध युग में विष्णु के अंशावतार-रूप में अम्म कहे हैं।

२ देवी भागवत स्कं. ६० अध्याय १

३ 'ना देवादेवात् न विष्णुः पृथ्वी पतिः'।

४ बीरसिंह देव चरित पृ. १, १

बीरसिंह मृगसिंह मही मंह महाराज यनि।

गहरवार कुम्हलस इस अंशावतार यनि व

५ राम कल्पद्रुम जी० १ पृ० १५२ पद १०।

तन्म वेदो महावकी रदधर होव अवतार।

देव देव सेवा करन हैं बरसत कंयन वार ॥

आर भावन मोरें कल्प पावन मन रज्जु बुरन जावार।

तानसेन कई छार अकालीन अकबर मुभी जनन के काव करन को कियो करतार।

को सहज और सुगम बनाते हैं। प्रारम्भ में कवियों को यह देर नहीं छाती कि वह श्रुता में कुर्योधन वीरता में इन्द्र या हनुमान तथा सुन्दरता में कामदेव हैं। इसी प्रकार सेठों को कुबेर से तथा रात्रियों और सुन्दरियों को नप्सराओं से स्वरूपित करना आलंकारिक अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सुगम प्रयोग है। किन्तु काळांतर में काव्य-रुचि के रूप में गृहीत होते ही इनका केवल अवतारीकरण ही नहीं होता अपितु उसकी दृष्टि में अनेक प्रकार की कथाओं का भी निर्माण होता है।

इस दृष्टि से हमें एव अन्य महाकाव्यों में कतिपय पात्रों के अवतारीकरण का उल्लेख हो चुका है। पर मध्ययुग में इसके साथ ही एक साम्प्रदायिक परम्परा के भी वर्तन होते हैं। इस परम्परा में गुरु इष्टदेव के रूप में पूज्य होते ही अवतार और अवतारी दोनों रूपों में प्रस्तुत रहते हैं। माघ सम्प्रदाय में गोरक्षनाथ तथा संतों में कबीरदास के अवतार और अवतारी रूपों का यथा स्थान उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त सगुण भक्ति सम्प्रदायों में माघ पौराणिक एव महाकाव्यों के अवतार एक वार अवतारी वा उपास्य रूप में गृहीत होते हैं और दूसरी ओर उनमें सामूहिक वायुच पापद या उनसे सम्बद्ध प्रायः सभी का सामूहिक अवतार प्रकल्पित हुआ करता है। इन साम्प्रदायिक अवतारीकरण की प्रवृत्तियों में आलंकारिक पद्धति की अपेक्षा पौराणिक पद्धति का अधिक योग रहा है। क्योंकि विभिन्न सम्प्रदायों में अपनी विभिन्न मान्यताओं का कौह प्राचीन होने के कारण उनमें स्वतंत्र आलंकारिक पद्धति उतनी सज्जम नहीं हो सकी थी जितनी कि पौराणिक पद्धति या उसकी कल्पनात्मक कथायें।

सामान्य निष्कर्ष

पिछले चौदह अध्यायों में अवतारवाद के विभिन्न रूपों एवं प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है उनका साहित्य एव सम्प्रदायगत वैयर्थ्य होने के कारण उन्हें किसी एक मान घात में गुम्फित करना असंगत प्रतीत होता है। क्योंकि इनमें सिद्ध, जैन नाथ सन्त और सूफी सिद्धांतः अपने को अवतारवादी नहीं मानते। अतः बिरुद्धों के द्वारा उपलब्ध उनमें निहित अवतारवादी तर्कों का ही निरूपण किया गया है।

छिद्र भी उपास्य की दृष्टि से लोगों से लेकर 'भक्तमास के गच्छों तक सभी में आन्तरिक एकता कल्पित होती है। प्रायः सभी उपास्यों में एकत्ररवादी और अवतारवादी दोनों तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में मिलते हैं। इस आधार पर

मध्यकाशीय अवतारवाद को उपास्य रूपों का अवतारवाद कहा जा सकता है। बुद्ध और बौद्धसमूह त्रिपिटि महापुराण, श्री गाय त्रिगुण संत, वैशम्पय और सूफी मर्तक अपने सम्प्रदायों में उपास्य होने के साथ सगुणोपासकों के साथ सगुण तत्त्वों के साथ-साथ अवतारवादी तत्त्वों से भी युक्त हैं। इस्लाम से प्रभावित सूफी कवियों ने अल्लाह और वैशम्पय मुहम्मद साहब के जिन रूपों का प्रहण किया है वे तत्काशीय सगुण उपासकों से अत्यधिक सम्यक् रखते हैं। इसके अतिरिक्त सगुण साहित्य में राम और कृष्ण ही नहीं अर्जुन-अर्चा आचार्य और भक्तों के उपास्य रूपों का भी व्यापक प्रचार हुआ। इस प्रकार सगुण साहित्य के इन पंथों उपासकों में तत्काशीय अवतारवाद के रक्षात्मक, स्वीकारात्मक और रसात्मक प्रयोजनों का सखिबद्ध मध्यकाशीय सगुण भक्त कवियों में समान रूप से हुआ।

जिस प्रकार वैदिक बहुदेववाद की चरमसीमा उपनिषद् भ्रष्ट तक पहुँच गई उसी प्रकार प्रारम्भ में राम कृष्ण प्रभृति अवतार देव-पत्नीय विष्णु के असावतार मात्र थे। इस क्रम तक उनके अवतार का एकपक्षीय प्रयोजन देव-सन्तुष्टों का विनाश एवं मृत्यु हरण करना था। वे अभी तक पूर्ण भ्रष्ट के स्वरूप नहीं माने गये थे। इस असावतार की प्रभृति के विकास में आकाशिक और पौराणिक उपासकों का विशेष योग मिला। अन्ततः काकान्तर में महाकर्मों का वैष्णवीकरण होने पर विष्णु के साथ ही राम और कृष्ण भी पूज्य परब्रह्म के बोधक हुए। ऐतिहासिक तत्त्वों के आधार पर श्रीकृष्ण पहले और राम काकान्तर में सम्प्रदायों में गृहीत होकर उपास्यरूप में प्रचलित हुए। सम्प्रदायों की भक्ति-साधना में उपनिषदों की विन्ताचारा का जो जो प्रवेश होता गया त्यों त्यों राम और कृष्ण भी बसक बंस या अवतार मात्र न रहकर पूर्ण भ्रष्ट और सब शक्तिमान ईश्वर माने गये। अन्ततः भ्रष्ट का अतिमान विन्तान उपनिषद् युग में हुआ मध्ययुग में भक्तों ने अपने इहद्वैत अवतारों का उन्हीं रूपों में विन्तान किया। इस काल में ईश्वर के एकेश्वरवादी, बहुदेववादी सर्वशक्तिमान् निराकार विराट, पुरुषोत्तम, सर्वेश्वर या सर्वोत्तमवादी रूपों को पश्चिम में प्रचलित 'पर उपास्य के विभिन्न रूपों के साथ-साथ समाहित किया गया।

इन प्रयोजनों की विनोयता यह है कि युग-युग में वे बदलते रहते हैं। उनकी आवश्यकता के अनुसार अवतरित होने वाले ईश्वर को भी अपना रूप बदलना पड़ता है। इन युगांतरूप परिवर्तन में समग्रपथा का बीज भी विद्यमान है क्योंकि विभिन्न युगों में वह अवतरित हो या न हो परन्तु अवतार

वाद की समन्वयवादी प्रवृत्ति विभिन्न युगों एवं विभिन्न मतों के चिन्तकों या प्रवर्तकों को अपने में अवश्य समाविष्ट कर लेती है।

विभिन्न युगों में गृहीत ये अवतार अवतारवादी साम्यताओं को वहाँ तक प्रभावित करते हैं वहाँ तक जहाँ कथा, विमृति, आदेश, प्रवृत्ति रूपों में उनका प्रभाव का भी अनुमान पाँचरात्रों और पुराणों में किया गया है।

यहाँ अवतारवाद का व्यापक समन्वयवादी रूप दृष्टिगोचर होता है क्योंकि एक ओर तो उसमें विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्त या दृष्टिकोण आरम्भवादात्मक होते हैं और दूसरी ओर उनका प्रवर्तक भी अवतार मान जाने लगते हैं। इस प्रकार विभिन्न मत इस विमिश्र सन्धि में डक जाते हैं और उनके प्रवर्तकों का अवतारवादी मुख्य समाज में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही कारण है कि वैम नाथ, सूफ़ी तथा सगुण सम्प्रदाय के प्रवर्तक समान रूप से उपास्य एवं अवतारवादी तत्त्वों से संयुक्त विदित होते हैं।

सगुण साहित्य में उपास्य की दृष्टि से मतभेद होने पर भी प्रायः सभी महाकवियों अवतारवाद की एक ही प्रवृत्ति पर समान रूप से स्थित हैं। इसका मुख्य कारण पाँचरात्र और 'भागवत' अवतारवादी सिद्धान्तों से उनके समान रूप से प्रभावित होना है। 'भागवत' ने विभिन्न प्रवर्तकों को अवतार-रूप में सम्मिलित किया जिसकी परम्परा में मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य भी विष्णु या उनके अन्य उपादानों के अवतार माने गये और दूसरी ओर पाँचरात्रों से परब्रह्म के अन्तर्गामी या अर्थात् विग्रहों की प्रवृत्ति प्रदान की जो अवतार कीलाओं या व्यक्तित्व अवतारोचित कार्यों से संयुक्त होकर तत्कालीन कवियों की भावामिम्बुक्ति के प्रेरणा-स्रोत हुए। अवतारवाद की समन्वयवादी प्रवृत्ति की यही 'परम्परा' मच्छमाळ में दृष्टिगत होती है। वहाँ विभिन्न वर्गों के आचार्य तथा मठ और भगवान एक ही भावभूमि पर प्रतिष्ठित हुए हैं। 'मच्छमाळ' में सभी के अवतारोचित व्यवहारों और व्यापारों के प्रसंग समान रूप में व्यक्त किये गये हैं।

इस प्रकार अवतारवाद की इस अंतःसक्रिय मागीरधी से समस्त मध्य कालीन साहित्य का मम आच्छादित होता रहा है।





विवेचन की आवश्यकता

प्राकृतिक युग में विज्ञान और मनोविज्ञान का इतना प्रचार हुआ था रहा है कि अब तर्कों का अध्ययन या तो वैज्ञानिक पद्धति में होता है या मनोवैज्ञानिक पद्धति में। यों विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों का क्षेत्र पृथक्-पृथक है किन्तु फिर भी दोनों एक दूसरे से प्रभावित हैं। सामान्य रूप से साहित्य दर्शन विज्ञान और मनोविज्ञान सभी में जो पद्धति अपनायी जाती है उसे निम्नलिखित रूपों में विभक्त किया जा सकता है:—

- १—प्रारम्भ से लेकर अब तक किया जाने वाला क्रमबद्ध, स्तुति मूलक इतिवृत्तात्मक या विकासवादी अध्ययन।
- २—सामान्यतर या तुलनात्मक अध्ययन।
- ३—मात्रात्मक या तथ्यपरक अध्ययन।
- ४—गुणात्मक या तथ्यपरक अध्ययन।
- ५—सैद्धांतिक, व्यावहारिक या प्रायोगिक अध्ययन।
- ६—विक्षेपणात्मक वा संक्षेपणात्मक अध्ययन।

जब मिश्रण के स्तर पर कोई ऐसा विषय नहीं है जो केवल एक साक्ष्य का विषय रह गया हो। साहित्य और दर्शन दोनों में विज्ञान और मनोविज्ञान का प्रवेश इस सीमा तक होता आ रहा है कि सभी परस्पर सम्बन्धात्मक से हो गये हैं। फलतः ज्ञान-विज्ञान की अनेकानेक प्रवृत्तियों और अन्तर्धारणों अन्तःशास्त्रीय रूप धारण करती आ रही हैं। अनेक ऐसे विषय जो एक एक काव्य या साहित्य के क्षेत्र में आते थे, अब अल्प विज्ञानों में भी उनका अध्ययन, चिन्तन और अनुसंधान होने लगा है। कल्पना, अनुमति, भावुकता, भावना चिंतन ज्ञान धारणा, स्वप्न जैसे विषय पहले साहित्य और दर्शन के विषय थे, काकास्तर में मनोविज्ञान में गृहीत हुए और अब चिकित्सा काष्ठ और जीवविज्ञान में भी इनका विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ हो गया है। इस प्रकार के अब अनेक ऐसे विषय मिलेंगे जिनका अन्तरवैज्ञानिक या अन्तरशास्त्रीय महत्त्व बढ़ता आ रहा है।

अन्तःशास्त्रीय भी साहित्य, दर्शन, विज्ञान मनोविज्ञान और अल्प सभी से सम्बद्ध होने के कारण अन्तरवैज्ञानिक वा अन्तरशास्त्रीय महत्त्व रखता

है। इसकी व्यापकता और समीचीनता का उचित मूल्यांकन तभी संभव हो सकता है जब कि उपर्युक्त सभी विषयों में व्याप्त इसके तथ्यों का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जाए। इसी से अवतारवाद का अध्ययन विभिन्न विषयों की दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

अद्यतन मनोविज्ञान में मनुष्य की अवचेतन और अज्ञेय प्रकृतियों का व्यापक अध्ययन चल रहा है। अनेक बर्ग के मनुष्यों की इतनी कृष्णों, वासनाओं तथा अप्सुत इच्छाओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किए जा रहे हैं। धार्मिक या भक्तकवियों में उच्चपद की अवस्था में जायी हुई परिमार्जित वासनात्मक कृतियों का भी विश्लेषण होये जगा है। इसी क्रम में उन सरकारगत मानव प्रकृतियों तथा अभ्यासों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है जिसने विश्व साहित्य में एक बहुत बड़ी पौराणिक परम्परा (Mythic Tradition) बड़ी कर दी है। जिस प्रकार मनुष्य की अवचेतनगत प्रकृतियों को प्रभावित करने में कबल उसकी वैयक्तिक वासनाएँ ही नहीं रही हैं अपितु सांस्कृतिक वातावरण की प्रक्रियाएँ भी कार्यरत रही हैं उनी प्रकार पौराणिक साहित्य कुछ व्यक्तियों की इच्छा मात्र का प्रतिफल नहीं है, बल्कि मानव-संस्कृति की एक इकाई में विहित उसके ज्ञान का अनुमानित, अनुभूत या काव्यमय वैज्ञानिक या जनश्रुतिपरक उसकी वास्तविक विश्वास संकल्प सद्गुण मिश्रता कृष्णता समाज-भक्ति, राज-भक्ति और परम्परा भक्ति इन सभी का एकत्र अभिव्यक्त रूप है। अनेक अनुभूतियों, कामवाणी कल्पनाओं और विचारों का अन्वय हो जाने के कारण युग के मन को 'सामूहिक चेतन' (Collective consciousness) की सजा प्रदान की है। अवचेतन मन में इन सभी की एकत्रित अवस्था को 'सामूहिक अवचेतन' भी कहा जा सकता है। इस दृष्टि से यदि पौराणिक साहित्य पर विचार किया जाए तो यह प्रतीत होगा कि पौराणिक साहित्य के उपादान भी मन के 'सामूहिक चेतन' और 'सामूहिक अवचेतन' की तरह विभिन्न युगों के आवरणों में आवेष्टित उस सामूहिक चिन्ताधारा को व्यक्त करते हैं जिसमें अवचेतन मन के विचारों की तरह श्रृंखलाबद्ध या निर्गुण दोनों प्रकार के परम्परागत या युगमापेक्ष साहित्य दर्शन विज्ञान, मनोविज्ञान और कला पृथक् या मिश्रित सभी रूपों में व्यक्त हैं। अतः अवचेतन के उपादानों का रहस्याद्धारण करने के लिये जिन मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जा रहा है उन्हीं विधियों का प्रयोग पौराणिक तथ्यों के उपादान

के किन्हे भी समीचीन प्रतीत होता है। निश्चय ही इन पौराणिक उपादानों का वैज्ञानिक समाधान खोजने में अनेक कठिनाइयों उत्पन्न हो सकती हैं। अतः विज्ञान या दर्शन के क्षेत्र में जिन विचार धारामों को परिकल्पना (Hypothesis) के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है उनमें से अधिकांश का विरक्षेपण और अन्वयन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से होने लगा है। मनोवैज्ञानिक अन्वयन की इस प्रणाली ने इन पौराणिक परिकल्पनाओं के आधारों का मेहन कर उनकी विशेषताओं का रहस्योद्घाटन करने में बहुत कुछ सफलता अर्जित की है। विशेषकर म्याकड और युंग ने अनेक पौराणिक आख्यानों तथा प्रतीकात्मक नामों का विरक्षेपण कर मानवसाक्षीय या समाजशास्त्रीय निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है।

स्थापना

यद्यपि आधुनिक मानवशास्त्र और अवतारवाद में अन्वयन-प्रणाली की दृष्टि से कोई वैज्ञानिक सम्बन्ध कल्पित नहीं जाता; किन्तु फिर भी अवतारवादी धारणा में ऐसे तत्त्व अवश्य प्रतिभासित होते हैं, जिनका मानव साक्षीय दृष्टि से अन्वयन अधिक असंगत नहीं प्रतीत होता। अहाँ तक इस अन्वयन की वैज्ञानिकता का प्रश्न है वह मानवशास्त्रीय तत्त्वों के भावकर्म और विरक्षेपण की दृष्टि पर आधारित नहीं है; बल्कि कथियों और अनेक ग्रन्थियों से युक्त पौराणिक आख्यानों के मनोवैज्ञानिक विरक्षेपण पर आधारित है। अवतारवादी आख्यानों के प्रसंग में आनेवाले कतिपय कथनात्मक कार्य-म्पापार; अज्ञाहरण के किष्प बन्धों द्वारा निर्मित पत्थरों का पुष्क जगत् में विवास की परम्परा भृगुवाक्य या वृषों की ज्ञान का बन्धों के रूप में प्रयोग, बराह द्वारा बौत का प्रयोग, मुर्तिह द्वारा नल का प्रयोग, बामन के हाथ में डड्डा, परशुराम द्वारा कुशहाड़ी या परशु का प्रयोग, राम द्वारा यमुन-बान का प्रयोग इत्यादि उपकरण मानवसाक्षीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की ओर संकेत करते हैं। मानवशास्त्र की तरह अवतारवादी धारणा में भी विकासोन्मुख प्रवृत्तियों के वर्धन होते हैं। उनका क्रमबद्ध विवचन करने पर एक स्वतंत्र अवतारवादी क्रम से विकसित मानव-सम्पत्ता के विकास-क्रम का पता चलता है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि अद्यतन मानवशास्त्र के उपकरण सू-भौतिक, पदार्थगत तथा जीवों से सम्बद्ध हैं और अवतारवादी उपादान अपन पुग की अधिकांश विशेषताओं से युक्त प्रातिमिभिक या प्रतीकात्मक उपादान हैं। वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा आख्यानात्मक या इतिवृत्तात्मक दृष्टि में स्पष्ट होने के कारण इनकी समस्त मनोवैज्ञानिकता आधारों से आवृत्त हो गयी है।

अतः पौराणिक आवरणों से मुक्त होकर विभिन्न तथ्यों का अभ्यवहन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

सत्ता और शक्ति

कहा ही सत्ता को दो सन्दर्भों में जमिहित किया जा सकता है:—अस्तित्व या अस्तित्व, इनमें से अस्तित्व सत्ता को तब तक दिक-काक-सापेक्ष नहीं कहा जा सकता जब तक वह अस्तित्व से जमिहित सत्ता न हो जाय। अतः जिसका अस्तित्व है जो ज्ञात है उसी का ज्ञान है; अन्वया को अज्ञात है उसका ज्ञान तो अज्ञान ही है। अनुमान और कल्पना भी पूर्वानुभूत अस्तित्ववादी सत्ता के ज्ञान पर ही निर्भर करते हैं। अतः सत्ता के ज्ञान से तात्पर्य हो जाता है सत्ता के अस्तित्व का ज्ञान। तो प्रश्न यह उठता है कि सत्ता के अस्तित्व का बोध कैसे हो सकता है? जब सत्ता शक्ति से मुक्त होती है तभी उसमें अस्तित्व-बोध का उद्भव होता है। यहाँ स्पष्ट हो सकता है कि क्या सत्ता शक्ति से मुक्त नहीं है? निश्चय ही शक्ति से मुक्त होने पर भी यदि सत्ता अस्तित्व से परे है तो उसे भौतिक दृष्टि से शक्ति नहीं माना जा सकता। एक स्पष्ट उदाहरण लेकर देखा जाय तो यह प्रतीत होगा कि शक्ति से मेरा तात्पर्य क्या है। अज्ञान के ग्रह-नक्षत्र तथा सृष्टि के सभी वह चेतन पदार्थ अनेक शक्तियों से मुक्त हैं। परन्तु उनके अस्तित्व के मूक में सामान्य रूप से गुरुवाकर्षण शक्ति का योग मान सकते हैं। यह गुरुवाकर्षण-शक्ति अणु से लेकर विभु तक स्पष्टिगत गुरुवाकर्षण-शक्ति और समष्टिगत गुरुवाकर्षण शक्ति के रूप में विद्यमान है। यदि सत्ता के अस्तित्व को दिक-काक सापेक्ष माना जाय तो भी दिक सत्ता को धारण करने वाली शक्ति है और काक चाक-शक्ति। दिक-शक्ति को दिह-शक्ति और काक-शक्ति को चेतन शक्ति भी कहा जा सकता है।

अतएव सत्ता में जब इन शक्तियों का योग होता है तभी वह साकार होती है। उदाहरण के लिए एक वस्तु के अन्न और परब दोनों पक्षों को लिया जाय तो दोनों पक्ष स्वान और काक विरूप में साकार और विराकार भी कहे जा सकते हैं। जब शक्ति से ही उसमें सक्रियता आती है, तब कभी उसका अन्न साकार होता है और कभी परब।

सत्ता और शक्ति का अवतरण

शक्ति का अवतरण पदार्थ की सक्रियता एवं चेतना में है। जो पदार्थ जब है, उसकी शक्ति गूढ़ या रहस्य है अवतरित या साकार नहीं। गूढ़ से

यहाँ तात्पर्य है इन्द्रियेतर सत्ता और साकार में तात्पर्य है सेन्द्रिय सत्ता। साकारत्व में सत्ता और शक्ति का योग देह और आत्मा की तरह अपेक्षित है। जब शक्ति सत्ता से मुक्त हो जाती है तब उसे प्राबुर्भूत होना या भवतरित होना कहते हैं। इस अवतरण क्रिया में सत्ता और शक्ति आपार और आपेक्ष विदित होते हैं। इनमें कतिपय विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

निराकार का साकार होना

जिनमें प्रथम है वस्तु (Mass) और ऊर्जा (Energy) का संयोग। आइंस्टाइन के Mass energy equivalence के सिद्धान्त के अनुसार वस्तु ऊर्जा के रूप में बहक जाती है और ऊर्जा वस्तु के रूप में।^१ किन्तु यह रूपान्तरण वस्तु और ऊर्जा या सत्ता और शक्ति के संयोग से ही संभव प्रतीत होता है। इसी को निराकार का साकार होना भी कहा जा सकता है। किसी सत्ता और शक्ति के निराकारत्व से उसकी अस्तित्वहीनता का बोध नहीं होता। वायु निराकार है किन्तु अस्तित्व-रहित नहीं। वायु निराकार होकर भी निर्गुण नहीं सगुण है। गन्ध, सीतलता, घण्णता आदि गुण उसमें पाए जाते हैं। इससे लगता है कि निराकार और साकार एक ही वस्तु की दिकृकाक-सापेक्ष दो अवस्थाएँ हैं। विज्ञान की परिधि में रह कर ही यदि इस प्रक्रिया पर विचार किया जाय तो विज्ञान की बचपन चारनाभों से इसकी पर्याप्त पुष्टि होती है। आइंस्टाइन के 'मासएनर्जी इक्वीवालेन्स थियोरी' के अतिरिक्त सामान्य रूप से देखने पर भी विदित होता है कि 'युरेनियम' 'थोरियम' जैसे रेडियोधर्मी तत्व साकार द्रव्य रूप से निराकार 'शक्ति-रूप' में परिवर्तित किए जा सकते हैं।

जिस पत्थर को कुछ तक पाथर की मूर्ति-रूप में देख सकि मान कर, अज्ञान विवेदित किया करते थे, अब बही पूर्ण शक्ति-रूप में आविर्भूत दिखाई दे रहा है। वह शक्ति देव बन कर मनुष्य की चिरवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण कर रहा है। उस साकार द्रव्य के शक्ति-रूप में यदि कोई अन्तर हीन पक्षता है तो वह केवल दिक् और काक का अन्तर है। एक विशेष स्थान पर एक विशेष व्यक्त या पुण में उस द्रव्य साकार का अवस्थायमक परिवर्तन हुआ।

वस्तु चाहे साकार हो या निराकार वह सर्वैव हमारे सामने एक ही रूप में रहती है। साकार रूप में भी एक दिक्-काक सापेक्ष अवस्था में उसका एक

१. आरेखिका का अभिप्राय पृ० ४४।

ही रूप हमारे सामने रहता है। यदि किसी मनुष्य को हम सामने से देखते हैं तो उसका पिङ्गला भाग हमारी आँकों से छुप्त रहता है। उस समय हमें उसका आकार का ज्ञान नहीं रहता। यदि पूर्वानुभूत कल्पना को जोड़ दिया जाय तो दृष्टा के किये वह अवस्था विशेष में निराकार है। फिर भी इस निराकार में अस्तित्वहीनता नहीं है। कबल उस वस्तु को छटि से जोड़कर कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त हमें जिस वस्तु का ऐन्द्रिय ज्ञान है वह वस्तुना उसकी दिक्-काल सापेक्ष अवस्था विशेषमात्र का ही ज्ञान है जो उस वस्तु का कबल आंशिक ज्ञान है। साकार और निराकार भी सत्ता और शक्ति की दिक्-काल सापेक्ष अवस्था के जोड़क हैं। यह अवस्था बर्गसों के अनुसार सतत परिवर्तनशील क्रिया है। प्रत्येक पद्य वस्तु का परिवर्तित रूप एक नवीन अवस्था का द्योतक है। अवस्था स्वयं निरन्तर परिवर्तित होने वाली क्रिया है। अतएव सत्ता और शक्ति का साकारत्व और निराकारत्व अवस्था सापेक्ष है।

अजायमान का जन्म होना

अवतारत्व की दूसरी विशेषता है अजायमान का प्रादुर्भूत होना। यदि तारिफक छटि से देखा जाय तो अजायमान की अवस्था सत्ता और शक्ति की छटि की एक विशेष प्रक्रिया से बाहर की स्थिति का द्योतक है। जब मनुष्य या प्राणियों के जन्म की दृष्टि में देखते हैं तो सत्ता और शक्ति का आविर्भाव मिश्रण प्रतीत होता है। यों छटि में भी प्राणियों के उत्पन्न होने के अनेक ढंग हैं। इसी से उत्पत्तिजन्म दोनों के चकते भी वे अण्डज विण्डज उजिज, इत्यादि रूपों में वर्गीकृत होते रहते हैं। अतः छटि में उत्पत्ति या आविर्भाव के अनेक ढंग हैं जिनसे सत्ता और शक्ति को विभक्त माना जा सकता है। उनमें आविर्भाव के अवस्था-सापेक्ष सहस्रों ढंग हो सकते हैं। यदि हम वायु को सत्ता और शक्ति पुत्र मानें जिनसे 'त्वमेव प्रत्यक्ष इन्द्राग्नि वा 'प्रत्यक्ष प्रह्ला' कहा गया है तो वायु प्राणियों के सहस्र आविर्भावोत्पत्ति क्रियाओं से परे है। वायु प्राण-शक्ति के रूप में जब आविर्भूत होता है उस समय उसमें कोई अश्लीकिक कार्य-व्यापार नहीं लक्षित होता। वह प्राणियों या मनुष्यों के रूप में स्वभाविक या प्राकृतिक ढंग से ही उत्पन्न होता है। अतः सत्ता और शक्ति की अनेक क्पात्मक अवस्थाएँ हो सकती हैं, जिनमें से उत्पन्न और प्रकट होने की स्थितियाँ भी हैं। देव काक और परिस्थिति के अनुसार

उनकी उत्पत्ति की क्रियाएँ एक ही सम्भव नहीं जान पड़तीं। अतएव सत्ता और शक्ति किमी भी ङग से व्यक्त या आबिर्भूत होने क छिप् परम स्वतंत्र हैं।

असीम का ससीम होना

अवधारण की तीसरी विशेषता है असीम का ससीम या विमु का क्यु होना। किसी वस्तु क सीमित या क्यु होने से उसकी असीमता या विमुता नहीं बर हो जाते। सृष्टि में कोई पदार्थ ऐसा नहीं है, जिसमें स्पष्टि और समष्टि क मात्र न हों। जिस विद्युत् शक्ति को इकाई क रूप में देखा जाता है वह प्रकट या अप्रकट अनन्त इकाइयों के रूप में भी विद्यमान है। गेहूँ का एक दाना उसका ससीम रूप है परन्तु गेहूँ की अनन्त शक्ति उसका असीम रूप भी है। विश्व के आर्गित्त अनन्त गेहूँ उसके आतिगत विराट् रूप हैं। जाति भाव से ही मनुष्य व्यक्ति के भी ससीम और असीम दो रूप हैं। मनुष्य इकाई रूप में या व्यक्ति रूप में ससीम या क्यु है, साथ ही जाति रूप में असीम और विमु है। उत्पत्ति या आधिर्माधारमक प्रक्रिया के द्वारा वह एक से असक्य हो सकता है तथा एक क अस्तित्व में होते हुए भी असक्य या अनन्त क अस्तित्व में रह सकता है। एकोई बहु स्थाय' क मूक में कबल रेश और काक की अपेक्षा मात्र विहित है। इसी से सत्ता और शक्ति एकदेशीय भी हैं और सर्वदेशीय भी।

पूर्ण का अशु होना

अवधारणा की चौथी विशेषता है पूर्ण होना। सत्ता और शक्ति की दृष्टि से अंश और पूर्ण में कोई पार्थक्य नहीं प्रतीत होता। क्योंकि अंश में पूर्णत्व है और पूर्णत्व में अंश अतर्भूक है। सत्ता और शक्ति के विद्युत् अस्तित्व को ध्यान में रखकर कोई ऐसा विमात्रन नहीं हो सकता। वस्तुतः अंश और पूर्ण मेग्निष्य ज्ञान के माध्यम स्वरूप दो इकाई मात्र हैं। मनुष्य की मेग्निष्य किमी मनुष्य को जब देखती है तो उसका कबल अंश मात्र हीन पड़ता है। जिसे हम दृष्टि-दर्शन द्वारा दृष्टिगत अंश कह सकते हैं। परन्तु अंश मात्र क कबल दृष्टि सापेक्ष होने से मनुष्य अंश मात्र नहीं हो जाता। वह इकाई व्यक्ति क रूप में पूर्ण व्यक्ति है। जो अंश हीन पड़ता है वह साकार है और उसका शेष भाग दृष्टि क छिप निराकार या पूर्वाभूत साकार है। दृष्टि की भीमा में जो दृष्टिगत अंश हुआ वह दृष्टि-सापेक्ष अश है किन्तु पूर्वाभूत ज्ञान क द्वारा वह वास्तविक रूप में पूर्ण व्यक्ति है। अतएव दृष्टि-सापेक्ष

साकार और पूर्वानुभूत या पूर्व ज्ञान साकार दोनों को मिलाकर वह व्यक्ति व्यक्ति के रूप में पूर्ण व्यक्ति है। दृष्टिगत ज्ञान और पूर्वानुभूत ज्ञान दोनों को मिलाकर, उसे अंत रूप में देखते हुए भी पूर्ण रूप ही कहेंगे। पदार्थगत अंश-दशन हमारी दृष्टि की सीमित अपूर्णता है उस व्यक्ति का पूरा रूप नहीं। अवतार भावना में भी अंत रूप की भावना हमारी दृष्टि ज्ञान और अनुमान की सीमा है उसका अभाव नहीं। इसी से सत्ता और शक्ति का रूप उपास्य या प्रतीक-रूप में भी गृहीत होने पर पूर्ण और सर्वोत्कृष्ट ही होता है मध्यम या निम्न ही। मध्यम का निम्न ही हमारी भाषा या अप्रभाष भावना होती है।

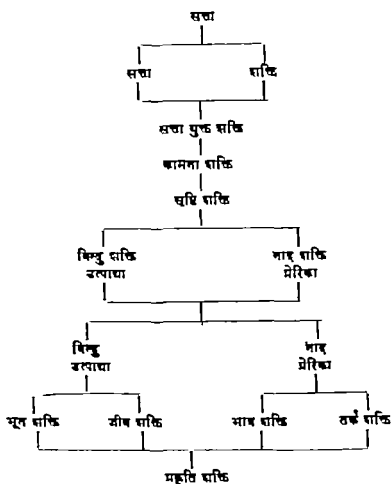
शक्ति अवतरण

सत्ता में दो भाग हैं—अभिव्यक्ति और प्रसार। इन दोनों भागों में उपस्थित होने के लिए वह शक्ति से सम्बन्धित होती है। अतः सत्ता की अभिव्यक्ति और प्रसार के लिए शक्ति व्यक्त होती है। यहाँ शक्ति और सत्ता में कार्य करण सम्बन्ध कश्चिन् होता है; क्योंकि शक्ति की वह अभिव्यक्ति सत्ता क ही मध्यम से होती है।

अभिव्यक्ति—सत्ता की तरह शक्ति में भी अभिव्यक्ति की भावना होती है किन्तु वह सत्ता क माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है। सत्ता में अभिव्यक्ति और प्रसार की जो कामना होती है, वह कामना ही प्रथम अभिव्यक्ति शक्ति है। कामना शक्ति में समन-आद्य और मातृ भाव स्वभाव अन्तर्भूत रहते हैं इसलिये मध्यमम उसमें सिद्धिवाङ्मयि प्रयुक्त होती है। सिद्धि में कश्चिद् शक्ति की इच्छा ही नहीं है अपितु शक्ति में सतत उत्पत्ति-क्रम चलते रहने की भी इच्छा विहित होती है। शक्ति की क्रिया, शक्ति से शक्ति उत्पन्न होने की क्रिया है। शक्ति-शक्ति अपने मूल रूप में उत्पादा और प्रेरिका है। भारतीय परम्परा में अग्ने विन्दु-शक्ति और नाद शक्ति कहा गया है। विन्दु-शक्ति क्रिया-शक्ति है और नाद ज्ञान शक्ति। विन्दु शक्ति पुत्रः वा मातृ में विभक्त हो जाती है भूत शक्ति और जीव शक्ति^१ इसमें भूतशक्ति पोषक है और जीव शक्ति उत्पादक। नाद-शक्ति ही ज्ञान-शक्ति है जिसे प्रेरिका-शक्ति भी कहते हैं। नाद शक्ति के भी दो सन्धिर्पा उत्पन्न होती हैं जिन्हें भाव-शक्ति और तर्क शक्ति दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। इन क्रम को विरम प्रहार से व्यक्त किया जा सकता है—

१ 'सो-ब्रह्मवत'

२ डेरिडिरी, पृ १३ में प्राणो वैद्यनिक सम्बन्ध (Bomafic cell) अनु बीज और (Germl cell) 'बीजाणु-कोष्ठ' माना गया है।



प्राकृतिक शक्ति-अवतरण :—उपर्युक्त सभी शक्तियों के समुच्चय को प्राकृतिक शक्ति की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। प्राकृति क कारण प्राकृत्य उत्पादि, पापम और सहार आदि अनेक कार्य-व्यापार हैं। किन्तु इन सभी में आन्तरिक रूप से एक कार्य-व्यापार मुख्य है—बह है अभिष्पत्ति। इस प्राकृतिक अभिष्पत्ति में दिक्-काल सापेक्ष अनेक अभिष्पत्तियों का सतत क्रम चलना जा रहा है। उस अभिष्पत्ति को वस्तुगत और मानसिक या देह गत और भासगत अभिष्पत्ति कह सकते हैं। यों मीतिक विज्ञान वस्तुगत अभिष्पत्ति से आत्मगत अभिष्पत्ति की ओर अग्रसर हुना हुआ चीज पढ़ता है। किन्तु भारतीय अण्व्यात्म विज्ञान में आत्मगत अभिष्पत्ति से ही वस्तुगत अभिष्पत्ति का क्रम विहित होता है। वस्तुगत अभिष्पत्ति पदार्थ, बनस्पति पद्य, मनुष्य इत्यादि स्पृह सत्ता क रूप में व्यक्त होती है,

जब कि आत्मगत अभिव्यक्ति चेतना संवेग, अनुमृति चिंतन, कल्पना आदि सूक्ष्म और अमूर्त तत्वों में अधिक विहित होती है। पदार्थ-विज्ञान वस्तु का अध्ययन वस्तुत्व से आरम्भ करता है और उसके आत्म-पक्ष की ओर अग्रसर होता है। परन्तु आत्मविज्ञान सूक्ष्मतम आत्मसत्ता की अभिव्यक्ति से अध्ययन आरम्भ कर स्पष्टतम प्रतीकात्मक रूपों तक पहुँचता है।^१ आत्मतत्त्व अधिक बुद्ध और अतीन्द्रिय तत्वों से युक्त है। इससे उसकी प्रायः सभी मान्यताओं को पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से परिकल्पनात्मक (हियोपैटिक) समझा जाता है। यों सूक्ष्म ज्ञान प्रयोग सिद्धि के पूर्व प्रायः परिकल्पनात्मक अधिक हुआ करता है। अतः ज्ञान और विज्ञान दोनों में परिकल्पना की उपेक्षा करना अत्यन्त कठिन है। परिकल्पनात्मक दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि अतीन्द्रिय आत्मचैतन्य की सूक्ष्म सत्ता से ही जीव के स्पष्टत्व का विकास होता है और पुनः एक विशेष अवस्था और स्थिति में उसमें आत्मामि-व्यक्ति (चिंतन, अनुमृति कल्पना संवेग, स्वप्न इत्यादि) होती है और पुनः उसके अचेतन में व्याप्त अभिव्यक्ति की आत्मगत 'कामेच्छा' से प्राणीमात्र की वस्तुगत अभिव्यक्ति होती है। इसे हम आत्म-वस्तु अभिव्यक्ति कह सकते हैं।



यह आत्मचैतन्य सर्वमात्रमय होने के कारण समष्ट्यात्मा है, किन्तु जीवरूप में उसकी अभिव्यक्ति अनन्त सहस्रों रूपों में, व्यक्तिगत या स्वष्ट्यात्म रूपों में भी होती है जिसे हम प्राकृतिक शक्ति का अवतरण कह सकते हैं।^२ प्रकृति का यह सामान्य अभिव्यक्ति-जनित अवतारवादी कार्य सर्व-प्राप्य है।

१ पै० ड० २, १ आत्मा से आकाश आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल, जल से पृथ्वी पृथ्वी से जीवनि जीवनि से वन्य और जन्तु से पुनश्चेत्यदि का क्रम बनाया गया है।

२ छ० इ० पृ० २० में वर्गीय में कीरनी-नियम का समर्पण करते हुए बताया है कि जीवन वही सम्पन्न है जहाँ शक्ति का अवतरण होता है। शक्ति अवतरण को जिना कहने ही शक्ति का सारा कार्य सम्पन्न हो जाता है।

द्विस्वार्थक प्रकृति शक्ति — सृष्टि-रूप में शक्ति की प्रधान विरापता है महिष्युता । बर्गसों क मनाजुमार सृष्टि सहती है । जिनमा ही हम काक के स्वभाव का अध्ययन करेंगे, हम निष्कप पर पहुँचेंगे कि सृष्टि क स्थापित्व का तात्पर्य है आधिष्कार, अनक कर्षों की रचना विरंतर नवीनता का प्रसार । विज्ञान के अनुसार महिष्युता या सहना उम सत्य का द्योतक है, जो यह मानता है कि सारे जीव सप जगत् क साथ अधिष्ठातृ रूप स सृष्ट बद्ध हैं ।^१ जिस प्रकार माता गर्भस्थ विष्ट का भार सभी परिस्थितियों में भाष्य होकर सहती है, वैसे ही पृथ्वी अन्तर्ग्रहीय भाकर्षण में भाष्य होकर प्राणि बर्ग का भार सहन करती है । 'भार सहन की प्रक्रिया दिक् की अपवा काक की सीमा क अन्तर्गत है । 'भार' का म्यूनाधिरय और उमका समतुल्य होनों काळसापेक्ष है । इसी से अवतारवादी अतिरिक्त सन्धि का आधिर्भाव-कार्य भी काळ-सापेक्ष है । अवतारवाद् की पौराणिक अधिम्यक्ति में पृथ्वी द्वारा भार-सहने की क्रिया क प्रायः प्रसंग मिलते हैं, जिनमें 'भार' सत्य का प्रयोग क्रिया गया है ।^२ पर्यायत उच्च भार में पृथ्वी की सहिष्युता भी समाहित है । वह जिन प्राणियों का भार सहन करती है व या तो दैवी प्रकृतियों से युक्त रहते हैं या वासुरी प्रकृतियों स ।^३ दैवी जीव अनेक ऐसे सदगुणों से युक्त रहते हैं जिससे पृथ्वी का सृष्टि क प्रजनन, पापग और सहार कर्षों को क्रम-बद्ध रकने में सहायता मिलती है, जब कि वासुरी सक्तियों प्रकृति-प्रधान भोगारमकता से युक्त जाती हैं । प सृष्टि क सतत विक्रम-क्रम में शक्तिरोध उत्पन्न करती है । इसक मुसस और अधियमित कार्यों क कारण सृष्टि के प्राणियों का समुचित विकास अवस्त हो जाता है । जो जो सृष्टि में दैवी और वासुरी सक्तियों से युक्त जीवों क पूषक-पूषक समुदाय लक्षित होते ही हैं किन्तु म्यष्टिकरूप स प्रत्यक प्राणी में दैवी और वासुरी सक्तियों एक साथ विद्यमान रहती हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्यक प्राणी क अन्तर में वैवासुर समाम या सभय चढता रहना है । दैवी सक्तियों का प्राबल्य होने पर प्राणी उत्कर्षोन्मुख होता है और वासुरी सक्तियों का प्रभाव होने पर अपकर्षोन्मुख । इस स्थिति में प्राणियों को उत्कर्षोन्मुख करने क लिए अतिरिक्त दैवीशक्ति क संचार की आवश्यकता पवती है । प्रकृतिवादियों ने भी प्रत्यक जीवाणु में परस्पर विरोधी सक्तियों की शरनारणा

१ इ० इमो पृ० ११ ।

२ महा २ ६४ ४८—'अस्या मूर्धेनिपतिर्नु भारं भारीः पृथक् पृथक्'

३ इ० उ० १ ३ १ में प्रजापति की दो सम्मान देव और अठार बद्ध यने हैं । पुन पीना १६ ३ में मौ मून-सृष्टि बर्ग और वासुरी दो प्रकार की बनायी गयी है ।

स्वीकार की है जिन्हें वे 'एंजेनिसिस' (*Angeneas*) और 'कैटाजेनिसिस' (*Katageneas*) की संज्ञा से अभिहित करते हैं। 'एंजेनिसिस' शक्ति का कार्य है निर्जीव पदार्थों के संबन्ध द्वारा जीव-तन्तुओं की गीण शक्ति को ऊपर उठाना। यह शक्ति नए जीव तन्तुओं का निर्माण करती है। दूसरी ओर जीवन का वास्तविक कार्य-संचालन 'कैटाजेनिसिस' क्रम के द्वारा संचालित होता है जिसमें शक्ति हासोमुझी होती है उत्कर्षोन्मुखी नहीं। इस प्रकार 'एंजेनिसिस' शक्ति उत्कर्षोन्मुखी है और 'कैटाजेनिसिस' शक्ति अधोमुखी।^१ बर्गसों के सम्मतातः इन दोनों शक्तियों के कार्य-व्यापार को जागतिक स्तर पर ले आकर दूसरे स्तरों में स्वक करने का प्रयास किया है। उनके मतानुसार जागत में स्वर्ण जो परस्पर विरोधी गत्यात्मक प्रक्रियाएँ स्पष्ट प्रतीत होती हैं जिन्हें अचलन (*डिसेंट*) और उल्लसमय (*एसेंट*) की क्रियात्मक गतिपौ कहा जा सकता है।^२ सृष्टि के विकास में इन दोनों गत्यात्मक शक्तियों का सक्रिय रूप दृष्टिगत होता है।

निष्कर्ष यह है कि सृष्टि का मुख्य कार्य सृष्टि-वैतना या प्राणी-जीवन का निर्गत एवं सुव्यवस्थित प्रवहन है। इस क्रम में व्यवधान उपरिचय होने पर स्थितिक्रम की भी सम्भावना रहती है। धासुरी शक्तियाँ सृष्टि के मुख्य चरित्त प्रवाह में अचरोधी या प्रतिरोधी शक्तियों का कार्य करती हैं। उन प्रतिरोधी शक्तियों को हटाने के लिए अतिरिक्त शक्ति का स्फुरण आवश्यकताही हो जाता है। यह शक्ति ऐसी शक्तियों की संघित एवं सुरचित तथा अधिक प्रभावशालिनी शक्ति होती है। ऐसी शक्तियों का विशेष योग सृष्टि के जीवन विकास पोषण, रचा इत्यादि में होता है।

ऐसी शक्ति का देवत्व क्या है ?

बर्गसों के अनुसार मनुष्य एक कड़ी है, जिसका लिङ्गना उसके माता-पिता पर निर्भर करता है।^३ वस्तुना वह कभी भी स्वर्णमू नहीं है अपितु जन्म से ही पराभित है। जो स्थितियों की देन से उसकी उत्पत्ति होती है। दोनों स्थिति (माता-पिता) मिल जुक कर उमका पालन पोषण करते हैं, और उमकी अनेकानेक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वह अनेक वर्षों तक अपने जीवन की मारी कामनाओं की पूर्ति के लिए उन्हीं पर निर्भर करता है।

१ क. इमो० पृ. ३२।

२ इ० इमो० पृ० ११-१२।

३ इ० इमो० पृ० ४१।

इस प्रकार मनुष्य की सारी श्रेष्ठतमें उसकी कामनाओं की पूर्ति में विरत रहती हैं। पतङ्ग उसे दाता की आवश्यकता है। जो उसे देता है; उसकी कामनाओं की पूर्ति करता है, वही देवता है। उसमें वह पान की भाँकावा रखता है इसलिये उसकी आराधना करता है। जतः देवता उसका दाता है इसलिये उसका आराध्य है। सामान्य जीवन में जो हम आश्रय करते हैं कुछ पाने के लिये। पकड़ पाना और तब देना मानव जीवन के ये दो स्वामाधिक व्यापार हैं। माता, पिता, गुरु अतिथि विद्वान् आदि सभी उसे देते हैं इसलिये दाता या देवता हैं। आगतिक व्यापार में धोत देनेवाली सारी भौतिक शक्तियाँ दाता का कार्य करती हैं इसलिये वे सभी देवी या देवता हैं। मानसिक प्रतिभा और आत्मात्मिक शक्तियाँ भी अपने अवदान के कारण उसके लिये देवी या देवता हैं।

कारण यह है कि मनुष्य के विरथायी अस्तित्व के लिये केवल मानव देव सक्षम नहीं है। वह भी किसी से पाकर या लेकर देता है। उसको देने वाली है प्रकृति—इस जगत् के माना ग्रह नक्षत्र पृथ्वी, भूमि चन्द्र, वायु अग्नि, मेघ नदी पर्वत, वन, छाता, वृक्ष गुलम समुद्र इत्यादि; ये सभी मनुष्य को किसी न किसी प्रकार देते हैं, इसलिये सभी देव हैं। उसे जीवित रहने के लिये या भौतिक तथा आत्मात्मिक विकास के निमित्त प्रकृति की सर्वत्र आवश्यकता है। लक्ष, वक्र, वायु, अग्नि आकाश के बिना उसका अस्तित्व ही असम्भव है। वह मातृवत् रक्तगर्भा पृथ्वी से क्या नहीं पा सका है और क्या नहीं पावेगा? उसकी गोद में ही इस भौतिक अणुपुण्य की सीमा तक पहुँचा है। केवल पृथ्वी ही नहीं, दिग्निगम में व्याप्त सूर्य चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सभी अपनी किरणों से उसका पोषण करते हैं। उनका कौन सा आलोक हमारे लिये कितना उपयोगी है उसे विज्ञान अभी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं कर सका है। फिर भी अक्षय बीटा, गामा या अन्य कौस्मिक किरणों की तरह अनेक अज्ञात किरणों का उनका अवदान उन्हें देवता सिद्ध करेगा। तो भी अभी तक जो उनकी उपयोगिता है; उससे भी वे देवता कह जा सकते हैं।

पुरुष अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये नारी की ओर सहजात बाधक-दृष्टि से क्यों देखता है? इसलिये कि स्त्री उसकी हृदिनी शक्ति है। उस शक्ति को पाकर वह आह्लाहित हो जाता है। वह उसके लिये देवी या देने वाली है। पुरुष में स्त्री देने की या भर्ता बनने की स्वामाधिक आकुञ्चता रहती है। वह त्याग में ही आनन्द का अनुभव करता है। उसका वह सृष्टि-विकासक

आत्मिक और मानसिक दोनों का यौगिक आत्मत्व है। जो आत्मत्व मनुष्य एवं प्राणीवर्ग से लेकर अणु में और पिण्ड (शरीर) में है उसकी परिकल्पना बिना और प्रहाण्ड में भी की जा सकती है। आतीत वर्गीकरण की दृष्टि से बिन्दु के समस्त नर और नारी में उत्सर्ग की यह भावना रखी जा सकती है। संतुष्ट के प्रकृति और पुरुष भी इस धारणा से परे नहीं प्रतीत होते। अतएव देवतावाद की दृष्टि से पुरुष उसका देवता है और प्रकृति उसकी देवी। दोनों अपने-एक को छोड़कर एकत्र हो जाते हैं। दोनों की भावना कामना, भाव, भक्ति, अज्ञा एक जैसे हो जाते हैं। एक ही कामना में दोनों के समाहित होने के कारण कामना का उत्पन्न होते ही वे एक से हो और दो से बहुत हो गत हैं। पुनः कामना क शान्त होते ही अनेक से दो और दो से एक होने की क्रिया सगमें विहित होती है। यह क्रिया समस्त सृष्टि में प्रचलित है। सृष्टि के करोड़ों बीजों वीर्यों और प्राणियों के बीच एक से दो और दो से बहुत वा अनेक होते हैं। यह कर्म्य सृष्टि का अप्रतिहत स्वयं वास्तविक कार्य व्यापार है। देवत्व भी इसका अपवाद नहीं मान पड़ता।

पुरुष अपने स्वाभाविक त्याग से बड़ी करता रहता है जो प्रकृति अवाचित रूप से देकर करती है। पुरुष और प्रकृति का यह देवरथ-कार्य काव्यकीर्ण होने पर भी सर्वव्यापक, सार्वकालिक और सर्ववैश्वीय होता है। सृष्टि क कार्य व्यापार में देव-कार्य की यह सामान्यावस्था है।

द्विबिध शक्तियों से प्रवर्धित कामना में बुद्धि और भाव दोनों का योग कथित होता है। बुद्धि कार्य-व्यापार की समतुलित करती है और भाव नित्य ही बुद्धि को बिल-मूलक निर्माण की ओर प्रेरित करता है। भाव के भी सामान्य और विशिष्ट दो रूप प्रतिभासित होते हैं, क्योंकि भाव की स्थिति मन में समुद्र की शान्त और तरंगविध अवस्था की स्थिति की तरह विहित होती है। शान्त-भाव की अपेक्षा तरंगविध भाव के उद्भव और उद्वेगन में भावद्र' जैसी शक्ति का भावपूर्ण विद्यमान रहता है। अतएव भावद्र से आक्रान्त भाव में 'अनुमद' का संचार होता है। प्रकृत भाव की तरंगवस्था वह अवस्था है जहाँ भाव का संचरण नियम की अपेक्षा अनिश्चित होकर सामान्यावस्था से विस्तिष्टावस्था की ओर उद्वेकित होता है। इस भाव को 'अनुमदत्व' और 'दियत्व का भाव

१ हेरिचिरी—पृ २५ आधुनिक इंजेलरि विज्ञान में जीव-श्रेणियों में रिक्त एक विभ्रवृत्त 'ओमिओम दूसरे विभ्रवृत्त 'ओमिओम की बलव करता है। इसी तरह प्रत्येक विभ्रवृत्त 'ओमिओम' एक नया विभ्रवृत्त 'ओमिओम उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह 'द्विगुणिक उत्पत्ति क्रिया' जैसी उत्पत्त विभ्रवृत्त 'ओमिओम' की अपनी विशेषता है और दो से बहुत का क्रम पृ ३० में दृश्य है।

कहा जा सकता है। साधारण प्राणियों या मनुष्यों के जीवन में भी इस भाव-
रिबन्धि का दर्शन होता है। वह इतर प्राणी जगत् के प्रति सामान्य भाव से
पुच्छ होने के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट प्राणियों के प्रति अनुग्रह, प्रियत्व और रूपा
का भाव भी प्रदर्शित करता है। इनमें प्रिय भाव सबसे अधिक उत्कृष्ट प्रतीत
होता है। यह 'प्रिय भाव' ही मनुष्य के मन में प्रियत्व की सृष्टि करता है।
मनुष्य कभी-कभी बिबि निवेदों से परे होकर अपने प्रिय को विशेष रूप से
देन के लिए आकांक्षित रहता है। वह सदा इस अवसर की ताक में रहता
है कि अपने प्रिय को कभी कुछ विशेष रूप से दे। ऐसा अवसर मिलने पर
वह कभी तो सीधे अपना प्रिय को दे देता है और कभी आसक्त होने पर कि
सीधे देने पर नहीं देगा परोक्ष रूप से भी उसे देने की चेष्टा करता है। नहीं
चाहने पर भी वह देने के लिए सहज भाव से उत्सुक रहता है।

सामान्य मनुष्य या प्राणी वर्ग में यह भाव क्यों उत्पन्न होता है ? यह
किया क्यों होती है ? पुनः यह प्रश्न उठता है कि क्या यह उसकी स्वाभाविक
शक्ति है ? या किसी अन्य शक्ति या सत्ता से प्रेरित किया है ? यहाँ इसी प्रश्न
में दूसरा प्रश्न यह उपस्थित हो जाता है कि मनुष्य या प्राणियों में कितना
'स्व' उसका अपना है ? और कितना प्रेरक शक्ति या प्रकृति शक्ति का दिया
हुआ है ? तो ऐसा कहता है कि विक-काक की सीमा में स्वत्वं उसके 'मह'
को छोड़कर उसका अपना विक-काक सापेक्ष भी कुछ नहीं है। जो कुछ उसके
पास है वह प्रकृति शक्ति का दिया हुआ है। अतः यह 'प्रियत्व' भी उसका
अपना गुण नहीं प्रकृति प्रदत्त गुण है। प्रकृति की तरंगान्वित प्रिय-भाव धारा
ने उसे 'प्रियत्व' से सम्पृक्त किया है। इससे 'प्रिय-भाव' को प्रदर्शित करने के
लिए वह प्रकृति से प्रेरित होता है।

इस धारणा से यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृति सभी प्रियत्व
की प्रेरणा देती है, जब कि वह स्वयं 'प्रियत्व' से युक्त है या 'प्रियत्व' भी
उसका स्वभाव है। इस आधार पर सहज ही यह परिकल्पना की जा सकती
है कि प्रकृति में भी अपने प्रिय के प्रति क्रमिक स्थान है। वह अपने प्रिय
को देने के लिए और उसकी अस्तित्व-रक्षा के लिए उत्सुक रहती है। जार्जिन
का 'प्राकृतिक चुनाव' का सिद्धान्त भी अपने मीतिक अर्थ में इस विचार धारा
के समकक्ष प्रतीत होता है। उसके मतानुसार प्रकृति जिस शक्ति प्रजाति
का अयन करती है अथवा ही उसके प्रति वह (homogenous) 'प्रियत्व'
की भावना से युक्त है।^१

प्रकृति जिस 'प्रियत्व' से युक्त है, पुरुष भी उससे उदासीन नहीं रह सकता; क्योंकि पुरुष और प्रकृति में कामना-भाव की दृष्टि से आन्तरिक एकता है। यदि पुरुष से प्रकृति उत्पन्न हुई है, या पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुआ है, तो दोनों अवस्थाओं में 'बंधानुगत गुणानुक्रम' के अनुसार पुरुष भी अवश्य ही प्रियत्व से युक्त है। 'प्रियत्व' देवत्व की ही चरम स्थिति है।

'प्रियत्व' की प्राप्ति नैऋत्य से होती है। अतएव देवता की उपासना प्रियत्व-ग्रहण की उपासना है। प्रियत्व की प्राप्ति नैऋत्य प्राप्त करने निकट बैठने (उप + भासना) से होती है। हम सामान्य जीवन में भी प्रियत्व की प्राप्ति के लिए निकट होने का प्रयत्न करते हैं। वह प्रियत्व की साधना है, जिसमें ऐकात्मिक या परस्पर देव भावना विद्यमान रहती है।

सृष्टि में देव-कार्य निरन्तर चलता रहता है। इसलिये वह सामान्य देव कार्य है। किन्तु जब प्रिय के निमित्त प्रिय-कार्य के लिए विशिष्ट रूप से देव शक्ति का भागमन या जाविर्भाव होता है तो उस क्रिया को 'अवतार' या 'माकृत्य' से अभिहित किया जाता है।

प्रातिम अभिव्यक्ति और प्रातिम अवतार

सृष्टि की ज्ञान रूपात्मक अभिव्यक्ति प्रतिभा शक्ति की देन है। यों तो भारतीय साहित्य में कवि और छात्र प्रजापति एक सत्ता (अपारे काम्यसत्तारे कबिरेव प्रजापतिः) माने गये हैं। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ऐसा समझा है कि सृष्टि की प्रक्रिया में अनेक काम्यात्मक गुण विद्यमान हैं। काम्य क मध्य भागों विचारों और कल्पनाओं की तरह सृष्टि क जादि काक से छेकर जब तक विकसित पर्वत नहीं, समुद्र, प्राणी, पौधे पशु समुत्पन्न आदि को जाविर्भूत करने में 'नववचोग्मपसाकिनी' प्रतिभा शक्ति का हाथ रहा है। कवि की प्रतिभा अव्यक्त को व्यक्त, अमूर्त को मूर्त अरूप को रूप, अघट्य का घट्य तथा अनेक रहस्यों को प्रतीकों और चिह्नों के माध्यम से व्यक्त करती है। सृष्टि भी अव्यक्त को व्यक्त, अरूप को रूप अमूर्त को मूर्त करती प्रतीति होती है। वह असीम को सीमित, अपरिमित को परिमित परोक्ष को प्रत्यक्ष और अज्ञेय को ज्ञेय बचाती है। यदि कविता में पूर्वानुभूत कल्पना के द्वारा अपूर्व कल्पना की रचना होती है, तो सृष्टि भी पूर्व-परम्परा से मिलती जुळती अपूर्व रचनाओं से परिपूज है। पुनर्निर्माण-विश्व-रचना की तरह सारी सृष्टि पुनर्जन्म, पुनराविर्भाव और पुनरोत्पत्तिक गुणों से युक्त है। काम्य रहस्यात्मक सत्ता की अभिव्यक्ति प्रतीकों चिह्नों वच शब्द-चित्रों क माध्यम से करता है। सृष्टि क ज्ञान कार्य व्यापारों में भी प्रतीकारमक प्रतीति होती है। निष्कलतः सेशिव, मूनात्मक सृष्टि

आत्मगत सत्ता को बन्धुगत प्राथम्य अभिव्यक्ति विहित होती है, क्योंकि प्राथम्य अभिव्यक्ति की सारी विशेषताएँ सृष्टि की समस्त अभिव्यक्तियों में प्रतिबिम्बित होती हैं।

प्रतिभा की एक अन्य विशेषता है जिसे चमत्कार की संज्ञा ही जाती है। कविता के सामान्य भाव-प्रवाह में कभी-कभी चमत्कार भी उद्भूत होता है। विज्ञान में उसी प्रकार की चारणा को आविष्कार कहा जाता है। जैसे ही प्रकृति के सामान्य कार्य-व्यापारों के बीच एक विशिष्ट प्राथम्य अभिव्यक्ति उद्भूत होती है जिसे विशिष्ट अवतरण या विशिष्ट आविर्भाव कह कर व्यक्त किया जा सकता है। चमत्कार आविष्कार और अवतार ये तीनों क्रमबद्ध या सामान्य कार्य-व्यापारों से सम्बद्ध न होकर किसी सूक्ष्म या घटना के आधार पर व्यक्त आकस्मिक अभिव्यक्ति प्रतीत होते हैं। यों अवतारवादी चारणा के विकास में सामान्य अवतरण और विशिष्ट अवतरण दोनों मायनाओं का योग रहा होगा।

अवतारघोषक प्राकृतिक व्यापार

मनुष्य के अचेतन मन में अवतार मायना को संक्षिप्त करने वाले निरवयव ही ऐसे कल्पित प्राकृतिक कार्य-व्यापार अन्तर्निहित फल से ही रहे होंगे जिन्होंने अवतारवादी संस्कार को चद्रमूल करने में सहायता प्रदान की होगी। क्योंकि जन-मानस में कोई भी आस्था प्रारम्भिक काल में तभी विकसित हुई होगी जब कि उस युग को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली कोई प्राकृतिक घटना या क्रिया उसके अचेतन मन को धार-वार आक्रमण करती रही होगी। वैसी घटना या क्रिया एक ही हो सकती है अनेक भी। अतः यह देखना आवश्यक समीचीन प्रतीत होता है कि प्रकृति की किन्हीं क्रियाओं और घटनाओं ने अवतारत्व की आस्था की उत्पन्न करने और विकसित करने में आधार-पीठिका का कार्य किया।

क्योंकि मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों को उन्मूलित करने में प्राकृतिक बाधा बरम और उसके आधार पर कल्पित दार्शनिक बाधाकरण का विशेष हाथ रहा है।^१ ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य के चेतन और अचेतन मन में युग-युगान्तर तक बनीभूत होती आयीं। बाद में चरुकर प्राकृतिक शक्तियों के प्रति उसक मन में दार्शनिक एवं आन्ति-मूलक चारणाओं का विकास होता गया। इस प्रकार विश्व की समस्त आदिम जातियों में अन्धविश्वास की चारणा उत्पन्न करने का कार्य उनक चतुर्विक् स्थास रहने वाली प्राकृतिक शक्तियों करती

१ श्री मो० नैन एम् सुब० पृ० १० इत्यम्।

रही हैं। परिणामतः मनुष्य प्रकृति से वा प्रकृति की शक्तियों से स्वतन्त्र नहीं है। स्वर्ण उसकी समस्त निर्मिति में प्रकृति साध्य और साधन दोनों रूपों में विद्यमान है। प्रकृति में जन्म, भवतरण आदिमात्र, प्राकृत्य और प्रत्यक्षीकरण की सारी क्रियाएँ चकती रहती हैं। मौलिक सत्ता और शक्ति का विपात प्रसार और हास निरन्तर होता रहता है। उसी क्रम में आकस्मिक दिव्य और असाधारण शक्तियों का भी आविर्भाव हुआ करता है; जिनका मुख्य प्रयोजन है अस्तित्वित वातावरण को समुचित करना। इन प्राकृतिक व्यापारों को सामयिक, आकस्मिक और गूढ़ तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। सामयिक कार्य-व्यापारों में सूर्योदय चन्द्रोदय वर्षा आदि माने जा सकते हैं। आकस्मिक व्यापारों में उलकापात, भूकम्प जैसी क्षात्रि स्वाकामुत्पी का विस्फोट आदि गृहीत हो सकते हैं। उसी प्रकार जन्म, मरण और चेतना का आविर्भाव वे अज्ञात होने के कारण गूढ़ ही अधिक प्रतीत होते हैं।

सूर्य और चन्द्र

सामयिक कार्य-व्यापारों में सूर्य का निश्च आविर्भाव एक ऐसा कार्य व्यापार है जो पुरातन मनुष्य के मन में आविर्भाव की भावना सपोषित करता रहा है। प्राचीन-मानव को रात का भयानक अंधकार उसको अपनी सुरक्षा के प्रति अधिक आसंकित और आकुल बनाय रहता होगा। रात में कष्ट देने वाले निशाचर भी उसका किये अधिक कष्टदायक होते होंगे। रात में विभिन्न कुत्तों और शत्रुओं के भी आक्रमण का डर उसे बना रहता होगा। परिणामतः सूर्य के पुनः आविर्भूत होने की बकवती इच्छा ने उसके मन में आविर्भाव की सहज प्रवृत्ति उत्पन्न की होगी। पुरातन-मानव के भावुक इच्छ ने कल्पना की होगी :—

रात होते ही आरों ओर सयक अंधकार छा जाता है। रात में अनेक भयंकर शैल पड़ने वाले निशाचर उसे मानसिक तथा शैक्षिक अनेक कष्ट देते हैं। किन्तु सदलों किरनों वाले सूर्य अपने किरन-बृहत्क साथ आविर्भूत होकर अंधकार कपी निशाचर इक का नाश करते हैं। हम प्रकार वे समस्त विषय का बख्शाण करते हैं। उसका मन में भविष्य में रात होना पर अंधकार एवं निशाचरों से उद्धार के लिए सूर्यक पुनः आविर्भूत होने की आशा बनी रहती है। तिमने भावी भवतार की कल्पना विकसित की होगी। रात क अंधकार में ही चन्द्रमा क आविर्भाव ने आविर्भावतमक प्रवृत्ति को बहसूल किया होगा। परन्तु सूर्योदय मग भी होता है, सूर्य अपने पूर्ण रूप में ही आविर्भूत होता है। कठस्वरूप आविर्भाव की भावना में पूर्णाविर्भाव

की ढारणा का विकास हुआ होगा और चन्द्रमा, जिसका आंशिक रूप भी अद्विभूत होता है अद्यावधिर्मात्र की प्रकृति का मूलाधार हो सकता है ।

वायुल और वर्षा

विक्षिप्त प्रकृति में दुःखान्त और सुखान्त मात्रक चकते रहते हैं । ज्येष्ठ की कड़ी बुपहरी में तप्त भूमि सूखकर अल-नृपिन बनी रहती है । माता में त्रिभ प्रकार मन्ताभोत्पत्ति की घाबला होती है, जैसे ही भूमि में भी नाना जीवों की उत्पत्ति की आसना होने की कहरना की जा सकती है, जिस अनेक आसुरी विम-बाबाएँ कष्ट देकर प्रताडित करती रहती हैं । विरोधकर अपने बह पर स्थित प्राणियों को बिना अल जीवन क भरते हुए देव तर पृष्ठी में भी आकृष्टता या बुपय की मावना आरोपित की जा सकती है । ऐसी स्थिति में बाह्यो के एक चारों ओर से त्रिर कर आकाश में द्वा आते हैं और बनधोर वर्षा की सड़ी कया होते हैं । हम वर्षा क द्वारा केवल अल्पवतरण ही नहीं होता अपिनु व जीवनी-सक्ति की भी सञ्चारक सत्ता के रूपमें पृष्ठी पर अवतरित होते हैं । इस प्रकार मधवन् या इन्द्रदेव और उनक समूह की सहायता से तथा विष्णुबल सूर्यदेव की रश्मियों की प्रालवला के द्वारा पृष्ठी के सृष्टि की रचा होती है । हम अद्याहरण क द्वारा सामूहिक आदिर्मात्र की मूक प्रकृति क अतिरिक्त अवतारबाही प्रयाजन—पृष्ठी या सृष्टि-रचा के भी मूल रूपों की परिकल्पना की जा सकती है ।

उल्कापात

आकस्मिक काय-व्यापारों में आदिर्मात्रात्मक प्रकृति की मूक मेरक वृत्तियों में उल्कापात विनेष उल्लङ्घनीय है । अनुप्य विज्ञानु-भाव से विस्तृत शून्याकास को देखना है । रात में कश्चि-कोटि प्रह-गच्छ और तारे तिमटिमाठ रहते हैं । उनका भी वह सूर्य और चन्द्र की तरह विष्वादिभ्य प्राणियों का लोक मानता है । वे किसी न किसी प्रकार एक ठाक से नूमेर लोक में आते आते रहे होंगे । हमी धारणा के अम में जब वह उल्कापात देखता है तो उसकी आरथा और पुष्ट हो जाती है कि उल्कापात क अम में दिव्य शक्तियों का अवतरण ऊनर क दिव्य लोकों से पृष्ठी पर होता है । उल्कापात क समव प्राया देला जाना है कि कमी विग्रहित एक प्ण्ड टूट कर एक लीक की तरह बन कर नीचे की ओर गिरता हुआ दिनाई पवता है और कमी एक प्ण्ड के सहस्रो लंड विनर कर नीचे गिरते लचित होते हैं । हम दोनों अवतरणशील काय-व्यापारों का अवतारबाही धारणा क विकास में धाग माना जा सकता है । हमी प्रकर

जीवी, वायु, आकाश, ज्वालामुखी इत्यादि प्राकृतिक कार्य-व्यापार आकस्मिक अवतारत्व की भावना के मूक प्रेरकों में गृहीत हो सकते हैं।

आत्म-चेतना और जन्म

अवतार-भावना के मूक प्रेरकों में किङ्किण्गूह प्राकृतिक व्यापारों का भी योग प्रतीत होता है जिसमें मनुष्य एवं प्राणियों के जन्म की ओर सर्बप्रथम ध्यान आकृष्ट होता है। शरीर में जिस आत्म-मत्ता वा शक्ति का प्रवेश होता है, वह अदृश्य, रहस्यमय और गूढ़ सत्ता है। मनुष्य के मन में ऐसी धारणा रही है कि जब उसका (चेतनात्मक) प्रादुर्भाव शरीर में होता है तो मात्र-शक्ति ही उठता है। जब तक वह आत्म-चेतना शरीर में विद्यमान रहती है, तभी तक मनुष्य शक्ति-सम्पन्न और परिवर्द्धनशील बना रहता है। जब वह ज्ञान-चेतना सुप्त हो जाती है मनुष्य का शरीर निर्मात्र हो जाता है। शिष्ट के इस जन्म के प्रति सामान्य धारणा यही रहती है कि वह किसी अज्ञात प्रवेश से आकर अवतरित होता है। क्योंकि मनुष्य कहीं से आकर जन्म लेता है और जिस प्रवेश में मरने पर चला जाता है, दोनों उसक किण् गूढ़ रहस्य हैं। किंतु जन्म और आत्म-चेतना के प्रवेश तथा गर्भासय से नीचे की ओर अवतरित होने की क्रिया का उसकी अवतारवादी मनोवृत्तियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। उसके मन में मूकवृत्ति तो जन्म और अवतरण की रही होगी परन्तु दिव्य ब्रह्मियों का आरोपित करने के किण् उससे अवतारों के जन्म एवं अवतरण का संबंध कर दिया होगा।

ग्रीक होते ही मनुष्य अपने वाञ्छन्य और वैदायतान का अनुमान कर कुछ असहाय सा हो जाता है। पुत्रपत्नी उसमें प्रबल हो जाती है, परन्तु निरन्तर प्रबल करने पर भी उसे सन्तान नहीं होती। वह देव-विश्वासी मानव किसी देवता या इन्द्रदेव से सन्तान की याचना करता है। उस याचना के उपरान्त यदि उसे सन्तान होती है तो बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से वो विश्वास उसके मन में रुढ़ हो जाते हैं। एक तो यह कि पुत्र देवता के वरदान का परिणाम है। सम्भवतः गुरु के उपदेश से प्रभावित होने के कारण, दूसरा यह कि पुत्र देवता या इन्द्रदेव का अंश ही इस सन्तान के रूप में आविर्भूत हुआ है। इस प्रकार अवतारत्व की भावना में भी जन्म एवं आत्म-चेतना की प्राकृतिक काय करती शक्ति पड़ती है।

पदा-परम्परा

सृष्टि में प्राणियों और वीर्यों के जन्म की एक श्रृंखला चलती आ रही है। उम पुत्र वा मात्रक इस सृष्टि-श्रृंखला को पद्य से पद्य, वीर्य से वीर्य, की उत्पत्ति

क रूप में जानता है। वह अपने पितामह से पिता, पिता से स्वयं, स्वयं से अपने पुत्र और पुत्र से पौत्र की, प्रायः अपने जीवन में ही घटित होने के कारण, वंश-परम्परा जैसी क्रिया से परिचित रहता है। उसके सामने अतीत और आगामिष्यत् दोनों परम्पराओं का लोग विद्यमान रहते हैं। इस आधार पर सहज ही वह एक बहुत बड़ी वंश-परम्परा की या अवतारवादी परम्परा की रूपनात्मक प्रवृत्ति से जो खेता है, जिसमें सम्भवतः स्वयं पूर्व पुत्रवत् उस वंश-परम्परा का भावि बनकर भागा जाता है। उसकी सत्ता को ही वह अनुमान से ही आगामिष्यत् पीढ़ी में विद्यमान मानता होगा जिसका विकास विष्णु की पूर्ण या अस शक्ति के रूप में हुआ।

यों 'जिन' या बंशाणु एक प्रकार का वसोत्पादक तत्व ही है जो प्रत्येक जीव-कोश में विद्यमान रहता है। प्रत्येक पुत्रवत् अपने पूर्वजों के क्रम से जाती हुए, अपने पिता से बंशाणु तत्व प्राप्त करता है। प्रत्येक व्यक्ति में जीवन भर इसका अस्तित्व द्विगुणारमक वृद्धि के अतिरिक्त प्रायः अपरिवर्तित रूप में ही विद्यमान रहता है जिस व्यक्ति पुनः अपने लगन को प्रदान करता है। समय-समय पर बंशाणु की रूप रेखा में परिवर्तन भी होता है जिसे 'स्पूरेसन' या 'नवोद्भव क्रिया' कहते हैं। नवोद्भूत बंशाणु (germ cell) पुनः परिवर्तित रूप को पुनरुत्पादित कर द्विगुणित होता रहता है।

मिथ्य ही प्रारम्भिक युग का मानव अद्यतन वैज्ञानिक शोधों से परिचित नहीं होगा, किन्तु वंश-परम्परा से आने वाली किसी सत्ता की भावना उसमें अवरय की होगी, जिसका परिचय विष्णु की अवतार परम्परा में मिलता है।

पराक्रम

अवतारवाद् की चिन्ता धारा में पराक्रम का विशेष महत्त्व रहा है। मनुष्य जैसी हो या मानवी अवतारवाद् पराक्रमवाद् का सिद्धान्त है। मनुष्य के नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकार के प्रयत्नों में शारीरिक और मानसिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ये शक्तियाँ मनुष्य में मूलतः भोजन से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य मूल रूपी जामुरी शक्तियों से जब स्पाकुल हो जाता है, तब उसके विचारण क क्षिप् उसे ज्ञाना प्रकार के ज्ञान-यद्वायों की आवश्यकता पड़ती है। मूल से वृत्ति पाते ही वह अतिरिक्त शक्त का अनुभव करता है। भोजन का अन्न की पूर्ति से उसे अतिरिक्त शक्ति उपलब्ध होती है। यह अतिरिक्त शक्ति एक प्रकार से पोषक-कार्य करती है। भोजन से निर्मित रक्त-रासि समस्त शरीर क कण-कण में प्रविष्ट हो जाती है, फलस्वरूप मनुष्य

जौबी, दावाभि, स्वात्ममुली इत्यादि प्राकृतिक कार्य-व्यापार आकस्मिक अवतारत्व की भावना के मूक प्रेरकों में गृहीत हो सकते हैं।

आत्म-चेतना और जन्म

अवतार भावना के मूक प्रेरकों में किञ्चिद्गूढ़ प्राकृतिक व्यापारों का भी योग प्रतीत होता है। जिनमें मनुष्य एवं प्राणियों के जन्म की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकृष्ट होता है। शरीर में जिस आत्म-सत्ता या शक्ति का प्रवेश होता है, वह अदृश्य, रहस्यमय और गूढ़ सत्ता है। मनुष्य के मन में ऐसी चारणा रही है कि जब उसका (चेतनात्मक) प्रादुर्भाव शरीर में होता है तो मानव-सिद्धि भी पड़ता है। जब तक वह आत्म-चेतना शरीर में विद्यमान रहती है, तभी तक मनुष्य शक्ति-सम्पन्न और परिवर्द्धनशील बना रहता है। जब वह आत्म-चेतना लुप्त हो जाती है, मनुष्य का शरीर निर्जीव हो जाता है। सिद्ध के इस जन्म के प्रति सामान्य चारणा बड़ी रहती है कि वह किसी अज्ञात प्रवेश से आकर अवतरित होता है। क्योंकि मनुष्य कहीं से आकर जन्म लेता है और किस प्रदेश में मरने पर चला जाता है; दोनों उसका किए गूढ़ रहस्य हैं। किंतु जन्म और आत्म-चेतना के प्रवेश तथा गर्भाशय से नीचे की ओर अवतरित होने की क्रिया का उसकी अवतारवादी मनोवृत्तियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा होगा। उसके मन में मूकवृत्ति तो जन्म और अवतरण की रही होगी, परन्तु विष्य वैशिष्ट्यों का आरोपित करने के लिए उसने अवतारों के जन्म एवं अवतरण का वैधीकरण कर दिया होगा।

ग्रीक होते ही मनुष्य अपने बाह्यत्व और वैदाबसान का अनुमान कर कुछ असहाय सा हो जाता है। पुत्रपेणा उसमें प्रबल हो जाती है परन्तु निरन्तर प्रबल करने पर भी उसे सन्तान नहीं होती। वह श्रेय-विश्वासी मानव किसी देवता या इन्द्रदेव से सन्तान की वाचना करता है। उस वाचना के उपरान्त यदि उसे सन्तान होती है तो बड़े सहज और स्वामाधिक ढंग से दो विश्वास उसके मन में रुक हो जाते हैं। एक तो वह कि पुत्र देवता के वरदान का परिणाम है। सम्भवतः गुण के उपदेश से प्रभावित होने के कारण दूसरा वह कि पृथिवी देवता या इन्द्रदेव का जन्म ही इस सन्तान के रूप में आविर्भूत हुआ है। इस प्रकार अवतारत्व की भावना में भी जन्म एवं आत्म-चेतना की प्रवृत्ति काय करती सीख पड़ती है।

धर्म-परम्परा

धर्म में प्राणियों और वीरों के जन्म की एक शृङ्खला चकती जा रही है। उस युग का मानव इस धर्म-शृङ्खला को पढ़ से पढ़ा, पीछे से पीछे, की उत्पत्ति

क रूप में जानता है। वह अपने पितामह से पिता, पिता से स्वयं स्वयं से अपने पुत्र और पुत्र से पौत्र की प्रायः अपने जीवन में ही घटित होने के कारण, वस-परम्परा जैसी क्रिया से परिचित रहता है। उसके सामने अतीत और आगमिष्य दोनों परम्पराओं के लोग विद्यमान रहते हैं। इस आधार पर सहज ही वह एक बहुत बड़ी वस-परम्परा की या अवतारवादी परम्परा की कल्पनात्मक महिषि सँजो लेता है जिसमें सम्भवतः स्पृत पूर्व पुत्र उस वस-परम्परा का भावि जन्म माना जाता है। उसकी सत्ता को यों वह अनुमान से ही आगमिष्य पीढ़ी में विद्यमान मानता होगा, जिसका विकास विष्णु की पूर्ण या अंश शक्ति के रूप में हुआ।

यों 'जेन' या वसाणु एक प्रकार का वंशोत्पादक तत्व ही है, जो प्रत्येक जीव-कोश में विद्यमान रहता है। प्रत्येक पुत्र अपने पूर्वजों के क्रम से आते हुए, अपने पिता से वसाणु तत्व प्राप्त करता है। प्रत्येक व्यक्ति में जीवन भर इसका अस्तित्व द्विगुणात्मक वृद्धि के अतिरिक्त प्रायः अपरिवर्तित रूप में ही विद्यमान रहता है जिसे व्यक्ति पुनः अपने अगल को प्रदान करता है। समय-समय पर वसाणु की रूप रेखा में परिवर्तन भी होता है जिसे 'म्यूटेशन' या 'नवोद्भव क्रिया' कहते हैं। नवोद्भव वसाणु (gene जेन) पुनः परिवर्तित रूप को पुनरुत्पादित कर द्विगुणित होता रहता है।^१

जिन्म ही प्रारम्भिक युग का मानव अद्यतन वैज्ञानिक शोषों से परिचित नहीं होगा, किन्तु वस-परम्परा से आने वाली किसी सत्ता की भावना उसने अवश्य की होगी, जिसका परिचय विष्णु की अवतार परम्परा में मिलता है।

पराक्रम

अवतारवाद की चिन्ता द्वारा में पराक्रम का विशेष महत्त्व रहा है। मनुष्य जैसी हो या मानवी, अवतारवाद पराक्रमवाद का सिद्धान्त है। मनुष्य के भिरय और नैमित्तिक दोनों प्रकार के प्रयत्नों में शारीरिक और मानसिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ये शक्तियाँ मनुष्य में भूतः भोजन से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य भूत रूपी आसुरी शक्तियों से जब व्याकुल हो जाता है, तब उसके निवारण के लिए उसे मानव प्रकार के ज्ञान-पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। भूत से वृषि पाते ही वह अतिरिक्त बल का अनुभव करता है। भोजन या अन्न की पूर्ति में उसे अतिरिक्त शक्ति उपलब्ध होती है। यह अतिरिक्त शक्ति एक प्रधर से पोषण-कार्य करती है। भोजन से निर्मित रक्त-रासि समस्त शरीर क कण-कण में प्रविष्ट हो जाती है, फलस्वरूप मनुष्य

क शरीर में अतिरिक्त पराक्रम का अवतरण या आविर्भाव होता है। सामान्य कार्य या प्रयत्न के लिए सामान्य बल की आवश्यकता तो होती ही है। उसक अतिरिक्त किसी सञ्ज्ञानिक-कर्मिक सकल का सामना करने क लिए व्यक्तिगत या सामूहिक अतिरिक्त 'पराक्रम' की भी आवश्यकता पड़ती है। प्रारम्भिक मानव सामान्य और संज्ञानिक-कर्मिक दोनों प्रकार के पराक्रमों से अवश्य परिचित रहा होगा। विभिन्न जातियों क बीच होने वाले युद्धों में जिस धीर योद्धा ने अपने विशेष बल और सूझ-बूझ का परिचय दिया होगा; तथा शत्रु पक्ष की सेना उससे भयभीत और आतंकित रहती होगी निश्चय ही वह मनुष्य अपनी जाति या कुल में इतर या विष्य पराक्रम से युक्त सम्झा जाता होगा जिसकी भिति पर अवतारत्व की भावना का विद्यमान हुआ है। ऐसे व्यक्ति अपनी जाति में उदाहरण बन जाते हैं। सब कभी कोई अन्य व्यक्ति उसी प्रकार होने वाले अपन जातीय संग्राम में अद्भुत पराक्रम और युद्ध-कौशल का प्रदर्शन करता है तो स्वभावतः उसकी जाति क लोग जाति में विख्यात पूर्व-पुरुष क पराक्रम से उसके पराक्रम की तुलना करते होंगे या द्वितीय व्यक्ति पर पूर्व धीर योद्धा क पराक्रम का आरोप भी करते होंगे। इस प्रकार अवतारत्व-भावना में मुख्यतः पराक्रम क अवतरण की मनोवृत्ति क वर्णन होते हैं।

नेतृत्व

प्रकृति द्वारा निर्मित जीवों में कोई कमबोर है और कोई शक्तिशाली। सभी बल सक्षम पराक्रम शक्ति या सूझ से सम्पन्न नहीं हैं। मानव जाति में भी कुछ ही व्यक्ति अपने असाधारण पराक्रम शक्ति, और्य संगठनक्षमता और व्यक्तिगत प्रभाव के कारण प्रभावशाली हो जाते हैं। कभी-कभी उनके व्यक्तित्व का प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है और कभी जब तक वे शक्तिशाली बने रहते हैं तथा अपनी जाति या गोत्र-समुदाय का नेतृत्व करते हैं। वस्तुतः उनकी यह शक्ति जन्मजात शक्ति नहीं है अपितु अर्जित या अवतरित शक्ति है। अता प्रभावशाली जीवों या विशेषकर मनुष्यों में प्रभावशालिता व्यक्तिगत साधना के बल पर या कभी-कभी समाज की शक्ति मित्र जान के कारण कुछ समय क लिए या जीवन भर के लिए आविर्भूत होती है। इस आविर्भाव में जन प्रतीकत्व भी समाहित है जिससे उसका मुख्य सामाजिक, जातीय या जन-प्रवृत्त मूल्य हो जाता है।

अधिम युग में नेतृत्व के चुनाव का आधार युद्ध-पराक्रम या। जो विभिन्न कष्टों से जाति या कुल की रक्षा कर सकता था, वही जनका नेता था। सामान्य वर्ग की अपेक्षा विरचय ही इसमें कुछ असाधारणत्व था। इसी अन्य

विधायी युग की मनोवृत्ति देवार्मा कुछ या जाति-देव की अवतरित शक्ति के रूप में स्वीकार करती होगी। विभिन्न जातियों या जाति-समूहों में स्वयं स्वस्थियों के प्रति परस्पर सहायता या उदारता की मनोवृत्ति को 'धुम' भादि विचारकों ने स्वीकार किया है।^१ जिसका आभास अवतारवादी प्रयोगों में हाता है। उदाहरण के लिए भादिम मानव जाति की भाषा में 'पृथ्वी की रक्षा' से तात्पर्य था अतिक्रमिण क्षेत्र या भूमि पट (Territory) की रक्षा से था उस युग की प्रमुख समस्या थी। आक्रमण करने वाली जातियों आक्रमित जातियों के पशुवन कियों या गो इत्यादि को छुड़ा करती थीं। जातियों में जातियों की तरह जो शिल्पक या मनीषी बग या वह जाति या क्षेत्र की रक्षा के लिए योजनाएँ बनाता था तथा युवकों और युवक नेताओं को प्रशिक्षित करता था। इसी से वह भी इतर जातियों के आक्रमण का कथप होता था। शान्ति किये ककारों के द्वारा वह अपने समूह में शक्ति और संगठन की शैली का निर्माण करता था। इसी से कुछ बग उभर कर जो विनाश को अपना परम कथप मानता था। फलतः अवतारवादी-रक्षा का कार्य 'देशीय रक्षा से जागे बढ़कर जाति-रक्षा' कुछ-रक्षा घम-रक्षा गां-रक्षा कलाकार सिद्धी में परिवर्त हो गया। यह स्वभाविक है कि जब भी युद्ध या रक्षा का प्रश्न समाज में उठता है संगठित एवं सुविचारित संचालन के लिए नेतृत्व और सेना-पतित्व सहज ही अविचार्य हो जाता है। जाति-समूह द्वारा सम्पित शक्ति का अविर्भाव इसी में होता है जो नेतृत्व प्रदण करता है। प्रारम्भिक युग में एक मनुष्य में ही अवतरणशक्ति पपास रही होगी। किंतु बाद में यहकर बन रक्षात्मक-कार्यों का विस्तार हो गया होगा तो एक व्यक्ति के अतिरिक्त अनेक मानुषगिक व्यक्तियों में भी जन-प्रदण शक्ति के अवतरण की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी जिसके फलस्वरूप एक अवतार के बाद सामूहिक अवतार का विकास हुआ होगा।

उपयुक्त प्राकृतिक एवं सामाजिक कार्य-व्यापारों के विवेचन से एसा प्रतीत होता है कि अवतरण की मूल-भावना को देने में इनका विशेष प्रभाव रहा होगा।

विकासवादी अध्ययन क्रम

श्रुति एवं सत्यता के प्रसार का अध्ययन करते समय अध्ययन की प्रक्रिया को प्रायः 'विकास शब्द' से अतिरिक्त दिया जाता रहा है। परन्तु विकास-

१ मू विमल अति धूम-रती इ कर।

वाद की मूल प्रक्रिया उत्पत्ति और प्रसार की क्रियाओं पर निर्भर करती है। यदि तात्त्विक दृष्टि से उत्पत्ति और प्रसार के लक्षिरिक्त आनुवंशिक प्रकृति को देखा जाय तो यह स्पष्ट सिद्धित होगा कि विक्रमवाद का सिद्धान्त मूलतः भवतारवाद का सिद्धान्त है।^१ सृष्टि-रत्म और पुरानी सम्प्रदाय का जीवन-शरीर से ही नयी सृष्टि और नयी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव होता रहा है। सृष्टि एवं सम्प्रदाय के विकास से तात्पर्य है—आदि काल से लेकर अबतक प्रत्येक युग में नयी भौतिक-शक्तियों तथा प्रातिम शक्तियों का अवतरण। अथवा आकाश तथा से वायु का, वायु से अग्नि और अग्नि से जल और जल से मिट्टी के भौतिक पदार्थों का अवतरण प्रायः सांख्य मत में भी प्रकटित रहा है। भूगर्भशास्त्री सूर्य से अग्नि और अग्नि प्लव से जल और पृथ्वी की अवतारना स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इनके आविर्भाव के साथ-साथ अनेक मृगमांदि वातु एवं पदार्थ शक्ति-स्रोतों के रूप में आविर्भूत होते रहे हैं और अब तक निरन्तर होते आ रहे हैं। आद्य-अग्नि से लेकर पूरेमिथुन इत्यादि वातुओं तक शक्ति-स्रोतों का प्रादुर्भाव होता रहा है। किन्तु इस प्रादुर्भाव की क्रिया में भी एक शक्ति से दूसरी शक्ति का आविर्भावक्रम उचित होता है। अतः सृष्टि एवं सम्प्रदाय के विकासवादी अर्थवचन का क्रम में 'विकास' की अपेक्षा 'भवतार' अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। इस युग तक जीव शक्ति, अग्नि शक्ति, विद्युत् शक्ति और अणु शक्ति आदि अनेक शक्तियों के आविर्भाव होने के कारण अब उनका अस्तित्व में कोई संशय नहीं करता। सम्भव है अनेकअनेक शक्तियाँ अज्ञात रहस्य लोकों में पड़ी हों और ज्यों-ज्यों उनका उद्घाटन होता जावेगा वैसे ही विज्ञान एवं आधुनिक बुद्धिवाद की भाँसा भी उन पर बहती अयेवी। यदि आज तक इसे परिकल्पना ही समझा जाय तो यह अनुभाव किना जा सकता है कि प्राणियों में विशिष्ट शक्ति का आविर्भाव प्रकृतिवाद में भी असम्भव नहीं है। यों पुरातन युगों से ही ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते रहे हैं जो विशिष्ट मानसिक, पारीरिक और प्रातिम शक्तियों से युक्त रहे हैं।

पौराणिक उपादानों का वैशिष्ट्य

भारतीय पौराणिक साहित्य की विशेषता यह है कि उनमें ज्ञान विज्ञान बर्मे और दर्शन की अभिव्यक्ति आप्त्वाओं के माध्यम से हुई है। उनको अधिक प्राय और अधिक बनाने के किये पौराणिकों ने अनेक तात्त्विक

१ यों आविर्भाव की पुस्तक 'विसेट' जॉर्ज पैन के 'विसेट' से भी यह ज्ञात होता है किन्तु आविर्भाव के सिद्धान्त मुक्तता विकासवादी सिद्धान्त के रूप में प्रकटित रहे हैं।

विचारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रतीकों के द्वारा की है। यथा—बीरसागर (भीसे आकाश में व्याप्त किसी कास्मिक द्रव्य का प्रतीक या बीर स्वरूप पोषक तत्व से प्रथम सृष्टि-विकासक बीज की उत्पत्ति का प्रतीक) में विष्णु से कमल (सहस्रदल या सहस्रदल) पर ब्रह्मा की उत्पत्ति; पौराणिक आख्यानक महर्षि के अतिरिक्त प्रतीकात्मक अर्थ भी द्योतित करता है। इस आख्यान का सृष्टि-परक अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है—भस्वर किन्तु पोषक तत्वों से पुनः जन्म, भीसे आकाश रूपी समुद्र में सूर्य विष्णु से सहस्रदल (यानि दृक्, बृहस्पति, बुध मंगल, पृथ्वी, तथा राहु-केतु) रूपी सप्तदल की उत्पत्ति हुई और उन पर ब्रह्मा के रूप में सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार विष्णु-कमल पर ब्रह्मा की उत्पत्ति का आख्यान—आगतिक अवतरण का प्रतीकात्मक आख्यान कहा जा सकता है।

इस व्याख्या से निश्चय ही मेरा तात्पर्य मूर्त्तिकीय दृष्टि से पौराणिक आख्यानों के सत्य का वैज्ञानिक उद्धारण नहीं है अपितु उनमें निहित प्रतीकार्थ को मनोवैज्ञानिक व्याख्या के द्वारा स्पष्ट करना है।

प्रतीकीकरण

प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है। आदिम काल से ही वह विभिन्न अनुकरणात्मक क्रियाओं स्वयियों उच्चारणों और मुद्राओं को तथा अपने मनोगत भावों और इच्छाओं को प्रतीकात्मक भाषा या मुद्राओं के द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा करता रहा है। प्रतीक में ऐसे अर्थ विहित होते हैं जिनको प्रायः अनुभव के सम्पर्क से नहीं जाना जा सकता। प्रतीक में कूसरी विरायता यह कथित होती है कि वह समस्त अर्थवत्ता को वर्णमूत्र कर देता है। यों मानव समी मूर्त्त या अमूर्त्त विषयों का विस्तार प्रतीकों के ही माध्यम से करता रहा है। जिन्हें कोटाकारों ने 'सम्पूर्ण' और 'संपातित' दो प्रकार के प्रतीकों में विभाजित किया है। प्रतीकीकरण की क्रिया में अचेतन और अचेतन मन का विस्तार हाथ रहता है। अचेतन मन में विस्तृत इतित सपनात्मक स्मृतियों, कामनाओं और कामनाओं का बृहत्कोश होता है, जिसकी अभिव्यक्ति अनुभूति और कल्पना का सम्बल संकर सम्पूर्ण-प्रतीक, भाव-प्रतीक, स्वप्न-प्रतीक कला-प्रतीक और संस्कारगत पुराण—(मिथिक)—प्रतीकों के रूप में होती है।

पुराण-प्रतीक

पुराण-प्रतीक वे मूल-प्रतीक हैं जो अमादि काल से आते हुए मानव जाति

की बुद्धि और भाव-चेतना को अपने अन्तर में क्षिपाय हुए हैं। प्राचीन वाक्याय में उपलब्ध 'जिन उपकरणों में वे मूक प्रतिमा-प्रतीक विदित हैं, मग की असंतुष्टि वसाओं में वे बहुत कुछ प्रकाश में आ सकते हैं, किन्तु वास्तविक रूप में जिस मूक प्रतिमा (कट्टमोज) का प्रतीक जितना ही पुरातन (प्राइमोर्डियल) है उसका तात्पर्य निश्चयना उतना ही कठिन है। वे मूक प्रतिमार्थ (आर्केटाइपल इमेजेज) को मनोविकृतियों में व्यक्त होती हैं, प्रायः अबमें अनुत्त विभिन्नता होगी है क्योंकि बिना किसी मूक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के ही वे मानस-तकपर अभिव्यक्त हो जाती हैं।

पुग के अनुसार इन मूक प्रतिमाओं के द्विविध रूप होते हैं। एक ओर तो वे उन मानस क्षिपाओं का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करती हैं जो भाव-प्रकाशियों में सामान्य रूप से व्याप्त हैं। इस अर्थ में वे मनुष्य की जागतिक प्रवृत्तियों को व्यक्त करती हैं। दूसरी ओर वे मानस-व्यापार तब तक कोई प्रतीकात्मक रूप नहीं ग्रहण करत जब तक वे किसी विशेष ऐतिहासिक व्यक्ति का तात्पर्य नहीं सूचित करते। यदि मनुष्य की 'प्रासूहिक अवचेतना द्वारा व्यवहारित एवं एकत्रित प्रासूहिक वृत्तियों का विश्लेषण किया जाय तो निश्चय ही यह स्पष्ट पता चक जायेगा कि जो 'माव प्रतिमा' जितनी ही पुरानी होती जाती है उसका प्रतीकीकरण उतना ही सखन और विपम होता जाता है—और एक काक ऐसा जाता है कि उस कुछ प्रतीक की व्याख्या करना कठिन हो जाता है। पौराणिक, साधनारमक और साम्प्रदायिक प्रतीकों के साथ यह कथन बहुत कुछ चरितार्थ प्रतीत होता है। पुरातन प्रतीकों की विशेषता यह है कि इनका उद्भव किसी चिन्तक या मनीषी व्यक्ति के मन में ही होता है जिसका प्रचार समाज में उसके अनुगामी करते रहते हैं। अनुगामियों के द्वारा यह प्रतीक समाज में स्वीकृत एवं प्रचलित होता है। एक ओर तो जन सामान्य में उन प्रतीकों के प्रति भावात्मक आस्था बढ़न कमाती है। दूसरी ओर अनुगामी कतिपय अवयवों से युक्त कर प्रतीकों को रुचिकर ग्राह्य एवं लोकप्रिय बनाते हैं। वे अवयव कमी तो मूक प्रतीक के साथ रहते हैं और कमी-कमी स्वतंत्र प्रतीकार्थ स्थापित करने कमाते हैं। पुग अबका सम्बन्ध पुगानुक्रम उपादानों से होता है, जिनमें आचारमूल सत्य की अपेक्षा लोकप्रियता और लोक-ग्राहकता को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार परम्परागत कट-कॉर्ड, प्रसार और परिवर्तन के द्वारा पुरातन प्रतीकों की मूक रूप-रेखाओं में मौखिक परिवर्तन हो जाते हैं और उनकी

मूल अर्थवत्ता पर अनेक युगों की अर्थवत्ता कइनी खड़ी जाती है। परिणामतः उनका रूप समी दृष्टियों से अज्ञात हो जाता है। कभी उनमें दार्शनिकता का पुट मिश्रता है कभी रूपकालकता का और कभी अन्वेषिकपरक वैज्ञानिकता का तात्पर्य निकलता है, तो कभी प्रतीकालक मनोवैज्ञानिकता का। और कभी इन समी का समन्वित बोध एक ही पुराण-प्रतीक या उससे त्रिगत प्रतीक-प्रतिमा में होता है। इस प्रकार एक ही मूल पुराण-प्रतीक अनेक युगों की अर्थवत्ता से समाविष्ट होकर अनेकानेक भाषों और अर्थों का न्यायक बन जाता है। निष्कर्षतः पुराण प्रतीक एक मस्तिष्क की उपज होकर मोक्षमार्गिक प्रकृति का होता है। उसमें पारस्परिकता अनेकअर्थता, प्रमगगर्भत्व अर्थगोत्राणकत्व रुचिबद्धता, बहु भावपालकता इत्यादि वैशिष्ट्यों का समावेश हो जाता है। ऐसे पुराण-प्रतीक सामूहिक संस्कारगत प्रभावों से आन्वेषिक प्रतीक-प्रतिमाओं के मूलकोट सिद्ध होते हैं। कभी-कभी इन मूल प्रतीकों से विकसित प्रतीक-प्रतिमाओं का इस सीमा तक विस्तार होता है कि मूल प्रतीक स्वनाम या कभी-कभी अपने समस्त अवयवों के माय गीत हो जाता है और उससे उद्भूत प्रतीक प्रतिमा प्रमुख तथा व्यापक बन जाती है। आगे बढ़कर इन तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए पुराण-प्रतीकों का व्याख्या एक विरलेपन के द्वारा प्राथिवैज्ञानिक तथा मानव-साक्षीय तात्पर्य निकालन का प्रयास किया गया है। आदिम मानव सृष्टि एवं प्रकृति को जिन प्रतीक-प्रतिमाओं के रूप में देखता है वे प्रतिमाएँ देवत्वपरक उनको आरण्या तथा उनको आदिम मनोवृत्ति और भावना का ही बोध कराती हैं। यह जगत् की प्रकृति को एक अर्थात् मूर्तिमान सत्ता के रूप में देखता है यह उसकी भावना की यह शैली है जिन्में पौराणिकता या पुराण-प्रतीकों के निर्माण में योग दिया है। अतः देवत्व की तत्कालीन मनोवृत्ति को छोड़ कर पुराण-प्रतीक को सृष्टि से ही अवनार-प्रतीकों का अभ्ययन प्रस्तुत किया गया है।

विक्रमसंघादी उपादान और पौराणिक प्रतीकों की तुलना

प्राकृतिक विज्ञानों के विकास और अवतारवादी विकासवाद में प्रमुख साम्य यह प्रतीत होता है कि दोनों ध्रुवों से पूरबी ग्रह का अवतरण और पूरबी पर बह-जीवों का आविर्भाव, अठ जीवों में अठ पशु, अठ पशु से अठ खड़ी उमय पशु उमय पशु से सरीसृप-पशु-पक्षी सरीसृप स पशु पशु से पशु-मानव तथा पशु-मानव से मानव और मानव से मन्वाची मानव के आविर्भाव जैसा मिलता-जुलता क्रम मानते हैं।

किन्तु दोनों के अध्ययन एवं विश्लेषण की पद्धतियों में मुख्य अन्तर यह है कि प्राकृत विज्ञान-क्षेत्र एवं मानव-शास्त्री जहाँ भूगर्भशास्त्रीय पद्धतियों एवं उपादानों के अध्ययन के द्वारा वस्तुनिष्ठ मीतिक पदार्थों या स्पष्ट सारीरिक-यत्नों के विश्लेषण द्वारा घट्टि एवं मानव-सम्पत्ता का विकास-क्रम निर्धारित करते हैं; वहीं पौराणिक अवतारवादी अध्येताओं ने विभिन्न पुण्यों के प्रतिनिधि-मूर्तियों के द्वारा शक्ति, बल, पराक्रम तथा मीतिक, जैविक, पाश्चात्य सारीरिक, सामूहिक और आधुनिक शक्तियों का अवतरण-क्रम निर्धारित किया है।

प्राकृतिक विज्ञान से ही प्राणी-विज्ञान तथा प्राणी विज्ञान से मानव विज्ञान एवं मानव-शास्त्र का विकास हुआ है। अन्व प्राकृतिक विज्ञानों की तरह प्राणी या मानव विकास के वैज्ञानिक अध्ययन का आधार वे प्रस्तुत अवशेष रहे हैं जो प्राणियों और मनुष्यों से बहलकर पत्थरों के रूप में परिणत हो गए हैं। विभिन्न स्थानों में उपलब्ध इन प्रस्तुत अवशेषों ने मानव-विकास के अध्ययन को एक नया मोड़ दिया है। इस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान का आधार ये भू-गर्भीय प्रस्तुत अवशेष रहे हैं, जिन पर प्राकृतिक विज्ञान की समस्त परिकल्पनाएँ और निष्कर्ष आधारित हैं। विकासवादी अध्ययन में सहायक दूसरे उपकरणों में विभिन्न स्थानों में मिली हुई वे हड्डियाँ और खोपड़ियाँ हैं, जिनके आकार प्रकार और कठोरता इत्यादि के आधार पर मानव विकास-क्रम का अध्ययन किया जाता है। प्रायः पशुओं, बन्दरों, खंजूरों, बलमानुषों और मनुष्यों के अंगों की विभिन्न हड्डियों और खोपड़ियों की तुलना के अवन्तर विकासवादी वैज्ञानिकों ने अनेक विकासवादी निष्कर्ष निकाले हैं। बाद में जब कि प्रातिनिधिक या विकास-संज्ञका में आने वाले पशुओं की आदतों कर्षों तथा उनकी मानसिक बुद्धि स्थित सृष्ट, चातुर्बल, कल्पना आदि के अध्ययन द्वारा उनके मनुष्यों के अतीत कासीन वंशानुक्रम में प्रस्तुत किया गया है।^१

इसी प्रकार मानव-सम्पत्ता के विकास का अध्ययन करने वाले मानव-शास्त्रियों ने मनुष्य की विभिन्न नस्लों या प्रजातियों तथा आदिम जातियों की प्रचलन पद्धति सारीरिक विकास वंशानुक्रम एवं रहन सहन सम्बन्धी विशेषताओं का अध्ययन कर मानव-सम्पत्ता के विकास-क्रम की स्पष्टि निर्धारित की है। इन अध्येताओं ने मानव-निर्मित वायुधों, औजारों, सामाजिक संगठनों रीतियों रिवाजों और विश्वासों का परम कला साहित्य भाषा विज्ञान इत्यादि सांस्कृतिक तत्त्वों के अध्ययन द्वारा विकासवादी परिणामों का विश्लेषण किया है।

१. 'विसेंट वाइड मेन'—में यही पद्धति अपनायी गई है।

प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता और मानव शास्त्र के विद्वानों ने विकास-क्रम में जान वाले युगों का विमात्रण भू-नाम-शास्त्राय रीति से किया है, तथा जीवों से सम्बद्ध युगों में अस्तित्व रखने वाले पशुओं और पौधों के पुरातन रूपों का अध्ययन किया है। उनका इस अध्ययन की विशेषता यह है कि उन्होंने प्रत्येक युग के वास्तविक प्रतिनिधि जीवों एवं पशुओं का चयन किया है। प्रायः ये पशु और उनका प्रस्तुत अस्तित्व अवशेष, इन पशुओं के अस्तित्व-युग के वास्तविक वैशिष्ट्यों से युक्त होने के कारण, उनका विशिष्ट अस्तित्व-युगों के बंधार्थ प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार ये प्राणी अपने युग की सारी विशेषताओं से समाहित हैं।

अवनारवाही प्रतीक सन्धि-युग के घोटक

परन्तु अवनारवाही परम्परा के प्रतीक-जीव युग विशेष के प्रतिनिधि होने की अपेक्षा हो या हो मे अधिक भूगर्भीय युगों के सन्धि-काक के प्रतिनिधि अधिक प्रतीत होते हैं। स्वर्ण मत्स्य का कट्टर से क्रमशः बढ़त-बढ़त वृद्ध रूप में उसका विकास या अंतिम 'एक शृंगतनु' के रूप में उसका वृद्धाकार रूप दो भूगर्भीय युगों के सन्धि-काक का घोटक प्रतीत होता है। इस वृद्धाकार मत्स्य में मत्स्य-रूप और मत्स्य युग दोनों की विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसी प्रकार कूर्म भी मत्स्य युग और मरीचुप युग के बीच का प्रतिनिधि प्रतीत होता है क्योंकि वह दोनों युगों के वैशिष्ट्यों से युक्त है। बराह में भी मरीचुप युग की अंतिम अवस्था के गुण—पेट का बड़ा होना मुँह का लम्बा होना तथा 'मैमिलियन' युग के पौधों से शैवता और सुरभजन कराना—आदि गुण 'रेपिडिलियन' और 'मैमिलियन' युगों के संविफाट के घटक प्रतीत होते हैं। शुसिह में एक ओर 'मैमिलियन' पशु युग के प्राकृतिक पराक्रम का परिचय मिलता है। और दूसरी ओर शरीर का आकार छोटा होना रूप भी उसमें शारीरिक पराक्रम का तत्कालीन पशुओं के समान आचरण और मानव के सहज मानसिक आनुवंशिक शक्तों की प्रकृति हैं। आकार प्रसार में भी वह अर्द्ध-पशु और अर्द्ध-मानव है।

इस दृष्टि से वह 'मैमिलियन' युग और 'प्लेसोपोसायड' युग के संविफाट का प्रतीक प्राणी माना जा सकता है। उद्यु मानव 'बामन' नाम युग का प्रतीक विहित होता है जिस युग में प्राणियों का मनुष्यत्व से मनुष्य की ओर विकास हो रहा था। उस समय मनुष्य आकार-प्रकार और बनावट की दृष्टि से तत्कालीन वनमानुष या उसी के समकक्ष किसी मानव सम 'प्लेसोपोसायड' प्राणी के आकार का होगा। किन्तु उस उद्यु मानव 'बामन' में

पराक्रम सूत, चातुर्व्यंजि के रूप में शारीरिक बल की अथवा भावसिद्ध बल का प्राबल्य लक्षित होता है। अतः वामन 'प्राति-नूतन-युग (Pleistocene Period) के अंत में जाने वाले 'हो-मैगन' मानव के काल में अकस्मात् आविर्भूत होने वाले मेधावी-मानव (होमो-सेपियन्स) की तरह प्रतीत होता है। इस प्रकार वामन को मानवसम (एन्थ्रोपोभाएड) युग से लेकर मेधावी मानव (होमो-सेपियन्स) युग के संधि-काल का प्रतीक उद्यु-मानव माना जा सकता है।

प्रागैतिहासिक पुरातत्त्व विज्ञानवेत्ता 'पूर्व-पाषाण-युग और 'नव पाषाण-युग के बीच में एक 'सधि-पाषाण-युग (Mesolithic Period) मानते हैं।^१ इस युग तक मानव सिंघारी-अवस्था के पश्चात् पशु-पारुष्य एवं आसिद्ध रूपि अवस्था तक पहुँच चुका था। अवतार-रुम में जाने वाले वामन के बाद परशुराम इसी सधि युग के अवतार-प्रतीक कहे जा सकते हैं। उद्युप-बाण और करसा सिंघारी मानव के उपकरण थे। उद्यु काल में गांधि को शचीक द्वारा दिये गये एक महक विरोध कोरि क अर्थ तथा कामधेयु को लेकर परशुराम का संघर्ष^२ दोनों पशु पाकन युग की अवस्था चोखित करते हैं। परशुराम और सहस्रबाहु का युद्ध उस युग की सम्भता में चलने वाले स्वकिनात बन्ध पराक्रम (Savage force) और सहस्रबाहु के रूप में संगठित हुक पराक्रम (Clan force) के परस्पर संघर्ष का सूचक है। इसी हुक पराक्रम का प्रसार राम के युग में संगठित अथ आतिथों के पराक्रम (Tribal force) के रूप में परिणत हो जाता है। राम के युग में जब आति पराक्रम (Tribal force) उद्युत वर्ग^३ (Forward class) और निज्जवर्ग (Backward class) दो प्रकार का मिलता है; जिनमें परस्पर संघर्ष होते रहते थे। इस युग में दोनों वर्गियों के समन्वय से आदर्श राजतंत्रीय राज्य की स्थापना हुई थी। अतः राम पशुपाकन-युग और रूपि प्रभाव राजतंत्रीय समाज युग की सधि-अवस्था के प्रतीक कहे जा सकते हैं। राम का काळ आर्ष और ऋषि की संधि का भी काळ माना जा सकता है। रूपि के युग तक राजतंत्र का बहुत विकास एवं प्रसार हो चुका था तथा जनतंत्र का प्रारम्भ हो गया था। इसका अवतरण अनेक राज्यों के स्वार्थ परक संघर्षों एवं गृहयुद्धों के संघिकाळ में होता है। पशुपाकन रूपि, उद्युप,

१ मानव शास्त्र पृ १ ।

२ मा ९, २५, २

३ मा ९ २५, २५-२६

४ मानवशास्त्र-पृ २१० इस प्रकार का विभाजन मानवशास्त्रियों ने किया है।

वास्तव्य तथा राजनीतिक दृष्टीनिष्ठता सभी इस युग में अत्यधिक विस्तार पाते हैं।

इसके विस्तार के साथ ही परस्पर स्वार्थों में भी वृद्धि हो जाने के कारण स्वार्थयुद्ध और गृहयुद्ध के साथ इस युग की संस्कृति का पतन होता है। इस प्रकार कृष्ण राजतंत्रीय युग और बहुराजतंत्रीय स्वार्थी गृहयुद्ध के बीच स्थापित गणतन्त्र युग सभिकाल के प्रतीक विहित होते हैं। राजतंत्रीय स्वार्थ और उस युग में बनी हुई मौलिक, उपमोक्ष सामग्रियों के प्रसार से तत्कालीन मानव जीवन की सांसारिक छिन्ना को अपनी सीमा पर पहुँचा दिया जा। इस 'समपूरक बिन्दु' (Saturation Point) पर पहुँच कर मृत्युस भी भोगासक्त मानव की प्रवृत्ति अहिंसा और अनासक्ति की ओर हो चली थी। बुधोन्नत, अहंन और कृष्ण उस युग की स्वार्थपरता, संघर्ष और स्पेन्द्रा चारिता के प्रतीक हैं। अतः हिंसा और अहिंसा तथा भोगासक्ति और अनासक्ति के इस संबि-काळ के प्रतीक युद्ध कहे जा सकते हैं। विश्व के इतिहास में बुद्ध, महावीर, कन्फ्यूसियस, ईसा, अरबुद्ध इत्यादि इस युग के परिचायक हैं। सभी में अहिंसा और अनासक्ति का किसी न किसी रूप में प्राधान्य है। सारे विश्व में ही जातीय घुसंस संघर्षों के बाव इस युग की अवधारणा उपर्युक्त महापुरुषों के द्वारा होती है। अतः युद्ध हिंसा और अहिंसा के संबि-काळ के छोटक विहित होते हैं। मनुष्य का इतिहास यहाँ तक आबद्ध परी रहता अस्तित्व वर्तमान और भविष्य में उसकी सीमा में आबद्ध है। समाज की समाधिगत मनोवृत्तियों में अहिंसा और अनासक्ति को सदा के छिपू बैद्यना आपन्न कठिन है। असा वर्तमान युग में नैतिक आचरण के प्रति उपेक्षाभाव और मौलिक या ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के छिपू व्यक्तित्व या सामूहिक पूव सांस्कृतिक प्रयत्न इस युग की विशेषता है। इस युग की कामनाओं में स्वार्थपूर्तिवर्तित संघर्षों के बीच छिपे हुए हैं मिनकी परिणति विभिन्न आबधिक युद्धों में हो रही है। आणविक युद्ध की अवकरता इस सीमा तक बढ़ गई है कि घससे मरुस्त मानव-जाति का संहार होने में कोई संदेह नहीं रह गया है। सम्भव है युद्ध की समाप्ति के बाव नयी मानव चेतना का उद्भव हो जिस पर नयी मानव-जाति की सम्भता आबद्ध होगी। कश्कि में दोनों युगों की सम्भावनाएँ समाहित हैं इमछिपू वह वर्तमान और भविष्य के संबि-काळ का प्रतीक माना जा सकता है। इस प्रकार दसों अवधार-प्रतीक केवक अपने युद्ध-विशेष का ही परिचय नहीं देते अस्तित्व इनका आबिर्भाव सारी विशेषताओं से युक्त युग की उस परमावस्था में होता है जब कि इनमें परिवर्तन की अपेक्षा रहती है। अवतरित शक्तियाँ इसी

परिवर्तन काल में उपस्थित होती हैं जिनके फलस्वरूप भौतिक या मानविक परिवर्तन होते हैं तथा संस्कृति एवं सभ्यता में अनेक नूतन प्रवृत्तियों से सज्जिविष्ट एक नयी चेतना का उद्भव होता है। अवतरित सृष्टियाँ कुछ काल तक नयी चेतना में योग देकर लुप्त हो जाती हैं। इस तरह अवतार युगपरि वर्तन की स्थिति के घोटक हैं।

मानवशास्त्रीय और अथतारवादी काल-विभाजन

प्राकृतिक-विज्ञान का मानव-शास्त्र प्रायः इन दोनों में जहाँ तक काल विभाजन का प्रश्न है, दोनों ने भूगर्भ-शास्त्रीय विभाजन को अपनाया है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि पृथ्वी की उत्पत्ति और उस पर उत्पन्न होने वाले प्राचीन प्राणियों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष जगत् की अपेक्षा भू-गर्भीय तथ्यों से अधिक रहा है। विभिन्न प्राणियों एवं जनस्पतियों के आणविक की को भी सामग्री उपलब्ध है, उसमें विभिन्न भूगर्भीय युगों की चट्टानों में अवस्थित 'प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों' का विशिष्ट योग है। प्रस्तरित अस्थि अवशेषों वाले प्राणियों का अन्वय-निर्धारण उन चट्टानों पर निर्भर करता है, जो भूगर्भीय युगों में आकार धारण करते रहे हैं। इस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान और मानव-शास्त्र की अर्थात् सामग्री का सापेक्ष सम्बन्ध भूगर्भीय पदार्थों से है, इनके द्वारा भूगर्भीय युग-विभाजन का अपनाया जाना पुष्टिसंगत है। किन्तु अथतारवादी सामग्री का सम्बन्ध भूगर्भीय तथ्यों से न होकर उन मनोवैज्ञानिक पुराण-प्रतीकों से है जिनका विकास जन-मन के अचेतन मानस में होता रहा है। वह प्राचीन मानव की विनी भावना और तर्क पर आधारित परिकल्पनाओं (हिपोथिसिस) पर आधारित है। पौराणिक मानव पुराण-प्रतीकों के द्वारा पौराणिक सृष्टि शास्त्र की रचना करता रहता रहा है।

पौराणिक सृष्टि का वैशिष्ट्य

पौराणिक सृष्टि-क्रम की विशेषता यह रही है कि पौराणिकों ने सृष्टि-क्रम पर विचार करते समय ज्ञान (दर्शन), मनोविज्ञान और विज्ञान (प्राकृतिक विज्ञान) इन सभी के समन्वित रूपों को ग्रहण किया है। पुराणों की परम्परा में सृष्टि-क्रम की खोज करने वाले महाभारत में आध्यात्मिक भौतिक, वैदिक आनन्दवैदिक और भ्रान्तिक जगन्मग पौत्र प्रकार के सृष्टि-क्रम के उदाहरण मिलते हैं। विष्णु से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति आध्यात्मिक प्रतीत होती है। सृष्टि-क्रम में उत्पन्न होने वाले कल्पवृक्षवृद्धि तथा उनकी परम्परा में उत्पन्न-मोम (चन्द्र) अग्नि अन्तः प्रत्युप, प्रसाम इत्यादि भौतिक सृष्टि के

उदाहरण माने जा सकते हैं।^१ पुच्छ स उत्पन्न सरस, सिंह किम्बुरुप, व्याम, रीढ़ ईहास्यग इत्यादि पशु पक्ष पशु-मानव जैविक सृष्टि के प्रतीक हैं।^२ बरगद, पीपल, जैसे कुछ वानस्पतिक सृष्टि के सूचक हैं। किन्तु कीर्ति मया, ब्रह्मा बुद्धि कृष्णा मति (महा० १, ११ १५-१५) शान्त (१, ११ १३) और काम काम और हर्ष (महा० १ ११, १२) इत्यादि मानसिक सृष्टि के प्रतीक ज्ञात होते हैं। पुराणों की परिपुष्ट परम्परा में सुहीत होने वाले श्रीमद्भागवत में भी उपर्युक्त प्रकार की विशेषताएँ उल्लिखित होती हैं। भागवत के अनुसार सृष्टि से पूर्व सर्वत्र अलक्ष्य। समा प्राणियों का सूक्ष्म-शरीर किम्बु रूप विष्णु अक्ष में निवास कर रहे थे। कार शक्ति उन्हें जगती है और स्वच्छ करती है (भा० १ १ १)। विषयों का रूपान्तर होना ही काम है। (भा १, १० ११)। इसी क्रम में सर्वप्रथम अण्ड-स्वरूप-द्विरव्ययम विरस्य पुरुष का आविर्भाव होता है (भा १ १ ८)। जो एक सहस्र द्विर्य वषों तक सम्पूर्ण जीवों को एक साथ लेकर रहा (भा १, १ १)। यहाँ विष्णु यदि विमुक्त का प्रतीक है तो द्विरव्यय गम उस अनुरूप का चोतक विदित होता है जिसमें एक कोशिक (unicellular) प्राणी से अनन्त कोशिकीय प्रणियों में विकसित होने वाले ब्रह्माण्डों के जीवाणु कोश (Jerm-cell) और तनु-कोश (Somatic-cell) की अविकृष्टि की मारी सम्भावनाएँ सन्निविष्ट हैं। यहाँ अण्ड स्वरूप द्विरव्ययम पुरुष का विकास क्रमशा मूल श्रीम तासु मधुना, अँक त्वचा कण चर्म और रोम के रूप में तनु-कोश (Somatic cells) के विकास का चोतक प्रतीत होता है जिसमें क्रमशः द्विगु बीर्ष गुहा, हाथ, चरण आदि भी उत्पन्न हुए।^३ उसी द्विरव्ययम में मानसिक उत्पत्ति क्रम की चर्चा करते हुए कहा गया है कि पुत्र उसमें बुद्धि, इन्द्रिय (भाव अनुभव) अहंकार, चित्त इत्यादि क्रमशः

१ उत्पन्न हुए। महाभारत की तरह श्रीमद्भागवत में भी सृष्टि-प्रक्रिया को प्राकृत बौद्ध भव से १० प्राणों में विभक्त किया गया है। इनमें १—महत्तर २—अहंकार, ३—मूल सर्ग ४—इन्द्रियाँ ५—इन्द्रियाभिधाता या इन्द्रिय रूप सन्निधौ य आध्यात्मिक या आधिभौतिक प्रतीत होते हैं। पुनः ६—अधिष्ठा, तमिस्र अण्ड तमिस्र तम मोह महामोह (पॉल गॉट्टे—य जीवों की सृष्टि का भाषण और विशेष करने वाली हैं) आदि मानसिक या मनोवैज्ञानिक विदित होते हैं।^४ उपर्युक्त प्रकार की सृष्टि-प्रक्रियाओं को प्रकृत सृष्टि बताया

१ महा १ ११, १०-१८

२ महा १ ११ ८

३ भा १ १, १८। ११, २१-२३

४ भा १ १० १४-१६

५. भा. १ १० १०

है। इसके अतिरिक्त वैदिक सृष्टि-क्रम में ७—स्वाधर वृष, वनस्पति, ओषधि कृता, ८—कामग २८ प्रकार के पशु-पक्षी और नौबीं सृष्टि में मनुष्य इत्यादि माने गये हैं।^१ इस सृष्टि-क्रम को वैदिक सृष्टि-क्रम में ग्रहण किया जा सकता है। इसी सृष्टि में कीमार सर्ग की प्राकृत-वैदिक आत् सृष्टियाँ बतलाई गयी हैं, जिनके नाम क्रमशः—देवता, पितर असुर गन्धर्व अप्सरा पद्म राक्षस सिद्ध, चारण विद्याधर, भूत प्रेत पिशाच, किन्नर (हयमुख) किम्बुकुप (पृथ्व-मानव) हैं।^२ इस सृष्टि-प्रक्रिया की विशेषता यह है कि इसमें अवतारण क्रम वा युगानुक्रम स्पष्ट नहीं हैं। केवल उनके मोह और उपमोह मात्र ही कथित होते हैं। किन्तु इनमें से पशुओं और पौधों की उत्पत्ति क अनन्तर भवमुख किन्नर तथा विद्वह-मानव 'किम्बुकुप' के क्रमशः 'एम्ब्रापोभाएड' और 'युमबोभाएड' युग की बाद विकसित हैं। इन्हें मानव के आदिम विकासोन्मुख रूपों का प्रतीक माना जा सकता है। पशुओं की तुलना में मनुष्य की पक्षी विशेषता रही है—सम्पूर्ण पूर्व भाषाओं की अभिव्यक्ति। इस दृष्टि से किन्नर' और किम्बुकुप' का उच्चारण-सम्बन्धी भाषों वा अभिव्यक्तियों से बहिष्कृत सम्बन्ध रहा है जिनकी चर्चा पौराणिक कथाओं में हुई है।^३ इन सभी प्रतीकात्मक तत्वों के होते हुए भी इनमें सृष्टि-विकास का कोई युगानुक्रम नहीं कथित होता। किन्तु अवतारवादी पुराण प्रतीकों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे सृष्टि-प्रक्रिया एवं उसके विकास में युगानुक्रम वा युग विशेष की प्रतीकात्मक प्रकृति का समुचित चोतन करते हैं।

अवतारवाद की दृष्टि से सृष्टि-युगों का सम्बन्ध स्थापित करने क चितने प्रयास हुए हैं, उनमें पियोसोफिस्ट विदुषी एनीबैसैंट का नाम उल्लेख योग्य है। एनीबैसैंट ने 'अवतार नाम की पुस्तक में निम्न प्रकार से युग-विभाजन किया है :—

- १—मत्स्य युग—सिलुरियन एज (Silurian Age)
- २—कूर्म युग—एम्फीबियन एज (Amphibian Age)
- ३—वराह युग—मैमेलियन एज (Mammalian Age)
- ४—गर्ुसिंह युग—लेमुरियन एज (Lemurian Age)

इसी प्रकार उन्होंने बामन आवि मानव-अवतारों को भी विभिन्न विकास-युगों के परिचायक रूपों में मित करने का प्रयत्न किया है।^४ इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध

१ भा ११ २१८—२१

२ भा ११, २६

३ पुराणों में प्रायः प्रकृतिपात्रक के रूप में इनके प्रसंग आए हैं जिनसे भाषाबन्धित पुराण-प्रतीकों की किना में गज्जा की जा सकती है।

४ अवतार ब्रह्म ।

जीवशास्त्री श्री माथी ने भी भारतीय पुराणों में प्रकटित अक्षतारवादी विकास-क्रम का संश्लेष में उल्लेख किया है; तथा प्रत्येक अक्षतार को एक युग विशेष के घोटक-रूप में माना है।^१ इनके मतानुसार कूर्म सरीसृप (Reptile) युग का, वामन—'दिगम्भी एन्थ्रोपोआयड' (Pigmy anthropoids) का तथा परशुराम—'प्रिमिडिव् मैन' वा 'हटर' (Primitive man or hunter) का राम—'बहुपवारी वा 'मार्कड मैन्' (Marked man ito) का तथा कृष्ण और बुद्ध परिष्कृत-मानव के सूचक हैं। पुनः मानवशास्त्री श्री सत्यव्रत ने 'मानव शास्त्र' नाम की पुस्तक में अक्षतारवादी विकास क्रम प्रस्तुत किया है। इनके मतानुसार मत्स्य—प्रथम जलजीव का, कूर्म—जल-स्थल दोनों स्थानों में रहने वाले जीवों का, ब्राह्म—जलमय पशु का मुसिंह—पशु-मानव रूप का, वामन—संक्षिप्त मानव का तथा राम और कृष्ण पूर्ण मानव के प्रतीक हैं।^२ इस प्रकार इन तीनों विभाजनों में अक्षतारवादी विकास-क्रम दिव्यमान का प्रयास लक्षित होता है। परन्तु इनमें एनीडेवेंड ने प्राणि-वैज्ञानिकों द्वारा अपनाए गए विभाजनों के द्वारा कहीं-कहीं तुलनात्मक रूपों की भी शर्त्ता की है, यद्यपि उनका समुचित तुलनात्मक विस्तार नहीं हो सका है। श्री माथी और सत्यव्रत ने अपने विज्ञानों से सम्बद्ध विकास-क्रम के विवेचन में अक्षतारवादी विकासवाद की रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की है। वैज्ञानिक दृष्टि से सुक्षिप्त विरलेपय और तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति इनमें भी लक्षित नहीं होती। इसका कारण यह हो सकता है कि इसक विवेचन की पद्धति का सम्बन्ध उनक शास्त्रों से नहीं हो। परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान में पुराण-प्रतीकों वा धर्म्य प्रतीकों का व्यावसायिक और विरलेपमात्मक अध्ययन बहुत दूर तक आगे बढ़ चुका है। यों उसका व्यावसायिक सम्बन्ध किसी न किसी शास्त्र वा विज्ञान से हो जाता है। अतः अक्षतारवादी पुराण-प्रतीकों का भूगर्भीय युग विभाजन की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन अधिक सुक्षिप्तगत विधित होता है। दोनों का तुलनात्मक रूप निम्नलिखित क्रम से उपस्थित किया जा सकता है:—

Psycho-geological period—पुरा-प्रतीक—युग-क्रम।

Being—दिव्यु—अस्तित्व।

Becoming—प्रजापति—प्रादि जज्ञ युग।

Azoic Period—अद्विधि-करवप—जलीव युग।

Psychozoic Period—मनु—मनोजीव युग।

Archeozoic P —रुद्र मत्स्य—अतिमुपुरा जीव युग। (प्रथम जल जीव युग)

- Proterozoic P —मत्स्य—सुपुरा जीव युग । (जल जीव युग)
 Paleozoic P —महासाय—पुरा जीव युग । (बृहत् जल-जीव युग के बाद सरीसृप युग का आरम्भ)
 Mesozoic P —कूर्म—मध्य जीव युग । सरीसृप—नाग (पट्ट)
 सरीसृप—गर्दभ (पक्षी)
 Cenozoic P —वराह—नवजीव युग । जल गा—स्तम्भप ।

नवजीव युग

- | | | |
|------------------------|-----------------|---|
| १ Eocene P | प्राति मूलन युग | अश्व-गो—स्तम्भप |
| | नृसिंह | कंगूर—Anthropoid |
| २ Oligocene P | आदि मूलन युग | किन्नर—(अश्व मूलन+मनुष्यवत् शरीर) |
| ३ Miocene P | मध्य मूलन युग | (Pithecanthropus erectus) |
| ४ Pliocene P | अति नूतन युग | |
| ५ Pleistocene P | प्राति नूतन | नृसिंह—Anthropomorphus |
| | or | बाबर हरि—(विकल्पित नरः) |
| | वा | humanoid forms |
| glacial Period | हिम युग | |
| ६ Holocene or recent P | सर्व नूतन युग | किम्बुद्वय बह—प्राचीन मानव
Primitive Man |

•—Holocene p सर्वनूतन युग^१—बामन-मेधावीमानव Homosapiens

बामन या मेधावी मानव युग	}	अति प्राचीन—बाकलिकप
		प्राचीन—सगरकुमार
		परवर्ती प्राचीन—बामन

इसके पश्चात् क्रम जाता है मानव-सम्भवा के विकास का । अतः दोष अवधारणों का सम्बन्ध मानव-सम्भवा के विकास से जान पड़ता है; जिसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

१ बामन या—पृ ३३४२, ऑर्गेनिक इन्फो० पृ १८-२९ में भूगर्भशास्त्रीय परम्परा की दृष्टि से विभाजन किया गया है । इन्फोस्युशन ऑफ़ बी जे ट्रिनेटस में विभिन्न कोटि के युगों के बीच और उनके युगों का निर्धारण पृ १, २१ २१ ८२, १४२, १४४, १५५, २१२ ३६४ में किया गया है ।

मानव-सम्पदा-युग

परशुराम युग—अमनीक वा अिम्बर मानव तथा पशुपाकक मानव ।
राम युग—पशुपाकक रूपक मानव राजतत्रीय ।
हृष्य—पशुपाकक, रूपक औद्योगिक, प्रजातत्रीय, सगठित प्रजातत्रीय,
बिन्नक ।

बुद्ध—पशुपाकक रूपक औद्योगिक, व्यापारिक, प्रजातत्रीय, अहिंसक ।
कश्कि—माही मानव एवं उसकी सम्पदा का प्रतीक ।
यहाँ सृष्टि का विकास क्रम मना-भौतिक (Psycho-physical) क्रम
में प्रस्तुत किया गया है । क्योंकि उपर्युक्त क्रम में मानविक और भौतिक
क्रम-निर्वाह का भी अन्तर्भाव हुआ है ।

विद्युत् भू-भौतिकी दृष्टि में भू-गर्भीय विकास-क्रम का वैज्ञानिक महत्त्व
हो सकता है । किन्तु मनावैज्ञानिक विकास-क्रम की दृष्टि से पुराण
प्रतीकों का आधार पर किया गया मना-भौतिक वा मानविक-भौतिक विकास
क्रम अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । सृष्टि-क्रम को अधिक संतुलित करने का
दिग्दर्शनकारी पुराण प्रतीकों का साथ पौराणिक सृष्टि-परम्परा का प्रतीकों
को भी समन्वित किया गया है ।
विष्णु

इस क्रम का आरम्भ हाता है सनातन सत्ता वा धरम अस्तित्व का
प्रतीक विष्णु से जो हंस और काक से परे स्वतन्त्र अस्तित्व का चोतक है ।
अन्य इस सत्ता का किसी युग में मग्ननिष्ठ नहीं किया जा सकता ।
प्रजापति

य सृष्टि विकास-क्रम का दूसरे प्रतीक रहे हैं जो सृष्टि-रचना वा
सृष्टि का प्रथम उपक्रम का चोतक है । इनका 'द्विरव्यागम नाम सृष्टि
रचना का विकासक प्रथम स्पष्टि 'स्युक्तिवस का सूचक प्रतीत हाता है ।'
इस प्रकार सनातन अस्तित्व में सृष्टि की एक विराप प्रक्रिया का आरम्भ में
इनका स्थान आता है ।

अद्विधि और करपव—सृष्टि-क्रम में तीसरा स्थान अद्विधि और करपव का
है । वास्तविक भू-गर्भीय-युग का आरम्भ इन्हीं का काक से ज्ञान पड़ता है ।
१. 'सृष्टि और सत्ता का दृष्टि और अद्विधि दोनों अस्तित्व है ।

वैदिक-साहित्य में अक्षिति विस्तृत और चौड़े स्थावों वाली तथा भाकास और पृथ्वी की देवी हैं।^१

इसमें अजीव पुत्र के साथ कथित होते हैं। करयण, प्रजापति के उन तन्त्रों से पुत्र हैं, जिसमें सृष्टि-उत्पत्ति के अनेक तन्त्र विद्यमान हैं।

मनु

जीव या चेतना में मनो-चेतना (Psycho-consciousness) या (Psycho force)—मनोशक्ति का आभास मिलता है। मनोचेतना को शरीर और चेतना से पुत्र जीव का भावि कारण माना जा सकता है। मनु में विद्यमान मनोचेतना ही जीवोत्पत्ति की जमता रखती है। मनु इस परिष्कारण के मूलाधार मान पड़ते हैं। 'मनु सम्पूर्ण एक शक्ति ही नहीं बल्कि एक अशासुगत क्रम का भी वाचक है।' किन्तु विवस्वान (सूर्य) से लेकर मनु तक जाने वाला यह आनुवंशिक क्रम मनःप्रकृति (Psycho nature) का क्रम विहित होता है। परन्तु यह मनःप्रकृति (Psycho nature) जीव की उत्पत्ति रूप में कारण-कार्य भाव से सम्बन्ध है जीव के आनुवंशिक क्रम से नहीं। इस प्रकार जीव के विकास एवं विस्तार में इसका विशेष योग रहता है। जीव का विकास होने पर अपने बृहत् एवं समर्थ रूप में पुनः जीव स्वयं मनःप्रकृति का धारक और रक्षक हो जाता है।

छन्दु मत्स्य

सृष्टि-विकास के मूल में जो प्रथम जीवसत्ता उत्पन्न हुई थी वह अजीव प्रस (Protoplasmic) सत्ता थी। 'अक्षिति या 'न्युक्तिपत्त के साथ मिलकर प्रथम 'जीव-कोशा के रूप में प्रासुर्भूत हुई। सम्भवतः प्रथम 'जीव-कोशा' का स्थापक यह भावि 'छन्दु-मत्स्य' पुराण-श्रुतीक अन्वतरित 'छन्दु मत्स्य' का समानार्थी कहा जा सकता है। 'छन्दु मत्स्य एक ऐसा प्रतीक है जिसमें एक-कोशीय 'अमीबा या 'कामरूपी' के सभी गुण कथित होते हैं। 'अमीबा एक-

१ वैदिक मंत्र ५ १२५।

२ वैदिक मंत्र ५ १२५।

३ वैदिक मंत्र ५ १२५-१२५।

४ प्राणि वैज्ञानिक 'जिओ मस्यो के समान मत्स्य के अनेक मत्स्यवत् जीवों का विकास मानते हैं। जो गर्भावस्था में शिशु का प्रारम्भिक रूप मत्स्य गर्भत्व शिशु से बहुत मिलता-जुलता है। 'जैनेतिक एन्डोस्कुलन ५ १८९ में शीकर ने होमों का दुस्नात्मक रूप प्रस्तुत किया है। जीवसत्ता का अन्वयन प्रायः खुनी हुई जीव-वातियों के द्वारा होता रहा है। पुष्प-प्रतीक-श्रेणी में भी खुनी हुए जीव प्रतीकों की परम्परा विहित होती है।

कोशीव एक ऐसा प्राणी है जो अपनी क्रमता क अनुसार सतत आकार परि बनन करने क कारण 'कामरूपी' कहकता है ।' भारतीय पुराणों में इन्द्रानुरूप रूप धारण करने वाले कामदेव से भी मरत्य का प्रतीकारक सम्बन्ध कहा है । अतएव अनुमानता 'क्यु मरत्य को भादि जीव या उद्भिन्न शोर्भों का प्रतीक माना जा सकता है । मरत्यावतार की कथा जो 'प्राज्ञाओं में मिळती है उसमें प्रकृपावस्था सृष्टि के 'ब्रह्मयुग' का घातक ह । सततय प्राज्ञा क अनुसार एक ऐमे मरत्य की कथा मिळती है जो उचरोचर ब्रह्मसीक है । मनु उस सङ्ग मरत्य को ब्रह्मपात्र में रक्तने है उसका आकार वड ध्यान पर तलाब में डाक देते हैं पुनः तालाब से नद्दों में और बाद में चककर समुद्र में उसे डाक सृते हैं । इम कथा में मरत्य का आकार-परिवर्तन दिक्काल-सापेक्ष है । मरत्य का रथानास्तर एव परिवर्तन एक ओर ता ब्रह्म-श्रीषों क युग सापेक्ष बैशिष्टयोद्भव का परिचायक जान पड़ता है जिसमें मनु जैसे मन-शक्ति (Psycho-force) का विशेष योग रहा है ।

मरत्य

मनःशक्ति (Psycho force) की प्रेरणा से क्यु मरत्य, मरत्य रूप में आता है । मरत्य से लेकर बृहत् मरत्य तक की क्रिया में जीव-विश्वस क परिपापण या एक कोश से बहुकोशीय होने की प्रक्रिया तथा रथानगन और काकगत परिवर्तन या नम्युद्भव (म्युटेसन) का भाग होता है । इमी काळ में वह रोकदार प्राणी क आकार में परिपतित हो जाता है ।

बृहन् मरत्य

मनु में भाकर बृहत् रूप में मरत्य क पराक्रम का सक्रिय रूप उचित हाता है । वह भव एक 'संगठन' क रूप में मनु—(Psycho-force) शक्ति का रचक ह साथ ही अतिक सृष्टि के बीज और औदबिर्भों की भी वह रका करता है । इम रूप में बृहत् मरत्य सरीसृप-युग क प्रारम्भिक पशुओं का भा घोलक है, क्योंकि सरीसृप-युग क सरीसृप जीव बहुत मबकर और बिसारक आशर वाले माने जाते हैं । सर्वप्रथम इनका बिकास जक ही में हुआ और बाद में इनका सम्बन्ध जक और श्यक शोर्भों से हो गया । इम प्रकार ब्रह्म-श्रीष युग के अन्त तक की सृष्टि-कथा का प्रतीकारक अन्तर्मात्र मरत्यावतार की कथा में हा जाता है । इसक अतिरिक्त मनु-मरत्य-कथा में मनःशक्ति (प्रेरक शक्ति) और बीज शक्ति क सुरचारक अस्तिरव का भी

ता बढ़ता है, काठाम्बर में जिनके अकस्वरूप सहस्रों प्राणियों और पौधों का विकास हुआ।

३

सहस्रों जुगों के पश्चात् समुद्र में मिट्टी का स्तर ऊपर घटने लगा और पानी री-बीरे बढ़ कर समुद्र में जाने लगा। परिणामतः जलीय जीवों का रहने का स्थान हो गया। जलीय या स्थलीय समी जीवों में अपने को अवस्थानुकूलित करने की प्रवृत्ति होती है। अनेक जलीय जीवों ने अपने को जल और पृथ्वी दोनों के अनुकूल बना लिया। इन जीवों को सरीसृप प्रकार या Reptile 'type' कहा जा सकता है। 'जाति-अपन' की दृष्टि से भी हममें अपने का वैशिष्ट्य विद्यमान है। किन्तु जल और स्थल दोनों में रहने का कारण उन्हें 'amphibious' या उभय प्राणी माना जाता है जिससे दो प्रकार के सरीसृप जीवों का विकास हुआ। एक प्रकार के सरीसृप जल या पृथ्वी में रहने लगे जीव हुए जिन्हें महाभारत और पुराणों की परम्परा में 'नाग' या सर्प नाम-प्रतीक से अभिहित किया जाता रहा है। दूसरे प्रकार के सरीसृप जल हुए जो पंख-मुक्त होने के कारण पक्षी हो गए, जिन्हें पुराणों की दृष्टि-परम्परा में 'कङ्क' कहा गया है।

समुद्र-मन्थन एक प्रतीकात्मक साङ्गकल्पक

कूर्म का जिस समुद्र-मन्थन की कथा से सम्बन्ध है वह एक प्रकार से ऐतिहासिक की ही प्रतीकात्मक कथा है। क्योंकि, पश्चिम समुद्र में कबक रहों निकलने का भी निष्कर्ष किया जाय तो वह किन्ना समुद्र से विभिन्न

- १. द्रौणी ऑर्गनी इतिहास पृ २१२-२१८ में कूर्म का उदय काक 'Triassic period' माना जाता है।
पौराणिक कूर्म को प्राचीन 'Stegosaur' तथा 'Ankylosaurus' प्राणियों तक के उत्पन्न जीवों का प्रतीक समझा जा सकता है। (दी द्रौणी इतिहास पृ २१७-२१८)
- २. महा १ २१-२५ में कश्यप (कूर्म) को दो बहिरों विनता और कद्रु से क्रमशः मस्क और नाग उत्पन्न हुए। इन्हें 'नाग' तो सरीसृप प्राणियों के प्रतीक हैं ही 'गस्क' भी सरीसृप प्राणियों से निकलित उत्पन्नजीव सरीसृप हैं। क्रमशः Jurassic period 'जुरैसिक' युग में इनकी उदने की श्रमता का विकास हुआ था। (दी द्रौणी इतिहास पृ २७) पौराणिक गस्क को प्राचीन पक्षी 'Bhamphorhynchus' के समानांतर प्रतीक मान सकते हैं। (दी द्रौणी इतिहास पृ २७१)

जीवों के आधिभाव प्रकल्प की ओर ही संकेत करती है, चौदह रत्न जिनका प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं। चौदह रत्नों में भौतिक आधिभौतिक, स्वाधर जगम पशु और मानव, रत्न ब्रह्म और औपधि सभी प्रकार के पदाय हैं। इनको निकारने वाली दो शक्तियाँ देवी और आसुरी हैं। देव और असुर पुराण प्रतीकों का पुराणों में सर्वाधिक प्रचार है। स्वयं देव और असुर आधिभौतिक, यौतिक, सैद्धिक आनस्पतिक सभी प्रकार के प्रतीकों में गूँथित होते रहे हैं। परन्तु जहाँ समर्प का प्रसंग उपस्थित होता है वहाँ ये प्रायः द्विध और मपानक शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष का द्योतन करते हैं। 'बीज विज्ञान' की दृष्टि से प्राणी-देव और प्राणी-दानवों का विरुद्धोपम करने पर ऐसा उगता है कि देवता 'गर्म रत्न' वाले वायु-मंडल के प्राणी थे और उनका विपरीत सूर्य की किरण रूपी चक्रमुहूर्त्तन तथा बादलों से निकलने वाली बल विद्युत ज्वाला से आतंकित रहने वाले 'शीतल रत्न' वाले प्राणी थे। इनका स्वरूप भवंकर था और वायु-मंडल के प्राणी इनकी अपेक्षा सुस्वर थे। देवताओं से पीड़ित होकर महादेवों का मूमि क भीतर और जल के भीतर मागने का उद्देश्य प्रायः 'महाभारत' और प्राचीन पुराणों में मिलता है। समुद्र जसुरों को भाई-जन्तु की तरह सरण देनेवाला कहा गया है।^१ इस प्रकार वह जसुरों का सबसे बड़ा आशय है।^२ इससे उगता है कि जसुरों का निवास-सम्बन्ध वा भय्य सम्बन्ध समुद्र से रहा है।

भाबुनिक विकासवाद की दृष्टि से करयप या कूर्म से उद्भूत, 'रंगनेवाले सरीसृप जाग' और उड़नेवाले सरीसृप गवड़' दोनों अपने प्रजाति विरोध क प्रतीक कहे जा सकते हैं। गवड़ और मागों का समर्प^३ तथा गज और प्राइ जैसे संघर्ष प्राचीनकाल में प्रचुर मात्रा में चलन वाले 'Struggle for exsistence' या अस्तित्व के लिए संघर्ष के द्योतक हैं। कूर्म युग में यह समर्प प्रायः जल और जल के प्राणियों में जल और लवक क प्राणियों में रघल और वायुमंडल तथा वायुमंडल और वायुमंडल के प्राणियों में उसी युग में आरम्भ हो गया था। 'महाभारत' एवं पुराणों की प्रतीकात्मक कथाओं में इन प्रकार के गवड़ जाग,^४ हस्ति-कपटप^५ आदि प्राणियों क समर्प की कथाएँ कही

१ महा १, १५, ७।

२ महा १, १५, १५ में समुद्र को महुराणा पराबधम् कहा गया है।

३ महा १, १३, १३ में गवड़ को मागों का निनाशक तथा दिव्यों और राक्षसों का घडु करा गया है।

४ महा १, ११, ११।

५ महा १, २, १४।

गयी हैं। विकासवाद की दृष्टि से उनका सम्बन्ध 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' का ही परिचयक प्रतीत होता है।

आधुनिक युग में यद्यपि भाग एक विशेष उरग-प्राणी वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु 'महाभारत' के प्रसंगों के अनुसार भागों में चलकर और चलकर तथा एक मिर वाले और अनेक मिर वाले शोभों प्राणी ध्याते हैं। चलकर भाग शीब (महा १ २५) सूर्य की कड़ी गर्मी से डरप हा जाते हैं और (महा १ २६) बर्षा होने पर मसख हो जाते हैं। पुनः इनमें जीवनी जलक का संचार हो जाता है। इस प्रकार कूर्म भी उपर्युक्त नयी प्रजातियों के प्रादुर्भाव के रूप में अपने युग का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करता है।

पितृजीव कूर्म

'सतपथ ब्राह्मण में कूर्म प्रजापति का अवतार है। उसे सभी प्रजातियों का पिता बताया गया है।' आधुनिक प्राणि-वैज्ञानिक भी एक Parent or Organism 'पितृजीव' से जीवों की उत्पत्ति मानते हैं।^१ श्री ए. इ. टयकर से प्राणिवैज्ञानिक विकास और मनोवैज्ञानिक विकास का तुलनात्मक अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया है कि प्राणि विज्ञान में यह सम्भव है कि एक पितृजीव (Parent organism) से जीवों की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्राणि-विज्ञान के विकास का एक आनुवंशिक क्रमबद्ध इतिहास है। इस सम्बन्ध को निम्न युगों के पूर्वज जीवों में खोजा जा सकता है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर इसी धारणा को मनोविज्ञान में फिर नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि यदि मेरे पूर्वजों के मन का अस्तित्व नहीं होता तो मेरे मन का भी नहीं। कुछ क्षणों में मन की विधि बताई बसालुगत भी हैं। यदि हमारे पूर्वजों का स्पष्टिच भिन्न है तो निश्चय ही हमारे व्यक्तित्व पर भी उस विधिप्रता का असर पड़ेगा। फिर भी जिन जगत् में पूर्वजों के जगत् (Organism) का सम्बन्ध क्रमबद्ध रहा है निश्चय ही व्यक्तित्व का उस प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा।^२ फिर भी पीरा निक प्रतीकशैली की दृष्टि से देखने पर कूर्म 'पितृजीव का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। यों 'सतपथ ब्राह्मण के उपर्युक्त कथन के अनुसार प्रजापति ने सृष्टि में अनेक प्राणियों की उत्पत्ति के निमित्त सर्वप्रथम

१ ए. वे. ए. १२७, पृ. ७, ५, १ ५।

२ एन्थ्रोपुथन इन दी काल्ड आफ माडर्न नैशंस ए. ४९१।

३ एन्थ्रो. इन दी काल्ड ऑफ माडर्न नैशंस ए. ४९१।

कूर्म रूप धारण किया जिसमें जकीय भूमिगत और आकाशीय, तीनों प्रकार के जीवों की विशेषताएँ विद्यमान हैं।

मत्स्य के अनन्तर कूर्म में ही सर्वप्रथम चौपाय जानवरों से मिलते हुके पौंख सिर गर्दन आदि का विकास शील पड़ता है। उसक पूछ भाग की बनावट में आकाशीय प्राणियों के भी पूछ निर्माण का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है। अतः कूर्म प्राणियों के विकास के उस युग का प्रतिनिधि प्रतीक है, जब पृथक वर्गों और भवयवों वाले प्राणियों की उत्पत्ति का भावि भाव हुआ और उन वर्गों के स्वभाविक सञ्चालन का प्रारम्भ भी कूर्म से हुआ। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मत्स्य की अवस्था कूर्म में सुरक्षित प्रवर्तन की समता अवेहाकृत अधिक ज्ञान पड़ती है। सारीरिक उपकरणों से युक्त होमे के अतिरिक्त कूर्म में अपनी रक्षा या अस्तित्व रक्षा या किसी वस्तु के प्रकल में चातुर्य सतर्कता जैसी मनोगत प्रवृत्तियों और भावनाओं के भी दर्शन होत हैं।

बराह

सरीसृप कीव-युग के अनन्तर प्राणि-वैज्ञानिक 'स्तनमण्डप' या 'मैमस' प्राणियों का युग मानते हैं।^१ इस युग में जल की मात्रा घटती गयी, मूल्य सुलता गवा और विस्तृत होता गवा। यहाँ रहने पर सूर्य की किरणें कुञ्ज प्रियकर प्रतीत होने लगीं। सूर्य-पृथ्वी और बरों के मोग से अनेक पौधों और कपुतर जीवों की उत्पत्ति हुई जो रंगनेवाले प्राणियों के लक्षण के रूप में प्रयुक्त हुए। सरीसृप युग की अंतिम अवस्था में उनके आकार बहुत बृहत् हो गए। बिसय कर उनके उदर का अधिक विस्तार हुआ। अतः बराह युग में 'स्तनमण्डप' जीवों में उनका घुड़वाकार पेट लक्षित होता है साथ ही पौधों और निकट जीवों को खाने के लिए या पृथ्वी छोड़कर कन्दमूल खाने वाले 'स्तनमण्डप' प्राणियों का अधिक विस्तार हुआ। इसक फलस्वरूप इन पशुओं में तेज चार तथा भोकीले हाँत और मुँह का विकास हुआ। फलतः बराह युग में उनका रूपान्तरण कूर्मवाच आल और मुँहवाले जानवरों से बहल कर

१ पौराणिक बराह-मन्त्रीक विस्तृत 'स्तनमण्डप' होने की अवस्था सरीसृप प्राणियों की विशेषताओं से भी कुछ निर्दिष्ट होगा है। बाह्य में इससे तुलना 'Dinosaur' वर्ग के प्राणियों में मान्य 'Triceratops' वा 'Monoclonius' से की जा सकती है। (वी एचो आर्टिफैस पृ २ -२०१)।

२ एचो ओडो आर्टिफैस पृ २२० २८०-२८१ बराह के उदय पर विचार करते हुए कहा गया है कि जो तो 'स्तनमण्डप' का प्रथम अल्पकाल (Jurassic Period) है किन्तु 'Oligocene' में इनका निश्चित उदय हो गया था।

वीरगामी तथा ज़ोदकर जाने वाले उस बराह के रूप में हुआ जिसके मुख और दाँत भोकीके थे और वह सूजी जमीन पर रहने लगा था, किन्तु फिर भी जल के प्रति उसका समत्व पटा नहीं था वह और उस बर्ग के प्राणी जल और कीचड़ में इच्छानुसूक्त जमी भी कूट पोह किया करते थे। इस युग में अस्तित्व के लिए संघर्ष अपनी पूर्ण गति में था। प्राणि-वैज्ञानिकों ने इस संघर्षरत पशुओं में बराह को बहुत चतुर पशु माना है। इसी से बराह या उस कोटि के जीव अस्तित्व के संघर्ष में टिक सक। जूम की तरह य भी अत्यन्त कठोर जीवों में से हैं। बराह के अन्तर पुराण-प्रतीकों में अधिक प्रयुक्त होने वाले अन्य वा हृष्यभ्रादि हैं। इन्हें भा बराह युग के प्राणियों में गृहीत किया जा सकता है। परन्तु अस्तित्व के संघर्ष में सर्वाधिक कठोर होने के कारण बराह अपने युग का वास्तविक रूप से प्रतिनिधित्व करता है।

नृसिंह

नृसिंह-युग का प्रारम्भ वहाँ से सम्भव प्रतीत होता है, जहाँ से बराह, जूम और मत्स्य-कोटि के प्राणियों में लम्बेकालेक भयंकर जीव-जन्तुओं और उनकी विभिन्न उपजातियों का प्रचार हुआ। इन जीवों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष हिंसा आक्रमण आदि मनोवृत्तियों एवं व्यापारों का विकास हुआ। ये लक्ष-पक्षार्थ या अन्य आवश्यकताओं को लेकर परस्पर संघर्ष करने लगे। संघर्षरत जीवों में से कुछ में समी को आक्रान्त करने जीतने या परामृत करने की मानना अधिक प्रबल हुई और कुछ जीवों में क्षिपने या बचने की इन मनोवृत्तियों के शोभ से उत्कृष्ट आक्रमणकारी और निहृद विजित जीवों का आविर्भाव हुआ। इस पशु-संघर्ष में जीव का वास्तविक चवन किया हुआ जीव नृसिंह माना जा सकता है जो पराक्रम एवं संघर्ष में अद्वितीय है।

बराह अपने मुख और दाँतों का प्रयोग अधिक करता है और अगले पाँवों का प्रयोग कम उस युग के अन्य पशुओं का व्यवहार भी कुछ इसी प्रकार रहा होगा। अतः उसके क्रान्तमक पराक्रम दाँत और मुख पर अधिक केन्द्रित रहा। किन्तु नृसिंह-युग में पराक्रम के नये आंगिक सामन आविर्भूत होते हैं। वे हैं—एले या हाथ्य, बल और मुख के प्रयोग। इस युग के पशु अन्न चरने का कार्य दो पाँवों से मो करने लगे और उनके अगले दो पाँवों का प्रयोग आक्रमण सम्बन्धी पराक्रम के लिए हुआ। केवल दो पाँवों पर चरने वाले ऐसे अनेक जीवों का विकास 'नृसिंह-युग' में हुआ होगा। इनमें 'हृष्यभ्रादि (अचमुख), गोकर्ण जैसे पुराण-प्रतीकों को भी परिगणित किया जा सकता है। यद्यपि आधुनिक अन्न के पाँवों में अगुलियाँ नहीं होतीं

और गावों के पैरों में भी कदक हो भग होते हैं, फिर भी पुरातनकाल के पेशे अस्थि-अवशेष मिलते हैं जो अश्व की तरह में हाते हुए भी चार, तीन या दो अङ्गुलियों से युक्त थे। इनमें (Phenacodus) 'फोनैकडस', (Hyraotherium) 'हीरओथेरियम' (Eohippus) 'इओहिप्पस तथा ओडी गोमान' युग के विकसित (Mesohippus) 'मेसोहिप्पस तथा (Miohippus) 'माओहिप्पस का नाम दिया जा सकता है।' इनके अनिश्चित हाथों से चालन वाले तथा दो अगले पाँवों, नखों और मुँह का प्रयोग करन वाले पृथ्वीदार कम्पूर या बन्दर तथा पृथ्वीय गिरवन भीरंग-उत्तोग बिम्पनी गुरिहा और तन्मानुष भी जात हैं जो आकृतिगत विशेषताओं की दृष्टि से मनुष्य और पशु दोनों से मिलते जुड़ते हैं। ये पुरातन-प्रतीक नृसिंह की तरह नखदार पत्र और मुँह का प्रयोग करते हैं। अगली मनुष्यों में प्रायः यह मान्यता है कि बन्दर पहल उन्हीं के जैसे मनुष्य थे और उन्हीं के साथ रहते थे।^१ 'भीरग-उत्ताङ्ग नामक जिस मानव-सम बन्दर की चर्चा हुई है वह 'आवा हीप' का है। वहाँ का अवभाषा में हम पाठ्य का अर्थ होता है— 'जगल में रहन वाला मनुष्य'। संस्कृत में भा 'बानर' को 'बानरः अपवा नरः 'विकल्पन नरः' या विकल्प से नर भी माना जाता है। बानर के पर्याय रूप में प्रयुक्त होनेवाला 'हरि सन्ध' 'वामर और 'नर दोनों का पर्याय है। सम्भवता इन्हीं से विकसित एक निहृष्ट कटि के मानव की रूपरेखा मिलनी है जिन्हें पुरातनों में किम्पुस कहा गया है। इस दृष्टि से विकल्पवादियों ने क्रमशः गिरवन, भीरग बिम्पनी, गुरिहा और मनुष्य का क्रम माना है।^२ वह बहुत कुछ पौराणिक-प्रतीकों से सम्बन्ध रखता है। इस क्रम में किम्पुस को हम 'नेहरथक मानव' के समानांतर पुरातन प्रतीक रूप में स्वीकार कर सकते हैं; क्योंकि दोनों में प्राचीन मानव की न्यूनाधिक विशेषताएँ उचित होती हैं।

फिर भी नृसिंह इस युग का विशिष्ट पुरातन-प्रतीक अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उसमें पशुओं की तरह व्यापार विहायक पशुओं में बानरों की तरह नखदार मुँह के प्रयोग और अस्थि के लिए संघर्ष में मनुष्य की तरह पराक्रम इसमें उचित होते हैं। यदि नृसिंह से सम्बद्ध सम्बन्ध कथा

१ जीवन विकास पृ १२२-१२३।

२ जीवन विकास पृ १२०।

३ जीवन विकास पृ १५८।

४ जीवन विकास पृ. १५९।

५ वही पृ १७९ फीट।

६ भा. क. ८, १२ नृसिंह के लिए 'नखालुप' का प्रयोग हुआ है। भा. क. ८, १९ में नृसिंह 'नख श्रेणी नरो निविदा' कह गए हैं।

का विरूपण किया जाय तो ऐसा कहा जाता है कि नृसिंह-कथा में पशु-मानव सन्धि-युग की अन्वेषिका अन्तमुक्त है क्योंकि नृसिंह हिरण्यकशिपु का वह न दिन में न रात में बहिक संग्रह में और घर में न बाहर अर्पित चौकट पर करते हैं। इस मध्य भाग में भी पशु-मानव प्रकृति की पुनः प्रकृति कथित होती है। निष्कर्षतः हम प्रागैतिहासिकों के सहस्र पशु मानव मिश्रित पुराण-प्रतीक के रूप में नृसिंह को ग्रहण कर सकते हैं।

हिरण्यकशिपु की प्रतीक-कथा

हिरण्यकशिपु का धार्मिक अर्थ मिथ हो सकता है^१ किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हिरण्यकशिपु उन सुप्त भावधारणोपस्थित पालकिक जीवनसत्ता का चोतक विहित होता है जो 'प्रह्लाद' अथवा 'अह्लाद' को निवृत्त करना चाहता है। वह अनिर्वृत्त 'हर्ष' को विनष्ट करने का पक्ष करता है। हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद पर कृतने भी अस्वाचार रूप—आग में अडकाया विष पिछना अरु में फेंका जाना पर्वतों पर से डकेका जाना प्रकृति रूपी होठिका द्वारा नष्ट करने का प्रवास दावापि से अडने का मय—इन सभी में आनन्द या अह्लाद का चोतक प्रह्लाद जीवित रहा। इसका तात्पर्य वह भी निष्कर्ष या सकता है कि अह्लादित या अह्लाद में प्रतिष्ठित जीवनसत्ता को नष्ट नहीं किया जा सकता। अत्यन्त क्रूर होने पर भी पालकिक जीवनसत्ता 'प्रह्लाद' को नष्ट नहीं कर सकी। पशु-मानव नृसिंह युग के पालकिक आवरण में विद्योभ हुआ जिसके फलस्वरूप पशु-मानव में 'अह्लाद' की अन्वेषिका हुई। उसके पराक्रम में अर्चित विरूप-वर्णना के रूप में अह्लाद का विवास हुआ। इस प्रकार की प्रतीकात्मक अन्वेषा अह्लादप्य प्रसंग में विहित होती है। साथ ही नृसिंह अग्र से लेकर 'नैऋत्यक मानव तक या हयग्रीव' से लेकर 'किन्तुवप' तक की विकास-अवस्था का चोतक पशु-मानव नृसिंह माना जा सकता है।

वामन

नृसिंह के अतिरिक्त भारतीय-साहित्य में अनेक ऐसे प्राचीन शोध-नाम आते हैं जिनके अर्थ पशु और व्यक्तिवाचक नाम दोनों होते हैं। 'वाङ्मयी' के अनुसार 'वृर्म' भी करवप के समान है और सभी प्राणी 'करवप' के पुत्र हैं। अ. ७ १८, १-१९ में वातिवों के नाम के रूप में 'मत्स्यराज' 'अज्जराज',

१ महाभारत-पञ्चाव रामायण-तार अर्थात् 'पुराण्यत्न' नामक निबन्ध में हिरण्यकशिपु का अर्थ 'छोने की शैल्या या 'छोने की शैल्या पर छोने वाला पुर' धार्मिक अर्थ मान ग्रहण किया है।

शिपुगात्र' भादि उत्कृष्ट रूप हैं। वैदिक पुरोहित परिवारों के नामों के रूपों में भी गोलम (रूपम), बल्ल (बल्ले) शुभक (धान), कौंसिक (चल्क) माण्डुकेय (मण्डक पुत्र) भादि द्रव्यमक नामों के भी प्रसंग मिलते हैं।^१ 'संबर्ण' (५, ५३) को 'महाभारत' में 'ऋष' कहा गया है। इन तथ्यों में पशु से मानव विकास की कोई विकास धारा नहीं मिलती किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पशु मानव-सम्बन्धों की परिकल्पना की जा सकती है। फिर भी कुंसिक के जनन्तर जीवन विकास की दूसरी अवस्था में कशुमानव या वामन का रूप प्रस्तुत किया जा सकता है। क्योंकि पशु मानव रूप से जब मानव रूप का प्रादुर्भाव हुआ, तो उस प्रारम्भिक काल में भादिम मानव विश्व ही शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से सम्पूर्णता विकास की अवस्था तक नहीं पहुँच सका होगा। अतः उस प्रारम्भिक मानव का प्रतिनिधि वामन यथार्थ प्रतीक माना जा सकता है। उस काल के विशाल पशुओं और बैत्याकार भयंकर प्राणियों के बीच में अनुपात की दृष्टि से भी यह छोटा होगा किन्तु बुद्धि और मानसिक शक्ति की दृष्टि से उनकी अपेक्षा यह अधिक शक्तिशाली और पराक्रमी होगा। इस प्रकार शरीर से छोटा और बुद्धि से बिराट मानव अपने युग की अवस्था का घोटक माना जा सकता है। वामन को 'होमो-सैपियन्स' या प्रथम 'मैथावी मानव' (*Homo sapiens*) के समाधानतर देखा जा सकता है। क्योंकि आकार-प्रकार और बुद्धि में भी इसका अनुप्य की तरह स्वाभाविक अनुजाव किया जाता है। यह माना जाता है कि कौशलपूर्ण फिंक्ट तथा पत्थर के उपकरण जो इसके अस्थि पंजरों के साथ उपकरण हुए हैं उनके निर्माण में यह मानव सिद्धहस्त था।^२ इसी से हमें 'मैथावी मानव' कहा जाता है। 'मैथावी-मानव' की परम्परा में आने वाले 'नाम्सलेड-मानव' आकार में और छोटा था और उसकी कोपड़ी बिसाल थी। उसके अस्थि अवशेषों के उपकरण होने के क्षेत्र भी आरोपीय (इण्डो यूरोपियन) फ्रांस और जर्मनी पकते हैं।^३ यद्यपि इन 'मैथावी मानव' के क्रमविकास का हीक-डीक पता नहीं चका है किन्तु फिर भी उसके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जाता। वामन 'नाम्सलेड-मानव' की परम्परा के निकट प्रतीत होता है।

१ वे मा पृ २९२।

२ सी मानव छा ६ २०-२२ में श्री हर्सेकोवित्स के दानवाकार मानव (*Gigantopithecus blacki*) का भी अस्तित्व माना है।

३ मानव छा ८, ७४।

४ मानव छा ६० ७४-७५।

वाङ्मय

वामन के अतिरिक्त वामन के युग में बालकविरचन जैसे मानव-प्रजाति का भी अस्तित्व मिलता है। सम्भवतः रुद्रता की अस्तुति प्रस्तुत करते हुए 'महाभारत' १, ३१, ८ में बालकविरचनों को भँगूटे क मरुत भाग क बराबर कहा गया है। व एन्ड्रोपोमाप्टस' की तरह की भाइयों से युक्त कथित होते हैं। 'महाभारत' में इनका वर्णन करते हुए कहा गया है कि नीच मुँह किए हुए (बालकविरचान् अशोमुखां) एक बूढ़ की छाया से छिप रहे थे। वे बबक पत्ते और फल खाकर नष्ट रहते हैं और जंगलों में भूमते रहते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर वे आदिम जंगल की भाइयों एवं मनोवृत्तियों से युक्त मानव प्रतीत होते हैं क्योंकि पौराणिक आचरण इटाकर यदि विकासवादी दृष्टि से इनका मूल्यांकन किया जाय तो इनमें रहम-सहन एवं व्यवहार-सम्बन्धी पुरातन मानव की कतिपय सम्भावित विशेषताएँ कथित होती हैं। प्रति-प्रतिष्ठा और बरिष्ठता आदिम पशु और मानव दोनों की विशेषता कही जाती है। 'महाभारत १, ३१' में छुट्टी बालकविरचन भी इन्द्र से होपबस प्रतिप्रतिष्ठा और बरिष्ठता (Superiority) की भावना से युक्त विरचित होते हैं। इसी प्रेरणावत् अवध 'सीय' और 'बीर्य' में इन्द्र से बढ़कर सौगुना मम के समान बेगवान् और पुत्र उत्पन्न करने का संकल्प करते हैं। 'महाभारत १, ३१ २२-२३' में कर्मण के सरस बालकविरचनों में भी सत्ताभोत्पत्ति की संकल्प-भावना दृष्टिगत होती है। अतः बालकविरचनों की वामन-युग क ही पुरातन पुष्पों में परिगलना की जा सकती है। मुसिंह-युग क अंतिम भाग 'किन्नुपुष्य तथा वामन-युग के प्रारम्भिक 'बालकविरचनों में अन्तर यह है कि 'किन्नुपुष्य' आचार विचार और स्वभाव में पशुत्व के अधिक निकर हैं जब कि बालकविरचन मनुष्य या मानस तत्त्व क। वे 'मेधावी मानव' की तरह बुद्धि सम्पन्न प्रतीत होते हैं।

सनत्कुमार

वामन-युग के प्राचीन पुष्पों में सनत्कुमारों का भी नाम किया जा सकता है। इनके नामों के साथ सम्बद्ध 'सख्' 'सखातव' 'कुमार' जैसे अल्प मानव-वृद्धि के विकास की ही अवस्था को व्यक्त करने वाले 'प्रतीकार्य' प्रतीत होते हैं। इन्हें आदि युग में उत्पन्न होने वाले जड़ के प्रथम मानस पुष्पों में माना जाता है।^१ भौतिक दृष्टि से गार्हस्थ्य-वर्णन से मुक्त होकर कमुकुमारों की अवस्था में इनकी स्वेच्छाधारिता आदिम मानव के कान-स्वापारों

तथा रूपों से बहुत कुछ सम्पन्न रहती है। किन्तु बालकियों और कुमारों में तुलना करने पर बालकियन अधिक पुरातन तथा 'कुमार' परवर्ती पुरातन जान पड़ते हैं। बालकियन स्वभाव आचरण एवं व्यवहार से 'बालकियान्, बभ्रोमुत्तान्' के रूप में बच्चों की भावनाओं से कटकन बाके प्राचीनतम आदिम मानव विदित होते हैं, जब कि कुमार (जो सबसे आकार में कुछ बड़े भी हैं) पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। विज्ञाप हो इन्हें मानव-विकास की दो अवस्थाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। इसी से बालकियों का युग पहले और कुमारों का युग बाद में ही स्थिर करना अधिक समीचीन जान पड़ता है। यद्यपि इन सभी को बामन-युग में भी ग्रहण किया गया है, परन्तु प्रतीकारमक प्रतिबिम्ब की दृष्टि से वामन की अवस्था भ्रष्ट में ही उचित होती है। बामन-युग मनुष्य के उन्नत एवं विकास का ही युग नहीं है अपितु मनुष्य की आदिम सम्पत्ता का प्रारम्भ भी उसी युग से विदित होता है। बामन-युग में मनुष्य की विभिन्न प्रकृतियों का विकास हो चुका था। इन प्रकृतियों में या तो मित्रता थी या अज्ञाना^१ कहीं तो वे परस्पर मिक-झुकर रहते थे और कहीं बैवटिक या जातीय स्वायत्त युद्ध वैध देते थे। उस युग की मनुष्य समस्या थी क्षेत्रीय एकता और उस पर अधिकार। बामन के तीन पग की क्रमा में क्षेत्रीय अधिकार का बीज मिलते हैं। आदिम मानव-सम्पत्ता युग में विभिन्न कुलों द्वारा क्षेत्रीय-अधिकार की भावना का नवविकासवादी भी समर्थन करते हैं।^२ इस प्रकार बामन का पुराण-प्रतीक एक और तो मानव-विकास की उस अवस्था का धारण करता है, जहाँ मनुष्य शारीरिक विकास की दृष्टि से किंचित अचरित्य होकर भी क्षेत्रीय आधिपत्य के निमित्त सचेत होने लगा था। शारीरिक शक्ति के साथ-साथ उसकी बुद्धि एवं मेधा का भी पर्याप्त विकास हो चुका था। इस युग की प्राचीन परम्परा में मान्य बालकियों में सम्मेलन अपनी 'हीनता' के अन्तर्गत नष्ट उत्पन्न करने की भावना उचित होती है, जब कि सत्ताकुमार जैसे मानव में स्वैच्छाधारिता अधिक विद्यमान है। इन दोनों में मानव-सम्पत्ता के विकास-सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्यों का उद्घन नहीं मिलते। कबल बालकियों में अपने कुछ की सक्षम बढ़ाने की प्रवृत्ति का अनुभाव किया जा सकता है। किन्तु वामन में क्षेत्रीय अधिकार सम्बन्धी भावना का सर्वप्रथम परिचय मिलता है। कहाता है कि सत्ताकुमार युग तक क्षेत्रीय अधिकार जैसी समस्या उत्पन्न नहीं हुई थी। उस युग तक विभिन्न प्रकृतियों एवं कुलों का भी इस सीमा तक विकास नहीं हुआ था

जिसमें पेत्रीय समस्या उत्पन्न हुई हो। परन्तु वामन युग से इस पेत्रीय समस्या का प्रबन्धनात्मक माना जा सकता है। चार्ल्स डार्विन और चार्ल्स व्हाइट ने मनुष्य की भवतारण परम्परा के अनुसन्धान-क्रम में मनुष्य का बाह्य और आंतरिक शरीर छत्र और जनमाशुप जातिधर्मों की विकसित परम्परा में विकास का प्रयास किया है।^१ किन्तु फिर भी जब विकासवादी यह मानते हैं कि 'मनुष्य किसी पूर्ववर्ती अस्तित्व वाले रूपों का ही परिवर्तित अवतार है।'^२ सम्भव है कि वाक्यविषय समझमार और वामन उस पूर्ववर्ती अस्तित्व वाले मानव का पौराणिक परम्परा में प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करते हों। जिस प्रकार गर्म धारण की अवस्था से लेकर जन्म पूर्व की अवस्था तक मानव सिद्ध का विकास आनुवंशिक धानि-वैज्ञानिकों के अनुसार जन्म प्राणियों के अतिरिक्त मत्स्य कूर्म और ब्राह्मण के भी सिद्ध-विकस-क्रम से मिलता-जुलता है,^३ उसी प्रकार मानव-विकास की परम्परा में वामन को 'पूर्ववर्ती अस्तित्व' वाला विविष्ट मानव रहा है।

चौरासी लक्ष योनियों के आनुवंशिक क्रम से भवतारित मानव

भवतारवादी परम्परा में भवतारित अवतार-प्रतीकों के अतिरिक्त पुराणों में माध-यह कथन मिलता है कि इस सृष्टि के प्राणियों में मनुष्य सर्वोत्तम प्राणी है। यह चौरासी लक्ष योनियों में से भवतारित होता हुआ मनुष्य योनि तक पहुँचा है। इस कथन में प्रयुक्त 'चौरासी लक्ष' का 'चौरासी सप्त' अनेक प्रसंगों में प्रयुक्त होने के कारण यह संख्यात्मक पुराण-प्रतीक विदित होता है। किन्तु जहाँ तक चौरासी लक्ष धानि का प्रश्न है उसमें निश्चय ही जीव-विज्ञान से सम्बन्ध एक आचारमूल सत्य को सन्वात्मक पुराण प्रतीक का रूप प्रदान किया गया है। आनुवंशिक जीव वैज्ञानिक भी सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य को ही मानते हैं। उस मनुष्य का विकास प्रारम्भ से लेकर प्रथम परिष्कृत या मेवाकी मानव तक जिन जीव जन्तुओं की आनुवंशिक परम्परा में हुआ है उसकी क्रमागत योनि या जीव संख्या यदि चौरासी लक्ष नहीं तो उससे कुछ ही कम या अधिक हो सकती है। यदि इस संख्या को पौराणिक या परि कल्पनात्मक (टिपोथेटिक) की स्वीकार किया जाय तो भी दूसरों जीव-विज्ञान के इस सिद्धान्त का आभास इस सीमा तक तो सत्य प्रतीत होता ही है कि मनुष्य एकमात्र वैसी योनि से जे एक कर उन मनुष्येतर योनियों से

१ इन्को इन द चार्ल्स डार्विन माडर्न थॉरिज पृ २८८।

२ " वही पृ २८७ 'Man is the modified descendent of some pre-existing form.'

३ जीवविज्ञान इन्कोन्सुपम पृ ३३४।

आविर्भूत हुआ है जिनमें अनेक जीव-जन्तुओं की धर्मियों के रूप हैं। अतः सम्भव है जीव-विज्ञान एवं पुराणों के प्रतिपादन में कुछ अन्तर हो किन्तु आधारभूत सत्य की दृष्टि से इनमें तत्पगत साम्य अवरय उचित होता है।

मानव-सम्पत्ता-युग

मनुष्य इस सृष्टि-रचना की अन्वयतम कृति है। जीव से कमल की तरह विभिन्न भयकर प्राणियों के मध्य से ही उसका आविर्भाव हुआ है। इस प्राणी या मानव-विकास-क्रम में मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दोनों पक्षों का विकास होता रहा है किन्तु शारीरिक विकास कहीं अंकगणितीय रहा है, वहीं मानसिक विकास का अनुपात उपासितिक रहा है। सामान्य शारीरिक और मानसिक विकास के अनुपातिक सम्बन्ध के चोतक है; बामन के बाद मनुष्य का सम्बन्ध प्रकृति के विभिन्न साधनों और उपादानों से होता गया। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कतिपय उपकरणों के रूप में ऐसे साधन साधनों का आविष्कार कर प्रयोग करता गया, जिसके फलस्वरूप मानव-सम्पत्ता का विस्तार होता गया। अतः मानव-सम्पत्ता के आरम्भिक विकास के प्रतीकों में परशुपारी परशुराम को ग्रहण किया जा सकता है।

परशुराम

इसीमें परशुराम-युग को जीवन-विकास-युग की अनेका मानव-सम्पत्ता विकास-युग कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। फरसा और धनुष-बाण लिए हुए परशुराम का रूप जंगल में रहने वाले उस सिकारी मानव का प्रतीक है, जिस समय वह घने जंगलों में ही अपना विकास-रथक बनाकर 'नव पाषाण युग' के सिकारी-मानव की तरह जीवन व्यतीत करता था। बामन और परशुराम इन दोनों प्रतीक-मानवों की तुलना करने पर, बामन के रूप में कपु-मानव-प्रतीक परशुराम के सरस ही प्राण्य है, किन्तु उसमें पराक्रम या विक्रम की अनेका बुद्धि-कीसल का प्रापाम्य है। वह बुद्धि-आनुष से ही आरम्भिक मानव के किराट कौराल का परिचय देता है। अभी सम्पत्ता के विकास की दृष्टि से सम्भवतः कपु एक मात्र के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य आपुष नहीं है अरिन्तु उमक पराक्रम में बुद्धि-तरब की ही प्रमुखता है। अतः बौद्धिक प्रापह्व के कारण वह बुद्धिवादी या प्राण्य प्रतीक मानव है। उसमें अत्रिप-पराक्रम का समावत नहीं है इसीसे वह विशुद्ध प्राण्यवाक्य आचरन करता है।

किन्तु परशुराम का प्रतीक सम्पत्ता के एक सोपान-क्रम का चोतक है।

परशुराम का भायुष कुबहाड़ी के समान परशु आदिम युग के भायुषों में विद्यमान स्थान रखता था। मानव साक्षियों के मतानुसार 'पुराणायाम युग के' प्रमुख महत्त्व के तीव्र सांस्कृतिक तत्त्वों में एक हाथ की कुबहाड़ी का प्रयोग भी रहा है।^१ कुबहाड़ी इत्यादि साधनों के अतिरिक्त मानव-सम्पत्ता के विकास पूर्व विस्तार में अग्नि का सर्वाधिक योग रहा है। परशुराम का सम्बन्ध जिस ऋग्वेद से है वैदिक मन्त्रों के अनुसार यह वरा अग्नि का आविष्कारक भी रहा है। एक मंत्र के अनुसार मातरिश्वन् और देवों ने अग्नि को मनु के किये निर्मित किया जब कि ऋग्वेदों ने शक्ति से अग्नि को उत्पन्न किया। इस प्रकार अग्नि के अवतरण और मनुष्यों तक उसके पहुँचाने की पुराकथा प्रमुखता मातरिश्वन् और ऋग्वेदों से सम्बन्ध है।^२ अतः कुबहाड़ी युग से लेकर अग्नि के प्रादुर्भाव-युग तक के मतीक परशुराम माने जा सकते हैं। विभिन्न शक्ति-श्रोतों के उत्पादन-क्रम में सर्वप्रथम अग्नि-शक्ति का भी सम्बन्ध मानव-सम्पत्ता के प्रथम स्तोत्रान से रहा है। इस युग का सिकारी मानव अपने मोक्ष-सिद्धि के आग में पकाकर खाने का उपक्रम करने लगा था। कुबहाड़ी और अग्नि इन दो सम्पत्ता प्रतीकों में कुबहाड़ी या उसका परिष्कृत रूप परशु अद्वैत का प्रतीक प्रतीत होता है और अग्नि ब्राह्मण का। इन्हींसे परशुराम में ब्राह्मण के साध-साध अत्रिब तत्त्वों का भी समावेश है। इस अत्रिब-ब्राह्मण के समझ उस युग का सत्त्व परिवर्तित पशुत्व अत्रिब-पराक्रम हार मानता है। इस आदि सम्पत्ता-मतीक-मानव परशुराम में पराक्रम और बुद्धि दोनों का समुचित संयोग है। वे पास्तविक पराक्रम को बढ़ करने के किये अत्रिब बल और ब्राह्मण बुद्धि-कीर्णक दोनों का प्रयोग करते हैं। पुराण-मतीक 'परशुराम' के रूप में इस युग का सिकारी मानव 'हंडे से आगे बढ़कर 'कुबहाड़ी' जैसे मारने और कड़वी करने वाले भायुष का प्रयोग करता रहा। बाद में बढ़कर उसने दूर-मारक या दूर-वेधी 'तीर धनुष' का आविष्कार किया। अतएव भायुष की दृष्टि से परशुराम 'कुबहाड़ी से लेकर तीर धनुष-युग तक की मानव सम्पत्ता के विकास के वास्तविक पुराण-मतीक है। निश्चय ही हाथ से निकट की वस्तु पर कुबहाड़ी जैसे घात से प्रहार करने की अपेक्षा तीर धनुष का प्रयोग अधिक असौख्य और प्रभावशाली रहा होगा और उसमें कुछ मानव सर्वाधिक

१. सा. मानवशास्त्र—पृ. ३५।

२. दे. मा. (अनुवाद) पृ. २३६-२३७ मूलपत्र की दृष्टि से 'मनु' शब्द का अर्थ 'प्रकाशमान' होता है कि 'आम्' (प्रकाशित होना) वायु से निम्न है, होता है। अर्थात् के विचार से सम्भवतः मनु शक्ति का भी एक नाम था।

परशुराम समझा जाता होगा। परशुराम अपने युग के परशु या कुवहाड़ी चकले वाले तथा तीर और धनुष में भी विपुल प्रतीक-मानव हैं, जिन्हें भगवती मानव-सम्पत्ता के विकास-युग के प्रतीक श्रीराम से हार खानी पड़ी। इसका मुख्य कारण यह होगा कि श्रीराम-युग ठक धनुर्वेद की कला और उसके संघाटन की प्रवृत्तियों का अधिक विकास हो गया होगा। तथा परशु जैसे निकट से मारने वाले शस्त्र गौण हो गए होंगे जब कि उनके बड़े तीर और धनुष जैसे दूर-वेधी शस्त्रों के रूपों का तथा उनकी संघाटन कला का अधिकविकसित विकास हुआ होगा।

सिद्धरी मानव ने बाद में चककर कुछ विशेष किस्म के पाकने-पोसने योग्य पशुओं को अपने साथ रखा हुआ किया। इस प्रकार सिद्धरी युग के पश्चात् पशुपाकन युग का प्रारम्भ हुआ। पशुपाकन-युग के पशुओं का प्रचलन सक्ति के द्वारा अत्यधिक विस्तार हुआ। उपयुक्त चरागाहों में वह अपने पशु-समूह को लेकर फिरफिर मानव के रूप में घूमने लगा। परशुराम की आनुवंशिक कथा में इस प्रकार के पशुओं का प्रयोग तो आया ही है साथ ही उनके जीवन में घटित 'कामधेनु-अपहरण की पौराणिक कथा भी पशुपाकन-युग के तत्कालीन महत्त्व को ही प्रदर्शित करती है। पशु-पाकन युग में मन्वाधिक उपयोगिता की दृष्टि से अथ और जो वे दो पशु अधिक लोकप्रिय रहे थे। इन दोनों से सम्बन्ध पुराण-कथाएँ परशुराम एवं उनकी कुल-कथा में घटित होती हैं। पुराणों में आये हुए 'गायि' और 'शचीक' का सम्बन्ध परशुराम की आनुवंशिक परम्परा से रहा है। इस पुराण-कथा में गायि ने शचीक से एक सहस्र विशेष कोटि के अश्वों की माँग की थी, जिन्हें शचीक गायि ने प्रदान भी किया।' इतनी अधिक मन्वा में विनाप काल के अश्वों का विनिमय हम युग की पशुपाकन की प्रवृत्ति को भी घातित करता है। दूसरी घटना का सम्बन्ध स्वयं परशुराम से है। परशुराम और सहस्रबाहु का सपर्ये सहस्रबाहु द्वारा कामधेनु का अपहरण किए जाने के कारण हुआ था।' कामधेनु स्वयं पशुपाकन-युग का प्रतिनिधित्व करने वाले विशिष्ट पुराण-प्रतीकों में से है। हम प्रकार मानव-सम्पत्ता के विकास की दृष्टि से परशुराम सिद्धरी मानव तथा अमलनीक पशु-माहव-युग का प्रतिनिधित्व करने वाले पुराण प्रतीक-मानव हैं। उनके जीवन से सम्बन्ध प्राप्त सभी समस्याओं और मपर्यों में उपर्युक्त जीवन की ही शक्तिपूर्ण मिलती हैं।

श्रीराम

सम्पत्ता के प्रतीक—समस्त विश्व की सम्पत्ता में 'तीर और घनुप' का विशिष्ट स्थान है। प्राचीन देविद्वय की एक महत्त्वपूर्ण सम्पत्ता का अस्तित्व तीर-घनुप के बह पर स्थापक बना हुआ था। भारतवर्ष की सम्पत्ता एवं संस्कृति में मौ 'तीर-घनुप' का अपना धाग-बाब रहा है। राम इन युग की सम्पत्ता एवं संस्कृति का अन्वयतम पुराण प्रतीक जान सकते हैं। उनके समस्त चरित्र में घनुर्वेद की प्रशंसना है। वे विद्यामित्र के भाग्य में घनुर्वेदशास्त्र में निपुणता प्राप्त करते हैं और अन्य बर्माबन्धी धार्मिक जनजातियों से युद्ध करते हैं। वे जनकपुर में घनुप उद्यम और तानकर अपनी निपुणता का प्रदर्शन करते हैं। इत्यन्त परशुराम श्रीराम को अपना घनुप प्रदान करते हैं। जनकपुर-क्रम में श्रीराम धार्मिक-सम्पत्ता में गृहीत जनजातियों से मैत्री-भाव रखते हुए मित्र हैं तथा विरोधी और दुश्म जनजातियों को युद्ध में पराभूत करते हैं। दक्षिणायत सीमा पर अग्नि जगत् से उन्हें दिव्य घनुप की उपलब्धि होती है। वे अल्पमूक पर्वत के पास सात ठाकों को एक ही बाण से चींचकर अपने अग्रिम हस्तकाय का परिचय देते हैं। तीक्ष्ण धर-वेध से ही वे समुद्र को पराभूत करते हैं और अन्त में कङ्का-मुद्ग में अपने तीर घनुप का ही खोजक का शीर्षक करते हैं। इसी से श्रीराम को अपने युग में पश्चिमी सम्पत्ता के चोतक 'घनुर्वीर Knights' 'नाइट्स की तरह घनुपचारी होने का कारण विष्णु के पराक्रम से सम्बन्ध किया गया था। घनुर्वेद की योग्यता इस क्रम की सम्पत्ता का प्रतिभाव मानी जा सकती है जिसका स्थाय जन नाक्य या स्थायिक शब्दों ने ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार श्रीराम 'तीर-घनुप-युग' की सम्पत्ता का पूर्णरूप से चोतक करते हैं।

सांस्कृतिक प्रतीक राम—आर्यों के आविष्कार का भारत अस्त विन्दु प्रवेश और सरस्वती के मध्य में होने वाले सारस्वत प्रदेश तक फैला हुआ था।' लक्ष्मीन मारत आर्यावर्त और दक्षिणवर्त दो जगहों में विभक्त था। परशुराम-युग तक इन दोनों में सांस्कृतिक एकता अधिकधिक मात्रा में नहीं हो सकी थी। किन्तु राम के युग में जो सबसे बड़ा सांस्कृतिक कार्य सम्पन्न हुआ—वह ही अक्षिक भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता जिसने परवर्ती क्रम में अथतारण की (बैष्णव लैव शैव, जैन साक) बहु अक्षिक जगहों में आवेष्टित होकर समस्त भारतवर्ष को एक सांस्कृतिक

सूत्र में बोधा । अतः राम भारतीय सम्प्रदाय के अतिरिक्त अखिल भारतीय सांस्कृतिक ऐक्य के भी पुराण प्रतीक हैं । श्रीराम युग का सांस्कृतिक समन्वय भाष्य और दृष्टि 'उत्तर और दक्षिण' पश्चिम और पूरब, ग्राम और नगर अरण्य और नगर प्रजा और राजा, जन जाति और दासक बर्ग राजतन्त्र और प्रजातन्त्र या उत्तर (अबोध्या), मध्य (किष्किन्धा) और दक्षिण (कडवा) आदि के समन्वय का सूचक है । इस युग में सीता का हनु के फाट से सम्बन्ध होना^१ और जनक राम का हनु चढाना कृपि-युग के प्राधान्य का प्रतीक है । राम-युग से सम्बन्ध साहित्यिक कथावस्तुएँ वन-गमन भौका-बहन, समुद्र में डुब तथा पुष्पक-विमान की यात्रा भारतीय सांस्कृतिक भावना में आप्रत होये राष्ट्रीय स्वयं-शक्ति, जल-शक्ति और वायु-शक्ति की सांस्कृतिक चेतना के द्योतक हैं ।

राम का समस्त उदात्त जीवन भी समस्त भारतीय जीवन के आदर्श का परिचायक वैयक्तिक नहीं अपितु राष्ट्रीय चरित्र है । इसी से जनका व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक सम्बन्ध, कार्य-कलाप पण्डवीवाद की तरह भारत की राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, धार्मिक सभी अवस्थाओं में प्रतिमानक निर्माण करने वाले हुए । इनकी लोकप्रियता प्रजातान्त्रिकता त्यागपूर्ण जीवन बीरता धीर्य सौजन्य बन्धुत्व, माताओं, तथा अन्ध्याम्य प्रजाओं, जन-स्वातन्त्र्य की जन जातिओं से सम्बन्ध सभी भारतीय संस्कृति के समन्वय वाली प्रतिमानों के ही सूचक हैं । मर्यादाहीन युग में भी भवतारवादी संस्कृति का विनाश होने पर 'रामचरित' केवल संस्कृत या हिन्दी का ही नहीं अपितु समस्त भारतीय और बृहत्तर भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक काव्य विषय रहा है । इस प्रकार राम भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक पुराण प्रतीक विदित होते हैं ।

श्रीकृष्ण

श्रीराम की तरह श्रीकृष्ण भी पौराणिक प्रतीक-दौड़ी में भारतीय सम्प्रदाय संस्कृति के एक विशिष्ट युग के द्योतक प्रतीक होते हैं । इतिहासकारों की दृष्टि में श्रीकृष्ण के अनेकविध रूप (घोर अंगिरस कृष्ण महाभारत श्रीकृष्ण, बामुदेव श्रीकृष्ण गोपीकृष्ण, झारकाकृष्ण) भास मो प्रथम बन हुए हैं । परन्तु इनका समुचित समाधान-पुराण प्रतीक-दौड़ी से विच्छेदन द्वारा अधिक सम्भव ज्ञान पड़ता है । क्योंकि पुराण प्रतीकों में जिन ऐतिहासिक

१ आ. क. ई. पृ. १४ । २ आ. क. १ पृ. २२ ।

३ आ. रा. १, ४८ 'वै तस्मिन् निवसता जनकनाम्निपतिना ।

या जन्मोक्तिपरक महापुरुषों को ग्रहण किया गया है, व केवल अपने ही स्वच्छिन्न के बावजूद नहीं अपितु अनेक सांस्कृतिक महापुरुषों के सम्मिश्रित स्वच्छिन्न से निर्मित पुराण-प्रतीक हैं। इन्हें सांस्कृतिक प्रतीकों में ग्रहण किया जा सकता है।

सांस्कृतिक प्रतीक

इस कोटि के सांस्कृतिक पुराण-प्रतीकों की विशेषता यह है कि इनमें व्यक्ति, इतिहास, जनश्रुति, पुग-चेतना, सांस्कृतिक एवं जातीय कार्य-कलाप सांस्कृतिक साहित्य साधना उपासना प्रायः सभी का अन्तर्भाव होकर समष्टिगत भाव की व्यक्तता का व्यापक भाव समाहित हो जाता है। ऐसे प्रतीक पुग-सापेक्ष सामाजिक चेतना से सम्पृक्त होमे के साथ-साथ परम्परागत प्रतीकार्थ को भी समाहित कर लेते हैं। इस प्रकार परम्परागत भाव और पुग-सापेक्ष भाव दोनों के समन्वय से इनकी भाव-सम्पत्ति की रूढ़ि हुई है। भागमिथ्यत पुगों में भी वे अपने पुग की भाव-सम्पत्ति से सम्बन्धित होकर नव-नवोद्भूत कर्षों में प्रायः स्वच्छ होते रहते हैं। ऐसे पुराण-प्रतीकों में श्रीकृष्ण को ग्रहण किया जा सकता है।

पुराण-प्रतीक श्रीकृष्ण विशिष्ट स्वच्छिन्न से सम्पन्न होने के साथ-साथ कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं से भी सम्बद्ध विवृत होते हैं। महाभारत, हरिश्चन्द्र एवं लम्ब्य पुराणों में उपलब्ध उनके कर्षों में उस पुग की शैक्षिक चेतना बहुत कुछ साक्षर हो सकी है। श्रीकृष्ण के पुग में हासोन्मुख एवं संवर्परत राजतन्त्रीय व्यवस्था में 'दृष्टिसंघ' जैसे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई थी। श्रीकृष्ण स्वयं 'दृष्टिसंघ' के और बाद में चञ्चल अनेक प्रजातान्त्रिक सभों के संघ के भी नेता हुए थे। इनके सांस्कृतिक कर्षों में एक जातीय वैशिष्ट्य के साथ-साथ अनेक जातीय विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। इनके नाम से सम्बद्ध श्रीमद्भगवद्गीता भी भारतीय वाक्य की एक सांस्कृतिक निधि है। साधना एवं उपासना के क्षेत्र में स्वयं साध्य वा उपास्य होने के पूर्व श्रीकृष्ण द्वारा जिस साधना या उपासना का प्रवर्तन हुआ वा यह है—'गोबरधन' की पूजा। श्रीकृष्ण ने वाक्यीय देवताओं की लपेटा लत्कायीन जन-तान्त्रिक समाज में 'गोपूजा' 'गोबरधन पूजा' के रूप में उपयोगितावादी देवताओं (Utahtarian gods) की ओर ध्यान आकृष्ट किया। 'गोबरधन' की पूजा उस भू-सम्पत्ति की पूजा का चोतन करती है जिसमें पशुपाक-पुग और इषि-पुग के चरमसाध्य अन्तर्भूक्त हैं। भारतवर्ष

अत्यन्त पुरातनकाल से ही कृषि प्रधान बस रहा है। पुराण प्रतीक बजराम और श्रीकृष्ण भारतीय सांस्कृतिक जीवन-वापन के प्रमुख साधन कृषि और पशुपालन के व्यञ्जक हैं। इनकी अवेद्य बामन और परशुराम में गार्हस्थ्य का विकास नहीं हो सका है। ब्रह्मचर्योन्मत्त कर्तव्य-भावना वैयक्तिक पराक्रम के द्वारा चरमपरिमति पर पहुँचती रही है। परन्तु कृषि-धर्म्यता के प्रतीक राम में गार्हस्थ्य के एक सर्वाधिक रूप का अस्तित्व मिळता है। गार्हस्थ्य में वैयक्तिक पराक्रम के साथ-साथ प्रयत्न की भी आवश्यकता होती है। अतएव श्रीराम में वैयक्तिक पराक्रम के अतिरिक्त पारिवारिक संगठनात्मक तथा सामाजिक प्रबन्धन प्रयत्न भी उचित होता है, जो भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का लक्ष्य है। खासकर कृषि का विकास विशेष मू-बन्ध से सम्बन्ध होने के कारण स्थानीय निवास में निहित गार्हस्थ्य पर ही निर्भर करता है। श्रीकृष्ण युग तक कृषि-प्रधान गार्हस्थ्य जीवन के नामा रूपों का प्रादुर्भाव हुआ था। यह अनेकरूपता स्वयं श्रीकृष्ण के ही गार्हस्थ्य-जीवन में उचित होती है। श्रीकृष्ण एकपत्नीक और बहुपत्नीक दोनों हैं। उनके प्रारम्भिक जीवन में प्रामाण्य स्वच्छन्द प्रेम का ही विकसित रूप प्रस्तुतित हुआ है। भारतवर्ष ही क्या समस्त विश्व में कृषि और पशुपालन एक साथ चलते रहे हैं। प्रायः इन दोनों के सहयोग पर ही भारतीय कृषि-जीवन की मिति स्थित है। कृष्ण और बजराम का साहचर्य इसी प्रकार के गार्हस्थ्य जीवन का द्योतक है। गार्हस्थ्य में पराक्रम के साथ-साथ प्रयत्न की आवश्यकता होती है। उस प्रयत्न का फलानाम बहुत कुछ प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण-युग में प्रयत्न की प्रबन्धना उचित होती है। गार्हस्थ्य का प्रयत्न कामनाओं और पणनाओं की वृत्ति के लिए होता है। श्रीकृष्ण का समस्त गार्हस्थ्य प्रवृत्तिसूत्रक पणनाओं की वृत्ति से परिपूर्ण है। अतः कर्म एव कर्म के योग की वृत्ति इस युग का वैशिष्ट्य है। गार्हस्थ्य में दाम्पत्य के अतिरिक्त मनुष्य जीवन भर स्वयं एवं मित्र तथा अन्य सम्बन्धी की रक्षा या शत्रु के दमन जैसे गार्हस्थ्य प्रयत्न में संघर्षरत रहा करता है। श्रीकृष्ण इस प्रवृत्ति प्रधान गार्हस्थ्य प्रयत्न के वास्तविक पुराण-प्रतीक बने जा सकते हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण का जीवन अनेकरूपताओं से परिपूर्ण है फिर भी उन्हें समतुल्य प्रवृत्ति सामाजिक जीवन का द्योतक माना जा सकता है, जैसा कि 'सुप्रसन्नविहारस्व मुक्तचेहस्य कर्मसु या 'सुखे सुखे समीकृत्वा कामालामो जयात्रयौ' जैसे उनके कथनों से संकेतित होता है।

पौराणिक प्रतीकात्मकता ने श्रीकृष्ण और बजराम को जिस परिवेश

में प्रवृत्त किया है उस परिवेश में कृषि और पशुपालन के साहचर्य की भी वे व्यञ्जना करते हैं। बकराम के हाथ में इक और मूमक वे दो भायुध उन्हें कृषि की मूर्तिमान् प्रतीक-प्रतिमा के रूप में स्थापित करते हैं। श्रीकृष्ण का साहचर्य प्रधान प्रारम्भिक जीवन पशुपालन-युग की सम्बन्धता से आरम्भ होता है। उनका हाथों की मुरली प्राचीन पश्चिमी पशु पाठकों में 'सेफर्सरीड' का स्मरण कराती है। बनमाका भीर मयूरपक्ष की मूल प्रधान बच-बन में चारण करने वाले जीवन का ही संकेत करते हैं। गोपाकक-युग में विकसित होने वाला स्वच्छन्द प्रेम तथा अनेक असुर-पशु प्रतीकों की शैली में व्यक्त किये गए विभिन्न जगदी जन्तुओं सम्बन्धी बदनारमक बध-कथार्य की उस युग की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता को ही व्यक्त करती है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय सम्प्रदाय एवं सांस्कृतिक युग के परिचायक, विशिष्ट किन्तु महत्त्वपूर्ण पुराण प्रतीक विदित होते हैं।

हुद—मनुष्य स्वभाव से ही संकल्पनात्मक और विकल्पनात्मक रहा है। इन दोनों के सघर्ष की गति पाकर, मनुष्य की सम्प्रदाय प्रवृत्ति और निवृत्ति की दो पहियों वाली गाड़ी पर चली जा रही है। सामूहिक सम्प्रदाय के विकास एवं युग-परिवर्तन में जिस प्रकार पुद्गल और क्षान्ति का योग रहा है। सम्प्रदाय की प्रगति में कमी हास और कमी उत्थान के युग आया करते हैं जैसे ही युग विशेष में कमी प्रवृत्ति और कमी निवृत्ति की प्रधानता होती है। एक युग की सम्प्रदाय में समाज की उदात्त प्रवृत्तियों जब 'सन्तृप्त बिन्दु' (Saturation Point) पर पहुँच जाती है उस समय समाज की प्रगति प्रवृत्त्यात्मक विकारों से अवरुद्ध हो जाती है। निश्चय ही जब दिनों किसी न किसी विशिष्ट शक्ति का समाज में आविर्भाव होता है जो पुनः तत्कालीन सम्प्रदाय के विकारों को नयी अंतर्भा के अंक से स्वच्छ कर समतुल्य करने का प्रयास करती है। ऐसी शक्तियों के चोतक अवधारणों के व्यक्तिपरक होने के कारण व्यक्ति-चेतना से अविशिष्ट शक्ति का जोष विकसित होता है किन्तु बात ऐसी नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक अवधारण एक आगतिक अन्वेष और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। उस अवधारण विशेष की पृष्ठभूमि में वर्गीय जातीय, सामाजिक, सांस्कृतिक जनसमुदाय की आमत एवं प्रवृत्त चेतना का भी भाग रहा है जो सम्प्रदाय के विभिन्न घुर्नों में नबोत्थान क्रिया का संचार करती रही है। इस चेतना शक्ति का उत्पन्न-अन एक हीप से प्रवृत्त सहजों हीपों की तरह 'हीपावृत्त चोपक' रहा है। इस शक्ति की उत्पत्ति विद्यैरय न होकर सोदैरय हुआ करती है। इस दृष्टि से हुद के पूर्व अितने भी अवधारण हुए हैं उनमें कोई न

कोई सोहेरयता अवतरक निहित रही है। प्रायः समस्त अवतारों का विरक्षेण करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवतारवाद एक सक्रिय सशक्त शक्ति के रूप में युग और जीवन के संघर्ष से विमुक्त न होकर बहिरङ्ग ब्रह्मकर युगान्तरकारी प्रगति का संचारक रहा है। अवतारों में वस्तुतः विष्णुत्व और विरक्ति नहीं कथित होती।

श्रीकृष्ण युग में वैदिक पौरोहित्य से आश्रान्त भोगवाद् चरमसीमा पर पहुँच गया था। अनेक वर्षों तक पहले वाले विद्याकथाय यज्ञों और उनमें प्रयुक्त होने वाले पशुमेव निरूप ही हिंसा के प्रति विमृष्टता का भाव सञ्चित करने लगे थे। श्रीकृष्ण के युग में स्वयं अन्न, पुरुष, धी, मनु, धौ इत्यादि को ही हवन एवं पूजा के लिए अधिक श्रेयस्कर समझ माने लगा था। स्वयं उपनिषदों में विशेषकर मुण्डक, छान्दोग्य और बृहदारण्यक के कतिपय प्रसंगों में पौरोहित्य के विन्यासग्रहों का उपहास सा किया जान पड़ता है।^१ इसका प्रतिक्रियास्वरूप चौथी या तीसरी शताब्दी में 'अभ्युत्तरनिकाय के अनुसार भोग से विरक्त एवं निवृत्तिमार्गी कतिपय सग्नप्रदायों का प्रावृत्तव बुधा जिनमें निग्रम्य (जैन) मुण्ड-सायक अतिक्रम परिग्रामक मार्गिक उपवृद्धि, अविद्वक गौतमक (बौद्ध) और वैवर्मािक विष्णुमात हैं।^२ इन सभी ने हिंसा के स्थान में अहिंसा का और तपस्या शारिभक साधना त्याग, उत्सर्ग और कर्मणा से पुरित निवृत्तिमार्गीय जीवन का आदर्श प्रवर्तित किया। इनमें बुद्ध की कर्म-वेद्यवाद् अतिक्रम शोकप्रिय और अनप्राद्य बुद्ध। इसका मुख्य कारण यह था कि इन निवृत्ति मार्गी सग्नप्रदायों की अतिवादिता को छोड़कर बुद्ध ने 'मन्त्रिमपतिपदा (आर्य चतुष्टय और 'अद्वयम्) का प्रवर्तव किया था। ये 'अद्वयम् निज रूपों में विभाजित किए गये।

- | | | | | | |
|-----|-------------------|-----------------|------------------|--------------|----------------|
| धीक | १ सम्पक् बचन | चित | २ सम्पक् ध्यायाम | प्रज्ञा | ३ सम्पक् संकषप |
| | ४ सम्पक् कर्मान्त | ५ सम्पक् स्मृति | | ६ सम्पक् दहि | |
| | ७ सम्पक् आत्रीय | ८ सम्पक् समाधि | | | |

इस प्रकार बुद्ध ने निवृत्तिमार्गीय बुद्धनिवृत्ति एवं निर्वाण-साधना का प्रवर्तन किया।

यद्यपि बुद्धावतार का प्रयोजन हिन्दू पुराणों में अमुरों को वेद से विमुक्त करना माना जाता रहा है; फिर भी इसका भारतीयिक तात्पर्य यही है कि

१ भा. क. ई. पृ. ७४ में श्री राधा कुमुद सुकुमी ने कुप्र पेशे प्रसंगों को उद्धृत किया है।
२ भा. क. ई. पृ. ७४।

में प्रवृत्त किया है उस परिवेश में कृषि और पशुपाकन के साहचर्य की भी वे व्यवस्था करते हैं। बजराम के हाथ में इक और मूमक वे दो आयुध उन्हें कृषि की मूर्तिमाय प्रतीक-प्रतिमा के रूप में स्थापित करते हैं। श्रीकृष्ण का साहचर्य-प्रभाव प्रारम्भिक जीवन पशुपाकन-युग की सम्पत्ता से धारम्भ होता है। उनका हाथों की मुरकी प्राचीन पश्चिमी पशु पाककों में 'सेफ्ट्सरीड' का स्मरण कराती है। बनमाका और मयूरपंख भी तृण प्रधान वन-वन में चारण करने वाले जीवन का ही संकेत करते हैं। गोपाकन-युग में विकसित होने वाला स्वप्नस्य प्रेम तथा अनेक असुर पशु-प्रतीकों की शैली में स्पष्ट किये गए विभिन्न बंगली जन्तुओं सम्बन्धी घरवासीक बंध-कथायें भी उस युग की प्रतीकात्मक धर्यवृत्ता को ही स्पष्ट करती हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय सम्पत्ता एवं सांस्कृतिक युग के परिचायक, विशिष्ट किन्तु महत्त्वपूर्ण पुराण प्रतीक विदित होते हैं।

हुय—मनुष्य स्वभाव से ही संकल्पनात्मक और विकल्पनात्मक रहा है। इन दोनों के सघर्ष की गति पाकर मनुष्य की सम्पत्ता प्रवृत्ति और निवृत्ति की दो पहियों वाली गाड़ी पर चली जा रही है। सामूहिक सम्पत्ता के विकास एवं युग-परिवर्तन में जिस प्रकार युय और सान्नि का योग रहा है। सम्पत्ता की प्रगति में कमी हास और कमी उत्पाद के युग भाषा करते हैं, जैसे ही युग विशेष में कमी प्रवृत्ति और कमी निवृत्ति की प्रधानता होती है। एक युग की सम्पत्ता में समाज की उद्दाम प्रवृत्तियाँ जब 'सन्तृप्त बिन्दु' (Saturation Point) पर पहुँच जाती हैं उस समय समाज की प्रगति प्रवृत्तात्मक विकारों से अवलोक हो जाती है। निजय ही उन दिनों किसी न किसी विशिष्ट शक्ति का समाज में आविर्भाव होता है या युग सत्त्वकीन सम्पत्ता के विकारों को नयी चेतना के अन्त से स्वच्छ कर समतुल्य करने का प्रयास करती है। ऐसी शक्तियों के चोटक अवतारों के व्यक्तिपरक होने के कारण व्यक्ति-चेतना से सन्निविष्ट शक्ति का बोध विदित होता है किन्तु बात ऐसी नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक अवतार एक जागतिक उन्मेष और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। उस अवतार विशेष की पृष्ठभूमि में वर्गीय, जातीय सामाजिक, सांस्कृतिक जनसमुदाय की आगत एवं प्रवृद्ध चेतना का भी योग रहा है जो सम्पत्ता के विभिन्न युगों में लक्ष्यमान किया का संचार करती रही है। इस चेतना शक्ति का उद्भव-अन्त एक हीप से सम्बन्धित साहजों हीपों की तरह 'हीपाहुत्पन्न हीपवत्' रहा है। इस शक्ति की उत्पत्ति निश्चरैय न होकर सोरेरव हुआ करती है। इस दृष्टि से हुय के पूर्व जितने भी अवतार हुए हैं उनमें कोई न

कोई सोहरयता अवश्य मिहित रही है। प्रायः समस्त अवतारों का विरलेपय करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवतारवाद एक सक्रिय सशक्त शक्ति के रूप में युग और जीवन के संदर्भ से विमुक्त न होकर बहिरु ज्ञानपर युगान्तरकारी प्रगति का संचारक रहा है। अवतारों में वस्तुतः निष्क्रियता और विरक्ति नहीं कथित होती।

भोक्तृयुग में वैदिक पौरोहित्य से आक्रान्त भोगवाद चरमसीमा पर पहुँच गया था। अनेक वर्षों तक चलने वाले विद्याककाम यज्ञों और उनमें प्रयुक्त होने वाले पशुमेय निधय ही हिंसा के प्रति विवृण्णा का भाव सञ्चित करने लगे थे। भोक्तृयुग के युग में स्वयं जघ हुण्य श्री, मनु, औ इत्यादि को ही इत्यन एवं पूजा के लिए अधिक भयंकर समझा जाने लगा था। स्वयं उपनिषदों में विशेषकर मुण्डक, छान्दोग्य और बृहदारण्यक के कतिपय प्रसंगों में पौरोहित्य के मिष्वाहम्यरो का उपहास सा किया जान पड़ता है।^१ इसका प्रतिक्रियारूप चौथी या तीसरी शताब्दी में भंग्युत्तरनिधय के अनुसार भोग से विरक्त एवं निवृत्तिमार्गी कतिपय सम्प्रदायों का प्राबुर्भाव हुआ जिनमें निग्रय (जैन), मुण्ड-शाक, जठिरुफ, परिवाजक मार्गिक, त्रपद्भिक, अविद्वक, गौतमक (बौद्ध) और वैश्वामिकिक विख्यात हैं।^२ इन सभी ने हिंसा के स्थान में अहिंसा का और उपस्था धार्मिक साधना त्याग, उत्सर्ग और कठया से पूरित निवृत्तिमार्गीय जीवन का आदर्श प्रवर्तित किया। इनमें बुद्ध की धर्म-देशनाए अधिक लोकप्रिय और जनप्राद्य हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि इन निवृत्ति मार्गी सम्प्रदायों की अतिबाधिता को छोड़कर बुद्ध ने 'मग्निमपतिपदा' (धार्म चतुष्टय और 'अष्टधम्म') का प्रवर्तन किया था। ये अष्टधम्म निम्न रूपों में विभाजित किए गये।

- | | | | | | |
|-----|-------------------|-----|------------------|---------|-----------------|
| धीक | १ सम्पक् वचन | चित | २ सम्पक् स्थामाम | प्रज्ञा | ३ सम्पक् संकल्प |
| | ४ सम्पक् कर्मान्त | | ५ सम्पक् स्थिति | | ६ सम्पक् दृष्टि |
| | ७ सम्पक् आजीव | | ८ सम्पक् समाधि | | |

इस प्रकार बुद्ध ने निवृत्तिमार्गीय बुद्धनिवृत्ति एवं निर्वाण-साधना का प्रवर्तन किया।

यद्यपि बुद्धायतार का प्रबोजन हिन्दू पुराणों में असुरों को बध् ने विमुक्त करवा माना जाता रहा है; फिर भी इसका वास्तविक तात्पर्य यही है कि

१. भा. क. १. ६. ७४ में भी राधा कुनुर मुकुर्मी ने बुद्ध पैत्रे प्रसंगों को उद्धृत किया है।
२. भा. क. १. ५. ७४।

वाहे कोई माध्यम हो या इतर वर्ग अधिक भोगासक्त, भोगवादी या शरीरवादी होने के कारण यह भी अघतारवाद् की भाषा में असुर हो है, जैसे रावण इत्यादि। अघतारवाद् वेदवाद्, आरामवाद्, ईश्वरवाद् और ब्राह्मणवाद् का तो समर्थन करता है, किन्तु प्रारम्भ से ही यह वेदवाद् और भोगवाद् का विरोधी रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह मनुष्य या जीव रूप में ईश्वर का आधिपत्य मानकर केवल ऐहिक वेदवाद् का समर्थन नहीं करता अपितु मनुष्य और ईश्वर में, लोक और परलोक में, जीव और ब्रह्म में तथा ऐहिकता और आदिभूतता में समन्वय-भावना का संचार करता है। बुद्ध-युग में वेद भी राष्ट्रीय ज्ञान की सांस्कृतिक विधि मात्र न रहकर विज्ञेय वर्ग की भोगवृत्ति के साधन वा अस्त्र बन गए थे। अतः बुद्ध ने वैदिक भोग के साधन अर्थात् वेदवाद् और गृह्यसूत्रों में व्याप्त 'सस्कारवाद्' का विरोध किया जो वैदिक वेदवाद् की भाषा में पक्ष रहे थे। उन्होंने उपनिषदों द्वारा प्रवर्तित वैदिक आत्मचेतना का विरोध नहीं किया। उनकी धर्म-वैश्याभ्यं में उपनिषदों की प्रति प्रतिष्ठा ही है। स्वयं बुद्धनिर्वाण का उपनिषद् ब्रह्म-निर्वाण से बहुत कुछ साम्य है।^१

फिर भी बुद्ध-युग का मुख्य स्वर प्रवृत्तिमार्गीय भोगवाद् से विरत होकर विवृत्तिमार्गीय संतोष मार्ग की ओर प्रवृत्त होना रहा है। चार आर्य सखों (बुद्ध बुद्ध समुत्तम बुद्ध निरोध बुद्ध विरोध-गामिनी प्रतिपदा^२) में सांसारिक पञ्चाशों के प्रति विरक्ति की भावना उक्ति होती है। बुद्ध-युग में ऐहिक उपादान ही बुद्ध के प्रमुख कारण समझे जाते रहे हैं। उनसे मुक्त होना सांसारिक कष्टों या दुःखों से निर्वाण प्राप्त करना रहा है। इसी से बौद्ध धर्म में अप्रिय का सम्प्रयोग^३ प्रिय का वियोग^४ और इच्छित का अकर्म^५ इत्यादि भी बुद्ध के ही कथनों में माने जाते रहे हैं। इन कथनों

१ भा. क. ई. पृ. ८५।

२ विवृत्ति मार्ग पृ. १५, उन्ताने वं कळं एवं नावरस व जजतो।

३ वि. मार्ग पृ. ११६—दिस्वाण अपिने बुद्ध पठमं होति वैद्यसि।

उत्तुपद्धमसम्मूतमण कावे वतो इव ॥

उतो बुद्ध इवसपि वत्तुतो सो महेसिना।

बुद्धो बुद्धोति दिग्घो अपिनेदि समाय्मो ॥

४ वि. मार्ग पृ. ११७—जातिवनादि विनोगा सोकरसमपिठा विवृत्तन्ति।

वाका वतो उतोर्ब बुद्धोपि मतो पिबविनोगो ॥

५. वि. मार्ग पृ. ११८—तं च पत्तवमानानं उत्त उत्त जजामतो।

वं विवातमर्ब बुद्धं सन्तानं इव वावति ॥

में ऐहिक प्रवृत्तियों को नकेसमद् समझ कर उनसे विरत होने की माचना मिलती है। अतः बुद्ध उस पुत्र की भोगात्मक प्रवृत्ति की ओर से निवृत्ति की ओर उन्मुख होने वाली पुत्र-व्येतना के श्रेष्ठक पुराण प्रतीक मान पद्य है।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण-युग में जिस प्रजातन्त्र का उद्भव हुआ था, बुद्ध के युग में उसका अत्यधिक विस्तार हुआ। बुद्ध-युग में ही सम्भवतः कतिपय प्रजासंघों में जोर की तरह 'शुकाका' पद्धति का विकास हुआ था। बौद्ध साहित्य में बहुचर्चित 'बहुजन सिंघात और 'बहुजन सुखाय' में जन-कल्याण की जो भावना व्यक्त हुई है उसमें तत्कालीन सामाजिक छेद-कट्टाव की मनोवृत्ति के परिचायक जनताधिक संकल्प अभिव्यक्त प्रतीत होते हैं। उर्ध्व पश्चिमी जनतांत्रिक नारा 'Greatest good of the greatest number' के समानान्तर देखा जा सकता है। इस प्रकार बुद्ध श्रीकृष्णोत्तर भारतीय सम्प्रदाय एवं संस्कृति के श्रेष्ठक विशिष्ट पुराण-प्रतीक विहित होते हैं।

कश्चित्—मनुष्य के सम्प्रदायगत विकास की तुलना केव ही केव ही बाह्य की दीवार मगाने वाले उस बाहक से की जा सकती है, जो अपनी समस्त चतुरी से बाह्य की दीवार बचाकर पुनः उसे स्वस्त कर देता है। विरासा और भासा की तरंगों में खेळता हुआ मानव अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेक प्रकार की सम्भाव्य परिकल्पनाएँ करता है। पुराण प्रतीक कश्चित् ही सम्भावनात्मक कल्पना की देव है। पूर्वाभूमित अटलाओं का आचार केन्द्र तथा वर्तमान पुरवस्थाओं का एक मार्मिक रूप उसमें समाहितकर दोनों के कल्पना या 'कल्पक' से युक्त कश्चित्-युग की जागमिष्वत कल्पना प्रस्तुत की गई है। ऐतिहासिक अटला-कर्म में कोई एक सामाजिक विकास का प्रघ है, विभिन्न युगों में प्रायः समाज का कभी सांस्कृतिक हास हाता है और कभी चतुरधिक उत्पात होता है। जब व्यक्ति का श्रेष्ठ रूप श्रेष्ठामिभूत राष्ट्रीय शैलिकरूप चारण कर लेता है, तो युग-युगान्तर से निर्मित साहित्य वर्धन कला, विज्ञान जैसे सांस्कृतिक उत्पात के श्रेष्ठक उत्पादान भी धीरे-धीरे होकर स्वस्त होने लगते हैं। समस्त रत्नूतक मनीषा की श्रेष्ठामिभूत हो जाती है। ऐसी स्थिति में कोई भी सामाजिक मर्षादा स्थिर नहीं रह पाती। परिणामतः ऐसे युग में कल्पक मनुष्य का ही संहार नहीं होता अकिन्तु सम्प्रदाय एवं संस्कृति के उपकरणों का भी विनाश

नकम्पनेष्ववत्तुर्न एवमा तस्त कार्थ।

वरना तरण्य विनो दुर्धर्ष शिष्यतादायमजरी ॥

हो जाता है। पुराण प्रतीक 'कल्कि' का उद्भव-कर्ता मनीषी इतिहास की इस प्रक्रिया से परिचित है। इसीसे कल्कि-युग में जागतिक एवं विनाशकारी मध्य के उपरान्त उसने नयी सृष्टि का प्रादुर्भाव की परिकल्पना की है। वर्तमान युग में भ्रष्ट और परमाणु शक्ति की भयानकता को देखते हुए इस परिकल्पना को अधिक जसम्भाव्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जागती (११वीं) शताब्दी का अन्तर्महीय क्षेत्रों में भ्रमण और निवास करने वाला मूलक परस्पर सघर्षरत होने पर पृथ्वी को किस अवस्था में रख छोड़ेगा तथा कृत्रमीतिक मानस-परमाणुओं और भीतिक परमाणुओं के अत्यन्त कब कीन ही संहार-कीटा उत्पन्न करेंगे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सम्भव है परमाणुओं के 'रेडियो बर्मी' तत्वों से अत-विद्यत जीव और माणव मनु 'परमाणु-मनु' जीवों और मानवों को उत्पन्न करें या यहाँ से पलायन कर नए नए लोक में भरण हों। पुराण-प्रतीक कल्कि में ये सारी सम्भाव्यताएँ सन्निविष्ट हैं। किन्तु इस पुराण-प्रतीक की विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य में निराशावाद का सञ्चारक कबक भावी संघर्ष का विभास ही नहीं किया हुआ है अपितु कल्कि नयी भावी सृष्टि और नयी सांस्कृतिक चेतना की भासा का स्योति-युग बनकर खड़ा है। अतः कल्कि में सांस्कृतिक विनाश से अधिक जागतिक एवं सांस्कृतिक युगान्तर की भावना अनुपपन्न है।

मनोविज्ञान के आलोक में अवतारवाद

मनोविज्ञान का ईश्वर

अवतारत्व मनुष्य के मन में ईश्वर के प्रति व्यास्था और विश्वास उत्पन्न करने वाली एक प्रकृति है। सृष्टि की अनेकानेक रहस्यात्मक शक्तियों को जातिर्भाव और तिरोभाव की शक्ति से युक्त देखन के कारण मनुष्य पुरातन काल से ही एक ऐसी अज्ञात शक्ति में विश्वास रखता थापा जिसे ईश्वर या मगवान् की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। इस ईश्वरात्मक विश्वास में अनायास रूप से धर्म, धर्म और प्रेम इत्यादि भावों का विविध मिश्रण रहा है।

विभिन्न रूप

मनोविज्ञान का ईश्वर अघ्याप्त और दर्शन के ईश्वर से इतना भिन्न हो जाता है कि उसे एक प्रकार से मनोविज्ञान का ही ईश्वर कहा जा सकता है।

श्री रोएड ने ईश्वर के तीन रूपों की चर्चा की है—प्रथम-शोकप्रिय अर्थ में, दूसरा-आध्यात्मिक अर्थ में और तीसरा-वशान के अर्थ में ।^१

शोकप्रिय अर्थ में ईश्वर व्यक्ति है मनुष्य के समकक्ष या समानान्तर उससे अधिक शक्तिमान है । वह मनुष्योचित और मनुष्येतर दोनों प्रकार के कार्य कर सकता है तथा वह कभी भी मृत्यु का पाश नहीं होता । यह सबशक्तिमान तो नहीं मनुष्य से हर मामलों में अंग है । इसके किष्ट, लक्ष, पाठक, रचक होना तथा चरित की दृष्टि से श्रेष्ठ होना आवश्यक नहीं है । किन्तु भी यह बुद्धिमानों में बुद्धिमान् और शक्तिमानों (व्यक्तियों) में शक्तिमान हो सकता है ।^२

आध्यात्म के अर्थ में इसका व्यक्ति होना अविचार्य नहीं है । (सम्भवतः ईश्वर त्रयी इत्यादि रूपों में एक से अधिक व्यक्ति की तरह प्रतीत होता है । वह शोकप्रिय ईश्वर न अवेद्यात्मन अधिक व्यापक है । विशेषकर ईश्वरवादियों के किष्ट ता वह सर्वशक्तिमान और विमु है ।^३

दार्शनिक अर्थ में यह एक दोनों से व्यापक है । कुछ दार्शनिकों के अर्थ में यह व्यक्ति नहीं, ईश्वर नहीं अपितु विश्व ही ईश्वर है ।^४ हेगेल इसे परम ईश्वर (Absolute God) और स्पेन्शौजर महत्ति का ईश्वर (god of nature) कहता है । इसके मतानुसार ईश्वरत्व का आरोप विश्व पर तभी हो सकता है जब विश्व की एकता प्रथम दृष्टि में मान ली जाय । विश्व का वह भाग जो किसी पर निर्भर नहीं है बसिष्ठ उसी पर शेष विश्व आधारित है, उस तरह को ईश्वर कहा जा सकता है । वह बड़ी सिद्धांत है जिसे देववाद भी कहा जाता है । दार्शनिक ईश्वर को 'प्रथम महत् कारण' (The great first cause) मानते हैं ।^५

किन्तु मनोविज्ञान का क्षेत्र अगतिक दृष्टि से ईश्वरत्व का विचार करना नहीं है, अपितु आस्था, भावना, विश्वास, सवेग इत्यादि की दृष्टि से ईश्वरत्व का विरकपक्ष करना ज्ञान पक्का है । राबर्ट एच० थॉडकेस के ईश्वरत्व का मूल्यार्कन उपर्युक्त उपादानों के आधार पर किया है । यैस्त के मतानुसार ईश्वर सम्बन्धी भावना की पुष्टि में परम्परागत, प्रायोगिक और बौद्धिक तीन तर्कों का भाग रहा है ।^६ इनमें प्रायोगिक को पुका सुन्दरता, समरूपता (harmony), परोपकारिता (Benevolence) के रूप में विभाजित

१. ई. डि. साह. रिच. ५. १९१।

२. ई. डि. साह. रिच. ५. १९४।

३. ई. डि. साह. रिच. ५. १९६।

४. ई. डि. साह. रिच. ५. १९१-१९२।

५. ई. डि. साह. रिच. ५. १९५।

६. साह. रि. ५. १९१।

किया है। यों तो प्राकृतिक विकास प्रकृति में ही ईश्वर का स्वरूप प्रतीत कराता है। विशेषकर नीचा आकाश सूर्य की ज्योति से ज्योतिर्मय आकाश इत्यादि में प्रकाश जब उदात्त सौन्दर्य का दर्शन करता है, ता उसे उस उदात्त सृष्टि में किसी ईश्वर जैसी उदात्त सत्ता की ही महिमा उचित होती है। इस प्रकार समस्त सौन्दर्य को वह इष्टरेख की अद्विष्टादि मानने लगता है। मनोविरलेख्य की दृष्टि से यह अनुभूति एक बुद्धि-स्वापार की प्रक्रिया विदित होती है।^१

मन का नैतिक संघर्ष भी मनुष्य को ईश्वरीय आस्था की ओर प्रेरित करता है। नैतिक संघर्ष की शक्तियों दो रूपों की ओर उन्मुख करती हैं जिनमें नैतिक शिवात्त्व (goodness) का यह ईश्वर के रूप में गृहीत होता है।^२ ईश्वर का यह शिवात्त्व नैतिक भावों की महत्ता की सर्वना करता है। मनुष्य सहज रग से सोचने लगता है कि कोई मनुष्य ही नैतिक भावों की चरम प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार शिवात्त्वपरक ईश्वर में विश्वास नैतिक सधर्षों की अनुभूतियों का पुच्छिकरण (intellectualisation) है। कभी-कभी मनुष्य यह अनुभव करता है कि जबतक यह ईश्वर में विश्वास नहीं करता तबतक सत्ता नहीं हो सकता। इस विश्वास के बिना वे अपने नैतिक चरित्र क लिए किसी सुरङ्ग मेरु को पाने में असमर्थ रहते हैं। इसे अनुभूति का पुच्छिकरण न कह कर मनोवैज्ञानिक 'इच्छा-पूर्ति' (wish fulfilment) की एक प्रक्रिया मात्र मानते हैं।^३

विश्वास और अनुभूति का विषय

शाकात्मक तर्कों की दृष्टि से भी ईश्वर का एक यह रूप प्रचलित रहा है, जहाँ यह विशेष माद-दृष्टान्तों में ईश्वर जैसी रहस्य-सत्ता का अनुभव करता रहा है। तादात्म्य की यह अनुभूति जिसमें वह अपने अस्तित्व को खो बैठा है, उसकी इसी धार्मिक अनुभूति का एक अङ्ग है। वातसेस ने धार्मिक अनुभूति के तीन रूप माने हैं—पाप से क्षम्य होने के अर्थ में प्रायश्च अनुभूति के अर्थ में और विश्वास की निश्चयता के अर्थ में^४। इनमें पाप की मावना को नैकहृगक ने निषवात्मक स्वानुभूति (Negative self feeling) कहा है यह अत्यन्त विषम्य अवसाद की अनुभूति से पूर्व मानसिक दृष्टा है। इनके अतिरिक्त प्रायश्च अनुभव की स्थिति में एक प्रकार की शाकात्मक रहस्यात्मकता

१ सा. रे. ५ ४०। २. सा. रे. ५ ४१। ३ सा. रे. ५. ४७।

४ सा. रे. ५. ४९।

सन्निहित रहती है। इस दृष्टा की विशेषता यह है कि अनुभवकर्ता सर्वत्र ईश्वर की उपस्थिति की भावना करता है। रहस्यात्मक स्तुतियों में होने वाली विशिष्टाधुमूर्ति को प्रायः चिन्तन कहा जाता है, उसमें भी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ईश्वर की उपस्थिति की भावना विद्यमान रहती है।^१

आदर्श अह (Super-ego) या अहं आदर्श (ego-Ideal) :—

आधुनिक मनोविज्ञान ने मन के सूक्ष्मतरंग स्तरों का विरक्षेपण करने के क्रम में अनेक उपादानों को प्रस्तुत किया है उनमें धार्मिकता या ईश्वरत्व की दृष्टि से प्रायः द्वारा निरूपित 'आदर्श-अह' या 'अह-आदर्श' विचारणीय है। प्रायः के अनुसार काम के दमन के प्रक्रिया-क्रम में ऐसा होता है कि जब कोई व्यक्ति काम से दूषक होता है तो उस समय उसके अहं की रूपरेखा में भी परिवर्तन हो जाता है जिसे अह के भीतर कल्प वस्तु की स्थापना कह सकते हैं।^२ जब अह कल्प का स्वरूप धारण कर लेता है तो वह इन्द्र को प्रिय छव (love-object) के रूप में स्वयं धेरित करता है^३ जिसके फलस्वरूप छव काम (object libido) का रूपान्तर 'आत्म सम्मोही काम' में हो जाता है जिसे निष्कामीकरण की प्रक्रिया कहा जा सकता है। प्रायः ने इसे एक प्रकार का उद्वेगनोत्थान माना है। इसका क्रमिक विकास की शर्त करते हुए प्रायः ने बताया है कि आख्यायिका से ही अह में तादात्म्य की स्थिति पड़ती है जहाँ से आदर्श अह का मूल स्रोत आरम्भ होता है। तादात्म्य का आरम्भ सर्वप्रथम पिता-माता से ही हुआ करता है। सृष्टि, रक्षा, पावन, पोषण, सर्व मियत्रित्व आदि पिता-माता के ही गुण उसके नैतिक-आदर्श द्वारा निरूपित ईश्वर में अभिहित हो जाते हैं। प्रायः इस प्रकार के अहं-आदर्श का सम्बन्ध मत्प्रेक व्यक्ति में क्रान्तानुपसिक्त रिष्य (phylogenetic endowment) के रूप में मानता है जो उसकी (मनुष्य की) प्राचीन धरोहर है।^४ अह आदर्श मनुष्य की उच्चतम भावना को प्रदर्शित करता है। एक अभीष्ट पिता का एक होने के कारण हममें से सभी तब विद्यमान हैं जिससे समस्त धर्म निःसृत होते रहें हैं।^५ बालक के मन का अह-आदर्श काकान्तर में विवेक के रूप में विकसित होता है^६ जिसका कार्य नैतिक और अनैतिक तथा उचित और अनुचित का

१ छांद १० पृ ६७। २ श्लो. ११ पृ ११। ३ श्लो १२ पृ १७।
 ४ श्लो १३ पृ ४८-४९। (पंचम संस्करण)। ५. श्लो १३ पृ ४९।
 ६ श्लो १३ पृ. ४९।

सूक्ष्मांकन करना है। सम्भवतः आदर्श-ब्रह्म का वही विवेक पाप-युध्य वा सुर-असुर भावों का विकसक बनता है।

आदर्श-ब्रह्म (super-ego) का अद्यतरण

विरुद्धेयल मनोविज्ञान में नैतिक वा आदर्श-ब्रह्म, इदम् (Id) में समाहित अनेक प्रतिबन्धों आदर्शनाओं और इमित इच्छाओं का एक रूप है। अनेक भावना-प्रतिबन्धों मिळकर इसका निर्माण करती हैं। फ्रायड के अनुसार 'आदर्श-ब्रह्म' (Super-ego) का अद्यतरण इदम् के प्रथम object cathexis^१ वा ओडिपस-प्रस्थि से होता है।^२ 'आदर्श-ब्रह्म' का यह अद्यतरण उसे इदम् के इन्डामुबंसिक डग से ध्वंसित उपादाओं (phylogenetic acquisitions) से सम्बन्धित करता है जिसके एकस्वरूप आदर्श-ब्रह्म के रूप में उन पूर्व ब्रह्म निर्मितियों (ego-structures) का पुनराविर्माण किया करता है जिसने पीछे अपने अन्वेषों (precipitates) को इदम् में छोड़ दिया है। इस प्रकार नैतिक मन का इदम् से सर्वैव ध्वंसित सम्बन्ध रहता है।^३ फ्रायड के कथनानुसार पाप की भावना के चकते ही आदर्श-ब्रह्म (super-ego) अनिवार्यतः स्वयं आभिर्भूत होता है। 'मनुष्य-सृष्टि' में जिस उच्चतर भावना की कल्पना की जा सकती है उन सभी का समाहार 'आदर्श-ब्रह्म' में हो जाता है। यह एक इच्छित पिता का ही प्ररूप नहीं है, अपितु इसमें समस्त बच्चों के मूल स्रोत विहित हैं।^४ उपर्युक्त कथन में यद्यपि फ्रायड ने ईश्वर के स्वरूप की स्पष्ट बर्णना नहीं की है किन्तु फिर भी उसके विरुद्धेयल से इतना स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य का 'आदर्श-ब्रह्म' जिस इदम् से अद्यतरित होता है उसमें पश्चिगत सामूहिक और परम्परागत तीनों ब्रह्म-तत्त्व भी वर्तमान रहते हैं; यह तीनों की समन्वित विद्ययताओं से युक्त होकर अद्यतीर्ण होता है। मनोविज्ञान के ईश्वर की कल्पना में भी इन तत्त्वों का योग अनिवार्य रूप से माना जा सकता है क्योंकि ईश्वर की रूपरेखा पदार्थतः मनुष्य के आदर्श-ब्रह्म की ही रीति प्रतीत होती है। यद्यपि ईश्वर की कोई सुष्ठिसंगत रूपरेखा मनोविज्ञान वही प्रस्तुत कर सका है, फिर भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रायः भावस-व्यापार के संदर्भ में ही ईश्वरत्व

१ इयो इव पृ ६९। २ इयो इव पृ ६९।

३ इयो इव पृ ४९। It is easy to show that the ego ideal answers in every way to what is expected of the higher Nature of Man. In so far as it is a substitute for the longing for a father it contains the germ from which all religions have evolved

पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं जिसका फल यह हुआ है कि ईश्वर सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण और विचारों में बहुत बेफम्य और पार्यन्त रहा है। प्रयास स्वयं ईश्वर में विश्वास नहीं करता किन्तु पुरातन काल से आती हुई ईश्वर की कदरबा से वह अस्वर परिचित है।^१ एडकर ने धार्मिक मनोवृत्ति को एक प्रकार की कमजोरी माना है। उसके मतानुसार कुछ लोग अपने दुःख को एक ईश्वर के सिर पर काढ़ना चाहते हैं—जो अत्यधिक विश्वास और श्रद्धा के साथ पूजा जाता है तथा उसका साथ वे व्यक्तिगत व्यवहार तथा पारिवारिक सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं।^२ इन कथनों में एडकर की उन मनोवृत्तियों का पता चलता है जो धर्म और ईश्वर के प्रति उनका मनोके विचारों की ओर इंगित करती हैं। हम प्रकार धर्म और ईश्वर के प्रति अविश्वास की भावना प्रदर्शित करने वाले मनोवैज्ञानिकों के अतिरिक्त मनोविज्ञान-जगत में कुछ ऐसे मनोविज्ञानवेत्ता भी हैं जिनकी धर्म या ईश्वर में आस्था भी विदित होती है। मैकडूगल और पुंग का नाम उनमें विषय उल्लेखनीय है।

पुराकल्पना की समता

मैकडूगल को प्रारम्भ में अभीष्टरवाही या वाद में धर्म के प्रति भी उसने अन्तम आस्था व्यक्त की है। मैकडूगल की दृष्टि में धर्म या धार्मिक जाग्या तिमकता भाषुनिक विज्ञान के प्रतिरोध के बावजूद भी बहुत सापेक्ष और दोस प्रकृति के हैं। आस्तिकता या अस्पारम की मानना मनुष्य का सम्बन्ध एक ऐसे विश्व से स्थापित करती है जो भौतिकता से परे होता हुआ भी धर्म और सर्वाधिक महत्त्व का है।^३ कुछ अंशों में मैकडूगल ने प्रयास के (The future of an illusion) में प्रतिपादित ईश्वरीय उत्पत्ति के सिद्धान्त में अपना अविश्वास प्रकट किया है।^४ उसकी अपेक्षा भौतिकता की ओर पर होते हुए भी वह आध्यात्मिक सत्ता (Spiritual Potency) को अस्वीकार करने का प्रतिपक्षी नहीं है।^५ उसके मतानुसार यह भी केवल जीवित रहने के लिए संघर्ष नहीं करते बल्कि सुन्दरत जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयत्न करते हैं।^६ मनुष्य में भी अपने जीवन को सुन्दर, सुखद और शांतिमय बनाने की भावना रहती है। धार्मिक धारणा, व्यवहार और व्यापार उनमें अपने एक ही योग प्रदान करते हैं। भौतिक सामग्रियों को केवल भौतिक तृप्ति प्रदान कर पाती हैं, किन्तु फिर भी

१. जीवेव. मोन्ने पृ २४ में इस प्रकार की बातें कही हैं।

२. जगदर दू मैकर पृ. २३३। ३. रेकि सा कारक पृ. ५।

४. रेकि सा कारक पृ. ५। ५. रेकि सा कारक पृ. ९। ६. वही पृ. १०।

मनुष्य के मन में ऐसे अनेक प्रयुक्त भाव या विचार होते हैं जिनके घमन एवं समाधान के लिए धार्मिक आस्था की आवश्यकता पड़ती है। इतना ही नहीं कभी-कभी वह अपने विचारों को और अधिक उदात्त आध्यात्मिक बनाने का प्रयत्न करता है। मैकडूगल के अनुसार मनुष्य के जाने या समझाने सभी कार्य किसी न किसी रूप से सम्भव होते हैं। वह अन्य प्राणियों के साथ एक ही चेतना-प्रवाह से सम्बद्ध है। वह चेतना आध्यात्मिक ऊँचाई तक उठ सकती है। संगीतकार, कवि इत्यादि भी उसमें आध्यात्मिक चेतना का अनुभव करते हैं।^१ मैकडूगल की यह निश्चित धारणा है कि सहा ईश्वर की जो रूपरेखा विचारित की है उसका मूल में मनुष्य की रूपरेखा का हाव अक्षर्य है।^२ वह ईश्वर के निर्माण में 'पुराकल्पना की कला' (Mythopoeic faculty) का योग मायता है।^३ मैकडूगल ईश्वर निर्माण की प्रक्रिया में वैपत्तिक से अधिक सामाजिक मन का हाव समझता है। उसके मतानुसार यों तो मनुष्य प्रायः ऐश्वर्यात्मिक और देवी चमत्कार के रूप को साधनों का प्रयोग करता रहा है।^४ किन्तु देवी ईश्वर वैपत्तिक मन की अपेक्षा समझित या सामाजिक मन की निर्मिति अधिक कहा जा सकता है। उसका विकास भी समझित मन से ही होता रहा है।^५ मैकडूगल की ईश्वर सम्बन्धी धारणा सामान्य मनोविज्ञान की विचारणा पर ही अधिक आधारित जान पड़ती है। ईश्वर के निर्माण में योग देने वाली 'Mythopoeic faculty' को भी अधिक विस्तृत ढंग से उसने विवेचित नहीं किया है।

मनोशक्ति (सिविद्धो) की उच्चतम सत्ता के समकक्ष—

सबधर्म्मिमान सत्ता और ईश्वर के रूप पर विचार करते हुए तथा कई और हेतुओं के विचार इन्हों को उपस्थित करने के उपरान्त पुंय से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ईश्वर उच्चतम शिव (Good) का प्रतीक है। पुंय के मतानुसार यह सत्त्व (Good) स्वयं उसके परम मनोवैज्ञानिक मूल्य को प्रदर्शित करता है। दूसरे शब्दों में यह प्रत्यय (Idea) हमारे कर्णों और विचारों के निर्धारण की दृष्टि से उच्चतम या अत्यन्त सामान्य धर्मवत्ता स्वयं प्रकट करता है या रूप प्रकट करता है।^६ पुंय ईश्वर की रूपरेखा को सिविद्धो शक्ति के समक

१. वही पृ. २२-२२।

२. वही, पृ. ९।

३. वही पृ. २२।

४. मूल भा. पृ. ७२।

५. मूल भा. पृ. ७२-७४।

६. सारथी शरण पृ. ६१ (२. ४४ से)।

देखता है। उसके मतानुसार 'विरहोपग मनोविज्ञान की भाषा में ईश्वर की धारणा उस प्रस्थि से मिलनी-जुझनी है जो पूर्वनिहित परिभाषा के अनुसार मनोशाक्ति लिबिडो (मनोशाक्ति Psycho energy) की अधिकतम राशि को अपने-भाप में अन्तर्गुह्य कर लेती है। वस्तुतः ईश्वर धारणा की 'प्रतिमा व्यक्ति सापेक्ष होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति में पृथक्-पृथक् मात्रा में है। वैयक्तिक अनुभव की भी यही स्थिति है। प्रत्यय-शेष के तपाक से भी ईश्वर कोई एक ही सत्ता नहीं है। क्योंकि जैसा वह पर्याय में है उससे वह कुछ कम ही प्रतीत होता है।" ऐसे लोग हैं जिनमें ईश्वर किसी का उद्गार है किसी का चम किसी का विज्ञान या शक्ति या काम इत्यादि। व्यक्तिगत मनोविज्ञान की दृष्टि से अधिकतम काम भी अधिकमित्र होने की अपेक्षा क्रमता: स्थानान्तरित होता रहा है।

उपनिषद् ब्रह्म काम शक्ति के समकक्ष

युग के द्विपु कुछ भयों में उपनिषद् ब्रह्म केवल एक दृशा मात्र की अभिव्यक्ति नहीं है अपितु युग के जिन्हें काम प्रतीक कहा है भाषा के ही उपनिषद् ब्रह्म की धारणा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करते रहे हैं। वितोपध्वर ब्रह्म की उत्पत्ति अम्म सृष्टि, देवसृष्टि से सम्बद्ध जितन मत्र जाए हैं, उनमें निहित सभी धारणाओं को वह मनोशाक्ति (लिबिडो) के समकक्ष या समरूप देखता है।"

'लिबिडो' राशि और ईश्वर

विश्व के बड़े बड़ों के सम्मेलनों में इस सवाल के वे सत्यनिहित नहीं होते जो लिबिडो की आत्मनिष्ठ गति को अन्तरोन्मुख कर अवैतन में के जात हैं।"

१ सारथी टारप पृ २१।

२. छ मा २४ १ १ ३। ३. भा. १ २१ २५, वाच सं २१ ४८ छ मा. ८, ५, १ ७ म. भा. २, ८ ८, ८ अर्ध २, १, ४ १ अर्ध २१ ५, २१ है उप २ ८ ५. ह व १ ५, २५-२, २१. ५. धा. उ १ २१ ७ इत्यादि।

३ सारथी टारप पृ २४१। "It is therefore, not surprising that the symbolical expression of this Brahman concept in The Upanishads makes use of all those symbols which I have termed libido Symbols. वैदिक साहित्य में ईश्वर का कामरूपत्व विशेषकर जुग के ही यन्मन्त्रानुसार कामरूपमें समर्पणगति: मनसादेवः प्रथमं ब्रह्मसोप' या 'सोऽब्र मयन बहुरवर्षा प्रजापति जेते मंत्रों में व्युत्पन्न होता है।

४ सारथी टारप पृ १ ९।

'किबिडो' का सामान्य उतार और अन्तर्मुखीकरण अचेतन रूप से 'किबिडो' का एकत्रीकरण करता है। जो राशि का प्रतीक ग्रहण कर लेता है। एन्डर्स के उद्धृत कथनों को वह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुकूल मानता है। उसके मतानुसार आत्मा का ज्ञेय नहीं है वहाँ वह कोस-राशि द्विपी हुई है और वहाँ ईश्वर का भी राज्य है। आत्मा अचेतन का मानवीकरण है। वहाँ मनोव्यक्ति या 'किबिडो' का कोश विद्यमान है तथा जो अन्तर्मुखीकरण के क्रम में अभिमूढ और आत्मसात् हो गया है। यह मनोव्यक्ति 'किबिडो' की वह राशि है जिसे ईश्वर का राज्य कहकर वर्णित किया जाता है।^१ पुंग के अनुसार ईश्वर से सर्वथा महत्तम मूल्य का बोध होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका तात्पर्य है—'किबिडो' की अधिकतम राशि जीवन की सर्वाधिक गह्रता और मनोवैज्ञानिक कार्य-स्वापार की चरम सीमा है।^२ इससे अपने ही राज्य में रहने वाले ईश्वर के साथ शायद एकता का बोध होता है। इस अवस्था में अत्यन्त सच्चिदान्दी 'किबिडो' या मनोव्यक्ति का एकत्रीकरण अचेतन में होता है जिसके द्वारा प्रायः चेतन जीवन का भी निर्धारण हुआ करता है।^३ 'किबिडो' का वह एकत्रीकरण विभिन्न कल्पों से और संसार से होता है, जिसके एकवर्ती प्रमुख को यह अनुकूलित या प्रतिबन्धित कर देता है। पहले तो ईश्वर उसके बाहर या किन्तु अब वह उसके भीतर सक्रिय है क्योंकि अब वह शुद्ध राशि (किबिडो राशि) ही ईश्वर-राज्य के रूप में पृथीत होती है।^४ इसमें स्पष्ट ही यह भाव परिकल्पित होता है कि आत्मा में ही एकत्रित 'किबिडो' या 'मनोव्यक्ति' ईश्वर से भी किसी व किसी आत्मव्यय का चोत्पन्न करती है।

अचेतन उपादान एवं आत्मस्वरूप ईश्वर

पुंग के अनुसार ईश्वर अचेतन उपादानों का मानवीकृत रूप है, क्योंकि सब की अचेतन क्रिया के द्वारा वह हमारे सामने रहस्योद्घाटित होता है।^५ उसके मतानुसार यदि आत्मा को अचेतन उपादानों का मानवीकृत रूप माना जाय तो ईश्वर भी पूर्ण परिभाषा के अनुसार अचेतन उपादान ही है। वहाँ तक वह व्यक्ति रूप में चिन्तनीय है, वह मानवीकृत रूप है। विनापकर वह विद्युत् या प्रमुख रूप से गतिशील विन्म

१ सारको टारप पृ. ३१ ।

२ सारको टारप पृ. ११२ ।

३ सारको टारप पृ. ३१ ।

४ सारको टारप पृ. ११ ।

५ सारको रेडि पृ. २३१। Gods are personifications of unconscious contents, for they reveal themselves to us through the unconscious activity of the psyche.

या अभिव्यक्ति के रूप में गृहीत होता है।' इस प्रकार यह आत्मा और ईश्वर का एक ही समझता है। मनोविज्ञान के, विज्ञान के रूप में, अभिव्यक्ति की सीमा में परिस्तीमित होने के कारण उसे अनुभव तक ही सीमित रखना आवश्यक है, भगवान या ईश्वर वहाँ सापेक्ष भी नहीं है, बल्कि एक अचेतन क्रिया है जिसे उक्त 'लिबिडा की विकसित राशि का व्यक्त होना कहा जा सकता है जिसने 'मगक्य प्रतिमा को सक्रिय बनाया है।' किन्तु ईश्वर की सापेक्षता के प्रमाण से यह प्रतीत होता है कि कम से कम एक द्वारा, अचेतन-प्रक्रिया के गण्य अंश को भी वैज्ञानिक उपादान के रूप में पहचाना नहीं जा सकता। निम्न ही ऐसी अन्तर्दृष्टि लम्बी हो सकती है, अब आत्म-चिन्तन सामान्य से अधिक हो जाता है। पर्याप्त अचेतन उपादानों को उनकी आकस्मिक वस्तु में प्रक्षेपित होने से रोक दिया जाता है। और उनका प्रति कृष् विज्ञान होने की दृष्टि मिल जाती है जिसमें अब वे आत्मवस्तु से अनुकूलित होकर या उसीकी होकर व्यक्त होती है।^१ ईश्वर जीवन का सर्वाधिक गहनतम तत्त्व अचेतन में और आत्मा में निवास करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर सम्पूर्ण रूप से अचेतन ही हो जाता है—बिनापर इस अर्थ में कि चेतना से उसके अस्तित्व का व्योम हो जाता है। ऐसा लगता है कि उसके मुख्य गुण कहीं अन्यत्र दृष्टा गये हों, जिसमें वह बाहर न प्रतीत होकर भीतर प्रतीत होता हो। इस स्थिति में कल्प वस्तु अब स्वतन्त्र तत्त्व (factors) नहीं है बल्कि ईश्वर ही स्वतन्त्र 'मनोवैज्ञानिक प्रवि' बन गया है। यह स्वतन्त्र प्रथम सर्वज्ञ कबल आधिक रूप से चतन है तथा कुछ विरोध वृत्तियों में ही अब से सम्बद्ध है, फिर भी उस सीमा तक नहीं कि वह ही उसको आत्मसात् करे। ऐसी स्थिति में वह स्वतन्त्र नहीं रह सकता, अपितु उसी चम से बहुत अधिक कल्प निर्धारक तत्त्व भी नहीं रह जाता, बल्कि कबल अचेतन मात्र रह जाता है।^२

सामूहिक प्रत्यय

पुनः ने वृत्त्यात्मक शक्तियों में धाग देने के कारण ईश्वर को सामूहिक प्राणय माना है। वृत्त्यात्मक शक्तियों को सबन्धित करने के कारण जीवात्मा देव धार ज्ञान के अनेक रूप धारण करती है। इस क्रम में एक विचित्र बात यह उचित होती है कि संवेदना और विचारणा दोनों सामूहिक काय हो जाते हैं, जिनमें पर्याय न ज्ञान के कारण वैयक्तिकता विविद्ध हो जाती है,

१ सारथी धारण पृ. ३०९।

२ सारथी धारण पृ. ३०२।

३ सारथी धारण पृ. ३०२।

४ सारथी धारण. पृ. ३००।

इस प्रकार वैयक्तिकता ईश्वर के सहा एक सामूहिक सत्ता बन जाती है, क्योंकि ईश्वर समस्त प्रकृति में व्याप्त एक सामूहिक प्रत्यय है।^१

मनुष्य सापेक्ष

गुंग के अनुसार ईश्वर की सापेक्षता इस विचारधारा का भी स्रोत बनती है जिसमें ईश्वर का चरम सत्ता का होना आवश्यक हो जाता है वह मात्मीय विषय से परे होकर मनुष्य की सभी अवस्थाओं के बाहर अपना अस्तित्व रखता है। कभी-कभी कुछ जगहों में वह मनुष्य के विषय पर ही निर्भर करता है, जिसके कठोररूप ईश्वर और मनुष्य दोनों में अविद्य एक पारस्परिक सम्बन्ध विकसित होता है। यहाँ केवल मनुष्य ही ईश्वर का कार्य-व्यापार नहीं माना जाता अपितु मनुष्य भी मनुष्य का एक मनोवैज्ञानिक कार्य-व्यापार हो जाता है।^२ इस प्रकार गुंग के मतानुसार ईश्वर और मनुष्य की सापेक्षता धार्मिक विषयों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को भी एक महत्वपूर्ण स्थान पर पहुँचा देते हैं।

ईश्वर और परमेश्वर

तेरहवीं शती के एक मनीषी एडवर्ड क ब्रदरवों क आचार पर गुंग ने ईश्वर और परमेश्वर में भी अन्तर स्पष्ट किया है। परमेश्वर सर्व है, वह स्वयं न तो ज्ञाता है न धारणकर्ता; जब कि ईश्वर आत्मा की एक क्रिया क रूप में प्रतीत होता है। परमात्मा स्पष्टता सर्वव्यापी सृष्टि-शक्ति है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह स्वयं उत्पाद्य तथा 'सहस्रसृष्टियों' का धरा है, जो सापेक्ष हाथर की इच्छा (Will) की तुलना में न तो ज्ञाता है न धारणकर्ता।^३ जबकि ईश्वर आत्मा और परमात्मा से विद्युत् होता हुआ प्रतीत होता है। आत्मा जीव के रूप में उसको व्यक्त करती है। जब तक आत्मा को अचेतन से पूर्य नहीं किया जाता और जिस काक तक उसका अचेतन की शक्तियों और उपादानों से प्रत्यक्षीकरण होता रहता है, तबतक उसका अस्तित्व बना रहता है। ज्यों ही आत्मा अचेतन शक्ति की बाड़ और छोट (SOUL) में विसर्जित हो जाती है, उसी समय उसका (ईश्वर) भी कोप हो जाता है। निस्तरन की यह क्रिया अचेतन उपादानों की उपस्थिति का तथा आत्मा से उत्पन्न प्रत्यय क रूप में अचेतन शक्ति का बोध कराती है। अर्ह जैसे विपरी (Subject) का ईश्वर जैसे अकल्पन कल्प से पूर्य करना ही वस्तुता

१ सास्त्रो ग्रन्थ पृ ११५।

२ सास्त्रो ग्रन्थ पृ १ ।

३ सास्त्रो ग्रन्थ पृ ११५।

अचेतन^१ 'dynamis' से ज्ञान-वृत्त को प्रयत्न करने की क्रिया है।^२ इस प्रकार ईश्वर प्रादुर्भूत होता है। जगत से अहं को विरिद्ध करने के बाद और अचेतन को गतिशील dynamis' शक्ति से यह (ego) के तादात्म्यकरण के द्वारा एक बार पुनः यह शर्बरीय चरितार्थ होता है। जिसके लक्ष्यरूप ईश्वर लक्ष्य वस्तु के रूप में सुष्ठ होकर स्वयं कर्ता (subject) बन जाता है जिसे अब यह सं प्रयत्न नहीं किया जा सकता।^३

ईश्वर भाव-प्रतिमा (आकॅटाइप) के रूप में

विरहेपगतमक मनोविज्ञान का मानव इतिहास से अनुभवगतमक विज्ञान माना जा सकता है। उसके अनुसार ही भगवान् की प्रतिमा (Image) किसी मनोवैज्ञानिक दृष्टा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती है। इसकी प्रकृति विरधी (Subject) की चेतन दृष्टा पर परम प्रभुत्व स्थापित करने की रहती है। अतः वह उसे एक ऐसे पूर्ण प्रतिमानत्व की ओर प्रेरित करती है जो चेतन प्रभाव के द्वारा विकसित सम्भव नहीं है। जहाँ तक देवी काव्यपावार के सक्रिय रूप से प्रकट होने का प्रसंग है अतिप्रमत्तगीक वृत्तिर्वा या यह प्रेरणा को समस्त चेतन सशक्तों को अतिप्रमत्त कर देती है अचेतन में अन्ति की शक्तिपुत्र एकत्रित करने कल्पती है। 'दिविद्यो' का मनोव्यक्ति का यह एकत्रीकरण प्रतिमाओं को चेतना प्रदान करता रहता है। जिसे सामूहिक अचेतन गुण सम्भावनाओं के रूप में रखा है। यह है भगवान् की भास-प्रतिमा (Imago) के मूल उद्गम का रहस्य या भादि काळ ने ही अचलन पर सुद्विष्ट हा ययी है और चेतन पर अचलन रूप से अभिकन्द्रित दिविद्यो (मनोव्यक्ति) की सर्वाधिक शक्तिशक्तिनी परम क्रिया की सामूहिक अभिव्यक्ति है।^४ हुंग कहता है कि 'अब भी हम धार्मिक उपादानों के बारे में कुछ कहते हैं, हम अब प्रतिमाओं के जगत में भ्रमण करते हैं जिनका मंडन किमी अचलनीय की ओर होता है। हम नहीं जानते कि अपने स्वभाविसयी वस्तु या विषय की दृष्टि से वे प्रतिमाएँ क्यक और घातपाएँ कितनी स्पष्ट और अस्पष्ट हैं। उदाहरण के किच् यदि हम कहते हैं ईश्वर या भगवान्, तो विषय ही हम एक ऐसी प्रतिमा या घातिका घारणा की अभिव्यक्ति करते हैं या काळ-क्रम से अनेक परिवर्तनों से गुजरती रहते हैं।'^५ 'अचलक हममें भास्या न ही हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वे

१ सारथे शब्द पृ ११६।

२ सारथे शब्द पृ. ११६ का 'तामी देयन न मरं मी हो परं व्यत' कवीर।

३ सारथे शब्द पृ १००-१०१।

४ सारथे शक्ति पृ. १६०-१६१।

परिवर्तन केवल प्रतिमाओं या बिम्बों या चारित्र्यों का ही प्रभावित करते हैं। फिर भी हम एक महत्वपूर्ण सखिछोट क साक्षर प्रवाद के रूप में भगवान् की कल्पना कर सकते हैं जो अपने रूप को अनेक बार बदलता है, ठीक वैसी ही जैसे हम उसकी साक्षर स्थायी और सनातन अपरिवर्तनीय तरफ के रूप में कल्पना कर लेते हैं।^१ हमारी तरफ़ना को बचक एक ही बात का निबन्ध है कि वह प्रतिमाओं (Images) और प्रत्ययों (Ideas) का निर्माण करती है; जो मानवीय कल्पना और उमक ऐहिक तथा स्थानीय स्थितियों पर निर्भर करते हैं और इसीलिए वे ऐतिहासिक कार्यक्रम से असेव्य बार परिवर्तित होते रहे हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन प्रतिमाओं क पीछे कुछ वह है जो चेतना का अतिक्रमण कर जाती है और इस प्रकार कार्यशील रहती है कि उसके कथनों में सीमा से बहुत दूर या भयानक वैचर्य नहीं हो पाता। बकि स्पष्ट ही वे सब कुछ आधारमूल सिद्धान्तों या पुरा प्रतिमाओं से सम्बद्ध प्रतीत जात हैं। मन या पदार्थ के सद्य वे स्वयं अज्ञात हैं। यद्यपि हम जानते हैं कि वह भी भयपास ही होगा हम इतना ही कर सकते हैं कि इनके 'मॉडल' या डॉपे तैयार करें या एक सभ्य मान कर धार्मिक कथनों के द्वारा बार-बार परिपुष्ट करते रहें।^२ इस प्रकार पुंय ने ईश्वर को ऐसी भाव-प्रतिमाओं के रूप में देखने का प्रयास किया है जो विश्व क समस्त जनों में भाव-प्रतिमा क रूप में प्यास है। इसी से वह ईश्वर के विश्व को प्रतिमाओं का सञ्चार मानता है। उसका कथन है कि 'जहाँ मेरा सम्बन्ध हम धार्मिक विषयों से रहा है मुझे बहुत अन्वी तरह पता रहता है कि मैं प्रतिमाओं क विश्व में भूम रहा हूँ; और मेरी कोई भी विचारना उस अज्ञात सत्ता का स्पर्श भी नहीं कर पाती है। मुझे यह भी पता है कि हमारी धारणासक्ति कितनी सीमित है भाषा की परित्रता या कमजारी के विषय में कुछ न कह कर यह कल्पना करना कि मेरे आशेष अपेक्षाकृत सैद्धांतिक अर्थ अकिठ रखते हैं। कितना एक आदिवासी पुरुष (ईश्वर का) अर्थ समझता है। जास कर वह वह भगवान् की कल्पना 'कल' या 'सर्प' क रूप में करता है।^३ यद्यपि हमारी समस्त धार्मिक विचारधाराएँ उन मानवीकृत (Anthropomorphio) प्रतिमाओं में विहित है, जिन्हें कभी भी तार्किक या बौद्धिक समीक्षा के लिए उपरिपत नहीं किया जा सकता। हमें यह कभी नहीं भूकना चाहिए कि वे अदरप देवी 'भाव-प्रतिमाओं' पर

१ सारको थारप पृ ३६-३९२।

२ सारको रेकि पृ ३९१।

३ सारको रेकि पृ. ३९२।

निर्मात्र करते हैं, वस्तुतः उस भावात्मक आचारभूमि पर जो प्रज्ञा या तर्क का छिप चुकम्प है।^१

ईश्वरत्व का मूल उत्सव एवं विकास

आदिम युग से मानव जाति में जो ईश्वरत्व का विकास होता रहा है, उसे मनोवृत्त्यात्मक और प्रतीकात्मक दो रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। मनुष्य ने अपने विश्वास भावना और अनुभूति के द्वारा एक ऐसी नैतिक या मनोवैज्ञानिक प्रश्रिय का निर्माण किया है जो युग-युगांतर से ईश्वर-सम्बद्ध स्वप्नप्रतियों का विस्तार करती रही है। उसकी यह क्रिया प्रायः परम्परागत रूप से स्वप्न प्रतीकों एवं प्रतिमाओं के उद्भव और पुनर्निर्माण द्वारा होती रही है। मनोवृत्त्यात्मक और प्रतीकात्मक रूपों में मनोवृत्त्यात्मक पूर्ववर्ती और प्रतीकात्मक परवर्ती माना जा सकता है; क्योंकि सिद्धकाशीन मनोवृत्तियों ने ही ईश्वरात्मक प्रतीकों की सर्वप्रथम जन्म दिया होगा। ईश्वर प्रतीक सिद्धमनोवृत्तियों द्वारा निर्मित व्यक्तिकृत और समूहीकृत ईश्वर-प्रश्रियों की श्रृंखला है। पूर्ववर्ती अवस्था में पिता, माता पूज्य पुरोहित, राजा विद्वान्, नेता वैद्य इत्यादि के प्रति जो आदर भावना विकसित होती रही है—उसमें सर्वप्रथम पिता का रूप ही ईश्वरत्व का निर्माण का मूल कारण मान पड़ता है। पुत्र पिता के रूप और बर्ष के आधार पर ही अतिमानवीय व्यक्ति की कल्पना करता है।^२ उसकी इन समस्त प्रवृत्तियों और संवेगों का, जिनका सम्बन्ध पिता से था, बड़े सहज ढंग से स्थानान्तर हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रौढ़ सिद्ध का मन में पिता के प्रति जो मनो भावना होती है उसी मनो भावना के आधार पर यह ईश्वर में अतिमानवीय दिव्य शक्तियों की कल्पना कर उसका मानवीकरण दिव्य पिता के रूप में करता है।^३

युवा होने पर पुत्रक मानव को अत्यन्त प्रबल शक्तियों का सामना करना पड़ता है। वह अपने पिता को भी उसी प्रकार एक प्रबल शक्ति के रूप में देखता है; जो उसके भाग्य का भी नियन्त्रण करता है। सिद्धकारक के अनुपात में उच्च और अनुभव में बुद्धि प्राप्त ही उसके मनमें विहित सर्वशक्तिमान्, सर्वशाठा इत्यादि के भ्रम दूर हो जाते हैं। वह अपने अनुभव सिद्धा और परम्परा से भी इस तथ्य का अनुभव करम लगाता है कि विश्व में एक ऐसी आगतिक शक्ति है जिसके समक्ष उसके पिता मनुष्य और यहाँ तक कि समस्त मनुष्यजाति की शक्ति तुल्य है। उसकी सिद्धकाशीन अज्ञानता

१ छारको शरण पृ ११२। २ छारको पन रटवी केमिजी पृ. १११।

३ छारकी पन रटवी केमिजी पृ १११।

धर्मों-धर्मों दूर होती जाती है। सर्वशक्तिमान और सर्वम्पायी जैसे पिता पर आरोपित बौद्धिधर्मों का स्थायान्तर आदर्शोद्भूत रूप की ओर होने लगता है।^१ यह स्थायान्तर 'फ्लुगल' के अनुसार निम्नलिखित रूपों में होता है।

१. आदिम मस्तिष्क में बीच चेतनात्मक (Animistic) प्रवृत्तियों का विश्वास होने के कारण, बालक स्थानात्मिक रूप से व्यक्ति या मानव रूप में प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना करता है।

२. प्रारम्भ में भी बालक अधिक संख्या में सृष्टि करने वाले 'जगत-स्रष्टा' रूप में प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना करना सीखने लगता है, ठीक वैसे ही जिस प्रकार उसका पिता और अन्य लोग छोटी संख्या में सृष्टि-कार्य में रत हैं। बाद में वह अपनी उसी 'सृष्टि-वृत्ति' को अपने ईश्वर पर काढ़ देता है।

३. इस प्रकार पिता से अर्जित वे गुण और वैशिष्ट्य जो ईश्वर को प्रदान किये जाते हैं। धार्मिक परम्पराओं या विशेषकर भाषा, साहित्य और कला के द्वारा उन्हें अधिक उद्दीपन प्रसंगगर्भित व्यर्थवत्ता आदि भरकर उन्हें जीवन्त और भावात्मक बना देते हैं।^२

ईश्वर-निर्माण के मूल में पिता, माता और मेता

इस प्रकार ईश्वरत्व के विकास की दृष्टि से मानव पिता और परम-पिता में यह अतिवृद्ध सम्बन्ध कथित होता है जो मनुष्य के मन में बहुत दूर तक बढ़ी-मूत हो गया है। पितात्मक धर्मों के विकास में तत्कालीन पिता की अपेक्षा पुरातन पिता या कुक्कपितामह का विशेष योग रहा है। परिवारों में प्रायः वे ही कुक्कवेषता के रूप में मान्य होते हैं। उनकी पृष्ठभूमि में तिन धर्मों का विकास हुआ है, वे उनके ईश्वरात्मक व्यक्तित्व का निर्माण विविध तत्त्वों के समावेश द्वारा करते हैं, विशेषकर ऐसे ईश्वर के व्यक्तित्व एवं चरित्र में कुक्कगठ वैशिष्ट्य, व्यक्तित्व वैशिष्ट्य, पौराणिक वैशिष्ट्य तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य मिलकर एक विविध ईश्वरीय व्यक्तित्व की रूपरेखा प्रदान करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इसका निर्माण में पिता का सर्वाधिक योग है। किन्तु प्लायड ने पिता और माता की अपेक्षा मेता के वैधीकरण का ही सर्वप्रथम विकास माना है। उसके मतानुसार मेता का ही पुराणीकरण अपनी चरमसीमा पर पहुँचकर उसका ईश्वरीकरण कर देता है।^३ उसकी सम्भावना के अनुसार पिता की अपेक्षा मेता का वैधीकरण पहले हुआ होगा। प्लायड के अनुसार माता मेता और पिता

१. सारथी एन एचडी पैमिडी पृ. ११४।

२. सारथी. एन एचडी पैमिडी पृ. ११५। ३. वेन सेक मूव सारथी पृ. १००।

का काम ही ईश्वर-निर्माण का प्रारम्भिक काम रहा होगा।^१ इस प्रकार जहाँ तक पितृसमक स्वरूप से ईश्वर-रूपों का विकास हुआ है इस परिकल्पना से प्रायः अधिकांश वैज्ञानिक किसी न किसी प्रकार सहमत प्रतीत होते हैं। पुत्र ने भी पितृ-प्रणय से ईश्वरत्व का विकास मानकर प्रापञ्च का साथ सहमति प्रकट की है। बसिक प्रापञ्च से कुछ भागे बढ़कर पुत्र ने इस सम्बन्ध का मनोविरल्लेपभासक कारण भी प्रस्तुत किया है। पुत्र का अनुसार चेतन की रिच्छाबन्धा अर्थात् अचेतन वृत्ता की स्थिति अचेतन में 'डिबिडो के विसर्जन द्वारा काई जाती है। अचेतन में प्रसुप्त कुछ देस भी उपादान हैं जिन्हें अतीत व्यक्ति की स्मृति-प्रणय से अमिहित किया जा सकता है। इनमें सामान्यतः शिशु-प्रणय से मिलती-जुळती सबक ऊपर पितृ-प्रणय है। उपासना के द्वारा डिबिडो को अचेतन में विसर्जित कर शिशु-प्रणय पुनः सक्रिय बनायी जाती है जिसके फलस्वरूप बाह्यकाल की स्मृतिर्यो, विशेषकर पितृ-सम्बन्ध जीवन के साथ पुनः प्रबुद्ध किए जाते हैं। परिकल्पना या पुनः सक्रियता से निकलकर मातृ पितृ द्वेषियों का जन्म होता है, जिसके फलस्वरूप शिशुवत् भाव से मिलती-जुळती, ईश्वर से सम्बद्ध धार्मिक शिशुवत् भावना साधृत होती है।^२ विशेषताओं की दृष्टि से यह पिता का प्रतीक है। जो चैतन्य होने पर निःसन्देह सर्वथा अर्थात् पिता का ही प्रतिबिम्ब है जिसका उल्लेख प्रापञ्च ने निपिद्ध या अग्रम्य प्रनिरोध के द्वारा पितृ-मूर्ति के समन के रूप में वर्णित किया है।^३

उपपुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिकों ने ईश्वर को जिस परिवार में प्रस्तुत किया है वह एक सामान्य आधार होने की अपेक्षा उनक मत पार्थक्य का ही अधिक परिचायक जान पड़ता है। आस्था, विश्वास अनुभूति, अह-भादर्श 'डिबिडो' सक्ति, अचेतन उपादान सामूहिक अचेतन उपादान आदि की विचारणा कुछ मिटाकर ईश्वर को निमित्त रूप से एक मानसिक ईश्वर-प्रणय के रूप में व्यञ्जित करते हैं। फलतः ईश्वर मनुष्य के सामूहिक मनोव्यक्ति (Psychopersonality) की एक निर्मिति बन जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिशु के मन में पितृ-प्रणय का विकास ही जागे चढकर ईश्वरत्व के विकास का मूल कारण रहा है। परिणामतः शिशु का पिता ही मनुष्य का परमपिता बन बैद्य है।

विश्व के समस्त धर्मों में जो ईश्वर स्थान ग्रहण करता रहा है वह उपपुक्त विवेचित ईश्वर का ही प्रतीकात्मक रूप है। वह सभी धर्मों में

१ वेन. सेक. मू. सारथे पृ २७०। २ सारथे दारप पृ २५१-२५७।

३ सारथे दारप पृ २५७।

अपनी प्रतीकात्मक अर्थवत्ता के साथ ही खास है। यों तो ईश्वर प्रतीक के निर्माण में अनेक प्रकार के प्रतीकों और प्रतीक पद्धतियों का प्रयोग काकप्रम से होता रहा है, जिसमें अवतारवादी प्रतीकीकरण की शैली उसका एक विशिष्ट अंग है। इसलिए इस काम में इन प्रतीकों का मनोबैज्ञानिक अध्ययन नितान्त अपेक्षित है। साथ ही इसी सम्बन्ध में अवतारवादी प्रतीक एवं प्रतीकीकरण के विवेचन करने के पूर्व प्रतीक शब्द की अर्थवत्ता सीमा स्वरूप तथा चिह्न, प्रतिमा और चित्र से उसके पार्यन्त को स्थिर कर लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रतीक

समुच्च अपनी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति एवं प्रकाशन के लिए त्रिषु माध्यमों का प्रयोग करता है जिनमें ध्वनि प्रतिस्वनि, इगित, संकेत, मुद्रा सङ्घ चिह्न, प्रतीक चित्र, प्रतिमा चित्र इत्यादि का नाम दिया जा सकता है। इनमें प्रतीक^१ अभिव्यक्ति का एक सर्वप्रमुख माध्यम रहा है। चिह्न, संकेत या वे प्रतीक जो गन्धित इयामिति आदि में प्रयुक्त होते हैं उनके अर्थ और अभिप्राय प्रायः निश्चित से होते हैं धार्मिक और मनोबैज्ञानिक प्रतीकों के भी अर्थ एक हुआ करते हैं। मनोबैज्ञान की दृष्टि से धर्म मानव-स्वभाव का अन्वेष्य रूप है; प्रतीक उसकी आवरणकताओं और अभिव्यक्तियों का अध्ययन करता है।^२ प्रतीक समुच्च के मन में विहित जगति काक से धार्मिक आस्था और विश्वास जागृत ही नहीं करता अपितु सुदृढ़ भी बनाये रखता है। धार्मिक प्रतीकों के अध्ययन द्वारा वह स्पष्ट पता चकता है कि किस प्रकार ईश्वर प्रतीक विष्णु से कृष्ण के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।^३ मनोबैज्ञानिकों के अनुसार धार्मिक प्रतीक वे संकीर्ण प्रतीक हैं, जो आगति और आदर्शवादी सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं। अन्य प्रतीकों की तरह इनमें भी विकृत होने की प्रक्रिया निकली है, किन्तु इनकी एक विशिष्टता यह है कि एक ओर तो वे अनन्तता और असीमता

१ यी रहस्य पृ ४६५। 'प्रतीक (प्रति+इक) अर्थ का वाचार्थ यह है—प्रति = अपनी ओर इक = मुख हुआ। जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गीचर हो; और फिर जगो उस वस्तु का भाग हो, तब उस भाग को प्रतीक करते हैं। इस विषय के अनुसार, सर्वम्वादी परमेश्वर का ज्ञान होने के लिए उसका कोई भी प्रत्यक्ष चिह्न अंशरूपी विष्णुति वा नाग 'प्रतीक' हो सकता है।

२ सिन्धो पृ २१५।

३ सिन्धो पृ २२।

का अभिप्राय व्यक्त करत हैं और दूसरी ओर धार्मिक ग्रन्थविधासों (Dogmas) की भी स्पष्टता करते हैं। धार्मिक प्रतीकों में प्रकृतिवादी और आदर्शवादी दो प्रकार की प्रकृतिपूर्ण कल्पित होती हैं। प्रकृतिवादी धारणा के अनुसार धार्मिक प्रतीक प्रकृतमा प्रत्यावर्तक (Regressive) होता है इसकी अभिव्यक्ति में वंशाणुगत (Genetic) प्रकृति रहती है। प्रकृतिवादी किसी भी प्रतीक का विरक्षेपण मूक में आरम्भ करने का अर्थव्यस्त है। इसी से प्रत्येक प्रतीक में किसी न किसी प्रकार का आदिम तत्व (Primitive element) अवश्य मिलता है। इनके मतानुसार धार्मिक प्रतीकों के मूक में भी आदिम तत्व मूक मिति के रूप में स्थित है। आदर्शवादी विचारणा के अनुसार धार्मिक प्रतीक परम सत्ता का वाचक है।^१ ये उसमें सत्य, शिव और सौन्दर्य का दर्शन करते हैं।

साहित्यिक

किन्तु साहित्यिक प्रतीकों में नये-नये अर्थ, नये-नये सद्मों में सदैव उठते और पर्यवसित होते रहते हैं। इनमें सामान्य साधारण के साथ-साथ कुछ ऐसे सूक्ष्म और सांकेतिक तत्व मिले रहत हैं और इनके माध्यम से ऐसे विचार और भाव आगुत होते हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध उन प्रतीकों अथवा सद्मों से सरकता-पूबक नहीं होता या सक्तता। एक प्रतीकात्मक सद्म अनेक स्तरों पर अपना कार्य करता है तथा अनेक प्रकार के भाव और मानसिक चित्र उत्पन्न करता है।^२ चिह्न, संकेत या गणित प्रतीकों के भी अर्थ प्रायः निश्चित और सावनीम होते हैं, म्यान भेद से उनमें द्विधित रूपान्तर सम्भव है। किन्तु फिर भी इनमें परिवर्तन कम ही हुआ करत है। सु० लैन्डर के अनुसार भी चिह्न, मूल, वर्तमान और भविष्य तीनों काओं में अस्तित्व रहता है और यथा अवसर वसके अर्थ का अर्थान्तर भी हो सकता है।^३ साहित्यिक प्रतीकों के अर्थ भी कभी स्पष्ट होते हैं और कभी अस्पष्ट। भाषुनिक मनाबैज्ञानिकों ने इन प्रतीकों की विशेषताओं पर पुष्पक विचार प्रकट किए हैं। ये प्रतीक को शिव अभिव्यक्तता शक्ति का चेतक मानते हैं, वह मनोबैज्ञानिक अर्थवत्ता से ही संबन्धित पड़ी जा सकती है। मनोबैज्ञानिक दृष्टिकोण से वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण में जो अन्वय क्रियाएँ होती हैं, उनमें प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं का भी एक प्रमुख स्थान है।

१ सिम्पो पृ २२२।

२ दि अग्र पृ २-२१।

३ मो एरने (जैप सिम्पो.) पृ १२२।

प्रतीक की अनिश्चितता के प्रति पुंग का कथन है कि प्रतीक सर्वत्र आतियों के मूक में अंकित अवसरोपों से गृहीत होते हैं। उनके उद्गम या विमाण काल के विषय में बहुत कल्पना या ठकें किए जा सकते हैं किन्तु फिर भी इनका ठीक-ठीक निष्पत्ति नहीं किया जा सकता।^१ प्रोफेसर मे स्वर्गों की प्रतीकारामकता के सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा है कि 'किसी स्वप्न-अवयव और उसके अनुवाद में जो निश्चित सम्बन्ध होता है, उस इस प्रतीकारामक सम्बन्ध कहते हैं और स्वप्न स्वप्न-अवयव को अचेतन स्वप्न विचार का प्रतीक या संकेत कहते हैं।'^२ इस क्रम में प्रोफेसर ने स्वप्न अवयव और उनकी पृष्ठभूमि में रहने वाले विचारों के मध्य तीन प्रकार के सम्बन्धों की खोज की है—एक भाग का समस्त स्वप्न पर आ जाना अर्थात् निर्देस (Allusion) और चित्रकारी (Imagery) इनके अतिरिक्त वह एक चौथे सम्बन्ध की भी सम्भावना करता है जिसे उसने सांकेतिक या प्रतीकारामक बताया है। इन प्रतीकों की विशेषता बताते हुए वह कहता है कि 'किसी प्रतीक और उससे निर्दिष्ट मनोविषय का सम्बन्ध निश्चित अर्थात् न बदलने वाला होता है—मनोविषय प्रतीक का मानो अनुवाद ही होता है इसलिये प्रतीकवाद कुछ मात्रा में प्राचीन और प्रचलित दोनों प्रकार के स्वप्न निर्बन्धन के आवर्ण को मूर्त कर देता है।'^३ सम्भवतः प्रोफेसर प्रतीक और चित्र में अतिवृत्त सम्बन्ध मानता है।

चित्र या प्रतीक—स्पष्ट रूप से देखने पर चित्र प्रतिमा^४ या प्रतीक में अन्तर बहुत कम पार्यन्त जात्र पड़ता है परन्तु चित्र और प्रतीक का सूक्ष्म अध्ययन करने पर दोनों का सापेक्ष अन्तर हम देख सकते हैं। चित्र मनोगत वस्तु सापेक्ष चारित्र्यों के आधार पर निर्मित व्यक्तिनिष्ठ चित्र होता है। यद्यपि उसके अन्तराक में धारणा जपनी प्रतीकारामक अंगव्यक्ति को लेकर ही उपस्थित रहती है। व्यक्तिनिष्ठ प्रतीकों में विचारस्वप्न प्रतीक, स्वप्न प्रतीक, आतिमुक्त प्रतीक कुछ अंशों तक गृहीत हो सकते हैं किन्तु इनकी

१ साइको व्यरप पृ २९५। २ मनोवि पृ १२६। ३ मनोवि पृ १२९।

४ नीला रत्न पृ २१६। वाक्य-साहित्य में पृ ७ (२१) में कहा है कि प्रमुख प्रतीकों (बाविलियन चन्द्र, निरुद्ध, बाबास बापु, जपि जप आदि के अन्तर्गत रहने वाले पुरुषों) की खोज करते हुए कहा है—'उपरोक्त सब स्वप्न कल्पों को अर्थात् स्वप्न के अन्तर्गत मानना के लिए अतिरिक्त गौण स्वप्न स्वरूप बंधना प्रत्येक निरर्थक चित्र कहते हैं। और जब वही गौण रूप किसी मूर्ति के रूप में लोगों के सामने रखा जाता है, तब वही 'प्रतिमा' कहते हैं।

अर्थवत्ता कबल द्वारा क्वलि तक ही सीमित रहती है। इन प्रतीकों का प्रचलन एक प्रकार का मनोविश्व ही माना है। यों भी मनोविश्व की अनेक विशेषताएँ इनमें विद्यमान रहनी हैं। स्वप्न प्रतीक अचतन से अधिक सम्बद्ध रहते हैं। इससे इनमें अज्ञेयता नमीप्या तो होती है किन्तु कल्पना और स्मृति जैसे कार्य-व्यापार का इनमें अभाव ही ज्ञान पदता है। कल्पना इस कोटि के स्वप्न प्रतीकों में प्रतीकात्मकता अधिक रहती है और विचार कम। दिवास्वप्न में कल्पना कल्पना-तरंग (फ्लैमी) और स्मृति का योग होता है, अतएव इनमें मनोविश्व की भांति अधिक होती है। दिवा-स्वप्न में मूलभावना का प्रतीक अत्यन्त सहज रहता है, त्रिभुज कठस्वरूप इनमें प्रतीकात्मकता का आधिक्य सम्भव है। प्रतीक वार्थक और निरर्थक दोनों होता है। प्रतीक की अर्थगत सीमा अर्थगत अनादरति है और अतिच्छति भी। सुवेन हेक्टर ने प्रतीक में तात्पर्य (Meaning), अमिप्राय (Signification) उपलक्षण का वस्तुवाचकत्व (Denotation), माकूप्य (Connotation) चार प्रकार का अर्थ माना है।^१ पर रूप की दृष्टि से प्रतीक अक्षरमय वाच्यमय नामात्मक, रूपात्मक या मूर्त और अमूर्त दोनों होता है। उसकी अर्थगत व्यञ्जना यौक्तिक दार्शनिक प्रसंगमय अमिवात्मक, व्यञ्जनात्मक, उद्गावनात्मक और प्रवक्ष्यात्मक होती है। किन्तु बिच अर्थ तात्पर्य या संबन्ध की अवेद्या रूप चित्र और प्रतिविम्ब की उद्गावना करता है। विश्व में साधोर्हापन की अपूर्व क्षमता होती है। किन्तु प्रतीक अपन सीमित रूप में भावाभास और रमाभास तक ही सीमित रहता है। प्रतीक अन्व कार्य-व्यापारों के अनिरिक्त बुद्धि-व्यापार का अधिकधिक सट्टिय या गतिरिक्त बनाने का एक प्रमुख साधन है। बौद्धिक ज्ञानात्मक तर्क विनर्क की संयोजना प्रतीक के माध्यम से ही अधिक सम्भव है। चिंतन और मनन की प्रज्ञाचलि प्रतीक का ही आशय ग्रहण करती है। ज्ञानात्मक चारभारु प्राय प्रतीकों के ही माध्यम से व्यञ्जित होती हैं उनका अधुष्ण और अमीम विस्तार भी प्रतीकों के ही सहारे अधिक सम्भव है। किन्तु भावन और विभावन दोनों व्यापार विश्व का आशय डेक्टर रमास्वादन में परिमल होते हैं। प्रतीक जहाँ अर्थ एवं संबन्ध या अभिप्रायवाच्य तक सीमित है वहाँ बिच अनुप्य को सौन्दर्यबोध के द्वारा आनन्द की चरम सीमा तक पहुँचा देता है। पर बिच और प्रतीक दोनों की एक सामान्य विनयता यह है कि दोनों सेन्द्रिय और अतीन्द्रिय तथा ऐदिक और विद्यानीन ज्ञानों को समान रूप से अपनी पकड़ में बाँधकर आत्ममान् कर लेते हैं, अथवा यों

कहा जा सकता है कि प्रतीक उनका (चारनाभों का) प्रतीकीकरण कर लेता है और बिब बिबीकरण । प्रतीक का सम्भावित अर्थ और अघगर्मत्व दोनों विचारना और भावना को समान रूप में और अत्यन्त सतक हंग से प्रभावित करते हैं जब कि उनका अमोक्षा सम्मूर्तित दिग्ग जब प्मिप्य रूप धारण करता है तो यह ठीक प्रातिमज्ञान की तरह संबन्धना को उदीपित करता है । सुमेन केडर क अनुसार प्रतीक क अर्थ में ताकििक और मनोवैज्ञानिक दोनों पक्ष वर्तमान रहते हैं । किमी में ताकििक पक्ष प्रबल रहता है और किस्ती में मनोवैज्ञानिक पक्ष । अर्थ सामान्य हा या साधारणीकृत वह एक विच्छिन्न 'प्रतीकव्यवस्था (Symbol situation) की अभिव्यक्ति करता है ।' पुंग मे सम्भवत उसे ही 'प्रतीकात्मक मनोवृत्ति (Symbolic attitude) की सज्ञा प्रदान की है । उसके मतानुसार प्रतीकात्मक अवस्था का मनोवृत्ति वह है—जिस समय किसी पदार्थ की धारणा प्रतीकात्मक हंग से व्यक्त की जा रही हो ।' सुसन केडर की दृष्टि में प्रतीक किसी वस्तु वस्तु का रवान नहीं प्रहण कर सकता बकि वस्तुओं की धारणा का वह वाहन है । प्रतीक का प्रत्यक्ष अर्थ उसकी वस्तु नहीं अपितु उसकी धारणा है । प्रतीक हमें वस्तु-धारणा-बोध तक छ आकर झोक देता है । उदाहरण के लिए व्यक्ति वाचक नाम—राम बोधा कुता इत्यादि—अपनी धारणा ही हमारे मनमें प्रस्तुत करते हैं ।^१

जीवन्त प्रतीक (Living symbol)—पुङ्ग की दृष्टि में प्रतीक एक जीवन्त वस्तु है जिसकी विशेषताओं को किसी अन्य प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता । प्रतीक तब तक जीवन्त है जब तक वह अर्थगर्मत्व से सम्बन्धित है ।^२ यदि उसके तात्पर्य का जन्म उधी में से हुआ है; यदि वास्तविक प्रतीक ने उसका तात्पर्य अधिक दिग्ग हो गया है; तो प्रतीक मृत है और उघक्य कबल ऐतिहासिक महत्व रह गया है । प्रत्येक रहस्यवादी विद्वत्ति के लिए पुंग की दृष्टि में प्रतीक मृत है; क्योंकि रहस्यवाच क द्वारा अपेक्षाकृत अधिक विद्वत्ति की ओर उम्मुक्त किया गया है; जहाँ उघ सम्बन्धों के लिए, जो अल्पत्र पूर्ण रूप से ज्ञात हैं वह केवल एक प्रतीक या संकेत के रूप में व्यवहृत होता है ।^३ किन्तु केवल रहस्यवादी तात्पर्य में रिपत प्रतीक सर्वदा जीवन्त प्रतीक है । पुंग क अनुसार प्रत्येक मनोवैज्ञानिक

१ प्रो ऐस्ने पृ २१५-२२ ।

२ सास्की डा पृ ६४ ।

३ प्रो ऐस्ने पृ २२५ ।

४ सास्की डा पृ ६२ ।

५ सास्की डा पृ ६२ ।

उत्पादन जो किसी अज्ञात या सापेक्ष रूप से ज्ञात मध्य की तथा सम्भव सर्वोत्तम विवृति करता है प्रतीक माना जा सकता है। शर्म इतनी ही है कि हम उस अभिव्यक्ति का इतना मानन क हिए तैयार हो जायें कि वह स्पष्टता किसी चेतन सत्ता का नहीं अपितु कबल किसी ऐसी सत्ता को अभिविहित करता है।^१ अपनी विशुद्ध प्रतीकात्मकता क चलते प्रतीक जीवित नहीं रहत—किन्तु प्रमावशासी घटनाओं स सम्बन्ध होम पर क मयाण हो उठत है।^२ मूर्तिह की मूर्ति यो कबल एक मूर्ति है किन्तु पौराणिक कथा स सम्बन्ध मूर्तिह-मूर्ति अपनी समस्त पौराणिक प्रावबत्ता के साथ उपस्थित होती है। पुग तो उसी प्रतीक को जीवन्त और प्राणवाम् मानता है जो किसी वैबोतम्य का सुन्दरतम रूप में उपस्थादन करता हो किन्तु उसका प्रया स्वय उमे नहीं जानता हो क्योंकि इन दृशाओं में वह अचेतन सम्पर्क की मावता प्रबुद्ध करता है। यह और धागे बढ़कर जीवन-चेतना की सृष्टि करता है।^३ पुग सामाजिक और वैबनिक दोनों प्रतीकों में एक ही प्रकार की बिभेपनाएँ मानता है।^४ जीवन्त मस्तिष्क कभी भी अज्ञान या बुर्बल मस्तिष्क में उल्यन्न नहीं जाता। बरिक्त एमे व्यक्ति परम्परा द्वारा स्थापित पहले मे ही प्रचलित प्रतीक को अपनाकर सगुष्ट रहते हैं।^५

प्रतीकीकरण में 'बिबिहो' एव 'अचेतन' का योग—समाविज्ञान में प्रतीक उन अस्पष्ट और ऐसी हुई दृश्याओं या वास्तव्यों का सूचक है जिनके मूल में प्रेमबिम्बा या वासना है।^६ यह पधाय जीवन में वासना तथा जीवन की अनकविष प्रवृत्तियों की पूर्णता या पूर्ति का सूचक है।^७ मनुष्य की ऐसी हुई दृश्याएँ या वास्तव्यें जिन प्रवृत्तिय ऊर्ध्व में स्पष्ट होती हैं, निश्चय ही क रूप तक वास्तविक प्रावबत्तन न हाकर प्रवेपिन या प्रतीकात्मक आत्मबन्त हाते हैं।^८ प्रतीक सचदा आत्मन्त विषम प्रवृत्ति की रचनाओं में ए है क्योंकि उसक निर्माण-सत्य प्रत्यक मनो-क्रिया मे निकलकर एक निर्माण दृशा में प्रविष्ट हाते हैं। अनएव प्रतीक की स्थिति

१. सारको टा ५ १ १। २. सारको टा ५ १०४। ३. सारको टा ५ १०४।

४. सारको टा. ५ १ ५। ५. सारको टा ५ १०४।

६. सिम्बी ५ ११। ७. सिम्बी ५ १५।

८. महाभारत की यह उक्ति बहुत दूर तक इस कथन की पुष्टि करती है—

बाधना बाह्यदेवस्य बाधिनं मुरतभवत् ।

सर्वमूर्तिबाधोनां बाह्यदेव मदास्तु ते य

बाह्यदेव को बाधना से ही निवृत्ति की सृष्टि होती है। बाधना से ही ही मयवात्

बाह्यदेव-रूप से मुरतभव मे सर प्राणियों के अंदर निवास करते हैं।

ऐसी है कि न तो इसमें अन्वेषण होता है न विवेक। उसका एक पक्ष में यदि विवेक का दर्शन होता है तो इतर पक्ष विवेक से परे भी रहता है। क्योंकि उसकी प्रकृति में कबक विवेकपूर्ण तत्त्व ही नहीं बल्कि विद्वान् आन्तरिकता और बाह्य प्रत्यक्षीकरण से सबलित तत्त्व भी अन्तर्हित रहा करते हैं।

पुंग के मठानुसार अनुभव से ऐसा प्रतीत होता है कि जब 'किविडो' की एक राशि अन्वेषण रहती है तो उसका एक भाग आन्तरिकता की विवृति करता है और शेष भाग अन्वेषण में डूब जाता है। जहाँ वह कुछ सम्यग् प्रतिमाओं (इमेजेस) को प्रभावित कर सक्रिय बनाता है। प्रतीक कामरूप से आवद्ध होने के कारण जीवित रहता है और इस प्रकार काम कृत्तियों को विप्रेक्षित करने का एक साधन बन जाता है। 'किविडो' के विविध हीने के साथ-साथ प्रतीक भी प्रायःविशेषित हो जाता है। किन्तु सभी प्रतीक इस उत्तरे में भी रह रहता है। विकसित मान्य हो जाने पर प्रतीक अपनी ऐन्द्रजालिक या निर्माण-शक्ति का भी रूप लेता है। इसलिये प्रभावसाही प्रतीक की निर्दिष्टारूप से एक अपनी प्रकृति है। वह पुंग के आगतिक दर्शन को सबसे अधिक अभिव्यक्त करने वाला हो सकता है। उसमें एक ऐसा धर्म निहित हो जाता है जिसका बोध नहीं हो सकता। इसका रूप विषय ही वास्तविक बोध से पर्याप्त मात्रा में दूर रहता है जिसमें आलोचक मस्तिष्क को सतोपजनक समाधान मिल सक। अन्ततः इसका औन्मर्ष-बोध इतना मार्मिक और इष्टप्राही हो कि उसका प्रति कोई विचार उठाने की सम्भावना न हो।^१ पुंग के मन में यदि प्रतीक का मूल्यांकन किया जाय तो वह न्यूनाधिक मात्रा में अन्तर्गत प्रेरक शक्ति विहित है। इसका प्रत्यक्षीकरण और चेतन काम प्रवाह^२ जीवन के चेतन जाचरपों का विकास प्रदान करते हैं। पुंग ने इसे विद्यापीठ कार्य^३ माना है।^३ शिखर के अनुसार ऐन्द्रिय कृत्तिका का विस्तृत अर्थ है जीवन—एक वैसी धारणा जो अतीत प्रतीक मात्र को सूचित करती है और जिसमें पदार्थ सीधे इन्द्रियों के विषय होते हैं। रूपात्मक कृत्तिका का विषय है रूप एक वह धारणा जो पदार्थों के सभी गुणों को आरम्भसात कर लेती है और जिसका सम्बन्ध विचार-क्रिया से रहता है। इस प्रकार शिखर के अनुसार मध्यस्त क्रिया का कथन है एक

१. शिखर के टा. पृ. ५०१। में पुंग के 'किविडो' का प्रयोग 'मनोवैज्ञानिक 'Psychological' के रूप में किया है मनोवैज्ञानिक मूल्य की दृष्टि में 'मनोवैज्ञानिक' मनोवैज्ञानिक को सूचित करती है।

२. शिखर के टा. पृ. २१। ३. शिखर के टा. पृ. २५२।

'जीवन्त रूप', इसका अर्थ उचित शब्द वह 'प्रतीक को मानता है जिसमें शब्दों विरोध मयुक्त रहते हैं। यह एक ऐसी धारणा है जिसका कार्य है हरय पदार्थ या हरय जगत् के सौन्दर्यपरक मूर्तियों की विवृति करना। इस एक शब्द में साम्प्रद अपनी समस्त अर्थवत्ता के साथ समाहित रहता है। किन्तु प्रतीक एक ऐसी पूर्व भाषात्मक क्रिया में जो अन्य प्रतीकों का निर्माण करती है इस निर्माणधरणा में वह उनका लिए (प्रतीकों के लिए) उनकी सम्भावनाओं के विमित अपरिहाय अंग मित्र होता है।' प्रतीक की सत्यता को स्वीकार कर ही मानवता अपने देवों तक जाती वह उस मानवता के साथ एक पहुँची जिसने मनुष्य का इस पृथ्वी का एक मात्र स्वामी बना दिया। पुनः सिद्धर का ही समर्पण करते हुए कहता है कि उपासना या पूजा अपने वास्तविक रूप में विविधों का वह व्यापकित आन्दोलन है जो उसे पुरातन की ओर उन्मुख करती है। यह आदि सृष्टि के मूल में पुनः प्रवृत्ति का प्रथम है।^१ ज्ञान वाणी प्रगतिर्शाक आत्मियों की मूर्ति के रूप में निःसृत है—वह प्रतीक, जो अन्ततः तर्कों के समस्त शास्त्र या विदित परिणामों का प्रतिनिधित्व करता है। यह वह 'जीवन्त रूप' है जिसे सिद्धर ने 'प्रतीक' कहा है एक वह 'ईश्वरमूर्ति' जिसे इतिहास ने उद्घाटित किया है।^२

निष्कर्षतः मनोविज्ञान की दृष्टि में प्रतीक मनुष्य की कामनात्मक अभिव्यक्ति का वह 'जीवन्त रूप' है, जो अनेक रूपों में व्यक्त होता है।

भारतीय प्रतीकों का मनोवैज्ञानिक वैशिष्ट्य—पुनः ने 'विविध' शब्द की दृष्टि से भारतीय प्रतीकों का विवरण करने का प्रथम किया है। उसकी दृष्टि में उपनिषदों में प्रयुक्त समस्त प्रतीक एक प्रकार के 'विविध प्रतीक ही हैं।' क्योंकि जिस 'विविध' में वह सृष्टि-रस हैतता है, वह अज्ञ की धारणा में ही विद्यमान है।^३ अज्ञ के लिए प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों पर विचार करते हुए पुनः ने तै आ २, ८, ८, ८ के मन्त्र की चर्चा करते हुए कहा है कि हम मन्त्र में कहा गया है कि 'सबप्रथम पूर्व में मन्त्र न जन्म किया'—इस आधार पर उसका अर्थ यह है कि 'अज्ञ कबल उन्मुख करने वाली मत्ता मही है वहिर्ज्ञेयत्व अत्यन्त भी होता है।' पुनः पूर्व मन्त्र को अज्ञि से भी अभिहित किया गया है क्योंकि उसका मन भी पूर्व मन्त्र के समान पृथ्वी और अन्तरिक्ष का पार कर जाता है। तै आ २, ८, ८—'जो

१ म्यरथो टा. ५. २३५।

२. सारथो टा. ५. १०७।

३. सारथो टा. ५. १०८।

४. सारथो टा. ५. २५६।

५. सारथो टा. ५. १०९।

यह ब्रह्म मनुष्य में है और जो (ब्रह्म) सूर्य में है—य दोनों एक ही हैं।' युग के इन भारतीय प्रतीकों की विशेषता की खोज करते हुए 'किबिडो के ही सन्दर्भ में उबका बिरमेपगामक व्यपयम प्रस्तुत किया है। वह धर्म १०, १ में प्रतिपादित 'ब्रह्म को एक 'जीवनी शक्ति' के रूप में कथित मानता है, जो ममत्त इन्द्रियों और उमड़ी बुतियों में व्याप्त है। इस प्रकार मनुष्य की शक्ति का उद्गम ब्रह्म में ही निहित है। इस भावना का परम्परागत विकास वैदिक साहित्य से लेकर मध्यकाशीम साहित्य तक शिथिल पाइता है। ब्रह्म को सन्निभोत का प्रतीक परम्परा में ही माना जाता रहा है। वैदिक उपानिषदों में ब्रह्म से बहू भीर्य आदि की कामना करता है तो पौराणिक उपास्य ब्रह्म के एक पर ही सब कुछ करने वाला अपने को मानता है। वह भगवान के ही बहू भीर्य एवं तम की सहायता से भगवान का कर्म करने का जाकांशी है (भगवतो बहू भगवतो भीर्येभ भयवतस्तेजसा भगवतः करिष्यामिः) 'सामर्प्य का चरम प्रतीक उपास्य जब अपने आर्क्ष की चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो वह ऐसा मानन करता है कि भगवान ही अपने लिए अपनी प्रसन्नता के लिए स्वयं इस कर्म को करा रहे हैं (भगवानेष् स्वस्मै स्वपीतय स्वयमेव कारयति) इसीसे अपने समस्त गुणों और प्रतीकों के साथ एक गत्वर सृष्टि-सत्त्व के रूप में ब्रह्म और किबिडो दोनों में बहुत कुछ साम्य है।' ब्रह्म का 'बृह' शब्द उसके मतानुसार एक निश्चित मनोवैज्ञानिक दसा की ओर संकेत करता है। सम्भवतः किबिडो की एक विशेष प्रकृत शक्ति के स्थापु वर्ग में उद्दाम-प्रवाह के द्वारा तनाव की एक सामान्य दसा उत्पन्न होती है जो 'बृह' या 'बर्द्धित' होने की सम्भावना से सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था के लिए शोक-चाक की भाषा में विन्धों या प्रतिमाओं का 'उद्दामप्रवाह', 'जो स्वयं रोकना न का सक' विस्फोट' इत्यादि का प्रयोग हो सकता है। भारतीय साधना इस प्रतिबन्धित या किबिडो के एकत्रीकरण की अवस्था की परिपूर्ति आकम्भन कथ्य और मनोवैज्ञानिक अवस्था की ओर से प्याव (किबिडो) को खींचकर करती है। ऐन्द्रिय प्रत्यक्षीकरण का बहिष्कार और चेतन उपादानों का यह श्लेष अनिवार्यतः समान रूप से चेतना-श्लेष (सम्मोहन दशा की तरह) की ओर प्रवृत्त करता है; जहाँ अचेतन उपादान-पुरातन प्रतिमाएँ (Primordial images) का आगतिक और अतिमावर्धीय प्रकृति

से पुक्त हैं अपनी सार्वभौमिकता और विसद इतिवृत्त क द्वारा सक्रिय हो जाती है ।^१

य भवन्त प्राचीन सूर्य, अग्नि ज्वाला, वायु प्राण इत्यादि की अम्बोक्तियों, जो प्रारम्भिक काल से ही प्रतीक्यात्मक रूप ग्रहण करती रही हैं—अम्ब जगत-गति, रचना-सक्ति आदि भी इसी प्रकार प्रतीक रूप धारण करते रहे हैं । रचनात्मक बिन्दु की भावना स्वयं मनुष्य में निहित 'जीवन सत्य' का प्रक्षेपित प्राणकीकरण है । समस्त महत्त्वपूर्ण अनभिज्ञताओं को दूर करने क क्वाक से किसी को यह अस्पष्टी तरह परामर्श दिया जा सकता है कि वह इस (जीवन) सत्य की अमूर्त धारणा सक्ति के रूप में करे ।

युग क अनुसार प्रत्येक शक्ति में परस्पर विरोधी दो धरहराएँ होती हैं । प्रत्येक शक्तिकुल पदार्थ (क्योंकि कोई भी पदार्थ बिना शक्ति क नहीं होता) आदि अन्त रूपर-बीचे अतीतक-गर्भ पूर्ण-उत्तर कारण कल इत्यादि क रूप में परस्पर विरोधी युगों को आविर्भूत करता है । विरुद्ध धारणा से शक्ति धारणा का अपार्यक्य 'ठिबिडो की धारणा का भी आत्मसात् कर लेता है ।^२ पौराणिक और दार्शनिक परिकल्पनात्मक 'ठिबिडो' प्रतीक की प्रकृति या तो प्राण्य प्रतिपाद (antithesis) क द्वारा उपस्थित होता है या शीघ्र ही दो विरोधी तर्कों क रूप में विभक्त हो जाती है । 'ठिबिडा की प्रकृति जिस प्रकार दो विरोधों में विभक्त होन की है युग वही प्रकृति ब्रह्म की धारणा का प्रतीक में भी पाता है ।^३ (pair of opposites) क रूप युग ने सत्कृत 'इन्द्र' शब्द को ही मनावैज्ञानिक तात्पर्य क रूप उपयुक्त समझा है ।^४ छटा न ह्य सृष्टि में अनेक इन्द्रों का निर्माण किया है । भारतीय साहित्य में देव दानव ब्रह्म-राक्षस जैसे इन्द्रात्मक प्रतीकों की भरमार है । भारतीय धर्म-साधना में प्रयुक्त प्रतीकों को दो मुख्य रूप से नाम और रूप दो भागों में विभक्त किया जाता रहा है ।

नाम और रूप

इसी विभाजन की एक प्राचीन परम्परा उपनिषदों से ही सीख पढ़ने ज्ञायती है । भारतीय साहित्य में दैमिदिक सृष्टि को ग्रहण कर मन में स्थापित करन पाके भोव और नेव दो मुख्य इच्छिर्णों रही हैं । दोनों क माध्यम से मनुष्य ने बिन्दु की समस्त अनन्तता का अपनी पकड़ में धोपन का प्रयास किया । इन दोनों क भोग से दो प्रकार क प्रतीकों का विकास भारतीय

१ सारको. २।. ५ २५० । २ सारको ४। ५. २५० ।
 ३ सारको ४। ५ २५१ । ४ सारको ४। ५ २४२ ।

वाक्य में हुआ, जिन्हें हम 'नाम' और 'रूप' से अभिहित करते हैं। मनको प्राण होने वाले हरब या अहरय पदार्थ नामात्मक या रूपात्मक प्रतीकों में ही अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय ईश्वर भी नाम रूप हुए ईस उपाधि' से युक्त है। नाम निराकार और निर्गुण प्रकृति को भी अत्र जगिनाही, जैसे असीम और अनन्तता सूचक शब्दों में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है। रूप उस अनन्त और असीमको ससीम सगुण और सैमिय बनावर रूपात्मक प्रतीक या चिह्न प्रतीकों में व्यक्त करता है।' इसीसे यदि नाम में अर्थ-ग्रहण की मायना विद्यमान है तो रूप में चिह्न ग्रहण की। यदि वेदात्मिकों क इस तात्पर्य को ग्रहण किया जाय कि ब्रह्म ही सत्य है और अगत मिथ्या है तो मित्रय ही मिथ्या से एक प्रकार की प्रतीकात्मकता ही प्रवृत्त होती है। अतः समस्त विश्व ब्रह्म की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। सम्भवता प्राचीन उपनिषदों में भी सृष्टि के नाम रूपात्मक अभिव्यक्ति से तात्पर्य प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से रहा है। ठिकके के मतानुसार भी 'माया' 'मोह और अज्ञान शब्दों में वही अर्थ विवक्षित है। अगत के आरम्भ में वा बुद्ध या वह बिना नाम-रूप का था—अर्थात् निर्गुण और अव्यक्त था। फिर आगे बढ़कर नाम-रूप मिल जाने पर वही व्यक्त और सगुण बन जाता है।' 'रामचरित मावस' में नाम और राम की सर्वा क रूप में नामात्मक और रूपात्मक प्रतीकों की ही मीमांसा की गई है। वहाँ नाम-राम से जोड़ सिद्ध किया गया है।^१ बुद्ध ने प्रतीकों का एक विचारणीय अर्थ प्राणा है। नाम और रूप क ही द्वारा विचारणीय तत्त्वों को प्रतीकात्मकता प्रदान की जा सकती है। भारतीय उपासना में किन प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है उनमें नाम रूप और गुण उनक विसिद्धीकरण में प्रमुख योग देते रहे हैं। नाम प्रतीक एक, दो तीन, एकादश द्वादश अष्टोत्तरी वा सहस्रनामों क रूप में उपास्य का नामात्मक प्रतीकीकरण करते रहे हैं। साधक इन नामों क कव-कव जप के द्वारा भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आमत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में मन को अचिह्न कर देता है। तथा जातुनिक और पाश्चात्य मनोविज्ञान की दृष्टि से सहस्रों और हजारों बार निरन्तर जप करने क फलस्वरूप उपास्य जपनी प्रतीक सत्ता क रूप में उपासक क चेतन उपचेतन और अचेतन मन

१ विष्णु सा की या पृ ११५।

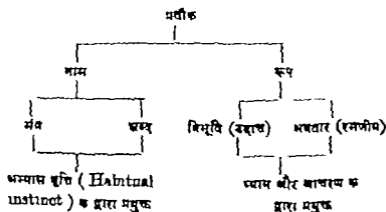
२ श्री रहस्य पृ १२९. (इ. १ ४ क, सा १, १ २ ३), सारणी या १ १५४ छ मा ११ २, ३।

३ रा मा. (कवितावर्ण) पृ १२ अर्थके मस्तु बड़ राम है किन विचार अनुसार।

४ सारणी या पृ ४।

में ध्यात हो जाता है, और उपासक को प्रत्येक स्थिति में उपास्यमय बनाए रखता है। जिसके फलस्वरूप नाम बड़े महान् अंग से उपास्य के मनो प्रतीक (Psycho-symbol) के रूप में स्थित मनो ईश्वर (Psycho-God) के रूप में सक्रिय करता रहता है। यस्तुतः उपासक का भी यही कल्प रहता है—निरन्तर अपने 'मनो-ईश्वर' को उपास्य रखता।

उपासक प्रतीक मनोचिन्म के रूप में साधक के सम्स्त पेंसिव सबेदन का साध्य बन जाता है। नामात्मक प्रतीक जनादि अनन्त, जनामय जैसे प्रतीकों में व्यक्त होने के कारण ईश्वर की व्यापकता को तो व्यक्त करता है, किन्तु उसका मानवीकरण नहीं कर सकता। नामात्मक प्रतीक में पेंसिव समझना की प्रवृत्त करने की क्षमता का नितान्त अभाव रहता है। प्रायः इस वर्ग का प्रतीक अम्बासगत वृत्तियों के द्वारा मन के चेतन, उपचेतन और अचेतन तीनों का भाष्य कर लेता है। नाम उपासक प्रतीकों का निम्न प्रकार से भी देखा जा सकता है —



नामात्मक प्रतीक प्रायः संज्ञ और शब्दों में व्यक्त होते रहे हैं। कुछ साधनाओं में इसका भी ध्यात प्रतीकात्मक चिन्मों के रूप में किया जाता रहा है।

उपासक प्रतीकों का विभूति और अवतार दो मायों में विभाजित किया जा सकता है। विभूति प्रतीक जागतिक सृष्टि में व्यक्त के हिरण, प्राकृतिक, पौराणिक और मानसिक शक्तियों हैं जिनमें मनुष्य मय की अनन्त प्रवृत्त शक्ति का विस्तार पाता है। इन प्रतीकों में विशुद्ध प्रतीकात्मकता की अवेद्य प्रतीकात्मक विश्ववृत्ता अधिक है। य प्रका के मन में सञ्जम और उदात्त के रूप में अनुभूत होने वाले प्रतीक हैं। नामात्मक प्रतीकों की तुलना

में इनमें नाम रूप और गुण तीनों मौजूद हैं। इन विभूति प्रतीकों के द्वारा जागतिक, दिव्य अतिप्राकृतिक अतिमामयीय और आदर्श गुणों की विभूति होती है। विभूति प्रतीकों में समी का मानवीकरण सम्भव नहीं है। प्रत्युत कुछ ही प्रतीक मानवीकृत रूपों के रूप में उपास्य होकर पृथिव्य स्तंभन को उद्दीपित करने की शक्ती रखते हैं। धर्म्य विभूति प्रतीक चमत्कार और आश्चर्य की सृष्टि अधिक करते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में विभूति प्रतीक मनुष्य के मन में निहित 'मनोच्छक्ति' (जिसे युग ने 'किबिबो' कहा है) के उदात्त रूप का विभिन्न रूपों में प्रत्येक करते हैं। प्रत्येक विभूति प्रतीक उसकी अदृश उच्चपनीकृत इच्छाओं (unfulfilled sublimated desire) का एक प्रतीकात्मक रूप है जो पौराणिक प्रतीकों में पृथीत होने के अनन्तर आधुनिक युग में एक प्रतीक मात्र बन कर ही रह गया है।

अवतार-प्रतीक

अवतार स्वयं ब्रह्म की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। हम केवल ब्रह्म के आविर्भूत रूप को देख सकते हैं। अवतार इत्यत्र ब्रह्म वस्तुतः सगुण-माधुर मन या इन्द्रिय प्राण रूप में उसका प्रतीकात्मक रूप है। स्वामी अद्वैतानन्द ने इसी आधार पर ब्रह्म को प्रतीक माना है।^१ तिरुक्क ने 'गीता-रहस्य' में ब्रह्म के चिह्न पहचान इत्यादि रूपों की चर्चा के क्रम में 'अवतार' को भी उसका प्रतीक बताया है^२। अवतार के रूप में ब्रह्म का यह प्रतीकीकरण अनेक प्रतीकात्मक रूपों के साथ प्रायः विरल के अधिकांश प्राचीन धर्मों में प्रचलित रहा है। युग के ईश्वर के पौरुष-रूप में प्रयुक्त होने वाले धार्मिक प्रतीकों को चार वर्गों में विभाजित किया है जिनमें अवतार-प्रतीक चौथे वर्ग में पृथीत हुए हैं।^३ वों ब्रह्म की अभिव्यक्ति करने वाले अनेक तब जिन प्रतीकों का विवेचन किया गया है इसमें संदेह नहीं कि वे समस्त प्रतीक नामात्मक या रूपात्मक हैं। वे प्रतीक भी मानव-मन एवं उसकी इन्द्रियों के योग से आविर्भूत होते हैं। उनको साहित्यिक सांस्कृतिक या साधनात्मक महत्ता युग-युगान्तर तक समीच एवं व्यवहारक्रम बनाव सकती है; किन्तु अवतार प्रतीक इन समस्त प्रतीकों की अपेक्षा अनासी प्रकृति वाले होते हैं। अवतार प्रतीक केवल मानसिक या कर्मात्मक प्रतीक न होकर 'मनोवैदिक प्रतीक' हैं। इस प्रतीक रूप में ब्रह्म का कर्मात्मक या चित्रात्मक अस्तित्व नहीं रहता अपितु ब्रह्म का प्राणी

१ दिव्य सास्त्रे वा पृ ११५।

२ भी पृ ५ ४१५।

३ पृथेग पृ. ११५।

युग के सदा उत्पत्ति या प्रजनन सम्बन्धी जीवात्मक प्रक्रियाओं से भी गुजरना पड़ता है। जीवों के सदा ही सुख-दुःख का आभास वह भी करता है। अन्य प्रतीकों का आविर्भाव मनुष्य के मन में होता है किन्तु अवतार प्रतीक वह जीवित प्रतीक है जो जीव का तरह जन्म लेकर विशु, किसोर भादि अवस्थाओं को पार करता है। अवतार प्रतीक प्रतिमा भार प्रातिम ज्ञान की अपेक्षा भारया और विश्वास की शून्य है। महाकाव्य एवं सत्यकाव्यीन युग की जनता धर्म-प्रवर्तकों, युग-प्रवर्तकों की नताओं तथा भय्याभ्य महापुरुषों को विन्तु जने विन्तु देव या देव शक्ति का अवतार मानती रही है। इन प्रतीकों में उद्भव युग की विशेषताओं के साथ-साथ धार वास अनेक युगों की अर्थवत्ता उन पर लक्ष्मी चली जाती है। अवतार-प्रतीकों में प्रतीकात्मक रंग स युग विशय की आवरणकताएँ, विवशताएँ तथा रुद्र शम्भु और हर्षोद्वास समाहित रहत है।^१ अवतार-प्रतीक प्रायः महान् पुगात्मरकारी घटनाओं से सम्बद्ध होने के कारण प्रचन्धारमक प्रकृति के होते हैं। अन्य प्रतीक धून हान पर कभी कदा चिन जीवित हान है किन्तु अवतार प्रतीक किन्ती भी मापेच-युग में पुनर्जीवित हो उठता है। अवतार प्रतीकों में गृहीत होने वाले पशुपतीकों में 'मास्य अग्न का जैविक सृष्टि प्रजनन या विस्तार तथा समता का प्रतीक है तो कृम उनधी रक्षा पापण सुख और समृद्धि का। इसी प्रकार पराह और मुनिह पृथ्वी पर हाने वाले पशुओं के पारस्परिक संघर्ष का प्रतीकात्मक घातन करत है। उनक स्पष्टिन्व में पादबिक और पशु-मानव शक्ति का प्रतीकात्मक प्रदर्शन उपस्थित करन के प्रयास किया गया है। महान् पुरुषों के सम्बद्ध अवतार प्रतीक अपने युग के एक जैसे स्पष्टिन्व के रूप में आविर्भूत होता है जो स्वयमव भावना एवं पूर्ण होता है।^२ इस प्रकार महान् पुरुषों से सम्बद्ध अवतार प्रतीकों में मनाबैज्ञानिकों के एक समष्टिनिष्ठ स्पष्टिन्व का समावेश माना है।^३

अब देखना यह है कि अवतार-प्रतीकों के प्रतीकीकरण में कितना वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का योग है। अवतारवादी प्रतीकों का विकास पूर्वानुमति पर ना आविर्भाव रहा ही है उसक विकास में रचनात्मक और पुनर्निर्माणक (reduplicative) क्रियाओं का भी योग रहा है। स्मृति या प्रत्याह्वान पर आधारित प्रतीक के रूप में अब अब व मन में उपस्थित हात है, उत्तरात्तर व अपने मूल रूप में न होकर न्यूनताधिक भिन्न रूप में होता है। मनाबिज्ञान में इस परिवर्तन-क्रिया का जो घम प्रचलित है अवतार प्रतीक भी परिवर्तन की इसी प्रक्रिया के अन्तगत आते हैं। उनमें प्रथम प्रक्रिया है पौराणिकों

१ सिम्बो ५ २२५।

२ पञ्च ५ २१५।

३ इतारको ५ २११।

क द्वारा उनके अधिक परिचित ब्रह्म की प्रकृति, द्वितीय भाकार में कमी कमी या कमी अधिक करने की प्रकृति तृतीय—सुखीकरण की प्रकृति चतुर्थ—तीस या मार्मिक बनाने की प्रकृति अर्थात् विशिष्ट आकृति को विस्तृत करने की प्रकृति । पंचम—विशिष्ट आकृति में अपनी ओर स कुछ जोड़कर समतक (Toning) करने की प्रकृति ।

इस प्रकार पुराणों में प्रत्याह्वान किए जाने वाले भवतारों का रूप उनकी उच्चतम शक्ति से होकर प्रत्येक युग की रचनात्मक प्रकृति से सन्निविष्ट रहता है । मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार प्रत्याह्वान में उपर्युक्त प्रकृतियों के अतिरिक्त बाह्य और आंतरिक उत्तेजनाएँ भी सक्रिय रहती हैं । भवतारों के प्रत्याह्वान में उनकी लीलाएँ बाह्य उत्तेजना का कार्य करती हैं तथा उपास्य के रूप में मूर्तियों द्वारा मान्य उच्च परेवण और माधुर्य प्रधान रूप एवं अन्य आरोपित आध्यात्मिक संवेग आंतरिक उत्तेजना का कार्य करते हैं । प्रायः भवतार-प्रतीकों के प्रत्याह्वान की क्रिया में उनके अंश या आयुध इत्यादि भी सहभागी होते हैं, जैसे विष्णु का चक्र, परशुराम का परशु राम का धनुष, कृष्ण की मुरली इत्यादि । प्रत्याह्वान में इष्ट या अभीष्ट की पूर्वाभ्युत्थिति के अतिरिक्त साहचर्य का भी विशेष महत्त्व रहता है । इस दृष्टि से साहचर्य और 'उप + आसना' में समानता हीन पड़ती है । भवतारवादी लीलाभ्युत्थिति तथा भवतार पूजा में भवतार प्रतीकों के साथ विचित्र साहचर्य भाव सम्बन्धित होता है ।

मनुष्य किसी अव्यक्त शक्ति के हाथों का खिलौना है । अज्ञात मन एक अनुभव्य शक्ति है । वह मनुष्य की सारीरिक और मानसिक चेष्टात्मक, बोधात्मक और संवेगात्मक क्रियाओं का संवाक्य करता है । मन की इच्छाएँ प्रतीक रूप में व्यक्त होती हैं । अतः भवतार प्रतीक भी पुराण-कर्तव्यों की रक्षात्मक कल्पनाओं के प्रतीक प्रतीत होते हैं । पौराणिकों में प्रतीकीकरण की यह क्रिया विकसित करने में अचेतन का ही प्रमुख हाथ रहता है । अचेतन में जो विस्थापन की क्रिया मानी जाती है उस क्रिया के अन्तर्गत अचेतन की विविध शक्ति से प्रभावित मनुष्य—उसका एक विकल्प प्रतिबिम्ब जोड़ता है । भवतार-प्रतीक पौराणिकों के अचेतन रूप से निर्मित एक विकल्पात्मक प्रतिबिम्ब प्रतीक हैं । क्योंकि सामान्य जन कीतरह वे अपने देस, जाति या सस्कृति की रक्षा के लिए किसी अदृश्य शक्ति के आधिपत्य की भावना करते हैं या उस भावनात्मक (Incarnation complex) भवतार भावना-प्रयोग का निर्माण करते हैं जो कभी अपने अर्थात् रूप में सम्मूर्तित नहीं हो सकता । वह प्रायः विस्थापित होकर भवतार-प्रतीकों में व्यक्त होता है ।

अवतार-प्रतीकों का नयीनीकरण

अवतार प्रतीक नयी शक्ति प्रदान करने की क्षमता तथा युग के मतानुसार अचेतन में आबद्ध 'किबिडो' (मनोशक्ति) से उन्मुक्त होने की सम्भावनाओं से युक्त रहता है । प्रतीक सदैव यह कहता है कि कुछ विशिष्ट रूपों में जीवन का नूतन आविर्भाव होगा^१ तथा गल्पबरोध को दूर कर नई जीवन-चेतना उत्पन्न होती । उसमें जीवन के चञ्चल और जीर्णता से मुक्ति प्रदान करने की भावना मिहित है । अचेतन से उन्मुक्त होने वाली किबिडो शक्ति (मनोशक्ति) प्रतीक-प्रक्रिया के द्वारा भगवान को पुनः-पुनः पुनः या किसी पुनः बनाकर प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया करती है । प्रतीक के निर्माण में यों बुद्धि या तर्क का प्रभाव रहता है, क्योंकि तर्क-वितर्क प्रतिभा या प्रतीक के निर्माण में सर्वथा अप्रमत्त हैं इसीसे प्रतीक प्रायः बुद्धिसम्पन्न नहीं होता । अवतार जन्म प्रायः सभी जन्मों में भविष्यवाणी पर आधारित रहता है । पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भविष्यवाणी स्वयमेव अचेतन का प्रक्षेपण है, जो भविष्य की घटनाओं को सदैव अग्रप्रक्षेपित (Foreshadows) कर लेता है, क्योंकि अवतारवादी सम्प्रदाय सदैव अशौचिक होता है^२ आविर्भूत होने वाले उद्धारक का प्राकृत्य असम्भाव्यता से सम्बद्ध रहता है । कुमारी कन्या से जन्म लेना या खीर के द्वारा भारतीय अवतार की दिव्य उत्पत्ति धार्मिक आधार अवतारवादी धारणाओं में असम्भव अवस्थाओं से सम्बद्ध किन्तु आते रहे हैं । अवतार के जन्म के साथ-साथ प्रतीक की उत्पत्ति का भी आरम्भ हो जाता है । प्रतीक में दिव्यता या दिव्य प्रभाव की स्थापना की जाती है । दिव्य प्रभाव का मानदंड है अचेतन वृत्तियों की अनवच्छिन्न शक्ति । अर्थात् अचेतन वृत्तियों का उन्मुक्त प्रवाह ही अवतार प्रतीकों में असम्भव और अद्भुत वैशिष्ट्यों का समावेश करता है । इस दृष्टि से अवतरित व्यक्ति तथा सदा यह रूप है जो अनेक अद्भुत शक्तियों से युक्त है, जो असम्भव को सम्भव बना सकता है । अवतार-प्रतीक यह साम्प्रदायिक मार्ग है जहाँ परस्पर विरोधी नयी विज्ञान की ओर झुटने दिखाई पड़ते हैं । पुराने सार्वभौमिक धर्म के अन्तर्गत है जो फिर नया के बाद नवजीवन उद्वेक देता है ।^३ प्रतीक के जन्म के साथ अचेतन में किबिडो का प्रायावर्तन एवम् हो जाता है बशिक 'प्रायावर्तन' का स्थापन प्रगति (Progression) प्रदान कर लेता है और प्रतिवर्षण का स्थापन प्रवहन के लेता है । अन्तिम फलस्वरूप पुरातन को आसमात् करने की क्षमता विभिन्न हो जाती है ।

१ सारको टा ५ १२० । २ सारको टा ५ १२२ । ३ सारको टा ५ १२४ ।

उद्धारक भयतार-प्रतीक

पुंग ने जिसे उद्धारक-प्रतीक बताया है वस्तुतः वह भयतारवादी उद्धारक-प्रतीक की समस्त विशेषताओं से मिलता जुड़ता है। पुंग के अनुसार मुक्ति-दाता या उद्धारक प्रतीक वह राजमार्ग है जिस पर जीवन विना किसी कष्ट या दुःख के चल सकता है।^१ प्रायः ईश्वर के वैभव से (अवतरित रूप में) ऐसा प्रतिष्ठापित होता है मानो विपत्ति तिर पर मँडरा रही हो जिस प्रकार अचनन में एकत्रित 'किबिडो' चेतन-जीवन के किष्प कतरा था। वस्तुतः यह वह स्थिति है कि अचेतन में 'किबिडो' का अस्तित्व ही उत्सर्ग होता है या स्वयं 'किबिडो' उत्सर्ग करता है अचेतन और अधिक प्रभावशाली हो जाता है तथा उसकी प्रभाव-शक्तता विशेष तीव्र हो जाती है। जिसका तात्पर्य यह होता है कि समस्त विचित्र, अपेक्षित कार्यपरत रहने की अवसिद्ध सम्भावनाएँ, जो शताब्दियों से निरन्तर हा गयी थीं सूक्ष्म चेतना की ओर से स्पर्ध अवरोध होते हुए भी पुनर्जीवित होकर चेतन पर अपना वृद्धिगत प्रभाव डालने लगती हैं।^२ इस प्रक्रिया में प्रतीक ही रक्षात्मक तत्व है जिसमें चेतन और अचनन दोनों को अपना कर सम्मिलन करने की अपूर्व शक्ती विद्यमान है।

भयतार-पुंग में होने वाले गत्यवरोधों का मनोवैज्ञानिक कारण बतलाते हुए पुंग ने उद्धारक प्रतीक के साथ उसके प्रतिरोधी प्रतीक के सम्म का भी कारण प्रस्तुत किया है। उसके मतानुसार जब कि चेतना द्वारा निर्गत होने योग्य 'किबिडो' शक्ति धीरे धीरे सूक्ष्म-सूक्ष्म कार्यों में सघने लगती है और लगातार बढ़ती हुई कठिनाइयों के बोध ही पुनः एकत्रित हो पाती है और जब आन्तरिक मतभेद के कारण द्विगुणित होने लगते हैं, उस समय अचेतन उपादानों के अतिव्यक्त और विचित्र होने का खतरा सर्वत्र बढ़ता ही जाता है फिर भी समी कालों में (अवतार) प्रतीक बढ़ता ही जाता है। जो जाये चकर संघर्ष को अनिर्धार्य करने के उपयुक्त बन जाता है। इस प्रकार जाने वाले कतरों और अन्धाकारों के साथ भयतार-प्रतीक का इतना निकट का सम्बन्ध हो जाता है कि, उसके साथ-साथ आसुरीकी और राजकी प्रवृत्तियों का उदय भी प्रायः अवरोधभावी रहता है। इसी से प्रायः किष्प के समी धर्मों में उद्धारक अवतार के साथ भयनाश का भय या भीषण युद्ध भी क्या रहता है। जब तक पुरातन हासोन्मुख नहीं होता, तब तक सावह नवीन का आधिर्भाव भी सम्भव नहीं जान पड़ता। यदि प्राचीन मनोवैज्ञान में होका नहीं बढ़काता तो फिर उसके उन्मूलन की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती।

किसी भी प्रकार का उन्मूलन या उच्छेद बिना स्वयं या पुत्र के सम्भव नहीं है। हमीने प्रायक भवतार के साथ किसी न किसी पुत्र या जसुर-वध का सम्बन्ध रखा है। युग में ठीक ही कहा है कि उद्धारक भवतार का जन्म एक बहुत बड़ी बुद्धिमान के समानांतर है। परन्तु यहाँ जया जीवन नवी शक्ति और नए विचारों की भासा नहीं थी यहाँ एक नया शक्तिसाक्षी जीवन फूट पड़ता है। यह जोत अचेतन मन के उस भाग से फूट निकलता है जिसे हम चाँहे या न चाँहे यह विचित्र अज्ञात है। इतिहासी जिसका कोई महत्व नहीं देते, उस विभिन्न और उपेक्षित क्षेत्र से निकलता है—शक्ति का एक नवीन जोत जो जीवन का भी पुनर्जीवन है। किन्तु विभिन्न और उपेक्षित क्षेत्र क्या है? यह एक सामसिक उपादानों की शक्ति है जो असंगत होने के कारण अपने चेतन मूर्तियों के साथ इतित किए गए थे। जगा युग के अनुसार कुरूप अनैतिक होय स्वयं अनुपयुक्त इत्यादि का तात्पर्य होता है यह सब कुछ को किसी समय किसी व्यक्ति को समरथा के रूप में उत्पन्न हुआ था। अब हममें बड़ी मय है कि बड़ी शक्ति का पहचानों की पुनर्स्थापित का कारण भी उमका मृत्यु और जन्म लीर्य मनुष्य को इस प्रकार पाछा दे सकता है कि या तो वह सब कुछ भूक बैठता है या समस्त मूर्तियों को अस्वीकार कर देता है। जिसकी उतने पदार्थ उपेक्षा की थी अब वह चरम सिद्धान्त है और जो पहले ठीक था अब वह गलत हो गया।

अवतार प्रतीकों का—मारापीय विकास

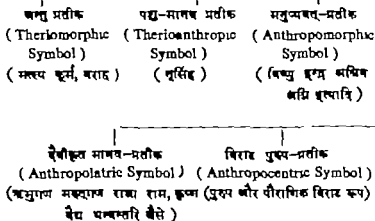
अधिकांशिक अवतारवाद पर अनेक प्राचीन तथ्यों का प्रभाव किसी न किसी रूप में उचित होता है। भारतवर्ष जगक जानियों की मरुति और सम्बन्ध का साग रखा है। अनेक सांस्कृतिक उपादानों के साथ-साथ देव मूर्ति के लिए प्रचलित कतिपय प्रतीक विद्यमान ही बरस्पर गृहीत होत रहे हैं। संमिधन की यह कि या वैदिक काष्ठ्य में ही परिकल्पित होने लगती है। जिस प्रकार भारत और पूराप की प्राचीन भाषा में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एकता रही है वैसे ही ऐसे कतिपय देव प्रतीक मिलत हैं जिसकी मरुति न्यूनाधिक रूपान्तर के साथ लन्काकीन भारोपीय मनोबुद्धि की ओर इगित करती है।^१ इन भारोपीय प्रतीकों को विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है :—

१ लारकी डा ए. १२८।

२ रम्टी सा मा ए. २०। पुराणानों का पुन्यारम्भ अन्वयन करने के बरान्त विद्वानों ने कतिपय देव तन्नों को बरलम्ब किया है जो कथान्त के साथ पारत और सुरोप दोनों देशों को पुरा-कथानों में मिलते हैं। उनके मगानुसार एति

भारोपीय-प्रतीक

(Endo-European Symbol)



जन्तु प्रतीक—यों तो वैदिक देवताओं और ऋषियों के नाम भी पशुओं के रूप में मिलते हैं। जैसे—हृषिकेश, विष्णु (ईश) वराह अथ वाच, कौस्तिक सनक इत्यादि। पारम्यिक अवतारों में मत्स्य कुर्म और वराह ये तीन अवतार जन्तु प्रतीक ही रहे हैं। मनोबैज्ञानिकों के अनुसार ये प्रतीक प्रतिमार्पण की उसी प्रकार विकसित हुई हैं जैसे मनुष्य या जन्म सब-संगम प्रतीक विषय के समस्त आश्रीय पुराणों में अपना अस्तित्व रखते रहें हैं। युग के अनुसार ये वीराणिक प्रतिमार्पण अचतन निर्मित की देव हैं; इनका अधिकार वेद की निर्दिष्टिक है। पञ्चार्थतः अधिकांस लोग इन प्रतिमाओं को अचिह्न करने की अपेक्षा इन्हीं के द्वारा अचिह्न कर लिए गए हैं।^१ युग सामान्य रूप से अत्युच्च व्यक्तिगत को 'आत्मा के रूप में ग्रहण करता है जो वह से विशिष्ट भिन्न है। इस अह का बड़ा तक विस्तार है, जहाँ तक चेतन मस्तिष्क और सम्पूर्ण व्यक्तिगत की पहुँच है जिसमें अचेतन और चेतन दोनों अह समाहित हैं। अह सम्पूर्ण के अह की तरह आत्मा से सम्बद्ध है। इस सीमा तक 'आत्मा' अत्युच्च है। इसके अतिरिक्त आत्मा का अनुभव विषयी या मोक्ष (subject)

अह का चार मार्गों (युगों) में विभाजन-भारतीय पुराणों के अतिरिक्त गुरु रोमन इत्यादि पुराणों में भी मिलता है। इसी प्रकार बहुत से देव-प्रतीकों का लक्षण 'इन्हीं वर्गों' कर्तों में देखा जा सकता है।

के रूप में न होकर वस्तु या विषय (object) के रूप में होता है। यह क्रिया विशुद्ध तब जबतक भयों के चकते होती है, जो केवल प्रचेतन के द्वारा चेतन में प्रविष्ट होते हैं। अचेतन बंधों के चकते आत्मा चेतन मस्तिष्क से निष्कासित कर ही जाती है जो अज्ञात; तो केवल मानव रूपों के द्वारा व्यक्त होती है और इतर भय कथों (objectives) के द्वारा जन्तु प्रतीकों में अभिव्यक्ति पाते हैं। मानव रूपों में पिता और पुत्र, माता और पुत्री, राजा और रानी तथा देव और देवी आते हैं।^१

अचेतन बंधों के द्वारा निष्कासित आत्मा की अभिव्यक्ति मानव-प्रतीकों के अतिरिक्त 'जन्तु प्रतीकों' में भी होती रही है। ऐसे जन्तु प्रतीक सर्प, हाथी, सिंह आदि अन्य शक्तिशाली पुरुष; मकड़ा ककड़ा मधुमक्खी तितली कीड़े इत्यादि भी हैं। वास्तविक प्रतीकों में मुख्यतः कमल-गुच्छम जैसे प्रतीक हैं; आते केवल के निष्कासित भंग चक्र, आयत मंडल बार्ड, घड़ी इत्यादि प्रतीकों में व्यक्त हुआ करते हैं।^२ अचेतन बंधों का अनिश्चित विस्तार मानव व्यक्तित्व के विस्तृत विवरण को प्रायः अधिक सुसूक्ष्म और असंगम्य बना देता है। इस प्रकार अचेतन के पूरक तब विषय से लेकर पशुओं तक, सजीव जंतुओं का निर्माण सम्भवतः मनुष्य के दो अतिवादी छोरों (देवता और पशु) के रूप में करते हैं।^३

मत्स्य-प्रतीक

जन्तु या जन्तुवत् प्रतीकों में मत्स्य-प्रतीक का प्राचीन जर्मों में विनाय प्रचार रहा है। पश्चिम की पुराकथाओं में मत्स्य से सम्बद्ध अनेक पुरा-कथाएँ मिलती हैं। प्राकृतिक पुरा-कथाओं में भी आदि जल-राशि की माता के गर्भ की तरह स्थिति मायी जाती है।^४ ईसाई जन्मोत्सवों में मत्स्य-प्रतीक के पुरा प्रतीकात्मक रूप का पर्याप्त विस्तार रहा है। उनकी कल्पित पुरा-कथाओं में भी मत्स्य और मत्स्यवत् प्राणियों के प्रसंग आते रहे हैं। पौ ग्रीस के क्लेम नामक दार्शनिक की यह धारणा थी कि सब कुछ पानी से ही निकला है और प्रसिद्ध ग्रीक महाकवि होमर की स्वयं समुद्र की देवोत्पत्ति का मूल स्रोत मानता है किन्तु ग्रीक दार्शनिक 'प्लग्रीमैडर' के अनुसार तो मनुष्य का

१ आर्से. को. जन्. पृ. १८८७।

२ इन्ट्रो. सा. मा. पृ. ११५ तथा आर्से. रार. को. जन्. पृ. १८७।

३ आर्से. रार. को. जन्. १८७।

४ इन्ट्रो. सा. मा. पृ. ७५। ग्रीक पुरा-कथा में पशु मत्स्य की कथा भी मिलती है।

५ इन्ट्रो. सा. मा. पृ. ६१।

मूल छोट भी मत्स्य है। इन कथानों में यह भी माना जाता है कि 'मत्स्य' और 'मत्स्यवत्' प्राणी-वर्ग की उत्पत्ति गम अथ स हुई है।^१ पाठिनसिपनों का विष्णु-देव 'मत्स्य', (Matsya) जो मनु के समानान्तर विदित होता है^२ अथ स अत्यन्त होने की कथा स्वयं कहता है। अथ स में उसकी रक्षा एक क्रोमक 'जेही मत्स्य' ने की थी। वही अथ स प्राचीन पूर्व-अ-भी समझा जाता रहा है।^३ मत्स्यवतार का आदि पुराण विष्णु 'पुन्यमोह' के आदि पुराण (Primeval being) की तरह विदित होता है।^४ ग्रीक पुराणों में 'प्लुमीनियन' 'रहस्य मत्स्य' बहुत पवित्र माने गए हैं।^५ मध्यपूर्विका एवं पूर्वी युरोप की पुराणों में विष्णुवत् 'बौद्धिक' की पुराण-कथा में एक 'चौपादे-मत्स्य' का प्रसंग आया है जिसको उसने हाथों में पकड़ रखा है।^६ पृथ्वी परम्परा के अनुसार 'मत्स्य' का अवतार मत्स्य से ही हुआ है।^७ मत्स्य स्वयं ईसा के क्रि. प्रमुक्त अथिक प्रकृत प्रतीकों में रहा है।^८ इनके अतिरिक्त मध्य युरोप और पूर्विका कतिपय प्राचीन देशों में 'मत्स्य-सम्प्रदाय' और 'मत्स्य-पूजा' का प्रचार रहा है।^९ बौद्धिक शरीर के 'वेनियट' में यह लिखा हुआ है कि 'मत्स्य' का 'मत्स्य-रूप' में अवतार होगा।^{१०} इन अथर्वों में प्रतीत होता है कि 'मत्स्य' प्राचीन युग के भारतीय धर्मों में विदित स्थान रखता है। युग के अनुसार इस प्रकार के अथर्व प्रतीक अथर्व के मन में विदित अथर्वतन अथर्वानों द्वारा निर्मित होते हैं। अथर्वतन को यह अथर्व प्रकार की पौराणिक प्रकृतियों का अथर्वता समझता है। युग के अनुसार अथर्वतन अथर्वतन के प्रकृतियों द्वारा विष्णु या प्रकृतियों का निर्माण नहीं करता बल्कि ऐसी पौराणिकों के निर्माण में यह अथर्व विष्णु की माननीय रीतियों और प्रकृतियों की अथर्वता भर लेता है। पौराणिक युग और अथर्वतनों की अथर्वता में भी इसी प्रकृति का अथर्व है।^{११} पौराणिक पुराण-कथानों में प्रमुक्त होने वाले 'मत्स्य' प्रतीक को युग ने अथर्वतन अथर्वतन के रूप में प्रकृत किया है। 'मत्स्य' यह अथर्वतन अथर्वतन है, जिससे (सृष्टि में) नयी अथर्वी अथर्व का अथर्वता हुआ।^{१२}

मत्स्य के अथर्व अथर्व पौराणिक पुराणों में इतना अथर्व अथर्व नहीं

१ इन्द्रो सा मा पृ १४।

२ इन्द्रो सा मा ११-१७।

३ इन्द्रो सा मा. पृ १८।

४ एवोप पृ. १११।

५ एवोप पृ ७१।

६ अथर्व. की अथर्व पृ ११।

७ इन्द्रो सा. मा. १५।

८ इन्द्रो सा मा पृ १८।

९ इन्द्रो सा. मा. पृ ७५।

१० एवोप पृ. ८९।

११ एवोप पृ ७४।

१२ अथर्व. की अथर्व पृ ११९।

है। किन्तु कूर्म बर्ग के धनेक जन्तु विभिन्न पुरा-कथाओं में चूहीत होते रहे हैं। यों प्रीक पुरा कथा क प्रसिद्ध देवता 'धपोलो' का रूप कूर्म क सदस्य भी मिळता है।^१

बराह

बराह या सूकर पाश्चात्य पुराकथाओं मिळते हैं। 'बेमेडर' देवी की पुराकथा क प्रसंग में एक 'सूकर' का उल्लेख हुआ है। यद्यपि उस पुरा-कथा का आद्योपान्त साम्य भारतीय पुराणों की अवतारवादी कथा से नहीं है, किन्तु फिर भी 'माता पृथ्वी' और 'अनाज' से उसका अधिक सम्बन्ध है, जब कि भारतीय बराह-कथा में भी 'पृथ्वी और 'रक्षा' तब प्रमुख स्थान रखते हैं। इसल अतिरिक्त बराह का कयुतम आकार से बड़े आकार में बदना और पृथ्वी को अपने श्रोत्रों पर उठा लेना, युरोपीय पुरा कथा के 'बराह' प्रतीक से क्लियात्मक साम्य रखता है। क्योंकि युरोपीय पुरा-कथा में बराह और अन्न दोनों गने में गिर गए और पुनः अन्न के रूप में श्रोत्रों बड़ गए।^२ फोनेटियन पुरा-कथा में 'स्वर्ण-बराह' की कथा का प्रसंग आया है। जिसमें कहा गया है कि 'मिने 'आधार स्वम्भ' (पेडाक) पर एक स्वर्ण-बराह देखा। जन्तु की तरह पुरुष जन उसक चारों ओर कृताकार नृत्य कर रहे थे। हमने शीघ्र ही पृथ्वी में एक द्विज कर दिया। मैं अन्दर पहुँची और वहाँ भीषे मुझे अन्न मिला। तब स्वयं में एक मनुष्य प्रकट हुआ। वह द्विज में कूद पड़ा। माथों साञ्जे साञ्जे हुए वह अग्रे पीछे झोकने लगा। मैं भी उसके साथ सब में झूम उठी। वह अचानक द्विज के ऊपर निकल आया। उसने मेरे साथ बहात्कर किया और मुझे शिशु क साथ बाया।'^३ इस प्रकार देविर्षों क समाप्तान्तर पाश्चात्य पुरा-कथाओं में 'pig' और 'cow' के प्रतीक चूहीत होते रहे हैं। इन्डोनेशियन पुरा-कथा में^४ बराह के श्रोत्रों पर सर्व प्रथम 'मारियल का पेड़' निकला था। तिल्वती 'विज-बक' जैसे मंडलों में मुर्गा वासना, सर्प ह्येप ओर सूकर अर्थात्क क प्रतीक-रूप में चित्रित हुए हैं।^५ तथा पाश्चात्य 'पुरा-कथाओं' में भी एक 'कृष्ण सूकर का प्रसंग आता रहा है।^६ इन उदाहरणों से देखा जाता है कि 'सूकर भी भारतीय-कथा में सर्वथा अपरिचित नहीं है। यदि इस प्रतीक का एकोन्युन (Monog-raphy) अध्ययन किया जाय तो निश्चय ही हमकी भारतीयता और अधिक स्पष्ट हो सकती है।

१ इन्डो सा मा पृ ७८।

२ इन्डो सा मा पृ. २३०।

५ आर्ट्स की धन पृ ११०।

२ इन्डो सा मा ११५।

४ इन्डो सा मा पृ १८४।

६ आर्ट्स की धन. पृ. ११६।

पशु मानव प्रतीक (The zoanthropo Symbol)

पशु-मानव प्रतीकों में अवतारवादी प्रतीक 'मृसिंह' का विशिष्ट रूप मिळता है। 'मृसिंह' जैसे पशु-मानव प्रतीकों का प्राचीन पुरा-कथाओं में विद्यमान अभाव यही है। अपितु पुरातन मिस्र और असीरिया के देवताओं के रूप मृसिंह (Man Lion) मृपक्षी (Man Bird) मृमत्स्य (Manfish) आदि रूपों में मिळते रहे हैं।^१ सुनाम एवं उमक पार्श्ववर्ती देवों में भी इस प्रकार के पशु-मानव प्रतीक देखे जा सकते हैं।^२ कीच ने 'अनु-प्रतीकों' से ही इनका विकास माना है।^३ इन उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि 'मृसिंह' अवतार प्रतीक भी भारतीय विशेषताओं से निश्च नहीं है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अल्प अनु-प्रतीकों के सहस्र मृसिंह भी अचेतन उपादानों की देण है। अचेतन अंशों के द्वारा विष्कसित आत्मा की अमिष्यक्ति^४ मानव या अल्प प्रतीकों के अतिरिक्त 'मृसिंह' जैसे पशु-मानव प्रतीकों में भी होती रही है।

मानवी कृत या मनुष्यवत् प्रतीक (Anthropomorphic Symbol)

पुरातन युग के मनुष्य ने अनेक प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना मानवीय रूपों में की थी। अग्नि विष्णु, ब्रह्म इन्द्र अश्विन इत्यादि का वैदिक मंत्रों में आह्वान प्रायः उन्हें मनुष्योचित कार्य-व्यापार से सम्बन्ध करता है। वैदिककरण के ही क्रम में मानवीकरण की यह प्रवृत्ति इस सीमा तक बढ़ गई कि प्राचीन कर्मों में प्रचलित ब्रह्म आदि पूजा-विधियों में मानवीकरण के द्वारा विभिन्न प्रतीकों में बह कर प्रचलित हुई। मानवीकरण की यह क्रिया युग के अनुसार प्रायः प्रतीकों के रूपान्तर के द्वारा होती है।^५ उदाहरण के लिये पशु विधियों का कर्त्ता पुरोहित होता है। चूंकि उसका कार्य आवाहनिय उपादानों के द्वारा देवता को प्रसन्न करना है; इसलिये पुरोहित बाद में चकर देवता की प्रसन्नता

१. डी एन फर्ग्युसन ने 'दिविणर आफ हिन्दू-कर्म' में इनका प्राकृतिक पञ्चक किया है।

२. गार्डनर पृ १६-श्रीम में (पृ १५) इनके मूर्तियों में लिखती हैं। एबोन पृ. ७५-संकेत से रेखांकन के अनुसार लक्ष्मी का प्रथम वैदिक 'मृसिंह' का रूप सिंह का था। तथा (एबोन पृ ७२) 'कुरह' के विभिन्न अन्वेषितरक प्रतीकों में 'सिंह' भी एक प्रतीक रहा है।

३. रेडि आ. एन. एम्ब १२ पृ. १९७। ४. कार्लो की अग पृ १८७।

५. सार रेडि पृ १०९।

का प्रतीक बन जाता है। और अधिक काल व्यतीत हो जाने पर मानवीकरण के द्वारा देवता का प्रतीकत्व पुरोहित में रूपान्तरित (Transformed) हो जाता है। आधुनिक साहित्य के अनेकों मंत्र रचयिता कृपि अपने अर्घ्य देवता के रूपान्तरित रूप हो गए। उदाहरण के लिए मसिह 'पुरुष सूक्त' के रचयिता 'नारायण कृपि' बाद में स्वयं पुराण पुरुष 'आदि पुरुष' के रूप में 'पुरुष' के वाचक बन गए। इसी से युंग ने लिखा है कि 'देव पूजन' की विधियों का प्रत्येक अंश प्रतीक-स्वरूप होता है। प्रतीक शब्द या चिह्न मात्र के लिए स्वतंत्र या प्रयोजनबद्ध निर्मित प्रतीक ही नहीं है बल्कि मानवीकृत वह प्रतीक है जो सीमित और आंशिक रूप में प्राण और केवल आंशिक रूप में चिह्न किसी मानवोत्तर शक्ति की अभिव्यक्ति है।' इस दृष्टि से वह 'मास (MAS) विधि' को मानवीकृत प्रतीक मानता है। मनुष्य जैसे मनुष्य को उपहार देता है जैसे ही प्रेमबद्ध वह ईश्वर को भी मनुष्य समझ कर (या अपने अचेतन में मनुष्यत्व की भावना कर) जो उपहार या 'परम पुष्प फल तोषण' अर्पित करता है, इसे उपहार-दाण की प्रवृत्ति का स्वरूप ही कहा जा सकता है। क्योंकि जैसे वह मनुष्य को देता या जैसे ईश्वर को देता है। पूजा विधि का यह रूपान्तर देवता के मानवीकरण की भी प्रवृत्ति प्रदान करता है। रूपान्तर के द्वारा मानवोत्तर शक्तियों का मानवीकरण सम्पूर्ण मानवीकरण की प्रक्रियाओं का प्रमुख रूप कहा है। सूर्य के द्वावस रूप जिस प्रकार १२ वैदिक देवों के रूप में भारतीय साहित्य में प्रचलित है, उसी प्रकार 'पुरुष-ओङ्गपस' देवों में भी द्वावस विष्णुओं की तरह द्वावस 'ओङ्गपस' प्रभाव है।'

वामन

भारतीय अन्तार प्रतीकों में वामन इसके विशिष्ट प्रतीक माने जा सकते हैं। वैदिक साहित्य में वामन का जो नाम 'अङ्गपस' 'विष्णुपस' के रूप में प्रचलित है, उन विष्णु सूक्तों में उनकी कथा विष्णु के तीन पदावस्थाओं से सम्बद्ध रही है। ये 'तीन पदावस्था' तो वामन की अन्तारवाही कथा में भी विद्यमान रहे, किन्तु वामन का जो एक विशिष्ट प्रतीकात्मक रूप प्रचलित हुआ वह था—'वामन' का मानवीकृत रूप (Anthropomor

१ सार रेनि पृ २००।

२ सार रेनि पृ २२२ 'मास विधि'—इस विधि में ईसा को रोटी और घृत, उपहार स्वरूप दिए जाने पर मानव-जगत् में ईश्वर का रहस्योद्घाटन होता है। वह रहस्योद्घाटन ईश्वर का मनुष्य रूप में रूपान्तरित होना है।

३ मारथे पृ ३९।

phic form) जो काठाम्बर में भी इसी रूप में परिवर्धित हाता रहा और बाद में मनुष्योचित जन्म-कथा से भी उसका सम्बन्ध जोड़ा गया। देखना यह है कि 'बामन विष्टद भारतीय रूप है या भारोपीय। प्रायः पाश्चात्य पुरा-कथाओं में 'बामन' की कोई बैसी कथा नहीं मिलती जो उसकी भारोपीयता को विशुद्ध स्पष्ट कर सके; फिर भी कुछ ऐसे तत्व मिलते हैं, जिनका बामन-कथा में उपक्रम्य कुछ विशेषताओं से साम्य है। युरोपियन पुरा-कथा का प्रसिद्ध सिष्ट-देवता कथु से कथु और महत् से महत् बामन क रूप में भी प्रकट होता है।^१ बामन में भारोपीय देवीकरण की दृष्टि से 'मानवीकरण' की प्रवृत्ति ही प्रमुख रूप से सक्रिय शक्ति पवती है।

वैधीकृत प्रतीक (Anthropolatric Symbol)

वैधीकरण की दिशा में मनुष्येतर सृष्टियों का मानवीकरण और मानव समाज की मानवीय शक्तियों का वैधीकरण य दो कार्य-व्यापार अत्यन्त अधिक प्रचलित रहे हैं। प्राचीन काल की वैधीकरण से सम्बद्ध प्रवृत्तियों में अपने जातीय बीरों, सरदारों, पुराहितों और देवों का देवता क रूप में साम्य समझा जाता था। इनके व्यक्तिगत गुणों में शक्ति, सौम्य आर्तुप क द्वारा जो छोकोपर चमत्कार शीघ्र पकटे वे वे ही इनके वैधीकरण क मुख्य कारण थे। भारतीय घर्मों में भी राजा ऋषि, वैद्य (कम्बन्तरि) आदि को देवत्व प्रदान करने की भावना मध्यकाल तक चलती रही। यदि यह कहा जाय कि अवतारों की संख्या बढ़ाने में इस मानवा-शक्तिया का विशेष भाग रहा है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि इन्द्रावतार के उपरान्त श्रीीस अवतार तथा मध्यकालीन सप्तमवापों में गुहर्षों क अवतारीकरण का विकास प्रायः वैधीकरण के द्वारा होता रहा है। मनोवैज्ञानिकों क मतानुसार अधरय देवताओं से भयभीत होना तथा उनकी कृपा पर विश्वास करना मनुष्य की अपनी अपूर्णता की ओर इंगित करता है।^२ उसे अपने सामाजिक जीवन में रक्षक, मुक्तिदाता, नायक या भीर नेता की आवश्यकता पवती है। जो उसक जीवन में आनेवाकी विज्ञ-वापियों से मुक्ति दिखाने सक।

इसी से वैधीकृत वेता जो अपने अद्भुत जन्म एवं दिष्ट-काल में जनक विज्ञ-वापियों से जूझता है उन पर विजयी होने क कारण वह भी वैधान्तिक या अति प्राकृतिक शक्ति से युक्त समझा जाता है।^३ ईश्वर पों तो स्वभाव से ही अतिप्राकृतिक है; जब कि वेता की प्रवृत्ति मानवी होती है, किन्तु उसे

१ आर्द्रे. की जन्म पृ २५८।

२ आर्द्रे. की जन्म पृ २११।

३ आर्द्रे. की जन्म पृ २२५।

अनिर्मातृत्विक सीमा तक उदाकर 'मूर्त-वैवी रूप' प्रदान किया जाता है। ईश्वर विद्योपकर अपन प्रतीक पद-रूप में मकट होकर सामूहिक अचेतन का करना है, जिस मानव में आत्ममात् नहीं किया जा सकता; किन्तु प्राकृतिकता में ही मानव-स्वभाव का याग रहता है। इसीसे मनु मानवीकृत नहीं) अचेतन और मानव-चेतना के समन्वित मिश्रित करता है। परिणामतः यह व्यक्तिकरण (individualisation) क मर्चिण पूर्वज्ञान का सूचित करता है या पूर्णत्व ता है।' अवतारीकरण व्यक्तिकरण-प्रक्रिया का ही एक सुदृढ अंग जो मानव रूप में आविर्भूत होकर पर 'मेता और 'मानव-ईश्वर' जन्म निष्कृत्य है। यह सामान्य मनुष्य की अपेक्षा अधिक पूर्ण व मनुष्य से उसका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा बाकक का पयस्क ता है। श्रीक राजाओं ने लेकर, ईसा सीसर इत्यादि का वैवीकरण म कृत्य पुत्र भादि के समकक्ष जान पड़ता है। इस वर्ग के राष्ट्रीय और जातीय प्रभाव अधिक रहा है। साथ ही अधिक के कारण इनमें भारतीय व्यापकता तो नहीं मिलती किन्तु है- नि-प्रक्रिया की दृष्टि से इनमें भारतीय वैदिकत्व देखा जा सकता है।

पूर्ण पुरुष या विराट-पुरुष (Anthropocentric Man)

एबीश्वरनाथ शंकर के कथनानुसार विराट-पुरुष की कथना के रूप में, अपूर्ण मनुष्य में अपन का पूर और विराट रूप में देखने का प्रयास किया है।' जो भारतीय धर्मों में ईश्वर सर्वैव पूर्णत्व का प्रतीक रहा है। अवश्य यह महापुरुष विद्यका अवतारीकरण या वैवीकरण होता है, उसमें अपन मनुष्यों की अपेक्षा एक विसेतना यह हीक पड़नी है कि ईश्वर की तरह वह सर्वव्यापी हो जाता है। भारतीय साहित्य में यह आगतिप्रता मानवीमिकता और सर्वव्यापकता अद्यपयम 'पुरुष सूक्त' के पुरुष में मिलती है।' 'मदिति सूक्त में 'पुरुष' की विराट कथना उससे महत्तम रूप को प्रदर्शित करती है। सम्मरण करनेक मुत्रा और अतक विर की मूर्ति-निर्माण की दौरान 'पुरुष' के विराट रूप से प्राप्त होती रही है। 'सब कुछ पुरुष ही पुरुष है,' जो अपन विराट-स्वरूप में उपस्थित है। पाश्चात्य धारणित-देवी में भी यह सर्वव्यापकता की भावना लजित दाती है। आकाश्वर में ईसा इस सब का पूर्ण स्थाप

१ आर्दे. की अत्र ५ १९१।

२. दो देवी मैन में विस्तृत दृश्य।

३. अ. १०. १०।

४. 'पुरुष सर्वैव सर्व'।

से अभिहित किए गए।^१ ईसा के पूर्वत्व का परिचायक, पाश्चात्य धार्मिक वाक्याव में एक कंगड़ा सहित वृत्त प्रतीक मिळता है जो ईश्वरावतार ईसा के पूर्वत्व एवं विराट रूपत्व का परिचायक रहा है।^२ भारतीय धर्मों में जागे चककर पुरुष और मछल से प्रायः राम, कृष्णादि अवतारों को अभिहित करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। बाद में पूर्वत्व और विराट-रूपत्व ही उनके अवतारत्व के परिचायक बन गए। 'महाभारत' 'श्रीमद्भागवत' तथा परवर्ती पुराणों और महाकाव्यों में जहाँ भी इनके अवतारत्व के प्रति संदेह उपस्थित होता है वे अपने आगतिक या विराट रूप की अभिव्यक्ति द्वारा अपने अवतारत्व की पुष्टि करते रहे हैं। युग के इस प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने का किंचित् प्रयास किया है। युग के अनुसार सभी व्यक्ति स्वयं व्यक्तिगत अर्थ से मुक्त नहीं हैं बल्कि वे साम्य से भी परस्पर आबद्ध हैं। 'भारता' अर्थ नहीं है अपितु चेतन और अचेतन दोनों को समाहित कर आसुख सम्पूर्णता से युक्त है। पर अर्थ की कोई वास्तविक सीमा नहीं है क्योंकि वह अपने गहन स्तर में सामूहिक प्रकृति का है। इसे किसी भी अन्य व्यक्ति से (व्यक्ति के अर्थ से) पृथक् नहीं किया जा सकता। जिसके चक्रस्वरूप वह अगाध सर्वव्यापकता (Ubiquitous participation Mystique) की सृष्टि करता है, जो अनेकता में एकता है तथा एक मनुष्य में समस्त मनुष्य की स्थिति है।^३ वही मनोवैज्ञानिक शब्द 'माधव-पुत्र (Son of Man) 'The Homo Maximus The Virunus' तथा 'पुरुष' की भाव प्रतिमा (आर्कैटाइप) के लिए आचार-भूमि तैयार करता है। क्योंकि यथार्थतः अचेतन को परिमाणा के द्वारा पृथक् नहीं किया जा सकता अधिक-से-अधिक अनुसंधानक उपकरणों के द्वारा उसका अनुमान किया जा सकता है। कुछ अचेतन उपादान निश्चय ही व्यक्तिगत और वैयक्तिक हैं किन्तु किसी अन्य व्यक्ति पर आरोपित नहीं किया जा सकता। किन्तु इनके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे उपादान हैं, किन्तु एक सदाक रूपों द्वारा अनेक विभिन्न व्यक्तियों में विरीच्यन किया जा सकता है, जो किसी प्रकार परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं।^४ इन अनुभूतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि अचेतन का एक सामूहिक स्वरूप भी है। इसी से युग यह नहीं समझ पाते कि जैसे लोग सामूहिक अचेतन के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं। अचेतन उनके मतानुसार समस्त मनुष्यों में आगतिक सम्बन्धता का कार्य करता है। यह सभी की इच्छाओं को प्राण होने बाधन तथा सभी में समान रूप से निवास

१ छार ऐजी पृ २७६।

२ छार ऐजी. पृ २७६।

३ छार ऐजी पृ २७७।

४ छार ऐजी पृ २७७।

करने वाला अशोस्तरीय मानस है।' इस प्रकार युग पुरुष वा अन्य अवतार प्रतीकों की सर्वविधमानता वा पूर्णत्व का कारण मायव-मन में स्थित उस सामूहिक अचेतन का मानता है, जो सभी में अवस्थित है।

आत्म-प्रतीक के रूप में अवतार-प्रतीक

शास्त्रों में किसी भी परिभाषा वा स्वयंसिद्धि के दो रूप माने जाते हैं, उनमें एक है ठोस वा वास्तविक वा पारिभाषिक रूप और दूसरा है—उसका व्यावहारिक वा प्रतीकात्मक रूप। पारिभाषिक रूप का ही संकेत वा प्रतीक के माध्यम से संकेतित करन के लिए व्यावहारिक प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए रेखा की वास्तविक परिभाषा यह है कि जिसमें कम्बार्ह हो, परन्तु व्यावहारिक रूप में कबल कम्बार्ह वाली रेखा स्वीकृत विलुक्त असम्भव है। आत्मा भी अनाम अरूप और अर्हत है, अतः उसका व्यावहारिक रूप संकेत वा प्रतीकों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। ब्रह्म में 'कामस्तब्धे समवर्ततामी मन्सारेतः प्रथमम् पदासीत्' वा 'सोऽका मन्वत' तथा उपनिषदों में प्रयुक्त 'सबरस' सर्वगण्य सर्वकर्मा (वा उ ३।१७) इत्यादि विसृष्टार्थ, उसकी सेमिप्रयता को उपलक्षित करती हैं। यही सेमिप्रयता उसके सगुणत्व का कारण बन जाती है। मानव-अवतार के रूप में उसके महारथ की प्रतीकात्मकता उसकी चरम सेमिप्रयता को ही व्यक्त करती है। समस्त सेमिप्रय चेतना को आत्म-सत्ता पर अधिष्ठित हम मान सकते हैं क्योंकि भ्रमुष्य और उसकी आत्मा दोनों परस्पर अणुोन्वाधित हैं। अतएव उपास्य ब्रह्म के रूप में मान्य होने पर अवतारों की समस्त उपास्य वादी अधिष्पत्तिर्वा अधि-से-अधिक आत्मा-प्रतीकों के ही रूप में सिद्धती है। उपास्य भाव में गृहीत होने पर राम-कृष्ण मूर्तिह आदि विशेष अवतार सम्बद्ध 'अधर्वाहिरस' उपनिषदों में 'हृदय में सञ्चिविद्य आत्म-प्रतीकत्व ही वर्णित हुए हैं।

अतः दैतवा यह है कि मनोविज्ञान की दृष्टि से 'आत्मा प्रतीकों' की क्या स्थिति है। भारतीय वा पाश्चात्य प्रायः दोनों प्रकार के आत्म-प्रतीकों का युग ने अपने अनेक विद्वानों में विस्तृत विरहणन किया है। 'यूरोप नाम की पुस्तक में तो कबल 'आत्म प्रतीकों' का ही विद्यद् विन्धेयन प्रस्तुत किया गया है। इस विरहणन-क्रम में युग की अपनी स्थापनाएँ हैं जो अतिक स्पष्ट और स्वीकार्य न होती हुई भी विचारणीय हैं। युग ने विशेषकर

'बह' और अहं स सम्बन्ध 'चेतन' और 'अचेतन' की ही पृष्ठभूमि में आत्म प्रतीकों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पुंग क अनुसार हिन्दू धर्म में आत्म-प्रकृति सिद्ध की प्रकृति से निकली-जुगली है।^१ यह व्यक्ति आत्मा क रूप में 'अणोरणीयाम' है और जागतिक पर्याय के रूप में महतोमहीयान।^२ भारतीय आत्म-प्रतीक की विशेषता ज्ञाता और ज्ञय के पुरुष में निहित है।^३ पुंग आत्मा का उत्पन्न करीर के गहन अन्तराक में मानता है। संवेद्य चेतना की निर्मिति क आधार पर उसक वस्तुत्व की अभिव्यक्ति पाश्चात्य धार्मिक साहित्य में प्रायः सिद्ध।^४ आत्म-प्रतीक की अभिव्यक्ति का साधन रहा है। यों मानस (Psycho) की विशिष्टता को सम्पूर्णतः वास्तविक रूप में नहीं प्रकृत किया जा सकता है फिर भी आत्मा समस्त चेतना का परम आधार है।

पुंग ने आत्मा और अहं के साथ ईसा का जो सम्बन्ध स्थापित किया है उसे भारतीय प्रतीक अवधारणों पर भी आरोपित किया जा सकता है। 'मनुष्य' की दृष्टि से ईसा अहं क समकक्ष है, और ईश्वर की दृष्टि से आत्मा क समकक्ष एक ही समय में वे अहं और आत्मा दोनों तथा अहं और पूर्ण दोनों हैं। अतुल्य ज्ञान की दृष्टि से चेतना समस्त को कभी भी आत्म सात् कर सकती है किन्तु फिर भी यह सम्भव है कि 'सम्पूर्ण' अचेतन रूप से अहं में वर्तमान हो। यह अवस्था सबसे ऊँची पूर्णता की अवस्था के समतुल्य है। पुंग ने आत्मा की तुलना एक परवर से की है जो ज्ञान या विज्ञान का साध्य है। किन्तु परवर के 'परत्त्व' का ज्ञान मनुष्य से उपजता है।^५ यही वस्तु आत्मा के साथ भी जान पड़ती है। अहं भी मानव ज्ञान की बेज है। यों वह उच्चतम से कच्चतम है जिसके फलस्वरूप बड़े सहज ढंग से उसकी उपेक्षा हो सकती है। बचार्थता उसको रक्षा पोषण इत्यादि की भी आवश्यकता नहीं है। यह आत्मा हम प्रकृति की है कि वह स्वयमेव चेतन नहीं होती अर्थात् परम्परागत शिक्षा से ही जानी जाती रही है। यों वह व्यक्तिकरण (Individuation) में सशक्त क द्विप प्रयुक्त होती है और व्यक्तिकरण बिना वातावरण क सम्बन्ध के नहीं जाना जा सकता, अतएव व्यक्तिकरण की प्रक्रिया में भी उसकी अनोखी स्थिति है।

इसके अतिरिक्त आत्मा एक मान-मतिमा (आर्केटाइप) है जो समस्ततः अपनी उस अवस्था को स्थापित करती है जिसके अन्तर् अहं का विश्वास है।

१ आर्के. की जन पृ १७१।

२ आर्के. की जन पृ १७१।

३ एथेन पृ १२७।

इसलिए प्रायः 'मन्त्र-प्रतिमा' (आर्सेनाइप) की तरह आत्मा को व्यक्ति की अह-व्यवस्था में अभिकल्पित नहीं किया जा सकता । फिर भी यह उम नाहन वापुनइउ की तरह सक्रिय रहती है, जिन्की इस और काल में भी कोई सीमा नहीं निश्चिन की जा सकती ।^१ युग क आत्मा का विषयम 'Marienus' नाम की कृति में आया है। यह आत्मा क निमित्त प्रयुक्त 'पथर' प्रतीक क छिपू किया है और आत्मा का भी अचलन उपाशुओं में परिगणित किया है । यह कहता है कि 'आमरुठ हम इम (आत्मा को) अचलन कहेंगे और इसे व्यक्तिगत अचलन म निच मानेंगे आ ह्याप और व्यक्तिगत अचलन तथा आत्मा क पुरा-मनिमात्मक प्रतीक को पहचानने में सहायता करेगा । यद्यपि आत्मा प्रतीकात्मक अचलन उपाशुन मा हो सकती है, फिर भी यह एक ओर तो उचलन सम्पूर्णता का चोतन करती है और दूसरी ओर बिधातीत का ।^२

आधुनिक और गणितीय प्रतीकों क अतिरिक्त मनुष्य भी एक सर्वसामान्य आत्म-प्रतीक है । यह या तो ईश्वर है या ईश्वरत्व मनुष्य है—राजकुमार पुरोहित महापुरुष ऐतिहासिक पुरुष, पृथ्विता या अमृत सफल स्पेड आता मधेप में एक बेसी मूर्ति है आ स्वप्रज्ञा क अहपरक व्यक्ति का अनिश्चय कर जाता है ।^३ युग न आत्म-प्रतीक का मनाबिरुद्धपणात्मक अचलन प्रस्तुत करते हुए आत्मा क प्रतीकीकरण का अत्र बहुत व्यापक बतलाया है । उमक मतानुसार आत्मा उचलन या निम्नतम उन सभी रूपों में प्रकट हो सकती है, जहाँ तक आत्मा 'DIAMONION की तरह' अह व्यक्ति का अनिश्चय करन में सक्षम हो सकती है । इस सर्वम में यह कहना मनुष्यक नहीं होगा कि आत्मा क अपने 'अमु प्रतीक' भी है । आधुनिक धर्मों क इन सर्वसामान्य प्रतिमाओं (Images) में हाथी याद बैल याद, सफर और काल पक्षी मत्स्य और सप भी हैं । तथा कमी-कमी व्यक्ति को हनु, महरी पक्षीजन इत्यादि क भी इमान हाते हैं । पुण्य और बुद्ध भी आत्मा क प्रमुख बतवति-प्रतीकों में से हैं । इन दृष्टि स अचलन प्रतीक और आत्म-प्रतीकों में अमृतपूत माय्य जान पड़ता है ।^४ अचलन प्रतीकों में अमु अमु-आनन मानव इत्यादि जिनम प्रकार क प्रतीकों का प्रचार है माया क सभी प्रतीक आत्म-प्रतीक के रूप में भी गृहीत हो सकते हैं ।

१ बरोन पृ ११०-१११ ।

२ बरोन पृ ११८-१२० ।

३ बरोन पृ १२० ।

४ बरोन पृ ११६ ।

मनोबैज्ञानिक दृष्टि से आत्मा चेतन (पुंलिंग) और अचेतन (स्त्रीलिंग) का संयुक्त रूप है। यह मानसिक पूर्णता को भी अभिविहित करता है। स्वयं रूप में यही कहा जा सकता है कि यह एक मनोबैज्ञानिक धारणा है। अनुभव की दृष्टि से आत्मा स्वच्छन्द रूप से विविध प्रतीकों में व्यक्त होती है और उसकी सम्पूर्णता का प्रायश्च अनुभव विशेषकर मण्डलों और उनके अर्चकत्व रूपों द्वारा किया जा सकता है।^१ ऐतिहासिक दृष्टि से ये प्रतीक साक्षात् भगवत् प्रतिमा-विग्रह ही माने जाते हैं। पुत्र की धारणा के अनुसार राम कृष्ण इत्यादि भारतीय अवतार मनुष्य के रूप में अह के प्रतीक और ईश्वर के रूप में पूर्ण आत्म-प्रतीक माने जा सकते हैं। विभिन्न मध्यकालीन सम्प्रदायों में द्विन उपास्य-प्रतीकों को भगवत् विग्रह के रूप में पूजा जाता रहा है, वे मूर्तों के वैयक्तिक उपास्य के रूप में गृहीत होने पर आत्म-प्रतीक का ही रूप धारण कर लेते हैं। क्योंकि मनु अपने अचेतन में अवस्थित रीस और स्त्रीस तथा प्रेम और अज्ञा तथा माधना और विश्वास के अनुकूल आत्म-प्रतीकत्व विग्रह का व्यक्तिकरण (Individuation) कर लेता है। विग्रह में विहित अह उन्हें मानवीय चरित रूप (Type) में प्रस्तुत करता है और आत्म-प्रतीकत्व विश्वासीत परमात्मत्व के रूप में।

सिंह-प्रतीक

आत्म प्रतीक का एक सबसे पूर्व सापेक्ष रूप सिंह-प्रतीक है। भारतीय अवतारवाद में सिंह-प्रतीक कबूत वात्सल्य भाव का उपास्य-विग्रह ही नहीं रहा है; बरिष्ठ अवतारवादी मानवता और भगवत्ता का समीकरण सबप्रथम अवतारों के सिंह रूप से ही प्रारम्भ होता है।^२ भारतीय अवतार कमी तो अपनी माताओं को रोम-रोम में स्थित 'कोटि-कोटि मङ्गल बन्धु अनुकूल रूप प्रदर्शित करते हैं' और पुनः सिंहरूप धारण कर लेते हैं।^३ पश्चिमी और पूर्वी दोनों पुरा-कथाओं में सिंह प्रतीकों का बाहुल्य है। अवतार-प्रतीकों में भी कुछ अवतारों के सिंह-प्रतीकों का विराट महत्त्व रहा

१ एनोस पृ. १६८।

२ रा. मा. (काशिराज) पृ. ४८ 'बन्धु वात्सल्य सोर रामू। सप्त सिंघि सुकम अरत सिंघु नामू के रूप में सिंघ ने 'अवतारकथा' के पूर्व राम के वात्सल्य को बमत्स्वर किया है।

३ रा. मा. (काशिराज) पृ. ८९ 'देवरावा पाण्डि सिंघ अनुकूल रूप मङ्गल' रोम रोम प्रतिकाले कोटि-कोटि मङ्गल'।

४ रा. मा. (काशिराज) पृ. ८९ 'अप बन्धु सिंघु रूप करती'।

है। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में शिशु प्रतीक का प्रथम भावित्वांश भी नियमवतः पूर्णरूपेण अचेतन का विषय है।^१ अचेतन में ही रोगी उससे अपने व्यक्तिगत शिशुत्व का तादात्म्य स्थापित करता है। उपचार के प्रभाववत् हम शिशु के विषयीकरण से न्यूनाधिक पुष्ट होने लगते हैं। यह एक प्रकार से तादात्म्य का विस्तार होना है जो कठरना-तरङ्ग (केटेसी) की अधिकाधिक सक्षमता से सम्भव है; इसका परिणाम यह होता है कि पुरातन या पौराणिक पुष्टियों की आकृतियों मात्रा में स्पष्ट या साफ होने लगती हैं। आगे चलकर यही रूपान्तर पौराणिक वीर-नेता के साथ भी हो जाता है। प्रायः उस पौराणिक वीर के साथ पौराणिक विद्रु-बाधाएँ उसके शीर्ष स भी अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव प्रदर्शित करती हैं।^२ इस अवस्था में सामान्यरूप से पुनः उसका उस वीर नेता से तादात्म्य होता है। उसके कार्य भी अनेक कारणों से बड़े आकार के हुआ करते हैं। पुनः ने मानसिक दृष्टि से इस तादात्म्य को अत्यन्तुचित और उत्तरदाक माना है क्योंकि मिरमर चेतना का हास वीर-नेता में निहित मानवीय तत्त्वों को उत्तरोत्तर सीमित करने लगता है जिसके फलस्वरूप नेता की मूर्ति प्रमैः सदैः पुष्ट होकर धाम-प्रतीक के रूप में बढ़क जाती है। स्वाभाविक सत्य की दृष्टि से यही आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति कदा उत्तरोत्तर विकासमात्र से परिचित हो यन्त्रि विभिन्न रूपान्तरों की अनुमृति उससे छिपे अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत शैक्षण की प्राथमिक अवस्था प्रायः परिवर्तक या प्रामक का चित्र अथवा अनुचित रंग से निर्मित शिशु को विकृत दृक-दृष्ट रूप में प्रस्तुत करती है। नेता का अवतार (Epiphany) (द्वितीय तादात्म्य) स्वयं अपने अनुरूप प्रसार करने लगता है।^३ उसका हीर्मकय अथवा रूप इस धारणा में बढ़क जाता है कि वह बहुत कुछ असाधारण है या उसका अथवा रूप की अस्तमाप्यता कमी परिपूर्ण होने पर भी कदा अपनी ही हीनता को प्रदर्शित करती है, जिससे वह नेता के पद का घोलन होता है। उनके परस्पर विरोधी होते हुए भी दोनों रूप (नेता और प्रतिनेता) समानार्थी हैं क्योंकि अचेतन-पूरक हीनता, चेतन महत्कार्योत्साह (Megalomania) से सम्भव लगती है और अचेतन महत्कार्योत्साह (Megalomania) चेतन हीनता से; क्योंकि एक का अस्तित्व दूसरे के बिना सम्भव नहीं है। एक बार भी जब द्वितीय तादात्म्य की प्रसार-अनुकूल सफलतापूर्वक आधुनिक एक संतरण कर लेती है उस समय चेतन प्रक्रिया को स्पष्ट अचेतन से पुनः किया

१ इन्ट्रो टा सा पृ २२८ और २२४।

२ इन्ट्रो का शिशु रूप तादात्म्य। ३ आर्ट. बी. कन पृ २८०।

जा सकता है और अचेतन रूप के रूप में दीखन लगता है। वह (चेतन प्रक्रिया) अचेतन के साथ समावेश की सम्भावना भी उपरिधत करती है एवं ज्ञान और कार्य के चेतन और अचेतन तत्वों को पद्यात्मक सरिलय कर देती है। जिसके फलस्वरूप व्यतिरिक्त का केन्द्र अहं से हट कर आत्मा की ओर चला जाता है।

आत्म-प्रतीक के उपयुक्त मनोवैज्ञानिक विरलेपनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि आत्म-प्रतीक ही अवतार और प्रतिभवतार दोनों के उद्भव और विकास का मुख्य कारण है। मध्यकालीन साहित्य में आत्म-प्रतीक का अधिक विस्तार उपास्य-प्रतीकों के रूप में होता रहा है। उपास्यवादी रूप प्रतीकात्मक से अधिक प्रतिमात्मक है। ये प्रतिमार्द या प्रतिमा-प्रतीक भाव प्रतिमा (भाईसाहूण्ड इमेज) के रूप में पुरातन काल से ही जन-मानस में विवास करते रहे हैं जिन्हें हम अनेक प्रकार के प्रतीकों एवं प्रतिमाओं का मूळकोत कह सकते हैं। अवतारवादी प्रतीकों एवं प्रतिमाओं के विकास में इन भाव-प्रतिमाओं का विशेष योगदान रहा है इसी से इनका स्पष्ट विवेचन अपेक्षित है।

प्रतीक, प्रतिमा और चित्र—अवतारवाद वस्तुतः प्रतीक, प्रतिमा और चित्र का विज्ञान है क्योंकि इन तीनों में जो प्राथमिक प्रक्रिया होती है वह है व्यक्त होना या व्यक्त करना। प्रतीक प्रतिमा और चित्रों के रूप में जमादि सत्त्व की अनेकार्थक अतिव्यक्ति वैज्ञानिक अवतारवाद का मूळकोत है। किसी वस्तु का प्रतीकीकरण मूर्तिकरण और चित्रिकरण उसके प्राकृत्य की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को सर्वथा सक्रिय रखने वाली नेत्र प्रयत्न नासिक्य लक्ष्य, जिह्वा इत्यादि शानेन्द्रियों हैं जो ज्ञान रूप और आभासात्मक प्रतीक प्रतिमा और चित्रों का निर्माण करती है। भारतीय वाक्य में अक्ष के किय प्रयुक्त 'मोऽकामपत' का सः जो किसी भी नाम-रूप के किय प्रयुक्त हो सकता है, अक्ष के सर्वनामिक या नामात्मक प्रतीक का चोख कराता है। वैसे ही 'पुरुषसूक्त' का 'पुरुष' एक रूपात्मक प्रतीक है। इन दो प्रकार के प्रतीकों के अतिरिक्त एक आभासात्मक प्रतीक भी अक्ष के किय व्यवहृत होता रहा है। वह है वायु। वायु में आभासात्मक प्रकृति अधिक है। वायु का 'प्राणवायु' के रूप में एक विवास स्थल इक्ष भी है। अतः इस आभासात्मक किन्दु परमात्मा की तरह सर्वव्यापी वायु से आत्म सत्ता आत्म प्रतीक या प्रतिमा का विकास हुआ, जो इक्ष में सच्चिदिदं सर्वमूतान्तरात्मा अन्तर्धामी है। उसी का विवेचन 'विजु पग अर्द्धि सुबर्हि

पिनु क्वा' इत्यादि रूपों से प्रदर्शित कर दिया गया है। नामात्मक प्रतीकों में अज्ञ, अविनाशी, मनात्मक, सर्वप्रथमिमान भ्रमस्त तथा अनादि ई, जो उनकी भासीमता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करते हैं। किन्तु प्रतीक ही जब किसी विचार अर्थ या विषय के लिए रूप हो जाता है तो उसे हम प्रतिमा कहते हैं। जब विशेष प्रतिमा मनोविषय के रूप में हमारे मनोगत भावों को उद्बुद्ध करने के लिए मायक में उद्दीपन विभाव की स्यासना करती है तो उसे हम विषय या भावजनक विषय कहना अधिक सुविपुष्ट समझते हैं।

अवधारणा प्रतीक प्रतिमा और विषय का इति और आदि दोनों हैं। अज्ञ मत्त की अभिव्यक्ति से इन तीनों का आरम्भ होता है और अज्ञ तक ही ही अभिव्यक्ति में चरममीमा पर पहुँचकर इनकी इति भी हो जाती है। 'एकोऽद् द्वितीयोनास्ति यदि प्रतीक, प्रतिमा और विषय का आदि है 'सर्वं अस्मिन् अज्ञ' जैसे मन्त्र इनकी इति भी हैं। क्योंकि प्रतीक, प्रतिमा और विषय इन तीनों की एक अनिवार्य विशेषता है अज्ञ या अस्तित्व में से 'एक' की आर इंगित करना। अतएव जहाँ भी 'एक का सर्व' में अज्ञमात्र हुआ वहीं प्रतीक, प्रतिमा और विषय तीनों का विपर्यय हो जाता है। अतएव तीनों में एकत्व को सुरक्षित रखकर ही अज्ञ अस्तित्व को बनाये रखने की समता प्राप्त हो सकती है। एकत्व की सुरक्षा विरुद्ध आधिमाय अभिव्यक्ति और आविष्कार द्वारा सम्भव है। य तीनों क्रियाएँ अवधारणाई क्रियाएँ हैं; क्योंकि य तीनों आविर्भूत वस्तु को नई आवरणकता और नए प्रयोजन की प्रथममि में प्रकट किया करती हैं। अज्ञ या भौतिक वस्तु दोनों का अवतरण प्रायः अवधारणा के दो चरणों को ही परिपुष्ट करता है। इस प्रथम का आध्यात्मिक अवधारणा और दूसरे को भौतिक अवधारणा की सहा दे सकत हैं। प्रतीक प्रतिमा और विषय इन तीनों का विस्तार अज्ञ जगत् दिव्य अद्विज, स्थूल और सूक्ष्म दोनों का आश्रय लेकर विकसित होता रहा है। परन्तु उनके विकास की समस्त प्रक्रियाएँ अवनारवाही रही हैं। इसी से भारतीय ज्ञान विज्ञान और कला के मूलकार्यों में अवधारणाई प्रक्रिया का विविष्ट स्थान है। अथर्व ही कुछ प्राचीन सामप्रदायिक अवधारणाई धारणाएँ ऐसी रही हैं, जिनका प्राकृतिक विज्ञानवादी विज्ञान प्रायः

१ ए. मा. (वाचस्पत्य सं.) पृ. ५ ।

२ सोम्यर्षेण दारुणायक्येण में विशेष उद्धृत ।

३ जो प्रतीक, प्रतिमा या विषयों के वैशिष्ट्य तथा वैशिष्ट्यता का निर्धारक है ।

उन्हें निर्मूलक करने का प्रयास करता रहा है। वहाँ तक कि एक परिकल्पना (Hypothesis) के रूप में भी स्वीकार करने में उसे हिचक होती रही है। परन्तु आधुनिक अन्तरमहाय सम्वन्धों के लक्ष्य मूलिक अन्वेषण ने अब प्राकृतिक विकासवाद की ही साधनीय मान्यताओं में एक बहुत बड़ा संशय उत्पन्न कर दिया है। यह यह कि इतर ग्रहों, बच्चों या बचन-कोकों से भी कुछ पदार्थों, प्राणियों या सम्भवता मनुष्य का भी आवा सम्भव है। यह भी सम्भव है कि इतर-कोक (बचन-ग्रह) का कुछ जलप्लव विषित-प्राणी 'देव-दामन' की तरह आकर इस ग्रह पर निवास करते रहे हों। जिन्हें प्राचीन पुराण 'उपर' से आने की पुराणियों में बौध्दिक ध्यस्त करते हैं। इस प्रकार यदि दिक्-विज्ञान भविष्य में अन्तरमहाय प्राणियों के आवाय प्रदान को सिद्ध कर सका तो अवतारवादी क्रिया की पुष्टि में भी एक नए चरण की स्थापना होगी। फिर भी अभिव्यक्ति उगत में प्रतीक, प्रतिमा और दिम्बों के निर्माण में अवतारवाद का विशिष्ट अवधारणा बना रहेगा। अभिव्यक्ति की दृष्टि से अवतार-प्रतीक स्वयं एक प्राणवाम सत्ता की तरह प्रतिभासित होते रहे हैं। प्राण इव प्रतीकों और प्रतिमाओं की प्राणवत्ता उनकी संवेद्य सत्त्वियों पर निर्भर करती है। भाव-प्रतिमाएँ (आर्केटाइप्स) प्रतीकों प्रतिमाओं और दिम्बों में चेतना का सञ्चार करती हैं जिससे वे और अधिक जीवन्त और संवेद्य हो जाते हैं। अवतरण वा आधिर्भाव क्रिया विशिष्ट प्रतीकों में चेतना सञ्चार करने की एक अत्यन्त दृष्टिस्तम्भिनी प्रक्रिया है। विष्णु 'नारायण', 'भाव-पुरुष' जैसी पुरातन भाव प्रतिमाएँ अवतार-प्रतीकों में विशिष्ट चेतना का सञ्चार करती रही हैं। राम-कृष्ण जैसे अवतार-प्रतीकों में अवतार-चेतना ने ही मार्मिकता और जीवात्म दोनों का सन्निबन्ध किया है। अवतारवादी-प्रतीकों की एक दूसरी विशेषता है अवतार-प्रतीकों का अवतारी-प्रतीकों में या अवतार प्रतिमाओं का अवतारी भाव-प्रतिमाओं (आर्केटाइप्स) में परिणत हो जाना। राम-कृष्ण आदि अवतार को आरम्भ में अवतार-प्रतिमा थे, कालान्तर में अवतार प्रतीकों को अवतरित करने वाले अवतारों की 'भाव प्रतिमाओं' के रूप में गृहीत हुए। अवतार-प्रतीकों में सामूहिक अचेतन का प्रतिनिधित्व करने की पूर्ण क्षमता रही है। पुनः-पुनः अन्तर तक भारतीय जन-मानस के अचेतन से निर्गत वे एक प्रकार की राष्ट्रीय चेतना का ही बोध कराते हैं। अनेक राज्यों की मान्यताओं में भाषागत वैपश्य के होते हुए भी सामूहिक अचेतन से निर्मित अवतार-प्रतीकों की ये भाव-प्रतिमाएँ समस्त भाषाओं की भाव-भावनाओं में अनूतपूर्व भाव सान्ध की स्थापना करती रही हैं। यों अवतारवादी प्रवृत्ति की दृष्टि से भी

पारंगिक अवतार-रूप में आ प्रतीक सुहीत हुए हैं, उनमें राजा मेधा वेद्य, कवि, योगी तपस्वी इत्यादि व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के साथ साथ सामूहिक, सांस्कृतिक या राष्ट्रीय व्यक्तित्व का भी प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। अतः राम कृष्ण परशुराम, बुद्ध, धन्वन्तरि, कपिल व्यास इत्यादि को सांस्कृतिक या सामूहिक अवतार प्रतीकों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

प्रतिमा (इमेज)

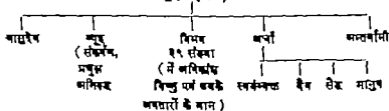
भारतीय मूल्य के प्रतीकात्मक उपस्थापन में जो विकास-क्रिया कथित होती है उसका मूल उद्देश्य रहा है अमूर्त से मूर्त निवेशात्मकता (नेति-नेति) से प्राकृतता (सर्वरम सर्वगण्य सर्वसुखान्तरात्मा) में प्रस्तुत करने की। यह कार्य विभिन्न प्रतीकीकरण की क्रियाओं के द्वारा चलता रहा है। इन प्रतीकों का परवर्ती विकास मानवीय प्रतीकों के रूप में प्रचलित हुआ जिन्हें हम विभिन्न प्रतीक की अपेक्षा 'प्रतिमा' कह सकते हैं। 'मूल्य' का पुरस्कारण या पुरुष-रूप यह प्रारम्भिक प्रतीक है जहाँ प्रतीक के क्षेत्र से भी 'प्रतिमा' के अन्तर्गत 'पुरुष रूप' उपस्थित होता है। प्रतीक की अमूर्तता प्रतिमा में पदक कर उस अपिठ सम्मूर्तित ही नहीं करती अपितु उसे अधिक सेन्द्रिय भी बनाती है। पुरुष-प्रतिमा के रूप में मूल्य प्रतीकों का विकास प्रायः मूल्य का उत्तरात्तर इन्द्रिय-सापेक्ष बनाने में ही रहा है। अतएव प्रतीक से प्रतिमा के रूप में कथ्य-प्रतिमा करने में मानवीकरण की जिन क्रियाओं का योग रहा है उनमें साक्षात् (पुरुष से नारायण का साक्षात्), प्राकृत्य (कथ्य-प्रतिमा में कथ्य का प्राकृत्य), उत्पत्ति (राम-कृष्णादि विभिन्न अवतार पुरुषों में मूल्य की उत्पत्ति) आदि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इन तीनों में साक्षात् और प्राकृत्य की अपेक्षा उत्पत्ति प्रतिमाओं में अधिक सेन्द्रियता जान पड़ती है। भावक मनुष्य के भावोद्दीपन की चरममीमा की क्षमता सेन्द्रिय होने के कारण अवतार-प्रतिमाओं में ही अपेक्षाकृत अधिक है। अतएव अवतार प्रतीक प्रतिमा और चित्रों में ही उनका सर्वाङ्ग सुगोचन की चरम परिणति कथित होती है। अवतार प्रतीकों में भी राम-कृष्ण जैसे अवतार-प्रतीक, प्रतीक, प्रतिमा या चित्र की सर्वव्यापकता की दृष्टि से कथक एक अर्थ, एक चित्र या एक धारणा या प्रत्यय साधक के सूचक नहीं हैं अपितु वे विदार अर्थ प्रथमात्मक चित्रमत्ता और उद्घात धारणा की विवृति करते हैं। अतः अवतारवाद् प्रतीकवाद्, प्रतिमावाद् और चित्रवाद् का यह चरम

रूप है, जहाँ पहुँच कर ये तीनों अपनी पूर्णतम अभिव्यक्ति कर पाते हैं।^१ भारतीय उपासना वस्तुतः प्रतीकोपासना रही है। उपासना के द्वारा ही विभिन्न प्रतीकों एवं प्रतीकात्मक पद्धतियों का क्रमशः विकास होता रहा है। कतिपय रहस्यात्मक उपासनाओं में अम्बोक्ति, समासोक्ति, स्वभावोक्ति तथा प्रतीकात्मक रहस्योक्ति के द्वारा अमूर्त वा मूर्त प्रतीक प्रतिमाएँ अपनी निगूढ़ रहस्यात्मक अवधारणाओं के साथ व्यक्त होती रही हैं। परन्तु पुरा-कथा वा पुरा-चरित्रों से समाविष्ट अक्षतार प्रतीक उपर्युक्त प्रतीकों की अपेक्षा अधिक मर्मग्राह्य और जीवन्त प्रतीक रहे हैं। दिव्य एवं ईश्वरीय पात्रों को मानवीय परिवेश तथा मानवीय चरित्र गाथाओं से अभिभूत कर मानवीकरण तथा व्यक्तिकरण के साथ-साथ उच्च समाजीकरण भी अक्षतार प्रतीक शैली की अपनी विशेषता रही है। अक्षतार प्रतीक प्रतिमाओं में पुरा-उपकरणों का एकत्रीकरण रूपान्तर के द्वारा विशिष्टीकरण एवं तादात्म्य के तीन प्रक्रियाएँ विशिष्ट रूप से उचित होती हैं। एक ही विष्णु की पुरातन प्रतिमा में चाक, कमल अंज राधा धनुष शीतल वैशंपत्नीमाक तथा लक्ष्मी का माहुर्य भी विभिन्न पुराणकथाओं के प्रसंग के साथ पृष्ठ होता रहा है। विभिन्न अवधारणों के रूप में उच्चका विशिष्ट आविर्भाव विशिष्टीकरण और तादात्म्य का भी घोटन करता है। पुंग ईश्वर की प्रतिमा के प्रतीकीकरण को केवल कम्बे सोपान का निर्माण ही नहीं मानता बल्कि सबमें समाहित अतीत-अनुभूतियों की ऐश्वर्यता को भी स्वीकार करता है।^१ अक्षतार-प्रतिमाओं के प्रतीकात्मक विस्तार को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है।^१

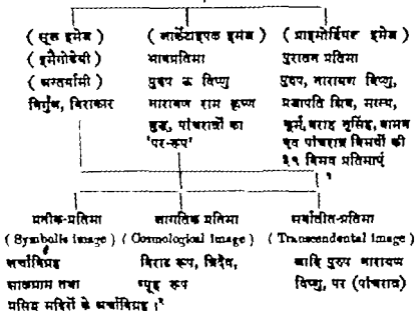
१ साखे टा पृ २५७।

२ प्रतीकात्मक विभाजन की एक क्यरेटा पाँचराव साहित्य में भी मिलती है किन्तु मनोवैज्ञानिक भाषा पर न होय हुए भी वह अधिक अर्थवैज्ञानिक नहीं प्रतीत होती। वह विभाजन निम्न प्रकार से है—

वासुदेव (पर)



अवतार-प्रतिमा



समोर्धैज्ञानिकों ने ऐम्ब्रिय प्रारम्भ के आकार पर दृष्टि, अक्षय प्राण, स्पर्श, स्वाद गति आदि के रूप में त्रिच प्रतिमाओं का विभाजन किया है मज्जकालीन उपास्य रूपों के सर्वैम्ब्रिय भावों में हृदय प्रतिमात्मक आकलन एवं माया में होता रहा है। इसके अतिरिक्त प्रायः समस्त अवतारवादी उपास्य-प्रतिमाओं में अनुचित्र (After image) प्रायश्च प्रतिमा (Eidatio image), स्थूल प्रतिमा और काश्चनिक प्रतिमा के सभी वैशिष्ट्य अनुस्यूत रहा करते हैं। बुंग ने प्रतिमा को किसी वस्तु का मानस प्रतिबिम्ब न मानकर एक ऐसी काष्पात्मक धारणा के रूप में ग्रहण किया है, जो एक प्रकार की परिकल्पनात्मक (Phantasy image), या एक वह उपस्थापना हो जो बाह्य वस्तु के प्रायश्चीकरण से कबल परोक्ष रूप से सम्बन्ध हो। यह प्रतिमा बहुत कुछ अचतन में होने वाली परिकल्पनात्मक क्रिया पर निर्भर करती है और उस क्रिया के उपास्य विम्ब के रूप में चेतना में धीमे ही प्रकट होती है। इसकी स्वच्छ प्रकृति वह रूप तथा आत्मक चित्र की तरह

१ वे पुरातन प्रतिमा के ही विशिष्ट एवं नारम्भात्मक तथा आन्तरिक रूप हैं।
२. इनमें साकप्राम की प्रकृति ही अचिन्ता है मनुता, हृन्तावन, अशोका, अण्णान्तुरी आदि एवमो की प्रसिद्ध कैंची मूर्तियाँ सामूहिक प्रकृति की हैं तथा एवं सामूहिक अर्थेण का परिभाषक कहा जा सकता है।

होती है।^१ वे प्रतिमाएँ उन्हीं रूपों में बिना किसी निदानात्मक प्रकृति कल्पना होना पर ही खड़े बाक विकृत चित्रों की तरह प्रतीत होती हैं। भक्तपूज्य प्रतिमा की मनोवैज्ञानिक प्रकृति अर्द्ध-वास्तविक छामक-प्रतिमाओं की न होकर परिकल्पनात्मक उपस्थापन की रहा करती है। यह वास्तविकता का स्वाभाविक ही प्रहण नहीं कर सकती बरिह इसका अन्तर्भावित्व खबदा उसे ऐच्छिक सत्य से पूजक कर देता है। नियमता इसमें वैज्ञानिक प्रक्षेपण का अभाव होता है किन्तु फिर भी जपवाद स्वरूप यह कुछ सीमा तक वास्तव्य में भी प्रकट होती है।

प्रतिमा-निर्माण की प्रारम्भिक क्रियाओं में आदिम मनोवृत्ति कभी अज्ञान ही है।^२ भक्तपूज्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ईश्वर प्रतिमा के रूप में पिता-माता ही प्रतिबिम्बित होते हैं। धुंग के मतानुसार प्रतीकों की सत्यता को स्वीकार कर ही मानवता ईश्वर तक पहुँची थी तथा इसी विचारणा की वास्तविकता से मनुष्य को पूष्ठी का एक मात्र अविपति बनाया है।^३ सिद्धर के अनुसार उपासना 'लिविको' (मनोपार्थक्य) का पुरातन ही और प्रस्थापित एक आन्दोलन है तथा प्रबन्धनात्मक में डूबती उगाने की एक क्रिया है। प्रगतिशील आन्दोलन की प्रतिमाओं के रूप में निरचन होकर प्रतीक का उद्भव होता है जो समस्त अचेतन तत्वों के विस्तृत प्रतिफलन को द्योतित करता है।

आत्म-प्रतिमा

प्रतीक प्रतिमाओं के निर्माण में सबसे अधिक योग आत्म-सत्ता का रहा है। आत्मा स्वयं प्रारम्भिक काल से ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की अवस्था रखती रही है। पण्डित वे भगवत्-मूर्ति से प्रतिमा का सम्बन्ध स्थापित करने के क्रम में आत्मा को ही भगवत् प्रतिमा माना है। यों पौराणिक या ऐतिहासिक इतिहास यदि देखा जाय तो आत्मा आधिक्य रूप से एक ओर तो उन उपासकों का प्रतिनिधित्व करता है जो कर्त्ता या व्यक्ति में विद्यमान हैं दूसरी ओर वह अचेतन शक्तियों या अचेतन का भी आधिक्य प्रतिनिधि है। इस प्रकार आत्मा अचेतन शक्ति और अत्यन्त अचेतन दोनों के मध्य में कार्य करने की समता रखता है। निर्धारक शक्ति या ईश्वर को इन गहराइयों में सक्रिय है प्रायः आत्म्य के द्वारा प्रतिबिम्बित होता है तथा अनेक प्रतीकों और

१ सारको टा ५ ५५४।

२ सारको टा ५४४।

३ सारको टा ५५०।

४ सारको टा ५५८।

प्रतिमाओं का निर्माण कर स्वयं एक प्रतिमा के रूप में अवस्थित है। प्रतिमाओं के द्वारा वह अचेतन शक्तियों को चेतना में संप्रपित करता है तथा त्रियक चक्रस्वरूप वह प्रादक भी है और सदेयक भी। यथार्थतः अचेतन उपासकों के लिए यह एक प्रत्यवेगित्रिक ही है। त्रिकका यह आकारकार करता है य प्रतीक है, किन्तु य प्रतीक सम्मूर्तित कर्मा या शक्तियों हैं, या प्रत्ययों के आध्यात्मिक मूल्य का निर्धारण करती है और उनकी आध्यात्मिक शक्ति बहुत महान है।^१

सनातनशास्त्रिक दृष्टि में आत्मा ऐसी प्रतिमाओं का जन्म देती है, जिन्हें सामान्य बौद्धिक चेतना स्पर्ध मानती है। निम्न ही ऐसी प्रतिमाओं का जन्म जगत में कोई तात्कालिक महत्त्व नहीं होता। अधिक से अधिक प्रतिमाओं के कलात्मक, दार्शनिक साम्प्रदायिक या भद्र धार्मिक एवं स्वतन्त्र प्रयोग-सम्बन्ध प्रतीत होते हैं। फिर भी अचेतन के द्वारा उत्पन्न भाव प्रतिमा एक निम्न प्रतिमा है। यह बिककुल उम पुत्र या महान् व्यक्ति की तरह है जो नव व्यक्तियों की प्रतिमाओं द्वारा स्वयं प्रतिमाओं के रूप में उपस्थित होता है जो पुत्र के आसाधारण गुणों से किसी विदित सबत-रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार आत्मा या अचेतन की आन्तरिक सत्ता देखे विदित व्यक्तियों में स्थापित होती है, जो अपने विदित गुणों के चकते आत्मा के ही अनुसर हैं। प्रायः मर्यादाहीन उपास्य रूपों में सुहीत अर्थात्, आचार्य भक्त तथा अवनार एवं अवतारी उपास्यों में मर्यादाओं से सम्बद्ध के समस्त गुण विद्यमान थे त्रिकका ध्यान मन्त्र या चिन्तन सम्बद्ध सम्प्रदायों के उपासक विद्या करने थे। अवनारों की चरित्र-गाथा त्रिक उद्धारक गुणों से परिपूर्ण रहा करती थी, प्रायः उन समस्त गुणों का आरोप मर्यादाहीन भक्त अपने आचार्यों और अर्थात् मूर्तियों पर भी करत रह हैं। 'दा सी वाचन वैष्णव की शार्ता' तथा 'गोबरधन नाथ जी की प्राकट्यशार्ता' ऐसी उपासकों में उनकी विदुशक्तियों का विस्तृत वर्णन देता जा सकता है। मर्यादाहीन अर्थात् के उपास्य त्रिक चरित्र गाथाओं का ध्यान किया करते थे, वे पौराणिक, साम्प्रदायिक एवं स्वच्छिन्न विदितगाओं से संपुष्टि थे। शास्त्रासी मुल्सीदाम ने त्रिक आत्म स्वरूपों का ध्यान करने की इच्छा की है, य उपयुक्त विद्यानाओं से संबन्धित उपास्य रूप है।^१ इस कीर्ति की

१ मारको दा ८, ११०।

* (क) वह वर योगी द्वारा निकला, वस्तुं हरण विष अनुभ सनेता।

जो दोष्ण मनु शक्ति देता वस्तुं तो वास हरण मम देता।

(घ) वस्तुं तो मम वर वाय सदा और सागर प्रथम।

प्रतिमाओं को ही प्रायः आत्म-प्रतिमा की संज्ञा दी जाती है। व आत्म-प्रतिमाएँ कभी तो बिल्कुल अपरिचित होती हैं और कभी पौराणिक मूर्तियों के रूप में उचित होती हैं। आत्म-प्रतिमा की प्रकृति उभय किंगी है। यह की किंग, पुष्किंग और उभय किंग तीनों में स्वकल्पित होती है। अक्सर उभय सभी स्थितियों में, जहाँ आत्मा का व्यक्ति से तादात्म्य उपस्थित होता है, आत्मा के अचेतन होने के फलस्वरूप, आत्म-प्रतिमा वास्तविक पुरुष के रूप में रूपान्तरित हो जाती है। ऐसे व्यक्ति अत्यन्त प्रेम भूषा या भय के विषय होते हैं। उनकी प्रकृति ऐसे आकम्बन विम्ब की तरह हो जाती है जो सर्वदा भावात्मक उद्दीपन के संचारक बन जाते हैं। जब भी आत्म-प्रतिमा का प्रक्षेपण होता है, लक्ष्य वस्तु के साथ एक स्वतन्त्र माधारक सम्बन्ध प्रकट हो जाता है। जब आत्म-प्रतिमा प्रक्षेपित नहीं होती तब एक ऐसी सापेक्ष अवस्था आती है जिसे प्रायः हम 'आत्म-सम्मोही वृत्ति' नाम दिया है।

आत्म-प्रतिमा के समानांतर मनोवैज्ञानिक एक आत्ममात्रमूर्ति (ego) का अस्तित्व मानते हैं। समस्त धर्मों में ईश्वर-प्रतिमाएँ ईश्वर-मात्र-मूर्ति (इमैगोडेवी) के रूप में अभिर्भूत होती हैं। इन्द्रवैश्व अपने मूल के मन में जिन रूपों में अवस्थित रहते हैं वह रूप वस्तुता 'देवता-मात्र-मूर्ति' का ही ज्ञान पड़ता है। युग ने 'इमैज और 'इमैगो में अन्तर उपस्थित करते हुए कहा है कि 'इमैगो वा आत्म-मात्र-मूर्ति किसी वस्तु की वास्तविक प्रतिमा नहीं है अपितु उसकी आत्मनिष्ठ प्रतिमा है। यह वस्तु की आत्मनिष्ठ प्रतिमा अचेतन के धरातल पर उत्पन्न होकर विदित होने वाली आत्मनिष्ठ क्रिया-प्रणयि है।' अतएव इसे आत्मनिष्ठ प्रतिमा या आत्म-मात्र-मूर्ति की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। आत्म-मात्र-मूर्ति यह आत्मनिष्ठ माधारक प्रणयि है जो भगवत् आत्म-प्रतिमा को सक्रिय बनाती है। कष्ट परिस्थितियों के लिए भगवान् अपने ही अस्तित्व में विद्यमान परम सत्ता है। ऐसी चारणा अचेतन संसृष्टिक विदित होती है जिसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तात्पर्य होता है इस तथ्य के प्रति बिल्कुल अज्ञातता प्रदर्शित करना कि देवी आस्था स्वयं निजी आत्म-सत्ता से स्फुरित होती है। किन्तु भगवत् सापेक्षता की आधार-शिला पर विद्यमान अस्तित्व यह सूचित करता है कि अचेतन क्रिया का न विचारित होने वाला जब भी कम से कम मनोवैज्ञानिक सतोष के लिए अनुमान या तर्क के द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है। अस्तित्व की दृष्टि से अवतार-सत्य व्यक्ति के विश्वास का सत्य है। प्रकृत

सूर्य भी प्रकृत का एक रूप में वा घाटी की तरह घोल पड़ता है। उसका बड़ रूप हमारी दृष्टि से सम्बद्ध रूप है, जो हमारे मन में धरती के सदृश भाव-प्रतिमा वा आत्म-भाव-मूर्ति का निर्माण करता है। यह वास्तविक न होकर प्रतीति सापेक्ष है।^१ इसी प्रकार ब्रह्म की अवतारित आत्म-भाव-मूर्ति (हमें यो जेयी) प्रतीत हान वाली आत्मनिष्ठ भाव-प्रतिमा है। प्रतीति सापेक्ष के आधार पर ही मावक उसक 'महद्देव अनेक चरितों का आस्वाद्यक करता है। अवतार-रूप वा इष्टदेव के रूप में माव्य यह वह आत्मनिष्ठ भाव प्रतिमा है जो मानव प्रतीति से निर्मित हुई है। अवतार प्रतिमा इस रूप में ब्रह्म के पारमार्थिक वा परम सत्य में अधिक प्राथमिक वा प्रतिमासिद्ध सत्य है। ब्रह्म का पारमार्थिक सत्य दिक्-काल निरपेक्ष है किन्तु प्राथमिक सत्य दिक्-काल सापेक्ष है। अतः 'देवात्म भाव-मूर्ति मनुष्य की दिक्-काल सापेक्ष आस्था को अभिमूल किये रहने वाला एक 'आत्मनिष्ठ भाव प्रतिमा' है जो अपने मनोगत इष्टदेव को भावक की समस्त आकांक्षाओं के प्रपेपण से अनुरजित रहती है, जिसके फलस्वरूप 'देवात्म भाव-मूर्ति' एक ओर तो परम सत्ता का पर्याय बनी रहती है और दूसरी ओर वह भक्त वा भावक की मानसिक दशाओं से भी प्रपेपित हो जाती है।

मध्यकालीन निर्गुण और सगुण दोनों मतों के साहित्य में आत्म-प्रतिमा ब्रह्म है। ईसाई मत में ईसा जिस प्रकार आत्म-स्वरूप समझे जाते हैं^२ सगुण साहित्य में वर्णित अवतार-उपास्य आत्म प्रतिमाओं के रूप में प्रकटित रहे हैं। भूरास अपने जिस घर-मठ^३ में इति का समय करते हैं वे 'दीवद्वाह, देव-परिपूरण सब घट जनर जामी'^४ 'आत्म-प्रतिमा' वा 'देवात्म भाव-मूर्ति' ही मान पड़ते हैं। गोरखामी मुहत्सीशास ने भी—'सर्वे सर्वगत सर्व उदाकय बसवि महा हम कहु परिपाकय तथा राम ब्रह्म चेतक अधिनासी, सर्व रहित मय उर पुर'^५ वासी के रूप में आत्म-प्रतिमाओं का यथा प्रसंग उल्लेख किया है।

भारतीय साहित्य में 'देवात्म भाव मूर्ति' (हमें यो जेयी) का अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचार रहा है। वैदिक साहित्य में प्रायः आत्म-प्रतिमा को ब्रह्म के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। बृ० उ० में अनेक जेये श्यक जाए हैं जहाँ ब्रह्म का आत्म-प्रतिमा का रूप दिया गया है। (बृ० उ० २५५११ 'अयमग्रामा ब्रह्म) जैसे अन्य मंत्रों में आत्म-प्रतिमा का एक

१ इ. सारको पृ. २०४।
 २ मूर. स. पृ. २०५६ ८२।
 ३ रा. मा. (वा. प्र. स.) पृ. ५११ ९५।
 ४ पञ्चान. पृ. १९५ १८८।
 ५ मूर. स. पृ. ६२ ५२ १९।

अन्तर्दामी (वृ उ ३ ७ १-१७) रूप मिलता है । 'महामारत' एवं अन्य पौराणिक परम्पराओं में होता हुआ यही अन्तर्दामी पाँचरात्र साहित्य के उपास्य प्रतीकों में मान्य हुआ है । आश्चर्य तो यह है कि मध्य काल में अर्चा-विग्रह तो केवल सगुण भक्ति में पूज्य हुआ सम्भवता इस्लामी प्रभाव के कारण निगुण और सूफी भक्ति में इसका विरोध हुआ किन्तु अन्तर्दामी सगुण भिर्युण सभी में समान रूप से धारत हुआ । यदि यह कहा जाय कि भिर्युण मार्ग में निर्युण निराकार याया आत्म प्रतीक का ही विग्रह रूप या 'दिव्यतम भाव-मूर्ति' चारण कर उनकी मानस-सर्चना का उपास्य बना रहा तो इसमें कोई अस्पृष्टि नहीं होगी । युद्ध ने अचेतन के चार रूप बतलाए हैं आत्मा, एनिमा (नारी-भाव प्रतिमा) एनिमस (नर-भाव प्रतिमा) धीर ज्ञाया । इनमें आत्मा को छोड़कर एनिमा एनिमस धीर ज्ञाया में एक ऐसी प्रतिरूपता या प्रतिमूर्तता शील पड़ती है जिससे 'आत्म-प्रतीक' के समकक्ष न प्रतीत होकर वह एक भिन्न प्रतिमा के रूप में दृष्टिगोचर होती है जिन्हें युग ने भाव प्रतिमा (आर्केटाइपल इमेज—मूठ प्रतिरूप) की संज्ञा प्रदान की है ।

भाव-प्रतिमा (आर्केटाइपल इमेज)

मनोविज्ञान में अचेतन-चेतन की अवेद्या अधिक रहस्यमय थीर व्यापक है । युग ने उसे व्यक्तिगत थीर सामूहिक दो प्रकार का माना है ।^१ व्यक्तिगत अचेतन में वैचरकिकता अधिक है और सामूहिक अचेतन में जागतिकता । व्यक्तिगत अचेतन की अवेद्या उसके उपादान तथा उसके रूप और व्यापार न्यूनधिक रूप में प्रायः सर्वत्र सभी व्यक्तियों में एक ही जैसे हैं । व्यक्तिगत अचेतन अवन्त व्यक्तिगत 'मनो-बीचन' का निर्माण करते हैं जब कि सामूहिक अचेतन के उपादान भाव-प्रतिमा के रूप में परिकल्पित होते हैं ।^२ आत्म प्रतिमा थीर भाव प्रतिमा का किंचित् पार्यन्त स्पष्ट कर देना समुचित जाय पड़ता है । आत्म प्रतिमा में चेतन और अचेतन दोनों की सम्भावना विराज-मान रहती है; क्योंकि आत्म-प्रतिमा का एक थीर सम्बन्ध चेतन से रहता है थीर उच्चर अचेतन से भी । परन्तु भाव-प्रतिमा सम्भवतः अचेतन की देन है । युग ने आर्केटाइप' या भाव-प्रतिमा का क्रमिक विकास प्रस्तुत करते हुए साहित्य में उनके विभिन्न व्यक्तित्व रूपों पर विचार किया है ।^३ उनके मतानुसार भाव-प्रतिमा का प्रयोग प्राचीनकाल से ही मनुष्य में

१ आर्कि. बी नम १ । २. तारको रेकि ५ १४१ ।
 ३ आर्के. बी नम ।

स्थित वैशाम् मान मूर्ति (Imago-Dei-God image) के रूप में हाता रहा है। 'मान प्रतिमा' इस प्रकार अनेक प्रयोगों में व्यवहृत होती रही है, किन्तु उसका विशिष्ट प्रयोग अचेतन उपादान की दृष्टि से पुरातन एवं जागतिक प्रतिमाओं के लिए ही विशेषकर प्राचीन साहित्य में प्रचलित रहा है। पुराणों और परिचों की कथाओं में 'मान प्रतिमाओं का सर्वाधिक विकास हुआ है। य पौराणिक मान-प्रतिमाएँ अत्यन्त पुरातन काल से सामूहिक अचेतन की परिकल्पनात्मक पुरा कथाओं का परम्परागत ढंग से भार बहन करती आ रही हैं। जन-जन-मानस में इनका विश्व इस प्रकार स्थायी रूप धारण कर लेता है कि ये चेतन-प्रतिमा की तरह प्रतीत होती हैं। इसी से पुंग के अनुसार 'मान प्रतिमा अनिवापनः वह अचेतन उपादान है जो चेतन होकर प्रपञ्चीकरण के द्वारा उस वैयक्तिक चेतन में जिसमें इसके प्राकृत्य की सम्भावना रहती है अपना आकार ग्रहण करती है।' इसीप्रकार की मान प्रतिमाएँ सामूहिक एवं जातीय ईश्वरत्व की चेतना को लेकर सामाजिक रुढ़ियों में आवद्ध हो जाती हैं। ईश्वर की ये रुढ़ मान-प्रतिमाएँ, जिनका विकास सातारिह्यों से होता चला आ रहा है सामूहिक मानस की अधो स्थिति पर प्रायः 'आकर्षण मलहम' की तरह कार्य करती रही हैं। ये रुढ़िग्रस्त मान-प्रतिमाएँ धर्म-रुढ़ियों और विधि-नियमों की प्रतीकात्मकता में बहकर एक सुनिश्चित विचारों का प्रवाह लेकर चलती हैं। अचेतन की ये मूर्तिवाँ मन्त्रेव रश्मि (अवतारों की तरह रश्मि और उद्धारक) और उपचारात्मक प्रतिमाओं में रूढ़ि हुआ करती हैं और इस प्रकार मानस से निकल कर जागतिक स्तर में व्याप्त हो जाती हैं।^१ पर्याय तो यह है कि ये मान-प्रतिमाएँ स्वयमेव विधि धर्मों और अर्थों से इस प्रकार सम्पृक्त हैं कि लोग कभी भी यह नहीं मानते कि वस्तुता इनका वास्तविक अर्थ क्या है। अन्तर विभिन्न युगों में इनके परम्परागत मूक्य का ही रूप परिवर्तन में मूक्यबोधन होता रहता है। विभिन्न युगों के अन्तराल में निर्मित इन मान-प्रतिमाओं में अनेक प्रयोगों की समिश्रित अभिव्यक्ति की अर्थात् समना होती है।

प्रायः सभी युगों में मानव किन्हीं न किन्हीं प्रकार के देवताओं में विश्वास करता रहा है। प्रायक युग देव-प्रतिमाओं का रूप अर्थों में शीघ्रता का प्रयास करता है। अतएव इस बौद्धिक सप्तपञ्चाद के युग में भी वे हमारे सामने एक समस्या बनकर उपस्थित हैं। इस दृष्टि से केवल प्रतीकावाद की अनुत्पत्ति

निगारता या अर्धहीनता ही हमें देवताओं को मनुष्यों के रूप में पुनः अनुशीलन करने के लिए सचेष्ट करती है जिसके परिणाम हैं—अचेतन की ये भाव-प्रतिमाएँ । पुंगू भी यह स्वीकार करता है कि 'अवश्य ही भाव-प्रतिमाओं की इस जोड़ में विशेषकर आकाश के लिए कोई उपलब्धि नहीं है । किन्तु मन के संतोष के लिए, हमें ईश्वरवादियों के स्वप्नों में अनुमूल चित्रों को देखने की आवश्यकता पड़ती है । हम तभी केवल आत्मा की आत्म-सक्रियता का जक पर अतिरिक्त होते हुए अनुभव कर सकते हैं' ।^१ ऐसा लगता है कि अचेतन इसी विचार-रूप पर कार्य करता रहा है जो दो हजार वर्षों से स्वयं व्यक्त होता रहा है । यह सातत्य भी तभी तक सकता है जब हम अचेतन अवस्था को ब्रह्मानुगत प्रामाण्यविकृत तत्त्व मानें । किन्तु हमका तात्पर्य ब्रह्मानुगत प्रत्ययों से नहीं है जिसको प्रमाणित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवस्था होगी । ब्रह्मानुगत गुण प्रायः हम प्रकार के होते हैं जिसमें एक सदा विचारों को बार-बार उत्पन्न करने की सम्भावना विद्यमान हो । इसी सम्भावना को पुंगू ने 'भाव-प्रतिमा (आर्कटाइप) की सच्चा प्रदान की है । अतएव भाव-प्रतिमा यह रचनात्मक गुण या केवल मानस (Psycho) की वह विशिष्ट दशा है, जो किसी न किसी प्रकार मस्तिष्क से सम्बद्ध है । जब भी हम धार्मिक उपादानों की बातें करते हैं तो उस समय एक ऐसी प्रतिमा के विषय में विचारण करते हैं जो किसी कल्पनीय या वर्णमातीत सत्ता की ओर इंगित करती है । इस प्रतिमाओं के विषय में यह कह सकना नितात्म कठिन है कि ये किस विधातीत विषय को आरण करती हैं ।^२ यदि कहा जाय ईश्वर तो ये ईश्वर की एक प्रतिमा या वास्तविक धारणा मात्र की अभिव्यक्ति करती हैं जो काक-क्रम से अनेक परिस्थितियों से गुजरती रही है । यदि बाल्या न हो तो एक निश्चित सीमा तक यह कदा कठिन हो जाता है कि ये परिवर्तन मूर्तियों या आरणों को प्रमाणित करते हैं या स्वयं अविर्बचनीय ईश्वर को । फिर भी हम शायद प्रवहमान कवि-स्रोत के रूप में उस ईश्वर की कल्पना कर सकते हैं जो उठने ही महज दृग से अनन्त रूपों में स्थापित होता है जिस सीमा तक उसके शाश्वत और अनागत तत्त्व की कल्पना की जा सकती है । पुंगू के मतानुसार इन ममी के मूळ में ये प्रतिमाएँ हैं जो चेतनातीत होकर भी सक्रिय रहती हैं । इन प्रतिमाओं को 'भाव-प्रतिमा भी माना जा सकता है । यों यह एक मनोव्यक्ति है जिसके द्वारा ईश्वर मनुष्य में सक्रिय रहता है । किन्तु यह कह सकना कठिन है कि ये कार्य-व्यापार ईश्वर से निकलते हैं

या अचेतन से। ईश्वर और अचेतन दोनों का पार्ष्वक उपरिचल करना भी आसान नहीं है। अज्ञातगत उपादानों के टिप्पण दोनों ही सीमावर्ती धारणाएँ हैं। किन्तु अनुभव की दृष्टि से अचेतन बहुत कुछ सम्भावना पर आधारित है, क्योंकि अचेतन में 'भाव-प्रतिमा' की पूर्णता निहित है जो स्वयम्भूत जगत् से स्वप्नों में स्पष्ट होती है। इस कम्प में चेतन इच्छा से स्वतन्त्र एक प्रकृति उसे अन्य भाव प्रतिमाओं से आवृत्त करती है, जिसके फलस्वरूप वह विहङ्गक असम्भव नहीं प्रतीत होता कि भाव-प्रतिमाओं की पूर्णता एक ऐसे केन्द्रिय स्थल को अभिवृत्त करती है, जो उसे ईश्वर-मूर्ति के समकक्ष ला देती है। भाव-प्रतिमाओं में एक ऐसा अनोखी विशेषता है जो उनकी प्रतीकात्मकता में देवत्व की अभिव्यक्ति करती है। यह भाव ईश्वर और अचेतन की अमिश्रता का और अधिक स्पष्ट करता है। परमार्थतः भगवत् प्रतिमा अचेतन से नहीं भेक जाती बल्कि उसका एक विशिष्ट उपादान 'आत्मगत भाव प्रतिमा' के समकक्ष जान पड़ता है। यह वही भगवत् प्रतिमा है जिसे हम अनुभव की दृष्टि से भगवत्-प्रतिमा से प्रयत्न नहीं कर सकते। यह धारणा केवल अनुभव को ईश्वर से प्रयत्न करने में तथा ईश्वर को अनुभव बनाने से रोकने में सहायता देती है।^१ जो कल्पना द्वारा उत्पन्न प्रत्यक्ष रूपों में दृष्टिगोचरता अवरय मुरचिन है; इसी से अबमें प्रतिमाओं की प्रकृति या उनसे बढ़कर विशिष्ट प्रतिमाओं की विशेषता विद्यमान है जिन्हें धुग ने भाव प्रतिमा की ही संज्ञा दी है।^२ तुम्हारा मरुत धम और पुराण इन भाव प्रतिमाओं की आवृत्त समुह जाने हैं और उसी प्रकार स्वप्न और (साइकोसिप) मनोविज्ञान भी। इसी से भाव-प्रतिमाएँ प्राकृतात्मक मन (Prerational psycho) के भाग प्रायग ई। य व मनोतन और परम्परागत उपादान हैं, जिनका कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं है। मानव इन्द्रिय के रूप में भाव-प्रतिमाएँ, उस प्रकार की गतिदाक वृत्तिगत भाव-प्रतिमाएँ हैं, जो अन्वयधारण मात्रा में मनाजीवन का नियंत्रित करती हैं।^३ समस्त मनागत वरभाएँ प्राग्नुमधिक रिचित के रूप में इस प्रकार की अन्वय और दिव्यता से परिपूर्ण हैं जो अन्वय काट से देव-मरुत मूर्तियों में अभिव्यक्ति पाती रही हैं। अन्य कोई भी व्यापार अचेतन की आवृत्तकता की तुष्टि नहीं कर सकता है। अचेतन अन्वयिकाल से भली हुई मानवता कठिनित इतिहास है।^४ दिव्य प्रकृतियों का रूप भाव प्रतिमाओं की अमि

१ सारथी रचित पृ ४२८।

२ सारथी रचित पृ ४११।

३ सारथी रचित पृ ५१८।

४ सारथी रचित पृ ५१९।

५ सारथी रचित पृ १८८।

शक्ति के अनुभव सिद्ध क्यों क अनुभव होता है। इसी में ईश्वर क समस्त ज्ञात क्यों का मूल भी अभिविहित है; अर्थात् ईश्वर क सभी ज्ञात एवं स्वच्छ क्यों की अभिव्यक्ति प्रायः किसी न किसी भाव-प्रतिमा के ही रूप में होती है। यह भाव प्रतिमा केवल स्वाधर प्रतिमा नहीं है अपितु अत्यन्त गति शील और जलापमान है। चाहे स्वर्ग हो या नर्क, पृथ्वी हो या आकाश यह सर्वत्रा और सर्वत्र एक नाटकीय स्थापार है। युग न ईश्वर का तात्पर्य एक भाव प्रतिमात्मक 'मोटिफ' (Motif) से ग्रहण किया है; जिन्हें तद्वाचा चेंडाह ब्यस शिव विष्णु इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। लक्ष्मणप्रतिमा सत्त्वगता, सनातनता इत्यादि के ककल हैं जो न्यूनान्तर मात्रा में किसी न किसी भाव-प्रतिमा से सक्रियिष्ट रहते हैं। ईसाई मत में 'ईश्वर जयी' का 'भाव प्रतिमा' में माना जाता है जन्हीं के सहस भारतीय गुणावतार ब्रह्मा विष्णु और महेश, जो जागतिक त्रिगुणात्मक कार्य-स्वापारों का प्रतिनिधित्व करते हैं भाव-प्रतिमा माने जा सकते हैं। ये अपने सम्प्रशाम विशेष में पुनः पुनः अवतरित होने वाले अवतारी उपाध्य वेब हैं। भाव-प्रतिमाएँ भी पुनः पुनः सजीव होने वाली प्रतिमाएँ हैं।^१ इसी से भाव-प्रतिमात्मक विचार-धारा को युग न मानव-मन की अविनश्य आधार धूमि माना है। उसने अचेतनात्मक पुरातन प्रथम के सिद्धान्त को ही भाव प्रतिमा के रूप में स्वीकार किया है।^२ जो अचेतन की अभिव्यक्ति वस्तुतः एक जलात मानव का ही रहस्योद्धारण है। साथ ही अचेतन की एक यह भी विशेषता है कि यह एकता और अनेकता का बोध एक साथ ही कराता है। बौद्धिक या तार्किक चेतना को पृथ्वीमूल शिव में पार्थक्य भाव प्रदर्शित करती है उसी के फलस्वरूप भाव प्रतिमाएँ भी अन्त स्वस्था में पृथक् पृथक् प्रतीत होती हैं।

परिच्छेपनाओं और स्थलों में भाव-प्रतिमाएँ सक्रिय-व्यक्तिरूप के रूप में प्रकट होती हैं जिन्हें भाव-प्रतिमाओं का ही रूपान्तर कहा जा सकता है। इस रूपान्तर के एकलत उदाहरणों में तार्किक पहचकरी (कुञ्जकिणी भोग-साधन में प्रयुक्त) को भी ग्रहण किया जाता है। क्योंकि ज्यों और परी में अमसा सक्रिय होता हुआ कुञ्जकिणी सक्ति का रूपान्तर, अमसा अवतरित होते हुए भाव-प्रतिमाओं का ही रूपान्तर स्थापित करता है।^३ यह प्रतीकात्मक किया प्रतिमाओं में प्रतिमाओं की अनुमृति है। भाव प्रतिमा में केवल एक ही भाव-द्विगति का भावन नहीं होता अपितु उसमें परस्पर विरोधी तर्कों

१. सारथी ऐकि ५ २१ ।

२. सारथी ऐकि ५ ५ ।

३. सारथी ऐकि ५, २८९ ।

४. जार्जे को नव ५ ३८ ।

को भी समाविष्ट करने की पर्याप्त क्षमता है। इसी से भाष प्रतिमाओं में 'युगनद्ध और 'युगल मूर्ति' का आविष्कार सहज सम्भव है। अस्तु भाष-प्रतिमाएँ दो छिंटों में ही मध्यस्थता नहीं करतीं अपितु अर्धतम तल और अर्धतम क बीच में भी मध्यस्थ रूप धारण करती हैं। इस दृष्टि से पिता भाष प्रतिमाओं की गत्वरता का प्रतिनिधित्व करता है; क्योंकि भाष प्रतिमाएँ रूप और शक्ति दोनों में होती हैं। भाष-प्रतिमा की प्रथम बाहिका अपनी माता है क्योंकि पिशु अज्ञान परिचय की दशा में उससे पूर्णतः सम्बद्ध रहता है। वह पिशु की मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्राक दशा है जो पिशु में वह चेतना क आप्रत होत ही सम्बद्धता का धारे धीरे ताकन ळगती है जिसक परिणाम स्वरूप अर्धतम क विपरीत चेतना प्राकृषा में उदित होती है; इस प्रकार माता से अम्बद्ध होने पर उसकी व्यक्तिगत विशेषताएँ भी धूमक हो जाती हैं।

यों ता मातृ-दैवी की भाष प्रतिमा पिशु काक से ही हमारे मन में प्रतिष्ठापित रहा करती है त्रिनका विकास आनीय या सामूहिक मातृ-दैवियों क रूप में जाता है। 'काठी और 'अशोना' की भाष प्रतिमाएँ इस प्रकार की मातृगत भाष प्रतिमाओं के उदाहरण हैं। भाष प्रतिमा निम्न ही एक मान संश्रिय (Psycho organ) है जो सभी में उपस्थित रहती है। यह आविष मन की कुछ तमापत्र सहजाएँ या धृत्वात्मक उपकरणों को जो वस्तुता चेतना क अहरण मूक उपादान हैं, उपस्थापित या मानवीकृत करती है।

भाष प्रतिमा की एक सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सार्वभौमिकता या सामूहिक प्रतिनिधित्व। वह व्यक्ति मात्र के मन में स्वरूपित होकर भी समस्त समूह का प्रतिनिधित्व करती है। इसी से वह किसी व्यक्ति मात्र की सम्पत्ति न होकर समस्त जाति की होती है। भाष प्रतिमा की सीमा कबक कुछ सम्मूर्तित प्रतिमाओं तक ही नहीं है अपितु इनका विस्तार कला भाषा विज्ञान और पाठ्यलोचन क इतिहास में भी हुआ है। मनोवैज्ञानिक भाष-प्रतिमा का कबक अपने समावांतर ज्यों से एक ही अर्थ में वैपश्य है कि य जीवन्त और सर्वव्यापी मनो-माय को सूचित करती है। इस दृष्टि से युग भाषा को भी भाष-प्रतिमात्मक पूर्ण प्रतीक मानता है। ऐसी भाष प्रतिमाओं में वैपक्षिता क अतिरिक्त आगनिकता और सूक्ष्मता विद्यमान रहती है।

अवतारत्व और ईश्वरत्व में भाव प्रतिमा सम्बन्ध-शृङ्खला का कार्य करती है। अवतार अवतार पुरुष एक प्रकार की भाव प्रतिमा है जो अपनी ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्तित्व में ऐतिहासिक या पौराणिक महामानव है और पूर्वावतार के रूप में सैकड़ों का आराध्य देव है। पश्चिम में ईसा को साम्प्रदायिक मूर्ति से आबद्ध किया जाता है और पूर्व में बुद्ध, आर्या, हिरण्यगम तथा बुद्ध राम कृष्ण आदिको प्रबर्तक अवतारों के समकक्ष समझा जाता है। धार्मिक विश्वास में भाव प्रतिमा एक मुद्रित रूप (imprint) समझी जाती है जब कि वैज्ञानिक मनोविज्ञान उसे 'Types' या प्रकार एवं किमी अज्ञात का प्रतीक मानता है। भाव-प्रतिमाओं पर मानवीय और जागतिक पूर्णता का आरोप किया जाता है, यह युग के मत से अंशतः चेतन मानव की पूर्णता है और अंशतः अचेतन मानव की।^१ भाव-प्रतिमा को युग न आत्मा का पर्याय भी माना है। इस भाव-प्रतिमा की तरह बुद्ध या ईसा के किए कोई आत्म प्रतीक भी रचना या सकता है।

अन्तमुत्ती सहस्र ज्ञान में उन प्रतिमाओं को भ्रमरने की क्षमता होती है जो प्रागुत्पन्निक ज्ञान से उत्पन्न होती हैं तथा जो अचेतन मन की उत्तराधिकार प्राप्त पीठिकाएँ हैं। वे भाव-प्रतिमाएँ जिनकी आन्तरिक प्रकृति अनुमूर्ति से परे है समस्त बंश-परम्परा के मानव-कार्य के सामर्थ्य को व्यक्तिसूचित करती हैं। वे एकत्रित शक्ति के रूप में ऐश्वर्य अनुमूर्ति के सामान्य अस्तित्व में गृहीत होकर तथा अन्तों वार पुनरावृत्त होने के पश्चात् किमी एक रूप-प्रकार (Type) में सिमट कर रह जाती हैं। इस प्रकार की भाव-प्रतिमाओं में वे समस्त अनुमूर्तियाँ उपरिष्ठ होती हैं, जो आदिम युग से ही इस पृथ्वी पर अज्ञान रही हैं। उनका भाव-प्रतिमात्मक पार्श्वक्य और अधिक तब स्पष्ट होता है जब उनकी अनुमूर्ति तीव्र से तीव्र होने लगती है। कौट की दृष्टि में भाव प्रतिमा प्रतिमा का वह अज्ञात (Noumenon) स्वरूप है, जिनका सहस्र ज्ञान द्वारा साक्षात्कार होता है और प्रत्यक्षीकरण की दृष्टा में उसकी रचना होती है।^२

लेमन' ने जिसे *Mneme* कहा है, युग ने उसे ही सामूहिक अचेतन की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से जबकि आत्मा समस्त प्राणियों में विद्यमान किसी सार्वभौम सत्ता का प्रातिनिधिक बंध है और इसी से एक समबर्ती मनो वैज्ञानिक प्रक्रिया प्रत्येक जीव में, तब रूप में लग्न होती है। यदि कदा

१ साइको लक पृ १७।

२ साइको लक पृ १८।

३ साइको टा पृ ५८।

से ही अन्तर्गत क्रिया-स्वाभाव को सहज-बुद्धि (instinct) कहते हैं। इस रीति से विषय या लक्ष्य के मनो-प्रत्यभिज्ञान को युग ने 'भाव प्रतिमा' की संज्ञा दी है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि सहज बुद्धियों द्वारा प्राण्य वस्तुओं से प्राप्त व्यक्ति परिचित रहता है। भाव प्रतिमा वह प्रतीकात्मक सूत्र है जो सर्वथा तभी काय करना आरम्भ करती है; जब कोई भी चेतन प्रत्यय उपस्थित नहीं रहता है तथा आन्तरिक या बाह्य आघार पर क्रियही उपस्थिति अममनव होती है। सामूहिक अचेतन के उपादान चेतन में या तो सर्वव्याप्यात्म्य प्रवृत्तियों के रूप में या वस्तु के प्रति एक विनाश रहि अगिमा के भाव उपस्थापित किए जाते हैं। सामान्यतः लोग बड़े आत्मक उग से इन्हें वस्तु द्वारा निर्धारित समझते हैं किन्तु वास्तविकता तो यह है कि अचेतन की सामय-निर्मिति में इन्का मूक अंत सुरक्षित रहता है और य केवल वस्तु की सन्धिपता के द्वारा निःसृत होते हैं।

छाया

युग ने छाया 'प्रतिमा और 'प्रतिमम (नारी-भाव मूर्ति पुरुष भाव मूर्ति) भाव-प्रतिमाओं के य तीन प्रकार माने हैं। जिसमें छाया व्यक्ति के सजीव अंगों में से है वह किसी न किसी रूप में व्यक्ति के साथ रहती है। यों सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति और आचरणक प्रक्रियाएँ स्वयं भाव प्रतिमात्मक विचारों में व्यक्त होती हैं। ऐसी दशा में स्वयं अपन भाव से निकलना एक प्रकार से अपनी छाया से निकलना है। युग के अनुसार छाया एक सहस्रानुपाय है जिसके दुर्लभ निर्माण से वैसा कोई भी नहीं बचा है जो उस गहरे रूप तक जाता है। किन्तु व्यक्ति को स्वयं यह जानना चाहिये कि वह क्या है? यों 'प्रतिमा' और 'प्रतिमम की अवेक्षा छाया की अनुमूर्ति अधिक सहज है, क्योंकि इसकी प्रवृत्ति का विवेक व्यक्तिगत अचेतन के उपादानों द्वारा सम्भव है। हम निपम का उपवास कष्ट नहीं हो सकता है जहाँ व्यक्ति के दोस गुण प्रमित हुए रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अह अभिव्यक्ति रूप से प्रतिरोधी या प्रतिपक्षी बन जाता है। छाया वह नैतिक चेतना है जो सम्पूर्ण अह-व्यक्ति को चुनौती देती है क्योंकि बिना पर्याप्त नैतिक प्रयास के छाया से कोई अभिन्न नहीं हो सकता। अपनी छाया से अभिन्न होने के लिए अपने व्यक्ति के उत्कृष्टतम और वास्तविक अन्धकार मय पक्षों का प्रायश्चित्त आचरणक रहता है। अतएव छाया को हम अपने व्यक्ति के हीनस्वरूप की छाया कह सकते हैं। छाया के निर्माण में

प्रक्षेपण का बहुत बड़ा हाथ रहता है। प्रायः व्यक्ति के व्यक्तित्व में ऐसा हील पड़ता है कि वह अपने व्यक्तित्व की नैतिक चेतना के विकास में आरम्भ रुक गल्पबरोध का सामना करता है। इन अवरोधों का सम्बन्ध उन प्रक्षेपणों से है जिनको पहचानना बहुत कठिन है। प्रक्षेपण की यह क्रिया चेतन की नहीं बरिष्ठ अचेतन की है। इससे प्रक्षेपण का प्रभाव एसा होता है कि वह व्यक्ति को आतावरण से दूर कर यथार्थ के स्थान में एक आत्मिक सम्बन्ध की सृष्टि करता है। अतएव प्रक्षेपण के फलस्वरूप व्यक्ति जिन ज्ञापामक व्यक्तित्व को अपनाता है, वह उससे व्यक्तित्व का निष्पासक अंग है।^१ ज्ञापा में एक ऐसी अकथनीय अभिव्यक्ति है कि स्पष्ट ही उसका कुछ न तो बाहर है न भीतर न ऊपर है न नीचे न पहाँ न चहाँ न मेरा न तेरा न भला है न बुरा। यह वह अकथनीय बिन्दु है जब समस्त जीव सत्ता सद्रिवावस्था में तैरती रहती है जहाँ समाप्नुमृति का साधारण है, जहाँ से किसी भी जीव की सत्ता सर्वप्रथम निःसृज होती है जहाँ 'मैं' अविभाज्य रूप से यह और यह है जहाँ 'मैं' अपने में दूसरों का अनुभव करता है और दूसरे अपने में 'मैं' का अनुभव करते हैं।^२ पुंग द्वारा विवेचित ज्ञापा की यह प्रकृति और सागर में अजन्त शापी विष्णु या नारायण की मूर्ति के समावांतर प्रतीत होती है, जिनका एक विगुण और निराकार रूप है और दूसरा सगुण आकार। ज्ञापा को विगुण निराकार के समकक्ष समझा जा सकता है; क्योंकि दोनों में दैव-काळ से परे की स्थिति को सम्मूर्तित किया गया है।

पुनिमा और पुनिमस

माक-प्रतिमाओं के अन्त में ज्ञापा का एक रूपान्तर 'पुनिमा' या 'पुनिमस' में होता है।^३ 'पुनिमा' मनुष्य के शरीर में अल्पसक्या बाकी की 'पुण्ड्र' का मनोबैज्ञानिक प्रतिबिम्बित्व करती है; जो सम्भवतः नारी-अचेतन की कल्पना में नहीं उत्पन्न होती। बरिष्ठ नारी में एक दूसरी प्रतिमा उचित होती है या नारी की न होकर मनुष्य या नर की प्रतिमा है। इस नर-माक मूर्ति का मनोविज्ञान में पुंग ने प्रायः 'पुनिमस' कहा है। पुनिमा पौराणिक मनुष्यों में दैवियों के रूप में व्यक्त होती है। मध्यकासीन धर्मों में उचित दैवियों की मूर्ति इस मत के अनुसार 'पुनिमा' की मूर्ति है। कमा, सीता राधा पुर्णा जैसे अवतरित दैवियों को स्वयं रूपास्य-रूपों में गृहीत होती रही हैं न मनोविज्ञान की भाषा में आकर्मक कथन के रूप में मातृ पुनिमा की प्रक्षेपित

१. एनो. पृ १।

२. वहाँ की नम पृ. २१।

३. एनो. पृ २४-२५।

भाव प्रतिमाए मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त सखी, सहचरी किन्हीं या शक्ति सम्प्रदायों में केवल रूप या रूप को प्रतिमक लोग पति मानते हैं, तथा अपने को राधा या सीताकी सहचरी योपी या सखी समझते हैं, उनमें शब्द 'एनिमा' भाव-प्रतिमा की उपस्थिति मानी जा सकती है। इसी प्रकार क 'आवरण-निर्मातृ शक्ति' (Projection Making factor) भाषा, पुत्र माता का सम्बन्ध भाव से उत्पन्न 'आत्म-भाव मूर्ति' (इमैगो) के रूप में 'एनिमा' का घोटन करती है। पुंग की दृष्टि में यह भी एक अचेतन शक्ति है। यह जब भी स्वप्न दिवा-स्वप्न (Vision) परिकल्पना (phantasy) में प्रकट होती है उसका रूप मारी-मूर्ति में ही होती है। यही नहीं यह मारी प्रकृति असाधारण विशेषताओं से युक्त रहती है। यह निरूप ही चेतन का आविष्कार न होकर अचेतन की स्वयंस्वम् अमिम्बलि होता है। यह मान-रूप की पूरक मूर्ति नहीं है बल्कि उसके विपरीत उसमें सम्भवतः मान-आत्म-भाव-मूर्ति (Mother imago) के वे समस्त अप्रकट गुण आ जाते हैं; एनिमा की सामूहिक भाव-प्रतिमा के द्वारा बड़े ममानक रंग से मान-आत्म-भाव प्रतिमा को शक्तिभाकी प्रेरक बना देते हैं, जो प्रत्येक नर शिशु में जन्म जग से आविर्भूत होती है।^१ इसी क सामान्यतर पिता की पुत्री क रूप 'आवरण-निर्माता शक्ति' है; जो 'एनिमास' क रूप में आविर्भूत होता है। यह 'एनिमास' पिता का कबल वैयक्तिक रूप नहीं उपस्थित करता बल्कि धार्मिक, दास्यिक, आध्यात्मिक और आत्मिक धारणाओं को भी स्वकथित करता है। इस दृष्टि से किसी भी समुदाय में मान्य देवी और देवता वस्तुतः सामूहिक अचेतन मन से उत्पन्न 'एनिमा' और 'एनिमास' जैसी भाव-प्रतिमाए हैं। इस प्रकार ये देवी और देवता अचेतन शक्तियों क प्रतीक हैं। देवताओं का अनेक अज्ञात रूपों से ज्ञात रूपों में (मनुष्य या मूर्ति के रूप में) अवतरित होना वस्तुतः अचेतन शक्ति का चेतन में साकार होना है। साकारत्व की यह क्रिया वस्तुतः 'भाव प्रतिमाओं' के मानस-आविर्भाव क द्वारा सम्पन्न हुआ करती है। भाव-प्रतिमाए इतिहास में विभिन्न रूपों में बार-बार उपस्थित होती हैं। इतिहास क उभय विशेष युग में जब क उपस्थित होती हैं तब यही समझा जाता है कि बड़ी रूप सरल और सजावन है। प्रत्येक प्रकृति जो चेतना में अमिम्बक होती है, यह पधार्थतः मानव-मन क एक लम्बे इतिहास क भाव भाव-प्रतिमा का ऐतिहासिक आविर्भाव है।^२

१ एथो. ए. २७ २१।

२ एथो. २४।

३ वे एी क. सी ६ ७७।

बालोचना

मातृ-प्रतिमाओं की दृष्टि से युग में विभिन्न पौराणिक मूर्तियों या पुराण पुरुषों का विश्लेषण किया है; उनके विश्लेषण की पद्धति इतनी संकीर्ण है कि समस्त पुराण-पुरुष 'पनिमा' 'पनिमस' और 'साया' के सूचक मात्र रह गए हैं। मनो-वैज्ञानिकदृष्टि से उनकी विपत्ति प्रायः समाप्त ही हो गयी है। युग की यह पद्धति बहुत कुछ फ्रायड के मानव सांख्यिक अध्ययन की तरह है। इनकी अपेक्षा 'जीमर' ने पौराणिक तत्त्वों का विश्लेषण अपने ढंग से किया है। वह किसी भी प्रतीक के आत्मगत सन्धीर्न एवं निश्चित तात्पर्य में विश्वास नहीं करता। बल्कि वह अपनी इतिवृत्तात्मक सैद्धी से विभिन्न युगों और परिस्थितियों में बदलते हुए उसके वैशिष्ट्यों का अवयवन करता है। अतः मातृ-प्रतिमात्मक अवतारवाद के समस्त सांस्कृतिक रूपों को केवल मनोवैज्ञानिक पक्ष का सर्वाधिक घोटक माना जा सकता है।

पुरातन-प्रतिमा

(Primordial image)—मनुष्य जितनी प्रतिमाओं की परिकल्पना करता है उनमें से अधिकतम ऐसी होती हैं जिनका सम्मूर्तन अनादि काल से मानव-मन में ही हो चुका है। यही प्रतिमा परम्परागत रूप से मनुष्य के मन में सम्मूर्तित होती रही है। इन प्राचीन प्रकृति वाली प्रतिमाओं को प्रायः पुरातन-प्रतिमा की सहा ही जाती है। वैदिक साहित्य में प्रचलित 'पुरुष' नारायण विष्णु शिव इन्द्र, प्रजापति बृहस्पति सूर्य आदि की प्रतिमाओं को पुरातन प्रतिमाओं में गृहीत किया जा सकता है। इन पुरातन प्रतिमाओं में पुरा-कथाएँ अनुस्यूत रहती हैं। वैदिक-प्रतिमा न तो पुरातन-ज्ञा सकती है न बसन्त सामूहिक महत्त्व ही अधिक है किन्तु पुरातन प्रतिमाएँ सामूहिक अचेतन के ही उपादानों को ग्रहण करने के कारण सर्वदा सामूहिक प्रतिमाएँ हैं। इसी से इनका सम्बन्ध सांस्कृतिक या राष्ट्रीय गाथाओं से भी रहता है। वे पुरा-कथाएँ जो सभी युगों में आकर उपादानों का कार्य करती हैं, उनका आत्मगत समिद्ध सम्बन्ध इन पुरातन-प्रतिमाओं से रहता है। पुराओं में कभी हुई अवतारों की पुरा-कथाएँ उसी श्रेणी की पुरा-कथाएँ हैं जिनमें अवतार-प्रतीक मातृ, धर्म, बाह्य कामन मुसिह आदि पुरातन प्रतिमाओं के रूप में अनुस्यूत हैं। पुरातन प्रतिमा बहुस्यूत राशि (Multiple deposit) है जो एक ही सरल प्रतिमाओं में अत्यल्प बार आकुंचित होकर उद्भूत हुई है। यह अपने प्रारम्भिक रूप में पुरातन काल से एक

एकत्रिंशत् शक्ति है इसकिए यह किया आवश्यक मान-अनुमति क विविध आधारभूत रूपों में ये है। पौराणिक प्रेरक की दृष्टि से विरम्वर प्रभाव उत्पन्न करने वाला महत् आवश्यक अभिप्यक्ति है जो या तो प्रबुद्ध रहता है या कुछ मानस अनुमृतियों क द्वारा सुस्पष्टरिचन डग से निर्मित होता रहा है। अतः पुरातन-प्रतिमा सारीरिक और मौक्तिक रूप से विविध रूपांतर की मानस अभिप्यक्ति है। समीक पक्षों की तरह पुरातन-प्रतिमा भी अभ्योक्ति और समाभ्योक्तिरक अभिप्यक्तियों से सम्बद्ध रही है। जैसे काम और शिव का पौराणिक दृष्टि एक ऐसी अभ्योक्ति की व्यञ्जना करता है जिसमें शिव क द्वारा मत्स्य क्रम अज्ञारी होकर भी दृष्टि क लिए प्राणियों के मौक्तिक धारियों में ही आविर्भूत होता है। इस प्रकार काम की पुरातन प्रतिमा का नवीनीकरण या विष्णु की अज्ञान-प्रतिमा का नवीनीकरण एक बड़ आवश्यक प्रक्रिया है, जो सखीव प्राणियों में आविर्भाव क द्वारा होती रहती है। पुरा क अनुसार भी पुरातन-प्रतिमा विष्य नवीनीकरण का आविर्भाव की क्रिया से सम्बद्ध है। वह सामान्य जीवन और आन्तरिक जीवन का अन्तःनिर्धारक होने क जाने विरम्वर प्रभावहर्म्य प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्राणी जातों से आच्छेक ग्रहण करता है और मानस इस प्राकृतिक क्रिया की पूर्ति प्रतीक प्रतिमा क द्वारा करता ह। जिन प्रकार भेज प्रत्येक जीव क अनोखे और स्वच्छन्द सृष्टि-कार्य क साथी बने रहते हैं उन्ही प्रकार पुरातन-प्रतिमा मन की अपूर्व और उन्मुक्त स्वभावमय शक्ति की अभिप्यक्ति करती है। इसकिए पुरातन-प्रतिमा इस स्ववेगन क्रिया (मानस क्रिया) की पुनरावृत्त्यात्मक अभिप्यक्ति है। यह इन्द्रियों और आन्तरिक मानस क प्रत्यक्षीकरण का परस्पर सम्बद्ध अर्थवत्ता प्रदान करती है, जो प्रारम्भ में बिना किसी क्रम के प्रकट होता है, और बाद में मानस-शक्ति क अमर्य प्रत्यक्षीकरण के बन्धनों को उन्मुक्त कर लेता है।

धिर भी वह मानस-शक्ति की उद्दीपनकारक प्रत्यक्षीकरण से प्रकट कर एक विविध अर्थ-बोध से भी सम्बद्ध करती है पुरातन प्रतिमा की एक बहुत बड़ी विविधता कमकी सम्बन्धप्रदानिता है। पुरातन-प्रतिमाओं में अनेक परस्परविरोधी विचार विविध डग से गुमिच्छन रहते हैं। हमक अतिरिक्त पुरातन-प्रतिमाओं मत्परव का काय करती हैं और प्रायः (आपोचनातः पुनः पदम्) की तरह भादि अज्ञान क ही रूप में नही अचनरित होती बरिक्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक तथा उनमे भी अधिक अज्ञ-मानस क मनो वैज्ञानिक संशुद्धन क लिए उन्हें बार-बार अचनरित होना पड़ता है। भारतीय पुरातन-प्रतिमाओं में मान्य पुद्ग, पुद्ग पुरातन पुद्ग आराध्य, विष्णु,

जनमन्त्रभाषी नारायण या विष्णु की पुरातन प्रतिमार्थ अवतारिण-सक्ति से कुछ सम्बन्धी जाती रही हैं। इनका अवतार एककी और युगक दोबो रूपों में होता है।

युगक-प्रतिमा

मूक पुंस्वर सामाम्बतः उभयकिंगी (heramphroditio) है,^१ वैदिक परम्परा में भी वह स्वयं में से ही बारी की उत्पत्ति करता है और स्वयं उसके साथ संयुक्त हो जाता है। 'विष्णु पुराण' में कहा गया है कि विष्णु जब-जब अवतार धारण करते हैं उस समय लक्ष्मी भी उनके साथ अवतरित होती है जब वे वेद-रूप धारण करते हैं, तो लक्ष्मी देवी होती है और जब मनुष्य रूप धारण करते हैं, तो लक्ष्मी के रूप में अवतरित होती है।^२ लीडन के किंग मीकृष्ण ही राधा और कृष्ण दो रूपों में अवतीर्ण होते हैं^३। मूक स्यक्ति का एक से दो हो जाना (लक्ष्मी-पुरुष सम्पत्ति के रूप में) नवजात चेतना का किन्वा-व्यापार व्यक्त करता है यह दो विद्वानों को जन्म देता है और उनमें चेतना की समावना उपस्थित करता है। अनुभव से ऐसा विदित होता है कि अचेतन किपायें एक निश्चित अवस्था के पूरक हैं। अता कल्पनाचक्र (Vision) में जबका विमल होना वस्तुता चेतन अवस्था के पूरक होने की माचना को व्यञ्जित करता है। यह एकता सर्वप्रथम अवतरित ईश्वर की पास मानक-मूर्ति की और इंगित करती है, जो उन दिनों धार्मिक छवि उत्पन्न करने में सबसे भारी थी।

प्रत्येक ने तीन प्रकार का 'सेक्स' या 'किंग' माना है। लक्ष्मी और पुंस्वर के अतिरिक्त एक तीसरा वह 'सेक्स' है—जिसमें लक्ष्मी और पुंस्वर का बराबर बराबर भाग है। ऐसे रूपों का प्रत्येक जंग भी युगमें है। उदाहरण के किंग चार हाथ, चार पोंब दो मुख तथा दो सिन्ध भी हैं। प्रकृति द्वारा परस्पर

१ लीक-पुराण में 'Herms और Aphrodite' एक में मिश्र कर (Herma-
phrodites) हो जाते हैं। वे भारतीय पुराणधर्मों में प्रचलित 'युगक' और
'युगक रूपों' के समकक्ष हैं।

२ वि. पु १ ८ १५।

३ म सा न पृ ३८६ में (युगकरूप विस्तारपूर्वक प्रवृत्त), वृ प १ ४ १
(Beyond the pleasure principle) में वर्णन किया है। जात्या में अपने
जापन्ध के किंग अपने लक्ष्मी और पुंस्वर दो भागों में विभक्त किया।

विमल हो जाने के कारण हममें एक दूसरे के प्रति आदर और एक साथ जीवित रहने तथा बढ़ने की इच्छा भी बनी रही^१।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन प्रतिमाएँ ईश्वरानुसार की भी अनेकानेक अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं। विशेषकर भाव-प्रतिमा अपनी कतिपय विभिन्नताओं के अनुसार एक प्रकार की अवधारणा प्रतिमा ही जान पड़ती है; यह अपने स्वरूप में जिस अचेतन का प्रतिनिधित्व करती है वह अचेतन मनुष्य ईश्वर के नवीनीकरण के रूप में स्पष्ट होता है। ईश्वर का नवीनीकरण बस्तुतः एक वैसी कोकमिश्र भाव-प्रतिमा का स्वरूप है जो विशुद्ध आगतिक प्रकृति की है। यह भाव-प्रतिमा जिस मनोवृत्ति के रूपान्तर को परिपुष्ट करती है, उसके द्वारा एक नयी एकत्रित शक्ति की उत्पत्ति एक नये जीवन का जनन तथा एक नए उपोत्थातावाद का आविर्भाव होता है।^२ भाव-प्रतिमाओं की यह जीवन-सत्ता मनुष्य पुरा-कथाओं के द्वारा अनुपलब्ध रहती है तथा इनकी व्यक्तियुक्तता ही उनके मन्वन्त प्राण बनाती है।

भाव-प्रतिमा और पुरा-कथा

पुराणों की पुरा-कथा एक विशिष्ट प्रकार के कथात्मक उपाहाओं को प्रदान करती है। ये ही उपाहाय पौराणिक कला की कोटि भी निर्धारित करते हैं। इनमें देवता, अवतार इत्यादि की अविस्मरणीय और परम्परागत कथाएँ संक्षिप्त रहती हैं। पुराण इन कथाओं की गतिशील शक्ति हैं। ये एक हाते हुए भी गाबर हैं तथा इनमें रूपान्तर की पर्याप्त क्षमता है। पुराणों की मौलिक विशेषता यह है कि इनमें पुरा-कथा और कथा का अपूर्ण सम्मिश्रण रहता है। इसी से पौराणिक पुरा कथाओं में विशालमन्ता रहती है। पौराणिक कथों का अत्यन्त प्रवाद फल पड़ता है। इन पुरा-कथाओं में आश्चर्यकथापुसार परिचयन का परिचर्जन सहज सम्भव रहते हैं। पुराण अभिव्यक्ति की एक कथा मात्र नहीं हैं, अपितु जनसमुदाय के विभिन्न सहज-बोध भी उनका प्रमुख लक्ष्य है। जिस प्रकार सतीत में इन्धनों को छुट करके चाकी चक्कि निकलती है वही प्रकार मनुष्यक पुरा-कथा एक संतापजनक एवं विघनीय तात्पर्य छहर कथा करती है।^३ पुराणों का आविष्कार किसी प्रकार की व्याख्या के लिए नहीं हुआ है वे किसी वैज्ञानिक धारणा की ही पुष्टि नहीं करते बल्कि आदिम शक्ति की बार-बार कथारमक तौली में जनन करने की रीति प्रदर्शित करते हैं। अवतारवादी पुराकथा एक आदिम मनोवैज्ञानिक मर्य को व्यञ्जित

१. विपीड के वि ५ ७४।

२. सादको टा ५ २४०।

३. रम्यु टा म. ५ ५१।

करने वाली पौराणिक प्रवृत्ति है। किसी भी प्रकार के युगान्तर का मूळ कारण वर्तमान से असंतोष ही रहा करता है। प्रलय के मतानुसार मनुष्य वर्तमान से असन्तुष्ट होने के कारण एक माफी या अतीत स्वर्ण युग की कल्पना करता है। सम्भवतः सिद्धान्तहीन ऐम्पिरिक विश्वास ही इस चमत्कारपूर्ण कल्पना के घबन में मूळ प्रेरक होते हैं। यही भावना उसमें अज्ञात कल्पना या बरदान की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करती है।^१ जो पुराकथाओं में प्रायः कलाकार अनेक आचारभूत सामाजिक आस्थाओं को सूत्र बद्ध कर देते हैं, जो विभिन्न काल की समयुगीन अवतार-प्रतिमाओं या भाव-प्रतिमाओं में परिकल्पित होती हैं। पौराणिक महाकाव्यों में यह किष्कि सादर्य स्थापन के द्वारा चरितार्थ होती है। यह सादर्य विधान जो अक्सर सामूहिक अवतार के रूप में अवतार-रूक सम्बन्धों द्वारा स्थापित किया जाता है प्रलय के अनुसार ये मानव स्नायु-विकृति की परम्परा में मनो-व्याधि की तरह प्रतीत होते हैं।^२ इस प्रकार पुराकथाओं द्वारा स्नायु-विकृति का ही क्रमशः विकास होता गया, जिसके उपचार के विमित 'डोडम' का आविर्भाव हुआ। डोडम के पश्चात् अनेक उपास्य दैव पुजित होने लगे जो उत्तरोत्तर मानवीकृत होते गए। ये मानव-दैव प्रारम्भ में पशु-दैवों की पुजित परम्परा से विकसित हुए। मत्स्य से लेकर बुद्ध तक यह प्रवृत्ति भारतीय अवतारवाद में भी देखी जा सकती है। यह परम्परा एक पुरातन रिक्त (Archaio Heritage) की तरह होती है जिसका प्रयोग प्रत्येक युग किसी न किसी रूप में करता है। प्रलय के अनुसार सभी प्राणियों में यह बोध्यता होती है कि वे पूर्ववर्ती विकास का अनुसरण करें और उनके प्रति होने वाली उत्तेजना, प्रभाव और छोड़पन के समस्त एक विलेप प्रकार की प्रतिक्रिया करें। यद्यपि यह प्रतिक्रिया सामूहिक प्रवृत्ति की है, फिर भी इसमें व्यक्तिगत रूप से कुछ अन्तर होता है। और पुरातन रिक्त (Archaio Heritage) इन व्यक्तिगत विशेषताओं से युक्त होता है।^३ पुराकथाओं के रूप में प्रकल्पित अवतार-कथाएँ तथा राम या कृष्ण के विविध रूप-चरित मूर्ति इत्यादि अपनी अनेकालम्बता के चकते इन विविधताओं से युक्त माने जा सकते हैं। किन्तु प्रारम्भ में चूँकि सभी व्यक्ति एक ही प्रकार के अनुभव से गुजरते हैं इसी से उनमें प्रतिक्रियात्मक साम्य भी कल्पित होता है। पुराकथाएँ भी अचेतन क्रिया की ही अभिव्यक्ति करती हैं। सामाजिक चर्चा की तुलना में देखने पर इनमें अभिव्यक्ति घटनाएँ गनी हुई मिलती

१. मोस मोने पृ १२५।

२. मोस-मोने पृ. ११६।

३. मोस-मोने पृ १५७।

हैं। सम्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ समाज की भावना और रूप रेखा में कमी-कमी आसूक्त परिवर्तन हो जाते हैं। किन्तु फिर भी पुराकथाएँ सांस्कृतिक बरोहर (Archaic Heritage) के रूप में आम्ब 'भाव-प्रतिमाओं' को अपने कथा-बन्धों के आवरण में मरी हुई सजीवनी से नए प्राण-संचार करती रहती हैं। अतः पुराकथाओं से आबेहित भाव-प्रतिमाएँ आमिजास्य नागरिक या ग्राम्य तथा लोक सम्मत साहित्य एवं कला का उपजीव्य हो जाती हैं। पुरा-कथाओं एवं भाव-प्रतिमाओं दोनों में निरपेक्ष मूलतः रूप धारण करने की क्षमता विशेषकर साहित्य एवं कला से ही उपलब्ध होती है। बार-बार बड़े आने के कारण पुराकथाएँ जीवित होती रहती हैं, इस प्रकार वे पुनः चेतन और अचेतन के बीच अपूर्व ढंग से सम्बन्ध स्थापित कर देती हैं। यों चेतन और अचेतन के परस्पर विपिद्ध होने पर मनुष्य का व्यक्तित्व विकसित हो जाता है और उन दोनों का मिश्रण प्रायः असम्भव सा रहता है। परन्तु भाव-प्रतिमाएँ एक तीसरी अतिरिक्त शक्ति के रूप में चेतन और अचेतन दोनों का योग कराती हैं। भाव-प्रतिमाएँ त्रिज प्रतीकों एवं धारणों में कपीकृत होती हैं, उनमें चेतन और अचेतन का अविनाश भाव सम्बन्ध बना रहता है। पुराकथाएँ भी भाव-प्रतिमाओं को एक नए परिवेश में प्रस्तुत कर नई युग-सापेक्ष अर्थवृत्ता से भर देती हैं। पुरा-कथाओं से आबेहित प्रायः वे 'भाव-प्रतिमाएँ जो एक सर्वोच्च मानव' (Superordinate Man) के अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं, उनमें सताम्वियों तक साहित्य, कला एवं दर्शन का 'प्रेरक' बने रहने की क्षमता विद्यमान रहती है।

पुरुषोत्तम (Superordinate Personality)

मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा रही है कि प्राचीन काल का मानव समुदाय किसी अत्युच्च या सर्वोच्च मानव की प्रभुता में विश्वास रखता था। इसे 'Super Man' या भारतीय साहित्य में 'पुरुषोत्तम' की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। फ्रायड ने 'मोजेस ऐन्ड मानथिज्म' में पुरुषोत्तम की मनोवैज्ञानिक कल्पना पर विचार किया है। उसके मतानुसार अनेक जनजातों से पीड़ित मानव स्वयं एक नया या अतिरिक्तमनोवैज्ञानिक अतिमानव की शक्ति

१ एबोन पृ १८ ।

२ वास्तविकि से केकर 'साकेन ठक', तथा महाभारत का भागवत से केकर 'कर्मप्रिया' नक राम और कृष्ण को बदलती हुई 'भाव-प्रतिमाएँ' इस रूपन की पुष्टि करती है।

में रहता होगा। तत्कालीन समाज, जापति एवं विपत्तियों कातीय सामुदायिक एवं क्षेत्रीय संघर्ष और युद्ध इस 'अति मानव' वा 'पुरुषोत्तम' के सूजन के मूक कारण प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक कठिनाइयों, भोजन की पूर्ति, उपयोगी वस्तुओं का प्रयोग, आबादी की वृद्धि, आबोहवा में परिवर्तन तथा अनेक स्थानों में निरन्तर अमज इत्यादि के कारण 'पुरुषोत्तम' की कल्पना का उद्भव एवं विकास हुआ।^१ स्थायीय वैश्वीयों ने 'पुरुषोत्तम' की कल्पना में निम्न ही कुछ सातीय गुणों का आरोप कर अपनी मौखिकता को प्रमाण किया है; किन्तु अपने मूककल्प में शायद ही ऐसा कोई प्राचीन समुदाय होगा जिसमें पुरुषोत्तम का आधिर्भाव न हुआ हो। वह 'पुरुषोत्तम' अनेक तत्कालीन व्यक्तिगत या सामाजिक गुणों के साथ-साथ अनेक मानवैतर गुणों से भी युक्त समष्टि जाता होगा जिसका अमलमरिक प्रभाव तत्कालीन जनता पर होगा। यही नहीं ऐसे 'पुरुषोत्तम' पुरुषों के आकर्षक व्यक्तित्व और विचार ने उस काल की जनता को भी प्रभावित किया। मनुष्य में निहित 'हीनता-प्रस्थि के कारण कमी-कमी सम्पूर्ण समाज ही एक ऐसे 'अत्युच्च मानव' की आवश्यकता का अनुभव करता है जिसकी वह संस्तुति और समर्पण कर सके तथा जो सारे समाज पर आच्छाद हो और कमी-कमी समस्त समुदाय को अपने ऊपर व्यवहार से धमकता रहे। इस दृष्टि से अवतार-पुरुषों के विकास में इन कारणों का विशेष योग उचित होता है; क्योंकि अवतार प्रयोजनों का सूक्ष्म अभ्यन्तन करने पर उपयुक्त समस्त आवश्यकताएँ उनमें संयोजित होती रही हैं। उनके ही अकालान्तर में जनक रूप-रूप प्रचलित हो गए किन्तु अपने मूक रूप में वे अभावग्रस्त पुरातन समाज की सौकी ही प्रस्तुत करती हैं, जिसकी परिपूर्ति में 'पुरुषोत्तम' पुरुषों का विशिष्ट योग रहा है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रथम यह उल्टा है कि इस उल्टा का मूक-विकास कब से होता है। इस वृद्ध मानव की मूक भावना मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सिद्ध के मन में निर्मित हुई है। आदिम पिता सम्भवतः वह पदस्थ 'वृद्ध मानव' है जिसके वीरोचित कार्य निर्भीकता कुछ भी करने का हैवी अधिकार, उसके वृद्ध एवं ऊँचे कर्मों की भी प्रसंसा तथा समुदाय द्वारा उनकी स्तुति एवं उसके विचारों में दृढ़ निष्ठा एवं विश्वास और समुदाय पर पिता (वृद्ध-मानव) का अग्रिम प्रभाव जैसी विशेषताओं ने सिद्ध के मन में पिता को 'वृद्ध मानव' के रूप में स्वरूपित किया।^२ एकेवरवाद के विषय में भी इस मनोवृत्ति का योग माना जा सकता है जिसके अन्वय

'पुरुषोत्तम-या बृहत् मानव पिता' सर्वशक्तिमान ईश्वर बन गया । क्पास्य-रूप में उसकी पूजा आरम्भ हुई, वह अपने पूजकों का रक्षक तथा विरोधियों का संहारक माना गया । इस प्रकार पिता से सर्वशक्तिमान एकरवर तथा कालांतर में अज्ञात एकरवर क प्रतिनिधित्वरूप 'पुरुषोत्तम' क रूप में अवतार धारणा विकसित हुई । यह आदिमून 'पुरुषोत्तम' ही समस्त धर्मों की भाषा बालिता और आहलंबालिता का मूल केन्द्र रहा है । क्योंकि भाषा और भाषर्ण वे दो ऐसी धारणाएँ हैं जिन्होंने अनेकधाः धार्मिक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कीं और अनेक महापुरुषों को अवतार पुरुष सिद्ध किया ।

माधव-विकासवाद क विवेचन-क्रम में शार्डिन ने भी यह विचारणा स्पष्ट की है कि आदिम युग में एक शक्तिशाली पुरुष होता था आ आदिम समाज का निरकुंन शासक की तरह शासन करता था । समूह मनोविज्ञान क अन्तर्गत यह प्रवृत्ति स्वकिगत स्वकिश्व की चेतना को कोक-धारणाओं की ओर अभिकम्बित करती है । यों प्राचीन मनोविज्ञान को इस दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । एक 'स्वकिगत मनोविज्ञान' क रूप में जिसमें व्यक्ति समूह का सवस्य मात्र था, और दूसरा समूह-मनोविज्ञान' जिसमें पिता, प्रमुक्त और नेता इत्यादि समूह नियंत्रक थे ।' मानव इतिहास के प्रथमारम्भ में इन्हीं रूपों में 'पुरुषोत्तम' या 'अतिमानव' विद्यमान थे । इनके कार्य धर्म और व्यवहार समस्त जाति के लिए आदर्श और अनुकरणीय समझे जाते थे । मित्त ने भविष्य में भी ऐसे 'अति-मानव' के अवतार की भाषा स्पष्ट की है । इस आदिम समूह का पहला नेता महामयावह आदिम पिता ही था । वह समस्त समुदाय की अह्मिम अदा और प्रेम का पात्र था । तथा वह अपने प्रमाबसाली व्यवहार और दृढ-विचार प्रेयण क द्वारा समस्त जनसमुदाय को समोहित किए रहता था । यहाँ तक की उसकी निष्ठुरता, विद्वता और कटुम्यवहार की भी आलोचना करने का साहस उसके आकर्षक स्वकिश्व से समोहित जनता में नहीं था । यही कारण है कि वह अपने युग का सांस्कृतिक और ही नहीं अपितु संस्कृति क विभिन्न मानवीय आर्तों का प्रतिमाव 'पुरुषोत्तम' था, जिसे ताकालीन जनता सर्वशक्तिमान ईश्वर की तरह पूजती थी । प्रायः परम्परागत स्मृतियों के योग से पुरुषोत्तम में ईश्वरत्व की भावना बद्रमूल होती गई कालांतर में जो अनेक व्यापकिक विद्वानों से युक्त हो गई । अजब न 'अम' delusion को इस विद्वानि का कारण माना है ' जिसमें अतीत क साथ को अमसारित करने क कारण उसमें आसिक साथ भी बरिष्पित होता है ।

युग में मनुष्य के स्वयं विवास्वय कल्पना अम इत्यादि में बराबर प्रकट होने वाली मानव-आकृतियों को ज्ञाना, बुद्धिमान बुद्ध मनुष्य, सिद्ध या सिद्ध पायक, माता (आदि माता) या 'पृथ्वी-माता' को 'पुरुषोत्तम' (Super ordinate Personality) के रूप में विमल किया है और इनक सहयोगियों में कुमारी (Maiden) 'पुत्रिमा' और 'पुत्रिमस' को ग्रहण किया है ।^१ ये सभी प्राया अतिउत्तम व्यक्तित्व के रूप में आविर्भूत होते हैं । कभी-कभी पुरुषोत्तम व्यक्तित्व विकृति रूप में भी प्रकट हुआ करते हैं । युग की दृष्टि में 'पुरुषोत्तम' का अत्युच्च मानव एक सम्पूर्ण व्यक्ति है । सम्पूर्ण मानव से उसका तात्पर्य है—व्यथार्थता जैसा वह है यह नहीं कि जैसा यह प्रतीत होता है ।^२ उसकी सम्पूर्णता में अचेतन मन भी निहित है, जिसकी आवरणकलाए उसी प्रकार की हैं जैसी चेतन की हैं । युग अचेतन को व्यक्तित्व की दृष्टि से इस प्रकार नहीं व्यक्त करना चाहता, जिस प्रकार परिकल्पना (fantasy)—प्रतिमाओं के विषय में कहा जाता है कि वे प्रमित काम की 'इच्छा-पूर्ति' के साधन हैं । किन्तु ये प्रतिमाएँ कभी भी चेतन नहीं रही हैं अतएव उन्हें कभी भी प्रमित काम का प्रतिफल नहीं कहा जा सकता । बहिरु अचेतन उसकी दृष्टि में एक वह निर्वैयक्तिक मन है जो सभी मनुष्यों में समान रूप से है यद्यपि वह स्वयं को व्यक्तित्व चेतन के द्वारा व्यक्त करता है । पौराणिक प्रतिमाएँ भी अचेतन निर्मिति की हैं तथा निर्वैयक्तिक अस्तित्व से युक्त हैं । व्यथार्थता अधिकोद्य व्यक्तिक उनको अधिकृत करने की अपेक्षा उन्हीं के द्वारा अधिकृत कर लिये गए हैं ।^३ युग आत्मा से भी 'पुरुषोत्तम' का सम्बन्ध मानता है । उसकी दृष्टि में वह पुरुषोत्तम विशुद्ध आत्मा ही है जिसका अस्तित्व अहं से विशुद्ध प्रथम् है । 'अहं' का विस्तार केवल चेतन मन तक है, जब कि व्यक्तित्व की समस्तता में चेतन और अचेतन दोनों निहित हैं । अतः सम्पूर्ण के अस्त-रूप की तरह 'अहं' आत्मा से सम्बद्ध है । इस सीमा तक वह अतिउच्च या 'पुरुषोत्तम' है । इसके अतिरिक्त अनुभव ज्ञान की दृष्टि से आत्मा की अनुभूति 'विषयीयता' न होकर विषयगत होती है । ऐसा केवल उन अचेतन उपादानों के चकते होता है, जो चेतना में यरोहण से केवल प्रवेदन के द्वारा उपस्थित होते हैं । अपने अचेतन अंगों

१ इन्द्रो सा मा ५ २१९ ।

२ इन्द्रो सा मा ५ २२१ 'Superordinate Personality' is the total Man i. e. Man as he really is, not as he appears to himself.

३ इन्द्रो सा मा ५ २२१-२२४ ।

के कारण 'आत्मा' चेतन मन से इतनी दूर हटा दी जाती है कि उसका केवल आंशिक रूप मात्र ही मात्रव आकृतियों के द्वारा व्यक्त हो पाता है और इतर सब अन्य वस्तुओं या अमूर्त प्रतीकों के द्वारा व्यक्त होत हैं। 'पुरुषोत्तम' तत्त्व से आकृष्ट मानव आकृतियों में पुंग पिता और पुत्र माता और पुत्री, राजा और रानी तथा देवता और देवियों को मानता है तथा पशु प्रतीकों में बाघ सर्प, हस्ति, सिंह, भालू इत्यादि शक्तिशाही जन्तु हैं मकड़ी, केकड़ा, तितली मक्खी जैसे कृश जीव भी आते हैं। इसी प्रकार पौधों में गुडार और कमल—भारतीय प्रतीकों में पीपल बर इत्यादि। भारतीय प्रतीकों में चाट, व्यापक बर्ग जैसे व्यापितिक चित्र इत्यादि भी 'पुरुषोत्तम' तत्त्व का आंशिक परिचय देते हैं। सम्भवतः जिन्हें भारतीय अवतारवाद में भक्त या आवेशावताररूप में व्यक्त किया गया है। इस प्रकार पुंग की दृष्टि में पदेतन अनेक प्रतीक-चित्रों को सजीवता प्रदान करता है। यं पशु से लेकर ईश्वरतक व्याप्त हैं।^१ इस समस्त प्रतीकों में वह 'पुरुषोत्तम' तत्त्व ही आविर्भूत हुआ करता है। पुंग ने उसकी प्रकृति द्विभुवीय (bipolar) माना है। इस प्रकार पुंग ने 'पुरुषोत्तम' या 'Super ordinate personality' के रूप में शिवका विवेचन किया है वे भाव-प्रतिसाओं की ही एक विविध प्रवृत्ति के रूप में कथित होते हैं। भाव-प्रतिसाओं के सहस्र व भी अचेतन के ही उपादान हैं जो विभिन्न प्रतीकात्मक-प्रतिसाओं के रूप में आविर्भूत हुआ करते हैं। भाव-प्रतिसाओं की तरह 'पुरुषोत्तम' की भी अनिश्चित परस्पर विरोधी शेष-दानव मनुष्य-राजस सुर असुर आदि रूपों में भी हो सकती है।

उपर्युक्त कथनों में 'पुरुषोत्तम तत्त्व' के क्रमिक विकास एवं उसके मनोवैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन किया गया है। इन कथनों से यह स्पष्ट है कि अवतार-पुरुषों एवं अवतार पशु-प्रतीकों के निर्माण में भी 'पुरुषोत्तम तत्त्व' का विशेष योग रहा है। अतएव अवतार पुरुष वस्तुतः मनुष्य के अचेतन तत्त्वों से निर्मित नर सामूहिक-मनोवृत्ति की देन है जहाँ उसने अपने 'वैयक्तिक अह' का विलय कर 'आदर्श-अह' के रूप में एक सामूहिक या सामुदायिक स्वचित्त अवस्था 'पुरुषोत्तम' की परिकल्पना की है। इसी से 'पुरुषोत्तम' में यदि समस्त समुदाय के आतीय गुणों व्यवहारों तथा व्यापारों की चरम सीमा कथित जाती है तो वह साथ ही सभी लोगों की मर्यादता, समभावता और मनोरंजकता का भी प्रतिनिधित्व करता है। अब शेषना यह है कि किन मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों एवं मनोप्रथियों ने 'अवतारवादी प्रक्रिया'

को जन्म दिया है तथा उसके मूल प्रयोजनों के विकास में मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सृष्टि की जाती है।

अवतारवाद की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ और उसके

मूल-प्रयोजनों का मनोविश्लेषण

अवतारवाद मौक्तिक सत्य से अधिक मनोवैज्ञानिक सत्य है

अवतारवाद वस्तुतः मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की दृष्टि से सजीव या निर्जीव पदार्थ या प्राणियों में मनु, ईश्वर और दिव्य शक्ति के मत्पुत्रत्व का सिद्धान्त है। मिश्रण ही वह मत्पुत्रत्व मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से सम्बन्ध होने के कारण मनोवैज्ञानिक सत्य है। मनोविज्ञान में केवल मौक्तिक सत्य को वास्तविक सत्य का पदार्थ मानकर नहीं माना जा सकता। पुत्र के अनुसार बहुत से ऐसे मनोवैज्ञानिक सत्य हैं जिनकी न तो स्थापना की जा सकती है, न प्रमाणित किया जा सकता है, न मौक्तिक पद्धति से उनकी वास्तविकता सिद्ध की जा सकती है।^१ यदि यह धारणा जन-विश्वास में प्रचलित हो जाय कि किसी काल में गंगा समुद्र से हिमालय की ओर बही थी, तो मौक्तिक रूप में असम्भव होते हुए भी, जहाँ तक वास्तव का प्रश्न है यह वह मनोवैज्ञानिक सत्य है जिसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। धार्मिक उक्तिर्वा भी इसी प्रकार की 'प्रभु सम्मिलित उक्तिर्वा' हैं जिनका किसी मौक्तिक सत्य से सम्बन्ध न रहते हुए भी वे मनोवैज्ञानिक सत्य का च्योतन करती हैं। विज्ञान उनका बहिष्कार कर सकता है किन्तु मनोविज्ञान नहीं। अवतारवाद भी मौक्तिक दृष्टि से प्रमाणित हो या नहीं किन्तु मिश्रण ही वह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। जिसकी कदापि मनोविज्ञान में उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि अवतारवाद को 'भ्रम' या 'मतिभ्रम' माना जाय तो भी वह मनोविज्ञान में उपेक्षणीय नहीं है। जो भारतीय अवतारवाद को स्वयं 'Illusion' या माया से आबद्धित 'नट रूप' अवतरण की शोचना करता है, जो मौक्तिक से अधिक मनोवैज्ञानिक सत्य का परिचायक है। मौक्तिक वस्तुओं की भी यह स्थिति है कि जिन वस्तुओं को हम इन्द्रियों के माध्यम से देखते या भावना करते हैं, वह वस्तुतः उनका वास्तविक रूप नहीं अपितु 'नट रूप' मनोसंचित रूप ही है। अतएव मौक्तिक जगत में भी वस्तु का एक नाम लोकपरक है और दूसरा सैद्धांतिक या सांख्यिक। लोक प्रचलित नाम मनो संचित है और मौक्तिक सांख्यिक नाम विच्छिन्न रूप का वाचक। पहला लोक प्राम्य अवतारवादी नाम की तरह है तथा दूसरा तार्किक या दार्शनिक नाम

की तरह । इस वैषम्य का मूल कारण यह है कि दोनों के वस्तुगत प्रत्यक्षबोध में मौलिक अन्तर है । जब हमें किसी वस्तु का प्रत्यक्ष-बोध होता है हमारी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियाँ उस ज्ञान का माध्यम होती हैं । इन्द्रियों के जो विषय हैं, वे केवल उन्हीं का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं । प्राण से केवल गन्ध का ही ज्ञान होता है, किन्तु प्रत्यक्षीकृत वस्तु केवल गन्ध नहीं है वह हरय भी हो सकती है और स्पर्श भी । अतः वह वस्तु इन्द्रियों के विषय ज्ञान का आकम्बन मात्र है; क्योंकि वे वस्तु के गोचरत्व मात्र को ही ग्रहण कर पाती हैं । जब कि उस गोचर वस्तु का वस्तुत्व अपने आप में स्वतंत्र ज्ञाताज्ञात है । बुद्धि-विश्लेषण से भी हम वस्तु के वस्तुत्व को जानने की चेष्टा करते हैं, फिर भी वह हमारे बुद्धि ज्ञान से स्वतंत्र है । यदि मिट्टी के एक टुकड़े का उदाहरण लें, तो मिट्टी का टुकड़ा अपनी समस्त ज्यति की एक इकाई है, जिसका हमारी इन्द्रियों ने प्रत्यक्षीकरण किया है । किन्तु क्या मिट्टी वस्तुता बही है ? नहीं उस मिट्टी का एक आगतिक रूप भी है । समस्त सृष्टि में वह सहस्रों रूपों—रूपक या सूक्ष्म, बौगिक या मिश्रण तथा स्वच्छ और अम्यक्त रूपों में उसकी सत्ता हमारे ज्ञान-अनुमान से परे परमस्वतंत्र है । वस्तु के विषय में इन्द्रियों को जो ज्ञान होता है वह वस्तु के नाम पर या वस्तु को आकम्बन मात्र कर उनका अपने ही पूर्व-संबन्ध विषय का ज्ञान है । हमी से यदि वस्तु सत्य है तो भी इन्द्रियों के माध्यम से प्राण या प्रत्यक्षीकृत वस्तु धरवाभास या सत्यत्व है । फिर भी सत्यत्व वस्तु से वास्तविक वस्तु के भ्रामक या यथार्थ होने का कम से कम अनुमान किया जा सकता है । हमारा सारा वस्तुगत ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से प्राणक्षीकृत होने के कारण सत्यत्व है । इस दृष्टि से हमारी सारी निष्पत्तियाँ, परिकल्पनाएँ या साम्यताएँ माथी हुई हैं ।

क्योंकि जब भी हम वस्तु के वस्तुत्व का निर्धारण करते हैं वह उसका 'अर्थ' का निर्धारण है, या पृथक्करण के आधार पर होता है । वस्तु यह नहीं है यह नहीं है, तब कहीं जाकर 'वस्तु यह है' का निश्चय होता है । वस्तुत्व के शिरीकरण या उसके अर्थ को स्पष्ट करने में प्राणतुल्यज्ञान की भी आवश्यकता होती है । जिस वस्तु का अविज्ञान (cognition) सर्वप्रथम इन्द्रियों या बुद्धि को होता है उसी का प्रत्यभिज्ञान (recognition) करने की श्रमता इन्द्रियों में होती है । अतः पूर्वमाहित या आस्थादित वस्तु के माध्यम से इन्द्रियों को जिस विषय का ज्ञान होता है, वस्तु-प्रापचय के कारण वह वस्तु-सापेक्ष ज्ञान है । वस्तुतः हमें वस्तु का 'अर्थ' रूप में सापेक्ष ही ज्ञान होता है ।

वस्तु के सापेक्ष ज्ञान के विभिन्न पाश्चात्य दर्शन में प्रचलित 'चार आयामों' के सिद्धान्त (Four dimensions Theory) को यदि लें, तो दिक् की दृष्टि से वस्तु में ऊम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई है साथ ही वस्तु का आक से सापेक्ष सम्बन्ध है। अतएव इन्द्रियों को वस्तु का प्रत्यक्ष-बोध दिक्-आक सापेक्ष होता है। उपरोक्त विवेचन से ये निष्कर्ष निकलते हैं कि वस्तु और प्रत्यक्ष-ज्ञान दोनों स्वतंत्र और पृथक् हैं किन्तु वस्तु पर प्रत्यक्ष ज्ञान आधारीत है और प्रत्यक्ष-ज्ञान पर वस्तु। इस प्रकार दोनों में पृथक्-पृथक् सापेक्ष सम्बन्ध है। तूमरा यह कि प्रत्यक्ष वस्तु की सजा यदि व्यष्टि प्रधान है तो उसका व्यष्टिगत अस्तित्व सजातीय समष्टि-वस्तु से सापेक्ष होने के कारण है। अन्यथा व्यष्टि वस्तु और समष्टि वस्तु में दिक्-आक सापेक्षता के व्यतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं। यह प्रत्यक्ष वस्तु ही परम्परागत शब्द रूप में अवतरित वस्तु है, जिसका सापेक्ष सम्बन्ध सर्वत्र आगतिक या समष्टि वस्तु से है। प्रत्यक्ष के आधार पर प्रत्यक्षेतर वस्तु की कल्पना होती है। अतः प्रत्यक्ष अवतरित रूप है और प्रत्यक्षेतर उसका अज्ञात या अनुमेय रूप। अिर्से अवतरित और रहस्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अवतरित वस्तु

प्रत्यक्ष

रूप

प्राप्त

चिन्त्य

वेब

स्वाध

अभ्य

स्पर्श

दृश्य

सेन्द्रिय

(अणु + बिन्दु)

रहस्य वस्तु

अप्रत्यक्ष

सूक्ष्म

अप्राप्त

अचिन्त्य

अज्ञेय

अस्वाध

अभ्रम्य

अस्पर्श

अदृश्य

अतीन्द्रिय

(अणु + बिन्दु)

किन्तु वस्तु के अवतारत्व और रहस्यत्व में वस्तु न तो अवतारत्व में विशुद्ध रूप में अणु है न रहस्य-रूप में विशुद्ध बिन्दु अपितु अवतारत्व और रहस्यत्व दोनों में वह अणु और बिन्दु संयुक्त रूप में है जो उसका सम्बन्ध

१. दिक्-आक में से इनके विश्व-आत्मन की मात्रा परिवर्तित होती रहती है।

रूप है। क्यों कि विद्युत् अणुत्व और विद्युत् विद्युत् न तो अवतारत्व में पूर्णतः हो सकते हैं न रहस्य में। यद्यपि अवतारत्व में सगुण का आधिपत्य है और रहस्य में निर्गुण का किन्तु दोनों में वस्तु के अणु और विद्युत् संयुक्त रूप में ही है।

अवतरित वस्तु और रहस्य वस्तु कहने पर ऐसा ज्ञान पड़ता है कि माना अवतारत्व और रहस्यत्व वस्तु क गुण या विशेषताएं हों। किन्तु यहाँ विचारणीय यह है कि वस्तु के अवतरण से तात्पर्य है—वस्तु क प्रति सेन्द्रिय अवतरण बोध से तथा वस्तु क रहस्य से तात्पर्य है वस्तु क प्रति सेन्द्रिय रहस्य-विज्ञासा से। ऐसा ज्ञाता है कि अवतारत्व-बोध और रहस्य-विज्ञासा ये दोनों मनुष्य की मानसिक और बौद्धिक चेतना क कार्य हैं। इनका मूक सम्बन्ध सेन्द्रिय-बोध और विज्ञासा से है। इन दोनों का सम्बन्ध विद्युत् तार्किक या बौद्धिक ज्ञान मार्ग से नहीं है। ज्ञान-मार्ग में विरक्षेण और तर्क द्वारा वस्तु के पर्याय वस्तुत्व को ज्ञात किया जाता है। जब कि अवतारत्व में अवतरित वस्तु क माध्यम से सेन्द्रिय मातृ-बोध होता है। अवतारत्व में अवतरित वस्तु का वस्तुत्व ज्ञान गौण है और इन्द्रियों क द्वारा मद्दत भावोद्दीपन का मावन मुख्य है। अवतार-वस्तु इन्द्रियों क मावन का आह्वान और उद्दीपन दोनों है। इसीसे यह सत्यमास 'मदत्त' या 'मद इव' है। अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अवतारत्व भीतिक सत्य से अधिक मनोबैज्ञानिक सत्य है जो चिरकाक तक अननुभाव्य की सहज आत्मा का कर्त्तृ रहा है।

मला और बुरा

अवतार प्रयोग्य की दृष्टि से मला और बुरा एक निश्चित मानस मूल्य हैं जिनको निश्चित मनोबैज्ञानिक परिष्कार की आवश्यकता है। इनमें बुरा भी मनुष्य की बुद्धता का परिणाम न होकर अचेतन की देन है। प्रायः मला और बुरा अचेतन क व उपादान हैं जो पुरातन काल से ही 'देव' या 'दानव' तथा 'देव' या 'असुर' की 'भाव प्रतिमाओं' में धार्मिक होते रहें हैं। वस्तुता मनुष्य के अचेतन में मला और बुरा नैतिक और अनैतिक, पुण्य और पाप का अनवरत अन्तर्गन्ध चलाता रहता है। इस अन्तर्गन्ध में कमी मला या देव पद प्रबल होता है और कमी 'बुरा' या 'दानव पद'। जगत् देवामुत्सवम मनोबैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य क अचेतनतामक इन्द्र क परिचायक 'मने और मुने' का आत्मगत पुत्र ही है आदिम काल से जिनका तादात्म्य सामूहिक या जातीय पुत्रों से किया जाता रहा है। अतएव ये मनुष्य क मन

वस्तु के सापेक्ष ज्ञान के निमित्त पारमार्थिक दर्शन में प्रचलित 'चार आयामों' के सिद्धान्त (Four dimensions Theory) को यदि लें तो दिक् की दृष्टि से वस्तु में ऊंचाई, चौड़ाई और रूँचाई है साथ ही वस्तु का काळ से सापेक्ष सम्बन्ध है। अतएव इन्द्रियों को वस्तु का प्रत्यक्ष-बाह्य दिक्-काळ सापेक्ष होता है।' उपर्युक्त विवेचन से ये निष्कर्ष निकलते हैं कि वस्तु और प्रत्यक्ष-ज्ञान दोनों स्वतंत्र और पूरक हैं किन्तु वस्तु पर प्रत्यक्ष-ज्ञान आधारीत है और प्रत्यक्ष-ज्ञान पर वस्तु। इस प्रकार दोनों में पूरक-पूरक सापेक्ष सम्बन्ध है। दूसरा यह कि प्रत्यक्ष वस्तु की सत्ता यदि व्यष्टि प्रधान है तो उसका स्वशिवगत अस्तित्व सामाजिक समष्टि-वस्तु से सापेक्ष होने के कारण है। अन्यथा व्यष्टि वस्तु और समष्टि वस्तु में दिक्-काळ सापेक्षता के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं। यह प्रत्यक्ष वस्तु ही परम्परगत शब्द रूपों में अवतरित वस्तु है जिसका सापेक्ष सम्बन्ध सर्वत्र आतातक या समष्टि वस्तु से है। प्रत्यक्ष के आधार पर प्रायचेतन वस्तु की कल्पना होती है। अतः प्रत्यक्ष अवतरित रूप है और प्रायचेतन उसका अज्ञात या अनुमेय रूप। जिन्हें अवतरित और रहस्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अवतरित वस्तु

प्रत्यक्ष

स्पृष्ट

प्राप्त

चिन्तित

श्रेय

स्वाध

अन्व

स्पर्श

दृश्य

सेन्द्रिय

(अणु + विष्णु)

रहस्य वस्तु

अप्रत्यक्ष

सूक्ष्म

अप्राप्त

अचिन्तित

अश्रेय

अस्वाध

अअन्व

अस्पर्श

अदृश्य

अतीन्द्रिय

(अणु + विष्णु)

किन्तु वस्तु के अवतारत्व और रहस्यत्व में वस्तु न तो अवतारत्व में विद्यमान रूप में अणु है न रहस्य-रूप में विद्यमान विष्णु अपितु अवतारत्व और रहस्यत्व दोनों में वह अणु और विष्णु संयुक्त रूप में है जो उसका मध्यस्थ

१ दिक्-काळ भेद से उनके दिक्-मात्र की मात्रा परिवर्तित होती रहती है।

रूप है। नहीं कि विद्युत् अणुत्व और विद्युत् विभुत्व न तो अवतारत्व में घुली हो सकते हैं, न रहस्य में। यद्यपि अवतारत्व में सगुण का आधिपत्य है और रहस्य में निर्गुण का किन्तु दोनों में वस्तु के अणु और विभु समुच्चय में ही हैं।

अवतरित वस्तु और रहस्य वस्तु कच्चे पर ऐसा जान पड़ता है कि मानो अवतारत्व और रहस्यत्व वस्तु के गुण या विशेषताएँ हों। किन्तु यहाँ विचारणीय यह है कि वस्तु के अवतरण से तात्पर्य है—वस्तु के प्रति सेमिग्रिय अवतारत्व बोध से तथा वस्तु के रहस्य से तात्पर्य है वस्तु के प्रति सेमिग्रिय रहस्य जिज्ञासा से। ऐसा खगता है कि अवतारत्व-बोध और रहस्य जिज्ञासा य दोनों मनुष्य की मानसिक और बौद्धिक चेतना के कार्य हैं। इनका मूल सम्बन्ध सेमिग्रिय-बोध और जिज्ञासा से है। इन दोनों का सम्बन्ध विद्युत् तार्किक या बौद्धिक ज्ञान मार्ग से नहीं है। ज्ञान-मार्ग में विरकेपण और तर्क द्वारा वस्तु के पदार्थ वस्तुत्व को ज्ञात किया जाता है। जब कि अवतारत्व में अवतरित वस्तु के माध्यम से सेमिग्रिय भाव-बोध होता है, अवतारवाद में अवतरित वस्तु का वस्तुत्व ज्ञान गीण है और इन्द्रियों के द्वारा प्रदत्त माबोधीपण का भावन मुख्य है। अवतार-वस्तु इन्द्रियों के भावन का अन्वयन और उद्दीपन दोनों है। इसीसे यह सत्यभास 'मदक्य' या 'मद इव' है। अतएव इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अवतारवाद मौक्तिक सत्य से अधिक मनोवैज्ञानिक सत्य है जो चिरकाळ तक जनमुद्गाय की सदञ्ज आत्मा का केंद्र रहा है।

मला और बुरा

अवतार प्रयोजन की दृष्टि से मला और बुरा एक मिश्रित भावस मूह्य है, जिसको द्विधित मनोवैज्ञानिक परिष्कार की आवश्यकता है। इनमें बुरा यी मनुष्य की बुद्धता का परिणाम न होकर अचेतन की देन है। प्रायः मला और बुरा अचेतन के ही उपादान हैं, जो पुरातन काल में ही 'देव' या 'दानव' तथा 'देव' या 'असुर' की 'भाव-प्रतिमाओं' में आविर्भूत होते रहें हैं। मनुष्य मनुष्य के अचेतन में मला और बुरा, वैतिक और अवैतिक, पुण्य और पाप का जनकसद अन्तर्गुह्य चकता रहता है। इस अन्तर्गुह्य में कभी मला या देव चक प्रकट होता है और कभी 'बुरा' या 'दानव पक्ष'। अतः ईशामुर मंग्राम मनोवैज्ञानिक दृष्टि में मनुष्य के अचेतनात्मक इन्द्र का परिचायक 'अग्ने' और बुरे का आत्मागत बुद्ध ही है आदिम काल में जिसका तादात्म्य सामूहिक या जातीय बुद्धों से किया जाता रहा है। प्रत्यक्ष न मनुष्य के मन

में स्थित दो प्रकार की वृत्तियों मानी हैं—बड़ वृत्ति और कम वृत्ति^१। यह वृत्ति रावण या कंस का प्रतिनिधित्व करती है तो कम वृत्ति को राम और कृष्ण का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। श्यामल के अनुपार बड़ वृत्ति हनुमत् की ओर उन्मुख करती है और कम वृत्ति श्रीकृष्ण की ओर। भक्त और हुरा का दूसरा रूप हमें सुख और दुःख में भी मिलता है। इन दोनों का अचेतन वृत्तियों से सख्त सम्बन्ध है। दुःख के अनुपार में सुख आनन्द वापक होता है। सुख सिद्धान्त में जो प्रथम प्रवृत्ति उचित होती है—बड़ है धरना की पुनरावृत्ति। चेतन और अचेतन बड़ का प्रतिबन्धन ही सुख सिद्धान्त को अग्रगामी बनाता है। बड़ मकिया इमित पदार्थों के विासरण से ज्ञान रूप दुःखको दूर करने के निमित्त होती है।^२ इस प्रकार भक्त और हुरा, शिव और अशिव, नीति और अनैतिक जैसे अन्तर्द्वन्द्वों के प्रतिद्वन्द्वों के प्रतिमात्मक (द्वैवाधुर) संग्राम चक्रे हैं। जगत् में दोनों पक्षों की अन्तर-अनुपूरक विजय किसी न किसी देव या दानव नेता के असाधारण शक्ति-प्रदर्शन द्वारा होती है। वे ही अवतार और प्रतिअवतार वापक दोनों अतिरिक्त नैतिक चेतना के ही दो विरोधी रूपों में अवतरित होते हैं। मनुष्य की नैतिक चेतना अनैति पर नीति की पाप पर पुण्य की लया हुरे पर भक्ते की विजय उपस्थित कर अवतरित देव (अतिरिक्त नैतिक शक्ति) के रूप में प्रायः अपनी नैतिकता या आतीथ सामाजिक मान्यता की विजय प्रदर्शित करती है। प्राचीन वैदिक साहित्य एवं विभिन्न महाकाव्यों से आती हुरी यह परम्परा अनेक पुराणों, महाकाव्यों एवं अन्तर्द्वन्द्वों का प्रभाव उपजीव्य रही है। इस प्रकार भक्ते और हुरे का प्रतीकात्मक रूप द्वैवाधुर संग्राम मनुष्य के अचेतन में सर्वदा सक्रिय बड़ अन्तर्द्वन्द्व है, जिसका समाधान सर्वैव अतिरिक्त या प्रबल अचेतन शक्ति से ही निमित्त शक्ति के योग द्वारा अवतार-प्रयोजन का एक प्रमुख उपाय है। अवतारवादी उपायवाचों की प्रमुख विशेषता यह है कि नैतिक और विद्वत्-उपयोगिता के किये कला की तरह अवतारवाद का एक रूप जो असुरों के बध के किये होता है, वह एक ओर तो अवतारवाद की नैतिकता की परिपुष्टि करता है और दूसरी ओर केवल जीका के किये जो अवतार होता है, उसे विद्वत्-कलात्मक (कला के किये कला का) अवतारवाद भी कहा जा सकता है। क्योंकि एक ही प्रयोजन केवल विद्वत् नैतिक उत्थान है तो दूसरे का प्रयोजन केवल विद्वत् जीका है। इस प्रकार अवतारवाद के भी उपयोगितावादी और कलात्मक प्रयोजन प्रतीत होते हैं। उपयोगितावादी प्रयोजन में ही अन्तरा

मार्जन वा अपराध विधान भी युहित हो सकता है। क्योंकि भवतारवादी चारणा का बह्य एक ऐसी स्थिति में होता है जत्र समाज में पाप (जो एक प्रकार का भारतीय बर्जन taboo रहा है) की वृद्धि हा जाती है। सामाजिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यह एक ऐसी वैज्ञानिक परिस्थिति है जिसमें मान्य वा प्रचलित प्रथाओं को तोड़ने बाड़े वा सामाजिक मर्वाहा का अनिष्क्रमण करनेबाड़े 'असुर' अतिष्क्रमणीक माने जाते हैं। इस अतिष्क्रमण चीलता का मास वा क्षमन दिव्य वा अवतरित शक्तियों के योग से करने की मासना अपराध-क्षमन के प्रति एक 'मनोवैज्ञानिक सतोप' की मनोवृत्ति का निर्माण करती है। अवतार-भासना र्प्यक्तगत और सामाजिक दोनों स्तर पर इस पाप वृत्ति का क्षमन करके 'मनोवैज्ञानिक सतोप' की अवस्था प्रदान करती है।^१ 'पाप विचारण' के किप् अवतरण वृत्ति का मुख्य कारण मनुष्य की मान्यवादिता नहीं अपितु उसका सहजात मय है। अन्य भावों वा जहमावों की तरह 'अपराध' भी मानसिक तनाव की एक रसा है। जो स्वभावगत तनाव निवृत्ति की अवस्था उत्पन्न करता है। किन्तु प्रारम्भ में यह क्षोष वा मय की तरह स्वक्त प्रतीत नहीं होता। अपराध अनुचित कार्यों को जग्म देता है जो अनेक र्प्यक्तियों को घारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से कष्ट पर्णुचाते हैं।^२ अपराध वह वृत्ति है, जो अहं (ego) और नैतिक अहं के बीच तनाव की अवस्था उत्पन्न करती है। यह तनाव पुत्र और पिता के बीच होने बाड़े तनाव से मिलता छलता है। हम दोनों अवस्थानों में बृंह ही ज्ञान का एकमात्र महारा रह जाता है।^३ अवतरित शक्ति और असुर (अपराधी) शक्ति के बीच का तनाव भी वृद्ध हमी प्रकार का है जिसका अन्ततः बृंह में ही पयबक्षण होता है।

नैतिक-अहं (Super ego) का प्रक्षेपण तथा पूर्ण, अज्ञ और भाषेश

मनुष्य वा सभी प्राणी कवक बीवित ही यहीं रहना चाहते अपितु उन सभी में अजिक सुम्बर बीवम र्प्यतीत करने की कामना रहती है। इती से विश्व क आदिम समाज में पुतातक पुष्ट्यों ने ही किमी न किमी प्रकार की सुम्बररया एवं सुस्तमय बीवम की ओर र्प्यान देना शुर बिबा था, जिसक कवस्वरूप उनक 'नैतिक अहं (Super ego) वा 'अहं भावर्दा (ego

१ मैन मोरल सो पृ २८ ।

२ मैन मोरल सो पृ. २७७ ।

३ मैन मोरल सो पृ २७९ ।

Ideal) का प्रादुर्भाव हुआ था। निम्न ही समाज के सभी व्यक्तियों का 'नैतिक बह' विकसित नहीं हो सकता। प्रायः असाधारण व्यक्तियों को खोज कर, जिसका 'नैतिक बह' उत्कृष्ट शक्तिशाली और स्वतंत्र है, प्रायः सभी व्यक्ति अपने आतावरण को नैतिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हैं। एक प्रकार से परम्परागत, आनुवंशिक या सामाजिक और सामूहिक नैतिक बह का ये स्मृत्याधिक मात्रा में अनुसरण करते हैं। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि 'ego-ideal' की परिपूर्ति जब अपने आप में नहीं कर पाते तो वे अपने अनुमोदित 'आदर्श बह' को या तो दृष्टियों में पुनः स्थापित या अनुपस्थित कर देते हैं या उसका स्थानान्तरित रूप को स्वीकृत करना चाहते हैं। यों बाह्य नैतिक निर्बंधन पुरातन काल से चकता आ रहा है; उसकी अपेक्षा 'बह आदर्श' द्वारा निर्बंधित आंतरिक नैतिक नियंत्रण, अधिक परवर्ती है। जनः आंतरिक नैतिक निर्बंधन से सम्बन्ध 'बह-आदर्श' स्थानान्तरित या किसी अन्य व्यक्ति पर आरोपित करने में बहुत कम शक्ति व्यवहारी पड़ती है। इसीसे प्राचीन काल से ही नैतिक बह 'बह-आदर्श' के प्रक्षेपण की भावना प्रचलित रही है।

प्रक्षेपण के निमित्त ही व्यक्ति बाह्य विश्व में अपने 'आदर्श-बह' का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कोकटा रहा है। शर्त इतनी ही है कि वे बाह्य-आवृत्तियों (व्यक्ति) उसके 'बह-आदर्श' के प्रतिरूप (Pattern) से अधिकाधिक साम्य रखती हों जिसका निर्माण पहले ही अन्तर प्रतिक्षेपण (Introjection) के द्वारा निम्नप किंचा या चुका हो। किसी आदर्श का स्वयंपाकन या उसकी साधना उसके आदेश से आसान है जैसे ही किसी के गुणों की प्रशंसा करना, स्वयं उसके गुणों को चरितार्थ करने की अपेक्षा सहज है। हम उन गुणों की चरम परिणति अपने महापुण्यों एवं कीर नेताओं में देखना चाहते हैं जो हमारे आदर्शों का उदाहरण प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हों। इस भावना के बल पर व्यक्ति अपने आदर्शों के स्वयं पाकन से मुक्ति जैसा अनुभव करते हैं।

इसी से प्रत्येक युग में अपने 'बह-आदर्श' के प्रक्षेपण की भावना परिचलित होती है। अवतार-पुरुषों में भी इन आदर्शों का बहन करनेवाले अवतारों पर 'बह-आदर्श' के प्रक्षेपण होते रहे हैं। इस दृष्टि से अवतारों को अपने युग के बह आदर्शों एवं नैतिक बह का प्रक्षेपण कहा जा सकता है।

प्रवेपण की एक अद्भुत विशेषता यह है कि कभी-कभी 'अह-आदर्श' के प्रवेपणार्थ विभिन्न तद्बन्ध आकृतियों का ज्वन किया जाता है। उनमें सम्भावना से अधिक वैशेष्य या वैषम्य कीज पड़ते हैं, जिसके फलस्वरूप एक मनो वैज्ञानिक मंत्र यह दीख पड़ता है कि प्रवेपण-प्रक्रिया भी विभिन्न प्रकार की आकृतियों पर होने लगती है। सम्भवतः यदि अनेक गुणों के प्रवेपण एक ही व्यक्ति पर सम्भव नहीं हो सके तो अनेक आकृतियों पर उनका प्रवेपण एक-दूसरे भी हुआ करते हैं।

अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवतारवाद में अहाँ पूर्ण, अंध, आबस रूप कथित होते हैं, उनका स्वरूप निर्धारण में विभिन्न गुणों विशेषताओं तथा 'अह आदर्श' (ego-ideal) के मात्रात्मक प्रवेपण का मुख्य योगविधित होता है। जो अवतार अपने समपुरणीय अह-आदर्श या नैतिक अहं (Super-ego) का पूण प्रतिनिधित्व करते हैं उन्हें पूर्णावतार तथा जो आर्थिक या जगिक प्रतिनिधित्व करते हैं वे अंधा और आबसरूप कह जा सकते हैं। इसावतारों के अनन्तर ध्याम शपम कविल बन्धुस्तरि मनु, इत्यादि सामूहिक 'अह आदर्श' या 'नैतिक-अह' के भिन्न भिन्न स्वरूपों अथवा विभिन्नताओं के प्रवेपित रूप हैं। क्योंकि समस्त विश्व के धर्मों में प्रायः नैतिक अह या आदर्शों के विभिन्न स्वरूपों के पूरकभाषाय पुरोहित वीर नेता केन्द्रक कटाकार वैज्ञानिक विप्रम अभिनेता हाबटर इत्यादि हो सकते हैं।

कभी-कभी प्रवेपण क्रिया 'नैतिक-अह' या 'अह-आदर्श' के कुछ स्तरों या कुछ रूपों तक ही सीमित रहती है। 'नैतिक अह' की बाह्य आकृतियों कभी-कभी उनमें भी उच्चतर आदर्शों को सूचित करती हैं जो परम्परागत तग से 'नैतिक-अह' या 'अह आदर्श' के रूप में मान्य रही हैं। बीबीम अवतारों में परिगमित शपम इत्यादि अवतारों में तत्कालीन नैतिक आदर्श का चरम रूप दृष्टिगत होता है और कभी-कभी मान्य नैतिक आदर्श के विपरीत तथा अपरिपुष्ट आदर्श-अह' परिलक्षित होते हैं। इसावतारों में मान्य बुद्धावतार में विरुद्ध आदर्श-अह' तथा 'परशुरामावतार में अपरिपुष्ट 'आदर्श अह' की परिणति मिलती है।

सांग्रहायिक अवतारवाद में प्रकृतक गुण आचार्य, भक्त इत्यादि के अवतारत्व में सांग्रहायिक 'आदर्श-अह' का प्रवेपण उनका अवतार का कारण

प्रतीत होता है। कुछ स्थितियों में प्रक्षेपण प्रक्रिया के द्वारा 'नैतिक-बह' की व्यावृत्तियों या स्वरूपों में भी परिवर्तन हुआ करता है; प्रायः पुराने स्वरूपों का स्थान अपेक्षाकृत नए और श्रेष्ठतर स्वरूप के लेते हैं। इस प्रवृत्ति का भी अवतारवादी परम्परा से बहुत कुछ सम्बन्ध है; क्योंकि विष्णु या अन्य अवतारी तारकों के अवतार एक ही रूप में नहीं होते अपितु निरूप्य या उत्कृष्ट विभिन्न स्वरूपों में हुआ करते हैं। नैतिक बह के मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इसी से 'नैतिक-बह' का पूर्ण प्रक्षेपण ही व्यक्ति या समस्त समाज पर सम्मोहनात्मक प्रभाव डालने में सक्षम हो सकता है, अन्यथा आर्थिक या चार्मिक प्रक्षेपण गुणार्थक साहाय्य मात्र ही अधिक सूचित करते हैं।

आपस के अनुसार प्रक्षेपण की एक क्रिया दूसरे रूप में भी मिलती है।' आपस में सम्मोहन और प्यार की दृष्टा में स्थित व्यक्ति की अवस्था पर विचार करते हुए बताया है कि किसी व्यक्ति के प्रति प्यार (प्रेम या अदासी) वस्तुतः प्रिय व्यक्ति पर 'नैतिक-बह' का प्रक्षेपण करते हैं; जो दृष्टा की दृष्टि में बहुत कुछ पूरा हीन पड़ता है। विशेषकर अवतारवादी उपास्यवाद में अपने प्रिय व्यक्ति वा उपास्य के प्रति 'नैतिक-बह' का प्रक्षेपण मन्त्रों में देखा जा सकता है।

अवतारवादी प्रक्षेपण की यह विशेषता है कि अवतारवादी उपास्य देव अवतार वा इष्टदेव में विश्वास रखने वाले व्यक्ति के केवल 'नैतिक-बह' के ही प्रक्षेपित रूप नहीं हैं अपितु उसकी भावना में उपस्थित 'ईश्वरत्व' से भी प्रक्षेपित हैं। अतएव अवतारवाद वा उपास्यवाद में 'आदर्श-बह' के साथ 'ईश्वरत्व' का प्रक्षेपण भी प्रतिभासित होता है। इसी से उपास्य के दूर अज्ञात वा रहस्यात्मक होने पर भी उसके आदर्श प्रेम, वा ईश्वरत्व से प्रक्षेपित उपास्यदेव मन्त्र के रूप में प्रेम और तोष की तीव्र अनुभूति उत्पन्न करता है। मन्त्र सम्मोहित अवस्था में अपने प्रिय उपास्य के प्रति जो समर्पण करता है उससे मन्त्र प्रेमी के मन में आनन्द और समतोप दोनों की अनुभूति होती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने व्यक्तित्व में सक्रोच की अपेक्षा प्रसार का ही अनुभव करता है। नैतिक बह एवं 'आदर्श-बह' से पूर्णता प्रक्षेपित अपने प्रिय उपास्य की उपस्थिति का भावना करते समय वह जिस हीनता या पतित प्रकृति का अनुभव करता है, वह भी उसके व्यक्तित्व

में गरिमा का विद्यास करती है।' इस प्रकार प्रक्षेपित रूप में 'नैतिक-बह' अपने प्रिय लक्ष्य (मन्त्र) में सक्रिय होकर आसक्ति और भाकर्षण क द्वारा वैयक्तिक बह का और अधिक अर्थोन्मुख करता है।

एक सफ़ेद नेता अपने प्रायः अनुपायियों क नैतिक-बह क प्रक्षेपण का रूप बिन्दु हो जाता है और अन्त में उमकी उपासना आरम्भ हो जाती है तथा वह अतिमानवीय गुणों (Super human attributes) स समन्वित किया जाता है। इस प्रकार नेता अवतार राजा सामूहिक 'नैतिक बह' क प्रक्षेपण क रूप होते हैं। प्रायः राजा अपनी प्रजा द्वारा 'नैतिक-बह' क प्रक्षेपण क रूप सामान्यन' प्राप्त व्यक्ति होता है। उसके समस्त भावों संपूर्ण प्रजा के रूप सामान्य मानव का काय करते रहे हैं। इस दृष्टि से राजा सम्राट, धर्म प्रवचक व पृथ्वी पर निवास करने वाले सर्वोच्च व्यक्ति हैं जिनपर 'नैतिक बह' का प्रक्षेपण होता रहा है।

प्रक्षेपण की चरमावस्था नहीं उपलब्ध होती है वह परममहान नैतिक-बह का बह भावों क प्रक्षेपण का रूप होता है। परममहान के अतिरिक्त 'नैतिक-बह' द्वारा प्रक्षेपित जितने भी मानव प्रतिनिधि हैं उनमें कुछ सीमा तक आलोचना गहन या दोषघटन की गुंजाइश रहती है। उनकी सीमाओं के कारण उनके प्रति किंचित् निराशा हो सकती है; परन्तु परममहान बह अत्यन्तम या अमितम भाव्य है यहाँ हमें कोई निराशा जैसी चीज नहीं सीलनी; क्योंकि वह हमारे पृथिव्य पर्यवेक्षण स परे है उसका प्राकृत्य और आधिमाय व हानों इतिवृत्तों क द्वारा परोक्ष ढंग से प्रायचीकरण के योग्य हैं। उनमें कोई भी अभाव या पूर्णता नहीं है। अतएव 'नैतिक-बह' क प्रक्षेपण के निमित्त ईश्वर सबसे अधिक उपयुक्त मूर्ति है। अपने प्रिय भगवान क आश्रय में रहने क कारण मन्त्र बहुत कुछ आत्म विद्वेक्षण और नैतिक-व्यवर्षों से मुक्त रहता है और पृथ्वी समाजों में प्रायः कबीर की उक्ति हरि जननी में बालक तोरा की तरह पशुवन् असहाय होकर सबदा उमक अनुग्रह का आकांक्षी बना रहता है। अपने उपास्य क प्रति होनेवाला उमका 'सर्वांगम समर्पण' उमक 'वैयक्तिक-बह' को निरोहित मा कर देता है। वह अपने अनिर्बंधनीय उपास्य महान का पाकर मद्दानम् की अनुमति का आस्थाहन करता है। उपास्य ईश्वर गृह-पिता की तरह प्रिय, रक्षक, दृढता और

शासक भी है।' जिस प्रकार भाविम भावव अपन ईश्वर को भवावक, क्रूर और दंडदाता समझता रहा है उसी प्रकार शिशु भी अपने पिता को रक्षक के साथ-साथ भवावक दंडदाता भी मानता है। अतः देवी प्रक्षेपण में 'अह-आदर्श' या 'नैतिक-अह' दोनों का प्रक्षेपण होता है। देवत्व और असुरत्व तथा शिवत्व और शैवत्व दोनों से उपास्य देव प्रक्षेपित होते हैं। अवतार पुरुष भी एक ओर अपने भक्त या अनुचरों के रक्षक और पालक हैं तथा दूसरी ओर प्रतिरोधी कुछ राजसों के किन्प काक सम क्रूर एवं विनाशक हैं। इसी से विशेषकर अवतारी उपासकों पर 'नैतिक-अह' का 'द्विभावात्मक प्रक्षेपण' (Ambivalent Projection) दीक्ष पड़ते हैं।

भारतीय पुराणों एवं महाकाव्यों में यह 'द्विभावात्मक प्रक्षेपण' का प्रकार का कथित जाता है। एक तो अवतार-पुरुष प्रायः सामूहिक 'आदर्श-अह' के माध्य और निषिद्ध दोनों रूपों से प्रक्षेपित होता है और दूसरा उभका प्रतिरोधी वापक प्रतिअवतार माध्य गुणों की अपेक्षा 'आदर्श-अह' के निषिद्ध गुणों से अधिक प्रक्षेपित रहता है। इस प्रकार 'आदर्श-अह' या 'नैतिक-अह' का 'द्विभावात्मक प्रक्षेपण' नावक और प्रतिनावक, अवतार और प्रतिअवतार पर माध्य और निषिद्ध दो अर्थों में विभक्त होकर होता है।

इसके अतिरिक्त 'नैतिक-अह' विविधात्मक या विविध गुणों के माध्यम से बहुरूपपरमक होकर भी प्रक्षेपित होता है। प्रायः महाकाव्यों एवं पुराणों में आए हुए सामूहिक देवावतारों में 'बहुभावात्मक प्रक्षेपण' (Polyvalent Projection) देखा जा सकता है। 'नैतिक-अह' या 'अह-आदर्श' के विविध गुण अनेक अर्थों में विभक्त होकर अनेक प्रकार से विभिन्न देव-व्यक्तियों एवं पौराणिक अकौणिक पुरुषों या प्राणियों पर प्रक्षेपित होते हैं। इस तरह अवतारवाद व्यक्तित्व या सामूहिक 'अह-आदर्श' के प्रक्षेपण की विशिष्ट प्रक्रिया का घाटक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण अंश और आदर्श-वतार वस्तुता व्यक्तित्व या सामूहिक 'अह-आदर्श' के उभका पूर्ण आधिक और उभिक 'प्रक्षेपण-प्रक्रिया' के परिचायक हैं। 'अह-आदर्श' का द्विभावात्मक प्रक्षेपण अपने माध्य और निषिद्ध गुणों द्वारा उभका अवतार और प्रतिअवतार पर होता है। इसी प्रकार अह-आदर्श का 'बहुभावात्मक प्रक्षेपण' (Polyvalent Projection) हम सामूहिक देवावतार या विभिन्न अर्चा-मूर्तियों के प्राकृत्य में पाते हैं जहाँ देवता या अर्चामूर्ति एक विविध गुण के प्रक्षेपण से समाहित हैं।

आत्मसम्मोहन' (Narcissism)

मनुष्य जिन कला-कृतियों का निर्माण करता है उनमें कभी-कभी आत्म सम्मोहन की प्रवृत्ति कथित होती है। वह प्रकृति और जीवन का स्वयं वैसे (As I want to see my self) देखना चाहता है, वैसे चित्रित करने की चेष्टा करता है। दूसरे रूप में वह दूसरों को जिस रूप (As I see others) में देखता है, उस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। तीसरी दशा में उद्दीपित होने के उपरान्त (As I see, when stimulated) वह वस्तु या व्यक्ति को जिस रूप में देखता है उस रूप में चित्रित करने का आकांक्षी है, जिसका फल यह होता है कि वह वस्तु या व्यक्ति अपनी वास्तविक सत्ता से दूर होते जाते हैं, और अन्ततोगत्वा एक महारवहीन 'उत्तेजक' मात्र होकर रह जाते हैं।^१ परन्तु यह उद्दीपन की अवस्था कबक 'उत्तेजना' ही नहीं अपितु भाव संबंध विचार प्रतिभा, परिकल्पना, प्रत्यय का भी निर्माण कलाकारों में करती है। कलाकार मर्छों में भी भगवान की वस्तुगत सत्ता या अवतार तथा अवतार-कीलाओं का विकास इसी प्रकार होता रहा है। एक बार राम या कृष्ण को जब अवतार वस्तु या उपादान के रूप में प्रस्तुत किया गया, साहित्य, सम्प्रदाय समाज भाषा-भेद से वे मर्छों और उपासकों के अनुरूप उनकी भाषावस्था, भाषना सवग प्रतिभात्मकता, परिकल्पना या प्रत्यय के अनुरूप बनते गए, जिसके फलस्वरूप एक ही राम या कृष्ण के सहस्रों रूपों, चरित्रों एवं अवतार-कीलाओं का विस्तार हुआ। अतएव अवतार राम या कृष्ण कबक ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्ति या भगवान मात्र नहीं रहे अपितु कलाकार मर्छों के मनोभुरूप डक कर कलात्मक राम और कृष्ण हो गए। मनोविज्ञान की भाषा में यह आत्मसम्माही आरोप की प्रवृत्ति है जिसने अवतारवादी धारणा एवं चरित्रों के रुद्धिप्रस्त होते हुए भी उनमें नम्यतम विधिगतताओं का संचार करती रही है। इस प्रकार वस्तु से भागे बढ़कर कबक आत्मनिष्ठ चिंतन की ओर धमसर होम की प्रवृत्ति चिन्मित्र कलात्मक अभिव्यक्तियों में जिस प्रकार बीज पड़ती है, वह मक्ति

१ इंगो हर पृ १७-१८ :—आत्मसम्मोही वृत्ति में, उदक 'आम का रूपान्तर पल सम्मोही आम में होता है जिसमें आम लक्षों का माप बहिष्कार हो जाता है। वह 'उन्नयन' (Sublimation) की तरह 'निष्कामीकरण' (Desexualization) की एक प्रक्रिया है।

१ प्रो ड के वि पृ १११।

साहित्य में भी मिलती है। साहित्य का कल्प क सृष्टि अवतारत्व अवस्तुत की वस्तुत विवृति है। अवस्तुत की वस्तुत अभिव्यक्ति में जो आत्मनिष्पन्नता का प्राधान्य रहता है। अतएव वस्तुमत्ता के होते हुए भी आत्मनिष्पन्नता का मनोविशेष वस्तु में सुरक्षित रहता है। इसी से अवतारी उपासक भक्तों की दृष्टि के अनुसार इकनैवाकी वह कल्पमय प्रतिमूर्ति है जिसकी वाह भक्त क मन में मातृसुमनिक (*maternal*) भावनाओं के रूप में ही बनी रहती है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इसका मूल कारण यह है कि जब मनुष्य का मन 'अहं-वेन्द्रित आत्मसम्मोही' अवस्था में होता है तो उस मन में इतना लम्बा होता है कि कल्प वस्तु के सभी उपादान विच्छिन्न होने लगते हैं।^१ जो वस्तुएं लोप्यद् होती हैं वे वाद्य प्रमाणों के पड़ते हुए भी कल्प वस्तु के रूप में सुरक्षित रहती हैं। यह ताप ही जन्म आत्मनिष्ठता की ओर अवसर करता है। अतएव विषय से विवर्ती की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति ने ही चित्तिक्रम को अधिकधिक प्रतीकात्मकता और लघु चिह्नों के रेखांकन की ओर अवसर होने की प्रेरणा दी जिसके अन्तर्गत कलाकार जन प्रतीकों में ही आपन्न सचन संवेगों की अभिव्यक्ति कर पाते हैं।^२ भक्तों के सर्वांगीण प्रसन्नता अवतारी उपासकों के रूप में आकुचन एवं प्रतीकौकरण कुछ कुछ अर्थात्क प्रवृत्ति के समावाप्तर प्रतीत होता है। अन्तर यही है कि इनमें मानवीयता और चरित तत्त्वों से सम्बन्ध प्राप्तता उन्हें अतिमानवीय माकद के रूप में वस्तुत करती हैं जब कि कलाकारों की प्रतीकात्मकता कल्पमय सुषम-बीज के रूप में उपस्वारित करती है। मनोविज्ञान में इस कला-प्रवृत्ति को 'आत्मसम्मोही अवस्था' या *Narcissistic withdrawal* कहा गया है।^३ जो कला-क्षेत्र में वस्तु के प्रति उदासीनता की सीमा तक पहुँच गई है। किन्तु प्रति-साधना की अवतारवादी आत्मसम्मोही प्रतीक-व्यंजना शीला और चरित्र के द्वारा निरंतर मन्त्र रूपों में रूपान्तरित होती रहने वाली मानवीय प्राप्तता की स्थायिका रही है। क्योंकि आत्मसम्मोही प्रतीकात्मकता जब प्रीतिप्रवृत्ति या अनुकूलित प्रीतिप्रवृत्ति का भाव या केन्द्र है तो उसमें उन्मुख कल्पनात्मकता का संचार हो जाता है।

१. प्रो. ए. के. रि. ५. ११।

२. प्रो. ए. के. रि. ५. १११।

३. प्रो. ए. के. रि. ५. १११।

झीड़ा वृत्ति (Play instinct) और अनुकूलित लीला (Conditioned play)

पुंग न परिकल्पना (phantasy) के गतिशील सिद्धांत को 'झीड़ा' की सजा दी है जो सिद्ध में भी विद्यमान है और गम्भीरता के चिह्नक विपरीत है। इस सङ्ग में पुंग न तीन वृत्तियों की वर्णना की है; जिनमें प्रथम है—इन्द्रिय वृत्ति, दूसरी है—रूपामक वृत्ति और तीसरी है—झीड़ा वृत्ति। इन्द्रिय वृत्ति का तात्पर्य अपने व्यापक अर्थ में 'जीवन' है। एक वह धारणा जिससे समस्त भौतिक सत्ता और ऐन्द्रिय पदार्थों का बोध होता है, 'रूपामक वृत्ति' का उच्य रूप है। यह वह वृत्ति है, जिसने पदार्थों के समस्त गुणों और भौतिक घटकों को आत्मसात् कर लिया है।^१ शिल्प के अनुसार मत्पश्य किंवा का मुख्य रूप होता है—'जोबन्त रूप'। इसके लिए 'प्रतीक' को दोनों परस्पर विरोधियों को मिश्रण है, उपयुक्त है। यह प्रतीक वह धारणा है जो हर पदार्थों के समस्त रमणीय मूल्यों का बोध कराता है; जो एक धार में ही सौन्दर्य की सम्पूर्ण व्यक्तता को समाहित कर लेता है। किन्तु प्रतीक एक पसी क्रिया की भी पूर्ण धारणा कराता है जो प्रतीक का निर्माण करती है और सृजनकाल में उसके वास्तविक बोध के लिए अनिवार्य प्रतिनिधि सिद्ध होती है। शिल्प न इस तीसरी वृत्ति को 'झीड़ा वृत्ति' माना है। इसका दो परस्पर विरोधी क्रियाओं के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु फिर भी यह दोनों के बीच में स्थित होकर दोनों को प्रकृति ने मिला जाती है। यह तीसरा तत्व जिसमें परस्परविरोधी आत्मसात् हो जाते हैं, एक ओर तो रचनात्मक है और दूसरी ओर परिकल्पना-क्रिया का प्रादुर्भाव है। यह वह क्रिया है जिसे शिल्प न 'झीड़ा वृत्ति' की सजा दी है उसके लिए झीड़ावृत्ति का रूप सौन्दर्य है।^२ अनुपम सर्वत्र सौन्दर्य से छेकता है। अवतारवाद मनुष्य-मनुष्य की सहज एवं साधनात्मक 'झीड़ा वृत्ति' का उपजीव्य है। क्योंकि जनताओं की लीलाओं एवं चरित-नामों में सौन्दर्य और जानन्द की मूर्ती मनुष्य की 'झीड़ा वृत्ति' ही अपनी समस्त अद्वैतिक कल्पनाओं के साथ साकार हुई है। झीड़ा वृत्ति ही साधक मनुष्य को रहस्य दसा तक पहुँचाती है। सौन्दर्यवादी अधिपत्य में 'झीड़ा वृत्ति' की विषय प्रमुञ्जता मानी जा सकती है, जो साधक को रहस्य-दशा तक पहुँचाने की क्षमता रखती है। यह क्रिया आकस्मिक न होकर आम आचार मूर्ति पर अवलम्बित है। गम्भीरता ही भौतिक

१. सारथे य. पृ. ११४।

२. सारथे य. पृ. ११५।

आवरयकता की तरह व्यक्त होती है किन्तु श्रद्धा वृत्ति एक प्रकार की बाह्य अभिव्यक्ति है। प्रायः इसका सम्बन्ध उस रूप से है जो चेतना से सम्बद्ध है। श्रद्धा वृत्ति को आंतरिक आवरणकताओं का प्रतिफल माना जा सकता है। यों कल्पनाओं और काव्यमय उद्धानों के माध्यम से जो भी अभिव्यक्ति होती है उसे रचनात्मक कार्य कहा जा सकता है। क्योंकि नवीन रचनात्मकता बुद्धि के द्वारा परिपूर्ण न होकर आंतरिक आवरणकता से बाध्य श्रद्धा वृत्ति की उपज होती है। रचनात्मक मस्तिष्क उस वस्तु के द्वारा श्रद्धा करता है जिसके प्रति वह प्रेम रखता है। यदि यह कहा जाय कि प्रत्येक रचनात्मक कार्य की अन्तरात्मा में 'श्रद्धा वृत्ति का विकास है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। प्रतिमाताकी मेधावी एवं विद्वान् व्यक्तियों में भी या रचनात्मक समता होती है वह अपने मूल रूप में वह 'श्रद्धा वृत्ति है जिसने उन्हें नित्य नवीन कल्पनाओं की सृष्टि करने के लिए प्रेरित किया है। इसका आंतरिक 'श्रद्धा वृत्ति मनुष्य की अधिकांश प्रवृत्तियों को 'हमन-श्रद्धा से मुक्त करती है। माय ही उनकी वृत्तिपूर्ति करते हुए मनुष्य को मुक्त भावना की उपरुम्भि करती है।

अवतार-सृष्टि वस्तुतः मनुष्य की 'श्रद्धा-वृत्ति' की देन है। वह सर्वोपरि श्रेष्ठ की माना-मतीकों एवं प्रतिमाओं के रूप में परिकल्पना करता रहा है तथा अवतार कर्षों एवं चरित और कीका गाथों में जो विस्तार दीख पड़ता है उसका मूल में 'श्रद्धा वृत्ति' का योग माना जा सकता है। 'श्रद्धा वृत्ति' एक अत्यन्त प्रभावशालिनी सृजनरमक वृत्ति है अवतारवादी साहित्य एवं कला की सृष्टि एवं विकास में उसका अपरिहार्य योग रहा है। कभी-कभी 'श्रद्धा वृत्ति पुनरावृत्ति के कारण अग्रास का रूप धारण कर लेती है जिसके फलस्वरूप एक ऐसी प्रवृत्ति का उद्भव होता है जिसे प्रामद ने 'पूर्वावस्था को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता (Necessity for the reinstatement of an earlier Situation) कहा है।' अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किष्णु के बार-बार अवतरित होने का कारण युगयुगों एवं उपास्य प्रतीकों में किष्णु अवतार द्वारा पूर्वावस्था को पुनर्स्थापित करने की मावना प्रतीत होती है। बाद में चक्रवर राम कृष्ण जैसे प्रभावशाली अवतारों में भी इस प्रवृत्ति का विकास होता है। 'राम-कृष्ण उपास्य कर्षों में अवतार भाव न होकर अवतारी हो गए जिसके फलस्वरूप उनमें सम्बद्ध साम्प्रदायिक माध्यताओं में पुनर्स्थापन की प्रवृत्ति विद्यमान हुई, जिसके फलस्वरूप किष्णु के समस्त

(मास्य कर्म, वराह, सुसिंह, वामन आदि) अवतार राम या कृष्ण के ही अवतार माने गए ।

व्यक्तिकरण

'श्रीदा वृत्ति' में माहात्मक कहरना का आधिक्य रहता है । मनुष्य की 'श्रीदा वृत्ति' की देन अवतार पुरुष भी कवठ व्यक्ति नहीं, अपितु मानों के पुरुष थे । क्योंकि अवताररथ के रूप में कवठ व्यक्ति का नहीं, अपितु व्यक्तिरथ का अवतार होता है ।' उम अवतार में व्यक्तिगत उपाशान की अपवा सामूहिक, जातीय या सांस्कृतिक उपाशान अधिक हाठ हैं । अवतार-श्रीदा में सहज साधारणीकरण की शमता होती है । इम साधारणीकरण की क्रिया में 'किबिद्यो' वा कामसक्ति विशेष योगदान करती है त्रिमके चठते व्यक्ति नेता से प्रेम करता है । राम वा कृष्ण की अवतार शीछाधों में हमारी समस्त मनाभावभापू नेता क भावसों से अनुकूलित (Conditioned) हो जाती है । उसी प्रकार प्रति नेता के प्रति हमारे मन में इंप्यों वा 'Thanatas वृत्ति' कार्य करती है । ककाकार प्रतिनेता वा उत्तरभापक का चित्र इम प्रकार चित्रित करता है कि हमारी वृत्तियों समग्र रूप में ड्रेप का ही भाव विपूत करती हैं । अवपूव अवतार-सराय भी एक प्रकार का अनुकूलित (Conditioned) सत्य है । ब्रह्म वस्तुतः हिक्-काठ मे परे है उसक आधिर्भाव की चारणा हमारे मन को अनुकूलित करने वाली वह चारणा है, जो उसको अनुकूलित सत्य क सोंबे में ठाकडर स्पष्ट करती है । इस दृष्टि से विभिन्न देशों की अवतारबारी भावना का अध्ययन किया जाय तो अनुकूलित सरय होने क कारण ही स्थानीयता जावपदीबता, इत्यादि कक्षम अवतार रूपों में मिलने लगने हैं । मनोविज्ञान की चारणा क अनुसार देव राज्य का जहाँ स आरम्भ होता है चतना मुक्ति वा लेती है । मनुष्य वहाँ प्रकृति की कृपा का पात्र बन जाता है । आत्मा या व्यक्ति की माधम-पूर्णता (Psychototality) का प्रतीक है उसक ककरवरूप कोई व्यक्ति जिसे अपने से अधिक पूर्ण रूप में स्थापित करता है वह 'आत्मा का स्वरूप हो सकता है । पों मनोवैज्ञानिक का कक्षय प्रायः आत्मसाक्षरकार वा व्यक्तिकरण (individuation) होता है । किं व्यक्ति अपने को 'बई रूप में और 'आत्मा' को पून रूप में जानता है, हमसे वह 'इतर-प्रतिमा' स अभिन्न और अभिमान्य है । इसी को धार्मिक अर्थ में अवतार कहते हैं । अवतार रूप में अवतारों क पुनः और कष्ट वस्तुतः

ईश्वर के गुण और कष्ट बच जाते हैं। अतएव वहाँ भक्तार के द्वारा पूर्णता का साक्षात्कार करते हैं, वहाँ मायव और देव-कष्टों का पारस्परिक सम्बन्ध पूरक प्रभाव (Supplementary effect) प्रदर्शित करता है। इस प्रकार चेतन और अचेतन का ऐक्य होने पर 'अह' दिग्ब कोक में प्रवेश करता है वहाँ वह देव-कष्ट या 'देव-सुख' या 'देव-रति' में भाग लेता है। 'देव-कष्ट' के शिस (कम्म-नुत्तादि) रूप का नाम भक्तार है वह मानव स्तर पर स्वच्छिद्रत प्रतीत होता है। पार्थक्य प्रत्यभिज्ञान और गुणों के आरोप से मानसिक व्यापार है जो धारम्भ में अचेतन से धीरे-धीरे ज्ञानकर चेतना द्वारा सक्रिय हो गए। आत्मा जब ईश्वर की 'भाव प्रतिमा' से पूरक नहीं होती तो वह एक ऐसे प्राकृतिक व्यापार को परिपुष्ट करती है जिसे हम ईश्वर की ईच्छा का ही कार्य मानते हैं। युग के अनुसार 'अमुष्य की चेतनात्मक प्रसिद्धियों का प्राकृत्य वस्तुतः आकृतिमूळक भाव-प्रतिमात्मक प्रक्रिया का परिणाम है अस्पष्टभाव की धारणा में कहा जाय तो, वह या तो देवी कीवन प्रक्रिया का अद्य है या वृषे दृष्टों में ईश्वर मानवीय प्रतिदिग्ब भाव में आविर्भूत होता है।' युग ईश्वर को भी एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व के रूप में ही स्वीकार करता है, उसकी दृष्टि में देवता अचेतन उपादानों के मानवी कृत रूप हैं जो मानस की अचेतन क्रिया द्वारा स्वयं भयन का रहस्योदाहित करते हैं।

मनोवैज्ञानिक मनोविकृता (Hobephrenia Schizophrenia) यद्यपि भक्तारवाह मुख्य रूप से मानवीय एवं मध्ययुगीन विषय रहा है जिससे सम्बद्ध अनेक दृष्टिकोणों पर विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। फिर भी प्रायः आधुनिक युग में एक विशेष भक्तारवादी भावना के जन्म-समय दर्शन हो जाने हैं जो अयामात्म्य मनोविज्ञान की दृष्टि से एक रोग ही प्रतीत होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे 'मनोवैज्ञानिक मनोविकृता' की संज्ञा दी है। ऐसे रोगी अपने को समस्त जगत का स्रष्टा और संपूर्ण विश्व का शासक मानते हैं। यह प्रवृत्ति दो रूपों में लक्षित होती है। एक को आत्मपरक और दूसरी को अन्यपरक कहा जा सकता है। प्रथम प्रवृत्ति के अनुसार रोगी स्वयं को राम या कृष्ण का अपने उपास्य देवता का भक्तार घोषित करता

१ तारखे डा ५ १५१-१५७।

२ तारखे डा ५ १११।

है।' अल्पपरक मनोबिद्वलता में रोगी दूसरे महान् पुष्यों को अवतार पुष्य मानता है।' अमी जी गांधी जी और मेहरू के अवतारत्व में विश्वास रखने वालों का अभाव नहीं है। इस आशय की लहरों को पकड़ मेहरू ने स्वयं उपहास भी किया था। इस कोटि की मनोबिद्वलता में अवतार जैसी संस्कार गत 'मूक-प्रतिमाएँ प्रेरक सूत्रों का काय करती हैं।

सौन्दर्य शास्त्र के आलोक में अवतारवाद

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के क्रम में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अवतारवाद का कतिपय मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से प्रसिद्ध सम्बन्ध है। वस्तु के प्रति सौम्य-चेतना भी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की एक विशिष्ट सरणि है जो साहित्य एवं कलासृष्टि की मूक प्रेरणा रही है। साहित्य एवं कला से प्रसिद्ध सम्बन्ध होने के कारण अवतारवाद भी सौम्य-बोध का प्रमुख विषय माना जा सकता है। क्योंकि दोनों सामान्य रूप से मूल्यपूर्ण सौम्य-बोध विन्म-विमोक्ष एवं समझी समझी अनुभूति की क्षमता प्रदान करते हैं। सौम्य-बोध की तरह अवतारत्व भी वह कलासृष्टि है, जिसके श्रुत पर अवतारवादी साहित्य और कला के पुष्प खिलते रहते हैं। अतएव आठोस्य अध्याय में सौम्य-साक्षीय दृष्टि से अवतारवाद का विवेचन अभीष्ट है।

सौन्दर्य-बोध

सामान्य-आकर्षण की दृष्टि में सौम्य-बोध आकर्षण की अपेक्षा

१ ऐसे अवतारों की बटमार्द भाव दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती है। इन्द्र का बदाहरण — कुछ ही वर्ष पहले की बटमा है—एक गृहलक्ष्मी ने अपने को कल्प कोषित कर अपने मर्त्यों और पैरों को डोकी बना ली थी। वह प्रायः हल्धोपासक पृथ्वी के पानों में आकर बनकी जिनों के छात्र रास कीड़ा था योवीच्य आचरण करता करता था।

२ राम के अवतार की एक सूचनी बटमा सहाचार मिले की है। १९५९ वा में एक व्यक्ति स्वर्ण राम बना था और टैर उसकी मर्त्य व्यथमन हत्यादि मर्त्य और अनुचर बने थे। बार में पुबिस ने शर्म पकड़ किया था। (Indian nation २१-२४-२-६२) में सम्बन्धुर की एक बटमा में बतजाया गया था कि एक हतारै व्यक्ति बटमा जमार ने अपने को कश्चिगुग का परछुराम कोषित किया था। (इंडियन नैशनल फेज. १९६२) के एक विवरण के अनुसार भंगयोके में अभिषिक्त होने वाले जामा ने अपने को अवलोकितैचर का अवतार कोषित किया था।

३ (Indian nation २६ १-६२) के एक विवरण के अनुसार एक ईशार्द शूका बन शेट टाकने गर्ते लो जसने पीडिया आभिसर छे कहा कि मैं मेहरू लो...
हूँगी, क्योंकि वह ईसा का अवतार है।

सामान्य आकर्षण

प्राथमिक प्रकृति के अनुसार सौन्दर्य-संवेदन' सामान्य आकर्षण का मूल कारण प्रतीत होता है। यों सामान्य आकर्षण उस मानसिक प्रत्यक्ष-बोध पर आधारित रहा है, जिस पर मनोविज्ञान और दर्शन दोनों पृथक्-पृथक् विचार करते रहे हैं। आधुनिक दार्शनिक वस्तु के प्रत्यक्ष-बोध में धारणा बोध (Knowledge) और ऐन्द्रिय-संवेदन के अतिरिक्त प्रागनुभविक ज्ञान (A priori Knowledge) का भी योग मानते हैं जब कि मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्ष-बोध में ऐन्द्रिय-संवेदन अनुभूति और विम्ब-निर्माण के साथ नैसर्गिक वृत्तियों का विशेष योग बतलाते हैं। किन्तु हमारा प्रयोजन इसका या मनो-विज्ञान की दृष्टि से प्रत्यक्ष-बोध पर विचार करने की अपेक्षा प्रत्यक्ष-बोध की केवल एक क्रिया—सामान्य आकर्षण से है।

सामान्य आकर्षण प्रत्यक्ष-बोध की वह क्रिया है जिसके अन्तर्गत वस्तु के प्रति दृष्टा के मन में जो धारणा बनती है उसके प्रति रुचि या अभिरुचि का निधमन करने वाली संवेदनाएँ वस्तु के प्रति सहज ही स्वीकार्य या प्राण्य पसंद या प्रसंसा का भाव उद्भूत करती हैं। अतः वस्तु के प्रति सामान्य आकर्षण के निर्माण में अभिरुचि का विशेष योग रहता है। यों आकर्षण-व्यापार में सावधानता वह क्रिया है जो सामान्य आकर्षण-प्रक्रिया के आरम्भ में आती है। सावधानता के बाद ही अभिरुचि सामान्य आकर्षण-व्यापार को चरितार्थ करती है। इस प्रकार आकर्षण-व्यापार में सावधानता और अभिरुचि वे दो अवस्थाएँ प्रतीत होती हैं जिनमें सावधानता आरम्भ में आती है और अभिरुचि बाद में। इसके अतिरिक्त वस्तु के प्रति सहज या सचेत होने का कार्य हमारे जन्मजात अभ्यासों (inborn habits) से सम्बद्ध है। अतः सावधानता भी जन्मास वृत्ति के अन्तर्गत आवेधाकी एक अभ्यासगत प्रक्रिया है। वस्तु के प्रति सावधान होने के उपरान्त हमें वस्तु (दिक्-काष्ठ सापेक्ष वस्तु) का बोध होता है, यह बोध ही आगे चककर क्रमशः धारणा के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वस्तु के प्रति धारणा तभी पूर्ण होती है, जब उसमें रुचि का योग हो जाता है, और सामान्य आकर्षण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सामान्य आकर्षण की तुलना में सौन्दर्य-बोध में वस्तु के प्रति परिचय और आस्था अधिक विहित है। इसी से सौन्दर्य-बोध में वस्तु-साधकता विद्यमान है। इसमें 'मानक विम्ब' के योग से मूल्योक्त की क्रिया भी

कक्षती रहती है। सौम्य-बोध के ही उच्चतर सोपान-क्रम में जानेवाली 'सौम्य-बोध' सौम्य-बोध, समीचीन-बोध, समीचीन-बोध में ध्यान से देखने पर सूक्ष्म अन्तर चिन्तित होता है। सौम्य-बोध में मुख्य-बोध के साथ-साथ आस्वादन की अभिवृत्ति आप्रत होती है जिसके फलस्वरूप कल्प वस्तु के प्रति होने-वाली प्रत्येक सौम्य प्रक्रिया में अभिवृत्ति का योग मिलने लगता है और मोक्ष का माध-प्रवाह सतत क्रियाशील हो जाता है। भावक के साथ ही वस्तु के प्रति चिन्तन का संचार होता है। 'सौम्य-बोध' की अभिवृत्ति भवत्वात् समीचीन-बोध की स्थिति माही का सक्षती है। समीचीन-बोध में ज्ञानात्मक क्रिया से अधिक रमण-क्रिया की प्रधानता रहती है। इसके अतिरिक्त मुख्य-बोध का एक गौण हो जाता है, ऐसी स्थिति में 'मानक-विषय' का निर्माण-कार्य अक्षय्य सा रहता है। सौम्य-बोध में जो ज्ञानात्मक उदासीनता होती है, समीचीन-बोध में प्रायः उसका बोध ही हो जाता है। समीचीन-बोध में 'रमणीय-बोध' इतना आत्मनिष्ठ बना रहता है कि उसके आत्मिक सङ्घर्ष से भावक के मन में आत्मरति आत्मकीर्ति और आत्मास्वादन की क्रियाएं आप्रत हो जाती हैं। किन्तु सौम्य-बोध में इन क्रियाओं का संवेगात्मक प्रावण्य नहीं होता वह 'मानक-विषय' के माध्यम से सौम्य-बोध-चिन्तन तक ही सीमित रहता है। सौम्य-बोध का आशय प्रतिमानित (Standardised) हुआ करता है। 'मानक-विषय' की आवश्यकता प्रादुर्भाव की प्रवृत्ति और उसकी शैक्षणिक योग्यता पर निर्भर करती है। यदि सङ्घर्ष रुद्ध और परम्परागामी है तो सौम्य-बोध की प्रक्रिया-क्रम में निर्मित होने वाले 'मानक-विषय' भी परम्परागत सक्षीयता से सम्बन्धित रहते हैं। इसी से परवर्ती युग की कल्प-वस्तु के मुख्य-बोध में वह अपने परम्परागत मानक-विषयों ('मुख्य-इकाई') के द्वारा ही मुख्य-बोध करता है; जिसके फलस्वरूप अद्यतन कल्प-वस्तु और परम्परागत मानक-विषय के बीच में अन्तरापरोध उत्पन्न हो जाता है उसे हम मुख्य-बोध और 'मुख्य-विषय' भी कह सकते हैं। इसी से आधुनिक रमणी, आधुनिक चरित्र और आधुनिक कविता का सौम्य-बोध परम्परागत 'मानक-विषयों' के द्वारा निर्मित होने के कारण सौम्य-बोध की दृष्टि से एक प्रकार का मुख्य-बोध ही प्रस्तुत करता है। यह मुख्य-बोध ही सौम्य-बोध में सक्षीयता का मुख्य कारण रहा है।

किन्तु सौम्य-बोध सङ्घर्ष अब युगांतरूप परम्परागत मानक-विषयों के अभाव में युग-सापेक्ष मानक-विषयों के निर्माण की क्षमता अपनी दृष्टि-संपीपा दृष्टि-क्षेत्रता के लक्ष्मीकरण द्वारा उत्पन्न कर लेता है, तभी वह अपने युग

के विभिन्न सौम्य-वर्ण-रूपों (साहित्य और कला में स्वच्छ) के वास्तविक सौम्य-वर्ण-बोध का मूर्धासन करने की शक्ति या बोधता से युक्त भावा का मकता है। उसका मूर्धासन मूर्धासरोज के स्थान में मूर्धास प्रवाह का अद्यतन मूर्धासन का शोथक हो जाता है। अवतारवादी सौम्य-वर्ण में अवरोध और प्रवाह दोनों मिलते हैं। एक ओर तो अवतार बिम्बों में कवि वादिता परम्परानुगामी होकर चळती शक्ति पड़ती है दूसरी ओर उसमें युग-सापेक्ष भावमाप, मिश्र-मिश्र कर उसे नवीन प्रवाह से भी युक्त कर देती है। सौम्य-वर्ण की दृष्टि से अवतारवाद मानक-बिम्ब-निर्माण की एक प्रक्रिया है। प्राहक अवतारवादी मानक बिम्ब के माध्यम से मूल के आविर्भूत सौम्य-वर्ण का चिन्तन करता है; अतः बिम्ब देवताओं अवतार मूर्तियों प्राहक के मानक बिम्ब की ही अनुकृति प्रतीत होती है। ये अवतारवादी मानक बिम्ब विभिन्न ईश्वरवादी देशों की धारणा आस्था और विश्वासों के आधार पर पौराणिक उपकरणों एवं पुनर्निर्माणक कल्पना की सहायता से निर्मित होते हैं। उनके अनुकृत मुख हाथ आकृति रंग पैर शरीर मुद्रा इत्यादि की निर्मिति में उपयुक्त उपादानों के योग से रचे गये मानक बिम्बों का ही नमस्कार जान पड़ता है। इसी स्वच्छ पर यह विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है कि ईश्वर के प्रति मानसिक धारणा का उद्भव और विकास कैसे होता है? मनुष्य स्वभावतः या अपनी बाह्य और अन्तःप्रकृति के द्वारा प्राप्त सबमिग और विपमित है। अन्तः और बाह्य प्रकृति ही उसके जीवन-व्यापार की संचालिका है। यह संचालिका प्रकृति चेतन और अचेतन दोनों में समाहित है। यही प्रकृति उसके मन में किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा निवमन इत्यादि की धारणा उत्पन्न करती है। धारणा वस्तुतः बिम्बीकरण के माध्यम से धारणा-बिम्ब का ही एक रूप है। स्पष्टिगत धारणा-बिम्ब व्यक्ति-चेतना से निकलकर कलात्मक आविर्भाव के द्वारा सामाजिक धारणा-बिम्ब के रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार यदि बर्च्यता देना चाय तो मूल का आविर्भाव-धारणा-बिम्ब के ही कलात्मक आविर्भाव की प्रक्रिया है। इसका सामाजिक सौम्य-वर्ण ही कलाकार की प्रतिभा का एक पाकर 'धारणा-बिम्ब' को 'मानक बिम्ब' के रूप में प्रस्तुत करता है। अवतारवादी 'मानक-बिम्बों' में कद लक्षों के अनिश्चित युग-सापेक्ष तत्व भी रहते हैं। अतः इस कवि के बिम्ब अपने युग विनय में जाकर मूल-बिम्ब (root image) या भाव-वर्तिमा (Arcetypal image) का स्थान ग्रहण कर सते हैं। युग-विनय का अवतार-वैता कलाकार कद परिचिष्ट मूल-बिम्ब का आभय लेते हुए युग के अनुकूल अवतार बिम्बों की सृष्टि करता है।

सृष्टि के महत्तर उपादानों में अवतार-विग्रहों से सम्बन्धित सौम्य रमणीयामूर्ति से लेकर रहस्यामूर्ति तक व्याप्त है। अवतार-रूपों की आगतिक व्यापकता और सृष्टि के महत्तर उपादानों (परब्रह्म, स्रष्टा, आकाश, ग्रह मन्त्र आदि) से स्वरूपित उनका विराट-रूप एक ऐसे व्यापक बहिर्मुखी वस्तुगत सौम्य की सृष्टि करते हैं जो प्रथा को विस्मयविमूढ़ कर देता है। इसी बहिर्निष्ठ व्यापक साम्य में उदात्तामूर्ति का भावम होता है। उदात्त विग्रह वस्तुतः रमणीयता के बहिर्मुखी, व्यापक एवं महान् उपादान ही हैं, या उदात्त में आकर्षण, मयमितित दृष्टि-सबद्धता का संचार करते हैं।

रहस्यामूर्ति व्यापक उदात्तामूर्ति का ही अन्तर्मुखीकरण है। क्योंकि उदात्त-विग्रह ही आत्मनिष्ठ होकर रहस्यवादी अर्थवर्णों का उपस्थापक हो जाता है। यों ता उदात्त विग्रहों के भीदाल में भी रहस्य अन्तर्निहित रहता है; किन्तु उनकी अतिवचनीयता और 'मूक स्वाइनवत् स्थिति उन्हें अधिक रहस्य-अर्थवर्णों से परिपूर्ण कर देती है। रहस्यामूर्ति में विभु और व्यापक मध्य अणु या मनोयत अन्तर्वासी रूप धारण कर रहस्यदर्शन का कथन बन जाता है। सगुण संत 'मन बानी' से अगम प्रयोगर मध्य में विस्मय-विमूढ़ करतवासे भीदाल का ही इशारा करते हैं; जिसकी 'विचित्र रचना' ईश्वर रूप गुणवीक्षण 'मन ही मन सम्यक कर रह जाते हैं। अतएव बहिर्निष्ठ उदात्तामूर्ति ही आत्मनिष्ठ आभावरण में रहस्यामूर्ति का रूप धारण कर छती है। 'महानोमदीवान' विराट उपास्य 'अनोरणीयाथ' अन्तर्वासी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार रहस्यामूर्ति आत्मनिष्ठता की चरम सीमा ही नहीं अपितु सौम्यतामूर्ति की भी चरम सीमा को चोखित करती है जहाँ शान्ता और श्रेय विपरीत और विषय विरुद्ध अभिन्न हो जाते हैं। रहस्य-दर्शन के आरम्भ में उद्वेगवादी विज्ञासा (कबीर के शब्दों में—' काकी देखन में गबी) लुप्त होत ही स्वयं उसी रूप में (में भी हो गयी टाक) छीन हा जाती है।

कीरुप्य

सौम्य का निपेक्षात्मक मुख्य ही कुरूपता की सीमा के अन्तर्गत आता है। काण्ड एवं कल्प में कीरुप्य के परिचायक अथक उपादान कुरूपता के विभिन्न माध्यमिक या गुणात्मक वैभव की आर इंगित करते हैं। सुन्दर वस्तुओं की श्रेष्ठिक-मादकता आशय स्पष्टि के मनमें त्रिभ भावनाओं का

संचार करती है। उनको भावोद्दीपन की मात्रात्मक दृष्टि से कतिपय श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। सौम्य के उच्चतर मूल्य विभाजन की चर्चा हम कर चुके हैं जो सौम्य के प्रायः वा स्वीकारात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त सौम्य का निषेधात्मक मूल्य कतिपय रूपों में विभाजित किया जा सकता है जिन्हें क्रमशः—विद्रुप, विकृत, कुत्सित मयकर, सुगुप्तिग और आत्म्य रूपों में विभक्त किया जा सकता है; क्योंकि कुरूपता का निषेधात्मक सौम्य-मूल्य प्रायः उपर्युक्त विकृतियों के द्वारा ही उनके मात्रात्मक न्यूनाधिक्य को सूचित करता है। वस्तु के प्रति जब हमारी उत्तेजना नकारात्मक होती है, उस समय हमारी सौम्य-दृष्टि आत्म्यन वस्तु का निषेधात्मक मूल्यांकन करती है। आत्म्यन वस्तु की अनुमाहित कुरूपता के अनुरूप जब सामान्य कुरूपता का चारणा-विम्ब बनता है तभी कुरूपोन्मुख मूल्यांकन प्रारम्भ हो जाता है। चारणाविम्ब की उपहासास्पद् विकृति ही विद्रुपता की संज्ञा करती है। 'शाम्भरित मानस की प्रसिद्ध 'शूर्पणा' को विद्रुपता के उदाहरण प्रकारों में ग्रहण किया जा सकता है। आत्म्यन वस्तु की चारणा विम्ब के विकास में विद्रुपता के साथ वा पूषक अरुचि का भी भागन जब होता है तो उसके फलस्वरूप 'विकृत' चारणा-विम्ब का निर्माण होता है। 'विराज उस चारणा-विम्ब का उचित प्रतिबिम्ब माना जा सकता है। आत्म्यन वस्तु जहाँ 'कुत्सित' मनो-दृष्टि का भाजन कराती है, वहाँ चारणा विम्ब के निर्माण में अरुचि किंचित् ईर्ष्या किंचित् घृणा और हेतुमुक्त श्लेष का योग होता है। क्रुद्धा के क्रमब की अभिरुचा भाजन में प्रवृत्त हो जाती है। कभी कभी चरवाओं का आरोप कवि सुन्दर वस्तुओं पर इस प्रकार करता है कि वह कुत्सित विम्ब का ही अधिक निर्माण करने में सहायक होता है। स्वर्ण धृग के रूप में मारीच इसका सुन्दर उदाहरण जान पड़ता है। मयकर कौरुप्य में भारतक वास, दर उत्पीडन इत्यादि सम्मिश्रित रहते हैं। इनके मिश्रित प्रभाव से इहय ज्ञावक वा कोमहर्षक अयंकर-विम्ब मयकर कौरुप्य का घोटन करता है। 'मेघनाद में इस प्रकार विशेष के वर्णन हाठ हैं। मवानक से किंचित् मित्र प्रकार का 'अजुत भी होता है। किन्तु अजुत में भारतक वा इहय ज्ञावक की सर्वत्र सम्भावना नहीं रहती। अजुत कौरुप्य और सुन्दर दोनों का परिचायक जान पड़ता है। भावना क्रम के भेद से 'सुरता में अजुत कौरुप्य तथा 'दनुमान में अजुत सुन्दर का भाजन होता है।' आत्म्यन वस्तु

के द्वारा जब कुरूपि प्रया, विह्वलि इत्यादि की सृष्टि होती है वहीं सुगुणित कौरूप्य की सृष्टि विहित होती है। मात्रा की दृष्टि से सुगुणा में कुरूपता की मात्रा सबसे अधिक रहा करता है। किन्तु कौरूप्य की चरम सीमा 'अधम्य' में मूर्त होती है। 'अधम्य' में प्रायः सौम्य का पूर्ण निषेध हो जाता है। यदि सौम्य-मूढ्य की दृष्टि से 'राम चरित-भागम' का विरसेपण किया जाय तो सुन्दर और कुरूप का यह वैरम्ब अनेक पात्री में स्पष्ट प्रतीत होगा। विशेषकर कुम्भकरण और रावण अमराः सुगुणात्मक और अधम्य कुरूप क वास्तविक उदाहरण मान जा सकते हैं। 'राम' अमर्यामी ब्रह्म क रूप में जहाँ सौम्य के चरममूढ्य 'रहस्यामुमि' का प्रतिनिधित्व करते हैं रावण भी अपने निषयात्मक मूढ्य के चरम रूप 'अधम्य कुरूप का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार सुन्दर और कुरूप एक ही सौम्य-इकाई क स्वीकारात्मक और निषेधात्मक एक का दोतम करते हैं जिसकी चरम सीमाएं अमर-रहस्यामुमि और अधम्य में परिबद्धित होती हैं। कला (पाश्चात्य) में कुरूपता का समावेश उन शायी क रूप में हुआ जा सौम्य की समांश को और उच्चतर करते हैं। अतः प्रायः की पूर्ण एवं मूर्त अमिष्यति क रूप कुरूप चित्रण की अपेक्षा बड़ी की जा सकती। भारतीय साहित्य का सौम्य विधान भी कुरूप और सुन्दर क समतुलित कपांकन से पूर्णरूपेण परिचित रहा है। विशेषकर अचनारवादी सौम्य विधान में शिव और अशिव सुन्दर और कुरूप तथा महा और बुरा का अपूर्व विग्रम हुआ है। इसमें सम्यह नहीं कि कुरूप का विशय अर्थात् अस्तित्व आर्त्ता कलामिष्यति क क्षेत्र में सम्भव नहीं है किन्तु फिर भी सुन्दर की प्रथमि में उसका अस्तित्व अतिवार्थ का जान सकता है। यद्यपि समार्यवादी कला में कुरूप की अमिष्यति चरम-रूप में निष्पत्ती है। फिर भी कुरूपता भी परमसत्ता की अमिष्यति का ही एक अंग है। सौम्य का आर्त्ताकरण कुरूपता के अन्विष्टेय द्वारा ही होता रहा है, विशेषकर अचनारवादी सौम्य विधान में कुरूप और सुन्दर का अमिष्यत सामन्वय प्रायः सर्वत्र देखने में जाता है।

रमणीय चित्रपदाद् (Aesthetic Imagism)

सौम्य वस्तुता अक्षर का स्फात्मक दर्शन है। रूप की अमिष्यति, प्रतीति या प्रतिबिम्ब क द्वारा होती है। अत्र पदायो वस्तुओं और मूर्तियों में इक्षर क अचनार का प्राकृत्य की धारणा की जाती है उन्हें पारकर ने 'रमणीय यत्र (Aesthetic Instrument) की संज्ञा की है।' यह

यत्र प्रत्यक्ष जगत से सम्बन्ध स्थापित कर सौम्यर्थास्वाहन क किये, संवेदनात्मक रूप बन जाता है और दूसरी ओर कल्पना के परिचालन के किये वाहन का कार्य करता है। वस्तुगत सौम्यर्थास्वाही मुख्य उन्हें सौम्यर्थास्वाहन यत्र क रूप में भी प्रस्तुत करता है और वे प्रायः द्विमानात्मक (Double Standard) प्रतीत होते हैं एक ओर उनका सामाजिक मूल्य प्रयुक्त होता है और दूसरी ओर उनका वैयक्तिक मूल्य। सौम्य भावना क वाहक इन प्रतिमानों की विभूति प्रतिमाओं या विम्बों क द्वारा होती है।

प्रतिमा और विम्ब

तत्पश्चात् देखने पर दोनों ही 'इमेज' के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं; किन्तु प्राविधिक मनोवैज्ञानिक 'इमेज' के किये मने 'विम्ब' की अपेक्षा 'प्रतिमा' शब्द को ही अधिक उपयुक्त समझा है; क्योंकि विम्ब में जो गल्बतरता, संघटता नबनबोम्बेप ककरणाल्मक प्रेरकता और भावकता है वह प्रतिमा में नहीं। प्रतिमा में विम्ब का रूप विचारण ही नहीं है अपितु वह अपने स्पूक कल्प को प्रहम कर चुका है। उसक कर्पाकन में वह उम्बेप और प्रेरणा नहीं है ना विम्ब में है। प्रतिमा में कविबोध अधिक है और विम्ब में रमणीय बोध का आधिबध। प्रतिमा गताधुमतिक है और विम्ब स्वच्छन्द। किन्ती विद्येप युग की संरकृति में ब्याप्त अन्ककता: पुरा-प्रतिमाएँ ककक घासाबडोकन की वस्तुएं बन कर रह जाती हैं। निबधय ही कुछ पुरा-प्रतिमाएँ अनेक युगों तक सक्रिय रहती हैं। बडाहरणस्वरूप विष्णु, शिव और शक्तियों की भाव प्रतिमाओं का प्रसार अनेक युगों तक रहा जब कि प्रजापति और इन्द्र, अश्विन बस्य आदि की वैदिक कालीन मूक-प्रतिमाएँ महाकाल और पीरायिक युग में आकर कम्मसः शीघ्र पडती गयीं। भाव-प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत वैसगिक और स्वच्छन्द काल्यों में अपने विम्बत्व को अधिक सुरक्षित रख सकी हैं—जैस वास्मीकि, काकिकास में प्रयुक्त वैश-यात्र की भाव-प्रतिमाओं में मूक-विम्बत्व अपेक्षाकृत अधिक है। परन्तु साक्षीपता की ओर उम्मुल अककृत काल्यों में वैश पात्रों क गल्बतर विम्बत्व का कम्मसः हास सा शीघ्र पडता है; जो रीतिकाल तक आकर परम सीमा पर पहुँच जाता है। वह अधिकोश स्वकों में रमणीय विम्बत्व को छोकर एक अककृत कककृति क नमूने की तरह अककृत एव चमाकारिक भाव-प्रतिमा क रूप में ही विद्येप रूप से कक्षित होता है। विम्ब-निर्मिति में जो वैयक्तिक प्रतिमा और चतना कार्य करती है, उससे

१ सारथी टा ट. ५५४। युग ने काल्पात्मक अर्थ-धरो से गृहीत चारणा के अर्थ में 'विम्ब' का प्रयोग किया है।

जिन्ह की वैयक्तिकता अधिक मर्मस्पर्शिणी और जीवन्त बनी रहती है। प्रतिमा क रूप में रूपान्तरित होने पर उसकी सात्मिकता और वैयक्तिकता सबेइम सीक न होकर औपचारिक हो जाती है। 'भाव प्रतिमा कभी स्वय और कभी जनैक प्रतिमाओं में (विष्णु शिव दुर्गा और उनक अनेक अवतार रूपों) में विभक्त होकर जाति या सांस्कृतिक प्रतिमा बन जाती है। वह समाज में जाति या सांस्कृतिक प्रतिमा क रूप में दो प्रकार म अभिष्णास रहती है। उनका प्रथम रूप लोक सांस्कृतिक प्रतिमा का होता है—वहाँ लोक से तत्पर्य उन सामान्य जनसमुदाय से ह जा राम कृष्ण, शिव श्याम, दुर्गा इत्यादि देवताओं को जिन रूप में ग्रहण करता है वह इनका लोक सांस्कृतिक प्रतिमा (Folk cultural Image) का रूप है। इन लोक सांस्कृतिक प्रतिमा का वैशिष्ट्य यह है कि ये प्रतिमाएँ सामान्य जनता की भ्रमा और विश्वास का उपजीव्य बन जाती हैं जिससे सम्बन्धित स्थानीय जनमाया या जनपदीय लोकमायाओं में लोककथाओं का निर्माण होता है। माय ही अनेक जन कृतिर्यो, लोककथाएँ किंवदन्तियाँ अनुग्रह की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ तथा लोक कथात्मक मूर्तियाँ, चित्र, नृत्य, नाट्य संगीत इत्यादि से रचित होकर उन प्रतिमाओं के जिस व्यक्तित्व को व्यक्त करती हैं—वह उनका लोक सांस्कृतिक रूप माना जा सकता है। प्रचलित भारतीय देवताओं, देवियों और भक्तार्यों के स्थानीय और जनपदीय रूप इनक उदाहरण स्वरूप गृहीत हो सकते हैं। सांस्कृतिक प्रतिमा का दूसरा रूप उन राष्ट्रीय महाकाव्यों, प्रबन्धकाव्यों, नाटकों तथा मूर्ति स्तूप, संगीत इत्यादि कलात्मक अभिव्यक्तियों में शीक पड़ता है जिन्हें बुद्धिजीवी कलाकारों एवं कवियों ने राष्ट्रीयता में समेट कर राष्ट्रीय 'राष्ट्र-प्रतिमा' का रूप दे दिया है। सम्प्रदायों एवं विभिन्न धर्मों से सम्बन्ध होने पर भी बुद्ध, जैन तीर्थंकर राम, कृष्ण शिव इत्यादि राष्ट्रीय (National) राष्ट्र-प्रतिमाओं क रूप में गृहीत हो सकते हैं। राष्ट्रीय राष्ट्र-प्रतिमा अपने राष्ट्र विनाश के लिए एक राष्ट्रीय रिजय क रूप में सुरक्षित रहती है तथा युग-युगान्तर तक समस्त जन-संस्कृति को अत्रक संतान-जात प्रदान करती रहती है। इन राष्ट्रीय राष्ट्र-प्रतिमाओं को ही भाकर या संदर्भकृति कहा जा सकता है का साहित्य एवं कला को उत्प्रेरणा देती रहती है।

रमणीय दिग्म

अवतारवादी सौन्दर्य भावना कवक आत्मनिष्ठ सौन्दर्य की ही संचालिका नहीं है अपितु वह वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य की भी जननी है। मानव सौन्दर्य की

रूपमा अपनी श्रम सीमा पर तब पहुँच जाती है जब उसे परमसत्ता के परिवेश में देखते हैं; जो वस्तुगत सौम्यता से अपनी एकता और अविभाज्यता क बचते स्वतः रूपक हा जाती है। किसी भी उच्चतम वस्तु से सौम्यता को तुलना नहीं हो सकती; क्योंकि परम सौम्यता ईश्वर में ही निहित है।^१ प्रकृति और कलात्मक कृतियाँ स्पृक या भौतिक सौम्यता क अन्तर्गत जाती है, किन्तु विरोधामास ता यह है कि सुन्दर भौतिक सत्य नहीं है, क्योंकि यह पदार्थों में अवस्थित न होकर मनुष्य की सक्रियता और भावनात्मक शक्ति में है। विषय और रूप आन्तरिक सत्य है और जबका स्वरूप प्रतीति है। कलाकार सौम्यताभिन्नता क द्वारा परम सत्य की प्रतीति कराते हैं। आगे क मनुष्य सार अरूप को रूप देकर व्यक्त करनेवाला मनुष्य भाँ बहुत महान कवि एवं कलाकार है।^२ अवतारवाद परमसत्ता के विग्रीकरण की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा भावक परम सौम्यता का भावन करता है। मनोवैज्ञानिक सौम्यतावादो समीक्षक कला का सूक्ष्मकाल आस्वादन या आत्मस् की दृष्टि से करते हैं; किन्तु आस्वादन को यदि सामान्य इकाई माना जाय तो यह मुख्य जाति (Kind) का न होकर मात्रा का ही अधिक सूचक हा सकता है।

इस प्रकार सुन्दरता क सम्बन्ध में अक्सर यह प्रश्न उठता है कि सौम्यता कहाँ है? किन्हीं है? सामान्यता किसी वस्तु को देखकर हमारे मन में एक भावना उत्पन्न होती है जो उस वस्तु के प्रति सुन्दर या असुन्दर की धारणा का निर्माण करती है।^३ किन्तु पुनः यह प्रश्न लजा हा जाता है कि सौम्यता किसमें है; मन में निहित भावना में है या वस्तु में। यदि यह माना जाय कि वस्तु में है तो देखना यह होगा कि सौम्यता प्रत्येक वस्तु में है वा कुछ

१ परबे पृ. ११३।

२ एम्बे. पृ ११-१४।

३ पायलन वदन में धारणा (Concept) पर विचार विचार हुआ है। बुद्धिवादी (हेर्बर्ट स्पेन्सर, सिमोना देलाग्रेगिन, कार्लोसिन-मनोव) धारणाओं ने प्राग्भूतिक सिद्धान्त के द्वारा धारणा के विकास पर विचार किया। एकर अनुभव धारणी कौं, कौंके अनुभव आदि ने धारणा की अनुभव सापेक्षता का प्रतिपादन किया। प्राग्भूतिक धारणा में रोमों का सम्मिश्रण रूप मिलता है। अतः इन तीनों सम्प्रदायों में गौन प्रचार की धारणाओं का प्रचार हुआ। बुद्धिवादियों की धारणा अनुभव निरपेक्ष की और अनुभव-धारणियों की अनुभव सापेक्ष। किन्तु कौट ने धारणाओं के प्रति एक विश्व भव प्रतिपादित किया। कौट कौट के मनुष्यधार संवेदना (Sensation) और बोध (Understanding) दोनों के धारणा के साधन है। धारणा के निर्माण में इन दोनों का बोध है। कौट ने कहा है—Sensibility without understanding is blind and understanding without sensibility is empty

ही वस्तुओं में ।^१ वास्तविकता तो यह जान पड़ती है कि सभी वस्तुएँ सभी को या कुछ वस्तुएँ भी सभी को समान रूप से या समान मात्रा में, सभी काल में या सभी स्थानों में सुन्दर नहीं लगतीं । यदि हम मारी-सौम्य^२ को ही लें तो सभी देश की छिन्नो सभी देशों के पुरुषों को सभी समय या सभी स्थानों में सुन्दर नहीं लगतीं । यह विरोध इस सीमा तक बढ़ सकता है कि एक देश में मान्य अल्पसंख्य सुन्दर वस्तुएँ भी (अंग्रेजी भूरी भोलिं नीर भूरे बाक) दूसरे (भारत जैसे) देशों में कौरूप्य की ही द्वातक समझी जा सकती हैं । अतः वस्तु स्वयमेव कहीं तक आकर्षक हो सकती है यह स्वतः विन्मय है । तो क्या सौम्य^३ माधना वस्तु निरपेक्ष है ? बिना किसी आच्छन्नक के सौम्य^३ भावना उत्पन्न हो ही नहीं सकती । जब वस्तु ही आच्छन्नक है^३ हमारी दृष्टि से जनेक वस्तुएँ गुजर जाती हैं, हमारे मन में सभी के प्रति सौम्य^३ चेतना नहीं उत्पन्न होती । हमारा मन आकर्षण या विकर्षण किसी भी दृष्टि से कुछ ही वस्तुओं में रम पाता है, जिन्हें हम प्रिय वस्तु कहते हैं ।^३ किसी वस्तु के प्रति प्रियत्व-बोध अकस्मात् नहीं होता । जिसने समुद्र नहीं देखा है जिसे समुद्र का ऐन्द्रिय ज्ञान नहीं है, उसके मन में समुद्र के प्रति एकाएक सुन्दर या असुन्दर की भावना नहीं उत्पन्न हो सकती । अतएव कथ्य वस्तु के आकर्षण, सौम्य^३ या प्रियत्व का बोध होने के पूर्व उसका पूर्व ज्ञान आवश्यक हो जाता है । कोई फल चाहे कितना भी विनाकार्यक या मधोरम क्यों न हो, जब तक उसका मीठपन या पोषक-तत्त्व का ज्ञान नहीं होता, हम उसे प्रिय फल के रूप में आस्थात्म नहीं कर सकते । इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तु केवल स्वामात्रिक रूप में सौम्य^३-भावना का आच्छन्नक नहीं हो सकती, अपितु भावक या ज्ञाता को जब उसकी विशेषताओं के वर्णन

१ केम्प एस्के पृ १९९ । हमें कितनी वस्तुओं का बीज होता है वे आरम्भ से ही रिक्त-काक-अनुकूलित होती हैं । हमारी दृष्टिओं उनके रिक्त-काक सापेक्ष रूप को ही देख पाती हैं । कॉट के मतानुसार वस्तु का वस्तुत्व सर्वत्र हमारे मन से परे का विषय है । संकर के अनुसार वस्तु के वस्तुत्व की प्रतीति मात्र होती है । कॉन्ट्रीज ऑन इमेजिनेशन पृ ५४-५५ । मैं रिचर्ड ने कॉन्ट्रीज द्वारा व्यक्त विषय-विषयी रूप का विवेचन किया है ।

२ वस्तु विश्व के नियन्त्रणकाल कारण न होकर मिमित्त कारण ही है । विधेय प्रो एस्के पृ ७१ 'पारकर का 'रमणीय बंध' इहम्ब ।

३ एस्के पृ २५९ में बर्क का बहावण (An Enquiry in to the origin of our Ideas of the Sublime & beautiful 1:56) में बर्क ने सुख या दुःख (Pleasure or displeasure) माना है ।

होते हैं तब वह वस्तु भावक की सौम्य-वृत्ति का रूप होती है।^१ य
 विशेषताएँ व उद्दीपनकारी गुण (Stimulant qualities) हैं; जिन्हें वह
 पदार्थ अपन आश्रय या ज्ञाता की ओर सम्मनता मयि वा प्रकाश-रूप की
 तरह फेंकता रहता है। पदार्थ की ये उद्दीपनगत विशेषताएँ आश्रय के ज्ञान
 और संवेदन-प्रक्रियाओं का कबक एक बार ही सक्रिय नहीं करती अपितु आश्रय
 के मन में एक ऐसी प्रतिमा या चित्र का निर्माण करने लगती हैं जो प्रारम्भ
 में तो आश्रय के मन में चारणा मात्रा के रूप में^२ (मिथी के सने हुए कोंड़े
 की तरह) स्थित रहती है। वही चारणा-चित्र (Conceptual Image)
 (जो कटाकर के हाथों से मूर्ति बन जाती है) ऐच्छिय संवेदन^३ (Percep-
 tive) होकर आकम्बन चित्र (Objective image) बन जाता है^४
 और अपनी उद्दीपनगत विशेषताओं से आकम्बन-चित्र को और सधन रूप
 में विगित करने लगता है। इस प्रकार यह आकम्बन चित्र पदार्थ का
 कबक चारणात्मक चित्र ही नहीं होता अपितु उसकी समस्त उद्दीपनगत
 प्रकृतियों से युक्त होता है^५ जिसके फलस्वरूप हमारे मन में वस्तु के प्रति

१ एम्बे पृ ९—वर्क ने 'Natural qualities' के रूप में इन पर विस्तार पूर्वक
 विचार किया है। वस्तु में १ सुकनात्मकगुण २ भिन्नी तरह ३ विभिन्न
 वर्णों की विद्युत् में वैविध्य, ४ कोणात्मकता का समान—एषा सभी पक्षों
 का परस्पर अन्तर्भाव ५ अनात्म विद्धों से दृष्टि अत्यन्त चित्र निमित्त
 ६ स्वच्छ वर्ण बिना किसी स्वेपन के, ७ यदि चमकीला वर्ण हो तो पृष्ठभूमि
 से भिन्न हो—आदि को सौन्दर्य की मेट्रिक विधिज्ञानों में ग्रहण किया है।

२ एम्बे पृ २७५—An Aesthetic Idea is a representation of the ima-
 gination which accompanies a given concept.

३ A fine internal sense^३ जिसे किर्किन्डेन ने कहा है। -

४ एम्बे पृ ३५४ क्योबेरी ने इसे 'beauty in the sensible establishing
 the 'archetypes of beings'^४ माना है।

५ एम्बे पृ ३१०-३२१ इरबर्ट ने इसे between form and the sensuous
 stimulus attached to form बताया है।

६ एम्बे पृ ४ < आर्बेस्ट ने इसे संवेदन और चारणा के बीच माना है—Bet-
 ween the two poles of consciousness sensibility and intellect are
 several intermediate grades amongst which lies intuition and
 fancy whose product the image or appearance, is midway bet-
 ween sensation and concept. The image is full like sensation
 but revealed like the concept. It has neither the inexhaus-
 tible richness of the former nor the barren nudity of the latter
 of the nature of the image or appearance is the aesthetic

सौन्दर्य या मियाब की भावना उत्पन्न होती है। यह विद्यमान वस्तु का आकस्मिक उद्दीपनबुद्ध चित्र होता है, जिस हम रमणीय चित्र (Aesthetic image) कहना अधिक युक्तिसंगत समझते हैं। सौन्दर्य-परिमाण या मात्रा की दृष्टि से 'रमणीय चित्र की रमणीयता की मात्रा' उद्दीपनगत विशेषताओं की माहकता पर निर्भर करती है। इस प्रकार मनुष्य को चितनी वस्तुओं का पूर्व ज्ञान रहता है, वे सभी सौन्दर्य-बोध या सौन्दर्य-भावना का जन्म नहीं रखती अपितु वे धारणा-चित्र के रूप में मन के चेतन या अचेतन में स्थित रहती हैं। किन्तु जिस वस्तु का धारणा-चित्र वस्तु के ऐतिहासिक साक्ष्य होने पर सबंध भाव से आकस्मिक चित्र होकर उपस्थित हो जाता है और वह आश्रय के ऐतिहासिक संवेदन को प्रेरित करता है, उस समय वस्तु की ओर से उद्दीपनगत विशेषताओं का प्रवाह चल कर मन में वने हुए आकस्मिक चित्र को उद्दीपनमय बनाने लगता है; जिसके फलस्वरूप प्रकाश के मन में सौन्दर्य-भावना की उत्पत्ति 'रमणीय चित्र' के रूप में होती है। अतएव रमणीय चित्र वह चित्र है जो आश्रय व्यक्ति के मन में निहित सौन्दर्य-चेतना को उपस्थापित करता है।^१ यह मानव-मन के चेतन अचेतन अथवा चेतन सभी भागों में अवस्थित रहता है। कलात्मिकता की दृष्टि से रमणीय चित्र की उत्पत्ति कवक भावक या भावुक तथा कवि या कलाकार में होती है। इन सभी के मन में रमणीय चित्र की सघनता उद्दीपन प्रवाह के परिणाम के अनुरूप होती है। रमणीय चित्र का लक्षण रूप में देखने पर मूल रमणीय चित्र (Archetypal Aesthetic image) स्मृत रमणीय चित्र (Recollected Aesthetic image), तद्भव रमणीय चित्र (Semblent Aesthetic image) तीन रूपों में देखा जा सकता

fact, which is distinguished from the simple ordinary image not by its quality but by its intensity alone; the aesthetic image is merely a simple image occupying the summit of Consciousness.

- १ इस शब्दों पृ २५५। अमिनेबुद्ध ने इसे प्रतिचित्र कहा है।
- २ शब्दों पृ. २१४। यह कारवनिम के 'मात्रात्मक चित्र' से भिन्न है।
- ३ हि शब्दों पृ २३५। 'हिरदी कीट टिकीसोटी हेरेक मा इ पृ ५४३ से उद्धृत किया है—यह वस्तु सुन्दर है जिसका रूप (जसके भौतिक तत्त्व नहीं अपितु उसके प्रत्यक्षीकरण के ऐतिहासिक उद्दीपन) रसानन्द (Pleasure) का आधार समझा जाता है और जो उस आकस्मिक वस्तु के चित्र-रूप में पुरीत होता है।

है।' अवतारवादी रमणीय विम्ब में उपर्युक्त तीनों गुण समाहित हैं। समस्त अवतार-रूपों में विष्णु की मूळ भाव प्रतिभा विराजमान रहती है। विभिन्न कालों में विष्णु एवं उनके अवतारों की अभिव्यक्ति 'स्पष्ट रमणीय-विम्ब विधान की देन है। सम्पूर्ण कलाभिव्यक्ति में ब्रह्म क बाबक विष्णु एवं उनके अवतारों की सौन्दर्य-राशि ही अन्तररथ रहती है। वैयक्तिक अन्तर क अतिरिक्त सभी अवतार भीकर्य एवं विष्णु के सामूह्य एवं आयुषों से अभित रहते हैं, इससे उपर्युक्त रमणीय विम्बत्व की किडुति होती है। उपास्य रूपों में गुरीत होने पर विभिन्न अवतारों क विविध रूप मळ की कधि और सौन्दर्य-माबला के अनुकूल 'रमणीय विम्ब' वन अते हैं उनका आति रूप (generic form) वस्तुतः विविध रूप (Specific form) में परिणत हो

१ एत्ने पृ २३३, इत. एत्ने पृ २४-२५। उपर्युक्त रमणीय विम्ब से मिलती जुळती 'नगण्डेडोवारी दिक्किमेन' ने कल्पना की है एत्ने पृ २३३। आचार्य सुळ ने (रसमीमासा पृ २३ में) मल्लकल्प-विधान स्पृष्टकल्प विधान और सम्भावित वा कल्पित रूप विधान कहा है सा कोष ५१४ विम्ब स्पृष्टिजम्ब और एवचित्त दो प्रकार के बताव गए हैं। सा कोष पृ ४७। में 'प्रतिमा सोन्दर्यागुसुसवादिनी कही गयी है। इसके नामस निमित्ति में—ताक क्व गति विम्बास सम्पुलन आदि सम्पूर्ण अंगों सहित आनिर्माव होया है मौळिक (प्रारम्भिक) सम्पूर्ण (आर्गोनिक) और एवम्बू में सोन्दर्यागुसुसवादिनी प्रतिमा (Aesthetio Image) के विदेश कल्पन हैं। रस. मो पृ २३ में मल्लक रेळी दुरे वस्तुओं वा क्वों का लो प्रतिविम्ब और उनके आचार पर एका दुना 'वस्तु-आचार-विधान' कहा है। प्रथम प्रतिविम्ब को ही सुळ को में आर्यवत-रूप-मतीति स्पृति और हितान को मूर्त-विधान कहा है। जो प्रतिविम्ब पर सोन्दर्य, माधुर्य, शक्ति, कति प्रसाद, ऐश्वर्य, किडुति तथा सुय, सगुक्ति, सगुक्ति स्त्रमाव प्रेम आमन्द छक्ति, उग्रता प्रचंडता उबक-पुवक धंस इत्यादि को प्रखरण मामा आता है। इस प्रकार विम्बों का विमानन मो अनेक हृदियों से किया गया है—? आचाम को हृदि से सवार (एक आचाम) अचामिठिक (दो आचाम), त्रिचाम (तीन आचाम) २ गाथा को हृदि से (इमेज एवसवी पृ १७२ रोडर क) —सवनविन्द विरलविम्ब (इमेज. एवसवी पृ १७१) 'Sphoc' वा विस्तार को हृदि से—अनु विम्ब—विनुविम्ब। कर्ता को हृदि से—रमणीयविम्ब (स्पृष्टि र), सुग्रर विम्ब (विम्ब-वीव) अंगविम्ब। भावक को हृदि से रमणीय प्रतिविम्ब (कलाकृति एवं पात्रों के माखम से गुरीत), प्रतिविम्ब शोच प्रतिविम्बभास। काल को हृदि से—कालिक और एवमी। आचार को हृदि से—डोस, तरक वाचवीव। आकीक को हृदि से—आवाचक, अचोर्त्तव रंजीव इत्यादि विमानन प्रस्तुत किए जाते रहे हैं।

जाता है। जाति रूपात्मक रमणीय विम्व में प्रतिमत्त्व अधिक रहता है और विविधरूपात्मक रमणीय विम्व में विम्वत्व अधिक। जाति रूप में अवतारों का रमणीय विम्व समस्त संस्कृति की सौन्दर्योर्मिइति स्पष्ट करता है, परन्तु विविध अर्थान् व्यक्ति (मनुष्य) मापैव रूप में रमणीय विम्व मनुष्य विषय की रमणीयानुभूति का उपजीव्य बना रहता है। यद्यपि अवतारवादी लक्षित कलाओं में जाति रूपात्मक अवतारों के रमणीय विम्व की कमिप्यक्ति होती है। कलाकार पूर्ण कवि अवतारों की मूर्तियों एवं चरितों का प्रायः परम्परागत प्रसंगों, कथाओं, चरितों एवं कीलाओं में ही अनुभव कर चित्रण करते हैं, परन्तु मनुष्य का सहृदय अपनी भावना के अनुकूल जब आत्मबल विम्वों को 'रमणीय विम्वों के रूप में परिणत कर लेते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कुछ विविध चरितों एवं विसेय शीकाओं में ही मनुष्यों की रसज्ञ अधिक रहा करती है। रामलीला देखते समय रमणीय-विम्व लोक-दृष्टा के मन में आत्मबल विम्व के रूप में उपस्थित हो जाता है। भावों के साधारणीकरण का उपक्रम होते ही मनुष्य रामलीला की प्रत्यक्षीकृत समस्त उद्दीपन शक्त विषयनाओं से उसका भावात्मक योग होकर 'रमणीय विम्व' को उत्तरोत्तर उद्दीपित करने लगता है। अवतार रूप या अवतारों के कलात्मक रूप में सामर्थ्य मनुष्य रमणीय-विम्व, विष्णु-दृष्टा की विम्वज्ञापना करता है। वाटके के पात्र एवं उनके आंगिक वाचिक आहार्य और सात्विक अभिनय वस्तुता रमणीय यंत्र (Aesthetic Instrument) के कार्य करते हैं क्योंकि रमणीय विम्वानुभावना की क्रिया में मनुष्यकरण व्यापार अनायास रूप से चलता रहता है। 'मनुष्यकरण व्यापार' का उत्तरोत्तर सक्रिय एवं उत्तेजक बनायेवाली मनुष्य की लीला-वृत्ति (Play instinct) है, जो अत्यन्त मनुष्यकरणात्मक प्रवृत्तियों को उत्तरोत्तर प्रबुद्ध करती है। इस नाट्यानुभूति में कोई अनोखिद्वय व्यापार नहीं होता, अपितु पूर्णक मावकीय वातावरण एवं रसमाओं में ही 'मनुष्य' की विम्वोज्ञापना करता है।

सगुण रमणीय विम्व

जहां विम्वोद्भूत मनुष्य ही वह अवतार-मनुष्य है, सो कवियों एवं कलाकारों की समस्त सौम्य-वृत्तियाँ का कन्द्र बन जाता है। वे अथवा कार्यों में अपने अवतरित मनुष्य के सौम्य-वृत्तियों का मूर्खानक भारतीय सुन्दरता के प्रतिमान काम देव के द्वारा करते हैं। यदि कमन्दैव को सौम्य-वृत्तियों की एक इकाई मानी जाय तो गोस्वामीगुप्तजी दास के रमणीय विम्व राम 'कोटि मनुष्य लजावन

का मानव-रूप में अवतार वस्तुतः उनकी मूर्ति से आरम्भ होता है, जिसमें कबूट्र उनकी आत्मा का बाह्य रूप अवस्थित है, यह कि उसका आन्तरिक जीवन भी अपनी सक्रियता के साथ उससे बाहर ही रहता है।^१ रहस्यवादी सम्प्रदायों में आत्मा ही वह अमूर्त व्यक्ति है जिसे हम परमात्मा कहते हैं। हेरोल्ड के अनुसार अपने भौतिक जीवन में भी आत्मा समस्त राष्ट्र की आत्मा में आत्मसात् हो जाती है और अन्त में वह पूर्ण विद्य आत्मा के रूप में परिणत हो जाती है। या परमात्मा ही आत्म-चेतना या आत्मा का रूप धारण कर मानव-आत्मा के रूप में अवतरित होता है। इस प्रकार परम सत्ता ही मूर्त आत्म-चेतना के रूप में वह अवतरित होती है तो ऐसा कहा जा सकता है कि वह अपनी पूर्ण सनातन विद्युत्ता से अवतरित हुई है। किन्तु कल्पमिथ्या की दृष्टि से ऐसा करने में यथार्थता उसने उच्चतम प्रकृति को प्राप्त किया है— जो अणु है वही विद्यु भी है।^२ अतएव आत्म-चेतन के अस्तित्व-रूप में वह परम प्रबल ऐश्वर्यक उपादान हो गया है। परन्तु चेतनात्मक सम्बन्ध की दृष्टि से यही कहा जा सकता है कि आकाशवद वस्तु यथार्थतः आत्मा ही है जो स्वयं अपने को आकाशवद-वस्तु के रूप में धरती का प्रकट करती है।^३ उनके हमनीय विम्ब का निर्माण भी उनके स्वप्न में आनेवाले जीवन और जगत के उन्हीं जड़ या चेतन तत्त्वों से होता है, जो आरम्भ से ही उसके विस्मयानुकूल या विज्ञानु मन के धारण विम्बों को आकाशवद-विम्ब बनाकर वस्तु सापेक्ष हमनीय विम्बों की दृष्टि करते रहे हैं। रहस्यवादी सौन्दर्य-चेता उन्हीं विम्बों का विस्तार स्मृत्यानुकल्पन या कल्पना और भावना के योग से करता रहा है। ये स्मृत्यानुकल्पित हमनीय विम्ब जो इस प्रकार वस्तुगत तत्त्वों से दृष्टित मूल हमनीय विम्बों के ही सक्रिय रूप होते हैं वे स्मृत्यानुकल्पित हमनीय विम्बों के रूप में आकर आकाशवदगत उद्दीपन के स्थान में आत्मगत उद्दीपन-प्रवाह में परिपूरित रहते हैं। कबीर यद्यपि निर्गुन निराकार को अपना इहदेव मानते हैं फिर भी राम के रूप की उनमें अपूर्ण प्यास है। उनकी माधना भी एक मुख देवी पीब^४ के निमित्त चकती रही है। कबीर में भग्य रहस्यवादियों की तरह हमनीय-विम्ब की आत्मविद्यता (Subje-

१ फिन मा (देवेड) पृ ७५ । This incarnation in human form of the Divine Being beginning with the Statue, which has in it only the outward shape of the self while the inner life there of, its activity falls outside it.

२ फिन मा (देवेड) पृ ७१० ।

३ फिन मा (देवेड) पृ ७५९ । ४ क. दं. पृ ९ लाड़ी ११ ।

ctivity) 'श्रेष्ठ समाप्ता अक्षेत्र में। पु ज्ञाना मां ह्यं ज्ञाप' दृष्टिगत होती है। निर्गुण मतानुसार हरि के विन्वीकरण में भाषा का आचरण ही बहुवचन कायक है। इसी से संतों ने उसकी मरपूर भर्त्सना की है।^१

यों ककाकारों या कवियों में सिन रमणीय विम्बों का निर्माण होता है, उनका दार्शनिकों में एक प्रकार से जमाव ही कहा जा सकता है। हैदु प्राधाम्य या ठक की प्रधानता होने के कारण भाव-सम्बन्धित धारणा विन्म भी अपनी भाव-सम्पत्ति को जोड़कर धारणा-विन्म भी नहीं बन्धिक केवक धारणा-प्रतीक के रूप में निर्मित होता है। अतएव जहाँ भी दार्शनिक दृष्ट रूप में किसी असीम, अनन्त या कल्पनातीत जैसी सत्ता का विवेचन करता है वहाँ उसकी चिन्तन-क्रिया में धारणा-प्रतीक ही गणित संकेतों की तरह समाप्ता या समाधान के रूप में प्रकाशित होते हैं। जहाँ दार्शनिक में मानुष्यता होती है, वहाँ वह अर्ध-दार्शनिक (Pseudo philosopher) ही बन्धिक ज्ञान पक्ता है। ऐसी स्थिति में उसके धारणा-प्रतीकों पर भाव-संबन्धित धारणा-विन्मों का रग भी चड जाता है। फलतः अनन्त, असीम और कल्पनातीत जैसी वस्तुएँ, अपर समुद्र सूय की अनन्त किरणें, कोटि कोटि नक्षत्रों की तरह प्रतीत होनेवाले धारणा विन्मों की सृष्टि करने में एव रहती हैं।^२ इस कोटि के धारणा विन्मों के विकास पुनः रमणीय विन्मों के रूप में होते हैं। विशेष कर निर्गुण-सम्प्रदाय के कवियों में इस प्रकार के

आत्मनम विन्म अधिक परिकल्पित होते हैं। जहाँ निर्गुण मत्तों में दार्शनिकता का प्राधाम्य है, वहाँ धारणा-प्रतीक या धारणा-विन्म के रूप में उनका आत्मनम उपासक व्यक्त हुआ है। विशेषकर जिन व्यक्तों पर उनकी मानुष्यता अधिक गहरी हो गयी है वहाँ उनके आत्मनम विन्म रमणीय विन्मों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सूची कवियों में सुभा के पूर और जमाक विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। पर सूची कवियों ने उन्हें कोकाकपालक प्रसंगों से सिंग कर

१ क मं पृ १४ सा २१।

२ क. म पृ १२ छापी ४।

'कीर मावा पापनी, हरि सू करे हराम।'

बादु रवाक की नामी माग १. पृ ६४।

नाम भासग राम का वहाँ वसे मगवान।

बादु हुम्नू परलर, हरि भावम का वाव।

१ गुर धम्म साधिन पृ. ११५६ (गुर अर्जुन) —

कोटि निसन कीने मकगार। कोटि मद्याणक काके मम सात।

कोटि महेशु बवार समाप। कोटि मम बयु सावन कार।

अत्यन्त लोकप्रिय रमणीय बिम्बों की सृष्टि की है। उनके मतानुसार सुधा के सुन्दरतम रूप की अभिव्यक्ति किन्नर या किन्नोरी में होती है तथा उनपर पारस्परिक प्रेम ही उद्दीपनगत सम्बन्धों की सृष्टि करता है। यही नहीं बल्कि अपने लोकप्रिय रमणीय बिम्ब की समीपता या गाँवरता में ही अज्ञाह की असीमता और जगन्मता के माध ही उसके अक रहमान' रूप का माधव करते हैं जो उन्हें अघतारवादी रमणीय-बिम्बत्व की प्रक्रिया के समझ कर देता है।

इस प्रकार कवच भक्ति काव्य में ही नहीं अपितु पुरातन या अनुगतत सभी कालों में रमणीय बिम्ब ही रसवत्ता या भावोत्तेजन की जमता प्रदान करता रहा है। संस्कृत विचारकों में भी रमणीय बिम्ब का अस्तित्व किसी न किसी रूप में उचित होता है। अमिनबगुप्त ने भाव की आकम्बल वस्तु पर विचार करते हुए बताया है कि रमणीय विषय वस्तु अनिचार्यतः एक ऐसी वस्तु है जिसमें एक या अधिक व्यक्ति प्रवृत्त होते हैं। उसमें भावक को साधारणी भाव तक पहुँचाने की अपूर्व जमता होती है।^१ आकम्बल वस्तु अथवा परम्परागत सुख या गीत हुआ करती है फिर भी उसमें स्वम्पार्थ विद्यमान है। क्योंकि आकम्बल वस्तु विचल नहीं है और न तो वह आशित उपस्थापना है अपितु वह उस कोरि की प्रतिबिम्बित वस्तु है जो अनेक सचात्पूरित गुणों से परिपूर्ण अछौकिक स्वभाव से युक्त है। कतिपय भारतीय शास्त्रकारों ने सहृदय क किये 'हृदय मुकुट' या हृदय-दर्पण' का प्रयोग किया है।^२ अमिनबगुप्त क कथनानुसार भट्टनायक ने सहृदय के हृदय-दर्पण पर रस की प्रतीति मानी है; किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से 'द्वय' पर यह रस की प्रतीति नहीं अपितु 'दर्पण' पर रमणीय बिम्ब का प्रतिबिम्बन है जो सहृदय को भावोद्दीप्ति या रसाप्लुत कर देता है। पंडितराज जगन्नाथ ने कोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करनेवाले कारण का विवेक करते हुए कहा है कि 'विशिष्ट स्वेकोत्तर आनन्द में पुनः पुनः अनुसम्बान रूप अर्थात् धारावाहिक भावना विशेष शब्द बोधात्मक अनुभव ही कारण है।'^३ बिम्ब का प्रवाह उत्तरोत्तर सघनतर होता जाता है। यह प्रवृत्ति उमी क ममामान्तर विहित होती है क्योंकि सहृदयों द्वारा बार-बार वाच करने की विधा हममें विहित है।

'भावना विशेषः पुनः पुनरनुसम्बानामामा' में पुनः पुनः अनुसम्बान' द्वारा

१ इत. वत्से वृ १५५। २ नटुनायक के ग्रन्थ का नाम ही सहृदय दर्पण है।
३ एत यं वृ ११। ४ सेम्ल. वि वृ ४५ में सान्त्वादन ने 'Repeated experiences of one object' कहा है।

धर्मों की भावना का वस्तुतः शब्दों के विम्बीकरण या विम्व विधान से बहुत कुछ लाभ प्रतीत होता है। जो वस्तु अच्छी लगती है वह हम बार-बार उसी की भावना करता है। उस भावना वस्तु का विम्व, उसके मन में सञ्चन होता जाता है। यह कार्य रमने या रमण वृत्ति के अधिकाधिक सम्पर्क के कारण होता है। आनन्दवर्धन ने 'राग' को भी रसधर्मक माना है। शरीर में जो वृत्तना की तरह विम्व में रमणीय चेतना की संवेदना होती है। वस्तुतः रमणीय चेतना ही विम्व में शीघ्र चेतना है, जो कला कृतियों में विम्व को सजीवता या प्राणवृत्ता प्रदान करती है।

विम्व-प्रतिविम्ववाद

सैवागम में विम्व प्रतिविम्व ही परमज्ञ और स्वतन्त्र क सम्बन्ध को आध्यात्मिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का माध्यम रहा है। इस मत के अनुसार विम्व की प्रतिविम्वित लक्ष्यता के होते हुए भी परमज्ञ की एकता यथावत् रहती है। जैसे अनेक वाद्य वस्तुओं के प्रतिविम्वित होने पर भी ध्वनि की एकता बनी रहती है। अतएव प्रतिविम्व अनिर्धार्यता उभरते उदाहरण है, जिसके चक्रवर्त्य यह ध्वनि पर प्रतिविम्वित होता है। इसलिये विम्व अनिर्धार्य रूप से चेतना प्राप्य और विचार की प्रकृति का है। अज्ञ से पूरक विम्व का जैसे ही कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है जैसे प्रतिविम्वित करनेवाले घातक से पूरक प्रतिविम्व की कोई सत्ता नहीं है। वाद्य वस्तु जो प्रतिविम्व का कारण है—यह वस्तुता उदाहरण कारण (मिठी और सूँची की तरह) नहीं है अपितु केवल निमित्त कारण है। अतः प्रतिविम्व अनिर्धार्यता वाद्य के कारण नहीं है, क्योंकि जहाँ उदाहरण कारण में स्थिरता (fixity) है निमित्त कारण में वैसा कुछ भी नहीं है। मिठी घट का उदाहरण कारण हो सकती है किन्तु वह नहीं क्योंकि वह हाथ में भी धुनाया जा सकता है। अज्ञ का प्रतिविम्व जगत् पर पड़ता है—यह स्वतन्त्र स्वतन्त्र अस्तित्व का जगत् नहीं है अपितु स्वतन्त्र अज्ञ के चलने हैं और इन प्रकार प्रतिविम्व के रूप में स्वतन्त्र करने की अज्ञ की शक्ति बलीम है।

रमणीय विम्बीकरण

रमणीय विम्बीकरण एक वह प्रक्रिया है जो चेतन और अचेतन दोनों स्थितियों में सक्रिय रहती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से रमणीय विम्बीकरण के कार्य-व्यापार में विम्व को अधिक रमणीय और प्राण बनाने के लिए

समाधान (rationalisation), परिपूर्ति (Compensation), प्रक्षेपण (Projection), उन्नयन (Sublimation) नुतिपरिवार (Negativisation of defect) आदि प्रक्रियाएँ दृश्योत्तर होती हैं। बिम्ब में रिक्तत्व या रमणीयता का बोध तभी होता है, जब धारणा-बिम्ब को अपनी इच्छित अनुकूल या अनुकूल बनाने के लिए धारणा-बिम्ब के आकम्बन बिम्ब बनाने के क्रम में मानस-विवेक में उसके प्रति आनारमक समाधान प्रस्तुत करता है। इस क्रम में वह बिम्ब के रमणीय-बोध को वृत्ति पहुँचानेवाले अभावों की मानसिक परिपूर्ति करता है। आकम्बन बिम्ब पर उसकी अभिक्रिया भी वृत्ति का अधिकाधिक प्रक्षेपण होने लगता है। कभी-कभी अपनी उच्च धारणाओं के द्वारा अपने आकम्बन बिम्ब की रमणीयता का उन्नयन करने लगता है, इसी उपक्रम में आकम्बन बिम्ब के समस्त दोषों अभावों और नुतियों की अनाद्यतन प्रकृति अचेतन रूप से होने लगती है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रक्रियाओं के फलस्वरूप आकम्बन बिम्ब ही उसके मन में रमणीय बिम्ब के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

बिम्ब का यों भी कतिपय मानसिक क्रियाओं में विविध स्थान है। बिम्ब के ही माध्यम से व्यक्ति में प्रसाह्वान और प्रत्यभिज्ञान इत्यादि क्रियाएँ सम्भव हो पाती हैं। प्राचा चिन्तन मात्रा का कल्पना, धारणा इत्यादि कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिनमें बिम्बों की आवश्यकता न पड़ती हो। कल्प वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के अभाव में भी बिम्ब उस वस्तु का मानसचित्र उपस्थित करता है। इसी से प्रत्यक्ष-बाध और बिम्ब-बोध में अन्तर यह होता है कि प्रत्यक्ष में बाधावरण की क्रिया प्रतिक्रियात्मक रूप में विद्यमानता रहती है किन्तु बिम्ब-बोध में प्रत्यक्ष-वस्तु, बाधावरण इत्यादि की उपेक्षा का उतना अधिक प्रावण्य नहीं रहता है। बिम्बीकरण में ज्ञानेश्वरों से सम्बद्ध बिम्बों का अतिरिक्त अनुबिम्ब (After image), प्रत्यक्ष-बिम्ब (Eidetic image), स्मृति-बिम्ब (Memory-image) काल्पनिक बिम्ब (Phantasy image) और स्वप्न बिम्ब (Dream image) का प्यारिचित योग रहता है। रमणीय बिम्बीकरण में इन सभी का सम्बन्ध होना के साथ-साथ मनोविज्ञान की दृष्टि से समीपता, सम्मनता और विरोध तीनों से समाहित साहचर्य भाव रमणीय बिम्ब को अधिक मार्मिक और प्राण्य बनाता है। अतः प्राचीन कलात्मक या उपास्यवादी कलात्मक अभिव्यक्तियों में अवनारीकरण वस्तुतः एक प्रकार की बिम्बीकरण की प्रक्रिया है जिनके प्रभाव से समस्त भारतीय साहित्य आरम्भ है।

रमणीय छवि से युक्त भाव-प्रतिमा

कवि या कलाकार विभिन्न आकृतियों में त्रिज सुविधों का बचन करता है, उनमें अधिकतर प्रायः प्राकृतिक, सामाजिक, परम्परागत, पौराणिक या काव्यमिक के विभिन्न भिन्न होते हैं, जिन्होंने कालान्तर में 'भाव-प्रतिमाओं' (आर्कैटइप्स) का रूप ग्रहण कर लिया है। भाव-प्रतिमाओं को हम उनकी आत्मा मान सकते हैं, क्योंकि वे विभिन्न के केवल स्वरूपन में ही नहीं अपितु उनके अधिक प्रायवाण बनाने में प्रबुद्धता का कार्य करती हैं। मनुष्य में मुख्यतः इन भाव-प्रतिमाओं को पशु, की भवता पुरुष-रूप में स्पष्ट करने की प्रवृत्ति अधिक रहती है। युग के की धीरे पुरुष में क्रमशः 'इतिमा' और 'प्रतिमा' के रूप में की धीरे पुरुष की अभिव्यक्ति मानी है। ये मनोविज्ञान बनकर मनुष्य के जेतन मन में ही नहीं अपितु उपचेतन अचेतन इत्यादि सभी में स्थित रहा करते हैं। किसी भी प्रकार का उद्दीपन मिच्छते ही व स्वप्न में, मादका में कल्पना में या कलात्मक कृतिओं में एक मूर्त छवि बनकर स्पष्ट हो जाते हैं। पुरुष भवता देवियों (शक्तिओं का अवतार) तथा पशु, पक्ष मनुष्य पर्यंत सभी आदि सभी का व अपने-अपने व्यवहार की या पुरुष स्थितों या 'पुण्यद', 'पुण्य-मूर्ति' जैसे उभय स्थितों में कलात्मक रंग से विभिन्न युक्तिसम्मत मूर्तित होने वाले प्रसंगों से अभिव्यक्त कर अभिव्यक्त किया करते हैं। इस दृष्टि से समस्त अवतार-रूप विभिन्न युगों के कवियों और कलाकारों की मूर्त सुविधों हैं। रमणीयता की दृष्टि से इनमें निम्न विभक्तताएं परिलक्षित होती हैं। १-कलाकार अवतार-सिद्ध-कृति के निर्माण के निमित्त एक पौराणिक भाव-प्रतिमात्मक मनोविज्ञान को आधार विभव के रूप में ग्रहण करता है और अपने मन में अवस्थित अनेक चित्रों के योग से उसे सर्वांग सुन्दर करने की चेष्टा करता है। जिनके हम पौराणिक कथा कही में ही 'तिलोत्तमा' प्रकिया कह सकते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि पुरुष या की अवतार सर्वदा जीवन की पूर्णवस्था अथवा किछोर और किछोरी रूप में चित्रित किए जाते हैं। जीवन के बुद्धिगत या हासगत पयातम्य (केवल विद्यु से किछोर रूप को जोड़ कर), इन पर कभी भी आराधित नहीं किए जाते, क्योंकि कलाकार इनके रूपों में पयातम्य की अपेक्षा अपने मनोगत आदर्श को ही चरितार्थ करना चाहता है।

इन कृतियों के आदर्श में दुष्टों के दमन तथा भक्त-प्रेमियों और देवताओं के प्रमोदन और आह्लादन साथ-साथ संश्लेषित रहते हैं। इनमें भयं

१. श्री व. विठे वॉ. दासगुप्त ने 'मातर देवता का स्वर्ण-प्राकृत्य' कहा है। पृ. ७९।

करता शीघ्रता के साथ साथ कमनीयता, आश्चर्य कान्ति और रमणीयता का भी अनुभूत सामन्वय रहता है। फलतः ये आभा की तरह एक साथ दो भावों का उदात्तकरण करते हुए प्रतीत होते हैं। भय का समय और आश्चर्य का अज्ञान दोनों क्रियाएँ एक साथ चककर इन दो अनुभूतियों पर उद्बलित मन को एक सामान्य रसात्मक वा रमणीय भाव-भूमि पर ही नहीं लाती हैं अपितु दर्शन के अवतारवादी आस्था से अनुप्राणित आदर्शों का उच्चपनीकरण करती हैं। सामाजिक स्तर पर होने वाले बहुसंख्यक उच्चपनीकरण में यही मनोसंतुलन (Psycho-Equilibrium Process) की प्रक्रिया विशेष रूप से सक्रिय रहती है।

रमणीय रस (Aesthetic Pleasure)

आश्चर्य या आश्चर्य की दृष्टि से जब हम सुन्दर वस्तु का मूल्यांकन करते हैं उस स्थिति में उस वस्तु की प्रतिक्रिया-स्वरूप रसभाव या रसानुभावन की क्रिया विशेष विचारणा का विषय रही है। कॉट ने 'दृष्टिक ऑफ़ जजमेंट' में इन संदर्भ में विचार करते हुए बताया है कि यदि हम किसी वस्तु का विवेक करना चाहें कि कोई वस्तु सुन्दर है या नहीं तो हम बुद्धि के द्वारा ज्ञान के निमित्त किसी वस्तु के विभव की खोज नहीं करते; बल्कि सम्भवतः प्रज्ञा या बुद्धि के सहयोग से कल्पना के द्वारा हम विभवधारक व्यक्ति की रचि या अरचि अथवा रस या नीरस जैसी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। इसलिये आस्वादन का निर्णय बौद्धिक या तार्किक निर्णय न होकर रमणीय (Aesthetic) निर्णय है—जिसका तात्पर्य यह है कि उसके मूल्यांकन की आधारभूमि आत्मविद्युता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। विभव प्रत्येक प्रसंगाद्बोधन में वस्तुमत्ता की जमता से युक्त है यहाँ तक कि संवेदना में भी, यहाँ यह अनुभावित विभव को पदार्थ रूप में अमिदित करता है। इसका एकमात्र अपवाद आनन्द या अयसाद् की भावना है; जो वस्तु में और किसी चीज का चोखन न कर कबल उस भावनाभूति मात्र को सूचित करती है तथा जो आश्चर्य में विभव के प्रभावबल स्वयं उद्भूत होती है।^१ आज सांत्वादन के अनुसार 'रमणीय रस भौतिक अवस्थाओं से सम्बन्ध है, क्योंकि उसके प्रक्रिया काज और ऑर्गन तथा रम्युति और मरित्युत्क की भव्य सहस्र क्रियाओं पर निर्भर करती है।^२ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उस संबंधम तत्व को आत्मबल वस्तु के गुणों का रूपान्तर कहा जा सकता है।^३ जोस्तोके ने

१. रिचर्ड वॉट में अनूदित दृष्टिक-जत्र पृ. १८४।

२. सेस वि. पृ. ३१।

३. सेस वि. पृ. ४४।

इस आत्मन् को सामान्य जलिक रसात्मन् से विभिन्न बताया है।^१ जोसे के अनुसार 'रमणीय रस का रमणीय अभिव्यक्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्भवतः उसके अभाव में रमणीय रस की निष्पत्ति कदापि सम्भव नहीं है। उसके मतानुसार रमणीय रस कभी-कभी वाह्य पदार्थों से संबन्धित होता रहता है। जो सजीवजन उसके साथ अनुभूत हो जाते हैं। रमणीय रस की उत्पत्ति प्रायः कवियों या कलाकारों की अभिव्यक्त कृतियों द्वारा होती है।^२ कैरिट ने रमणीय रस में सबेगों की संवेदनीयता को प्रमुख भाषा है। उसकी दृष्टि में रमणीय रस वस्तुतः संवेगाभिव्यक्ति की एक प्रक्रिया है।^३ ये सबेग वे साध हैं जो संवेदन की दशा से उत्पन्न हुए हैं या उत्पन्न किए गए हैं। कैरिट ने इनके स्तर को सामान्य से कुछ उच्चतर भाषा है।

उपर्युक्त कथनों का सूत्रम विरसेपण करने पर देना प्रतीत होता है कि इन सभी मन्त्रकों में विचार-वैषम्य से अधिक रमणीय रस के विभिन्न र्णों पर दृष्टिगत है। कॉट में रमणीय आकम्पन वस्तु पृथीत हुयी है ता सात्यापन में रमणीय रस के उजायक स्वान। बायीक ने उसक स्पामिग्य (*duration*) पर बल दिया है ता फोच म उसकी अभिव्यक्ति पर। और कैरिट ने सबेगों की रिबति स्थापित कर इनक मूक उजायक तर्कों की ओर स्पाम आकृष्ट किया है।

यों काव्य एक कलाकृतियों के मयीककों ने कृति से उद्घाषित जिस रपाद वा आनन्द की कल्पना को है तथा उसमें जिस कारण तत्त्व की कर्षा की है वह 'रमणीय' कवक सीम्दर्ये का विसेपण वा पयोष नहीं अविगु रवय एक प्रकार का रस ही है जो मर्मकों और सीम्दपबन्तानो द्वारा अस्वाहित हाता रहा है।^४ क्योंकि कृति की आर प्रादक को आकृष्ट करने वाली वह रमक-कृति या कुक हद तक सिद्धर की शीका वृत्ति या लीक्य-कृति के समानांतर ह प्रादक में कृति के घति अधिर्घषण आगुत करती है तथा

१ हि पर्थे पृ. ७। *Pleasure in Nature of a Feeling or Presentation as distinct From Pleasure in its Momentary or expected Stimulation of The organism.*

२ वसे पृ ८०। ३ इन्दी. पर्थे पृ १४। ४ इन्दी पर्थे पृ ११।

५. आर्ट एण्ड पृ ७३ पंथरमद्य साठी के जोष पदम् (*The Philosophy of Aesthetic Pleasure*) में रस का विरगुन विवेचन हुआ है। जो विरिपवा ने (आर्ट एण्ड पृ. २२) प्राय 'रहातुमर' के किये (*Aesthetic Experience*) का मयीम किया है। सोसंके हाप प्रभुक (हि पर्थे) *Aesthetic enjoy* 'पंथीक रसात्मक' का मयीम पदम् है।

विभिन्न संवेगों और भावों से अनुप्राणित या उद्दीपित होकर 'रमणीय रस' में परिणत हो जाती है। ऐन्द्रिक रसास्वादन में इन मधुर, अम्ल, कषण कटु, तिक्त, कषाय जैसे पद रसों का आस्वादन करते हैं। यहाँ आस्थात्मक वृत्ति में रासायनिक प्रतिक्रियाओं के कारण रसवैषम्य कथित होता है। किन्तु 'रमणवृत्ति' ऐन्द्रिक वृत्तियों से अधिक आत्मनिष्ठ वह मनोगत वृत्ति है जिसमें आत्मरति आत्मप्रतिष्ठा आदि आत्मानन्द और आत्मानुभव जैसे मनोगत स्वापार सक्ति रहते हैं। प्राचीन रसबन्धनों में मूढान्य अमिषव गुण ने सम्भवतः 'रमणीय रस' के अनुरूप रस आनन्द और परम भोग के पर्याय-रूप में 'अमरकार' का प्रयोग किया है।^१ आरुकारिकों में मामह ते साधुकाम्य के विविध प्रयोजनों में 'मोक्षि' को भी स्थान दिया है। प्रायः रमणीय रस का संचार प्रीति के गुणः पुषः उद्दीपन द्वारा सम्भव है।^२ बामन ने 'काम्बालंकार सूत्र' में सम्भवतः भावम् क क्षिप् प्रीति का प्रयोग किया है। काम्य क प्रयोजन^३ पर विचार करते समय तीन रीतियों (शैली, पंचाक्षी, बैदनी) एवं उनके गुणों (भोज प्रसाद, भावुर्य सौकुमार्य, उदारता श्लेष अस्ति समता समाधि) से अनुप्राणित काम्य की तुलना उम्होंने रसाओं के भीतर प्रतिष्ठित चित्र से की है।^४ उनकी दृष्टि में जैसे चित्र के पटित रत्ना को चतुरता पूर्वक खींचते हैं वसी प्रकार प्राज्ञ (कवि) बाणी को समस्त गुणों से गुच्छित करते हैं।^५ इन कवनों के अनुसार ककाकार और कवि दोनों गुण समन्वित जिन कवियों का निर्माण करते हैं वे 'रमणीय रस' को विष्पन्न करने वाले एक प्रकार के 'रमणीय आकम्बन विम्ब' ही प्रणीत होते हैं। क्योंकि इसकी पुष्टि बामन के 'शीष्टि रसत्व अस्ति' से भी होती है। बामन के अनुसार जिस रचना में शीष्टि रसत्व हो—वह 'शीष्टि रसत्व अस्ति है।^६ बामन क इस शीष्टिरसत्व को 'रमणीय रस' क बहुत निकट माना जा सकता है।

'रमणीय रस' निष्पत्ति की क्रिया का सम्बन्ध परम्परागत रसों की शक्ति महत्त्व, पाठक प्राहक प्रेक्षक इत्यादि से ही अधिक है। क्योंकि रस

१ इन पदों पृ १५।

२ मामह काम्बालंकार १ २ 'मोक्षि करीति क्षीणि च साधुकाम्यविरम्बनम् ।

३ का सू (बामन) १ २, ५ 'काम्यं सद् इच्छावार्थं प्रीतिकीर्तितुत्वात् ।'

४ का सू (बामन) १ २ १४ 'यत्प्राप्तं तिस्रु रीतिषु रेषास्ति च चित्रं काम्यं प्रति चित्रमिति ।

५. का सू (बामन) ४ ११९ 'यथा हि त्रिपते रेषा अगुर् चित्रपण्डितेः ।

६. का. सू (बामन) ४. १५७ 'यथैव वाप्यपि प्राचीः समस्तगुणगुच्छिता ।'

न तो कर्ता में रिक्त रहता है न कृति में। प्राचीन सभी रचना को कृति, कर्ता और सङ्घट्य की दृष्टि से विभक्त रूपों में विभाजित किया जा सकता है :-

कृति में शब्द, अर्थ, अङ्कार, गुण

कर्ता में—वक्रोक्ति, सङ्घट्य में—रस और र्वनि।

जहाँ तक रस और र्वनि का सम्बन्ध है—रस अविचार्य रूप से र्वनि रूप ही है, कथन रूप नहीं। व्यक्त होने के कारण रस र्वनि का सर्वोत्कृष्ट रूप है। आत्मन्दर्वर्यन ने रस की अयेदा र्वनि की दृष्टि से सङ्घट्य-व्यापार पर विस्तृत विचार किया है। मारम्म में ही वे कहते हैं कि 'सङ्घट्यों के मन की प्रसन्नता क छिपू हम उस (र्वनि) के स्वरूप का निरूपण करते हैं।' काव्य के चाक्षुष हेतु सङ्घट्य इन्द्रादक शब्दार्थयुक्त तत्त्व ही काव्य का कथन है। उनके द्वारा प्रयुक्त 'सङ्घट्यमना प्रीतये' का चात्पर्य एति में 'आवन्दु' माना गया है। अतएव सङ्घट्यों के मन में आत्मन्द-काव्य के छिपू उन्होंने र्वनि को प्रतिष्ठित किया है। सङ्घट्यों के अनुसार 'अर्थ' अर्थ के बाध्य और प्रतीपमान को भेद होते हैं। जिनमें प्रतीपमान अर्थ रमणीय सौन्दर्य या 'काव्य' की तरह महाकवियों की कृतिओं में मासित होता है।^१ इनके मतानुसार केवल शब्दात् आदि रसों का नाम गिनाने से रस की प्रतीति नहीं होती बरिक्त रसोत्पत्ति के छिपू (रमणीय आत्मन्म विम्ब के रूप में) विभावों के प्रतिपादन अविचार्य होते हैं। आत्मन्दर्वर्यन ने जिस विभाजन-व्यापार की चर्चा की है वह एक प्रकार से विम्बिकरण की ही प्रक्रिया है। प्रतीपमान रसादि रूप स्वस्वर्य कमी बाध्य नहीं होता अपितु सदैव प्रतीपमान होता है। यह प्रतीति, व्यञ्जना कृति के द्वारा होती है। शब्दों की अर्थ-प्रतीति में केवल अकार उत्पन्न करने की प्रमत्ता होती है। किन्तु व्यञ्जना क द्वारा जो अर्थ-प्रतीति होती है—वह एक प्रकार का 'विम्बोज्ञापन' व्यापार है, जो सङ्घट्य क मन में आङ्कारक रमणीय आत्मन्म विम्ब की सृष्टि करता है। रमणीय विम्ब जिस आङ्कारक कृति का निमित्त कारण है—वही कृति रमणीय रस क रूप में आत्साद्य होती है।

रमणीय आत्मन्म विम्ब —

एव्य काव्य में विम्बोद्बोधन वा प्रत्यक्ष-बोध की सर्वाधिक प्रमत्ता होती है; क्योंकि नाटकीय विभाजन-व्यापार में प्रत्यक्ष-बोध क द्वारा रमणीय विम्बों

१ अन्वयाशोक पृ. ५ १ १ 'तेन मूनः सङ्घट्यमन-जीतये तत्त्वकल्पम्।'

२ अन्वयाशोक पृ. २४। ३ अन्वयाशोक पृ. २९-३०।

प्रतीपमान पुनरत्यदैव, वस्तुतः वाच्योपु महाकवीमाह।

वद एव्य प्रतिक्रियावशाद्विरीकं विभाति काव्यमिवाङ्कारात्।

को उद्दीवित करने की क्रियाएँ चलती हैं। जमिन्दार युद्ध ने इस प्रत्यक्षीकरण को अनुकरण प्रतिबिम्ब चित्र साररूप आरोप अथवासाध उपेक्षा, स्वप्न, माया और इन्द्रबाक आदि इस लौकिक प्रतीतियों तथा पयाध ज्ञान मिथ्या ज्ञान सादय, जमवधारण अतथ्यवसाधारमक ज्ञान से भिन्न या विकल्पन माना है। उगनी दृष्टि में भाष्य 'आस्वाद् रूप सवदन संबध वस्तु' रूप स्वभाव स युक्त है।^१ इमेध मुख्य कारण यह है कि प्राचीन काव्यों में लौकिक मायाकार भाष्य नहीं या अपितु वह मोक्ष या मुक्ति का साधन या। भारतवर्ष में प्रेय क माध्यम से श्रेय की उपामना की विशेष प्रवृत्ति रही है। इसी से 'चतुर्था कल-प्राप्ति में अतिम कक मुक्ति है। प्राचीन काव्य या कलाकृतियों का लक्ष्य केवल रंजन न होकर रमणीय रसास्वादन रहा है। काव्य या कल्प में यही रमणीय रसवता अपनी समस्त अलौकिक विशेषताओं का माध प्वक्षित या प्रतीपमान होती है। कुम्तक ने यह प्रस उठया है कि काव्य को जीवित रत्ननेवाकी कौन सी सत्ता है? कलाकृति की अक्षुण्ण एवं स्वायी रमणीयता की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। युग-युगान्तर में रमणीयता के बरहते हुए प्रतिमान काव्य एक कलाकृति की रमणीय-वतता को मुमुर्षु बना रत है। इसी से कर्ता में निहित शक्ति 'वाग्देवि को कुम्तक ने काव्य का जीवित रत्ननेवाकी सत्ता क रूप में प्रतिपादन किया है। निम्नय ही यह वाग्देवि कबल कक उक्ति मात्र नहीं है, अपितु रमणीय विम्बों की उन्नाबना करनेवाकी अमिष्यविक्रमित लैकी है। कवक र्युक अंकन भीर कथामकता कका वा काव्य का विररवाई बनाने में सक्षम नहीं है। कुम्तक की दृष्टि में विरगतर रस को प्रकाहित करनेवाक संघर्षों से परिपूर्ण कवियों की वागी कलामात्र क आशय से जीवित नहीं रहती है।^२ बहुत से कव पदायों का भी रसाईपन सामर्प्य क कारण सुन्दर लयन हा जाता है।^३ कुम्तक न वस्तु से अधिक अमिष्यविक्रि-सापेक्ष रूप विधान की रमणीयता को प्रतिपादित किया है। पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों में पाकर ने रमणीय रूप-विधान पर विस्तृत प्रकाश डाला है। पाकर क अनुसार रमणीय रूप-विधान १ सूत्रीय

१ अमि म. ५ २१।

२ वाग्देवि ५ ४९५-४१११।

निरन्तरसरसोत्तारगर्मसम्भ्रमनिर्मलः।

विर कथानां शोबन्दि न कथामात्रमात्रिताः ५

३ वाग्देवि ५. ३३९-३४८।

रसोदीपनसामर्थ्यनिबन्धनदम्पुरम् ।

पेनान्कननुकथान्यं वधानां चापि नूतना ५

मिश्रणों पर निर्भर करता है।^१ इनमें प्रथम है—अधिक एकता या अनेकता में एकता (Organic unity or unity in Variety) यह रमणीय रूप-विधान का बह पक्ष है। अन्तमें विभिन्न अंग जुटकर एक शरीर का निर्माण करते हैं। कलाकृति इस दशा में कबल कलाकार की ही कल्पना की मूर्ति नहीं रहती, अपितु सहस्रप या प्रज्ञा का मानस-कल्पना का रमणीय चित्र बन जाती है। सुन्दर कृति के लिए सर्वांगता अत्यन्त आवश्यक है। कुम्तक भी 'बहोक्ति जीविन में रमणीय काव्य के स्वरूप-विधान के लिए ९ प्रकार के वाक्य (१—रुचिवक्रता, २—पर्यायबद्धता ३—उपचार वक्रता ४—विशेष्यबद्धता, ५—महतिवक्रता ६—वृत्तिवैचित्र्यबद्धता) तथा इनके भेदों की संश्रयनात्मक एकता के प्रति कहते हैं कि 'कहीं-कहीं एक दूमेरे की शोभा के लिए बहुत से वक्रता-प्रकार इकट्ठे होकर इस 'शोभा की अनेक (रागों में युक्त रगीन) चित्र की दृष्टि पर मरदा मनाहर बना दते हैं। इस प्रकार वाक्यविक्रम एकता के प्रति दोनों विन्तकों में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है। पाकर ने दूमेरे सिद्धान्त विषयवस्तु (Theme) की मध्य में खर्चा करते हुए कहा है कि किसी भी कलाकृति की विषय-वस्तु मात्र अपने आप में पर्याप्त नहीं है। अपितु उसे विसृत और बलहून होना चाहिए। इसका एक प्रमुख ढंग हमारे मस्तिष्क में पुनः पुनः गुञ्जित करना है। परन्तु यह पुनरावृत्ति उसे नीरस बना देती है।^२ कुम्तक ने भी वच्य वस्तु की खर्चा करत हुए विषय-वस्तु की व्यापकता में अतन और अक्षतन दोनों को समाहित किया है। उनका मतानुसार 'व्यनय वस्तु' का रमणीयता से परिपूर्ण (रमणीयतम समर्थ) इस (येनम अक्षतन पक्षय रूप) शरीर को ही (काव्य में) उपादेय ज्ञान से कवियों की वर्णना का विषय समझना चाहिए।^३ इस तरह कुम्तक ने विषय वस्तु में रमणीयता का होना भी आवश्यक माना है। अन्त प्रकार सभी भूमिओं में अत्र नहीं उत्पन्न होता जैसे ही सभी वस्तुओं में रमणीय रूप-विधान की समता नहीं होती।

१ प्रो. एल्से व १७५ में संश्लिष्ट पाकर की हिन 'The Analysis of Art' का सूत्रण अध्याय।

२. बहोक्ति व ६४-१ १८। ४ बहोक्ति व २८९-२९३।

परस्परस्व शान्तामी बरुष पणिना बकिन्।

मधारावनचननेर्ना विवचदाया मनोहरान्।

३ प्रो. एल्से व १७७। ५. बहोक्ति (अनु) व ३३४-३३९।

अरीरमिरअर्भस्व रामणीय निरम्।

उपादेयना देय करीनां वर्नात्पदम्।

‘पाकैर का तीसरा सिद्धान्त है—‘प्रसंगवैविध्य (Thematic Variation) कलात्मिकता में एक ही वस्तु का बार-बार प्रकटन या एक ही प्रसंग की अवतारणा मर्मज्ञों के मन में एकस्वरता या अस्वस्थ उत्पन्न करती है। अतएव प्रसंग-वैविध्य के अन्तर्गत कल्पकृति सद्बद्धन या पारशी के मर्ममें पुनः पुनः प्रतिष्ठापित होती है। जिसके परिणामस्वरूप प्रसंग-वैविध्य उसमें नवीनता का संचार करता है। रमणीय रूप-विधान में इस विचारणा का सर्वाधिक महत्त्व रहा है। ‘राम-चरित’ के एक होत हुए भी प्रसंगवैविध्य से कवियों ने अपने राम-काव्यों में नवीन सौन्दर्य-सृष्टि की है। कुम्भक की प्रकरण-बद्धता का ‘प्रसंग-वैविध्य’ से बहुत कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। कुम्भक ने ‘प्रकरण-बद्धता’ के हून में दो १—पानों की प्रकृति बद्धता २—उत्पाद्यक-बद्धता, ३—उपकरणोपकरण-बद्धता ४—आवृत्ति बद्धता ५—प्रार्थनाप्रकरण-बद्धता, ६—प्रकरणरस-बद्धता, ७—अन्तःप्रस्तुत-बद्धता, ८—नाटकान्तरांत-नाटक-बद्धता, ९—मुख्यसम्प्राप्ति-विभिन्न-बद्धता के द्वारा प्रायः ‘प्रसंग-वैविध्य’ के ही विभिन्न उपादानों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। ‘पाकैर ने प्रसंग-वैविध्य में जिसे Maximum of Sameness with the Minimum of difference’ बताया है, कुम्भक ने भी ऐसे ही प्रकरण-बद्धता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ‘प्रत्येक प्रकरण में कवि की प्रीति प्रतिभा के प्रभाव से आशोचित एक ही अथ बार बार विनय होता हुआ भी सर्वथा नवीन अमल्लभ उत्पन्न करता है।’

पाकैर का चौथा सिद्धान्त Balance संस्कृत समीचकों के ‘औचित्य के समकक्ष विहित होता है। क्योंकि दोनों कला एवं काव्य-कृतियों में विभिन्न निर्मापक तत्वों की सौन्दर्य-परक एकता के परिचायक हैं। कला-कृतियों में वर्ण अक्षर-रज कूटाई, बहाई विरोधी सद्य आदि सभी तत्वों का समतुल्य विहित रहता है। येमेन्द्र के अनुसार पद्य, वाक्य प्रवर्णार्थ गुण, अलंकार, रस क्रिया कारक, किन्न, बचन विशेषण, उपसर्ग, विपाठ, अक्ष, ऐस, कुछ प्रत तत्त्व सद्य अमिमाय, स्वभाव, सार-संग्रह, प्रतिभा, अक्षर्या, विचार नाम, आशीर्वाद, आदि का उचित निर्वाह मर्म स्वार्थों के समाज काव्य-शरीर में व्याप्त प्राणों के समाज औचित्य की स्थापना करना है।’ अतः काव्य एवं कला दोनों के रूप-विधान में समस्त तत्वों के समुचित

१. ब्रह्मोक्ति (हि. अनु.) ४१-२५।

२. ब्रह्मोक्ति (हि. अनु.) ५ १-४७०। प्रतिप्रकरणं प्रीतिप्रतिनामोपबोधितम्। एक एवप्रतिवेवामा बन्धमानं पुनः पुनः।

३. भा. का. भा. ५. ३४०।

स्थापना क द्वारा ही रमणीय बनाया जा सकता है। कुन्तक ने भी ब्रह्मा के समस्त रूपों में किसी न किसी प्रकार के औचित्य का आधार माना है। काव्य विवेचन के क्षेत्र में रमणीयता की दृष्टि से मुकुमार, विभिन्न और मध्यम तीम मार्गों की स्थापना की थी। इन तीनों में सामान्य गुणों को उन्होंने औचित्य में तथा विशिष्ट गुणों को 'सौभाग्य' में अन्तर्भुक्त किया है।

पार्कर के शेष दो सिद्धांतों में 'Hierarchy' और 'Evolution' वस्तु की कदिवद्धता और क्रमिक विकास से व्यक्त सम्बद्ध हैं। विशेषकर पार्कर ने 'Hierarchy' का तात्पर्य 'Species of evolution' तथा जाति या गोत्र-विकास से किया है, जो कुन्तक की दृष्टि ब्रह्मा के समानान्तर प्रतीत होता है। उपर्युक्त भयवचन से मेरा मतलब दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना नहीं है अपितु यह अंकित करता है कि कदा एव काव्य क्षेत्र में रूप विद्या की दृष्टि से जो मीमांसा होती रही है, वह वस्तुतः रमणीय रूप विद्या की है। पूर्व मध्यकाळीन युग के समीपक कुन्तक की यन्त्रिकी के रूप में की गई स्थापनाएं विद्युत् रूप से सौम्यर्ष शास्त्रीय और रमणीय प्रकृति की हैं। यह केवल विवेचन के क्रम में प्रयोग किए गए—काव्य, सौम्यर्ष, रमणीय मनोहर, सौभाग्य, माहुर्य, मुकुमार, शोभा आदि सौम्यर्षपरक शब्दों से ही इंगित नहीं होता, अपितु उनके विवेचन की सम्पूर्ण प्रणाली काव्य एवं कव्य (अमानास रूप से) दोनों को समाधिष्ट करनेवाली सौम्यर्ष शास्त्रीय प्रणाली है। उनका रूप विद्या वस्तुतः रमणीय रूप विद्या है। बन्ध-सौम्यर्ष के द्वारा काव्य का विद्या करने वाले मुकुमार, विभिन्न और मध्यम मार्ग रमणीय रूप-विद्या ही नहीं अपितु रमणीय विद्य-सृष्टि का भी अग्रवच रूप से उपस्थापक करते हैं। कुन्तक के द्वारा प्रयुक्त 'जाया' 'विद्य जाया' और 'विद्य' जैसे पद या शब्द परोक्ष रूप से रमणीय आत्मबन्ध विद्य की भी पुष्टि करते हैं।

कठिपक श्लोकों में कुन्तक ने सम्भवतः रमणीय विद्य क समानान्तर 'विद्यजाया' का प्रयोग किया है। इनके मतानुसार 'कहीं-कहीं एक दूसरे की शोभा के लिए बहुत से ब्रह्मात्मकार इकट्ठे होकर इस शोभा को अनेक रंगों से कुछ रंगीन चित्रों की ज्ञाना के समान मनोहर बना देते हैं।' इति

२. दि बभ्रोक्ति २।११ 'मद्युग्धजाया' २।२८ 'अनेक जाया', २।५० 'बन्धजाया' २।१ 'रम्यजाया', २।५ 'बन्धजाया' तथा २।१५ 'विद्यजाया मनीहरम्' २।५ 'मनीहर विद्य' का प्रयोग किया है। २. दि बभ्रोक्ति पृ. २८५-२।१४।

परस्पररूप दोकाले परमः पणितः कविः।

मकता बन्धवन्धेयं विद्यजायामनोहरम् ॥

प्रकार वाक्य-बद्धता के प्रसंग में इन्होंने चित्रकार के कौशल को उदाहरण करत हुए कहा है कि सुन्दर छाया मिथि पर अश्रित चित्र के रंगों क मीम्हर्ष से भिन्न चित्रकार की मन हरण करनेवाली अनिर्वचनीय निपुणता क समान काव्य-निर्माता का कुछ और अनिर्वचनीय कौशल वाक्यबद्धता है ।' इतकी दृष्टि में अर्थ और वर्णन वस्तु का रमणीयता से परिपूर्ण करीर ही कवियों का कर्ण विषय है ।' उपर्युक्त कथनों में 'चित्रपञ्चाया' मनोहर चित्र और रमणीय शरीर से रमणीय इस क आत्मन्यम 'रमणीय विम्ब की पुष्टि होती है । यही वही 'वाणी क्यकता के पद पङ्क्तों में रहने वाली सरसत्व सम्पत्ति क अनुक्य और बकता से उजासित होने वाली जो अपूर्व उच्चक शोभा प्रकाशित हो रही है उसको देखकर चतुर (विद्वान्) जमर गनों को वाक्य रूप फूलों में रहनेवाले, सुगन्ध फैलाने वाले अिन्न मनोहर मनु की पत्नी उक्त्य से मुक्त होकर पाग करने ' का परामर्श इन्होंने दिया है— वह 'मनोहर मनु' क रूप में 'रमणीय रस की ही स्मरण करता है । कविराज किरवाप ने रस एवं उसके आत्मन्यम का उच्चमन कर दिया है । उनकी दृष्टि में रस 'महास्वात्ममोहर' है । प्रारम्भ से ही भारतीय साधना एक अग साहित्य भी रहा था । दरप और अर्थ दोनों का एक प्रबोजन मोच था ।

इसीसे भारतीय काव्य केवल मनोरंजन के साधन न होकर लोकोत्तर आनन्द की दृष्टि करनेवाले काव्य समझे जाते थे । एकता लौकिक में अलौकिक क और लोक में लोकोत्तर अस्कार दर्शन की जो प्रकृति महाकाव्यों एवं उनकी परम्परा में आनेवाले साहित्य में विकसित हुई इसक किये उपर्युक्त आत्मन्यम की आवश्यकता थी; और इस अभाव को अवतारवाद ने पूर्ण किया क्योंकि लौकिक चरितनायक में लोकोत्तर या अलौकिक प्रकृति का दसन अवतारवादी प्रगाथी क द्वारा ही सम्भव था । अतः चरितनायकों और विभिन्न उपरस कर्णों में

१ दि कथोक्ति पृ ११४-११४ ।

मनोहरककोस्केटवर्णपञ्चायामिभः कृष्ण ।

चित्रस्वैय मनोहारि कर्तुं दिम्परि कौशलम् ॥

२ दि कथोक्ति पृ ११४-११५ ।

दरीमिदमभस्व रामणीयकनिर्मेरम् ।

कपादेवतथा श्रेय कवीनां वर्धनास्वरम् ॥

३ दि कथोक्ति पृ ११०-११५ ।

वाक्यकथा वदपठवास्तदवता वा ककथोद्गतिसी

विशिष्टिः सरसत्वसम्पुत्रिजा कापुत्रकला जम्पति ।

तामालोष्ण विदम्बद्वदरगनेर्वाक्वमसूनाम

दयतामोदमनीहर्त मनु मथोत्काण्डाकुलं वीपताम् ॥

अनन्त एव अनीम मग्न का अवतरित रमणीय आछन्दन बिम्ब काव्य में गृहीत हुआ। उसका सतोगुणी सगुणसाकार रूप स्वरिक रसात्रेक का निमित्त कारण बन गया। इस प्रकार लौकिक आछन्दन में भौतिक का उपस्थापन यदि अवतारवादी रमणीय बिम्ब में चरम सीमा का स्पर्श करता है, तो उससे उद्भूत होने वाला रमणीय रस 'महास्वास्वहोदर' के रूप में रसास्वास्व की चरम परिणति को ही चरितार्थ करता है। मध्यकालीन साधना में भक्ति के द्विपु भक्ति और कीला क द्विपु कीला का छाप प्रकटित हो जाने पर कील और चरित के अतस ज्योत अवतार उपास्य रमणीय बिम्ब के रूप में आराध्य हो गए। पूर्ववर्ती काव्य में भारतीय इतिहास एव कला का छाप प्रेय के माध्यम से प्रेय की सिद्धि प्राप्त करना था। उत्तरवर्ती 'भक्ति क द्विपु भक्ति युग में आकर प्रेम स्वयं साधन और साध्य दोनों बन गया। यह प्रेम इस युग में अल्पन्त उच्चयनी-मृत (Sublimated) प्रियत्व' के रूप में साध्य हुआ। जो रमणीय उपास्य आछन्दन के योग से 'रमणीय रस' होकर आस्वाद्य होता रहा है।

स्थायी भाव प्रियत्व

रमणीय रस का स्वाधी भाव 'प्रियत्व' अनेक रूपों में प्राचीन काव्यमय में कथित होता है। विशेषकर 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में आत्मा क प्रियत्व की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। उसी क्रम में कहा गया है—'सबक प्रयोजन क द्विपु सब प्रिय नहीं होते अपने ही प्रयोजन क द्विपु सब प्रिय होते हैं।' 'अतो पमियद्' में प्रेय के साथ प्रेय का भी उल्लेख हुआ है। वहाँ प्रेय मनुष्य की सामान्य भोग वृत्ति का हेतु रहा है।^१ आहकारिकों में मामह ने चतुर्वर्ग ककप्रसि के अतिरिक्त प्रिय को भी काव्य का छाप माना है।^२ वही ने 'मीतिकर भाव-कथन क द्विपु 'प्रेय' अहकार की चर्चा की है।^३ और उक्त क अनुसार रति आदि भावों क सूचक अनुभाव आदि क द्वारा की गयी काव्य-रचना में 'प्रेय अहकार का अस्तित्व है।'^४ किन्तु मामह क अन्वय

१ सा ६ ५ ४८-३।२।

२ बृ अ २, ४ ५ 'न ना अरे सर्वत्र कामाव सर्वे प्रिय मन्वत्प्रयत्नस्तु कामाव सर्वे प्रियं मन्वति। ३. अह १ १ २।

मेवम प्रेयस्य मनुष्यमेतस्यो सम्पत्तौ विदितकि नीर'।

अथो हि भीरोऽपिप्रेयसो वृणोते प्रथो मन्वो बोमथेमाद् वृणोते ॥'

४ काम्या (मामह) १, २ 'मीत्रि करोति क्षीनि च साधुधम्मनिषण्णत्'।

५. काम्या (वण्डी) २, २७५।

६. काम्य सा सं ४२।

नामन ने पुनः 'प्रीति' को काव्य का प्रयोजन माना है।^१ आबन्धुबर्ज़न ने 'सहृदयों के मन में प्रीति' (सहृदयमनःप्रीतये) की चर्चा सहृदय के मन में निहित आनन्द के रूपे किया है।^२ कुम्भक का 'हृदयप्लावकारक' एक प्रकार से 'प्रीति' या 'प्रियत्व' की प्रक्रिया का चोतन करता है।^३ बिचनाव कविराज ने 'प्रियत्व' को 'प्रेयस्' बर्णकार में प्रतिष्ठित किया है। उनके मतानुसार 'भाव यदि किसी का अंग हो तो प्रेयस बर्णकार होता है। धरमन्त प्रिय होने के कारण इसे प्रेयस कहा जाता है।'^४ इसकी पुष्टि में उन्होंने किस 'सूयनयनी' का उदाहरण दिया है—वह स्मरणात्म्य रमणीय भावमय बिम्ब है, जो प्रेयस् के उद्दीपन का कारण है। इसके अतिरिक्त 'साहित्यरूपन' के प्रारम्भ में ही बिचनाव ने भामह को अनुश्रेद्धन करते हुए 'प्रीति को काव्य का एक माना है।'^५ 'प्रीति के पर्याय वा निकटवर्ती शब्द 'स्नेह' की चर्चा अभिनवगुप्त ने स्नेह रस' के रूप में की है। ऐसा लगता है कि 'स्नेह रस का उस काक में अस्तित्व था जिसके चकते अभिनव गुप्त को उसका पचन करना पड़ा। उनकी दृष्टि में 'स्नेह' आसक्ति या आकर्षण का नाम है,^६ जो रति या उत्साह में ही अन्तर्भुक्त हो जाता है। यों आशकक 'स्नेह' अपने से छोटे के प्रति प्रेम या 'प्रीति' के निमित्त ही प्रवृत्त रहा है। किन्तु अभिनव गुप्त ने स्नेह-व्यापार के अितने उद्धारण रूपे हैं—बाष्पक का मृता-पिता के प्रति पुत्रक का मित्रजव के प्रति कर्मजादि का भाई के प्रति, बृद्ध का पुत्र के प्रति—ये सब मिल कर 'प्रियत्व' की परिपुष्टि करते हैं। अभिनव गुप्त ने 'स्नेह' का रति उत्साह जैसे स्वाधी भावों में अन्तर्भुक्त होना माना है। इससे हम 'स्नेह' को रस की अपेक्षा स्थायी भावों के ही समानान्तर अधिक मान सकते हैं। स्नेह 'आकर्षण' और 'आसक्ति' जैसे रमणीय रस के अनुभावों का पर्याय होकर 'प्रियत्व' का ही बोध कराता है। भोज ने 'रसोक्ति की बीबीस विभूतियों में त्रिण ह्रास्य महा आदिषों वाले प्रेम और प्रेम-पुष्टियों को ग्रहण किया है,^७ ये प्रियत्व के उद्दीपक प्रतीत होते हैं। यों भोज ने रस के

१ का. सू. (नामन) १ २ ५ 'आर्षं सः उदाहरार्थं प्रीतिःश्रोतिरेतुत्वात्'।

२ दि. प्यन्वाशोक ५ १ २ 'तिल भूमः सहृदयमनःप्रीतये तस्वकवन्' और ५ १४।

३ दि. बभ्रोक्ति. ५ १-१११ 'आम्यवन्वीप्रिभवाजानां हृदयप्लावकारकः'।

४ सा. द. (बिचनाव) ५ १११।

५ सा. द. (बिचनाव) ५ १०।

६ कवि मा. (अनु) ५ १४१।

आश्रयस्वप्रियः श्रेयो रस रति त्वसत्।

अशो धमिरहः स च सर्वो रस्तुसात्प्राप्य पर्यवसति ॥

७ सा. द. ५-१७१००।

वृत्त जेहों में 'मेधाय भाष्यक एक रस माना है, त्रिषक आशय और आत्मनय
 रस और चिन्ता होते हैं।' किन्तु इनके पूर्व के धनत्रय महान 'प्रीति को
 तबों में परिगमित त्रिषु मान की चर्चा की है। इनका कथन है कि 'कुछ
 मेधा प्रीति, भक्ति भादि को ग्यायी भाव मानत है तथा सुग्धा, सुभा भादि
 से रस-रूप में स्वीकार करने हैं। इनका समावेश द्वये उस्ताह भादि ग्यायी
 तबों में ही हो जाता है।' इससे एक सत्य का स्पष्टीकरण हो जाता है कि
 तन्त्रयक अद् के युग (१० वीं सती अक्षराह) एक मध्यकालीन युग में
 प्रीति' और भक्ति' का स्वामी भाव के रूप में मान्यता मिल चुकी थी।
 देवोपकरण भरत मन की परम्परा में आने वाले अमिनय गुप्त और चवंतय ने
 एका प्रमुक्तता न देकर प्रचलित रति हर्ष, उस्ताह भादि तबों में अन्वर्तुक
 करने का प्रयास किया। किन्तु बाद में चककर भक्ति का तो स्वतंत्र काव्य
 साथ विकसित हुआ पर प्रीति' का जतना विस्तार नहीं हो सका।

फिर भी वास्तविकता या यह है कि 'प्रीति' का प्रियत्व' को रति, हर्ष या
 उस्ताह में से किसी में पूर्वता आत्मसात् नहीं किया जा सकता। 'रति' और
 'उस्ताह दोनों वाचक-अधिकारों से बावजूद इनके उ कारण किसी सम्पूर्ण
 कलाकृति या काव्य की समस्त सौन्दर्य-अगिमा को आत्मसात् नहीं कर सकत।
 यही नहीं हमारी अमिच्छि की जानामयता धार वैशिष्य का रति या
 उस्ताह में समाहित नहीं किया जा सकता। इन रति में प्रियत्व और रमणीयता
 का क्षेत्र पिछाह है। अगुण मूर्तियों से लेकर सृष्टि की समस्त मूर्त या
 अमूर्त अमन्तता रमणीयता का आत्मनय हो सकती है।

अन्य रसों की तरह रमणीय रस भी हैत सापक है। आशय और आठ
 मय का अस्तित्व इसमें भी अमिधार्य है। रमणीय रस की विशेषता यह है
 कि कभी आशय आत्मनय पर पूर्व रूप से निर्भर करता है अर्थात् आत्मनय
 वस्तु की अवेका जममें अधिक रहती है। किन्तु आशय में रमणीयता क
 र्वाई भाव 'प्रियत्व' से अनुमानित 'रमणीय आत्मनय विम्ब' का मयन
 और चिन्तक चिन्ता ही बनना जाता है आत्मनय वस्तु अधिक आत्मविह
 होती जानी है। एक ऐसी स्थिति आती है जब आशय की दृष्टि में प्रीति
 कर्ष वस्तुगुण आत्मनयक चीम हा जाना है और उसकी अवेका आत्मनय
 वस्तु का किम्य आशय क मन में धरकन्त सचन होकर नहीं हा जाता है।

१. तट. कण्डा. १-८५१।

२. अक्षररूप ४-८३

प्रोडिगसभादयी भावा युक्ताभादयी रसा।

द्वर्तताद्यदिनु एवमन्वयभावाय कीर्तिता। ४

यही उहीँ आत्मबल बिम्ब भाष्य की आत्मनिष्ठ रमणीयानुभूति का कर्म है। इस प्रक्रिया में उहीँ आत्मबल बिम्ब के साथ भाष्य का आत्मिक साहचर्य स्थापित हो जाता है। भाष्य और आत्मबल के बीच में यह साहचर्य वृत्ति उन्हें सादामीकरण की ओर प्रवृत्त करती है। अन्त में रमणीय रस में आप्णुत भाष्य और आत्मबल बिम्ब अभिन्न से हो जाते हैं। उनकी व्यभिचता के कारण आत्मबल वस्तु का अभाव-सा पीस पड़ता है। क्योंकि यदि आत्मबल रमणीय मूर्ति है तो वह व्यपिन्नक आत्मनिष्ठ हो जाता है या वह अममता पर प्रवृत्त आपिन्नक एवं ज्ञानात्मक प्रतिबिम्बित सत्ता के रूप में कथित होता है। अतः रमणीय रस में हरण और अहरण मूर्त और अमूर्त गोचर और रहस्य 'सौम्य' भावन की केवल हो अवस्थाप्य हैं। हरण मूर्त और गोचर अवरुपा में आत्मबल वस्तु स्वयं प्रतीकारमक प्रतिमात्मक या भाष्य-प्रतिमात्मक स्थिति में विद्यमान रहती है जिसे रमणीय रस का ह्रैत पक्ष माना जा सकता है। परन्तु जब आत्मबल वस्तु अहरण अमूर्त अगोचर रहस्य की स्थिति में हो जाती है, तो आत्मीयत भाष्य और बिम्बीयुत आत्मबल की मिश्रामिन्न अवस्था ह्रैत की अपेक्षा अह्रैत के अधिक निकट एक प्रकार की रहस्यावस्था होती है।

रमणीय रस प्रतिक्रियात्मकता से संबन्धित रस है। अतएव इसका उहीँ एक संबंधों में केवल प्रिय रुचि सुन्दर और आकर्षण नहीं हैं अपितु अप्रिय अरुचि और अनकार्पण भी हैं। इसका अतिरिक्त गूढार और हास्य और अमृत इत्यादि रस जो रमणीयता की दृष्टि से प्रियत्व रुचित्व और आकर्षण की वृद्धि करने वाले नैसर्गिक प्रेरक हैं—ये रमणीय रस के प्राद्य पक्ष (Positive form) को परिपुष्ट करते हैं।

निषेधात्मकता (Negation)

प्राद्य पक्ष के विपरीत रमणीय रस का एक प्रतिक्रियात्मक पक्ष भी है, जहाँ रमणीय आत्मबल बिम्ब का निषेध पक्ष जबिक प्रबल रहता है। यह रमणीयता का कुरूप या विकृत पक्ष है जो रमणीय रस निष्पत्ति का निषेध करता है। विकृति और मिथ्या एवं भ्रामक चरित्रांकन कुरूपता के प्राद्य हैं। रमणीय रस के ये निषेध पक्ष (Negative form) हैं, जो आत्मबल वस्तु के प्रति कीरूप्य अप्रियाव अरुचित्व अमाकर्षण जैसे संचारक संबंधों के द्वारा उनके मन्तरात्मक मूढ्य या अमाद्यता को चोक्तित करते हैं—रीत्य मयात्मक बीमास कल्प्य आदि संबंधों के उहीँपक्ष में भी रमणीयता का निषेध हीन

१ पृष्ठ. ५ १ १ इत्यंत में सौम्य की सुजाण और सुखान्त जैसी विरम स्थिति मानी है।

पड़ता है, जब कि 'सागत' में संवेगात्मक उदासीनता या तटस्थता निहित है। उपर्युक्त सत्त्वों के द्वारा रमणीय रस की उद्गीर्णन अवस्था के तीन पद हो जाते हैं—प्राद्य, अप्राद्य या तटस्थ। विभिन्न संवेग आत्मजन वस्तु को प्राद्य, अप्राद्य या तटस्थ रूपों में बिम्बीकरण की क्रियाओं को प्रचारित करते रहते हैं। जिसके फलस्वरूप आत्मजन के प्राद्य, अप्राद्य और तटस्थ रूप, रमणीय रस भावन के तीन आयामों की ओर निर्देश करत हैं। प्राद्य आत्मजन वस्तु के प्रति आश्रय में आकर्षण रुचि प्रियत्व स्वामी साहचर्यत्व और अन्त में (रहस्यवादी अवस्था में) तादात्म्य का विकास होता है; और अप्राद्य के प्रति अरुचि, उपेक्षा इत्यादि क्रियायें मनोविरहेयत्व की भाषा में सक्रिय होकर अचेतन में डबेकमे का प्रयास करती हैं। इस तरह अचेतन में भेजने का कार्य भी प्रायः रमणीय रस का मकरारामक पद ही करता है।

पंडितराज जगन्नाथ ने रस के अतिरिक्त उन वस्तु अमरनात्मक कार्यों को रस से बाहर रमणीय माना है।^१ कर्त्तृ रूप सद्म आदि सौम्य से छेकर 'मधुमति भूमिका' के मध्य में समास्था की भी अनेक सरथियाँ मात्रात्मक दृष्टि से मानी जा सकती हैं। यद्यपि पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार 'मिथक ज्ञान से कोकोत्तर (अकीर्तिक) ज्ञान उपलब्ध हो, वह अर्थ रमणीय है।'^२ किन्तु आधुनिक सौम्यशास्त्र रमणीयता को सेन्द्रिय अनुभूति के घरातक पर ही ग्रहण करता है।^३ यों रमणीयता विद्युत् धारणा या ज्ञानात्मक बोध की प्रक्रिया नहीं है, अपितु धारणा और भाव से समन्वित होने के कारण उसमें आस्थाच तत्त्व भी विद्यमान है। कौट के अनुसार रमणीय रस अमिकाया और ज्ञान की विरोधताओं का जैसे ही समन्वित कर लेता है, जिस प्रकार मूल्यांकन की प्रकृति सांस्कृत्य की भावना का प्रत्यय (idea), हेतु (reason), पृच्छा और बोध (understanding) (अनेकता) को समाहित कर लेती है।^४ ऐसा लगता है कि रमणीय मूल्यांकन ही प्रकृति और स्वयम्भूता, बोध और हेतु पृच्छिक और अधिकवर्तीय के संगम स्थक की ओर प्रवृत्त करने के लिए पुना आता है। कौट ने रमणीय आस्था को विभिन्न कोटियों में विभाजित किया है। गुणों की दृष्टि से अमिदृष्टि (Taste) ही रमणीय है। यों आनन्द जिस मात्रा का निर्माण करता है वह अर्थ

१. पृष्ठ ५ ३२२। (Uglyness is Negation of This Sympathetic beauty)

२. सी ० ५ १०। ३. रस गं ५ २०।

४. दि पृष्ठ ५ २८४ ब्रह्मगार्तन "He gives to the perfection of sensuous knowledge i.e., of feeling or sensation, The Name of beauty as the manifestation in feeling"

५. दि पृष्ठ ५ २०३।

यही उहीस आत्मजन बिम्ब आध्रय की आत्मविद्युत रमणीयानुभूति का कन्द्र है। इस प्रक्रिया में उहीस आत्मजन बिम्ब के साथ आध्रय का आत्मिक साहचर्य स्थापित हो जाता है। आध्रय और आत्मजन के बीच में यह साहचर्य वृत्ति उन्हें तादात्म्यकरण की ओर प्रवृत्त करती है। अन्त में रमणीय रस से आप्तुत आध्रय और आत्मजन बिम्ब अभिन्न से हो जाते हैं। उनकी व्यभिचता के कारण आत्मजन वस्तु का अभाव-सा शोक पड़ता है। क्योंकि यदि आत्मजन रमणीय मूर्ति है तो यह अल्पविक भावनिष्ठ हो जाता है, या यह अनन्तता पर प्रक्षेपित आगतिक एवं नावारमक प्रतिबिम्बित सत्ता के रूप में लक्षित होता है। अतः रमणीय रस में हरय और अहरय मूर्त और अमूर्त गोचर और रहस्य 'भौन्दर्य भावन की केवल हो अवस्थाएं हैं। हरय मूर्त और गोचर अवस्था में, आत्मजन वस्तु स्वयं प्रतीकारमक प्रतिमात्मक या भाव-प्रतिमात्मक स्थिति में विद्यमान रहती है जिसे रमणीय रस का ह्रैत पक माना जा सकता है। परन्तु जब आत्मजन वस्तु अहरय, अमूर्त अगोचर रहस्य की स्थिति में हो जाती है तो आत्मीयता आध्रय और विम्बीभूत आत्मजन की मिथ्यामिन्न अवस्था ह्रैत की अपेक्षा अह्रैत के अधिक निश्चय एक प्रकार की रहस्यावस्था होती है।

रमणीय रस प्रतिक्रियात्मकता से सञ्चित रस है। अतएव इसका उही एक संवेगों में कवल प्रिय लक्षि सुन्दर और आकर्षण नहीं है अपितु अधिव अदक्षि और अनाकर्षण भी हैं। इसका अतिरिक्त गूढार वीर, हान्प और अद्भुत इत्यादि रस जो रमणीयता की दृष्टि से प्रियत्व लक्षित्व और आकर्षण की वृद्धि करने वाले नैसर्गिक प्रेरक हैं—ये रमणीय रस के प्राण्य पक (Positive form) को परिपुष्ट करते हैं।

निषेधात्मकता (Negation)

प्राण्य पक के विपरीत रमणीय रस का एक प्रतिक्रियात्मक पक भी है, जहाँ रमणीय आत्मजन बिम्ब का निषेध पक अधिक प्रबल रहता है।^१ यह रमणीयता का कुकूप या विवृष्ट पक है जो रमणीय रस विप्लव का निषेध करता है। विवृष्टि और मिथ्या एवं भ्रामक चरित्रांकन कुकूपता के प्राण्य हैं। रमणीय रस के ये निषेध पक (Negative form) हैं जो आत्मजन वस्तु के प्रति लौकिक्य अधिवत्त्व अदक्षित्व अनाकर्षण जैसे संचारक सबगों के द्वारा। उनके नकारात्मक मूक्य या अभावावस्था को चोतित करते हैं—तौद्र भयानक पीमारत, कल्प आदि संवेगों के उहीपन में भी रमणीयता का निषेध वीक

१ वरुण ५ १ ९ हार्वेड ने सीगर्व को लुबाल और दुःखान्त वीली विचम स्थिति मानी है।

पक्षता है। जब कि 'शान्त' में संबन्धित उदासीनता वा तटस्थता निहित है। उपर्युक्त संवेगों के द्वारा रमणीय रस की उद्दीपन व्यवस्था क तीन पक्ष हो जाते हैं—प्राद्य, अप्राद्य वा तटस्थ। विभिन्न संवेग आह्वानजन्य वस्तु को प्राद्य अप्राद्य वा तटस्थ रूपों में विभक्तिकरण की क्रियाओं को प्रचारित करते रहते हैं। जिसके फलस्वरूप आह्वान के प्राद्य, अप्राद्य और तटस्थ रूप, रमणीय रस साधन क तीन धापामों की ओर निर्देश करते हैं। प्राद्य आह्वानजन्य वस्तु क प्रति आशय में आकर्षण कृति विपश्य, स्वायी माहुर्यत्व और अन्त में (रहस्यवादी भवस्था में) तादात्म्य का विकास होता है; और अप्राद्य के प्रति अदृष्टि उपेक्षा इत्यादि क्रियायें ममोविरक्षेपण की मापा में सक्रिय होकर अचेतन में डबकने का प्रयास करती हैं। इस तरह अचेतन में मेजने का कार्य भी प्राद्य रमणीय रस का मकारात्मक पक्ष ही करता है।

पंडितराज जगन्नाथ ने रस क अतिरिक्त उन वस्तु स्वतन्त्रात्मक कार्यों को रस से बाहर रमणीय माना है।^१ वर्ण रूप छद्म आदि सौम्य में से लेकर 'अनुमति भूमिका' के मरय में रसास्वाद् की भी अनेक मरगियों माप्रात्मक दृष्टि से मानी जा सकती हैं। यद्यपि पंडितराज जगन्नाथ क अनुसार 'त्रिनक शान्त स लोकोत्तर (अद्वैतिक) ज्ञान उपलब्ध हो, वह अर्थ रमणीय है।'^२ किन्तु भाषुनिक सौम्यरसाद्य रमणीयता को सेन्द्रिय अनुमृति क परातल पर भी प्रवृत्त करता है।^३ यों रमणीयता विद्युत् चारणा या शानात्मक बोध की प्रक्रिया नहीं है, अपितु चारणा और भाव से समन्वित होने क कारण उनमें आस्वाद्य लक्ष भी विद्यमान है। कर्ट के अनुसार रमणीय रस अभिजापा और ज्ञान की विरोधताओं को जैसे ही समन्वित कर उता है, जिस प्रकार मूर्खांकन की प्रकृति सांकल्प्य की भावना का प्रत्यय (idea), हेतु (reason), पकना और बोध (understanding) (अनेकता) को समाहित कर लेती है।^४ ऐसा लगता है कि रमणीय मूर्खांकन ही प्रकृति और स्वप्नप्रता, बोध और इतु ऐन्द्रिक और अविद्यनीय के अंतिम स्वरु की ओर प्रवृत्त करने क क्विप युता जाता है। कर्ट ने रमणीय आस्वाद् को विभिन्न कोटियों में विभाजित किया है। गुणों की दृष्टि से अमिदृष्टि (Taste) ही रमणीय है। यों आनन्द त्रिय मान्दा का निर्माण करता है यह अर्थ

१ एरबे. ए. १२२। (Ugliness is negation of this Sympathetic beauty)

२ सी. ए. ए. १०। ३ रस में ए. १०।

४ रि. एरबे. ए. १०४. वरमपारन "He gives to the perfection of sensuous knowledge i.e., of feeling or sensation. The name of beauty as the manifestation in feeling"

५ रि. एरबे. ए. १०३।

सभी अभिवृत्तियों से परे है। जहाँ आत्मन के अस्तित्व का विद्यमान रहने का मास है, उस आनन्द को अभिवृत्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है। रस (Pleasure) से इसका पार्यवय केवल उपस्थापन अथवा आत्मन के ऐच्छिक भाव या प्रत्यय को लेकर होता है। इस प्रकार सौन्दर्य तत्त्वण रस और शिव (good) से विच्छिन्न विच्छिन्न हो जाता है, वह प्रायः निम्न या उच्च इच्छिचर्दक क्षमता (appetitive faculty) के रूपों से अधिक सम्बन्ध रखता है। क्योंकि इसका दोनों (रस और शिव) रूपों में इच्छिचर्दक क्षमता विशेषकर अभिवृत्ति का ही संचार करती है।^१

परिमाण और इच्छि निर्णय की वस्तुमत्ता (modality) में सौन्दर्य वस्तुगत आनन्द के रूप में पृथीत होता है जो प्रतिबिम्बित प्रत्यय के अवरोध के बिना भी जागतिक और भावरचक है। इस कारण जागतिकता और जावरचकता ये दोनों आत्मनिष्ठ हैं वस्तुनिष्ठ नहीं सौन्दर्य के परिमाण्वात्मक मूल्यांकन में सौन्दर्य के आनन्द और शिव में पार्यवय किया जाता है। आनन्द की सार्वभौमिकता के कारण हम आनन्द और सौन्दर्य के मूल्यांकन में समन्वय की अपेक्षा रखते हैं। यद्यपि प्रकाशक प्रत्यय के अभाव में भी मोक्षण-पान के आस्थावन का शिवत्व (Good) से कोई वैषम्य नहीं है। खासकर वस्तुमत्ता में इस प्रकार की विषमताओं की कोई सम्भावना नहीं है।^२

समन्वय की दृष्टि से जहाँ इच्छि के मूल्यांकन का प्रयोग होता है जहाँ आत्मनवस्तु में सौन्दर्य प्रयोजनतात्मकता (Purposefulness) के रूप में अवस्थित रहता है और यह स्थिति तब तक रहती है जब तक प्रायचीकरण के द्वारा उसमें समाप्ति का मास नहीं जाता। चकता पुनः एक बार सौन्दर्य आनन्द है और शिव से पूरक किया जाता है क्योंकि उसमें एक विनिष्ट प्रयोजन निहित रहता है। क्योंकि वस्तु की बाह्य उपयोगिता या उसकी धात्मिक पूर्णता में (वृत्तिजनित) समाप्ति के मास का प्रश्न उठा रहता है।^३ अतः उच्चवस्तु और सौन्दर्य मोक्ष में वा ता विच्छिन्न सौन्दर्यपरक समन्वय होता है या प्रयोजनतात्मक उपयोगितावादी। शिखर के अनुसार 'सौन्दर्य सच्चमुच हम लोगों के लिए एक रूप है क्योंकि उसका प्रतिबिम्ब-म्यापार एक ऐसी दशा है जिसके अन्तर्गत हमारे मनमें अनुभूति उत्पन्न होती है उसी वृत्त वह अवस्था हमारे आत्मनिष्ठ मन की भी एक अवस्था हो जाती है क्योंकि वह मावानुभूति एक ऐसी दशा है जिसके अन्तर्गत हम प्रायः चोप का अनुभव करते हैं। इसीलिए वह (सौन्दर्य) एक रूप है

क्योंकि हम उसका ममत्व या चिन्तन करते हैं, वह एक जीवन है।
 क्योंकि हम उसका भावन करते हैं। एक शब्द में एक ही समय
 वह हमारी दृष्टि भी है और हमारी क्रिया भी। रमणीय रस और
 आनन्द-मनोवैज्ञानिक आस्वादन की दृष्टि से देखने पर रस और आनन्द में
 सार्विक अन्तर प्रतीत होता है।^१ रस अपन मूक में विविधात्मक है और
 आनन्द एकत्मक। ऐन्द्रिय स्वाद की दृष्टि से मीठा, खटा, तीता, कड़ुभा,
 नमकीन, कसैला इन सभी में अन्तर है। सभी हमारी आस्वादन क्रिया में
 रस-वैविध्य की सृष्टि करते हैं। राजशेखर ने इन रसों के ही समानांतर
 काव्य में भी नौ प्रकार का पाक माना है। 'पाक' की व्याख्या करते हुए
 वे कहते हैं कि अर्थ और शब्द इन सभी के रहने पर भी जिसके बिना
 पादमनु का परिष्कार नहीं होता वही अनिर्वचनीय वस्तु पाक है, जो
 सहजमयन द्वारा आस्वाद्य है। राजशेखर के अनुसार काव्य के ये परिपाक—
 पिबुमन्द (नीम) बदर (बेर) सुह्रीका बाघांक (बैंगम), तिमिन्दीक
 (हमकी) सहकार (आम), मसुक (सुपारी) प्रसुस (ककड़ी),
 नारिसेक पाक—ये नौ प्रकार के पाक हैं।^२ काव्य के साथ हृदयकी सगति
 कहीं तक युक्ति संगत है यह कहना सहज सम्भव नहीं है, किन्तु हम यहाँ से
 इतना स्पष्ट है कि ये काव्य-रस को भी लोकोत्तरत्व से लीन कर ऐन्द्रिय
 क्षेत्र में ला देते हैं। अर्थ रसों की तरह स्वाद की दृष्टि से वैपम्य होते हुए भी
 हम सभी के आस्वादन में दृष्टि का अपेक्षित योग है; जिससे स्वाद रूचि
 अनुकूलित हो जाता है। आस्वाद्यक धमक्ति सभी रसों का आस्वादन करते,
 हुए भी कोई मीठा, कोई खटा, कोई तीता, कोई कड़ुभा और कोई नमकीन
 अधिक पसन्द करते हैं, जिससे उनमें चाय वस्तु के प्रति स्वादास्वाद्य भाव
 उत्पन्न हो जाता है। यह तीखे का तीक्ष्णन अनुभव करते हुए भी तीक्ष्णन
 में ही स्वाद लेने स्मरता है। उसके लिए तीक्ष्णन में कोई आनन्द है, तो
 यह उसकी रूचि से अनुकूलित स्वाद-अमित आनन्द है। यह भी कहा जा
 सकता है कि इसमें वास्तविक स्वाद से अधिक रूचि अनुकूलित (जो
 उसके उपचलन का विषय हो गया है) स्वादागन्ध है। इस प्रकृति का
 सौन्दर्योत्पादन के क्षेत्र में भी बैसा ही प्रभुत्व है। हम जिस सौन्दर्य का

१ हि बरन पृ २९ ।

२ मैंने Bliss के लिये 'आनन्द', Pleasure के लिये 'रस' Delight के लिये
 प्रयुक्त, Taste के लिये आस्वादन Interest अनिर्वचि रूचि और Aesthetics
 के लिये 'रमणीय शब्द का प्रयोग करना ही बतित समझा है।

३ काव्यमीमांसा पृ. ४०-४२ ।

भावन करते हैं यह चाहे सुन्दर हो या कुत्तप एवं अनुकूलित सीम्बर्ब है। विद्रुप एवं मवानक देवताओं की चर्चा करते हुए हेगेल ने कहा है कि भारतीय देवों में, मवानकता, विद्रुपता और विह्वलित है, जिससे वे सुन्दर नहीं बने जा सकते किन्तु अपूर्ण रूपों के द्वारा जो ब्रह्म को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है इसलिये उदात्त से उच्चकी कुछ समानता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि भारत की धर्मप्राण मनोभावना में राज, दुर्गा काष्ठी, गणेश जैसे मवानक और विद्रुप देवता भी भक्त की भावन क्षमता में एवं अनुकूल्य की दृष्टि करने के कारण सुन्दर आकर्षक और प्राण्य करते हैं। अतः एवं अनुकूलित रस जो समस्त रमणीय रस (सुन्दर वा कुत्तप, प्राण्य वा अप्राण्य) पर अपना प्रभुत्व रखता है प्राचीन वा आधुनिक सुन्दर वा कुत्तप आदस वा पथार्थ देवी वा मानवी, दिव्य वा प्राकृतिक समस्त कला-कृतिषों को एवं के अनुकूल समान रूप से संबोध और आस्वाद्य बनाने की क्षमता रखता है।

मित्रे जानम्ब के स्थान में रस का प्रयोग इसी से जबकि वैज्ञानिक समझा है क्योंकि जानम्ब प्राचीन काल से इन्डियेतर आर्यागिक ब्रह्मानम्ब और आत्मानम्ब का वाचक वा उनके समावांतर सूहीत होता रहा है। मिश्रय ही इस प्रकार का जानम्ब भावक व्यक्ति की आध्यात्मिकता और सात्विक भावकता पर निर्भर करता है, जो कला वा साहित्य कृति में किसी अलौकिक प्रपास्य की स्वीया वा कीका का मानन कराता है। इस कोटि के रस का जानम्ब अवतारवादी विषय-वस्तु से अधिक सम्भव जान पड़ता है। लौकिकता की भाव-भूमि पर स्थित अवतारों में अलौकिकता का अग्यासद्वित संस्कार भावक के मनमें बन जाता है। उस भाव दशा में वह अपने संबोध वा आस्वाद्य रसों का उद्वयनीकरण वा उदात्तीकरण कर देता है। रमणीय चेतना की दृष्टि से भी वैसी स्थिति में उसकी रमणीय मनोवृत्ति का उदात्तीकरण हो जाता है। इसी से अवतार भक्त राधा-कृष्ण की समस्त मधुर रसात्मकता का उद्वयनीकृत रसवारवाद के रूप में भावन करता है। इस उपक्रम में राधा-कृष्ण की विद्याज्ञानना के आधार पर अपनी कहरना से बमका वृद्ध-विरतार करता है। यह स्थिति सभी सम्भव है, जब उसे कंचक कहरना और अनुमृनि के योग से कारुणिक आस्वादन की चरम सीमा पर पहुँचा दिया जाय।

परन्तु सामान्य कला वा साहित्य के रस भावन में वरगुटा जानम्ब पृकात्मक

महीं होता है। बहिक मात्रा या रसों की प्रकृति क अनुसारूप प्रेक्षक या भावक में विशिष्ट मनोगत ज्ञानमें और मनोगत क्रिया-व्यापार परिलक्षित होते हैं। जनक्य यह ने रसों की दृष्टि से मन की चार अवस्थाएं मानी हैं, जिनका विभिन्न रसों क उद्दीपन क्रम में भाव होता है। जैसे शृङ्गार और हास्य में विकास वीरता और अद्भुत में विस्तार बीमत्स और भय में खोम, तथा शौर्य और कठण में विचोभ की अवस्था मानी है।^१ परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो मानसिक स्तर पर सभी रसों में विविध मानस-व्यापार सक्रिय प्रतीत होते हैं, जिन्हें साम्य रसों क अनुसार मनोरंजन (अद्भुत) मनोभेदन (मयानक) मनप्राह्वान (वासल्य), मनोविनोदन (हास्य) मनउत्पीडन (शौर्य) मनोक्रमण (बीभत्स) मनोहरण या मनोरमण (शृङ्गार), मनउत्तेजन (वीर), मनसमन (ज्ञान्त) मनोद्वन्द्व (कठण) इत्यदि रूपों में विभाजित किया जा सकता है। भरत मुनि के मातृशतक-सम्बन्धी स्थापनाओं के प्रभावक सम्भवतः आलम्बन और आश्रय से सम्बन्ध भाव विभाव संचारी भाव और अनुभावों पर बहुत विचार किया गया। सङ्घर्ष की दृष्टि से उत्पत्ति, अनुमिति, अनुकृति, अभिव्यक्ति इत्यादि दृष्टिकोण भी उपस्थित किए गए, फिर भी भावक में होनेवाले भावक-व्यापारों के क्रम में जो मनोवैज्ञानिक कार्य व्यापार होकर पड़ते हैं उनकी निताम्य उपाय नहीं की जा सकती। क्योंकि आस्थादन-काक में दर्शन का तथी ब्रह्माना, द्विपर द्विपर, 'Once-More' कहना, अर्थात् गिराना, विद्याना, बस-बस की अवधि प्रवृत्त करना शरीर में सिहरन होना रोमांच होना पसीना होना, पुस्तक पढ़ना छोड़ देना, या दरप को छोड़ कर चक देना, कामोत्तेजित होना तन्वीन होना मनोबोगपूर्वक सुनना, चिन्तन करना बार-बार पढ़ना, चिरकाक तक स्मरण रखना अनजाने किसी गीत को गुनगुनाना, किसी दरप का अनुभव करना, बार-बार पढ़ना देखना या सुनना आलोचना या कट्टिक कहना उपहास करना, अनुमोदन करना, उत्तेजित होना, भयत्रस्त होना आदि व्यापारों को किसी एक भावम् का अभिव्यञ्जक नहीं कहा जा सकता। अतः ऐसा ध्याता है कि भावक व्यापार की साधारणीकृत आस्थादन की स्थिति में सभी उद्दीप्त सबेगों क प्रभावक मनोगत या शारीरिक दृषक दृषक कार्य-व्यापार होत हैं, जो सङ्घर्ष की प्रभावानुरूपता के अनुरूप कम या अधिक होते रहते हैं।

मनोविज्ञान की दृष्टि से ये समस्त व्यापार आलम्बन के प्रति होने वाले प्रतिक्रियात्मक मनाव्यापार हैं। यह प्रतिक्रिया अनुकूल प्रतिकूल या उदासीन

मध्यकालीन साहित्य में अघटारघाट

तीन प्रकार की होती है। यद्यपि महासंवेगों के प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध सुपन्न सुपन्न उदास, उद्धिग्न, गतिशील, इतोस्ताह तथा इत्यादि भी मान जाते हैं किन्तु अनुच्छेद, प्रतिकूल और उदासीन इनमें प्रमुख ज्ञान पड़ते हैं अतः आरम्भ का अनुच्छेद होना प्रतिकूल होना या उदासीन होना आदि समस्त प्रतिक्रियायें विशेष भाव पदा में रसविशेष के आस्वाद्य के अनुरूप प्रति क्रियात्मक स्वाभाव को व्यञ्जित करती हैं।^१ प्रत्यक्ष-बोध पर आकारित ऐन्द्रिय सहायुक्ति अलौकिक या इन्द्रियातीत न होकर मनोगत ऐन्द्रिय बोध के भावात्मक (abstract) पक्ष को ही उपस्थापित करती है।^२ इस प्रकार साहित्य एवं कला में 'आत्मन्' से कितने अमिहित किया जाता है—बहु वस्तुता भाव-रस का आस्वादन नहीं है। आस्वाद्य वस्तु के अनुरूप आस्वादन की आस्वाद्यता भी होती है। अतः संस्कार वातावरण, अव्ययन विस्तार या विस्तार स्मरण के प्रभावपदा हमारे मन में विभिन्न भाषासुमृतियों द्वारा संश्लिष्ट अमूर्त भावों के आ भाव विश्व बन रहते हैं व अपने अनुरूप आत्मरस के द्वारा उत्तेजित होकर प्राज्ञ विवेक या उदासीन रूप में विविध भावात्मक या विचारात्मक धारणाओं की नृमिका पर रमणीय रस का आस्वादन करते हैं। अव्ययन पुरुष विकृत आत्मरस के प्रति भी रमणीय रस का आस्वादन किया, प्रतिक्रिया एवं तटस्थ समी रताओं में चकता रहता है। अथ इस क्रिती कृति में नायक और प्रतिनायक के परस्पर विरोधी चरित विधान का अव्ययन करत ई हमारा मन नायक के प्रति महानुभूतिक रहता है और प्रतिनायक या प्रकृतायक के प्रति अनिरोधात्मक या निवेचान्मक हो चकता रहता है।

भाव और संवेदना

वों क्रिती भी कलाकृति या साहित्य विधा में उद्दीपित स्थायी भाव रमणीय रस का उद्दीपक हो सकता है। भाव और संवेदना दोनों इन्द्रियसापेक्ष हैं, किन्तु भाव में संवेन्द्रियत्व है पर संवेदन में नहीं। संवेदना वस्तुगत है और भाव आत्मगत। मिश्रित भाव कैसा सनाविज्ञान में कोई भाव नहीं माना जाता क्योंकि भाव आस्वाद्य पदा में एक स्थिति तक एक ही भाव में निहित रहता है। संवेदनाओं का विश्व या प्रतिमा में उपस्थित किया जा सकता है किन्तु भाव को नहीं। भाव में संवेदना नवीनता होती है। पुराना भाव

१. रसात्मक स्वाभाव का घाण्य उदाह भोट गमिन इन तीन वधानों का रमणीय रूप में ही विनिर्माण होता है।
२. सांख्ये रस ५ १।

उसी रूप में व्यक्त नहीं हो सकता है। क्योंकि आकस्मिक बरतु के प्रत्यक्ष-बोध के अन्तर 'जब मनोभेषसाक्षिणी' सक्ति से युक्त भाव-तरंग प्रकाहित होने लगता है। अतएव नम्य-मृतम भाव तरंगों का अक्षिरक प्रवाह ही रमणीय रसास्वादन का मूल-भूत निमित्त कारण है।^१ इसीसे रमणीय विग्म की भावानुमृति सबदा नयी होती है। मनोवैज्ञानिकों में मैकडूगल ने जिन मूलप्रवृत्तियों के साथ संवेदों की सम्बन्ध-स्थापना की है उनमें से अधिकांश का अनुकूल, प्रतिकूल और उदासीन सम्बन्ध रमणीय भाव-स्थापार से देखा जा सकता है। अनुकूल प्रवृत्तियों में यद्यपि आकस्मिक मनोवैज्ञानिक 'Purge Drive use' आदि का अधिक प्रयोग करने लगे हैं, फिर भी मैकडूगल ने प्रवृत्तियों और संवेदों का तुलनात्मक क्रम जिन रूपों में प्रस्तुत किया है उनको अनुकूल, प्रतिकूल और उदासीन तीव्र भावों में विभक्त किया जा सकता है।

अनुकूल प्रवृत्ति (Instinct)	संवेद emotion
Mating	कामेच्छा Lust
विज्ञान Curiosity	अदभुत Wonder
निर्माण Construction	feeling of creativeness
	रचनात्मकता का भाव
Acquisition	feeling of ownership
अधिकार	अधिकार की भावना
प्रतिकूल	
भागना Escape	भय Fear
दुन्दु Combat	क्रोध Anger
प्रतिरोध Repulsion	Disgust
समर्पण Submission	Negative Self feeling
उदासीन :—	
Self assertion	Positive Self feeling

भाव और संवेद

हर्मा प्रसंग में यह भी देखा देना आवश्यक है कि भाव और संवेद में क्या अन्तर है ? क्योंकि कुछ वैज्ञानिकों ने भाव और संवेद को एक ही समझा है जब कि हमारे में अन्तर ही कुछ विन्ध्य अन्तर विद्यमान होता है। भाव

१. भारतीय संस्कृत-दर्शनियों में भी कहा है—'अने ज्ञान ब्रह्मवानुमृति तन्मय रूपं रमयेवशात्'।

एक तरह एक प्राथमिक मानसिक क्रिया है परन्तु संवेग को जटिल मानसिक क्रिया कहा जा सकता है। जिस प्रकार स्वाधी भाव से रस के रूपान्तर की प्रवृत्ति साहित्य में प्रचलित है उसी तरह मनोविज्ञान में संवेग की पूर्व भाव-बसा भागी जाती है। प्रत्येक संवेग के साथ किसी न किसी भाव का सम्बन्ध रहता है। बिना भाव के संवेग सम्भव नहीं है, किन्तु बिना संवेग के क भाव की स्थिति बची रह सकती है। जब भाव की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में आंतरिक एक बाह्य व्यवहारों में होती है, तो यह भाव ही संवेग के रूप में परिवर्तित हो जाता है। भाव सर्वैव आत्मगत होता है किन्तु संवेग आत्मगत और वस्तुगत दोनों होता है। व्यक्ति का भाव जितना स्पष्ट नहीं होता उससे अधिक संवेग होता है। संवेगात्मक अनुभूति आन्तरिक कार्य-व्यापार है, किन्तु संवेगात्मक व्यवहार में इस बाह्य प्रति क्रियाओं को देख सकते हैं।

उत्पुस्तक विवेचन से यह प्रतीत होता है कि मनोवैज्ञानिकों का भाव (feeling) साहित्यिक परम्परा से जाता हुआ स्वाधी भाव (Emotional state) है; तथा उसका प्रबुद्ध रूप जिसे उन्होंने संवेग कहा है वस्तुतः वह 'रसदशा की अवस्था है। संवेग के मानसिक और बाह्य व्यवहार (Emotional behaviour) व्यक्त होते हैं उन्हें अनुभावों के समाना स्तर देखा जा सकता है। संवेग की वस्तुमत्ता उसका आकम्बन विभाव है तथा वैस-काक-परिस्थिति या वातावरण उसके उद्दीपन विभाव हैं। फिर भी प्राचीन मान्यताओं और मनोवैज्ञानिक धारणाओं में किञ्चित् अन्तर यहो है कि ये जिसे संवेगात्मक अनुभूति (Emotional Experience) कहते हैं—वह सहृदय की दृष्टि से निर्वैयक्तिक साधारणीकृत अनुभूति (deindividualised generalised experience) प्रतीत होती है, किन्तु रमणीय रसानुभूति में निर्वैयक्तिक साधारणीकृत अनुभूति की वसा संवेगात्मक अनुभूति की हुआ करती है।

रमणीय रस के उद्दीपक पौराणिक तत्त्व

भारतीय काव्य-शास्त्रों में रसास्वाद् की दृष्टि से नायक और नायिकाओं का विवेचन अधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। इतर वस्तु-आकम्बन के रूप में कम गृहीत होती थी। फलतः पौराणिक आर्ककारिकों व जहाँ जहाँ लक्ष्मण सीम्हर्ष की चर्चा की है वहाँ प्रकृति और नाम के हर वस्तु-वर्णम के वैशिष्ट्यों के प्रति विचार नहीं किया गया है। उन्होंने कबक नायक और नायिकाओं में ही रमणीय रस को उद्दीपक करने वाले तत्त्वों का विचार

किया है। अग्निपुराणकार के अनुसार 'मानसिक व्यापारों' के अधिष्ठान को 'मन आरम्भ' कहा जाता है।^१ पुरुष में विहित सोमा, विक्रान्त, माधुर्य, गाम्भीर्य, छात्त्रिण, धौर्ध्व्यं और तत्र तथा स्त्रियों में अक्षरिणत भाव हाव, हेका, सोमा, काण्ठि हीति माधुर्य, सौर्ष्यं, प्राणव्यय, उदारता, स्थिरता, गाम्भीरता इत्यादि अनुमान्य वस्तुतः रमणीय रस को ही उद्दीप्त करने वाले अनुमान्य जान पड़ते हैं। क्योंकि प्रयोग्य पृथ स्ववहार में भी उगका सम्बन्ध रमणीय सौम्य सृष्टि से रहा करता है।^२ इसमें 'सोमा' उस प्रकार का मनोव्यापार कहा गया है जिसमें स्वीकृत्यं क विषेय और आकर्षण दोनों गुण विद्यमान हैं, क्योंकि सोमा का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि श्रुता और दृष्टता आदि के कारण नीचों की विन्दा और उचम जनों क प्रति स्पर्धा को सोमा कहते हैं। इससे स्वच्छि की सोमा इस प्रकार होती है, जैसे प्रसाधनों से भयन की।^३ इस कथन से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि पौराणिक अर्चकार साक्षी रमणीय रस क आकर्षण और विकर्षण तथा स्वीकृति और विषेय इन द्विधा मक पक्षों से पृथक्पथ परिचित थे। रमणीय रस क इन्हीं पक्षों का विकास अवतारवादी काव्य पृथ कलाकृतियों में विस्तारपूर्वक होता है। नायक और प्रतिनायक तक इन 'मनआरम्भों' का परिसीमन रमणीय विन्दीकरण की क्रिया को पुष्ट करता है। परम्परा से अहीमूल कर्ता और सहृदय में नायक और नायिकाओं वा नायक और प्रतिनायक क अनुकूलित चित्र (Conditioned Image) निर्माण की ओर स्वाभाविक रुचि रही है, जिसके विकास में दिव्य, रमणीय पृथ उदात्त प्रकृतियों से सञ्चिष्ट अवतार-नायक और प्रतिनायक का विषेय हाव रहा है।

रमणीय खेतना

रमणीय रस के उपयुक्त समस्त तत्त्वों के अतिरिक्त पृथ ऐसे तत्त्व पर भी विचार करना होय रह जाता है। जो रमणीयता की मूल-व्यवस्था का प्रति निमित्त करता है। रमणीयता की दृष्टि से हमारे मन में पृथ ऐसी मूल-व्यवस्था अवश्य रहती है जो जीवन और जगत में आबवाहक पदार्थों की परत किया करती है। उस व्यवस्था की स्वाप्ति हमारी सामान्य आकांक्षा से अहीमूल वा अनुकूलित हाकर खेतन, उपखेतन अखेतन वा अह, इष्टं और नैतिक अह म अथवा आमय, स्वयं, सुपुष्टि और पुरीय (अनाहत नाह) अधिव्यवनी रमणीय वर्णन तथा 'मूकरवत्प्रवृत्तवत्—अज्ञानम्' इन सभी में स्वाप्त रहती है।

१ अग्नि. पु का भा. ४. ४५।

२ अग्नि. पु का भा. ४. ४५-४६।

३ अग्नि. पु का भा. ४. ४६।

एक तरह एक प्राथमिक मानसिक क्रिया है परन्तु संवेग को अधिक मानसिक क्रिया कहा जा सकता है। जिस प्रकार रसायी भाव से रस के अन्वय की प्रकृति साहित्य में प्रकटित है उसी तरह मनोविद्या में संवेग की पूर्व भाव-वसा भावी जाती है। प्रत्येक संवेग के साथ किसी व किसी भाव का सम्बन्ध रहता है। बिना भाव के संवेग सम्भव नहीं है किन्तु बिना संवेग के किसी रूप में व्यक्त हो जाता है। भाव संवेग कात्मगत होता है किन्तु संवेग आत्मगत और वस्तुगत दोनों होता है। व्यक्ति का भाव जितना स्पष्ट नहीं होता उतसे अधिक संवेग होता है। संवेगात्मक अनुभूति आत्मिक कार्य व्यापार है, किन्तु संवेगाध्यक व्यवहार में हम बाह्य प्रति क्रियाओं को देख सकते हैं।

अपूर्ण विवेचन से यह प्रतीत होता है कि मनोवैज्ञानिकों का भाव (feeling) साहित्यिक परम्परा से आता हुआ रसायी भाव (Emotional state) है तथा इसका प्रमुख रूप जिस उन्हीं संवेग कहा है वस्तुता यह 'रसवशा' की अवस्था है। संवेग के भावसिक और बाह्य व्यवहार (Emotional behaviour) कथित होते हैं उन्हें अनुभावों के समानांतर देखा जा सकता है। संवेग की वस्तुतया उमका वाक्यजन विभाव है तथा वैयक्तिक-परिचिति का वातावरण उसके दरीपण विभाव है। फिर भी प्राचीन मान्यताओं और मनोवैज्ञानिक धारणाओं में किंचित अन्तर पड़ी है कि वे जिसे सर्वैगात्मक अनुभूति (Emotional Experience) कहते हैं—यह सहृदय की दृष्टि से द्विवैयक्तिक सामाजिक अनुभूति (dualised generalised experience) प्रतीत होती है, किन्तु हमलीय रसायुभूति में द्विवैयक्तिक साधारणीकृत अनुभूति की दशा संवेगात्मक अनुभूति की बुझा करती है।

रमणीय रस को उद्दीपक पौराणिक तत्त्व

भारतीय वाक्य-शास्त्रों में रसावस्था की दृष्टि से भावक और भाविकाओं का विवेचन अधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। इतर वस्तु-अध्ययन के रूप में कम गूरीत होती थी। अन्तः पौराणिक आकांक्षिकों ने जहाँ वर्तमान मीमांसा की चर्चा की है वहाँ प्रकृति और नाम के हर वस्तु-वर्णन के वैयक्तिक के प्रति विचार नहीं किया गया है। उन्हींमें जबल भावक और भाविकाओं में ही हमलीय रस को उद्दीपक करने वाले तत्त्वों का विचार

किया है। अग्निपुराणकार के अनुसार 'मानसिक व्यापारों' के आधिक्य को 'मग आरम्भ' कहा जाता है।^१ पुरुष में निहित शोभा, बिछास साधुय गार्भार्थ, काष्ठिय, क्षीदार्थ और तम तथा स्त्रियों में अवस्थित भाव हाव हेका, शोभा, कान्ति, दीप्ति साधुय, शौर्य, प्रागल्भ्य उदारता, स्थिरता, गम्भीरता इत्यादि अनुभाव वस्तुतः रमणीय रस को ही उद्दिष्ट करने वाले अनुभाव जान पड़ते हैं। क्योंकि प्रयोग एवं व्यवहार में भी उनका सम्बन्ध रमणीय सौम्यर्य सृष्टि से रहा करता है।^२ इनमें 'शोभा' उस प्रकार का मनोव्यापार कहा गया है जिसमें मीम्वर्य के निषेध और आकर्षण दोनों गुण विद्यमान हैं क्योंकि शोभा का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि शूरता और दृढता आदि के कारण भीलों की निम्ना और उन्नत जनों के प्रति स्वर्णों को क्षामा कहते हैं। इससे व्यक्ति की शोभा इस प्रकार होती है, जैसे प्रसाधनों से मगन की।^३ इस कथन से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि पौराणिक अलंकार शास्त्री रमणीय रस के आकर्षण और विकर्षण तथा स्वीकृति और निषेध इन द्विधा एक पक्षों से पूर्णरूपेण परिचित थे। रमणीय रस के इन्हीं पक्षों का विकास अवतारवादी काव्य एवं कलाकृतियों में विस्तारपूर्वक होता है। नायक और प्रतिनायक तक इन 'मगभारत्यों' का परिसीमन रमणीय विम्बीकरण की क्रिया को पुष्ट करता है। परम्परा से जड़ीमूल कर्त्ता और मङ्गल्य में नायक और नायिकाओं या नायक और प्रतिनायक के अनुकूलित चित्र (Conditioned Image) निर्माण की ओर स्वाभाविक रुचि रही है किन्तु विकास में द्विप रमणीय पूर्व उदात्त प्रकृतियों से मन्त्रिबिष्ट अवतार-नायक और प्रतिनायक का विलेप हाव रहा है।

रमणीय श्वेतन्य

रमणीय रस के उपयुक्त समस्त तत्वों के अतिरिक्त एक ऐसे तत्व पर भी विचार करना सप रह जाता है। जो रमणीयता की मूक-श्वेतना का प्रति निधिरव करता है। रमणीयता की दृष्टि से हमारे मन में एक ऐसी मूक-श्वेतना अवश्य रहती है जो जीवन और जगत में आनेवाले पदार्थों की परल क्रिया करती है। उस श्वेतना की व्याप्ति हमारी सामान्य आकांक्षा से जड़ीमूल या अनुकूलित होकर श्वेतन उपश्वेतन अश्वेतन या अदृ, इद और नैतिक अह म अपवा आग्र्य, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय (अनाहत नाद) भविष्यनी रमणीय वर्तन तथा 'मूकारवादनवत्—महाभन्द इन सभी में व्याप्त रहती है।

१ अग्नि पु का भा ५ ४५।

२ अग्नि पु का भा. ५. ४५-४६।

३ अग्नि पु का भा ५. ४६।

वह चेतना ही शत या अज्ञात रूप में हमारी बधि, कुलधि, अभिरधि, आकर्षण विकल्प विमुक्तता, मनोशुद्धता सभी की प्रेरिका वा संघाटिका बनी रहती है। उसकी अभिव्यक्तताधकता ही काव्य वा कला की सृष्टि का मूल कारण है। कलाकार कसी चेतना के बल पर सृष्टि करते हैं और सद्ग्रहण पात्र करते हैं। जोरी मायुक्तता वा भाव चेतना वैयक्तिक वा सामाजिक भावामक व्यापारों वा सम्बन्धों का संघाटक वा सरचक हो सकती है; परन्तु केवल मायुक्तता काव्य वा कला की सृष्टि वा भावन में उसके सहायक नहीं हो सकती अपितु कला-कृति के निर्माण में भाव और तर्क के साथ-साथ सौन्दर्य-चेतना से भी अधिक रमणीय चेतना का होना आवश्यक है।

सौन्दर्य चेतना और रमणीय चेतना—इन दोनों में मात्रा, परिमाण और कुछ सहायक उपादानों की दृष्टि से अन्तर विदित होता है। सौन्दर्य चेतना हमारे सामान्य जीवन के कार्ब-व्यापारों और व्यवहारों से सम्बन्ध रखने वाली वह चेतना है जिसने मनुष्य को जगदी से सम्बन्धित, सुखी, सम्पन्न, व्यवहार-शुद्ध, व्यवस्था प्रेमी और शान्तिप्रिय बना दिया है। उसकी मरता का दूर भगाकर तथा चर्म और बरतक बच्चों से आगे बढ़ाकर कई ऊर्ध्व रेखमी और नायकत्व जैसे पारदर्शी बच्चों तक पहुँचा दिया है। उसे गुफा और क्षोपणी से निकाल कर अत्याधुनिक गगनचुम्बी वातायुद्धित भवनों में पसा दिया है। विचर्य वह कि मनुष्य ने अपने उपयोग और सुविधा के लिये सम्पत्ता-सम्बन्धी जिन उपयोगी साधनों का विकास किया उनका सम्बन्ध उसकी सामान्य सौन्दर्य-चेतना से है वह सौन्दर्य-चेतना मनुष्य के आहार विहार और धातव्य में ही नहीं अपितु मनुष्य के वैयक्तिक सामाजिक सतन्त्र और सांस्कृतिक व्यापारों में भी विकास की जगत भरती रही है जिनके सांस्कृतिक सौन्दर्य-चेतना कहा जा सकता है। यद्यपि यह रमणीय-चेतना भी खबरी है किन्तु फिर भी यह सर्वथातः रमणीय-चेतना नहीं है क्योंकि सौन्दर्य चेतना देश-काल और संस्कृति भेद से व्युत्पन्न मात्रा में सभी धर्म-पुण्य में व्याप्त रहती है। उसे हम सांस्कृतिक सौन्दर्य का मानदण्ड कह सकते हैं।

किन्तु रमणीय-चेतना आदिम पुरुष के मनमें गुफाया क्षोपणी का निर्माण करवालाई नहीं अपितु गुफाओं के बिलों धरुओं और आदि काव्यों की मूल-चेतना है जो तारकाकीन सद्ग्रहणों और प्रादुर्भावों के गुण से वह बहकान की चमत्ता रखती है—

‘वरय वैवरय काव्यरप न ममार न जीर्यति।’

निश्चय ही प्रथम क्षोपणी का आदि-निर्माता अपनी मौलिकता के चलते

रमणीयबैता हो सकता है किन्तु उसके बाद उपयोग के लिए निर्माण करनेवाले समस्त निर्माता सौम्य चेतना से ही अधिक मुक्त रहे या सकते हैं। रमणीय चेतना में सामान्य-सौम्य भावुकता तर्क, (ज्ञान शास्त्रीय और सहज ज्ञान) और मौक्तिकता इन सभी का अपूर्ण या अपेक्षानुगतिक सम्मन्ध रहता है। क्योंकि रमणीयता में निहित मौक्तिकता ही कवि या कलाकार को प्रज्ञापति या विश्वकर्मा की संज्ञा से विमूर्षित करती है।

‘अपारे काव्यमंसारे कबिरेष प्रज्ञापति।

पश्चिमी विचारकों ने रमणीय चेतना को संवेदन और तर्क (reason) का मिलनबिन्दु माना है।^१ परन्तु रमणीय चेतना की मुख्य विशेषता यह है कि वह अज्ञान पक्ष की अपेक्षा ग्राहक पक्ष में अधिक स्थित रहती है। कला यज्ञ में जो या रमणीय चेतना विद्यमान रहती है वह उसके ग्राहक पक्ष को ही अधिक संवर्धित करती है; क्योंकि कलायज्ञ रमणीय चेतना के चलते सर्वप्रथम स्वयं ग्राहक या द्रष्टा होता है और बाद में वह कवयिता, प्रतिभा और प्राग्नि ज्ञान के योग से सफ़ल अज्ञान बन जाता है। पर रमणीय चेतना का दृष्टि से वह स्वयं पहले ग्राहक है। कला-यज्ञ न होने पर भी इन्से रमणीय चेतना के चलते ग्राहक कलात्म्यसंगी, कलापारखी, कलादृष्टा या रमणीय चेतना ही जाता है। व्यक्तिगत समता के अमूर्त रमणीय चेतना भी समस्त विश्व के प्रसूद प्राणियों में मिलती है। रमणीय चेतना की न्यूनाधिक मात्रा के अमूर्त कलापारखी भी विशिष्ट या सामान्य विभिन्न प्रकार के दीर्घ पश्यत हैं। इस प्रकार रमणीय चेतना कलाकार की कला-सृष्टि को प्रेरित करनेवाली तथा कलाकृति की आत्मा के रूप में उर्ध्वस्थ रहने वाली वह मूळ सौम्य चेतना है जो ग्राहक के अचल मन को भी अपूर्ण रमणीय उन्नाहनाओं से परिपूर्ण द्विपू रहती है। रमणीय चेतना अमर कला-कृतियों की प्राग्वचा के रूप में उपस्थित होना पड़ती है। अमर भुगों में साहित्य एक कला के प्रतिष्ठान निश्चय ही अमर जन्मोक्तिन चक्र से उसे कवित कर दत हैं; किन्तु फिर भी रमणीय चेतना प्रसूद होकर कभी भी कलाकृति के रमणीय रसास्वाद का भक्षण कर से प्रवाहित करने में पूर्ण मयम रहती है।

रमणीय समानुभूति

रमणीय रस का सापेक्ष सम्बन्ध कला की कृति और सहज्य से रहा है। ऐक्यता यह है कि वह कौन सा ताव है, जो इन तीनों के पारस्परिक

सम्बन्ध में एकरूपता स्थापित करता है जब हम ऐंग्लिय रस का अनुभव करते हैं। उसी समय अपनी भावनाओं द्वारा संमूर्तित प्रबोधन की भावना का भी अनुभव करते हैं। ऐंग्लिक रस अकस्मात् विभावित और विकारे हुए नहीं होते बल्कि प्रसिद्ध और अभ्यास के द्वारा वे हम में प्रत्यक्षीकरण की योग्यता उत्पन्न करते हैं। हम केवल एकमात्र रसात्मक रूप के प्रति सचेतन नहीं होते प्रकृत प्रकृति के समस्त औपचारिक क्रम के प्रति होते हैं। औपचारिक क्रम (formal order) की यह अनुभूति उस अत्यन्त तीव्र इन्द्रिय (Intense sense) शक्ति से समाविष्ट रहती है, जिसने उसे प्रकृत किया है।^१ रस्किन के मतानुसार प्राकृतिक क्रम का अर्थव्यवस्था ईश्वरत्व की ओर उन्मुख करता है। इसी से उसकी दृष्टि में प्रकृति इच्छेय या अस्वच्छिन्न ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब है। सम्भवतः प्रकृति एक चेतन कलाकार है जिसका रूप विचारपूर्वक रूप-सौन्दर्य को चोखित करना है।^२ ऐसा क्वाता है कि रस्किन ने ऐंग्लिय सौन्दर्य-बोध और ईश्वरीय सौन्दर्यानुभूति दोनों का सामञ्जस्य कलाानुभूति में करने का प्रयास किया है। परन्तु रोजर क्रैने (Essay in Aesthetics में) ऐंग्लिय सौन्दर्य के रूप में सौन्दर्य-बोध और संव्यायमक दृष्टि की दृष्टि से सौन्दर्य-बोध के पार्श्वपरिचय पर विचार किया है। उसके मतानुसार पहले अर्थ में सौन्दर्य कलाकृतियों में अनुभूत होता है जहाँ पहले कबक कल्पनात्मक जीवन के प्रायश्चित्त रूप ही व्यवहृत होने हैं। दूसरे अर्थ में सौन्दर्य कुछ अतीन्द्रिय हो जाता है और उसका सम्बन्ध सबंध के रसात्मक औचित्य और तीव्रता से हा जाता है।^३ यों रमणीय सदानुभूति कर्ता कृति और प्रादिक में समन्वय सम्बन्ध स्थापित करती है। इसीसे तेजोरकिष्ण ककारमक सौन्दर्य का सम्यगनुभूतिक मानता है। उसके मतानुसार समानुभूति का विषय हमारा विषयीयुक्त मन है, जो परस्पर आरोपित होने के कारण विषयी में अपने को जोड़ बैठा है। हम प्रायः दूसरों में अपने को अनुभव करते हैं और अपने में दूसरों को अनुभव करते हैं। दूसरों के चले हम प्रसन्न उन्मुख, व्यापक बहतर या इन सभी के विपरीत अनुभव करते हैं। रमणीय सहृदयतात्मक अनुभूति (The Aesthetic feeling of sympathy) वा रमणीय समानुभूति रमणीय भावना का कबल एक प्रकार ही नहीं है। अपितु अपने आप में स्वयं भावना है। अनुभूति की चरम सीमा पर समस्त रमणीय रसास्वादन व्यष्टि वा समष्टि (सम्भवतः साधारणीकृत) दोनों रूपों से समानुभूतिक हा जाता है।

^१ इमेज एक्सपी. पृ. १६५।

^२ इमेज एक्सपी. १६६।

^३ इमेज एक्सपी. पृ. १६४।

वहाँ तक कि स्वाभिव्यक्ति, वास्तुकलात्मक (Architectonic), स्थापत्य-आत्मक (Tectonic), सृष्टिकारक (Ceramic) या रूप और रेखा में भी निहित है। जब भी हम किसी कला में व्यक्तित्व का वर्सन करते हैं (मनुष्य के दोषों का नहीं अपितु कुछ छोटे मानवीयता का) तो वह हमारे अपने जीवन की सम्भावनाओं और प्रवृत्तियों तथा महत्त्वपूर्ण व्यापारों में सांगत्य जाती और गुञ्ज या कुञ्जक बरत करती है।^१ इस प्रकार तेदोरटिप्स ने रमणीय समानुभूति को विशुद्ध रमणीय परिवेश में ग्रहण किया है। क्योंकि वह कल्प को मानवीयता की दृष्टि से विशुद्ध और स्वतंत्र हैलन का पक्षपाती है।^२ जब कि हम जैसे पूर्ववर्ती विचारक रमणीयानुभूति में उपयोगिता को अधिक महत्त्व देते थे।^३ यद्यपि विशुद्ध रमणीय समानुभूति के क्षेत्र में नैतिकता या उपयोगिता को ही एक मात्र निष्पत्ति नहीं माना जा सकता, क्योंकि रमणीय रसास्वादन इनसे किञ्चित् सम्बन्ध होता हुआ इनसे परे का भी आस्वादन है। जिसे हम अजुना मनाबैज्ञानिक सौम्यव्येताओं की भाषा में 'रमणीय बिम्ब की समानुभूति' कह सकते हैं। कार्लमूस ने रमणीय व्यापार (Aesthetic activity) के सैद्धांतिक पहलू पर विचार करते हुए बताया है कि आरणा और संबेदन के मध्य में बुद्धि, प्रातिमज्ञान, कल्पना आदि के योग से विभिन्न स्तरों के बिम्बों का निर्माण होता है। यह बिम्ब संबेदन की तरह पूर्ण है, किन्तु धारणा की तरह कमबख्त है। इसमें न तो प्रथम की अक्षय मञ्जता है न दूसरे का सूजा कंकाठ।^४ अतः कार्लमूस इन दोनों के मध्य में उस बिम्ब का कोई रूप माँघता है। निम्न ही कर्ता एवं मायक में निहित वह रमणीय समानुभूति है, जो इनकी समता के अनुरूप बिम्ब निर्माण करती है। रमणीय समानुभूति कर्ता कृति और मायक में जिसक द्वारा सम्बन्ध-स्थापना करती है—वह रमणीय बिम्ब है। क्योंकि वस्तु की संबेदना के द्वारा सर्वप्रथम कर्ता में बिम्ब का निर्माण होता है, जो कला कृति में बिम्ब-प्रतिमा का रूप ग्रहण कर लेता है। यहाँ बिम्ब प्रतिमा से मेरा तात्पर्य स्थायी बिम्बों के निर्माण से है; क्योंकि कलाकृति में भी बिम्ब का प्रतिबिम्ब स्थायी बिम्ब का स्वरूप धारण कर लेता है। जब वही बिम्ब प्रादक में प्रतिबिम्बित होता है तो प्रारम्भ में प्रतिबिम्बित होने पर भी बिम्ब की रमणीयता या अनिरामता के अनुरूप एक स्थायी बिम्ब का रूप धारण

१ एरबे. ५. ४. ७।

२ एरबे. ५. ४. ७०।

३ हि. एरबे. ५. १०१. यद्यपि हम भी वह उपयोगिता को एक प्रकार की रमणीय व्यवधिना दे।

४ हि. एरबे. ५. ४. ८।

कर लेता है। यही अवस्था रमणीय समानुभूति की अवस्था है जो कर्ता कृति और प्राहक को समाधानतर भावभूमि पर उपस्थित करती है। भावक की उमता के अनुरूप रमणीय समानुभूति के भी कतिपय सोपान होते हैं। उनके प्रभावबल विन्वीकरण की प्रक्रिया विरहों को कभी तद्वत् कभी आसिक्त कभी आमासात्मक और कभी बल मह्यपूर्ण भावों को ही—चिरकाल तक या जगत्प्राप्ती मात्रस-पट पर अवस्थित रख पाती है। विन्वक प्रकृष्टरूप बाद में चरकर विन्व की स्थिति उस पराग या गीब की तरह हो जाती है जो कर्मणा उद्वता-आता है जैसे ही विन्व की विन्ववत्ता भी राम्य विचारों के यपेदे काकर कमसा जीव होती जाती है; और अन्त में आत्मरुचि विन्व का कबल धारणा विन्व मात्र ही रह जाता है। कभी-कभी तो वह धारणा प्रतीक का रूप धारण कर लेता है और उसकी विन्ववत्ता प्रायः समाप्त ही हो जाती है। ऐसा क्यता है कि रमणीय समानुभूति की प्रक्रिया निरन्तर परिवर्तित होने वाली संवेग, संवेदन और चिन्तन मिश्रित प्रक्रिया है, जिससे विन्वानुभूति में चण-क्य परिवर्तन मयबबोम्मेय दोनों सन्धिहित रहते हैं। किसी रमणीय वस्तु का विन्व धारणा विन्व से लेकर रमणीय विन्व तक क निर्माण-काल में चण चण परिवर्तित मयबबोम्मेय क्रिया पर ही आधारित रहता है जो उसे रमणीय आत्मरुचि विन्व के रूप में टाल देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि (महिमपट की भाषा में) मह्यदयत्व रमणीय समानुभूति का मूक कारण है।^१ रहस्यानुभूति की तरह यह मह्यदय के मन में होने वाली वृत्त आत्मनिष्ठ प्रक्रिया है जिसमें भावना और चर्चणा जैसे अन्वामगत व्यापारों का आवागम्य होता है।^२

रमणीय समानुभूति और प्रत्यभिज्ञान

परन्तु हेरोल और अभिनव गुप्त दोनों ने रमणीय समानुभूति को प्रत्यभिज्ञानात्मक माना है। हेरोल क कथनानुसार मय, जो आंतरिक जग से अपनी सार्वभौमिकता का जागता है वह बाह्य भावकों में आस्थादित कलाकृतियों में पुनः अपने का पहचानता है।^३ किन्तु यह प्रत्यभिज्ञान परम सत्य का वाच नहीं करता बल्कि कलाकृति क रूप में मूक रूप का उपस्थापक एक अनुभूति मूलक क्रिया व्यापार का चतन करता है। मादकों क प्रदर्शन में भी रमणीयानुभूति प्रदसनात्मक होती है क्योंकि प्रत्येक 'नाट्यकर्ता में मूल वेतिहायिक चरित का प्रत्यभिज्ञान करता है। जहाँ हेरोल यह मानता है कि कलाकृति अपने आप से कुव परी की ओर संकेत

^१ इन शब्दों पर १९१५। ^२ इन शब्दों पर १९१५। ^३ कथन पर १९१५।

करती है इस कथन को हम भारतीय विचारकों द्वारा मान्य बौद्धिक
 धनुमूति के समाप्तान्तर स्वीकार कर सकते हैं। हेगेल और अभिनवगुप्त
 दोनों के अनुसार रमणीयानुमूति में विषय और विषयी दोनों का साधारणी
 करण हो जाता है।^१ यों प्येरे की तरह रमणीयानुमूति में हेगेल भी कला
 को बीच का आधार मानता है, जिसमें एक ओर तो कलावस्तु का
 प्रत्यक्ष-बोध है और दूसरी ओर उसका विशुद्ध विचारारामक आदर्श ज्ञान।^२
 हेगेल के अनुसार सामान्य मानवता के सागतिक भाव ही कला के शाश्वत
 विषय हो सकते हैं। सार्वभौमिक होने के कारण वे परम के ही व्यक्त रूप हैं।
 अतः उसकी दृष्टि में कला परम सत्य की ऐश्वर्यमय उपस्थापना है।^३ अवतार
 बादी विचार-धारा भी इसी सत्य का परिचोतन करती है। भारतीय अवतार
 वस्तुतः प्रकृति की ही कलात्मक अभिव्यक्ति हैं, जिनके कलात्मक रूपों का
 विकास भारतीय साहित्य और कला में प्रचुर मात्रा में हुआ है। हेगेल ने
 उच्चतम तथी (कला चर्म दर्शन) के प्रत्यक्ष रूपको थास (Thesis) कहा
 है जिनका चर्म में समन्वय (Synthesis) होता है और दर्शन में प्रतिवाद
 (antithesis) हो जाता है।^४ हेगेल की कलाधनुमूति और अवतारबादी
 धनुमूति में भी बहुत कुछ नैकत्व है, क्योंकि वह यह मानता है कि भावक
 आत्मभावना का आत्मनिष्ठ पक्ष है। यह उपादानों को ग्रहण करता है
 और इस प्रकार धनुमय करता है जैसे व उसका धपन ही। मन्त्र भावक भी
 आविर्भूत सत्ता में प्रकृत्यानुमूति का भावक उपबन्ध भाव से ही करता है।
 अतः हेगेल और अभिनवगुप्त के विचारों से यह निष्कर्ष अवताराधनुमूति के
 समाप्तान्तर स्पष्ट निकलता है कि रमणीय धनुमूति वस्तुतः बीच या कला में
 प्रकृति का प्रत्यभिज्ञान है।

आत्मन्वय वस्तु को रमणीय रूप का उपजीव्य बनाने में प्रत्यक्षीकरण
 या वस्तुबोध के अतिरिक्त धनुमूति और प्रत्यभिज्ञान का भी विशय होना
 रहता है। क्योंकि नवी वस्तु और नए पात्र की ध्वेजा, कलावस्तु-इतिहास
 मित्र पात्र रमणीय समाधनुमूति में अधिक प्राण मित्र होते हैं। इसका मूल
 कारण यह है कि कलावस्तु जब आत्मन्वय वस्तु के रूप में एहीत होती है
 उमर्छा रमणीय चिन्म-रूप में प्रस्तुत करने में संस्कारगत ज्ञान के अतिरिक्त
 स्मृत्यनुमोदित प्रत्यभिज्ञान का योग रहता है। स्मृत्यनुमोदित प्रत्यभिज्ञान
 आत्मन्वय वस्तु के पूर्णानुमूल धारणा-चिन्म को नई वस्तुनाओं तथा एहीपन

१. कम्प परमे ५ १५५।

२. कलाकृति के लौकिक और बौद्धिक दो प्रकार के ज्ञान माने जाते हैं।

३. कम्प परमे ५ १६२।

४. कम्प. परमे ५ १६२।

विभावों के योग से जगातार उचैतनात्मक प्रहार द्वारा उसे अधिकाधिक रमणीय इस से अनुप्राणित करता है। इस प्रकार रमणीय आत्मन विम्ब भावक या सहृदय में रमणीय रस भावन की अपूर्व क्षमता उत्पन्न करता है। रमणीय विम्ब को अनुभूति-सिद्ध यथामे में रमणीय समानुभूति सक्रिय रहती है। रमणीय समानुभूति का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आत्मन विम्ब और विम्बोद्भावन दोनों से होता है।

समानुभूति के मूल में प्रत्ययबोध

यों आत्मन वस्तु प्रत्यय-बोध तथा अनुभावित और तार्किक ज्ञान पर नाभित रहती है। किन्-काठ और ऐंग्रिय-भाषेज होव के कारण उस पर यह आरोप होता है कि वह सत्य है या मिथ्या वह वास्तविक है या विवर्तन कथवा सामान्य है या विशिष्ट अंश है या पूर्ण उसका कितना अंश इत्ये या गोचर है और कितना अंश अदृश्य और अगोचर। इस प्रकार उसका यस्तुत्व विवेकाभित यस्तुत्व होता है। उसके इस विचकारण में उपर्युक्त सभी विज्ञाप्यत्मक तत्त्वों का न्यूनाधिक सयोग परिकल्पित होता है जिसमें वस्तु क प्रत्यय-बोध का आविर्भाव निहित है। यह प्रथम बोध ही वस्तु के प्रति चारणा का निर्माण करता है जो आशय क भावस में चारणा-विम्ब बनकर स्थित हो जाती है। अतएव वस्तु का प्रत्यय-बोध ही चारणा-विम्ब के निर्माण का आधारमूल कारण है; क्योंकि प्रत्यय-बोध जो किसी वस्तु को पूर्ण बनाकर या पूर्ण रूप में ईक्षण का अन्वस्त है चारणा-विम्ब को भी यमी पूर्णत्व से परिपुष्ट करता है। प्रत्यय-बोध द्वारा प्रयुक्त पूर्णता प्रायः गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों होती है। इसक पूर्व आत्मनवस्तु अपने वस्तुत्व की अवस्था में प्राज्ञ अप्राज्ञ या अनेक विधि-विधियों से युक्त सदायात्मक अवस्था में यतीत होती है। उसमें प्राज्ञक या प्रेचक की वासक्ति और आस्था का प्रायः अभाव रहता है। किन्तु प्रत्यय-बोध क आधार पर निर्मित प्राज्ञक क मय में तब वह चारणा विम्ब क रूप में स्थित हो जाती है तो प्राज्ञक की वासक्ति और आस्था का सयोग मिलते ही वह आत्मन विम्ब का रूप धारण कर म्गो है। इसी से रमणीय समानुभूति में सत्य वस्तु तटस्थ या निरपेक्ष हो सकती है किन्तु आत्मन विम्ब नहीं; क्योंकि लक्ष्य वस्तु की अपेक्षा आत्मन विम्ब क अभाव में साहित्य या कला की सृष्टि दा ही नहीं सकती।

शत्रुणाका और पुष्पगत अद्वा और मनु आत्मन वस्तु रूप में पाठे हो या नहीं हो आत्मन विम्ब क रूप में रहती वास्तु और कल्प-सृष्टि क

उपादान हो सकते हैं। इसी से आत्मजन वस्तु की अनुमृति जो वस्तुता उसके धारणा-विम्ब की अनुमृति है कबल बोधार्थक या धारणात्मक अनुमृति तक ही सचम हो सकती है। जब कि आत्मजन विम्ब की अनुमृति आत्मजन विम्ब की गुणात्मक और साधारण पूर्णता के अनुरूप कला-पारंगी भवता काव्य-भर्त्स भी सौन्दर्य वृत्ति या रमण वृत्ति की चमत्ता के अनुसार सौन्दर्यानुमृति या रमणीयानुमृति है।

गुणात्मक या साधारण परिपूर्णता या सौन्दर्यवृत्ति या रमणवृत्ति की मूल मन्त्रमगीकृता के अभाव में अनुमृति के स्थान में वह कबल सौन्दर्य बोध मात्र (नवी कविता क मद्रा) ही करा सकती है। अनुमृति की इस रक्षा में सङ्घर्ष व्यापार का नितास्त अभाव-सा बना रहता है। इस कोटि के पाठकों में भाषात्मक संबेगों के स्थान में कबल विचारोत्तेजन का प्राधान्य हो जाता है। इस प्रकार रमणीय समानुमृति वृत्ति एवं ग्राहक के अनुरूप कमी भाषात्मक संबेगों से अनुमृति रहती है और कमी विचारोत्तेजना से। विधातीत रमणीय समानुमृति :—

समानुमृति की उपर्युक्त प्रवृत्तियों क अतिरिक्त एक अवस्था विधातीत या सर्वातिशायी अनुमृति की भी परिगोचर होती है। भारतीय विचारक रमणीय अनुमृति को स्थायी मनोवृत्ता मानते हैं^१ किन्तु शापेन हावर न रमणीय अनुमृति को प्रत्यय की अनुमृति कहा है—वह सभी सन्दर्भों से मुक्त इच्छा की तात्कालिक अभिव्यक्ति है^२ यह अवस्था तब आती है जब ज्ञान इच्छा की सेवा से मुक्त हो और सङ्घर्ष नमी प्रकार क वैयक्तिक तत्त्वों से मुक्त हो। इसलिये यह विधातीत अनुभव है। दिक्, काल और कारण भावक बुद्धि क रूप हैं जिनक बल पर प्रत्येक प्रकार (प्रत्यय) की एक सत्ता जो मन्त्रमुक्त एकमात्र सत्ता है अनेक समान सत्तायुक्त रूपों में स्वयं स्वच्छ होती है, और लगातार क्रमगत असंख्य बार प्रकट और अप्रकट होती रहती है। मन्त्रात्मक रूपों के द्वारा आत्मजन वस्तु का सहज बोध अन्तरस्थ प्राप्त है, किन्तु धारणा का वह सहज बोध, जो इन रूपों को बहिरस्थ कर देता है यह विधातीत ज्ञान है^३ अतएव दापेनहावर क मतानुसार यह विधातीत ज्ञान तब उपलब्ध होता है जब कला पारंगी स्वर्यप्रधानज्ञान क द्वारा किसी सुन्दर कलाकृति का विस्तार करता है। इस प्रकार कलाकृति क प्रति या धारणा बनता है यह वस्तुतः कलाकृति क प्रति यद्यपि पाठी धारणा है जिनकी रमणीय समानुमृति की प्रवृत्तिपाठ में सङ्घर्ष का

१ इन परक. पृ १०३।

२ इन परक. पृ १०८।

३ इन परक. पृ २०८।

निर्वैयक्तिकरण हो जाता है। बापेनहाबर के इन कथनों से स्पष्ट है कि हमने जिसे विधातीत अनुभूति कहा है वह वस्तुता अपने ऐन्द्रिय संबन्ध से परे उन्मुक्तवस्था की रमणीय समानुभूति ही है।

ब्रह्मानन्द और समानुभूति

वेदान्तियों के अनुसार अविद्यामाया के आवरण के चढ़ते प्रकृत या आत्म स्वरूप का दर्शन नहीं होता जीव रजोगुणी अवस्था में भोगास्तक अर्थात् ऐन्द्रियक बना रहता है। अविद्या माया के आवरण का भेदन होने पर सत्त्वगुणी अवस्था में ब्रह्मा आत्म-स्वरूप का दशन करता है—या अपने आवरण हीन आत्म-स्वरूप को पुनः पहचान घटा है जो ब्रह्मानन्द या धार्मिक आनन्द का कारण है। यह आत्मन्दावस्था भी वस्तुता जतीन्द्रिय धामन्दावस्था ही है इसकी भावन प्रक्रिया में उद्दीपन विभावों संचारो भावों और अनुभावों का योग नहीं होता सम्भवतः इसी से यह समाधि या तुरीयावस्था का भी कारण है।^१ आत्म-स्वरूप जब तक अविद्यामाया के आवरण में है तभी तक यह आत्मबल वस्तु (Objective) है किन्तु विद्यामाया के द्वारा वस्तुता प्रत्यभिज्ञान या पुनः पहचान, दसक आत्मबल को तुर कर उसके आत्मबल को (आत्मविद्य बनावर) प्रतिष्ठित करता है। इस प्रक्रिया में आत्मबल (आत्मा) का आत्म-रूप में घुलित होना और ज्ञाता आत्म्य का उत्तरोत्तर अपने वह को विसंबित कर दोनों का एकात्म हो जाना ही ब्रह्मानन्द का मूल रूप समझा जाता रहा है, जैसा कि सैबों के 'अहमिदम्' या 'अहं ब्रह्मास्मि' 'ब्रह्म-वद् ब्रह्मैव भवति' 'तत्त्वमसि' 'आवहि तुमहि तुमहि होइ जाई' में आत्मबल आत्म्य (objective subject) और ज्ञाता आत्म्य (knower subject) की ही एकता कथित जाती है। ऐसा लगता है कि इस रिक्ति में समानुभूतिक प्रक्रिया जैसी कोई वस्तु नहीं रह जाती बल्कि वह केवल दार्शनिक प्रत्यभिज्ञान की क्रिया को चरितार्थ करती है जहाँ जीव अपने सारवस्वरूप चिद को जान कर सिद्ध हो जाता है।

रसानन्द और समानुभूति

परन्तु रसानन्द में आत्म्य और आत्मबल एक दूसरे में कथ नहीं होते।^२

१. रस गं ५ ९ । रसगद्गावर कार के अनुसार भी ब्रह्मानन्दासाद आत्मबल विषय-विहीन शुद्ध आत्मबल रिक्तमें अवन मलक निरिष्वाहात आवि व्यापार निरिक्त है।

२. इन परमे ह. १ ८ को आत्म्य का निर्वैयक्तिकरण पाद्यत्म और वीर्यात्वं दोनों विचारक मानते हैं।

आश्रय और आत्मजनन के बीच में प्रायः उद्दीपन अनिर्वाप ही होता है।^१ यद्यपि आत्मजनन और आश्रय में अविनाभाव सम्बन्ध रहता है। प्रज्ञानम् में आश्रय, आत्मजनन आत्मस्वरूप या ब्रह्मस्वरूप का दृष्टा होता है भाक्त्य नहीं। परम्पु रसानम् में आश्रय आत्मजनन का दृष्टा नहीं मोक्षा होता है। क्योंकि साधारणीकृत अवस्था में रस-वर्धना-व्यापार भारतीय विचारक मानते हैं।^२ इस दृष्टा में आत्मजनन के प्रत्यभिज्ञान की क्रिया मुख्य न होकर गौण रहती है क्योंकि आत्मजनन द्वितीय व्यक्तिक रूप में कबल हरय नहीं अपितु आस्वाद्य रहता है। इस प्रक्रिया का काष्पात्मक वर्णन उपनिषदों में देखा जा सकता है। यहाँ यह कहा गया है कि 'मारम्भ में मैं एक ही था; आत्मम् के द्विप एक से दो (पुरुष और स्त्री) हो गया'^३—उसमें आश्रय और आत्मजनन की द्रुत सत्ता की अनिर्वायता का रहस्य रसानम् की दृष्टि से स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है। सम्भवतः इसी से उपनिषदों में 'मैं ही रस हूँ' ऐसा नहीं मिलता। उसका रसस्वरूप सर्वैव पृथिव पुरुष में (रसो वै सा) आता है। पृथक् रसानम् में रसस्वरूप आत्मजनन ब्रह्म सर्वैव 'बहु' ही रहता है। यह कमी 'मैं' नहीं होता। इस परम्परा में आने काटा रसानम् का वाचक भक्त अपने मगधान को सर्वैव आत्मजनन के रूप में ही देखने का अभिलाषुक रहता है; जो गोस्वामी तुकसीदास की 'जन्म जन्म सिंघराम पद् मोहि बरदान न आब' जैसी अभिलाषाओं में व्यक्त होता रहा है। यद्यपि अभिनव गुप्त समीपानुभूति में आश्रय और आत्मजनन की एकता के प्रतिपत्ती हैं,^४ किन्तु साहित्य एवं कला की अपेक्षा ऐसा वर्णन में ही व्यक्त सम्भव है। अवतारवादी साहित्य एवं कला की अभिव्यक्ति जिस मक्ति की रसवत्ता से अनुभावित होती रही है, वह मक्ति अपने मक्त में अजल खोल अनुभव रखने के लिए आर्बिभूत या अभिव्यक्त मगधाप् को सर्वैव आत्मजनन रूप में ही पाने की अपेक्षा रखती रही है। इस प्रकार प्रज्ञानम् में आश्रय का आत्मजनन में विसर्जन और रसानम् में आत्मजनन का सर्वैव प्रबक् अस्तित्व में होना—इस दोनों में स्पष्ट अन्तर चोतित होता है।

विद्युत् आत्मा या ब्रह्म प्रज्ञानम् के लक्ष्य हो सकते हैं रसानम् के नहीं। रसानम् में उनका आर्बिभूत रूप ही जो सेमिब्र और संवेद्य है, जो हरय और भाव्य है पृथीत हो सकता है। अतएव साहित्य और कला को आश्रय और आत्मजनन की अभिव्यक्ति की अपेक्षा रखते हैं—आविर्भूत, पृथक्

१ रस गी. पृ. १३। २ रस गी. पृ. १०। ३ इ. अ. १, ४, २।
४ इस दृष्टि में १०८ में विशेष दृष्टम्।

भीर प्रकृत आत्मनस ही उनका उपजीव्य हो सकता है। किसी भी कल्पनात्मक अभिव्यक्ति में विस्तृत भक्ति का स्पर्शन और स्वपरातीत की कल्पना हुई ही नहीं असम्भव होती लगती है। यदि उसके अस्तित्व का स्वीकार भी कर लिया जाय तो साहित्य एवं कला की रसवशा, मातृकता और रमणीयता की दृष्टि से अभिव्यक्तिगत गुणों और माध्यमों से युक्त होकर तथा सैव्य और संबोध हाकर ही वे प्राण हो सकते हैं। मात्रा गुण और वैशिष्ट्य क बिना कलाभिव्यक्ति में उनकी धारणा (Concept) का निर्माण कठिन है; और साधारण प्रतीक के जगह में यों तो दर्शन में भी किसी प्रकार का किन्तन सम्भव नहीं है किन्तु साहित्य एवं कला में तो उनकी चिन्तना कल्पना और सृष्टि ही नितान्त हुई है।

सामान्य अनुभूति और रमणीय कलानुभूति

सामान्य अनुभूति दैनिक वातावरण की प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होती रहती है। उसमें ऐन्द्रिक, सुप्रात्मक या सुस्कारत्मक बीजन का बोध अनुस्यूत रहा करते हैं किन्तु रमणीय कलानुभूति वह विद्वैतिक (Deindiv dualised) अनुभूति है, जहाँ मोक्ष अपनी वैयक्तिक सीमाओं से मुक्त होकर किसी कला कृति विलेय का अनुभव करता है। सामान्य अनुभूति में प्रत्यक्ष-बोध का प्राधान्य होता है जबकि रमणीय अनुभूति में प्रत्यक्ष-बोध और उससे प्रेरित अन्य कलात्मक बोधों का विशाल पाग होता है। रमणीय अनुभूति को हम कला के माध्यम से आत्मगत साक्षात्कार कह सकते हैं। धार्मिक चिन्तन में भी जब एक पुरुष विष्णु की मूर्ति का आत्मनस वस्तु के रूप में चिन्तन करता है उस स्थिति में वह आत्मनस मूर्ति केवल स्फूर्तमूर्ति मात्र नहीं होती अपितु उसके माधों की मूर्ति हो जाती है। अर्थात् वह मूर्ति के स्वरूप का नहीं अपितु भाव-मूर्ति (इमैगोपेयी) का चिन्तनप्रद करता है। वह मूर्ति केवल विष्णु की अनुकृति मात्र नहीं है अपितु प्रेक्षक की समस्त रमणीय वासनाओं से अनुप्राणित उसकी रमणीय कलानुभूति को इतरात्मक में पहुँचाने वाली साधन-वस्तु है। इस दृष्टि से रमणीय कलानुभूति की ही सीमाएं दृष्टिगत होती हैं—एक तो वह, जहाँ उपात्मवादी चेतन में कलानुभूति प्रतिक-साधना का साधनमात्र है। इस क्षेत्र में जिन भक्तारों की मूर्तिर्वा गृहीत होती हैं वे भक्त की प्यक्तिगत साधना के केन्द्र वैयक्तिक उपात्म होत हैं। इस साधना में वैयक्तिक उपात्म रूप का इतना अधिक प्रमुख होता है कि भक्त प्रायः अपने दृष्ट क रूपों को केन्द्र मानकर उसके रूप का (आत्मरूप के रूप में) समस्त विभिन्न रूपों में प्रकटा है। यह

उपास्यवादी चित्र की यह ककानुमूर्ति है जो विद्युत् 'स्वास्तःसुखाय' है। इसके अतिरिक्त भक्तारवादी ककानुमूर्ति का एक दूसरा चित्र भी है जहाँ यह विद्युत् साहित्य एवं कला के रूप में स्वयं साध्य है। जहाँ भक्तार-मूर्तियों की ककानुमूर्ति विभिन्न भाषों और रसों से आपूरित होकर की जाती है। हम इति से उपास्यवादों की मूर्तियों विभिन्न भाषानुमूर्तियों के विशिष्ट आत्मन रूपों में दृष्टिगत होती हैं। विभिन्न रसात्मक रूपों में उनको निम्न प्रकार से उपस्थित किया जा सकता है—

प्राचीन रस	रमणीय भक्तार विम्ब
शृंगार	कृष्ण
वीर	राम करिक
रौद्र	परशुराम, मूर्तिह
हास्य	बामन
अद्भुत	मत्स्य, कृम
मयानक	चराह
घाम्त	बुध

भक्तारवादी सौम्य चतना उपास्यवादी अधिक होने के कारण भक्तार मूर्तियों के भीमरस रूप का अतिष्कार करती रही है। अतएव उनकी कोई भी मूर्ति भीमरस का भाव नहीं उत्पन्न करती। इसके अतिरिक्त सर्वशक्तिमान प्रत्येक आविर्मूर्त रूप होने के कारण भक्तारों के भीम में करण प्रसंगों के होते हुए भी उनके समस्त भक्तारपरक व्यक्तित्व की परिचायिका कोई करण मूर्ति नहीं दृष्टिगत होती। इसका मुख्य कारण यह है कि समस्त भक्तार रूपों का प्रयोजन कल्प स्थिति का विनाश कर जन-जीवन में अप् उल्लाह और नयी चेतना का संचार करना रहा है। भक्तारवादी उपास्यों का 'कल्याणरस' रूप भी ककानुमूर्ति का घोटक नहीं अपितु कल्प-वृत्ता को प्रवित कर नयी-नकृति प्रदान करने वाली स्थिति का सूचक है। महाकल्या से युक्त बुध भी स्वनीय अवस्था के विनाशक रहे हैं, जैसा कि प्रायः भक्तोक्ति-तन्त्र जैसे स महावाधिसत्त्वों के संकल्पों से विदित होता है। इस प्रकार भक्तारों की विविध मूर्तियों और उनके छीटा-जायपाओं में हम विविधतरमक रमणीय ककानुमूर्ति का दर्शन करते हैं, जो स्वयमेव साध्य है।

रमणीय विम्बोव्मावना

साहाय्य एवं कल्प की अन्य विधियों की तरह भक्तारवादी ककानुमूर्ति विविध भक्तारों एवं भक्तार रूप में मान्य पुरवों की ककारमक अभिव्यक्ति पर

मुख्य रूप से आधारित रही है। यों सामान्य कला-कृति के निर्माण में कवि या कलाकार जिस गुणों की अपेक्षा रखते हैं, उनमें रमणीय विंगोद्भासना का सर्वप्रमुख स्थान है। सर्वोच्चकोटि एवं सर्वप्रगल्भी कलाकार प्रायः सभी दिशाओं से बटोर कर अनेकज्ञः कृषियों एवं विग्नी का कोस अचेतन में संचित रखता है। अनेक वस्तुओं और पदार्थों में सभी रूपी पृथक्की की तरह या विविध प्रकार की मूर्तियों, चित्रों, मरे हुए पशु-पक्षी पौधों के संग्रहालय के सदस्य उसके पक्षेप्रगल्भी मन में कथु वा वृद्ध, बर्तु वा वृद्ध, सुख वा दुःख अनेक रूपों वाले विग्नी का कोस उसके मन में ज्ञात वा अज्ञात या किञ्चित् ज्ञात रूपों में विद्यमान रहता है। इन मार्मिक कृषियों के पृथक्कीकरण के निमित्त मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार से उसे प्रायः पृथक्पृथक् हाकर भ्रमण करना पड़ता है। वह अनेक स्थानों नगरों शहरों और देश-विदेशों में तथा जंगल समुद्र, नदी पर्वत, प्रपात या ऐतिहासिक स्मारकों और मन्नाभेदों में घूम कर प्राकृतिक प्रादेशिक, आदिमजातीय वैबन्धक और सामाजिक दृश्यों और कृषियों के विग्ने अचेतन मानसकोश में संचित किए रहता है। दूसरी ओर म्यबन्धक दृष्टि से स्थानीय राष्ट्रीय, विदेशी, धार्मिक, पौराणिक आधुनिक, इतिहासिक, राष्ट्रीय या जातीय महाकाव्य काव्य पात्रक वा कथा-कृतियों के अन्वयन द्वारा उनमें कर्पाकिन वरनात्मक, (सुख, संघर्ष प्रकृति-व्ययन महाप्रकय महामारी अन्धक, अप्रिकर्ष इत्यादि का) या पात्रात्मक कथातत्त्वों के विग्ने भी पृथक्कृत करता रहता है। इस प्रकार मानस-अन्ध-कोस की तरह उसका चिरसंचित विग्नेकोश भी अनुकूल या मौलिक कथकृतियों की सृष्टि में विशिष्ट योगदान करता रहता है। जिस प्रकार चिन्तक और दार्शनिक अपने भावों और विचारों को स्पष्ट करने के लिए अपने संचित विचारणा-कोस के सम्प्लेक्षों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं तथा आकलन विच्छेपन संश्लेषन समिश्रण ममन्धन या विवेचन के द्वारा भाषोज्ञावना या विचारोज्ञावना करते हैं उसी प्रकार कलाकार भी अपने विग्नेकोशों की पृथक्कृत राशि से मौलिक कथाकृति की मञ्जना के लिए मूल विग्नेोज्ञावना करते हैं।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि उसकी विग्नेोज्ञावना का मूल आकलन क्या है ? विद्यय ही जिस कथाकृति की रचना का वह संकल्प करता है वह किमी विशिष्ट आकलन वस्तु के आकलन विग्ने की तद्बन्ध अनुकृति होती है या उसमें उप्रेरित होकर नवाज्ञावित होती है। कलाकार उप्रेरित अनुकृतिमूलक रचनाओं में भी विशिष्ट आकलन विग्ने को मुख्य आधार रख कर अनेक नए संचित विग्नों के रमणीय लक्ष्यों को उभ पर आरोपित करने

का प्रयास करता है। उसकी कृति मूळ आत्मजन्य वि
प्रकृत्य करते हुए भी अनेक बिम्बों की सौन्दर्य-राशि
है। परिणामस्वरूप बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया एक प्र
की प्रक्रिया बन जाती है। इसी से बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया भ
एकरूपता, सुस्पष्टता और चित्त, विविधता अदिकता, सगति, आमुग्य
संयम, व्यवसाय स्पष्टता, मधुरता कोमलता, वर्ण-व्यंजित इत्यादि का मन
ही मन अनुचितन करना पड़ता है। प्रजापति अपनी सुष्टि (सरस्वती)
पर जैसे स्वयं मुग्ध हो गए थे जैसे ही ककाकार भी अपनी नय्य मूतन
बिम्बोज्ञाबनाओं पर मुग्ध हुआ करता है। बिम्बोज्ञाबना की प्रस्तुत
प्रक्रिया में बिम्बकोश का रमणीय अंश ही संश्लेषित होता है इसी से इस
प्रक्रिया को रमणीय बिम्बोज्ञाबना कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

अनेक कवियों की रमणीय बिम्बोज्ञाबना पुराणों से गृहीत अवतारवादी
बिम्बों की सश्लेष राशि से निर्मित समवृत्तीय अवतार कृतियों के रूप में
बन्तुत रमणीय बिम्बोज्ञाबना की कृति है। पुराणों में इस प्रक्रिया को जब
अनोक्त ढंग से व्यञ्जित किया गया है। पुराणों में पणित 'तिलोत्तमा' नाम की
सुन्दरी अप्सरा की कथा में कहा गया है कि उसका निर्माण सप्तरा की सुन्दरतम
वस्तुओं के तिल-तिल मर उत्तम अंशों से हुआ था। इसी से तिलोत्तमा
अप्यम्ब सुन्दरी थी। यदि हम कथा का विरूपण किया जाय तो स्पष्ट
प्रतीत होगा कि ककाकारों या भाद्विराजकारों द्वारा रमणीय बिम्बकोश की
सर्वोत्तम राशि से निर्मित होने वाली यह रमणीय बिम्बोज्ञाबना की विस्तृत
प्रक्रिया है। अथाचित या अभाषास ढङ्ग से व्यक्त होने वाले रमणीय बिम्बों में
अचेतन मनमें पूर्वमश्लेष राशि का सर्वोत्तम अंश परिकल्पनात्मक प्रक्रिया
द्वारा निकलकर नये बिम्ब की प्रजापना किया करता है। मध्यकालीन भक्तों में
अवतारों की भाव प्रतिमाओं के द्वारा उन्हें ककात्मक बिम्ब रूप में प्रस्तुत
करने की विस्तृत प्रकृति रही है। उपास्य-उपासक सम्बन्ध भाव से अनेक
कवियों पूव ककाकारों ने अवतारी उपासकों को राजा, सम्राट्, धामी आभयदाता
एक जैसी बिम्ब प्रतिमाओं में व्यक्त किया। यहाँ स्वयं उनक बिम्ब ही उनक
वैयक्तिक आत्मविवेदनवरक व्यक्तित्व में व्यञ्जित होत रह हैं। इसक अति
रिक्त अनेक कवियों ने अवतारों की अवतार-छीकाओं को अपना उपजीव्य
बनाकर नय्य-नूतन बिम्बों में भर दिया है। हेमोल कलाकृति का उद्भूत मानव
आत्मतन्त्र में भावता है। उसकी दृष्टि में कलाकृति आध्यात्मिक व्यापार का

प्रतिकूल है। यह कबल बाह्य प्रकृति का स्वामाविक विकास नहीं है प्रयुक्त कलाकृति कलाकार की सृजनारमक कृतियों के द्वारा स्वल्प प्रवृत्त करती है।^१

विम्बोज्ञापना की क्रिया किसी न किसी रूप में प्राचीन आचार्यों द्वारा भी म्यूनाधिक चर्चा का विषय रही है। अभिनवगुप्त ने नाटक की अलौकिक रसात्मकता का स्थापन करते हुये जिन अनुकरण प्रतिविम्ब चित्र पादरथ, आरोप जल्पवनाय उत्प्रेषा स्वप्न माया और हृन्त्रजाक^२ आदि का उल्लेख किया है, उन सभी का परोक्ष या प्रत्यक्ष सम्बन्ध कला-निर्मिति में विम्बोज्ञापना की विभिन्न प्रकृतियों से हीक पड़ता है। इनके पूर्ववर्ती भरत ने रसोत्पत्ति क क्रम में उनसे मग्नद जिन बर्णों और देवताओं का उल्लेख किया है, वे एक प्रकार से रस के ही विम्बीकरण या विम्बाज्ञापना में आधारभूत उपादान का कार्य करते हैं।^३ क्योंकि बर्णों के साथ मिश्रित विभिन्न देवताओं की वे 'भाव-प्रतिमायें जो भारतीय संस्कृति, मूर्ति-कला एवं पूजा की विधियों में और श्लोक प्रिय पौराणिक साहित्य द्वारा कल्प-मन-भासस में स्थापित रही हैं। उनके सम्पर्क से विभिन्न भवदरप रमों की विम्बोज्ञापना अधिक सहज ढंग से साकार हो सकी है। प्राचीन आचार्य देव-सृष्टि का सकलर की देन मानते थे और मानव-सृष्टि को प्रयत्न की। इस कथि में देवसृष्टि का सांकेतिक मनुष्य की उस दिव्य और मानसिक धारणा की धार संकेत करता है जो संकल्पारमक ज्ञान से 'धारणा पित्र का निर्माण करती है। कलाकार या साहित्य-रूपा हृन्त्री धारणा विम्बों की मूल आधार बनाकर रेखांकित स्वरंकित या शब्दांकित प्रयत्नों के द्वारा अपनी विम्बों की उजावना में सक्षम होते हैं। रमणीय विम्बीकरण की प्रकृति का एक विशेष उपलक्षण है—सामान्य की अपेक्षा विभिन्न का महत्त्व-स्थापन। इस विचारणा की किञ्चिन् सकल अभिनवगुप्त की इन पद्धतियों में दृष्टिगम्य होती है। उनका कथनानुसार विशेष लक्षण सामान्य कथन के उदाहरण होते हैं क्योंकि उनमें सामान्य लक्षण का निर्देश किया जाता है। विशेष लक्षण के बिना सामान्य लक्षण को दिव्यकाया नहीं जा सकता। (निर्दिष्ट न सामान्यत्व)।^४ अवतारत्व स्वतः सामान्य परमात्मनत्व के विशिष्टी

१ कल्प. पत्र. पृ ३५८। २ अमि मा (दि) पृ २३।

३ अमि मा (दि) पृ ५३०-५३२।

रस—वर्ण—देवता

करण—कमोठ—वम

गुहार—रपाय—विष्णु—धनदेव

बीर—गौर—महेन्द्र

हास्य—अन—शिष्यगण

कवानक—कृष्ण—धनदेव

रीड—काय—व

बीमारस—बीर—महाध्वज

अदभुत—बीर—रत्ना

४ अमि मा. दि २८।

५. अमि मा (दि) पृ ५३२।

करण की प्रक्रिया है। क्योंकि अवतारों की रमणीय विम्बोज्ञाबना (जो सामान्य परमात्म तत्व का विशिष्ट रूप है) सामान्य एवं सर्वव्यापी ईश्वर का भी बोध कराने की क्षमता प्रस्तुत करती है। अतएव अवतारवादी अभिव्यक्ति अनेक दृष्टियों से साहित्य एवं कलाभिव्यक्ति के समानान्तर होकर पड़ती है। मूल कवियों एवं कलाकारों में सब-सामान्य प्रतीत होने वाले सर्वेश्वरवादी ईश्वर को विशिष्ट अवतार रूप में देखने का प्रयास किया। विशिष्ट विम्बोज्ञाबना ही वस्तुतः अवतारवत् विम्बोज्ञाबना है क्योंकि पुराणकारों के अनुसार अवतारवत् ज्ञाबना में अष्ट सनातन विष्णु, चैतन्य, ज्योतिःस्वरूप देवामृतियों के परमब्रह्म की ही नैमित्तिक उत्पत्ति रसरूप में (मग्गवत्ता रसो वै सा) के रूप में बतायी गयी है। उसका आत्मन् स्वभाविक है पर उसकी उत्पत्ति कमी-कमी होती है। उसी अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य चमत्कार अथवा रस है। ब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहा जाता है। उसी अहंकार से अभिमान और अभिमान से तीनों शक्ति की उत्पत्ति मायी जाती है। अभिमान से रति का जन्म होता है (भास्करामयत) यह रति व्यभिचारी आवि भाषों से परिपुष्ट होकर गृह्यते दुःखा ।^१ यहाँ ब्रह्मसत्ता को अहं और अभिमान से प्रस्तुत करने का प्रयास-कलात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म को सामान्य से विशिष्ट रूप में उपस्थित करना प्रतीत होता है। इसे ब्रह्म की ही रमणीय विम्बोज्ञाबना की एक प्रक्रिया कहा जा सकता है। इस प्रकार कलाभिव्यक्ति की दृष्टि से कलाकार और साहित्यकार दोनों का मुख्य कार्य रमणीय विम्बोज्ञाबना है। किसी भी कलाकृति के रूपक निर्माण के पूर्व उसके मन में कतिपय आत्मनिष्ठ काय-व्यापार चलते रहते हैं। प्राचीन या अर्वाचीन चिन्तक उन्हें साहित्यकार या कलाकार की अनेकगत शक्ति या समता के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रसङ्ग में देलना यह है कि रमणीय विम्बोज्ञाबना में वे कौनसी शक्तियाँ हैं जो प्रायः या परोक्ष रूप में सहायक होती हैं।^२

प्रतिभा

कवि या कलाकार की अभिव्यक्ति में रमणीयता-विधान विश्व शक्तियों के द्वारा सम्भव है। उनमें प्रतिभा का विशिष्ट स्थान है। क्योंकि उसके महत्त्व की पूर्ण और पश्चिमी, प्राचीन एवं अर्वाचीन समीच किस्ती न किसी रूप में चर्चा की है। भारतीय विचारकों में कविसात्र जगन्नाथ प्रतिभा को ही काव्य का मुख्य धारण मानते हैं जो काव्योपदान के रूप में अनुकूल शब्द और अर्थ जुटा मक। द्रव्य सम्बन्ध में शब्द भाव शब्दादि की सहायता में उनका मता

नुसार नय पदोन्मेषशाक्तिी बुद्धि का कार्य रहता है। यह प्रतिमा किसी-किसी देवता अथवा किसी महात्मा पुरुष की प्रसन्नता या घृणा, काव्य इतिहास प्रभृति के पर्यालोचन तथा व्युत्पत्ति निपुणता और अन्वय से सम्बद्ध है। व्युत्पत्ति अन्वय और अदृष्ट य तीनों मिश्रकर प्रतिमा को उत्पन्न करते हैं।^१ इनसे पूर्व अदृष्ट और वाच्य भी कवक प्रतिमा को ही काव्य का कारण मानते थे। इन्हीं वाच्य और पीयूषवर्ष से प्रतिमा व्युत्पत्ति, और अन्वय तीनों का योग काव्यनिर्मिति में माया है। इनमें अदृष्ट ने प्रतिमा को वैमर्गिक बताया है। अदृष्ट ने सहजा और उत्पाद्य शक्तियों की चर्चा की है। उनका दृष्टि में जिसकी प्राप्ति होने पर समाधिस्थ मन में अनेक अर्थ स्फुरित होने लगते हैं अमक अन्त पञ्चबकी दृष्टिगोचर होने लगती है—उसे शक्ति कहते हैं। वाच्य के अनुसार कविता का बीज 'प्रतिमान' है। अन्वय ने लोक-स्ववहार शास्त्राध्यायन अन्वय आदि के साथ प्रतिमा को ही सम्भवतः शक्ति के रूप में उल्लेख किया है। वाच्य के अनुसार प्रतिमा कारण है, व्युत्पत्ति मूल्य है अन्वय काव्य-रचना में प्रगति है। प्रतिमा उत्पन्न करती है व्युत्पत्ति सौन्दर्य काती है। अन्वय से अग्र निर्माण होता है। ये भी प्रतिमा का अर्थ नहीं नहीं सुझ मानते हैं। राजमकर के अनुसार समाधि मानस और अन्वय वाच्य प्रपास हैं—य दोनों मिश्रकर काव्य-शक्ति प्रकट करते हैं। इनकी दृष्टि में प्रतिमा कारयित्री (सहजा आहार्या-ओपदेशिकी) और भावयित्री दो प्रकार की होती है। उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय प्राचीन जालोचकों ने प्रतिमा को काव्य की शक्ति के रूप में ग्रहण किया है। पश्चिमी विचार धारा के विपरीत पूर्व में काव्य और कवक को पृथक्-पृथक् स्थान मिला था इन्हीं भारतीय विचारकों ने काव्यमात्र के ही कारणों में प्रतिमा का स्थान माना है। परन्तु प्रतिमा की जो विशिष्ट स्थापनायें उनक द्वारा की गयी हैं उनमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि काव्य के साथ अन्वय कवक और साहित्य की अमिश्रण के बिना भी प्रतिमा जावरपक होती है जैसा कि पश्चिमी विचारक मानते रहे हैं अतः सौन्दर्य विधाया या कलाकृति के निर्माण में प्रतिमा बुद्धि की बहु क्षमता है, जो नये शब्द नये भाव और नये विम्व का मध्य स्फुरण कराती है। पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में प्रागनुभविक ज्ञान (A Priori Knowledge) को स्वयंप्रकट ज्ञान या प्रातिभ ज्ञान का आदि तत्त्व है सूक्ष्म पर्यवेक्षिणी शक्ति (साहित्य, संसार और समाज तीनों को सूक्ष्म दृष्टि से मवेदनशील होकर देखने की शक्ति) और उद्गायना शक्ति

१ कव्य पदमे पृ ४५ । अंगक न लक्ष्मणामक काव्य-कलाओं के कवक, प्रतिमा और अन्वय तीन रूप माने हैं। येही दृष्टि में प्रतिमा का स्थान सर्वप्रमुप विरिष्ठ होता है।

(किमी तन्मय को पूर्णतः सम्बन्ध बनाकर मूलन परिकल्पना करना—जिसमें अन्तःस्थ और वहिःस्थ बहुरता का उद्धान की पूर्ण स्वतन्त्रता रहनी है) तथा अन्वय—जो कर्ता में मायक रूप का प्यसनी की तरह एक ऐसी भावत बल देता है जिससे कर्ता और कृति में समवाय सम्बन्ध हा जाता है—ये चारों तरह प्रतिभा के अमिष्ठ अङ्ग समझे जात रहें हैं ।

रचनात्मक सूक्ष्म (Creative insight)

आधुनिक मनोविज्ञान ने यह मनुष्य या अन्य प्राणियों में गई सूक्ष्म की मत्ता मानी है जो प्रतिभा का अनुभावन स्वरूप ज्ञान पड़ती है । विषय ही वैज्ञानिक एवं कलाकार में क्रमशः एक ऐसी सूक्ष्म का विकास होता है जिसे विज्ञान और कला दोनों दृष्टियों से 'रचनात्मक सूक्ष्म' कह सकते हैं । रचनात्मक सूक्ष्म मूल प्रकृत्यात्मक सूक्ष्म का हा एक विकसित और परिमार्जित रूप है । सूक्ष्म की शक्ति सभी प्राणियों और व्यक्ति में समान मात्रा में नहीं होती, बल्कि वह प्राणी या व्यक्ति सापेक्ष होती है । मेघाची वैज्ञानिक और समप्राणी कलाकारों में वह प्रायः अधिक दृष्टिगोचर होती है । प्रतिभा की तरह रचनात्मक सूक्ष्म में भी पूर्व ज्ञान का साध-साध अकस्मात् ज्ञान-स्फुरण का अपूर्व योग रहता है । रचनात्मक सूक्ष्म वस्तु-अपन और सौधी या विषय और रूप दोनों की मत्पता में प्रतिबिम्बित होती है । नवी सूक्ष्म का 'भाग्युभक्तिक ज्ञान होना का अम हा सकता है किन्तु यह प्रागभुभक्तिक ज्ञान नहीं है अपितु प्रागभुभक्तिक ज्ञान और अज्ञित ज्ञान (संस्कारगत या अन्य) ज्ञानों की समुक्त पीठिका पर स्फुरित होने वाली आशु चमत्ता है । कलाकृतियों की रचनात्मकता का अधिकाधिक विधिष्ट बनाने में इसका योग्य अपरिहार्य है । समजीव जिम्बोज्ञापना का साक्षर करन वाली प्रतिभा का प्राण गई सूक्ष्म का ही माना जा सकता है । जो जो प्रतिभा की सीमा कबल गई सूक्ष्म तक सीमित नहीं अपितु स्वयमेव वह एक ऐसी अटिक प्रक्रिया है, जिसका विकास जबेक मनोगत प्रक्रियाओं का पागदाय से हुआ है । सामान्यतः साधारण व्यक्ति में वस्तु या वातावरण का प्रति कुङ्कल कुङ्कल प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति रहती है, किन्तु प्रतिभावान् व्यक्ति में वस्तु या वातावरण का प्रति हाव वाली प्रतिक्रिया अपिठ मित्र और विधिष्ट कोटि की प्रतीत होती है । यदि यह कहा जाय कि वह प्रायक वस्तु और वातावरण का भी अपनी विधिष्ट पयवेदिनी दृष्टि से वैभ्रता है तो कोई ध्रापुक्ति नहीं होगी । सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उसकी प्रादकन्त्रिय अधिक सूक्ष्म और व्यक्तिगत वैशिष्ट्यों से सबन्धित होती रहती है । वस्तु या वातावरण का प्रति होना वाली प्रतिक्रियाओं में जो सहज क्रियाएँ होती

१. थोडकिस और हेर ने जिन्हें 'Reflex Actions' कहा है ।

हैं उनको देखकर ऐसा लगता है कि जैसे उनमें कोई विशेष उद्देश्य नहीं है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि प्रतिमाशाकी व्यक्ति की सहज क्रियाओं में भी महान् उद्देश्य क्रिया रहता है; जो उसकी महत्तर रचनात्मकता का मूल-मूल कारण होता है। सामान्य व्यक्ति की सहज क्रिया में सम्बन्ध प्रत्यावर्तन या वस्तु-अनुकूलन (Conditioning) जैसी क्रिया सहज रूप से उचित होती है; किन्तु प्रतिमाशाकी व्यक्ति में वस्तु-अनुकूलन क्रिया अपने ढंग की या विशिष्ट प्रकार की हुआ करती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस वस्तु के प्रति उसकी रुझान होती है—वही उसकी प्रतिभा के बल पर विज्ञान कला एवं साहित्य की अमर कृति बन जाती है। अतः प्रतिभा में निहित वस्तु-अनुकूलन का हम अधिक रचनात्मक या सर्जन-आत्मक कह सकते हैं।

प्रतिभा विशुद्ध अज्ञान और अपरिचित क्षेत्र में अमिथ्वकियत प्रभाव नहीं दिखा सकती। आद्यकवियों और कलाकारों में भी न्यूनाधिक अनुवांशिक या संस्कारगत प्रभाव का प्राबल्य रहता है। किन्तु साधारण स्थिति में प्रतिभा का विकास वाद्यों और अभ्यासजन्य क्रियाओं (Habits and habitual actions) से भी पूर्णरूप में प्रभावित रहता है। सामान्य अच्छी या बुरी आदतों की तरह प्रतिभावान् व्यक्ति में भी अच्छी या बुरी अज्ञानात्मिक आदतें होती हैं जिनका अचेतन प्रभाव उनकी रचनात्मक प्रक्रिया पर भी पड़ता है। फिर भी जहाँ तक रचनात्मक प्रतिभा का प्रश्न है—प्रतिमाशाकी व्यक्ति अभ्यासजन्य क्रियाओं के द्वारा अपनी प्रत्येक रचनात्मक प्रक्रिया में सौधी और रूप-विधान की जैसी जमता जड़ित कर छटा है या उसकी मौलिकता और विशिष्टता का कारण हुआ करती है।

अवलारवाह की दृष्टि से प्रतिभा के उपयुक्त जितने उपादान हैं, सहज नहीं हैं अपितु अधनरित या आविर्भूत हैं। मनुष्य अपनी दृष्टि के अधुरूप अपने मानविक और पारिरीक दोनों प्रकार के भोजनों में शक्ति ग्रहण करता है। मानविक भोजन के द्वारा ही अनेक प्रकार की मानस-शक्तियों (Psychic-faculties) आविर्भूत होती हैं। प्रतिभा भी उसी प्रकार की एक अवतरित शक्ति है। प्रतिभा का एतुरम बधि या कलाकार में बाधाकरण या परिस्थिति के प्रति अनुकूल क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों से होता है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से सायब का मूलवांरुन क्रिया आय तो अनुकूल क्रिया की अपेक्षा प्रतिक्रिया में अमर काव्यों और कला-कृतियों की सृष्टि करने की प्रेरणा ही है। त्रियोग दुःख कष्ट धरनाह, पीड़ा अभाव कदगा भवमान भादि प्रतिक्रियात्मक सावधीय अनुमृणियों ने ही बावर्मीकि काकिवास भजमृति तुलसीदास सूरदास, पंत प्रमाण निराळा तथा हामर होने तेरे, मिहलन, जियनादो ही दिधी

इत्यादि की प्रतिभा को उत्प्रेरित किया है। इनके साहित्य एवं कला का अध्ययन करने पर स्पष्ट पता चल जाता है कि क्रिया की अपेक्षा प्रतिक्रिया में प्रतिभा के विकास की क्षमता अधिक है। चाहे वह कृति आदर्श का निरूपण करती हो या धर्मार्थ की या उपदेश का उपस्थापन करती हो या विद्यार्थ 'कला के लिए कला' की। दोनों स्थितियों में यह अपनी प्रतिक्रियात्मक प्रतिभा के चल पर अमर कृति बन सकी है।

प्रतिभा में प्रादुर्भाव और रचनात्मकता दोनों विशेषताएँ विद्यमान हैं। किसी व्यक्ति में दोनों समान मात्रा में पायी जाती हैं। परन्तु यों सहस्रों व्यक्ति में प्रादुर्भाव समता अपेक्षाकृत अधिक होती है और कलाकार या कृतिकार में प्रादुर्भाव की अपेक्षा रचनात्मकता अधिक प्रबल रहती है। प्रतिभा की सचेतता मन के अचेतन, उपचेतन और चेतन तीनों भागों में वृत्त पवती है फिर भी विशेषकर चेतन में यह अधिक प्रबल और सक्रिय बन जाती है। प्रतिभा को हम ऐंग्लिश व्यापार से अधिक आत्मनिष्ठ व्यापार कह सकते हैं, क्योंकि यह सामान्य चारणा को प्रतीकों या चिन्नों के माध्यम से तथा अमूर्त या मूर्त धारणाओं का रचनात्मक प्रक्रिया के द्वारा हमणीय किम्बोदमावना करती है। चिंतन की तरह प्रतिभा द्वारा सम्पन्न रचनात्मक प्रक्रिया में भी चारणा-चिन्ना के निर्माण द्वारा मूल चिन्नों का एकत्रीकरण (Assimilation), गर्भीकरण (Incubation) स्फुरण (Illumination) और प्रमापन (Verification) इत्यादि क्रियाओं का समानुपातिक योग होता है। मूल चारणा प्रतीकों या चिन्नों के उपस्थित होते ही प्रतिभा की रचनात्मक प्रक्रिया चिन्नों के गर्भीकरण का कार्य प्रारम्भ करती है, जिसके फलस्वरूप धारणा-चिन्नों में समरता, तीव्रता और नवीन सीद्धान्त का संचार होना लगता है। इस उपक्रम में प्रतिभा को विभिन्न रचनात्मक विचारों का योग मिलना है। रचनात्मक विचार कभी तो विज्ञान मूलिक स्फुरण के रूप में आते हैं और कभी पूर्वानुभूत विचारधारा भी उत्प्रेरणा का कार्य करती है। नए आलोक के रूप में आये हुए स्फुरण और उत्प्रेरणा की विश्वसनीयता और सत्यता की परख करने में प्रतिभा सर्वैय मन्त्र एवं सक्रिय प्रतीत होती है। स्वयं प्रकाश ज्ञान या सहज ज्ञान (Intuition)

प्रतिभा (Genious) के अतिरिक्त एक ऐसे ज्ञान के विषय में विचार होता आ रहा है जो मनुष्य में होनेवाले सामान्य वाचक साधक कलात्मक वाच की भी अभिव्यक्ति करता है। प्रतिभा और प्रागनुभविक ज्ञान से सम्बन्ध होत हुए भी स्वयंप्रकाश ज्ञान या सहज ज्ञान जैसे ज्ञान का अस्तित्व भी पूर्वी और पश्चिमी दोनों में किसी न किसी रूप में मान्य रहा है। अभी

प्रतिभा के प्रसंग में हमने देखा कि भारतीय विचारकों में कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने अद्वैतिक काव्य या कलात्मक समता को ही सृष्टि की रीति या उसका आर्त्तमूल रूप माना है। व्यापुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा चिन्त्य सूत्र का सिद्धान्त (In light theory) इस संदर्भ में विचारणीय है। कोहकर, काफ़्का जैसे मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार 'सूत्र ही साहित्यकला विशाल हम समस्त प्राणों के प्रसार की जगती है। कोहकर वनमातृओं पर प्रयोग करने के पश्चात् 'अहा ! अनुभव' (Aha experience) का निष्कर्ष प्रस्तुत किया। उसकी दृष्टि में मनुष्य में भी वही 'अहा ! अनुभव' वैज्ञानिकों की सिद्धता है। इतिवन्तः आरसन पापकाव्य आदि द्वारा पशुओं एवं अन्य कृषु वस्तुओं पर किए गए प्रयोग यद्यपि मित्र-मित्र निष्कर्षों के चोतक थे। किन्तु इन सभी निष्कर्षों में एक सामान्य तत्त्व अवसर दृष्टिगत होता है कि समस्त प्राणियों में प्रारम्भ से ही ऐसी ज्ञात्मात्मक बोध अवसर रहा है जिनके द्वारा वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सफल रहे हैं। उन्हें ही विचारक महज ज्ञान या Intuition कहते रहे हैं। निम्न ही प्रतिभा की तरह महज ज्ञान का सम्बन्ध अक्षतन मन से अधिक महज नहीं प्रतीत होता। इसे सूत्र भी कहना अधिक पुच्छिसंगत नहीं प्रतीत होता; यद्यपि सूत्र और महजज्ञान दोनों का सम्बन्ध चतना से है फिर भी सूत्र में अस्वामाधिक स्वरूप या आच्छेक अधिक है किन्तु महज ज्ञान में कम। सूत्र का किसी में पूर्णता अभाव भी हो सकता है और आधिपत्य भी किन्तु महजज्ञान न्यूनाधिक मात्रा में सभी में विद्यमान रहता है। 'फिर भी सूत्र और महजज्ञान दोनों वस्तुविषय और आत्मनिष्ठ दोनों हैं। 'सूत्र महसा घटित होने काव्य व्यापार है जबकि महजज्ञान को हम अवेद्यात्म स्वामाधिक अधिक कह सकते हैं। महजज्ञान के विचारकों में मूर्धन्य कौट महजज्ञान को वस्तु-संवेदानात्मक समस्तता है। उनके मतानुसार हम जितने प्रकार से और जिन मापनों द्वारा वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं उनमें महजज्ञान बड़ है—जिनके द्वारा वस्तु से (व्यक्ति का) तत्पन सम्बन्ध हो जाता है और समस्त विचारधारा उसी आर प्रवृत्त हो जाती है।' इसीसे महजज्ञान किन्ती निश्चित या अक्षय वस्तु की अपेक्षा रहता है। यों ता वस्तु का तत्पन या वस्तु-संवेदाना या ऐन्द्रिक बोध द्वारा सम्भव है; अतः महजज्ञान के लिए भी ऐन्द्रिय-या वस्तु संवेदानात्मकता की आवश्यकता पड़ती है। कौटन महजज्ञान को एक प्रकार का विशुद्ध ऐन्द्रिय-संवेदाना माना है। उनके मतानुसार हमारा समस्त ज्ञान प्रकट, प्रस्तुत या प्रतीति की उपस्थापना के

अनिरिक्त कुछ नहीं है क्योंकि जिन वस्तुओं का ज्ञान हम करते हैं—वे पदार्थ वस्तुतः वे ही नहीं हैं, निश्चय हमें ज्ञान है। व जैसा प्रतीत होते हैं—वही हमारा सहजज्ञान है। वस्तु को हम विक-काल सापेक्षता से दृश्य नहीं कर सकते। इसीसे हमारा सहजज्ञान भी विक और काल के वेद से दो प्रकार का हो जाता है। और वस्तु के भी विहित रूप और स्वयं रूप दो प्रकार के रूप हो जाते हैं। हमें वस्तु के विहित रूप का ही ऐन्द्रिक बोध होता है। गोचर या ऐन्द्रिक ज्ञान कौट के अनुसार दो प्रकार का होता है—विद्युत् सहजज्ञान और अनुभूत सहजज्ञान^१।

प्रागनुभविक ज्ञान विद्युत् सहज ज्ञान है और उससे अन्तरवर्ती ज्ञान अनुभूत सहज ज्ञान है। पहला हमारी संवेदन में परमावश्यक होकर सकारण रूप में अवस्थित है और दूसरा विभिन्न रूपों में गोचर होता है। इस प्रकार कौट ने वस्तु-संवेदनात्मकता या गोचरता को सहज ज्ञान माना है। जब कि श्लोके में लार्किङ्ग बुद्धिगम्य के विपरीत विशेषकर कल्पना से उपलब्ध ज्ञान में सहज ज्ञान की उपस्थिति बनायी है। हमों की दृष्टि में सहज ज्ञान अच्युतीन ज्ञान है। बुद्धि इन्से मग्न प्रदान करता है। उसकी दृष्टि में सहज ज्ञान किसी पर निर्भर नहीं है। कौट और श्लोक दोनों में धारणा और सहज ज्ञान का अन्तर स्पष्ट करन का प्रयास किया है।^२ कौट की दृष्टि में धारणा बुद्धिगम्य है और स्वच्छन्द विचार पर भाषित है और सहज ज्ञान इन्द्रियगम्य है और प्रभाव पर आधारित है।^३ श्लोके के अनुसार एक कथाकृति दार्शनिक धारणाओं से आधारित हो सकती है साथ ही उसमें दार्शनिक विमर्शों की अपेक्षा लगनात्मकता और सहज ज्ञान का प्राबल्य सम्भव है। परन्तु इन समस्त धारणाओं के होत रूप में कथाकृति का सम्पूर्ण प्रभाव सहज ज्ञान है और समस्त सहज ज्ञानों के होत रूप में दार्शनिक विमर्शों का सम्मिश्रित प्रभाव धारणा है।^४ यों श्लोके प्रायश्च बोध को सहज ज्ञान मानता है किन्तु उसका प्रायश्च-बोध प्रायश्च और वराह दोनों को आत्मसात् कर लेता है। सहजज्ञान पदार्थ के प्रत्यक्षीकरण की अभिप्राय प्रकृता है और सम्भावना का सहज विग्रह है।^५ विक और काल सहजज्ञान के स्वरूप हो सकते हैं किन्तु जो सहजज्ञान कथा में रहस्याध्यायित होता है, वह विक काल का सहजज्ञान नहीं है अपितु अतिप्रगम और व्यक्तिगत आकृतिविज्ञान है।

१ इ. श्रीर टी ५ ५५। २ वर्य ५ २।

३ वर्य पर्ये ५ २ ४। कौट के अनुसार—Thoughts without contents are empty intuitions without concepts are blind

४ इ. श्रीर टी ५ ६८। ५ वर्ये ५ २। ६ वर्ये ५ ४।

सहज ज्ञानात्मक क्रिया एक समन्वित अभिव्यक्ति की क्रिया है। इस प्रकार प्रत्येक सहजज्ञान और उसकी उपस्थापना अभिव्यक्ति है। सहज ज्ञान में सहजज्ञानात्मक क्रिया उस सीमा तक है जहाँ तक कि वह उसकी अभिव्यक्ति कर सकती है। अतः सहज ज्ञान और अभिव्यक्ति में श्लेषे अविद्याभाव सम्बन्ध मानता है। इसी से रमणीय या ककारमक अभिव्यञ्जना भी सहज ज्ञानात्मक है। श्लेषे की इन मन्वथानों से स्पष्ट है कि वह सहज ज्ञान और अभिव्यञ्जना को एक मानता है। पद्य किर्त और श्लेषे सहज ज्ञान का मनोवैज्ञानिक रूप अधिक स्पष्ट नहीं कर सके हैं। फिर भी इतना स्पष्ट है कि ककार सावेष्य ऐन्द्रियक बोध एवं अभिव्यञ्जना से सम्बद्ध होने का कारण सहज ज्ञान भी रमणीय किन्धोज्ञानना के निर्यायक तरकों में परिगणित होने योग्य है।

स्फुरण

सहज ज्ञान की तरह स्फुरण भी चेतना की ही एक रूपा है। सहज ज्ञान पद्य से लेकर मनुष्य तक प्रायः सभी में स्थूनाधिक मात्रा में दृष्टिगत होता है किन्तु स्फुरण विभिन्न व्यक्ति और विविध मनोदशा पर निर्भर करता है। वह मनोदशा बहुत कुछ रहस्यवादी संतों एवं कवियों की रहस्य रक्षा से मिलती-जुलती है। अतएव स्फुरण सामान्य मनुष्य के प्रत्यक्ष-बोध या मनो रक्षा से भिन्न अवस्था है। ज्ञान्तरिक सूत्र और स्फुरण में भी तारिकक वैपम्य कथित होता है। ज्ञान्तरिक सूत्र में वस्तुनिष्ठता अधिक है। संश्लेष पदार्थ वस्तु के प्रत्यक्षीकरण की सामान्य या विषम अवस्था में भक्तस्माद् आकाङ्क्ष होने वाली सूत्र का स्थान होता है। उसका सम्बन्ध किसी विशेष मनोनिवृत्ता या गहन अनुभूति से नहीं है। सूत्र सामान्य प्रतिमा में मौजूद रहती है किन्तु स्फुरण वह आकाङ्क्ष है जिसका स्थान रहस्यात्मक प्रतिमासम्पन्न कुछ ही प्रवर्तकों, रचयिताओं मन्वथुगीन मन्त्रों, सिद्धों संतों और कदाचित् पाणिनों में सम्भव है। प्राचीन विचारकों में भरतु ने कवियों को भी रहस्यवादी प्रवर्तकों की श्रेणी में माना है; क्योंकि रहस्य रक्षा संतों की तरह वे भी ईश्वरीय किन्धुति की अभिव्यक्ति करते हैं। इसमें मन्त्रेद नहीं कि रमणीय चेतना की दृष्टि से रहस्यवादी संत कवि और कलाकार प्रायः एक ही भाव भूमि पर स्थित रहे हैं। उन सभी की मनादृष्टि अगतातीत सत्य का अन्वेषण में निमग्न रहा करती है। अतः विरचेतर श्लोक में भ्रमण करने वाले कलाकार, कवि और भक्त अपने जन्तु अगण में सर्वथा एक विद्यातीत सत्य का स्थान

करते हैं जिसके चतुस्वरूप जगतातोत से ही उनका साहचर्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उसी रहस्य जगत में वे अनेक अलौकिक सत्ता वाली अनुभूतियों की विम्बोद्भासना करते हैं और जगद्गी के साथ उनका मन रमा रहता है। रहस्यवादी दिग्ग्य चर्चिवों की विम्बोद्भासना अनेक प्रतीकों और विम्बों के रूप में करत हैं। इसीसे अग्रद्विष्ट ने रहस्यवादी कवियों और मत्तों के अनेक काम्यात्मक रूपों को स्फुरण या आलोक में प्रहण किया है। स्फुरण में संवेदन से अधिक संवेग का योग होता है। साथमें एव कलाकारों के मन में संवेगात्मक या माबोद्देगात्मक लहरों या तरंगों का प्रवाह नवीन स्फुरण या आलोक से प्ररित होकर अलौकिक गूढ विम्बों की सृष्टि करता है। स्फुरण ही साहज ज्ञान ही संवेगात्मक स्थिति में स्फुरण का रूप धारण कर सम्भव है साहज ज्ञान की चरमावस्था ही कहेंगे। अनेक वाग्द्वेया हो किन्तु उसे हम महज ज्ञान की चरमावस्था ही कहेंगे। अनेक वाग्द्वेय निकायात कलाकृतियों या विचारधारारार्ण को कलाकार पार्थनिक कवि संगीत कार इत्यादि के मन में उपपन्न होती रही हैं वे अलौकिक स्फुरण की देन कही जा सकती हैं। स्फुरण में कबक चमत्कार ही नहीं होता अपितु रमणीय रसास्वाद् भी चरमावस्था में पहुँचकर रमणीय सहाजानुभूति का अधिधार्य बंग बन जाता है। सगुणोपासक मत्त अपने उपास्य अवतार का सामीप्य-काम करते समय प्रायः अलौकिक स्फुरण का अनुभव किया करता है। उपास्य देव के अकल्प्य मादक स्पर्श की भावना करते समय मत्तों के मन में उनकी अनेक भावमगियों के रमणीय विम्ब स्फुरित होने लगते हैं। इस प्रकार रमणीय विम्बोद्भासना की चरमानिम्यक्ति में स्फुरण का विशिष्ट अवदान रहा है।

स्फोट

(Irruption) मनोवैज्ञानिकों ने सूत्रनात्मक रूपान्तर के उपास्य में स्फोट (eruption) का अस्तित्व माना है, जो सम्भवतः स्फुरण का ही पर्याय है। जमक विचारक इरिक म्युमेनन^१ के अनुसार यह रूपान्तर उल्लेखनीय है जो ब्रह्म-कमिन्वत और जनीमून जनना पर जीपग आत्ममय कर बैठता है। ऐसे रूपान्तर को बहुत कुछ अचेतन का चतन में ब्रह्मस्माद् 'स्फोट' कहा जा सकता है। इस स्फोटक प्रकृति का अनुभव जहाँ के स्थापित और

^१ मि. इ. २२४।

^२ मि. २१५ (Many a great Painter Philosopher or Poet, perhaps every inspired Musician, has known this indescribable irruption of reality in Those Moments of Transcendence in which his Masterpieces were conceived.

क्रमबद्ध चेतना पर आधारित संस्कृति में एक बिनाप खोर क साथ हाता है; क्योंकि आदिम संस्कृति जिसमें चेतना विवृत या मुक्त है या वह संस्कृति जिसके विधि-नियमों ने मनुष्य को मात्र प्रतिमात्मक शक्तियों क साथ बांध रखा हो, वहाँ मनुष्य में स्फोट होना अवरबम्भावी है। स्फोट एक गतिशील मायस-व्यापार है, जिसकी भीषणता तभी कम होती है, जब चेतन धीरे अचेतन का तनाव अधिक नहीं हो। जो किसी सारीरिक दबाव अभाव (मूक-व्यास) दोष (मद्यपान इत्यादि) या बीमारियों के अकृत भी ऐसे स्फोट बहुत सम्भव हैं। इनसे सम्बद्ध रूपान्तर भी अकस्मात् परिवर्तन या स्फुरण (illumination) कहे जाते हैं। परन्तु इन प्रक्रियाओं में भी स्फोट का अचानक या विचित्र होना कबक उसी तरह भीर चेतना से सम्बद्ध है जो उससे प्रभावित होते हैं; परन्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर उसका कोई असर नहीं होता। प्रायः अह-केन्द्रित चेतना में स्फोट होने पर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एक अंश भी प्रभावित होता है। सामान्यतः चेतना में होनेवाला विस्फोट उस विकास का अन्तस्विन्दु है जो अचिरकाल से व्यक्तित्व के अचेतन तल में परिपक्व होता रहा है। इस दृष्टि से स्फोट अस्तुतः रूपान्तरित प्रक्रिया क उस 'स्फोट बिन्दु' को अभिसूचित करता है जो पों लो बहुत दिनों से अचरित या किन्तु पहले वह से उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं हुआ था। वह मनुष्य क अचेतन मानस में अचिरकाल से पुंजीभूत हाता हुआ अस्त अस्त था। सम्भव है सम्पूर्ण व्यक्तित्व क सक्रिय नियमन से उसका पर्याप्त सम्बन्ध न रहा हो किन्तु उसका प्रभावशास्त्री अन्तर अहं से प्रत्यक्षीकृत होन क पश्चात् अपने पूर्ण वैभव क साथ उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार ऐसे स्फोट भी सम्पूर्ण व्यक्तित्व को दृष्टिपथ में रखते हुए अत्र प्रकृतिवादी नहीं माने जा सकते। इससे अचरित तत्व भी जो एक उपलब्धि क साथ सम्बद्ध है या सृजनतामक प्रक्रिया भी मनोवैज्ञानिक स्फोट का रूप धारण कर सकती है। अतः स्फोट (irruption) वह मनोविस्फोटारमक व्यापार है, जो समीप विन्वाज्ञावना में नव्य नूतनता का आविर्भाव करता है।

प्रेरणा

अर्थों क किन्तु उनका उपास्य दृष्ट कवन् साधन ही नहीं अपितु प्रेरक तत्व भी है। उपास्य दैव क साथ उनका अत्य सादृश्य उनको कलात्मिकता के प्रेरणा प्रदान करता रहा है। ग्रीक विचारकों क मतानुसार 'आत्मा अथ ईश्वर का सादृश्य पाकर उभका दैवत क किन्तु बाध्य रहती है, उप दसा में ईश्वर

की स्मृति जसमें निरन्तर बनी रहती है और अपने इतर ईश्वर के साथ ही किसी बस्तु को देखकर बह पुनः उमक जाती है। इस प्रकार 'देवी' परियों की तरह जससे प्रेरणा ग्रहण कर वह उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। प्रादक की दृष्टि से प्रेरणा विषय की सुन्दर कला का चिन्तन है, और कलाकृति ग्रन्थ प्रेरणा का प्रभाव है।^१ इस प्रकार इतिहास क विभिन्न युगों में कवियों एवं कलाकारों की प्रेरणा क अनेक स्रोत रहे हैं जिनमें प्रकृति और परमेश्वर को प्रमुख स्थान दिया जा सकता है। 'कालिक' कवियों एवं कलाकारों की अपेक्षा रोमांटिक युग के कलाकारों ने प्रायः प्रकृति पर्यवेक्षण द्वारा प्रेरणा ग्रहण की है। जिन्हें थिस्टियम मोरिस जैसे रोमांस विरोधियों ने रोमांस पूर्व अवस्था की ओर मुड़ने में ही कला की सार्यकता बताना आरम्भ किया था।^२ भारतीय मध्ययुगीन साहित्य को सबसे अधिक प्रेरणा अवतारों और अर्था मूर्तियों से मिलती रही है। प्रायः समस्त सगुण भक्ति साहित्य एवं ललित कलायुं उनही प्रेरणा से अनुप्राणित हैं। प्रेरणा चेतन की अपेक्षा उपचेतन व्यापार है। किन्तु प्रेरणा विनापकर सर्वप्रथम हमारे उपचेतन को सर्वाधिक बलवत् रहा है; वह कलाभिरुचि को अपने स्थापक प्रभाव से स्वयं स्फूर्त वा स्वयंचालित कर दिया करती है। प्रायः लोग मानते हैं कि विज्ञान, धर्म, श्रान साहित्य एवं कला क निर्माण में लो युगाभ्यन्तकारी चेतना की प्रकृति ही वह अक्षर बाहर से आया करती है।^३ जस चेतना क पूर्ण कलाकार जिस तत्काल पूर्ण कर लेता है। इस दृष्टि से विरहोपपन्न करने पर प्रेरणा सर्वैय वस्तुनिष्ठ प्रतीत होती है। क्योंकि कलाकार प्रायः किसी वस्तु व्यक्ति, भावना बटना, प्रकृति वा परमसत्ता जैसे चेतना से प्रेरणा ग्रहण करता है। रमणीय विमोक्षावना क उपक्रम में ही प्रकृति, समाज और परमसत्ता जैसे तब प्रेरक हुआ करते हैं। कवि वा चिन्तक सार्वभौमिक साथ वा साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से भी अनुप्राणित रहे हैं। मध्यकालीन सगुणोपासकों की अवतारपरक विमोक्षावना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। वैदिक मंत्रज्ञान कदाच प्रकृति की नैसर्गिक दृष्ट में परमसत्ता की दिव्य लाठिमा का वर्णन करते हैं, आर्यवैदिक कवियों क उप-गान की तरह काव्य निर्दरणी स्वतः पृष्ठ पड़ती है। उसी तरह मध्य युग में माध्य अवतार अवती समस्त पश्चिमका क साथ सभी ओर से अकिंचनता का अनुभव करने वाले माकक क दिव्य अपूर्ण प्रेरणा प्राप्त

१ कल्प दरब पृ. ८४-८५।
२ रिच. ए. ११।

३ रिच. ए. दि. पृ. ५९।

रह हुए। प्रकृति के अतिरिक्त प्रकृति की स्मृति भी प्रेरणा-दायिनी बन जाती। प्रकृति के अवतार-रूप का स्मृत्यानुचितन समस्त सभ्युगीन भक्त कवियों। प्रेरणा-युक्त की तरह आकरोक प्रदान करता रहा है। विशेषकर उसकी अवतार कीटापूर्व और निराह वा विमु रूपों ने अनेक उदात्त किम्बों की उद्गावना राधी है। अवतारपरक प्रेरणा वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ दोनों है। क्योंकि भिन्न अवतारों के दर्शन में यदि वस्तुनिष्ठ या आत्मस्वरूपनिष्ठ प्रेरणा मिहित तो उनकी निराकार सत्ता आत्मस्वरूप या आत्मचेतनात्मक भावना में आत्मनिष्ठ प्रेरणा दृष्टिगोचर होती है। रहस्यवादिनों ने अदृश्य सत्ता का आत्म तो प्राप्त किया ही; वे जलौकिक ध्वनि और चातुप दर्शन का भी स्वाद रहस्यानुभूति की तीव्रतम अवस्था में करते रहे हैं। सम्भवतः उसी स्व-प्रेरणा से उनकी कोटिही स्वर्ग-वाक्तिन पत्र की तरह बचने लगती है।^१ क्या मैं सगुण अवतारों से प्राप्त प्रेरणा में वस्तुविद्यता भविष्य है। जो दृश्य। अदृश्य लौकिक वा जलौकिक सैन्धिक या अतीन्द्रिय प्रेरणादायिनी सुमृतिषों की तरह प्रकृति के सगुण अवतार रूप भी विभिन्न परिवेशों में राष्ट्रीय कर्म एवं कला के अजल स्रोत रहे हैं। रहस्यवादी प्रतीकोद्गावना के अवेद्या इन सगुण रूपों में रमणीय किम्बोद्गावना की जमता अवेद्याहृत विद्य रही है। सगुण अवतारों की क्लिप्ता का बार-बार चिंतन और भावना उपोद्गावना की जमता को जगता ही नहीं अपितु विशेषर की समस्त समुता और समृद्धि से सम्पन्न कर उसे अरम सीमा पर भी पहुँचा देता है। आदिम के मठानुसार कलाकार भाव-प्रतिमाओं के चिन्तन-द्वारा भी वह लौकिक आत्म-वाक्ति प्रदान करता है जो आधिक सौम्यर्ष सृष्टि करने में काम है।^२ हेरोक ने कलाकृति के निर्माण में प्रतिमा और कल्पना के साथ रथा को भी अनिवार्य तरह माना है। उसके मठानुसार कला में कल्पना गिर सिधियक चातुर्ष का अनिष्ठ सम्बन्ध ही प्रेरणा है। प्रेरणा गृहीत वस्तु में आत्मवाद हो काम की जमता है। जमता कबक इसी अर्थ में नहीं कि उसमें उसका पूर्ण दर्शन हो अपितु बाह्य माध्यम के द्वारा उसके प्रस्तुत भी किया जा सके। इस प्रकार हेरोक के अनुसार प्रेरणा का मुख्य तात्पर्य विषय में दीन हो जाना है। न तो आकर्षक प्राकृतिक सौम्यर्ष न अराव न दृढ़ इत्यादि प्रेरणा के कारण हो सकते हैं। इनके विपरीत बलिक यह वह विषय है, जेमकी कल्पना कलात्मक अनिर्वाक्ति की ओर प्रवृत्त करती है। उपसुक्त

विश्वन से स्पष्ट है कि रमणीय विम्बाजावना क मूक तारों में प्रेरणा साध्य और साधन दोनों दृष्टियों से सहायक होती है।

कल्पना

यद्यपि प्राचीन भारतीय विचारकों न काव्य निर्मायक तारों में 'कल्पना' शब्द का प्रयोग नहीं किया है इससे ऐसा लगता है मानों कल्पना की ओर उनका ध्यान भाङ्कट नहीं हुआ था। इसका एक मुख्य कारण यह है कि काव्य का लक्ष्य 'रस' होने क कारण कल्पना मे अधिक 'भावना' को स्थान मिक जाता है। इसमें संदेह नहीं कि भावना में कल्पना को भी समाविष्ट किया जा सकता है। कर्ता पद्य की ओर से प्राचीन चिंतकों न कवच प्रतिभा को ही उसके विभिन्न भेदों एवं प्रभेदों क साथ स्थान दिया था।^१ यद्यपि कर्ता तक कल्पना का सम्बन्ध चित्रविद्यापिनी समता या चिन्तन-निर्माण की प्रक्रिया से ही भारतीय विचारक सवसा इनस अपरिचित नहीं थे। यद्येच्छिकार कुन्तक मे 'वाचय-वाङ्मता क प्रसंग में सुन्दर चित्र से कवि क अनिश्चरणीय काव्य-कौसल को तुलना की है।'^२ निश्चय ही उनक तात्पर्य को कम स कम कल्पना की प्रक्रिया में ग्रहण किया जा सकता है। उसी प्रकार कुन्तक न 'प्रकरण-वाङ्मता क प्रसंग में प्रयुक्त 'उत्पाद्य-कल्प-काव्यप्याद्' में भी पुन निर्मायक कल्पना Reproductive Imagination (वाद् में चल्त्र जिसे विचारकों न सृष्टि विद्यापिनी कल्पना की संज्ञा प्रदान की) की व्यञ्जना होती है। इन उदाहरणों से मेरा तात्पर्य यही है कि भाषुनिक कलाभिव्यक्ति या विम्बाजावना क लक्ष्य तारों में त्रिय कल्पना का योग माना जाता रहा है उनका किसी न किसी रूप में भारतीय आकाशकों में भी वृत्तन होता है।

यों 'कल्पना की चिन्तन धारा का ध्वनिक विकास पश्चिमी साहित्य एक दर्शन में ही अधिक हुआ है। प्रारम्भिक विचारकों में श्याम दिया। इसकी टिप् 'कन्टेमिप्रा का प्रयोग सम्भवत पर्यायामाय या असत्य क कल्पना क है। अरस्तू ने कल्पना शक्ति को विचारकों क सामग्र्य में स्थान दिया। इसकी दृष्टि में धारणा क टिप् कल्पना का होना आवश्यक है। विशय कर रोमन

^१ वैशान्त में कल्पना से सम्बन्ध ध्वनित का प्रयोग प्रायः निष्पादाय के लिये होता था। यों अमरकोशकार और जीहर्ष ने 'कल्पना' का क्रमण 'रचना' और 'सिद्धि' आदि के लिये किया है किन्तु वा विष-विधान के लिये नहीं।

^२ बक. की (दि) १ ५ ५ ३१५।

मनोदण्डकोष्ठप्रवर्तनप्रज्ञाभाविता: एवम्।
विश्वदीपमनीशारीकृतः किन्द्री कौण्डिन्य।।

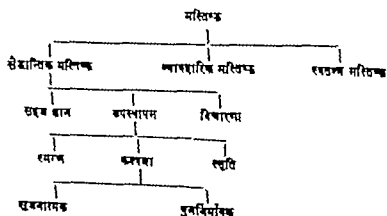
^३ बक. की (दि) ५ ३ ५ ५८९।

साहित्य में 'इमैजिनेशन के अर्थ में प्रमुख कल्पना का अधिक विकास हुआ। परन्तु ग्रीक विचारकों में कल्पना के जिस स्वरूप का निर्धारण हुआ था उसमें अनुनात्म कल्पना के भी बीज विद्यमान थे। भरस्तू की विचारणा के अनुसार वह प्रावचीकरण आ मन में निरन्तर पशुत काल तक चकता रहता है अथकान्तर में वह हमारे चेतन का ही नहीं अपितु अचेतन का भी अंस हो जाता है। वह समय विशेष में पुनः चेतन व्यवस्था में भी आया जा सकता है। उसे चेतन व्यवस्था में समेचाली समता ही कल्पना है। इस समता के अन्तर्गत स्वप्न स्मृति और स्मरण भी आते हैं।^१ पर प्लेटिनस ने कल्पना को ऐन्जिक (Sensible) और प्रज्ञात्मक (Intellectual) दो रूपों में विभक्त किया। उसके अनुसार एक का सम्बन्ध बाहर की ओर से अवादािक आत्मा से है और दूसरे का बौद्धिक आत्मा से। इस प्रकार कल्पना को वह प्रावचीकरण की गरमावस्था मानता है।^२ पश्चिमी विचारकों में डेकार्ट ने कल्पना का सम्बन्ध चिन्म से स्थापित किया। उसकी दृष्टि में कल्पना मस्तिष्क का एक अंस है जो सामान्य इन्द्रिय से प्रभाव ग्रहण करती है। डेकार्ट के अनन्तर प्लेटिनस ने विषय विचार प्रस्तुत किए हैं। उसके मतानुसार मानव अनुभूति के लिए यह सत्य है कि जब चिन्तन की प्रक्रिया में पूर्वानुभूत वस्तु का कोई विशेष प्रतिबिम्ब हमारे मन में उदित होता है, वह स्मृतिर्षी में सोम हुए असंख्य भावों को जैसे ही जगा देता है जैसे एक वृक्ष को हलने पर समस्त बगीचे का रूप कल्पना में भर जाता है। प्लेटिनस की यह धारणा भवतारवादी कल्पना के समानान्तर प्रतीत होती है; क्योंकि भवतारवादी कल्पना में भी मूल एक ही भवतार मूर्ति के द्वारा असीम, अनन्त और सव्यापी विभु ब्रह्म के आविर्भूत चिन्म का साक्षात्कार कर लेता है। इनके अतिरिक्त प्लेटिनस ने आनन्द की दृष्टि से कल्पना पर विचार करत हुए बताया है कि सुखद वस्तुओं की अथवा सुखद कल्पनाओं के विषय अधिक गहरे और दयायी होते हैं। यों कल्पना का आनन्द प्रकृति और कला दोनों से प्राप्त हो सकता है, इसलिये दोनों के आनन्द दो प्रकार के हैं। इन दृष्टि से प्रथम कल्पना के आनन्द को मुख्य और गौण (Primary and Secondary) मुख्य-व्यक्ति से और गौण-व्यक्ति से माना है। इस कल्पना के आनन्द के तीन स्तर हैं—महात्मता भवीयता और सौन्दर्य। प्लेटिनस की अथवा डेकार्ट ने कल्पना को कुछ अधिक परिष्कृत रूप दिया है। उसके अनुसार कल्पना मानव की एक स्वभाविक शक्ति है जो विषयों को क्रमबद्ध या विशेष ढंग से

प्रसुत करने में स्वतंत्र है । वह संवेद्य प्रकाशों को ही पुनः विभिनत कर सकती है किन्तु किसी वधी चीज को विशुक्त नहीं उत्पन्न कर सकती । इस कथन में आग कककर कॅट द्वारा विचारित पुनर्निर्माक कल्पना की प्रकक मिळती है । कॅट के अनुसार कल्पना-पुनर्निर्माक, निर्माक और स्वतत्र या रमनीय तीन प्रकार की होती है । त्रिनमें पुनर्निर्माक और निर्माकये दोनों कल्पनाएँ बोध क प्रागजुमनिक सिद्धान्तों पर आधिन रहने के कारण अस्तुच्छ नहीं हैं । कककर रमनीय कल्पना ही बोध के सिद्धान्तों से परे होने के कारण स्वतत्र है । कॅट की रमनीय या स्वतत्र कल्पना सृजनगतक कल्पना आग प्रकती है क्योंकि वह उस कल्पना को सृजनगतक प्रतिमा का एक पहलू मानता है । हेगेल ने कल्पना को अपनी 'वधी में समाहित करने का प्रयास किया है ।' अतः हेगेल की कल्पना सैद्धान्तिक अस्तित्क के उपरआपन का एक नेद है । वह कल्पना को उपरआपन का एक दूसरा रूप मानता है । उसकी दृष्टि में कल्पना में उपचेतन से ककक एक ही बिन्दु का उत्पन्न नहीं होता, अपितु बिन्दुओं का एक अनककत प्रकाह चलता है जिसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी मान्य बाह्य कथ्य से नहीं होता अपितु बिन्दु पारस्परिक साहबोग द्वारा अनुस्यूत रहते हैं । हेगेल ने सृजनगतक और पुनर्निर्माक कल्पना में भी तात्त्विक अन्तर प्रताया है ।

पुनर्निर्माक कल्पना केवक अन्हीं बिन्दुओं को चेतना में उपस्थित करती है, जो विभिनत अमिज्ञाव क सावारीकृत रूप हैं; तथा जिसे कल्पना करके ताके व्यक्ति ने प्रयार्मताः ग्रहण किया है और इच्छाकिए भी ये पुनर्निर्माक हैं; क्योंकि ये ककक अन्हीं बिन्दुओं को पुनः स्थापित कर सकते हैं, जो पहले से ही

१ कल्प वेत्न पृ १ॢ५-१ॢ० ।



सांस्कृतिक अनुभूति क अंग हो चुके हैं। किन्तु इंग्लैंड के अनुसार सृजनवात्मक कल्पना उपचेतन क सांघातिकृत विम्बों पर पूर्णतः निर्भर नहीं रहती। वहिक सृजनवात्मक कल्पना की सृष्टि उन विचारों का सुष्ठु समन्वित रूप है, जो बाहर से आये हुए हैं और उपचेतन में एकत्रित सांघातिकृत रूपों क साथ मस्तिष्क में स्वतन्त्र रूप से स्फुरित होते हैं। इस प्रकार क विम्बों को हेगेल के विशिष्ट आत्मनिष्ठ माना है।^१

कल्पना की विंग विधाविनी व्याख्याओं के अतिरिक्त ब्राह्मण ने कल्पना का अर्थ 'आविष्कार के अर्थ में किया है।' पटरस्टेरी के अनुसार कल्पना सचेदनशील आत्मा का प्रथम और उच्चतम गुण है जहाँ वह अपनी पूर्णता में मौजूद है। वह ऐच्छिक आत्मबल की सार्वसौमिकता या स्पृक विषय की तरह अपने आप में पूर्ण है। ऐच्छिक वस्तु इस रस क अनुसार मिलती और घुसक होती रहती है।^२ कॉरिज ने ऐच्छिक जीवन की वस्तुमत्ता को प्राथमिक कल्पना क अन्तगत ग्रहण किया है। तथा कहा, काव्य इत्यादि विषय सृष्टिविधाविनी या सृजनवात्मक कल्पना में गृहीत हुए हैं।^३ कॉरिज ने 'कैसी और 'इमेजिनेषन में अन्तर बतकात हुए कहा है कि 'कैसी' एकत्रित करती है, और बिना पुनर्निर्माण क पुनः क्रमबद्ध कर देती है और उसमें नवीन अर्थ का सञ्चल करती है। कल्पना में मन डबर होता है, किन्तु 'कैसी' मूल सृष्टि क अराजक तन्त्रों को पुनः एकत्रित कर उन्हें एक विशिष्ट रूप देती है।^४

इन विचार धाराओं से स्पष्ट है कि अितने लोगों ने कल्पना पर विचार प्रस्तुत किए हैं, प्रकारान्तर से कल्पना क मूक क त्वाण नहीं है। कल्पना का मुख्य व्यापार है विंग-निर्माण या विंगजातना इस प्रक्रिया की चर्चा प्रायः अधिकांश में किसी क किसी रूप में की है। इसमें संदेह नहीं कि कल्पना मन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो विगत अनुभूतियों का सञ्चल नवीन रूप में विंगीकरण करती है। कल्पना को तो मूल पर आधित रहती है किन्तु उसकी प्रकृति अविष्योग्युक्त होती है। कल्पना की आत्मनिष्ठता को भी हककार नहीं किया जा सकता। इसमें मुख्यतः वैयक्तिक अनुभूतियों और आन्तरिक सृष्टों को भी आत्मसात् कर लेने की अपूर्व समता है। सग्निक अनुभूतियों और स्मृतिओं का इसक निर्माण में सर्वाधिक हाथ है। स्मृति एक मनो वैज्ञानिक क्रिया है। जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कल्पना की रचना प्रक्रिया में

१ रूप पृथे १८८-८९। २ बी.क. एम. पृ. १७।

३ बी.क. एम. पृ. १८। ४ बी.क. एम. पृ. ५८। ५ बी.क. एम. पृ. ५८।

विस्तारण, (जल बस सुरसा बदन बड़ाया), क्युकरण (मसक समान रूप कपि धरेड) परस्वापन (नृसिंह), संयोगीकरण (इशानन) पृथकीकरण (सगर क साठ सहस्र पुत्र या रत्नबीज) आदि उपक्रियाएँ विदित होती हैं । इन उपक्रियाओं का सर्वाधिक योग सूत्रनात्मक कल्पना में दीक्षा पड़ता है ।

सूत्रनात्मक कल्पना

पुनर्निर्मायक कल्पना केवल मयु ङग से क्पायित ही नहीं करती अपितु नयी सौखी में उसकी सृष्टि भी करती है । सूत्रनात्मक कल्पना के मूल में उसका अत्यन्तविशेष योग होता है । इसी से सूत्रनात्मक कल्पना का अस्तित्व वैज्ञानिक, लिखरी, कलाकार और साहित्य-जगत् प्रायः सभी में बहमूलक है । इनमें साहित्य एवं कला से जिस कल्पना का बिसिष्ट सम्बन्ध रहता है उसे रमणीय रचनात्मक कल्पना भी कहा जा सकता है, क्योंकि कलाकार रमणीय रचनात्मक कल्पना के द्वारा पुग की मनोमुक्तता तथा अपने स्कूक का प्दान रखते हुए कलाकृतियों में रमणीय चमत्कार की सृष्टि करता है । सूत्रनात्मक कल्पना कवि या कलाकार को नया स्फुरण या आलोक भी प्रदान किया करती है ।

अवतारवादी कल्पना का वैशिष्ट्य

अवतारवादी कल्पना अधिक्रमताः विद्यापक और विधातीत रमणीय रचनात्मकता की परिचायिका मानी जा सकती है । भक्त कवि अपने आधिर्भूत उपास्यदेव की चरित-गाथा और कीर्त्ता में ही बँध कर अपूर्व कल्पनाओं की सृष्टि करता है । कल्पना के विकास में जिस साहचर्य की महत्ता अधिक मानी जाती है उसका स्पष्ट रूप तो भक्तों में ही देखा जा सकता है क्योंकि भक्त का एकमात्र साहचर्य भगवान है । उनकी भगवत्ता की एक छोर पर दार्ष्टिक मानवता है, और दूसरी छोर पर असीम और अनन्त ब्रह्मत्व । अतएव 'अगो रणीयान्' और 'महतो मदीयान्' दो भुवाओं पर स्थित भक्त की सूत्रनात्मक कल्पना एक रमणीय बिम्ब की सृष्टि करती है। जिसमें समस्त ब्रह्म और जगत् तथा मोक्ष और अमोक्ष बिम्ब समाहित हो जाते हैं । कभी भक्त उपास्य सिद्ध रूप क स्वामाधिक ऋषि-न्यापार में दिम्पता स अनुमायित स्वमाशक्ति की कल्पना करता है और कभी समासोक्तिपरक कल्पना क द्वारा अपने मियतम क कपोलों की छाछी में ही समस्त बिम्ब को छुाक देता है ।

इस प्रकार अवतारवादी कल्पना विद्युत् कलात्मक (कला क छिपू कला) से कुछ भिन्न ढीण पड़ती है । विद्युत् कल्पना में ऐहिक धामना विरपेक्ष रूप से कलाकार की अचतन भावसिद्धता में मूकविग्नुवाएँ होकर

रिपत रहती रही है। वह अपने मानसिक जगत् में जन्तु इच्छाओं, कामनाओं, उत्पत्तियों और उदात्त वासनान्तक भावनाओं को अचतन क गर्भ से निकाल कर, नयी सृष्टि में ढाकर विम्बित पात्रों और ब्रह्मणों की संयोजना क द्वारा मन को एत करने वाली श्रद्धात्मक कल्पनाएँ किया करता है। उसका एकमात्र व्यक्तित्व सहजाचार होकर सहजों काव्यनिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के द्वारा कल्पनिक श्रद्धा-व्यापार का भावण करता है। इस व्यापार में उसकी आरामिष्ठ ऐतिहासिकता सहजकल्प से सतत प्रपरमणीक रहती है। कभी-कभी पूर्वानुभूत कल्पनाएँ निरन्तर उसकी रचनात्मक सक्रियता को नबोलेजना प्रदान करती रहती है। नवीन चमत्कारों के विस्फोट, निर्माण-प्रक्रिया और विषय उपादान दोनों में नवीन उन्मेष की सृष्टि करते हैं। कलाकार के इस कल्पना व्यापार के दो रूप पद्यार्थ और आवर्ण दो मुवास्तों पर उपस्थित प्रतीत होते हैं। पद्यार्थ उदात्त भावनात्मक सुम्बकीय क्षेत्र प्राया एक ही होता है। क्योंकि कलाकार की अस्तुति एक ऐसे ध्यामोह की सृष्टि कर लेती है जो क्षण-भाव से समस्त कला-उपादानों को प्रवेपित किया करती है। पद्यार्थपरक कल्पना में कलाकार की अस्तुतिमय सख्यबता कुछ अधिक भावातुर होकर अस्तुतिमय को पद्यावत् प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। कलाकार का वैयक्तिक असंतोष निरपेक्ष या साधारणीकृत होकर समस्त कलाकृति को आपद्धक कर लेता है। इससे एक लाभ यह होता है कि पद्यार्थ विषय में वह अनेक मामिक क्षुधियों और विन्नों का अयन करण में अधिक सक्षम रहता है। इस प्रकार नए पद्यार्थ क क्षेत्र से निकल कर आनेवाले कुरूप, सुगुप्सित, कुप्सित भयानक उपक्षित इक्षित और इयनीय विन्व भी अपने उग्र सख ग्रात्मक प्रदार्तों क द्वारा भावक क मन में पद्यार्थपरक औहात्य को उपस्थापित कर लेते हैं। आनुनिक पद्यार्थपरक उपस्थातों और कहानियों क अनेक पात्र (होरी, घनिषा इत्यादि भी) इन प्रकारों क सुक्तिसंगत उदाहरण कहे जा सकत हैं। पद्यावपरक कल्पना की इन महत् कृतियों में आ कुरूपता या विहृति समाविष्ट रहती है, उनक द्वारा भावक क मन में कौरूप्यजनित रमणीयता की सृष्टि होती है। क्योंकि प्रभाव और अमिमूति ही रमणीयता में याग नहीं होते अविश्व अभाव और निषेध भी रमणीयानुमूति में उतने ही तीव्र और प्रभावशाही होते हैं। हमी स रमणीय विन्वाज्ञावना कुरूप और सुम्बर दोनों में समान रूप से निहित है।

आदर्शपरक कल्पनाओं में कलाकार का वैयक्तिक अर्ह विच्छीर्ण होकर अनुदिक् आप्पक्ष हो जाता है। यह उसक मन का वह विरसंचित आवर्ण है जो पूर्व निर्मावक कल्पना तथा निहित संस्कारों और चारणाओं के याग से

नव्य रमणीय चित्रों की उजावना करता है। इस प्रकार के रमणीय चित्रों में कभी-कभी वह अनेक भावों के सम्मिश्रण से मूलतः वैयक्तिक जातीय, राष्ट्रीय सांस्कृतिक या आस्वात्मिक भावों की स्थापना करता है। ये भावार्थ कहीं विरपेक्ष होते हैं और कहीं सापेक्ष। किसी चित्रोद्गाहना में वे (भावार्थ) उसकी वैयक्तिक आसक्ति से आच्छन्न रहते हैं और किसी में अनासक्ति से। अहाँ कलाकार साक्षीय, स्वनिबद्ध या अधिक सैद्धान्तिक भावों से परिपूर्ण काव्यमय चित्रों का अंकन करता है, वे विद्यपेयन या बारम्बारता के दोष से बचते नहीं रह पाते जिसके फलस्वरूप नवीन उपादान की अपेक्षा रीति या सैद्धांतिक कल्पना का ही किञ्चित् प्रभविष्यु चमत्कार बहा-क्या इष्टिगत होता है। इसी से अधिक प्रयुक्त कलाकार की कल्पना नवीन परि वर्तित भावों के अनुकूल अपने को ढालने में सदैव प्रयत्नशील रहती है।

अवतारवादी कल्पना भी चित्रोद्गाहना की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। इस कोटि की कल्पनाओं में पुरातनता और अनुनातनता दोनों का अपूर्ण सम्मिश्रण रहता है। पुरातन चित्र 'सामूहिक भाव प्रतिमा' के रूप में नवीन चित्रोद्गाहित चित्र की 'आत्म-प्रतिमा' बनकर गृहीत होते हैं। इस कल्पना का प्रसार कथात्मक, काव्यात्मक और कलात्मक तीन रूपों में अधिक प्रचलित रहा है। कथात्मक रूपों का विनोद प्रचार पुराणों में हुआ है और काव्यात्मक रूपों का मस्तक काव्यों एवं नाटकों में तथा कलात्मक रूपों का प्रचार भारतीय कला के समस्त क्षेत्रों पर आच्छन्न है। साम्प्रदायिक उपास्यवादी अवतार-कल्पनाओं में उसी कोटि की चित्रोद्गाहना का अधिक प्रचार हुआ जो उपासक के समस्त ऐहिक भावों और कामनाओं के उन्नयनीकरण (Sublimation) में अधिक से अधिक मग्न हों।

रमणीय चित्रोद्गाहनाओं में जो सुखनात्मक प्रक्रियाएँ होती हैं, उनमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'अति क्षतिपूर्ति' (over compensation) उल्लेखनीय है। क्योंकि विभिन्न कल्पनाओं के उपक्रम में मनुष्य की भावना एक ऐसी क्षतिपूर्ति की ओर खे जाती है, जिसका मानवता से भी कुछ न कुछ सम्बन्ध रहता है। इस उपक्रम में समस्त पुञ्जीभूत कल्पनाएँ (क्रेडेंसीबल) किसी न किसी भावना-अधिक चारों ओर विकसित होती हैं। इस कल्पनाओं का सम्बन्ध उन व्यक्तिगत प्रवृत्तियों और अचेतन उपस्थापनाओं के बीच स्वयं अचेतन द्वारा स्थापित किया जाता है, जो अक्सर अभिष्टाया विषय और सर्वशक्तिमत्ता की उपस्थापना को अभिव्यक्त करती हैं। फिर भी ये अभिव्यक्तियाँ पुञ्जीभूत कल्पना के उस स्वनात्मक प्रभाव को मुहाने के लिए प्रेरित करती हैं, जो सर्वदा साव्यप्रतिभात्मक उपादानों से

आवृत्त रहते हैं। वे पृथ्वीमूत कल्पनाएँ जबकि व्यक्ति के एक नयी दिशा प्रदान करती हैं; तथा मनोबीज के पुनः अग्रसर करती हैं और व्यक्ति को सहा होने की प्रेरणा देती हैं।

सामान्य विकास की दृष्टि से 'निर्वाण और 'विराट्' की कल्पनाएँ प्रायः उस भावप्रतिमात्मक पुरावेता (Hero-myth) से सम्बन्ध स्थापित कर और अहं का नेता के साथ तादात्म्यकरण करते हुए, विकसित होती जाती हैं जो भाव प्रतिमात्मकता की दृष्टि से सर्वथा चेतना का प्रतीकात्मक बोध कराते हैं, क्योंकि इस व्यक्तिगत उपक्रम में वैयक्तिक भावना-ग्रन्थि को जीतने के लिए अहं को शक्तिशाली बनाना आवश्यक हो जाता है।' वहाँ कल्याण का तात्पर्य हो जाता है—उस 'उन्नयनीकरण' से जो वहाँ व्यक्ति के सरङ्गिकरण या समाजीकरण का अर्थ जावित करता है, तथा भावना-ग्रन्थि और भाव प्रतिमा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है।

स्वप्न

कल्पना की तरह स्वप्न भी रमणीय विम्बोज्ञासना का सबल माध्यम रहा है। वस्तुतः विम्ब की स्पष्ट गतिरता का अनोखा अनुभव विज्ञानस्वा में आने वाले स्वप्नों में ही होता है। पाम्बल सौन्दर्यशास्त्रियों में शिल्लेर मेकर (Schiller Mecher) ने कल्प के क्षेत्र में उठने वाले इस भ्रम का निवारण करने का प्रयास किया कि 'कल्प में ऐतिहासिक (सुख-सुखात्मक) चेतना स्पष्ट होती है या चामिक। शिल्लेरमेकर इसी से कल्प की स्वतंत्र उत्पत्ति मानता है। वहाँ ऐतिहासिक आनन्द और चामिक अनुभूति दोनों अपने अनुरूप आकस्मिकों के द्वारा निर्धारित होते हैं। स्वतंत्र उत्पत्ति के क्षेत्र में शिल्लेरमेकर' ने सदा चेतना द्वारा निर्मित विम्बों की तुलना 'स्वप्न-विम्बों से की है। उसकी दृष्टि में समस्त कलाकारों द्वारा कल्पमिथ्यात्मिक का कार्य एक प्रकार का स्वमिथ कार्य-व्यापार है। कलाकार वह स्वप्न मूला है जो सुषे नेत्रों से भी स्वप्न देखता है। उसकी स्वप्नचरणा के सबल विम्बों की भीड़ में ये विगल वे विम्ब जो पर्याप्त शक्ति वाले हैं, एकमात्र कलाकृति का रूप

१ भा. कृ. व. पृ. १५८ In the case of the average normal development fantasies of salvation or greatness lead, perhaps through a relation with the archetypal hero Myth and identification of the ego with the hero, who always archetypally symbolises consciousness, to the strengthening of the ego that is necessary if the personal complex is to be overcome

कारण करने की चमत्ता रखते हैं, जबकि अन्य विंग्व केवल पृष्ठभूमि में स्थित रहते हैं। इस प्रकार कला के समस्त अनिवार्य तत्व स्वभावस्था में ही उपलब्ध हैं; जो केवल स्वतंत्र विचारों और ऐच्छिक स्वयं प्रकाश या प्रातिभ ज्ञान से पुनः विंग्वों में विहित हैं। निःसंवेद शैली की दृष्टि से कलापरक विंग्वों और स्वयं विंग्वों में बहुत कुछ अन्तर भी दृष्टिगत होता है किन्तु फिर भी वह आन्तरिक व्यापार जो विंग्व का स्वरूप निर्धारण करता है—यह वही है जो कला को स्वयं से प्रयुक्त करता है या स्वयं को ही विंग्व के रूप में रूपान्तरित करता है।

अवतारवादी विंग्वोद्भाषना में अन्य तरंगों के साथ स्वयं की प्रक्रिया की भी उल्लेख नहीं की जा सकती। अवतारों के आविर्भाव की जो परम्परा प्रबन्ध कालों, जाटकों या पौराणिक कथाओं में अभिव्यक्त होती रही है—आविर्भूत होने वाले प्रवर्तकों या अवतारों का प्रथम विंग्वीकरण स्वयं में ही उनकी माताओं को गायक होता है। बौद्ध और जैन धर्म में उनकी माताएँ एक ही नहीं अपितु लगातार अनेक स्वयं देखती हैं, जिनमें अवतारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रतीकों की शृंखला में अनुचर है। परन्तु जहाँ तक अवतारों की कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रश्न है—व अन्य कलात्मक अभिव्यक्तियों की तरह कलाकारों के माध्यम से उत्पन्न होने वाले विधास्वयं के ही विंग्व हैं; जिनको विभिन्न युगों के कलाकार और कवि अपनी कलात्मक शैलियों में अभिव्यक्ति करते रहे हैं। इनमें मूल एवं उपासक कलाकार तो अवतारों के लिये और वैमिषिक दोनों रूपों के समन्वित कला-उपादाओं के व्यापार पर स्वयं व्रण की तरह ही सम्मिलित उन्मत्ती या तुरीयावस्था में भी रहकर सभी रमणीय विंग्वोद्भाषणाएँ किया करते रहे हैं।

श्रीज्ञा-सृष्टि

विधास्वयं के अनन्तर रमणीय विंग्वोद्भाषना जिन सहज सृष्टियों से अनुप्राणित रहा करती है उनमें कामसृष्टि या रमणसृष्टि की अपेक्षा श्रीज्ञासृष्टि प्रमुख है। क्योंकि रमणीय विंग्वोद्भाषना के सहज प्रवाह को अधिकाधिक संवेगमय और गतिशील बनाने में श्रीज्ञासृष्टि प्रभाव है। यों कामसृष्टि या रमणसृष्टि में जो सक्रिय चेतना या क्रियात्मक व्यापार है, जो उन्हीं कार्यावस्था में अवस्थित ही नहीं रहता अपितु अविरत लगातार रहता है—यह

१. पृष्ठ ५ ३२८।
 २. अथर्ववेद तथा अन्य तीर्थकृतों और गीताम सुद्ध की माताएँ अनेक स्वयं प्रकाश देवता हैं।

श्रीदावृत्ति है। बिद्युत्काल में अचेतन, उपचेतन और चेतन हमारे मन में चलीं जस सम्मिश्रित रूप से जिस बाह्य श्रीदा वृत्ति में संकलन दीप्त पड़ते हैं वही उन्नत, अनुभव और सामाजिक अवरोधों की शृङ्खला में बँधकर अस्तमूर्खी हो जाती है—बढ़ कमी भी शान्त या एकान्त अवस्था में कल्पना रसम या दिवास्वप्नों के माध्यम से मनुष्य-मृतक रमणीय विम्बोज्ञावना किया करती है। व्यक्ति सादैक होन के कारण परम्परागत भाव-प्रतिभा की विम्बा ज्ञावना भी मात्रात्मक अनुपात और वैशिष्ट्य की दृष्टि में मर्यादित होती है। पाश्चात्य विचारक सिद्ध ने तो समस्त सौम्यत्व विन्तन को ही श्रीदावृत्ति के अन्तर्गत माना है। उसकी दृष्टि में मनुष्य केवल सौम्यत्व के साथ श्रीदा करता है और उमदा सौम्यत्व केवल श्रीदा ही है।^१ श्रीदावृत्ति के द्वारा मनुष्य सौम्यत्वपरक विन्तन कर कला की अभिव्यक्ति करता है। वह समस्त प्राकृतिक वस्तुओं को सचेतन देखता है। इस ज्ञान-चेतना में प्राकृतिक आवश्यकता स्वयं गुणों का स्वतंत्र निर्धारण करती है, ऐसी स्थिति में आत्मा उन्मुक्त रूप से प्रकृति के साथ तथा रूप वस्तु के साथ अभिन्न प्रतीत होते हैं।^२ शिद्धर के मतानुसार जो पूर्ण अर्थ में मनुष्य है उसमें श्रीदावृत्ति का ही प्राधान्य है। श्रीदावृत्ति मनुष्य की प्रकृतियों को अस्त क्रिया से मुक्त करती है; भाष ही उमकी प्रति-पूर्ति करते हुए उसे मुक्त आत्मत्व की उपलब्धि कराती है।^३ शिद्धर ने श्रीदा-चेतन को ऐंग्रिक प्राकृतिक सामनात्मक, बीदिक और नैतिक माना है। उसकी दृष्टि में सौम्यत्व जीवन है और वह जीवनत्व रूप है। जीवन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं क्योंकि सौम्यत्व का विस्तार केवल समस्त मनोवैज्ञानिक जीवन तक नहीं है एकान्तता। न ता सीमित है और न व्यापक ही।^४ इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य में अन्तर्निहित आन्तरिक श्रीदावृत्ति सौम्यत्वानुभूति के सक्रिय व्यापार की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। इस वृत्ति में मनुष्य काव्यमय आत्मत्व विम्बों का निर्माण कर मना-ह्लादन करता है। मना-ह्लादन की यह मात्रा ही उत्तरोत्तर अभिक्रमिण होकर उसे सौम्यत्वानुभूति से आगे बढ़ाकर रहस्यानुभूति की स्थिति तक पहुँचा देती है। मेरी दृष्टि में इन कोटि की श्रीदावृत्ति में भी आत्मत्वहीन आत्मनिष्ठता नहीं है; आर जो आत्मत्व इसका आधार है—वे रमणीय विम्ब ही हैं।

१ साखे रा. ५ ११५। 'Man shall only play with beauty and only beauty shall be play'

२ दत्ते ५ २८५। ३ साखे. रा. ५ ११५। ४ दत्ते. ५. २८५।

विषय और रूप

कलाभिव्यक्ति की तरह रमणीय विमलाञ्जलिना भी विषय और रूप पर आधारित है। जोके क अनुसार एक का अस्तित्व बाहर है और दूसरे का भीतर। विषय रूप क द्वारा अभिव्यक्त होकर रूप की उत्पत्ति करता है। यह वह पदार्थ या विषय है जो हमारे सहज ज्ञानों को एक दूसरे से पृथक् करता है। रूप सदैव एक-सा रहता है; यह एक आध्यात्मिक क्रिया है; जब कि पदार्थ परिवर्तनशील है।^१ मल्ल कलाकार भी अरूप को रूप देते हैं। जबतार बाही कलाभिव्यक्ति में प्रकृत उनका विषय है और जबतार उसका रूप। जबतार-रूप में ही मल्ल कलाकार सौन्दर्योत्पत्ति करता है। जोके क अनुसार सौन्दर्योत्पत्ति की पूर्ण क्रिया चार अवस्थाओं में सम्मूर्तित की जा सकती है, पहला—मभाव दूसरा—अभिव्यक्ति या आध्यात्मिक रमणीय समन्वय, तीसरा—साहचर्य सुख या रमणीय रसामन्द चौथा—रमणीय सत्य को भौतिक-प्रतीति (स्वच्छि उष्य, गति, बर्ण और रेखाओं की संगति में अस्मृति करना।^२ यों रमणीय अभिव्यञ्जना क पक्ष में धाने वाले प्राकृत्य और निर्माण जबतार बाही अभिव्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ हैं। कलात्मक कृतिओं स्पृष्ट या सौतिक सौन्दर्य क अन्तर्गत आती हैं; किन्तु विरोधाभास तो यह है कि सुन्दर भौतिक सत्य नहीं है, क्योंकि वह पदार्थों में विहित नहीं है, अपितु मनुष्य की सक्रियता और आध्यात्मिक शक्ति में है। इसी से विषय आन्तरिक सत्य है और रूप उसकी प्रतीति है। जबतारपाद में शिव और अद्विष्ट शैव और राघव-आन्तरिक विषय हैं और विद्य सर्वगत मूर्ति, बास्तु; काव्य आदि में उनकी अभिव्यक्ति रूप है। रूप विषय का व्यञ्जक है। वह विषय को इन्द्रिय संवेद्य चार प्रकृत बनाता है। रूप शिव शक्तियों क द्वारा विषय का प्रकटन और उसकी अभिव्यञ्जना करता है व हैं—सकल, प्रतीक, प्रतिभा, बिम्ब, प्रतिबिम्ब इत्यादि। इस प्रकार रूप, सांस्कृतिकता अर्पवत्ता मूर्तिमत्ता चरनगतकता स्पृष्टमनुकल्पन इत्यादि मनो-व्यापारों क द्वारा विषय को संवेद्य बनाकर तथा भाव-रस से मुक्त कर रमणीयरूप में प्रस्तुत करता है।

प्रायः कला-विचारक विषय से अधिक रूप को महत्त्व देते हैं। कला का साम्यिक वैशिष्ट्य रूप ही क द्वारा प्रकट होता है। कला प्रकृति को रूप क द्वारा जीत लेती है; क्योंकि कलाकृति क वास्तविक सौन्दर्य में रूप ही सब कुछ है। वस्तु कुछ नहीं। रूप क द्वारा ही मनुष्य स्वतन्त्र भावना आहूत होता है। किन्तु वस्तु के द्वारा उसके पृथक् गुणों क कारण अममें क्वि चकती

^१ एत्थे ५२। २. एत्थे ५२९।

है। विषय ही कलाकार का रहस्य यह है कि रूप के द्वारा वह वस्तु को छिपा लेता है। रमणीय चिन्तोद्भासना में वस्तु और रूप दोनों का पाग अपरिहार्य है; क्योंकि वस्तु और रूप में प्रकृत या अविद्याभाव सम्भव है। माया श्रेष्ठ कलाकृति में वस्तु का रूप भाष्यादित कर लेता है। भास कर अभिर्भूतवादायी कला में रूप साध्य है और विषय वस्तु साधन। किन्तु विषयवस्तु और अवतारवादी कलाभिम्यक्ति में विषय-वस्तु (ब्रह्म) साध्य है और रूप उसका साधन। मूल कलाकार विभिन्न रूपाभिम्यक्तियों के द्वारा अपने उपारण एवं साध्य ब्रह्म की ऐन्द्रिक अभिम्यक्ति के विभिन्न अनेक कलात्मक रूपों का माध्यम अपनाते हैं। अतएव अवतारवादी साधना में ऐन्द्रिक साक्षात्कार की दृष्टि से रमणीय चिन्तोद्भासना का चरम विषय ब्रह्म है और लोकप्रिय आधिभूत रूप ही चरम रूप है। अन्य कलाओं की अपेक्षा अवतारवादी विषय और रूप में एक विशेषता यह भी है कि विषय यह ब्रह्म एक ही है। किन्तु उपास्यरूप रूप की दृष्टि से व्यक्तिगत और सामूहिक रूप दो प्रकार के हो जाते हैं। इन दोनों रूपों में मूल कलाकार ब्रह्म की प्रतीकात्मक रमणीय चिन्तोद्भासना ही करता है।

सूत्रनात्मक भाव-प्रतिमाएँ

सामूहिक अचेतन की भाव-प्रतिमाएँ वे रूपहीन भावस-भाकृतियाँ हैं जो कलाओं में दृष्टिगोचर होती हैं। ये भाव प्रतिमाएँ जिन माध्यमों से गुजरती हैं, उनकी विविधताओं का इनपर भाष्यावन हो जाता है अर्थात् उनका रूप समय क्षेत्र या मनुष्य की मनोवैज्ञानिक स्थिति जिनमें वे अभिम्यक्त हुए हैं उनके अनुसार बदला जाता है। कला इस स्थिति में एक सामूहिक वस्तु हो जाती है जिसे सामूहिक सम्पर्क से दृश्य नहीं किया जा सकता बल्कि वह सामूहिक जीवन के साथ सञ्चिष्ट हो जाती है। कलाभिम्यक्ति की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति कलाकार, मूर्तक, गायक कवि चित्रकार, मूर्तिकार है उसका प्रत्येक कार्य में समूह के प्रभाव की स्थिति परिचयित होती है। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्ति की चेतना इन प्रतिमाओं के प्रभाववशा विचकुक अन्धी बनी रहती है। मानस की सूत्रनात्मक कृतियों के प्रति प्रतिक्रिया प्रतिक्रियितन कर उसका अधीन उसका भावसों को पाकन करने वाली होती है। किन्तु ये भावस-अन्तर्धारणों का मनुष्य की अनुभूति और विश्व की प्रतिभा को निर्धारित करती हैं—वे उन रंगों, रूपों कथों और वाप्यों के द्वारा अभिम्यक्त होती हैं; जो प्रतीकात्मक अभिम्यक्तियों में क्षेत्र रूप धारण कर, मनुष्य के भाव प्रतिमात्मक अगत और जिन अगत में बह रहता है उन दोनों सम्बन्धों की अभिम्यक्ति करती हैं।

लक्षित होती है। चित्रपत्र मध्ययुगीन अवतारवादी कला-कला मूर्तों एक मनुष्य कवियों में अपने युग का अवतारानुद्ध भवेतन पूर्णता व्यक्त विहित होता है। दूसरे शब्दों में वे अपने युग के सम्प्रदाय और संस्कृति से पूर्णरूपेण अनुप्राणित थे। यों फिर भी अज्ञा व्यक्ति के मातृ-तरु में पुनरातीत या पुनरुत्पन्न प्रमाण के कारण उसका मातृ-क्षेत्र अधिक सुगठित रहता है। अतः मनुष्य की कलाकृति में एक ऐसा अदृश्य जगत आविर्भूत होता है जिसमें प्रकृति और कर्म का बाह्य और आन्तरिक श्रुतत्व निर्धारित रहता है^१। जहाँ भी परम्परागत कला भाव प्रतिमा के सार को ग्रहण कर लेती है वहाँ उसकी प्रकृति एक निश्चित एवं पूर्व निर्धारित सीधे में 'मातृ-प्रतिमा' को स्थापित करने की रहती है जिसमें प्रवर्तकों अवतारों और उद्धारकों के जन्म या मृत्यु सम्बन्धी घटनाएँ या जिनमें बुद्ध का ध्यान या परमात्मा का आविर्भाव या अवतार जैसी भाव प्रतिमाएँ भी समाविष्ट रहती हैं। उपास्य इन्द्रदेव मानवातीत सत्ता के प्रतिनिधि रूप में श्लाघ्य या सनातन के अवतार को ही आगतिक विश्वास की सत्यता में स्मिहित कर स्थापित करते हैं। किन्तु असाधारण अवस्थाओं में विधातीत दरप होकर मानवातीत प्रतीत होता है। पर्यपि वह भी अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए मातृ-माध्यम से ही सम्भवता अपने आप ही कुछ कर्म के लिए प्रकट होता है। इस दृष्टि से अवतारवादी कर्म दो आयामों वाली जान पड़ती है—एक ओर अज्ञ और अज्ञान और अज्ञान और प्रतिअवतार एक मनुष्य के द्विपक्षीय आयाम प्रतीत होते हैं। निरपेक्ष ही अपेक्षा सक्रिय और सापेक्ष ही कलात्मिक, अनुभूति या सृष्टि विधापिनी क्षमता का लक्ष्य हा सत्ता है। अतः अज्ञा और सक्रिय ईश्वर रूप वह मातृ-प्रतिमा है जिसके बल पर सृष्टि विधापिनी कला का संचार होता है।

सृजनारम्भक रूपान्तर

सृजनारम्भक रूपान्तर उस सम्पूर्ण प्रकृति को प्रस्तुत करता है जिसमें सृजनारम्भक विज्ञान स्पष्ट होता है किन्तु उसकी यह अभिव्यक्ति भी स्फोट के रूप में हुना करती है। यों तो अज्ञा मानव में भी व्यक्तिगत भावना प्रवृत्तियों और मातृ-प्रतिमाओं के बीच एक सम्बन्ध-सूत्र स्थापित हो जाता है किन्तु सामान्य मानव की तरह उसमें हुना सम्बन्ध नहीं होता। सृजना

^१ आ ए व ए १ १ : In These Works of Man a restless world is Manifested in which The Polarity of outward and inward nature and art seems To be resolved

एक प्रक्रिया एक सक्रिय संचोचना है। विशेष कर इस स्थिति में जब कि मानवोत्तर, शाश्वत व्यक्तिगत या जनमंगुर उसमें विलय होकर किसी नव्य ज्ञान की सृष्टि करते हैं। और चिरस्थायी शाश्वत सर्वज्ञता जन-मंगुर या मन्त्र सृष्टि में साकार हो जाती है। रचनात्मकता की एक यद्गत बड़ी विनोयता यह है कि वह समस्त संस्कृति क किये किसी महत्वपूर्ण वस्तुनिष्ठ आश्चर्य का निर्माण करती है; साथ ही वे आश्चर्यजनक व्यक्तिगत विकास क आत्मनिष्ठ एक या ज्ञान व्यक्ति के व्यक्तिकरण का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। मानस अपने रचनात्मक स्वयं को सामूहिकता के सामान्य एक प्रायश्च उपयोगिता के प्रवाह क विरुद्ध जाती रखता है। किन्तु वे रचनात्मक स्वयं व्यक्तिगत प्रणय की सतिपूर्ति क किये आरम्भ हुआ था, वह मात्र प्रतिमार्थों क द्वारा निरन्तर सक्रियता और समस्त भाव प्रतिमार्थक अगत की सञ्जीवता की ओर प्रयुक्त होता है और इस प्रकार वह ज्ञान व्यक्ति को पकड़े रखता है। एक भाव प्रतिमा स्वयं-भाव से दूसरी भाव-प्रतिमा तक ले जाती है, जिसमें ज्ञानाधार भाव प्रतिमार्थक विश्व की मनीष मॉर्गों को कबल व्यक्तिव और रचनात्मक उपलक्षियों क निरन्तर रूपान्तर के द्वारा पूर्ण किया जा सक। इस तरह सूत्रनात्मक प्रक्रिया में भाव प्रतिमार्थों की श्रद्धा ज्ञानाधार रूपान्तर के द्वारा मनीष चालिमता का संचार करती रहती है। साथ ही रचनात्मक प्रक्रिया के प्रतीकवाद में उसक युग विशेष के किये कोई युग सृष्ट्यात्मक नव्य विद्यमान रहता है जो आगमिष्यन विकास का भी उत्पादक बीज है। रचनात्मक जग से रूपान्तरित विश्व की वास्तविकता की जाधार-भूत भाव प्रतिमा स्वयं भूमता वह पूर्ण बल है, जिसका प्रत्येक बिन्दु एक 'धुमाव बिन्दु' है, जो अक्सर प्रारम्भ के साथ उपमहार करता है और अन्त क साथ आरम्भ करता है क्योंकि जीवन क विरोधामासों में से यह वह है जिसकी रचनात्मक वास्तविकता को विशुद्ध वर्तमान क रूप में अस्तित्व का घातक है, किन्तु समस्त जगत्त भी इसी अस्तित्व में प्रवाहित हा रहा है जब कि समस्त अभिष्य एक क्षरने की तरह इसक (अस्तित्व क) ऊपर वह रहा है।^१ अतः यह यह बिन्दु है जहाँ धुमाव और टहराव दोनों हैं। अस्तित्व का यह बिन्दु रहस्यवाद का सूत्रनात्मक मुख्य बिन्दु है। यह सृष्टि में एक दरार वा विद्रव स्वरूप है जस मात्र में जिन पर जेनन और अचेतन सूत्रनात्मक एकता एक तीमर रूप में बद्ध जाती है। य भी वास्तविकता क एक अंग है, जो सूत्रनात्मक जगों क सौम्य और आत्मन् में दूर तक विपरते रहत है।^२

१ भा. क. अ. ११२ और टि. भा. ही. १५५। २. भा. क. अ. ११२।

इस प्रकार रमणीय विम्बोज्ञापना में उपर्युक्त समस्त तर्कों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योग होता है। जहाँ तक अवतारों की रमणीय विम्बोज्ञापना का प्रश्न है रमणीय कलाशुभृति के क्षेत्र में वे इन समस्त तर्कों से समाहित होकर ही व्यक्त होते हैं।

कृति

साहित्य एवं कला के क्षेत्र में रमणीय विम्बोज्ञापना ही कृतियों का निर्माण करती है। अतएव कृति रमणीय विम्बोज्ञापना का चिरस्थायी एवं चरम रूप है। जो तो समस्त कृतियों द्वारा, भ्रम्य और विन्म्य होती हैं। किन्तु अवतारवादी कृति अर्द्धकृत या अन्व्योक्तिपरक तथा आस्वाद्य और उपास्य अधिक प्रतीत होती है। यदि वह अपनी अर्द्धकृति में भावक की समस्त कल्पना का समाहार कर लेती है तो अन्व्योक्तिपरक होकर वह भक्तके जीवन की लक्ष्यमूल समस्त सम्भावनाओं को आमत किये रखती है। मध्य सामान्य जीवन में आचिर्भाव द्वारा और कलाकृति के क्षेत्र में अभिव्यक्ति द्वारा ऐन्द्रिक आस्वाद्य और आध्यात्मिक उपासना का उपजीव्य बनता है। अवतारवादी रमणीय कृति की विशेषता यह है कि वह सामाजिक और वैयक्तिक प्रबन्ध और मुख्य, 'बहुजन हिताय और स्वास्तः सुखाय' दोनों प्रकार की जमताओं से संबन्धित है। जो प्रभाव की दृष्टि से समस्त कृतियों को एकित कृति रमणीय कृति और उदात्त कृति तीव्र कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। वास्तु, मूर्ति और चित्रकलाएँ एकित अधिक होती हैं रमणीय कम। संगीत में आक्षिप्य के साथ रमणीयता भी मिश्रित रहती है। किन्तु नाटक और काव्यों में साधारणीकरण की जमता अधिक होने के कारण रमणीयता सर्वाधिक जान पड़ती है। आक्षिप्य और रमणीयतासं मेरा तात्पर्य सौन्दर्याभिरुचि और रमणीयानुभूति से है। एकितकृतियों सौन्दर्याभिरुचि की जमता से ही अधिक परिपूर्ण रहती हैं। जो ता कला कला के लिए' के समर्थकों ने कलाभिरुच्यंजन को चरमसाध्य माना है। परन्तु इस कोटि की कलाकृतियों की परिधि ऐन्द्रिक आस्वाद्य तक ही सीमित रही है। परन्तु अवतारवादी कलाभिरुचि या कलाकृति कमी भी अपने आपमें चरम साध्य नहीं होती उसकी भीतिकता भी विषय आध्यात्मिकता का साध्यम होती है। अवतारवादी कृति चाहे एकित रमणीय और उदात्त कृति भी हा सर्वप्रथम उसकी उजावना और अभिव्यक्ति में परम मध्य या उपास्य मध्य व्याप्य रहता है। अवतारवादी भक्त अपने उपास्यत्व की वाण या प्रकृत मूर्ति का श्रद्धा कर कथक भीतिक सौन्दर्याभिरुचि नहीं अपितु उसके आचार पर उजावित उपास्य परम मध्य के भावनात्मक एकित रूप की

उद्भाषना करता है। इस उद्भाषना को ही अनुप्राणित करने वाले भावों में 'अग्निपुराण' में वर्णित भावों को ग्रहण किया जा सकता है। अग्निपुराणकार ने पुरनों में छोमा विकास मानुष, गाम्भीर्य वृद्धि, औद्योग्य और तेज, तथा स्त्रियों में भाव हास, हेका, शोभा काश्चित् दासि, मानुष्यं, शौर्यं, प्रागल्भ्य उदारता, स्थिरता और गम्भीरता^१ जैसे त्रिन भावों का अस्तिरव माना है। अन्वयारवाही उपाख्य देवों की भी उद्भाषना को उद्येरित करने वाले लक्ष्य विहित होते हैं।

रमणीय कृति भावक या फलक क मन को सहज प्रेरित और अनुप्राणित करनेवाली वह कृति है जो उसके आन्तरिक मनक अन्तर्दृष्टियों या सकल्पपारमक और विकल्पात्मक अनुभूतियों को सक्रिय बनाए रखती है। अन्वयारवाही कृति का प्रमुख एक सनातन विषय देव दामय संघर्ष वस्तुतः दो भावसौ (आत्मिक और भीतिक) का संघर्ष है नाटक एक प्रबन्धद्वयों में त्रिनकी कलारमक अभिव्यक्ति हमारे समस्त मनोव्यापारों का प्रवृद्ध कर रमाए रहती है। अन्वयार चरितारमक कृति देव दामय संघर्ष में आविर्भूत दक्षिण क द्वारा अन्तिम विषय दिक्कार मनुष्य क संघर्षशील मन को विषय भाषना से लुप्त किय रहती है। देव-दानय संघर्ष क सहज वह भी दक्षतापूर्वक अपनी समस्त शक्ति लगाकर अपनी आधुनी दक्षिणों को इमिन करने में हृन्-संकल्प बने रहने की अनायाम इच्छा करता है। बार-बार की आवृत्ति क कारण वही इच्छा अन्वय मन का दृढ़ संकल्प बनकर उसकी समस्त चारित्रिक गतिविधि को भी सुदृढ़ बनाती है। इसी से विषयोपरान्त तक होने वाली अन्वयारकील्य मन की समस्त कृत्तियों को अल्पमत रमणीय और मनोनुकूल बनाती है। रमणीय कृति में साधारणीकरण की अपूर्व क्षमता होती है। रमणीय कृति के रूप में प्राद्य नाटक और प्रबन्ध काव्य रमणीयता क अतिरिक्त लक्ष्मि कृति की विणयनाओं से भी सन्निविष्ट रहते हैं ककतः उनका प्रभाव भावक पर परोक्ष रूप से पड़ा करता है।

अस्तकरण

काव्य, कला और नाटकों में अलक्ष्मि स्वय एक सौन्दर्यपरक कार्य व्यापार है। शाभा या सवाक्य क लिए इनका प्रयाग वास्तु मूर्ति और चित्रों में अल्पतः चक्षुष्य, वर्ण और रेखाओं के द्वारा, संगीत में मृच्छनाओं से युक्त स्वर-प्रणार द्वारा काव्य में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार द्वारा तथा नृत्य और नाटक में मुद्रा, गाल, भाव-भंगी, अभिनय और वातां द्वारा अलक्ष्मि करण का

^१ अग्नि ५. ८८ या ९. ४६।

^२ अग्नि ५. ८८ या ९. ४६।

प्रयत्न होता है। भवतारवादी कलात्मक और साहित्यिक कृतियों की इसी शैली में अलंकार उपकरणों से परिपूर्ण रहा करती हैं^१। काव्य की शोभा बढ़ाने वाले द्विज शब्दाङ्ककारों का नाम पुराणकार ने गिनाया है कला एवं काव्यात्मक कृतियों में प्रतिमासित हान वाले इन अलंकारों में भवतारवादी सौम्यत्व प्रकृति स्पष्ट है। क्योंकि ऐसे शब्दाङ्ककारों में किसी न किसी सौम्यत्व प्रतीक की स्वरूपगत प्रतीकात्मकता को व्यक्ति होने की प्रमत्ता अधिक मिल जाती है। उदाहरण के लिए 'वाया शब्दाङ्ककार के चार भेद माने गए हैं लोकोक्ति, लोकोक्ति, अम्योक्ति और अम्योक्ति जिनमें अम्य के अर्थ की उत्कृष्ट अनुकृति 'वाया' है। प्रसिद्ध कथन लोकोक्ति है। यों लोकोक्ति में भी प्रतीक चित्र का रूप धारण कर होता है, प्रसिद्ध होने पर जिसे यहाँ वाया कहा गया है। यह यस्तुतः लोकोक्तिपरक चित्र ही है क्योंकि उसकी कलात्मकता लोकोक्ति में निहित रहती है। इस प्रकार समस्त भवतारवादी कलाकृतियों में प्रमाणात्मिक स्वजन की दृष्टि से अलंकार और अम्योक्ति दो रूप उद्दिष्ट होते हैं। अलंकार यदि उसका शरीर और वाद्य पद है तो अम्योक्ति आन्तरिक और आत्मपद।

अम्योक्ति

अनेकी पद्यगरी के लिए हिन्दी अम्योक्ति, अम्योपदेशिक, अम्यवसित रूपक, अप्यान्तरिक रूपक इत्यादि कई एक नाम चलते हैं। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि इन सभी के रूप किसी न किसी प्रकार 'पद्यगरी में अम्योक्ति हो जाते हैं। साहित्य बोध' में हम 'रूपक कथा की संज्ञा की गयी है^२। यद्यपि 'पद्यगरी' या 'रूपक कथा' में एक तथ्य स्पष्ट है कि उनमें 'अम्योक्ति या प्रतीकमय अर्थ ही प्रधान होता है। अनेक अम्योक्ति माय-व्यापार मानवीकृत चित्रों के माध्यम से मूर्त होकर व्यक्त हुआ करते हैं। रूपक-कथा के पात्र प्रतीकात्मक होते हैं तथा उनका चरित चित्रण में प्रस्तुत व्यापार और

^१ ऐसी ही अग्निपुराण में 'रमणीयता को भी एक शब्दाङ्ककार (अग्नि पुराण भा. ५. ३८) के रूप में प्रयोग किया गया है। यदि प्रतिदानुसार शब्दों द्वारा रमणीयता को कथना विषय कही जाती है। यह रमणीयता तीन प्रकार से व्यक्त होती है—१. यदा स्वान्द शब्दविशेषों द्वारा २. स्वर द्वारा ३. स्वजन द्वारा। पुराणकारों ने प्रकृतान्तर से शब्द और शिर्षक या शब्द और शब्द को पद्यों को भी कहा है। उनके मतानुसार शब्द और अर्थ दोनों में प्राणि शोभ और प्रतिकृत तथा आनुशोभ और अनुकृत को शक्ति है।

^२ सा बोध' पृ. ३००।

प्रतीयमान व्यापार दोनों का अन्तर्भाव रहता है। प्रस्तुत कथा की सौन्दर्यता का समानता मात्रा-भेद के कारण अन्वयिकपरक अथवा समासोक्तिपरक मानी जाती है।

अन्तर्भाववादी रमणीयता का अभ्यवसान सर्वैव अन्वयिक या समासोक्ति परक होने के कारण प्रायः रूपकालम्बु रहता है। अतः अवतारत्व से सम्बन्धित यह साहित्य जहाँ अवतार पात्र अन्तर्भाव की सम्पूर्णता से सन्निविष्ट होकर अभिषिक्त होता है, वह कृति अपने रूपकालम्बु परिवेश में रूपकालम्बु रमणीयता या रमणीय रूपात्मकता से अनुरजित दीख पड़ती है। इसमें सर्वेद जहाँ कि अवतारवादी साहित्य के रमणीय विधान में रमणीयता प्रायः अप्रत्यक्ष या रूपकालम्बु ही रहता करता है। मध्यकाळीन साहित्य के राम और कृष्ण कथक मनुष्य सातीय सौम्य के परिचामक सुन्दर या मधुनामिराम नहीं है अपितु समस्त ईश्वरीय सौम्य उनके माध्यम से स्पष्ट हुआ है। वे ईश्वरीय सौम्य के मूर्तिमान प्रतीक हैं। कृष्ण शब्दों में नहीं कहा जा सकता है कि महा की कृति का अभ्यवसान उनके रूप पर है इसलिये के दिव्य सौम्य से आच्छादित है। इस प्रकार अवतारवादी कथाभिषिक्त में रमणीयता का विधान प्रायः अप्रत्यक्ष या रूपकालम्बु अधिष्ठ रहता है। जिसके परिणाम-रूपक अन्तर्भाव प्रस्तुत या ऐहिक सौम्य की अपेक्षा प्रतीयमान या अलौकिक सौम्य का अधिष्ठ महत्त्व रहता है।

अभ्यवसितरूपक व्यक्ति धीरे-धीरे देवताओं के रूपों में कुछ वैशेषिक और धार्मिक सर्वो के वैशिष्ट्य का बोध कराता है। प्रारम्भ से ही ऐसे रूपकों में एक ऐसी बौद्धिक चेतना का विकास होता है, जो उन समस्त काव्यनिक अपादानों का जो पारस्परिक अन्तर्भावों और एकसारक अतिव्यक्तियों से परिपूर्ण के उन्हें समग्र करती है। अन्वयिक विधान की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि अन्वयिक रूप की सामाजिक और भाष्य साहित्यगत प्रतीत दाते हैं, उन्हें प्रायः समस्त रीति, प्रथा या विश्वास के सर्वो में दाता जा सकता है, साथ ही उन्हें अन्वयिकरक वादिकता सकारणित कर विज्ञान का दुरुह भी बनाया जा सकता है। रूप वैशिष्ट्य का इशान प्रायः हम समस्त पुराणियों (Mythopoetic works) में करत हैं। केमिथ वक के अनुसार प्रारम्भिक काव्य प्रक्रियाओं में अन्वयिक विधानों का ऐसा अनिवार्यकरण कर पनी है कि वे समग्र पाकर साधारणीकृत दर्शन (generalised philosophy) के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रायः समस्त धार्मिक एवं साहित्यिक काव्यों में अन्वयिक का दर्शन का और दर्शन को

अम्बोक्ति का रूप मिलता रहा है। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से भोत-भोत काव्य-उपास्यवादी अम्बोक्ति पद्धति के द्वारा एक साथ ईश्वरवादी दर्शन साम्प्रदायिक धर्म और कल्याणमिच्छक ममी का निर्बाह कर लेते हैं। सम्भवता इस सौखी द्वारा सब को सुरक्षित रखने की तथा विस्तृत को पुनः स्मृत करने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। प्राचीन सांस्कृतिक काव्यों का कव्य-उपास्यो-पुरावा पद्धता जाता है प्रायः अनेक कार्य-व्यापारों में स्वच्छ की गई अमिन्तप की अनुभूति पात्र नेता में प्रकटित होती जानेवाली चेतना की वृद्धि करती है।^१

अम्बवसित रूपकोक्ति की एक मुख्य विशेषता है तादात्म्यकरण या तादात्म्य। अक्सर अवतारवादी पुण्यकाव्यों में कवि की भावनाओं के अनुरूप चिन्तन ईश्वर से मुख्य पात्र का तादात्म्य किया जाता रहा है। मनुष्य की विभिन्न मानवीय विशेषताओं से पुण्य या मानवीकृत देवता मनुष्य और देव का अम्बोक्तिपरक चिन्तन निर्माण करते हैं। जिन प्रवचनकार्यों में सामूहिक अवतार की परम्परा अमिच्छक हुयी है, उनमें मानवीकृत देवताओं का गौण पात्रों के साथ विशिष्ट प्रयोगों में एक अम्बोक्तिपरक तादात्म्य स्थापन दृष्टि-गोचर होता है। यदि ब्रह्मा विष्णु मुख्य नायकों (राम-कृष्ण) के रूप में अवतारित होते हैं तो इन्द्र सूर्य वायु, कामदेव आदि वैदिक देवता सहायक पात्रों के रूप में आविर्भूत हुआ करते हैं। इस प्रकार अम्बवसित रूपकों में प्रचलित तादात्म्य की क्रिया अवतारवादी प्रक्रिया का आवश्यक अंग प्रतीत होती है। तत्कालीन युग में स्त्री और पुण्य पात्रों के चारित्रिक व्यक्तित्व और उनके पुरुषार्थों को अधिक उदात्त बनाने में इस रूपकात्मक तादात्म्य से बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं हीन पद्धता। इस प्रकार अम्बोक्ति-विधान के द्वारा समस्त अवतारवादी कृतियों की रमणीयता भी मानवीय सौम्य से परे हाथ दिखे बर्ष परम सौम्य का ज्ञापक बन जाती है। रमणीय चिन्तोद्गाहना और उमक प्रतिफल स्वरूप कृति का प्रभाव प्राहक पर पड़ता है क्योंकि रमणीय सौम्य विधान का ऐत्र कर्ता और कृति के साथ प्राहक को भी समाविष्ट कर लेता है।

प्राहक

भारतीय साहित्य में प्राहक प्रेक्षक सामाजिक महत्त्व पारंगी आदि कई एक शब्द साहित्य-रसिकों या ममजों के लिए प्रचलित रहे हैं। अवतारवादी साहित्य के प्राहक भी सामान्य और विशिष्ट दो कालिक प्रजात होते हैं। समस्त अवतारवादी साहित्य भारतीय जनममूह का आस्वाद्य रहा है। भारत

की धर्मवान् जगता धर्म अथ काम, मोक्ष सभी पुष्टियों की प्राप्ति के लिए कष्टक इतका आस्वादन ही नहीं करती अपितु अपने कष्टपोषकत्व का साध्य मानकर साधना करती रही है। अक्षतारवादी कृतिपों के स्वाध्याय रामलीला के आस्वादन तथा विभिन्न अक्षतार मूर्तियों की शक्तियों में आधिर्भूत यज्ञ की लीलाओं का ध्याय करते हैं।

वैदिक काल से ही भारतीय देवों की पूजा और उनका साहित्य के अध्ययन कुछ विविष्ट (आधुनिक) लोगों तक ही सीमित रहे हैं। आगेतर लोग इतके आस्वादन से प्रायः बहिष्ठ रहे आते थे। परन्तु आगे चलकर सद्य अनेक आक्रमणकारी कृतिपों भारतीय क्षेत्र में बसकर स्थानीय जगत्समाज का एक अविष्ट अंग बन गयीं जहाँ विलोपित प्रसन्न उदा कि वैदिक साहित्य पृथक् कथा को बहुजलम्याप्य कैम बनाया जाय। सम्भवतः इसी कारण से प्रेरित होकर तत्कालीन लक्ष्यों में एक ऐसा युग सापेक्ष नाट्यकला की सृष्टि की जो ग्राम्य अक्षरों में प्रकृत काम जोम ईर्ष्या श्रेष्ठ आदि से अविष्ट लोगों के लिए वा ईव ज्ञानव गन्धर्व यज्ञ राक्षस महानाग आदि द्वारा आक्रान्त और लोकापकों द्वारा प्रतिष्ठित लोगों के लिए 'कीर्तनीयक' द्वारा सभी का आस्वादन बन सक।^१ वही वही व युग में लिपि लिखी हुई कृषी औपधि के समान कला में आविष्ट नैतिक सत्य का भी प्राहक के लिए उपदेय बनाया जाहते थे। इन दृष्टि से साहित्य पृथक् कला की अन्य विधाओं की अपेक्षा रूपक बहु 'सार्वजनिक कलाओं में रहा है, जो 'अन्ध-दृश्य शिक्षा (Ando Visual Education) का सबक मान्यम कहा जा सकता है। अतएव प्राहक की दृष्टि से भी नाट्य-कला बहु सर्वप्रथम कला है, जो सबजनप्राहिणी मर्म पर सीधे प्रहार करने वाली है। अनेके नाट्यकला में सभी कलाए इस प्रकार आत्मसात् हो जाती है कि 'नाट्य-कला' की तरह सभी का समन्वित प्रभाव प्राहक में एक आत्मन्त दृष्टिशाही प्रभावपुत्र की सृष्टि करता है। नाटक के रंगमण विद्यालय में वास्तुकला पात्र-विधाओं में मूर्तिकला अभिनय में चित्रकला गायन में संगीत और वाद्यकला, कथानक और शार्ता में दृष्ट काल-परिचिति विज्ञान स्वगत कथन इत्यादि में उपस्थान कहाती प्रबन्ध, मुख्य आदि सभी समाहित हो जात हैं। अक्षयिता, जनप्राप्तता की दृष्टि से दृश्य-अप्य समन्वित दृष्टियों से युक्त रूपक समस्त साहित्य पृथक् कलाओं में दृष्टिशाही माना जा सकता है। अतः मुनि न इसे 'सद्य साध्य मन्त्र और 'अविष्टान प्रवर्तक' पंचम क्षेत्र कहा है।^१ इसमें मन्त्रही नहीं कि नाटक प्राहक में

विम्ब निर्माण, विम्बबोध और विम्ब भावन की महत्त्व समता उल्लेख करते हैं।

प्राचीन वाक्यांश में विम्बें सङ्कल्प कहा गया है वे काव्य एवं कला के वास्तविक पारशी भावे जाते रहे हैं। उन सङ्कल्पों की विशेषता बतलाते हुए बताया गया है कि वे 'वर्णन के समान स्वच्छ इक्षुवत्वात् (निर्मल इक्षु मुकुटे) और तन्मय हो सकने की योग्यता से परिपूर्ण होते हैं।' विचारपूर्वक विस्लेषण करने पर सङ्कल्पों की यह योग्यता बन्तुता: रमणोप 'विम्ब-भावन की योग्यता की धोर इंगित करती है। भरत मुनि ने सामाजिक या प्रेक्षक से जुड़ाव विरम्य मुद्रिभाव, प्रणम (नमिनन चलठ समय सभा में न प्रवृत्त बाका), विलसत आदि गुणों का हाना आवश्यक माना है।^१ सङ्कल्प के ये गुण भी उसी विम्ब-प्राद्विधी समता का चोतन करते हैं। प्राहक या सङ्कल्प में विम्ब-भावन की प्रक्रिया मनोरंजन आस्वादन (मनोभावन) और सुजन तीव्र मानस क्रियाओं को सक्रिय बनाती है। प्रायः सभी प्राहकों में आस्वादन और सुजन की समता नहीं होती। प्रायः अधिर्दास प्राहकों के लिए साहित्य एवं कला की अनुमृति केवल मनोरंजन तक परिसीमित ही रह पवती है। वे भक्त्या या सुरा कइ कर तुष्ट हो जाते हैं। किन्तु कुछ विशिष्ट सम्प्रदायः भरत मुनि की विशेषताओं के सम्मर्गत भान बाक सङ्कल्पों में मनोरंजन से अधिक आस्वादन तीव्र रहता है। बहिक यह आस्वादन ही उनके साहित्य एवं कला के पुच्छिसंगत मूल्य-बोध की धोर प्रवृत्त करता है। ऐसे सङ्कल्पों को हम समीचक अथवा कलापारंगी कहते हैं। तीसरी कोटि में वे सङ्कल्प आते हैं जिनमें आस्वादन और मूल्य-बोध से अधिक इगुत्पत्ति या पुनः प्रजन (Creative reproduction) की समता अधिक रहती है। ये वे कलाकार सङ्कल्प हैं जो कलास्वादन से उद्दीठ होकर पुनः कला की सृष्टि करते हैं। यहा सङ्कल्प में कलाकृति के प्रति आ प्रतिक्रियाएं ही रह पवती हैं उन्हें कल्पित रूपों में विमल किया जा सकता है। इय सृष्टि से सामाजिक पुरनातिक लौकिक प्रत्यक्ष अनुमानादि के संस्कारों से सहकृत रहना है। कलाकृति का आस्वादन उसके प्राथम ज्ञान को प्ररित करता है और इसमें नवीन कलात्मक पिण्डों के स्फुरण की भी अपूर्व समता होती है। नमिनन गुप्त ने यों ता समानुमृति के आशय सामाजिक का 'सङ्कल्प-संस्कार-मन्थन' इक्षुवत्वात् तन्मयी भवन महकृति की सहा प्रदान की है।^२ तथा सामाजिक

द्वारा वस्तु-बोध में 'स्वाति पचक' गम की चर्चा की है।' जिसका सम्बन्ध सुषुप्त सहज्य या सामाजिक क तादिक बोध से अधिक प्रतीत होता है।

सामाजिक और अवधार मक दोनों में एक विशेष समानता यह लक्षित होती है कि सामाजिक जिस प्रकार 'बह' में पात्र मूर्ति का ध्यान करता है, उसी प्रकार मक भी अपनी उपाम्य-मूर्ति में मगधाय का ध्यान करता है। उपर समस्त आचरणों एवं स्तीकाओं का भाषम यह 'नट इव करत चरित विधि नामा' समझ कर करता है। इस प्रकार मक यह सहज्य व्यक्ति है जो परमसागम के वैश्विक आस्थादन क छिप कलात्मक अनुमूर्ति का आशय ग्रहण करता है। सहज्य की दृष्टि से यस्तु अपने आप में सुषुप्त या हुलस्य नहीं है, अपितु सहज्य व्यक्ति का अनुभव सुषुप्त या हुलस्य होता है। मक द्वारा उपर समस्त मता आनन्दमय है। यदि आनन्दमय नहीं है तो कैसे वसम साधारणीभूत आशय क छिप आनन्द को व्यक्त किया है? काव्य पृथ नाटक क साथ संगीत की अनुमूर्ति विधातीत आनन्दानुमूर्ति है। अतः सहज्य यही है जो काव्य एवं कलाधुमूर्ति के माध्यम से विधातीत लोक में पहुँच जाता है। अभिनय गुप्त क मतानुसार जो अपने वैदिक सम्प्रदायों को द्रोढ़कर विधातीत लोक में नहीं पहुँचना वह सहज्य नहीं अहज्य है।'

२ अति या ५. १. १।

भारतीय दर्शन में स्वाति पचक निम्न कर्मों में प्रकटित रहे है —

१ आकषाति—इह आत्मा पी विधान रूप है। बह-पर आति धान रूप है।

२ अस्त्य रवापि—सत्य ही सारी नामा प्रतीतिओं में माहित होता है।

३ आस्मापि बह—सारे काम स्वार्थ धान ही है। कोई भी धान जम रूप नहीं होता। जैसे शक्ति-रज्जु धान में शक्ति का धाम वैश्विक त्रापस्य-वीर्य और वसुके अर्थ-बोध दोनों के सम्मिश्रण से उत्पन्न होता है। वैसे जम नहीं माना जा सकता। रज्जु—बह शक्ति के रज्जु सृष्टि चक्र भिन्न्य के द्वारा संस्कारों द्वारा उत्पन्न होने के कारण स्मरणात्मक है। अतः बह जम नहीं अतिष्ठ स्वार्थ है।

४ अम्बवा पनर्गतदार—अपस्तम्ब में शक्ति को रज्जु 'रज्जु' की प्रतीति होती है। रज्जु की प्रतीति वाक्य में रहके देखे दुपै पूर इह धान से रज्जु को आरीपित प्रतीति होती है।

५ अतिर्वचन्येय स्वातिनाह—शक्ति-रज्जु एक ही तात्पर्यिक 'रज्जु' की अवधि होती है। उक्तों विरति करने ही काक तक रहती है। बिना काक मक कि वसुधे प्रतीति होती रहती है। इसी कारण शक्ति रज्जु में प्रतीति होने वाले रज्जु को 'प्रतिमर्त्यक' कहा जाता है। इसे इति-व्यतिहार भी कहा जाता है।

२ इन वसु ५. ५४१।

मध्यकालीन अवतारवादी भक्त कवच भावुक और कवि सङ्घर्ष ही नहीं रहा है अपितु अपने इष्ट वैशेषात्म्य की स्थापना के माध्यम से विधातीत नित्य उपास्य लोक में पहुँचनेवाला जीवनमुक्त सङ्घर्ष रहा है।

आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से प्राहक को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दो मार्गों में विभक्त किया जा सकता है। सामान्य आत्मनग्न यन्त्र के होते हुए भी दोनों की समीचीन अभिव्यक्ति सिद्ध होती है। बहिर्मुखी व्यक्ति अधिक सामाजिक होने के कारण निर्दोषिक अवस्था में भी साधारणजीवित सबकों का भावन करता हुआ रसोद्दीपन या भावोन्मेष को प्रदर्शित करनेवाली विविध प्रकार की मुद्राओं या भंगिमाओं का अधिक प्रयोग करता है। उमकी प्रादुर्भाव सङ्घ प्रादुर्भाव होने के साथ-साथ सङ्घ विस्फुल्ल भी होने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त बहिर्मुखी व्यक्ति में समीचीन आत्मनग्न विभक्त के उद्घाटीकरण की सम्भावना भी पद्यव्यक्ति के माध्यम में ही रहा करती है। वह आदरात् अधिक वास्तविकता की ओर अधिक उन्मुख वीर्य प्रकृत है तथा सौन्दर्यकला की अपेक्षा कलात्मक व्यावहारिकता उसे अपेक्षाकृत अधिक आकृष्ट कर पाती है।

परन्तु अन्तर्मुखी व्यक्ति में भावोन्मेष की मार्मिकता अधिक आत्मकेन्द्रित होती है। समीचीन विभक्त का भेदन या प्रहार उसके मर्म पर अधिक होता है। यों यह दार्ढ्यता किमी इन्द्रिय विभक्त की सबदमात्मक प्रक्रिया नहीं है; अपितु पृथग्भाव सङ्घर्ष संवेगों के उच्छेदनात्मक प्रहार को सहने का एक सक्रिय कार्य-व्यापार है। अन्तर्मुखी व्यक्ति का समीचीन आत्मनग्न कवच उसके भावन की सीमा तक ही सीमित नहीं रहता अपितु वह अपनी समस्त साधनिक एवं भावनात्मक विज्ञान और सर्वांग व्यक्तता के एक पर (पिछ में प्रदुर्भाव स्थान की तरह) उस आत्मनग्न के माध्यम से एक ऐसे आत्मनग्न की परिकल्पना करता है जिस हम उसकी मौलिक एवं भावनात्मक कृति कह सकते हैं। वह अपनी अलौकिक कृति की विभुता और जीवात्म्य पर स्वयं अपने को व्योढावर किया करता है। अवतारवादी धारणा में यही आत्मनग्न विभक्त 'भक्त विद्यात्म रूप' उसके उपास्य ईश्वर का होता है। अतः भक्त भी एक वह प्रयुक्त सङ्घर्ष है, जो अपनी उपास्य कृति का कवच लक्षा सङ्घर्ष की तरह सर्वांगना हाकर सौन्दर्य-रस प्राप्त किया करता है।

मनाबैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने वाले आधुनिक विद्वानों ने प्राहक के मन में होनेवाले विभक्त-प्रदुर्भाव और पुनः नव विभक्त निर्माण की चर्चा की है। इनके मतानुसार प्राहक के मन में घुड़ींग होने वाले नित्य रक्तमावरण के

अड-अरपों की तरह पक्ष्मते रहते हैं, फलतः इन्हें भी स्वयं तत्र का एक स्वरूप माना जा सकता है। सभी विग्रहों में कभी विकृति कभी प्रक्षयण, कभीकरण, स्थानान्तरण आदि होते हैं जिसका फलस्वरूप विग्रह प्रतीक कभी विसर्जित हो जाते हैं चैत्रते हैं और कभी विकर जाते हैं। इस तरह पुनः विग्रह चरित्र के पूर्ण प्रादुर्भाव के मग में व निरन्तर परिवर्तित अवस्थाओं में रहा करता है। यह स्पष्ट है कि काव्य में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक (चरित्र रूपक या प्रयुक्त बस्तु) भाव और प्रभाव के गुरुत्व पुनः या समूहों की अभिव्यक्ति के एक मात्र साधन हैं। वे अपूर्व हैं और अपनी अक्षय्य एवं स्थायी रमणीयता के लक्षण पर अपना अस्तित्व रखते हैं। यद्यपि निश्चिन्त रूप से वे किसी दूसरे घातक पर अस्त्रित रहने वाले इनर समय की ओर इंगित करते हैं। फिर भी प्रतीकों की पद्धति इतनी गुरुत्व है कि इन्हें समझना कठिन सा होता जाता है। अतः हम प्रतीक का आखिरी अर्थ में समझने के लिए इन प्रकार काव्य हो जाते हैं कि प्रतीक स्वयंसेव विन्तन का एक मात्र लक्षण रह जाता है। अक्षय्यतावादी मन्त्र के लिए उपास्य प्रतीक रूप एवं साम्प्रदायिक होता हुआ बुझा भी समस्त ईश्वरीय विमुक्ता का अभिव्यक्ति रूप है। यह प्रतीक इत्येव को अपने अस्तित्वात् ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि मानता है। रसिकता के मतानुसार मानव सक्रियता का प्रत्यक्ष रूप उसकी विशेष योग्यता के साथ मग व किसी विन्तन भाग में स्वरूप नहीं होता है, अपितु यह व्यक्तिक समस्त स्वभाव से सम्बन्ध है। इसी से न तो कदा मग के किसी विशेष अंग (रमणीय घटना) की देन है और न नैतिकता किसी विशेष कर्मना की उपज। अतः 'कला' की मनुष्य के समस्त स्वभाव की अभिव्यक्ति है जिस आंगिक आरम्भ या विशेष रमणीय प्रादुर्भाव के द्वारा युक्तिमग्न नहीं सिद्ध किया जा सकता। अक्षय्यतावादी मन्त्र भी अपने उपास्य ईश्वर-प्रतीक का केवल आस्थापूर्वक नहीं करता अपितु यह सर्वत्रिभुव भाव से, उसके एक-एक अक्षय्य के लिए तत्पने वाला जानक है, इंगित मात्र पर बाधने वाला मयूर है। और अपनी आभासक्ति की उच्चकला प्रमाणित करने वाला दस है।

रमणीय आदर्शवाद

श्लोक के अनुसार यथाय और आदर्श की तीन शक्तियों का, तिस और सुन्दर इन तीन प्रत्ययों से उच्चतर स्थितियों में समाधान प्रतीत होती हैं। सीधे न तो कदा आंगिक सत्य है व केवल यथाय, अपितु दोनों की पूर्ण-

अभिरूपयमा है। सौम्यता का अस्तित्व तब हाता है जब सत्य धारणा की दृष्टि से इतना पर्याप्त हो कि बाद का शिव, असीम से ससीम में प्रविष्ट होकर मूल रूप में स्वता। हमारी चिन्तना में उपस्थित हो जाय। धारणा के प्रकट होते ही सत्य मध्यम प्रत्यय के सार्व और समकक्ष हो जाता है जिसमें समष्टि और व्यष्टि अपना चरम तात्पर्य स्थापित कर लेते हैं।^१ बौद्धिक रूप अपनी बौद्धिकता को सुरक्षित रखते हुए, एक ही समय में प्रत्यक्ष और ऐतिहासिक हो जाता है।

भारतीय साहित्य में जिसे पूर्वाचार कहा गया है वह सौम्यता-भाव की भाषा में हमजोय आदर्शवाद के अनुरूप है। मनुष्य अपनी इच्छाओं के माध्यम से जिस सौम्यता का साक्षात्कार करता है, वह सौम्यता ऐतिहासिक सीमाओं में सीमित और अपूर्ण है। परन्तु भाव विचार या प्रत्यय के माध्यम से जिस सौम्यता का दर्शन करता है उसे हम पूरा या आदर्श सौम्यता कह सकते हैं। आदर्श और पूर्ण से मेरा तात्पर्य है कि आदर्श ही पूर्ण होता है और पूर्ण आदर्श। दोनों में अविद्याभाव सम्बन्ध है।

कांट ने प्रत्ययगत सौम्यता पर पुष्कळ मात्रा में विचार प्रस्तुत किया है। उसकी दृष्टि में अत्यधिक विचार और सब से कम उन्मुक्त सौम्यता ही है जो आदर्श होने की योग्यता रखता है। आदर्श सौम्यता न तो निष्पक्षद्वि के वस्तु विषय सौम्यता में है न उन्मुक्त मध्यवर्ती सौम्यता में। आदर्श का निर्धारण आत्मजन वस्तु के साक्षरूप्य द्वारा ही सम्भव है। परिकल्पना द्वारा स्वरूपित वस्तुगत साक्षरूप्य सौम्यता से बाहर की चीज है। क्योंकि किष्टिद आस्वात् के मुख्य पर प्रस्ता मूल्यवर्तन नहीं किया जा सकता; अपितु कथक एक ही मार्ग से हो सकता है जो अंततः बुद्धिप्राप्त है। इसी क्रम में वह आदर्श की परिभाषा देते हुए कहता है कि आदर्श या प्रत्ययगत सौम्यता का तात्पर्य उस विशेष सत्ता की वक्ष्यता या उपस्थापन से है जो तार्किक भावों के द्विप पर्याप्त हो।^२ इस प्रकार आदर्श के दो तत्व हो जाते हैं—पदका तो वह अज्ञात प्रकार का या स्वयं प्रकाश ज्ञान की प्रकृति की तरह का जो सभी मानव जातियों और प्राणियों में है। ऐसे प्रकार स्वयं जादित कल्पना की क्रिया के द्वारा उपस्थित होत है जो प्रायः सहस्रों व्यक्तियों के हृदय जाने के बाद आकृतियों के भीत रूप में मन में आ जात है। यह क्रिया प्रकाश चिन्तों के परस्पर प्रतिबिम्बन की तुलना में उदाहृत की जा सकती है। जो श्री वास्तव के वापारनीहृत्त फोटो चित्रों की पद्धति की ओर संकेत करती है। कांट के

मनुष्यप्रकार प्रत्येक पद्यों की मूल और प्रत्येक मानव जाति इस प्रकार के 'जीवन विद्य', और रूप का निर्माण करन की क्षमता रखती है, जो उस वय के सामान्य भौसन विचारों का समूर्तिन रूप तो है। साथ ही वह समस्त ज्ञानि की सौन्दर्य-चेतना को आधार सिद्ध भी है।^१ यद्यपि इस 'जीवन प्रकार' के निर्माण में मध्यम वर्गीय अस्तित्व का योग होने के कारण, इस आदर्श सौन्दर्य की पृष्ठभूमि मात्र का निर्माण ही कहा जा सकता है।

इसीसे आदर्श सौन्दर्य सीमित जगों में इससे परे माना गया जो अक्सर मानव जाति विशेष में ही प्रायः एक लोकविषय रहा है। कोर्ट ने इस आनीय सौन्दर्य को अंतक और मनुष्य-रूप के द्वारा व्यक्त माना है। क्योंकि यह आनीय आदर्श सौन्दर्य 'मनुष्य रूप में सस्तीर आविर्भाव के द्वारा नैतिक आचरणों एवं व्यवहारों की अभिव्यक्ति या रहस्योद्घाटक में निहित है।'^२ भारतीय अवनारवादी सौन्दर्य कथक ब्रह्म को दिव्य शक्ति को ही नहीं समूर्तिन करना अपितु भारतीय चेतना के विकास में विभिन्न युगों में विभिन्न जातियों द्वारा निर्मित सांस्कृतिक सौन्दर्य का भी प्रतिनिधित्व करता है। परशुराम राम कृष्ण बुद्ध इत्यादि व्यक्ति से अधिक जातीय वर्गीय या राष्ट्रीय आदर्श सौन्दर्य के प्रतीक हैं। इनके सौन्दर्य को सांस्कृतिक बरातल पर उपस्थापित करन वाली अवनारवादी प्रक्रिया इससे सौन्दर्य वैशिष्ट्य का सर्वदा सामाजिक एक लोक-व्यवहार के आधार पर प्रस्तुत करने की चेष्टा करती रही है। इसीसे इनके प्रत्येक व्यवहार शील शक्ति, जाति में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की शक्तक मिच्छती है। बुद्ध की प्राबला कृष्ण की योगवादिता और राम की मर्वादासीकता ये सभी जातीय या सांस्कृतिक आदर्श के ही सौन्दर्य प्रतीक हैं। इस व्यवहार के बिना साम्यवस्तु सार्वभौमिक और सार्वभौम आदर्श नहीं हो सकती, जैसा कि प्रायः परम्परागत ऋषिबद्ध आदर्श का रस के 'विद्युत्' में माना जाता है। सामाजिक प्रयोग में किस आदर्श सौन्दर्य को विद्युत् सौन्दर्य कहा जाता है, वह वस्तुतः परम्परागत राष्ट्रीय या जातीय सौन्दर्य का प्रतीक एक सौन्दर्य ही है। अतः सौन्दर्यवैशिष्ट्य के क्षेत्र में आदर्श सौन्दर्य एक बहुत बड़ी शक्ति का भी सातक कराना है। जो कथकार के लिए आदर्श सौन्दर्य एक बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि प्रायः आदर्श सौन्दर्य के निर्माण के लिए उसे विद्युत् सर्वसगत भावों और आदर्श उच्च व्यवहार की आवश्यकता पड़ती है। प्राचीन काल से लेकर अब तक

^१ दि. एच. ए. १९११।

^२ एच. ए. १९११ It consists in the revelation of the Moral, import through bodily Manifestation in the human form.

प्रायः त्रिस्र प्रकार के मानक का विधारण हुआ अन्ततोगत्वा जसने स्पष्ट ही मनुष्य की धारणा-मूर्ति को आत्मसात् किया है। इससे स्पष्ट है कि हम कोटि के मानक द्वारा मूल्यांकन कभी भी विशुद्धता सौम्यपरक नहीं माना जा सकता क्योंकि सौम्य के भावसानुसार सौम्य का मूल्य कबक कबि के मूल्यांकन में निहित नहीं है। ऐसे आदर्श की तुल्य पर निर्भर सौम्य निर्भर सौम्य से मुक्त नहीं है। यह सौम्य उस वस्तुनिष्ठता पर आधारित है, जिसका विविध सम्बन्ध नैतिक मूल्यों से रहा है। इसकी अपेक्षा गहन रहस्यानुमति से सबकित धार्मिक कृति का व्यक्त सौम्य अधिक उन्मुख और स्वतंत्र है।

आदर्श सौम्य के विचारकों की दृष्टि में सौम्य सत्य ही नहीं अपितु आदर्श की अभिव्यक्ति है। वह दिव्य पूर्णता का प्रतीक और शिव (good) का सर्वव्यापक व्यक्त रूप है।^१ किन्तु आधुनिक सौम्य-वादी ऐसे विचारों में परम्परागत आदर्श की ही शुरुक पाठ हैं। फिर भी सौम्य विज्ञान की अनुनातन विचारधारा के होते हुए भी परम्परागत विचार धारा में विसंग्रह कर आदर्श की दृष्टि से एक ऐसा सर्बकाठिक मत्प निहित है जिसकी निताम्त अपेक्षा समीचीन नहीं जान पड़ती। उनमें भी कुछ ऐसा पुण-सख क्षिपा रहता है, जिसे नया पुण भी नए परिवेश में व्यक्त कर सकता है। इस दृष्टि से नवज्योतीवादी 'बिक्लिमेन' के दृष्टिकोण को लं सकते हैं। उसके मतानुसार आदर्श के घरातक पर परम सौम्य निहित है। किसी भी उच्चतम वस्तु से सौम्य की तुल्य नहीं हो सकती। जागतिक ज्ञान का स्पष्ट ज्ञान प्रत्यक्षता असम्भव है और इस कठिनाई में यही प्रथमिज्ञान समीचीन जान पड़ता है कि 'परम सौम्य ईश्वर में निहित है। मानव सौम्य की कल्पना भी अपनी परम सीमा पर तब पहुँच जाती है जब उसे परम सत्ता के परिवेश में देना जाता है जो वस्तुगत सौम्य से अपनी एकता और अविनाश्यता के चकते स्वता पूरक हो जाती है। भाग चककर कौट न सम्भवता इस कोटि की विचारणा को दूसरे ढंग में व्यक्त किया है। उसके मतानुसार सख तार्किक और रमणीय का प्रकार का है।^२ क्योंकि रमणीय सख सर्वथा तार्किक धार्य नहीं हो सकता। मूय का समुद्र में डूबना रमणीय सौम्यपरक सत्य है किन्तु तार्किक दृष्टि से

१ हेम. बी ५ १४ Beauty is Truth, that it is the expression of Ideal, the symbol of Divine perfection, and the sensible Manifestation of the good.

२. पृथे ५ २७१।

मिथ्या है। उसी प्रकार प्रकृति का आविर्भाव या प्राकृत्य भी रमणीय या सौम्य परक साथ है।

अवतार-सौम्य ससीम में असीम का दर्शन है

परम सौम्य परि परम सत्ता की अतिप्रति है, तो अवतार उस अवस्था, अवस्था और असीम का ससीम रूप है। डा० राम गुप्त ने भाइरिया का स्वीकरण करते हुए बताया है कि 'किमी भी वस्तु का वस्तुत्व उमकी याद दिसा है, उसका एकत्र उमकी अस्तित्वा। वस्तुत्व का एकत्र क माध्यम से प्रकाश ही 'भाइरिया' कहलाना है। किमी वस्तु का अवयव-अवयवी के रूप में प्रकाश ही उसका स्वरूप का भाइरिया कहलाना है। अवयव-अवयव उमकी अस्तित्वा है अवयवी उसको अस्तित्वा। अवयव-अवयवी क बीच से होने वाला उसका प्रकाश ही उमका स्वरूप है। उमक वस्तुत्व का उमक एकत्र क माध्यम से होनेवाला प्रकाश ही उमका 'भाइरिया' है।' जिसका ही डा० राम गुप्त ने 'वस्तुत्व' और 'एकत्र' क द्वारा असीम की ससीम अतिप्रति को ही अतिप्रति किया है।

यों किसी लक्षणा क द्वारा मध्य का आनन्द लेते समय विचारणा क माय भावना एक ही नहीं रहती। विचार करत समय भावना का बहिष्कार और भावना करते समय विचारणा का बहिष्कार दो प्रकार की अवयवियों की ओर प्रवृत्त करती है। वस्तुतः विरसेवक या तार्किक हमये बहुर और कोइ प्रमाण नहीं है मकते कि मनुष्य मानवता में यह विद्वान् तक अनुभूत होने योग्य है या उमकी अपेक्षा यह कि ऐसा होम क तिव् यही उमकी पूर्व निरपेक्ष विधि है। किन्तु जैसा कि सौम्य या रमणीय पृथक्ता क आस्वाद्यक में वस्तु का रूप क माय और प्राकृत्य का अतिप्रति क साथ यथार्थ संगम और अन्तरमन्त्र होता है; यही तथ्य ही प्रकृतियों की अनुकूलता या अपकूलता तथा ससीम में असीम की अनुभूति और इस प्रकार अवयव उदात्त मानवता की मनुष्यता को प्रवृत्त करता है। अतः आवयव सौम्य की विशेषता है असीम और अवयव का ससीम में दर्शन। सौम्य-भावना द्वारा अतिप्रति भी विषय गृहीत होते हैं, वह (भावना) अपने आच्छेदीय क द्वारा कमी उमका अत्यन्तमक विस्तारण करती है (राम ही अस्तित्वा) जिसका परिणाम स्वरूप ससीम भी असीम अतिप्रति होने लगता है। कमी सौम्य-भावना आच्छेदीय का अतिप्रतिप्रति कर अत्यन्तमक आच्छेदीय क द्वारा असीम का ही आच्छेदीय कर ससीम में पैदा पैनी है (अस्तित्वा राम ही है) उस समय सौम्य-भावना

क कहते वस्तु क वास्तविक वस्तुत्व का भावना क वस्तुत्व में परिवर्तन हो जा जाता है। कर्ट की दृष्टि में अनुभवगतमक आत्म-चेतना सर्वातीत आत्म-चेतना द्वारा स्वयं अनुकूलित होती है जब कि आत्म-चेतना और वस्तु-चेतना एक दूसरे को अनुकूलित करते हैं। इसका कारण यह है कि आत्म-बोध की एकता सर्वातिशाय है। सर्वातीत आत्मा का अपना कोई उपादान नहीं है जिसक द्वारा वह स्वयं को जान सक। इसमें कबक एक ही पहचान है 'मैं' में हैं। यह कबक यह रूप है जिसक द्वारा व उपादान जो कभी भी आत्मा क लक्ष्य नहीं रहे हैं, तो भी आत्मा के विषय-रूप में प्रतीत होते हैं।' कुछ चिंतकों के अनुसार प्रत्येक समीचीन उत्पत्ति जो डिपार्शों क अनिर्धार्यता अनन्त पार्षक्य से आरम्भ होती है। इनमें स्वतंत्र चेतना और प्राकृतिक अचलन का कर्ट द्वारा भी उल्लेख हुआ है। ये समस्त उत्पत्तियों में पृथक् की जाती रही हैं। किन्तु कैंकि ये दोनों क्रियायें संयुक्त प्रतीत होने वाली उत्पत्ति में उपस्थापित की जाने वाली हैं, जो (उत्पत्ति) असीम को ससीम रूप में प्रस्तुत करती है। इस आधार पर शेट्टिया ससीम रूप में एक असीम को ही सौन्दर्य मानता है।' परमसत्ता वादियों की दृष्टि में 'परमसत्ता चेतना क रूप में अस्तित्व नहीं रखती, कबक मानव जाति प्रत्यय और भाव प्रतिमाय ही के विसिष्ट रूप हैं जिनमें समीचीन प्रत्यय-बोध क स्तर पर इसका प्राकृत्य होता है।'

सौन्दर्य-वादियों न प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन का अन्तर बतकाते हुए यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन क सम्बन्ध में एक साथ तो निर्विवाद है कि वह प्राचीन क पूर्व का तथा था। इसीसे उसकी तुलना में अनुगतन कभी महत्त्व नहीं रहा क्योंकि ऐतिहासिक युगोन्मेष क वपेदे इसको सबसे अधिक ग्राम पड़। आधुनिक विचारणा में विकल्प और विरोध भरे पड़े हैं। समस्त प्राचीन पुराण अनादि साथ को बहुदेववादी वा एकेश्वरवादी उपास्य क ससीम रूपों में व्यक्त करते रहे हैं। जो किसी भी अनन्त असीम वा व्यापक तथा अमृत और आदर्श सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ससीम वा पृथिव्य

१ कम्प पृ ३२२-३२३।

२ दि ३२२, पृ ३। 'Now the Infinite represented in finite form is beauty

३ पृ ३२२ The Absolute does not exist in the form of consciousness, except in the human race and that the ideas or archetypes are the Particular forms in which it is revealed to Aesthetic perception.

रूप के द्वारा ही सम्भव है। पारम्परगत सौन्दर्य भी किसी न किसी धारणा विग्रह या आकृष्टम विग्रह के ही माध्यम से साकार हो सकता है। इस दृष्टि से प्राचीन और सर्वोत्तम में कोई वारिष्क अन्तर नहीं प्रतीत होता। क्योंकि प्राचीन साहित्य में जिन दिव्य विभु और अनादि सत्त्वियों का प्रतीकीकरण ऐन्द्रिक रूपों में हाता रहा था, उनका परिचोतक असीम या आदर्श भी ससीम या ऐन्द्रिक रूप में प्रतीत हुआ ही हमारी मायना और विचारणा का अपेक्षित हो सकता है। इसी से प्राचीन इतिहास दिव्य को एक धारणा रूप में विशिष्ट नहीं करता, अपितु एक ऐसे ऐतिहासिक स्वच्छिन्न (अवतारों की तरह) के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसका सम्बन्ध अतत्त्व के साथ ऐन्द्रिक न होकर आदर्श प्रतीत होता है।^१ जो अयुनातन सौन्दर्य भी ससीम को असीम प्रतीक के ही माध्यम से व्यक्त करता है, किन्तु ससीम प्रतीक मात्र के रूप में वे असीमता और समीमता दोनों से कुछ स्थान अयुक्त जैसे विदित होते हैं।

मानव-सौन्दर्य प्रत्यय या माय का अवतार

हीनक मानव-रूप के सौन्दर्य को एक मात्र प्रत्यय या माय का पर्याप्त अवतार मानता है।^२ उसके मतानुसार कला में सौन्दर्य का प्रत्यय वह प्रत्यय नहीं है, जिस प्रकार का सम्बन्ध परम प्रत्यय का ज्ञान-मीमांसा की तार्किक निष्पत्ति से रहता है। प्राप्त यह प्रत्यय सौन्दर्य की आस्तिकता से विमित मूर्त रूप में विकसित होता है और उस आस्तिकता में उसके वाक्काविक और पर्याप्त एक के साथ प्रवेश हो जाता है। जहाँ तक प्रत्यय का प्रश्न है वहाँ वह अनिर्धार्यता और अयार्थता साथ है, फिर भी यह सत्य अथ सामान्यता में निहित है, जिससे किसी कथक का आकार नहीं बदल सकता है वरिष्ठ कथा में सौन्दर्य का प्रत्यय पुनः वह प्रत्यय है, जो विशेष निर्धारित धारण के रूप में वैश्विक सत्य बन सम्म हो और साथ ही उस प्राय के वैश्विक स्वरूप में भी अनिर्धार्यता स्वरुपित होकर प्रत्यय को रहस्योद्घाटित कर सकता है।^३ इस प्रकार सौन्दर्य जैसा कि उसके तात्पर्य से स्वयं स्पष्ट है, एक प्राय है। यह स्थान रखता आदि कि यह प्रत्यय धेतना को अभिव्यक्ति नहीं करता, वरिष्ठ जीवन और धेतना दोनों उसके अभिव्यक्तिगत रूपों में से माने जाते हैं फिर भी इयं प्रत्यय का सम्बन्ध अमरवद एकता के रूप

१ हि एम् ५ ३२९।

२ हि एम् ५ ३३८ But in exalting the beauty of the human form as the sole adequate incarnation of the idea.

३ हि एम्. एपि. ५. २७४।

में मूर्त सृष्टि, प्रक्रिया से है। अपने इस तादात्म्य के द्वारा सौम्यर्प तत्काष्ठ सत्य से पृथक् किया जा सकता है, जो विचार के लिए एक प्रारम्भ है किन्तु साथ ही वह सौम्यर्प का धीरे-धीरे उससे मिश्रण उसके रूप के साथ एक सदाशरत्त्व है।^१ हेगेल के अनुसार 'प्रारम्भ' की अभिव्यक्ति केवल सौम्यर्पपरक आकार तक ही सीमित नहीं है अपितु उसकी अभिव्यक्ति ऐतिहासिक रूपों और कल्पनात्मक रूपों में भी होती रही है।^२ भारतीय विचारकों में डा० दासगुप्त ककाकारों के मन में कका-निर्मिति के पूर्व अमूर्त आदर्श का अस्तित्व मानते हैं—ककाकार जिसकी अभिव्यक्ति मूर्त रूप में करता है। जब तक उसका मन उस आदर्श के अनुरूप नहीं बन जाता, तब तक उसकी चेष्टा शान्त नहीं होती। आदर्श के अनुरूप चित्त बनते ही वह बहिर्मूर्ति के साथ अन्तर्मूर्ति की एकता स्थापित हो जाती है तभी इस प्रकृत-निधि के रूप में सौम्यर्प सृष्टि तथा सौम्यर्प की उपलब्धि का आरम्भ प्रकट होता है।^३ हेगेल ने समस्त आदर्शों को आविर्भूत सौम्यर्प के अन्तर्गत ग्रहण किया है।

हेगेल और अमिचदगुप्त दोनों मानते हैं कि कका का परम आदर्श रूप या आकार में दिव्य (Divine) को उपस्थित करना है।^४ यह कथन भक्तारवाही आदर्श के अत्यन्त निकट प्रतीत होता है। हेगेल ने तो यह विस्तृत पैमाने पर इस विचारणा का स्पष्टीकरण करते हुए बताया है कि परमात्मा भाव-अस्तित्व में ही रूपों में गूँथित होता रहा है—कका, धर्म और ब्रह्म। जिनमें कका और धर्म में उसका सम्बन्ध सीमितता से रहता है। क्योंकि कका में परम का साक्षात्कार ऐन्द्रिक माध्यम के द्वारा होता है और धर्म उसका साक्षात्कार भावों के द्वारा करता है। केवल दर्शन ही एक ऐसा विषय है जिसमें वह इन्द्रिय और भाव से परे होकर चित्त के द्वारा प्राप्त होता है। कका परम आत्मा की वह अवस्था है जिसमें वह दार्शनिक भाव में उसकी वास्तविक सीमितता के साथ साक्षात्कार की ओर अग्रसर होती है। यह मानव-अस्तित्व का वह रूप है जहाँ ज्ञान और श्रम में तादात्म्य स्थापित हो जाता है जहाँ भ्रामनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता का पारस्परिक मिट जाना है।

किन्तु सौम्यर्प वह परम सत्ता है, जो ऐन्द्रिक विषय के परम में चमकती है। वह परम सत्ता ही है जो वास्तविक वस्तु में भी उसका माध्यम से इन्द्रियों के द्वारा उपस्थित होकर जानी जाती है—विशेषकर भवन मूर्ति, चित्र, संगीत या काव्य में गूँथित किसी ऐन्द्रिक वस्तु के मानस-विश्व द्वारा

१ दि. वरचे. पृ. ११६।

२ दि. पत्र पृ. ११७।

३ सी. वल्ल. पृ. ७४।

४ कल्प. वरचे. पृ. १२५।

उसका परिहास करता है। इसमें यह निष्कर्ष निकरना जा सकता है कि वह सबदमशील वस्तु जिसके द्वारा परम प्रकाशित होता है—वह सुन्दर है। कदा ऐन्द्रिक वस्तु सुन्दर नहीं है, बल्कि वह सभी सुन्दर है, जब उसमें परम सत्ता आभासित होती है। अतएव सौन्दर्य आदर्श है क्योंकि इन्द्रिय द्वारा गृहीत वा प्रबोधित एक प्रत्यय (परम) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यही प्रत्यय विद्युत् प्रणय न होकर सचेतनात्मक चोत्र के द्वारा गृहीत प्राणय का एक विशिष्ट रूप है। जब कि कदा ऐन्द्रिक रूप में साकार परम आत्मा का सर्व्व चिन्तन और भावसिद्धि चित्र है।

अधतारत्व परम ब्रह्म की अभिव्यक्ति की एक कला है

दोस्त 'रसनीयता' को ऐन्द्रिक संवेदन वा सौन्दर्य का विज्ञान ही नहीं अपितु उसे कथित कलाओं का ज्ञान भी मानता है। उसकी विचित्रता यह है कि वह अन्व सौन्दर्यवाहियों के विपरीत प्रकृति को सौन्दर्य के अनन्य क्षेत्र से वृषद् कर देता है। उसकी दृष्टि में प्रकृति के सौन्दर्य की अपेक्षा कला का सौन्दर्य अधिक उच्चतर है। उसकी जर्षा के अन्तर्गत निर्बिकल्प (immediacy), सविकल्प (mediacy) वा अविच्छेदात्मक निर्बिकल्प (merging of mediacy in to immediacy) इन तीनों पक्षों में क्रमशः प्रत्येक पक्ष परम ब्रह्म के स्पष्ट रूप की उच्चतर अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस क्रम में प्रकृति और इत्य अणु आत्मा और उच्चक सूत्रन से निरुत्तर है। इसलिये आध्यात्मिक सौन्दर्य प्राकृतिक सौन्दर्य से उच्च है। 'चूँकि कलाका सम्बन्ध महत्तर सौन्दर्य से है, इसलिये वह प्राकृतिक सौन्दर्य को बहिष्कृत करता है।' कला का बाह्य और अरमशील पक्ष सीमा है। यों कलाकृति वस्तुतः नहीं है जो मानव आत्मा से उत्पन्न होती है और यैसी ही आत्मवत् बनती रहती है। कला अपनी विशिष्ट महत्ताके द्वारा आत्मिक सूत्रों के रूप में कबल एक छोटी सी धरणा, एक व्यक्तिगत चरित्र वा एक कार्य व्यापार की अरम सीमा में एक ऐसी शक्तिशालिनी अभिव्यक्ति का निर्माण करती है यैसी उच्चता और स्पष्टता विद्युत् प्रकृति की रचना के क्षेत्र में सम्भव नहीं। देवेस ईश्वर द्वारा विभिन्न प्रकृति और मनुष्य द्वारा विभिन्न कला जैसे कथन की आत्मरचना करना है, क्योंकि एता सोचना बहुत असंभव है कि ईश्वर कबल प्रकृति में ही कायल रहता है और मनुष्य के द्वारा कार्य नहीं करता।

इसके विपरीत सत्य तो यह है कि ईश्वर या देव कलाकृति की रचना में ही सक्रिय रहता है जो भय की अपेक्षा उसकी अभिवर्धन प्रकृति के विशुद्ध सतीत है। और स्वामाधिक प्रकृति में गृहीत है। इस प्रकार मनुष्य में कथक ईश्वर है ही नहीं बल्कि उसके रूप में भी वह सक्रिय है। प्रकृति के कार्य की अपेक्षा मानव-रूप में भी वह सक्रिय ही है तथा प्रकृति के कार्य की अपेक्षा मानव-रूप में अधिक सत्य और स्वामाधिक है। ईश्वर आत्म-स्वरूप है और वह कथक मनुष्य में ही आत्मिक रूप में स्वतः आविर्भूत होता है। वह अपनी सक्रियता से मिष्ट है जिसमें उसका प्रसूत आदर्श स्पष्ट होता है। कला आदर्श है और ईश्वर पदार्थ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप में आदर्श को प्रकट करता है। कथक का प्राकृत्य ससीम मन के माध्यम से होता है जो आत्म चेतन्य तो है ही वह प्रकृति के उपचैतन संवेदनात्मक माध्यम की अपेक्षा महत्तर मात्रा में दिव्य स्वभाव से युक्त है।

द्वैत की दृष्टि में ऐन्द्रिक पदार्थ और ससीमता से उन्मुक्त मन अतीन्द्रिय धरातल पर स्वयं अपने ही उपादानों की शक्ति से कलाकृति का निर्माण करता है। यह ककारमक प्रातिभज्ञान का धरातल है। ककारमक अनुसृष्टि का यह उपादान प्रकृति से नहीं अपितु मस्तिष्क के आन्तरिक स्रोतों से आता है।

यों कथक की सामान्य विधापता उसकी प्रतीति है किन्तु इससे कला को द्वेष नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि सत्य या वास्तविकता जब तक प्रतीत न हो जब तक सत्य नहीं है। यह प्रतीति का माध्यम है जहाँ कला अपनी रचना को निहित अस्तित्व प्रदान करती है। अतएव अनुभवनात्मक विश्व के रूपों की अपेक्षा, कला के रूपों में सत्य की ओर अतिरिक्त होती है। क्योंकि हमारा अनुभव अनुभवनात्मक विश्व के उन रूपों से जो अनेक आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ अथवा वास्तविक या पदार्थ तन्त्रों से अनुसृष्टित हैं जो उनका वास्तविक साक्षात्कार नहीं हो पाते। किन्तु यह अनुसृष्टि जो कला के रूपों से उद्गीत है अनुसृष्टक से परे है। कलानुसृष्टि में वास्तविकता को अनुसृष्टक के द्वारा गृह्य नहीं बनाया जा सकता अतः यह रचना प्रकट होती है। ऐन्द्रिक प्रतीति वाली वस्तुओं की तुलना में ककारमक रूपों में एक काम यह है कि वे अपने ही गुणों द्वारा अपने ही दिशाओं में इंगित करते हैं वापस के आन्तरिकता की ओर लौट करत हैं, जो धारणात्मक मन में विश्व सृष्टि करती है। द्वैत की दृष्टि में विश्व में ज्ञाप होने से ही कला-रूपों में भी

सोप होता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए यह चोबी, भारतीय और मिथी कला का उदाहरण देता है। उसकी दृष्टि में चोबी भारतीय और मिथी अपने देवताओं और मूर्तियों के कलात्मक रूपों में, रूपों से परे किसी रूपहीन अवस्था तक नहीं जा पाते या वृषित और मिथ्या रूपों के वस्तुस्थितिक से परे नहीं पहुँच पाते हैं; इसी से उपयुक्त सौम्यत्व को उपलब्ध करने में असफल रहे थे। साथ ही उनके पौराणिक विचार तथा उनकी कलाओं के विषय और उनके चिन्तन स्तरा अभिन्न थे। सोप पूर्ण निर्धारण से युक्त होने के कारण उनके कला विषयों में परम सत्ता को ग्रहण नहीं किया जा सकता था।^१ सम्भवतः भारतीय अवतारवादी प्रवृत्तियों की ओर समुचित दृष्टि न जाने के कारण ही हेगेल को ऐसा झम हो गया था। जब कि भारतीय कला-मूर्तियों की यह किनोपता रही है कि सर्वत्र उनका एक व्यावहारिक और सैद्धांतिक रूप रहा है। व्यावहारिक स्तर पर वे आम जनता के साम्य उपयोगितावादी ईश-उपास्य रहे हैं और सैद्धांतिक स्तर पर वे सदा किसी न किसी प्रकार की विचार धारा से आशय परम सत्ता की ओर इंगित करते रहे हैं।

कलाकृति का सौम्यत्व और आदर्श

कला के स्वच्छन्द वर्गीकरण के सम्बन्ध में विचार करते हुए हेगेल ने स्वच्छन्दतावादी कला को पपातथ्य सौम्यत्व का क्षेत्र माना है। इस विषय का उपादान सौम्यत्व या वास्तविक सौम्यत्व है; किन्तु बहुत निकट से देखने पर यह मूर्त आकार में स्वयं आत्मप्रति है अथवा आदर्श परम मस्तिक्य या स्वयं सत्य है।^२ इस प्रकार यह बाह्य सौम्यत्वपरक उपादानों में एक अस्तमूर्ती आत्मगत परम सौम्यत्व का वर्णन करता है, जो कलात्मक सौम्यत्व में भी अभीष्ट है। यह वह क्षेत्र है जहाँ दिव्य कलात्मक ढंग से प्रयत्न-बोध और मातृ-बोध में उपस्थित होकर समस्त विश्व की कला का कर्म बन जाता है। यह निराधार स्वतंत्र और उन्मुक्त वह दिव्य मूर्ति है जिसने बाह्य मूर्तों के आकार और माध्यम का पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया है और कथक अपनी अभिव्यक्ति के साधन स्वरूप में उन्हें आवरण की तरह धारण करता है। तभी तो सौम्यत्व इस क्षेत्र में वस्तुनिष्ठ पदार्थ के चरित में अपने को विभूत करता है एवा करने में व्यक्तिगत स्वरूपों और तत्त्वों की दृष्टि से स्वयं अपने आप को बिसिद्ध बना लेता है और उन्हें (स्वरूपों और तत्त्वों को) स्वतंत्र बिसिद्धता प्रदान करता है। इससे रुगता है कि यह कर्म अपनी विभिन्न वास्तविकता में विद्यमान अपने ही प्रतिभावों में अतिवाद् कदा कर देता है।

१. दि. पृ. १६४।

२. दि. पृ. १६४, दृ. ४८-४८१।

इनमें से एक अतिवाद अस्तित्व से घृण्य होकर वस्तुनिष्ठता में केवल ईश्वर के स्वामित्विक आचरण में गृहीत होता है। इस एक पर बाह्य तत्त्व ऐसे मूर्त आकार धारण करते हैं स्वता अपने भाव में नहीं अपितु वृद्धि में मानो इनके भी कोई आत्मिक कथ्य और उपादान हों।^१

दूसरा अतिवाद आंतरिक दिव्य है जो दिव्य के अनेक विविध आत्मनिष्ठ अस्तित्वों में विहित होता है। यह वह सत्य है जो आश्रय या भोक्ता के मन इन्द्रिय और हृद्य में सक्रिय और सक्रिय्याही सत्य होकर स्थित है। यह बाह्य आकार नहीं धारण करता बल्कि व्यक्तिगत अन्तर्मुक्तता के द्वारा आत्मनिष्ठता में ही लीट जाता है। ऐसे रूप में एक ही समय में दिव्य (ब्रह्म) उपास्य वेश के रूप में प्रकट होकर अपना वैशिष्ट्य प्रदर्शित करता है; साथ ही उन विविध विशिष्टताओं से भी गुजरता है जो आत्मनिष्ठ ज्ञान संवेग, संवेदन और माय के क्षेत्र में आती हैं। अवतारों का मायव और वेश हीन-वर्णित या कर्मों में व्यक्त उपास्य विग्रहों के मनुष्योचित और दिव्य माय इस प्रवृत्ति में परिगमित हो सकते हैं। हरेक कर्म के क्षेत्र में अभिव्यक्त कला की तीन अवस्थाएँ पाता है—प्रथम—सत्य को हम वास्तविक रूप में जैसा सोचते हैं दूसरा—हमारी चेतना ईश्वर को ही कोई विषय-वस्तु बना लेती है जिसमें आत्मनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता का पार्श्वक समाप्त हो जाता है। तीसरा यह कि हम ईश्वर से आगे बढ़ कर जाति या ममात्र की पूजा की ओर बढ़ते हैं मानो यह समझ कर कि ईश्वर आत्मनिष्ठ चेतना के रूप में उसी में निवास करता है और साक्षात् विद्यमान है। ठीक उसी प्रकार कला-जगत् के स्वतंत्र रूप के विकास के रूप में ये तीनों परिवर्तन हीन पवने हैं।^२

विशिष्ट सक्रिय कर्मों में वास्तुकला वह कला है जिसके द्वारा कर्मकार मन में विहित कला का, बाह्य निर्जीव प्रवृत्ति के द्वारा निर्मित करता है। इसमें संगति अमूर्त होती है। भवन इस प्रकार की कला का प्रतीकामक रूप है। वास्तुकला ईश्वर-साक्षात्कार के कार्य को बहुत कुछ भागे बढ़ाती है। यह वास्तुकला ही है जो ऊबड़-खाबड़ जगत् को समतल कर एक देने एक का निर्माण करती है जो मंदिर या हव-भवन इत्यादि के रूप में ईश्वर की ओर वृद्धि देने का एक स्थान निश्चित करता है तथा हमारे मन को अज्ञान जैमे विषयों की ओर निहित करता है, साथ ही तुच्छता तथा भोला जीवी इत्यादि में रचा करता है। हम प्रकार वास्तुकला न बाह्य जगत् का स्वयं

का मन को सुखिमंगल बनाने वाला एक ऐसा सौन्दर्य प्रदान किया कि उसी के लक्षणस्वरूप देव-मन्दिर और समाज भवन लड़े हो गए, जिनमें कला के दूसरे रूप—मूर्तिकला का निवास हुआ। मन्दारवादी कला में वास्तु कला का विविध स्थान रहा है। क्योंकि उपास्यवादी कला के द्वारा अपनी आभारभूत पीण्डिका को सुरक्षित करती है।

ईश्वर या उपास्य श्रेष्ठ का साक्षात् प्रवेश उपास्य जगत् में मूर्तिकला के द्वारा होता है। मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा के द्वारा आविर्भूत ईश्वर एक ओर तो अपने परमात्म स्वरूप का प्रतिबिम्बित करता है और दूसरी ओर जातीय शक्तता और व्यक्तित्व रूप से परम शक्तों की भावना भी उसमें निहित रहती है। मूर्तिकला में कबल ऐन्द्रिक तत्वों की ही अभिव्यक्ति नहीं होती अपितु उमदा वास्तविक रूप है—परमात्मा को सञ्चारी प्रस्तुत करना। इस प्रकार वैकल्पिक आत्मिकता के द्वारा मूर्ति में चेतना या प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। यही कारण है कि मूर्तिकला में आत्मन्तर और अन्वयत्म अपनी सनातन मिश्रता और अनिवार्य आत्मपूर्णता के साथ प्रकट होते हैं। इसमें संदेह नहीं कि मूर्ति की रूप रेखा और भाव-मुद्रा में भगवत्ता निहित नहीं है अपितु उसमें प्रतीत होने वाली प्रतीकमात्र आस्थात्मिकता में उसका आत्मस्वरूप निष्पन्न रहता है।

कला की तीसरी विधा में उपास्य ईश्वर ऐन्द्रिक रूप में प्रस्तुत होता है। जगत्ता शब्द उसका ऐन्द्रिक अस्तित्व का आध्यात्मिक प्रतिबिम्ब है। जीव शतशतमक आत्मनिष्ठता और जातिरहित जीवन को कला-उपादान के सिद्ध निर्धारक सिद्धांतों को एक परिणाम पर पहुँचाते हैं साथ ही वह माध्यम को उस वाद्य रूप में प्रस्तुत करता है जिसीकरण (अनेक भावनों, गुणों और पर्यायों के वैविध्य द्वारा) व्यक्तिकरण और आत्मनिष्ठता की आरंभ होता है जिनकी जड़ें अपनेबा है। यह यथा एकता त्रिणे ईश्वर ने मूर्ति में उपलब्ध किया है, अर्थात् व्यक्तियों की जातिरहित समीचीनता के रूप में विकसित हो जाती है, जिसकी एकता ऐन्द्रिक नहीं बल्कि पूर्णता आदर्श है। मन्त्रमुक्त कबल इसी अवस्था में ईश्वर शब्द पर्यायता और श्रद्धा आत्मस्वरूप हो जाता है। आत्मा अपनी (ईश्वर की) जाति में उपस्थित हो जाती है। क्योंकि जब ईश्वर अन्त-यत्न सर्वत्र विहित होने लगता है। उसकी एकता और व्यक्तिकरण के ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार में तथा उसकी सत्ता और सामान्य स्वभाव और अज्ञान की एकता में स्वयं परस्पर परिवर्तन होने लगता है।¹

सतों की भाषा में निर्गुण-विराकार कहा जा सकता है; क्योंकि सौम्यर्ष के विवेकात्मक पक्ष की तरह, विराकार भी भाकार की अनुपस्थिति मात्र को व्यञ्जित करता है। अनेक प्रकार के वाच्यार्थ, कल्पार्थ या भाषार्थ व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ को व्यञ्जित करने वाले 'नाम' और 'सङ्घ' के नाम प्रतीकत्वमक अवतार हैं जो सामान्य को विशिष्ट, विराकार को सांख्यिक भाकार, शून्य को अर्थ और विद्यु को अणुत्व की विसिद्धता में बांध देते हैं। यद्यपि कर्पयुक्त नामात्मक प्रतीकों में धारणा-विम्बों की उपस्थिति होने के कारण एक भाषात्मक विग्नबन्धा तो विद्यमान रहती ही है; फिर भी ज्यामितिक विद्य और त्रैक चित्रों में जो अन्तर होता है, उस प्रकार या कुछ मात्रा में उससे भी अधिक निर्गुण-प्रतीक और सगुण-प्रतीक-विम्बों में अन्तर जान पड़ता है। अवतारवादी दृष्टि से एक उसका नकारात्मक पक्ष है और दूसरा सकारात्मक फिर भी कलाकृति की प्रक्रियाओं की तुलना में दोनों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार की अभिव्यक्ति से प्रतीत होता है। अतः यहाँ विचार कर लेना युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कलाभिव्यक्ति और अवताराभिव्यक्ति में कहीं तक समानता है।

कलाभिव्यक्ति और अवताराभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति सृष्टि और कलासृष्टि दोनों का प्रमुख स्थापार रही है। यही यहीं सृष्टि कला-सृष्टि अथवा अभिव्यक्ति या प्राकृत्य के मूल में एक ही शक्ति कार्य करती है वह है—इच्छा। सोष्णामयत^१ में कामना-इच्छा का चोतक है। यौगों में अमिनवगुप्त भी ब्रह्म की अभिव्यक्ति के मूल में इच्छा को प्रधान मानते हैं।^२ यही इच्छा शक्ति प्रजापति, कलाकर, कवि भादि में तथा उपारय प्रह्व और उसक विग्रहों की अभिरापा में व्यक्त होती है।

कवि एवं कलाकार का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है जिसमें वह स्वतंत्र रहता है। वह उसका कलात्मक रचनात्मक या अभिव्यक्ति-व्यक्त व्यक्तित्व है जिसे वह अपनी इच्छा या अभिरापा के अनुकूल व्यक्त करता है। वह कृति का प्रह्व होकर भी अपने कलात्मक व्यक्तित्व के द्वारा उसमें प्रकट रहता है। प्रह्व भी उस कलाकार के समान प्रतीत होता है जो अपना पूरक व्यक्तित्व रखते हुए भी अपने व्यक्त रूप में ब्रह्मत्वपरक व्यक्तित्व रखता है (तत्त्वज्ञान तदैवानु प्राविशत)। कलाकार की तरह वह अपनी इच्छानुसार ही अपने को रचनात्मक व्यक्तित्व के रूप में व्यक्त करता है। यह आविर्भाव जो

सृष्टि की प्रक्रिया में प्राणों के प्रकार का दृष्टिकोण होता है, उसे सृष्टिमूकक या विस्तारपरक तथा आह्लादमूकक या प्रसादपरक कहा जा सकता है। दुनों की प्रथम उत्पत्ति मारम्भ में सृष्टिमूकक या विस्तारमूकक होती है। विस्तार की परिपुष्ट सीमा पर पहुँच कर उसमें पुष्प और फल व्यक्त होते हैं।

यह प्रक्रिया मनुष्य की व्यक्तिगतिक के समानांतर प्रतीत होती है। मनुष्य की सौन्दर्यमूकक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम यदि पौराणिक प्रतीकों को ही लें तो 'हिरण्यगर्भ' के रूप में हुई होगी जिससे सृष्टि का बीज-सूक्ष्मत्वं विस्तार हुआ, जो सृष्टि-आविर्भाव (Cosmological incarnation) का सूचक है। उसकी दूसरी व्यक्तिगतिक पुष्प-फलत्वं रही है, जिसमें पुष्प उसके रमणीय पत्र आह्लादक कल्याणक आविर्भाव (Aesthetic incarnation) का सूचक है और फल उसके प्रसाद या अनुग्रह के रूप में प्रकटित आविर्भाव का। पुष्पत्वं अवतार में विद्युत् कीलक की व्यक्तिगतिक है और फलत्वं अवतार में सुहृद-दमन, रक्षा, विपन्न, तथा अतिरिक्त शक्ति (जीवन और समाज के लिए) के उत्पन्न का उपयोगितावादी आविर्भाव निहित है।

अतः पत्र कलाकार की सृष्टि जिस प्रकार कलित कलात्मक और उपयोगी कलात्मक कलाकृतियों की रचना करती रही है, वैसे ही कला भी कला के रूप में विद्युत् या कलित कलात्मक तथा रसक और धाता बन कर, उपयोगी कलात्मक अवतार का धारणकर्ता कहा जा सकता है। निरूप ही कलित कला का अवतार पुष्प है तो उपयोगी कला का अवतार फल। प्रथम सौन्दर्य भाव या रमणीय रस का आस्वदन होकर माधुर्य-गुणों में पुष्प है और दूसरा उपयोगिता की चमत्ता का व्यञ्जक तथा उपयोगिता का आस्वदन होकर पेश्वर्य-गुणों से परिपूर्ण है। इस प्रकार भारतीय अवतार रूपों का कलित कलात्मक और उपयोगी कलात्मक रूपों में रूपा जा सकता है। जो किसी भी कला में कालित्य और उपयोग का सुखिसुख पारमार्थिक किञ्चित् करिण है। क्योंकि प्रत्येक कलाकृति में कालित्य और उपयोग मनुष्याधिक अनुपात में विद्यमान रहते हैं। उपयोग के समानवर्ती सृष्टि और भाग की दृष्टि से देखने पर कलित कला में मानसिक सृष्टि का आधिपत्य है और उपयोगी कला में मौलिक, वैदिक या सांसारिक सृष्टि का। यद्यपि हम दोनों को वैदिक और अतीन्द्रिय चिन्तन का माध्यम बना सकते हैं। मनोवैज्ञानिक धारणा के अनुसार मानसिक और वैदिक दोनों प्रकार की सृष्टियों में अविनाभाव सम्बन्ध है। एक दृष्टि से वैदिक सृष्टि मूर्ख सृष्टि है मानसिक सृष्टि सूत्रम। किन्तु कभी वैदिक सृष्टि सद्म है और मयसिक

तुष्टि पूरक, और कभी मानसिक तुष्टि सहज है और ऐहिक तुष्टि पूरक। इस प्रकार कठित और उपयोग दोनों अम्बोन्पामित हैं। पौराणिक अवतार चरितों और षोडशों में उपयोग और छाकित्य का यह अम्बोन्पामित रूप दृष्टिगत होता है। देव-कार्य की सिद्धि और धर्म के दोनों कार्य देव-काठ और परिस्थिति से म्यूनाधिक मात्रा में होते हुए भी प्रायः साध-साध बनने हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कला की अभिव्यक्ति और अवतार अभिव्यक्ति में बहुत कुछ साम्य है। कलाभिव्यक्ति जगत, जीवन, प्रकृति तथा वैयक्तिक और सामाजिक मनाभावनाओं में अभिव्यक्ति पाती है किन्तु अवतारवाद ब्रह्म की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। ब्रह्म की यह अभिव्यक्ति कबल सौम्य और रमणीयता के क्षेत्र की ही वस्तु नहीं है अपितु इसकी चरम परिणति तो उदात्त रूप में हीक पवती है।

उदात्त और अवतार

विष्णु के समस्त अवतारों और उनकी विभूतियों तथा उनके अद्भुत रूपों और ध्याहारों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनका समस्त रूप कबल रमणीय ही नहीं अपनी समस्त शक्ति, शीक और अद्भुत शक्तों की समता से पूर्ण होने के कारण उदात्त भी हैं। अतएव उनका उदात्त रूपों का विवेचन करने के पूर्व स्वयं उदात्त का स्पष्ट कर लेना समीचीन प्रतीत होता है।

रमणीयता और सौम्य्य की मूर्ति पूर्वी और पश्चिमी दोनों विचारकों ने उदात्त पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया है। यद्यपि उदात्त को प्रायः कुछ सौम्य्य साधियों ने सुन्दर में ही परिगणित करने का प्रयास किया है फिर भी दोनों में कुछ दृष्टियों से मौलिक वैपम्य रहा है। पाश्चात्य विचारकों में बर्क और कॉट दोनों ने सुन्दर और उदात्त का वैपम्य दिखाया है। उनका मतानुसार पहला वैपम्य दोनों में यह है कि सौम्य्य का कुछ न कुछ सम्बन्ध रूप से है किन्तु उदात्त रूप पर निर्भर रह भी सकता है और नहीं भी। उसमें अरूप और विद्रूपता दोनों का समावेश सम्भव है। हम उदात्त विपम्य के प्रति दृष्टापूर्वक कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि यह सर्वैक हमारी निर्भव शक्ति को अवलोक करता है जिसके फलस्वरूप संगति स्थापित होना तो दूर रहा और अविश्व असंगति हो जाती है। यही कारण है कि उदात्त सौम्य्य से एक अंश अधिक आत्मनिष्ठ है। उसमें मस्तिष्क से और अधिक उच्चतर मोग करना असम्भव हो जाता है। इसकी वस्तुस्थिति यह है कि हम लोगों

का स्वयं अपने ऊपर फेंक देता है इसमें व्यक्ति को अपनी अर्कित सम्पत्ता और प्रत्येक पर निर्भर रहना पड़ता है जिससे सौम्यता भावना की अपेक्षा उदात्त की अधिक मांग रहती है उसके बड़े उससे उम्र या कठोर तथा निपचात्मक आत्मत्व अधिक मिलता है, जो मम या विरमय किम्बु प्रशसा क अधिक निकट होता है उसमें गम्भीरता और रोमांच प्रेषणीय होते हैं।^१ इस प्रकार कई उदात्त को कबक अमूर्त भावों तक सीमित रखने का पड़पाती है।

इसके अतिरिक्त सौम्यता के साथ कौटुम्बिक को लेकर सौम्यता में एक सैद्धान्तिक होय भी उपस्थित हो जाता था जिसकी ओर कई ने उदात्त और सौम्यता के सम्बन्ध या अभाव के चलते इस होय की ओर इंगित किया तथा सौम्यता में आत्मनिष्ठता को समाहित कर एक बार तो उसका उन्मूलन किया और दूसरी ओर उसने उदात्त पर विद्युत्त आत्मनिष्ठता आरोपित कर ही। सौम्यता में रूप एक बह आत्मन्य है, जिसका विरलेक्षण किया जा सकता है, यद्यपि इसका वास्तविक या सकल्पित भागम को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु उदात्त पूर्णतः मम के अन्तर् उपस्थित हो जाता है। इसीसे उसके उद्दीपन और प्रतिक्रिया में विचकुक कई सामग्र्य नहीं दिनाया जा सकता और सम्भवतः उन वस्तुओं की अभिव्यक्तिवित्त महत्ता को मगध करके का प्रमास भी नहीं हो सकता जो अपने निपचात्मक स्वभाव के द्वारा उद्दीपन का कार्य करता है। हेगेल के अनुसार उदात्त विद्युत्त अर्थ में सौम्यता के द्वार पर पड़ता है और प्रतीकत्मक कला-रूपों में विद्यमान रहता है। हेगेल भी कई को व्यापार बनाते हुए तथा उसको उदात्त करते हुए कहता है कि यथार्थता उदात्त ऐतिहिक वास्तवात्मक रूपों में निहित नहीं है, बल्कि वह प्राप्यगत सौम्यता से सम्बन्ध हो जाता है जिनके किये यद्यपि पर्याप्त उपस्थापन सम्भव नहीं है, तो भी वे अपनी इस अपर्याप्तता से भी प्रत्यक्ष को उद्दीपन और प्रबुद्ध करते हैं जिन्हें ऐतिहिक रूपों में उपस्थापित किया जा सकता है।^२ बिना दृष्टिगोचर हुए कोई वह वस्तु जो इस उपस्थापन के उपपुक्त अपने को सिद्ध कर सक, हेगेल के अनुसार उदात्त आत्मन्यता उसी रूप में अन्त की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कई और हेगेल दोनों उदात्त में आत्मन्य वस्तु के उपस्थापन को गीम मानते हैं। यों कल्पवाधीन आत्मक अनुप्य कबक सौम्यतानुभूति मात्र से तुल्य नहीं हो सकता। वह आत्मन्य विद्युत्त में अनेक प्रकार की ऐतिहिक अनुभूतियों द्वारा भाषण करता है किन्तु

१ दि एरवे इ २७१।

२ दि एरवे ए ३५३।

वह उनके आध्यात्मिकरण से प्रबुद्ध आत्म-बोध को भी परम सत्य ही मानता है। क्योंकि मनोवैज्ञानिक जिसे अद्यतन कहते हैं वस्तुतः यहीं से हमें परम सत्य के संदेश मिला करते हैं। उन्हीं प्रवृत्तियों में सौन्दर्यानुभूति की उदात्तानुभूति भी निहित है। इसी से कुछ विचारकों की दृष्टि में सुन्दर का ही उत्कृष्ट रूप उदात्त है जिसमें प्रवृत्तियों से ऊँचे उठकर मन आध्यात्मिक अगत् की अनुभूतियों का मूल रूप में आस्थापन करता है।^१

प्रायः लोग उदात्त के भावमें अन्तर्बेदना के साथ अत्यन्त आनन्द के अनुभव को ही प्राण-स्वरूप मानते हैं। इस अवस्था में ससीम व्यक्ति के ऊपर उठकर स्वर्ग में अत्यन्त व्यक्ति का आवाहन कर देता है। ससीम, अत्यन्त मानव-व्यक्ति के असीम और अत्यन्त तत्त्व के उद्भव से अत्यन्त बेदना और अत्यन्त आनन्द का एककाकिक अनुभव होता है यह अनुभव ही उदात्त का अनुभव है।^२ जो वास्तव्य आत्म-सुरक्षित वृत्तियों में निहित हैं वे हुआ या सुख की सम्प्रदायिक चेतना पर निर्भर करती हैं। जो कुछ विज्ञान वा स्वतरे हमको समी कष्टप्रद कहते हैं जब उनका तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह कष्ट और विज्ञान के प्रत्यय इस चेतना के साथ हमारे माथों को प्रबुद्ध करत हैं कि उनका उत्पन्न कोई प्रभाव हम पर स्वतः नहीं होना आ रहा है तो हमें आनन्दित करते हैं। अतः कष्ट और विज्ञान का यह अनुभव एक वास्तविक अनुभव से भिन्न उनके प्रत्ययगत अनुभव पर आधारित है। अतएव यह वस्तु जो इस प्रकार का आनन्द अगती है उसे उदात्त कहा जा सकता है। बर्क के शक्ति, बुद्धि काकार कम्बार्ह की अपेक्षा गहरार्ह और ऊँचार्ह हृदयि अत्यन्तता तारी भरा आकाश अद्भुत वस्तुएँ, अत्यन्त आकाश (सूय का) सिंह या बाहुल-स्वनि का औदात्य संवेगों को उनके समस्त प्रावण्य के साथ उद्बुद्ध करता है।^३ इन समी की अनुभूति भय और विज्ञान मिश्रित वह पीड़ा है जिसका श्लेष्य व्यक्ति पर कोई प्रभाव न पड़ता हो बरिष्ठ अधिक उत्तेजित अवस्था में संवेगों को छा देती है। जो काम्तिअत्र पारवेय ने सुन्दर और उदात्त के साथ और वैद्यय पर विचार करत हुए बताया है कि— दोनों स्वर्ग आनन्दित करते हैं। दोनों तार्किक न होकर प्रतिविम्बित हैं। उनमें निहित अत्योच आनन्द की दृष्टि से न ता संवेदन पर निर्भर करता है न ता सिद्ध की दृष्टि से किमी निमित्त आधार पर आधारित रहता है। न विज्ञान अतिविज्ञान पारणाओं से अत्यन्त है वे स्वतंत्र अविज्ञानात्मक व्यक्तियों

१ मी शा ५ १०५।

२ स्त्री शा ५ ११।

३ अत्र ५१५ ५ २७ - २०१।

क बीच अनिश्चित सागरव की ओर प्रवृत्त करती हैं। ब (अनेक वृत्तों में) विशिष्ट, आकरयक और सावधीमिक हैं।

सौम्य प्रकृष्टा एक ऐसी वस्तु से सम्बन्ध है, जो विश्व ही सन्नीम है किन्तु उदात्त का सम्बन्ध असौम्य रूप से है जिसकी सम्पूर्णता विचारणा में नी धरमियत हो सकती है। प्रायः सुन्दर का तात्पर्य आरव्यारमक बोध के उपस्थापन से लिया जाता है किन्तु उदात्त का सम्बन्ध अनिश्चित विवेकात्मक प्रायय से है। इसके अनिश्चित सौम्य का तोप गुणात्मक उपस्थापन से सम्बन्ध है, किन्तु उदात्त का मात्रात्मक उपस्थापन से। सुन्दर का आनन्द उदात्त से विकृत मित्र है। सौम्य में आनन्द प्रत्यक्ष रूप से निर्गत होता है क्योंकि कि सुन्दर वस्तु प्रत्यक्षता जीवनेच्छा की भावना उत्पन्न करती है किन्तु उदात्त में आनन्द या उस केवल प्रत्यक्ष रूप से ही उद्भूत होता है। यह उत्पत्ति मनुष्यी शक्तियों के महरोध और जगातार अस्वजिक प्रवाह के द्वारा होती है। उदात्त का आस्थादन तोप या सुख प्रसमा या आर की तरह श्रेय आनन्द की सृष्टि नहीं करता अपितु इसका आनन्द नकारात्मक आनन्द है। प्रकृष्टा सौम्य अपन लक्ष्य-रूप प्रयोजन का चोदन करता है; वह हमारे मूर्खों में सुदीत होकर स्वयं आस्थादन सुख का आलम्बन हो जाता है। किन्तु उदात्त में प्रयोजनात्मक रूप का सिद्धान्त छिपित नहीं होता। उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सौम्य और उदात्त में एक लक्ष्य से अनुस्यूत होने पर भी तारिकक वैभव है। आगे चलकर उदात्त के विवेचन-क्रम में यह अन्तर और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

एक विषय की दृष्टि से उदात्त कोई अनुनातन विषय नहीं है; क्योंकि प्राचीन काल में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में इसकी पूर्णरूपण व्याप्ति रही है। पाश्चात्य विचारकों में कौन्साहनुस ने तीसरी शताब्दी के लगभग उदात्त के सैद्धांतिक पक्ष पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। उनके मतानुसार उदात्त अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है; उदात्त भाषा का प्रभाव होता है मत्र पर प्रत्यय के रूप में नहीं बरन प्राचीनिक के रूप में पड़ता है; उदात्त का प्रभाव होता की भाषाक्रमण कर देता है। वह भावनों में प्रेरणा प्रवृत्त आवाग और उदात्त विचार को उदात्त का उद्भूत मानता है। डॉ० मोग्ग ने विभाव और भाष हो पक्षों में विभाजित किया है। उनमें विभाव पक्ष के अन्तर्गत १—अनन्त विस्तार, २—समाधारण शक्ति और बग ३—आंतरिक दृश्य ४—स्वायी प्रभाव समता आते हैं, तथा

१ टिप्पणी है. म. ५. २०१।

२ टिप्पणी है. म. ५. २००।

३ का. ४. ५४।

मात्र पक्ष में मृत की ऊर्जा, उद्धार संभव अर्थात् जादू और विस्मय और जन्ममूर्ति अर्थात् सम्पूर्ण चेतना के जन्ममूल हो जाने की अनुमति गृहीत हुए हैं। मम की ऊर्जा, आत्मा का उत्कृष्ट करन बाकी प्रकृत अनुमति है जिसे चित्त की शक्ति वा स्वीकृति भी कह सकते हैं। उद्धार जिससे हमारी आत्मा हर्ष और उद्धार से परिपूर्ण हो जाती है तथा औदात्य के वे उद्धारण को सर्वदा सभी स्थितियों में आनन्द दे सकें। संभव अर्थात् जादू और विस्मय को कुछ भी उपयोगी तथा आवश्यक है उसे मनुष्य साधारण मानता है। अपने संभव का भाव तो वह जब पक्षों के लिए सुरक्षित रखता है जो विस्मय-विमूढ़ कर देने वाले हैं। उसमें गरिमा, जादू और विस्मय को जन्म देने की जगता है। जन्ममूर्ति से तात्पर्य है—सम्पूर्ण चेतना के जन्ममूल हो जाने की अनुमति से जिसे 'कैंगिनुस ने 'विस्मय-विमूढ़' कहा है।' उद्धार का पोषण करने वाले अहंकारों में रूपक, विस्तारणा संप्रोक्ति (संशोधन) प्रभावकार विर्यय, स्थितिजन्म, पुनरावृत्ति, द्विजन्मव्यय प्रत्यक्षीकरण, सचचन, सार रूप-परिवर्तन पर्यायोक्ति आदि का विवेचन किया है। जो उसकी समस्त विवेचन पद्धति को देखने पर ऐसा लगता है कि उद्धार के आत्मबल और उद्दीपन विभागात्मक तत्त्वों का उसने अधिक विवेचन किया है। इसका मूल कारण है उस युग की पृष्ठभूमि जो कैंगिनुस के समकालीन थी। वह युग दिव्य या मानवी किसी न किसी प्रकार के उद्धार प्रदर्शन का ही युग था। ग्रीक या रोमन साहित्य के बीच नायकों तथा उनके महान कार्यों की अभिव्यक्तियों में जो भव्य औदात्य उचित होता है उससे कैंगिनुस अत्यधिक प्रभावित रहा है। ग्रीक या रोमन वीरों को देवताओं से अभिहित करने या उनके कार्यों में देवतुल्यता आरोपित करने में जो प्रवृत्ति विशेष सक्रिय रही है—वह है अवतारीकरण की प्रवृत्ति। इन कृतियों के उद्धार नायक अपने युग के महान देवताओं के अवतार माने जाते रहे हैं। यह अवतारीकरण की प्रवृत्ति उनके देवतुल्य नायकों में उद्धार-भावना की सृष्टि करने का प्रमुख साधन रही है।

कैंगिनुसने स्वर्ग और नरक, मर्त्य और जर्माय के संघर्ष से सम्बद्ध देवताओं के प्रसंग में हम प्रकार बताया है—'मुझे लगता है कि हमारे देवताओं की विपत्ति उनके पारस्परिक कड़ह प्रतिशोध, सोक, बन्धन तथा अन्य नाभाविय आघातों की कक्षाओं में जहाँ तक उसके सामर्थ्य में या दाय के घरे से सम्बद्ध मनुष्यों का देवता बना दिया है और देवताओं को मनुष्य। पर जहाँ हम मार्गों के लिए, दुर्भाग्य का प्रकोप होने पर धृष्टु के

द्वारा अपने कर्तों से सुदृढारा जाने का विश्वास है वहाँ होमर न देवताओं को न कवच अपने प्रकृत रूप में वरन् दुर्भाग्य में थी अमर विप्रित किया है।^१ देवताओं के संग्राम-सम्बन्धी प्रसंगों की अपेक्षा वे स्वयं कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं जिसमें वास्तविक दिव्य स्वभाव का विद्युत्, महान् तथा अकल्प्य रूप में, विद्यमान किया गया है। इसमें सम्यक् नहीं कि अवतारीकरण की प्रकृति के अनिश्चित सीमितरूप ने 'उदात्त' को स्वभाव-कौशल की दृष्टि से भी बड़े व्यापक रूप में ग्रहण किया है।

उदात्त और 'सम्झाहम' की समसामयिक विशेषता

इस दृष्टि से यदि भारतीय साहित्य वाले 'उदात्त' को देखा जाय तो निश्चय ही उसकी सीमा व्यापक प्रतीत नहीं होती। हिन्दी-साहित्य में 'सम्झाहम' के लिए जिस 'उदात्त' का प्रयोग होता है वह वैदिक काल से ही विभिन्न जगहों में किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व रखता रहा है। उसका समकालीन शब्द 'भोजस्वी' और 'ऊर्जस्वी' भी उसके प्रमुख स्वरूप को परिपुष्ट करते हैं। परन्तु वहाँ तक उदात्त का सम्बन्ध है वह ऊँचे स्तर से उच्चारण किया हुआ, कृपासु द्वाचाम दाता उदार स्वयं, विद्वत्, श्रेष्ठ, बहा, योग्य, समर्थ बहू के स्वरोच्चारण का इत्य, एक व्यापककार जिसमें सम्भाव्यविशुद्धि का बड़ा-बड़ा कर वर्णन किया जाता है राग, एक प्रकार का आभूषण, बाजा, हापादि के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। किन्तु मनुष्य रूप से भारतीय साहित्य के पारिभाषिक अर्थ में उसका प्रयोग उदात्त नायक (पीरोदात्त) और उदात्त अलङ्कार विशेष के लिए होता रहा है।

भारतीय नाट्यकारों में भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में पीरोदात्त और कश्चित् और पीरोप्रामाण्य के साथ 'पीरोदात्त' का उल्लेख किया है। उन्होंने मनासि और अम्बियों को पीरोदात्त नायकों में माना है।^२ साहित्य में नायक का नेता-व्यय की दृष्टि से प्राचीन युग सामन्तीय या आधिजात्य युग रहा है। उनमें भी कुछ विशिष्ट वर्ग के लोग ही नायक गृहीत होते थे उनकी शक्तिशाली की चर्चा करते हुए 'नाट्य-दर्पण' में कहा गया है कि नायक की सबसे बड़ी विशेषता है जीरता। जो जबैक संकटों विपत्तियों या संघर्षों में भी बचता नहीं। यह तो नायक के चरित्र की मूल विशेषता है इसके अनिश्चित उमक स्वभाव के अनुसार भी उसे चार भागों में विभक्त

१. का. उ. तस्य ५ ५७।

२. ना. उ. अ. २८।

पीरोदात्तपीरोदात्त पीरोदात्तस्वयं च।

एषा—पितापितृणां च पीरोदात्त प्रदीकिते।

किया गया है जिन्हें क्रमशः धीरोदात्त, धीरोदत्त, धीरकक्षित और धीर प्रणाल्य कहा गया है। इन अनुबिंदु नायकों में 'दशरूपक' के अनुसार धीरोदात्त यह है जो गुरुगण (जिसका दर्प विनम्रता से आच्छादित रहता है) अतिगम्भीर, अमासीक, महासख (सुल-बुद्ध में प्रकृतिस्य) होता है। उस पुरुष का अन्तर श्रेय जोम आदि से सीम अमिमूत नहीं होता।' यह अपनी प्रतिज्ञा में कृतसकल्प और अटक रहता है। इस प्रकार यह अनेक उदात्त गुणों से युक्त माना जाता है। प्रायः नाट्य समीक्षकों ने 'उदात्त' का तात्पर्य उस वृत्ति से माना है—जो सबसे बढ़कर उत्कृष्टता प्रकट करती है अर्थात् अन्य लोगों से उत्कृष्ट होना ही उदात्त का परिचायक है। इसके अतिरिक्त 'उदात्त' का तात्पर्य विद्विगीयुता या दूसरों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से भी किया जाता है। हम कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदात्त अपने जीवन के समस्त क्षणों में अनेक बड़े बड़े महान श्रेय या उपलब्धि या ऐतिहासिक कार्य करने वाले व्यक्ति में अतिरिक्त होता है। विजय ही 'उदात्त' पाश्चात्य या विशेषकर कौंगिनुस के 'सफ्फाहम' की तरह ही उस युग के अनेक बड़े बड़े बड़े तथा अपनी अप्रतिम वीरता और साहस के द्वारा विजय प्राप्त करने वाले प्राचीन वीरों के अन्वय वैशिष्ट्य का चोतन करता है; क्योंकि राष्ट्रीय, जातीय या सामूहिक युद्ध और संघर्ष उस युग के प्रमुख कार्यों में से रहे हैं। चाहे प्राण्य हो या पाश्चात्य दोनों वर्णों के उत्कृष्टीय राजतंत्रों की मनोवृत्ति किसी भीता या हेडोन जैसी राजकुमारी और श्रेय के आधिपत्य पर केन्द्रित रही है। राजसूय स्वयंवर अथवा अथवा सिक्न्दर का मीजर जैसे राजाओं द्वारा किए गए विजय अभियान एक ही 'विद्विगीया' की शृङ्खला में हैं। अतएव पुरातन समाज और संस्कृति की प्रवृत्तियों को देखते हुए विशेष कर अतिरिक्त विज्ञान की दृष्टि से 'उदात्त' और 'सफ्फाहम' में बहुत कुछ सम्य है। वहीं वहीं जिन प्रकार तादासीन पात्रों में दया कल्याण और शोक का अतिरिक्त होने के कारण भारतीय विचारकों ने अमृतवाहन जैसे कर्म पात्र के अद्वैत में संदेह प्रकट किया है वैसे ही कौंगिनुस ने भी दया शोक अथ जैसे हीनतर भावों को आत्मा का अवलोकन करने वाला माना है तथा सिक्न्दर महान की तुलना

१. इ. ८. ८ (श्रीगंगा सं) ५ ७९, २ ४—

महासूची-विगम्भीरः धमादानविकल्पनः । शिरो निगूडाह्वारो धीरोदात्तो बुद्धयः ।
 इति उदात्तानां 'राम' पृथीय युग है। सा ४ (श्री सं) ५ ११९-२ १२ में
 तथा आम्बानुदासन ५ ११२ में भी धीरोदात्त के प्रायः कुछ गुण ही मान्य रहे हैं।

२. इ. ८. ५ ७९ धीरोदात्तं हि नाम सर्वोत्कर्षेण वृत्तिः, तत्र विद्विगीयुत एवोपपत्तौ

में इति इलोकेतस के रहे जाने की मर्ममा की है ।^१ अतः 'उद्वाच और 'मच्छाद्म क प्राचीनतम अल्प का परि अनुमान किंवा ज्ञान तो ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों का विकास प्राचीन वीर नेताओं और विजेताओं के आग्निभक्त आचार पर हुआ था । इसका आधार भी व्यवहारवादी रहा होगा । क्योंकि भवनात्मक पुरातन काल से ही विजेताओं का एक प्रतिमानक रहा है ।

उद्वाच अलंकार

उद्वाच का आ रूप अलंकार के रूप में मिलता है यह भारतीय सौन्दर्य चेतना का एक विविध अंग है । भारतीय साहित्य में सौन्दर्य को अलंकार ही माना जाता रहा है^२ जब कि उद्वाच का एक अलंकार है । वहीं यह स्थान रखना चाहिए कि अलंकार सम्प्रदाय एक विद्वत् सौन्दर्यवादी (समीचीनवादी नहीं) सम्प्रदाय रहा है जिसमें उस व्यक्ति तकालि जैसे शायद विचारका बाके सम्प्रदाय भी कबक कुछ अलंकार-रूपों में प्रतीकृत होकर अलंकार सम्प्रदाय में समाहित हो गये हैं । इस दृष्टि से पहले 'उद्वाच' अलंकार के पारिभाषिक रूप को देखना समीचीन जान पड़ता है । आलंकारिकों में प्राचीन मामह ने जहाँ तक ज्ञान है सर्वप्रथम प्रेम रसवत् कर्त्तृत्व, पर्यायोक्ति और समाहित तथा तीन प्रकार के छिद्र अलंकारों के साथ दो प्रकार के मेह वाले उद्वाच की चर्चा की है ।^३ प्रथम उद्वाच में वे अकिमत्ता को महत्व देते हैं और उद्वाहृत्याय राम की शक्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'अकिमत्त राम पिता के चक्रम का पालन करत हुए मिस प्रकार प्राप्त राम को छोड़कर बन लगे गए । दूसरे प्रकार का उद्वाच किसी दूसरे सम्प्रदाय में मामह प्रतीत होता है, क्योंकि मामह कहते हैं कि इसी को दूसरे लोग अन्य तरह से स्वाध्या करते हुए दूसरे प्रकार का मानते हैं—जो जाना नहीं से पुत्र हो नहीं उद्वाच कहा जाता है ।^४ द्विकपारमक उद्वाच की यह परम्परा मामह के अनन्तर अन्य आलंकारिकों में भी प्रचलित रही है ।

१ का. सं. सं. ५. ५५

२ का. सं. (भाग २) २. २. २ 'सौन्दर्यमङ्गल' स्वस्या में लगे अलंकारिकद्वार (Decorative beauty) कहा गया है जिसे वंटी ने 'सौन्दर्य' माना है ।

३ भा. सं. २. २ 'येही रसवत्कर्त्तृत्व पर्यायोक्ति समाहितम् ।

प्रियकारमुद्वाच च मेरीः किमपि किमि ॥

४ भा. सं. २. २-२-२—'उद्वाच अकिमत्त रामो युवकाभ्यामुरीवच ।

विद्यापोषणं रामं यथा वनमुपागमत् ॥

रतुरीवावरेऽप्येव स्वाध्यानेनाध्याया दिवुः ।

कल्पवृक्षेऽपि सुखं वचत् किमोराचमुप्यते ॥

मग्नट के अनुसार भी वहाँ किसी वस्तु की सम्पत्ति का या बर्णन का अथवा वर्णनीय विषयों में वहाँ का उपलक्षण करके वर्णन किया जाय वहाँ उदात्त अर्थकार होता है।^१ कविराज विश्वनाथ के अनुसार भी उदात्त अर्थकार यह है, वहाँ कोकोत्तर बौध्द का वर्णन किया जाता है। साथ ही उदात्त या महनीय चरित वाले पुरुषों का वर्णन भी उदात्त में गृहीत होता है।^२ 'अर्थकार सर्वस्व' में इसी कथन का भी अधिक स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि 'जैसे यथावस्थित वस्तु-वर्णन में स्वभावोक्ति और दूसरे प्रकार के वर्णन में 'मायिक (भावना प्रसूत) का अनुसम्भान किया जाता है जैसे ही कविकल्पित वस्तु वर्णन में 'उदात्त की कल्पना स्वाभाविक ही है। अलौकिक समृद्धि से सम्पन्न वस्तु-वर्णन कवि-प्रतिभोत्पादित ऐश्वर्य-वर्णन है—यही उदात्त अर्थकार है। साथ ही उदात्त महापुरुष के वर्णन से यदि किसी अन्य वर्णन वस्तु की उदात्तता प्रकाशित हो तो वहाँ भी उदात्त का अर्थकार माना जा सकता है।^३ उपर्युक्त आकलन से स्पष्ट है कि उदात्त का अर्थ और विकास सन्धि-मान स्पष्टि, और कोकोत्तर वस्तु-वर्णन को लेकर हुआ है। वस्तुतः देखा जाय तो काव्य में स्पष्टि और वस्तु के अतिरिक्त और वर्णन ही ही क्या सकता है। मिश्रण ही स्पष्टि की शक्तिमत्ता में लौगिनुस की ऊर्जा प्रेरणा-प्रसूत आवेग आदि का भी वस्तु के कोकोत्तरत्व में केवल लौगिनुस द्वारा गिनाए गए अर्थकारों का ही वहाँ अपितु समस्त भारतीय अर्थकारों का समाहार हो सकता है। भारतीय साहित्य में रस, ब्रह्मोक्ति और स्पष्टि की तरह 'उदात्त' भी विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखता था। किन्तु विविधता तो यह है कि उत्तरवर्ती आर्थकारिकों के अपने भेदों और उपभेदों के 'ब्रह्ममूह' के अर्थविस्तार के स्थान में भी अधिक सकोच कर दिया। भाव न उदात्त गुण और उदात्त (दान्त) रस की चर्चा तो की, किन्तु पुच्छियुक्त स्थापना नहीं कर सका। परन्तु इन समस्त चर्चाओं से इतना स्पष्ट है कि उदात्त को भी स्थान भारतीय साहित्य में मिलना चाहिए था वह उसे पाश्चात्य साहित्य में अपेक्षित मात्रा में मिला। आश्चर्य तो यह है कि 'ऊर्जा और आवेग जो लौगिनुस द्वारा प्रतिपादित उदात्त के स्पष्टिसापेक्ष भाव पद हैं उन्हें भावद के 'सन्धिमान में समाहित किया जा सकता है। जैसे ही बिरलारवा का भी 'अलौकिक सम्पत्ति' का सम्पत्ति में समाहित किया जा

१ मग्नट, का. प्र., १७१-उदात्त वस्तुः सन्धि। १७७-महता श्लोकस्यम्।

२ सा. २ (चौमन्दा सं) १ ८७१ २० १४

लोकान्तरसम्पत्ति वर्णनोदात्तमुच्यते। यद्यपि प्रस्तुतस्वार्थ महता चरितं मयैव।

३ अर्थकार सन्धि १ ११० और अर्थकार सन्धि. सा. स. ४-८।

सकता है, क्योंकि 'विस्तार' का जो तारक्य अंतितुम ने प्रकृत किया है, उसका सम्बन्ध 'विस्तार' और 'प्राचुर' से है।^१

उद्घाटन का अनुनातन चिन्तन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन उद्घाटन ध्यष्टि और अनुनातन होने के कारण सर्वनामक का अनुनातन अधिक रहा है, किन्तु भाषुनिक कृति जारी युग में आकर उद्घाटन का स्वल्प अनुनातन और चिन्तन प्रदान अधिक हो गया। कई जैसे विचारों ने उद्घाटन को पुनः एक नयी दृष्टि दी। उनके अनुसार किसी प्राकृतिक अनुनातन को उद्घाटन कहना असंगत है। क्योंकि अनुनातन का उपयोग सर्वत्र अधिक होता है। इसलिए उद्घाटन कल्पना कहकर उस प्रकृत से है जो संवेदनशील अनुनातन के रूप में अत्यन्त मात्रा में अनुनातन पर प्रयुक्त होती है और अन्तिम में एकत्रित हो जाती है। कई ने उद्घाटन का विभाजन गतिशील और गतिरहित दो रूपों में किया है।^२ इसका कारण यह है कि प्रकृति सभी अनुनातनों के रूप में उपस्थित होती है, जिसका हम विनाश या अर्थहीनता प्रदान करते हैं या जिसमें उसका परम विस्तार प्रतीय होता है। अपने कुछ रूपों में प्रकृति अपनी परम अन्तिमता के साथ अनुनातन होती है। उसके प्रथम रूप का वह गतिशील दृष्टि से अनुनातन करता है, और दूसरे को गतिरहित दृष्टि से। सामान्य रूप से उद्घाटन परम विस्तार है, जो न तो बोध की धारणा है न इच्छित प्राप्ति का ज्ञान है और न विवेक या तर्क की धारणा है। उसकी विनाशिता अनुनातनीय होती है।

अध्वनारवादी उपान्य रूपों और देवताओं में जो सर्वोत्कृष्ट रूप (एक समय में सर्वोत्कृष्ट) हीन पड़ता है वह उद्घाटन रूप ही है। उसकी परम विनाशिता का भी विभिन्न बोध की धारणा से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अनुनातनीय है। वह हम भाषानुभूति का अनुनातन है, जिसमें इससे बड़ी परत की अनुनातना जाता असम्भव है। यह कई के उस गतिशील उद्घाटन के सदृश है जिसमें अनुनातन के प्रति अज्ञा की भावना विद्यमान रहती है।^३ अनुनातन का विवेक हममें परम अनुनातन के रूप में व्यक्तता है। सर्वोत्कृष्ट विस्तार रूपों में भी यन्को आर्तकित करने वाली एक वेदना होती है। परन्तु इसी भाषण विभिन्न वेदना में उद्घाटन विहित है। क्योंकि उद्घाटन अनुभव में भाषण के साथ

१ का उदा न ५ १५- 'मिरे विचार से इनमें अत्यन्त पक्ष है कि औरतन का तो प्राण-तन होता है जो और विस्तारता जिनमें विरक्त-विस्तार रहता है अत्यन्त औरतन प्राण किसी एक विचार में ही निहित रहता है, वह कि 'विस्तार' का सम्बन्ध स्वभावतः विस्तार और 'प्राचुर' से बोधा का सम्बन्ध है।

२ अन्त पक्षे ५ १५२।

३ अन्त पक्षे ५ १५४।

वेदना का भी अनुभव होता है। इसका मुख्य कारण है मन, जो कल्पना इत्यादि के द्वारा उदात्त वस्तु के समस्त तत्त्वों को एक प्रातिम ज्ञान में ग्रहण करने की असमर्थता या असहायता प्रदर्शित करता है। यह भ्रान्त्य-वेदना मिथित अनुभव नैतिक अनुभव के सदास प्रतीत होता है। निम्नवेद उदात्त के मूर्खांकन में बोध का स्थान तर्क के होता है। इसमें सौम्यत्व की तरह कल्पना और बोध में होकर, कल्पना और विवेक स्थान ग्रहण करते हैं।

शक्ति और प्रभुत्व का पारबन्धन बतलाते हुए कॉट ने गतिशील दृष्टि से उदात्त पर विचार किया है। उसके मतानुसार हमनीय मूर्खांकन गतिशील दृष्टि से उदात्त है, यदि मूर्खांकनकर्ता किसी प्राकृतिक वस्तु को सकिष्णाली तो माने किन्तु नैतिक सत्ता के रूप में उस पर कोई प्रभुत्व न हो। उदात्त वस्तु शक्ति की दृष्टि से अनन्त या निस्सीम शक्तिमत्ता से युक्त हो। मान्य की दृष्टि से वह हमारे सम्पूर्ण शैतिक अस्तित्व को विलुप्त कर सकती है। इस प्रकार वह उदात्त वस्तु हमारे धर्म का मूल उद्यम बन जाती है फिर भी हम वास्तविक मय की अवस्था में नहीं आते। अतएव कार्यात्मिक ऐतिक असहायता की भावना गतिशील दृष्टि से मूर्खांकन का दूसरा कारण है। मूर्खांकन का तीसरा कारण हमारे नैतिक व्यक्तित्व की शैतना है। प्रकृति की अत्यन्त सकिष्णालिनी वस्तु के सामने जब हम अपनी असहायता का अनुभव करते हैं उस समय एक प्रकार का मय हमारे नैतिक व्यक्तित्व की शैतना का प्रबुद्ध करता है। इस प्रकार कॉट ने उदात्त के आत्मनिष्ठ पक्ष पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। सौम्यत्व और उदात्त का वास्तविक मूर्खांकन करते हुए वह कहता है कि 'सुन्दर का सम्बन्ध वस्तु के रूप से है यह सीमित स्वभाव का है, जब कि उदात्त वस्तु के रूप से अलग होकर भी पाया जा सकता है। यह सीमा ही अभिमूलक करता है। इसके अतिरिक्त इसकी उपस्थिति समीमता के चित्र (image of limitness) को प्रबुद्ध करती है और उसके ऊपर सम्पूर्णता की विचारणा से आरम्भ रहती है।'

अंग्रेजी विचारकों में प्रेडसे ने सौम्यत्व के मध्य सुन्दर मनोरम, उलित पाँच रूपों में से उदात्त को एक रूप माना है।^१ उसके अनुसार उदात्त स विद्यात्मता ही नहीं अपितु अभिमूलक विद्यात्मता की प्रतिध्वनि निकलती है। विद्यात्मता उदात्त का महत्तर नहीं अपितु अभिचार्य अंग है। यदि विद्यात्मता का कहरना न दृष्ट हो तो उदात्त भी सुप्त हो जायगा। उन्होंने विद्यात्म वस्तुओं में नीचे २१ और अत्यन्त महत्त्वों के साथ स्वर्गाकारा विनिष्ठात्म तब जैसे हुए

महामागर, आदि और अन्त में परे काळ को विनाश ही नहीं अतन्त बृहत्त्व क प्रतिबिम्ब माने हैं ।

ब्रेह्मे का उदात्त भारतीय विभूतिवाद और विराट्वाद को पूर्ण रूप में सामना कर लेता है । इस दृष्टि से गीता क वसुधै कव्याय में जापु इपु पीपु, बट, कामधेनु, आदि समस्त विभूतिपरक नाम तथा एकावदा अख्याय में वर्णित श्रीकृष्ण का विराट् रूप ये सभी किसी न किसी प्रकार क कबल भीवात्य के ही नहीं अपितु उदात्त विम्बों क चोतक माने जा सकते हैं । हम ब्रेह्मे की धारणा के अनुसार, कामधेनु, महामास्य, गवह, हिमालय, गंगा, काशी, सिव, विष्णु दुर्गा, सूर्य सभी में उदात्त का वक्षान कर सकते हैं ।

उदात्तोपासना

सौम्य-साधना की दृष्टि से पशु, पक्षी पीछे नहीं, परंतु तीर्थ की उपासना उदात्तोपासना कही जा सकती है । भारतीय बहुदेव पूजक वस्तुता सदा के जावन्त उदात्त स्वरूपों के उपासक थे । सैंतीस कोटि देवों की सक्या स्वता एक उदात्तोपासनात्मक एव सक्यात्मक प्रतीक है । जहाँ भी उन्हीने शक्ति, सामर्थ्य त्याग, दान, विनाश अर्पणकरता, प्रकयकरता का धर्म किया वह उनकी उदात्तोपासना का उपशीघ्र बन गया । यही नहीं समस्त ज्ञात नज्ञात और कल्पित सत्ता अपने भीवात्य क कारण उन्हीं नतमस्तक किया करती थी । भारतीय पौराणिक दैवता जो प्राकृतिक व्यापारों क मूर्तिमान रूप रहे हैं वे ब्रेह्मे की अमावस्या की रात पूनम की रात महामयावक अगल, विनाशक अलप्रपात, अघकर अग्निकाण्ड, मयावक पुष्ट, रात की नीरवता इत्यादि से अधिक मित्र नहीं हैं ।^१ दोनों में दृष्टा की दृष्टि से केवल इतना अन्तर अवरय है कि एक में उदात्तोपासना है और दूसरे में उदात्त वक्षान । इसक अनिश्चित ब्रेह्मे ने एक गुणात्मक उदात्त की चर्चा की है, जहाँ प्रेम और अस्माह जैसे रपायी भावों से संबन्धित दान पर छोड़ी वस्तु भी बड़ी वस्तु बन सकती है । यहाँ गुण की माया में उदात्त निहित है । इस गुणात्मक उदात्त में हम भारतीय इहद्वैतोपासना और अवतारोपासना को परिगणित कर सकते हैं । क्योंकि उनके ईश्वरीय या दिव्य हीला और चरित्र में माया सर्वत्र रमयसकृता और शक्ति की सर्वाधिक महत्ता (overwhelming greatness of power)^२ का वक्षान होता है । अचित्य परब्रह्म सक्रिय और सचेष्ट इहद्वैतो और अवतारों क रूप में अपने मायात्मक भीवात्य का परिचय देता है ।

१ अथम सं पो पृ ४६ ।

२ अथम सं पो पृ ४८ ब्रेह्मे ने उदात्त का महत्व उदरेव शक्ति की महत्ता में माना है ।

इस प्रक्रिया में आहुतक भावों में बढ़ना या उदासी क मिश्रण का यह तात्पर्य नहीं कि उसमें कोई असंगति नहीं होती, अपितु सुम्बर की तरह उदात्त में भावोदीपन या भावोद्बोधन तत्क्षण सम्भव नहीं है। उसमें अवतार और प्रतिअवतार की तरह रबीकरारामक और निपैचारामक दो अवस्थाएँ सदैव स्थिर रहती हैं।

यह तो वह अमिथृत महत्ता है जो कृम भर के किये हमारे सवर्गों को जलद्वन्द्व कर बसीमृत कर छेती है और कभी हमारे मय को अपनी कमुता का अनुभव कराती है जो हमारी कल्पनाओं और भावनाओं को इस प्रकार उत्तेजित करती है कि वे अपने ही भावनाओं में विसृत और कर्षोन्मुखी हो जाती हैं। हम अपनी सीमा से फूटकर उदात्त वस्तु तक पहुँच जाते हैं और आर्द्रा वाही ढंग से उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर छेते हैं और उसकी महान् विमुता में आसिक भाग ग्रहण करते हैं। किन्तु जब हमारी चेतना पार्यवस्य का अनुभव कराती है तो हम अपने भाव में पुत्रता का अनुभव करते हैं, अतः हमारा समस्त गौरव किंचित् भय आत्मभ्रमि या अपमान क साथ मिल जाता है।

उदात्त के विभिन्न सत्य

मेइसे क अनुसार उदात्त वस्तु में निम्नलिखित सात शील पड़ते हैं—
 १ भय, २ कावपनिक समानुभूति ३ आत्म-विस्तार ४ कमुत्व और शक्ति दीनता या असहायता का बोध, ५ उदात्त वस्तु में गौरव महिमा और विभुत्व का बोध। उदात्त वस्तुएँ ऐन्द्रिक संबेदानाओं को अपनी शक्तिमत्ता से प्रभावित कराती हैं क्योंकि इनका भीदान्य इनक प्रमाण क परिमाण या आपतव पर निर्भर करता है। उदात्त में जहाँ उनका पूर्णरूप नहीं छिपित होता और भीदान्य सुम्बर क निकट प्रतीत होता है तो भी हम वहाँ किमी सुरचित शक्ति (सम्भवतः अवतार शक्ति) की उपस्थिति का अनुभव करते हैं, या बड़ी भासानी से प्रस्तुत अमिथक्ति को अधिक चमकृत कर सकनी इ। उदात्त हमारी अनुभूतियों में सदैव उन्मुखता विभुत्व अवन्तता और असीमता की भावना प्रबुद्ध करता रहता है।^१ यह भी कदा जा सकना है कि उदात्त हममें अवन्तता की चेतना जगाता रहता है या वह सभी दशाओं में असीम की अमिथक्ति क किन् सनीम रूपों की अर्पवाप्तता प्रदक्षित करता है। इस दृष्टि से उदात्त वह सौम्यर्ष्य इ जो अवन्त अबाह, अपरिमेय अनुकनीय और असीम महानता स पुक्त हो। असीम की रूप उपरिचि

(Total presence) की यह वह प्रतिमा है, जहाँ वह धारण करने क क्षिप्त किसी भी सीमा को पसंद कर सकता है।^१

भारतीय अवतारवाद अपने सैद्धांतिक रूप में उपर्युक्त कोटि के उदात्त का परिचायक रहा है। प्रायः समस्त पौराणिक अवतार अपने उदात्त रूपों और कार्यों के द्वारा अपने प्रत्यक्ष औदात्य का ही परिचय नहीं देते, अपितु उनमें अस्तिमी की समस्त अनन्तता भी मन्दिहित रही है। यद्यपि यह एक साधनिक उपाय है, किन्तु मन भी इस अवस्था में अधिक ऊर्ध्वमुख और उन्नत स्थिति में रहता है। रस्किन ने तो मनका उन्नत करने वाली वस्तु को ही उदात्त माना है। यह औदात्य किसी भी रूप का विचार करते हुए हो सकता है। बौ महत्त्वबोध के समय जिस क्षापा से हमारा मन अभिमूल हो जाता है उसे ही उदात्त कहते हैं। यह महत्त्व वह पदार्थ आकाश, सक्ति, पुण्य या सौम्य में किसी एक का हो सकता है।^२ द्वादन भय में भी वह कोई मूल्य का आढिगन करता हुआ स्थिर और अविचलित चित्त रहता है तब हमें गौर्भीर्य-बोध होता है। मनुष्य की चित्तवृत्ति को ऊर्ध्वभिमुख कर सकने वाली महनीय अनुभूति से ही औदात्य का बोध सम्भव है।

उदात्त और उत्कर्ष

भारतीय विचारकों में प्रो० जगदीश पान्देय ने अपने कठिनपत्र निबन्धों^३ में उदात्त के सैद्धांतिक पक्ष पर विस्तृत रूपसे विचार किया है। इनके मतानुसार 'जो आकाशमय हमारे चित्त को मात्र आकर्षित न कर उसका उन्नयन या उत्कर्षण करता है—वह उदात्त कहलाता है।'^४ जहाँ कहीं किसी वस्तु स्थिति करना तथा शीत में इन उत्कर्ष के साथ कोचानिभयता, अथवा कोचानिभयता के साथ उत्कर्ष के दर्शन करते हैं जहाँ हमें उदात्त के दर्शन हो जाते हैं। असल में जैसे जैसे किसी पदार्थ या व्यक्ति की भौतिक सीमाओं का वग्नन दूरता जाता है, जैसे-जैसे उसमें सूक्ष्मता, व्याप्ति तथा उद्धार की योग्यता आती जाती है। इस तरह वह अपनी अतिशयता अथवा महाशयता से आशय को आकाशय करता है परास्त करता है, आत्मश्राव करता है। उत्कर्ष की दृष्टि से उन्होंने उदात्त के सूक्ष्मोदात्त, मूकबोधात्त, परोदात्त और विन्मरोदात्त चार स्वरूप बताए हैं।^५ श्री पान्देय का यह उत्कर्षोन्मुख उदात्त एक 'श्लेषान-साधि में विहित है। जबक कथनानुसार उदात्त के

१. अ०८८ ई. पी. ५ ५१।

२. डे ऑन जार्न. ५ ४०।

३. 'साहित्य में प्रकाशित।

४. एल. १९५१ ७ ५, ६, ७।

५. एल. १९५६ ६ ७५ १४।

द्वारा में हम यही अनुभव करते हैं कि इस सामान्यता विस्तार पर स्थित है और आत्मन की स्थिति परवर्तक है। अब से प्राण प्राण से मन मन से ज्ञान ज्ञान से विज्ञान तथा विज्ञान से आत्मज्ञ उदात्त की सोपान मालि है।^१ हमकी दृष्टि में भक्ति में उदात्त की अनन्यता है। कबक भक्ति की दृष्टि से देवता पर धर्म और मोक्ष में कामना की व्युत्पत्ता और भी बढ़ जाती है। इसलिये भक्ति से बढ़कर उदात्त मात्र नहीं है और या भी इसलिये नहीं कि एक ही सब कुछ हो जाता है बल्कि अन्व ही सब कुछ हो जाता है।^२ ऐसा स्मरण है कि भक्ति का यह औदात्त भावना के उदात्तीकरण पर आधारित है, जिसकी चरम परिणति भक्ति में होती है।

मध्यकालीन साहित्य का अवतारवादी उदात्त

अवतारवादी उदात्त भारतीय रमणीय कला की विशिष्ट देन है। मनुष्य की रमणीय बक्ष्यता ऊर्ध्वोन्मुख होकर त्रिस परवर्तक एक जा सकती है, यहाँ तक अवतारवादी उदात्त की पहुँच है। आधिभूत होमेवाला महा विजिप तरल्य एक प्रथा महा नहीं है अपितु वह अखिल सृष्टि का अष्टा सवालक पोषक और विनासक है। वह सृष्टि में अर्थां प्रोत्थ और मीय तीनों में विद्यमान है। सृष्टि में वह मन्त्र आधिभूत ही है। यह उसका निम्न आधिभूत रूप है; किन्तु अखिल और समतुल्य के लिये वह विभिन्न प्राणियों और जीवों में अवतार ग्रहण करता है। इस या चौथीम अवतार तो कबल भारतीय साहित्य और कला में उपस्थापित अवतारवादी रमणीय कलात्मकता के और औदात्त के परिचायक अवतार हैं। विद्युत् साम्यवायिक दृष्टि से पुत्र, स्वयं इत्यादि अपने समुदाय विशेष के पुत्र्य पुत्र्य हो सकते हैं किन्तु अवतारवादी रमणीय कला उन्हें भी अपने सगुण सक्ति और वाकार महा का एक रूप मान कर उच्च अस्तैकिक कलात्मक मूल्य और साधनात्मक औदात्त का पुनरुत्पन्न करता है। जैसे किमी वस्तु या व्यक्ति के लिए को प्रस्तुत करने के लिये कुछ आवश्यक रेखाएं उभर कर बिना को रचकपित कर देती हैं। समवतनः उनी प्रकार कुछ गिने हुए अवतारवादी कलात्मक और उदात्त रूप अपने चरित प्रकारों में ईश्वर की सम्पूर्ण विनय देव्यं दानि को स्थित करत हैं। अवतारवादी रमणीय कला का भी यही वैशिष्ट्य रहा है।

मध्यकालीन मूर्तों का रमणीय उदात्त

मध्यकालीन अवतारवादी औदात्त का वैशिष्ट्य भी महा के प्रद्वार को मनुष्य या प्राणिमात्र में यधीभूत करना है। जब प्रेमी की रमणीय दृष्टि

'बिन्दु में सिन्धु का 'एक स्वर में समस्त संगीत' का तथा एक कठिका में समस्त बसन्त' का भावन कर सकती है ना फिर प्रेम के औदार्य का उपासक मन्त्र 'घाटप्राम में बिन्दु का भर में नारायण का पिंड में प्रज्ञाण्ड का धीर मनुष्य में भगवान का भावन क्यों नहीं कर सकता ? अग अबनारबारी उदात्त का लक्ष्य अचित्य अगोचर परमज्ञ सत्यसक्तिमान का गोचर और महेश्वर मनुष्य के रूप में रमणीय उदात्त [यनाकर मोक्ष या मन्त्र की भावन समता के अगुरु रूप में संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करना है। विद्यमिन्न या मन्वृत्त पौरुषिक बरिषा की तरह रमणीय उदात्त भगवान् की समस्त भग-पुण्ड्रबिन्दुता को मानव-कलाकृति में समर कर आस्वाद्य बना देना है। इस प्रकार अवनार बारी मन्त्रिभावनता न तो मूर्खी तपस्या है न दुष्क चिन्तन अपितु एक पूर्वी रमणीय समबत्ता है जो इन्द्रियेतर सत्ता का भी 'नटवद्' रौक्षी में सर्वमिष्य बना देती है। आश्चर्य तो यह है कि अबनारबारी कलात्मकता रमणीय और उदात्त शोभों का समन्वित रूप में प्रस्तुत करती है। रमणीयचेता मन्त्र अग्रणी महत्त्व आत्मरूप प्रकृति के द्वारा कृष्ण जैसे अबनार-रूपों को बाधक रूपमें लौकिक टग से उनकी स्वाभाविक अघोराओं का आस्वादन करता है। पाय ही उनक मूल्य में मिट्टी नहीं समस्त कोकों की स्थापति का दान करता है। अतएव रमणीय इष्टदेव में उदात्त का दसन ही रमणीय उदात्त कहा जा सकता है। लौकिक और अलौकिक शोभों का अपूर्व संयोग रमणीय उदात्त में हीन पहना है।

निश्चय ही मध्यकालीन मन्त्र बरिषों की कला-सृष्टि का प्रमुन्न लक्ष्य रमणीय उदात्त की सृष्टि करवा रहा है। वे अपने रमणीय उदात्त भगवान से सृष्टन भी हैं और अग्रमीत भी होते हैं। उन्हें कटकारण हैं और अग्रना अरव हैम्य भी प्रदक्षित करते हैं। ये समन्वित कार्य-व्यापार रमणीय उदात्त में ही सम्भव प्रतीत होते हैं। प्रायियों और जीवों के साथ समस्त पूर्णता नक्षत्र इन्पादि भगवान के ही कलात्मक रूप हैं। वहीं वे हमें रमणीय विविन्न दान हैं और वहीं उदात्त तथा वहीं मिभिन्न पर्वतीय प्रद्वेग की संख्या की तरह रमणीय उदात्त कहते हैं। संप्या और रूप्य शोभों में आ ज्ञाना है टम रमणीय उदात्त का घाटक कह सकते हैं। इसी प्रकार अबनार कला-मूर्ति में भी द्रैत मत्ता है। राम बुद्ध और तो 'कोमि' मनात्र (मुन्दरता के प्रतिमानक) लजापक हाम के कारण रमणीय हैं और 'निर्गुण महा मगुन राम होकर भाए हैं। इमलिपु व उदात्त भी हैं। आलोच्य दृष्टिकोण से यदि समस्त मध्यकालीन मन्त्रि माहित्य का अप्यवन किया जाय ता यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि मन्त्रों की कलाकृतियों का सौम्यवादी मूख्य रमणीय उदात्त में निहित है।

रमणीय उदात्त कृति का भावक अपनी सेमित्रियता की भावभूमि में रहकर ही रमणीय उदात्त का भावक करता है। कछमरक दृष्टि में अवतारवाद की समस्त अलौकिकता भगवत्ता, प्रकृत्य आदि में रमणीय उदात्त का अपूर्व सपोजन हीन पड़ता है। पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी समस्त दृष्टि छगाकर यह दिखाने का बहुत प्रयत्न किया कि 'रामायण' 'महाभारत' इत्यादि का अवतारवादी अंश प्रकृत है। सम्भव है अवतारवादी अंश प्रकृत हो और परवर्ती हो। किन्तु फिर भी अवतारवादी कछम-दृष्टि अपने युग की बड़ दृष्टि है जिसने समस्त भारतीय चरित्र प्रकारों को रमणीय उदात्त के रूप में आवहित का प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। इसका मुख्य कारण या भारतीय कला-विभूतियों को भक्ति-अभित प्रबोधन के अनुकूल बनाना। क्योंकि स्वयं भक्ति में भी एक प्रकार का रमणीय औदात्य ही है। जो रमणीय उदात्त की तरह भक्ति में भी सेमित्रियता में अतीमित्रियता का और अनुप्योषित भावों में दिव्यता का अनुभव सन्निहित है। भक्ति और रमणीय औदात्य दोनों का कल्प भी मानव-मन से मानवीकृत भयवत्ता का आस्वादन ही जान पड़ता है।

निष्कर्ष

ऐतिहासिक दृष्टि से मूर्खवाक्य करने पर आधुनिक चिन्तन की अपेक्षा प्राचीन युग में व्यावहारिक मानव को ध्यान में रखते हुए अपेक्षाकृत उदात्त का अधिक प्रभाव हीन पड़ता है। क्योंकि प्राचीन युग के मानव का चिन्तन चेतन अनेक दिग्ग आत्मात्मिक, गूढ़ एवं रहस्यवादी पदार्थों और प्राणियों में व्याप्त था। प्रकृति के भीषण एवं भयकर रूप भी उस युग के मानव को जो उदात्ताभूमि प्रदान कर सकते थे वे इस वैज्ञानिक युग के बौद्धिक मानव को नहीं जो समस्त प्राकृतिक व्यापारों का एक बौद्धिक समाचार उपस्थित कर लेता है। अतएव उदात्त भावना की दृष्टि से पुरातन युग को हम भारतीय समूह एवं ससत्त कह सकते हैं। उस युग के मानव के समस्त कथक मयानक या शीघ्र रूप धारी दिव्य देवता भयवा समुद्र मूफान मुसकाधार दृष्टि बाह्य-गर्जन मात्र ही ऐसे विषय नहीं थे जो उदात्ताभूमि का सञ्चार किया करते थे अपितु उस युग के महावीर नेता, सेनानी, योद्धा या सांस्कृतिक महा-पुरुष भी अपनी वैयक्तिक शक्ति, मानक व्यवहार, आनुवंशिक तथा अन्वेषण शौर्य-प्रदधान के द्वारा स्पष्ट रूप से औदात्य की सृष्टि करते थे। जिन्हें हम उदात्ताभूमि के ठिठे आकम्बन विभ्यव कह सकते हैं।

पुराणों में प्रचलित विष्णु के रूप मत्स्य कूर्म वराह नृसिंह कामरु वरदाराम, राम, कृष्ण बुद्ध अपने असाधारण रूप, आचरण चरित्र और कार्य

अवतार द्वारा अवतारवादी बीदान्त का ही द्योतन करते हैं। मत्स्य का बिरम्बर बदता हुआ वह अनेकरूप, जिसके द्वारा वह प्रकल्पकाक में मनु की मातर्जीवता रहा—वह समस्त कथा एक अपूर्व बीदारूप से परिपूर्ण है। जिसमें उद्वाच के विविध गुण ऊर्जा, शक्ति, विस्तारत्व और धारण की प्रकृति रही है। इसी प्रकार कूर्म और मनुस्मृत्यन की कथा में भी कूर्म की अपरिमेय शक्ति, प्लुता, बराह द्वारा समस्त पृथ्वी का शीतों पर उठना सुसिंह की पर्वभा और द्विरम्बकशिशु का विविध स्थिति में जब बामन के पत्नों में समस्त अन्तरिक्ष, मूकोक वाहि का समाहित हो जाना, परशुराम का रौद्ररूप धारण कर शत्रुओं का इक्षीय बार संहार करना, राम और कृष्ण का अपने पराक्रम से समस्त भारत सुधि को समन्वित करने का प्रवास करना और गौतम का लांबिमास स्वच्छिन्न ये समस्त रूप किसी-न-किसी प्रकार के विविध बीदान्त का परिचय देते हैं।

अवतारवादी उद्वाच उच्चतम मानव मूर्त्य का द्योतक मनुष्योद्वाच है

अवतारवादी सौम्यर्ष जिस पराक्रम और अविरिक्त शक्ति के प्रयोग पर आधारित है उसमें केवल काव्यत्व का कल्पित या रमणीय नहीं, अपितु उद्वाच का सौम्यर्ष म्यास है। किसीप्रकार मूढ आत्मबान्धनक अवतार तो उद्वाच प्रकृति क ही रहे हैं, किन्तु विविध प्रकार के साहित्य और कला का उपादाय बनाकर बनके मूढ नहीं, अपितु कलात्मक रूपों में कलाकलाओं से काव्यत्व और रमणीयता से भर दिया है। पौराणिक काक में जब अवतारों की पूजा उपास्य इष्टदेव क रूप में होन लगी, भारतीय प्राचीन बोद्धा बीरोचेनक एणकेत्र से लीरकर शम्पत्य की ग्दररोहीयक रमणीयता और काव्यत्व में विमग्न हो गये। इनका अद्यतन प्रभाव इस युग तक मान्य विष्णु क अवतार-रूपों पर भी पड़ा।

सर्वदा अद्वितीय पराक्रम का परिचय देने वाले विष्णु के अवतार को अपने समष्टित्त प्रभाव की दृष्टि से बीरोद्वाच का द्योतन करते हैं, मध्ययुग में उच्छ्रातर रमणीयता और काव्यत्व की प्रतिपूर्ति बन गए। किन्तु अवतारवाद का सर्वदा अर्थ रहा है कैवल्यी शक्ति क रूप में पराक्रम और शीर्ष का आधिर्भाव। अवतारवाद सर्वदा कल्याणकारीनी शक्ति की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। अवतारवाद इसी से बुद्ध क बान्धोद्वाच को भी निषेधाम्भक रूप में ग्रहण करता रहा है। क्योंकि वह उद्वासीयता, बिरन्धि, रमणीय अर्हिता, भिच्छिपता, काव्यत्व में विश्राम नहीं करता, अपितु सक्रियता सचेष्टता, प्रवच, महान् कार्य महान् धायना, महान् संघर्ष, महान् उपलम्बि, महान् शायित्व, महान् लक्ष्य और महान् सांस्कृतिक या राष्ट्रीय स्वच्छिन्न क निर्माण में विश्राम रखता है।

ऐसे तो मध्य युग कृपमङ्गलता, घमण्डिता, पराधीनता, असहायता आडम्बर और पास्तुर्य का युग रहा है जिससे कुछ मूर्खत्व कवियों को छोड़ कर तत्कालीन साहित्यिक अभिव्यक्तियों में अवतारों के रूप भी हास्यमय प्रकृति के दीख पड़ते हैं। अतएव कबक उन्हें आधार मान कर अवतारवाद का वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो सकता। क्योंकि मुख्य रूप से भारतीय अवतारवाद अनेक उदात्त गुणों और कार्यों से पुरित प्राणी और मानव-जीवन के संघर्ष विक्रम और अद्वितीय सफलता की कहानी है। स्वयं अपनी वीरोदात्त प्रकृतियों के द्वारा सक्रिय एवं संघर्षशील जीवन का टोस (Posture) दर्शाते हैं। उसमें निराशा, असहायता और कर्पण्य का नामोनिशान भी नहीं। पतितपावन अवतारों के उद्धार कार्य भी जयतांत्रिक धनुजम-सेवा, समर्पिता सम्यक् व्यवहार और आचरण की ओर ही इंगित करते हैं। सम्प्रदाय एवं कदियों से मुक्त होकर देखने पर समस्त अवतारवाद की पृष्ठभूमि प्रजातांत्रिक और उदात्त कार्यों से पूर्ण प्रतीत होती है।

भारतीय छलित कलाओं में
अवतारवाद

भारतीय ललित कलाओं का परात्पर आदर्शवाद

भारतीय दर्शन की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसका कथ्य कबल तरब का अभ्येपन नहीं था अपितु उसके माध्यम से मोक्ष प्राप्त करना था। उसी प्रकार कथ्य की दृष्टि से भारतीय साहित्य एवं कला का उद्देश्य भी कथा के लिए कला नहीं अपितु मोक्ष, ब्रह्मानन्द या रसानन्द की उपलब्धि रहा है। अतएव भारतीय सौन्दर्य का बाह्य-वस्तु से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना उसके अन्तःपक्ष से है। प्रो० हिरिवन्धा के शब्दों में सौन्दर्य का वर्णन अन्तःब्रह्म से ही हो सकता है। 'सबसे सौन्दर्य की छायाओं में अभिरूपिणी नहीं हो सकती और न तो किसी वस्तु के माध्यम से उल्लेख किया जा सकता है। 'सूक्तस्वादनवत्' उसका केवल आस्वादन सम्भव है। इसी से मध्य कालीन भक्तों ने अपने उपास्य-देवों के सौन्दर्य का वर्णन किया है, वह 'कोटि-कोटि सनकाम या 'कोटि मनोजलजावन हारे' जैसे प्रतिमानों में व्यक्त संवहा असीम, अनन्त, सर्वातीत एवं अगोचर सौन्दर्य का सूचक रहा है। 'कामदेव' जो भारतीय वाद्य में सौन्दर्य का प्रतिमान माना जाता रहा है, उसकी तुलना में उपास्य का सौन्दर्य अनिर्वचनीय, अक्षयनातीत और सम्हातीत है—उसका कबल भावन हो सकता है वर्णन नहीं। इसके परिणामस्वरूप समस्त भारतीय साहित्य एवं कला मोक्ष या आनन्द प्राप्ति के साधनमात्र रहे हैं, अपने आप में चरमसाध्य नहीं।

अवतारवादी कला का भी चरम उद्देश्य यही रहा है। वह प्रकृति की अनुकृति या प्राकृतिक सौन्दर्य की पक्षपातिनी नहीं है। बरिच प्रकृतिवाद एक कारण के अनुसार ईश्वर-निमित्त का ही अनुकरण करता है। यदि कलात्मक भावुकता की दृष्टि से देखा जाय तो कलाकार मूर्तियों, या चित्रों में अपने भावस-रस पर सम्मूर्तित प्रभावों का अंकन करता है, उसी प्रकार वह विश्व भी ईश्वर के सम्मूर्तित प्रभावों का अंकन है। मनुष्य कभी-कभी अपनी प्रतिष्ठाया का निर्माण करता है उसी प्रकार वह ईश्वर भी विश्व की अन्य विभूतियों या कृतियों में अपने रसक के प्रतिरूपिणी का निर्माण करता है। अतएव वहाँ कला में उपासना का तरब सन्निरिष्ट है, उपास्य मूर्तियों के निर्माण में विसंभर भाव्यात्मिक सूक्ष्मों की दृष्टि से वह आचर्यक हो जाता है कि उनका मूक कथ्य अध्यात्मोन्मुख करना हो और उनकी

आकृतियों में समुचित औदाय की दृष्टि हो।^१ क्योंकि कला सबसे अधिक हृदय को प्रभावित करती है बुद्धि को नहीं। उदात्त पर विचार करते हुए डॉ० सी० होपर ने सौन्दर्य में औदाय और गरिमा के साथ औदार्य और व्यक्तित्व को भी समाविष्ट किया है। उसकी दृष्टि में सौन्दर्य में न तो अम्बकार है न प्रकास यत्कि वह गोशक्ति की द्वाभा है जो तर्क और कल्पना क बीच में अवस्थित है और वे दोनों भी मन और आत्मा क बीच में विहित हैं।^२ कला वस्तुतः सबसे अधिक बुद्धि को नहीं अपितु हृदय को प्रभावित करती है। प्रत्येक हिन्दू सर्वात्मवादी की यह धारणा है कि जो कुछ व्यक्त है वह कला है और वह ईश्वर की अभिव्यक्ति है। यह वह वास्तविक कला है जो पथार्थ प्रेम की तरह निःस्वार्थ उदार और त्यागपूर्ण होती है। बहिक साथ ही यह है कि प्रत्येक मनुष्य का अचेतन कोई-न-कोई आध्यात्मिक अनुभव प्रदान करता है। उस आत्मानुभव से बाध्य होकर वह विश्वास करने लगता है कि वह आध्यात्मिक और निगूढ सत्ता विषय की निपन्ता है। चर्म वस्तुतः अचेतन का विषय होते हुए भी एक गतिशील शक्ति है, यह केवल सामाजिक तन्त्रों पर ही निर्भर नहीं रहता। आदिम युग से ही मनुष्य ने जिन उपास्य, सजीव या निर्जीव कृतियों की उपासना की है, उन समस्त प्रतीकों में एक सृजनात्मकशक्ति विहित है। गाय जैसे पशु पशु भी मनोविज्ञान की दृष्टि से मानव-स्वभाष की आश्चर्यकटाभी, आगही और आन्तरिक स्फुरणों और बज्रों क प्रतीक हैं।^३ पशु-पूजा से मानव पूजा के विकास की सम्भावना की जा सकती है। प्रारम्भ में जो मनुष्य पशुओं पर शीघ्रा करता था वह उत्तरोत्तर अपने में विकसित 'आत्मसम्मोही' कृति की प्रभावता के अरुण यह मानव-मूर्ति की पूजा की ओर आकृष्ट हुआ। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि मूर्ति उन लोगों की चेतना को बहुत प्रभावित करती है, जो कल्पना अधिक नहीं करते।

अवतारवादी कला में भी हम आरम्भ में पशु और वाह में मनुष्य की अभिव्यक्ति पाते हैं इस दृष्टि से अवतारवादी कला उपासनात्मक-रूप का विकास करने वाली मानी जा सकती है। ग्रीस रोमन और बैबेलोन कला की तरह भारतीय अवतारवादी कला भी परम्परागत कला है। इसमें आधुनिक कला क सौन्दर्यवादी तत्त्व भावनात्मक अधिक है और चिन्तनात्मक कम। उनकी ऐनांकित और सम्मूर्तित अभिव्यक्तियों में सौम्य-भावना की

१ आर्ट एंड वॉर (आ यो पृ ११) में संयुक्त। २ आ यो पृ ९।

३ सिम्पो पृ २२६।

४ सिम्पो पृ. २२७।

अपेक्षा परम्परागत प्रतीकवाचक रूप रंग मुद्रा, आकृति-विन्यास या आकार की अनुकूलि अधिक दीक्ष पकती है। अवतारों में सभी का रूपांकन सुन्दर और आकर्षक नहीं है। राम-कृष्ण को छोड़कर अन्य पर्यु, पर्यु-मानव या अर्ध-विकसित अवतारों की मूर्तियों में सौन्दर्यानुभूति की अपेक्षा उपास्य भाव का प्राधान्य होने के कारण उनका भाव विवेक ही अधिक महत्वपूर्ण है। वस्तुतः परम्परागत कला यह है, जो प्रतीकों के माध्यम से साधक को किसी आध्यात्मिक परिणति पर पहुँचाती है। यह कला चाहे मिट्टी की हस्ति हा या पीतल की कोई मूर्ति या अन्य रूप-बद्ध पुरातन चित्र-निर्माण की भावना को ही प्रदर्शित करती है। मनुष्य को प्रत्यक्ष हृति विवेक-निर्मित कला की ही अनुकूलि है। हम अनुकूलि की धारणा में किसी भी आकृति की अभिव्यक्ति का प्राकृत्य का बहुत महत्त्व है। अवतार प्रधान चित्र मूर्ति, बाल्य कलाओं में परम्परागत अनुकूलि की प्रकृति अवरप विद्यमान रही है। उदाहरण के लिए विष्णु की मूर्तियों में अनुकूलि तथा वापशापी धर्म, अक्ष, गदा और पर्युक्त रूप प्रायः सर्वत्र प्रचलित रह रहे हैं। इनके रथामल, आकासबर्ण, शीले तथा हृदय कासे धर्म चित्र, तथा मूर्तियों में परम्परागत शैली में ही प्रयुक्त होने रह रहे हैं। उनकी मुद्रा और भाव अभिव्यक्तियों में पूर्ण प्रशान्तता रहती रही है कि उपासक अपने धर्मों का अनानुकूल आशय उद्य पर सुविधा-पूर्वक कर सकता है। विष्णु ही उपासक की भावानुकूलता उनका रूप सौन्दर्य का सुन्दर अक्षर रही है। इन मूर्तियों में कला की हृति से सर्वसम्मत प्रतिक्रिया का कोई विचार मूल्य नहीं होता। प्राकृत्य चार्मिक मूर्तियों या चित्रों में एक विचित्रता यह भी पकती है कि कुछ मूर्तियों एक ओर तो धर्मों पर अत्यधिक प्रभाव तथा या कला का प्रभाव प्रकृति है, किन्तु दूसरी ओर उनकी अग्रता या कामासेवक भाकृति अक्षेण प्रकृति में कामासेवना का ही अधिक महत्त्व प्रकृति है। मध्यकालीन रसिक सम्प्रदाय के राम-कृष्ण की मूर्तियों में इस द्वैधता का अर्थ होना है। उनके अक्ष अक्ष रसिक हृदयों से देख पाते हैं, उस हृति से इनके अर्थ नहीं। अक्षः अवतारकारी कला भी इस अर्थ से मुक्त नहीं रह सकी है, यद्यपि कि हमने आरम्भ से ही अर्थों का बहुत प्रभाव रखा जाना रहा है।

यह तो वास्तविक साध है कि कला के मूल विचार और विचार में प्रायः रसिक के धर्म देवों में धर्म का अर्थ रहा है। अतः ऐसी प्रेरणा-शक्ति का अर्थ कला ने प्रकृति नहीं किया जा सकता। अतः के 'अक्षेण' मिक के 'प्राथमिक', अक्षेण, अक्षेण की मुद्राओं के सुन्दर मिति चित्र आदि सभी धर्मों की देव रह रहे हैं। प्राकृत्य में धर्म, चित्र, मूर्ति, कृष्ण, साधक,

नाथ्य और काव्य का प्रेरक रहा है। वहाँ कला विरुद्ध प्रेरणा या अभिव्यक्ति की बस्तु रही है, वहाँ धर्म के ऐसी कलाओं को जन्म दिया, जो जीवन और समाज का अभिवर्णन बना बन गयीं। आज भी सत्सार की सचमेष्ट कलाओं में उन्हीं धार्मिक कलाओं का मुख्य स्थान है। वैदिक काल के भवभर महानि-शक्तियों का उर्ध्व-उर्ध्व मानवीकरण होता गया व पीरानिक देवता बनते गए। फल यह हुआ कि देवों की आकृति न बच्चों की रूपरेखा पल्ट ही थीर जब सीधे प्राकृतिक शक्तियों की कृपा प्रदान करने के बच्चे मानवोद्भूत देवों की कृपा की आकांक्षा होने लगी।

जहाँ भारतीय दृष्टि प्रारम्भ से ही लौकिक (प्राकृतिक) की अपेक्षा अलौकिक अधिक रही है। लौकिक और अलौकिक कल्प विषये हम एक प्रकार से उपास्यबाहो कला कह सकते हैं। ज्ञानों में बहुत वैयर्थ्य क्षीण पड़ता है। लौकिक कला की विभाजनों की परन्तु कुछ ही कला के पारम्भी स्पष्टि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कर पाते हैं। कला की परन्तु के लिए वैज्ञानिक प्रतिमा भी असाधारण है और मौल्य्य मूल्यांकन उसकी अपेक्षा और अधिक विस्तृत और स्वापक भावना है। सामान्यतः कला में सौन्दर्य की भावना मनुष्य को बस्तु के प्रति प्रेम तक पहुँचा देती है जो सुन्दर कलाकृति के मापक मूल्यांकन की सर्वोपरि योग्यता है और वहाँ रचनात्मक सक्रियता उस उद्देश्य के प्रति सक्रिय भी रहती है। जतपूज लौकिक और प्राकृतिक कला और अलौकिक भारतीय कला में विविध अन्तर बढ़ है कि उन्हीं प्राकृतिक कलाकार वैसी कलाकृतियों का अंकन करते हैं जिन कृतियों को देखने से केवल ऐतिहासिक संबन्धनात्मक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वहाँ प्राप्य कृतियों अपने अन्तर में विषय रूप सर्वोपरि धारण (Transcendent cause) को प्रस्तुत करती हैं जो सन्धैः-सन्धैः धनस प्रस्तुतित जाती जाती है। प्राप्य कलाकृति कभी भी अपने आप में अन्तिम कृति नहीं है। उनका चरम उद्देश्य कलक कृति निर्माण तक ही परिमिन्न नहीं है, अपितु वह किमी चरम लक्ष्य या माप्य का मापनमात्र है। वह कलाकार द्वारा संयोजित आध्यात्मिक महदना का उद्घुष्ट करती है। वहाँ कला का आध्यात्मिक मूक्य भी स्पष्ट हा जाता है। अन्तर्गत विविध धार्मिक मूक्य ईश्वरबाही प्राप्य या धारणा को आत्ममात्र कर लेता है। मूर्ति या विग्रह त्रियका धार्मिक प्रतीक है। अलौकिक कला मनुष्य में देवी या परापरदृष्टि उत्पन्न करती है। त्रियमे वह उद्देश्य संबन्धित 'भाव-मूर्ति' का मापन करता है, जबकि उद्देश्यमूलक कला कलक प्राप्य दृष्टिकोण या विरुद्ध माववीय अन्त का दृष्टिकोण मात्र उत्पन्न कर जाती है। भारतीय कलाकार किमी कलाकृति के माप्य से उत्तम अन्तर

में समाविष्ट आध्यात्मिक चेतना का दर्शन करता है। जब कि पाश्चात्य कलाकार एक 'मॉडेल' के सामने बैठकर बाह्य संस्करणत्मक रूपरेखा का अपढोक्तन करता है। किन्तु हिन्दू साधक अपने सुख ध्यानयोग के द्वारा मॉडेल के ही माध्यम से आध्यात्मिक चेतना से ही संयोग स्थापित करता है। भारतीय अवतारवादी हृति इस प्रकार साधक और साध्य के बीच एक माध्यम का कार्य करती है। कलाकृति में सर्वातिशय सत्ता की भावना मनुष्य का सम्बन्ध नम 'अतश्च मया' से स्थापित करती है जहाँ द्रष्टा के मन में केवल सौम्यपूर्ण मूर्ति ही नहीं उसका इस भावामुमूर्ति या रसानुमूर्ति भी उत्पन्न होती है। तब इस का भावना करके वह रसिक हो जाता है। अन्त में उस समय की भूमिका पर प्रसिद्धि होना है, जहाँ उसका हृदयकमल में अन्ततोगत्वा साध्य और साधक एककार हो जाते हैं। उस एकत्व के बराबर पर पहुँच कर रसिकों को एक विशिष्ट अनुमूर्ति होती है।

इस प्रकार भारतीय कलाकारों की संवेदना कलाकृति के निर्माण के पीछे एकत्वोत्पादन की सिद्धि को अपने समक्ष रखती है। उनका चरम उद्देश्य सर्वज्ञ साध्य न होकर परोक्ष दृष्टि है। चेतना का उच्चतम रूप ही अवतरित होता है। कला अपने उपासक को ज्ञान के द्वारा क्रमशः विश्व के भू, भुवा तथा लोक तक पहुँचाती है।

काव्य

भारतीय काव्यों में विशेषकर संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी काव्यों में अवतारों का जो रूप वर्णित हुआ है, वे अवतार चरित्र प्रकार से अधिक कलात्मक चरित्र प्रकार हैं। शास्त्रीय संस्कृत युग के कवियों में अवतार-रूपों को कलात्मक ढंग से व्यक्त करने की अधिक प्रवृत्ति दृश्य पड़ती है। महि काव्य में राम-नायक का चरित्र इस प्रकार कहा गया है, जिसमें समस्त मस्कृत उदाहरण अन्तर्मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार लक्षण बहुल ग्रन्थ 'उमरक बालमणि' में राधा और कृष्ण अवतारचरित्र से अधिक अनेक प्रकार के नायिकाओं और नायकों में विभक्त कलात्मक सौन्दर्य के परिचायक राधा-रूपण हैं। यों तो काव्यों में भारतीय सौम्य-चित्तता का चरम मानदण्ड रमणाय इस रहा है। रमण वृत्ति यथावतः सृष्टि और कला का विकास करने वाली भी वृत्ति है। यहाँ से लेकर ममस्त प्रामियों में यह रमण-वृत्ति रही

१ रमण का तात्पर्य रमित होने से है तथा सेन्द्रिय आत्मन की दृष्टि से रमण का सामाजिक और चरम आत्मन्य रमण्य रही है।

है जिसे हम सौम्य-वैतना का आत्म-द्रव्य कह सकते हैं। प्रायः रमण-वृत्ति आश्रय को कल्याणमुसम्बान की ओर प्रेरित करती है। वह जिस कल्प की ओर आकृष्ट होता है, उसमें उसकी उपचेतनात्मक रमण-वृत्ति सञ्चिविष्ट रहती है। यह रमणीय वैतना ही किमी वस्तु की ओर देखने आकृष्ट होने और रमने की प्रेरणा देती है। रमणीय रस केवल दृष्टि और श्रवण का ही विषय नहीं अपितु समस्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का भी विषय है। अतः रमणीय रस में सर्वेन्द्रिय रसत्व है। उसकी मनोवैज्ञानिक विशेषता यह है कि किमी भी एक इन्द्रिय से किसी रमणीय कल्प का पान करते हुये न्यूनताधिक मात्रा में समस्त इन्द्रिय भोग-शक्ति का अचेतनात्मक अस्त-मौग उसी में हो जाता है। फलतः प्राचीन आश्वेचना शास्त्रों में माने गये रस रमणीय रस के ही अन्तर्गत भेद-प्रभेद हो जाते हैं। रमणीय रसवत्ता के सिद्धान्त के अनुसार स्वाधीभाव भी हमारी सहजात् प्रकृति में एक ही होता है। उस स्वाधीभाव द्वारा क अनुकूल प्रतिशूल और उदासीन संबेगात्मक परिस्थितियों विभिन्न रसों को रमणीय रस में प्रकृत करने में योग देती हैं। जिस प्रकार कृष्ण तीता मीठ, लमकीन इत्यादि रसों का पूषक अनुभव करते हुए भी हमारे मन में जो स्वाद का एक विरोध प्रतिमान बन जाता है वही रस क वैषम्य में भी एक स्वाद मात्र का आस्वाद कराता है। उस स्वाद का घोटन प्रायः हमारी अमिच्छा करती रही है। इसी से ककामक सौम्य के आस्वादन में भी किसी को सुन्दान्त अवज्ञा रुग्ता है किसी को दुःखान्त किसी को प्रकम्प, किसी का मुक्तक। जैसे ही उपगवास बढ़ानी चकचिन्न विप्र, मूर्ति संगीत, याम्नु श्राव नाट्य सभी में दृष्टि की स्पष्टि-सापेक्षता मिहित रहा करती है। यह दृष्टि-वैसिष्ट्य अग्यास क कारण बनी हुई 'स्वादानुकूलन का परिणाम है। प्राचीन राजाओं में कोई सिद्धों का दहादना पम्प करता था तो कोई दानियों का चिन्तादना। स्पेन का 'साँच पुत्र' अभी तक स्पेनी जनता क 'दृष्टि-अनुकूलन का प्रतिमान बना हुआ है। इस प्रकार दृष्टि वैसिष्ट्य और बसवा साधारीकृत रूप भीगाकिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों में सौम्य के प्रतिमात्रीकरण और रमणीय रस-बोध क मूल निर्मायकों में से रहा है।

भारत की धर्ममात्र जनता में अवतारवाद (देवता, ब्रह्म शक्ति का आविर्भाव) भारतीय कला क आदर्शाकरण और प्रतिमात्रीकरण का एक मूल अङ्ग हो गया था। भारतीय कला में प्रकृति क स्वतन्त्र, पूष अग्युक्त विषय की स्पृष्टता क मूल कारणों में एक अवतारवाद को भी माना जा सकता है। क्योंकि अवतारवाद ने दर्शन साहित्य एवं कलासृष्टि इन सभी क्षेत्रों में देवता, ब्रह्म और शक्ति को एक एनी अवतारपरक मूर्तिका

ही नहीं प्रकृतत्व और प्रकृतितत्व दोनों का मानवीकरण हो गया। प्रकृत-रूप में अवतरित हुआ और प्रकृति नामा रूपों में, जिसका प्रतिफल यह हुआ कि भारतीय आस्थावान् कवि एक कलाकार कथरना की उद्धान भरणवाले समस्त विश्व-वैभव को प्रकृतत्व या सर्वेश्वरवादी दृष्टि से देखने लगे। प्रकृतत्व, समुद्र-सन्ध्य, सेतु-निर्माण विधावान् कलाओं में भ्रमण इत्यादि उद्घाट प्राकृतिक इत्ये वैसे कार्य भी अवतारवादी धारणा से इस प्रकार अनुप्राणित हुए कि समस्त प्राचीन कल्पना-श्रीका अवतारवादी वातायन से शोभित रहे। प्रकृति का जो मानवीकरण स्त्रीरूप में हुआ उसका साक्षात् प्रमाण पौराणिक प्राकृतिक विश्व पर भी पड़ा। भारतवर्ष की समस्त बहिनों मानवी कृत बहिनों के रूप में अवतरित हुईं और समस्त पर्वत-नदियों के पिता-रूप में प्रस्तुत किये गए। सौवर्ण्य में महादेव और पार्वती के रूप में जो पञ्चमीय प्राकृतिक व्यापार रूपायित हुए हैं, उनमें शिव और पार्वती, पर्वतीय प्रदेश के पुरुष और स्त्रीरूप में ही नहीं प्रतीत होते बल्कि उनकी पीठिका-वरप (सर्व रकप) के रूप में शोभता हुआ समस्त पर्वतीय प्रदेश एक विशेष दृष्टि क्षेत्र में परिसीमित प्रतीत होता है। भारतवर्ष का कोई ऐसा देवता नहीं है जिसका किसी-न किसी प्राकृतिक-सौन्दर्य या प्राकृतिक-सौन्दर्य का रूप-मात्रक समाप्तोक्ति या अन्वोक्तिपरक इत्ये स व्यक्त करन बाका सम्बन्ध रहा हो। किन्तु भारतीय धर्म से अनुप्राणित अवतारवादी पौराणिकता ने उन्हें एक ऐसी कला-दृष्टि के परिधान में प्रस्तुत किया है जो आज भी कला ? विभिन्न अनिष्पत्तवादी अतिपयायवादी प्रभाववादी, रहस्यवादी प्रकृतिवादी और अस्तित्ववादी दृष्टियों में परिष्पन्न दिखाई पड़ती हैं। निष्पत्त ही इस कथन के विस्तार की विलग्न एक प्रथम आवरणकता है। क्योंकि इन निष्पत्त में मेरा सम्बन्ध कुछ अवतारवादी दृष्टि से है।

अवतारवादी कला का वैशिष्ट्य

जो प्राचीनकाल से भारतीय कला और साहित्य के क्षेत्र में अवतारवादी कला-दृष्टि अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भारतवर्ष में काव्य नाटक उपाख्यान माया, बर्षे दाम्प, पद्, मन्त्र, मूय संगीत नृत्य मूर्ति चित्र बाल्य इन सभी की एक अवतारवादी सत्ता भी मिलती है।

कला क्षेत्र प्रकृत

अवतारवादी कला का परिष्पन्न विरलेपन किया जाय ता निम्न तथ्य परिष्पित होत हैं। कलाकार के रूप में स्वयं प्रकृत ही कला-मूर्ति का अवतारक है। कला-मूर्ति में वह स्वयं अपनी विभिन्न शक्तियों की अवतारणा करता है।

कलाकार क द्वारा निर्मित या रचित समस्त सौन्दर्यपरक कलाकृतियों 'पर' ब्रह्म की अवतार-कीटा अवतार पसक चरित का कलात्मक उपस्थान करती हैं। काव्य एवं नाटकों में वह नायक-नायिका या परिकर समूह के साथ भाविक या नट्य रूप में प्रकट होता है। 'अग्निपुराण' में काव्य विष्णु का अवतार बताया गया है तो 'विष्णु पुराण' में समस्त साध कला काव्य आदि उसके स्वरूप माने गए हैं।' उपाख्यानों में विष्णु ही कामदेव और रतिस्वरूप प्रेमी और प्रेमिका रूप में आभिर्भूत होते हैं। कालों में उपास्य इष्टदेव विभिन्न उपास्य देवों या स्थानीय पूज्यरूपों में अवतरित होकर जनस्तुति या लोक-साहित्य का विषय बनता है। उसकी अनुग्रह प्रदान अवतार-कीटाओं का कालों में विशेष दर्शन होता रहा है। भारतीय देवताओं में प्रायः सभी मुख्य देवताओं को राष्ट्रीय मूर्तियों का कलात्मक माना गया है। विश्वनाथ, पावतीकास्य राधा-कृष्ण का 'राधा-कृष्ण मूर्ति', रास, समुद्र मंथन, शेष-सखन आदि अभिकारा मूर्ति अवतारवादी प्रवृत्ति के लक्षण हैं। संगीत में ब्रह्म स्वयं नाद-ब्रह्म क रूप में आभिर्भूत होता है। समस्त राग रागिनियों ब्रह्म क द्वारा उत्पन्न मानी जाती रही हैं। जो उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कीर्तन, स्तुतिगान या स्वयं उन्हीं के द्वारा गायी गयी अभिप्यक्तियों से रहा है।

साहस्य प्रकृति

अवतारवादी कला-चिन्तन में विष्णु और अन्य देवता स्वयं साहस्य के रूप में भी चित्रित किए गए हैं। वे समस्त कलात्मक सौन्दर्य का पान स्वयं करते हैं। वहाँ काव्य चर्चा गायन पाठ आदि होते हैं तथा नाटक संगीत, नृत्य गीत का आनन्दन किया जाता है, वहाँ देवता स्वतः उपस्थित होते हैं। भारतीय मानना के अनुसार मूर्ति चित्र और वास्तुकलाओं में भी प्रकट होकर वे स्वयं उपस्थित होते हैं। चित्र और मूर्ति में उनकी कलात्मक मुद्राओं या भंगिमाएँ स्थापित होती हैं। वास्तुकला तो विष्णु का वैकुण्ठ धाम है जिसका निर्माण वे स्वयं विश्वकर्मा क रूप में करते हैं। वास्तु कला में वे वास्तु प्रकृति की मत्ता क रूप में भी आभिर्भूत होते हैं।

इस प्रकार अवतारवादी कला में प्रकृति की कृति और प्राकृतिक तीनों हैं। वह कलाकार क रूप में स्वयं कर्ता है। अपनी व्यक्त, प्रकृत और प्राकृतिक विधि में वह स्वयं कला-कृति है तथा भक्तों और साहस्यों क रूप में स्वयं

प्राहक है। कर्ता और प्राहक के रूप में मनुष्य एवं उसकी अभिव्यक्तिप्रणयिता और कला-कृति तथा उसके उपकरण विभिन्न कारण हैं।

शैली की दृष्टि से भी भक्तारवादी कला की कुछ अपनी विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। भक्तारवादी कला में वर्णरसक पर समस्त रमणीय आकृतियों को सशोभ रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। वर्णरसक पर यहाँ एक श्रेयता या भक्तार का प्रामुख्य है—यहाँ वह समस्त ऐश्वर्य और विभूतियों के साथ उदात्त रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। यदि एक रसक पर राम की महत्ता का वर्णन है तो समस्त भक्तार उनका अंग-स्वरूप होकर राम में ही अन्तर्मुक्त हो जाते हैं, और सभी की लीलाओं में राम की सत्ता आगेपिछ की जाती है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव में भी एक की प्रमुखता होने पर अन्य यहाँ अंग-स्वरूप ही चित्रित होते हैं। भक्तारवादी वर्णरसक मूल रूप में सशय अपनी परम्परागत कथावस्तु से सम्बद्ध रहती है। इसका वर्ण विषयों को नैतिक और विद्युत् सौन्दर्यपरक दोनों दृष्टियों से व्यंजित किया जाता रहा है। पश्चिमी 'कला के लिए कला के विचारक विने विद्युत् सौन्दर्य-चेतना कहते रहे हैं, वह भारतीय रस-कृति के अन्तर्गत पृथिवी हो सकती है। यद्यपि भारतीय भक्तारवादी कलात्मक सौन्दर्य ऐश्वर्यक प्रेम या वासनात्मक भावों का उत्पादन न होकर उपास्यवादी भक्त और उदात्तकृत भावों का ही उद्घाटन होता है। रस में 'आकी रही भावना सैसी, मनु मूरव देगी तिन तैसी की पद्धति सङ्घर्षों के आस्थात्मक में कार्य करती है।

कलात्मक अभिव्यक्ति के उपक्रम में भक्तारवादी उपादानों का एक ही साथ वर्णनीकरण, सरकृतिकरण, मानवीकरण, समाजीकरण और सगमवापीकरण हो जाता है। एक भक्तारकृति 'राम' प्रकृतवादी सत्ता के रूप में भी व्यंजित होते हैं, साथ ही भारतीय विविध एवं सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप लान-दान रहन-सहन बस-भूषा, बाह्य-बाह्य तथा रक्षणीय मानवीय, अन्तर्द्वेषीय प्रेम, व्यवहार, लोक्यचार सभी का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रह्म से मानव के रूप में यहाँ इनका मानवीकरण होता है व वह स्वाभाविक रंग से मनुष्य की मुक्तात्मक गुणात्मक और कामनात्मक भावनाओं से युक्त मनुष्य बन रहते हैं। उनका चरित्र-विधान में स्वभावगत कमजोरियों अथवा हर्षों मिथ्या, अनुता आनन्द शीघ्र, कार्यण्य रहान, भाकपण इयामोह अन्धन द्वारा यदि एक भारतीय मानव के परिवार में व्यक्त किए जाते हैं।

अन्य सभी में एक ही श्रेयता या भक्तार के अनेक सामाजिक या पारिवारिक रूप कदाचिन् ही मिलते हैं। किन्तु भारतीय भक्तारवादी उपास्य

कलाकार के द्वारा निर्मित या रचित समस्त सौन्दर्यपरक कल्पकृतियों 'पर' मध्य की अवतार कीका भवना उसके चरित का कलात्मक उपस्थान करती हैं। काव्य पूर्व नाटकों में यह वाचक-नायिका या परिकर समूह के साथ मायिक या नटवत् रूप में प्रकट होता है। 'भक्तिपुराण' में काव्य विष्णु का अवतार बताया गया है तो 'विष्णु पुराण' में समस्त शास्त्र कला काव्य आदि उसके स्वरूप माने गए हैं। 'उपासनाओं में विष्णु ही कामदेव और रतिस्वरूप प्रेमी और प्रेमिका रूप में आविर्भूत होते हैं। वस्तुओं में उपास्य इन्द्रदेव विभिन्न उपास्य देवों या स्थानीय पूज्यरूपों में अवतरित होकर अवस्तुति या काक-साहित्य का विषय बनता है। उसकी अनुग्रह प्रदान अवतार-कीकाओं का चर्चाओं में विशेष वर्णन होता रहा है। भारतीय देवताओं में प्रायः सभी मुख्य देवताओं को प्राचीन मूर्तों का कर्ता या उद्गातक माना गया है। शिवतांडव पार्वतीहारण रामा-कृष्ण का 'राधा-कृष्ण मूल्य रास समुद्र मंथन, क्षेप-बापन आदि अभिक्रान्त मूल्य अवतारवादी प्रकृति के शापक हैं। संगीत में ब्रह्म स्वयं वाद-ब्रह्म के रूप में आविर्भूत होता है। समस्त राग रागिणियों ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न मानी जाती रही हैं। यों उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कीर्तन, स्तुतिपात्र या स्वयं उन्हीं के द्वारा गायी गयी अभिष्पत्तियों से रहा है।

सहृदय ब्रह्म

अवतारवादी कला-चिंतन में विष्णु और काव्य देवता स्वयं सहृदय के रूप में भी चित्रित किए गए हैं। वे समस्त कलात्मक सौम्य का पात्र स्वयं करते हैं। जहाँ काव्य चर्चा स्पष्ट, पाठ आदि होते हैं, तथा वादक, संगीत, मूल्य गीत का आयोजन किया जाता है वहाँ देवता स्वयं उपस्थित होते हैं। भारतीय भावना के अनुसार मूर्ति, चित्र और वास्तुकलाओं में भी प्रकट होकर वे स्वयं उपस्थित होते हैं। चित्र और मूर्ति में उनकी लीलात्मक मुद्राओं या संविभाषण रूपांकित होती हैं। वास्तुकला तो विष्णु का बैकुण्ठ धाम ही शिवता निर्माण से स्वयं विश्वकर्मा के रूप में करते हैं। वास्तु कला में वे वास्तु मंडप की सत्ता के रूप में भी आविर्भूत होते हैं।

इस प्रकार अवतारवादी कला में ब्रह्म कर्ता, कृति और प्राहक तीनों हैं। यह कलाकार के रूप में स्वयं कर्ता है। अपनी व्यक्त, प्रकट और प्रादुर्भूत शक्ति में यह स्वयं कला-कृति है तथा भक्तों और सहृदयों के रूप में स्वयं

प्राहक है। कर्ता और प्राहक के रूप में मनुष्य एवं उसकी अभिव्यक्तता और कला-कृति तथा उसके उपकरण निमित्त कारण है।

सौंदर्य की दृष्टि से भी अवतारवादी कला की कुछ अपनी विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। अवतारवादी कला में वर्णस्युक्त पर समस्त रमणीय आत्मबलों को सबोक्त रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। वर्णस्युक्त पर जहाँ एक देवता या भवतम का प्रामुख्य है—वहाँ वह समस्त देवर्ष और विष्णुतियों के साथ उदात्त रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। यदि एक स्थल पर राम की महत्ता का वर्णन है तो समस्त अवतार उनके अंग-स्वरूप होकर राम में ही अन्तर्मुक्त हो जाते हैं और सभी की क्रीडाओं में राम की सत्ता पर अन्त्य वहाँ अंग-स्वरूप ही चित्रित होते हैं। अवतारवादी वर्णवस्तु सूक्त रूप में अथवा अपनी परम्परागत कथावस्तु से सम्बद्ध रहती है। इसके अन्त्य विषयों को नैतिक और विद्युत् सौम्यपरक दोनों दृष्टियों से व्यञ्जित किया जाता रहा है। पश्चिमी कला के लिए कला' के विचारक जिसे विद्युत् सौम्य-वेतना कहते रहे हैं वह भारतीय रस-सृष्टि के अन्तर्गत गृहीत हो सकती है। यद्यपि भारतीय अवतारवादी कलात्मक सौम्य-प्रेमिक प्रेम या वासनात्मक भावों का उत्पादन न होकर उपास्यवादी भ्रष्टा और उदात्तकृत भावों का ही उद्भावक होता है। रस में 'जाकी रही भावना जैसी मनु मूरत रेगी तिन तैसी की पद्धति सङ्घर्षों के आस्वादन में कार्य करती है।

कलात्मक अभिव्यक्ति के उपक्रम में अवतारवादी उपादानों का एक ही साथ दृशनीकरण संस्कृतिकरण, मानवीकरण समाजीकरण और सगम्यापीकरण हो जाता है। एक अवतारकृति 'राम महावादी सत्ता के रूप में भी व्यञ्जित होते हैं, साथ ही भारतीय विविध एवं धार्मिक आदर्शों के अनुकूल ज्ञान-दान रहस्य-सहन वेद भूषा, बाह्य-बाह्य तथा स्थानीय, प्रान्तीय अन्तर्देशीय भ्रमण व्यवहार, कोकाचार सभी का प्रतिनिधित्व करते हैं। महा से मानव के रूप में जहाँ इनका मानवीकरण होता है वे बड़े स्वाभाविक ढंग से मनुष्य की सुखात्मक दुःखामक और कामनात्मक भावनाओं से युक्त मनुष्य बने रहते हैं। उनके चरित्र विधान में स्वभावगत कमजोरियों अस्वास्थ्य, मिथता सानुता आशुच्य शौर्य कार्यक्षम रसान आरुपण स्वामोह, अन्ध, धारण आदि एक सामाजिक मानव के परिवार में व्यक्त किए जाते हैं। अन्य धर्मों में एक ही देवता या अवतार के अनेक सामाजिक या पारिवारिक रूप कदाचित् ही मिलते हैं। किन्तु भारतीय अवतारवादी उपास्य

बाह्यक पिता, पुत्र, भाई, मित्र शासक, असहाय, बाह्यिका गारी रमणी, प्रेमिका माता दुत्यादि समस्त रूपों में दृष्टिगत होते हैं। इसीसे भारतीय अवतारवादी कला और कृतियों भारतीय संस्कृति के उदात्त, व्यापक लोकप्रिय और जनताभिरुचि भावों का उपस्थापन करती हैं।

मिश्रण ही अवतारवादी कला का एक रूप साम्प्रदायिक भी मिलता है—जहाँ विभिन्न अवतार-उपास्य हृदय के रूप में आराध्य हुए हैं। किन्तु फिर भी उनमें पश्चिमी साम्प्रदायिक कठरता नहीं मिलती जो अवतार और अवतारवादी कला की सांस्कृतिक क्षेत्र को उपेक्षणीय बना दे।

इस प्रकार भारतीय कला और साहित्य में अवतारवाद एवं उसकी विचार धारा का महत्वपूर्ण अवदान रहा है। अवतारवादी कला के एक छोर पर सर्वशाक्तिमान् परमेश्वर स्थित है तो दूसरे छोर पर मनुष्य और उससे भी हीनतर पशु हैं। इन छोरों के बीच में समस्त प्राणिजगत जो मनुष्य की आध्यात्मिकता का केन्द्र है आत्मसात् हो जाता है। अवतारवादी कला इन्हीं छोरों के बीच में गीय और मुच्य समस्त उपादानों को समुचित स्थान देती है। फिर भी इस कला में प्रत्येक मानव-रूप के दौ सभोंपरि होने के कारण वह प्रत्येकमानव कला एवं मीमंसा का प्रमुख विषय रहा है। उसकी अभिव्यक्ति के अनुकूल संगीत नृत्य मूर्ति चित्र और वास्तु जैसी प्रमुख कला-विधाओं में आधिर्भूत प्रत्येक उसी मानवतावादी रूप का अभिव्यक्त मुक्तिसंगत मान पड़ता है।

संगीत

भारतीय साधना में संगीत का सम्बन्ध नादप्रत्यय से रहा है। सांख्य दृष्टि से ब्रह्म का प्रथम भूतात्मक आधिर्भाव आकाश है जिसका गुण नाद है। इसमें नाद में उसके स्वरूप की सर्वाधिक मात्रा लोग मानते हैं। इस नादप्रत्यय की अवतार-परम्परा शैव और भागवत दोनों में मिलती है। प्रत्येक शैव मत में संगीत-दर्शन की विचार धारा उस परमब्रह्म पर आधारित है जो अनेकता में एकता का धोतक है। वह प्रकाश (चेतना) और विमर्श (स्वात्मत्व) का सगुण रूप है। सृष्टि जबक मत् में दो प्रकार की है वाचक शब्द और वाच्य अर्थ। वाचक शब्द के आधिर्भाव में 'प्रकाश प्रमुख रहता है और वाच्य अर्थ में विमर्श। परा वाक या पराशक्ति, वर्ण, वज्रमाला या पर्यममूद (शब्द) का आधिर्भावक है। चेतना का प्रकाश किन्तु ब्रह्म जाता है क्योंकि वह अपने परा प्रकाश को न छोटे हुए धर्मव्य

विषयों और वस्तुओं का आविर्भावक है। उसी प्रकार विमर्श पर नाद कहा जाता है, क्योंकि यह अपने विमर्शत्व की प्रकृति को झोढ़ता नहीं, जब कि यह जीव कला के रूप में स्वयं अवतरित होता है। इस प्रकार यह समस्त जीवों सम्पूर्ण व्यक्त-समूहों और अनेकानेक सीमित विचारों में उत्पन्न होता है जिसे जम्बू या पराबाहू कहा जाता है। यह जम्बू को अपने सदस्य सम्बन्ध रखने वालों में मानता है। यह विमर्श, नाद पराबाहू या पराबाहू समस्त भावों की पूर्ण एकता की अवस्था है। इसके सूक्ष्म स्वरूप से समस्त ध्वनि-समूह और विचार स्फुरित होते हैं। पराबाहू की अभिव्यक्ति क्रमशः परवन्ती मध्यमा और बैजरी इन तीन रूपों में होती है। यह जब समस्त शक्तियों का समूह है जिसे हम समूह ध्वनि में पाते हैं। यह सक्षीय वस्तुओं में उनकी श्रेयता के साथ लक्ष्यकार होकर, ध्वनि, बुद्धि आदि के साथ नहीं अपितु सबसे परे होकर उपस्थित रहती है। इसका व्यक्त भाव प्रायः या व्यक्त भावना के साथ पूर्ण तादात्म्य रखता है। क्रमशः विभिन्न अवस्थाओं में परवन्ती मध्यमा और बैजरी में ध्वनि-ध्वनि परावन्त का उद्भव होता है। परवन्ती में ध्वनि और मध्यम में बहुत सूक्ष्म अन्तर रहता है। द्वितीय में सांख्यिक रूप से परवन्ती और बैजरी के पारंपरिक बोध का स्पष्टीकरण हो जाता है इसी से इस अवस्था को मध्यमा कहा जाता है। तृतीय बैजरी की अवस्था में नाद इन्द्रिय द्वारा ध्वनि की उत्पत्ति होने के कारण ध्वनि का स्पष्ट बोध होता है।

संगीत के स्वरों का पराबाहू से विभिन्न सम्बन्ध, वस्तुतः पराबाहू ही समीप राग-रागिणियों के रूप में अभिव्यक्त होता है। संगीत में तन्मय होने से सन्तुष्ट जगत् से परे पहुँच जाता है। इसी से संगीत का दर्शन नाद आकाश के रूप में विख्यात है। जिस प्रकार रोच ध्वनि-समूह परवन्ती में निहित रहता है, वैसे ही वाद्य-ध्वनियों का समूह मध्यमा में समाहित रहता है।

निष्कण्ठिक तत्व में 'शक्ति' विशेष व्यापार रूप है। पराधिप और परामधि वस्तुतः निरपम्व और निरपम्व हैं, जिनमें शक्ति से नाद और विन्दु की उत्पत्ति होती है। नाद ही नाद प्रकृति है। समस्त साध और ज्ञान इन्हीं में निहित हैं। पराविन्दु को शक्ति की वनावस्था कहा जाता है। परम निष्क में समस्त वैजता समाहित रहते हैं। किन्तु सैवों में जो विन्दु है उसे ही पौराणिक महाविन्दु ईश्वर अवस्था महापुनर कहा करते हैं। शक्तियों का

साध्यब्रह्म ही वस्तुता सगुण शक्ति का सगुण ब्रह्म है^१। यह सम्प्र नीर अर्ध के रूप में नाम और रूपात्मक है।^२ नाद की उत्पत्ति की एक और रूपरेखा 'धीमन्नागावत' में मिलती है। 'भागवत' के अनुसार ब्रह्मा पूर्ववृष्टि का ज्ञान संप्राप्त करने के लिए एकत्र चित्त हुए। उस समय उनके इन्द्रवाक्यता से कण्ठ-ताहु आदि स्थानों के संबन्धन से रहित एक विकचन अमृत नाद प्रकट हुआ।^३ यह बड़ी अनाहत नाद है जिसे जीव भी अपनी मनोवृष्टियों को रोक देने पर अनाहत नाद का अनुभव कर सकता है। अनाहत नाद से अकार, उकार मकार इन तीनों मात्राओं से युक्त ओंकार हुआ। इस ओंकार की शक्ति से ही प्रकृति अर्थात् स्वयं स्वयं रूप में परिणत हो जाती है। ओंकार स्वयं भी अर्थात् और अनादि है तथा परमात्मा-स्वरूप होने के कारण स्वयं-प्रकाश भी है। इसी परमवस्तु को परमात्मा, भगवान्, ब्रह्म आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। जब अक्योमिद्वय की शक्ति सुप्त हो जाती है तब भी इस ओंकार के समस्त अर्थों को प्रकाशित करने वाले स्फोट तत्व को जो सुनता है तथा सुपुष्टि और समाधि इव अक्षरवाच्यों में सबके अभाव को जानता है वही परमात्मा विद्युत् स्वरूप है। ओंकार परमात्मा से इन्द्रवाक्यता में प्रकट होकर वेदरूपा बाली को अभिषेक करता है। इस प्रकार ओंकार अपने आशय परमात्मा परब्रह्म का साक्षात् वाचक है तथा बड़ी सम्पूर्ण मंत्रों, उपनिषदों और वेदों का सनातन बीज है।^४ 'धीमन्नागावत' की परम्परा 'नादविष्णु उपनिषद्' में भी ओंकार से आरम्भ होती है। नादविष्णु उपनिषद् के अनुसार प्रणव (ओंकार) और ब्रह्म की एकता के चिन्तन से नाद-रूप में साक्षात् स्योतिमय शिवस्वरूप परमात्मा का आविर्भाव होता है। योगी विद्यासक से बैठकर बैष्णवी मृदा धारण करके बाहिने काम के भीतर उठते हुए नाद-अनाहत ध्वनि को जब सुनने का अभ्यास कर लेता है तो बाहर की ध्वनियों उसमें स्वयं आहत हो जाती हैं।^५ अनाहत नाद क्रमशः समुद्र, बाहल मेरी, शरणा सुदग बरा गगादा किट्टिनी, बंसी, बीणा और क्रमशः अंत में अमर की ध्वनि के सदृश सुनायी पड़ता है। नाद ही मग रूपी मृग को बाँध सकता है तथा मग रूपी तरंगों को रोकने में समर्थ है।^६ 'नादविष्णु उपनिषद्' में शिव और विष्णु दोनों को संस्थापित करते हुए कहा गया है कि बड़ी भगवान् विष्णु का परम पद है। जब तक शत्रुओं का उच्चारण और अवन होना है तभी तक मग में आकाश का संरक्षण रहता है।

१ नं. वा. पृ. १। २ सं. वा. पृ. २१। ३ भा. १२. ६. ३०।

४ भा. १२. ६. ३-४। ५. उप. ना. उ. पृ. ६०१. १. २. २-११।

६ इ. ना. उ. पृ. ६०२. २. २. १-३ और ३. १-५।

मिःसब्द होने पर तो यह परमज्ञ परमात्मा में ही अनुभूत होता है। जब तक नाद है तब तक मन है। नाद के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होने पर मन भी अमन हो जाता है। ससब्द नाद अक्षर-ब्रह्म में शीम हो जाता है। इस मिःसब्द नाद को ही परमनाद कहते हैं। इस प्रकार नाद ब्रह्मनाद में परमात्मा और ब्रह्म को परमनाद और अनाहत नाद से भी अभिहित करने का प्रयास किया जाता है। इसी अनाहत नाद का अक्षर एव स्पृष्ट रूप आहत नाद है जिससे भारतीय संगीत की उत्पत्ति मायी जाती है। केन्द्र शीव और वैष्णव दोनों परम्पराओं के विवेचन से स्पष्ट है कि आविर्भावामक क्रम समाप्त रूप से प्राण्य कहा है। जिसके चकते नाद में हम राग-रागिनियों में भी यही उत्पत्ति कम पाते हैं।

राग-रागिनियों का अद्यतारवादी क्रम

भारतीय दर्शन में ब्रह्म के आविर्भाव की अितनी प्रणालियाँ प्रचलित रही हैं उनमें जो उदाहरण अधिक प्रचलित रहे हैं। एक मत के अनुसार ब्रह्म में सृष्टि या सृष्टि के प्राणियों की उत्पत्ति विवर्तप्रधान-रगुसपपत् हुई है। इस सृष्टि से जीवात्मा परमात्मा का विवर्त है। दूसरे मत के अनुसार ब्रह्म जीवात्मा से अलग नहीं और जीवात्मा अलग से निष्पत् नहीं है। जिस प्रकार सोमे से अँगूठी, कुण्डक आदि अनेक आभूषण बनते हैं परन्तु अन्ततः वे सोना ही रहते हैं। उसी प्रकार स्वर्ण रूप ब्रह्म में कुण्डक रूप अलग प्रकट होता है।^१ ब्रह्म से स्वेदज, अण्डम उज्ज्वल और जरायुज इन चार प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति हुई। उनमें जरायुज मनुष्य शरीर ही नाद के किये परम उपयोगी माना गया है। मनुष्य के शरीर का नाद अनेक राग-रागिनियों के प्रादुर्भाव का कारण है।

'विष्णु पुराण क' अनुसार समस्त शाक्तों और कायों के साथ संगीत एव उसमें समस्त राग-रागिनियों को वायु मूर्तिधारी विष्णु-स्वरूप बताया गया है।^२ शांकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही समस्त कलाओं का वास्तविक विषय है। म० सू० १ १ २० के भाष्य में शांकराचार्य ने कहा है कि ब्रह्म समस्त ऐहिक और आध्यात्मिक गानों का विषय है। यों तो भारतीय साधना में कवि कलाकार प्रजापति और विश्वकर्मा इन सभी के कानों को एक महत्त्व माना जाता रहा है। सभी सृष्टि करते हैं। तथापि राग-रागिनियों की उत्पत्ति का क्रम सिद्ध और पार्वती से माना जाता है, किन्तु छिद्र भी इनकी उत्पत्ति की एक अवतारवादी परम्परा ब्रह्म से भी सम्बन्ध रही है। उस परम्परा के

१ संगीत वाक्यांक ५ १ संगीत रत्नाकर २२।

अनुसार ऋगः राग और ३६ रागिनियों का आविर्भाव ब्रह्म लोक से हुआ है।^१ इस अवतार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्वर्गों के अनन्तर राग रागिनियों का यह आविर्भाव पुरुषों और स्त्रियों के रूप में माना जाता रहा है।^२ इससे स्पष्ट है कि काव्य की तरह स्वर्गों का सम्मूर्तन विम्बीकरण के द्वारा करने का प्रयास किया गया। भारतीय अवतारवाद देवपात्री आस्था के मध्य में स्थित मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है। किन्तु अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसका प्रमुख काय विम्बीकरण मानवीकरण और मानवीय स्तर पर मूल्यांकन रहा है। यही एक मान्यभूमि है जहाँ अमूर्त और मूल तथा देवता और पार्थिव मानव एक स्तर पर प्रतिष्ठित किये जा सकते हैं। भक्त को भगवान् की चाह होती है और भगवान् को भक्त की। इस उपक्रम में अवतारवाद मानववादी मूल्य का विभिन्न समतुल्य उपस्थित करता है, जिसमें ब्रह्म का मानवीकरण और मनुष्य का ब्राह्मीकरण निहित है। पद्य और मनुष्य के लिए हमसे बढ़कर सर्वोत्तम मूल्यांकन हो सकता है कि—पद्य ब्रह्म है और मनुष्य ब्रह्म है। अतः मत्स्य बराह राम कृष्ण आदि का ब्राह्मीकरण यन्तुता पद्य और मनुष्य के उच्चतम मूल्य का द्योतन करता है। शुष्क विस्तार का ब्रह्म जब ऐंग्रिक चेतना का उदयोप्य होता है उस अवस्था में उसका सबसे अधिक निकटवर्ती पद्य या मनुष्य ही हो सकता है। ऐंग्रिक प्रतीक और विम्ब ही मानवीकृत होकर सबसे अधिक भास्वाद्य रहें हैं। सम्भवता इसीसे अभिव्यक्ति से सम्बद्ध समस्त शास्त्रों का एक अवतारवादी रूप भी प्रचलित रहा है जिसमें मानवीकरण के द्वारा उनको अधिक सग्निय बनाने की चेष्टा होती रही है।

इस दृष्टि से राम-रागिनियों के ऐतिहासिक उद्भव-क्रम का अध्ययन करने पर देखा जाता है कि राग-रागिनियों का स्वरूप अमूर्तवस्था में था किन्तु मध्ययुग के पूर्ववर्तीकाल में समस्त शास्त्रों के अवतारीकरण का धारम्भ होने पर राग-रागिनियों का सम्मूर्तन भी स्थान था। स्थानात्मक सार्व-विशेषों के माध्यम से विकसित हुआ। अतः राग-रागिनियों के अवतारीकरण का

^१ श्री रा पृ ४४।

पद्यम सार संक्षिप्त (नारद) के अनुसार—

‘राग्य’ बदन रागिन्यः बर-त्रिजप्तर विभवा।

माग्या मन्त्र-मरमि कलागं मनुष्यामै ॥^३

यौन राग और ३६ रागिनियों अर्ध-सुन्दर शरीर के साथ ब्रह्म के शरीर से प्रकट हुए और उन्होंने सद्य ब्रह्म का पुन-दान किया। वहाँ ‘पात्र विमल’ उनके अवतारवादी रूप का योग्य ज्ञान पढ़ता है।

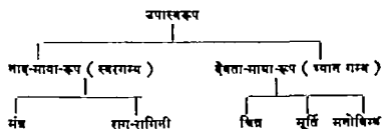
तीन स्तोत्रानों में विमल किया जा सकता है। सर्वप्रथम कः राग और ३६ रागिनिधों क मूर्त ध्यान-चित्रों का विकास हुआ, जिसक फलस्वरूप वे राग-रागिनिधों ब्रह्म लोक से आधिभूत मानी गयीं। इनके अवतार का प्रयोग स्वयं-यत्न करता था। इन साधन क्रम को हम निम्नरूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं—

संगीत रसाकर	{	आहत माद
		↓
राग विधाव	{	स्वर चित्र—राग (धारणा-चित्र)
		↓
रागमाका	{	मन्त्र चित्र—ध्यान मूर्ति (राग-विम्व)
		↓
		रागीत चित्र (चित्र कलात्मक विम्व्यास)

जो तो 'राग' का उद्भव विम्व 'रक्ति' या 'रज्जव' से माना जाता है, वह मुख्यतः चित्र-कला का ही एक गुण है। अतः उपास्य की माद-मूर्ति भी चित्र और मूर्ति की धर्मि हमजीव चित्रोद्भावना की अपूर्व क्षमता से सम्पन्न है।

भारतीय मन्त्र-साधना में प्रयुक्त मन्त्रेकराग मन्त्र के माधी को सवेष्टामक बनाने में सफल होने क कारण मनोबैज्ञानिक महत्त्व रखता है। भारतीय राग-रागिनिधों में मन्त्रेक का स्वरूप किसी अप्सरा देवता राग्यर्ष या देव की तरह है। ऐसा समझा जाता है कि देवकोक क देवताओं की तरह राग रागिनिधों भी किसी अज्ञात धारणात्मिक जगत में अवस्थित रहती हैं। राग्य, यादव और अर्धम क द्वारा वे आवाहनीय होकर पृथ्वी पर अवतरित होती हैं। हम जानना भी नहीं नहीं चिरवास मिहित है जिसका सम्बन्ध मूर्ति या अर्धा विम्व से रहा है। भारतीय साधक ऐसा मानते हैं कि साधक या मन्त्र द्वारा आध्यात्म कर्मण पुकार करने पर उपास्य देव-मूर्ति रूप में स्वयं से अवतरित होकर प्रकट होने हैं।

इसी प्रकार मन्त्रक देवता अपन बीज मन्त्र द्वारा भी आधिभूत होता है। उपास्य क क रूप वस्तुतः 'माद-माधा-रूप' और 'देव-माधा-रूप' का प्रकार क हो जाते हैं, जिन्हें निम्न रूपों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है।



इस विचार-बारा का प्रबलतम 'राग विबोध' के द्वारा हुआ है। इस ग्रन्थ के अनुसार स्वरों के द्वारा जिस रूप का साक्षात्कार होता है—वह है 'गाढ़ भाषा' और दूसरा है 'देव भाषा' जिसकी आत्मा है वह मूर्ति जिसमें देवता आबिभूत होता है। गावक की यह धारणा रहती है कि किसी राग या रागिनी अपने प्रभाव से उसे भौतिक 'गाढ़-भाषा-रूप में अवर्तित होने के लिए प्रेरित करत है। यदि उस रागिनी से यह प्रभाव नहीं पड़ता तो यही समझा जाता है कि उसे सफ़लतापूर्वक नहीं गाया जा सका। एक सफ़ल गावक राग या रागिनी गाकर उसके अधिष्ठान् देवता को अवतरित करने में समर्थ होता है और उसकी मूर्ति का साक्षात्कार कर लेता है।' ऐसा समझता है कि राष्ट्रीय राग-रागिणियों के रूप अपने प्राचीन स्थायी रूपों में रुढ़ से हो गए थे और उन्हें मिक्ष रूपों में नहीं गाया जा सकता था। इस सम्बन्ध में नारद ने सम्बद्ध एक कथा पुराणों में प्रसिद्ध रही है। कहा जाता है कि एक बार नारद स्वर्ग लोक में गए। उन्होंने देखा कि कुछ अंग भग पुण्य और स्त्रियों वहाँ रो रही हैं। नारद के पूछने पर उन्होंने बताया कि एक संगीत को अज्ञानी नारद ने इस तरह गाया है कि हम राग-रागिणियों के अंग-भग हो गए हैं और हमारे स्वरूप बिहृत हो गए हैं। इस पर इतना नारद ने पुनः विष्णु से संगीत की शिष्या देने की प्रार्थना की। हम पौराणिक कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आद्योप्य काल तक राग-रागिणियों का स्वरामक समूर्तन एक स्थायी रूप धारण कर चुका था और दूसरा यह कि सिव के मरुत विष्णु भी परम संगीतज्ञ थे।

काम्य की तरह राग का लक्ष्य भी रमणीय रस का आस्वादन ही है। भारतीय कलाओं में रूप और विषय में अविनाभाव सम्बन्ध रहा है। संगीत हमारे मन में उद्भूत रागात्मक मनोचित्रों को ही रञ्जित करता है। अतः रमणीय आस्वादन विम्ब ही संगीत की भाव प्रतिमा (आर्कैटाइप्स) है। राग और रागिणियों की मूर्तियों में वस्तुतः आस्वादन विम्ब के रूप में भाव प्रतिमाओं का ही आबिर्भाव होता है। रमणीय रस से ही इनका अविर्भाव

सम्बन्ध रहता है, जिसके कुछ स्वरूप संगीतज्ञ के लिए प्रत्येक रस के प्रत्येक राग का ज्ञानना आवश्यक हो जाता है। भारतीय देवताओं के रूपों और आकृतियों में सुष, परीर विन्द्यास, हाथ पाँव इत्यादि की जो अनेकार्थकता उचित होती है, उसे हम उनके रागात्मक रूप भी कह सकते हैं। क्योंकि विविध रागों और गीतों में गाए हुए उनके कीर्तन उनके रूप विशेष का भी परिचय देने हैं। अर्थात् विग्रह में तो उनके प्रतीकार्थक रूप सम्मूर्तित रहता है, किन्तु नाट्य, नृत्य, संगीत और काव्य में हम उनके 'मूर्त्त' स्वीकार्थक या गतिशील रूप का भी आधिर्भाव पाते हैं। दूसरे शब्दों में यही कहा जा सकता है कि उनमें प्रतीकत्व की अपेक्षा विग्रहता का प्राधान्य होता है। राग देवता भावों के स्वर और रूप सम्मूर्तित रूप हैं, जो अमूर्त मनोधारणा के स्थान में मनोविश्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। संगीत में अक्षय प्रस्तार, शब्द या शब्द तथा शब्द तानों के द्वारा रंगमन्त्र की तरह उनमें वातावरण और पीछिका तथा नायक की तरह अभिनेयता का भी निर्बाह किया जाता है। संगीत वस्तुता आधुनिक संवेदों की भाषा है। प्रत्येक राग-रागिणी एक विशय भाव-रूपा का प्रतिनिधित्व करते हैं। कोई और रस का तो कोई कल्प रस का संचार करता है, 'रागमाळा' जैसे ग्रन्थों में जहाँ नायक-नायिकाओं के रूप राग-रागिणियों के रूप में चित्रित किए गए हैं, उनमें प्रायः राधा-कृष्ण ही सर्वप्रमुख रहे हैं। इस प्रकार काव्य के साथ रागों का विश्वात्मक सम्बन्ध अपूर्व ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इसके विकास 'संगीतरत्नाकर' से ही उचित होता है। किन्तु साङ्गदेव ने राग-रागिणियों का रूप नहीं दिया है केवल देवताओं का नाम दिया है^१, सम्भवतः सम्प्रकाश में राधा-कृष्ण की प्रयुक्तता होने पर इसके कलात्मक रूपों के लिए पार्वती और राजा-रागिणियों के साथ राधा-कृष्ण का भी रूप कारण कर दिया। कुछ रागों में अवतारों के स्थान-चित्र मिलते हैं। 'रागविशेष' में वर्णित पाचक राग और सुनरी के चित्र प्रमत्त कृष्ण और राधा के चित्रित होते हैं। 'राग कुण्डल' में भी कृष्ण का परचित्र ही उचित होता है।^२ 'रागमाळा' के अरथ हिन्दी कविताओं में अनुपम एक राग-चित्र काव्य हरिविष्णुकवि (१९२५ ई०) द्वारा

१. ओ रा. पृ १०६। रागों और देवताओं का सम्बन्ध निम्न प्रकार से दिया हुआ है—
 सुद माधुरि—सूर्य
 बद्ध धाम—इन्दुति
 सुद कीर्ति—रूपी
 मातृ-कीर्ति—रूपी
 निम्न शब्द—मन्दा
 यद—रु
 विरोध—मन्त्रध्वज
 बहुम—वेद्य

२. ओ रा. पृ ११६।

प्रस्तुत किया गया। इसी प्रकार 'रागमाला' के प्रमुख लेखकों में देवों का भी नाम किया जाता है।^१ उन चित्रों का अध्ययन करने पर रागों में अनुबद्ध कतिपय चित्रों में अक्षतार-रूपा के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे 'बावरा' में कृष्णाक्षतार के चित्र को सुदृष्ट किया गया है, इसमें कृष्ण राजासुर को मारने के लिए उद्यत होकर पड़ते हैं।^२ इसमें ऐसा उदाहरण है कि राग-रागिणियों का या विम्बीकरण पूर्व मध्यकाल में आरम्भ हुआ उसका पर्यवसान भी रीति कालीन काव्य की तरह राधा-कृष्ण के चित्रण में हुआ।

संगीत प्रिय विष्णु का प्राकट्य

अक्षतारवादी कलाभिरुक्ति की विरोधता यह रही है कि विष्णु का आधिपत्य कर्ता-कृति और प्राकृत दोनों में होता है। यों तो संगीत कला का अधिकतर सम्बन्ध महादेव शिव से ही रहा है। क्योंकि शिव की तरह विष्णु का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उतना प्रकट नहीं होता फिर भी नाट्य नृत्य या रागों के प्रिय देवताओं के प्रसंग में विष्णु का उल्लेख मिलता है सम्भव है इसका कारण यह रहा हो कि प्रमुख रूप से विष्णु एक शासक और पालक देवता हैं। अतः इनका सर्वाधिक सम्बन्ध विद्रोहियों के दमन विनाश और शान्ति-स्थापन से रहा है। इसी से इनका 'संग' प्राचीन काल में युद्धारम्भ में बजाए जाने वाले संग का प्रतिबिम्बित करता है। फिर भी कदा पक्ष संगीत के कतिपय प्रसंगों में विष्णु एक उनका अक्षतारों का विविध सम्बन्ध रहा है। नाट्यमात्र के कारिकाकारों ने कृतियों में कोमल कैशिकी कृति या शिव के अतिरिक्त विष्णु के साथ सम्बद्ध होने की चर्चा विशेषण के प्रसंग में की है।^३ शिव के प्रथम ताण्डवनृत्य का आरम्भ होने पर विष्णु मृदंग-बादन करते हुए शिर पड़ते हैं।^४ स्वर्ग की उत्पत्ति का एक वैष्णवीकृत रूप भी पुराणों में मिलता है। कहा जाता है कि विष्णु ने समुद्र-मथन के समय सत्य ब्रह्मण्डल प्रथम भाग उत्पन्न किया था। उन्हीं स्वर्गों से अमृत प्राप्त स्वर्गों की उत्पत्ति हुई।^५ 'संगीत पारिजात में भारत-संगीत का उदाहरण देते हुए बताया गया है कि देवताओं के स्वामी विष्णु भगवान सामगान द्वारा बिल्वी सप्रिया से प्रसन्न होकर हैं जैसे पशु शम्भु द्वारा

१ भो ट पृ १२ १२१।

२ भो रा पृ. १५२।

३ अति मा. पृ. १२१ १ ४४-४५।

४ टॉल टल पृ । शिवप्रयोग स्तोत्र के अनुसार कथाम पर्यंत पर शूलानि के नृव-शत में विष्णु को मृदंगधारक बताया गया है।

५ मा सं र्ति पृ ३८।

मने । विष्णु क पवित्र नाम यदि स्वरो सहित विद्वान लोगो द्वारा गायन किय जायें तो व भी सामन्त की शक्तियों क सरस ही प्रकृष्ट होते हैं । विष्णु के एक कथन में भी इस प्रकार कहा गया है कि वे योगियों क इन्द्र में या बैकुण्ठ में नहीं रहत अपितु अर्हाँ उनक मन्त्र गावन करते हैं वही उनका निवास होता है ।^१ माहिनी माया संगीत क द्वारा ही प्रज्ञा, विष्णु आदि मयस्त देवों को आहूत किय रहती है । यह भी कहा जाता है कि बाद मन्त्र की उपासना करनेवाला व्यक्ति बिना योगाभ्यास क ही मुक्त हो जाता है । मनुष्यों द्वारा गायन बाह्य तथा मृग्य तल्लीनता से किया गया हो, तो वह भगवान विष्णु को प्रमत्त कर देता है ।^२ इसक अतिरिक्त भारतीय संगीत क विविध रागों में विभिन्न देवताओं क विधवा का भी द्योतन किया जा रहा है । विष्णु क त्रिष रागों में 'मात्स्य कौस्तिक' राग माना गया है । यह राग सुवचना और शीघ्र ज्वलुत और विमलम्भ रसों का पोषक है ।^३ इसक अतिरिक्त 'मिथ पञ्चम' और ककुम भी विष्णु क त्रिष राग-रागिणियों में रहे हैं । 'वर्गीय दर्पण' में 'मात्स्य कौस्तिक' क अतिरिक्त कल्पान्त नद को भी विष्णु का त्रिष राग माना गया है ।^४ भारतीय संगीत में कुछ ऐसी राग-रागिणियाँ भी हैं जिनका सम्बन्ध विष्णु लक्ष्मी एवं विष्णु-भक्तियों से प्रतीत होता है । इस दृष्टि में नारायण गौळ^५ नटरायण रामक्रिया चक्रधर, रासेशरी, रामकव्ही तथा^६ तालों में लक्ष्मीश ताल का नाम दिया जा सकता है । उपर्युक्त कथनों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सब काव्य और कलाओं का सम्बन्ध सम्प्रदायों में हान लगा तब पुनः कलात्मक और कलाविषयता की दृष्टि में भी भयन उपास्यदेवों को सर्वश्रेष्ठ यज्ञान की प्रकृति बल पड़ी थी । इस धारणा क अनुसार विष्णु भी संयोजक भगीनत्रिष और संगीत से सम्बन्ध हान वाल माने गए । अन्ततःबाधो कलासिध्दिक का सा सम्बन्ध पुराणों प्रबन्ध और मुक्ताव काव्यों और नाटकों से या वह भागे चल कर संगीत और नृत्यकला में भी हो गया ।

१ भागवत मंत्रिका १।१।

मातृ इमामि बभूवुः पाणिना इन्द्रे म न ।

मञ्जला पर गायन्ति तत्र त्रिभुवि नारद ॥

२ म सा पृ २ की २ पृ ५ को १५ । ३ म सा पृ २०२ ।

४ म सा पृ १०५ को १०-११८ । ५ म सा पृ ८९ को २१४ पृ ८९

६ म सा पृ २३ को १०६ पृ १०१ १ । ४३४ पृ १८० को ४४ पृ १८८ को ४०३ ।

७ म सा पृ १२१ ।

८ म सा पृ २२० ।

विष्णु के अवतारों से भी बाद में संगीत का सम्बन्ध स्थापित हुआ। वास्तविक रामायण के प्रमुख अवतारवादी पात्र राम, सीता और रावण तीनों संगीतज्ञ भी संगीतप्रिय दोनों रहे हैं।^१ भारतीय संगीत के अतिरिक्त हमारे देश में प्रचलित रहे हैं उनमें, कृष्णमत, हनुमत मत, और भारद्वाज्य मत का सम्बन्ध वैष्णव अवतारवादी संगीत से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। प्रायः इन मतों में विना राग-रागिणियों का प्रचार अधिक रहा है अथवा सूर, तुलसी भादि सगुणोपासकों ने प्रायः उनका अधिक प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए हनुमत मत के मैरवी गुर्जरों, टोपी रामकवी बराठी माकडकौशिक (माकड कोल), और कृष्ण मत के हिन्दोक आसावरी, विद्यावट (बेदावली) भादि सगुण भक्तों में अधिक लोकप्रिय रहे हैं। 'कवचा' और 'नन्दनारायण जैसे रागों का केवल साग्रहाधिक उपासकों से ही नहीं अपितु सम्प्रदायों से भी अतिष्ठ सम्बन्ध रहा है।^२ कवचा कृष्ण सम्प्रदाय का अत्यन्त प्रिय राग है। वैष्णव पूजा को और जीवन्त बनाने काका 'नन्दनारायण' नन्दराज शिव के सामान्तर प्रतीत होता है। सोमेरवर ने का प्रमुख रागों में एक राग नन्दनारायण को भी मना है।^३ १२ वीं शती के 'संगीत रत्नाकर' का ने अल्प वैदता और शिव के साथ गोपीपति और बशीष्वादि के मत में रहने वाले कृष्ण को भी पीठप्रिय कहा है।^४ 'संघीत दामोदर' के अनुसार कहा गया है कि श्री कृष्ण के समस्त गोपियों ने जब शीत पाना आरम्भ किया तो उससे सोकड़ हजार राग-रागिणियों की उत्पत्ति हुई।^५

इस प्रकार मध्यकालीन अवतारों का सम्बन्ध संगीत की विविध वृत्तियों^६

१ वा रा अथो सूर्य १ १५ (राम), अथो १९ सर्ग-२९ को (सीता), पुत्र, सर्ग २४-को ४२-४३।

२ श्री रा. पू ७७.

३ सं. ५ पृ ७२ ७३ ७५।

४ सं. रत्ना १ १ २२

श्रीतेन प्रीतये वैव सर्वदा पारंगीवतिः। गोपीपतिरनन्तोऽपि बसुन्निवसुन्मः ॥

स्वमेव कथाभिनि पृ ८ १ २।

गोपीपतिरनन्तोऽपि बसुन्निवसुन्मः। सामग्रीनिरले मया वीगासुख्य सास्वनी ॥

५. कथा संक पृ १२९ में उद्धृत

गोपीभिर्गीतनाग्मिरेकं कृष्णसन्निधौ। तेन कथानि रागागा सहस्राणि तु शोचन् ॥

६. सं. रत्ना पृ २८४-४ ७३।

वृत्ति वैदमैरीणि च विद्यु र्वातस्तमन्मृग।

वाराहीदेवनाम्रीत्यै शार्ङ्गदेवन कीर्तिता ॥

रम' कद' बाघ,' मृग्य भीर मुद्रा' आदि से रहा है। 'वाङ्मयीनि रामायण' के शायब भी अंगीत से आमाह-प्रमोह करते हैं। "हरिवंश पुराण" में अङ्गुल की यात्रा के समय भारत की बीया के बाद भी कृष्ण बौंसुरी द्वारा उनका मनो रञ्जन करते हैं।^१ प्राचीन साहित्य के अनुसार वेद ही आर्यवेत्त जातियों में वर्जित थे, अिनकी आक्षर्यकलाओं की पूर्ति क छिप पंचम वेद 'नाट्य की सृष्टि हुई।^२ निरक्षय ही हमका प्रयोजन नवतार-प्रयोजन की तरह वेद इच्छा से सम्बद्ध रहा है। भीर एक प्रयोजन 'ना० शा० १,१११ 'ईरवराणां विद्यासङ्ग' भी वर्तिया गया है। अभिनवगुप्त के अनुसार इस नाट्य वेद के अधिकारी बकि, प्रह्लाद आदि असुर भी हैं।^३ प्राचीन काय में नाटकों में जो रंगमञ्च विधान किया जाता था वहाँ रणनीर्ष क क्रम में 'दूर्म पृष्ठ' भीर 'मत्स्य पृष्ठ' की खर्चा हुई है।^४ भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार देवताओं के मिय क छिप अभिनीत होने वाले 'समबन्धर' 'अमृतमन्थन' की खर्चा निकली है।^५ इन नाटकों का सम्बन्ध देव-दानवों से ही सर्वाधिक रहा है। देसा छपाता है कि देव दानव का यहाँ सम्बन्ध दूर्मावतार की कथा से ही रहा है। अता दूर्मावतार में हुए 'अमृत-मंथन' की कथा को हम एक प्रकार का रूपक नाट्य कह सकते हैं, जिसका अभिनय प्राचीन काल में प्राया हुआ करता था। इसके अतिरिक्त प्राचीन वाङ्मय में 'गणवत्तरण,' जैसे पौराणिक रूपक^६ नाट्य का

१ सं १३३ पृ ३०१-४ १३४-१३५।

कृष्ण-कम्पक अपैर्बेदाः कीरविक्रान्तयो । विष्णुयक्षीपरो वीरे वीर्यसे अष्टिबैरर ॥
नरसिंहीप्रभुनरसे मत्स्यु मवानके । हान्पटुगारयोर्दत्तं सिंही वीरमवानके ॥

२ सं रत्ना पृ. ३१ । हरिवंश कर्मो इती आरम्भ- दूर्मो नव ।

३ पृ ४८५, ६, ५१।

दण्डं धम्मुकमा तत्री ककुभं कमलापट्टि ।

घ्निरा पत्रिका मका गुम्भं माभि सरस्वती ॥

४ मृग्य शीषक में इहम्प ।

५ ना रा वाड 'गायत्री मृ-पमानाथ पादपन्थरु रापर' जैसे उल्लेख हुए हैं ।

६ हरिवंश. पु., विष्णुपर्व ८० म ।

७ नाट्य शा (गायक्या सं) पृ ३३१ ३३।

योऽथ मदवगा सुहो नात्यवेरं हरेष्यया ।

प्रचार्दं प्रज्वलमरमाकं सुरार्थं मवडा कृत् ॥

८ नाट्य शा (गायक्या सं) पृ ४३ ।

९. नाट्य शा (गायक्या सं) पृ १६२-२ ७१।

१० नाट्य शा (गायक्या सं) पृ. ८५-४ ६, ३, ४।

११ नाट्य शा (गायक्या सं) पृ १४-४, ५५।

तथा 'राघव विजय' मारीचिबध आदि राम कथाओं का भी उल्लेख हुआ है।^१ हरिवंश पुराण ११-१७ अध्याय में वननाभ और प्रद्युम्न के प्रकरण में नाटकों की खर्चा हुई है। प्राचीन काल में इनका अभिनेय भी हुआ करता था। इनकी कथा का सम्बन्ध एक ओर कृष्ण से तो है ही 'वज्रपुर' नगर में रामायण नाटक के अभिनेय के भी प्रसंग आये हैं। 'पञ्चकल्महाभाष्य' में त्रिन 'बलि-वन्द्य' और 'कंस-वध' नाटकों के प्रासंगिक उल्लेख हुए हैं उनकी कथावस्तु शीघ्र से ही भक्त्युत्पत्ति पर आधारीत जान पड़ती है।

उपर्युक्त तथ्यों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि विष्णु का भक्त्युत्पत्ति भारतीय संस्कृति के मूल में जड़ित एक सांस्कृतिक कर्म रहा है जब से जिसकी अभिव्यक्ति और अभिव्यय विभिन्न कलाओं के माध्यम से होत रहे हैं। प्राचीन काल में भक्तियों की कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचल रही हैं। उस काल में उनका अभिनेय ही नहीं होता था अपितु संगीत नाट्य, नृत्य और रंगमंच के कठिनय प्राविधिक विष्णु भक्तियों के नामों से अभिहित किये गए थे। इस प्रकार विष्णु के भक्त्युत्पत्ति रूपों और तथ्यों की अभिव्यक्ति भारतीय साहित्य एवं कला में सर्वत्र अभिव्यक्त रही है।

भक्त्युत्पत्ति और संगीत—वैष्णव-भक्ति-भाग में संगीत कीर्तन और भजन के रूप में अभिव्यक्त भग रहा है; क्योंकि भक्तों की यह धारणा रही है कि संगीत मन को उपास्य इन्द्रिय की ओर अभिव्यक्ति करता है। गीत के बजा में समस्त भारतीय देवता रह हैं। संगीत वह रज्जु है जो उपास्य के नाम-रूप के साथ मन को बाँध देता है। भक्ति से संगीत को भक्ति प्राप्त होती रहती है। कीर्तन और भजन के द्वारा संगीत का आत्मिक स्वीकार्य प्रकटित होता है। वैष्णवों में चैतन्य जयदेव विद्यापति जहङ्गप विद्यापति हरिदासी हरिदासी हितहरिवंसी वा रामभक्ति बाला के ऐसे जनेक भक्त कवि गायक हो गए हैं जिन्होंने संगीत-कला का चरनसीमा पर पहुँचा दिया। इसी युग में भूपद और कपाल दोनों शैलियों में भक्त्युत्पत्ति कीलाओं के भजन सर्वाधिक मात्रा में गाए जाते थे। भूपद शैली के ये गायकों में ब्रह्मी हरिदास, बहू पात्रा रामदास, ठानसेन वैष्णव का विभिन्न स्थान रहा है। 'नाथ विनोद' के अनुसार ब्रह्मी हरिदास के प्रसिद्ध शिष्यों में वैष्णव गोपादकाल मदनकाल रामदास विद्यापति पंडित सोमनाथ पंडित लक्ष्मिधर (संभवतः ठानसेन) और राजा सौरसेन का नाम आया है।^२

स्वामी श्री के इन सिष्यों ने प्रपञ्च, धमार, त्रिंध्य, तरात्रे, रागमाकाप चतुरंग भादि तथा अनेक नवीन रागों की रचना की। समस्त भारत में स्वामी हरिदास की तथा उनके सिष्यों की ही परम्परा प्रचलित है। अच्युतार भक्तों द्वारा गाए गए बहुत ही राग-रागिणियों में कुछ उनके नाम भी मिलते हैं। जैसे मरुदार के विभिन्न रूपों में 'सूर मरुदार', रामदासी मरुदार, भीरा मरुदार के भी नाम दिए जाते हैं।^१ सूरदास ने संगीत के रागों पर भी 'सूर खदरी में लिखा है। यों तो उनके सभी पदों में राग-रागिणियों का पचार्य निर्धार है। धीनाथ की क सामने गाए जानेवाले राग-रागिणी साम, पाता इत्यादि काक के अनुसार विभाजित हैं। सूर के अनुसार दित के समथ विष्णुबल, मैरल, मैरही, रामरुही कदित, बौद्धबन्दी, डोड़ी गट तथा सारंग प्रभृति राग हैं। रात के समय में गाये जाने वाले रागों में कल्याण, कपूर, बिहगवा, काण्हरा भादि हैं।^२ इस प्रकार सूरदास ने अच्युतार-टीला-गान में काक देश को भी अपने दृष्टिपथ में रखा है। इनके रागों में राग और भाषों का विभिन्न समतुलन हीन पकटा है। जैसे सूर ने माक और गौड मरुदार का प्राय प्रयोग वीर रस के पदों में किया है। तथा भक्ति उपासना, प्रायेना आत्मनिवेदन विनय आदिक पदों में प्रायः विष्णुबल प्रनामो भादि का अधिक प्रयोग किया है। सूर के ताकों में शिवाक कहरवा वापरा चौताहा, कपक भक्ति प्रचलित रहे हैं। इन्होंने रागों के अनेकप राग्य, बर्न, साका, बलाकात इत्यादि की भी पूर्ण योजना की है। मीरा की रचना भी कुछ संगीतज्ञों में की जाती रही है। उनकी समस्त रचनाओं में उनके भावाकुल मन की दिव्य स्वर-खदरी आविर्भूत हुई है। मीरा के पदों में शून्य, गीत और पावन तीनों का अपूर्व समिश्रण हुआ है। अन्य काव्यों की तरह संगीत का लक्ष्य माक की प्राप्ति में है। शिव प्रकार 'रसान्तःसुत्पाप' काव्य की रचना करने में पारलक्षिक उद्यकीरि क काव्य का ध्यानभू मिळता है, उमी प्रकार भक्त कवियों की संगीत-साधना का लक्ष्य भी अपने उपास्य की अभ्युक्ति ही रहा है।

सोहदही प्रनाप्ती में विजयनगर साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया और तंजार इत्यादि राजघाटों का उदय हुआ। इन्हींमें भारतीय संगीत के विकास का बहुत प्रयत्न किया। १७वीं शती के महान् गीतकार उग्रज हुए। उग्रज के गीतों में मानव-सौन्दर्य को दिव्य सौन्दर्य से भर दिया। अचिण भारत में

इनके गीत घर-घर नारी कठों में ब्याप्त हो गए। इनकी दृष्टि में मनुष्य की आत्मा सभी दिव्य बनती है, जबकि वह जीवन संगीत को पूर्ण सम्पन्न करता है तथा संगीत और जीवन की पूरी को समाप्त कर देता है। भगवान् को प्राप्त करने के लिए भक्त को अभ्यन्न वहीं भटकना चाहिए। वस संगीत की गहराइयों में ही वह हँसता हुआ निकल आएगा।^१ दक्षिण भारत में ईश्वरोपासना संगीत के द्वारा ही अधिक होती है। कन्नड़ प्रांत में १२वीं से सोलहवीं शती तक प्रामाणिक प्राचीन नाट्य कालीन पारिजात नाटक प्रभावत लीला, राधा और पद्मगान लीला विशेष प्रचलित थे। इस युग के कन्नड़ वैष्णव और शैव काव्य राग और ताल में आवद्ध हैं। काव्यकार पुरंदरदास कर्नाटकी संगीत के भी जनक माने जाते हैं। इनकी वैष्णव भावना माधवाचार्य के द्वैत भाव से प्रभावित है। तमिल प्रदेश के देवालयों, मठों एवं पृष्ठों में 'तेवारा' और तिठवाचक्य के पदों की गूँज सुनायी पड़ती थी। तमिल में 'ते वा धर्मे है 'ईश्वर' और 'आराम' का अर्थ है 'माध्य' अर्थात् स्तुतिमयका। शैव तेवारा की तरह आश्चर्य रीतों के समूह (त्रिविध प्रबन्ध में संग्रहित) बहुत प्रचलित थे। मराठी में भी 'हैतवाद्' संगीत का मूल आधार रहा। महाराष्ट्रीय संगीत में हैतवाद् का विशेष प्रचार किया। मराठी के सुप्रसिद्ध संत 'गणेशदास' एक भक्त संगीतज्ञ थे। वेरों में पुस्तक बॉक्कर वे नृत्य भी किया करते थे। सुप्रसिद्ध भक्त नामदेव भी महाराष्ट्र के महान् भक्त संगीतज्ञ थे। उनका कहना था कि 'मुझे ज्ञान का मार्ग अच्छा नहीं लगता मुझे तो गा-बजाकर ही अपने भगवान् को रिझाना है। संगीत की अश्रिमित शक्ति के सम्मुख भगवान् कबतक अच्छे रहेंगे उनके एक-न-एक दिव्य मुक्तना ही पड़ेगा।' यों तो सिद्ध-प्रवचकों में गुह्यनामक रत्न संगीतज्ञ थे उनका साथ ही अन्य जत्नों ने भी किया, 'सिद्धा' 'महदा' आदि का पर्याप्त प्रचार किया। वैष्णवों में 'गीत गोविन्द' यहाँ भी बहुत लोकप्रिय था।

मध्यकालीन भक्तों में विशेष कर बंगाल में 'सुसयदा' और 'हीपा चैतन्य' कीर्तन पर आधारित थे। यों 'श्रीकृष्ण कीर्तन' का विशेष विकास 'रमाई पंडित' द्वारा हुआ। चौदहवीं शती का 'कृष्णचाम रामायण' तथा काली राम का 'महाभारत' व सभी ग्रंथ विद्यालय संगीत काव्य ही रहे हैं। जसम के वैष्णव संगीत को जीवन-दाय देने वाली में भी प्रचार देव तथा उनके सिद्ध

साधक ही उद्योगशील हैं। उनके गीत नृत्य और नाचों का प्रचार बहुत अधिक मात्रा में हुआ। मध्यकाल में चंडीदास और विद्यापति के साथ-साथ जगन्नाथ दास आदि अनेक वैष्णव कवि संगीत और नृत्य क भी जाचाम थे। उनके काव्यों तथा काव्य-नाट्यों में संगीत और नृत्य का अपूर्व दर्शन होता है। मध्य युग में सिंधिका और पटना दोनों वैष्णव संगीत-क मुख्य कन्द्र थे। गंगा क उस पार सिंधिका की अमरावतों में विद्यापति तथा कतिपय संगीतकार कवियों क संगीत मुखरित थे। तो पटन में चिन्तामणि उस युग की प्रमुख संगीतशास्त्रों में स थी।

राजस्थान क रवाकिपर और वृदावन दोनों संगीत क प्रमुख कन्द्र थे। रवाकिपर में बड़ि राजबरबारी संगीत का बोकबाका था तो वृदावन में टाकुर बरबारी संगीत का। किन्तु दोनों क संगीत में वैष्णवता भोतभोत थी। राधा-कृष्ण क गान दोनों समान रूप से पाते थे। गुजरात क संगीत में वैष्णव भक्त नारसी मेहता और मीरा दोनों क पद संगीत और नृत्य दोनों में गाए जाते थे। गुजरात के प्रसिद्ध नृत्य गरबा में राधा-कृष्ण क विषय प्रम का अजस्र प्रवाह प्रवाहित है। गरबा नृत्य क साथ बहों यरबा गीत भी बहुत लोकप्रिय रहे हैं। कहा जाता है कि मीरा भी वृदावन क पम्नात् गुजरात चली गयीं। इसी से उनके पदों में शास्त्रीय राग-रागिनियों क साथ राजस्थानी और गुजराती लोक-धुनों का मिश्रित रूप कथित होता है। रथानीय लोक-गीतों में इनका विशेष महत्त्व रहा है। इनक राजस्थानी, ब्रज और गुजराती में प्राप्त पदों में लगभग १० राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है। यरबा क अनुकरण पर मीरा ने भी जिन गीतों की रचना की उगई 'गरबी कहा जाता है, क्योंकि वे पद स्त्री की भाषा में इष्टदेव क प्रति पति को सम्बोधन करके बनाए गए थे। राजस्थानी गरबा में भी इनका विशेष स्थान है। गोरखानी तुलसीदास क ममरत काव्यों में शास्त्रीय और लोक-गीत दोनों की धुनों का समान रूप से प्रचार रहा है। 'विनय पत्रिका' और 'गीतावली' क पद पद शास्त्रीय राग-रागिनियों में आबद्ध हैं तो 'रामलला महसु और 'जानकी मगक छिबों द्वारा गाए जाने वाले लोक-गीतों में अत्यन्त लोक प्रिय रहे हैं। 'रामचरित मानस तो शास्त्रीय और लोक दोनों प्रकार क रागों, नृत्यों और नाट्यों में प्रचल रहा है।

इस प्रकार वैष्णव भक्त कवियों में संगीत अपनी चरम-चेतना क साथ गुंजित हुआ है। उपासना में उगईने कबल पदों को नहीं अपितु संगीत को भी सौबीक स्थान दिया।

श्रेष्ठ जप्सरा दिखाई पड़ने लगी जिसे देखकर सभी देव क्षिणों कथित हो गयीं ।^१ भारतीय चित्रकला या मूर्तिकला दोनों का प्रसिद्ध सम्बन्ध मूल्यकला से माना जाता रहा है । नारायण मुनि के अनुसार मूल्यकला की तरह चित्रकला में भी तीनों कोकों का अनुकरण किया जा सकता है । दृष्टि-निर्घेष, भाव-संगिमा और अंग-पट्टि इन सभी दृष्टियों से दोनों में बहुत कुछ साम्य है । इसी से इस परम्परा में मूल्यचित्र को परमचित्र माना गया है ।^२ मूल्य को ही प्रमाण मान कर इन्होंने चित्र में भी इस मद्र माध्यक, स्रक् और ससक इन पंच पुस्तक-कव्यों को व्यक्त किया है ।^३ 'चित्र सूत्र' के इन इतिवृत्तात्मक तन्त्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकला का आरम्भ तब नारायण मुनि से माना जाता है, वह वस्तुतः उनके मनोगत रमणीय चित्र का ही चित्र है, जिसका प्रतीकात्मक रूप अम्पोत्तिपरक नाम 'उबसी' बताया गया । यों तो 'उबसी' एक पौराणिक जप्सरा के रूप में वैदिक काल से ही विख्यात रही है, किन्तु नारायण मुनि द्वारा निर्मित 'उबसी' चित्र से 'रमणीय चित्र' के रूपांकन की भी व्यञ्जना होती है । इसके अतिरिक्त मूल्य के 'परमचित्रत्व' में भी एक बात यह कथित है कि चित्रकला कीका सापेक्ष है । अवतार कीक्य की परिधि से चित्रकला भी तूर बही है अपितु नारायण चित्र के रूप में यदि वह साध्य है तो कीका चित्र के रूप में साध्य भी ।

'चित्रसूत्र' के अन्वय स्वकों पर देवताओं के रूपांकन की जो पद्धतियाँ व्यक्त की गयी हैं, उनका प्रयोग अवतार-उपास्यों के रूपांकन में भी होता रहा है । अवतारी-उपास्यों के कलात्मक रूप उन्हीं प्रवृत्तियों के अनुसार चित्रित होते रहे हैं । उदाहरण के लिए जैसे देवों का रूप सर्वथा साकड़ वर्ण का माना गया है, उसी प्रकार राम-कृष्णादि अवतारी-उपास्य भी प्रायः पीछस रूपांकन में ही चित्रित किये जाते रहे हैं । मूर्ति के सहस्र चित्रों में भी प्रायः प्रतिष्ठा या देवावतारण अभिषार्य माना गया है । 'चित्रसूत्र' के अनुसार प्रमाणहीन और कल्पन से वर्जित तथा प्राणियों के द्वारा आह्वानीय न होने पर उस प्रतिमा या चित्र में देवपण प्रवेश नहीं करते ।^४ इस प्रकार भारतीय

१ कला शं. (स प) पृ ४१५ ।

२ कला शं. (स. प्र.) पृ ४११ ।

'वृद्धयत्तया भावा बहोपाह्वानि सर्वस्य' ।

कराम ये महापुत्रे पूर्वोक्ता मूलसत्तम ।

'त एव विश्वे देवा मूर्तेष्विव परं मनः ॥'

३ कला. शं. (स प्र) पृ ४११ ।

४ कला. शं. (स प्र.) पृ ४१५ तथा विष्णु ब. पु ३८-३२ २३ ।

अवतारवादी कलाओं की आत्मा सर्वदा देवात्मपरक रही है। अद्यपि इस शैली के चित्रों में अनुकृति और सादर्य की प्रधानता रहती है, फिर भी यह नदबब अनुकृति किसी सर्वातिशायी सत्ता को ही प्रतिमासित करती है। उसकी 'भाव-मूर्ति' या आत्म प्रतिमा (इमैयोवैपी) में परमेश की हीकात्मक चेतना का अग्रतिहत गतिशील व्यापार भक्त-मन के अचेतन में निहित सर्वातिशायी आदर्श भाव-मूर्ति को ही सम्मूर्तित करता है।

इतना अक्षर्य है कि अवतारवादी चित्रकला का 'सर्वातिशायी आदर्शवाद' बोरे किम्वन के विपरीत उपासना, भाराधना और साधना की अपेक्षा रखता है। अवतारवादी चित्रकला में सात्व्य और सात्व्य दोनों कथनों का अन्तर्भाव रहा है।

यही कारण है कि अवतारी-उपास्य और उनका पार्षदों के चित्रों में अधिक वैषम्य नहीं उपस्थित होता। वे भी किप्युबब चित्रित किये जाते हैं। सम्भव है कि इस धारणा के विकास में 'सात्युष' और 'सासुष्य' भाव की प्रेरणा रही हो, किन्तु अवतारवादी चित्रकला की धारणाओं में इसका विशिष्ट स्थान है। 'चित्रसुष' के अनुसार भी उपास्य देवों के गणों को उनके सदस चित्रित किया जाता है। कृष्ण, बलराम, मधुसूत और अश्विद के गण उन्हीं के समान चित्रित किये जाते रहे हैं। इस प्रकार वैष्णव म्यूह के चारों उपास्य देवों के गण अपने विशिष्ट उपास्य के अनुरूप चित्रित किये जाते हैं।^१ य गण अपने-अपने नामक के समान ही प्रभावशाली एवम् जातुघधारी तथा उन्हीं के सदस कथों वाले बनाये जाते हैं।^२

^१ कला शक (स म) पृ ४६२।

एकवरातु कर्मन्वा वैश्वानान्तरा गण ॥ २५ ॥

उपापि तेषां कनम्बा वैश्वानान्तरा एव च।

वायुदेवसमा कर्वा वायुदेवगणां शुभा ॥ २ ॥

सर्वदेवैः सहस्रान्तरा एव सृष्टाः।

मधुदेवनातिरुद्धेन सहस्राः सहस्रान्तरा ॥ २२ ॥

२. कला शक (स म) पृ. ४६१-४६२। यो विचन-कला की हृति से भी भारतीय चित्रकला में सादर्य को (चित्रे सादर्यकरण प्रथमं परिशीकृतम् नि ब पु प रं ४२ ४८) सौम्यर मूर्ति के 'अभिलषितार्थे किम्वनमि' वा 'भावसोडस' में चित्र चित्र के प्रथम में कहा गया है कि किम्वन मनु में साक्षात्कार रहना है वा आवेहक प्रतिहृति होनी है (सादर्य किम्वने अनु रूपे प्रथिम्वनम् पृ ३८१ भारतीय चि. कला पृ ९ में उद्धृत) उसे चित्र चित्र कहते हैं। इस सादर्य का अनुभव चित्रकार अपने मन में (हरप मागम्य वैश्व) करता है।

वैष्णव प्रबन्ध काव्य, मुक्तक, नाटक आदि में बितने प्रकार के पात्र नायक, प्रतिनायक, सहायक आदि रूपों में पृथीत हुए हैं, उन सभी के प्रामाणिक चित्रण की सैद्धी 'चित्रकल्प' में बतायी गयी है। इस दृष्टि से वैष्णव, राजा (४१, १), भ्रात्रि, गन्धर्व, दैत्य, द्वापक, मंत्री, ज्योतिषी, पुरोहित, ब्राह्मण (४१, २-४६) वैश्य, दानव, विद्याधर, किन्नर, सर्प, राक्षस, पिशाच, बीना कुम्हा, प्रमथ, देवगण (४१, ७-१८३) और इन सभी की पक्षियों के चित्रण की प्रामाणिक सैद्धी प्रस्तुत की गयी है।

इससे स्पष्ट है कि अवतारवादी चित्रकल्प की विषय-वस्तु मुख्यतः अवतार-कीका रही है। देवासुर संग्राम और उसमें योग देवेबाड़े पक्षी और विपक्षी पात्र तथा रक्षा करने वाले विष्णु के अवतार ही इनके प्रमुख विषय रहे हैं। जो लोग यह आरोप करते रहे हैं कि भारतीय चित्रकल्प का पाश्चात्य चित्रकल्प की तुलना में गौण रचा है, वे एक भारी भ्रम में पतित होते हैं। पाश्चात्य चित्रकल्प की परिगणना काव्य के साथ इसकिए हुई थी कि वहाँ काव्य प्राचीन काल में समस्त साहित्य का वाचक न होकर काव्य मात्र का घोटक था, जब कि प्राचीन भारतीय काव्य का तात्पर्य समस्त साहित्य से किया जाता था, जिसकी श्रेणी में चित्रकल्प को रखना पुष्किसंगत नहीं है। जो कि १७ कलाओं में 'चित्रकल्प' की परिगणना हुई है उसमें कर्मों के भी कुछ रूप प्रचलित हैं। अतः केवल कलाओं की कोटि में पृथीत होने के कारण 'कलाओं में प्रवर' चित्रकल्प को गौण नहीं कहा जा सकता। काव्य की तरह यह भारतीय संस्कृति के उदात्त समस्त तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय संस्कृति के मुख्य उपादान देवासुर संग्राम और अवतारवाद इसके भी मुख्य उपजीव्य रहे हैं। काव्य की तरह मध्ययुगीन भारतीय चित्रकल्प का प्रयोजन अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति है। 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' के अनुसार 'चित्रकल्प' सभी कलाओं से श्रेष्ठ है। यह धर्म, काम अर्थ और मोक्ष देने वाली है। जिस घर में इसकी प्रतिष्ठा की जाती है वहाँ पहले ही भंगक होता है। जैसे पर्वतों में सुमेध श्रेष्ठ है पक्षियों में गरुड प्रभाव है और मनुष्यों में राजा उत्तम है, उसी प्रकार कलाओं में चित्रकल्प उत्कृष्ट है।' इन तत्त्वों के

१ कला-शंका (स. ५) इ. ४०५ विष्णु व पु. पृ. ४१ १८-१९।

कलाओं में प्रवर' किं अर्थप्रदायकमोक्षरत्न ।

महर्षेण प्रथमं चैतद्व्युदे पत्र प्रतिष्ठितम् ॥

यथा सुमेध प्रवते नगानां वज्रशब्दानां यदहं प्रथमम् ।

यथा मत्पत्नी प्रवर' शिरीषरत्ना कलाप्रामाणिक चित्रकल्पः ॥

अध्ययन से देखा जाता है कि अवतारवादी चित्रकला का दृष्टिकोण दार्शनिक धारणा, रसमिथ्या तथा विषय (Content) और रूप (Form) की दृष्टि से वैष्णव कालों के ही समानान्तर रहा है। वैष्णव चित्रकला में मूल-रस की उपादेयता अवतारवादी छीका तत्व को ही परिपुष्ट करती है। रमणीय विषय की दृष्टि से कालों में रमणीय आकृष्टन विम्ब की प्रतिष्ठा करने की को प्रवृत्ति रही है, उसका दर्शन वैष्णव चित्रकला के रमणीय विम्बविषय में ही होता है। काल के नामों की तरह चित्रकला के रमणीय विम्ब भी सुन्दर और कुरूप दोनों प्रकार के संवेगों को उद्दीपित करने का प्रयास करते हैं। अवतारवादी चित्रकला का मूलतत्त्व रसानन्द है। यही नहीं उसकी चरम धार्मिकता परात्पर जादूसी को अभिप्रेक्षित करने में रही है। अवतारवादी चित्रकला केवल प्रतीकोच्चावगा ही नहीं करती अपितु रमणीय विम्बोच्चावगा की समस्त सम्भावनाओं से यह परिपूर्ण है। इतना प्रवरक है कि वैष्णव चित्रकला उपास्यवादी कला है, जिसका प्रमुख कथ्य है—'ज्यार भीर अनुग्रह। इसके फलस्वरूप अवतार-छीकापरक चित्रों में यदि एक ओर उपास्यवादी ज्यार भीर अनुग्रह की भावना है तो दूसरी ओर 'राधा-कृष्ण' की प्रेम-छीकाओं के चित्र में 'कला के किय कला की तरह कीका के किय छीका।'

मध्ययुगीन अवतारवादी चित्र-शैली का विकास

ऐतिहासिक संकेतों का प्रमंथन केवल साक्षात्कारों के ही पथ का कारण नहीं होता अपितु युग बितेय की सांस्कृतिक कलाओं का पथ भी उसमें प्रस्तुतिहित रहता है। भारतीय साहित्य को परवर्ती सिद्ध करने के लिए जेतने तर्क पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा उपस्थित किये जाते रहे हैं, उनमें एक अवतारवाद भी रहा है। वैष्णव अवतारवाद का द्योतक 'वाम्नीकि त्माप्य' 'रामावतार' के शब्दों भी परवर्ती कहा जाता रहा है। किन्तु इस शायर पर दोनों और राजाओं के अवतारीकरण की प्रवृत्ति को परवर्ती नहीं समझ किया जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि वैष्णवों के मानवी तत्व और महापुरुषों और और याज्ञाओं के वैशीकरण को प्रवृत्ति वैष्णवी तत्त्वा के मार्गीयतम रूपों में ले रही है। ईसा से सदृशों वर्ष पूर्व होमर ने दोनों महाकाव्यों में यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है। तभी प्रकार 'वाल्मीकिरामायण' और 'महाभारत' में इस अवतारवादी भावना ने अव्यक्त ध्यापरक रूप पाते हैं। यदि वैशाख सप्तम वैदिक साहित्य का मुख्य विषय है तो अवतारवाद का भी उससे शृण्व नहीं किया जा सकता।

यद्यपि वैष्णव चित्रकला के स्वर्णयुग गुलकान्त और मुगलकाल रहे हैं, फिर भी भारतीय चित्रकला विशेषकर मितिचित्रों के द्वारा अपने प्राचीन समृद्ध रूपों को अद्भुत बनाये हुए है। यों तो अन्य कलाओं के साथ चित्रकला का बाबक शब्द 'भिरप' रहा है जिसका उल्लेख प्रायः उपनिषदों और ब्राह्मणों में मिलता है।^१ परन्तु 'चित्र' का प्रासंगिक उल्लेख सतपथब्राह्मण में हुआ है।^२ फिर भी लौही की दृष्टि से चित्रकला की किसी विशिष्ट लौही का पता नहीं चलता। भारतीय चित्र लौही के मूल में मुख्यता मितिचित्रों का प्रमुख योग माना जा सकता है। क्योंकि चित्रकला के प्राचीनतम रूप का अस्तित्व बतानेवाले मितिचित्र ही रहे हैं। परचित्र और पञ्चसचित्र के उल्लेख तो हुए हैं किन्तु कारणात्मक होने के कारण उनके अस्तित्व का पता नहीं चलता। मितिचित्रों का अध्ययन भी हम जो प्रकार से कर सकते हैं—उल्लेख द्वारा और लासेन्स्य द्वारा। यहाँ तक उल्लेख का प्रस है महाकाव्य, नाटक और पुराणों में प्रसृतवत्स 'चित्रवीथी चित्रकाला, चित्रवत् सन्म, चित्रसाधिका, के साथ-साथ मितिचित्रों के भी उल्लेख होते रहे हैं।^३ प्राचीन महाकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' में विन मितिचित्रों के उल्लेख हुए हैं, वे अपने आप में स्वतन्त्र कृतियों नहीं थीं, बल्कि शीघरों, कर्णों, भवनों रथों और विमान भादि को सजाये के किय की गयी थीं। सम्पत्ता एवं संस्कृति के अनेक पक्षे उपादान बहिन भारत की देव रहे हैं। वाल्मीकि-वर्जित कन्यापुरी में चित्रकला की पत्र-तत्र चर्चा मिलती है। राज्ञ के पुण्यक विमान पर स्वर्ण खचित चित्रकारी की गयी थी। पत्र चित्रों में भूमि पर पर्वत और पर्वत पर वृक्ष और वृक्षों पर पुण्य बनाये गए थे।^४ राज्ञ के राजमहल में चित्रसाधकों के अस्तित्व मिलते हैं। कैकेयी के महल में चित्रगृह भी थे।^५ 'वैदारिकानां सिद्धानां शाठा' राज्ञ के प्रासाद में मितिचित्र उत्कीर्ण थे।^६ इसके अतिरिक्त वाकि और राज्ञ के घर को के जाने वाली शिबिकाओं पर अनुत्त चित्र-सिक्कों की चर्चा मिलती है। भूक्याप, इन्द्रजीव और राज्ञ के रथों पर अनेक प्रकार के अयकर पिशाचों के चित्र चित्रित थे।^७ 'वाल्मीकि रामायण' के इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि रामायणयुग में चित्रशिल्प का मितिचित्रों का बहुत अधिक प्रचार था। उनमें अयंकर सुम्बर ललित, पर्वत वृक्ष और कलाओं में सञ्चित प्राकृतिक

१. भा. कला प में इत्यम् वैदिक साहित्य में चित्र का स्वस्व।

२. स. मा. ७, ४ १ २४ 'सर्वापि हि चित्राण्यपि।

३. कला अंक में इत्यम् कतिपय निबन्ध। ४ वा. रा. ५, ७ ९।

५. वा. रा. २. १ ११। ६. कला अंक ६ ८२ और वा. रा. २, १५, १५।

७. कला अंक ६ ८२।

रूप भी चित्रित होते थे। महाभारत में भयदानव की बाधुकला में चित्रों का व्यवस्था विधान रहा होगा क्योंकि लका और इन्द्रमस्य दोनों के निर्माण में भयदानव का हाथ रहा है।^१ इसी क्रम में धीक और गाम्धार लौकी का भारतीय सिद्ध पर बहुत प्रभाव पड़ा। प्राचीन संस्कृत नाटकों में चित्रकला की यत्र-तत्र खर्चा हुई है। भास के नाटकों में अहो वर्तनीबोध्य चित्रपटा' के उल्लेख मिलते हैं।^२

परन्तु चित्रकला का चरम उत्कर्ष गुप्त युग में ही हुआ है। इस युग के प्रसिद्ध नाटककार कालिदास की प्रायः समस्त कृतियों में चित्रकला के प्रासंगिक उल्लेख पुष्कल मात्रा में हुए हैं। 'अभिज्ञान साकुन्तलम्' के नायक दुष्यन्त स्वयं एक अभ्यन्त कृतक चित्रकार थे।^३ पुष्करवा विरहागुर होने के कारण उर्बसी का चित्र अंकित करने में सक्षम नहीं हो पाते। महाकवि सबमूर्ति के 'उत्तररामचरितम्' तथा 'माकलीमाधवम्' का भीगनेत भी 'माकलिकाभि मित्रम्' के सरस चित्रकला की खर्चा से भारम्भ होता है। 'उत्तररामचरितम्' में रामचन्द्र स्वयं सीता के मनोरञ्जन के लिए अपने जीवन की समस्त घटनाओं के चित्र अंकित करवाते हैं। इस प्रकार समस्त 'रामचरित' बड़े नाटकीय ढंग से चित्रों के माध्यम द्वारा दिखाया गया है। इससे लगता है कि गुप्तकालीन चित्रकला अभ्यन्त उन्नत और मजबूत थी। इन तथ्यों में चित्रों के माध्यम से अबतार-लीला के आस्थात्म की प्रकृति के भी दर्शन होते हैं। नाटकीय प्रयोगों के माध्यम से यह स्पष्ट पता चलता है कि यह चित्रावली 'बावलीकि रामायण' की प्रमुख घटनाओं पर आधारित थी। गुप्त काल में चित्रित अर्जुन की युद्धों में वादावतार की लौकियो मिलती हैं। उनमें कंचक युद्ध ही नहीं अपितु महावामी बोधिसत्वों में अत्यन्त लोकप्रिय पद्मपाणि या अवलोकितेश्वर की महाकाव्यिक दशा का चित्र स्वयं भजन्ता की चित्रकला में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।^४ यों तो बौद्ध अबतारवाद भी अवलोकितेश्वर के ही अबतारत्व में अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाता है। क्योंकि महाकाव्यिक महाबोधिसत्व अवलोकितेश्वर 'बहुजनहिताय' और 'बहुजनसुखाय तत्र तत्र अबतरित होने रहते हैं सबक एक भी प्राणी निर्माण नहीं प्राप्त कर लेता। इस प्रकार गुप्तकालीन चित्रकला में वैष्णव अबतारवाद और बौद्ध अबतारवाद दोनों लोकप्रिय जान पड़ते हैं।

गुप्तकाल के यह ही चित्रकला में अबतार-लीलाओं के प्रसंग और अधिक

१ भा का दृ १८।

२ कला. मंड ६. १०।

३ कला मंड ६ १००।

४ कला मं. दृ. ११०।

लोकप्रिय होते गये। जैन सौंदर्य या गुजरात सौंदर्य कथना जिसे अपभ्रंस सौंदर्य भी कहा जाता है इन शैलियों में 'बाळ गोपाळ स्तुति' और गीतगोविन्द के चित्र सर्वाधिक लोकप्रिय रहे थे। अपभ्रंस सौंदर्य का व्यापक प्रभाव बंगाल और उड़ीसा की चित्रकला पर रहा है। क्योंकि जगन्नाथ की क चित्रपटों में इसका दर्शन होते हैं।^१ गुप्त काल के अनन्तर लगभग १२ वीं सदी तक मिति मूर्तियों का विशेष प्रचार रहा है जिसकी चर्चा मूर्तिकला के अन्तर्गत हुई है। चित्र कला की दृष्टि से अपभ्रंस सौंदर्य अधिक प्रचल रही है जिनमें अवतार कथाओं के चित्रपट तैयार किये जाते रहे हैं।

मुगल शैली

पन्द्रहवीं सदी के बाद जिस प्रकार साहित्य में निर्गुण और सगुण भक्ति की व्यापकता कथित होती है उसी प्रकार अवतार-कथाओं के चित्र भी प्रायः प्रचलित रहे हैं। मुगलकाल में अवतारवादी सगुण साहित्य के समाप्त्यंतर राजदरवारी चित्र-शैली का प्रचार था जिसे प्रायः मुगल शैली के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें संदेह नहीं कि मुगलों ने भारतीय चित्र कला का एक नयी दिशा प्रदान की थी। मुगल दरबारों में फ़ारसी और भारतीय दोनों कांचि के चित्रकारों को समान रूप से प्रथम और प्रोत्साहन मिले थे। जिसके फल-स्वरूप ईरानी शैली भारतीय शैली के साथ मिश्रित होकर एक नयी शैली में परिवर्तित हो गयी थी। मुगल राज्यों में चित्रप्रेमी हुमायूँ ने स्वयं 'धीरी कदम' के मुगल चित्रकार अब्दुस्समद हीराजी और मीरसैयदमहली को अपने दरबार में विरहित किया था जो अकबर के शासन-काल में भी विख्यात चित्रकारों में से थे। इस चित्र शैली में ईरानी और भारतीय श्यों का मिश्रण तो हुआ ही साथ ही फ़ारसी प्रथ के चित्रों के साथ महाभारत और 'रामायण' की घटनाओं पर आधारित चित्र भी तैयार किये गये। अकबरी दरबार के अधिकारिता चित्रकार राजकीय घटनाओं के साथ पौराणिक प्रसंगों के भी चित्र बनाते थे।^२ जब कि इस्लामी चित्रकार फ़कीरों के विचारानुरूप कार्य किया करते थे। उनके चित्रों में शैलों के विषय समाविष्ट रहते थे। वे खुदा के बड़ा रूप का चित्र अधिक विहित किया करते थे। इन रूपों में भी खुदा का अक्षरब्रह्मण' रूप सर्वाधिक स्पष्ट हुआ है।^३ मुगल कला में प्रायः अकबर शैली के चित्रों को विचारकों ने भारतीय और अभारतीय दो भागों में विभक्त किया है जिनमें अधिकतर भारतीय चित्र दरवारी शैली में विहित

१ मा वि पृ ७७।

२ मुय. पं मू ५ ४ विशेष दृष्ट्य।

३ मुय. पं पृ ४।

'सामायण' और 'महामारत' तथा 'ओमज्ञागत' की छट्पाओं से सम्बद्ध रहे हैं।^१ बङ्गलौर शैली से अपने युग की अनेक शैलियों को प्रभावित किया था। क्योंकि इस शैली से निकले हुए सोलहवीं और सतरहवीं शती के अनेक ऐसे चित्रमिथले हैं जिनके मुख्य विषय राम कीका, कृष्णकीका और हनुमान-चरित्र रहे हैं। इस शैली का एक विस्तृत चित्र में कका भवतारों पृथु और पृथ्वी की कथा इस प्रकार रूपांकित है। आदि राजा पृथु ने पृथ्वी से कहा कि मैं तुझे बुद्धूंगा, तिसे अस्वीकार कर पृथ्वी गाव का रूप धारण कर भागी और राजा ने उसका पीडा किया। गोकपा पृथ्वी माकाघ में भागी चली जा रही है। अनुपकारी पृथु उसका पीडा कर रहे हैं। नीचे लड़े लोग चिता और आश्रयपूर्वक यह दरम देख रहे हैं।^२

कगमग इसवी से पंद्रहवीं शताब्दी तक चित्रकला की अनेक धार्मिक आर सप्तप्रदेशिक-बैष्णव शैली सिद्ध जैन आदि शैलियों विशेषकर बिहार, बंगाल नेपाल आर गुजरात में प्रचलित थीं। इनमें से बैष्णवों में 'गोत गदविन्द' के चित्र चित्रित होते थे और शैलों में बोधिसत्वों और ब्रह्ममानी शैली मिथों का। बोधिसत्वों और शैली सिद्धों का उन दिनों तक तिम्बत में सर्वाधिक प्रचार था। इधिय भारत में इबिद्ध बेसर और नागर तीन प्रकार की शैलियों का प्रचार था। इनमें नागर शैली सम्भवतः उत्तर भारत से ही इचिन में गयी थी। इन समस्त शैलियों पर इबिद्ध अवधारों तथा इचिणी आचार्यों द्वारा प्रचारित विष्णु भक्ति एवं उनका भवतारों का प्रभाव पड़ा था। वस्तुतः भवतारवादी चित्रकला बैष्णव भक्ति की प्रबल धारा से अनुप्राणित हो उठी थी। विष्णु कीची या इचिय भारत के तिरुपति आदि अन्ध मंत्रियों में चित्रित पट एवं भित्ति चित्रों में इन शैलियों की विकृति हुई है। जैनों में 'नरनाथ त्रिभ' की काकप्रियता देखकर बैष्णवों में भी कृष्ण का ककिस-इमन रूप विभिन्न कलाओं में प्रचलित हुआ।

राजपूत शैली

नरपयुग में मुगल शैली का समानांतर बिाण कर राजस्थान एवं तुर्कस्तान का हिन्दू राजाओं में राजपूत शैली बहुत प्रचलित थी। मुगल शैली का इरपारी रूप की अयेवा हममें स्केच-कथा का लक्ष अधिक दीप्त पड़ते हैं।^३ सगुण भक्ति काव्य का साथ-साथ वक्र उद्गम' और 'गुजरात उद्गम' का नगम होकर चित्रकला का एक प्रवाह चलता रहा है जिसका प्रभाव राजपूत

^१ भा. वि. १२३।

^२ भा. वि. ६ १२५ और पृ. १४।

^३ कउ. भा. रत. ६ १८-१९३।

सैली पर भी रहा है। राजपूत सैली में अम्ब विषयों के अतिरिक्त अधिकांश चित्रों में मुख्य विषय पौराणिक और महाकाम्यात्मक रहे हैं। ज्ञान कर कृष्ण-कीटा की इस सैली में बहुलता है। इसका अतिरिक्त 'देवी भागवत' और 'माकण्डेय पुराण से भी कबालें गूड़ीत हुई हैं।' मध्य काल में सगुण मत के द्वारा विकसित राम और कृष्ण की अवतार-रूपियों को कबल काव्य नृत्य-नाट्य और रामलीलाओं में ही नहीं, अपितु मूर्तियों और चित्रों में भी व्यक्त किया गया। एक ओर तो इस सैली के चित्रों में महाकालों के आचार पर चित्रित 'राम की बीर गाथा' और 'सीता की अग्नि-परीक्षा के चित्र बनाने गए और दूसरी ओर राधा-कृष्ण की माधुर्यपरक प्रेम-भावनाओं की मूर्तियों और चित्रों का विशेष प्रचार हुआ।^१ कुछ लोग राधा-कृष्ण की प्रेमलीला के द्वारा काम-मठीकों का विभिन्न भारतीय कलाओं में विस्तार मानते हैं।^२ राजपूत सैली काव्यनिक जगत का निर्माण नहीं करती अपितु संसार को ही एक ऐसे बाह्य प्रतीकात्मक विषय में कल्पान्तरित कर देती है जहाँ किर्यों और दुखों की महानाम आकृतियों और भाव-संग्रहण तथा जगती या पापित पौर्षों और पद्यों की आध्यात्मिक छीकालें अव्यक्त प्रेम भावना की ओर संकट करती हैं।^३ कुछ चित्रों में अव्यक्तविरत नायक और नायिकाओं के आधिदैविक प्रेम की छोकियाँ मिलती हैं। राजपूत सैली में भी राधा और कृष्ण अपने साम्प्रदायिक रूप में गूड़ीत हुए हैं। मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में राधा और कृष्ण आत्मा और ईश्वर के प्रतीक थे। ये सक्रिय और निष्क्रिय सत्ता के भी चेतक रहे हैं। राजपूत सैली के चित्रों में कपर चित्र और नीचे पद्य रैने की प्रथा रही है। जो तो इस चेत्य में 'बारह मासा' और 'रागमाका' का चित्रीकरण एक विशेष महत्व रखता है।^४ क्योंकि मध्ययुगीन काम्यधारा में एक ओर सूर-मीरा आदि के अष्टिपरक पद्यों में राग-रागिणियों मुखरित हो बड़ी ही तो दूसरी ओर सूक्तियों एवं रीतिकालीन कवियों के विरह-वर्णन में 'बारहमासा' का प्रचार था। मध्ययुग की सत्कृति के वास्तु मूर्ति, संगीत चित्र काम्य किसी को भी उपेक्षित नहीं किया। सूर, मीरा और तुलसी के पद केवल संगीत के कंटों में ही नहीं, बल्कि राजस्थानी सैली के चित्रों में भी साकार हुए। राधा-कृष्ण की लीला का चित्र बनाने वाले चित्रकारों में गीतगोविन्द तथा कसपदास बिहारी, देव,

१. एम्बो इन्. का पृ ११९।

२. एम्बो इन्. का पृ ११९।

३. का. की. इन्. सी. पृ ६०।

४. कल. का इन्. पृ १४२।

५. मा. वि. (मैत्र) ५. ५९।

मनिराम के कार्यों पर आधारित चित्र अधिक लोकप्रिय थे। इन चित्रों में ऊपर चित्र रहते थे और नीचे उनकी कविताएँ रहती थीं।

गुजरात सौंदर्य से समाहित इन चित्रों में एक भीतर और सुन्दरे रंगों की अलङ्कृति का अधिक प्रयोग रहा है। यों तो राजपूत चित्रों में रंग सौंदर्य और आगमन चरसी देन रह है किन्तु विषय-वस्तुओं में भारतीयता अत्युत् रही है। राजपूत चित्रकला के कुछ चित्रों का अध्ययन करने पर अवतार-लीला के कुछ अनात्मक दृश्यों के दर्शन होत हैं। एक चित्र में भक्तवर्षाभूषण एक स्थापित प्रेमी के रूप में चित्रित किए गए हैं; जिसमें श्रीराम और सुमुना के तटवर्ती निकुञ्ज में चित्रित हुए हैं। इनके मूर्तियों को रूपन पर चतुर्भुज की द्वाप दृष्टिगत होती है। एक दूसरे चित्र में अवतार पूर्व बैकुण्ठ में विष्णु और लक्ष्मी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वहीं शिव भद्रा, गणेश आदि उपरिमत हैं। इसमें प्रथा के संकेतों द्वारा विष्णु से अवतरित होने का अनुरोध किया जाता प्रतीत होता है।

इस प्रकार राजपूत सौंदर्य में हिन्दू जीवन-दर्शन की झलक के साथ-साथ अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक चित्र अंकित किए गए। विशेष कर राधा-कृष्ण की अवलम्बित प्रणय-लीलाएँ—मान, प्रवाम, सयोग वियोग, प्रज्वलितार्यों और गापियों की प्रेमामिष्यक्ति के अनेक मनोरम एवं मयमामिराम दृश्य प्रस्तुत किए गए। साम्प्रतिकता यह जान पड़ती है कि रीतिकालीन साहित्य की मूर्ति 'राधा और कृष्ण' तन्महात्म्य चित्रकला के भी 'सुमिरन के कहाने' बन गई। एक ही राधा-कृष्ण अनेक नायक-नायिकाओं के रूप-भेदों में चित्रित किए गए। राधा और गापियों के चित्रों में अपन प्रियतम 'काम्हा' से कहीं मिलने की अर्थात्ता और लक्ष्य है कहीं मित्य मयाग-विहार। विंगे कर प्रापितपनिका, अमिसचिना कष्टदृष्टरिता, अगिहता, वासकम्पजा, चित्रकला, गर्विता, अमुरागिनी और प्रेमाम्पत्ता की दृशाएँ अधिक चित्रित हुई हैं।

—प्रीत काव्य की मूर्ति चित्रकला के लक्ष्य राधा और कृष्ण अथ कवक (न राधा और कृष्ण नहीं से अविशु कलाकारों के मानस-चित्र में निर्मित प्रमोनुकृष्ट रमन्नेय आलम्बन नायिका और नायक थे। इनके माध्यम नायक-नायिका एक के सहार अनेक रूप-रूपाओं के चित्र उपरिचित करत थे। अनन्तरवर्ती राजपूतानी चित्रकला में भी 'मानिये ताकविताई' तो 'राधा-कृष्ण सुमिरन' की तरह अंगार ता प्रत्यक्ष था, किन्तु मक्ति काह में सौंके बना रही थी—प्रत्युत निरादित्य-मी हो गयी थी।

पहाड़ी शैली

पहाड़ी शैली या कॉंगड़ा शैली का परवर्ती रीतिकालीन कविता की तरह उत्तरकालीन मध्ययुगीन चित्रों में बिसिद्ध स्थान रहा है। कॉंगड़ा के राधा संसारचन्द्र का युग वस्तुतः पहाड़ी कला का स्वर्ण युग रहा है। इस शैली में अनेक प्रबन्धकारक एवं उदात्त चित्रों के वर्सन होते हैं। 'कल्पियद्मम चित्र' में बालकृष्ण कल्पियनाम के सरीर को कमलनाभ की तरह ताने हुए पदका ही चाहत हैं। साथ ही पैरों से दूध कर उसके कमर पिसे जा रहे हैं। मांग बाकाएँ उसके प्राणों की भिन्ना मांग रही हैं और नन्द्य, पछोदा तथा गोपी और गोप अपने छावके के किये ध्यातुक हो रहे हैं। इस प्रकार पहाड़ी चित्र शैली में वास्तविकता और भावना का अपूर्व मिश्रण रहा है। मिश्रित प्रक्रिया के द्वारा पहाड़ी चित्रकारों ने अवतार लीलाओं के चित्रों में अमिथ्व रमणीयता और सजीवता का संचार किया है। ऐसा कोई रस या भाव नहीं है जिसका पूर्ण एवं सफ़ल अंकन ये कलाकार न कर सकें हों। विचारकों की दृष्टि में इनका आच्छेदन 'वदन्नापि कठोर जगत्वा 'कुमुदापि मृदु' होता है।^१ उनकी समानुभूति में व्यापकता और गम्भीरता है जिसके फलस्वरूप इनके प्रत्येक रेखांकन में प्राणों के स्पन्दन और प्रवाह बने रहते हैं। उनकी कल्पितम रेखाएँ भी अर्धवृत्ता से पूर्ण रहती हैं। मध्ययुगीन मन्त्रों के किये किये के आठवें अवतार कृष्ण की लीलाएँ केवल ऐतिहासिक लीला मात्र नहीं हैं; अपितु मन्त्रों के दृश्य में अकने वाली आभूत अवतार लीलाएँ हैं। शैल्यों के किये यह सृष्टि कोई भ्रामक या मायात्मक कल्पना नहीं है—अपितु उसकी आविर्भूत लीलास्थली है; जहाँ स्वयं अद्य मनुष्य के समान लीला करता है। इसी से मन्त्र में अवतरित अद्य केवल प्रतीकोपारम्भ न होकर समस्त कलाओं के माध्यम से अमिथ्वत्, मन्त्र के उन्नतबीजित सबकों का मूक आचार परम या अनन्य रमणीय उपारम्भ है। राधा-कृष्ण की लीला (१७ वीं से १९ वीं तक) पहाड़ी शैली के कलाकारों के किये मुख्य मेरमा-बोध रही है। यदि यह कहा जाय कि पहाड़ी शैली के मर्यादित मन्त्रों में शैल्यव अवतार-लीलाओं की सर्वाधिक अमिथ्वत्कि हुई तो कोई अधिक अनुचित नहीं होगा। यद्यपि पहाड़ी चित्रकारों ने बृन्दावन और गोकुल के जगलों को अपने दृग से सँचारा है। अतः दृशमें मधुरा प्रवेष्ट से अधिक कॉंगड़ा उपत्यका की आत्मा अमिथ्वत्कि हुई है। यही नहीं यहाँ के पर्वत नदियाँ मिर्सर हुए कलाएँ तथा राधा इत्यादि गोपियाँ कॉंगड़ा आदी की अधिक प्रतीत होती हैं। इस प्रकार

स्थापीय वातावरण की आत्मीयता में वृद्धावन और वहाँ की सारी लीलाओं का पहाड़ीकरण इस चौली की अपनी विशेषता है। पहाड़ी चौली में ही बसोली ककम भी बहुत प्रसिद्ध रही है। 'कलित कला एकदमी द्वारा संकलित चित्रों में कृष्णकीला से सम्बद्ध 'विष्ट की अट्का-पव्ठी मास्त्रन चोर, वृद्धावन में कृष्ण की लीला कलियदमन गिरि गोबरजन चीरहरन, बावा नरु भावमन, यमुना किनारे राधा-कृष्ण मिलन लीला हाव (राधा-कृष्ण द्वारा परस्पर वस्त्र परिवर्तन राम मंडल कृष्ण और गोपियों की लकड़ीका'— जैसे लीलात्मक चित्र रूपोंकित हुए हैं। इस प्रकार पहाड़ी चित्र चौली में भी रामरुन ककम की भक्ति राधा और कृष्ण ही नायिका और नायक क रूप में गृहीत हुए। रीतिकालीन कविता की तरह मध्यकालीन चित्रकला में भी कलाकार का ऐतिहिक प्रेम आप्पात्मिकता का घाना पहन कर चित्रकला में साकार हुआ। पौराणिक परम्परा से राधा और कृष्ण लीलात्मा और मल्ल क प्रतीक रूप में प्रचलित आ रहे थे जिसक एकस्वरूप उनकी समस्त ऐतिहिक लेशाओं और श्रद्धाओं पर आप्पात्मिक रग चढ़ गया था। इसी से पहाड़ी चित्रकला में भी अक्षतारवादी वर्गन की समस्त प्रवृत्तियों, प्रश्न और भावना ही प्रेमोत्कंठ और प्रेम संयोग क रूप में चकती रही हैं।

मध्यकालीन भक्त साहस्य अक्षतारवादी नायक-नायिकाओं की मूर्तियों और यात्रों से ही अभिमूत नहीं होते थे प्रत्युत वृद्धावन अपोभ्या; मधुरा रका जैसे तीर्थस्थलों और अपने इष्टदेव क मन्त्रियों से भी प्रेम करते थे मर्से उनकी वास्तुकलाजनित प्रेमामुमूनि क वर्णन होते हैं। ऐसा लगता है उपास्य से सम्बद्ध होना जितना उनके मियरव का कारण था उतना उन भाव्यों की कलात्मक शक्ति नहीं। जैसे ही राग-नायिकियों क सम्मूर्तित चित्रों में गीतगोविन्द रसिकमिया, नायिका मेय तथा मल्ल कवियों क भावाभिमूत पवों के उद्गरन काव्य मूर्ति चित्र सगीत सभी का रसायुमूनि की एक मनोभूमि प्रतिष्ठित करने में समर्थ थे। क्योंकि पद्य और उनक चित्र एक दूसरे क माओं को स्वंत्रित ही नहीं विभित भी करने रह हैं। होहा कवित लुप्यप, चौपाई और सबैया में इन चित्रों की अभिव्यक्ति की जाती थी। राधा और कृष्ण की इस चित्रात्मक प्रेमाभक्ति में अर्चुं नैयर्गिक प्य मानवाचित प्रेम की एकक मिठनी है। राधा और कृष्ण मात्र गोपी और गोप रूपमें साम्नाय्य लाल मनुदाय का प्रतिनिधित्व तो करते हैं साथ ही उनकी प्रेम-रथली भी काई राजमवन न होकर प्रकृति की समस्त पृथि और विभूतियों म सम्बन्ध के

एक और गाँव है जो वर्षा बमलत शरद, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के अनुरूप इनकी प्रेमायुमूर्ति को उड़ीस करत है। कृष्णाक्षय कुञ्ज कदम्ब वृक्ष तमाकू वृक्ष जमुनातट आदि राधा-कृष्ण एवं गोप-गोपियों के प्रेम को अधिक प्राकृतिक बना कर एक अपूर्ण भारतीय स्वभाविकता प्रदान करते हैं। वस्तुतः भक्ति से अनुप्राणित होते हुए भी राधा-कृष्ण का प्रेम भारतीय जीवन-दर्शन के ऐहिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों की स्वभाविकता का विर्बाह करते हुए उस मार्मिक रमणीय भीहात्य का परिचय देता है, जो भारतीय जन-जीवन में सुक-मिठ कर अमिठ-ना हो गया है। इस प्रकार पहाड़ी खैली राजपूत खंडी तथा रागमाकाओं में चित्रित राधा-कृष्ण और शिव-पार्वती जन-जीवन के ही दो पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टि से राधा-कृष्ण का सम्बन्ध ग्राम्य जीवन और प्रकृतिमूकक प्रेम से व तो शिव पार्वती का विभूतिमूकक एवं तपस्वात्मक पार्वतीय प्रेम से। अतः अवतारवादी चित्र-कला में यदि एक ओर परात्पर आदर्शवाद (Transcendental Idealism) का दर्शन होता है तो दूसरी ओर भारतीय ग्रामीण संस्कृति में पद्धित क्लेश-जीवन का आदर्श प्रेम भी चरम सीमा पर पहुँच चुका है।

मूर्तिकला

भारतीय चर्म-साधना में साहित्य एक कला दोनों अमिठ अंग रहे हैं। यदि भारतीय छात्रकों का चरम उच्च मोक्ष रहा है तो भारतीय कर्मणों भी मोक्ष प्राप्ति का साधन मानी जाती रही हैं। वास्तु कला के माध्यम से भारतीय कला-विशेषकर देवमन्दिर उम चरम उपासक की ओर उन्मुख करता है, जिसका प्रतीक अर्था विग्रह है। मूर्ति देवता का अर्चावतार है और मन्दिर उसका शरीर या निवास स्थान। यह मूर्ति-मन्दिर का सम्बन्ध-भाव भारतीय बौद्धिक या आत्मापासना में भी प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। प्राचीन सापेक्ष 'अंगुष्ठमात्र' आर्या को देवता और शरीर का देवालय मानते रहे हैं।^१ अवतारवादी चारणा के अनुसार चराचर विरच भी सनातन भगवान् विष्णु का स्वरूप विरच मूर्ति है।^२ अतएव मूर्ति एवं भक्ति चित्रों में रेखा अनुपात और रंग आदि के माध्यम से कलाकार का वास्तविक कथय वस्तुता ज्ञान की अभिव्यक्ति रही है। भारतीय मूर्ति-कला की विचित्रता यह है कि मूर्ति ता पवर्थातः कलाकार के दृश्य और मन में निवास करती है और वह उसका प्रतीकवात्मक रूपान्तर

१ न्यन्दोपवित्र में भी शिवो देवालयो प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः की अर्थाह्वयी है।

२ भा पु पूर्व भा अ १३।

मात्र करता है।^१ यही कारण है कि मूर्ति से उसका वास्तविक सम्बन्ध क्रियात्मक न अधिक मानसिक रहता है। कलासनाथ पुरोरा का निर्माण करने के बाद कलाकार स्वयं बिना उद्य कि जैसे हमन बनाया है।^२ कला-निर्माण का यह रूप संवेदिक करता है कि कला का अन्ततः अह में नहीं बल्कि चेतना के स्तर में है। चेतना का यह रूप 'महत्' के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ विषय और विषयी में कोई भेद नहीं है। विषय-विषयी का सक्रिय तत्त्व के रूप में कार्य करना ही बुद्धि है। इसकी स्पष्टता न तो शब्दों से वाचित होती है न नामों से। इसी से (महत् से) अह की अभिव्यक्ति होती है और पुनः अह से विरक्त साकार होता है।

निरक्षय ही कला का उत्तम महत् में होता है और बुद्धि में यह व्यक्त होती है। पदार्थतः रचनात्मक बुद्धि के लिए विरक्त विषय नहीं है, बल्कि विषयी विषय है। इस प्रक्रिया में इसकी शक्ति मया है, जिसके द्वारा अह व्यक्त होता है। अन्ततः अह से विरक्त की रूपरेखा का प्रकार की शील पक्षी है—यह अह तो यह कि अक्षिप्त विरक्त विरक्त-काल से भावुक्त है और नृमरी वह जिसमें कलाकार महत् रूप में विरक्त को प्रस्तुत करता है। यह कलाकार का विरक्त है जहाँ वह विभिन्न रूपों और रंगों में अह की विमूर्ति और सौम्य का प्रदर्शन करता है। इसी सत्ता में कला-वस्तु, मूर्ति चित्र आदि की कोटि में उचित होती है। प्राकृतिक स्वरूपों में वह प्रत्यक्ष विरक्त गेचर है, जिनमें आत्मा और जीव-सत्ता का निवास है। प्रत्यक्ष विरक्त को बाहर से उद्दिगत तो होता है किन्तु उसकी आत्मा नहीं। सम्भव है उसकी आत्मा का भाव उसके क्रिया स्थापार हाव भाव, हेला, मुद्रा इत्यादि से होता हो, किन्तु फिर भी वह अक्षय ही रहती है।

कलाकार भी जब एक मूर्ति या कलाकृति का निर्माण करता है, तो उसका वाद्य रूप वह होता है और आत्मरूप अक्षय। इसी से कला अन्तः और वाद्य के सम्बन्ध की स्थिति है विभिन्न मुद्राओं और मणिमार्गों के द्वारा वह वाद्य के अनिच्छित अन्तः की आर भी सकल करती है। भारतीय कलाकार शुद्ध विरक्त को अक्षय शीलकर तथा अक्षय-विरक्त का मन्त्र मूर्त्त कर करता है। यह वाद्य दृष्टि से मूर्ति का निर्माण कर उसे अक्षय-विरक्त मानव भावुक्ति या कलात्मक रूप प्रदान करता है जिसमें एक भाव तो उसकी कलात्मक प्रतिमा का योग रहता है किन्तु वाद्य ही वह उभी समय परमात्मा की उपस्थिति का भी भाव करता है।

यद्यपि परमात्मा परमात्मा है परन्तु कला का कार्य उस रूपेतर अरूप को रूप आकृति और निवास प्रदान करना है जो मोक्षदाता है अनुभव कर्ता है तथा सभी रूपों का मूक है और जो स्वयं अपने को व्यक्त करता है। इस प्रकार मूर्ति और मन्दिर वे साधन हैं जिनमें मनुष्य अरूप के विभिन्न रूपों का दर्शन करता है। वह उसकी रूपांकित अनेक संगीमाओं और मुद्राओं का दर्शन करता है। अतः भारतीय मूर्ति चित्र आदि कृतियों का वैश्व-गुणों तथा नाट्यों से भी बहिष्कृत सम्बन्ध है जो प्रायः अनेक युगों में प्रकटित रहा है। क्योंकि भारतीय धर्म और दर्शन में पुरुष और मह्यति तथा देव और देवी इस ढोक में अवतरित होकर जितनी भी छीकाएँ करते हैं—वे सम्पूर्ण छीकाएँ गदबद होती हैं। सम्भवतः इसी से जबका निर्माण किसी न किसी मूल्य या सामूहिक मूल्य-माध्यम तथा अभिनय की मुद्रा में होता है।

भारतीय कलाकार भी मूर्ति के निर्माण में प्रायः तत्त्व अथवा सजीवता को आवश्यक मानता है। इसी से मनुष्य के पञ्चमीलिक स्पर्क और सूक्ष्म शरीर के सहस्र भारतीय मूर्ति क भी हो शरीर (प्रस्तर और प्राण) होते हैं जिनका व्याकरण कलाकार को करना पड़ता है। प्राण शरीर की विशेषतायें हाव भाव हेका अभिनय और मुद्रा के द्वारा व्यक्त होती है।^१ मूर्ति का स्पर्श उपासक में ईश्वर की उपस्थिति का ध्यान कराता है। इसी से उपासक भी आपाद्मस्तक तथा हाव अंगुक्तियों आदि का स्पर्श उपासक इष्टदेव की उपस्थिति का ध्यान करते हुए करता है। मूर्ति-निर्माण की वह मठीकालातक परंपरा अनेक युगों से कलाकारों के द्वारा बक्षानुगत रूप में चकती रही है। अतः वंसाणुरूप प्रकटित सिदास्तों का ही प्रयोग व मद्य को साकार निर्मित करन में करते हैं। कलाकार जब कोई प्रस्तर चत्तु या कण्ड-मूर्ति बनाता है तो वस्तुतः वह मूर्ति नहीं बनाता अपितु उसमें विप्रे हुए रूप को प्रत्यक्ष रूप प्रदान करता है अर्थात् अरूप में से रूप व्यक्त करता है। बृहते कम्बों में यह कहा जा सकता है कि अरूप में विप्रे हुए रूप को वह व्यक्त करता है। यह धारणा मद्य पर भी आरोपित की जा सकती है कि मद्य-मूर्ति सर्वदा आत्म स्वरूप में स्थित है किन्तु माया के आवरण में होने के कारण वह अदृश्य है। यदि कलाकार के रूप में वह स्वयं अपनी मूर्ति का निर्माण करता है तो उसमें उसकी योग्यता दृष्टता और उसका स्वरूप दोनों हैं। यह दृष्टा के समान एक कलाकार तथा अपनी मूर्ति स्वयं व्यक्त करन बाका है।

बहु उमका वर्णन मात्र है। शिल्पी, कारक और कवियों में शिल्पी विमर्ष और कुशल कहें गए हैं। शिल्पी के किय प्रत्येक कवि के निमित्त वस्तु, काम, कृतार्थ, अनुकार्य और आकितितम्प आवश्यक है।

अवतारपरक मूर्ति-कला में सौन्दर्य और उपामना दोनों साथ-साथ छोड़े रहते हैं। इसी से देवमूर्ति का निर्माण ही शुष्कतीति में दितकर माना गया है। मूर्ति का रम्य होना मात्र के अनुसार होना और देवों के कण्ठ से युक्त होना आवश्यक समझा जाता है। भारतीय मूर्ति-कला के सैद्धांतिक अध्ययन में इतिहास सम्बन्धी सबसे बड़ी मुक्ति यह है कि इसे पाश्चात्य विद्वान् पश्चिमी अग्रतम कला की तरह अनुकृतिमूकक समझ कर किया करते हैं। जबकि प्रायः कला किसी भी दशा में प्रकृति का अनुकरण नहीं करती। अपितु उसका मूल उद्देश्य है स्वतन्त्रा चरम, वह स्वरूप तथा विषय का नहीं अपितु विषयी तत्त्व का उचस्थापन। भारतीय कला में बुद्ध अथवाकोटिरेवर विष्णु, राम कृष्ण शिव, आदि के सांख्यिक रूपों से तत्पर्य है—उपास्य इन्द्रदेव में शिकट की मूर्ति जहाँ तक कला की सीमा है। यह वह धार्मिक कला है जिसका कथन है विष्णु चरित्र के पूर्णत्व की स्थापना; इससे भारतीय कला में वैयक्तिक अभिव्यक्तता की सम्भावना ही नहीं रहती, क्योंकि सर्वदा इसका मूल उद्देश्य मानवतर का दिव्य सबेदना उत्पन्न करने वाली प्रतीक-मूर्ति तैयार करना है। यही कारण है कि देवी आदि अनेक विचित्र चित्रों और मूर्तियों का मूल कारण रहा है। अतएव भारतीय मूर्ति-कला की सर्वोत्कृष्ट विशेषता उसकी धार्मिक प्रवृत्ति है जो उमक विकास में मूलस्रोत का कार्य करती रही है। जो आकारण की दृष्टि से भारतीय मूर्ति-कला कहीं अनाकरण और अत्यापक की सीमा पड़ती है। इसका मूल कारण उसकी प्रतीकात्मकता है। सदैव उसका प्यान वस्तु जगत् से हटकर किसी जागतिक, मनातन और अनन्त सत्ता की ओर कर्ण रहता है। यह पृथ्वी से हतर सौन्दर्य को मूर्तरूप देन में प्रयत्नशील रही है।

भारतीय मूर्ति-कला की भावभूमि प्रतीकों के माध्यम से विकसित भाव-काय पर स्थिर रही है। ईसा की दूसरी शताब्दि के बाद प्रतीकों का विकास अर्थ या पूर्ण प्रतीकों से मूर्ति के रूप में हुआ इस विकास-क्रम को भी अग्रतम वाली कला का वैशिष्ट्य मान सकते हैं; क्योंकि देवी मूर्तियों या प्रतीकों के द्वारा रणानाम्तरित हुयी हैं—उस मूर्ति में ही उसके समस्त प्रतीक चिह्नों को

संज्ञाना अवधारणाएँ कला की विशेषता रही हैं। रमणीयता और उपासना दोनों का अपूर्व साहचर्य इस कला में सन्निहित रहा है। इस दृष्टि से भारतीय मूर्तिकला अनिर्धार्यतः भावसंवादी रहस्यवादी प्रतीकात्मक और सर्वात्मिकी है। कलाकार पुरोहित और कवि दोनों हैं। भारतीय मूर्तियाँ हमारी कल्पना को इस प्रकार उन्मेषित करती हैं जिसके क्लृप्तस्वरूप उपासक अध्यात्म और भावना के एक विशिष्ट संस्कार में पहुँच जाता है।

भारतीय मूर्ति-कला का क्षेत्र बहुत विद्याक है। यदि एक ओर वह योगियों के दृष्ट्य में आत्ममूर्ति है तो दूसरी ओर समस्त हिमाक्षय भी एक वैसी मूल सौम्यता की व्यंजना करता है। हिमाक्षय भारतीय देवों का वह निपास है जहाँ से वे पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। गंगा अपनी घसत धाराओं द्वारा हिमाक्षय का दृष्ट्य मेहन करती है। मानसरोवर भी चार नदियों का काव्यमय मूल समझा जाता रहा है।

यों तो यूरोपीय कला में भी नदियों और पर्वतों का वैश्वीकरण हुआ है किन्तु भारतीय कला से उसका विविध वैपश्य यह है कि प्रकृति यहाँ कबल सौम्यतामिष्यति का प्रतीक मात्र नहीं है अपितु भारतीय प्रकृति का मौलिक स्वरूप स्वता आध्यात्मिक अवस्था से संपुटित है। भारतीय कलाकार प्रायः शताब्दियों से सामान्य तम के दृष्ट्य 'बोर्गीरिवातगम्य' वैचक्य का रूपांकन करते रहे हैं। ऐसे तो योग-दृष्टि भी ब्रह्म दर्शन में सप्रम नहीं है इसी में वैदिक क्रियाओं में प्रचलित पंचादि मूर्तियों की अपेक्षा अधिक प्रचलित रह हैं। भारतीय मूर्तिकला का विकास भी वर्तमान जनवाद की तरह गमित की सौम्यता के मिश्रण से हुआ है। पंचों में प्रायः देवता के अधस्त्यक रूप को एक विष्णु से गमित कौडी में विकसित किया जाता रहा है। इस प्रकार विष्णु से विष्णु का और विंघ से महाशय की कल्पना का कलात्मक विभ्रम विराट रूप में प्रायः भारतीय पुराणकारों द्वारा वर्णित होता रहा है। इतिवृत्त केप्यत्र मंदिरों में जिस सुदर्शन चक्र की पूजा होती है—वह भी लक्ष्य के मम का प्रतीक है या वह लक्ष्य की प्रथम दृष्ट्या को व्यक्त करता है जहाँ घृष्टि की प्रथम दृष्ट्या होने पर वह स्वयं जपन को व्यक्त करता है। पुनः वह अनि चक्र के रूप में चित्रित किया गया है जिसके चार हथकों में अष्टाष्ट अंकित हैं। चक्र के एक मुख पर विष्णु का मुनिहास्यकार समप्रियुक्त से जापुन हाकर योगी रूप में अंकित है। दूसरे मुख पर दो एक समाज समुक्त हैं। एक तीर्थ विष्णु पर स्थित है और दूसरा आचार पर। वे दोनों

प्रकृतियों के उल्लेख और संहार रूप का प्रतिनिधित्व करत हैं। उनमें कीच
 विष्णु की प्रतिमा बराहवतार के उग्र रूप के साथ लकी है जिसमें वह जल में
 डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं। व उन ममस्त भावुओं से युक्त हैं जो
 ममस्त बुराई की एक अविद्या का मारा करत हैं।^१ इस प्रकार भारतीय
 मूर्तिकला में आचार और सौन्दर्य रमणीयता और उपासना का समन्वय
 हो गया है। सांख्य के प्रकृति और पुरुष मत और बस्तु के प्रतीक होकर
 कलाकार की कल्पना के अनुसार सागतिक सौन्दर्य का विधान करत रहे हैं।
 की-रूप में जिन देवियों का चित्र मूर्तिकला में स्थापित हुआ है अधिकतर
 उनमें मानुषाच की प्रधानता रही है। भाविबुद्ध की शक्ति 'प्रजापारमिता'
 की-रूप में जिन देवियों का चित्र मूर्तिकला में स्थापित हुआ है अधिकतर
 भारतीय पौराणिक साहित्य में लक्ष्मी और शक्ति के बाद दूसरा महत्वपूर्ण

विषय रहा है—देवामुर मद्राम। यह एक प्रमुख अवतारवादी प्रयोजन
 भी रहा है। इस प्रयोजन से इन्द्र विष्णु शिव और शक्ति प्रायः सभी देव
 देवियों सम्बद्ध रहे हैं। ममय ममय पर देवता या देवी किसी न किसी जसुर
 का वध करते रहें हैं। असुरों का वध करने के लिए वे विभिन्न काकों में
 अवतरित भी होत रहे हैं। भारतीय मूर्तियों या मूर्तिकलाओं में हम प्रायः
 उनके किसी-न किसी जसुर का वध करते हुए देखते हैं। देवियों में दुर्गा
 को मूर्तियों प्रायः अवतरित रूपों में ही अंकित मिलती हैं। वे शान्तों पर अपना
 का अवतार भक्तों के समक्ष पूर्णरूप में माना जाता है। वे शान्तों पर अपना
 शासन प्रभाव प्रदर्शित करती हैं।^२ अपने विक्रपात नटराज रूप में ताण्ड्य
 मूर्ति शिव भी कामनामुर का पदमर्दित करत हुए दीख पड़त हैं।^३ विष्णु
 भी मूर्तिदासतार में हिरण्यकशिपु का वध करते हुए प्रायः इस पीढी में अंकित
 किए गए हैं।^४ दुर्गा महिषामुर मर्दिनी के रूप में—दुर्गा-मूर्ति अधिक लोक-
 प्रिय रही है।^५ बौद्धावतारी में मनुष्यही ह्राय में शान्त-जगद्ग लिए हुए जगान
 का नाश करने के निमित्त प्रायः अंकित किए जाते रहें हैं।^६ दिव्य बुद्ध पावय
 मुनि के रूप में अवतरित हुए वे जिनकी जानक कथाओं तथा अन्य विभिन्न
 रूपों का अवलोकन मूर्तियों में अंकन हुआ।^७ इस दृष्टि से हेबेल का यह
 कथन बहुत उचित है कि अवतारवाद के सिद्धान्त और पौराणिक रूप समस्त
 भारतीय धार्मिक उपदेस के मूल में निहित हैं। इन्होंने जिन पौराणिक

१ इन एम दे ५ २४ और प्लेट ७।
 २ इन एम दे ५ १२।
 ३ इन एम दे ५ ११ और १८।
 ४ इन एम दे प्लेट १८।
 ५ इन एम दे ५ ११।
 ६ इन एम दे प्लेट १५।
 ७ इन एम दे प्लेट २०।
 ८ इन एम दे ५ १९।

भावनाओं को सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की जो मंदिरों के मित्त चित्रों और चित्रों में व्यक्त हुए हैं।^१

हिन्दू धारणाओं के अनुसार भारतीय कलाकार के लिए देवता की ही रचान-मूर्ति का निर्माण सर्वाधिक अपेक्षित है। 'शुक्र नीति' के अनुसार सुन्दर मनुष्य की अपेक्षा भगवान् की कल्प मूर्ति का निर्माण भी कहीं अपेक्षा है। पूर्व मध्य काल में मनुष्य-शरीर मायिक समझा जाता था चञ्चल उमकी मूर्ति का निर्माण भी मायिक माया धाता था जिसे उस काल के हिन्दू अष्टम और अपवित्र मानने लगे थे। भारतवर्ष में इसी से बड़े-बड़े शक्ति शास्त्री राजाओं की मूर्तियों की कम दक्षिण होती हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि मत्स्यपुराण भारतीय मानवता का चरम आवृत्त 'मानव में नहीं बरिष्ठ देवता या ब्रह्म में निहित था। ऐसे तो प्राचीन ऋषियों ने अनेक मानवीय भावों को रूपरमक रंग से भी व्यक्त किया था और उन्हीं भावों को लेकर कलाकार स्वाभाविक मानव पद्य या पद्य-मानव की आकृतियों का अंकन करते थे। रजक भगवान् को शक्तिशास्त्री रूपरमक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। उनकी अन्य मंगिमाओं में कतिपय अवतार-गुण भी प्रतिभासित होते थे। भारतीय मूर्तिकला में देव और दानव विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। भारतीय कलाकार प्रायः उनका रूपांकन उनके प्रतीकों आपुर्णों और सन्धों क साथ किया करते थे।^२ उनके इन रूपों में अवतारवादी शक्ति का ही धामास मिश्रता है। चित्रों के सहज मूर्तियों में भी नृत्त-मुद्राओं का विरूप प्रचार था। नृत्त में रत्त शिव और कृष्ण बहुत लोकप्रिय थे। भारतीय शिल्पकार प्रायः उन्हें समभंग वा समपद् अर्भग विभंग वा अतिभंग दशाओं में चित्रित किया करते थे।^३

बैष्णव पुराणों में विष्णु के मूर्त रूपों की व्यापकता का वर्णन होता है। विष्णु पुराण के अनुसार निराकार और सर्वेश्वर विष्णु मूलरूप्य होकर देव मनुष्य पद्य आदि माना रूपों में स्थित हैं।^४ इस लोक में भयवा और कहीं भी मिलने मूर्तरूप और अमूर्त पदार्थ हैं वे सब उनके शरीर हैं।^५ उपनिषदों की परम्परा में विष्णु मूर्त और अमूर्त भयर और पर ब्रह्म के दो रूप माने गए हैं। क्योंकि ब्रह्म ही चिन्तन का एकमात्र आधार है। ब्रह्म की ब्रह्म भावना कर्म भावना और उभय भावना से तीन प्रकार की भावनाएँ हैं। विष्णु का परम रूप अरूप है किन्तु चिन्तन-भावना ध्यात्मक मूर्त रूप में ही सम्भव है।

^१ इल एन. पें ४ १९।

^२ इल मैट स्क. पृ. २४।

^३ नि पु १ ८९।

^४ इल मैट स्क. पृ. ११।

^५ नि पु १।

यह समूर्ण बराबर जगत, परमेश्वर स्वरूप भगवान् विष्णु का, उनका प्रति-
म सम्यक् चित्रण कर है और उनका मूर्त अनुसृत रूप कलात्मक रूप
है। 'नारायण पुराण' में पूजा के विभिन्न विष्णु की—प्राणायाम नृसि, सूर्य,
अथ धानु इत्येव तथा चित्रतामावली य आर्य प्रतिमाएँ कही गई हैं।^१ 'एश
पुराण' में विष्णु के 'शाठग्राम रूप की व्यापकता बतलाने हुए कहा गया है
कि 'शाठग्राम' कथल विष्णु के ही नहीं बरिगु विष्णु के समस्त रूपों के साथ
उनके दशावतारों के भी पूज्य रूप मान गए हैं।^२ इस प्रकार पौराणिक युग में
विष्णु की अनेक प्रतिमाओं और प्रतीक चित्रों के प्रचार का पता चलता है।
हिन्दू में विष्णु की अवतार-मूर्तियों भी रही हैं। गुप्तकालक प्रह्लि के धनुस्वार
विष्णु की सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार की मूर्तियाँ मानी गयी
हैं।^३ इनमें राजगुणी और तमोगुणी प्रतिमाएँ प्रायः भक्त धनुस्वार और हुह
रुमन जैसे अवतार-कायों से सम्बद्ध हैं।

भारतीय मूर्ति-कला के विकास में अवतारवादी प्रह्लियों का अत्यन्त
महात्पूर्व स्थान है। अवतारवाद का प्रथम को कथल अनुभव ही नहीं
बरिगु एक पदे मारुत्तिक मायक-रूप में प्रस्तुत किया, जो राष्ट्र की मूर्तिमान्
चेतना का साक्षात् प्रतीक था।^४ राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए जो
औद्योगिक समर्थ करता रहा। साम्प्रदायिक दृष्टि से अवतारवादी मूर्तियों
विषय उपास्य परमेश्वर-मूर्ति, अवतार-मूर्ति, विभूति-मूर्ति और पापद तथा
आयुष-मूर्ति के रूप में विभाजित की जा सकती हैं। मित्य या परमेश्वर की मूर्तियों
में विष्णु नारायण और वासुदेव की मूर्तियाँ मानी हैं। अवतारों में दशावतार
चौबीस अवतार और ३५ विमाओं की मूर्तियाँ गृहीत हुई हैं। विभूतियों में
विभिन्न प्राकृतिक और साम्प्रदायिक देवों के अनिश्चित पशु, पक्षी, वृद्ध, बर्षा,
पवन, सुखी इत्यादि गृहीत होते रहे हैं। अवतारवाद के प्रथम, बुद्ध जैसे
सांस्कृतिक महापुरुषों का तथा विभूतिवाद के द्वारा समस्त वैदिक बहुदेव-
वाद और स्थानीय बहुदेववाद का आत्मसात् कर लिया है। पौराणिकों का
प्रधान विभाजन पर, गृह, विभव अर्थात् और अन्तर्पामी अवतारवादी
मूर्तिकला की व्यापकता का प्रदर्शन करता है। इस विभाजन में 'पर' के
रूप में एक आर्य सर्वशक्तिमान् अपर अन्तर्पामी अथ उपस्थित है या नृसरी
और जो गृहों में विभक्त समस्त-मूर्ति-काय शीघ्र पक्षता है। विभव में
विभूति और अवतार दोनों सम्मिलित हैं ता अर्थात् में शाठग्राम में खर व

^१ रि. पु. ३, ५३-८३। ^२ ए. पु. पूर्व भा. ३३ अ. ५५।

^३ ए. पु. ५५-५६, ५८ अ. ५५। ^४ इ. ने. भा. ५, ३३४।

^५ रि. वि. ३३८ अ. ५ में शैली का 'शैली' शब्द का अर्थ है।

समस्त मूर्तियों जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपना ऐतिहासिक स्थान बना दिया है। 'अमृतसामी' मूर्तिकल्प की दृष्टि से यह आत्मभिन्न मनोमूर्ति है जिसे भारतीय साधना में 'अगुह्यमात्र' इव्य-सच्चिद्वि वा 'विष्णव' उपास्य कहा जाता है। ऐसा कहा है कि 'पर से छोड़ अमृतसामी तब के समस्त रूप मूर्तिकल्प की दृष्टि से विनाशित है। ऐसे तो ब्रह्म निर्गुण विराकार हैं किन्तु मानव रूप धारण करने पर ही वे उपास्य देवता होते हैं। देवमूर्तियों को कबल मानवीय ब्रह्मानुपपन्न ही नहीं पहचान सकते बल्कि उन्हें मनुष्य सदृश राग-रूप से भी कुछ दिखाया जाता है। सास कर अवतारी की 'नन्दवप' मानवीय सीकाओं में राग-द्वेषपुत्र चारित्रिक विशेषताएँ पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती रही हैं। गुणायक व्यापार पर वर्गीकरण करने पर भारतीय कला मूर्तियों सांख्यिक राजसिक और तामसिक तीन प्रकार की मायी जाती हैं। मत्तों और योगियों के द्वारा उपास्य मूर्तियों को सांख्यिक कहा जाता है। किन्तु अवतार-मूर्तियों के अवतार-कार्यों में वे तीनों गुण समाहित हो जाते हैं। जैसे—'यहाँ अवतार अनुग्रह करते हैं यहाँ उनका सांख्यिक रूप का साक्षात्कार होता है। यहाँ वे मत्त के साथ उदार-काय में संकल्प हैं यहाँ राजसिक मूर्ति व्यक्त होती है और जिस समय वे पशु-वृमन में निरत हैं उस काल में उम तामसिक मूर्ति के दर्शन होते हैं।' अवतार-विग्रह में प्रकट उपास्य भी सर्वत्र तत्त्व किछोर अवस्था में अंकित किया जाता है। भारतीय विचारधारा में यह सम्झना जाता है कि ईश्वर स्वयं मत्त की मनोकामना के अनुसरण में वह सम्झना जाता है और उसकी इच्छा-पूर्ति करता है।'

अवतारवादी मूर्तियों का अन्य धर्मों एवं साम्प्रदायिक मूर्तियों की तरह समस्त भारतवर्ष में पर्याप्त प्रचार रहा है। गुप्तकाल अवतार-मूर्तियों के निर्माण का स्वर्णयुग रहा है। स्वर्ण चम्पुस किङ्गसाहित्य ने गुप्त मन्त्रियों के बाहर पृथ्वी का उदार करते हुए नृ-वराह का निर्माण कराया था जिसमें भगवान् वराह ने तमक कर पाताक-मन्त्रा पृथ्वी को सहसा बिना किसी प्रयत्न अपने दाहों पर घूम की तरह उठा लिया है।' उम युग की कला में मिली हुई एक कल्प-मूर्ति में भी कल्प के उपास्य और जोड़स्त्री रूप का अंकन हुआ है। श्रीकृष्ण गाधरघन पर्वत को सहज में कंकुक इव धारण किए, तने हुए दण्ड से लड़े हैं।'

कुम्भकला में शेषवती नारी के किमारे देवगड में गुप्तकलाकृति का अनुपम नमूना वराहवतार मंदिर है। इस मंदिर में अवतारवादी वास्तु और

१. इ. आ. इ. ११४।

२. मा. मू. प. ११३।

३. इ. आ. इ. ११०।

४. मा. मू. प. ११६।

मूर्तिकला का प्रथमग्रामक रूप मिलता है। वास्तुकला के प्रथम में हम पुनः हमकी चर्चा करेंगे। इस मंदिर के अनुसार वैष्णव मूर्तिकला के तीन प्रकार हीन पड़ते हैं। जबतार धारण करने वाले सप्तशायी विष्णु एवं उनका उदार कापों और खीसाओं तथा उनका पापनों का मूर्तियों मिलती हैं। दशावतार मंदिर के द्वार तारण पात्र-स्तम्भ और बाहरी प्राचीर की तरफ तीन शिखर-पट्टों पर अङ्कन मूर्तियाँ अंकित हैं। द्वार के शीर्ष पर विष्णु की मूर्ति पार्श्वस्तम्भों पर प्रतिहारी मूर्तियाँ और प्रथम तथा मिलापट्टों पर सप्तशायी विष्णु-धारण चापनी हुई लक्ष्मी नाभिकमल पर विराजमान प्रदा, पाम ही उनके शिव अंकित हैं। अक्षतार-लोहा मूर्तियों में गजगज-भोज, भर नारायण की लपटियाँ और अक्षयपात्र आदि चित्रित किये गए हैं।^१ नागरी घताम्बिक विरुपाक्ष मंदिर की उत्तरी शिखाक पर कविल, विष्णु, बराह आदि की मूर्तियाँ सैक-मूर्तियों के साथ-साथ अंकित की गई हैं।^२ विरुपाक्षमंदिर में एक स्थल पर हंसावतार का भी दरम चित्रित हुआ है।^३ हमी पुग के मल्लिकार्जुन मंदिर में शिखावतार और शृंग की मुद्रा में अंकित है। शिव के साथ-साथ दुर्गा के अवतार रूपों का भी तत्कालीन मूर्तिकला में प्रचार रहा है। महाकल्पपुरम् (मानवी पत्नी) के मंदिर में दुर्गा के महिषामुर बंध का चित्र बहुत विस्तार एवं विप्राया गया है।^४ दक्षिणी मूर्तिकला में 'कल्पवृक्षम मूल्य' की तरह 'कल्पवृक्षम मूर्ति' भी बहुत लोकप्रिय रही है। बाँबी पत्नी की एक पीठल मूर्ति में कृष्ण के भाग-शृंग की भव्य मुद्रा प्रदर्शित है। उस मुद्रा में कृष्ण (शिव की लालचय शृंगवाली मुद्रा की तरह) दाहिने हाथ से भव्य प्रदान कर रहे हैं और बाँये हाथ में नाग की पूँछ पकड़ हुए हैं। उनका दाहिना पाँव सुककर ऊपर उठ्य हुआ है और बाँयाँ कन काने हुए नाग के विर पर है। हम मूर्ति में उनों के माध्यम से कल्प प्रार्थना करता हुआ विप्राया गया है।^५ ग्वाहरी पत्नी में प्राप्त मध्यभारत की एक पीठल मूर्ति में वज्र-गोपाल की शृंग-मुद्रा अंकित है।^६

प्रथमप्रकार में कृष्ण की मूर्ति का प्रभाव विष्णु और शिव की मूर्तियों पर भी पड़न लगा था क्योंकि कृष्ण की बमाला का प्रयाग, बाह में विष्णु और शिव दोनों को मजाने में होन लगा था। यद्वैलों की मूर्तिकला में इसका स्पष्ट पता चलता है।^७ यद्वैलों के कुम्भवना 'मतिपादेव' के मंदिर में एक

१. का. इ. म. प. प. प. ४८।

२. का. इ. म. प. प. प. ११।

३. का. इ. म. प. प. प. १०।

४. का. इ. म. प. प. प. ८।

५. का. इ. म. प. प. प. ११।

६. का. इ. म. प. प. प. १४।

७. का. इ. म. प. प. प. १२।

तीन सिर वाले विष्णु की मूर्ति मिलती है, जिसके १० हाथ हैं। यद्यपि इनमें से बहुत से हाथ भंग हो गए हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्तिकार द्वारा तीन सिरों के माध्यम से मङ्गा विष्णु और शिव की एकता प्रस्तुत की गयी है तथा विष्णु के इस हाथ तरकाजीन युग में लोकप्रिय द्वायवतार मूर्तियों के भक्तार-कार्य का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं।^१ अथर्व वैष्णव मूर्तियों में भक्ताराम और देवती विष्णु और लक्ष्मी चंद्रक कथा की सुन्दर मूर्तियों

सदृश स्थापत्य कला की एक विशेषता विष्णु की विभिन्न रूपों वाली मूर्तियों में शीघ्र पड़ती है। कन्नुराहो के चित्रगुप्त मंदिर में ११ सिर वाली विष्णु-मूर्ति तथा तीन सिर और आठ बाहु वाली विष्णु मूर्तियों के वर्णन होते हैं जिनके सिर पर मुकुट तथा गले में अनेकों रत्नमाकाप हैं।^२ कन्नुराहो के अथर्व मूर्ति चित्रों में अपने हाथ की अनेकों एक बराह-मूर्ति मिलती है। इस मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मूर्तिकला के माध्यम से वैष्णव भक्तारों में प्रचलित विराट रूप बड़े विस्तृत पैमाने पर अंकित किया गया है।^३ बराह के सारे शरीर में अनेकों देव देवी मङ्गा विष्णु, शिव सहित नाग गन्धर्व दिग्गज, यक्षत्र इत्यादि सब मिखाकर १०० देवों के चित्र हैं। आगे पैरों के मध्य में आदि शोपनाग भी अंकित किए गए हैं। बराह की पीठ पर यितने देवता चित्रित किए गए हैं उनमें प्रथम काँ के देवता व हैं— जो बैठे हैं, द्वितीय कतार के देव माध्यमों की तरह चित्रित हुए हैं जिनमें देवदूत (माकापर) कुछ बैठे हैं और कुछ आकाश में उड़ रहे हैं। चौथी कतार में बहुत से विष्णु-दूत हाथ में गादा और कद छिप हुए बैठे हैं।^४

उपरोक्त बराह-मूर्ति क विराट रूप से ऐसा कला है कि पूर्व मध्ययुग में भक्तारों की मूर्तियों केवल 'कदम्ब' उपास्य-रूप में ही अंकित नहीं होती थी अपितु उनके विराट रूपात्मक और भक्तार लौक्यात्मक रूपों को भी विरतारपूर्वक रूपांकित किया जाता था। तमिल और अधिप्रदेश क पाण्डुरवर्णी राजाओं ने कौची महाबलिपुरम आदि स्थानों में शिव और विष्णु की अनेक मूर्तियों का निर्माण कराया था, जिनका पाण्ड्य और चोल राजाओं ने और अधिक विस्तार किया। पाण्ड्यवर्णी राजाओं द्वारा निर्मित बराह भक्त' इस युग की कला का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है। इस संक्षेप में लक्ष्मी और

१ आ चन्द्रक पृ. २७।

२ आ चन्द्रक पृ. २७ पृष्ठ ५५।

३ आ चन्द्रक पृष्ठ १० तथा पृ. ३५।

४ आ चन्द्रक पृ. १२ पृष्ठ ४५, ४६, ४७।

५ आ चन्द्रक पृ. १६-१७।

दुर्गा आदि देवियों के साथ ब्रह्मावतार की भी कथा अंकित है, जिसमें प्रथम से ते पृथ्वी की रक्षा करते हैं।^१ ब्रह्मावतार का यह रूप अंकित है, जिसमें ब्रह्म दोनों हाथों में पृथ्वी को धामे हुए हैं और उसकी ओर पके प्रेम से देख रहे हैं। उनके चरणों के नीचे वायुकी भाग पड़े हुए हैं, जो वायु में पृथ्वी का भार बहन करने वाले हैं। शिव के साथ अनेक देवता भी यहाँ उपस्थित हैं।^२ त्रिमूर्ति गुफा में त्रिविक्रम का एक रूप अंकित हुआ है। इसमें त्रिविक्रम आठ हाथ बांछे हैं और सभी हाथों में धनुष, बाण, सक्, तलवार, पद्म, चक्र छिपे हुए हैं तथा ऊपर बांछे हाथ से स्वर्ग को रोके हुए हैं।^३ वैष्णव अवतारों के अविरिक्त गुण की मुद्रा में इस हाथ बांछे शिव का भी त्रिचिह्न प्रस्तुत किया गया है। पार्वती शून्य की ही मुद्रा में उनके पास खड़ी है।^४ इस प्रकार पावन वास्तुकला में शिव कीका तथा ब्रह्मावतार आदि भी प्रधान विषय रहे हैं।^५ महिपासुर मंत्रण में दुर्गा महिपासुर का मर्दन करती हैं और दूसरी ओर भगवन्तशायी विष्णु का चित्र भी अंकित है।^६ कृष्ण मंत्रण वैष्णव पावन कला का प्रतिनिधि नमूना है। इसमें कृष्णावतार के दो रूप गो-रोहन और गिरि गोधरधन अंकित किए गए हैं। गो रोहन के समय राधा कृष्ण के साथ खड़ी हैं।^७ इस प्रकार पावन कलाकारों में देवी प्रतिमाओं के अंकन की अत्यन्त उत्कृष्ट कपरेला मिलती है। ब्रह्मावतार का विराट रूप इस सौकी की महत्ता का अद्वितीय प्रतीक है। उसके विराट रूप में एक ओर यदि कलात्मक सौवात्य है तो दूसरी ओर अवतार-कार्य में भी अत्यन्त ओजस्वी रूप का दर्शन होता है। तरकापीन राजकूटों में भी अवतारवादी मूर्तियों का पर्याप्त विस्तार हुआ। कदा जाता है कि इनकी कुछदेवी 'ममसा' ने भी राष्ट्र की रक्षा के लिए 'स्येन' का अवतार ग्रहण किया था।^८ राष्ट्रकूटों से पूर्व के चातुर्वय भरेस परम वैष्णवों में से थे। चातुर्वयों द्वारा निर्मित 'बाहामी गुफा' वैष्णव या अवतारवादी शिव का अद्वितीय नमूना है। इसका अविरिक्त राष्ट्रकूटों का द्वावतार मंदिर भी अवतारवादी शिष्टकला का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है। दोनों मंदिरों के इस मंदिर में शिव और विष्णु के विभिन्न अवतरित रूपों के त्रिचिह्न हैं। एक ओर तो इसमें सैव रूप भैरव, तालडव मुद्रा में शिव, मार्कण्डेय की रक्षा करते हुए शिव पावती कक्षी और क्रिय के भीतर शिव त्रिचिह्न छिपे गए हैं। और दूसरी ओर दक्षिण भाग में विष्णु के विभिन्न रूपों का अंकन हुआ है,

१. मा. वा. प्लेट १७। २. मा. वा. प्लेट १४। ३. मा. वा. प्लेट १३।
 ४. मा. वा. प्लेट ११। ५. मा. वा. प्लेट ७, २३, २४, २५।
 ६. मा. वा. प्लेट ११ और २०। ७. मा. वा. प्लेट १७-१८।

मिगमें विष्णु गोवर्धन विष्णु भगवत्प्राची गठक पर सवार विष्णु, वराहा-
वतार विष्णु वामन मुसिह आदि रूपांकित हुए हैं।^१ उसी प्रकार देवोरा के
कैलास मंदिर में भी रामायण की बहुत-सी बटनाओं के मितिचित्र अंकित हुए
हैं। इसके अतिरिक्त कैलास मंदिर में ही मुसिह विष्णु शृंगी को उठाए हुए
वराह विष्णु विष्णु लेपसायी तथा रथ चढाते हुए गदक विष्णु भी चित्रित किये
गए हैं।^२ दोनों मंदिरों की मूर्तियों में ब्रह्मण्य और शैव मूर्तियों का पारस्परिक
सम्बन्ध देख कर ऐसा कहा जा सकता है कि दोनों सम्प्रदायों के अनुभावियों में भी
पर्याप्त सहिष्णुता या गवी थी। मध्ययुगीन साहित्य में जिस प्रकार शिव
और विष्णु दोनों की पौराणिक कथाएँ साब-साब गृहीत हुई हैं वैसे ही
तत्कालीन मितिचित्रों में भी दोनों का मिश्रण प्रचलित हो गया था।

विष्णु की भवतार मूर्तियों के अतिरिक्त मध्ययुगमें कृष्ण एवं उनकी भवतार
कीटाओं की मूर्तियों का भी अत्यधिक प्रचार रहा है। गोवर्धनघारी श्रीकृष्ण
की (बनारस-सारनाथ सम्राट्कय) एक मूर्ति में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को
बड़े सहज ढंग से उठा रक्खा है।^३ पहाड़पुर में भी कृष्ण-श्रीका सम्बन्धी अनेक
मूर्तियाँ मिली हैं। राधा-कृष्ण का प्रेमाकाश और अनुकाशुर-वच इनमें अधिक
सजीव और सुन्दर हैं।^४ मध्ययुगीन जगन्नाथ पुरी के मंदिर में अनेक शैवी
शैवताओं की मूर्तियाँ अंकित हैं। इनमें कठिन-इमन लीला गोवर्धन धारण
राम-रावण-युद्ध मुसिह-रुध्मी गहकबाहन गोपाक कृष्ण आदि अनेक भवतार
कीटाओं पर वामन वराह मुसिह की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। शूल्य मंदिर
की छत पर भी मिश्रित रंगों में समुद्र-मंथन और-हरण लेपसायी-विष्णु और
रासकीला के हरण अंकित किए गए हैं।^५

इस प्रकार मध्ययुगीन मूर्तिकला विष्णु शिव बुद्ध बुर्गा आदि की
भवतार-कीटामक मूर्तियों से पूर्ण रही है। इन मूर्तियों में अनुमद और बदर
की भावना प्रथम रही है। किन्तु मितिचित्रों में बुद्ध-वसन, अनुमद-वच और
अन्य भवतार-कथाओं की शैलियों अत्यन्त सजीव रूपों में प्रस्तुत की गयी हैं।
विप्रकला की मूर्ति मूर्तिकला का भी विशेष सम्बन्ध शूल्य और नाट्य
अर्थान् लीला से रहा है। पर्यायतः भारतीय मूर्तिकला शैवताओं और उनक
भवतारों के रूप और नाट्य का साकार रूप है। भारतीय मूर्तिकला केवक

^१ भा. राजपूट ५ १२-२ ।

^२ भा. राजपूट प्लेट १ ७ ११ २९

^३ भा. मू. क. ५ १११ ।

^४ कला ५ ५ १४ ।

^५ भा. ११ इहम् ।

^६ भा. मू. क. ५ १११ ।

वैयक्तिक अंतर्गत तक ही सीमित नहीं रही है अपितु उत्तम ब्रह्मचर विराट पराह रूप, नटरात्र सिव कक्षिण इमन भादि चित्रों में प्रवस्थाध्मक बिदोयनार्थ सञ्चोदित कर दी है। पौराणिक वृष्टमूर्ति से पुष्ट व मिथि चित्र और प्रतिमार्थ प्रपञ्च काव्यों की तरह अत्यन्त व्यापक उदात्त छत्रों की संयोजना करती है।

वास्तु कला

यों तो भारतीय कलाभिरुचिना में मूर्तिकला और वास्तुकला प्रायः अभिन्न सी रही हैं। मूर्ति और मन्दिर दोनों एक दूसरे के लिए अभिवाय रहे हैं फिर भी उपास्यवादी दृष्टि से मूर्ति और मन्दिर में उतना ही अंतर है जितना विष्णु-मूर्ति और विष्णु-लोक में। इसी से अल्प भारतीय कलाओं के साथ वास्तुकला का भी बिसिष्ट स्थान रहा है।

भारतीय वास्तुकला ऐबकला है, जो मानवों के लिए बिरबकमां द्वारा पूरबी पर अवनरित की गई थी। ऐब क्लिपी बिरबकमां से स्वय मनुष्य रूप धारण कर इस वास्तुदिव्य का निर्माण किया था।^१ इस प्रकार भारत की यह एक सांस्कृतिक विशेषता रही है कि वर्तमान विज्ञान, कला एवं साहित्य सभी आध्यात्मिक चेतना से प्रभावित रहे हैं। मूर्ति मूल्य चित्र, वाद्य भादि में जो आशीर्वाण की प्रकृति हीक पवती है, उन्नी का हमें वास्तु-प्रकृषाह में भी दर्शन होता है। इसका मूक कारण यह है कि अण्णाम के बिना समस्त जीवन कावण्य शुष्क पतीत होता है। अतएव वास्तु के प्रतीक प्रास्तात् भवन, मंदिर, पुरी या नगर भी अष्टक आर्बिमून रूप ही धमस्त जाते रहे हैं।^२ प्रजापति ब्रह्मा सम्भवतः प्रथम वास्तुकार हैं, जिन्होंने अनेकामक सृष्टि की रचना की। वास्तु या स्थापण्य की सृष्टि के लिए ब्रह्मा का आ आर्बिमून रूप है उसे ही 'बिरबकमां कहते हैं। बिरबकमां समस्त कलाओं का कर्ता और अर्बक है। वास्तुकला में कोई भी वास्तुहृति बिना वास्तु-पुष्टय के पूर्ण नहीं समती जानी^३। बरिक्त वास्तु-हृति पाहा ब्रह्म के उस विराट शरीर की तरह है, जिनमें समस्त ऐबता पधारधान प्रतिष्ठित हैं। वास्तु-पुष्टय समस्त पद का स्वामी है तथा विभिन्न पदों के अधिपति वास्तु-पुष्टय के विभिन्न अंगों के अधिपति बन जाते हैं। इस प्रकार भारतीय मनीषा में कयक बिरब को ही वास्तु हृति के रूप में नहीं अपितु समस्त भारत गण्ड' का एक आराण्य वास्तु-हृति के रूप में ही देया था। द्विमाध्य से लेकर कम्पा कुमारी तक

बीर साहित्य से लेकर गणधार तक व्याप्त यह भारत वर्ष की व्याप्त वास्तु मूर्ति की जिसका दर्शन समस्त भारतीयों के किये अभीष्ट था। लम्प ककामक कपासनाओं में अराधना दर्शन की प्रभावता रही है, वही प्रवृत्ति हम वास्तु कला-स्वरूप पुरियों और तीर्थों की प्रपासना और दर्शन में पाते हैं। ज्येष्ठ तीर्थ का तात्पर्य ही अज्ञातकार से छेते हैं। यों तो जीवन स्वयं तीर्थ-पात्रा है जिसकी विभिन्न अवस्थाएँ पक्षाव हैं।^१ भारतीय जीवन के घोटक तीर्थ की राष्ट्रीयता का प्रतीक हैं। हमारे देश में कबल पुरी नगर नहीं, महापुरण संत और साधक ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष ही एक महाम तीर्थ रहा है। भारतीय तीर्थों पर ध्यान से गौर करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सारे देश में जितने भी मन्त्र रमणीय और दर्शनीय प्राकृतिक स्वच्छ हैं—नदी पर्यंत, शिखर संगम झील, प्रपात धारा कुण्ड, गर्म स्रक क सोते—वे केवल प्राकृतिक प्रपादान ही नहीं अपितु जन-मन-आराध्य पावन और पवित्र तीर्थ लोक हैं। उन्हें यदि केवल रमणीय स्थल कहा जाय तो अधिक से अधिक रमणीयानुमृति होगी। किन्तु उन्हें ही परब्रह्म का प्राकृतिक प्राकट्य की भावना करने पर, प्रथा मनुष्य के प्रेम का और तत्प्राप्तीकरण हो जाता है। वह निरलोक मुसे हुए मन से अपनी समस्त भद्रा ही नहीं अर्पित करता अपितु सांसारिक मोह में आसक्त पृथ कसुपित हृदय को भी प्राकारित कर लेता है। इस दृष्टि से तीर्थों को भगवान की प्राकृतिक पृथ कथित वास्तु-कला का आविर्भाव माना जा सकता है। उनके दर्शन से भी वह आन्तरिक मनोभावना की वृद्धि कर लेता है। ऐसे स्थलों में विष्णु-पुर विष्णु-पर्व, विष्णु प्रभाग, विष्णु कांची वाराणस-पुर वाराणसाभ्रम जैसे तीर्थ हैं, तो धनक अचतारों और पार्थिवों का नाम से भी चक्र, पद्म आदि नामों से प्रचलित पद्मपुर पद्मावती मत्स्यदेश कूर्म स्थाव (कुमार्यु) शूकरचक्र इत्यादि तीर्थ स्थल हैं जिनमें तीर्थोपम एवं नैसर्गिक वास्तु ककामकता भरी हुई है।

तीर्थों के अनन्तर वास्तु ककम के दूसरे प्रपास्य रूप, मंदिर हैं। तीर्थ-कथकों की तरह मंदिर-निर्माण की वास्तु-कला को स्वान से देखा जाय ता प्रायः प्रायक मंदिर में श्रुत विरच की ही मूर्ति का दर्शन होगा, जो अपनी आध्यात्मिक भाषा में श्रुत विरच का समरुच प्रतीत होती है। श्रुत विरच की प्रतिमूर्ति होन का चाते उसमें अष्टा की मूर्ति का निवास भी मंदिर और उसमें निवास करने वाली मूर्ति का मक प्राता है। अतएव सद्यही कृत श्रुत विरच का परिप्रेषण और स्थापित्य का अनुमार मंदिर श्रुत का अनुकरण प्रतिकृति या प्रतिबिम्ब

है, जिसमें श्रुत की सनातनता और लक्ष्य की कलाकारिता दोनों विद्यमान हैं। मन्दिर निर्माण की प्रक्रिया भी सृष्टि-उत्पत्ति का अनुकरण करती है, और उसका भी आरम्भ प्रारम्भिक प्रकृत से होता है, जो मनुष्यों और मन्दिर की सामग्रियों के बीच कथित होता है। आकाश में धूमता हुआ मन्दिर संकल को स्वर्गीय पदार्थों की दिग्-मूल सापेक्ष गति सूचित करता है, जैसे ही मन्दिरों में भी विभिन्न रूपों के पत्थरों को आकाश के अनुकूल विक्षिप्त स्थानों में रखकर मन्दिर संकल का अनुकरण किया जाता है। इसी क्रम में मन्दिर में स्थापित होने वाली विभिन्न स्तूपों की स्थानादि के नियमानुक्रम स्थापित की जाती हैं।

भारतीय कलात्मक कला में प्रयुक्त जाने वाले हथौड़ी और लेनी का प्रतीकात्मक महत्त्व माना जाता है। ये दोनों श्रुत चिरक क प्रतिमिषि उपकरण के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। यों तो पुराणों में कई एक प्रतीकात्मक अर्थ दिए गए हैं। किन्तु इनका एक विशिष्ट प्रतीकात्मक अर्थ हल और पृथ्वी से मिलता जुड़ता है। हल चक कर पृथ्वी की योगि विवृत करता है जिसमें अनेक पौधों की उत्पत्ति के रूप में सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार हल उत्पादक सिद्ध का कार्य करता है। लेनी भी पत्थरों पर प्रहार द्वारा उनमें किये हुए उत्पादक उत्पादकों या कलात्मक रूपों की विवृति करती है। इस्कामी अथवा सूखी परम्परा के अनुसार कर्म और कागज भी प्रतीकात्मक अर्थवत्ता से परिपूर्ण हैं। इस परम्परा के अनुसार कर्म आगतिक अर्थ का प्रतीक है, जो कर्म के पत्थरों पर सृष्टि का भाग्य लोहती रहती है। अभ्यक्त से उत्पन्न सृष्टि सृष्टि का निर्माण करती है। इसी प्रकार भारतीय परम्परा में देवी विशिष्ट ज्ञान का सूचक है और हथौड़ी आत्मशक्ति का, या ज्ञान का प्रोत्साहक प्रदान करती है और उसको वास्तविक बनाती है। यह ज्ञान रूपी शक्ति को सर्वज्ञ संकल्प शक्ति के अन्तर्गत रखता है।^१ अवतारवादी वास्तुकला अनेक मूर्तियों, प्रतीकों और अवतार-लीलात्मक मिथिचित्रों से सजित एक कलात्मिकता की प्रकृत्यात्मक लीली रही है। वास्तुकला के परिचायक देव मंदिरों में जो मीनाकारी, अनेक प्रकार के चित्र चूरे हुए द्विद्व द्विद्व द्विद्व का प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें हम वास्तुशिल्प का पारम्परिक तथा प्राचीन विभिन्न मुद्राओं में अंकित मूर्तियों का अर्थात्कार के समानान्तर मान सकते हैं। १. बी. पी. के इतिहास मंदिर में इस अलङ्कृति का परिचय मिलता है। हमका द्विद्व संयोजन सागरूपक की वाद दिखाता है। इसी

१. आर्ट ऐन्ड आर्किटेक्चर, १०।

२. भा. इ. मू. ए. पृ. ११५-११६।

प्रकार उपमा रूपक, मूर्तिरूपक, माटादीपक एकादकी आदि अलंकारों की अभिव्यक्ति वास्तु-सिद्धि में देखी जा सकती है। ऐसा लगता है कि भारतीय काल्पों के बहुत से अलंकार वास्तु ककारमक प्रकृति रखते हैं। भारतवर्ष के प्रमुख मंदिर और गापुरम मंडप और गुफाएँ अवतारवादी प्रबन्धकारमक वास्तुकला का नमूना प्रस्तुत करते हैं। इनमें शैलों के ढेरों और बैजलों के दशावतार मंदिरों का विशिष्ट स्थान है। कुम्हैकण्ड में ब्रह्मपती नदी के किनारे देवागढ़ में गुप्तकलाकृति का अनुपम नमूना दशावतार मंदिर है। गुप्तकाल की वास्तुकला के सर्वोत्तम रूप का परिचय इस निर्मिति में मिलता है। डॉ० वासुदेवचरण अग्रवाल के शब्दों में 'वास्तुकला की दृष्टि से भी यह देवघर ही है।' विष्णु एवं उनके अवतार-रूपों की अनेक स्तूपियाँ वास्तु-सिद्धि के माध्यम से एक महाकाव्यारमक अध्याय का ही परिचय देती हैं। महाकाल्पों के प्रारम्भ में जिस प्रकार विषय-प्रवेश या मंगलाचरण होता है उसी प्रकार इन मंदिरों के द्वार पर भी विशिष्ट परिचय, पार्वण की उपस्थिति दिखावाई जाती है। क्योंकि विष्णु या शिव मंदिर भारतीय भावना में उम देवता के पूरे लोक का ही भावना कराते हैं, जिस मंदिर कपी लोक में विधान कर वह अपने अन्य अवतारी रूपों में अपने अनुचरों के साथ अनेक प्रकार के पौराणिक कार्य किया करते हैं। महाकाल्पों में जैसे एक मुख्य कथा होती है, और उसमें एक उदात्त कथन निहित रहता है तथा उसके साथ ही अवतार कथाएँ और वास्तु वर्णन बरूते रहते हैं, किन्तु सभी तीन पात्र एक ही मुख्य कथा से सम्बद्ध रहते हैं। उसी प्रकार इन मंदिरों की वास्तुकला में अपने द्वार की प्रबन्धकारमक विशेषताएँ स्पष्टि की जाती हैं। देवागढ़ के दशावतार मंदिर में एक ही विष्णु के लोक प्रकटित पौराणिक रूप तथा दशावतारों के रूप में की गई कीर्तियाँ और उनके पार्वणों की उपस्थिति ये सभी मिलकर एक प्रबन्धकारमक वास्तुसिद्धि का द्योतन करते हैं।

इस तरह भारतीय वास्तु-कला का व्यावहारिक पक्ष यद्यपि मूल्य निर्माण के वैज्ञानिक पक्ष से अधिक सम्बद्ध है, किन्तु उसका दार्शनिक, साहित्यिक और ककारमक पक्ष उसके रम्य सौन्दर्य को भी समझीय-बेतना से पुष्ट कर देता है। वास्तुकला की अवतारवादी चारवा समझीय-बेतना को अध्यात्मिक भावना पहना कर एक विशिष्ट अध्याय प्रदान करती है। भारतीय वास्तुकला में मूल्य, नाट्य, शक्ति, चित्र, एक रूप में अनुस्यूत होकर समाहित रहते हैं।

समापन

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में व्याप्त अवतारवाद अत्यन्त प्राचीन काल में प्रचलित अपने अस्तित्व के लिए बाहुल्य मानव में जीम की प्रबल भावना उत्पन्न करने वाला—सक्ति, सक्रियता और समुच्चय का जीवन-दृश्य है। हमें अपने व्यक्तिगत या सामूहिक जीवन-संघर्ष में सर्वदा अतिरिक्त शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। अवतारवाद वस्तुतः अतिरिक्त शक्ति का आह्वान है, जिसकी अन्तर्गत किसी भी महान विषय पर विश्र्व पाने के लिए होती है। किन्तु से लेकर उभर सकी अवतारों के अवतार-कालों में प्रायः आसुरी व्यापारों का हमन कर अस्तित्ववादी समुच्चय की प्रवृत्ति रही है। यह व्यक्तिगत नहीं अपितु एक सामूहिक मनोविज्ञान है, जिसमें मनुष्य के जीने की कामना निहित रही है। अवतारों का आगमन और उसकी 'इन्द्रा पूर्ति' कबक एक प्रक्रिया भाव नहीं है अपितु उसकी इष्ट जीवनेच्छा का प्रतिकर है। अनेक ऐतिहासिक संघर्ष और सांस्कृति-विनास के बाद भी मानव-समुदाय को सक्रिय और सचेष्ट रूप में जीवित रखने वाला भारतीय अवतारवाद रहा है। यह कह कर मैं अवतारवाद को 'ऊर्धि' और 'हासांग्मुल' कहने वालों को उत्तर नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि अवतारवाद स्वयं एक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया है, उसे किसी स्वष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। विश्र्व ही अवतारवाद हिंसा और हमन के द्वारा शक्ति-प्रयोग का सिद्धान्त है, किन्तु उसका उच्च अन्वाचार, अतिक्रमण और रक्षणात् नहीं है, अपितु यह बल-प्रयोग के द्वारा समता, शान्ति, समुच्चय और विश्र्वगुण्य का दर्शन है। व्यावहारिक अवतारवाद की दृष्टि से यह 'बहुजन हिताय' का और उपारपवादी अवतारवाद की दृष्टि से 'स्वीतः सुखाय' का दर्शन है। समष्टि और स्वष्टि दोनों के व्यवहार और चिंतन में हमका महत्त्वपूर्ण योग रहा है। इस प्रकार अवतारवाद भारतीय संस्कृति का सर्वत्रक तथा मानवता के उन्नय, संघर्ष एवं विकास का एक ठोस जीवन-दर्शन (A positive Philosophy of life) है।

प्राथमिक युग से ही बीर नायकों या पुरोहितों में देवी अवतारवाद और देवी शक्ति का आशेष किया जाता रहा है। यह प्रवृत्ति निश्चय ही एक ऐसी सामाजिक भावना या वेदव की भावना जन-मानस को देती रही है, जहाँ व समस्त वैपिक मन्वैपय्य या परस्पर मनोमाक्रिय को मुक्तकर एक मठा या स्वयं के बीच संगठित हो जात है। एक व्यक्ति के ही आदेवानुसार भिन्नपूर्वक चक्रों के कारण सामाजिक सुख्यवस्था और शक्ति की भावना अद्भुत रही है।

इसी से सामान्य वर्ग सबदा एक महत्तर पुत्र्य की खोज में रहता जाया है। यही यही वह सर्वत्र भक्ति में जाने वाले जैसे महापुरुषों की सम्भावना को भी अभिहित रखता रहा है।

जता जाति धर्म संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा के लिए अवतारवादी सामूहिक शक्ति की सर्वाधिक आवश्यकता समाज को रहती है। अल्पसंख्यक प्रभावशाली व्यक्तित्व ही संस्कृति को युग विशेष में प्राचीन कल्पों से मुक्त कर नया रूप या नयी मोड़ दे सकता है। एतदर्थ उसके जातीय या राष्ट्रीय व्यक्तित्व में अवतारत्व जैसी विद्या का होना स्वाभाविक है—जन्मया उसके प्रति भक्त में पुर्मावना होते ही समाज में अनीति और अत्याचार की व्याप्ति हो सकती है। मनुष्य के हृदय में देवी मानवी और आसुरी शक्तियों का सर्वत्र विभाज्य रहता है। यदि जाति या समूह की दृष्टि से इन शक्तियों को देखा जाय तो भी सामूहिक मनोभावना कभी देवी शक्तियों से पुरित रहती है, कभी विशेष मात्रा की शक्ति से और कभी विशेष आसुरी शक्ति से।

समूह में आसुरी शक्तियों का प्राबल्य होने पर समूह में चक्रे वाले गृह-कुलों और जाटमन्त्रकारियों से रक्षा करने के लिए सर्वत्र ही समाज को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो आसुरी शक्तियों को दमित कर मानवी या देवी शक्ति को स्थिरित कर सकें। अनेक विषयसम समूहों को मिटाकर यन्त्रमें दैव्य उत्पन्न कर सकें, इस कार्य के लिए सबदा अवतारत्व या अतिरिक्त शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता रही है।

भारतीय संस्कृति साधना प्रधान है। यहाँ की प्रायेक जीवन-दृष्टि में कोई न कोई साधना है। सांस्कृतिक अवतारवाद का भी एक एक साधनात्मक है। वैयक्तिक स्तर पर अवतारवादी प्रकृति में त्याग तपस्वा, विद्वान् सौम्य, शासन दक्षता ज्ञान, विज्ञान आदि के आधार पर मानव व्यक्तित्व के मूर्त्पाकन की एक विशिष्ट भावना रही है। अवतारवाद भारतीय संस्कृति को प्रेय और प्रेय, साधना और रंजन (खिला) दोनों प्रदान करता है। इसमें योग देनेवाले तथा नयी चिन्तनाओं को अप्रसर करन वाले व्यक्तियों का अवतारवाद ने सर्वत्र समुचित मूर्त्पाकन किया है। इस प्रकार अवतारवाद उस सामूहिक, जातीय और राष्ट्रीय भावना का प्रतीक है जिसने सर्वत्र ही संस्कृति के उद्धार में योग देनेवाले महापुरुषों का देवी मूर्त्पाकन किया है।

अवतारवाद व्यापक रूप में किसी प्रकार की अमिथ्यति को जाघ्रसाध कर छंटा है। प्रथम का प्राकटय मात्रा नामी, कर्षों और चरित्रों में होता है। सध्यों के माध्यम से व्यक्ति काव्यात्मक अमिथ्यति में भी उसी की अमिथ्यति

है। कल्पानन्द आनन्द प्रदान करने की दृष्टि से महाकल्प-सहोदर है। कालों में लक्ष्मी ही महाकाय सगुण अवतार है और गौरी के गुण के समान रहस्य या अर्थ ही उसका निर्गुण निराकार अवतार है। सहस्रों मूर्तियों और ऐतिहासिक महापुरुषों में महाकाय—अवतारत्व से तात्पर्य वस्तुतः महाकाय की आत्मबुद्धि की कलात्मक अभिव्यक्ति से है। अतएव साम्प्रदायिकता से रहित अवतारवाद सैदान्तिक रूप में भी बहू अभिव्यक्ति है त्रिमया वास्तविक निवास जग-मावस में या कोकानुभूति में है। भाव-संबन्धित या अज्ञानमूलक होना के कारण बहू विष्टय कल्पनात्मक रूप में लोक-रूप की अभिव्यक्ति अधिक है लोक-मानस की कम। अतः कल्पमिर्माण की दृष्टि से बहू एक रमणीय आत्मबल विम्ब है, जिसे कालों प्रकारों (Types) में संमूर्तित करने का प्रयास होता रहा है। यह रमणीय आत्मबल विम्ब स्वयं से अधिक युग सापेक्ष है, इसी से इसकी रमणीयता के हास होने की सम्भावना कम है। इस प्रकार बहू गुण की तरह अवतारवाद का, नामा आकाशों और महाकाशों में विभक्त, रूप स्वयं-सापेक्ष निष्कणों की अधिक अपेक्षा रखता है, जिसकी चर्चा यथा प्रसंग हुई है।

इति



सदर्भ ग्रंथ

हिन्दी

अकबरी दरवार के कब्रि
अनासक्ति पाग
अनुराग चोखुरी

अनुराग सागर
अपभ्रंश साहित्य
अपेक्षितता का अभिप्राय
अहमदन की शर्तों
अष्टदाप
अष्टदाप
अष्टदाप और बहुमन्त्रमहाय
अमामास्य सन्नोविज्ञान

इन्द्रावती
उत्तरी भारत की सत परम्परा
कर्बीर प्रख्यावली
कर्बीर बीजक
कर्बीर बचनावली
कर्बीर भाग्य
कविता रत्नाकर
कर्बीर
काव्य में उदात्त साथ
काव्य दर्शन
कुम्भबदान पद् संग्रह
कुतान और धार्मिक मनभेद
कठिमाळ और मिदनाप क पद्
गदाधर भट्ट की शर्तों
गीता रहस्य

डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल ।
महामा गौधी ।
र० नूर मुहम्मद सं० रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रबली
पाण्डेय ।
प्रधाग ।
हरिबंस श्रेष्ठ ।
भांडुआइन, अनु० हि० प्र० शा० उत्तर प्रदेस ।
चौरामी वैष्णवकी की शर्तों में संशुद्धीत ।
स कंठमणि शास्त्री ।
स० प्रमुदपाळ मीचक ।
डा० दीनदयाल गुप्त ।
प्रो० रामकुमार राय, प्र० चौमन्ना विद्याभवन,
काशी ।
शूर मुहम्मद सं० रघामसुन्दर दास ।
परशुराम चतुर्वेदी ।
स० रघामसुन्दर दास ।
स० दसदास शास्त्री ।
स० अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
स० युगकान्त ।
सेनापति, सं० उमादीकर शुक्ल ।
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हीराइनस अनु० बेमिचन्द जैन ।
सचीराजी गुरु ।
स० मजमूदर शर्मा ।
अपुलकलाम आसाद, हि० अनु० सत्यद
उदयन दासिनी ।
श्यामी हरिदास ।
गोत्र रिपोर्ट पृ० 41 ।
लोकमान्य विहान, अनु० माधव राव समे

गुप्त साम्राज्य का इतिहास	वासुदेव उपाध्याय ।
गुरु प्रण्य साहित्य	अमृतसर ।
गोरखवाणी	स० डा० पीताम्बर दत्त बक्ष्यबाळ ।
गोबर्द्धमनाथजी की प्राकट्यवार्ता	१० श्री हरिराध, सं० मोहन ठाकुर विष्णुकाळ पंढ्या ।
गोविंद स्वामी पद्मसंग्रह	स० श्री प्रबभूपण शर्मा ।
पनामन्द् प्रण्यावली	सं० विरवनाथप्रसाद मिश्र ।
चारों पुगों में योगी राज	सं० दाऊदनाथ योगी ।
विद्यावली	उमप्रभाब कवि, स० बगमोहन शर्मा ।
चैतन्य चरितामृत	ब्रजमता प्रतिशब्धि—व्यभिकार श्री रामा- चरण गोस्वामी ।
चौरामी वैष्णवकी वार्ता	सं० दूरकादास पारीख ।
छोटी स्वामी पद्मसंग्रह	सं० ब्रजभूपण शर्मा ।
जाबली प्रण्यावली	सं० रामचन्द्र टुण्ड ।
जापसी प्रण्यावली	सं० साताप्रसाद गुप्त ।
जैन साहित्य का इतिहास	नाथूराम प्रेमी ।
तस्तुक और सूफीमत	१० अमृतवली पाल्देव ।
तामिक और बसका साहित्य	पूर्व सोम सुन्दरम् ।
तुलसी प्रण्यावली—दूसरा सङ्क	सं० रामचन्द्र टुण्ड ।
वासुदेवाळ की बाबी दो याग	इकादावाद ।
दो सी बाबब वैष्णवकी वार्ता	बम्बई ।
दोहा कोस	सं० प्रदीपचन्द्र बागची ।
दोहा कोष	प्रण्य सरदपाद सं० राहुळ सांस्कृत्याचन ।
धरमदास जी की चण्दावली	इकादावाद ।
भुवदास प्रण्यावली	सं० रामकृष्ण शर्मा ।
नन्ददास प्रण्यावली	सं० प्रब्रजदास ।
नाथ मन्महाय	डा० इजारीप्रसाद द्विवेदी ।
नाथ मिर्छों की वामिणी	सं० डा० इजारीप्रसाद द्विवेदी ।
पद्मावत	डा० वासुदेवसरन जयराळ ।
परमाळ रासो	सं० श्यामसुन्दर दास ।
पाठि साहित्य का इतिहास	भरतसिंह उपाध्याय ।
पुरातन विद्यावली	राहुळ सांस्कृत्याचन ।
पृथकावलीन भरत	वासुदेव उपाध्याय ।

दृष्वीराज शसो	स० श्यामसुम्बर वास ।
प्राचीन भारतीय शास्त्र पद्धति	धनन्तसदाशिव अहलेकर ।
प्रेम बाटिका रसकाव	सं० किशोरीकाल गोस्वामी ।
पद्म संतोष दोष	श्री बाकादास ।
बुद्धचर्या	सं० राहुक साहस्यपापन ।
बौद्ध धर्म	प० बसदेव उपाध्याय ।
बौद्धधर्म दर्शन	आचार्य नरेन्द्रदेव ।
बौद्धधर्म तथा अन्य भारतीय दर्शन	भरतसिंह उपाध्याय ।
प्रथम माधुरीसार	सं० विद्योगीहरि ।
मच्छकवि श्यास श्री	बासुदेव गोस्वामी ।
मच्छमाह	जामादास, टी० कृष्णकला ।
भागवत सम्प्रदाय	प० बलदेव उपाध्याय ।
भारतीय मूर्तिकला	राबहुष्णदास ।
भारतकण्ठे संगीतशास्त्र श्रीमा भाग	पं० बिष्णु नारायण भालकण्ठे ।
भारतीय काव्यशास्त्र श्री परम्परा	सा० डॉ० शरीन्द्र ।
भारतीय संगीत का इतिहास	अमेश जोशी ।
भारत का संगीत सिद्धान्त	कैलास चन्द्रदेव बृहस्पति ।
भारत की चित्र कला	राय कृष्णदास ।
भारतीय चित्र कला	अमन लाल मेहता ।
भारतीय वास्तु विज्ञान प्र०भाग	पं० विन्सेन्टश्रीवासाद मिश्र ।
भारतीय वास्तु शास्त्र	डॉ० द्विवेन्द्र नाथ झा ।
भारतीय मूल्य कला	कैलासाद ।
भारतीय वास्तु शास्त्र	डॉ० द्विवेन्द्रनाथ झा ।
प्रतिभा-विज्ञान	डॉ० जगदीश गुप्त ।
भारतीय कला के पद्धति	पं० बलदेव उपाध्याय ।
भारतीय दर्शन	डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ।
भारतीय प्रेमावधान काव्य	प्रथम, अनु० देवेन्द्रकुमार वेदाङ्ककार ।
मधोविरसेपन	अद्वय शक्ति मिश्र ।
महापात्र	र० हरिश्वास देवाचार्य ।
महाबाणी	संलग्न कृष्ण सं० डा० सिधगोपाल मिश्र ।
मनुमास्मृती	डा० वि० मि० कोहले ।
भारतीय संतों का सामाजिक कार्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
अप्यकाठीन धर्म साधना	

मधुकरदास की बानी	प्रयाग ।
माधवानन्द अमरकवच	गणपति ।
मानव शास्त्र	प्रो० सत्यवन ।
मात्पमिक प्राणिकी	बागपुर ।
मीरा वृहद् पद संग्रह	स पद्यावती शबमम् ।
मुगल शासक	१० श्री मद्रु वैवाचाय ।
योगी सम्प्रदायाधिकृति	अनु मद्रनाथ योगी ।
रत्नच बी की बानी	बम्बई ।
रामचरितमानस	सं० स्व० धम्मूनारायण चौधे ।
रामचरित मानस	सं० किष्किनाथप्रसाद मिश्र ।
रामचन्द्रिका कथाच श्रीमुखी	सं० कान्हा भगवान्दीन ।
रामानन्द की द्विम्वी रचवापुँ	सं० डा० पिताम्बर दत्त चक्रधराल ।
राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डा० भगवतीप्रसाद सिंह ।
रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना ।	मुबनेश्वर मिश्र 'माधव' ।
राधाब्रह्म सम्प्रदाय सिद्धान्त बीर साहित्य	डा बिश्वेश्वर स्वातक ।
रामाष्टकाम	नाभादास ।
रामकथा	कामिल बुबके ।
रामरमिकावली	रघुनाथ सिंह व् देव ।
रैदास की की बानी	प्रयाग ।
वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह	राधा गोविन्द नाथ ।
बाम मार्ग	वशीश्वर शुक्ल ।
विद्यापति	सं० लगेन्द्रनाथ मिश्र, अनु० हरेरचरी प्रसाद ।
ललित कला की धारा	असितकुमार हाऊदार ।
वैदिक साहित्य	रामगोविन्द त्रिबन्दी ।
वैदिक शम्भेवस (द्वि)	मैक्समुखर, अनु० रामकुमार राय श्रीधम्बा, विद्याभवन, बाराणसी ।
वैदिक साहित्य बीर संस्कृति	बछपेव उपाध्याय ।
वैदिक माइथॉलोजी	अनु रामकुमार राय, श्रीधम्बा विद्याभवन बाराणसी ।
वैदिक वाङ्मय का इतिहास	भगवदत्त ।

विचित्र नारक म नकलिय

चार्थीम भवतार

विकासवाद

विद्युदि भाग

वलिस्त्रिमन ककमणी री

धी दानू जम्म हीला परर्ची

धी दिन चरित्र

धी गुरुनामक प्रकास

सगीत वारस्य

मन कवि हरिया

सत काव्य

संत दानू वपाळ की बार्मी

मन रविदास और उनका काव्य

सत सुभामार

मंस्कृत साहित्य का इतिहास

सांस्कृतिक मानव शास्त्र

साहित्य वर्णन

सुवामा चरित्र

सूर्य प्रकाश

सूर साहित्य

सूरमाग

सूर माराबली

सूर माराबली

सूफी काव्य संग्रह

सूफीमत और हिन्दी साहित्य

सूरदास मन्त्रमोहन

सोल्हवी शानी क हिन्दी और

बगाली कव्य कवि

सौम्य नाग

सौम्य नाथ

इब्रत मुहम्मद और इस्लाम

दनुमकाटक

हिन्दी साहित्य

गुरु गाबिह सिद्ध ।

पृथ्वीराज रागौर ।

श्यामी जन गोपाल ।

गोपालप्रसाद शर्मा ।

संतोष सिंह प्रथम खड ।

क० बामुद्देब शास्त्री ।

डा० भर्मेश्वर ब्रह्मचारी ।

म० परशुराम अनुबेदी ।

स० अमिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

श्यामी रामानन्द ।

मं० विपोगी हरि ।

बलदेव उपपाध्याय ।

मैकविल ज० हपकोविगस ।

डॉ० भावप्रतपसिंह श्रीलक्ष्मी विद्यामन्थन काशी ।

अरोक्तमदास ।

मलाय सिंह ।

डा० इज्जारीप्रसाद त्रिबेदी ।

म० मं० बुद्धारे वाजपेयो । खण्ड १-२ ।

सं० हाषाकृष्णदास ।

म० प्रभुदयाल मीनक ।

मं० परशुराम अनुबेदी ।

डा० विमलकुमार शैव ।

म० प्रभुदयाल मीनक ।

डा० रत्नकुमारी ।

डॉ० राम गुप्त ।

डा० हरद्वारी लाल शर्मा ।

प० सुन्दरकाठ ।

इन्दिराम ।

डा० इज्जारीप्रसाद त्रिबेदी ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल ।
हिन्दी साहित्य कोश	म० श्रीराम बर्मा ।
हिन्दी काव्यधारा	स राहुल सांकृत्यायन ।
हिन्दी सूफी कवि भीर काव्य	डा सरला शुक्ल ।
हिन्दी को मराठी सतों की बेम	भाचार्य विनयमाह्वन शर्मा ।
हिन्दी ज्ञानेश्वरी	
हिन्दी प्रेमसागर काव्य संग्रह	सं० गणेशप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी प्रेमसागरका काव्य	डा० कुम्भसेन ।
हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बरदास बहुधुवाल ।
हिन्दी अग्नेय	रामगोविन्द तिवारी ।

सस्कृत ग्रन्थ

अर्थपत्रक निर्णय-दशाष्टोकी भाष्य	पं० अष्टादीश्वरज महाराज ।
अभिज्ञान भारती (हि०)	भाचार्य विद्येश्वर ।
अष्टादशस्य संग्रह	स० हरप्रसाद शास्त्री ।
अभिज्ञान दर्पण	गम्भीरेश्वर ।
अष्टिर्गुण्य संहिता	स० रामानुजाचार्य त्रि० १ ।
अग्निपुराण	कलकत्ता ।
अग्निपुराण का काव्यसाक्षीय भाग	रामकाठ बर्मा शास्त्री ।
अष्टादश रामायण	योरबपुर ।
जानम् रामायण	बम्बई ।
आर्य महुषी मूलरक्षण	सं० राजपति शास्त्री त्रि० १-२ ।
ईशावास्योत्तराद्य उपनिषद्	स० वासुदेव कन्दमन शास्त्री पणदीकर ।
कविक पुराण	बम्बई ।
काव्यालंकार सूत्ररूपि (शामन)	भाचार्य विद्येश्वर ।
काव्यालंकारमारसंग्रह	उज्जट, इन्दुराज सस्करण ।
काव्यालंकार	भामह प्र० श्रीलम्बा सं० श्रीराम काशी ।
काव्यालंकार	दही ।
काव्यालंकार	मम्मटाचार्य ।
काव्यमीमांसा	राजसेतर ।
कासिका	पंडितवर शामन जपादित्य तीसरा स० प्र० चांदम्बा सरहृत सीरीज वाराणसी ।

कौक ज्ञाननिर्णय
कृष्णकर्णामृत
गार्ग्यमंहिता
गीतगोविन्द

गीता टीका भाष्य
गीता रामानुज भाष्य
गोरक्ष सिद्धास्त संग्रह
गोरक्ष सिद्धास्त संग्रह
गोरक्ष महत्कृतानाम स्तोत्र
ज्ञानसिद्धि
जयाकथ संहिता
तरुग्रन्थ
तरुक्षीप निबन्ध

दशरूपक (हिन्दी)
दशरूपकी निम्बार्क
देवी भागवत
दशमोत्तर चरित
रघुन्यासोक्त (हिन्दी)
नारद भक्ति सूत्र
नाट्यशास्त्र
पद्मानन्द महाकाव्य
प्रतिमा माटक
प्रज्ञोपाय विनिरचय मित्रि
परम संहिता
पुराण संहिता
पृथ्वीराज विजय
पंचतन्त्र
पुद्गलचरित
पोषिचर्यावहार पत्रिका
महाबैवर्त पुराण
महासूय-शारीरक भाष्य
महासूय-धीभाष्य

सं० प्रबोधचन्द्र बागची ।
सं० एम० के० आचार्य ।
वर्षाई ।
जयदेव ।
गोरक्षपुर ।
गोरक्षपुर ।
पूजनाथ ।
गोपीनाथ ।
म० कृष्णराय शर्मा ।
म० बी० महाचार्य ।
बङ्गीश ।
डोटाचार्य प्र० श्रीगणेश संस्कृत मीरीज, काशी ।
धीवाल शास्त्रार्थ और सर्वनिर्णय प्रकरण
भागवतार्थ प्रकरण ।
जयदेव, प्र० श्रीगणेश विद्याभवन वाराणसी ।
भाष्यकार हरिव्यासदेव ।
बम्बई ।
आचार्य विश्वेश्वर ।
गोरक्षपुर ।
मरत मुनि भाष्यकार अभिनव गुप्त ।
अमरचन्द्र सूरि ।
म० एच० भार० कपाडिया ।
सं० बी० महाचार्य ।
बङ्गीश ।
प्र० श्रीगणेश संस्कृत मीरीज काशी ।
कलकत्ता ।
काशी ।
अथर्ववेद त्रि० १-२ ।
सं० तुदम बीला बेठी पोसीन ।
कलकत्ता ।
प्र० श्रीगणेश संस्कृत मीरीज, काशी ।

ब्रह्मसूत्र-बभ्रुभाष्य	प्र० चौखम्बा संस्कृत सीरीज काशी ।
ब्रह्मसूत्र-हिन्दी टीका	गोरखपुर ।
भक्तिप्यपुराण	बनारस ।
भक्तिरस तरंगिणी	नारायणमठ, कृष्णदास ।
भागवत पुराण	गोरखपुर बृन्दावन ।
भागवतार्थप्रकरण	सूत ।
भागवत तात्पर्य निर्णय	के० माध्वाचार्य ।
गीता तात्पर्य निर्णय	
महाभारत तात्पर्य निर्णय	
महाभारत	मुरादाबाद, पूना गोरखपुर ।
मरुस्थ पुराण	कककता ।
महाभारतमञ्जरीपत्रिका	सं० लुगेनेल बी० ए० जैन्स ।
मनुस्मृति	
मत्स्येन्द्र पद्मस्तक	पीककंठ मठ ।
माध्वसिद्धान्त सार संग्रह	पद्मनाभाचार्य ।
मिताक्षरा	बनारसमठ ।
रमणाक्षर	पश्चितराज अगस्त्याय प्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी ।
लक्ष्मी संज्ञ	मद्रास ।
कठिणविस्तर	सं० राजेन्द्रकाल मिश्र ।
कपुमागवतामृत	रूप गोस्वामी ।
कपुमागवतामृत	अ द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।
कृष्ण स्वयम्भू पुराण	सं० ए० हरप्रसाद व्याखी ।
कथम्बिका	सं० मैक्समुकर भाग १ ।
काशीकि जीवित	बभ्रु० आचार्य विषेन्द्र ।
विश्वेक बृहामणि	गोरखपुर ।
विष्णु पुराण	गोरखपुर ।
विष्णु सहासनाम शक्तिरभाष्य	गोरखपुर ।
ब्रह्मस्मरकर्मसूत्रा	प्र० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी ।
ब्रह्मस्मरकर्मसूत्रा	किन्नोरनाम ।
बैलाच धर्म रथाक्षर	बनारस ।
बैलाच उपनिषद्	मद्रास ।
बैलाच मठाग्रभारत	भागवदाचार्य ।

शुकर द्विबिम्ब
 वाङ्मय भक्तिसूत्र
 शुद्धगीति
 भावकाधार
 श्री मित्र धीरजनाय चरित्र
 सुबोधिनी
 साधन तत्र
 साधनमाहा
 संदर्भ पुंढरीक
 सुजावती प्युह
 सौम्यरामम्
 साहित्यदर्पण

द्विम्बो टीकाकार—पं० बळवंत जयाध्याय ।
 गोरक्षपुर ।
 बम्बई ।
 कमिन्हाण्डि भाषायां ।
 काशी ।
 बम्बई ।
 प्र० श्रीरामबा सस्कृत सीरीज, काशी ।
 बी० भद्राचार्य मि० १-२ ।
 पृथ० कर्म, सुमिद्यु नामसियो मेंट पीटपेबर्ग ।
 सं० मैक्समूकर, भावस्योर्बे मि० १ भाग २ ।
 बळचोप, अनु० सुर्षभारायण श्रीपरी ।
 प्र० श्रीरामबा स० सीरीज, काशी ।

संगीत दर्पण
 संगीतसाहज नक
 संगीत पारिजात
 संगीत रसाकर

दामोदर पंडित ।
 हायरस ।
 हायरस ।
 धाडूचैष ।

रत्नमेष्ट कलात्रिभि
 सरस्वती कण्ठाभरण
 मंगलदाय प्रदीप और प्रदीपाहोके
 मित्र सिद्धान्त पद्धति
 मित्र सिद्धान्त पद्धति
 मित्र सिद्धान्त संग्रह
 भाष्य कारिका
 सैद्धेय टीका
 रत्नपुराण
 विष्णुबर्मोत्तर पुराण

भोज रचित ।
 अनु० कण्ठमणि ।
 पूर्णनाथ संस्करण ।
 गोपीनाथ संस्करण ।
 गोपीनाथ संस्करण ।
 ईश्वर कृष्ण ।
 बी० भद्राचार्य ।
 बम्बई ।
 बम्बई ।

इति भक्ति रत्नामृत विष्णु
 वेदिक साहित्य

एव गोरक्षामी दुर्गेम सगमनी शोका ।
 श्वाभन् व्यपवेदेष्टुं शुक्यवर्द्धेद, सैत्तिरीय
 सैदिता सैत्तिरीय प्राज्ञज सैत्तिरीय भाग्यक,
 भाग्यक प्राज्ञज एतरेय प्राज्ञज भाग्यक
 शुक्यमूत्र भाज्ञायन शुक्यमूत्र शुक्यशरभ्यक
 उपनिषद् साम्योग्यापदिषद् प्रमृति ।

द्विमधुसूय भोंक टिस्टेरी

क्रिस्टिमिगम

भाइ ए० रिचर्डम् ।

कॉलरिज भोंक इमैमिनघन

भाइ० ए० रिचर्डम् ।

साइकोलॉजिकल स्टडीज

इन रम

राफेस गुप्त ।

फॉक डान्स इन इन्डिया

प्रोफेस बमर्डी ।

भारतीय संगीत रागविधि

सुब्ब (१)

मुष्बाराब ।

बिपोरी भोंक इन्डियन

म्युजिक

विद्यन रबरूप ।

बांस भोंक इन्डिया

प्रोडन बमर्डी ।

सेम्स भोंक म्यूटी

आर्भ मारियायन ।

स्टडीज इन सस्कृत ऐस्वेरिबस

ए० सा० शास्त्री ।

परिस्टोसिबस एबोरो भोंक

फाइन् आर्ट्स

जमु० भीर स० एड० एच० बुडर

हिन्दू म्युजिक

त्र भी० चाधरी ।

मिस्टिसिम

इबिबन जम्हरदिक ।

फॉक डान्स भोंक महाराष्ट्र

ए० डी० अगारकर ।

मुगल पेंटिंग

जे० एडी० एस० बिर्किङ्गम सं० बमिङ्गट्रे ।

मिस्टिसिम

अम्बरदिक ।

कलेक्टरेड बक्स आफ आर०

डी० महारकर

मि० १ मि० ४ चूना ।

क्रिप्टिम इन्डोबुसम

हेनरी बर्गमॉ ।

दिसाइन् बिजनेस आफ मरिड

सेम्स

सं गोबिन्दाचार्य ।

अर्थ हिस्ट्री आफ बैणाब फन

एच० मूबमेण्ड

सुसीतकुमार डे ।

एलीमेण्टस् आफ हिन्दू

इकानोमिस्ट्री

१ डी० डी० ए० शीपीबाब रा० ।

काल्बर्बस आफ लिबिंग फन

गोरगनाथ एच० कबकस जागी

हरिदाम भट्टाचार्य ।

विश्व ।

राकर द्विग्विजय
साहित्य भक्तिमूत्र

शुद्धनीति

भावकाचार

श्री सिद्ध बीरजनाय चरित्र

सुबोधिनी

सावत तत्र

साधनमाका

सदमं पुंडरीक

सुजावती ग्युह

सौम्यराजम्

साहित्यदर्पण

संगीत दर्पण

संगीतसाधन अक

संगीत पारिजात

संगीत रत्नाकर

रत्नमेक कलाभिधि

सरस्वती कण्ठमरण

सम्प्रदाय प्रदीप और प्रदीपालोका

सिद्ध सिद्धास्त पद्धति

सिद्ध सिद्धास्त पद्धति

सिद्ध सिद्धास्त समग्र

सांख्य कारिका

सैकोदेश टीका

रघुपुराण

विष्णुसमोत्तर पुराण

हरि भक्ति रामायण विष्णु

बैदिक साहित्य

द्विधा टीकाकार—पं० बलदेव उपाध्याय ।
गोरखपुर ।

बम्बई ।

अमितगति भाषार्य ।

काशी ।

बम्बई ।

प्र० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी ।

बी० महाश्याय, सि० १-२ ।

एच० कन कुमियु नामत्रियो सेंट पीटर्सबर्ग ।

सं० मैत्रममूकर, भावसफेद, सि० १, भाग २ ।

अशुभोप, अमु० सूर्यनारायण चौधरी ।

प्र० चौखम्बा सं० सीरीज, काशी ।

दामोदर पंडित ।

हायरस ।

हायरस ।

शाहूदेव ।

भोज रचित ।

अनु० कण्ठमणि ।

पूर्णनाथ संस्करण ।

गोपीनाथ संस्करण ।

गोपीनाथ संस्करण ।

ईश्वर कृष्ण ।

बी० महाश्याय ।

बम्बई ।

बम्बई ।

रु० गोरखामी दुर्गम मगमनी टीका ।

शुद्ध अथर्ववेद शुद्धपञ्चवेद तैत्तिरीय

संहिता तैत्तिरीय ब्राह्मण तैत्तिरीय आरण्यक,

शतपथ ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण आश्वलायन

शुद्धमूत्र साध्यायन शुद्धमूत्र कृष्णारण्यक

उपनिषद् साम्प्रदायिकविषय प्रमृति ।

अंग्रेजी ग्रंथ

आर्ट ऑफ इंडिया फ्रू वी पुब्लिश	स्टेका कैमरीच ।
आर्ट ऑफ चम्पैस	पु गोस्वामी ।
आर्ट ऑफ पाल्पाट (भाग २)	ओ० सी० गांगुली ।
आर्ट ऑफ वी राइक्यूट	ओ० सी० गांगुली ।
ऑर्गेनिक इन्फ्लेमेशन	आर एम० छाठ ।
आर्ट्स एण्ड क्रैफ्ट्स ऑफ इंडिया एण्ड सीक्रेण	ए० के० कुमार स्वामी ।
आर्ट एण्ड थॉट	मैकमिलन कम्पनी ।
डा० आनन्दकुमार स्वामी स्मृति ग्रन्थ	सं० क० बी० ऐयर ।
आर्ट एण्ड मोरैलिटी एण्ड लवर ऐसेज	एफ० सी० डावर ।
आर्ट एक्सपिरिमेंस	प्रो एम० हिरियन्ना ।
आर्ट एण्ड स्वहेसी	ए० के० कुमार स्वामी ।
इन्ट्रोडक्शन टू साइंस ऑफ माइक्रोबिओजी	युग वीर सी० किरनई बगेव पाठ ।
इन्ट्रोडक्शन टू जूलोजी	एम० एन० मछी ।
इन्फ्लेमेशन ऑफ वी थ्रोमोसिस	इ एच कोर्नर । जीन विली एण्ड संम ।
इन्फ्लेमेशन इन वी क्लाइड	
ऑफ माइक्रोबैक्टीरिया	एड्वी एण्ड सब लिमिटेड ।
इंडियन मेडिकल एक्सपेरिमेंट	चिन्तामनी कार ।
इन्ट्रोडक्शन टू इंडियन आर्ट	ए० के० कुमार स्वामी ।
इंडियन एक्सपेरिमेंट एण्ड वैरिंग	इ० बी० हेबेल (२ संस्करण) ।
ऐन इन्ट्रोडक्शन टू एस्थेटिक्स	इ एफ० बैरि ।
आर्ट एण्ड वी क्रिस्टिबल ब्रनकासिस	परिच म्युमेनन अणु० रॉबिन्सन मैनहिम वरीन पाठ ।
एस्थेटिक (थं सं०)	बी० क्लाइ ।
ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक	वी० वासांड ।
ए म्यु बिपोरी ऑफ इण्डियन इन्फ्लेमेशन	मर आर्धर कीथ ।

ए त्रिदोषी द्विदोषी शोक

परमिया वि० १

मादक ।

ए गृही शोक वैज्याविम

कुशविनाइ गास्वामी ।

एस्पष्टम शोक वैज्याविम

त्र० शौच ।

अवना

डा० एनीवेमेन्ट ।

ए द्विदोषी शोक इदियन छिदरेचर शिरु १ बिदरनाम ।

पेन इन्हावनमान द्रु बुद्धि

इत्यारिभ

की० महाचार्य ।

बुद्धिमत् बाह्यिक

भा शी० गोहर्ष ।

बुद्धिमत् इम निष्पत्त

भाष्टिन वाङ्मल ।

बुद्धिमत्, इत्स द्विदोषी एग

भिराचर

टी० कण्डू राय बेविद्वय ।

बुद्धिमत् इकानामाका

दियवनाय महाचार्य ।

क्रिटिक शोक प्यार रीजन

इत्युनेल काट ।

कृमिकण्डीमस एग

कश्यप्य शोक इदिया

कम भगवात्र ।

रमा एग रसिनोत्र

भा मी० गौगुष्टा मा० १ ।

राजपूत रेटिन

म० येविण ताप ।

कनरादिष परपदिसस लड २

क० मी० पाण्डय चौतुरवा मीरीत्र काशी ।

कस्तन एस्पेदिसम

क० म० पाण्डय चौतुरवा मीरीत्र काशी ।

इदियन एस्पेदिसम गड १

म० माणिय बिद्वय ।

प्रत्यममम शोक एस्पेदिसम

मील मैत्र ।

माहर्षोनात्री

माहूम इव ।

इमत्र एग एववरीरिणव

एवविन हामिन ।

काट कॅनमीट ही म्हाया

शोक एत्रिारी

इगेष्ट, काट एनेव ।

द्विनमनोर्गैत्रा शोक माहूम

मं० क० त्र प्रेदरिड ।

ही दिण पोकी शोक काट

भरमवट टॉनर ।

ही द्विदोषी शोक काट द्विदोषी भरमवट टॉनर ।

अवमवट एववरीरिणव

शोक एनेरी

ए० म० मेहण मैदमित्त ।

प्रिन्सपुस्त ऑफ़ किडोरी त्रिदिसिगम	भा० ५० रिचर्ड्स ।
कॉलरिज ऑन इमैजिनेसन साइकोलॉजिकल स्टडीज इन रस	भा० ५ रिचर्ड्स । राफ़स गुप्त ।
फॉक डॉस इन इन्डिया भारतीय संगीत रागविधि खण्ड (१)	प्रोफ़ेस बनर्जी । सुधाराव ।
धियोरी ऑफ़ इन्डियन स्पृजिक	विशाल स्वरूप ।
डॉस ऑफ़ इन्डिया सेम्स ऑफ़ स्पूटी	प्रोफ़ेस बनर्जी । जार्ज मात्पायन ।
स्टडीज इन सांस्कृत ऐस्पेक्टिस परिस्टोमिफ़स थ्योरी ऑफ़ फ़ाइव वाट्स	ए० सी० धाखी । अनु० भीर स० एल० एच० बुकर ।
हिन्दू स्पृजिक मिस्टिसिज्म	जे० सी चौधरी । इन्डियन अम्बरविह ।
फॉक डॉस ऑफ़ महाराष्ट्र मुग़ल पेंटिंग मिस्टिसिज्म कॉन्फ़ेरेन्स बक्स ऑफ़ भार जी० महारकर	ए० जी० आगरकर । जे० ए० एस० बिल्किसन से बमिक प्रे । अम्बरविह । बि० १ बि० ४ पूना ।
क्रिप्टिव इन्डो-युधन त्रिवाहन विजयम भाष द्विविध मेन्टस	हेबरी बर्गर्स । से गोविन्दाचार्य ।
अर्थी हिस्ट्री ऑफ़ बैप्यव पद्य एन्ड मूवमेन्ट	सुरगीलकुमार डे ।
एकीमेन्टम् भाष हिन्दू इकानोमाडी	१ जी० डी० ए० गोपीनाथ राय ।
फ़ाइव्सेन्स भाष क्रिप्टिव रेव गोरन्नाथ एन्ड कनकेश जोगी	हरिदास महाचार्य । श्याम ।

गोरक्षनाथ पण्ड मेडिकल

मिस्टिसिगम

हेरिबिटी

हिन्दू पालिटी

हिन्दू साइकोलोजी

हिन्दू सिबिलाइजेसन

हिस्ट्री आफ इण्डियन पण्ड

इण्डोनेशियन आर्ट

हिस्ट्री आफ क्लासिकल

सस्कृत लिटरेचर

हिन्दूइज्ज पण्ड बुद्धिज्ज

हिस्ट्री आफ इण्डियन

फिलामोफी

हिस्ट्री आफ इण्डियन

फिलामोफी

हिस्ट्री आफ तिरुपति

हिस्ट्री आफ बंगाळ

हिस्ट्री आफ श्री बैष्णवात्र

दिग्ग आफ ही आइबार्स

इन्डोइज्जसन टू ही पांचरात्र

पण्ड ही अदिरबुज्ज्य संहिता

इण्डियन इमेजेज

इन्डोइज्जसन टू ताम्रिक बुद्धिज्ज

इन्डोइज्जसन आफ इस्लाम अर्न

इण्डियन कश्चर

आइडिया आफ पर्यत्रालिटी

एन सूक्तिज्ज

इण्डियन साधुज्ज

इण्डिया पत्र नाम टू पात्रिनि

मेटीरिबज्जय फार ही गृही आफ

अर्न हिस्ट्री आफ बैष्णव

सर्व्म

डा० मोहनमिह ।

मिंकलिन गूल ।

कापीप्रसाद आयसबाळ ।

स्वामी अशिकागम् ।

राधाकुमुद मुसर्जी ।

कुमार स्वामी ।

कृष्णमाचारी ।

इच्छिपट ।

डा राधाकृष्णन्, १ बि०, मैकमिलन ।

सुरेन्द्रप्रियम गुठ, बि १, ९, ४ ।

एस० के० आपन्नार, ।

प्रबोधचन्द्र बागची ।

टी० ए० गोपीनाथ राव ।

जे० एम० एम० हुपर ।

स० ओटो शेडर ।

बी० सी० महाचार्य ।

एस० बी० दास गुठा ।

वाराचम् ।

आर० ए० निकोडसन ।

जी० एम्० पूरे ।

बानुदेव वरज अमबाळ ।

हेमचन्द्र राय चौधरी ।

आदर साहब भाफ ही रेडिजस

किरेचर भाफ ही इण्डिया जे० एन० फर्नर ।

कोरिबन्धक संस्कृत देवस

वि० ४ ज० ग्योर ।

भाष्यवयोर रेडिजस कन्द

एन बी० दासगुप्त ।

माह्मर भाफ हिन्दूइस्म

जे एन० फर्नर ।

पञ्चापी सूफी पोप्टस

छात्रवन्ती रामरत्न ।

मीथिंग भाफ इस्लाम

डी० डब्लू० आरनरड ।

रेडिजस एण्ड फिओमोफी भाफ

आग्नेय एण्ड उपनिषद्स ए सी० डीय ।

डू साहकोकोजी

स्वामी लभेदानन्द, रामहृष्य बदायत ।

वी धूप साहब

वि० मैकडूगल ।

रेडिजस एण्ड वी साहमेख

ऑफ काइज वि० मकडूगल ।

पुत्र साहकोकोजी ऐम्ब इन्स

सोसाय मीनिङ एम० प्रोगीफ ।

प्रादण्ड बचम ऑफ वी

फिओमोफी ऑफ रेडिजस एक्सिसन स्टी ।

वी इण्डोस्तुसान ऑफ वी

आइडिया ऑफ गौड १९४९ ।

आर्से डाइप ऑफ वी

कछरिदव जनकानमस सी० डी० दुग ।

दिन्नु साहकोकोजी

स्वामी अक्षिकावन्द ।

वी इगो ऐम्ब वी इन्

सिगमंथ कायड ।

इगो वी प्जेसस प्रिमपुल

कायड ।

अन्धरईडिङ ऑफ डूमन मन्धर

आरन्डेड पेडकरु ।

ए जैनरक सेलगास प्राम वी

बचम ऑफ सिगमंथ

कायड ओवरिक मैम ।

साहकोकोजी डाइप

पुंग, कयेन पाल ।

मैम मारल एण्ड मोमाहरी

जे सी० क्तुगेक ।

वी पसनाहरी ऑफ मैम

डी एन० एम० हायकर ।

मैत्र धाम द्विज मेघर	मर चावर्स सेरिंठन ।
मोत्रेज वेम्ब मोनेधिम्म	सिगमण्ड प्रायड ।
ईडिपन साइकोकोमी	पनुषाय सिग्हा ।
साइकोकोमी एण्ड रेकिजन	युग ।
पथान	युग ।
एन इन्टोबकमान टू ही माइको	
लोडी ऑफ रेकिजन	रावर्ट एच० पाउकेस ।
प्रोड्रेम ऑफ इमन मेघर	
एण्ड विहेण्डिपर	माइकल पन्डि ।
माइकाएनकिटिक स्टडी ऑफ	
ही ऐमिडी	जे सी० वसुगेल ।
मिन्कोन्डिम	डा० पद्मा भद्रवाल ।
साइकोकोमी एण्ड अलकेमी	युड ।
रेकिजन फिलोसोफी ऐण्ड	
माइकिकर रिमर्ष	कमोन पार ।
मदम पुण्डरीक	मैथममुठर ।
सावय इडिपन हिस्ट्री एण्ड	
कवचर	एच० क० कृष्णास्वामी भागद्वार ।
मिन्टिडिक्म्य एण्ड इन्पार्सेम्स	
ऑफ जातकाज	गोकुलदाम श ।
मिन्घ वेम्ब इन्ड स्फीज	अयमल परमराम गुलराज ।
एन्डिम	ए० ज० अरबरी ।
स्टडीज इन इस्लामिक	
मिन्टिडिक्म	भार० ए० निकोडमन ।
माइकालीजिकल स्टडीज इन रम डॉ	राकश गुप्त ।
स्टडीज इन इस्लाम	कनक येर ।
टीचिंग ऑफ धी गीराड	रजामी कुर्वा सैन्स्य ।
ही मिन्ड कमेन्स ऑफ वेहरी	भारतन कुमारप्पा ।
ही एन्थमपान ऑफ ही	
इमोशन इन मैत्र	
एण्ड एन्थमपान	चार्ल्स डाबिन ।

श्री इबोव्यूसन ऑफ़ वी रिग्वेदिक वैविधन	भक्तपद्ममारी बेबी ।
श्री कृष्ण किन्नड इन पहाड़ी वैदिक	एम एस० रम्यदा ।
श्री ड्रासफारमेसन ऑफ़ नेचर इन धाट	ए० क० कुमार स्वामी ।
श्री पिक्टोवोफ़ी ऑफ़ ध्यूटी	जे० एन० वीसविस ।
श्री धाट ऑफ़ कवकळी	ए० सी० पान्धेय ।
श्री धाट ऑफ़ इम्बियन एसिया इट्स माइथालोजी एण्ड ट्रांसफ़रमेधन्स	जे० केम्पवैक बंड-१ ।
श्री ड्रास ऑफ़ सिव	डॉ० आनन्दकुमार स्वामी ।
श्री धाट एण्ड कवचर ऑफ़ इम्बिया	राधा कमक मुञ्जर्जी ।
श्री वैदिक एज	रमेशचन्द्र मञ्जुमदार ।
श्री ओरिजिन ऑफ़ मैव एण्ड द्विज सुपरिदिष्प्रांस	कार्बेय रोड केरिज ।
श्री एज ऑफ़ इम्पीरियल युनिटी स	रमेशचन्द्र मञ्जुमदार ।
श्री क्वासिकक एज	ए० रमेशचन्द्र मञ्जुमदार ।
श्री बुद्धि इकावोप्रफी	बिजय शोप भद्राचार्य ।
श्री मसनवी डि० १, २	बकामुद्दीन कमी ।
श्री हिट्रोबानिसन ऑफ़ वी शिपाइट्स	इसराफ़ कबीरकपन्धर, एम्बु देवेन ।
श्री हिस्ट्री ऑफ़ वी ऐसेसिस	सी० जे० व्दान इम्मर ।
श्री हिस्ट्री ऑफ़ मेडीकल बैण्णबीरस इन उबीसा	प्रभात मुञ्जर्जी ।
श्री एज ऑफ़ इम्पीरियल कनौज स० आर० सी० मञ्जुमदार ।	
श्री देवर्न ऑफ़ वी इकाइट एण्ड वेंद अनु० आर० टी० एच० मिश्र ।	
श्री० कार्ट अक महुयव	ए० जलकुम्भीरी ।
श्री कंकावतार भूज	अमु टी० टी मुहुडी ।
श्री कन्वेन्स ऑफ़ अलगावकी १३ वीं सर्ती	अनु० क्वाडर फ़ीरड ।
श्री अवारिफ़ुड मारिक	ए सेक रादाबुद्दीन ।

श्री अर्द्धी आर्षगा इत गुजरात	क० एम० मुशी ।
श्री बोपिसत्त डाकडरिन	हरनपाक ।
श्री स्विटिड ऑफ बुद्धिम	एम० एच० एस० गीइ ।
श्री क्रिस्टिफ इकबामिनेशन ऑफ फिटामोफी ऑफ रेडिजन	साधु आम्तिनाथ, अमरनेर जि० २ ।
श्री रेडिजन ऑफ मैन	रबीन्द्रनाथ टाकुर ।
श्री कश्चरक हेरिटेज ऑफ इगिडया	सि० २ स० डॉ० राधाकृष्णन् ।
श्री मिनन् रेडिजन्स	१, २ ३ भीर ५ जिइव् मैकडिफ भावसफोर्ड ।
श्री माधुज	इण्ड० एड० एलीसन ।
श्री मुस्लिम शीइ	ए० जे० विवसिक ।
श्री मेमेइ ऑफ गीता	अरविन्द् ।
श्री भागवत गीता	डा० राधाकृष्णन् ।
श्रीमन्मेशम्प ऑफ ईस्टर्न पोप्ट्री एन्ड प्रोज	अनु० आर० विहीकसन ।
वदाम्न पारिजान कौस्तुभ एन्ड बेदान्त कौस्तुभ	रोमाबास ।

अपम्रश

निछोप पञ्जति	भा यति कृपमाचाय ।
महापुराण	पुण्ड्रन् ।
प्रबचन मार	कुन्दकुन्दाचाय ।
हरिबश पुराण	श्री मजिन सनाचाय ।
मभाबट अरिप्र	श्री प्रसाचन्दाचार्य ।
परमाण्म प्रकाश भीर योगमार	योगन्मुद्देव ।
पदम अरिड	रघवन्मुद्देव ।
पदम गिरी अरिड	सं० श्री मोर्दी भीर भाषाणी ।
जापतुमार अरिड	पुण्ड्रन् ।
टीलाबइ कदा	

विश्वकोश

इस्ताइन्कोपीडिया ऑफ

रेडिशन एन्ड पब्लिस सं हेस्टियम ।

हिन्दी विश्वकोश

भतीन्द्रनाथ वसु ।

अभिनन्दन ग्रन्थ

पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ

मञ्जुरा ।

हिन्दी पत्रिकाएँ

कल्याण	उपनिषदाँक, सतवाणी अँक, मच्छ बरिदाँक, श्रीकृष्णाँक गोरखपुर ।
त्रिपयगा	कलकत्ता ।
ना० प्र० पत्रिका	कासी ।
हिन्दुस्तानी	इकाहाबाद् ।
हिन्दी अनुशीलन	इकाहाबाद् ।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका	इकाहाबाद् ।
भारती	पम्बई ।
पाठक	पटना ।
साहित्य	पटना ।

अंग्रेजी पत्रिका

इंडियन हिस्टोरिकल कार्टरली	
इंडियन वेम्प्रीडेरी	बम्बई ।
न्यू इंडियन वेम्प्रीडेरी	
जर्नेल ऑफ राबल पब्लिशरिङ	कलकत्ता बम्बई, पंगाळ ।
सोमाहटी	
जमल ऑफ बिहार उड़ीसा	
रिसर्च सोमाहटी	पटना ।
महाबादिन	मद्रास ।
प्रमथ ऑफ मंचरकर भोरिप	
ग्रेड रिसर्च इन्स्टीट्यूट	
जर्नेल	पूना ।
बिद्याभवन जर्नेल	पम्बई ।

हस्तलिखित पुस्तकें

परशुराम सागर	परशुराम कवि ।
भवतारचरित्र या भवनारलीला	वारहृददास नरहरदास छि० का १०३३ वि० की पुनः लि० का० १५९० वि० ।
द्विदत्त चौराप्पी	द्विदत्त हरिबंश ।
रसिक भ्रम्यम्यमाळ भागवत मुद्रित	छि० का० १८३० ।
सेवक चार्नी	द्विदत्त सेवकदास ।
मधुमाष्टकी-	चतुर्भुजदास ।
ग्याकित्त झगरो	माधोदास ।
मान माधुरी	माधुरीदास ।
दान माधुरी	माधुरीदास ।
पुहुपावती	बुधहरभदास, लि० का० १८९०, रचना का० १०२६ ।

धगला

भनादि संतक	रामदास ।
चर्यापद्	मनीन्द्र मोहन बसु ।
चैतन्य चरितामृत	कृष्णदास कविराज ।
धीकृष्ण कीर्तन	चंडीदास ।
धमपुराण	मपूर भट्ट ।
धर्म-शुभा विधान	रमाई पंडित ।
धीरे गान १११ दोहा	म० हरप्रसाद शास्त्री ।
शुभ्य पुराण	रमाई पंडित ।

इन्साइक्लोपी
रलिजम
दिन्वी विश्वक

पोहार अभिजन

कल्याण

त्रिपथगा
ना० प्र पत्रिका
दिन्बुस्ताबी
दिन्वी अमुनीकन
दिन्वी साहित्य मम
मारी
पाठक
साहित्य

इंदिजन हिस्टोरिकल १
इंदिजन ऐन्टीकैरी
न्यू इंदिजन ऐन्टीकैरी
जर्नल ऑफ रायल एशिया
सोसाइटी
जर्नल ऑफ बिहार एशिया
सोसाइटी
महाशक्ति
एनएन ऑफ महारकर ओ
ग्रेट रिमर्च इन्स्टीट्यूट
जर्नल
विद्याभवन जर्नल

शब्दानुक्रमणिका

अ		अक्षी	५८३	अचल	९६
अंगद	२२१	अक्षी क अक्षी	३९१	अचलकम्बुमात्र हनु	
अंगी	५३४	अंस	५९०	मान	१३५
अभ्युत्तरमिकाय	३८०	अकबर का अवतार	३२२	अचला	४५
अंगुष्ठमात्र	३१८	अकबर मुहीबदीन		अक्षित	२२०
अंतरिक्ष	१११ ११२	इकन अल अरबी	२५१	अक्षित पुरुष	२२०
अशुद्ध	५००	अकर्मब्रह्मरीर	३३४	अचेतन १४८ ७००	८०९
अस १०१ २१०	३३६	अकल्पकोष ३ ७	४४८	अचेतन उपादान	३९८
३०८ ३१२ ३३६ ३४२		अक्षर	३२९		६९९ ७२६
३५४ ३५९ ३६१ ३६५		अक्षोभ्य १४ ४२ ४४		अचेतन क्रिया	६९९
३७९ ३८९ ३९२ ४०५			४७ ६५	अचेतन प्रभाव	८५०
४०९ ४२६ ५३० ५३५		अक्षर	३७	अचेतन मन	७५४
५९० ६२५ ६३५ ७०८		अक्षुब्धरीरतन्त्र १०५	१२३	अचेतन मानव	७७४
अस अक्षी	३७०	अक्षुब्ध	५८५	अक्षयुत	६४ ३२१
अक्षरूप	६३६	अक्षरापट २६१	२७०	अक्षयुत परमाक्षर	५७
अक्षरूप में पुरुष का		अक्षिलानम्बु	७१८	अर्चक	५५६
निर्माण	२६९	अगुण	५०४	अर्चत्	५५०
अक्ष विहित	३४५	अग्नि १२० १४१	३१२	अर्चद्	५५०
अक्ष से अवतरित	२९३	३४५ ३४६ ३४७ ३४८		अर्चना	५४९
अक्ष स्वरूप	३४६	३५४ ३६२ ४४९ ५८३		अर्चा ३७ २४८ ३२८	
अक्षांश	३६६ ३६७	६१३ ७२८		३३४ ३६१ ५५० ५५७	
अक्षावतार २९३ ३३६		अग्नि-अवतार	५८२	अर्चा-इन्द्रदेव	५५५
३४४ ३४६ ३४७ ३४९		अग्निअवतार कपिक	४८६	अर्चाउपास्य	५६८
३५३ ५५९ ३६० ३६८		अग्निपुराण ४१० ४२		अर्चातर	५०२
३७१ ३८६ ३८९ ३९९		४४९ ८४५ ९२८		अर्चातत्व पुक्त राम	५१२
४०६ ४३३ ४३४ ४३५		अग्निस्तक	१२७	अर्चा ब्रह्म का प्रतीक	५४९
४४९ ४५६ ४६५ ४६६		अग्निहोत्र	१११	अर्चा मक्ति	५५१
४६७ ५२२ ५२६ ५२८		अग्रदास	४०७ ५१२	अर्चामूर्ति	५६६
५६९ ५८१ ५९ ६२९			५१३ ६०२	अर्चा रूप	३ ६ ३२८
६२४		अग्रदास	५२३		५४७ ५६९
अक्षावतारीरूप	५३४	अष्ट अटमापटीपत्नी		अर्चावतार ३८ १९८ २००	
अक्षाविर्भाव	३४७	सक्ति	३३५	२१३ ३६४ ५०६ ५४९	
अक्षी ११० ३३३ ५१८		अक्षर	११६	५५४ ५५६ ५५७ ५५८	
५३४		अक्षर	२२०	५६५ ५६७ ५६९ ५७१	
				५८६ ५९२	

अर्धाविग्रह ७१ ७३ ७८	आयुष्य व्यष्टिश्च ७१४	अनन्तधीर्य ८७
३८७ ५१९ ५५७ ५६७	अत्रि ११६	अनन्तसुग्री ८७
५७२ ९६४	अथर्ववेद ५३३ ५२१	अनन्त-सिद्ध १२८
अर्धाविग्रहरूप ३ ८ ३१९	अथर्व संहिता ३९६ ४२३	अनन्तानन्द ६१३
अर्चित ५५	अथर्वसुत १६३	अनपायिनी ५७४
अर्चिस्मात् ५ ०	अथर्वगिरम ५००	अनन्वाप्तिकि ९७२
अज्ञ ५०४	अथर्वशास्त्र ५२३	अनागत बंस २६
अज्ञानता ९२३	अथर्वसुत ९६३	अनागत असेक्य बुद्ध २७
अज्ञहृद् गुणशक्ति ३०५	अथर्व ४५ ५८ ५९ ६१	अनादि ७९
अज्ञातघात ५९	६८ ३९३	अनादि क्रीडा ३९०
अज्ञामिक १९० १९३ ३१५	अथर्व आकार ६९	अनादिपिंड १२४ १२५
अज्ञापमान का प्राहु	अथर्व भूमि २८	अनाहत ६६
भूत होना ६३४	अथर्व रूप ५२ ६९	अनाहत नाद ९३२
अज्ञित २६ ८५ १६१ ३१४	अथर्व वज्र ४१ ४३ ५५	अनिकर १८२ २१८ २४१
३४१	५३ ६ ६२ ६४	२४३ ३२३ ३२८ ३३५
अज्ञितबाध ८६	अथर्व सिद्धि ४३	३६२ ३७२ ३७४ ९७७
अज्ञितनाथ तीर्थकर	अथर्व श्रौत १२२	अनीश्वरवार्त्ता ४६४
(यमुबाई) ९१	अथर्व आचार्य ५९	अनुकरण ८१४ ८४६
अज्ञितमेत ९५	अथर्वताचार्य ५९	अनुकूलन ८९२
अज्ञाप-तुडुती २४१	अथर्विता ४४४ ४३१	अनुकूलन प्रकृतिवा ९७३
अज्ञात ११६	अथर्व-वैश्वी ४३१	अनुकूलित श्रीवापुति ७८०
अज्ञाप्यम् ६८७	अथर्वसाय ८१४ ८४६	अनुकूलित विम्ब ८३१
अज्ञातसयोगीअवतार ६१९	अथर्वसहित रूपक ८७७	अनुकूलित सार ७८३
अज्ञातसहस्रबुद्धचेत २०३	अथर्वान्तरिक ८०६	अनुकूलित ९२३
अज्ञाती मद्रज अथर्वि १३२	अथर्वारम ४१८	अनुग्रह ३४ ५० ५५ ६५
अज्ञहृद् ९३३	अथर्वामहामायण २२५	६९ १२३ ३२२ ३७५
अज्ञोरजीधान ७९१	२३५ ३४८ ४३६ ५०१	३४९ ३४३ ९७९
अज्ञि ३७९	५ ६ ६०४	अनुग्रह मूर्ति ९४८
अज्ञिअमित क्षेत्र ६५१	अथर्वारमबाध ७८४	अनुग्रह शक्ति १२
अज्ञि अतिपूर्ति ६८५	अथर्विष्टान् १२७	अनुविम्ब ७२३ ८०८
अज्ञि प्राकृतिक शक्ति ७३	अनन्त ८५ ११० ३१२	अनुमाय ८२७
अज्ञिमानवीथ गुण ७७७	अनन्त-गुण २५०	अनुमूल सहस्रज्ञान ८५३
अज्ञिरिक्त पराक्रम ६५	अनन्तद्वय २४१	अनुमूर्ति ६३९ ८३७ ८४२
अज्ञिबाध ८९४	अनन्तनामा ३५५	अनुमूर्ति (अवतारवादी
अज्ञिसा ४९ ५१	अनन्तज्ञान २८ ८७	कथन) ९२
अज्ञीत अवतार २०९	अनन्तदत्तन ८०	अनुमूर्ति (उदात्त) ९०२
अज्ञीत बुद्ध ६ २० ३४	अनन्त बुद्ध ३३	अनुमूर्ति (रमणीय) ६२
अज्ञुत उद्ययनीहृत्न	अनन्तरूप ३८ ३६९	अनुमूर्ति (सौन्दर्य) ९०२
इष्टदा ७१८		

शास्त्रानुक्रमणिका

१०३१

अनुराग बाँसुरी	३९	अपरात्रिग विमान	८६	अमर उधारण	५३२
अनुराग सागर २०५	२२०	अपराध	७७३	अमरकोश	३३३
अनेक प्रकार के अवतार	२३३	अपरिपुष्ट	७७५	अमरदास २१३	२२४
घारण	५५९	अपोको	७२०	अमरसुख निघाण	२३३
अनेकार्यता	६५५	अप्रकट	३७९	अमलधर्मत अमादि	५१४
अन्तर्मुक्ती	८८२	अप्परा ३३	७२	६६२	९३५
अन्तर्मुक्तीकरण	६९८	अप्परा का अवतार	२९३	अमिताभ ४२	४३
अन्तर्मुक्ति	८९०	अप्परायें	२९९	अमिताभ पुत्र	५८
अन्तर्पामी ३०	४४	अप्पराजो	२९९	अमिताभ पुत्र	५८
१३४	१०८	अधीरगुण्य	२९९	अमिताभ पुत्र	५८
१८१	१८२	अधुक्कलाम आजाय	२६६	अमीषा	६६६
१९६	१९९	अधुल्लौर	२८३	अमूर्त प्रतीक	७२५
२२९	२३५	अधुल्लु इप्प जैमून	२८३	अमृत	१९३
२५२	३०६	अधुल्लु कादिर	२८६	अमृतधारक	४३४
३२८	३३४	अधुल्लु	२७५	अमृत मयन	९४१
३६०	४४०	अधुल्लुमाय	२८३	अमृतसुख	४२
५३२	५३३	अमाहम २६७	२३७	अमृतीष	७२२
		अमाहम २७३	२८५	अधोघ्या	१९२
		अमिताभ	६९९	अधुल्लु	५३३
अन्तर्पामी उपास्य	२९०	अमिताभ शाकुन्तलम	९८१	अधुल्लु	२६०
अन्तर्पामी रूप	२९८	अमिताभ विष्णुमणि	८०	अधुल्लु	८५
	३२८	अमितद्वन्द्व	८५	अधुल्लु	८६
अन्वपरक मनोविद्व	७८५	अमितय	८७५	अधुल्लु	८६
कृता	१२	अमितयर्षण	९४८	अधुल्लु	८६
अन्वपुत्र	३२	अमितवगुप्त	८	अधुल्लु	८६
अन्वोक्ति ७१५	७३२	८१४	८२०	अधुल्लु	८६
	८७७	८२१	८३६	अधुल्लु	८६
अन्वोक्तिपरक ८०४	९२०	८४	८५	अधुल्लु	८६
अन्वोक्तिपरक विष्णु	८०९	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
मिर्मांज	८०७	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अन्वोक्ति विघाण	८०९	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरकपैमुक्त	८०७	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरमंसाभाषा	६३९	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरमंसाभाषिय	८१	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपर	८१	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपर प्रश्न	१८०	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरा	५१९	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरात्रिता विष्णु	१२४	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
अपरपर	५२३	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६
	१४२	अमितद्वन्द्व	९४१	अधुल्लु	८६

अक्षी २८० २८५ २८६	अवतरित बुद्ध ५९	अवतारवाद १३७
२८८ २८९	अवतरितशक्ति ४५ ६५१	अवतार-पुरुष २३० ७५७
अक्षी इमाम २९०	७७३	७७४ ७८३
अक्षीकिंक प्रह्ला ८१८	अवतार ६१ ११० ११०	अवतार प्रकृत रूप ७९५
अक्षीकिंक उपास्य ८२६	१४५ १५९ १७५ १७८	अवतार-प्रतीक ६५८ ६७८
अक्षीकिंक सौम्य ८७७	२०४ २०५ २१३ २२१	७१८ ७१९ ७२० ७२१
अक्ष अक्षीम २४५	३१३ ३३१ ३३८ ३६१	७२१ ७२३ ७२४ ७२५
अक्ष कबीर २४५	३७० ४१८ ४३२ ४४०	७२६ ४२७ ७३३ ७४०
अक्ष कादिर २४५	४६७ ५०७ ५१२ ५३४	७४१ ७४२
अक्ष लाकिंक २४५	५४४ ५४५ ५४७ ५४८	अवतार प्रतीक (ब्रह्मा रुक्)
अक्ष गजाक्षी २५२	५७० ५७७ ५७९ ५८१	७२२
अक्ष माकिंक २४५	६१८ ६४५ ६६० ६८३	अवतार प्रतीक (प्रति शोधी)
अक्ष मुसाबीर २४५	७१२ ७२६ ७३३ ७७६	७२३
अक्ष रव २४५	७७८ ७७९ ७८३ ८०४	अवतार-ब्रह्म-विद्य ९२३
अक्ष रहमान (कहना- मत्र) २४५ २६५ २८२	८१२ ८१७ ८५७ ८६९	अवतार प्रयोजन ३५ ७३
अक्ष उद्य-वह्नि सङ्घि १६३	९११ ९५८	६ ६३ ६९ ७१ ९२
अक्ष इपी २४५	अवतार-अनुग्रह ९९६	९३ ११० १ ४ २५६
अक्ष हाकिंक २४५	अवतार कथा ९३८	२५९ २३५ २४१
अक्ष कुम्बिरी २४६	अवतार काय ४४०	अवतार विगर्भी ७९ ७९१
अक्षहा १९४ २२६ २३६	अवतार-कारण ३२	अवतार मङ्ग ८१
२३७ २४० २४४ २४५	अवतार कार्य २९ ३४ ३५	अवतार भक्त ८८१
२४६ २४७ २५७ २५८	३८ ४६ ४८ ५८ ६३	अवतार भावना ६४५
२५९ २६१ २६२ २६५	६५ ७० ५४५ ५४७	अवतार भावना-मयि ७२०
२७३ २७४ २७६ २७९	५७५ ६५७ १००	अवतारमणि ५१४
२८० २८४ २८५ २८६	अवतार काक ३३	अवतार मूर्ति ३६५ ७९०
२८९ ३०३ ३२४ ७५२	अवतार कृति ८९७	८४३ ९९५ ९९६
८०३	अवतारकृतिराम ९२९	अवतार वहि मङ्ग का प्रतिमिधि ५४९
अक्षाह अक्षर २५३	अवतार कृष्ण ४६५ ४६६	अवताररूप ५५ १७३
अक्षाह के रूप के चार भाग २४१	अवतार चन्द्र ३८	४३८ ४४३ ५०२ ५३१
अक्षार ५७७	अवतार चरित ५०९	५४४ ७४१
अक्षोपनिषद् २९०	अवतार-चरित्र ९२५	अवतार कीला ८१ २०१
अक्षति बर्द्धन ४४७	अवतार-चरितामक कृति ८७५	४१८ ४२१ ४४४ ४४३
अक्षपेय ६९४	अवतार तुष्यता १२८	४९० ५३९ ७२९ ७८३
अक्षपेय ६३०	अवतार नाबक और प्रतिनायक ८३१	८४५ ९२५ ९७६ ९९०
अक्षतसकमुत्र ४३९	अवतार पञ्च ५३६	अवतार शिरोपी १०९
अक्षतरण ६४०	अवतार परम्परा ५६ ११८	अवतार सत्य ७४३
अक्षतरित ३०९	१९७ २३८ ४५५ ९३	अवतार सृष्टि ७८२
		अवतार स्वरूप १९९ २५६

अवतारवाह-विम्बो	
साधना	८४७
अवतारवाह ६ १० १९	
४९ ५९ ९९ ९४ १४१	
१६० १७२ १९१ १९२	
२०२ २ ३ २०० २ ९	
२१६ २३८ २५१ २५२	
२६० २९० २९१ २९३	
३०५ ३०७ ३१९ ३४३	
३४४ ३४८ ३४९ ३५०	
३५४ ३५७ ३६० ३६१	
३६३ ३६५ ३६७ ३७६	
३८० ३९० ४३२ ४३७	
४३९ ४४५ ४९६ ५०३	
५०५ ५०७ ५०८ ५४९	
६०० ६१० ६२४ ६२९	
६३० ६३१ ६८७ ६८८	
७३८ ७३९ ७४५ ७९६	
८१९ ८५० ८९६ ९००	
९१६ ९१७ ९३९ १० ५	
अवतारवाह (अवतार- मिक)	७३९
अवतारवाह : उपास्य वादी	१००५
अवतारवाह का उपास्य २३३	
अवतारवाह की मूर्तियां	१३९
अवतारवाह के प्रार म्भिक हेतु	७५५
अवतारवाह प्रतीक	७३९
अवतारवाह शोध	५९
अवतारवाह : उपास्य द्वारिक	१०७५
अवतारवाह (विष्णु)	४
अवतारवादी	७ ६१३
८३८ ९०७ ९१० ९२१	
९२४ ९३४	
अवतारवादी उपास्य	११४
	९१५

अवतारवादी उपासना	३५८
अवतारवादी उपास्य	९९९
अवतारवादी औद्योग्य	९१७
अवतारवादी कला	९९२
९२३ ९२८ ९९१	
अवतारवादी कल्पना	
	८६३ ८६६
अवतारवादी कलाभि- व्यक्ति	८७० ८७४
अवतारवादी कार्य	६३८
अवतारवादी कृति	८७४
	८७५ ९७५
अवतारवादी विषय कला	९३२ ९७७ ९७५
अवतारवादी शास्त्र	१९
अवतारवादी धारणा	९२७
अवतारवादी परम्परा	६५७
अवतारवादी पुराण प्रतीक	६९२ ६६३
अवतारवादी पौर- निकता	९२७
अवतारवादी प्रक्रिया	७३९
	८३८
अवतारवादी प्रतीक	७२८
अवतारवादी प्रतीकी करण	७०६ ७१६
	७१८ ७१९ ७२३
अवतारवादी प्रयोजन	५०७
अवतारवादी सामक दिव्य	७९०
अवतारवादी समन्वि- तता	८७७
अवतारवादी समन्वित विम्ब	८०० ८०६ ८१९
अवतारवादी कृति	२०५
अवतारवादी रूप	१५३
	५१७ ९३०
अवतारवादी स्त्रीशान्ति मूर्ति	७२०

अवतारवादी विम्बो	
रूमाधना	८६७
अवतारवादी विषय	
वस्तु	८९६
अवतारवादी सत्ता	९२७
अवतारवादी सार्वभौमिक	
३४९ ३५३ ५७३ ८४१	
अवतारवादी-सूची	३०५
अवतारवादी सौम्य	
चेतना	८४३
अवतारवादी सौम्य	
बोध	७९०
अवतारवादी सौम्य विज्ञान	७९३
अवतारमिम्बिक	९००
अवतारी ५१ ११० ३६९	
३७७ ४१८ ४८१ ५१८	
५२९ ५४४ ५४० ६१८	
६२३ ७४५ ७४२	
अवतारी उपास्य	२८०
	५८९ ७८० ९७६
अवतारी उपास्यदेव	७५२
अवतारी उपास्यवाह	७७६
अवतारी-उपास्यो	३१२
अवतारीकरण	६० ५८०
६०६ ७३१ ९०४ ९०५	
९३४ ९६२ ९७९	
अवतारी कार्य	१९५ ९३२
	२०३
अवतारी कृष्ण	३७८
अवतारी गुण	३३
अवतारी गुण्य	५३३
अवतारी भगवान	१७३
अवतारी राम	५१४
अवतारी रूप	१११ २२७
२३४ ४८६ ५०३ ५१९	
५३५	
अवतारी विष्णु	३५०

अवतारों का अक्षय कोष १५२ ४१० ४०९	अष्टधातु ३३९	अह-निर्मिति ६९४
अवतारों का समय ३१६	अष्टसखाग की बातों ६०८ ६ ९	अहं नैतिक ७४४
अवतारों के अवतारी ३९१	अष्टसखियाँ ५१४	अहं रूप ७८३
अवतारों को कक्षा परवशा १३०	अष्टादशपुराण ३०५	अहं व्यक्तित्व ७५५
अवतारोपासना ९११	अष्टाध्यायी ५ ५११	अहविद्यपथ २४२ २४४
अवलीर्ण भोपियाँ ५६५	असंख्य अवतार २३ ४ ४	अहमव प्राकृष्टी २८६ २८७
अवभृत् शुद्ध १३०	असंख्य बुद्ध २३	अहमिच्छ ९५
अवकोकितेश्वर ९ १३ ४३	असंख्य कक्षी ५०९	अहक्या १३२ १९२ २२६
उक्त ४८ ५० ५१ ५६	असत् ३९६	अहिंसा ६
७२ १०४ १०५ १०७	असक्ति २२०	अहिर्बुध्न्य ३६०
३९३ ४४२ ४४३ ४४५	असामान्य सर्वोविज्ञान ७८४	अहिर्बुध्न्य संहिता ३५१
९२१ ९९१	असावरी ९४०	अहिंसावण २२७
अवकोकितेश्वर पितृ देवता ४९	असिद्धि ८	आ
अवारिकुल मारिक २७५	अभिरिधा ७९८	आंगिक ८०१
अविदुरे निदान २४	असीम का मसीम ६३५	आंगिक पुण्या ८१५
अविद्या ११८	असुर ४१९ ४२६ ४३०	आकर्षण भाषापर ७८८
अविद्या माया ८४०	४३३ ४५२ ४९३ ५०९	आकस्मिक कार्य ६४०
अविनश्वर बुद्धाचल ५३१	५३७ ५६७ ६६२ ६८०	आपारों ६४०
अविच्छेदक ६८०	७७३	आकांक्षा ७४७
अविद्योमन्त्रा नाव ११२	असुर उच्चार ५४४	आकाश ३५४
अव्यक्त ३१० ४३३	असुरदेव ४२८	आकृति विज्ञान ८५३
असिध ७९३	असुर-पदा-भलीक ६८६	आर्कटाहूप ७४८
अश्व २५३	असुर मोह ४२४	आखिरी कलाम ९७९
अश्वमीय ९६ ९७ ९८ ९९	असुर संसार ५४४	आगम ४८१ ५४२ ५५१
अश्वरूपामा ११४	अस्तित्व ६३२	आगम-विगम ५३८
अश्वन ७२८	अस्तित्व क क्षिप संघ ६६९ ६७० ६७८	आग्नेयकपिल ४८७
अश्विनी कुमार १२० ३१९ ४७४	अस्तित्वबोध ६३२	आग्नेयकुमार ४८९
अश्वघोष ४३० ५८३ ६ ८ ६ ९ ६१	अहं ६४३ ६९३ ६९९ ७२४ ७३४ ७५५ ८३१ ८५३	आगा लों २८९
अहमेन्द्र ३३९	अह आहवाँ ६९३ ७०५ ७३४ ७३३ ७४५	आचरण ६
अहपरि ९५५	अहंकार ४४	आचार्य ३ ८६ २०९ ३९७ ५५७ ५७३ ६१३ ७४५ ७७५
अहयाम पूजा १८३ ७२० ९७३	अहंकेन्द्रित आरमस ७८०	आजम २६४
अहयाम सेवा ५१३ ५४९	अहं-वैतना ७३५ ७५३	आहम क नवत २६४
		आज्ञाचक्र ७
		आठ दृष्टान्तों के नियम ३४८
		अंश से राजा का निर्माण ३४८

आत्मवच विभाव	६३०	इ	इक्ष्वाकु (राजा) ७	९१७	इक्ष्वाकु	२६६
	९१९	इक्ष्वाकु (राजा) ७	९१७	इक्ष्वाकु	७३३	७४६
आत्मवच विभव	७३९	इक्ष्वाकुपुत्रि	६९२	इक्ष्वाकु	२४	२४
८०५ ८०६ ८१२	८३६	इक्ष्वाकु ६९३ ६९४	६३१	इक्ष्वाकु	२५३	२५३
	९०१	इक्ष्वाकुसाह	२८७	इक्ष्वाकु	१८४ १८६ १८	१८
आत्मवच	९८०	इक्ष्वाकुशिवम पुरा		इक्ष्वाकु	१८९ १९६ १९८	२०२
आत्मवच	४	कथा	७२७	इक्ष्वाकु	५५५ ६९२	९१०
आत्मवच गीत	९४४	इक्ष्वाकु ९ १० १४	४९	इक्ष्वाकु का भवतार	२०३	२०३
आत्मवच साहित्य	४९९	७९ ८९ १२७ १३२	१३२	इक्ष्वाकु रघुबीर	५०९	५०९
आत्मवच	११८	१७१ ३२२ ३४५ ३४८	३४८	इक्ष्वाकु राम	५१९	५१९
आत्मवच	३३० ७००	३५५ ३६२ ३७२ ३७४	३७४	इक्ष्वाकुसकप्रबोधन	५४५	५४५
आत्मवच प्रह्लाद	८०९	४२३ ४२८ ४३२ ४३४	४३४	इक्ष्वाकुपासना	९११	९११
आत्मवचगोपाल	२ ४	४३९ ४४२ ४४३ ४४५	४४५	इक्ष्वाकु	२६७ २७३	२७३
आत्मवचकार	६३९ ६४५	४७४ ४७८ ४७९ ४९७	४९७	इक्ष्वाकु के पुत्र	२६७	२६७
आत्मवच	३३	५ ६ ५१२ ५१५ ५१८	५१८	इक्ष्वाकु	२७९	२७९
आवेष्टा २१	३३३ ३३८	५७७ ६९० ७२८	७२८	इक्ष्वाकु संग्रहाय	२८९	२८९
३३९ ३४० ३४३ ३६		इक्ष्वाकु	८१४ ८४६	इक्ष्वाकु	२६७	२६७
३६१ ३६४ ४६५ ३६६		इक्ष्वाकुमन	५७१	इक्ष्वाकुस	९०७	९०७
३६७ ३७९ ४ ५ ५५९		इक्ष्वाकुदेव	६४७	इक्ष्वाकुम	२३६ २३७	२३७
६५५ ६३२		इक्ष्वाकुसुधी	४२३	इक्ष्वाकुमी	२ ७	२ ७
आवेष्टा भवतार	३४४	इक्ष्वाकु विष्णु	४७७	इक्ष्वाकुमी भवतार		
आवेष्टा प्रकृति	५२९	इक्ष्वाकु	५३९	माधवा	२५४	२५४
आवेष्टावतार ३२८ ३३१		इक्ष्वाकु-देवता	१९३	इक्ष्वाकुमी एकेवरवाह १८०	१८०	१८०
३३० ३३९ ३३३ ३३४		इक्ष्वाकुपती	९९२ ९९३	इक्ष्वाकुमी पंगुवरवाह	२३३ २६४	२६४
३३५ ३३७		इक्ष्वाकुसीगा	१६०	इक्ष्वाकुमी संग्रहाय का		
आवेष्टा रूप	३६४	इक्ष्वाकु कामिक	२६७	अनुक	२५४	२५४
आवेष्टा कवि	८५०	इक्ष्वाकुकामिक	२६५	इक्ष्वाकुमी साहित्य		
आवेष्टा ३७९ ८२१	८४०		२७७ २७८	२५१ २६०	२६०	२६०
	८४१	इक्ष्वाकु	२७७	इक्ष्वाकुमी सृष्टि	२६०	२६०
आवेष्टा परम्परा	८१	इक्ष्वाकु अरु	२७७	ई		
आवेष्टा रामायण	८२	इक्ष्वाकु अरु	२७६	ईरानी सैफी	९८९	९८९
आवेष्टाकरण	६०७	इक्ष्वाकु फरीद	२५६	ईस	११७	११७
आवेष्टाक	८२	इक्ष्वाकु दसन अंतिम	२८१	ईशानुकथा	३७९	३७९
आवेष्टाम	९६९	इक्ष्वाकुहिम	२६७	ईशानुकथा	१२७	१२७
आवेष्टा शक्तिर्षी	६३९	इक्ष्वाकु २५४ २७३	२७६	ईश्वर १० १२७ १४०	१४०	१४०
आवेष्टा प्रकृतिर्षी	६३९		२८०	१७० २१० २४९ ४३९	४३९	४३९
आवेष्टा	११५	इक्ष्वाकु न्युमेवन	८५५	४६३ ५५६ ६०१ ६९१	६९१	६९१
आवेष्टा	८ १	इक्ष्वाकु	३५२			
आवेष्टा	४६८ ४६९	इक्ष्वाकु	३०८ ३ ९			

उपन्यास ६२६ ८७९	उपास्यबाद ३२३ ४२१	श्रीचीक ६८१
उपपाठक भक्तारकाय ६०	४४५ ४९६	श्रीचम १ ३९ ८५ ८६
उपपुराण १२२	उपास्यबादी भक्तार	८८ ८९ ९३ ९४ १०१
उपमा २०९ १ ०४	रूप ४८२	१३० १३७ १८३ ३९०
उपयोगिताबादी ६९४	उपास्यबादी भक्तार	३६३ ४०७ ४०८ ४०
उपयोगिताबादी श्रेष्ठ	बाह्य ३८ ४१ ९०४	५७३ ७७५ ९१४
उपास्य ८९३	उपास्यबादी कक्षा ९२४	श्रीपद्मगीता ४७०
उपयोगिताबादी श्रेष्ठता ६८४	उपास्य विग्रह ३७३ ५५०	श्रीचमश्रेष्ठ ४६२ ४७१
उपास्यपाम ९२७	उपास्य विग्रह रूप १३४	श्रीपि १० ११९ ३५
उपासक १७९	उपास्य विष्णु ४०२ ४७७	श्रीपि कपिष्ठ ४८५ ४८७
उपासना ७४१	५०७	श्रीपिगण ३६२
उपासना के निमित्त २१०	उपास्य हरि ४५९	श्रीपिराज २०७
उपास्य १७२ १७९ १८०	उच्चविम्बठ २४३ २४४	प
४४० ५३१ ६१८	उभयप्राणी ६६८	एक कोशीय ६६१ ६६७
उपास्य भक्तार ८२६	उभर २७३	एकत्रीकरण ७४१ ८५१
उपास्य इष्टश्रेष्ठ १७० ९२७	उमा ११४	एक सुगतनु ६६७
उपास्य ईश्वर ७७०	उमा प्रविष्ट शैवता ११४	एकाकर ३५५
उपास्यक मनोमतीक ७१७	उरुक्रम ७२९	एकादश भक्तार १५१
उपास्य कृष्ण ४४३ ५३	उर्वशी ४७९ ९७५ ९७६	एकादश रूप ३२७
५३९	९८१	एकादशी १००४
उपास्य गुण ५६	उत्सङ्गमुनि ७६	एकशरबाह्य १७० २१६
उपास्यश्रेष्ठ टाडूर ५५९	उत्सङ्गिभ्यस्त २४२	२३९ ३४९ ३५८
उपास्य शैवता का	उच्छास ९६२	एकेश्वरबादी ५४ १२५
भक्तार ७८४	उद्यानात्मनि १२३	१६० ३६२ ६२३
उपास्य प्रतिमाओं ७२३	उपा-मनिस्य २९५	एकेश्वरबादी ईश्वर २३७
उपास्य प्रतीक ७४८ ८८३	उत्तमान २६९ २७१ २७३	एकेश्वरबादी उपास्य १६७
उपास्य ग्रह २४५ २४८	२९२	२२६ २७२
३९० ४६२ ५०३ ५३४	उत्सृष्ट आत्म २६७	एकेश्वरबादी निराकार
उपास्यमात्र २५७ ९२३	ऊ ७	ईश्वर २२३
उपास्यमूर्ति ९३५	ऊर्ध्वशी ९०५	एकेश्वरबादी रूप ३७८
उपास्य राम ५१२ ५१८	ऊर्ध्व ९०४ ९०८	५१६
उपास्यराम अष्टसिद्धि ५१४	शु ७	एकेश्वरविष्णु १५९
उपास्य रूप ११० २८०	शुभ ६७५	एकेश्वर ३९५
२१६ २४९ ३६७ ३७५	शुभैदिक साहित्य ७२९	एकेश्वर ८६०
३७६ ४२४ ५ १ ५०२	शुभू संहिता १२७ ३७५	पद्मिमास ७४८ ७५५ ८०९
५०८ ५०९ ५१८ ५२६	३७५ ४२७ ४६८	पद्मिमा ६९७ ७४८ ७५५
५३६ ५७२ ५८१ ५९९	शुभाष्ट १६०	८ ९
उपास्य रूपों का भव	शुभाष्ट १६०	पद्मिमासेष्ट १०१ ६६२
कारबाह्य ६२४		

कवय	८२२	८२०	कका के सोऊह	३५९	ककिक के बीम और	
कदमपात्र		९०६	ककामक अभिष्यक्ति		बीडरूप	४४६
कदम मेघ		६३		९४०	ककिक पुराण	१५४ ३०३
कदमा १८ ३१ ४५ ४६			ककामक मूर्ति	५०३	३ ४ ३०५ ४४० ४४९	
४० ५३ ५६ ५० ५८			ककामक ककिक ३४०	३५३	ककिक-युग	६८९ ६९०
५९ ६१ ६३ ६३ ६८			ककामकटि	९४०	ककिकराज	४४६ ४४७
	७३ ४४१		ककामुमूर्ति	८४३	ककिकराज तोरामन	४४०
कदमा-किरण		७५	कका कृत्य	९६५	ककिकरूप १४० १५२ १५६	
कदमामय		२१९	कका (मिति)	९६५	ककय	५१ ३१३
कदमामयी		७९	ककामिष्यक्ति ८४२	८४०	ककय-ककय	१२२
कदमा शुभ्यता		६६		८००	ककयकोबा	९६५
करोड़ी भवतार		१८५	ककायुक्त	१८०	ककयतक	१९३
करोड़ी भाकार		९०३	कका रूप	३५३	ककयना ६३२ ६३८ ६५६	
करोड़ी मुख		४८	ककावतार	१०१ ३४४	७०९ ८०८ ८३३ ८३५	
कक		११६	३५० ३५३ ३६० ३६३		८४२ ८५९	
ककी		१५९	३६६ ३६७ ४५५ ४९		ककयना तरंग	७०९
			९६९ ९८३		ककयवतार	३२ ३१३
कका ८३३ ८३६ ८४९			ककयवताररूप	४४९	३४० ५०३	
			ककावती-क्रीतिकय	१६६	ककय	९०२
ककम प्रजापति के पुत्र		४८३	कका (वास्तु)	८९४	ककयानी मकिक	१२४
			ककिक ७२ १०९ ११५		ककिक १११ ९३३	
ककम		२४०	ककिकमस	८३५	ककिकरिवा	२२१
ककमज		३३४	ककिकय-वमन ९८३	१००१	ककिकमधूर भट्ट	१५१
ककममुद्रा		५९	ककिकयवमन मुत्प	९९७	ककिक मत्पेन्द्र	११२
ककककी		२१५	ककिकयवमन मूर्ति	९९७	ककिकराज बरनाण	८४०
कककिकी		१४७	ककिकयुग ११ १२ ३९		ककिकराज विशवाध	९ ८
कका १०१ २१० २५९			११० १३१ २१७ २१८		ककिकहुं	१४४
३०८ ३२० ३२३ ३४२			२१९ २२० २२१ ५४७		ककिकयास	३४४
३४३ ३४९ ३५४ ३५९			ककिकार्य	४४८	ककिकय ३९ ७८ ३६२	
३६१ ३६५ ३६६ ३६९			ककिकामूर्ति भरितय	४४८	४१९ ४३० ४४० ४६६	
४ ५ ५३५ ६२५ ६३७			ककिक ५१ १३० १४१		६०५ ६०६	
८५० ८७५ ८९२ ८९३			१४२ १४३ १४९ १५०		ककिकय ककिकि	५०८
			१५६ ३०३ ३०४ ३१५		ककिकरवा	९४३
			३६५ ४०४ ४ ६ ४३१		ककिकानी	८०९ ९२६
कका (उपास्यवादी)		८९५	४४० ४४३ ४४५ ४४६		ककिकी	९९८
ककाकार		८३३ ८३३	४४९ ४५१ ५४० ५४६		ककिक ६९६ ७५४ ८१०	
		८४५ ९२७ ९३३	ककिकयवतार	२६	८११ ८२३ ८५९ ८५३	
ककाकृति		८९० ९२५	ककिककी मूर्ति (पूजा)		८८४ ८८५ ८८६ ९००	
कका क कवतार		४८६			९०१ ९०९ ९१०	
कका क किय कका		८५१				

कांति ३५२ ५२८ ८१२	कार्य १६०	किमुपुत्र ३०९ ३११ ३१२
८३१ ८७५	कार्यगठ ३००	३०३ ३०६
कांतिचन्द्र पाण्डेय ९०२	काट ३१० ३१२ ३१३	किशोर २३८ ८०६ ८०९
कांत्ममूर्ति ५५०	३२० ३२६ ३५५	किशोर और किशोरी
काठक ३१३	काठहृष्य ३११	का रूप २६५
काव्यायन ३९ ४०	काठमान ३ ०	किशोर क रूप २५६
काद्विरीसम्बन्धाय २८६	काठभद्रवाम ४ ६४	किशोर प्रेम २५५
कावरा ९३९	काण्डिय ८६२	किशोर रूप २४६ २५२
काभूरदास ७१३ ४२१	काठरूप ३११	२५३
४२६	काठप्रवरूप ६५ ३१२	किशोरी २५८ ५१३ ८०६
कापाडिक १३३, १३४	काठ ही विष्णु ई ३११	८०९
काम ७२ ११४ १२५	काठावीर लीला ३८०	किशोरी उपासना २५६
३०५ ३६२	काठावीर लीला ३८०	कीच ४१२
कामकंदला २९४	काठावतार ३१२ ४६६	कीर्तन मूल्य ९६५ ९६७
कामदेव १३९ २९३ २९४	काठिरी ५२१	कीर्ति ३५२ ३५५ ३६१
२९५ २९६ २९७ ३०३	काठिदास ३४ ५१५ ७९४	कीर्तदास ५०१
३०९ ३१५ ३२० ९२७	५८१	कुंजगाविह गोस्वामी २२६
कामधर्म पुत्र २९६	काठिब २७२	कुंजराय ९६०
कामधेनु ३५५ ६८१	काठिचभाग ५३३	कुंजविहारी ५३८
कामना ३३७	काठी ११० १२१ ६१८	कुंजविहारी शृंगारान ५६६
कामनाओं का प्रति ६७१	७५३ ८२६	कुंजमुद्र ५१३
कामनामात्र ६७४	काशीरूप पावनी ११०	कुंजलिनी १२४
कामपुत्र ३६२	काश्मिरिक प्रतिमा ७४३	कुंजलिनी शक्ति ११९
काम-प्रतीक ९८४	काश्मिरिक शिल्प ८०८	१२८ ७५२
काममूढ २९५ २९६	काश्मिरिक महासुमति ९१२	कुंजु ८५ ८९ ९६
कामाशा १ ३	काम्य ८७५ ९२७ ९३७	कुंजर ४१६
कावचमुद्रय ५९	९३८	कुमनदास ५२६ ५३६
कावचत्र १२	काम्य क प्रयोजन ८१२	५८३ ५८४
कावचाक्षिण ६८	काव्यमीमांसा ६०४	कुचिपुत्री ७५४ ९५५
कावचार् ५९	काव्यमीमांसा ६०४	कुचिपुत्र ९५६
कावचिन्दु ५७	काव्यमन्त्र १००७	कुमाल ज्ञानक ०
कावचाभिषेकाधी ३३९	काव्यमिषयक्ति ८७८	कुम १२७
३३५	काव्यमन्त्रार मूत्र ८१२	कुमिन ७९६
कावचोद्गायी ३९९	काशिराज क पुत्र रूप में ४७५	कुमिन शिल्प ७९२
कावचमुद्र ४८	काशीप्रसाद ४४६	कुम्भक ८१४ ८१५ ८१६
कार्तवीर्य १०२ ३६२ ४३४	किशोरी-मात्र ५९१	८१७ ८२०
कार्तिकेय ९८ १०७	किशोर ७२ १५९ ६६२	कुमेर ९ १४ १६ ४९
कानिकष कुमारिल ५७७		३५८ ५१५ ६३३
मद्र ५७७		कुमेरस ८९

कुबेरबसु	४१३	४२	४२१	४२२	४२३	कृष्ण-गोब	५२१		
कुम्हडा	६०१	६१९	६२१	६५२	६६७	कृष्ण गोपाठ	५६५		
कुमार इ००	३५२	३६३	कूर्मासन	९५२	कृष्ण गोपी	२९७			
	५४०	हरिकर्षोठ बजमैंट	८१	कृष्ण चम्प्राबकी	२९७				
कुमार रूप	५०	कृति	८११	८३३	८३६	कृष्ण चैतन्य	५९८		
कुमार स्वामी	५५१		८७९	८७९	कृष्णदास	५०२			
कुम्भकर्ण	५१	कृति	८५१	९२८	कृष्णदास कबिराव	५८९			
कुरान	२३६	२३९	२४४	कृतिदास रामायण	९४४	कृष्ण देवकी के पुत्र	५२०		
	२५८	२६६	२६७	२७८	कृत्वामुद्गाव शान	४३	कृष्ण द्वैपायन	४५८	
	२७९	२८८	कृष्ण उ	१०	१५	१९	कृष्णनाथ	९५६	
कुब	३	९	३३	३४	८१	९१	९६	कृष्णपाद बीणापाद	७०
कुबकुल	९	९८	९९	१	७	११२	कृष्णपूर्णवतार	३७	
कुबकुल वारानामक	१३	१२६	१३३	१४१	१४३	कृष्ण बकमज	२२१		
कुबनरदेव	९५	१४४	१५४	१७१	१८८	कृष्ण बकराम	९७		
कुबुप	८२६	२११	२१७	२१९	२२०	कृष्णभक्ति	३७१		
कुबुपता	७९१	२२६	२२७	२६३	२६७	कृष्णभक्ति कावा	४९८		
कुडरदा	६५१	२८५	३८८	२९८	२९९	कृष्ण मुरारी	२२१		
कुडरोर	३६६	३११	३२२	३२३	३५१	कृष्ण-नाथा	२९७		
कुडरोर आरूपार	४९९	३५३	३६३	३६६	३६८	कृष्णकीका	५२६		
कुडरोर	२९४	३६९	३७९	३८	३८१	१५७	१६०		
कुडागमसास्त्र	१०७	३९६	३९८	४०१	४	३	१००		
कुडामुर्धसिक रिक्त	६९३	४१७	४२१	४३१	४३२	कृष्णकीका कृत	९६७		
कूर्म	१२	६६	७६	७७	४३४	४३७	४५८	४६२	
७८	१	०	१०१	१३७	४७७	४९३	४९५	४९५	
१४१	१४२	१४५	१५१	५११	५१९	५३१	५४९	कृष्णकीका तरंगिणी	९५४
१५३	१५४	२०९	२१५	५८४	५८८	५९४	६१४	कृष्ण बरदाह	४१३
३०९	३१०	३३२	३३६	६१६	६५८	७४१	७७९	कृष्ण बामुदेव	५२२
३४०	३४१	४५७	४१८	७८३	७९५	८७७	८८५	कृष्णबसन्ति	६१६
४३१	४९४	४९५	५३०	९१६	९३४	९५६	९६१	कृष्ण शंकर	७२७
५००	६६३	६७८	९१३			९७७		कृष्णार्च	४३, ६६
	९१७	कृष्ण आंगिरस	५२०	५२१	कृष्णादि	३७०	कृष्णावत सम्महाय	५८९	
कूर्मदीवा	७६	कृष्ण और अज्ञान	५२१	कृष्णावतार	३१२	६११	९३८	९६०	९९९
कूर्मनारायण	७७	कृष्ण और दनिमयी	३६३	कृष्णावतार की अति-					
कूर्मपुराण	११५	कृष्ण उपराय	५२८	त्यथा	२१२				
कूर्मबीह	७६	कृष्ण (अधि)	७	कृष्णासुर	५६०				
कूर्मरूप	४२०	कृष्णकर्मायुत	४००	कृष्णोपनिषद्	१६०				
कूर्मादि	२६६	कृष्ण कृत	१११	केनुमति	२६				
कूर्मावतार	१४५	कृष्ण के पूर्ण	३००						

केमुमाक	३०९	कौस्तुभ मणि	९८	कहूरादो	९९८
कमोपनिषद्	३४६	कमुम	२८६	कहू	५१
क० ओ० शंकर	४४६	ककुडम्ब	३० ३९	कण्डगिरि	९६५
क० एम० सुखी	४३३	कर्मिक विकास	८१०	कण्डरूप	३८४
केरु मङ्गा	९५५	कण्डूस्ट	२६०	कण	९५४
क० बी० पाठक	४४६	किया ३० ३५२ ३६५		कलनायक	८२८
केवल ज्ञान	८०	क्रियाजान उभययुक्त	३३२	कारिणी	२०९
कवक वर्णन	८०	क्रिया युक्त	३३९	कुरा २२६ २५३ २०२	
केवल मङ्ग	८८५	क्रियाशक्ति	३६४ ६३६	८०५ ८०६	
कव्य पुस्तिक सुक्त	२२	श्रीका	३००	कुरमिर्वा	२८०
कवच ८३ ९१ १८ ३६१		श्रीबावृत्ति	२०१ ७८२	कुवाक	२५३
५१४ ५१९ ५२२		८११ ८६० ८६८		कुमटा-मृत्य	९६०
कवचदास १६२ ४१८		श्लोके ७९६ ८११ ८५३		कुजासम्प्रदाय	२८९
४२१ ४२६ ४३६ ५१५		८५४		कुबी बी	५६६
६२२ ९८४		श्लोक ११४ ९६२		क्यातिपंचक	८८१
कुंसावरण	२८	श्लोमैगमन	६५८	कपालमृत्य	९६४
कुंसात्रेणिसिम	६१	कवच	९४३	ग	
कुंशिया	२८०	कक्रिय अक्षतार	३५०	गंगा ११४ १८९ ४३१	
कुंमाम करमु	१६३	कक्रिय उपास्य माव	३५८	६१५	
कुंकाचार्य	३२८	कक्रिय देवता	३५८	गंगा की बालुकाराशि ५०	
कुंकिन्	९६५	कक्रियाक्रम	३२	गंगावतरण ४८८ ९४१	
कुंजगमन हृद्य	२४	कक्रियों का मंहार	४३४	९९९	
कुंजा गमन	३०	कक्रिमोहन	१०२	गंज ५० १५९	
कुंजलपाद्	१३४	कीरे	४०८	गंजर्ष ३३ ४९ ७२	
कुंशिय	५२३	कीरगापी नारायण	५३१	१०१ ३४० ८०९ ९३६	
कुंमार	३८	कीरगापीरूप	५१५	गंजर्ष का अक्षतार २९२	
कुंमोदकी	९८	कीर सागर १६५ ६५३		गज १९३	
कुंरूप्य ११५ ७९१		कीरसागरबागी ४८०		गणिका १९३	
७९३ ८२९ ९०१		कीराशिपायी ३२० ३३९		गजमाद ५१९	
कुंरुणाम १३३ २१९		कीरोदसायी ३२२		गजमोचन ४६१	
कुंरुणाम निर्णय १०४		कुंरुकी (कम्पा)	७	गजराज ३४	
१०५ १०८ ११० १२३		केमक ४४०		गजामुर ९३८	
१३१ १३४ २१९		केमगुमाई ६ ६		गजेन्द्र हरि ४०६ ४६१	
कुंरुमत १०४		केमेन्द्र १५० ४१० ४२०		४९५	
कुंरुमप्रहिय ११९		४२५ ४२९ ४३५ ४४३		गजाडी २८३	
कुंरुगम शास्त्र ११०		४५९ ८१६		गदवाल १ ९	
कुंशिक ११५ ६०५		र		गगपनि २९४	
कुंशीतकी ब्राह्मण ५३०		रमोहा ७२		गणिका ३०१ ६१५	

गणित्रीय	१०९	३५४ ३६१ ३६३ ४२२	४११ ४१८ ४३६ ४४४
गणेश ५३	५४० ४९५	४३५ ४३६ ४९१ ५०४	४४९
	८२६ ९६५	५२३ ५३३ ९११ ९४५	गुरु प्रणव साहब १५०
गणेशनाम	९४४		९६७ ९६९
गतिशील विम्ब	६९८	गीता कृष्ण	५२४
गदाधर कवि	६१५	गीताभाष्य	३४५ ५१२
गदाधर मङ्ग	५१६	गीतारहस्य	७१८
गम्भीरता	८३१ ८७५	गीताबन्धि	९४५
गण	३५०	गुडीधर	११३
गणकान्त	९४५ ९६५	गुजरात	९६५
गणक	५१५ ६०६	गुल	३६९ ३७० ८१२
गणक की मूर्ति	१३९	गुलमयी-बोगामाया	१६५
गणकप्रज्ञ	९८	गुणातीत	५१० ५३८
गणक वाहन	१२	गुणात्मक ज्ञान	९११
गर्ग संहिता	१६६ ३६० ३६६	गुणावतार	१५ ११९ ३०६
		३२३ ३२४ ३२६ ३२७	
गर्भनीक	४४८	३२८ ३३५ ३३९ ४८४	
गर्भोद्घापी	३२२ ३२७ ३३५ ३३९	गुप्त	३९
		गुप्तकाल	१४२ ९८
गणविद्या	११२	गुप्तराशि	३९८
गौरी	७८५	गुप्त ५५ ६६ १३ २२९	
गौरी	७७	२८८ ५६० ५८१ ५९९	
गणपत्य	३		७७५
गणपतस्तोत्र	५१६	गुप्त बंगाल	२३१
गणपति	६८१	गुप्त भद्रदास	६१२
गणपतीदास	६ ३	गुप्त अमरदास	२०२ २ ५
गणपतीर्ष	८३१ ८७५		२२९ २३१
गणपती	१२२	गुप्त अर्जुन	१२९ १७३
गणेश	११५	१७५ १८५ १८७ १९०	
गणेशभाष्य	९१३	१९१ २० २०२ २ ३	
गिरि गणेशधर	९९९	२२६ २२७ २२८	
गिरिधर	५०२ ५८५	गुप्त इष्टदेव	१२९
गीत 'गोविन्द'	१४३ ३८६	गुप्तों के अवतारी	
३८७ ५६७ ९६३ ९८४		करण	७३०
गीता ६ ७ ११ २२ १२०		गुप्त को बगदाव	१०
१२८ १७० १७१ १९९		गुप्त को वे निर्गुन ब्रह्म	१३२
२०२ २ ७ २०८ २१७			
२१८ २३८ २३९ २३३		गुप्त गोविन्द सिंह	१९१
३१५ ३१६ ३२२ ३३४		२१० २११ २२१ २३१	
			गुप्त कुल १६५ ३ ८ ४३४
			५२५ ५६५
			गुप्त कुल कृष्ण ५२४
			गुप्त कृष्ण ५०४ ५८४
			५९३
			गा गोपिर्षो १६६
			गाप ५८६
			गापबंध में विष्णु ३८६
			गोपाकक पुग ६८६

गोपाल कृष्ण	५२५	गोबोक	३०९ ३०९	घनीकरण	८८३
गोपाल तापनीय उप निपटू	५२६	गोबल्लनाथ श्री	३०८	घ	
गोपाल पूर्ण तापनीय	५२६	गोबर्धनाथ श्री की		घडियर कसु	९५६
गोपाल मद्र	५२६	ग्राहकव धार्ता	१४५	घड	५१
गोपाल बार्जैय	५२७		५०७ ६ ८	घडवर	२०९ ९३९
गोपिका के रूप	१६५	गोविन्द ८३	२२८ ४३	घडवर विष्णु	१८९
गोपियाँ	२९९	५१५ ५२४ ५२५ ५६६		घडपाणि	१२ ५१
गोपियों का अवतार	१६६	गोविन्द मृत्यु	९६०	घडवर्ती	४९ ३६२
गोपी १६६ ३०८ ९३१		गोविन्द परमेश्वर	२२१	घडवर्ती-भूपाठ	३१५
गोपी कृष्ण	३८७ ५५५	गोविन्द स्वामी	३०१	घड सुवर्तन	५००
गोपी स्थाक	१४९	गोविन्दानन्द	४५३	घडमुघ	९५
गोपीजन लक्ष्मकृष्ण	४०९	गोसुखी	५२३	घडबीदास	१५१ १५२
गोपीनाथ	५३६	गोरदंग	०२		५२७ ९४४
गोपीनाथ कबिराम	२८	गोक्षीय वैष्णव	३६४	घतरंग	९४३
	५५५	गोक्षीय वैष्णव सम्प्रदाय	३३०	घटाकुमार	३४० ४९०
गोपी भाव	५९१ ५९४	गोक्षीयवैष्णव साहित्य	३०	घटामनकादि	३६५
गोपी मय	६१७	गौग	३६१	घटुयं चक्रवर्ती	१०२
गोपुच्छ	७२	गौण विभव	३६२	घटुमुंन	१९
गोपुडा	६८४	गौतम	९१७	घटुमुंन भबलोक्षितेश्वर	४९
गोबरधन-पूजा	६८४	गौतम ऋषि	१३२	घटुमुंन कृष्ण	३००
गोरध	१०९	गौतमक	६८७	घटुमुंनदास	२९४ ५८३
गोरधनाथ	१०९ १११	गौतम-पुत्र	४४०	घटुमुंन रूप	४६०
	११९ १४	गौतम बुद्ध पञ्चासके	४३८	घटुमुंन विष्णु	५३९
गोरधपा	१०९	गौरीशंकर हीराचन्द		घटुमुंन रयाम	४८८
गोरध महत्प्रनाम	१३०	ओहा	४ ५	घटुमुंन	१५
गोरध सिद्धान्त संग्रह		ग्यक्षिस आठक	७	घटुमुंन	३३९
१११ ११३ ११७ १२		ग्रामीणनाथ	९४४	घटुमुंन-इरिक	४४६
१२१ १२२ १२८ १३५		ग्राहक ८११ ८३६ ८३९		घटुमुंनि	३०५ ४९१
गो रक्षा	६५१	८०९ ९२२		घटुमुंनी कौल रूप	१२३
गोरधनाथ	१ ३ १०४	ग्रीक ओकमास	७२९	घटुमुंन-पञ्च-प्राप्ति	८१४
१०८ १ ९ ११० ११९		ग्रीक पुराणिया	७२९ ७२०	घटुमुंन २९४ ३०५	३०६
१३ १३१ १३५ १३०		ग्राह	१६६		५०३ ५८८
१३८ ११० २६३ ६२३		ग्राह्येय रूप	१६५	घटुमुंन भवना	९०७
गोरधपुर	१११	ग्याक्तिन शारो	५३६ ५३७	घटुमुंन-गमक	५३७
गोरधपञ्ची	१११	रवाडियर	९५५	घटुमुंन-गमक भावि	
गोरधपञ्ची	१०३ १११	घ		माँव	५०८
११९ १३३ १३४ १४४		घटमातक	५२३	घटुमुंन-गार्ह	१५३
गोष्ठ-कवचम्	९५४	घनातक	६१३	घटुमुंन-गामी	१६३

चन्द्र १ ३३५ ३५४ ३६२	८४६ ८९ ९२९ ९३३	चौबह मन्वन्तरी ३१४
४४२ ४९३ ५१९	९३६ ९२७ ९३०	चौबह रत्न ४९२ ६६९
चन्द्रकटा ५१३ ५१४	चित्रकटा ८७९ ९१९	चौपाये-मत्स्य ७२६
चन्द्रदीप कामाख्या १२३	९७० ९७१ ९७४ ९७५	चौबीस ३१३
चन्द्र-मृत्यु ९६५	९८१ ९८२	चौबीस अतिशय ८० ९४
चन्द्रप्रभ ९५	चित्राङ्गापा ८१० ८१८	चौबीस अवतार ११
चन्द्रप्रभ वैजयन्त ८६	चित्ररथ ३५५	२५ १३३ ३१३ ३४१
चन्द्रप्रभा ८५	चित्ररुक्मण ९७४	३६० ३७९ ४०५ ४ ६
चन्द्रमा १२३ १९३ २९२	चित्रबीबी ९८०	४०७ ४३१ ४४३ ४४५
३१८ ३९३ ३२४ ३५४	चित्रसाका ९८०	४५३ ४५५ ४५७ ४५८
४५४ ५०५ ५१५ ६१३	चित्रसाक्षिका ९८०	४५९ ४६५ ४६७ ४६९
चन्द्र-सूर्य नेत्र १२७	चित्रसूय ९७५ ९४८	४७१ ४७८ ४८४ ४८७
चन्द्रावती ५१४	चित्रावली २७० २९२	४९० ४९२ ४९३ ४९५
चमत्कार ६४५ ८१२	३	७३ ९१४ ९७५ ९९५
चमस १११ ११२	चिन्तय ६३९ ६५६ ८ ८	चौबीस अवतार परम्परा ४३७
चम्पूकाम्ब ५७३	८३६	चौबीस कापाक्षिकी १३३
चरमसत्ता ७००	चिन्तामणि ९६५	चौबीस तीर्थकर २५
चरम सौम्य ८८६	चिन्तमञ्जी ६०३	चौबीस प्रकार ३८१
चरित काम्य ३४	चिरली मन्महाय ९८६	चौबीस बुद्ध ११ २४
चरित विद्याम ८०६	चीन ४४३ ९२३	२३ ४३२
चरिताचार ९४	चीरहरण १००	चौबीस स्वीकावतार ३०३
चरित्र १४० ४३२ ६०१	चेतन काम-प्रवाह ७१२	३१६ ४९८ ४९१
चर्पटबाय ११२	चेतना ६३८	चौबीस छीछाबपु ४०६
चर्चापद् १३ १५ १६ १७	चेतना-प्रपाठ ६९६	चौबीस वपु ३७४
४३ ४५ ५५ ६१ ६६ ६८	चेतन्य ३८७ ४० ४ ५	चौरंगीनाम १ ४ १३१
चक्रचित्र ९९६	५८६ ५८८ ५९ ५९१	चौरासी गुण ३२
चाण्डपमानु ४६६	५९२	चौरासी काव्य धोजि २११
चानुय ६५६ ६५८	चेतन्य चरितामृत ३९४	६७८
चार आधिर्माय ३११	३९५ ४ १ ४ २ ५८९	चौरासी वैष्णवम की
चारकुमार ४८९	५९१	वार्ता ३६६ ४१० ५८४
चार-गुण २३१	चेतन्यमत ९८५	६१० ६१६
चारमनु ४६६	चेतन्य मन्महाय ३१३	चौरासी सिद्ध १७ १०४
चारमूर्ति २१७ ३१६	३५३ ३६६ ३७९ ३९२	१६१
चार विप्र ३१	३९४ ३९५ ५२६ ५२७	छ
चार मन्महायों क	५३३ ५८८	छा अवतारों १४१
आचार्यों का प्राकृत्य ३०४	चेतन्यावतार के मुख्य ५८३ ५९०	छः गुण ४४
चारुर्ष्य चरित्र ६७८	चीतारण ९४३	छ पारमिताप ४३२
चारुस्य वृद्धावृत् ६०८	चौबह अवतारों ३१४	छ बुद्ध ४३८
चित्र २३४ ८१४ ८१७		

सुप्यम भोग	५६८	सतनात्रिक वाद्यो	९३०	जात	२४३
सा मग	१७ ३५३	सनभुक्तिपरक	६३०	जातक	४०
सा राग	९३४ ९३५	जनादन	८३	जाति रक्षा	३५१
झडे अक्षतार	४८२	अनु-प्रतीक	७२४ ७२६	जाति रूप	८००
सुदे प्याली सुख	९०	अनुवच प्रतीक	७२८	जाति रूप्यात्मक	
सुप्रसाक गहिरबार		अनुवच प्रतीक	७२५	रमणीय विग्ध	८०१
सांख्युक	१९३	अनुम और आरम		जातीय धीरों	७३०
अक्षीमवें सुख	२३	अनुमना	९४९	जातीय मौख्य	८८५
साम्बोग्य	३१८ ३५१	अनुमस्तीका	३७९	धानकी	५१३ ९४५
३५३ ४३३ ४९१ ४९३		अनुपपन्न	३५५	जामकीबहुराम	५५६
५२३ ६८०		अनुमाक	२४७	जापाक	४४३
साम्बोग्योपनिषद्	२१०	अनुपूरीय	८ ४३ ३२	जामरूपेवराम	४३३
३२४ ४२९ ४९१ ५२०			३०८	जायबबान	१५९
५९१		अनुमम	१३	जाबमान	३१७
दामा ७२५ ७४८ ८३३		अनुवत विमान	८६	जायबबाक	४४६
विषमस्ता ११० १२१		अनुपपन्न सुरासिख	१६३	जायमी २४८ २४९ २५२	२५२
द्विभमेक्य	९५४	अनुपनिहक	६८०	२६१ २६२ २७१ २७३	२७३
दीतरवामी ५६० ५८३		अनुपदेव १४२ १४३ १४८	१४८	२७९ ३९१ ३९८ ३९३	३९३
न		१५३ १८९ १९५ ३००		३ ५	
अनुव मादिनी ९६३		३१७ ३२० ३२५ ३२९		जार्ज मोग्यापन	८१०
अनुव मोदिनी साधा-		४३५ ५०८ ५१७ ९४०		जालनामक	७१
रावरी ९६०			९५५	जाकपरनाथ	१३५
अनुवीम हास ९०३		अनुपिअप क लवगार	४१७	बिकड़ा	९४४
अनुप्राय १० २० ५५		अनुपपन्न संदिता ३२१		बिनेन्द्रदेव	९१
६६ ७१ ७३ ७२		अनुपुत्र ६५९		बिनेन्द्रमगपान	८७
१४५ १४६ १५६ १९५		अनुपुत्र ९३३		बिमाइम २६८ २८३	२८३
२३३ ४४१ ४४५ ५३		अनुपुत्र ९१ ९२		बिमा	९६५
५३१ ५३२ ५३८ ८९०		अनुपुत्र २४३		बिभूतवाहन	९ ६
९८२ १००		अनुपुत्र और गिद ५ ८		बीली २६९ २८३	२८३
अनुप्राय जादी ५१५		अनुपुत्र राजक क रूप १०८		बीय	५५६
अनुप्राय हास ९४५		अनुपुत्र ३१० ३३३		बीब अंत	३३३
अनुप्राय नाम १४५		अनुपुत्र ४०९		बीबकाय	६४९
अनुप्राय पुरी ३०८		अनुपुत्र ४५९		बीबगनुक महदय	८८२
अनुप्राय प्रभु ६०३		अनुपुत्र २३३		बीबगत प्रतीक	७४१
अनुप्राय विप्रद १०		अनुपुत्र २३३		बीबविज्ञान	१६९
अनुपुत्र ७१३ ७९३		अनुपुत्र २३३		बीबाभा १३८ ३२३	३२३
अनुपुत्र बुरुप ७९३		अनुपुत्र २३३		बीबिन प्रतीक	७१९
अनुपुत्र ११६		अनुपुत्र २३३		बीबिन	७९९
अनुपुत्र १९०		अनुपुत्र २३३		बीबिन	७९९

बे० सी शोयरप	१२२	शानारमक बोध	८५२	तंत्र महाजंब	१३५
बैन ड ड २५ ५१	११२	शाबावतार	२२२	तंत्रपापी चौख	५२०
बैकुण्ठ	२०३	शानाभव	८७	तत्रदाख	१२२
बैकोबी	७९०	शानाभवी	२९०	तद्युक्तप	११६
बैगीरम्य	११६	शानाभवी शाखा	१ ८	तत्त्वत्रय १९८ २७२ ३६०	४२० ५५५
बैन तीर्थकर	३३ ३५	शानाभेष	३६६	तत्त्वदीप नियम	३३
४१ ९० ७३८ ७९५		शानी	१०८	३६७ ३७९	
बैनमम	८५ ५०६	शैयावरण	२८	तत्त्वदीप निबन्ध	
बैनपरम्परा	८१	श्यामितिक	८३५	भागवत प्रकरण	३३०
बैनपुराण	८५ ६६ १०२	श्योति	२७१ २९२	तत्त्वसंग्रह	७६
बैनपुराणकार	९९	श्योति अंग	१ ७	तथता	१०
बैनमग	९३	श्योति अक्षतार	२००	तथागत १० १२ १५	
बैनमुनि	९९	२७१ २९१ ३ ५	३८९	१९ २३ ३६ ४२ ५५	
बैनरूप	७७१	श्योति अक्षतार	३९	५७ ६० ६९	
बैनसैफी	९९२	परम्परा	२७३	तथागतगर्म	७१
बैनसाहित्य	८३ ८५	श्योति का अक्षतार	२३२	तथागत गुणक	१२ १९
९० ९१ ९५ ९९		श्योति-श्योतिर्मय	२००	७७	
१० १११ ३००		श्योति-परम्परा	१०३	तथागत सुत्र ८ १२ १६	
बैमिनि साङ्गम	३१९	श्योतिरूप	१९२ २६९	१० ३० ३९ ४ ७१	
बैमिनीय साङ्गम	५२४	श्योतिप	१९२	तथागत महाकदवात्मक	४४
बैमिक चरि क्रम	६६१	श्याङ्गेन्द्र	११२	तथागत भावक	२१
बौसेक	२०३	ट		तथागत स्वरूप	४६
ज्ञान १८ २० ७३		टही मन्महाप	५९७	तद्भवत् रमणीय विम्व	
६७ १३९ ३५२ ३६५		ट		७९९ ८०	
३० ३०२		डाकार्जय	६३	तदेकाम	३६० ५२९
ज्ञान (अन्तरात्म)	४३९	डाकार्जय तंत्र	६९ ७१	तन्त्रीह	२७१
ज्ञानकार्य	३६७	दिण्डीराम	२६५	तमासुख	२८०
ज्ञानविरुक्त	२२५	देवाह	८६	तमुक्तोप	६६१
ज्ञानदोषक	२२१	देनियम	७२६	तन्नामिध	९७२
ज्ञानमुद्रा	६९	देमैटर	७२७	तपश्चरणाचार	९४
ज्ञानपुण्ड	३३२	दोन्चिन	७२६	तमिळुरामायण	७९९
ज्ञान विधातीत	८३९	दुइहन	८६२	तमिळ साहित्य	५५४
ज्ञानघण्टि	३६४	ण		तमोगुण	३३९
ज्ञान परमपावतार	४५५	णयकुमार चरित	१ १	तरामे	९४३
ज्ञानविधि ९ १० ७३		स		तर्कशक्ति	६३९
५५ ६० ६५ ७३		तंशोर	९७४	तसबीह	२७१
ज्ञान (स्वर्णप्रकाश)	८३९	तंत्र	३०	तसगुण	२३६
ज्ञानाचार	९४				
ज्ञानामृतसार	५२०				

तहाषा	७५१	तीम रामों का	१४३	तोण्डिहियोति	५४७
ताण्डव	९५३	तीम रीति (गौड़ी, पांचाकी, बैदमी)	८१२	त्याग	३५९
ताण्डव क सात-अकार	९४८	तीम वेद	१९९	त्रयद्विष्टक	६८७
ताण्डवगुण	९३८	तीर-अनुप-सुग	३८१	त्रिकद	९४३
ताण्डव मुद्रा	९९९	तीर्थकर	८७ ८९ ८८ ९१ ९४ ९५	त्रिकाय	५३
ताहात्म्य १९३ ७४१	७४२	तीर्थ	३०७	त्रिकार्य	६९
ताहात्म्य ताहात्मी		तुरियावस्था	५७	त्रिगुण	३२४
करण	८७८	तुलसी ३८१ ५१९ ६००		त्रिगुणात्मक रूप	३०५
तादात्म्यीकरण	८४२	३०१ ३१२ ३१४ ९४०		त्रिगुणात्मक सम्बन्ध	३२५
तामसेव	१५२ ५७६	तुलसी प्रम्बावली	१५४	त्रिगुणात्मक सृष्टि	३२८
तामिषक	७५१	तुलसीदास	६१ १५४	त्रिगुणी भावा	१८८
तामसी	६१०	१९४ ३१० ३१७ ३२०		त्रिजगत्ताम	७३
तामिक भास्वारी	५९९	३५५ ३७१ ४११ ४१२		त्रिताळ	९४३
ताटक	९३ ९८ ९९	४९१ ४९६ ४९१ ४९६		त्रिवेद्य ७३ ११० ३२४ ३२५	
तारकादुर	१६२	४४४ ५०१ ५०९ ५०३		त्रिपुर सुंदरी	१२०
तारा	४९ ७२ १२० ३९३ ४४०	५ ९ ५५३ ५६० ६०४		त्रिपुष्ट ९७ ९८ ११२	
ताराज्ञव	१३	६१५ ६१६ ६१९ ७४१		त्रिपुष्ट बासुदेव	७६
तारु	८७१	७४५ ८०१ ८४१ ९४०		त्रिमूर्ति गुफा	९९९
तिनिष्ठा	३५९	गुलसी शाय्या	१६६	त्रिरत्न	३९ ७३
तिरवण	६ १०४ ४४३	तुपित लोच २४ ३१ ३२ ३३ ३४		त्रिकोणव	१९३ १९६
तिरवती	७२०	तुपित स्वर्ग	५१ ४२८	त्रिविक्रम	५०६
तिरवनी घोड	४९	तेज १८ ३५९ ३७४ ४३९ ४७३ ८३१ ८७५		त्रिविक्रम ४२७ ४२९ ७२९	
तिरवनी घोड चर्म	५१	तदोरटिप्स	८३२	त्रिपिंड महापुरुष	६२४
तिरसठ महापुदय	८५ ९६	तेवावम्	९४४	त्रिपिंड दाकादा पुदय	८४
तिरवण	५०७	तेबिन्नमुक्त	२३	त्रिपिरिदार	८०८
तिरवर्गाई	४९९	तेसीम कोटि देवता	२२७	त्रिषा ११ ३९ ७२ १०९ ११० २१८ २१९ ५४७	
तिरवपुधर	९३८	तेजस	३४८	दु	
तिरवाचकम	९४४	तेसिरीय	४१९	दुष्ट ३२७ ३५९ ३६३	
तिलक	७१८	तेसिरीय आरण्यक	३२३ ३८२ ४७१	दुश्चिन्	९९४
तिलात्म्या	८४६	तेसिरीय ब्राह्मण	४१३	दुश्चिन् चरण	५६०
तिलात्म्या प्रक्षिप्या	८०९	तेसिरीय संदिता	४१३	दुश्चिन्ना मूर्ति	९४८
तिलावपणमि ९५ ८६ ८८ ८९ ९३ ९९ ११९		४२३ ४२४ ४२७ ४२८		दुश्चिन्नाय सादिप	३३३
तीम कव्य	४३०	तेसिरीयपोवनिपद्	१०१ २२० ३९६ ३९७	दुश्चिन्नी अर्था	५५४
तीम तार (परम्परा- गण, प्रायोगिक, बौद्धिक)	६९१			दुष्ट ९६ ९८ ११२ ३४० ३४०	
				दुष्ट स्वास्तादि	६४३
				दुष्टोप १०४ १३५ २१० २१२ २३७ ३५० ३५३	
				४०६ ४८३ ४८३ ४४४	

व्यावहार	४८३	व्यावहार निर्द्वय	१४९	व्यामत्य	१८४	१८५
व्यभिचार	११६	व्यावहार मृत्यु	९५५	व्यामत्य भाव	१८६	
व्यसन क्रिया	७८९		९६	९६४	व्यापक	११६
व्यमित इच्छा	६९४	व्यावहार परम्परा	४९		व्याक वक्ष	७४ ४४१
व्यमोह बीषिका	४४८	१४५ १४७ १५८	४०४		व्याक ब्रह्मगीता	७३
व्याप	३५५	व्यावहार मन्दिर	९९७		व्यासगुप्त	१८९ ४८६ ८८७
व्यरिपादास	९३४		१ ९४			८९०
व्यर्षण	९६३	व्यावहार मूर्तियों	३१०		व्यास्य	१८४
व्यर्शन	११५	व्यावहारकर्म	१४७ १५१		व्यास्यभाव	१८५
व्यर्शनराप	३९	व्यावहार स्तुति	४३६		विक्र सक्ति	६३२
व्यर्शनाचार	९४	व्यावहारों	१३६ १३६		विक्रि कुल	४१८
व्यर्शन	११६	१४१ १४३ ३ ८	४२		विक्रिमुत्त	५११
व्यर्शनाचारा ४९ ५१	२३१	व्यस अतिदाय	८७		विक्रिस्त	५४
	४४५	व्यस अवतार निर्द्वय	२१४		विक्रिकर	६ ५
व्याकल्प	९९	व्यसन	१४८		विक्रिकर पंडित	९४९
व्याकल्पिका	४५	व्यसमहाविद्या	१२०		विक्रि-स्वप्न	७०९ ८६८
व्यसम स्कन्ध	१६४ १६६	व्यसमुक्तों वाले	१३६			९४७
	३७९ ५०४	व्यसरय-कौशल्य	३२		विक्रियजन्म	२२
व्यसम स्कन्ध सुबो		व्यसरय जातक	७ ४४२		विक्रियकोक	५९
पित्री	१५४	व्यसरय सुत	१४६		विक्रियार्थ-काल	१२७
व्यसरय	३६६	व्यस कौशिक मनीषि	८१४		विक्रिचित	५१
व्यसरपीराम	१५६	व्यसों अवतार	४८३		विक्रियपालगुप्त	५३० ५५८
व्यसरूपक	९०६ ९६७	व्यस्तूर अक अवक	२८७			६०९
व्यसविष बीका	३७९	व्यस्य	२७३		विक्रियंकर	२४ ४४०
व्यसकोक	३३२ ३३३	व्यस्यराम	६ ३		विक्रियंकर सुद	२४
	३३४ ३७५	व्यसरा	९४३		विक्रियक स्वरूप	२६१
व्यावहार	२५ १००	व्यासू	१४७ १७५ १८५		विक्रियानुत्पन्न विक्रिय	३३०
१४२ १४४ १४५	१४९	१७९ २०० २०३	२२६		३६१ ३६२	
१५ १५३ १५४	१५६	२२७	२३१		विक्रियि	८३१ ८७५
२१४ २१५ २८९	३९२	व्यासू पण्य	७९		विक्रियि रसव	८१२
४०४ ४०७ ४३१	४३७	व्यासू वैष्णव	२१३		विक्रियि फीक अकबर	२४७
४४५ ४४७ ४५१	४५३	व्यास	४३८		विक्रियहरमवास	३ २
५४७ ५४९ ७३०	७४५	व्यासमाधुरी	५९०		विक्रियज्जमा	४५
८४३ ९४९ ९६३	९६७	व्यासव	३४७ ८०९		विक्रियार्ता	९८ ७९५ ८२६
	९९५	व्यासवराज	३५९		विक्रियार्णव	४४
व्यावहार अम	४४४	व्यासवरीका	५२६ ५३०		विक्रियार्णव कन्द	१५९ ३९३
व्यावहार अरि	१४९	व्यास	४४		विक्रियार्णव कन्द	१६१
	९८३	व्यासो	८५०		विक्रियार्णव	४८४ ६१३
व्यावहारधारी	९५४	व्यासोदर	५२४		विक्रियम मून	२७९

सुष्ट पत्रिका	३०३	९५०	देव शत्रुघ्नो का यय	१५८	द्विविध शास्त्र	५५१	
सूर निदान		२४	देव सुन्द	७८४	द्वन्द्व-संगठ	८६	
हरमकाम्य		८१३	देवीश	४२०	दृष्ट्याधिक नय	८७	
हरण मन्त्र		७५८	देवाचार्य	५३९	द्रुम	२७२	
दृष्टिगत ज्ञान		६३६	देवात्म	७४६	द्रुमिक	११२	
देव	१५९	८७२	९८५	देवात्म भाव सृति	७४८	द्रुमिक गोपीचन्द्रनाथ	
देवकी		३०२	देवात्म सृति	७४९		११२	
देवकी को सुरदेवी		१६४	देवात्म्य	११९	द्रोण बभ्रुनय	१३६	
देवगङ्गा		१४२	९९६	देवापी	४४०	द्रोपदी	१९२ ३८२
देवगणेश		१७१	देवावतरण	६५	द्रोपदी-श्री हरण	३०२	
देवता ३१ ३३ ५२		६०	देवावतार	३२	द्राक्षस	२०५ ७२९	
१३९ १७१ १७५		३१५	देवासुर संग्राम	९८७	द्राक्षस भर्षावतार	३०४	
३४० ३४३ ३४२		४४२	देवी	३८५	द्राक्षस अन्वहार	५५४	
४४३ ४५२ ४५३		४२५	देवीभागवत	३२२	९८४	द्राक्षस उपांग	५२३
५१५ ५८१ ६३२		८४६	देवीप्र	१४	द्राक्षस प्रेम पुष्टिर्षो	८९०	
९३१ ९३५		९३५	दशना	२०	द्राक्षसमहाच्छदि	८२९	
देवताओं		४२८	देह धीर देवी का मेह	३६९	द्राक्षसशिष्य	९१३	
देवताओं क कार्य		५४६	देहयुक्त राम	५१०	द्राक्षस ११ ३९	७२	
देवताओं क पात्रों के			देह शक्ति	६३२	१ ९ १११	९१८ २१९	
रूप		१६३	देह १३ ४२३	५१५		५४०	
देवतावाद		६ १४	देवी उत्पत्ति क		द्वारका	३०८	
देवाव कार्य		६४२	निदानगत	४६०	द्वारका कृष्ण	५२३	
देवदमन		५५५	देवीकरण	७०४ ७२७	द्वारकादास	५०१	
देवदानव		४९३ ७१५		७३० ९६१	द्विदण्ड	११९	
		८७५	देवीकृत	५१०	द्विमुञ्ज	६३८	
देवदामी अष्टम		९५३	देवी लीलों क उद्धार	५५८	द्विभावतमक प्रवेण	७०८	
		९५४	देवी शक्ति	३३९ ८५२	द्वैतमात्र	९८	
देवदमन आतक		७	देवी सृष्टि	५८२	ध		
देव धार्मिक		६२०	पोशाक	३१०	धनअथ मह	८२१ ८२०	
देव-पात्र		७९४	दा बनधर	३१०	धनाधी	९४३	
देव पुत्र		३२	दा कारिधर	३१०	धन्वा	१९७ २०१	
देव प्रतिमा		२१ ७४९	दा सी बावन बैष्णवों		धन्वन्तरि	३२० ३६३	
देव प्रतीक		७२३	की बाना	३२८ ५९९	४०३ ४०४ ४०५	७४१	
देव सम्प्रदा		२१		७४५	धन्वन्तरि देव	४४४	
देववाद		६ ४४५ ६९१	दोहा कोम १३ ७१	७५	धन्वा	९४३	
देवयज्ञ विनाय ३०६		७९९	दोहाबली	७३१	धन्वन्तरि	६	
देव रूप		३२४	दुक्तिपाद	१३४	धर्मनय		
देव शक्ति		६३३	प्रविष्ट देवता	११४	धर्मदाम	२२९	
देव शत्रु नय		४१०	द्विविधदण्डधर्म	५५४	धर्मनीधर	९०	
					धर्मनीराम	२३४	

४१० ४११ ४३२ ४३३	११३ ११० ११८ १११	नान्धर सिंह	१४८
४३५ ४८८	१२३ १२४ १३२ १३६	नामोपासना	१८३ १९१
ब्रह्मरिशास ब्राह्मण ४०६	१४४ ४४६ ४२३	१९४ २२३ २२५	४०३
४२१ ४२३ ४५ ४५६	भाष साहित्य १११ ११८	भाषक विष्णु	३०२
४६५	१२३ १३२ १३४ १३६	भारत ११२ १३२ १३४	१३४
१५२	१३० १८८ २१९	१८४ १९४ २२९	३००
भारतमहाय	भाष सिद्धी की वाणिजा	३०९ ३४० ३५९ ३५५	३५५
४४०	१०३ १३३ १४४	३६२ ३६३ ३६५ ४ ८	४ ८
भक्तिमत्तुमार गांगुली १६१		४५६ ४०९ ४९१ ४९२	४९२
भवधा भक्ति ६०४	भाषाष्टक १३२	५०२ ५४१ ५३६ ५८३	५८३
भवधर्मोन्मेषशाब्दिकी ६४४	भाषी के भक्तिप्रम १२४	६०४ ९३६ ९४१	९४१
भवनाथ १२२	भाष १२२ १२३ ५८४	भारतकल्प ४९१	४९१
भक्तपापाग्-पुत्रा ६३९	भा-दु भेदावतार २०६	भारत पर्वत ४९१	४९१
भवविद्यामवादी ६३८	भा-दु (जनाहन) ९३३	भारत पौषराज ३८६ ४९१	४९१
भक्तोन्नीकरण ०८९	भा-दु (आहन) ९३३	५२६	५२६
भयोत्पान-कथा ६८९	भा-दु धीर विष्णु १२५	भारत पुराण ९९५	९९५
भक्तोद्भव-कथा ६४९	भा-दु ज्ञान-दक्षि ६३६	भारत-भक्ति-सूत्र ६०१	६०१
भक्त्य भरण २८३	भा-दु परमरा १२३	भारत रूप ४९९	४९९
भाग ३३ ३२ ३४३	भा-दु मूर्ति ९३५	भारत संगीत ९३	९३
४२३ ६९८	भा-दु रूप ११३	भारत संहिता ९५	९५
भागदमन ५५८	भा-दु विष्णु उपनिषद् ९३२	भारायण ८ ९ १	९ १
भाग-दूष्य ९९०	भा-दु क २२३	१० १९ ३९ ३३ ३	३ ३
भारती प्रचारिणी सभा ३ ३	भानक ३२३	४९ ८० ९५ ९३ ११	११
भागार्थन १३५	भानात्मक प्रतीक ४३९	१४४ १५१ १५३ १६	१६
भाटक ५३३ ८३५	भाना बुद्ध ५६	१८८ १९० १९३ २	२
९०८	भामाजी १९८ ५०३ ६०२	२१८ २२९ ३०० ३०	३०
भाटकी ४०५	६०३	३०४ ३०९ ३१८ ३१	३१
भाष्य ९२६ ९३० ९५२	भामाहाय ३ ९ ३१०	३२१ ३२२ ३२९ ३३	३३
भाष्यकटा ८३९	३६९ ४०० ५१२ ५१३	३३२ ३३० ३४ ३	३
भाष्यरूपन ९०५ ९०६	५६८ ५३६ ५८८ ६०९	३६९ ३६५ ३७६ ४	४
भाष्यशास्त्र ८२० ९ -	६२०	४२१ ४२४ ४३४ ४	४
भाष ४ १३० १३०	भाभि ८८	४४२ ४४९ ४५९ ४	४
भाष (१६) १२२	भाभ १८३ २०२	४४३ ४६० ४७६ ४	४
भाष गुरु १३२	भाभ और रूप २५३ ४५५	४४९ ४८० ४९४ ५	५
भाषपरम्य १३०	४०८ ९४२	५२२ ५१० ५३८ ५	५
भाषवधो गाहित्य १ ०	भाभवेव ११६ १८२ १८९	६ ४ ४४० ५	५
भाषवर्षा मिट्ट ४८८	१९१ १९२ १९६ २२३	भारायण भवतार	
भाषपरम्य १३०	२२६ २२७ २२८ ५६०	भारायण (गीत) ९	९
भाष परममगत १३५		२४४	२४४
भाष परमहाय १ ० १०१	भाभ प्रतीक ६९३	भारायण (भट) ९	९
	भामर्मयल ८६		

असा-अमोदा	१११	भारवा-मतीक	८०५	८३६	भटाराज	९४६	९९३
अर्म ५ १८ ५५ ५३ ८५		भारवा-विष्णु	७९०	७९२	भटाराजविष्णु		९४९
८१ ९५ ११० १३९		७९९ ८०५ ८०८ ८३६			भटाराजशिव	९३३	९४९
३९७ ३५२		८३८ ८३९ ८४६ ८६९					१००१
अर्म-अमृत ५१ ५७ ५८ ६७				९७४	भटवत्	७१	९५९ ३७३
४३९ ४४०		भारवा मूर्ति	८८६		३७८ ३८० ३८१ ९३७		९७३
अर्म-अमृतक	६८	भारवा-मूर्ति	९२४		९५३ ९६० ९७३		९७३
अर्म-अमृत	३६	भारवा-मतीक	७१८		भटवत् उपासक	९९८	
अर्म-अमृत-प्रवर्तक	६५	भारवा	३८०	३८१	भटवत् रूप	८८९	
अर्म-अमोदि	३३	भारवा-भाष	१४०		भक्त	३९ ५३८ ५४३	
अर्म-अमृत	७७ ७८ ७९	भारवा-लक्षित	९०५	९ ९	भक्त-प्रदीप		३०३
८० १०० १२०		भारवा-दास	९०५		भक्त-दास	१६५ १६६	
अर्म-अमृत-अमृतदाय	१४४	भारवा-दास	९०५	९०६	३०१ ३८० ४०१ ५३९		५३९
२०६ ४४५		भारवा	११७		५३३ ५३४ ५३५ ५६७		५६७
अर्म-अमृत	९२	भारवा-वती	१२०	१२१	५६३ ५८५ ६०९ ६१५		६१५
अर्म-अमृत	७७ २१९ २२०	भारवा	१३९				६१६
२३२		भारवा-अमृत	१०००		भारवा-अमृत		१६०
अर्म-अमृत	११ २८ ३८	भारवा	६७ ४३८		भारवा		३७२
४९ ५८ ५९ ६०		भारवा-योग	९२५		भारवा-अमृत		९९३
अर्म-अमृत	१० ७९ ७३	भारवा-अमृत-अमृत	३७		भारवा-अमृत		९६
अर्म-अमृत	१० १४२	भारवा-अमृत	७१ ७३ ६		भारवा-अमृत-नामक		७१५
अर्म-अमृत-अमृत	७९ ८		६३ ६४		भारवा		९६
१४५ १४६ १४७		अमृत	९९३		भारवा		२७३
अर्म-अमृत	३३ ५९	अमृत	१७४ १९० १९४		भारवा		२७३
अर्म-अमृत	२९ ५६ ५८ ६१	अमृत के अमृत	४७२		भारवा		२७३
अर्म-अमृत-साहित्य	१४५	अमृत-अमृत	२२ ३४४		भारवा		८५
अर्म-अमृत	७५ ६३	४०९ ४०३ ५३५ ५५५			भारवा-अमृत	५९९ ५७७	
अर्म-अमृत	११	अमृत-अमृत	४७५		भारवा-अमृत		६६०
अर्म-अमृत	७२ ७४	अमृत-अमृत	४०८ ४०९ ४०६		भारवा-अमृत	३९९ ४०६ ४०७ ४०८	
५८ ६ ९ ६०५ ६५१		अमृत-अमृत	८१०		भारवा-अमृत	१०४ २१४	
अर्म-अमृत	११९	अमृत-अमृत	८१३ ९०८		३०६ ३३५ ३४१ ४०८		४४७
अर्म-अमृत	७९	अमृत-अमृत			४१४ ४२२ ४५६ ४४७		४४७
अर्म-अमृत	३०६	अमृत-अमृत			४७८ ४७९ ९४		९४
अर्म-अमृत-अमृत	२२१ २३४	अमृत-अमृत			भारवा-अमृत		४७६
अर्म-अमृत	१९	अमृत-अमृत	९०३		भारवा-अमृत		९१५
अमृत	१८३	अमृत-अमृत	१५९		भारवा		५४७
अमृत	५१५ ८ ८	अमृत-अमृत-अमृत	२८६		भारवा-अमृत	६१२ ६१३	
८३३ ८३२ ८३३ ८८४		अमृत-अमृत	९०३		भारवा-अमृत	४९०	
		अमृत-अमृत	१४		भारवा-अमृत	४५३ ४५४	

मध्यकासीन साहित्य में व्यवहारवाद

नारायण ऋषि ४७६ ४९१	निरयकीका ३२ ४०१	निर्गुण मञ्ज १५६ ३८०
नारायण पूजा ७२९	५४७ ५५७ ५९२ ५९६	५०४ ७१६
नारायण वन ६	निरयविग्रह ५६७	८०५
नारायण सूर्य ९	निरय-सूत्रावध ५२६ ५३५	१८२
नारायणी २०९	निरयधेय्य ऋषीवतार ५२८	४२२
नारायणीबापाश्रम १४१	निरयामन्द ५८८ ५९	२२६
२१७ ३०३ ४१५ ४२४	निरयामन्द्वाराय ६१३	६०३ ६२४
४२९ ४३४ ४४६ ४६	निधि ५९	१५८
४७८ ४९८	निगुणता ५९३	८०५
१९	निमित्तकारण ८४८	५६
६३	निम्नादित्य ३७७	२९ ३०
५९३	निम्बाक ३०५ ३१२ ३१३	६७ ४३९ ४४
६	३२२ ३६९ ३७५ ३८०	२९ ३०
२९५	४०० ५२६ ५३८ ७४२	२३७
२४३	निम्बाक सम्प्रदाय १५५	५९
४३४	१५६ २०९ ३३७ ३८९	६ १० ५८
५८	४१० ५९२	निर्वाण-साधना ६८०
६०	निम्बाक साहित्य ३६३	निर्विकल्प ८९१
४०२	निरञ्जत ७० ७८ ७९	निर्वैयक्तिक साधारणी-कृष्ण भयभूति ८३
३९८ ४००	८ ८२ १२४ १३१	निवासमञ्ज १०५
२५१	२०१ ४२२ ४५१	नियुग्म ९६ ९८ ९९
५३३ ५४२	निरञ्जनद्वैत १४५ १४६	नियेषक पत्र ८२२
१६	निरञ्जननारायण ७६	नियेषात्मक ७८६ ८९२
११०	निरपेक्षमञ्ज ३७५	नियेषात्मक मूल्य ७९१
१२०	निराकार ६१ १२२ १२६	७९२
११९ १२०	६२५ २२७ ३३४ ८९०	नियेषात्मक स्वातु भूति ६९३
१३४ ५९०	निराकार अज्ञात २५०	नियुक्तामीकरण ११३ २२५
३८५ ३८८	निराकार पुरुष २०१	२३९
३८९ ५३	निराकार मञ्ज ५७१	नीककंठ २१२ २२५
५४७ ३८०	निराकारोपासना २२२ २४८	मुसेरी २३९
५५७	निराकार ८५०	मूर २५४ २०९ ८०५
३९९	निरासायाव ६९०	मूर मुहम्मद २९३ ३००
५९७	निरुक्त ३५६	मूर मुहम्मदी २६८
१६४	निर्गुण ६१ ६४ ११०	मूर २६७ २९०
३९२	१०९ २२५ ५३१ ५५६	मुण ९५६
५९६	७४७ ९८२	मुरा २३ ७२५ ९३६
२११ ५२७ ५५८	निर्गुण-निराकार ९५ १८	९३७ ९४६ ९५२
	२४० ५०५ ८०३ ८०४	९६५

मृग्य (कनौड़न)	१६०	नेति-नेति पुष्क	५३३	पञ्चमहात्मा	४४९
मृग्यकटा	१६१	नेतृत्व	६५०	पञ्चमवह	८७९
मृग्य (डीर्शन)	१६७	नेपाल १०४ १०७	४४२	पञ्चसिद्धपाद्	१३४
मृग्य (गोविन्द)	१६७		४४३	पञ्चसूक्त ४१	४३
मृग्यतार	१७९	नेपाल मन्त्रपुर	१०६	पञ्चशी रूप	४२
मृग्य (दही टाही)	१६३	नेपाल सुबनभारा	१०६	पञ्चाचार	९४
मृग्य (महालक्ष्मी)	१६७	नेमि	१० ८५	पञ्चामन्द	१२५
मृग्य (माया सबतो)	१६७	नेमिनाथ	९२	पञ्चामिष्यक्ति	५५४
मृग्यमूर्ति	१४८	नेहन्	४८५	पंथ	८५०
मृग्यरास	१५९ १६०	नेतिक अह	७७३ ७७५	पतर्तत्र	५२६
मृग्यलीला	१४८	७७६ ७८७ ७८८	८३१	पंथ (१९)	१२२ २०६
मृग्य (बकासुर अथ)	१६०	नेतिक शिखर	६९२	पञ्चनक्षरिद	८१ ८२
मृग्यभाष्य	१४६	नेतिक संघर्ष	६९२		८३ १०१
मृ-वराह ४१६ ४१७ ९९६		नेमितिक	३८४ ३८६	पञ्चीस अक्षतार	३४०
मृसिंह १९ १०० १३३			३८९ ३९१	पञ्चीस पौराजिक	३१३
१४१ १४२ १४७ १५३		नेमितिक अक्षतार	५३०	पञ्चीसर्षे बुद्ध	२३
१५४ १५६ २२३ २२४		नेयाधिक	३७७	पञ्जा	९६५
३०९ ३१० ३३२ ३४१		नेोह	२७३	पञ्चमुद्रा	९५६
३६६ ३६८ ३६९ ३७०		नेो अक्षतारो	१४२	पञ्चितराम अग्राहाय	८०३
४०६ ४०७ ४२० ४२२		नेोनाथ १०३ १०४ ११०	११०		८९३
४२४ ४२५ ४२१ ५०८		१११ ११३ ११४ ११८	११८	पञ्चरपुर	१८९ ५६७
५११ ५३३ ६३१ ६५३		१३० १३५ २३४	२३४	पद्	९२०
६६२ ७२८ ९१६ ९१७		नेो नारायण १११ ११२	११२	पर्तत्रलि	५२२ ७७०
९५२ १००		नेो प्रति बामुदेव	९६	पर्तत्रलिमहाभाष्य	९४२
मृसिंहकथा ४२३ ४२५		नेो बरुदेव	८५ ९५	पञ्चीहोवा	२९०
मृसिंह तावनीय-उप		नेो मूर्ति	३७४	पद्य	५१ ९५
मिपद्	४२२	नेो बामुदेव	९६	पद्य क अक्षतार	५७९
मृसिंह मूर्ति	७११	नेो विष्णुनारायण	११९	पद्यगिरी	७३
मृसिंह पुग	६७२	नेो बें बादरायण	४५४	पद्यनाथ	९५
मृसिंह रूप १९२ ५६७		म्याघ	१२२	पद्यपामि	४७ ४९
मृसिंह विष्णु ४२४ १०००		प			४४२ ९२१
मृसिंह सग्यशाय	४२४	पंगारवार	१२६	पद्यपुराण	१२१ ३४०
मृसिंह सरस्वती	४८३	पंचदेव	१२४	३५३ ३६० ३६५ ३७०	३७० ४५९
मृसिंहवाचनार १०१ २२३		पंचपात्रीबुद्ध	४१ ४३	पद्यपमा	८५
२१४ २२५ ४२२ ४२३			४४ ५८ ६०	पद्यपत्र	४३
४२६ ९९२ ७७३		पंचनारायण	५३९	पद्यामन्द महाकाय	९९
अप्र	७७७	पंचनिर्मिता	५८	पद्यावन	३०४
अना	१०	पंचनिर्मितापुद्	४२	पद्यावर्ती	२९८ ३००
अनि-नेति १८४ ५१४		पंचपुर	४३ ६३ ७३		३०३

पद्याम्बी	३८३	परमात्मा १८	१२४	३२३	पराक्रम और शौर्य का			
पर	१८०	३२१	३२८	३५३	८०४	८९४	आविर्भाव	९१७
	३९१	३९७	५५४			९६८	पराक्रमवाद	९४९
पर उपास्य	६२४	परमात्मा (धृति-शक्ति) ७०					परत्पर अदर्शवाद	९२२
परमज्ञ	७१	१३८	१९७	परमामन्द	१२५	६१६		९७२
३११	३२०	३३९	३७२	परमानन्ददास	५४१	६९	परा (नाद)	९३१
३७९	४०३	४२२	४३६	परमांक	३२		पराबन्ध	३४
४३९	४५३	४७९	४७९	परमांक रासो	१६२	१६३	पराबन्धापन	३०
५०५	५१३	५१४	५१८		३४७	६२०	परा (वाक्)	९३१
५३१	५३९	५३८	५७३	परमेश्वर का लक्ष	५२८		परा (विष्णु)	९३१
८०७	९११	९१४	९३०	परमेश्वर संहिता	५०		परा (कृत्ति)	९३
			९३९	परमेश्वरी	१५		परा (शिव)	९३१
परमज्ञ की अवतार				परम्पराधी	३२०		परिकर	१६२ १६९ ३ ७
स्वीका	९२८			परम्परागत कथा	९२२		परिकरों का अवतार	१६९
परमज्ञ मूर्ति	९९५				९२३		परिकल्पना	६३१ ७७९
परमज्ञान	३१२			पररूप	३१९ ४२९	५०५		७८१
परम	३२८			परवर्ती		९३३	परिकल्पनात्मक	
परमज्ञपास्य	५५५			परवानुदेव	३ ६		उपस्थापन	७४८
परमविश्रुत	९७६			पर विग्रह	४०३	५०४	परिभाषक	१
परमज्वाति	१ ७			परशुराम	१	१०२	परिपूर्णतम अवतार	३७१
परमतत्व	११७			१३३ १४१ १४२ १४९			परिपूर्ति	८०८
परमनाह	९३३			१५३ १५४ १५५ १११			परिमात धर्म	१६३
परमनिर्वाण	६२			२१९ ३१० ३१५ ३२९			परिमिता	२८
परमपद ७५ ८३	१२४			३४ ३६२ ३६३ ३९			परिभाषक	६८७
	४६३			३९४ ४०६ ४०७ ४३१			पराच दृष्टि	९५५
परमपिता ७०४	७०५			४३२ ४३३ ४३४ ४३५			परोक्ष ज्ञान	९३
परम पुत्र	१६			४३६ ४४५ ४५८ ४९४			परोक्षाल	९१३
परमप्रकाश	८७			५१८ ६०४ ६११ ६६२			पर्याप्तिक	९७७
परमशिव	११८ ११९			६७९ ६८० ७४१ ८८५			पवत श्रुति	३६२ ४९१
परमसंहिता	३२० ३२६				९१६ ९१७		पवम	५१९
परम सत्ता	७९६ ८५३			परशुराम-युग	६७९ ६८२		पवन अवतार	६१९
८९० ८९१ ८९३ ८९६				परशुराम रूप	३१५		पट्टपतिनाथ की	१०९
परम सरय	७९६ ८३६			परशुराम मार्ग	१५५		पशुपाकन-युग	६८१ ६८६
	८३७			परशुरामाचार्य	३०९ ३१०		पशुपतीक	७१९
परम सौगत	४४१				५७० ५७१		पशुमानव	१७४
परम सौम्य	८८६			परशुरामावतार	५३६ ७४५		पशु-मानव प्रतीक	७२८
परमाक्षर	५३ ६४			परस्थापन	८६३		पशुमानव सम्बन्ध	६७५
परमात्म	११९			परा	१२४		पशु-वराह	३४१
परमात्म प्रकाश	८७ ९४			पराक्रम	४३६ ४३६ ६८८		परपम्ती	९३१
	९५							

पदाङ्कपुर	५२३ ५२७	पारगर्भोप	११५	पुनजन्म	२२ ४९ ६१०
पदाङ्की शैली	१ ००	पारमायिक	५ ४	पुननिर्मायिक कल्पना	८५९ ८६७
पौष स्थानीयुद्ध	१८६	पारमिता	१३	पुनस्थापन की प्रवृत्ति	८८९
पौष निर्मायकाय	४४१	पारस्परिकता	१५५	पुराकथा	१४९ ०४६
पौष महाप्राक्	५८	पाराशय	४५४	पुराकथाओं	८७१
पौष स्वरूप	१२४	पारिजात नाटक	१४४	पुराकल्पना की	४४०
पौषों सिध	६०	पारिजातम्	१५४	धमता	६९६
पाञ्चजन्य धर्म	११९	पारिभाषिकरूप	०३३	पुराकाव्य	८०३
पाञ्चराय	१०	पावती	१५३	पुरा-चरित्रों	०४२
११६ १८१ २ ७ २१७	१५	पार्वती का अवतार	१४६	पुराग ११२ ३४९ ३ ०	४६९
२४२ ३२३ ३३ ३३७	३५	पार्थ	८५	पुरागप्रतीक	६५३ ६५५
३६१ ३९२ ३९४ ३७३	१६४ ५६७	पार्यद्	६ ७	६३४ ६७७ ६८३ ६८९	६८९ ६९०
४२ ४२१ ४२४ ४५३	५३८	पालक	५३८	पुराग प्रतीक (कविक)	६८९ ६९०
४८५ ४९१ ५ ४ ५५५	३७२ ३७५	पालन	३७२ ३७५	पुराग प्रतीक	६८५
५२९ ५३१ ५४९ ५६९	३५५	पापक	३५५	पुराग-प्रतीक-मानक	६८१
५७६ ६२४	८५२	पाषण्डोप	८५२	पुराग प्रतीक रूप	६७३
पाञ्चराय पर विग्रह	५७३	पाशुपतमन	११५	पुराग प्रतीक (भीकृष्ण)	६८४
रूप	५७३	पाशाङ्क सीधमता	६७४	पुरामर्महिता	१५५
पाञ्चराय पूजा	६२	पाशाङ्क कलाकार	१२४	पुरागीकरण	७०४
पाञ्चराय यज्ञ	४७६	पाश रथचित्र	१२५	पुरातन पुण्य	५६३
पाञ्चराय विमय	३९२	पाश विग्रह	११५	पुरातन प्रतिमा	७४३
पाञ्चराय मंहिता	३९३	पिण्ड	१२४ १२६	पुरातन	८६६
३९६ ३९८ ३९७	१२४ १२६	पिण्ड में प्रकृत	११५	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाञ्चराय स्मृतिाय	३०६	पिण्ड मतिनि	११५	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
३९१ ३९३ ३७४ ३७६	११६	पितर	११६	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
४०४ ४०८	१७१ ६९२	पितृ संधि	७०५	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाञ्चरायों	३६० ३६९	पितृ कायम	११२	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाण्डव	१६२ ३३२	पितृमिड	१२२	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाक (ग)	८५५	विज्ञान	१२३	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाणिनि	५ ३९ ४९७	पीयूष वष	४९	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाणिनि भट्टरायणी	५२	पीर	८४८	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पार्वतकथा	१२२	पीरमन्द मन्मन्दाप	१३३	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पारमूर्ति	८८७	पीर मन्दर मल र्शन	२८९	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाद्मम	४८३	पुंढरीक वरे	१५ ९८ ११२	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाप	७७३	पुत्र	७३२	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पापनिर्गाल	७७३	पुनरावगत	९०	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पाप-पुण्य	६९४	पुनराविर्भाव	१४४	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५
पारकर ७९३ ८१४ ८१६	१७४	पुनरावृत्ति	१७४	पुरातनमायिक प्रतीक	७३५

पुरुष अवतार	८०९	पुष्टि मार्गीय मन्त्र	१०१	पृथुभवतार	४५९
पुरुष अवतारों का		पुष्टिमार्गी वैष्णव	५५८	पृथु सुभक्त-पाकनी	
श्रेष्ठ्य श्लोक	३५१	पुष्पक	११५	कथा	३५०
पुरुष का पूर्ण अवतार	३०१	पुष्पदन्त	८४ ८५ ९० ९३	पृथु विष्णु	४५९
पुरुष का साक्षियवादी		पुस्तककार	५२४ ५२५	पृथु वैष्णव	४५०
रूप	३१०	पुहकर	२९४	पृथ्वी १६३ १८१	३०६
पुरुष उद्योति	१८०	पुहुपावती ३	३०२ ३ ३	४१३ ४२८ ५१५	५३०
पुरुषमाद्य सिद्ध		पुजा	५४९	५८२ ७२७ १	३
चौराही	१३५	पूजा	१०१ ३०८ ३३६	पृथ्वी गो रूप	४५० ५३१
पुरुष नारायण २६८	३२१	३४३ ३६१ ३६६ ३८९		पृथ्वी भाराकाम्त	२०५
३२२ ३२३ ३४८	४०६	५९० ६३५	४०८	पृथ्वीराज	१६२ ६२०
पुरुष पुराण	३०१	पूर्णतम	३००	पृथ्वीराज कर्ण के अथ	
पुरुष-प्रतिमा	७४१	पूर्णतर	३३०	तार रूप	१६१ ६२
पुरुष वाची	३९४	पूर्णत्व	७३१ ७३२	पृथ्वीराज के अवतार	
पुरुष श्याम	४२३	पूर्ण पुरुष	५१८	१४४ १६२	
पुरुषसिंह ९६ ९८ ११२		पूर्ण पुरुषोत्तम	३०३ ३०४	पृथ्वीराज राम के	
पुरुषसूक्त	१२५ १२६	५०० ५८२		अवतार	१६१
१० १०१ ३१६ ३१७		पूर्ण पुरुषोत्तम मन्त्र	५५८	पृथ्वीराजरासो १४८ १६०	
३१८ ३२२ ४०६ ४२९		पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण	३००	३४३ ४० ४१० ४१३	
४३१ ४३८		पूर्ण प्रक्षेपण	७०६	४२५ ४२९ ४३५ ४४४	
पुरुष सूक्तकार		पूर्ण मन्त्र १०६ ३०१ ४२३		४५०	
नारायण	४०८	५१४ ५३८		पृथ्वीराज विजय	१४२
पुरुषार्थ	४६३	पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण	३०	१६१	
पुरुषार्थ	८०९ ९०८	पूर्णमानव	२६४ २७९	पुत्रिगर्भ	३४० ३४१
पुरुषावतार	३ ६ ३२२	पूर्णरूप	२०९ ३६२	पृथ्वी-मत्पमामा	१६६
३२३ ३२४ ३३५ ३३८		पूर्णावतार	२६४ ३३	पृथ्वीसूक्त	४१२
पुरुषीकरण	७४१	३४ ३ ३ ३६२ ३६६		पैररटेरी	८६२
पुरुषोत्तर प्रमाद्य	८३२	३६९ ३० ३०१ ३०२		पैगम्बर ७० २ ४	२०९
पुरुषोत्तम	८ ३६ ९५	३०३ ५१८ ७५४ ८८४		९१० ९३० ९३९ ९४६	
९० ९८ ११२ १६६		पूर्णावतार रूप १०१	२४८	२५० २५१ २५३ २५८	
१०१ ३३४ ४१५ ४२६		२४८		२६३ २६४ २६५ २६७	
५३९ ५४१ ५८३ ६२४		पूर्वपापाय युग	६५८	२७४ २७५ २८८	
पुरुषोत्तमहाम	६१३	पूर्वानुभूत ज्ञान	६३६	पैगम्बर भीम	२६४
पुरुषोत्तम नगवान	५५०	पूर्वानुभूति	७८६	पैगम्बर मुहम्मद साहब	
पुरुषोत्तमाचार्य ३१९ ३२०		पृथ्वीकरण	८६३	२६८ २७० ३३४	
३३५ ३६० ३६५ ३७९		पृथु १४२ ३४० ३५०		पैगम्बरवाद	२५९
५२९		३६२ ३६३ ३६५ ४०८		पैगम्बरी	२५२
पुरुषोत्तरामा	१८०	४५३ ४५८ ५०६ ६ ४		पैगम्बरी मग २१० २१५	
पुरुष	६६१	९४५		पैगम्बरी अवतार	
				परम्परा	२६४

प्रतीक (धार्मिक)	६०६	प्रतीकारमक-व्यञ्जना	६०४	२४१	२९४	२९६	२९७
	६०७	प्रतीकारमक मनोबैज्ञा-		३९२	३९८	३९९	३९३
प्रतीक रङ्ग-रूप	७२१	मिकना	६५५		३७४	३७९	९७७
प्रतीक-प्रतिभा	६८६	७२४	प्रतीकारमक मनोवृत्ति	७१०	प्रद्युम्न-मापावती		३ ५
प्रतीक प्रसन्न वस्तुना	९६८		प्रतीकारमक रहस्योक्ति		प्रद्योत		३४७
प्रतीक (भारोपीय)	७२३			७४१	प्रधान	१०	३२०
	७२४		प्रतीकारमक रूप	४६१	प्रयत्न		८७९
प्रतीक (भाषितमूलक)	७ ८			८०३	प्रयत्नकाव्य		५०३
प्रतीक (मनोबैज्ञानिक)	७ ९		प्रतीकारमक स्वप्न	४३८	प्रयत्न काव्यो		७९५
प्रतीक-मानव	६८१		प्रतीकप्रमकता	७८०	प्रयुक्त	१११	११९
प्रतीक में-वस्तुपर्यन्त			प्रतीकीकरण	६५३	प्रबोध		१२५
प्रति वस्तुवाचकत्व			७२०	७३५	७३८	७४१	३६३
सांस्कृत्य	७०९			७८०	प्रसाकरः		४५
प्रतीक रूप	१८३		प्रतीकोच्चारणा	९७९	प्रमातृ-चरित		४४८
प्रतीक (किबिडा)	७१५		प्रतीकोपासना	५५६	७४९	प्रमातृक चरित्र	१४६
प्रतीकवाच्य	७०८	७५९	८३३	प्रतीकसमुत्पाद	२४	प्रभु	३३४
प्रतीक (विमूर्ति)	७१७		७१८	प्रत्यक्ष अनुभव	६९२	प्रवृत्ति	४९४
	७१८		७४१	प्रत्यक्ष दैवता	१७२	प्रमाण	९०९
प्रतीक (स्वप्न)	७०८	७ ९		८ ८	प्रमापन		८५१
प्रतीक स्वरूप	७२९			५३७	प्रमुद्विता		४५
प्रतीकारमक	४२४	४२५		७१२	प्रयत्न		६४
६३१	७३३	८२२	९५८	७१४	७१५	७८६	८३४
प्रतीकारमक आख्यायिका	६५३			९ ४	प्रयापार्यिक नय		८७
प्रतीकारमक उपादान				८०८	८१०	८१३	५०३
	४५१	४५३		८१६	८१७	८१८	५९४
प्रतीकारमक कथा	४६०			८१९	८२०	८२१	५७७
	६६८			८२२	८२३	८२४	५७८
प्रतीकारमक तथ्य	४७४			८२५	८२६	८२७	५७९
प्रतीकारमक पौराणिक				८२८	८२९	८३०	५८०
कथा	४७५			८३३	८३४	८३५	५८१
प्रतीकारमक प्रतिनिधि				८३६	८३७	८३८	५८२
	६६९	६७०		८३९	८४०	८४१	५८३
प्रतीकारमक प्रतीति	६९४			८४२	८४३	८४४	५८४
प्रतीकारमक प्रदर्शन	७१९			८४५	८४६	८४७	५८५
प्रतीकारमक विम्व	८०३			८४८	८४९	८५०	५८६
प्रतीकारमक विम्व चित्र	९६९			८५१	८५२	८५३	५८७
प्रतीकारमक विम्वकता				८५४	८५५	८५६	५८८
	७१७			८५७	८५८	८५९	५८९
				८६०	८६१	८६२	५९०
				८६३	८६४	८६५	५९१
				८६६	८६७	८६८	५९२
				८६९	८७०	८७१	५९३
				८७२	८७३	८७४	५९४
				८७५	८७६	८७७	५९५
				८७८	८७९	८८०	५९६
				८८१	८८२	८८३	५९७
				८८४	८८५	८८६	५९८
				८८७	८८८	८८९	५९९
				८९०	८९१	८९२	६००
				८९३	८९४	८९५	६०१
				८९६	८९७	८९८	६०२
				८९९	९००	९०१	६०३
				९०२	९०३	९०४	६०४
				९०५	९०६	९०७	६०५
				९०८	९०९	९१०	६०६
				९११	९१२	९१३	६०७
				९१४	९१५	९१६	६०८
				९१७	९१८	९१९	६०९
				९२०	९२१	९२२	६१०
				९२३	९२४	९२५	६११
				९२६	९२७	९२८	६१२
				९२९	९३०	९३१	६१३
				९३२	९३३	९३४	६१४
				९३५	९३६	९३७	६१५
				९३८	९३९	९४०	६१६
				९४१	९४२	९४३	६१७
				९४४	९४५	९४६	६१८
				९४७	९४८	९४९	६१९
				९५०	९५१	९५२	६२०
				९५३	९५४	९५५	६२१
				९५६	९५७	९५८	६२२
				९५९	९६०	९६१	६२३
				९६२	९६३	९६४	६२४
				९६५	९६६	९६७	६२५
				९६८	९६९	९७०	६२६
				९७१	९७२	९७३	६२७
				९७४	९७५	९७६	६२८
				९७७	९७८	९७९	६२९
				९८०	९८१	९८२	६३०
				९८३	९८४	९८५	६३१
				९८६	९८७	९८८	६३२
				९८९	९९०	९९१	६३३
				९९२	९९३	९९४	६३४
				९९५	९९६	९९७	६३५
				९९८	९९९	१०००	६३६

सम् १९ १९० १९२	प्रियत्व-बोध	७२७	कमुगाळ	७०९
१९४ २०१ २२४ २२५	प्रिय-भाव	६४३	क	
१०९ ४२४ ४२५ ४२६	प्रियरूप्य	६९३	कगाल	७३ ९६४
४३२ ५१२ ६७४ ९७१	प्रियादास	५८८ ५९३ ६१२	कौमुदीमुत्प	९६०
इषी		५९७ ६०३ ६१२	कस्सू	९४२
लक्ष्म ७४१ ७७० ७९३	प्रीति	८१२ ८२० ८२१	कगळा	१२०
८६९	प्रेमभ्योति	२७१	कगळामुळी	१२१
गकटब स्त्रीका	प्रेमद्वाम	१३१	कहरिकामम	११२
प्राक्ज्ञानक्रमक मम	प्रेममार्गी	२९१	कनस्पति-श्रतीक	७२५
प्राकृत बीर अग्राह्य	प्रेमसाधना	२३९	कनियाराम	६०३
प्राकृत विग्रह रूप	प्रेमाक्यानक	२९५	कठ १८ ३०४ ४३८	
प्राकृतिक लुबाव	प्रेमाक्यानक काव्य	२३९ २४९ २५६	कठकार्य	३६४
प्राकृतिक विकासवाद्		२४० २५६	कठदेव	९६ १०० ३४०
प्राकृतिक व्यापार	प्रेमालुगा	५७४		५८५
प्रायतुमबिक	प्रेमामक्ति	५९	कठनेक	९९३
प्रायतुमबिकज्ञान	प्रेमामयी	२९०	कठमद्र	५३०
	प्रेमोपासना	२३ २५५	कठराम १४२ १६०	५८८
प्रायतुमबिक तथ्य	प्रेय	८१९		१०००
प्रायतुमबिक स्थिति	प्रेय अलंकार	८१९ ८२०	कडी	२७४
प्रायतुम्य	प्रेयान	८२१	कहिर्मुळी	८८९
प्रायु	प्रेरणा	८५६ ८५७	कहिर्मुर्ति	८९०
प्राणी-विज्ञान	प्रेरणा प्रसून भावेग	९०३ ९०५	कहुमाक्यानकता	६५५
प्रातिम अभिष्यक्ति			कहुजन हिताव	२० २६५
प्रातिम ज्ञान	प्यारिनस	८५८		२७५ ६८९
	प्येरो	८३० ८५९	कहुदेवता	१०८
प्रातिम शक्तियों का	फ		कहुदेवताबाद्	६ ३४९
अवतरण	फकीर	४४७ ४८३		३५६ ४४५
प्रायव ३३८ ३४०	फर्कुर ११५ ४२४ ४३८		कहुदेववादी	२३९ ६२४
	४६९ ४७० ५०० ५२६		कहुदेववाद्	०
प्रायोगिक (परोप	फकिरीहस	६७३	कहुदेववादी अंशावतार	३४८
कारिता)	फन्थेमिया	८५९		
प्रायोगिक (समरु-	फरिरतो	२७६	कहुमावात्मक प्रपेयम्	७३८
पता)	फरीद्	२८३	काठळी	४४
प्रायोगिक (सुम्प	फातिमा	२५३	कागशी	१०८ १४२
रता)	फागुनी	९६०	कादमी गुफा	९९९
प्रिप्यीबाप का प्रंय	फामेसियन पुराकथा	७२०	कानर	६७३
'साध्य'	फायद ६३१ ६९३ ६९४		काबारामदास	९४२
प्रियतम	६९५ ७०८ ७०९ ७४६		काबाहरिदास	९४२
प्रियाव			काठहबतार	४०४
				७८२

वारह्णमाम	२८१	८३	१००	१३०	१३२	बृहदारण्यकोपनिषद्	
वारह्णकवर्षी	८५	९६	१३३	१३४	१३५		३५० ४०० ४६९
वारह्ण	३०५		१५०	१५४	१५६	बृहस्पति	१५९ १०१
वारह्णमासा	९८४		२६५	२६७	२६९		३३० ३५६ ३६२
वारह्णप्राजा	२३०		४३४	४३८	४४१	वैश्वानरा	१५२
वाल्मीक्य	५४९		४५८	४५५	४५८	बोधिवर्षा	५२
वाल्मीकिय	३४०	६७०	५७०	६२४	६५९	बोधिवर्षावतार	१० ४०
		६७८	७४१	७९५	८८५		४६ ४८ ७३ ७४
वाल्मीक्याचारी	५४१		९१६	९६५	९९१	बोधिविषय	४५ ४६
वाकरमापन	६०४	बुद्धवतार				बोधिसत्त्व	४४
वाल्मीक्य श्रिवा	३००	बुद्धचरित	३१	३४	३५	बोधिसत्त्व	४७
पालि	३६३	बुद्धवर्षा				बोधिसत्त्व व्यक्तिय	९१०
वावरी साहित्य १५८	२२०	बुद्धके क्वाति अथवार	२३२			बोधिसत्त्व १३ २३ २८ २९	
	२२८	बुद्धयोति	३१			३० ३३ ३६ ४६ ४७ ४९	
वाहुत	२४४	बुद्धदेव				५६ ५८ ६२ ७४ ७५ १०५	
विम्ब ७०८ ७२६ ७९८	७९८	बुद्धदेवता				२६५ २७५ ४३८ ६२४	
८०९ ८१० ८२८	८३६	बुद्धवर्मा				बोधिसत्त्वअवतारवाद	५२
विम्ब-ग्रहण	७१६	बुद्धनिर्वाण नाटक	७०			बोधिसत्त्व रूप	४४
विम्बनिर्माण	८५९	बुद्ध-पद	६			बोधिसत्त्ववाद	५ ५२ ६३
विम्ब-प्रतिविम्ब	८००	बुद्धपुराण	१०८			बीज	१३ २५ ६० ७०
विम्ब-प्रतिमा	८६५	बुद्ध-पूजा	६				१३५ २१५
विम्ब-बोध	८०८	बुद्ध-महाअष्टांगिक	६४			बीज अथवार	३८
विम्बवाद	७४१	बुद्धमार्ग	२२ ६५			बीज अथवारवाद	२० ३४
विम्पीकरण ७०८ ७१०	७१०	बुद्धमूर्ति	५५				४४ ९२१
७९० ७९६ ८०५ ८०७	८३६	बुद्ध-मैत्रेय	२३			बीज आचार्य	४१
८०८ ८१३	८३६	बुद्धयोगी	७९			बीज अथात्म्य	१५ ७८
विम्बों	७९४	बुद्धराम	७५४			बीजगान	६५
विम्बोद्भावना	८२६	बुद्धराम के रूप	४४२			बीज वातक	४४०
विष्वमंगल ५८९ ९६५	९६५	बुद्धरूप	१५२ ४४१			बीजतन्त्र १३ १० ४२ ६९	
विष्वमंगल चिंतामणि	९६५	बुद्धवशा	२४ २६ २९			बीजवेष	१३
	९६५	बुद्धशक्ति	३			बीजदेवता	१३
विहार	९६५	बुद्धस्वरूप	५५			बीज देवी	१३
विहारी	९८४	बुद्धवतार	३९ ४४४			बीज देवीकरण	६०
पुष्पैष्टरंज	९९६		६२० ७५५			बीजधर्म १ ५ १४ २२	
पीमात्स	८२९	सुदि	५० ६४२ ८१०			२० २९ ३६ ५० ७१	
पीसर्वे कामदेव	१०९		८३५			१३४ ४३०	
बुद्ध ३ १० १२ १४		बृहदारण्यक	३१० ६८०			बीज पालि साहित्य	४९८
१९ २९ ३३ २५ ३२		बृहदारण्यक उपनिषद्				बीज युगावतार	३९
३३ ३६ ४० ४९ ५५			८१९			बीज लोकेश्वर	१०५
						बीज वज्रपात्री	१०४

बौद्ध वाक्याप	२५	महायग्य	१२०	महायानुमूर्ति	८१०
बौद्ध सम्प्रदाय	२४ ५०	महा (मातृ)	१३३	महालक्ष्मी	११०
५८ ७१ २२०		महा (पर)	१३३	महास्वाध्यासहोत्र	८१८
बौद्ध सहायियामत	३१२	महापुत्र भाष्य	४८६	महाकण्य	७२ १६१ ३४९
बौद्ध साहित्य	५७ १३ १६	महा पुत्र्य	३५० १३१	महाभगवतकी	३०६
२६ २० २९ ३१ ३०		महा पुरुष रूप	१२०	महाभगवतमूर्ति	१४
४० ४६ ४७ ७३ १४६		महारूप	११६ ३१८	महाभग साहित्य	४०८
१४७ ४३९ ४४८		महाबाह	५१९	महाभगान्ध्यान्त	३२ ४३९
बौद्ध सिद्ध	५२ ५४ ५५	महा विद्या	४४५	महाभगी	१५
		महा वैवर्ग	१६६	महाभगीकरण	२०९ १३४
बौद्धावन धर्मसूत्र	१०४	महा वैवर्ग पुराण	५२५		१००१
बौद्धावतार	५२४	महा (दाय)	३८५	भ	
९८१		महा श्रीचन्द्राम	११०	भग	६६१
बौद्धावतार परम्परा	३३	महा (समुद्र)	१३२	भहारकर	१४२ ४९८
बौद्धीहृत्	४४१	महा सम्प्रदाय	५८०		५२० ५२५
बौद्धी	१३२	महासाक्षात्कार	१३०	महा	३ ४ १३७ १६९
बौधायन गृह्यसूत्र	४४७	महा सूत्र ४१	३९१ ३९७	१९२ ५५४ ५५५ ५५७	
महा	३०८ ५८७	महा ८ ९ १० १२ १३	५९९	५६० ५९९ ६०१ ६३४	
महा-रीति	५९६	१५ १६ ४९ ७२ ८३ १०७		७४५ ७४५ ८८१	
महालीला	३८५	११० ११९ १२२ १२३		महाकवि	८४७
१४ १४ ४० ४१ ४५		१२४ १२५ १२६ १३२		महा की रक्षा	३९६
१२२ १४१ १५३ १५८		१५५ १६० १६३ १६५		महा करित-भाग	६०२
१६४ १७० १७८ १८१		१७१ १७५ १८४ १८८		महा-भगवान	१३४
२०८ ३२७ ३२८ ३५७		२१० २११ २१४ २१७		महा-मिद्ध	२१
३६२ ४१० ५०२ ५३९		२५८ ३१३ ३२० ३२५		महामाल	१५४ १९५
६०० ७१३ ७१४ ७१५		३२८ ३४५ ३४७ ३४८		१९६ ३०४ ३०९ ३६५	
७३२ ७३३ ७८० ७९०		३५० ३६६ ३७३ ४१६		३६६ ३६९ ३७६ ५६७	
७९१ ८०७ ८२६ ८३७		४२५ ४२९ ४३९ ४५४		५७९ ५८१ ६०१ ६०२	
८७१ ८६९ ८७४ ९०		४६५ ४६६ ४७४ ४८३		६०९ ६२३ ६२५	
९१४ ९३० ९३२ ९३३		५०५ ५२८ ५३१ ५३२		महाचक्र	१८५
९४७ ९५३ ९७० १००६		५३२ ५३७ ७५३ ९२९		महाचरण	३७९
		महा ४	१२६ १४२	महा क मोक्षदान	३७८
महा और निबिडा	७१४	महा ५	१७१ ३९७	महापायना	६०३
महाकवि	५४६	महा ६	४७७ ८२१ ८४०	महा	३९ ८५ ३४०
महाभगी अमिष्यदि	८९६	९२१ ९६९ ९७४		५०१ ५५२ ५७४ ५७७	
महा की उपलक्षि	६९७	महा ७	१२६ ३४२	५८० ५९९ ८१९ ८४१	
महा क भाविर्भाप	५०५	महा ८	१७१ ३९७	महा (मति)	५
में मगलहेतु	३७५	७७७ ८२६ ८३१ ८४०			
महा क चार पादों	३७५	९२१ ९६९ ९७४			
महागानी	१४५ १३६	महा ९	१६८		
		महा १०	१००७		

मक्ति के किपू मक्ति	८१९	भरत नाटक्य	१५४	१५५	३७९	४०३	४०४	४०९
मक्ति प्रवर्तन	१७८			१६५	४४९	४५४	४५९	४६५
मक्ति मार्ग का प्रचार	५८२	भरत नाटक्यशास्त्र	१४१			४८०	४९३	५०६
मक्तिरस तर्कशास्त्री	३७०			१५३				
मक्ति साहित्य	९१	धरतमुक्ति	८२७	८८०	भागवत प्रकरण			३१४
भाग	१८ २० ६७	सहा और पुरा	७९३		भागवत मुद्रित			५६६
भागवत	८ १० १३ १९	सबभूति	६०४		भागवतशास्त्र			३७९
भागवतः सरीर	१९	मविन्द पुराण	२९०	६१३	भागवत मेका			९५४
भागवतस्वरूप	५५९	भम्ब	९१०		भागवत मेका पाठक			९५६
भागवत प्रदिमा	६९९	भागवत	१३ १८ २५		भागवत छीला			९४४
	७५३ ७५३	४० ९३ ११२ १२०			भागवत सम्प्रदाय	४ ६		
भागवतसूक्ति	७४४	१२१ १२२ १२३ १६०				१३ १५ २०		
भागवतीपत्र	९५६	१६४ २०० २१८ २४१			भागवान् अमित रूप	४२०		
भागवद् बाणी	१२	२५८ २६१ २६७ २६९			भागवद्	८१२ ८१९ ९००		
भागवतीय	५९९	३०९ ३१० ३११ ३१४			भागवत्			९५४
भागवत	१२ ५६०	३१६ ३१७ ३१८ ३२२			भार			६३९
भागवतबैषता	१९	३३० ३३७ ३४० ३४२			भारत (कीरत पीठक)			३९
भागवत	४ ८ १८ ६४	३४८ ३५० ३५१ ३५३			भारतवर्ष	११९ ३०९		
७० १०९ ५५४ ५५५		३५५ ३६५ ३६६ ३७३			भारती			५७७
५६८ ५९९ ७३० ९३२		३७९ ४०५ ४१० ४१६			भारतीयजगतारवाद			९१३
भागवान् (एक मनोबै		४१८ ४२० ४२१ ४२३			भारतीय चिन्तमाहा			९७६
ज्ञानिक व्यापार)	७७०	४२५ ४२७ ४२८ ४३५			भारतीय दर्शन			३७०
भागवान् क सरीर	६७	४५१ ४५६ ४५८ ४५९			भारतीय प्रेमशास्त्रार्थ			२९१
भागवान् वाराणस	४१४	४२२ ४२३ ४२६ ४२९			भारतीय साहित्य			१९८
भागवान् श्री सप्तों क		४३० ४३६ ४३७ ४४८			भारोपीय			७३०
रूप	१७८	४४६ ४८० ४८९ ४९०			भारोपीय-कथा			७२७
भागवान् मुक्ति	७४	५०७ ५२० ५२१ ५२५			भारोपीय बैबीकरण			७२९
भागवान् दूरी	३८४	५२७ ५३० ५३३ ५३५			भारोपीय प्रतीक			७२४
भरतनाटक	८०६				भार्गेय			१३७
भरतार्थ	३२५				भार्गेय परशुराम			४३२
सहित्य	१५५				भार्गेय राम			४३३
भरतशास्त्रि मिश्र	४३९				भार्गी कर्मा			३८२
	४४१ ४४३				भाष	५६२ ६४२ ७३९		
भरतकल्प	३०					८०१ ८११ ८२० ८२३		
भरतकथा	३०९					८२०-८३१ ८४५		
भद्राच	३०९	भागवत दत्तम रङ्ग्य	१६६		भागवत-व्यापार			८२३
भयकर	७९२	भागवत धर्म	५ ६ २५		भागवत	८०२ ८५९		
भयानक	८२२ ९६३							
भरत	९६ ३६९ ८४६	भागवत पुराण	११ १३		भागवत प्रस्थि			६९४
	८४९ ९५१	१६ १५८ २८३ ३२०			भागवतसूक्त			९६३ ९६५
		३९३ ३९६ ३९७ ३९९			भाष प्रतीक			९५३

माह प्रतिमा १४८ १४९	मीमांसा ४११	मत्र ४३ ५२ ३०७
७०२ ७३४ ७३५ ७५१	मीळनी ३०१	९२७ ९३२ ९७३
७५४ ७८४ ७९० ७९५	मुचबेधरी १२० १२१	मत्रपाण ४
७९९ ८०९ ८४५ ८४६	मू ३५६	मत्रपाणी १४
८७२ ९३६	मूतडामर १४	मंत्र २१९
माह प्रतिमाएँ ७५० ८००	मृतान्त १०	मदिर ३०७
माह-प्रतिमाधो ७९४	मृतास्तगदा ५७७	मसूर जल् हल्लाज २७५
माह-प्रतिमात्मक ८२२	मूदेवी ३०९	२८३ २८६
माह प्रतिमात्मक पूर्ण	मू-भ्रमहरण १५८ ३०२	मंगभिक ६८७
प्रतीक ७५३	४१७ ५६९ ५९३	मघवा ९६
माह-बोध ८९३	म्वराह ४१६	मङ्गळी ७२६
माह मङ्गी ८४५	मृषि ३८४	मङ्गळकिया २८०
माह-मूर्ति १४१ १४६	भृगुप त ११६	मङ्गळमपतिपदा ६८७
९४२ ९७७	भृगुराम १४५	मङ्गिकेनु १०२
माह-बोधना ९७२	भृगुबंधा ३८०	मङ्गिपुर ९६४
माहपाकि ६३६	जल्प ९४२	मङ्गिपुरी ९६५
माहात्मक रहस्यवाद १७९	मैरव १०७ ११७ १३०	मङ्गिष्ठ १७
माहात्मक रहस्यपरमकृता ६९२	९९७ ९९९	मङ्गिराम ९८५
माहानुमृति ८२४ ८२९	मैरवतद ११६	मन्स्य ११७ १४१ १४२
९०९	मैरवशिष १०४ २१९	१५३ १५६ २१२ २१५
भावामास ७०९	मैरवी १२० ९४०	३०९ ३१० ३३६ ३४०
भाबी जवतार की	मोगबाद् ३८७ ६८८	३४१ ३४० ४०६ ४०७
कथना ६४६	मोगबाद् (मङ्गलिमा-	४१९ ४३१ ४५१ ४६१
भावी पुद् २१	गीय) ६८७ ६८८	४९४ ४९५ ५७० ६७१
भावी मैत्रेय पुद् ५१	मोज ८२० ९०८	६७८ ७२६ ९१६ ९३४
मद्युक्ता ८३३	मीतिक स्वता ६४६	मत्स्यकर्म ९५२
भाषा ५५४ ८४६ ९२७	भ्रमर गीत ५३६	मत्स्य-कूर्म १४९
भाषा-द्वयाम स्कन्ध १६५	ब्रामरी ९५२	मत्स्यघन १०८
५४०	म	मत्स्यपुराण ४१० ४७४
भास ५००	मगळ ७९	मत्स्यपुराण ४३८
मिष्टक ३१	मङ्गुपोष ५१	मत्स्यपूजा ७२६
मिष्टकोपनिषद् ४८२	मङ्गुधी ४७ ५० ५१	मत्स्यपूठ ९४१
मिष्टि-चित्र ३८ ९९९	९० ६३ ४४८	मत्स्यपुग ६५७
मिष्टि-चित्री ९२३ ९६५	मङ्गुधी कुमार १३	मन्थम्य १०७ २९९
९८०	मङ्गुधी पुद् १३ १९	४१० ४५३ ४७६
मिष्ट यक्षम ९३९	मङ्गुधी मूलकृष्ण ३० ४८	मन्थकत् ७२६
मिष्टवाप ९०४	मत्त २६९ २७७ २९३	मन्थ-मन्थदाय ७२६
भूमि १५९ ५७९	महल ४३	मन्थपापहार ७७ ४०८
		४०९ ४१२

मत्स्येन्द्र	१०३	१०८	मध्यकाठीन बैष्णव		मनुष्ययोनि	१६९
मत्स्येन्द्रवाच	१०४	१०५	सम्प्रदाय	३५३	मनुष्यराम	२१२
१०६ १०७ १०८	१३०		मध्यकाठीन सम्प्रदाय		मनुष्य कीटा	५४२
मत्स्येन्द्रपञ्चतकम्	१०५	१०६	१०९ ३५१ ५२७		मनुष्य शरीर	५११
	१०८	१३५	मध्यकाठीन साहित्य	२९१	मनुसंवरण	४६६
मत्स्योदर		१०८	३४५ ३४९ ३६३ ३६५		मनुस्मृति	३४८ ४५७
मत्स्योदर कीटा		२१९	३८५ ४०५ ४१० ४२५			४६६ ४६७
मत्स्य		११६	४२७ ४४५ ४६२ ५५१		मनो ईश्वर	७१७
मत्स्य कटा		५१४		६०६ ८७७	मनोकुष्ठरमक मनो	
मत्स्यमोहन		५६६	मध्यकाठीन हिन्दी		विरहटा	७८४
मत्स्य	९९	४५२	साहित्य	५०१	मनोवैतना	६६५ ६६६
मनुकैरव	४५३	५११	मन्वदेश	३९	मनोवैतन	७४८
		९५०	मन्मथा	९३१	मनोवैदिक प्रतीक	७१८
मनुकीट	९६	९९	मन्मथगीत साहित्य	४५१	मनोकुष्ठरूप समापार	८०१
मनुपुरी		५४७	मन्मथिद्वान्तसार संग्रह		मनोमय युद्ध	१८१
मनुमति भूमिका		८२३		३७२	मनोरम	९१०
मनुमाळती	२५६	२९२	मन्व	४५४	मनोविज्ञान	७५१ ७५२
२९४ २९८ ३०० ३०१			मन्वाचार्य	३६२ ३६९	मनोविज्ञान का ईश्वर	६९०
मनुव कवि		६७७		३७५ ४९९ ५८०	मनोविज्ञान ७३९ ८०२ ८०९	
मनुसुद्धन	९५	९५०	मनःप्रकृति	६६६	मनोविरहोपप	६९९
मध्यकाठीन	३६३	३७६	मन आरम्भ	८३१	मनोवैज्ञानिक प्रधि	६९९
		३८०	मनिसाधेव	९९७	मनोवैज्ञानिक सूत्र	६९६
मध्यकाठीन कवि	३४३	३४५	मनु	२१७ ३०९ ३२७	मनोविज्ञानीय विरहोपप	
		३४५		३४८ ३५५ ३६८ ४०६		७३८
मध्यकाठीन अवतारवाद				४०८ ४७५ ९१०	मनोवैज्ञानिक संतोष	७७३
२०४ ३०६ ५४५ ६००			मनु अवतार	४६६ ४६७	मन्वन्तर	३१३ ३२९ ४०८
			मनु आम्सव	४६६	मन्वन्तरावतार	३१३ ३१४
मध्यकाठीन अवतारवादी			मनु के	७२५	४३१ ४६१ ४६५ ४६७	
कीर्वाण		९१४	मनुष्यों	३१३	४६८	
मध्यकाठीन उदिया			मनुष्य	३५०	मनुयज्ञा	२८४
साहित्य		७३	मनुवा	६१०	मम्मद	८४८ ९०८
मध्यकाठीन रूप-भक्ति		३४८	मनु वैभवत	४६६	मयदानव	९२१
			मनुष्य अवतार	२७८	मयकेट	१०२
मध्यकाठीन भक्त		८४५	मनुष्य उल्लेख का		मयूरभट्ट	७९
मध्यकाठीन रसिक भक्त		३२१	ही रूप है	२३३	मराठी समुद्र देवदास	१५०
			मनुष्यक	११५	मरीचि	१४ ३२६ ३४६
मध्यकाठीन रसिक			मनुष्य का देवता के रूप			३५५
सम्प्रदाय		९९३		१७७	मह	४४७
मध्यकाठीन छीलावतार		२५८	मनुष्य भव	९१	मनोवा	७५३

मर्यादा पुरुषोत्तम	३६९	महानिर्वाण	६५	महापाग-सम्प्रदाय	३ ४४
मळना	७३	महानुमाचरण्य	२१९ ४८३	महापागसाहित्य	१६ ४३८
मळनाम मैत्री	१६३	महापरिनिर्वाण सूत्र	२१	महापागघृय	११
मळकूट	२४३	महापुराण	८४ ९९ १०१	महापानी	५२ २३२
मळकूटास	१४९ १७४		१९२	महापानी बोधिसत्त्वत्राय	
१९७ २०१ २१४	२२९	महाप्रमु चैतन्य	९५९		४६
मळना	९४४	महाबलिपुरम्	९९७ ९९८	महारस	७१, ९९५
महि	८५	महाबली जगन्नाथ	१७	महाराजा मरेन्द्रदेव	१०६
महिःकार्त्तन मन्दिर	९९७	महाभागवत	११२	महाराष्ट्र	९६३ ९६५
महान बे प्रौपरी	१६३	महामारत	२५ ८१ ११४	महाराष्ट्रीस्वांग	१५८
महत्कील	१२३	१२५ १४१ १५६ १५८		महारास	९५८ ९६०
महर्षि कपिलाचार्य	४८६	१६० १६२ १६३ १६७		महालीला	६०८
ममनयी	२७३ २९१	२१७ २३२ २७७ २९६		महायसु	२२ ३१ ३४
मसनवी काम्य	२५७	२९७ ३१६ ३१९ ३४६			४३९
मसादर	११७	३४७ ३६८ ३७३ ३७५		महावस्था	३७५
ममीहा का लबतार		३७६ ३८२ ३८३ ४०८		महाविष्णु	६९ ६१ ३२६
मस्य	७२६	४०९ ४१४ ४१९ ४२४			४२४ ९३१
महतो महीपान	७९१	४२९ ४३३ ४३४ ४४३		महावीर	३ ८५ ४३०
महत्तम मूल्य	६९८	४४५ ४४६ ४४९ ४५२			६५९ ९६५
महाकल्या	२८ २९ ४६	४५५ ४५६ ४५९ ४६०		महावीरक्षान	३९
	६७ २६५	४६३ ४६५ ४६६ ४६७		महावीरेश्वर	६९
महाकवि स्वयम्भू	८१	४६८ ४७४ ४७७ ४७८		महावीरेश्वरी	६९
महाकाय	११६	४८१ ४८५ ४८६ ४८९		महामगीत	६०
महाकादम्बिक	४७ ४९	४९२ ४९७ ५२१ ५२२		महामाण्ड	६०
	५१ ६२ ६५	५२३ ५२५ ५२८ ५२९		महामुद्र	४२ ४३ ४५
महाकाल रूप	१५२	५३३ ६०५ ६१२ ६२१			५२ ५६ ६० ६२ ६७
महाकाम्य	१६१ ३४७	६२४ ६६१ ६७५ ६७६			७१ ७५ ७६
३४९ ३८१ ४३३ ५०७		७३२ ७७८ ९१६ ९५४		महामुवर्त्तन	२२
५४५ ६९१ १००४		९६४ ९७९ ९८१ ९८२		महामुदस्तनमुद्र	२२
महाकाम्य युग---	४७८		९८३	महिषामुर	९९९
महाकाम्यामक अक्ष-		महामारतहृष्य	५२२ ५२३	महिषामुर बघ	९९७
तारबाह	३४	महामारत चान्पर्य		महसा	१५ ४८३ ५४०
महाकील	२१९	निर्णय	३३० ३६२	महेश्वर	८ १० १२ १३
महागायत्री	१२२	महामुद्रा	५९ ६९		१६ ३३ ४९
महागायिन्	६२	महापान	३० ३६ ४५	मातंगी	१२० १२१
महामा गान्धी	१७३		५७ २६५ ४४१	मात	२४०
महामा घृष	१६०	महापान घर्म	२८	मात्रा पृष्ठी	४२७
महारेव	११९ २१० ३०४	महापान 'बी'मूत्र	४	मातृ-दूधी	७५३
महातारापन	८	महापान मत्र	२३	माश्यामक प्रवेपन	७४५

माहन	१५९	मानवीकृत	३४६	मार्ग	८१७
माधव	५९०	माववीकृत देवता	८७८	मार्ग (माध्यम)	८१७
माधवदास	५२६ ५३७	मानवीकृत देवी	९२४	मार्ग (विधिप्र)	८१७
५६५ ५६६ ५८७	६०३	मानवीकृत प्रतिमा	७०२	मार्ग (धुङ्गुमार)	८१७
	६०४	मानवीकृत प्रतीक	७२९	माकती मायबस	९८१
माधवदेस	९४५	मानवीकृत रूप ५०	६९८	माकव कौसिक	९४०
माधवकाठ हुसेन	२८७		७२९	माकविक्रमि मित्रस	९८१
माधवावक	२९४	मानस ३१४ ८४८	९०५	माकादीपक	१००४
माधुरीदास	५८८	मावसधित	८०८	मास विधि	७२९
माधुर्य	८३१ ८७५	मावस-व्यापार	८२७	माहेश्वरमदन लोक	४६
माधुर्य प्रथम	२३६ ५४८	मानसिक ईश्वर-द्रवि	७०५	मित्र	१२७
माधुर्य प्रथम गुन	२४७	मासुप	५५६	मिषिक	९४५
माधुर्यभाव	१८५	मानुपीबुद्ध	३० ३४०	मिध ७२८ ८५०	९२३
माधुर्यरूप	१८९ ५५६	माववत्	६५	मीन	५११
माध ११५ ४०५ ५७८	४९०	माया १८९ १९८ २०८	२०८	मीरा ५७२ ९४५	९४६
माध्य साहित्य	४९०	२११ २१५ २२६ ५६६	५६६	मीराबाई	५४६
माध्याचार्य	३३१ ९४४		८१४	मुक्षिम	२७७
मानकविग्रह	७८६ ७८९	माया आवरणमति	११९	मुष्टक १९८ ५७३	८७९ ९७८
मानक	६५५	मायाकार रूप	७१	मुष्टक काव्य	९३९
मानक अवतार २७७	६६३ ७३३	माया के बराबती	२३०	मुक्ति	३७९
	६००	मायागीत	५१० ५४४	मुक्क	३६१
मानक-भावार्थ	६००	मायारमक	५६ ५९	मुक्कमत् संतमत् का	
मानक-ईश्वर	७३१	माया (देव)	९३६	प्रवर्धन	१७८
मानकतावादी रूप	९३०	माया वैषी	३३ ३४	मुक्क विभव	३६९
मानकदर्पण	२५०	माया (नाव)	९३६	मुगाक चौकी	९८२
मानकप्रतीक	७२५	माया प्ररूप	४१	मुष्टक	६८७
मानक-श्रुति	९२३	मायामानुषरूपिने	५०४	मुष्टकोपनिषद् १२७	३१८
मानक रूप	३३	माया रूप	३६१	मुष्टमाका	१९१
मानकरूप का अधिक		माया रूपी राम	२११	मुष्टसावक	६८७
प्रापाय्य	९५९	मायावती	६९७	मुद्रा ४३ ४४	८७६
मानकसाह्य	६३१ ६६०	मायावाद् ४० ४१ ५८०	५८०	मुद्रि ३ १७७	१८४
मानकसाह्यीय दृष्टि	६३१	५८३ ५९१	५९१	मुद्रि (जैय)	४
मानक-सम्यता-विकास		मायिक	९२६ ३३८	मुनी	१३
गुण	६७८	मायिकराम	२२६	मुनीन्द्र ७४ ७५	२०६
मानवीकरण	१४१ १४२	मायोपम	४१ ५९ ६७	मुद्रा	३७७
१६९ १७० १७२ ३१६	३१६	मात	३२ ५६ ६४	मुद्रा-गुप्त	६२०
४०० ४६९ ७०३ ७३०	७३०	मात क्य दमव	१५	मुद्रा दाउद	२९७
७२८ ७३० ९२४ ९२७	९२७	मात पराजय	३४	मुद्रिक	११५
९२९ ९३४ ९६१	९६१	मार्कण्डेय पुराण	९८४		

मुसाबीह	२८४	मूष्य विपर्यय	७८९	य	
मुमुक्षुपाद्	४३	मूष्याकन	७८९	यञ	१५२
मुहम्मद् ७७ १३३	२०६	मूष्यमावरोध	८८९	यञ्जीवी	२७९
२११ २३९ २५७	२५४	मूष्योदात्त	९१३	यञ्जर्वेद	११४ ३१७ ३२१
२६१ २६३ २६७	२७३	मूष्या २५२ २५३	२६७		३२२ ४२३
२७९ २८५ २८६	२८७	मूष्या छल काविम	२८१	यञ्जसंहिता	४२३
	२८८	मूष्य	३५५	यञ्ज ७२ ३१४	३४७
मुहम्मद् अन्नाह	२६४	मूष्यकटिक	४४७	३५२ ३५९ ४०८	४१४
मुहम्मदिया	२८०	मूष्यिकापरक	८३५	यञ्ज पुरुष	४५२ ४६८
मुहम्मद् कफ्रीक	२७५	मूष्यिपाद्	१३४	४६९ ४७१	४७१
मुहम्मद् कह	२४५	मेगस्थनीय	५२३	यञ्जमूर्तिधर	४६८
मुहम्मद् की प्रीति	२६२	मेघ	३५७	यञ्ज बराह	४१६
मुहम्मद् माह्व	२४६	मेघदूत	५२५	यञ्ज विरोधी रूप	४४३
२५२ २६० २६७	२६९	मेघा शक्ति	५०	यञ्ज विष्णु	४६९
	२७२	मेघात्रीमावय	३५५ ३७५	यञ्जांग	४१६
मुहम्मद् हबीब	२६७	३७६ ३७८		यञ्जादि	३२७
मूकास्वात्रमवात्	२९१	मेघ्य	६ ५१ ६६१	यञ्जावतार	४६८
मूर्ति पञ्च प्रमाज		मेरक	९९	यथार्थपरक कल्पवा	८६४
पुरुष	२३१	मेरु पर्वत	८९	यथार्थवादी कला	७९३
मूर्ति ३०७ ४८१	७९५	मेसो हिप्पस	३७३	यम	११४ ३४८ ३५५
८७४ ९२३ ९२६	९२७	मैक हूगल	६९२ ६९५		३५७ ५१५
९२८ ९३०		६९६ ८२९		यमक प्रतिहार्य	२१
मूर्तिकरण	७३८	मैकडोनल	४१२ ५५१	यमुना	६१५ ६१६
मूर्तिकला	८७९ ९९३	मैकलिफ	२०४	यमुना के शापी या	
९९४ १०००		मैमैय ४८ ११५	४३२	राधा रूप	६१६
मूर्ति निर्माण	५५१	४४० ४४१ ४४२	४४८	यथा २० ६४ ११०	१३९
मूर्ति पूजा	१६	मैमैय बुद्ध	४४७ ४४७		७१८
मूर्तिबौ	३०९	मैमैय बुद्ध २६ बें	४३८	यशोदा ५३७ ५३८	५४३
मूठ इकाई	७८६	मैपिठ	९६५	ययोधरा	३०
मूठ कल्प	१९ ५१	मोच	७२	यशोधर्मन	४४६
मूठप्रतिमा	६५४	मोहन बारी	६०३	यादूब	२६७
मूठप्रतिमाप्रतीक	६५४	मादिनी ३४० ४०४	४९१	याज्ञवल्क्य	१८१
मूठ प्रतिमात्र	७८५	४९३ ४९४ ४९५	९३६	यास्क	३५६
मूठ प्रतीक	६५३	मादिनी अवतार	४०६	युंग	६९५ ६९६ ६९७
मूठ-विम्ब	७९०	४९२ ४९४	४९४	६९८ ६९९ ७००	७०१
मूठ-भाव प्रतिमा	८००	मादिनी माया	४९२	७०२ ७०८ ७१०	७२१
मूठपाद	१९८	मादिनी मूय	९१०	७२२ ७२३ ७२४	७२६
मूठप्रवाह	७९०	मौर्य	३९	७२२ ७२३ ७२४	७२६
मूष्य-बोध	७८९ ८८०	मौलिकता	८३३	७२२ ७२३ ७२५	७२१

७२२ ७२३ ७२४ ७२५	पुष्पिष्ठिर	१५९	रमणमात्र	६३६
७२८ ७५० ७५३ ७५४	पुष्पक	६७५	रमणवृत्ति ६२६ ८११ ८१२	
७५५ ७८१ ७८४ ८०९	पुष्पस	२६७	रमणीय अनुभूति	७८५
पुष्पिष्ठिर	६९२	६७२	८४१	
पुग	६३३ ६३३	६५२	रमणीय आदर्शवाद	८८४
पुगनद	६८६	१०१	रमणीय धारण्यव	९२९
पुगनद	५२ ५७ ६८	११८	रमणीय आरुण्यव	
	६९ ८०९	१११	विम्ब ७८९ ८१२ ८१३	
पुगनदकाव	५७	१११	८१७ ८२१ ८२२ ८३६	
पुग-पुग से धर्म रक्षा	२७४	१२२	८३८ ९३६ ९७५ १००७	
पुगछ	४५७ ४९६	१२२	रमणीय भास्वाव	८९३
पुगळ संसाधतार	३८६	७७	रमणीय हृदय	९१५
पुगळ अथतार	३३४ ३८४	१११ ११२ ११३	रमणीय उदात्त	९१६
पुगळ-उपासना	२५५	१७८ १७९	रमणीय उदात्तवृत्ति	९१६
	४५९ ५५९	४३३	रमणीय उपास्य	९८३
पुगळ उपास्य	६८ ७१	र	रमणीयकरण	९१४
पुगळ क्षिप्र	३८८ ३८९	रक्त (गर्भ)	रमणीय कलाकुशुति	८४२
	३९० ३९२	रक्त (धीतल)	रमणीय कल्पना	८६१
पुगळमंथि	३८६ ३९४	रक्षा	६० ६९	रमणीय कृति ७९९ ८७४
	३९८	रक्षुबाय	९६४	८७५
पुगळ भावना	३४४	रक्षुबाय	९६४	रमणीय शैतना ८२६ ८३२
पुगळमूर्ति	५२६ ७५३	रक्षुबाय मल्ल	६०६	८३३ ९२६ १००४
	८०९ ९२५	रक्षुबाय मूल्य	९६४	रमणीयता ८०८ ८०९
पुगळ रसात्मकरूप	४०१	रक्षुबाय	४९८	८१० ८१४ ८२१ ९००
पुगळ रूप	६४ ६९ ७०	रक्षुबाय कल्पना	८६३	९१७ ९७० ९७४ १००४
	१९७ २५४ ३२१ ३८६	रक्षुबाय प्रतिभा	८५०	रमणीय विम्ब ७९९ ८०४
	३८७ ३९३ ५१२ ५१३	रक्षुबाय १७९ २०८ २१२	८०५ ८०६ ८१३ ८१४	८१४ ८१९ ८३७ ८२९
	५१४ ५१५	२१४ ४७५	८३५ ८६५ ८६८ ८६९	९७३ ९७६
पुगळ विमान	८६	रक्षुबाय की	५६५	रमणीय विम्बकोश ८४५
पुगळ विहार	५९५	रक्षुबायहस्त	१५६	रमणीय विम्बभावना ८८०
पुगळपाठक	४०३	रक्षुबाय २९३ २९४ २९५	८२०	रमणीय विम्बविधान ८९०
पुगळ सधि	५१३	२९७ ३०५	८२०	रमणीय विम्बवात्मक ८९०
पुगळान्तर की परंपरा	३१५	रक्षुबाय	२५३	रमणीय विम्बवात्मक
पुगावतार	२१० ३१३	रक्षुबाय	२५५	स्वरूप ८०९
	३१६	रक्षुबाय मंडल	५५	रमणीय विम्बोद्भावना
पुगावतार परंपरा	३९	रक्षुबाय	४०	८७४ ८७४ ८७९ ८५४
	२१८ २२२ २३०	रक्षुबाय	१९९ ३ ३	८५५ ८५६ ८६८ ८७०
पुगावतार यौद्ध परंपरा	४०	रक्षुबाय	१०६ १०७	८७४ ९३५
		रक्षुबाय-प्रिया	७८९	

रमणीय (मूल)	७९९	रसलीला	३९९ ४०१	राग-विशोभ	९३६ ९३७
रमणीय मूल्य	७८१	रसात्मककल्प	३९६ ५२७	राग-विश्राग	५०
रमणीय मूल्यपौकन	८२३	रसानन्द	८११ ८४०	रागात्मक रूप	९३७
रमणीय पद्य	७७३	८४१ ९२१ ९६८ ९७४		रागिणियों	९३७ ९३५
रमणीय रस	८१० ८११	रसानुमृति	८८० ९२५	राघव	१३४
८१२ ८१८ ८२१ ८२२		रसान्नास	७०९	राघव विक्रम	९४२
८२५ ८२६ ८२८ ८३		रसावधार	३७७ ३९८	राजगुह्य	१११
८३१ ८३३ ८३८ ८६९		३९९ ४०० ४०२		राजतन्त्री युग	९५९
९३६ ९४०		रसिक धनन्यमाल	५९७	राजदरपारी-कवि	५१४
रमणीय रसशोध	९२६	रसिकदास	३९१	राजपूज सैली	९८३ ९८४
रमणीय रस-भावम	८२३	रसिक धर्म का प्रदर्शन	५९६	राजशेखर	६०४ ८४६
रमणीय रूप-विधान	८१४	रसिक सम्प्रदाय	१५५	राजशेखर सूरि	११५
८१५ ८१६ ८१७		३९७ ५२० ५९७		राजसी	६१०
रमणीय बन्धु	८०४	रसूठ	२१० २६६	राजमुच्यन्	४७
रमणीय विधान	८७७ ८७९	रसूठ लक्ष्मण	२६९ २७२	राजी	९७५
रमणीय समानुमृति	८३४	रसोक्ति	८२०	राजा	११९ ३५५
८३५ ८३६ ८३८ ८३९		रसोपात्मक	५१९	राजा विष्णु	१२
८४०		रसोपात्मना	५९४ ५९७	राजशेखर	८२५
रमणीय सहस्रपात्रक		रसिकम	८३४ ८८३ ९१३	राजा सौरसेन	९४०
अनुमृति	८३४	रहस्य लीला	३९९	राजेश प्रेम्भीराज	५४१
रमणीयानुमृति	७८९ ७९१	रहस्यवादी	८०४	राधा	३८५ ३८८ ४०
८०१ ८१७ ८२३ ८३५		रसस्यवादी सम्प्रदाय	८०४	५९७ ६०८	
८३६ ८३७ ८३८ ८९६		रहस्य-सत्ता	६९२	राधा और कृष्ण	३८६ ३८९
९३७ ९३८		रहस्यानुमृति	७९१ ७९३	३९३ ३९४ ९६०	
९३९ ९४०		रहीम	१८० २२६	राधा और पद्मगान	९४४
रमा	५२८	राघव	१५९ ३४७ ३५९	राधाहृष्य	१४८ १६६
रमाई पंडित	१४५ १५७	५१५ ८४९		३५५ २८९ ३२१ ३५१	
रमानायक	९५५ ९५६	रमा	८०७	५२४ ५२६ ५२७ ८३६	
रम्यक	३०९	रागकरमुम	१५२ १५३	९३३ ९९९ ९३७ ९३८	
रवि	८३ ५०६	१५५ ५३७ ५३२		९५४ ९५५ ९८४ ९८५	
रविम-जपम्पूह	४२	राग कुतूहल	९३७	राधा कृष्ण (शृंगार)	९२८
रविम-पुस्तक	५८	राग विग्र	९३७	९५१ ९५१	
रव	५७ ५९१ ८१३	रामदासी महार	९४३	राधाहृष्य (मैत्रीक)	९८७
८५९ ९०३ ९०८		रागनाटा	९३७ ९३८ ९८४	राधाहृष्यम	५२०
रव दशा	८३०	९८८		राधादेवी	१२१
रव निष्पत्ति	९७४	रामानन्दार्थ	९४६	राधा माधव	६९ ३९१
रवरतम	९९४	राम-रागिणियों	९३३	राधारमग	५६६ ५६७
रव-दीप्ति	५९७			राधा यज्ञम	३४४ ५९२
रवरूप	७६ ५३० ६०६			राधायज्ञम सम्प्रदाय	३९१ ३९२
रवरूप धीष्ट	४००				

राधावहृष्टमियों	५२६	रामचन्द्र	३०२	रामकीला कृष्ण	९६४
राधावहृष्टमी	३८० ३००	रामचन्द्र के रूप	५०	राम राध	१९१
राधावहृष्टमी सम्प्रदाय	५८०	रामचन्द्र-कथाम	२२१	राम सस्त	१७४
राधामुखा	५९२	रामचन्द्रद्वन्द्व	२४८	राम सम्प्रदाय	४९९
राधिका बहृष्ट रूप	५३९	रामचन्द्रिका	१५४ १६४	राम-सीता	२९७
राधिका तापनीपोषणपद्	३८६	रामचरित	३८० ३८१	रामादि	३९०
राधिकोपनिषद्	३८५	५०१ ६८३ ८१६	९८१	रामानन्द १८० १९३ २१०	
रानी तिष्ठेष्टमा	१६१	रामचरितमानस	१६३	२३४ २२५ २३५ ३०३	
राम ४ ७ १० ३९ ७४		१६४ ३७८ ४३६ ५०३		५ १ ५१६ ५९८ ६१३	
८१ ८२ ८३ ९१ ९६		५०४ ५९९ ६०५ ६१०		६१४	
९७ १३७ १३९ १४२		७१६ ७९२ ७९८		रामानन्दी	५८०
१४४ १५४ १६२ १७१		राधचरित्र	६०४	रामानुज २६३ ३१३ ३५४	
१७७ १८० १८८ १९३		रामजम्म	९५६	३७४ ४०५ ४५४ ४९९	
१९९ २२१ २२८ २८८		रामजमदग्नि	४३२	५०० ५२२ ५५४ ५९८	
३०३ ३१७ ३२३ ३४४		रामबाबकी	३८१	रामानुज राधशामन्द	२२५
३४५ ३५१ ३५३ ३६६		राम तापनीय	१८२	रामानुज सम्प्रदाय	५०४
३६९ ३७० ३७१ ३७२		रामतीर्थ	४३४	५८०	
३७३ ३८० ३८१ ३८४		राम शास्त्रधी	१४१	रामायण ४९ ८१ १०२	
३८५ ३९६ ३९८ ४०६		रामश्याम	७९ ५५९	११४ १६० १६१ १६२	
४०७ ४१० ४११ ४१२		राम के भूमिह रूप	४२६	१३४ २०७ ३०५ ३४३	
४१४ ४१९ ४२२ ४२४		राम परमेश	३७१	३६० ४३२ ६२० ६२१	
४२५ ४२७ ५०१ ५१३		रामपूजा	४९८ ५०१	९१६ ९२२ ९२३ ९५४	
५१६ ५१९ ५८० ६००		राम पूजावितार	४९९	रामावत	३७१
६५८ ६६३ ७३२ ७४१		रामपूर्व तापनीय उप		रामावत सम्प्रदाय	५००
७७९ ७८३ ७९५ ८१०		निषद्	५००	५८० ५८१	
८३७ ९१६ ९२९ ९३४		रामवद्य	१७३ ५१०	रामावतार १३५ १४५	
९४० ९५४ ९६४		रामवद्या	९५५	१५४ १५८ २०९ ५०३	
'राम' अन्वयार्थी	७९३	रामव्याह	३७४	५०५ ५३६ ५३७ ९३९	
राम बीर कृष्ण	५२१	राममक	३६६ ३७१ ४९८	रामाष्टयाम	६१२
राम उपास्य	५०९	५०२ ९४२		रामोपायाम	४९७
राम-कृपा ७ ८१ ६२०		राममक्ति क्षात्रा	४३६	रामोपासक	३८०
रामकटी ९३९ ९४०		५०१ ५१४ ५५७		रामही अक्षतारी	५०८
राम का अवतार	५१२	राममक्ति सम्प्रदाय	५१२	रायकृष्णशाम ५२० ५५१	
रामकाम्य	८१६	राममाया मानुष	५११	राय बीपरी ५२४ ५२५	
राम-कृष्ण १०० १५० ४५०		राम-वृष्णमय	८४	राय बेविहम् ४४१	
७३३		रामलक्ष्मणदण्ड	९४५	राय रामदाड ५६८	
रामकृष्णादि	५०८	रामकीला	३८० ५०१	रायग ५१ ९६ ९७ १३४	
रामक्रिया	९३९	८०१ ८३९ ९६२ ९६४	९६८ ९६९	१३९ २२० २४५ २९८	
				३०३ ५१५ ७९३ ९४०	
				राधमय	९५६

रविर्दण्ड वादकेस	६९३ ६९२	रुद्राक्षों	१३६	रुकुलीस वा मकुलीस	
रावठ	१३२	रुद्रावतार	६१९		११५
रावठ झाडा	१०९ ११६ ११८	रुद्रिबद्धता	६५५ ८१७	रुद्रमण	८१ ९६ २२६ ३६२ ९६४
राक्षिकर	११५	रुद्र	५७ ६४ ६७ १८३	रुद्रमणमट्ट	५८३
'राहु-प्रविमा'	७९५	रुद्रक	२९० ८७६ ९४३	रुद्रमण मल्ल	६०३
राष्ट्रीय चैतना	७४०	रुद्रक	१००४	रुद्रमी	१३ १५ ९१
राष्ट्रीय महाकाव्यों	७९५	रुद्रक कथा	८७३	१५९ १९३ २९४ ३०८	
राष्ट्रीय रिक्त	७९५	रुद्रकला	५१४ ६१३	३९९ ३२३ ५२६ ५७१	
रास	९५७ ९६५ ९६७	रुद्रकालमक	९२७	९४६ ९५०	
रास नृत्य	९५९ ९६० ९६५	रुद्रकालमक अमिष्यप्रिर्वी		रुद्रमी का अक्षयवतार	
रास-मण्डल	९५९		४३८		४५७
रासलीला	३३८ ३८५ ४००	रुद्रकालमक उक्ति	४५६	रुद्रमी का अक्षयवतार	६०४
५९४ ५९५ ९५८ ९६५		रुद्रकालमकता	६५६	रुद्रमीदेवी	३३४
रासेधरी	९३९ ९६५	रुद्रकाय	२३ ५८ ५९ ६२	रुद्रमीरूप	११९
रासो	१६२	रुद्र गोस्वामी	३१७ ३२२ ३३३ ३७९ ४१७ ५२९	रुद्रमी शक्ति का अक्षयवतार	४५९
राष्ट्र	१०००	रुद्र भगवान्	६०७	रुद्रम्य काम	६९३
राहुल	१६ ७५ १४४	रुद्र मञ्जरी	९९८ ३००	रुद्रम्य निर्धारक तत्व	६९९
रिद्धमेमिचरिड	८४		३०१	रुद्रुकरण	८६३
रिरसा	३०२	रुद्र (विष्णु)	९६९	रुद्रुत्व और शक्ति	९१२
रीतिकालीन कविता	९८५-९८७	रुद्र (सर्व)	९६९	रुद्रुमागवतासुत २१८ ३०७	
रीतिवादी	९६०	रुद्रात्मक प्रतीक	७३८	३१३ ३२३ ३२७ ३३७	
रविमयी	१९७ २९० ३९४ ५९६	रुद्रात्मक धृति	७१२	३३८ ३५१ ३७५ ३७९	
रुचि-अनुकूलित	८२५	रुद्रुविम्वत	२४३	४०४ ४०५ ४२१ ४५८	
रुचि अनुकूलित रास	८२६	रुद्रात्मतार	७२९	४७५ ४७६ ५२९	
रुचिबद्धक समता	८२४	रुद्रास	१९३ १९७	रुद्रुमस्य	६६६ ६६७
रुद्र ९ १२ १०० ११४ ११७ १२५ २५४ २९८ ३३६ ३३९ ३५० ३६३ ५९८ ५३९ ५८३ ५९३ ८२६ ९४७ ९५०		रुद्रास के निमित्त	४७५	रुद्रुमानव	६५७
रुद्रगण	३२६	रुद्रास श्रे	८३४	रुद्रु मानव-श्रवणी	६७९
रुद्रक	८४८	रुद्रास	६९१	रुद्रासनदास	५१३
रुद्रमूर्ति	६९	रुद्रास ८२३ ८२० ९६३	९६३	रुद्रासदर पाइ	१३४
रुद्रवती	११०	रुद्रास	१५	रुद्रास कला पण्डेहमी	९८७
रुद्रसम्यदाय	५५७	रुद्रास	१५	रुद्रास पवन	१०५
		रुद्रास	१० १२ २३ २७ २९ ३० ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४५ ५८ ९२४ ९३३	रुद्रास विस्तार	८ ९ १० २१ २१ ३२ ३३ ३४ ४३३
		रुद्रास	९३३	रुद्रास संघट्ट	१५०
		रुद्रास	९३३	रुद्रास ४०३ ५९७ ५९८ ८७५ ९१०	

कवितादेवी	१२०	१२१	खीलारमक प्रयोजन	२५८	खोकेबर	३९	४९	४२१
कल्पवृक्ष		४०७	खीला-देह	५८५	खोकेबर मरस्येन्द्र			१०६
कांयडी		११६	खीलापाम	५१३	खोकेबर			८८
काइइरोबा		९५९	खीलानद	३८०	खोकेबर भानम्ब			८१८
काकुलीश	१०९	११५	खीला (नित्य)	९७३	खोकेबर संपति			२८
		११६	खीलानृत्य	९५६	खोमड़ी का रूप			४२८
काकुलीस सम्प्रदाय			खीलापुरुषोत्तम	३६९	खीगिनुस १०४ १०५ १०८			
	१०९	११५	खीलापुरुषोत्तम् श्रीकृष्ण		खीदित्य			१००२
कमल-विमलाइन		१६३		३०८	ख			
कौंगाहनुस		९०३	खीलारस	४ ०	खंदागत अवतार-परम्परा			२८१
कामायनी		४९	खीलाकप	३८०	५४९			
कामामत		५९		६ ८	खंदागत अवतारवाद्			२०६
कालित्य		८३१	खीलाबई कथा	१०१	खंदा-परम्परा ही कृष्ण			
काव्य	८१३	९०९	खीलावतार	३१८	३२०			५८९
कापडी		९४४	३२३ ३३४ ३३९ ३४०		३४०			
कास्य		९५३	३४६ ३४९ ३०२ ३१६		३१६			
किंग पुरान	११५	११६	४५७ ४७९ ५३९ ६१६		६१६			
किपपूना		११४	खीलावतार कृष्ण	६०८	खंड़ी का अवतार			५९८
किविद्यो ७०५ ७११ ७१२		७१२	खीलावतारों	३०६ ३६३	खंड़ी के अवतार			५९३
		७४४ ७८३	खीला विमृति	३१८ ३३४	खम्रेकि ८१४ ८१६ ९ ८			
किविद्यो शक्ति ६९० ६९८		६९८	खीला-वृत्ति	८११ ९६२	खम्रेकि जीवित			८१५
	६९९ ७०५ ७२१	७२१	खीलावेश	३६६	खय			५१ ३५५
किविद्यो शक्ति ६९६ ६९७		६९७	खीला युक्त	४००	खयकाम्य			५६ ५७
कीलंजसा		९३	खीलासृष्टि	९६१	खयदृष्ट			७२
कील १०९ १८३ ३१९		३१९	खीलासृष्टि	२४	खयद्वैदिका ग्रन्थ			१२
	३२३ ३४३ ३५२ ३६६	३६६	खीलासृष्टि	२४	खयप्र ४३ ६४ ६५ ६७			६८ ६९ ७०
	३७७ ४६८ ५ ९ ५११	५११	खीलासृष्टि	९७१	खयदृष्ट अवतार			४४
	५९० ५९४	५९४	खीलासृष्टि	७९५	खयनाय			६९
कीला आख्याय		८४३	खीलासृष्टि	९६५	खयनाम			९४२
कीला (कृष्ण)		९७३	खीलासृष्टि	९७१	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
कीला क किपु कीला		८१९	खीलासृष्टि	२४	खयनाम	४ ४२ ५५ ५७		६१ ६२ ६३ ६५ ७०
कीलागान	५४४	५४४	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
	६०२ ७८२	७८२	खीलासृष्टि	२४	खयनाम	४ ४२ ५५ ५७		६१ ६२ ६३ ६५ ७०
कीला चरित	३००	३२१	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
		८९४	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
कीलात्मक	६१	३०७	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
कीलात्मक अवतार		२००	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
कीलात्मक अवतारवाद			खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५
	३३८	५३१	खीलासृष्टि	२४	खयनामि	१२ ४७ ४९		६४ ६५

वज्रपात्री संग्रहणम् ६३	वराह-कथा ७२७	बहाम ३१३ ३३२ ३७३
वज्रपात्री साहित्य ४३ ४५	वराहमहट्टप ९९८	४०० ४०५ ४५४ ५५३
५० ६१ ६५	वराहमिहिर ५०१	वहममट्ट ५६३ ५८२
वज्रपात्रीसिंह १९ ३२	वराहमहर्षी के अज्ञ रूप ४१८	वहसम संग्रहणम् ५८३
७५ १०९		५९८ ६०८
वज्रपात्री सिद्ध-साहित्य ७	वराह-युग ३३८	वहमसाहित्य ४३७
वज्रकथमी १५	वराहरूप १४५	वहकथाचार्य १५४ ३१०
वज्रवराह १५	वराहावतार ४१९ ४१७	३१२ ३१७ ३२२ ३३०
वज्रवैष्णव १५	४१८ ९९९	३६१ ३६४ ३६९ ३७५
वज्रसख्य ५३	वराहावतार विष्णु १०००	४२० ५२९ ५३३ ५८१
वज्रसख्य ५३ ६३ ६४	वराहो ९४०	५८३ ५८४ ५८६ ५८७
६५ ६७ ६८	वरिष्ठता ३७१	५८९ ५९८
वज्रसख्य अंगशाय १०	वहम १० ११० ३४६	वसिष्ठ-वसिष्ठ १६२
वज्राभिधान ११	३४८ ३५५ ३५६ ३५७	वसिष्ठ १२०
वज्रायुध ९१	४३९ ७२८	वशिष्ठसहिता ३४४
वज्री ६८ ६९	वर्क ९०२	वसंतराम ९५९
वज्रीवज्रपर ७१	वर्गसौ ३३९	वसिष्ठ ३६८
वज्र महा ईश १४५	वर्ग ८४६ ९२७	वस्तु अनुसूचन ८५०
वहव्यास १०३	वर्तिका मंग ९७२	वस्तुगत ८३०
वहवरेव ७९	वज्र १३९	वस्तुगत भ्रामम् ८२४
वाम ६३५	वज्रेश्व ८२ ९५ ४५४	वस्तुगत सौम्य ७९६
वासुदेव ५६८	वहवरेव ह्यम् ९९	वस्तु-पारम-योग ७१०
वामना १५४ ३३२	वहवरेव-विद्याम्पय ८३८	वस्तुमिह सौम्य ७५५
वामनायुध ६५० ६३८		वहवरेव २६४
वहवराह १०	वहमह १५३ १५६ ९५६	वहवरेव अक्षरिया ९८६
वहवाम १०	वहमह रूप १४३	वहवरेव शाह महम ९६६
वराह ४ १३ १९ १००	वहवाम ३३८, ३६२	
१०१ १३३ १३७ १४१	४०६ ९७३	वहिल ९५१
१४२ १४७ १४९ १५३	वहवाम और ह्यम् ३३१	वहवरेव अज्ञा ८१८
१५४ १५६ १५७ २१५	वहवाम क रूप १४५	वहवरेव ८९८
२९९ ३०१ ३०९ ३१०	वहिल १० ११ २० ९९	वहवरेव १३
३३० ३३२ ३३६ ३४०	१०१ २१५ २२१ २९९	वहवरेव ४५४
३६४ ३७६ ३७९ ४१३	३३० ३३१ ५१८ ५३७	वहवरेव ८०१
४१३ ४१५ ४१७ ४१९	५४३ ९७१	वहवरेव और प्रतीयमान ८१
४२१ ४२१ ४५१ ४६१	वहिलवग्य ०९७	वहवरेव संहिता ३६०
४७४ ४९५ ५०८ ५३७	वहिलवग्यम ५१२	वहवरेव ४१३
६५३ ६६३ ६७८ ७२०	वहिलवग्य ९२२	वहवरेव २४३
९१६ ९१७ ९३४ ९९८	वहिलवग्य ३९	वहवरेव ८०२
९९९	वहिलवग्यम १३६ ३२९	वहवरेव ७३७

का	बाणी	६१	बाणमीकि	६१ ८१ ९०	बाणुपुत्र	
का	बाणसद्वय	१८४ ५५४	१६१ ५०२ ६ ४	६०५	बिक्रममेव	
का	बाण	८३०		७९४	बिदरगिह	
का	बाणराज्य	४५५	बाणमीकि रामायण	७ १२६	बिनास क्रम	
का	बाणी (अभिषेक)	९२०	१५८ १६३ १६०	३४०	बिनासक्रम मनोमौ	
का	बाणी (अस्तित्व)	९२०	३४८ ३८३ ४०९	४१५		
का	बाणी (अति घमास)	९२०	४१९ ४७४ ४८५	४९३	बिनासवाद	
का	बाणी (प्रकृति)	९२०	४९० ५०२ ५०३	६१९	बिह्वल	
का	बाणी (प्रभाव)	९२०	९४० ९४१	९८१	बिह्वल मानव	
का	बाणी (रहस्य)	९२०			बिह्वल	
का	बाण	९४६	बासिह	२००	बिह्वल	
का	बाणस्पतिक	६६०	बासुकी	३५५	बिह्वल	
का	बाणधर्म	५६०	बासुकी छीका	३९९	बिह्वल	
का	बाणन ११ १०० १०१		बासु ६२६ ८०४ ९२०		बिह्वल ४१ ५० ५५	
का	१४२ १४० १४५ १५३		बासुका ९२८ ९३०		८५ ५०५ ९२४	
का	१५४ १५५ २१३ २१५			१००१	बिह्वलबाण	
का	२२१ ३१० ३१४ ३६२		बासुकात्मक	८३५	बिह्वल नृसिंह रूप	
का	४०६ ४०७ ४९९ ४६१		बासु का	९२८	बिह्वल पाठ द्वितीय	
का	४९४ ५११ ५१८ ५००		बासुदेव ५ ६ ८ १९		बिह्वल पूजा विधा	
का	६५० ६७८ ६७९ ७२९		८२ ९० ९८ ११५ १३०		बिह्वल रूप ८८ १५०	
का	७३० ८१२ ८२० ८४८		१६६ २४१ २४४ २४६			
का	९१६ ९१७ १०००		३ १ ३२१ ३२३ ३२८		बिह्वलबाणी	
का	बाणन अवतार	२०	३२९ ३३८ ३७३ ३७५		बिह्वल श्रीकृष्ण	
का	बाणन युग	६०० ६०८	३७६ ४४९ ४७६ ४७७		बिह्वलत्मक प्राकृत्य	
का	बाणनरूप १५२ ४३१ ५३६		५२५		बिह्वल पाठक	९३१
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव उपाख्याय	१४२	बिह्वल	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेवक	५२२	बिह्वल विमान	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव का पूर्वावतार	३०१	बिह्वल विपुला	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव कृत	१५०	बिह्वल विज्ञान	६०
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव कृत ५२१ ५२५		बिह्वल विज्ञानवाद	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव के अवतार	३८६	बिह्वल	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव के रूप	१९५	बिह्वलदेव	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव-नारक-सम्वाद	११५	बिह्वलनाथ	३७२
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव प्रतिबासुदेव	९९ १००	५८४ ५८५	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव मक्ति	५२२	बिह्वल मयावाप्	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव मूह	३०९ ३७३ ३७४	बिह्वलरूप	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९	बासुदेव धारण अग्रपाठ		बिह्वल	
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९		५२८ १००४	बिह्वल	१९० ६१२
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९			बिह्वल	५१
का	बाणनवाचन	४२९ ४४० ९९९			बिह्वल	

विष्णुमूर्तौ	७१९	वृषभ	३३	८९	वैदिक धर्म की रक्षा	३०९
विष्णु स्वरूप	४५५	वृषाकपि		४१६	वैदिक विष्णु	५०२ ५०६
विष्णुस्वामी	३७५	वृष्णि वही वामदेव			वैदिक संहिता	५५०
	५३९	वृष्ण		५१४	वैदिक संहिताओं	२९५
विमर्त	३४९	वृष्णिसत्र		६८४	वैदिक साहित्य	१२६
विस्तारण	८६३	वेणुगाम		९५७	३१० ३४५ ३५० ३५६	
विस्तारोवाच	९१६	वेणु-वोपास		९९७	३६८ ३७० ३८१ ३८२	
वीच	९०	वेद १८४ ३७९		९३२	४१२ ४१४ ४१८ ४३२	
वीतराग	९४	वेद की श्रवणों के			४५१ ४६२ ४६५ ४८०	
वीमात्स	८४३	रूप		५६५	४९० ५२० ५२१ ५२४	
वीर	९९३	वेद की लिप्या के				७२९
वीरता	०६२	मिश्रित युद्ध		४४४	वीनायक	१३५
वीरमद्र	९५३	वेदना		६०	वीरजय सूत्र	० १० ४०
वीरदौब सम्प्रदाय	११६	बहमय		४३८		२०२
वीरेश्वर	११०	वेदवाणी		१२०	वीरव	३४० ३६४
वीराहात	९१० ९१८	वेदमिथ		४५५	वीरभरय	३४०
वीथ	१८ ३५२ ३७४	बन्ध्याय	४५४	४५६	बन्धुवियी	१४
	४३३ ४३८			६०५	वैदिकिष्ठ लह	८६४
वीर्याचार	९४	बन्धुविय		११६	वैदिकिष्ठ धतन	७४९
पुष्पावा	०४४	बन्धुविय मन्त्रा		३६३	वैदिकिष्ठ मन	६९६
पुष्टि	९२९	बन्धु का प्रयत्न		४१०	वैदिकिष्ठ मूक्य	७९४
पुष्टि (श्रीका)	७६१	बन्धुकिमन रूपमणी री		५९८ ५३०	वैदिकिष्ठता	७००
पुष्टि मतीक	७३२				वीराम्य	१८ ११० १३९
पुष्टि (रूपामक)	३८१	वेमन्तार के शिल्पलेखों		५२३		३५९
पुष्टानन्द	१९०	वैकुण्ठ	३३ १९१	३१४	वीराज	३३९ ३६०
पुष्टानन्दकार स्पृह	३१	३४१ ३६६ ४६३		९३९	वीरोचन	४२ ४४ ४०
पुष्टा	६१२	वैकुण्ठ गोकुल		१६०		६० ७२
पुष्टारन	३४८ ३४४	वैकुण्ठनाय		४६६	वैदिकतमन्त्रमन्त्र	११६
३८८ ३८० ४०० ५१३		वैकुण्ठमिथ		६६३	वैदिकिष्ठ	३००
५९१ ५९५ ०४५ ९९०		वैकुण्ठमिथ		६६३	वैदिकिष्ठ	३००
पुष्टानन्द कुत्र	९८८	वैकुण्ठ		९३१	वैदिकिष्ठ	३८० ४८३ ९४४
पुष्टानन्द रम	५९५	वैकुण्ठ		४४०	वैदिकिष्ठ भयना	३३
पुष्टदारण्यक	३५१ ३५६	वैकुण्ठ		९५	वैदिकिष्ठ भयना	३१
पुष्टदारण्यक उपनि		वैकुण्ठ		५४६	३२ ३४ ४४ ०४ ४३९	
पुष्ट	१८१ ४५३	वैकुण्ठ		६३०		४५५
पुष्टदारण्यकोपनिषद्	३९०	वैकुण्ठ		५००	वैदिकिष्ठ भाषाय	४१
	४८९	वैकुण्ठ		५२३	वैदिकिष्ठ उपनिषदों	३५६
पुष्टपार्य	११५	वैकुण्ठ		५	वैदिकिष्ठ विग्रहण	
पुष्टरचना	३५५	वैकुण्ठ				०३० ९८०

बैष्णवतंत्र	३३	३६४	व्यूहरूप	५२२	शाक	८	१४	१६	३३
बैष्णव धर्म		१६२	व्यूहवाद	१८२	साह्य	११४	१३२	१४०	
बैष्णव धर्म रत्नाकर	३४४		३७०	३७५	३७३	१८४	२६३	३०९	३४५
बैष्णव पुराण	१०		व्यूहवादी	३८९	४४०	४५४	४६०	५१२	५८०
बैष्णव महाप्रभास्कर		५५५	व्यूहवादीरूप	३७३			६०४	९४४	
बैष्णव मूर्तिकला	१९७		व्यूहप्रभक रूप	३७५		सङ्करनाथ फकप्रार्थि		१००	
बैष्णव विभूतिवाद	७२		व्याकरण	१२१		सङ्कराचार्य	३५४	३७०	
बैष्णव सम्प्रदाय	१८	१९	व्यास	३४७	६६१		३९८	४६९	९६९
	३००	३६३	व्यासपाद	१३४		शाङ्ख	९२	८७०	९३८
बैष्णव सहजिया वाद			व्यावहारिक प्रतीक	७३३		शङ्खपाद		४८६	
सम्प्रदाय	३९७		व्यावहारिकी रस छीका			शङ्खामुर	२१५	२९९	
बैष्णव सहजिया				४०१			४११	४५३	
सम्प्रदाय	३९७		व्यास	१०	३९	९७	शङ्खामुर मूल्य	९६७	
बैष्णव साहित्य	२		३१५	३४०	३६३	३७०	सखी	५९०	
बैष्णवीकरण	८०		४०६	४०८	४५३	४५५	शाङ्खार्थक	४६३	
बैष्णवीकृत महाकाव्य			४५३	५४१	५८३	६०४	सतपथब्राह्मण	३५१	
	३६८	४९८			७४१	७४५	३६२	४०८	४१९
बैष्णवीमाया देवकी	१६०		व्यासावतार	४५६			४२८	५६८	४७०
घत	३०७		शु				४९०	९८०	
जिम्स	१३३		शक्ति	१८	६०	१२१	सतस्रसहिता	११६	
जेडसे	११०	१११	१६७	२१०	३६५	३६९	सतस्रतीय	११४	
क्याक	३१०	३२०			३७४	३३२	सतस्रस्रज्योति	६१	
क्याक अवतार	२५९		शक्ति का विपात	६४६			शम्भु	५०	९२७
क्याककरण	७३१	७३४	शक्ति का अवतरण	६६२			शम्भुचिन्म	६४४	
	७४६	७८३	८९५				शम्भुप्रतीक	३५३	
क्याकगत	७३२	७४८	शक्ति को मूल	११९			शम्भु प्रहमपथेषु	४०१	
क्याकगत अहं	७३२		शक्ति (पुराणकारण)	६६९			शम्भुप्रार्थना	८०६	१
क्याकगत ईश्वर	८३४		शक्ति (परा)	९३१			सम	१५३	
क्याकगत मनाविज्ञान	६९०		शक्तियुक्त कलावतार	३५२			शम्भुरामुर	५०६	
क्याकदेवर शास्त्री	९५५		शक्ति (साध)	९३१			शम्भु	११४	
क्याकप्रम	९०४		शक्ति ह्रादिनी	३९६			शम्भुसम्प्रदाय	२८९	
क्याकप्रतीक	७३३		शक्तियों	७९४			शम्भु	१२३	१२५
क्याक	३२३		शक्तिर्षी की अवतरण					६६१	
क्याकप्रमार्मी	३३५						शाक पूर्व अवस्थापी व्यूह		३६१
क्याकप्रामा	७३४		शाक्यदास	३६३			शाक	३	९६२
क्याकप्रति	८४८		शाक्यवदा	३२८	३६२		शाक्यमत	३५३	
क्याक	३३१	३०५	३६५				शाक्यवदावतार	४५५	
	३३४	३६१	३६३				शाक्यमुनि	१३	६९
	५३९		सत्यसिद्ध	३०	४४०			२८	
			शाक्यविद पुत्र	४४१				३९	५७

शाक्यसिद्धार्थ	१० ११	शिव	४१ ४९ ५१ ७२	शिशुपाक	५३४
शास्त्रसिद्ध	३९	८३	१०३ १०३ ११०	शितल	८५
शास्त्रमाध्य	२९३ ५८३	११४	११० १३० १४५	शीक	३ १३० ४३२
शास्त्र	८२३	१८७	२१७ २२२ २२९	शीलधर्म	४३
शास्त्र	८५ ८३ ९३	३२०	३२५ ३२६ ३२८	शुभ	१० १९० ५४१
	३३७ ५३८	३४५	३५८ ३५९ ३६३	शुकर्यकर	४३२ ४३३
शास्त्रिणाय	९५	३७३	३८३ ४२५ ४४१	शुकरेश	१०७
शास्त्रिभिः	३४	४५२	५०५ ५१५ ५३२	शुक्लीति	९९१ ९९२
शास्त्रोद्धार	९१०	५३६	५५१ ५७७ ६२०	शुक्ल्युपदेश	४१८
शास्त्रोद्धार	७५०	७५२	७९३ ७९४ ७९५	शुक्ल्य	५७
शास्त्र	१३९	८२४	९२९ ९३२ ९३३	शुक्ल्य	३
शास्त्रीय शास्त्रीय	३८९	९३८	९४६ ९४८ ९४९	शुक्ल्य	७९
शास्त्रीय	९५१		९५४	शुक्लीय	८
शास्त्रधनुष	९८	शिव का अर्धाक्षर	२९२	शुक्ल को कविक	४४७
शास्त्र	७७	शिव का अक्षर	३१९	शुक्लसुत्री	१५
शास्त्रग्राम	१८३ २१५	शिव का रूप	४८	शुक्ल ३२ ६० ६१ ६३	
	९९५	शिवजिरात	११४	७९ १२४	
शास्त्रिग्राम	१९३ २१२	शिव कृपाळ	१५३	शुक्लता और कवता	३९२
	९१३	शिव के अक्षर	१०८	शुक्ल और निराकार	२४८
शास्त्र	७९	शिव के १८ वा २८		शुक्ल लक्षर	६२
शास्त्र	१२३ १२५	अक्षर	११५	शुक्लता ९ १० ४५ ४६	
शास्त्राक्षर	१३३ २४३	शिव क संख	११९	५७ ५८ ५९ ६१ ६३	
शास्त्रीयसूत्र	९२८ ९३२	शिव क और अक्षर		६८ ६९	
शास्त्री या अक्षर	२९३	शिव के विग्रह	११८	शुक्लता भावता	५२
शास्त्रार्थ	२३४	शिव को अक्षर	११९	शुक्लेश्वर	७९
शास्त्रद्वयेन	२८७	शिव का वागाचार्य	११५	शुक्ल निरग्रह	७५
शास्त्रे भास्त्र	२५३	शिवनीहृद	९२८ ९३३	शुक्ल पुराण	७७ ७९
शास्त्री भास्त्र	६८१	शिव-वार्धनी	३०५	शुक्ल पुरुष	९१
शास्त्री	३०	शिवपुराण	११६	शुक्ल संहिता	७३
शास्त्रप्रमाण	११५	शिव विघाट	६३३	शुक्लपति	७७
शास्त्रानुसंध	९३४	शिव यद्दिना	११७ ११८	शुक्ल	११६
शास्त्र	२७९		११९ १३९	शुक्ल ८२१ ८२७ ९२५	
शास्त्रग्राम	२८७ २८१	शास्त्र-ब्राह्मणनी	१३३	शुक्ल	७७
शास्त्रग्रामद्वय	२७३ २७३	शास्त्रानुसंध-रूप	१०८	शास्त्र	११६
	२७३ २७३	शिशु	३२० ५४७	शास्त्र	११६
शास्त्रग्रामद्वयी	२९७	शिशुग्राम	६४५	शास्त्र	११६
शिक्षर	७१९ ७५४ ७८१	शिशु-अग्नि	७०५	शास्त्र	११६
	८११ ८२४ ८३८	शिशु-शुभ 'मै	७२३	शास्त्र	११६
शिक्षर अक्षर	८९९			शास्त्र	११६

शेर	२५४	२७२	२९७	३०१	३०८	३३१	श्री गोपीनाथ कविराज	
शेष	१३२	१७०	१९४	३३५	३३७	३३८		१८१
		३३२	५४०	३४३	३४४	३४५	श्री गायार्जुननाथ	५८३
शेषनामा	१५९	१६५	५७७	३७१	३७२	३९९	श्री गोमार्ह	५५९
		९९८	५१३	५१४	५३५	५३८	श्री चक्रपार	४८३
शेषशायन		९९८	५४०	५८९	५८३	५८४	श्री चाइसिका	५१४
शेषसापी	९२	३२३	५८५	६०१	६५८	६५९	श्री क्षीतस्वामी	५८५
सायन्नाबी बिणु	१५७	९९७	श्रीकृष्ण (जबतार)		५३८		श्री जगन्नाथ जी	५६८
		१० ०	श्रीकृष्ण और राजा		५९६		श्री ज० ह० दूध	५५०
शपत्तापी बिणु			श्रीकृष्ण किराँत		१५१		श्री जे० गौड़	५२६
श्रीरगम्		९५४			९४४		श्री जी० धार० ममकड	४४७
श्यामतार		५७८	श्रीकृष्ण के जबतार		१८९		श्री द्वारकानाथ	५६५
शैलनाथ कृष्ण		१३५			५८८		श्री धरनाथ	९५
शंख ३	११२	१३५	श्रीकृष्ण के साक्षात्				श्रीधर स्वामी	३६५
		९३०	स्वरूप		५५८		श्रीधर्म पुराण	१५१
शंखमूर्ति		७०	श्रीकृष्ण गोबरधन		९९६		श्रीनगर	१०९
शौबतंत्र		३९३	श्रीकृष्ण चरित्र		५४८		श्री मकनीतमिय	१६५
शौबमूर्ति		७०	श्रीकृष्ण चैतन्य		३६६		श्रीनाथजी	१३३ १३४
सैबागम		८००	श्रीकृष्णदास		५३९		५५३ ५५८ ५५९	१६०
साभा	८१५	८३१	श्रीकृष्ण नारायण		१५९		श्रीनाथाष्टक	१३१
शौर्य		८३१	श्रीकृष्ण नृत्य		९६१		श्रीनामादास	५६९
शौर्य प्रदर्शन		९६३	श्रीकृष्ण पूर्वांगनार		५३४		श्रीनारायण	२२८
श्यामा और श्याम		३८२	श्रीकृष्ण ऋषि		३३३		श्रीनिबामाचार्य	५०९
श्यामा-श्याम		३९२	श्रीकृष्ण-युग	६८५	६८७	६८९	श्रीपति	३८७
श्रद्धा (सद्धा)	५	६६१			६८९		श्रीपति असुरारी	५०३
श्रावण २० २८ ४०		४९	श्रीकृष्ण-कविमणी		३८५		श्रीपद्मगोपा	५१४
		५८	श्रीकृष्ण (स्त्रीरूप)		५३८		श्रीपरमानन्द	५३८
श्रावण उपाय यज्ञ		२०			९५४		श्रीपरशुराम चतुर्वेदी	२३४
श्री १८ २० ६४		११०	श्रीकृष्ण मन्ददास		५५९		श्रीप्रहृति	३९४
		३५३ ३५९	श्रीकृष्ण साहित्य		५०२		श्रीप्रसादा	५१३
श्रीबरविन्दु		२३०	श्रीकृष्णसत्तराज		३३४		श्रीमगधनमज	५६६
श्री ७० के० कुमार			श्रीकृष्ण स्वामी भावगर		४९९		श्रीमगधन मुद्दिन	३४४
श्यामी		५५०			१५२		श्रीमदु	३८८
श्रीकंड	११०	१२४	श्रीकृष्णहरि		१६०		श्रीमज्जगबजूता	६८४
श्रीकर्मा		५६८	श्रीकृष्णोपनिषद्		५९२		श्री मन्नागधन	१५३ ३०६
श्रीदेशाध्यास		१५४			५१४		३ ० ३२८ ४६५ ४९४	
श्रीकृष्ण	१३ १५	५२	श्री जेमा		५१४		५३१ ५९३ ६२१ ७३२	
	१९५ १४८ १५३ १६०		श्री गोकुण्डचन्द्रमा		५६५		९३२ ९५४	
	१९७ १९८ १९९ २५९		श्री गोपालजी		५६६			

श्रीमद्भागवत पुराण	१४२	श्रेष्ठ		संगीत रत्नाकर	१४०	१५३
	३१२	श्रेय	५००			१५२
श्रीमापुरीदाम्य	५१३	श्रेयान्त	८१९	सद्यदल्ली		१५६
श्रीमापुरीदास की		श्रौत	८५	संघर्षण		९०
‘दानमापुरी’	५१३	श्वेत	१३५	सपस्वरूप		५५
श्रीमानी	३६३	श्वेत द्वीपवासी	११६	सचयन		१०४
श्रीमैकलिक	२३३	श्वेत द्वीपवासी मारायण	४८०	सचारी भाव		८२०
श्रीरगनाथ	५६८	श्वेतपाद	११०	संज्ञान		६०
श्रीरगम	४९९	श्वेतवराह	४१०	संश्लेषणीयता		८११
श्रीरमन्नाथि	५४०	श्वेताश्वतर	३२४	समय		८५
श्रीराम	१५५	श्वेताश्वतरोपनिषद्	४९५	समव		९०
श्रीराम चौधरी	५२३	य		समवनाथ	९०	९३
श्रीराम-युग	६८१	य		सयोग		५३३
श्रीरामरूप	१४०	यटरस	८१२	संपोगी करण		८६३
श्रीरुक्मिणी	१६६	पद्मगुणो	११०	संभग	३३८	८११
श्री रूपगोस्वामी	३६४	पद्मपर	५०		८३०	८३६
	५६६	पाद्मगुण्य	३५२	संभारमक अनुमृति		८३०
श्रीरुक्मिणी	५१४	पाद्मगुण्ययुक्त	२०८	सवेदन		८३६
श्रीराम	५१४	पोद्मक कला	३२१	मयवृत्ता	८२८	९२४
श्रीपाराशदा	१०	पोद्मककला युक्त	३०२	सङ्घतिसारय		५०
श्रीबल्लभ	५१४	पोद्मककला युक्त युक्त		सङ्घति रुपिणीशक्ति		६४
श्रीबल्लभदाम्य	३३०	पोद्मक कलाओं	३६८	सनायवाङ्		७४९
श्रीबल्लभाचार्य	६०१	पोद्मक निर्यातव	३१०	संदार	३०२	३०५
श्री बिदुल	५६५	पोद्मक प्रकार	११३	सहारफ	९४	५३८
श्री विष्णु	११	पोद्मक सिद्धी	५५६	सहारमृत्ति		९४८
श्रीरंग	९५	पोद्मका	१३४	संकटासिद्ध मूरिभवा		१६३
श्री मनात्म शास्त्र्यामी	५६६	म	१२०	सकल परमात्मा स्वरय		९५
श्री मिह श्रीरजनाथ	१४०	संघर्षण	२१८	सत्ता अक्षतार		६१०
श्री मुमगा	५१४		३२८	सत्ता मारायण		४००
श्री मुलाचना	५१४		३३५	सत्तामाय		५५५
श्री हरिबग	५९५	संघर्षण-बालवृक्ष	३४४	मन्थारूप		६११
श्री हरिप्याय	५२५	संघर्षण	३५५	मनियों क अक्षतार		५९८
श्री हरिहर प्रपञ्च	३३५	संगीत	४९५	मनियों क रूप		४०२
श्री दिनारिचर	५९३		९२३	मानी		१८५
	५९४		९२४	मन्वीभाव	५१३	५९३
श्री हेमा	५१४	संगीत	९२५	मन्वीरूप	५९२	५९३
शुनि की श्वाते	१६५	संगीत दाम्याद्वर	९४०	मन्वीरूप	६११	६१३
		संगीत पारिजात	९३८	मन्वीरूप	६११	६१३
				सकय		५९०
						१८४

सगर	९३	सत्वगुणावतार	४६७	सम्प पीपा	१९७
सगुण	६४ १७१ १७९	सदासिंह	१९२ १९४	सम्प मुर्दाबि	२८९
	५३१ ५५६ ९८२		१२५ ३०९ ९४७	सम्प रज्जव	१७७
सगुण अवतार	१ ०७	सद्धर्म	४३	सम्प रैवाम	२२४
सगुणरत्न	७३३	सद्धर्मपुष्करिक	६ ७ ८	सम्प सुखेसाह	२८८
सगुणप्रद्य	३६७ ५४१	२३ २८ ३६ ३७ ३८		सम्प विनाबा	१८३
सगुणमक्त	६१ ८०३	४२ ४७ ४८ ७६ २७९		सम्प लैलाइमाहिम	२८७
सगुणभक्ति	१४८	सद्योजात	११६	सम्प साहित्य १६७	१८०
सगुणमूर्त्ति	७९७	सन्	४८९	१८३ १८७ १८९ २१६	२२७
सगुण स्त्रीका	३८१	समक	४८९	२२२ २५५ २२६ २२७	३१९
सगुणहीलम रूप	५४३	समक मर्मवम	१३१	सम्प सुन्दरदास	१७७
सगुणवाही	४२२	समकादि	३३८ ३५२	सम्प ही अवतार रहे है	१७३
सगुणशिव	११८	३६२ ५३२ ५३६ ५४१			
सगुणसाकार	९५ २४	समकादिक	४६५ ६०४	सम्पान	११५
	८१९	समकादि सगुणदाय	५८०	सम्पित क सिवान	२४
सगुण	११		५९२	सम्पों का ईश्वर	१००
सगुणभाव	४१	समग	४२९	सम्पानपनाथ	१३५
सच्चिदानन्द धनराम		समरकुमार	९६ १०७	सम्पुर्माबि	६५३
सत	२१९ २९० ३९६	२९६ ३५० ४८२ ४८९		सम्पिकाक का प्रतीक	३५९
	३९७	५७६ ६७७ ६७८		सम्पिनी	३९९
सतपुग	३२१	समम्बुद	४३९	सम्पियुग	३७४
	५११	समानम	४८९ ५४३	सम्पानित	६५३
सत्य	३१४ ३२१	समानत वेबता	४८१	सम्पयपि	२४७
सत्य और शक्ति	६३३ ६३५	समानत नारायण	४७८	सत्यता	६०
सत्य-काम	४६२	समानत परब्रह्म	७९	सच्छन्दम (Sublime)	
सत्य (तार्किक)	८८६	समानत सता	६६५	९०५ ९०६	
सत्यनाम	२७७	सम्प	४ १०२ १०५	सम्पय	५१
सत्यबुद्ध	२९	१७७ १७९ १८० १८३		सम्पयारमक अवतार	५९
सत्यमामा	५३६ ७७१	१८६ २०५ ३०० ८०५		सम्पयसय	६७
सत्ययुग	११ १३ ३९	सम्पअवतार	१७८ २३५	सम्पय	१७ ६८
७२ १०९ ११० २१७		सम्प ईश्वर	१८९	सम्पसी भाव	४३
२१८ २१९ ५५७		सम्प उपास्य	१७२	सम्पराइत	९३१
सत्य (हमशीय)	८८६	सम्पकृति	८५४	सम्परागम मृदुपार	९७४
सत्यपती कथा	३०६	सम्पकाल	१९५	सम्पकार	९७१
सत्यप्रत	३६३	सम्प मुकाराम	३३४	सम्पि	३२२
सत्या	३५२	सम्प शिम्पवम	६१३	सम्पिअम्पयामी	३३६
सत्यगुण	३४७	सम्प दानू	१७३ १७७	सम्पदवाग्मा	६३८
सत्यगुण विनिष्ट	३१३	सम्प दाम	६०३	सम्पानघातरीय	६३१

समाप्तीकरण	१४२	सरीसृपमीष-युग	६०१	सहजज्ञान	८५१	८५२
समाधान	८०८	सरीसृप प्रकृति	६१८	सहजज्ञान द्वारा	८५४	८५५
समाधि ४५	८४०	सरोजवज्र	६४	सहजधर्म		४२
समाप्तमूर्ति	८३५	सर्ग	३७९	सहजनिर्घोष		५५
सामोक्ति	१४१	सर्प	३९८	सहजपाती	४४	५२७
समाहित	९०७	सर्बतयागतकर	७१	सहजरूप		३३१
समुद्रफुमार	५७१	सर्बतयागत स्वरूप	९०	सहजविश्व		८५३
समुद्रमन्थन १९३	३२२	सर्वधर्म	९१	सहजवृत्ति		७००
४१९ ४२० ४२१ ४४५		सर्वपुत्रात्मा	५५	सहस्रसिद्धि		५५
४९२ ६६८ ९१७ ९२७		सर्वमूलास्तरात्मा	१८०	सहसा		८४८
९२८ ९३८ ९६७ १०००		सर्वमगला	३००	सहस्रिया बौद्ध		५०
संगति	४५	सर्वमरुत	५१	सहस्रेष		१५९
संग्रहाद्य	३६२ ३७१	सर्वमामात्म्य प्रतिभा	७३५	सहस्रकवच		४३५
	३७९ ५१९	सर्वमिद्धि विमान	८६	सहस्रनाम		१३६
संग्रहाद्य प्रहीय	३७४	सर्वाकार	१९ ६४	सहस्रबाहु	४३६	४४२
३७६ ५५८ ५७० ५७८		सर्वातिशायी अकर्मबाद्	९७७		६५८	६८१
	५७९ ५८२			सहस्रसार्पा		४४१
संग्रहाद्य प्रबलक	३२९	सर्वात्मबाही	११० १८७	सहस्रार	१ १०७	४४२
संग्रहाद्य-प्रवर्तन	५८९		२०७ ६२४	सहस्राहुन	१३५	१३९
	५९८	सर्वात्मसार्पी	५३२		४३४ ४३५	४८२
संग्रहाद्यबद्ध	३९१	सर्वेन्द्रिय	१९ ६४	सहायता		३२९
संग्रहाद्यमुक्त	३९१	सर्वेन्द्रिय रमस्व	३२६	सहिष्णु		११६
संग्रहाद्यीकरण	५३०	सर्वेश्वरबाह	३६२	सहृदय ८०६	८१३	८२०
संग्रहाद्यो का प्रवर्तन ३३		सर्वेश्वरवादी ईश्वर	८४७	८२७ ८३१	८३२	८३४
सम्पुद्ध ४५ ४६ ४७ ५३		सर्वेश्वर विष्णु	९९४		८३९ ८८२	९६१
सम्मलप्राम	४४३	सर्वोत्कथ प्रयाग पुरुषर		सहृदय स्वच्छि		८८१
सम्भोग	५६	बाही रूप	५५०	सहृदय व्यापार		८१३
सम्भारकाव	६९ ७८	सर्वोत्कर्षवादी	१५ ८८	सहाद्वारक		७७४
	४३७		११० ३८५	सहाद्वरा		१५६
सम्प्रीहन	३३०	सत्समुजान	४८९	सांगवद्वपन		७०७
सम्पक सम्पुद्ध	२१ २३	सत्यान्तर पैगम्पर	६३९	सांगमयोग		१४२
	२८ ३१ ३६	सतिष्ठन	८९१	सांगमवादी अवनार		
सम्पक सम्प्रीधि	२८	सपित्तकसामक निर्दि		गृष्टि		३११
सम्प्रीधिय	११९	अव्यय	८९१	सांगमवादीतत्व		३५१
सम्प्रीधिय	१३	सत्परी अणवार	६१०	सांगमवेलाकपिट		४८६
सम्प्रीधिय	१६ ४६ ५६	सहस्ररी भाउ	५१३	सांगमशास्त्र		१२९
	५९ ६२ ६६ ७१ ७५	सहस्रकाव	५३ ७५ ७६	सांगममूत्र		३५५
सम्प्रीधिय	७४	सहस्रक्रिया	८४९	सांगमवागमकप्रतीक		९११
सम्प्रीधिय	६६८					

संज्ञासूचक	१० ४	सामवेद्य	३५५	साम्प्रदायिक अवतार	
सौत्पायन (ऑर्ग)	८११	सामाजिक	८२० ८२१	बावी	७३५
सौत्प्रतिक प्रतीक	६८२	सामाजिक भ्रम	६९६	साम्प्रदायिक काव्य	८७७
सौत्प्रतिक रूप	७५५	सामाजिक श्रुत्य	७५४	साम्प्रदायिक पद्यति	२१३
साकार १२२ १७६	८९७	सामाजिक साम्यत्व	१८३	साम्य	३१३
साक्षात्	३२९ ३६१	सामान्य	८७९	सानुस्य	९०७
साक्षात् अवतार	३६१	सामान्य अवतारण	६४५	सारूप्य	९७७
साक्षात्कार	२५७	सामान्य ध्याकर्षण	७८८	साक्यमत	२७३
सागर	३५५	सांख्यिक क्षयिताम	१४८	साखिक	२७५ २७७
सात अवधार	३१४	१४९ १५५ ७०१	७३१	सासानीवस	२८१
सात इमाम	२८१	७३२ ७३३ ७२०	८०१	साहस्य	२१२
सात ठषमात	३०	साम्बुद्धिक अभिव्यक्ति	७०१	साहित्य	७१ ७३७ ८२०
सातसम्बन्ध	३१५	साम्बुद्धिक अवचेतन	६३०		८७८
सात्वतसम्बन्ध	३२२ ३५२	साम्बुद्धिक अवचेतना	६५४	साहित्यकोश	८७६
३५९ ३२१ ७५८	३३८	साम्बुद्धिक अवतार	३४	साहित्य दर्पण	८२०
	३९१	३५ १५८ १६४	५००	साहिबी सम्प्रदाय	१७९
		५८९ ५९०		सिंह	३४७
सात्त्विक	८०१	सांख्यिक अवतार परंपरा	१६७	सिंहक नामक द्वीप	३०३
सात्त्विकि	६१०			३ ४	
साध्य ८१४ ८२६	९७२	साम्बुद्धिक अवतारवाद		सिंहकद्वार	९०६
साधनमाका ९ १३ १४		१६५ १६६ १६७		सिंह रेक्लिजन	२०४
१२ ४९ ५७ ५१	७१	साम्बुद्धिक अवतारवादी		सिंह ३ ५२ ६९	२१०
	३९३				२२०
साधनामक	६५४	सांख्यिक अवतारवादी		सिंह (८४) ११३,	१२२
साधनयोग	२३४	प्रवृत्तियाँ	१६७	सिंहकौल	२१९
साधनसम्प्रदाय	२१०	साम्बुद्धिक भतना	६८६	सिंहकौल महाकौल	१०८
साधारणीकरण	८०१	सांख्यिक देवावतार	१६३		११७
८७४ ९०४				सिंहपर्यापद्	१५ ६३
साधारणीकृत रूप	८७७	साम्बुद्धिक इलापतार	७७८	सिंह नाराया	१०
साधारणीकृत रसिग	८८२	साम्बुद्धिक नैतिक धर्म	६०७	सिंहपद्	५५ ६२
साधु	८९ १०४	साम्बुद्धिक प्रतिनिधित्व		सिंहपरमेष्ठि	९५
साधुओं का परिचय	३०६			सिंहप्रियमाय	१३५
साधुओं का सामान्य				सिंहपञ्चना	१३१
अवतार	३२१	साम्बुद्धिक श्रवण	६९९	सिंह (पीड)	४
साधुकाव्य	८१२			सिंहसम्प्रदाय	४२१
साधुमती	४५	साम्बुद्धिक भावप्रतिमा	८६५	सिंह साधना	६२
सामजातक	७	साम्बुद्धिक मनोव्यक्ति		सिंह-साहित्य ४ १६ १७	
सामन्तसम्बन्ध	४० ६४			३१ ४३ ५६ ६५ ७७	
सामन्विधान साध्य	४५४	साम्प्रदायिक अवतार		१२३ २०६	
४९१		वाद १७५ २०५ २५७			

शास्त्रानुक्रमणिका

१०८७

विद्व. विद्वान्तपद्धति १०९	मुम्बरी	१२१	सूत्र (रचनात्मक) ८४९
१२८ १३९	मुष्ठी	२८०	सूत्र
सिद्धान्तक	मुपष मल्ल	२३३	सूत्रालङ्कार
विद्यार्थ ५०	मुपर्ण	२४३	सूत्री ४ ७३ १०३ २००
विद्वान्त मुल	मुपार्थ	८५	सूत्री कवि
विद्वान्त-सूत्र-पाठ	मुप्रम	९६	सूत्री मक्ति
सिद्धासूत्र	मुषालक	११६	सूत्री मसतबी काव्य २०३
सिद्धासूत्र कौल	मुषोचित	३३०	सूत्री सतों
सिद्धिर्षी	मुषोधिपी टीका	३६७	सूत्री सम्प्रदाय २६७ २६९
सिद्धेन्द्रयाग	मुषाघनी व्याख्या	४२१	सूत्री साहित्य २०६ २३०
सिद्धो	मुष्यहा	२६	२३९ २४९ २५९ २७२
सिन्धुवादिष्या	मुष्यमा	५३० १०००	सूत्रीम
सिफ्त	मुष्येध	२४	सूत्रा
सिप-सहचरी	मुष्येध बोधिसाध	२४	सूत्र
सिम्बुषा	मुष्येध	८५	सूत्रास १५ १४१ १५३
सीञ्जर	मुष्येधगिरि	३५५	१६६ ३०१ ३८० ३८१
सीता २२६ २९८ ३२४	मुस प्रमुस	४८	३८३ ४०३ ४१३ ४२१ ४२२
५०९ ५५६ ९०६ ९४०	मुसनि	६९४	४२५ ४२६ ४२९ ४३०
सीनापति	मुसभि	२०५	४४४ ४५० ४५३ ४५६
३८०	मुस	३८३	४५८ ४६१ ४६३ ४६९
मुहज २०५ २२० ३९६	मुसमाम	२६७	४७१ ४७२ ४७३ ४७९
मुगावती ध्युद ९ १२	मुसनातबाहु २५५ २५६	८५	४८४ ४८७ ४९० ४९२
मुषीव १३२ १५९	मुसिधि	९६५	४९३ ४९४ ५३२ ५३३
मुसुडी २९ ४३९	मुसत	७०३ ७१०	५३५ ५४० ५४५
मुसुतार	मुसमा-मुस्य	२८६	
मुसुत कया	मुस्येन लंगर ७०३ ७१०	११६	
मुसुसाम	मुसुतार्थी सम्प्रदाय २८६	५११ ७२३	
मुसुतानिषक्त	मुसुतोष	४८० ७३१	
मुसुतामा	मुसुत	२९	
१९० १९९	मुसुतकाय	१२४	
मुसुतमाचरित	मुसुतमा	११९	
मुसुतुर्षा	मुसुतमा शक्ति	९१३	
मुसुतुषा	मुसुतमादास	४९	
मुसुतुद	मुसुतमाला	४५६ ६५८	
मुसुतुद-सुषमाज	मुसुत	८५२	
मुसुतुत	मुसुत का सिद्धान्त	८७९	
मुसुतुत और सुकप ७९३	मुसुत (कपी)	८७९	
मुसुतुतुदाय १०४ १०५			
१८९ १९३ १९७ २०२			
२०३ २१३ २३०			
मुसुतुतुदाय			
२६६			
			मूरदास मन्त्रमाहज ६५५ ६१०
			मूर मरदाह ९४३
			मूर लहरी ९४३
			मूरसागर १५३ १६४
			३३१ ४११ ४१३ ४२६
			४५० ४५६ ४५८ ४६१
			४६६ ४६९ ४७१ ४७३
			४७९ ४८० ४९२ ४९३
			५३० ५३७ ५४२
			२२० ३०१

३०२ ३०३ ४ १ ४१८	सेनबाह	१९०	सौम्यर्षामिषि ७८९ ८७९
४२१ ४२२ ४२६ ४३१	सेनापति ४९ ३०१	५१८	सौम्यर्षामिष्यक्ति ७९६
४३५ ४३७ ४५० ४५३		५१९	सौमाम्य ३५९ ८१०
४५६ ४५८ ४६२ ४६७	सेग्विबता	७३३	सौर १३५
४६९ ४७१ ४७३ ४७५	सेग्विय सत्ता	६३३	सौर्य ३
४७९ ४९० ४९२	सेमन	७५४	स्कम्ब ९ १६ ३५५ ३६३
मूर्त्य ९ १० १६ ३३ ५०	सेम्य और सेबक	५६०	स्कम्बपुराण ३९९ ४०२
७२ ११३ १२० २१७	सोपान-सरणि	९१३	४१०
३४५ ३४६ ३४७ ३५४	सोन १० ३४६ ३४८ ३५६	३५६	स्तुतिगान ९३८
३५५ ३५६ ३५८ ३६२		३५७	श्री-पुरुष सृष्टि और
४१८ ४२२ ४२३ ५१५	सोमनाथ पंडित	९४२	शिव के अवतार ३९४
५१९ ६४५	साम सर्मा	११६	श्री-पुरुष सम्बन्ध ३९८
सूर्य का अवतार	साकह कल	३५०	श्रीबाची कृष्णी ३८४
सूर्य क हादस	साकह कल युक्त	२९२	स्थान ३७९
सूपचन्द्र	साकह कला युक्त चन्द्र	३७२	स्थानगत ३००
सूर्यदेव	सोसह कस्यत्री	३१८	स्थापत्यात्मक ८३५
सूर्यपाद	साकह या १२ कला	१७२	स्थापना मंगक ८६
सृजनात्मक कल्पना	सोसह महत्त त्रिप्रा	१५९	स्थापी विग्न ८३५
८६२ ८६३	सोसह स्वात्र	८९	स्थापीभाव ८२१ ८३०
सृजनात्मक क्रिया	सोमेवर	९०४	स्थापीभाव वृत्ता ९९६
सृजनात्मक कृति	साहं	२१५	स्थिरता ८३१ ८७५
सृजनात्मकशक्ति	साहमाय	१२५	स्नेह रस ८२०
सृजनात्मकगुण्य विग्न ८७३	सीगत	४०	स्पर्श ५०
सृष्टि १०६ २३९ ३७५	सौम्यर मन्त्र ३१ ३४		स्पर्शीज्वर ६९१
३७८	सौम्यर्ष १६० ३३९ ७९६		स्तुत्र ८५४ ८५५ ८५६
सृष्टि अवतरण २६० २६१	८१३ ८२४ ९०३ ९२४		स्वाट ८५५ ८५६
सृष्टि अपतार १२३	सौम्यर्ष चतना ७८५ ८३२		स्वयंभवाव
सृष्टि अवतार क म्य २५९	९२९		९३२
सृष्टि अवतार क्रम १२१	सौम्यर्ष बाघ ७०९ ७१२		स्मृति १२२
सृष्टिचक्र ३८	७८५ ७८६ ७८९ ७९०		स्मृति विग्न ८०८
सृष्टि (देव) ८४६	७९९		स्मृदानुकरणात् ८०४
सृष्टि मानव ८४६	सौम्यर्ष-नाचना ७९७ ८२९		स्वप्न ८१४ ८२६ ८६६
सृष्टि विषादिनी कल्पना	सौम्य-मूष्य ७९३		स्वप्नातत्र ८६३
८५९	साग्दर्यमयी अभिग्यति	७८१	स्वप्न-विग्न ८ ८ ८६६
सृष्टि पिपादिनी क्रिया			स्वप्नावस्था ३९०
८७२			स्वप्नापन ४१ ७५
सृष्टि गणना ६४८	सौम्यर्षताम्र ८९३ ८८४		स्वप्नापान्ति ७४२ ८६३
सहाद्वेषा टीका १५ १८	साग्दर्य संवेदन ७८८		स्वय ३६४ ३७०
१० ३३ ३४ ५३ ६४	सौम्यर्षानुगृति ७८९ ७९१		स्वयंप्रकाश ८५१
४४८	९२५ ९ १ ९२३		स्वयंभु ७२

स्वयं बुद्ध	४५	६०	१०२	हकीकते मुहम्मदी	२६८	हरिदामी	४००	५९२
स्वयं भगवान्		३६८		हगिम्सन	८५२	हरिपुरण		९४२
स्वयम्भू	१०	५९	६८	इसरत मुहम्मद्	२६६	हरिमेम स्वरूप		५४३
७१	८३	९०	९६	दबारी प्रसाद त्रिबन्दी	१०४	हरिमद		५४३
११२	१६१	३३९	४३९	हनीसों	१०८	हरिमक्ति रसाशृत सिम्बु		११५
			९६८	हनुमन्नाटक	३४४			
स्वयम्भू पुराण	७२	७३		हनुमान	३५	हरिमया		३३०
			७५	हनुमान जी का अष्टाव	३५	हरिरामप्याम		४६०
स्वयम्भू विग्रह		७२		हनुमान शिब क अष्टाव	३०९	हरिबस १४१	१५८	१५९
स्वयं रूप	३३८	३६९			१०४	३६३	५९२	५९५
		५२९		हनुमान जी का अष्टाव	३०९		५९८	६०३
स्वयं रूप धारण		२००		हनुमान शिब क अष्टाव	६१९	हरिवस पुराण	८१	८४
स्वयं व्यक्त		५५६		हयग्रीव ४ १२ १४ १९	४९	९०	१४२	१४९
स्वयं मित्र		८३		४९	९०	१४२	३०३	
स्वरूप प्रकाश		५९०		३०९	३१०	३४०	४०३	
स्वरूपपावनार		३६९		४०८	४११	४४१	४४९	
स्वरूपपावन	३२९	३६२		४५१	४५२	४६१	४७१	
स्वर्ण-वराह		७२०		४९४	४९५	६०२		
स्वर्ण	३३८	३३९		हयग्रीव अष्टाव	४५२	हरिबर्ष		३०९
स्वर्णशास्त्र		३६३		हयग्रीव रूप	४५२	हरिबल्लभकवि		९३०
स्वादानन्द		८२५		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास ३३३	५९३	६०२
स्वादानुद्वलन		९३६		हयमुख	४५३	हरिभ्यास देव		३९०
स्वाग्नाः मुग्धा	२४५	२४५		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास देवाचार्य		३८८
	८४३	९४३		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यासार्ति		९४२
स्वामासकाय		५६		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		१००
स्वामासिकाय		५३		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		५४३
स्वामी		४३०		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		१६
स्वामी हरिदाम		३९२		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		१३
स्वयम्भू		४६०		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		४४१
मगार्पमिद्वि वैष		९५		हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		८२
ह				हयग्रीववध	४५३	हरिभ्यास		५४३
हम	७६	१४१	२१९	हरि अष्टाव व्यास	६१४	हरि-दलधर		८२
३३६	३५०	४०६	४७५	हरि की कलापे	३५०	दल और मूलक		६८६
हंसप्रज्ञापति		४६३		हरि की लला	३५०	दलधर	१४३	१५६
हमराज		४३३		हरिग	३५०	दलधर		२३३
हमरजका		३१०		हरिगिनाद	३५०	दलधर		२८२
हमावतार	४६२	४६५		हरिदाम	५१४	दलधर		९८४
		४६६			५१४	दलधर		२६३
					५१४	दलधर		२४०
					५१४	दलधर		८३१
					५१४	दलधर		८३५
					५१४	दलधर		९३२
					५१४	दलधर		८९०
					५१४	दलधर		२४१

दाहृत धीर छात्र	२४३	४२५	५०६	५३६	६०४	इक्ष्वाकुवकारक	८९०
हिंसा धीर अहिंसा	६५९	हिरण्यगर्भ	९	१२५	३२४	हेगेल	६९१ ६९६ ८०३
हित	५९२	३२०	३३९	४८५	६६०	८२६	८३६ ८३७ ८४१
हित चौरासी	३९१	५९२	६६१	६६५	७५४	९३८	८४५ ८५८ ८६२ ८९०
हित सेबक	३९१	हिरण्यमय	३०९	३९७		८९१	८९६ ८९९ ८९९ ८९४
हित सेबक दास	५९४	हिरण्यमय हयग्रीव	४५३			८९६	९०१
हित हरिवंश	३९१	३१४	३१९	५०८		हेगेल रमधीमता	८९१
५९२ ५९३	९४२	हिरण्यवाक	४१५	४१९	५०८	हेमज	१८
हिन्दी काव्यधारा	१४४	हिरण्यवाक वय		४१०		हेमजतन्त्र	१० १८ ६४
हिन्दी का मराठी स्रोत		हिरियवा		९२१			६९
की शैल	१५०	हिरुमहंजी		४९		हेमचन्द्र	८४
हिन्दी भक्तिकालीन		हिसूी आफ तिदपति	४९९			हेरुड	०० ७१
साहित्य	५८०	हीनमान	३६			हेरुडनाम	२०
हिन्दू अवतारवाद	२६४	हीनयामी	५२			हेरुडबीमा	७०
हिन्दू इबता	१४	हीनयामी प्रवेक बुद्ध	२६५			हरा	८३१ ८७५
हिन्दू धर्म	११४	हीरकोथेरियम	६७३			हेसन	९०६
हिन्दू-प्रेमापमान	३०५	हुज्वीरी	२७५ २७७ २८२			हेरुकिस्त	५१३
हिन्दूक	९४	हुसक	२५१ २५७ २५९			हेहयराज	४३४
हिमाकय	३५५	२६४ २७७ २८१				हेहयवस	४३५
हिमालय चित्र	१०४	हुसनी	२३७ २८२ २८४			होमर	८५० ९०४
हिमालय की पुत्री रूप	६१८	हुसनी सम्प्रदाय	२३०			होली नृत्य	९६५
हिरण्यकसिपु	१०१ १९२	हुसमान	२३६ २८४			इम	८३५
१ १ २१५ २२३ २२४		इ	२५२			हुविनी शक्ति	६४१
३३६ ३७० ४२२ ४९३		इक्ष्वाकुवर्णन	८०६				
		इक्ष्वाकुवय	१८१				

दाहृत और काहृत	२४३	४२५	५	६	५३६	६७४	हृदयवाङ्मयकारक	८२०			
हिंसा और अहिंसा	६५९	हिरण्यगर्भ	९०	११५	३२४	हृगोक	६९१	६९६	८०३		
हित	५९९	३२०	३३९	४८५	६६०	८२६	८३६	८३७	८४१		
हित चौरासी	३९१	५९२	६६१	६६५	७५४	९६८	८४५	८५८	८६२	८९०	
हित सेवक	३९१	हिरण्यमय	३०९	३९७	८९१	८९२	८९३	८९४	८९६	९०१	
हित सेवक दास	५९४	हिरण्यमय हयग्रीव	४५३	हिम्पाच	४१५	४१६	५०८	हेगोक रमणीयता	८९१		
हित हरिष्ठा	३९१	५१४	हिम्पाच	४१५	४१६	५०८	हेमज	१८			
५९२	५९३	९४९	हिरण्पाच	बघ	४१७	हिरिषष्ठा	९२१	हेमजतम्भ	१०	१८	६४
हिन्दी काव्यधारा	१७४	हिरिषष्ठा	९२१	हिरिषष्ठा	९२१	हिन्दी भाषा विकास	४९९	हेमजतम्भ	१०	१८	६४
हिन्दी का मराठी भर्तों	१५०	हिरिषष्ठा	९२१	हीनयाम	३६	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४		
की रत्न	१५०	हिरिषष्ठा	९२१	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४		
हिन्दी मण्डिकासीम	५८०	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४		
साहित्य	५८०	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४		
हिन्दू अवतारवाद	२६४	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४		
हिन्दू दक्षता	१४	१३५	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिन्दू धर्म	११४	११४	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिन्दू-त्रेमाप्याम	३०५	३०५	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिन्वाक	९४०	९४०	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिमाक	३५५	३५५	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिमालय क्षेत्र	१०४	१०४	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिमालय की पुरी रूप	६१८	६१८	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
हिरण्यकशिपु	१०१	१९२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४	
१०१	२१५	२२३	२२४	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४
३६६	३७०	४२९	४२३	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४
				हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हीनयामी	५२	हेमजतम्भ	६४

